

आचार्य जिनसेनकृत

आदिपुराण

[द्वितीय भाग]

हिन्दी अनुवाद तथा परिशिष्ट आदि सहित

सम्पादन-अनुवाद

पं० पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन



स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा
संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाक अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश हिन्दी कन्नड तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें
उपलब्ध आगमिक दार्शनिक पौराणिक साहित्यिक ऐतिहासिक आदि विविध विषयक
जैन-साहित्यकी अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसकी मूल और यथासम्भव
अनुवाद आदिकें साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन मण्डलोंको
सूचियाँ शिलाखेत सग्रह विविध विद्वानोंक अध्ययन
ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थों में
इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०
डॉ० मा० ने० उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय ९ अलीपुर बाक ब्लैक कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी-५

विक्रय केन्द्र ३१२०११ नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली-६

मद्रक समिति मद्रणालय दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी-५

स्थापना फागुन वृष्ण ९ चार नि० २४० • विक्रम सं २०० • १८ फरवरी सन् १९४४

सर्वाधिकार सुरक्षित



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

ĀDIPURĀNA

[Second Part]

of

ĀCHĀRYA JINASENA

with

HINDI TRANSLATION, APPENDICES ETC.

लैम इतिहास निर्माण समिति
लाल भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

Edited by

Pt. PANNALAL JAIN, SAHITYACHARYA



BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION

VIRA SAMVAT 2491
V S 2021, 1965 A D

Second Edition
Rs 10/

BHĀRATĪYA JNĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ

JAINA GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAINA ĀSAMI PHILOSOPHICAL
PURĀNIC LITERARY HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS
AVAILABLE IN DEVĀNĪRĪ SANSKRIT MAHARASHTRA HINDI
KANNADA TAMIL ETC ARE BEING PUBLISHED
IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR
TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAINA BHANDARAS IN COLLECTIONS
STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR
JAINA LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED

●
General Editors

Dr Hiralal Jain M A D Litt
Dr A N Upadhye M A D Litt

●
Bharatiya Jnanapitha

Head office 9 Alipore Park Place Calcutta-57
Publication office Duragskund Road, Varanasi-5
Sales office 3630/21 Netaji Subhash Marg Delhi-6

Founded on Phalguna Krishna 9 Vira Sam 2470 Vikrami Sam 2000 18th Febr 1944
All Rights Reserved

विषयानुक्रमशिका

पृष्ठ

पृष्ठ

पट्टविंशतितम पर्व

चक्रवर्ती भरतने विधिपूर्वक चक्ररत्नकी पूजा की और फिर पुत्रोत्पत्तिका उत्सव मनाया। नगरीकी सजावट की गयी। अनन्तर दिग्विजयके लिए उद्यत हुए। उस समय शरद् ऋतुका विस्तृत वर्णन।

दिग्विजयके लिए उद्यत चक्रवर्तीका वर्णन। तत्कालोचित सेनाकी शोभाका वर्णन। पूर्व दिशामे प्रयाणका वर्णन। गंगाका वर्णन।

१-१७

सप्तविंशतितम पर्व

सारथी-द्वारा गंगा तथा वनकी शोभाका वर्णन। हाथी तथा घोडा आदि सेनाके अंगोंका वर्णन।

१८-३२

अष्टाविंशतितम पर्व

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही दिग्विजयके लिए आगे प्रयाण किया। चक्ररत्न उनके आगे-आगे चल रहा था। तात्कालिक सेनाकी शोभाका वर्णन। क्रमशः चलकर वे गंगाद्वारपर पहुँचे। वहाँ वे उपसमुद्रको देखते हुए स्थलमार्गसे गंगाके किनारेके उपवनमे प्रविष्ट हुए। वही सेनाको ठहराया। अनन्तर समुद्रके किनारेपर पहुँचे, वहाँ समुद्रका विस्तृत वर्णन।

३३-४४

भरत चक्रधर लवणसमुद्रमें स्थलकी तरह वेगसे आगे बढ़ गये। बारह योजन आगे चलकर उन्होंने अपने नामसे चिह्नित एक वाण छोडा, जो कि मागध देवकी सभामे पहुँचा। पहले तो मागधदेव बहुत विगडा पर बादमे वाणपर चक्रवर्तीका नाम देख गव्वरहित हुआ तथा, हार, सिंहासन और कुण्डल साथ लेकर चक्रवर्तीके स्वागतके लिए पहुँचा। चक्रवर्ती उसकी विनयसे बहुत प्रसन्न हुए।

४५-५०

समुद्रका विविध छन्दो-द्वाग विस्तृत वर्णन।

अन्तमे कवि-द्वारा पुण्यका माहात्म्य वर्णन। ५१-६१

एकोनविंशततम पर्व

अनन्तर चक्रवर्ती दक्षिण दिशाकी ओर आगे बढ़े। मार्गमे अनेक राजाओंको वश करते जाते थे। बीचमे मिलनेवाले विविध देशों, नदियों और पर्वतोंका वर्णन।

६२-७१

दक्षिण समुद्रके तटपर चक्रवर्तीने अपनी समस्त सेना ठहरायी। वहाँकी प्राकृतिक शोभाका वर्णन। चक्रवर्तीने रथके द्वारा दक्षिण समुद्रमे प्रवेश कर वहाँके अधिपति व्यन्तरदेवको जीता।

७२-८०

त्रिंशत्तम पर्व

सम्राट् भरत दक्षिण दिशाको विजय कर पश्चिमकी ओर बढ़े। वहाँ विविध वनों, पर्वतों और नदियोंकी प्राकृतिक सुपमा देखते हुए वे बहुत ही प्रसन्न हुए। क्रमशः वे विन्ध्य गिरिपर पहुँचे। उसकी बिखरी हुई शोभा देखकर उनका चित्त बहुत ही प्रसन्न हुआ। वही उन्होंने अपनी सेना ठहरायी। अनेक वनोंके स्वामी उनके पास तरह-तरहकी भेट लेकर मिलनेके लिए आये। भरतने सबका यथोचित सम्मान किया। समुद्रके किनारे-किनारे जाकर वे पश्चिम लवण-समुद्रके तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने दिव्य शस्त्र धारण कर पश्चिम समुद्रमे बारह योजन प्रवेश किया और व्यन्तराधिपति प्रभास नामक देवको वशमे किया। पुण्यके प्रभावसे क्या नहीं होता ?

८१-९५

एकत्रिंशत्तम पर्व

अनन्तर अठारह करोड घोडोंके अधिपति भरत चक्रधरने उत्तरकी ओर प्रस्थान

किया। क्रमशः चलते हुए विजयाध पवतकी उपत्यकामें पहुँचे। वहाँ व अपनी समस्त सेना ठहराकर निश्चित हुए। पता चलन पर विजयाधदेव अपन समस्त परिवारके साथ इनके पास आया और उनका आज्ञाकारी हुआ। विजयाधकी जोत लेनमे इनकी दिग्विजयका अधभाग पूरा हो गया। अनन्तर उन्होंने उत्तरभारतमें प्रवेश करनेका अभिप्राय से बण्डरल द्वारा विजयाध पवतके गुप्तार का उद्घाटन किया। १६१११

द्वात्रिंशत्तम पर्व

गरमी शान्त होनपर उन्होंने गुहाके मध्यम प्रवेश किया। काकिणी रत्नक द्वारा भागम प्रकाश होता जाता था। बीचमें उ मन्जला तथा निमन्जला नामकी नदियाँ मिली उनके तटपर सेनाका विश्राम हुआ। स्थपति रत्नन अपन बुद्धिबलसे पुल तयार किया जिससे समस्त सेना उस पार हुई। गुहागमन निकलकर सेनासहित भरत उत्तर भरत क्षत्रम पहुँचे। चिलात और आवत नामक राजा बहुत क्षुब्ध हुए। व परस्परमिल कर चक्रवर्तीसे युद्ध करनेके लिए युद्धयत्न हुए। नाग जातिके देवाकी सहायतासे उन दोनोंने चक्रवर्तीकी सेनापर घनघोर वर्षा की जिससे ७ दिन तक चक्रवर्तीकी सेना क्षमरत्नके बीचमें नियमित रही। अनन्तर जयकुमारके आग्रह से नाग जातिके देव भाग खड़े हुए और सब उपद्रव शांत हुआ। चिलात और आवत दोनों ही श्लेच्छ राजा निरुपाय होकर शरणमें आये। क्रमशः भरतने उत्तर भरतके समक्ष श्लेच्छ क्षण्डोपर विजय प्राप्त की। ११२१३०

त्रयस्त्रिंशत्तम पर्व

दिग्विजय करनेके बाद चक्रवर्ती सेनासहित अपनी नगरीके प्रति वापस लौट। भागमें अनेक देशा नदियों और पवताको उल्लिखित करते हुए बलास पवतके समीप आये। वहाँमें श्री ऋषभ जिनद्वारा पूजा करनेके लिए बलास पवतपर गये। अनेक राजा

उनका साथ थे। पुरोहितक द्वारा बलास पवतमा व्रजन। १२११३६

समवसरणका सम्पन्न व्रजन। गमवसरणम् स्थित श्री ऋषभ जिनद्वारा व्रजन। सम्राटक द्वारा भगवान्की स्तुतिमा व्रजन। १३७१५०

चतुस्त्रिंशत्तम पर्व

बलासस उत्तरवर अयोध्या नगरीकी ओर प्रस्थान। चक्ररत्न अयोध्या नगरीके द्वारपर आकर रुक गया जिसमें सबका आश्चर्य हुआ। चक्रवर्ती स्वयं सोच विचारमें पड़ गये। निमित्तगानी पुरोहितन बतलाया कि अभी आपका भाइयाका वंश करना बाकी है। पुरोहितकी सम्मतिसे अनुसार राजदूत भाइयाके पास भेज गये। उन्होंने भरतकी आज्ञा मान रहना स्वीकार नहीं किया और श्री ऋषभनाथ स्वामीक पास जाकर दीक्षा ले ली। १५११७१

पञ्चत्रिंशत्तम पर्व

सब भाई तोनीक्षित हो चुके परन्तु बाहुबली राजदूतकी बात सुनकर क्षुब्धित हो उठ। उन्होंने कहा कि जब पिताजीन सबको समान रूपसे राजपद दिया है तब एक सम्राट हो और दूसरा उसके अधीन रहे यह सम्भव नहीं। उन्होंने दूतको फटकारकर वापस कर दिया अन्तमें दोनों ओरसे युद्धकी तैयारी हुई। १७२१९९

षट्त्रिंशत्तम पर्व

युद्धके लिए इस ओरसे भरतकी सेना आगे बढ़ी और उस ओरसे बाहुबलीकी सेना आगे आयी। बुद्धिमान् मंत्रियान विचार किया कि इस भाई भाईकी लड़ाईमें सेनाका हानि हो सहाय होगा। इसलिए अच्छा हो कि स्वयं ये दोनों भाई ही लड़ें। सबन मिलकर नवयुद्ध जलयुद्ध और मल्लयुद्ध में तीन युद्ध निश्चित किये। तीनों ही युद्धोंमें जब बाहुबली विजयी हुए तब भरतन क्षुब्ध होकर चक्ररत्न चला दिया परन्तु उससे बाहुबलीकी कुछ भी हानि नहीं हुई। बाहुबली चक्रवर्तीके इस व्यवहारसे बहुत ही विरक्त हुए और जलम जाकर उन्होंने

दीक्षा ले ली। वे एक वर्षका प्रतिमायोग ले कायोत्सर्ग करते हुए तपस्चरण करते रहे। भरत चक्रवर्तीने उनके चरणोमें अपना मस्तक टेक दिया। बाहुबली केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षको प्राप्त हुए। २००-२२०

सप्तत्रिंशत्तम पर्व

चक्रवर्तीने बड़े वैभवके साथ अयोध्या नगरमें प्रवेश किया। उनके वैभवका वर्णन। २२१-२३९

अष्टत्रिंशत्तम पर्व

एक दिन भरतने सोचा कि हमने जो वैभव प्राप्त किया है उसे कहां खर्च करना चाहिए। जो मुनि है, वे तो धनसे निस्पृह रहते हैं। अतः अणुव्रतधारी गृहस्थोंके लिए ही धनादिक देना चाहिए। एक दिन भरत चक्रवर्तीने नगरके सब लोगोंको किसी उत्सवके वहाने अपने घर बुलाया। घरके अन्दर पहुँचनेके लिए जो मार्ग थे वे हरित अकुरोसे आच्छादित करा दिये। बहुतसे लोग उन मार्गोंसे चक्रवर्तीके महलके भीतर प्रविष्ट हुए। परन्तु कुछ लोग बाहर खड़े रहे। चक्रवर्तीने उनसे भीतर न आनेका जब कारण पूछा तब उन्होंने कहा कि मार्गमें उत्पन्न हुई हरी घास आदिमें एकैन्द्रिय जीव होते हैं। हम लोगोंके चलनेसे वे सब मर जायेंगे अतः दयाकी रक्षाके लिए हम लोग भीतर आनेमें असमर्थ हैं। चक्रवर्ती उनके इस उत्तरसे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें दूसरे प्रामुख मार्गमें भीतर बुलाया और उन्हें दयालु समझकर श्रावक सजा दी, वही ब्राह्मण कहलाये। इन्हें ब्राह्मणोचित क्रिया-काण्ड आदिका उपदेश दिया। अनेक क्रियाओंका उपदेश दिया। सबसे पहले गर्भान्वय क्रियाओंका उपदेश दिया। २४०-२६८

एकोनचत्वारिंशत्तम पर्व

तदनन्तर भरत चक्रवर्तीने दीक्षान्वय क्रियाओंका उपदेश दिया। २६९-२७६
पितृ मन्त्रान्वय क्रियाओंका निरूपण किया। २७७-२८९

चत्वारिंशत्तम पर्व

पोडण सस्कार तथा हवनके योग्य मन्त्रोंका वर्णन। २९०-३१६

एकचत्वारिंशत्तम पर्व

कुछ समय व्यतीत होनेपर भरत चक्रवर्तने एक दिन रात्रिके अन्तिम भागमें अद्भुत फल दिखलानेवाले कुछ स्वप्न देखे। स्वप्न देखनेके बाद उनका चित्त कुछ त्रस्त हुआ। उनका वास्तविक फल जाननेके लिए वे भगवान् आदिनाथके समवसरणमें पहुँचे। वहाँ जिनेंद्र वन्दनाके अनन्तर उन्होंने श्री आद्यजिनेंद्रसे निवेदन किया कि मैंने ब्राह्मण वर्णकी सृष्टि की है। वह लाभप्रद होगी या हानिप्रद। तथा मैंने कुछ स्वप्न देखे हैं उनका फल क्या होगा? भरतके उत्तरमें श्री भगवान्ने कहा कि वत्स! यह ब्राह्मण वर्ण आगे चलकर मर्यादाका लोप करनेवाला होगा यह कहकर उन्होंने स्वप्नोंका फल भी बतलाया, जिसे सुनकर चक्रवर्तीने अयोध्या नगरीमें वापस प्रवेश किया। और दुःस्वप्नोंके फलकी शान्तिके लिए जिनाभिपेक आदि कार्य कर सुखसे प्रजाका पालन किया। ३१७-३३०

द्विचत्वारिंशत्तम पर्व

एक दिन भरत सम्राट् राजसभामें बैठे हुए थे। पास ही अनेक अन्य राजा विद्यमान थे। उस समय उन्होंने विविध दृष्टान्तोंके द्वारा राजाओंको राजनीति तथा वर्णश्रम धर्मका उपदेश दिया। ३३१-३५०

त्रिचत्वारिंशत्तम पर्व

यहाँसे गुणभद्राचार्यकी रचना है। सर्वप्रथम उन्होंने गुरुवर जिनसेनके प्रति भक्ति प्रकट कर अपनी लघुता प्रदर्शित की। अनन्तर श्रेणिकने समवसरणसभामें खड़े होकर श्री गीतम गणवरसे प्रार्थना की कि भगवन्! अब मैं श्री जयकुमारका चरित सुनना चाहता हूँ कृपा कर कहिए। उत्तरमें गणवर स्वामी-

ने जयकुमारका विस्तृत चरित कहा। बागी
राज अकम्पनकी सुपुत्री सुलोचनान स्वयवर
मण्डपमें जयकुमारके गलेमें वरमाला
हाल दी।

३५१ ३८५

चतुश्चत्वारिंशत्तम पर्व

स्वयवर समाप्त होते ही चक्रवर्ती भरतसे पुन
अककीर्ति और जयकुमारके बीच घनघोर
युद्ध हुआ। अन्तमें जयकुमार विजयी हुए।
अकम्पन तथा भरतकी दूरदर्शितासे युद्ध
शांत हुआ तथा दानोच्चा मनमुटान दूर
हुआ।

३८६ ४२४

पञ्चचत्वारिंशत्तम पर्व

अकम्पनन पुत्रीके शील और सत्तोपकी
प्रशंसा की तथा अककीर्तिकी प्रशंसा कर
उह शान्त किया। तथा चक्रवर्ती भरतके
पास दूत भेजकर अपन अपराधके प्रति क्षमा
याचना की। चक्रवर्तीने उनके उत्तरमें
अकम्पन और जयकुमारकी बहुत ही
प्रशंसा की।

४२५ ४३१

जयकुमार और सुलोचनाका प्रेममिलन— जब
जयकुमारन अपन नगरकी ओर वापस आनका
विचार प्रकट किया तब अकम्पनन उन्हें बड़े
वैभवके साथ बिना किया। मागमें जयकुमार
चक्रवर्ती भरतसे मिलनके लिए गया। चक्र-
वर्तीने उनका बहुत सत्कार किया।
अयोध्यासे सौटकर जब जयकुमार अपने
पड़ावकी ओर गगाने मागस जा रहे थे तब
एक देवीने मगरका रूप धरकर उनके
हाथीको ग्रस लिया जिससे जयकुमार हाथी
सहित गंगामें डूबने लगे तब सुलोचनान
पवनमस्कार मन्त्रकी आराधनासे इस उप-
सगको दूर किया।

४३२ ४४०

बड़ी धूमधामके साथ जयकुमारन हस्तिनापुर
में प्रवेश किया। नगरके नर-नारियोंने
सुलोचना और जयकुमारको देखकर अपन
नम्र सफल किये। जयकुमारन हेमावद
आन्धिके समक्ष ही सुलोचनाको पटरानीका

पट्ट बांधा और पंड वैभवके साथ मुग्धने रत्न
लगे।

४४१

इधर किसी कारणवश सुलोचनासे पिता
अकम्पनकी समारस विरक्ति हो गयी। उन्होंने
वराग्यभावनाका चिंतन कर अपनी विरक्ति
की श्वाया तथा रानी मुप्रभासे साथ शीघ्र
धारण कर निर्वाण प्राप्त किया। मुप्रभा
यमायोग्य स्वर्गमें उत्पन्न हुई।

४४२ ४४३

जयकुमार और सुलोचनाके विविध भोगाका
क्षण।

४४४ ४४५

षट्चत्वारिंशत्तम पर्व

किसी एक दिन जयकुमार अपनी प्राणवल्लभा
सुलोचनासे साथ मकानकी छतपर बैठ हुए
थे कि अचानक उनकी दृष्टि आकाशमागसे
जाते हुए विद्याधर-म्पतिपर पड़ा। दृष्टि
पड़ते ही हा मेरी प्रभावती' कहकर जय
कुमार मूर्च्छित हो गये और सुलोचना भी
हा मरे रतिवर कहती हुई मूर्च्छित हो
गयी। उपचारके धान दोनों सचेत हुए।
जयकुमारन सुलोचनासे मूर्च्छित होनेका
कारण पूछा तब वह पूर्वभवका वृत्तान्त कहन
लगी। विस्तारके साथ दोनोंकी भवावल्लिका
क्षण।

४४६ ४७९

सप्तचत्वारिंशत्तम पर्व

जयकुमार और सुलोचना पूर्व भवकी वर्चा
कर रहे थे कि जयकुमारने उससे श्रीपाल
चक्रवर्तीके विषयमें पूछा। सुलोचनान अपनी
सरस बाणीके द्वारा श्रीपाल चक्रवर्तीका
विस्तृत कथानक प्रकट किया। अनन्तर दोनों
मुखसे अपना समय बितान लगे।

४८० ५००

देव द्वारा जयकुमारके शीलकी परीक्षा।
जयकुमारका संसारसे विरक्त होना और
भगवान् ऋषभदेवके समवसरणमें गणधर
पद प्राप्त करना।

५०१ ५१२

भरत चक्रवर्तीका दीक्षाग्रहण केवलज्ञानकी
प्राप्ति भगवान्का अंतिम विहार और
निर्वाणप्राप्ति।

५१३ ५१५

श्रीमज्जिनसेनाचार्यविरचितम्

आदिपुराणम्

[द्वितीयो भागः]

अथ षड्विंशतितमं पर्व

अथ चक्रधरः पूजां चक्रस्य द्विविधं व्यधात् । सुतोत्पत्तिमपि श्रीमानभ्यनन्ददनुक्रमात् ॥ १ ॥
^१नादरिर्जाजनः कञ्चिद् विभोस्तस्मिन् महोत्सवे । दारिद्र्यमर्थिलाभे^२ तु जातं^३ विद्वागितं भवे ॥ २ ॥
 चतुष्केषु^४ च रथ्यासु^५ पुरस्यान्तर्बहि^६ पुरम् । पुर्जीकृतानि रत्नानि तदार्थिभ्यो ददौ नृपः ॥ ३ ॥
 अभिचारं^७ क्रियेवाग्नीचक्रपूजास्य विद्विषाम् । जगतः शान्तिकर्मेव जातकर्माप्यभूत्तदा ॥ ४ ॥
 ततोऽस्य दिग्जयोद्योगममये शरदापतन्^८ । जयलक्ष्मीश्चामुप्य प्रसन्ना विमलाम्बरा^९ ॥ ५ ॥
 अलका इव सरंजुरस्या^{१०} मधुकरवजा^{११} । मत्तच्छत्रप्रसूनोत्थरजोभूषितविग्रहा^{१२} ॥ ६ ॥
 प्रसन्नममवत्तोय मरमां सरितामपि । कवीनामिव सत्काव्यं जननाच्चित्तरञ्जनम् ॥ ७ ॥
 मितच्छत्रावली^{१३} रंजं सपतन्ती ममन्ततः । स्थूलमुक्तावली नद्धा कण्ठिकेव शरच्छिद्य^{१४} ॥ ८ ॥

अथानन्तर श्रीमान् चक्रवर्ती भरत महाराजने विधिपूर्वक चक्ररत्नकी पूजा की और फिर अनुक्रमसे पुत्र उत्पन्न होनेका आनन्द मन्नाया ॥ १ ॥ राजा भरतके उस महोत्सव-के समय ससार-भरमे कोई दरिद्र नहीं रहा था किन्तु दरिद्रता सबको सन्तुष्ट करनेवाले याचकोके प्राप्त करनेमे रह गयी थी । भावार्थ—महाराज भरतके द्वारा दिये हुए दानसे याचक लोग इतने अधिक सन्तुष्ट हो गये कि उन्होंने हमेगाके लिए याचना करना छोड़ दिया ॥ २ ॥ उस समय राजाने चौराहोमे, गलियोमे, नगरके भीतर और बाहर सभी जगह रत्नोके ढेर किये थे और वे सब याचकोके लिए दे दिये थे ॥ ३ ॥ उस समय भरतने जो चक्ररत्नकी पूजा की थी वह उसके शत्रुओके लिए अभिचार क्रिया अर्थात् हिंसाकार्यके समान मालूम हुई थी और पुत्र-जन्मका जो उत्सव किया था वह ससारको शान्ति कर्मके समान जान पडा था ॥ ४ ॥ तदनन्तर भरतने दिग्विजयके लिए उद्योग किया, उसी समय शरदऋतु भी आ गयी जो कि भरतकी जयलक्ष्मीके समान प्रसन्न तथा निर्मल अम्बर (आकाश) को धारण करनेवाली थी ॥ ५ ॥ उस समय सप्तपर्ण जातिके फूलोसे उठी हुई परागसे जिनके गरीर मुगोभित हो रहे हैं ऐसे भ्रमरोके समूह इस शरदऋतुके अलको (केगपाग) के समान गोभाय-मान हो रहे थे ॥ ६ ॥ जिस प्रकार कवियोंका उत्तम काव्य प्रसन्न अर्थात् प्रमाद गुणसे सहित और जनसमूहके चित्तको आनन्दित करनेवाला होता है उसी प्रकार तालावो और नदियोंका जल भी प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ और मनुष्योंके चित्तको आनन्द देनेवाला बन गया था ॥ ७ ॥ चारो ओर उड़ती हुई हंसोकी पक्षियाँ ऐसी मुगोभिन हो रही थी मानो शरदऋतु रूपी लक्ष्मी-

कलहंसा हसन्तीव विरुनैः स्म गिरिखण्डिनः । अहो^१ जडप्रिया यूयमिति निर्मलमूर्तय ॥१९॥
 चित्रवर्णा^२ घनावद्धरुच्यो गिरिस्रया । मम^३ शतमुखेष्वाभैर्वर्हिणः स्वोन्नति जहु ॥२०॥
 'बन्धूकैरिन्द्रगोपश्रीरानेने वनराजिषु । गरल्लक्ष्म्येव निष्ठ्यूतैस्ताम्बूलरगविन्दुभिः ॥२१॥
 विकास बन्धुजीवेषु^४ शरदाविर्मबन्त्यधात् । सर्ताव^५ सुप्रसन्नागा^६ विपङ्का^७ विगटाम्बरा^८ ॥२२॥
 हंसस्वनानकाकाशकणिगोज्ज्वलचामरा । पुण्डरीकातपत्रासोद्भिज्योत्थेव सा शरत् ॥२३॥
 दिशां^९ प्रसाधनायावाद्^{१०} वाणासनपरिच्छिदम् । शरत्कालो^{११} जिगीषोर्हि इलाव्यो वाणासनग्रह ॥२४॥
 घनावली कृशा पाण्डुरासीदाशा विमुञ्चती । घनागमवियोगोत्थचिन्तयेवाकुलीकृता ॥२५॥
 १ नमः सतारमारंजे विहसत्कुमुदाकरम् । कुमुदतीवन चाभाज्जयचारकितं नमः ॥२६॥

निर्मल शरीरको धारण करनेवाले हंस मधुर शब्द करते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो अहो तुम लोग जडप्रिय - मूर्खप्रिय (पक्षमे जलप्रिय) हो इस प्रकार कहकर मयूरोकी हँसी ही उड़ा रहे हो ॥ १९ ॥ जिनका वर्ण अनेक प्रकारका है, जिनकी रुचि-इच्छा (पक्षमे कान्ति) मेघोमे लग रही है और जो पर्वतोके आश्रय है ऐसे मयूरोने इन्द्रधनुषोके साथ-ही-साथ अपनी भी उन्नति छोड़ दी थी । भावार्थ - उस शरदऋतुके समय मयूर और इन्द्रधनुष दोनोंकी शोभा नष्ट हो गयी थी ॥ २० ॥ वन-पक्षितयोमे शरदऋतुरूपी लक्ष्मीके द्वारा थूके हुए ताम्बूलके रसके बूंदोके समान शोभा देनेवाले बन्धूक (दुपहरिया) पुष्पोने क्या इन्द्रगोप अर्थात् वर्षाऋतुमे होनेवाले लाल रगके कीड़ोकी शोभा नहीं बढ़ायी थी ? अर्थात् अवश्य ही बढ़ायी थी । बन्धूक पुष्प इन्द्रगोपोके समान जान पड़ते थे ॥ २१ ॥ जिस प्रकार निर्मल अन्त करणवाली, पापरहित और स्वच्छ वस्त्र धारण करनेवाली कोई सती स्त्री घरसे बाहर प्रकट हो अपने बन्धुजनोके विषयमे विकास अर्थात् प्रेमको धारण करती है उसी प्रकार शुद्ध दिशाओको धारण करनेवाली कीचडरहित और स्वच्छ आकाशवाली शरदऋतुने भी प्रकट होकर बन्धुजीव अर्थात् दुपहरिया-के फूलोपर विकास धारण किया था - उन्हे विकसित किया था । तात्पर्य यह है कि उस समय दिशाएँ निर्मल थी, कीचड मूख गया था, आकाश निर्मल था और वनोमे दुपहरियाके फूल खिले हुए थे ॥ २२ ॥ उस समय जो हंसोके शब्द हो रहे थे वे नगाडोके समान जान पड़ते थे, वनोमे काशके फूल फूल रहे थे वे उज्ज्वल चमरोके समान मालूम होते थे, और तालाबोमे कमल खिल रहे थे वे क्षत्रके समान सुशोभित हो रहे थे तथा इन सबसे वह शरदऋतु ऐसी जान पड़ती थी मानो उसे दिग्विजय करनेकी इच्छा ही उत्पन्न हुई हो ॥ २३ ॥ उस शरदऋतुने दिशाओ-को प्रसाधन अर्थात् अलंकृत करनेके लिए वाणासन अर्थात् वाण और आसन जातिके पुष्पो-का समूह धारण किया था सो ठीक ही है क्योंकि शत्रुओको प्रसाधन अर्थात् वश करनेके लिए जिगीषु राजाको वाणासन अर्थात् धनुषका ग्रहण करना प्रशसनीय ही है ॥ २४ ॥ उस समय सभन्त आशा अर्थात् दिशाओ (पक्षमे मगमकी इच्छाओ)को छोड़ती हुई मेघमाला कृश और पाण्डुवर्ण हो गयी थी सो उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो वर्षाकालके वियोगमे उत्पन्न हुई चिन्तासे व्याकुल होकर ही वैसी हो गयी हो ॥ २५ ॥ उस शरदऋतुके समय ताराओमे महित आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो कुमुदिनियोमहित सरोवरकी हँसी ही कर रहा हो

१ जलप्रिया ल०, द०, इ०, म०, अ०, प० । २ मेघवृन्वाच्याः । ३ इन्द्रवापे । ४ बन्धुजीवर्क । बन्धूकै बन्धुजीवर्क इत्यभिधानात् । ५ बन्धूक-कुमुदेषु, पक्षे नुहज्जीवेषु । ६ पुष्पाङ्गनेव । ७ सुप्रसन्नद्रिक्, पक्षे नुप्रसन्नमानसा । नुप्रसन्नान्मा-ल० । ८ विगतकर्दमा, पक्षे दोषरहिता । ९ पक्षे निर्मलवस्त्रा । १० अन्वागाय । ज्ञानं च । ११ त्रिष्टिदुनुमज्ज्वलकुमुदपङ्क्तिम् । पक्षे धनु पङ्क्तिम् । १२ त्रेनुमिच्छा ।

तारकाकुमुदाकाण नम सरसि निमल । हसायन म्म शीताशुभिस्तत्परपञ्चि^१ ॥२७॥

नमोगुहाडगग तनु श्रिय पुष्पोपहारजाम् । तारकादिनवधुहारनारमुक्ताफलान्त्रिय ॥२८॥

बभ्रुनमोऽश्रुधी तारा स्फुरमुक्ताफलामला । करका^२ द्वय मघाघनिहिता^३ त्रिमशालला ॥२९॥

ज्यो रतासल्लिखसमूता द्वय शुद्धदपटनय । सारका रत्निमातेनुत्रिप्रकीर्णा नभाऽष्टगग ॥३०॥

तनुभूतपथोवेणा^४ नय परिकृशा दधु । विद्युत्ता घनकालन विरहिण्य इवाग्गना ॥३१॥

अनुद्धता गनीरस्व भञ्ज रचञ्जन्तोशुभा । मरिन्निश्रवा घनापायाद् बधममिय^५ सश्रिता ॥३२॥

दिग्दृग्गना घनापायप्रकाशाभूतमृतय । व्यावहाम्यामियाननुः प्रत्यक्षा हसमण्डल^६ ॥३३॥

कृजितै कलहसानां निर्जिता द्वय तत्पञ्च । नकायितानि^७ शिखिन मय कालत्रलाद् यला ॥३४॥

ज्योस्नाहुकृलयमना लम्बप्रभमालिका^८ । यधुजायाधरा रज निमला शरदङ्गना ॥३५॥

ज्योस्ना कीर्तिमिवात^९ वनू विद्युगगनमण्डल । शरदङ्गमी ममाग्राध मुराजगद्युत्तराम् ॥३६॥

यधुजावेपु^{१०} विन्यस्तरागा^{११} बाणकृतयुति^{१२} । हसा मयारुता रज नवाडय^{१३} शरदधू ॥३७॥

और कुमुदिनियोसे सहित सरोवर ऐसा जान पड़ता था मानो तारामोसे सुशामित आकाश को ही जीत रहा हो ॥ २६ ॥ तारकारूप कुमुदसि भरे हुए आकाशरूपी निमल सरोवरम अपने किरणरूप पंखोको फलाता हुआ चन्द्रमा ठीक हमवे समान आचरण करता था ॥ २७ ॥ जिनकी कांति दिशारूपी स्त्रियोंके हारोम लगे हुए बड़े-बड़े मोतियावे समान है ऐसे तारागण आकाशरूपी घरके आँगनम फूलोके उपहारस उत्पन्न हुई शोभाको बढ़ा रहे थे ॥ २८ ॥ ददीप्य मान मुक्ताफलोके समान निमल तारे आकाशरूपी समुद्रम एम सुशोभित हो रह थे मानो मेघा के समूहने बर्फके समान शीतल ओल ही धारण कर रखे हों ॥ २९ ॥ आकाशरूपी आँगनम जहाँ तहाँ बिखरे हुए तारागण ऐसी शोभा धारण कर रह थे माना चाँदनीरूप जलसे उत्पन्न हुए बबूलोके समूह ही हो ॥ ३० ॥ वर्षावासरूपी पतिसे विछुड़ी हुई नदियाँ विरहिणी स्त्रियोंके समान अत्यन्त कृश होकर जलके सूक्ष्म प्रवाहरूपी चाटियाको धारण कर रही थी ॥ ३१ ॥ वर्षाकालके नष्ट हो जानेसे नदीरूप स्त्रियाँ मानो वैधव्य अवस्थाको ही प्राप्त हो गयी थीं क्योंकि जिस प्रकार विधवाएँ उद्धतता छोड़ देती ह उसी प्रकार नदियाने भी उद्धतता छोड़ दी थी विधवाएँ जिस प्रकार स्वच्छ (सफेद) वस्त्र धारण करती ह उसी प्रकार नदियाँ भी स्वच्छ वस्त्ररूपी जल धारण कर रही थी, और विधवाएँ जिस प्रकार अगम्भीर वृत्तिको धारण करती ह उसी प्रकार नदियाँ भी अगम्भीर अर्थात् उथली वृत्तिको धारण कर रही थी ॥ ३२ ॥ मेघोके नष्ट हो जानेसे जिनकी मूर्ति-आकृति प्रकाशित हो रही है ऐसी दिशारूपी स्त्रियाँ अत्यन्त प्रसन्न हो रही थी और हसरूप आभरणोके छलसे मानो एक-दूसरेके प्रति हस ही रही थी ॥ ३३ ॥ उस समय मयूरोने अपनी केका बाणी छोड़ दी थी, मानो कलहस पक्षियोंके मधुर शब्दोसे पराजित होकर ही छोड़ दी हो सो ठीक ही है क्योंकि समयके चलसे सभी बलवान्, हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ चाँदनीरूपी रेशमी वस्त्र पहने हुए, देदीप्यमान नक्षत्रोकी माला (पक्ष में सत्ताईस भणियोवाला नक्षत्रमाल नामका हार) धारण किये हुए और दुपहरियाके फूल रूप अधरोसे सहित वह निर्मल शरदऋतुरूपी स्त्री अतिशय सुशोभित हो रही थी ॥ ३५ ॥ शरदऋतुकी शोभा पाकर आकाशमण्डलमें चाँदनीरूपी कीर्तिको फलाता हुआ चन्द्रमा किसी उत्तम रागाके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥ ३६ ॥ वह शरदऋतु नवोढा स्त्रीवे समान

१ विरणा एव पञ्चति मूल यस्य । २ वर्षोपला । ३ निक्षिप्ता । ४ पय प्रवाहा इत्यथ । ५ पक्षे दधतस्यूलवस्त्रा । ६ विधवाया माय । ७ परस्परहासम् । ८ हसमण्डना प० इ द । हंसमण्डनात् ल० । ९ मयूररुचानि । १ तारकावली पक्ष हारणे । ११ यधुकेपु वा यवपु च । १२ क्षिप्ति पक्षे शर । १३ विकास पक्ष कांति । १४ नूतनविवाहिता ।

स्वयं^१ धौतमभाद् व्योम स्वयं प्रच्छालितः शर्मा । स्वयं प्रसादिता^२ नद्यः स्वयं संमार्जिता दिग्गः ॥३८॥
 शरदक्ष्मीमुखालोकदर्पणे शशिमण्डले । प्रजादृशां धृतिं भेजुरसमृष्टसमुज्ज्वले ॥३९॥
 वनराजीस्ततामोदाः कुसुमाभरणोज्ज्वलाः । मधुव्रता भजन्ति स्म कृतकोलाहलस्वनाः ॥४०॥
 तन्व्यो^३ वनलता रेजुर्विकासिकुसुमस्मिताः । सालका इव गन्धान्धविलोलालिकुलाकुलाः ॥४१॥
 दर्पोद्गराः^४ खुरोस्वातभुवस्तानीकृतेक्षणाः । वृषाः^५ प्रतिवृषालोककुपिताः प्रतिमस्त्रनुः ॥४२॥
 अवास्किरन्त^६ शृङ्गाग्रैर्वृषभा धीरनिम्बनाः । वनस्थलीः^७ स्थलाम्भोजमृणालशकलाचिताः^८ ॥४३॥
 वृषाः ककुदसलग्नमृदः कुमुदपाण्डराः । व्यक्ताङ्गस्य मृगाङ्गस्य लक्ष्मीमविमरु^९स्तदा ॥४४॥
 क्षीरपञ्चमयी कृत्स्नामातन्वाना वनस्थलीम् । प्रसुवाना वनान्तेषु प्रसस्रुर्गोमतल्लिकाः^{१०} ॥४५॥
 कुण्डो^{११} ध्व्योऽमृतपिण्डं^{१२} घटिता इव निर्मलाः । गोगृष्ट्यो^{१३} वनान्तेषु शरच्छ्रिय इवारुचन्^{१४} ॥४६॥

सुगोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार नवोढा स्त्री बन्धुजीव अर्थात् भाई-बन्धुओपर राग अर्थात् प्रेम रखती है उसी प्रकार वह शरदऋतु भी बन्धुजीव अर्थात् दुपहरियाके फूलोपर राग अर्थात् लालिमा धारण कर रही थी, नवोढा स्त्री जिस प्रकार देदीप्यमान होती है उसी प्रकार शरदऋतु भी वाण जातिके फूलोसे देदीप्यमान हो रही थी और नवोढा स्त्री जिस प्रकार सखियोसे घिरी रहती है उसी प्रकार वह शरदऋतु भी हसीरूपी सखियोसे घिरी रहती थी ॥३७॥ उस समय आकाश अपने-आप साफ किये हुऐके समान जान पडता था, चन्द्रमा अपने आप धोये हुऐके समान मालूम होता था, नदियाँ अपने-आप स्वच्छ हुई-सी जान पडती थी और दिशाएँ अपने-आप झाड-बुहारकर साफ की हुईके समान मालूम होती थी ॥३८॥ जो शरदऋतुरुपी लक्ष्मीके मुख देखनेके लिए दर्पणके समान है और जो विना साफ किये ही अत्यन्त उज्ज्वल है ऐसे चन्द्रमण्डलमे प्रजाके नेत्र बडा भारी सन्तोष प्राप्त करते थे ॥३९॥ जिनकी सुगन्धि चारो ओर फैल रही है और जो फूलरूप आभरणोसे उज्ज्वल हो रही है ऐसी वन-पक्षियोंको भ्रमर कोलाहल गवद करते हुए सेवन कर रहे थे ॥४०॥ जो फूले हुए पुष्परूपी मन्द हास्यसे सहित थी तथा गन्धसे अन्वे हुऐ भ्रमरोके समूहसे व्याप्त होनेके कारण जो सुन्दर केशोसे सुशोभित थी ऐसी वनकी लताएँ उस समय कृष्ण शरीरवाली स्त्रियोंके समान शोभा पा रही थी ॥४१॥ जो खुरोसे पृथिवीको खोद रहे थे, जिनकी आँखे लाल-लाल हो रही थी और जो दूसरे वैलोके देखनेसे क्रोधित हो रहे थे ऐसे मदोन्मत्त वैल अन्य वैलोके गवद सुनकर बदलेमे स्वयं गवद कर रहे थे ॥४२॥ उमी प्रकार गम्भीर गवद करते हुए वे वैल अपने सीगोके अग्रभागसे स्थलकमलोके मृणालके टुकडोसे व्याप्त हुई वनकी पृथिवीको खोद रहे थे ॥४३॥ इसी तरह उस शरदऋतुमे जिनके काँधौलपर मिट्टी लग रही है और जो कुमुद पुष्पके समान अत्यन्त सफेद हैं ऐसे वे वैल स्पष्ट चित्तवाले चन्द्रमाकी शोभा धारण कर रहे थे ॥४४॥ जिनसे अपने-आप दूध निकल रहा है ऐसी उत्तम गाये वनकी सम्पूर्ण पृथिवीको दुग्ध प्रवाहके रूप करती हुई वनोके भीतर जहाँ-तहाँ फिर रही थी ॥४५॥ इसी प्रकार जिनके स्तन कुण्डके समान भारी हैं और जो अमृतके पिण्डसे वनी हुईके समान अत्यन्त निर्मल हैं ऐसी तुण्न्तकी प्रसूत हुई गाये वनोके मध्यमे शरदऋतुकी शोभाके समान जान पडती थी ॥४६॥

१ आत्मना प्रसन्नमिच्छत्यर्थः । २ प्रसन्नोद्भूता । ३ कृष्णा अङ्गानाञ्च । ४ उन्मृष्टा । ५ वृषभा । ६ विरगन्ति स्म । ७ वनस्थली ल० । ८ -चिताम् ल० । ९ घगन्ति स्म । १० प्रगल्भगावः । 'मतल्लिका मत्तल्लिका प्रजापत्यमृदन्तजो । प्रगल्भगावकान्यमृति' इत्यभिधानान् । ११ पिठगवीना । 'पिठगः स्वातुना दुग्धमिच्छन्निगानान् । 'उचन्तु क्लीवमापीनम्' । 'उचमोजम्' इति सूत्रान् मरुगन्ध वनागन्धः । १२ मरुत्प्रसूता गावः । 'गृष्टि मरुत्प्रसूतिका' इत्यभिधानान् । १३ इवाभवन् न० ।

दुग्माश्चर्यतो वाग्वानाविष्यप्रकृतान्माने । पीनानीना^१ पवत्रिभ्यः पवनी^२गुपमुगुरा^३ ॥५०॥
 क्षारस्पर्शा^४ निजान् वग्रा^५ दुग्मागर्भारिनि^६ भवना^७ । पगुत्या^८ पावयन्ति स्म मागर्ग^९ निवमिप्रगा ॥५१॥
 प्रारस्वाया जल्दा^{१०} ताग^{११} शिविनामप्रियागदा^{१२} । रिग^{१३} पयभवापायादश^{१४} वष्टा^{१५} दक्षिप्रता ॥५२॥
 प्यावहासा^{१६} मिथानुगिरिष^{१७} गुणितै^{१८} । प्या^{१९}गुर्भामिष^{२०} न^{२१}ताग^{२२} गुपतिमर्ग^{२३} ॥ ५३॥
 प्रवृद्धयवता^{२४} रतु^{२५} वल्मा^{२६} मृगसानगा^{२७} । परिणामा^{२८} प्रमुत्पन्ना^{२९} । तगम^{३०} गुग्गा^{३१} दय ॥५४॥
 धिरश्रुमनागुणमदानिपदगा^{३२} । द^{३३}नी^{३४}मृगान्नाय^{३५} । मागर्ग^{३६}तिष भूषण ॥५५॥
 घनावरणनिमुका^{३७} दगुराशा^{३८} र्णा^{३९} गुदम् । वगिषा^{४०} दय^{४१} पयभ्यगृग्रा^{४२}प्रदमुवागगा^{४३} ॥५६॥
 अगुपनवृन्दानि^{४४} मुग्रागाराणि^{४५} भूषरा^{४६} । यग्नानाय^{४७} पाया^{४८}मि^{४९} निव्यवागानि^{५०} सानुषि ॥५७॥
 पयनाधारणा^{५१}शभमुग्रा^{५२}मृत्तदन्तिन^{५३} । मागगा^{५४} रिग^{५५}गु^{५६} मागारमदगी^{५७} ॥ ५८॥
 शुक्रारलाप्रक्षालामचमुग्गा^{५८} दिवि^{५९} श्रियम् । हस्तिमिषिपिपदय^{६०} तागगा^{६१} मगमभा^{६२} ॥ ५९॥

जिनवे स्तन बहुत ही स्थूल ह और जा एम्भा गल वर री र गम दूधवाला गाये दूध पानन
 लिए उल्लुख तथा बार-बार एम्भा गल मरत हुए अपन बच्चा। दूधमयी अमृत पित्रा रही
 थी ॥४७॥ जो गाय बालाआन यही वधपन्थग आया थी अथवा दूधर छापर आयी थी,
 उन्होंने उह पछपि बांध रगा था तथापि वे दूम्भा गला मम्भोग गल करनेवा एव दूध पीने
 लिए उल्लुख अपने बच्चाया दूध पिला ही रही था ॥४८॥ जा मय गल मयगकी अत्यन्त
 प्रिय थे वे ही अर गरदकृतुम जलम्प धान नष्ट हा जाग राती एवग उर अग्रिय
 हो गय थे सा ठीक ही है ययागि दक्षिप्रता बहुत ही कम दोवाला हाती है ॥४९॥ उम
 समय फूल हुए वृक्षोंमे पवत एग जान पड़न थ माना परम्पगम रंगा ही वर गल । आर
 क्षरत हुए क्षरनवि छोटाने गमे जान पड़न थ माना पाग ही वर गल हा - विनायन
 एक-दूसरेके ऊपर जल डाल रह हा ॥५०॥ वगमी जातिन धान, जा वि बहुत निनव
 थे अथवा जिनवे समीप बहुत पक्षी बडे हुए थे जा गुव नय रह थे और जा अगने परिणामग
 जगतके समस्त जीवाका पापण करत थ व ठीक वृद्ध पुण्यारि समान मुगाभित हा रहे
 थे ॥५१॥ सहजनावे वृक्ष मदा-मत्त भ्रमराके समूहमे घिरे हुए अपने फूलामे गम मुगाभित हो
 रह थे मानो जिनने मध्यभागमे इन्द्रनील मणि लगा हुआ है एम गुवणमय आमृपणमे ही
 सुशाभित हो रहे हो ॥५२॥ जिस प्रकार आभूषण आदि पहननेके परदेवाल परन निकल
 वर रगभूमिमें आयी हुई नत्यकारिणी नेत्राका आनन्द दती है उसी प्रकार मघाव आवरणसे
 छूटी हुई दिशाए नेत्राकी अतिशय आनन्द द रही थी ॥५३॥ पवताने जो अपनी गिछरापर
 जलरहित सफेद वादलोके समूह धारण किये थे वे ऐसे जान पडत थे माना अचलसहित
 नवीन वस्त्र ही हों ॥५४॥ जिनपर वायुस्फी महावत बडे हुए है, जो भीतर ही भीतर
 गरज रहे ह और जो लतागुहोंमे जलकी बूंदरूपी मदधाराकी बूंदें छोड रह ह ऐम मधन्वी
 हाथी जहाँ-तहाँ फिर रहे थे ॥५५॥ जिनकी चाब मुँगाने समान लाल है ऐसी तोताआकी

१ दुग्मा इत्यनुकरणारावभूत । २ पावयन्ति स्म । ३ प्रकर्षेण कृत । ४ प्रवृत्तौषस । ५ घेनव । ६ -सुल्लु
 काम् ल० । ७ क्षीरमात्मानमिच्छन् । ८ घेनुष्या वचके स्थिता इत्यभिधानात् । ९ परस्परहस्यनम् ।
 १० परस्परस्नेहनम् । ११ वृद्धयवस्था प्रवृद्धपक्षिणश्च । १२ परिपक्वान् । १३ वृद्धा । १४ सजका ।
 १५ मध्यरित्यथ । १६ नतवय । १७ अलंकारगृहात् । १८ वर्षाणि । १९ वस्तिमहिंसानि । स्थिषा बहुल
 वस्त्रस्य दशा स्युवस्तय इत्यभिधानात् । अथदपि दद्यावर्तवित्याया वस्त्रान्ते स्पृष्टया अपि । २ वस्त्राणि ।
 २१ नूतनानि । अनाहत निम्प्रवाणि तत्रक च नवाम्बर इत्यभिधानात् । २२ हस्तिपक । आधीरणी
 हस्तिपक इत्यभिधानात् । २३ मेघ । २४ सानुपु । २५ आकान्ते । २६ पथरागसहिता ।

चेतांसि^१ तरणाङ्गोपजीविनामुद्धतान्मनाम् । पुंसां च्युताधिकारणामिव दैन्यमुपागमन् ॥५७॥
 प्रतापी भुवनस्यैकं चक्षुर्नित्यमहोदयः । मास्वानाक्रान्ततेजस्वी वमासे भरतेशवत् ॥५८॥
 इति प्रस्यष्टचन्द्रांगुप्रहासे शरदागमे । चक्रे दिग्विजयोद्योगं चक्री चक्रपुरस्सरम् ॥५९॥
 प्रस्थानभेर्यो गम्भीरप्रध्वानाः प्रहतास्तदा । श्रुता वह्निर्मरुद्ग्रीवैर्वनाडम्बरगङ्गिभिः ॥६०॥
 कृतमङ्गलनेपथ्यो^२ वमारोरस्थलं प्रभुः । शरलक्ष्म्येव संभक्त^३ सहारहरिचन्दनम् ॥६१॥
 ज्यान्स्नामये^४ दुकूले च शुक्ले परिदधौ नृपः । शरच्छिद्योपनीते वा मृदुनी दिव्यवाससी ॥६२॥
 आजानुलम्बिना ब्रह्मसूत्रेण विवभौ विभुः । हिमाद्रिरिव गङ्गाम्बुप्रवाहेण तटस्पृशा ॥६३॥
 'तरिदोदग्रमर्धामौ कर्णाभ्यां कुण्डले दवौ । चन्द्रार्कमण्डले वक्तुमिवायाते जयोत्सवम् ॥६४॥
 वक्षःस्थलेऽस्य रुरुचे रुचिरः कौस्तुभो मणिः । जयलक्ष्मीममुद्राहमङ्गलागमिदीपवत् ॥६५॥

पवित्र आकाशमे ऐसी गोभा बढा रही थी मानो पद्मराग मणियोंकी कान्तिसहित हरित मणियोंकी बनी हुई वन्दनमाला ही हो ॥५६॥ जिस प्रकार अधिकारसे भ्रष्ट हुए मनुष्योंके चित्त दीनताको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार नावोंके द्वारा आजीविका करनेवाले उद्धत मल्लाहोंके चित्त दीनताको प्राप्त हो रहे थे । भावार्थ — शरदऋतुमे नदियोंका पानी कम हो जानेसे नाव चलानेवाले लोगोका व्यापार वन्द हो गया था इसलिए उनके चित्त दुःखी हो रहे थे ॥५७॥ उस समय सूर्य भी ठीक महाराज भरतके समान देदीप्यमान हो रहा था, क्योंकि जिस प्रकार भरत प्रतापी थे उसी प्रकार सूर्य भी प्रतापी था, जिस प्रकार भरत लोकके एकमात्र नेत्र थे अर्थात् सबको हिताहितका मार्ग दिखानेवाले थे उसी प्रकार सूर्य भी लोकका एकमात्र नेत्र था, जिस प्रकार भरतका तेज प्रतिदिन बढ़ता जाता था उसी प्रकार सूर्यका भी तेज प्रतिदिन बढ़ता जाता था, और जिस प्रकार भरतने अन्य तेजस्वी राजाओंको दवा दिया था उसी प्रकार सूर्यने भी अन्य चन्द्रमा तारा आदि तेजस्वी पदार्थोंको दवा दिया था — अपने तेजसे उनका तेज नष्ट कर दिया था ॥५८॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल चन्द्रमाकी किरणे ही जिसका हास्य है ऐसी शरदऋतुके आनेपर चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्न आगे कर दिग्विजय करनेके लिए उद्योग किया ॥५९॥

उस समय गम्भीर शब्द करते हुए प्रस्थान कालके नगाडे बज रहे थे, जिन्हे मेघके आडम्बरकी शका करनेवाले मयूर अपनी ग्रीवा ऊँची उठाकर सुन रहे थे ॥६०॥ उस समय जिन्होंने मगलमय वस्त्राभूषण धारण किये हैं ऐसे महाराज भरत हार तथा सफेद चन्दनसे मुगोभित जिस वक्षस्थलको धारण किये हुए थे वह ऐसा जान पड़ता था मानो शरदऋतुरूपी लक्ष्मी ही उसकी सेवा कर रही हो ॥६१॥ महाराज भरतने चाँदनीसे बने हुएके समान सफेद, वारीक और कोमल जिन दो दिव्य वस्त्रोंको धारण किया था वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शरदऋतुरूपी लक्ष्मीके द्वारा ही उपहारमे लाये गये हो ॥६२॥ घुटनो तक लटकते हुए ब्रह्ममूत्रमे महाराज भरत ऐसे मुगोभित हो गये थे, जैसा कि तटको स्पर्श करनेवाले गंगाजलके प्रवाहसे हिमवान् पर्वत मुगोभित होता है ॥६३॥ मुकुट लगानेसे जिनका मस्नक बहुत ऊँचा हो रहा है ऐसे भरत महाराजने अपने दोनों कानोंमे जो कुण्डल धारण किये थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो जयोत्सवकी बधाई देनेके लिए सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल ही आये हो ॥६४॥ भग्नैश्वरके वक्षस्थलपर देदीप्यमान कौस्तुभ मणि ऐसा मुगोभित होता था,

१ द्रोणद्विपायुरजीविनाम् । नदीनारकाणामित्यर्थः । २ मङ्गलाङ्कनम् । ३ मेघिनम् । ४ त्रिगीटोदय — ४०, ४०, ४०, ४० ।

चेतामि^१ तरणाङ्गोपजीविनामुद्धतात्मनाम् । पुंमां च्युताधिकाराणामिव दैन्यमुपागमन् ॥५७॥

प्रतापी भुवनस्यैकं चक्षुर्नित्यमहोदयः । भास्वानाक्रान्ततेजस्वी वमासे भरतेशवत् ॥५८॥

इति प्रस्पष्टचन्द्रांशुप्रहासे शरदागमे । चक्रे दिग्विजयोद्योगं चक्री चक्रपुरस्सरम् ॥५९॥

प्रस्थानभैर्यो गम्भीरप्रध्वानाः प्रहतास्तदा । श्रुता बर्हिभिरुद्ग्रीवैर्ध्वनाडम्बरशङ्किभिः ॥६०॥

कृतमङ्गलनेपथ्यो^२ वमारोरस्थलं प्रभुः । शरदक्षम्येव संभक्तं^३ सहारहरिचन्दनम् ॥६१॥

ज्योत्स्नामये दुकले च शुक्ले परिधौ नृपः । शरच्छ्रियोपनीते वा मृदुनी दिव्यवाससी ॥६२॥

आजानुलम्बिना ब्रह्मसूत्रेण विवभौ विभुः । हिमाद्रिरिव गङ्गास्रुप्रवाहेण तटस्पृशा ॥६३॥

तिरीटोदग्रमूर्धासौ कर्णाभ्यां कुण्डले दवौ । चन्द्रार्कमण्डले वक्तुमिवायाते जयोत्सवम् ॥६४॥

वक्षःस्थलेऽस्य रुरुचे रुचिरः कौस्तुभो मणिः । जयलक्ष्मीसमुद्राहमङ्गलाशमिदीपवत् ॥६५॥

पवित्र आकाशमे ऐसी शोभा बढ़ा रही थी मानो पद्मराग मणियोंकी कान्तिसहित हरित मणियोंकी बनी हुई वन्दनमाला ही हो ॥५६॥ जिस प्रकार अधिकारसे भ्रष्ट हुए मनुष्योंके चित्त दीनताको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार नावोंके द्वारा आजीविका करनेवाले उद्धत मल्लाहोंके चित्त दीनताको प्राप्त हो रहे थे । भावार्थ — शरदऋतुमे नदियोंका पानी कम हो जानेसे नाव चलानेवाले लोगोका व्यापार बन्द हो गया था इसलिए उनके चित्त दुःखी हो रहे थे ॥५७॥ उस समय सूर्य भी ठीक महाराज भरतके समान देदीप्यमान हो रहा था, क्योंकि जिस प्रकार भरत प्रतापी थे उसी प्रकार सूर्य भी प्रतापी था, जिस प्रकार भरत लोकके एकमात्र नेत्र थे अर्थात् सबको हिताहितका मार्ग दिखानेवाले थे उसी प्रकार सूर्य भी लोकका एकमात्र नेत्र था, जिस प्रकार भरतका तेज प्रतिदिन बढ़ता जाता था उसी प्रकार सूर्यका भी तेज प्रतिदिन बढ़ता जाता था, और जिस प्रकार भरतने अन्य तेजस्वी राजाओको दवा दिया था उसी प्रकार सूर्यने भी अन्य चन्द्रमा तारा आदि तेजस्वी पदार्थोंको दवा दिया था — अपने तेजसे उनका तेज नष्ट कर दिया था ॥५८॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल चन्द्रमाकी किरणे ही जिसका हास्य है ऐसी शरदऋतुके आनेपर चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्न आगे कर दिग्विजय करनेके लिए उद्योग किया ॥५९॥

उस समय गम्भीर शब्द करते हुए प्रस्थान कालके नगाडे वज रहे थे, जिन्हे मेघके आडम्बरकी शका करनेवाले मयूर अपनी ग्रीवा ऊँची उठाकर सुन रहे थे ॥६०॥ उस समय जिन्होंने मगलमय वस्त्राभूषण धारण किये हैं ऐसे महाराज भरत हार तथा सफेद चन्दनसे सुगोभित जिस वक्षस्थलको धारण किये हुए थे वह ऐसा जान पड़ता था मानो शरदऋतु-रूपी लक्ष्मी ही उसकी सेवा कर रही हो ॥६१॥ महाराज भरतने चाँदनीसे बने हुएके समान सफेद, वारीक और कोमल जिन दो दिव्य वस्त्रोंको धारण किया था वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शरदऋतुरूपी लक्ष्मीके द्वारा ही उपहारमे लाये गये हो ॥६२॥ घुटनों तक लटकते हुए ब्रह्मसूत्रसे महाराज भरत ऐसे सुगोभित हो रहे थे, जैसा कि तटको स्पर्श करनेवाले गंगा जलके प्रवाहमें हिमवान् पर्वत सुगोभित होता है ॥६३॥ मुकुट लगानेमें जिनका मन्त्रक बहुत ऊँचा हो रहा है ऐसे भरत महाराजने अपने दोनों कानोंमें जो कुण्डल धारण किये थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो जयोत्सवकी बधाई देनेके लिए सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल ही आये हो ॥६४॥ भग्नतेजस्वरके वक्षःस्थलपर देदीप्यमान कौस्तुभ मणि ऐना सुगोभित होता था,

^१ द्रोण्युपायुपजीविनाम् । नदीनान्गणामित्यर्थः । ^२ मङ्गलालङ्कारः । ^३ मेघिनम् । ^४ किरीटोदग्र — ७०, ८०, ९०, १०० ।

हुम्मारवभुता वल्गनापिप्यप्रकृतस्त्रनान्^१ । पानापीना^२ पयश्चि^३ य^४ पय^५ आयुषमु^६ मु^७ ॥४७॥
 आरस्यता^८ निनान वल्गान् हुम्मागम्मारनि^९ म्भनान् । धनुष्या^{१०} पाययन्ति स्म गापैरपि नियन्त्रिता ॥४८॥
 प्राक्स्वाया चलदा ताता शिखिनामप्रियाभनदा । रिक्ता चल्धनापायादहा कष्टा दरिद्रता ॥४९॥
 व्यावहाम्यामिवाभनुर्गिरस्य पुष्पिन^{११} मु^{१२} । न्यायुश्चामिच त^{१३} वाना स्फुरन्निभर^{१४} गिर ॥५०॥
 प्रवृद्धवयसा^{१५} रज्जु कलमा भृशमानता । परिणामाद्यमुप्यन्ता^{१६} परम्^{१७} पुरुषा इव ॥५१॥
 विरजुरमनापुष्पमदालिपलावृते^{१८} । इन्द्रनालकृन्तान्तये^{१९} मारणरिभूषण ॥५२॥
 घनावरणनिमुक्ता दधुरावा दगा मुदम् । नटिका^{२०} इव नपथ्यगृहाद्वज्जुपागता^{२१} ॥५३॥
 अदधुघनवृन्दानि मुक्तामाराणि^{२२} भूधरा । सद्गानात्र^{२३} वामाभि^{२४} निष्यवाणानि^{२५} सानुमि ॥५४॥
 पत्रनाधारणारुद्राभ्रेमुज्ज्वलितदन्तिन^{२६} । सान्निगत्रा निकृन्तु^{२७} सामारमदगाकृता ॥५५॥
 गुकावलाप्रवालामचञ्चुस्तन दिवि^{२८} श्रियम् । हरिमणिपिनदेष तारणाला मपद्यमा^{२९} ॥५६॥

जिनके स्तन बहुत ही स्थूल हैं और जो हुम्मा शब्द कर रही हैं ऐसे दूधवाली गायें दूध पीनेके लिए उत्सुक तथा बार-बार हुम्मा शब्द करते हुए अपने बच्चोंका दूधरूपी अमृत पिला रही थीं ॥४७॥ जो गाय ग्वालाओंके यहाँ बघकरूपसे आयी थीं अथान् दूधके ठेकापर आयी थीं उन्होंने उन्ह यद्यपि बाँध रखा था तथापि वे 'हुम्मा' ऐसा गम्भीर शब्द करनेवाले एवं दूध पीनेके लिए उत्सुक अपने बच्चाका दूध पिला ही रही थीं ॥४८॥ जो मेघ पहल मयूराको अत्यन्त प्रिय थे वे ही अब शरदऋतुमें जलरूप घनके नष्ट हो जानेसे खाली होकर उन्हें अप्रिय हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि दरिद्रता बहुत ही कष्ट देनेवाली होती है ॥४९॥ उस समय फूल हुए वृक्षोंसे पवत ऐसे जान पड़त थे मानो परम्परम हँसो ही कर रहे हों और सरन हुए झरनाके छोटाने ऐसे जान पड़ते थे मानो फाग हो कर रहे हों - विनोदवन एक-दूसरेके ऊपर जल डाल रह हों ॥५०॥ कलमी जातिक घान, जो कि बहुत दिनके थे अथवा जिनके समीप बहुत पक्षी बड़े हुए थे जो खूब नव रह थे और जो अपने परिपाकसे जगन्मत् समस्त जीवाका पापण करते थे वे ठीक वृद्ध पुरुषोंके समान सुशोभित हो रह थे ॥५१॥ सहजनाव वृष मदोमत भ्रमराके समूहसे घिरे हुए अपने फूलसे ऐसे सुशोभित हो रह थे माना जिनके मध्यभागमें इन्द्रनील मणि लगा हुआ है ऐसे सुवर्णमय आभूषणानि ही सुशोभित हो रह हों ॥५२॥ जिस प्रकार आभूषण आदि पहननेके परदेवाले घरसे निकलकर रंगभूमिमें आयी हुई नयकारिणी नेत्राका आनन्द दती है उसी प्रकार मेघाके आवरणसे छोड़े हुई रिशाए नत्राको अतिशय आनन्द दे रही थीं ॥५३॥ पवताने जो अपनी गिखरापर जलरहित सफे बादलोंके समूह धारण किये थे वे ऐसे जान पड़त थे माना अचलसहित नवान वस्त्र ही हा ॥५४॥ जिनपर वायुमयी महावत बड़े हुए हैं, जो भीतर-ही भीतर गरज रह हैं और जो लतागुहोंमें जलकी बूँदरूपी मदधाराकी बूँदें छोड़ रह हैं ऐसे मेघरूपी हाथी जहाँ-तहाँ फिर रह थे ॥५५॥ जिनकी चाच भूँगाके समान लाल है ऐसी तोताआकी

१ रेखा इत्यनकरणारावभन । २ पाययन्ति स्म । ३ प्रकपेण कृत । ४ प्रवृद्धोवस । ५ घनव । ६ -मुत्सु काम । ७ शीरमाभ्यामिच्छन् । ८ धनुष्या बन्धक स्थिता इत्यभिधानान् । ९ परस्पररुसुनम । १० परस्परसमम । ११ वृद्धवयसा प्रवृद्धपक्षिणश्च । १२ परिपक्वान् । १३ वृद्धा । १४ सज्जका । १५ मध्यरिन् । १६ ननकर । १७ अल्लकारगुणान् । १८ वयाणि । १९ अस्तिगृहिवानि । २० श्रिया बहुत्व वक्ष्यन्ता स्ववक्ष्य इत्यभिधानान् । अयमपि दगावतावस्थाया वस्थान्तं स्पृष्टा अपि । २१ वयनाणि । २२ जूनानि । अनाभ्रं निप्रवाणि तन्मत् च नवाम्बर इत्यभिधानान् । २३ हस्तिपक् । आधारणा हस्तिप इत्यभिधानान् । २४ मय । २५ सानुम् । २६ आकाश । २७ पद्मरागमहिता ।

चेतांगि^१ तरणाङ्गोपजीविनामुद्धतात्मनाम् । पुंसां च्युताधिकागणामिव दैन्यमुपागमन् ॥५७॥
 प्रतापी भुवनस्यैकं चक्षुर्नित्यमहोदयः । मास्वानाक्रान्ततेजस्वी वमासे भरतेभवत् ॥५८॥
 इति प्रसृष्टचन्द्रांशुप्रहामे गरुडागमं । चक्रे दिग्विजयोद्योगं चक्री चक्रपुरस्सरम् ॥५९॥
 प्रस्थानभेर्यो गम्भीरप्रध्वानाः प्रहतास्तदा । श्रुता वह्निभिस्दर्पवैध्वनाडम्बरगङ्गिभिः ॥६०॥
 कृतमङ्गलनेपथ्यो^२ वमारोरस्थलं प्रभुः । गरुडस्थेव यमक्त^३ महारहग्निचन्दनम् ॥६१॥
 ज्योन्मास्ये दुकूले च शुक्ले परिदधौ नृपः । गरुडस्थोपनीते वा मृदुनी दिव्यवाग्मी ॥६२॥
 आजानुलम्बिना ब्रह्मनूत्रेण विवर्मा विभुः । हिमाद्रिरिव गङ्गाम्बुप्रवाहेण तटस्पृशा ॥६३॥
 'नरीटोदग्रमूर्धामौ कर्णाभ्यां कुण्डले दधौ । चन्द्रार्कमण्डले वक्तुमिवायाते जयोत्सवम् ॥६४॥
 वक्षःस्थलेऽस्य रूचे रुचिरः कौस्तुभो मणिः । जयलक्ष्मीममुद्राहमङ्गलागमिदीपवत् ॥६५॥

पक्ति आकाशमे ऐसी शोभा बढा रही थी मानो पद्मराग मणियोकी कान्तिसहित हरित मणियो-
 की बनी हुई वन्दनमाला ही हो ॥५६॥ जिस प्रकार अधिकारसे भ्रष्ट हुए मनुष्योंके चित्त
 दीनताको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार नावोके द्वारा आजीविका करनेवाले उद्धत मल्लाहोके
 चित्त दीनताको प्राप्त हो रहे थे । भावार्थ — गरुडऋतुमे नदियोका पानी कम हो जानेसे नाव
 चलानेवाले लोगोका व्यापार वन्द हो गया था इसलिए उनके चित्त दुःखी हो रहे थे ॥५७॥
 उस समय सूर्य भी ठीक महाराज भरतके समान देदीप्यमान हो रहा था, क्योंकि जिस प्रकार
 भरत प्रतापी थे उसी प्रकार सूर्य भी प्रतापी था, जिस प्रकार भरत लोकके एकमात्र नेत्र थे
 अर्थात् सबको हिताहितका मार्ग दिखानेवाले थे उसी प्रकार सूर्य भी लोकका एकमात्र नेत्र
 था, जिस प्रकार भरतका तेज प्रतिदिन बढ़ता जाता था उसी प्रकार सूर्यका भी तेज प्रतिदिन
 बढ़ता जाता था, और जिस प्रकार भरतने अन्य तेजस्वी राजाओको दवा दिया था उसी प्रकार
 सूर्यने भी अन्य चन्द्रमा तारा आदि तेजस्वी पदार्थोको दवा दिया था — अपने तेजसे उनका
 तेज नष्ट कर दिया था ॥५८॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल चन्द्रमाकी किरणे ही जिसका
 हास्य है ऐसी गरुडऋतुके आनेपर चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्न आगे कर दिग्विजय करनेके लिए
 उद्योग किया ॥५९॥

उस समय गम्भीर गव्व करते हुए प्रस्थान कालके नगाडे बज रहे थे, जिन्हे मेघके
 आडम्बरकी शका करनेवाले मयूर अपनी ग्रीवा ऊँची उठाकर सुन रहे थे ॥६०॥ उस
 समय जिन्होंने मगलमय वस्त्राभूषण धारण किये हैं ऐसे महाराज भरत हार तथा सफेद चन्दन-
 मे मुगोभित जिस वक्षस्थलको धारण किये हुए थे वह ऐसा जान पड़ता था मानो गरुडऋतु-
 रूपी लक्ष्मी ही उसकी सेवा कर रही हो ॥६१॥ महाराज भरतने चाँदनीसे बने हुएके समान
 सफेद, वारीक और कोमल जिन दो दिव्य वस्त्रोको धारण किया था वे ऐमे जान पड़ते थे
 मानो गरुडऋतुरूपी लक्ष्मीके द्वारा ही उपहारमे लाये गये हो ॥६२॥ घुटनो तक लटकते
 हुए ब्रह्मनूत्रमे महाराज भरत ऐमे मुगोभित हो रहे थे, जैसा कि तटको स्पर्श करनेवाले गंगा
 जलके प्रवाहमे हिमवान् पर्वत मुगोभित होता है ॥६३॥ मुकुट लगानेमे जिनका मस्नक बहृत
 ऊँचा हो रहा है ऐमे भग्न महाराजने अपने दोनो कानोमे जो कुण्डल धारण किये थे वे ऐमे
 जान पड़ते थे मानो जयोत्सवकी बधाई देनेके लिए सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल ही आये हो
 ॥६४॥ भग्नेश्वरके वक्षस्थलपर देदीप्यमान कौस्तुभ मणि ऐसा मुगोभित होता था,

हुम्मारवभृतो बरसानापित्यै प्रकृतस्त्रनार्व । पानार्पणा पयस्त्रियं पयःप्रायमुमुसुरा ॥४०॥
 क्षीरस्थतो निजान् बल्मान् हुम्मागम्भीरानि-स्त्रनार्व । धेनुष्या पाययन्ति स्म गार्ग्यरपि नियन्त्रिताः ॥४१॥
 प्राक्स्त्रीया जलदा जाता शित्तिनामप्रियास्तदा । रिता जलधनापायादका कष्टा दरिद्रता ॥४२॥
 व्यावहासामिवातनुर्गिरय पुष्पितुमै । व्यायुष्मामि तन्वाना स्फुरन्निप्रसर्ताः ॥४३॥
 प्रवृद्धवयसो रजः कलमा वृक्षमानताः । परिणामाश्चमुप्यन्ता नरम् पुण्या इव ॥४४॥
 विरजुरसनापुष्पैमदालिपटलावृत्तैः । इन्द्रनीलकृणान्त्यै सारगैरपि भूषण ॥४५॥
 धनावरणनिमुक्ता दधुराशा ह्मा मुदम् । नर्कि इव नफयगुहाद्रहमुपागता ॥४६॥
 अद्रुधनवृन्दानि मुक्तासारानि भूधरा । मदशानाव वामानि निष्प्रवाणानि सानुभि ॥४७॥
 धनधोरणाकृदाभ्रमुर्जीमूतदन्तिन ॥ सान्तगजा निरुन्त्रपु मायारमदक्षीरता ॥४८॥
 शुक्रावलीप्रवालामवधुस्तने द्विच श्रियम् । हरिमणिपिनक्षेत्रे तारणाला मयप्रभा ॥४९॥

जिनके स्तन बहुत ही स्थूल ह और जो हुम्मा शब्द कर रही हैं एस दूधवाली गार्ग्यें दूध पीने के लिए उत्सुक तथा बार-बार हुम्मा शब्द करते हुए अपने बच्चा का दूध पी अमृत पिला रही थी ॥४७॥ जो गाय ग्वालाओं के यहाँ वधकरूपसे आयी थी अर्थात् दूधक ठकापर आयी थी, उन्होंने उन्हें यद्यपि बाँध रखा था तथापि वे 'हुम्मा' ऐसा गम्भीर शब्द करनेवाले एवं दूध पीने के लिए उत्सुक अपने बच्चों को दूध पिला ही रही थी ॥४८॥ जो मेघ पहल मयूरा की अत्यन्त प्रिय थे वे ही अब शरदऋतु में जलरूप धन के नष्ट हो जाने से खाली होकर उन्हें अप्रिय हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि दरिद्रता बहुत ही कष्ट देनेवाली होती है ॥४९॥ उस समय फूल हुए वृक्षों से पतत ऐसे जान पड़ते थे मानो परस्पर में हँसा ही कर रहे ह और शरते हुए शरनों के छोटो से ऐसे जान पड़ते थे माना फाग ही कर रहे हों - विनोदवत् एक-दूसरे के ऊपर जल डाल रहे हों ॥५०॥ कलमी जाति के घान, जो कि बहुत दिनों के थे अथवा जिनके समीप बहुत पक्षी बैठे हुए थे जो खूब नच रहे थे और जो अपने परिपाक से जगत् के समस्त जीवों का पोषण करते थे वे ठीक बृद्ध पुरुषों के समान सुशोभित हो रहे थे ॥५१॥ सहजना के वृक्ष मदीन्मत्त भ्रमरों के समूह से घिरे हुए अपने फूलों से ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनके मध्यभाग में इन्द्रनील मणि लगा हुआ है ऐसे सुवर्णमय आभूषणों से ही सुशोभित हो रहे हों ॥५२॥ जिस प्रकार आभूषण आदि पहनने के परदेवाले घर से निकल कर रंगभूमि में आयी हुई नृत्यकारिणी नैत्रों को आनन्द देती है उसी प्रकार मेघों के आवरण से छूटी हुई दिशाएँ नैत्रों को अतिशय आनन्द दे रही थी ॥५३॥ पततो ने जो अपनी शिखरों पर जलरहित सफेद बादलों के समूह धारण किये थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो अंचल सहित नवीन वस्त्र ही हों ॥५४॥ जिन पर वायुरूपी महावत बैठे हुए है, जो भीतर-ही भीतर गरज रहे ह और जो लसांग्रहों में जल की बूंदरूपी मदघारा की बूँदें छोड़ रहे हैं ऐसे मेघरूपी हाथी जहाँ-तहाँ फिर रहे थे ॥५५॥ जिनकी चोंच मूँगा के समान लाल है ऐसी तोताओं की

१ हुमा इत्यनुकरणात्प्रभृत । २ पाययन्ति स्म । ३ प्रकपेण कृत । ४ प्रवदोवस । ५ धेनुष्य । ६ -मुमुसुरा । ७ क्षीरमात्मानमिच्छन् । ८ धेनुष्या बन्धके स्थिता इत्यभिधानात् । ९ परस्परवृत्तनम् । १० परस्परमेव नम् । ११ वृद्धवयस्य प्रवृद्धपक्षिणश्च । १२ परिपक्वात् । १३ वृद्धा । १४ सज्जता । १५ मध्यरित्ययम् । १६ नतक्यम् । १७ अलकारमुहात् । १८ वर्षाणि । १९ वस्तिमहितानि । स्त्रियां बहुत्व वस्त्रस्य दशा स्थवस्तय इत्यभिधानात् । अन्यदपि दशावर्ताविस्थाया वस्त्रान्तं स्पृष्ट्वा अपि । २० वस्त्राणि । २१ भूतानि । अनाहत निष्प्रवाणि तत्र च तवाम्बर इत्यभिधानात् । २२ हस्तिपद । आधोरणी हस्तिपद इत्यभिधानात् । २३ मघ । २४ सानुषु । २५ आकाशे । २६ पद्मरागसहिता ।

चेनांसि^१ तरणाद्गोपजीविनामुद्धतान्मनाम् । पुंसां च्युताग्रिकागणामिव दैन्यमुपागमन् ॥५७॥
 प्रतापी भुवनस्यैक चक्षुर्निन्यमहोदयः । भाम्बानाक्रान्ततेजस्वी वभामे भग्नेश्वरन् ॥५८॥
 इति प्रमृष्टचन्द्रांगुप्रहामे शरदागमे । चक्रं दिग्विजययोगं चक्रां चक्रपुरस्सरम् ॥५९॥
 प्रस्थानभेयो गम्भीरप्रचानाः प्रहतास्तदा । श्रुता बर्हिभिस्दर्शवैधनाडम्बरशङ्किभिः ॥६०॥
 कृतमङ्गलनेप-यो^२ वमारोग्मयल प्रभुः । शरद्वस्येव समक्त^३ महागहरिचन्द्रनम् ॥६१॥
 ज्योन्मास्ये दुकले च शुक्ले परिधौ नृप । शरच्छ्रयोपनीते वा सृदुर्ना दिव्यवाम्बरी ॥६२॥
 आजानुलम्बिना ब्रह्मनृतेण विवर्मा विभुः । हिमाद्रिरिव गङ्गाम्बुप्रवाहेण तटम्पृष्टा ॥६३॥
 'किरीटोदग्रमूर्धामां कर्णाभ्यां कुण्डले द्वौ । चन्द्रार्कमण्डले वक्तुमिवायाते जयोन्मवम् ॥६४॥
 वक्षःस्थलेऽस्य रुचे रश्मिः कौस्तुभो मणि । जयलक्ष्मीममुद्राहमङ्गलागमिनीपवन ॥६५॥

पवित्र आकाशमे ऐसी गोभा बढा रही थी मानो पद्मराग मणियोंकी कान्तिमहित हरित मणियोंकी बनी हुई वन्दनमाला ही हो ॥५६॥ जिस प्रकार अधिकारमे भ्रष्ट हुए मनुष्योंके चित्त दीनताको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार नावोंके द्वारा आजीविका करनेवाले उद्धत मल्लाहोंके चित्त दीनताको प्राप्त हो रहे थे । भावार्थ — शरदऋतुमे नदियोंका पानी कम हो जानेमे नाव चलानेवाले लोगोका व्यापार बन्द हो गया था इसलिए उनके चित्त दुःखी हो रहे थे ॥५७॥ उस समय सूर्य भी ठीक महाराज भरतके समान देदीप्यमान हो रहा था, क्योंकि जिस प्रकार भरत प्रतापी थे उसी प्रकार सूर्य भी प्रतापी था, जिस प्रकार भरत लोकके एकमात्र नेत्र थे अर्थात् सबको हिताहितका मार्ग दिखानेवाले थे उसी प्रकार सूर्य भी लोकका एकमात्र नेत्र था, जिस प्रकार भरतका तेज प्रतिदिन बढता जाता था उसी प्रकार सूर्यका भी तेज प्रतिदिन बढता जाता था, और जिस प्रकार भरतने अन्य तेजस्वी राजाओको दवा दिया था उसी प्रकार सूर्यने भी अन्य चन्द्रमा तारा आदि तेजस्वी पदार्थोंको दवा दिया था — अपने तेजसे उनका तेज नष्ट कर दिया था ॥५८॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल चन्द्रमाकी किरणे ही जिसका हास्य है ऐसी शरदऋतुके आनेपर चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्न आगे कर दिग्विजय करनेके लिए उद्योग किया ॥५९॥

उस समय गम्भीर गव्व करते हुए प्रस्थान कालके नगाडे बज रहे थे, जिन्हे मेघके आडम्बरकी शका करनेवाले मयूर अपनी ग्रीवा ऊँची उठाकर सुन रहे थे ॥६०॥ उस समय जिन्होंने मगलमय वस्त्राभूषण धारण किये हैं ऐसे महाराज भरत हार तथा सफेद चन्दनसे सुगोभित जिस वक्षस्थलको धारण किये हुए थे वह ऐसा जान पडता था मानो शरदऋतुरूपी लक्ष्मी ही उसकी सेवा कर रही हो ॥६१॥ महाराज भरतने चाँदनीसे बने हुएके समान सफेद, वारीक और कोमल जिन दो दिव्य वस्त्रोंको धारण किया था वे ऐसे जान पडते थे मानो शरदऋतुरूपी लक्ष्मीके द्वारा ही उपहारमे लाये गये हो ॥६२॥ घुटनो तक लटकते हुए ब्रह्मसूत्रसे महाराज भरत ऐसे सुगोभित हो रहे थे, जैसा कि तटको स्पर्श करनेवाले गंगाजलके प्रवाहसे हिमवान् पर्वत सुगोभित होता है ॥६३॥ मुकुट लगानेसे जिनका मस्तक बहुत ऊँचा हो रहा है ऐसे भरत महाराजने अपने दोनो कानोमे जो कुण्डल धारण किये थे वे ऐसे जान पडते थे मानो जयोत्सवकी वधाई देनेके लिए सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल ही आये हो ॥६४॥ भरतेश्वरके वक्षःस्थलपर देदीप्यमान कौस्तुभ मणि ऐसा सुगोभित होता था,

१ द्रोण्युडुपाद्युपजीविनाम् । नदीतारकाणामित्यर्थ । २ मङ्गलालकार । ३ सेवितम् । ४ किरीटोदग्र — ल०, द०, अ०, म० ।

त्रिभुविभ्यतिस्पर्धि^१ दग्धेऽस्यातपधारणम् । तस्मिन्नैन्दव विप्रमातायय विप्रविपु ॥६९॥

तदस्य रुचिमातने धृतमातपधारणम् । चूडारवांशुमिनिष्ठ^२ मारणोधिष^३ पद्मम् ॥६९॥

स्त्रभुनीशीकरस्पर्धि^४ चामराणां कदम्बकम् । दुषुधुर्वाताथोऽस्य दिव्या इय मन्त्रिणा^५ ॥६९॥

तत स्तपतिरतन निभम^६ स्यन्दनो महान् । सुवणमणिचित्राद्रो मरुतुभ्रमिष^७ तसन् ॥६९॥

चक्ररत्नप्रतिस्पर्धिचक्रद्वितयसगनः । यज्जाक्षघग्नि^८ रज रथोऽस्य भनारथ ॥७०॥

कामगैर्वायुरदोमि^९ कुमुदोज्ज्वलकान्तिभिः । यशोरितानमकाश म रथाऽयाणि^{१०} यात्रिभिः ॥७१॥

स स स्यन्दनसारक्षधनुस्सारथ्यधिष्ठितम्^{११} । नितम्बदशमद्ग^{१२} सुराण्य चमरात् ॥७२॥

तत प्रास्थानिकै^{१३} पुण्यनिधौरेभिनन्दित । प्रतस्थ दिवायायुक् कृतप्रस्थानमद्गल^{१४} ॥७३॥

तदा नभोऽद्गण कृत्स्न तयधोपररुध्यत । नृपद्मज च सरदममयन् मैत्र्यनायक^{१५} ॥७४॥

महामुकुटयद्वास्त परिचयु सम-तत । दूरान प्रणतमुर्धन सुरराजमियामरा ॥७५॥

प्रचयाल बल त्रिजगारुद्वपुरवाधिकम् । महायाधमया^{१६} गृष्टिरपूगेवाभरतादा ॥७६॥

मानो विजयलक्ष्मीके विवाहरूपी मंगलकी सूचना देनेवाला दीपव ही हो ॥ ६९ ॥ उन्होंने चद्रमण्डलके साथ स्पर्धा करनेवाले जिस छात्रको धारण किया था वह ऐसा जान पड़ता था मानो उस छात्रके बहानेसे स्वयं चद्रमण्डल ही आकर उनकी सेवा करना चाहता हो ॥ ६९ ॥ महाराज भरतने जो छत्र धारण किया था वह चूडारत्नकी विरणासे मिलकर ऐसा सुशोभित हो रहा था, मानो सूर्यकी लाल किरणोंसहित कमल ही हो ॥ ६७ ॥ जो वारोंगनाएँ महाराज भरतके आसपास गंगाके जलकी बूंदोंके साथ स्पर्धा करनेवाले तमरोंने समूह ढोल रही थी वे ऐसी जान पड़ती थी मानो अच्छी तरहसे आयी हुई दिव्य-याएँ ही हो ॥ ६८ ॥ तदनन्तर स्यपति रत्नने एव बड़ा भारी रथ तैयार किया जो कि सुवर्ण और मणियोंसे चित्र विचित्र दितनेवाले मेघ पवतके लतागुहोंकी शोभाकी ओर हँस रहा था ॥ ६९ ॥ वह रथ चक्ररत्नकी प्रतिस्पर्धा करनेवाले दो पहियोंसे सहित था तथा वज्रके धने हुए अक्ष (दोनो पहियोंके बीचमें पड़ा हुआ मजबूत लोहदण्ड-भीरा) से युक्त था इसलिए महाराज भरतके मनोरथके समान बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था ॥ ७० ॥ उस रथमें जो घोड़े जोते गये थे वे इच्छानुसार गमन करते थे वायुके समान वेगशाली थे, कुमुदके समान उज्ज्वल कान्तिवाले थे और यशके समूह के समान जान पड़ते थे ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार इन्द्र मेघ पवतके तटपर आरूढ होता है उसी प्रकार भरतेश्वर, योग्य सारथिसे युक्त रथपर आरूढ हुआ ॥ ७२ ॥ तदनन्तर प्रस्थान समयमें होनेवाले जय जय आदि पुष्प शब्दोंके द्वारा जिनका अभिनन्दन किया जा रहा है जो दिग्विजयकी समस्त तैयारियाँ कर चुके हैं और जिनके साथ प्रस्थानकालीन सभी मंगलाचार किये जा चुके हैं ऐसे महाराज भरतने प्रस्थान किया ॥ ७३ ॥ उस समय आकाशरूपी समस्त आँगन जय जय शब्दोंकी घोषणासे भर गया था, और राजाका आँगन सेनापतियोंसे भर गया था ॥ ७४ ॥ जिस प्रकार देव लोग इन्द्रको घेरकर खड़े हो जाते हैं उसी प्रकार दूरसे ही भस्त्रव सुवाकर नमस्कार करते हुए महामुकुट बद्ध राजा लोग भरतकी घेरे हुए चारों ओर खड़े थे ॥ ७५ ॥ जिसने चारों ओरसे नगरकी समस्त गलियोंको रोक लिया है ऐसी यह सेना चलने लगी । उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो बड़े-बड़े

१ रथ ल० । २ आतपधारणव्याजेन । ३ मिथम् । ४ सुवकिरणसहितम् । ५ योजयन्ति स्म । ६ मंगुता ल० । ७ र पते स्म । ८ अवयव । ९ तट । १० बरुयाडाग । ११ वेगवद्भिः । १२ इजाने स्म । १३ मुनिपरसारथिसमाश्रितम् । १४ मेरो । १५ प्रस्थाने नियुक्ते । १६ भटगयी ।

पुरः^१ पादातमाश्वायं रथकड्यां^२ च हास्तिकम् । क्रमान्निरी^३ युगवेष्टय मपताकं रथं प्रमोः ॥७७॥

रथ्या^४ रथ्याश्चसंघट्टादुत्थितैर्हमरेणुभिः । बलक्षोदाश्रमाव्योम समुत्पेतुरिव^५ स्वयम् ॥७८॥

रौक्मै रजोमिराकीर्णं तदा रंजे नमोऽजिरम् । स्पृष्टं^६ बालातपेनेव पटवामेन चाततम्^७ ॥७९॥

शनैः शनैर्जनैर्मुक्ता विरेजुः पुरवीथयः । कलोलैरिव^८ बेलोन्यैर्महाघ्रेर्नीरभमयः ॥८०॥

पुराङ्गनाभिर्गन्मुक्ताः सुमनोज्ज्वलयोऽपतन् । माधवातायनस्याभिर्दृष्टिपतैः मम प्रभो ॥८१॥

जयेश विजयिन् विश्वं विजयस्व दिशो दश । पुण्याशिपां शतैरिन्ध पौराः प्रभुमयूयुजन्^९ ॥८२॥

सम्राट् पश्यन्नयोध्यायाः परां भूतिं^{१०} तदातनीम्^{११} । शनैः प्रनोली^{१२} सप्रापद् रत्नतोरणभासुराम् ॥८३॥

पुरो वहिः पुरः पञ्चान मम च विभुनाऽमुना । दृष्ट्वा दृष्टिपर्यन्तममङ्गयमिव तद्वलम् ॥८४॥

जगतः प्रसवागारादिव तस्मान् पुराद् बलम् । निरियाय निरुच्छवासं^{१३} शनैराशुदृगोपुरम् ॥८५॥

किमिदं प्रलयक्षोभात् क्षुभितं चारिधेर्जलम् । किमुत त्रिजगत्पर्वः^{१४} प्रत्यग्रोऽयं विजृम्भते ॥८६॥

इत्याशङ्क्य नभोभाग्भिः सुरैः साडचर्यमीभ्रितम् । प्रमथार बल विष्वक्पुरान्निर्याय चक्रिणः ॥८७॥

योद्धाओकी एक अपूर्व सृष्टि ही उत्पन्न हुई हो ॥ ७६ ॥ सबसे पहले पैदल चलनेवाले सैनिकोका समूह था, उसके पीछे घोडोका समूह था, उसके पीछे रथोका समूह और उसके पीछे हाथियोका समूह था । इस प्रकार वह सेना पताकाओसे सहित महाराजके रथको घेरकर अनुक्रमसे निकली ॥७७॥ जिन मार्गोसे वह सेना जा रही थी वे मार्ग रथ और घोडोके सघटनसे उठी हुई सुवर्णमय धूलिसे ऐसे जान पडते थे मानो सेनाका आघात सहनेमे असमर्थ होकर स्वय आकाशमे ही उड गये हो ॥ ७८ ॥ उस समय सुवर्णमय धूलिसे भरा हुआ आकाशरूपी आँगन ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बालसूर्यकी सुनहली प्रभासे स्पर्श किया गया हो, और सुगन्धित चूर्णसे ही व्याप्त हो गया हो ॥७९॥ धीरे-धीरे लोग नगरकी गलियोको छोडकर आगे निकल गये जिससे खाली हुई वे गलियाँ ऐसी जान पडती थी मानो ज्वारभाटासे उठी हुई लहरोंके चले जानेपर खाली हुई समुद्रके किनारेकी भूमि ही हो ॥ ८० ॥ उस समय बडे-बडे मकानोके झरोखोमे खडी हुई नगर-निवासिनी स्त्रियोके द्वारा अपने-अपने कटाक्षोके साथ छोडी हुई पुष्पाजलियाँ महाराज भरतके ऊपर पड रही थी ॥८१॥ हे ईश, आपकी जय हो, हे विजय करनेवाले महाराज, आप ससारका विजय करे और दशो दिशाओको जीते, इस प्रकार सैकडो पुण्याशीर्वादोके द्वारा नगरनिवासी लोग भरतकी पूजा कर रहे थे—उनके प्रति सम्मान प्रकट कर रहे थे ॥ ८२ ॥ इस प्रकार उस समय होनेवाली अयोध्याकी उत्कृष्ट विभूतिको देखते हुए सम्राट् भरत धीरे-धीरे रत्नोके तोरणोसे देदीप्यमान गोपुरद्वारको प्राप्त हुए ॥ ८३ ॥ उस समय महाराज भरतको नगरके बाहर अपने आगे-पीछे और साथ-साथ जहाँतक दृष्टि पडती थी वहाँतक असख्यात सेना ही सेना दिखाई पडती थी ॥ ८४ ॥ जगत्की उत्पत्तिके घरके समान उस अयोध्यापुरीसे वह सेना गोपुरद्वारको रोकती हुई बडी कठिनतासे धीरे-धीरे बाहर निकली ॥८५॥ क्या यह प्रलय कालके क्षोभसे क्षोभको प्राप्त हुआ समुद्रका जल है ? अथवा यह तीनो लोकोकी नवीन सृष्टि उत्पन्न हो रही है ? इस प्रकार आशका कर आकाशमे खडे हुए देव लोग जिसे बडे आश्चर्यके साथ देख रहे है ऐसी चक्रवर्तीकी वह सेना नगरसे निकलकर चारो ओर फैल गयी ॥८६-८७॥

१ पादातीना समूह । २ - कट्या ल० । ३ निर्गच्छन्ति स्म । ४ रथनियुक्तवाजी । रथाश्च द०, ल०, इ० । ५ उत्पतन्ति स्म । ६ स्पष्ट ल० । ७ चाततम् । ८ जलविकारोत्थै 'अध्यम्बुविकृता वेला' इत्यभिधानान् । ९ -मपूजयन् ल० । १० सम्पदम् । ११ तत्कालजाम् । १२ गोपुरम् । १३ उच्छ्वासान्निष्क्रान्त यथा भवति तथा । ससङ्कटमिति यावत् । १४ त्रिलोकसृष्टि ।

तत प्राचा^१ दिश जेनु कृतोद्योगो विधापति । प्रयया प्राञ्जुरा भूत्वा चक्ररत्नमनुमजन् ॥८८॥
 चक्रमस्य ज्वलद्भ्योऽग्निं प्रधाति स्म पुरो विमो । सुरैः परिष्कृत^२ विश्रग्मास्त्रं द्विभ्रमस्त्रम् ॥८९॥
 चक्रानुयायि तद्भेजे^३ सिधीनाभीषितुबलम् । पुरोरिच्छानुवर्तिष्णु मुनीनामिव मण्डलम् ॥९०॥
 दण्डरत्न पुरोधाप्य सेनातीरप्रणीरभूत् । स्थपुनानि^४ समीकृवन् स्थलदुर्गाण्ययत्नत ॥९१॥
 अग्रगमा दण्डरत्नेन पथि राजपथोऽकृते । यथेष्ट प्रययौ सैन्यं कश्चिद्रूप्यस्वरत्नदुर्गति ॥९२॥
 ततोऽप्यग्निं विशामीश सोऽपश्यच्छारदौ श्रियम् । दिशा प्रसाधना कीर्तिमात्रमायामिव निमलाम् ॥९३॥
 सराग्निं कमलामोदमुद्रमन्ति शरच्छिब्र । मुरावितानि सप्रेम्य सोऽभ्यनन्ददधाशिता ॥९४॥
 स हस्तान् सरतां तीरेऽपश्यत् कृतशिञ्जनात्^५ । भृगालयोधसपुष्पान्^६ गरद पुत्रकानिव ॥९५॥
 चञ्च्वा मृणालमुद्भूत्य हसो हस्यैः समपयन् । राजहसस्य^७ हृदयस्य^८ महतीं धृतिमादद ॥९६॥
 सधात्री^९ वीक्षितं रत्नमपश्यन् परितः^{१०} सरः । कोक^{११} कोक्यमानोऽस्य मनसः प्रीतिमातनोत् ॥९७॥
^{१३} हसयूनाब्जकिञ्जल्करजपिञ्जरितां निजाम् । वरं विधूतां^{१४} साऽपश्यच्चक्रवार्कविशङ्कया ॥९८॥
 तरङ्गधवलाभूतविप्रहां कोककामिनीम् । व्यामोहादधुधावन्त स^{१५} जरदसमैक्षत ॥९९॥
 नदीपुलिनदेशेषु हससारसहारिषु । शयनेऽपि व तस्थासीद् धृति शुचिमयामसु^{१६} ॥१००॥

तदनन्तर जिन्होंने सबसे पहले पूर्व दिशाको जीतनेका उद्योग किया है । ऐसे महाराज भरतने चक्ररत्नके पीछे-पीछे जाते हुए पूर्वकी ओर मुख कर प्रयाण किया ॥ ८८ ॥ सूर्यमण्डल के समान देदीप्यमान और चारो ओरसे देव लोगोके द्वारा घिरा हुआ जाज्वल्यमान चक्ररत्न आकाशम भरतेस्वरके आगे-आगे चल रहा था ॥ ८९ ॥ जिस प्रकार मुनियोका समूह गुस्की इच्छानुसार चलता है उसी प्रकार निधियोके स्वामी महाराज भरतकी वह सेना चक्ररत्न की इच्छानुसार उसके पीछे चल रही थी ॥ ९० ॥ दण्डरत्नको आगे कर सेनापति सबसे आगे चल रहा था और वह ऊँचे-नीचे दुर्गम वनस्थलोको लीलापूर्वक एक-सा करता जाता था ॥ ९१ ॥ आगे चलनेवाला दण्डरत्न सब भागको राजभागके समान विस्तृत और सम करता जाता था इसलिए वह सेना किसी भी जगह स्थलित न होती हुई इच्छानुसार जा रही थी ॥ ९२ ॥ तदनन्तर मार्गमें प्रजापति-भरतने दिशाओंको अलंकृत करनेवाली अपनी कीर्तिके समान निर्मल गरदश्रुतीकी शोभा देखी ॥ ९३ ॥ शरदश्रुतुल्पी लक्ष्मीके मुखके समान जो सरोवर कमलकी सुगन्धि छोड़ रहे थे उन्हें देखकर महाराज भरत बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ९४ ॥ सरोवरोंके किनारेपर मधुर शब्द करते हुए और मृणालरूपी मक्खन खाकर पुष्ट हुए हंसोंकी भरतेस्वर ने शरदश्रुतुके पुत्रोंके समान देखा ॥ ९५ ॥ जो हंस अपनी चौंचसे मृणालको उठाकर हंसीके लिए दे रहा था उसने सब राजाओंमें श्रेष्ठ इन भरत महाराजके हृदयमें बड़ा भारी सन्तोष उत्पन्न किया था ॥ ९६ ॥ जो चक्रवा लहरोसे रकी हुई चक्रवोंको न देखकर सरोवरके चारों ओर शरत् कर रहा था उसने भी भरतके मनकी प्रीतिको अत्यन्त विस्तृत किया था ॥ ९७ ॥ एक तर्ण हमने कमल केसरकी भूलिसे पीली हुई अपनी हंसीको चक्रवों समझकर भूलसे छोड़ दिया था महाराज भरतने यह भी देखा ॥ ९८ ॥ लहरोसे जिसका शरीर सफेद ही गया है ऐसी चक्रवोंका हमो समझकर और उसपर मोहित होकर एक बूढ़ा हंस उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा था - महाराज भरतने यह भी देखा ॥ ९९ ॥ जिनकी सीमाएँ अत्यन्त पवित्र हैं जो हंस तथा

१ पूर्वमि । २ परिकृतं ल० । ३ सूर्यविभ्रम् । ४ तद्भेजे ल० । ५ निम्नोन्नतानि । ६ शिञ्जितान् । ७ ८० । ८ १० । ९ तीरनगरीत । स्वययोनवनीतमित्यर्थ । ८ राजध्वजस्य । ९ हृदये । १० श्रियाम् । ११ सरयु मयनान । १२ मृगं स्वरं दुर्गति । १३ तर्णहमेन । १४ अवपाताम् । १५ चक्री । १६ निचि-वन्ध्याविविपु ।

शेधोलताशिशोन्मृष्टपुपप्रकटशोभिनी । सरित्तीरभुवोऽदर्शज्जलोच्छ्वायतरङ्गिताः ॥१०१॥

लतालयेषु रम्येषु गतिरम्य प्रपद्यतः । स्वयं गलप्रमनौघरचितप्रस्तरैर्वभृत् ॥१०२॥

क्वचिल्लतागृहान्न रयचन्द्रकान्तशिलाश्रितान् । स्वयंशोगानसम्यक्तान् किन्नरान् प्रभुंश्चन ॥१०३॥

क्वचिल्लता । प्रमनेषु विलीनमनुपावली । विलोमय स्वस्तकेर्गीना मम्मर प्रिययोपिताम् ॥१०४॥

सुमनोवर्षमानेनु प्रीन्येवास्याविमर्षजम् । पवनाधनशाखायाः प्रफुल्ला मार्गशागिनः ॥१०५॥

मच्छायान् सफलान् तुङ्गान् सर्वसंभोग्यसपदः । मार्गद्रुमान् समद्राक्षीत् स नृपाननुकुर्वतः ॥१०६॥

मरस्तीरभुवोऽपद्यत मरोजरजसा तताः । सुवर्णकुट्टिमाशङ्कामध्वन्यहृदि तन्वती ॥१०७॥

चलरेणुभिरास्त्रे दोषांमन्यं नमस्यमा । करुणं स्वती वीक्षाञ्चक्रे चक्राहकामिनीम् ॥१०८॥

गवा गणानयापद्यद्गोपदारण्यं चारिणः । श्रीरम्भेवानिवाजस्र शरत्क्षीरलुनान्तिकान् ॥१०९॥

मौरभेयान् स शृङ्गाग्रमुत्प्रातस्थलागुजान् । मृणालानि यशार्माव किरतोऽपद्यदुन्मदान् ॥११०॥

सारस आदि पक्षियोंसे मनोहर हैं, और जो विछी हुई गय्याओंके समान जान पड़ते हैं ऐसे नदी-किनारेके प्रदेशोंपर महाराज भरतको भारी सन्तोष हुआ ॥१००॥ जो किनारेपर लगी हुई लताओंके अग्रभागसे गिरे हुए फूलोंके समूहसे सुशोभित हो रही हैं और जो जलके प्रवाहसे उठी हुई लहरोसे व्याप्त हैं ऐसी नदियोंके किनारेकी भूमि भी भरतेश्वरने बड़े प्रेमसे देखी थी ॥१०१॥ जिनमें अपने-आप गिरे हुए फूलोंके समूहसे गय्याएँ बनी हुई हैं ऐसे रमणीय लतागृहोंको देखते हुए भरतको उनमें भारी प्रीति उत्पन्न हुई थी ॥१०२॥ उन भरत महाराजने कहीं-कहींपर लतागृहोंके भीतर पड़ी हुई चन्द्रकान्त मणिकी गिलाओपर बैठे हुए और अपना यगगान करनेमें लगे हुए किन्नरोंको देखा था ॥१०३॥ कहीं-कहींपर लताओंके फूलोंपर बैठे हुए भ्रमरोंके समूहोंको देखकर जिनकी चोटियाँ ढीली होकर नीचेकी ओर लटक रही हैं ऐसी प्रिय स्त्रियोंका स्मरण करता था ॥१०४॥ जिनकी शाखाओंके अग्रभाग वायुसे हिल रहे हैं ऐसे फूले हुए मार्गके वृक्ष मानो बड़े प्रेमसे ही भरत महाराजके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा कर रहे थे ॥१०५॥ वह भरत मार्गके दोनों ओर लगे हुए जिन वृक्षोंको देखते जाते थे वे वृक्ष राजाओंका अनुकरण कर रहे थे क्योंकि जिस प्रकार राजा सच्छाय अर्थात् उत्तम कान्तिसे सहित होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी सच्छाय अर्थात् उत्तम छाहरीसे सहित थे, जिस प्रकार राजा सफल अर्थात् अनेक प्रकारकी आयसे सहित होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष सफल अर्थात् अनेक प्रकारके फलोंसे सहित थे, जिस प्रकार राजा तुग अर्थात् उदार प्रकृतिके होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी तुग अर्थात् ऊँचे थे और जिस प्रकार राजाओंकी सम्पदाएँ सबके उपभोगमें आती हैं उसी प्रकार उन वृक्षोंकी फल पुष्प पल्लव आदि सम्पदाएँ भी सबके उपभोगमें आती थी ॥१०६॥ जो सरोवरोंके किनारेकी भूमियाँ कमलोंकी परागसे व्याप्त हो रही थी और इसीलिए जो पथिकोंके हृदयमें 'क्या यह सुवर्णकी धूलियोंसे व्याप्त है,' इस प्रकार शका कर रही थी, उन्हें भी महाराज भरत देखते जाते थे ॥१०७॥ सेनाकी धूलिसे भरे हुए और इसीलिए रात्रिके समान जान पड़नेवाले आकाशमें रात्रि समझकर रोती हुई चकवीको देखकर महाराज भरतके हृदयमें बड़ी दया उत्पन्न हो रही थी ॥१०८॥ कुछ आगे चलकर उन्होंने जगलोकी गोचरभूमिमें चरते हुए गायोंके समूह देखे, वे गायोंके समूह दूधके मेघोंके समान निरन्तर झरते हुए दूधसे अपनी समीपवर्ती भूमिको तर कर रहे थे ॥१०९॥ जिन्होंने अपने सींगोंके

१ तटलता । "कूट रोवञ्च तीरञ्च तट त्रिपु" इत्यभिधानात् । २ वेशेषु । ३ रजमा-ल० । ४ आत्मान दोषा रात्रि मन्यत इति । ५ क्रियाविशेषणानां नपुंसकत्वं द्वितीया वक्तव्या । ६ आलुओंके । ७ गोगम्यवन ।

वात्सक क्षीरसपापादिव निमलविग्रहम् । सोऽपश्यन्नापलस्वव परां कोटिं कृतोत्प्लुतिम् ॥१११॥
 स पद्मविशानम्रकलमक्षेत्रमैश्वर्यम् । नौद्वय फलयोगाति नृणां वक्षुमिवोद्यतम् ॥११२॥
 वमान्^१ भुवमाग्रादुमिधो पलमिन्नतान्^२ । स कैदार्येषु^३ कलमान् वाक्ष्यान^४ द पर ययी ॥११३॥
 कलानतान् स्तम्भकरीन् सोऽपश्यद् धप्रभूमिषु । स्वन्महतून् कदाराभ्रमस्तत इवादरात् ॥११४॥
 आगतपयस प्राज्यक्षीरा लोकोपकारिणी । पयस्विनीरिवापश्यत् प्रसूता शालिसपद् ॥११५॥
 अववसितनीलाब्जा कजरणुभितस्तना । इक्षुदण्डभृतोऽपश्यच्छालाश्चोत्कुवता^५ स्त्रिय ॥११६॥
 हारिगातस्वनाद्दृष्टैर्विष्टा हसमण्डलैः । शालिमोण्या द्यौरस्य मुद तनुवधूिका ॥११७॥
 कृताश्रयोपरोधानि गातानि दधती सती । न्यस्तावतसा कणिश शालिगापीर्दश स ॥११८॥
 सुगन्धिमुखनिश्वासा भ्रमरराकुलीकृताः । मनाऽस्य जहुः शालाना पालिकाः कलपालिकाः ॥११९॥
 उपाध्वं^६ प्रकृतक्षत्रान् क्षेत्रिणं परिधावत । बलोपरोधैरायस्तानैक्षतासौ^७ सकौतुकम् ॥१२०॥

अप्रभागस स्थलकमल उखाड डाल ह और जो अपने यशके समान उनकी मृणालोको जहाँ
 तहाँ फक रहे है ऐसे समस्त बल भी भरत महाराजने देखे थे ॥११०॥ दूधसे पालन-पोषण
 होनेके कारण ही मानो जिनका निमल-सफेद शरीर है जो चञ्चलताकी अन्तिम सीमाके समान
 जान पड़ते हैं और जो बार-बार उछल-कूद रहे ह ऐसे गायोंके बछड़ोके समूह भी भरतेश्वर
 देखते जाते थे ॥१११॥ भरत महाराज पकी हुई बालसे नम्रीभूत हुए धानोके खेत भी देखते
 जाते थे उस समय वे खेत ऐसे मालूम होते थे मानो 'लोगोंको उद्धतपना फल देनेवाला नहीं
 है यही कहनेके लिए तैयार हुए हों ॥११२॥ जो खेतके भीतर उत्पन्न हुए कमलोंको सूँघनेके
 लिए ही मानो नम्रीभूत हो रहे हैं ऐसे खेतोमे लगे हुए धानके पौधोको देखकर भरत महाराज
 परम आनन्दको प्राप्त हो रहे थे ॥११३॥ उन्होंने खेतकी भूमियोमें फलोके भारसे झुके हुए धानके
 उन पौधोको भी देखा था जो कि अपने जन्म देनेके कारण खेतोंको बड़े आदरके साथ नमस्कार
 करते हुए से जान पड़ते थे ॥११४॥ उन्होंने जहाँ-तहाँ फैली हुई धानरूप सम्पदाओको
 गायोंके समान देखा था, क्योंकि जिस प्रकार गाय जल पीती है उसी प्रकार धान भी जल पीते
 हैं (जलसे भरे हुए खेतोम पदा होते ह) जिस प्रकार गायोंमें उत्तम दूध भरा रहता है उसी
 प्रकार धानाम भी पकनेके पहले दूध भरा रहता है और गाय जिस प्रकार लोगोका उपकार
 करती ह उसी प्रकार धान भी लोगोका उपकार करते ह ॥११५॥ जिन्होंने नालसहित
 कमलाको अपने कर्णका आभूषण बनाया है, कमलकी पराग जिनके स्तनोंपर पड़ रही है, जो
 हायम ईशका दण्डा लिये हुए ह और जो धान रखानेके लिए 'छो-छो शब्द कर रही हैं ऐसी
 स्त्रियाको भी उन्होंने देखा था ॥११६॥ जो अपने मनोहर गीतोके शब्दोसे खिचकर आये हुए
 हसाके समूहासे घिरी हुई ह ऐसी धानकी रक्षा करनेवाली नवीन स्त्रियाँ भरत महाराजके नेत्रोका
 आनन्द बना रही थी ॥११७॥ जो पक्षिकोकी रोकनेवाले सुन्दर गीत गा रही हैं और जिन्होंने
 धानकी बालासे वणभूषण बनाकर धारण किये ह ऐसी धानकी रखानेवाली स्त्रियोंको भरतने
 बड़े प्रमत्त दसा था ॥११८॥ जो अपने मुखकी सुगन्धित निश्वासे आये हुए भ्रमरोसे
 व्याकुल हा रही ह एसी धान रखानेवाली सुन्दर लडकियाँ महाराज भरतके मनको हरण
 कर रही थी ॥११९॥ जो सनाके लोगोसे मार्गके समीपवर्ती खेतोंकी रक्षा करनेके लिए उनके

१ भुव अन्त अनन्तम् । २ -मनानतान् स० इ० प० । ३ सत्यभनसमूहम् । ४ धनू । ५ स
 वगमिन्-इ० । ६ उपाध्वं कुवता । ७ कुलपालिका स इ द० । ८ मागसमीपे । ९ कृत ।
 १ वर्णनान् ।

‘उपशत्यभुवोऽद्वाक्षीन्निगमानमितो विभु । केदारलावैराकीर्णाः स भ्रास्यदमिः कृपावले ॥१२१॥
 मोऽपश्यन्निगमोपान्ते पथः’ सस्यानकर्दमान् । प्रव्यक्तगोखुरक्षोदस्यपुटाननिगड्कटान् ॥१२२॥
 निगमान् परितोऽपश्यद् ग्राममुग्यानं महावलान् । पयस्विनो जनेः सेव्यान् महागमतस्नपि ॥१२३॥
 ग्रामान् कुक्कुटसम्पान्यान् मोऽन्यगाद् वृत्तिमिवृतान् । कोशातकीलतापुष्पस्यगिताभिरितोऽमुत ॥१२४॥
 ‘कुटीपरिमृगेष्वस्य धृतिराम्नीन प्रपश्यत । फलपुष्पानता वल्गुः प्रमवाह्याः’ मर्तारवि ॥१२५॥
 योपितो निःकमालाभिर्वलयैश्च विभूषिता । पश्यतोऽस्य मनो जहर्ग्रामीणाः सश्रिता वृत्तीः ॥१२६॥
 ‘ह्यङ्गवर्चनकलशैर्दन्तामपि निहिन्नकैः’ । ग्रामेषु फलभेदैश्च तमद्वाक्षुमहत्तरा ॥१२७॥
 ततो विदूरमुल्लङ्घ्य मोऽन्वानं पृतनावृत । गङ्गासुपामदद् वीरः प्रयाणं कनिथैरपि ॥१२८॥
 हिमवद्विष्टा पूज्या मतामामिन्धुगामिनीम् । शुचिप्रवाहामाकल्पवृत्ति कीर्तिमिवान्मनः ॥१२९॥
 ‘शफरीप्रक्षणामुद्यत्तरङ्गभ्रूविनर्तनाम् । वनराजावृहच्छाटीपरिधाना वधमिव ॥१३०॥

चारो ओर दौड रहे हैं और सेनाके लोगोकी जवरदस्ती करनेपर खेदखिन्न हो रहे हैं, ऐसे खेतोके मालिक किसानोको भी भरतेखरने बडे कौतुकके साथ देखा था ॥१२०॥ जो खेत काटनेवाले डधर-उधर घूमते हुए किसानोसे व्याप्त हो रही हैं ऐसी प्रत्येक ग्रामोके चारो ओरकी निकट-वर्ती भूमियोको भी भरतेखरने देखा था ॥१२१॥ जो स्पष्ट दिखनेवाले गायोके खुरोके चिह्नोसे ऊँचे-नीचे हो रहे हैं और जो अत्यन्त सकडे हैं ऐसे कुछ-कुछ कोचडसे भरे हुए गाँवके समीपवर्ती मार्गोको भी भरत महाराज देखते जाते थे ॥१२२॥ उन्होने ग्रामोके चारो ओर खडे हुए महावलवान् गाँवके मुखिया लोगोको देखा था तथा पक्षी तिर्यच और मनुष्योके द्वारा सेवा करने योग्य बडे-बडे वगीचोके वृक्ष भी देखे थे ॥१२३॥ जो जहाँ-तहाँ लौकी अथवा तुरईकी लताओके फूलोसे ढकी हुई वाडियोसे घिरे हुए हैं और जिनपर एकसे दूसरेपर मुरगा भी उडकर जा सकता है ऐसे गाँवोको वे दूरसे ही छोडते जाते थे ॥१२४॥ झोपडियोके समीपमे फल और फूलोसे झुकी हुई लताओको तथा पुत्रोसे युवत सती स्त्रियोको भी देखते हुए महाराज भरत-को बडा आनन्द आ रहा था ॥१२५॥ जो सुवर्णकी मालाओ और कडोसे अलंकृत हैं तथा वाडियोकी ओटमे खडी हुई हैं ऐसी गाँवोकी स्त्रियाँ भी देखनेवाले भरतका मन हरण कर रही थी ॥१२६॥ गाँवोके बडे-बडे लोग धीके घडे, दहीके पात्र और अनेक प्रकारके फल भेट कर उनके दर्शन करते थे ॥१२७॥

तदनन्तर धीरवीर भरत सेनासहित कितनी ही मजिलो-द्वारा लम्बा मार्ग तय कर गंगा नदीके समीप जा पहुँचे ॥१२८॥ वहाँ जाकर उन्होने गंगा नदीको देखा, जो कि उनकी कीर्तिके समान सुशोभित हो रही थी क्योकि जिस प्रकार उनकी कीर्ति हिमवान् पर्वतसे धारण की गयी थी उसी प्रकार गंगा नदी भी हिमवान् पर्वतसे धारण की गयी थी, जिस प्रकार उनकी कीर्ति पूज्य और उत्तम थी उसी प्रकार गंगा नदी भी पूज्य तथा उत्तम थी, जिस प्रकार उनकी

१ ग्रामान्तभुव । “ग्रामान्त उपशत्य स्यात्” इत्यभिधानात् । २ केदारान् लुनन्तीति केदारलावास्तै । ३ मार्गान् । ४ ईपदार्द्रकर्दमान् । ५ ग्राममहत्तरान् । ६ महाफलान् द०, इ० । ७ वयस्तिरोजनै ल० । क्षीरोपायनान् क्षीरिणश्च । ८ महाग्राम-इत्यपि क्वचित् । ९ पटोरिका । ‘कोशातकी ज्योत्स्निकायामपामार्गोऽपि सा भवेत्’ इत्यभिधानात् । १० गृह । ११ पुत्रैराढ्या । १२ सुवर्णमालाभि । १३ ग्रामे भवा । १४ ‘संवृतावृत्ती ससृतासृती’ इत्यपि क्वचित् । १५ घृतकुम्भै । १६ भाजनविशेषै । १७ - सदध्वीर द० । १८ कतिपयै । १९ सती-ल० । २० मीननेत्राम् ।

विस्तारं जनसमोर्ग्यं कृजद्वसालिमखलै । तरङ्गवसनै कान्ता^१ पुलिनैजघनैरिव ॥१३१॥
 'लालोर्मिहस्तनिधूतपक्षिमाळाकलस्वनै । किमप्यालपितु यत्न त-ग्रन्थी वा तटद्रुमै ॥१३२॥
 धर्ता^२ व-यमदन्तानां रोधोजघनधर्तिनी । रुन्धतामधिमात्यव लसद्मिन्दुकूलकै ॥१३३॥
 रामराजामिवानीला वनराजौ विवृण्वताम् । तिष्ठमानामिवावतव्यक्तनामिमुदन्वत ॥१३४॥
 बिलोलवाधिसघट्टादुधितां पतगावलिम् । पताकामिव विभ्राणां लब्धा सर्वापगाजयात् ॥१३५॥
 समासमाना^३ पर्याप्तपयस धारनि स्वनाम् । जगतं पावनीं मान्यां हसन्तीं गोमतस्त्रिकाम् ॥१३६॥
 गुरुप्रवाहप्रसृतां तीर्थकामैरपासिताम् । गम्भीरश-दसभूर्ति जैनीं ध्रुतिमिवामलाम् ॥१३७॥

कीर्ति समुद्र तक गमन करनेवाली थी उसी प्रकार गंगा नदी भी समुद्र तक गमन करनेवाली थी जिस प्रकार उनकी कीर्तिका प्रवाह पवित्र था उसी प्रकार गंगा नदीका प्रवाह भी पवित्र था और जिस प्रकार उनकी कीर्ति कल्पान्त काल तक टिकनेवाली थी उसी प्रकार गंगा नदी भी कल्पान्त काल तक टिकनेवाली थी । अथवा जो गंगा किसी स्त्रीके समान जान पड़ती थी, क्योंकि मछलियाँ ही उसके नेत्र थ, उठती हुई तरंग ही मोहोका नचाना था और दोनों किनारोके वनको पक्ति ही उसकी साडी थी । जो स्त्रियाँके जघन भागके समान सुन्दर किनारा से सहित थी, उसके वे किनारे बहुत ही बड़े थे । शब्द करती हुई हसोंकी माला ही उनकी करधनी थी आर लहर ही उनके वस्त्र थ ।—चंचल लहरोरूपी हाथोके द्वारा उड़ाये हुए पक्षि समूहोके मनोहर शब्दोसे जो ऐसी जान पड़ती थी मानो किनारेके वृक्षोके साथ कुछ वार्तालाप करनेके लिए प्रयत्न ही कर रही हो ।—जो अपनी छलकती हुई लहरोसे ऐसी जान पड़ती थी मानो तटरूपी नितम्ब प्रदेशपर जगली हाथियोके द्वारा किये हुए दातोंके धावोंको समुद्ररूप पतिके डरसे शोभायमान लहरोरूपी वस्त्रसे ढक ही रही हो । जो दोनों ओर लगी हुई हरी भरी वनश्रेणियाँके प्रकट करने तथा साफ-साफ दिखाई देनेवाली भँवरोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो किसी स्त्रीकी तरह अपने समुद्ररूप पतिके लिए रोमराजि और नाभि ही दिखला रही हो ।—जो चंचल लहरोके सघटनसे उड़ी हुई पक्षियोकी पक्तिको धारण कर रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो सब नदियोको जीत लनेसे प्राप्त हुई विजयपताकाको ही धारण कर रही हो । जो किसी उत्तम गायकी हसी करती हुई-सी जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार उत्तम गाय समासमीना अर्थात् प्रति वर्ष प्रसव करनेवाली होती है उसी प्रकार वह नदी भी समास-मीना अर्थात् परिपुष्ट मछलियाँसे सहित थी जिस प्रकार उत्तम गायमें पर्याप्त पय अर्थात् दूध होता है उसी प्रकार उस नदीमें भी पर्याप्त पय अर्थात् जल था, जिस प्रकार उत्तम गाय गम्भीर गन्ध करती है उसी प्रकार वह भी गम्भीर कल-कल शब्द कर रही थी, उत्तम गाय जिस प्रकार जगत्को पवित्र करनेवाली है उसी प्रकार वह भी जगत्को पवित्र करनेवाली थी आर उत्तम गाय जिस प्रकार पूज्य होती है उसी प्रकार वह भी पूज्य थी । अथवा जो जिनवाणीक समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार जिनवाणी गुरु-प्रवाह अर्थात् आचार्य परम्पराय प्रमत हुई है उसी प्रकार वह भी गुरुप्रवाह अर्थात् बड़े भारी जलप्रवाहसे प्रसृत हुई थी—प्रवाहित हुई थी । जिस प्रकार जिन वाणी तीर्थ अर्थात् धर्मकी इच्छा करनेवाला पुरुषो

१ कान्ता २ । २ वागानिन । -वनम ल० । ४ सीर । ५ प्रदायस्तीम् । ६ माममशक-
 क्षातगि नाम । प्रनिरय गम गृहणताम् । समासमाना सा यैव प्रतिवप प्रसूयत । ७ प्रशस्तगाम् ।
 गोमधविशाम ल० ८ । ६ ।

राजहंसैः^१ कृतोपास्यामलङ्क्यां विधृतयनिम्^२ । जयलक्ष्मीमिव स्फीतामाम्नीयामध्विगामिनीम् ॥ १३८ ॥
 विलम्प्यश्वभूतां^३ जनतानन्ददायिनीम् । जगद्भोग्यामित्राङ्गीयां श्रियमायनिशालिनीम् ॥ १३९ ॥
 विजयार्थतटाक्रान्तिं^४ कृतश्लाघां^५ सुरहंसम्^६ । अमरनप्रमरां दिव्या निजामित्र पताकिनीम् ॥ १४० ॥
 व्यालोलोर्मिकरास्पृष्टं^७ स्वतीरवनपादपैः । द्रव्यमिग्दुकुरोद्भेदं^८ माश्रिता कामुकैरिव ॥ १४१ ॥
 शोभोन्मालयार्मीनान्^९ स्वेच्छया सुरदम्पतीन् । ह्यन्तीमिव मुञ्चानैः^{१०} शीकरान्यैर्विगारिभिः ॥ १४२ ॥
 किन्नराणां कलक्वाणैः मगानैरुपवीणितैः । मेव्यपर्यन्तभृमागलतामण्डपमण्डनाम् ॥ १४३ ॥

के द्वारा उपासित होती है उसी प्रकार वह भी तीर्थ अर्थात् पवित्र तीर्थ-स्थानकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके द्वारा उपासित होती अथवा किनारेपर रहनेवाले मनुष्य उसमें स्नान आदि किया करते थे, जिस प्रकार जिनवाणीमें गम्भीर शब्दोंकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार उससे भी गम्भीर अर्थात् बड़े जोरके शब्दोंकी उत्पत्ति होती थी, और जिस प्रकार जिनवाणी मल अर्थात् पूर्वापर विरोध आदि दोषोंमें रहित होती है उसी प्रकार वह भी मल अर्थात् कीचड़ आदि गँदले पदार्थों-से रहित थी ।—अथवा जो अपनी (भरतकी) विजयलक्ष्मीके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार विजयलक्ष्मीकी उपासना राजहंस अर्थात् बड़े-बड़े राजा लोग करते थे उसी प्रकार उम नदीकी भी उपासना राजहंस अर्थात् एक प्रकारके हंसविशेष करते थे, जिस प्रकार जय-लक्ष्मीका कोई उल्लघन—अनादर नहीं कर सकता था उसी प्रकार उस नदीका भी कोई उल्लघन नहीं कर सकता था, जयलक्ष्मीका आयति अर्थात् भविष्यत्काल जिस प्रकार स्पष्ट प्रकट था इसी प्रकार उसकी आयति अर्थात् लम्बाई भी प्रकट थी, जयलक्ष्मी जिस प्रकार स्फीत अर्थात् विस्तृत थी उसी प्रकार वह भी विस्तृत थी और जयलक्ष्मी जिस प्रकार समुद्र तक गयी थी उसी प्रकार वह गंगा भी समुद्र तक गयी हुई थी । अथवा जो भरतकी राज्यलक्ष्मीके समान मालूम होती थी क्योंकि जिस प्रकार भरतकी राज्यलक्ष्मी शोभायमान पद्म अर्थात् पद्म नामकी निधिसे उत्पन्न हुई थी उसी प्रकार वह नदी भी पद्म अर्थात् पद्म नामके सरोवरसे उत्पन्न हुई थी, भरतकी राज्यलक्ष्मी जिस प्रकार जनसमूहको आनन्द देनेवाली थी उसी प्रकार वह भी जनसमूहको आनन्द देनेवाली थी, भरतकी राज्यलक्ष्मी जिस प्रकार जगत्के भोगने योग्य थी उसी प्रकार वह भी जगत्के भोगने योग्य थी, और भरतकी लक्ष्मी जिस प्रकार आयति अर्थात् उत्तरकालसे सुगोभित थी उसी प्रकार वह आयति अर्थात् लम्बाईसे सुगोभित थी ।—अथवा जो भरतकी सेनाके समान थी, क्योंकि जिस प्रकार भरतकी सेना विजयार्ध पर्वतके तटपर आक्रमण करनेसे प्रगंमाको प्राप्त हुई थी उसी प्रकार वह नदी भी विजयार्ध पर्वतके तटपर आक्रमण करनेसे प्रगंसाको प्राप्त हुई थी (गंगा नदी विजयार्ध पर्वतके तटको आक्रान्त करती हुई वही है) जिस प्रकार भरतकी सेनाका वेग तेज था उसी प्रकार उस नदीका वेग भी तेज था । जिस प्रकार भरतकी सेनाके फैलावको कोई नहीं रोक सकता था उसी प्रकार उसके फैलावको भी कोई नहीं रोक सकता था और भरतकी सेना जिस प्रकार दिव्य अर्थात् सुन्दर थी उसी प्रकार वह नदी भी

१ सेवाम् । २ विधृतयतीम् ल० । ३ पद्महृदे जाताम् । पक्षे निधिविशेषजाताम् । ४ आक्रमण । ५ श्लाघ्या ल०, इ० । ६ मुवेगाम् । ७ रोमाञ्चम् । ८ तीरलतागृहस्थितान् । ९ मुञ्चानै ल० । स्वस्वानै इ० ।

हारिभिः किन्नरोद्गीनैराहूता हरिणादगता । दधतीं तीरकच्छेषु प्रसारितगङ्गाङ्गुली ॥१४४॥
 हृद्यै ससारसाराद्यै पुलिनैर्दिव्यघोषिताम् । नितम्ब्यानि सकान्धानि हसन्तामिव विस्तृते ॥१४५॥
 चतुर्दशभिरन्विता सहस्रैरन्ध्रियोषिताम् । सद्भीचीनामिवोद्भावि चाहूना परिरम्भणे ॥१४६॥
 इत्यादिप्लुतसशोभां जाह्नवामैक्षत प्रभु । हिमवद्गिरिणाम्भोधे ग्रहितामिव कण्ठिकाम् ॥१४७॥

मालिनीवृत्तम्

शरदुपहितकान्तिं प्र तत्कान्तारराजी

विरचितपरिधाना सक्तारोहरम्याम् ।

युवलिमिव गम्भीरावतनाभिं प्रपश्यन्

प्रमदमत्तुलमूढे क्षमापति स्व स्रवन्तोम् ॥१४८॥

सरसिजमकरन्दोद्गमिविराधूतरोधो

वनकिसलयमन्दां दोलनीदूढमान्धः ।

असङ्गमरसि चोराधुनानस्तरङ्गा

नहत्त नृपवधूनामभ्वक्षेद समार ॥१४९॥

सुन्दर थी । जो चचल लहरोरूपी हाथोंसे स्पर्श किये गये और अकुररूपी रोमाचोंको धारण किये हुए अपने किनारेके वनके वृक्षोंसे आश्रित थी और उससे ऐसी मालूम होती थी मानो कामा जनोसे आश्रित कोई स्त्री ही हो । - जो जलकणोंसे उत्पन्न हुए तथा चारो ओर फैलते हुए मनोहर शब्दोंसे अपनी इच्छानुसार किनारेपर-के लतागृहोंमें बंटे हुए देव-देवागनाओंकी हँसी करती हुई-सी जान पड़ती थी । किन्नरोंके मधुर शब्दवाले गायन तथा वीणाकी झनकारसे सेवनीय किनारेकी पथिवीपर बने हुए लतागृहोंसे जो बहुत ही अधिक सुशोभित हो रही थी । - किन्नर देवोंके मनोहर गानोंसे बुलायी हुई और सुखसे ग्रीवाको लम्बा कर बैठी हुई हरिणियों को जो अपने किनारेकी भूमिपर धारण कर रही थी । - जिनपर सारस पक्षी कतार बौधकर मनोहर शब्द कर रहे हैं ऐसे अपने बड़े-बड़े सुन्दर किनारोंसे जो देवागनाओंके करघनीसहित नितम्बोंकी हँसी करती हुई-सी जान पड़ती थी । - जिन्होंने आलिंगन करनेके लिए तरंगरूपी भुजाएँ ऊपरकी ओर उठा रखी हैं ऐसी सखियोंके समान जो चौदह हजार सहायक नदियोंसे सहित है । - इस प्रकार जिसकी शोभा प्रकट दिखाई दे रही है और जो हिमवान् पर्वतोंके द्वारा समुद्रके लिए भेजी हुई कण्ठमालाके समान जान पड़ती है ऐसी गंगा नदी महाराज भरतने गयी ॥ १२९-१४७ ॥ शरदश्रुतुक द्वारा जिसकी कान्ति बढ गयी है, किनारेके वनोंकी पवित्र ही जिमक वस्त्र है जो बालूके टोलेरूप नितम्बोंसे बहुत ही रमणीय जान पड़ती है, गम्भीर भँवर ही जिसकी नाभि है और इस प्रकार जो एक तरुण स्त्रीके समान जान पड़ती है तेमी गंगा नदीको दखते हुए राजा भरतने अनुपम आनन्द धारण किया था ॥ १४८ ॥ जो वनलाकी मकरन्दम भुगर्षित है कुछ-कुछ कम्पित हुए किनारेके वनके पल्लवोंके धीरे-धीरे नित्नेम जिमका मन्त्रपना प्रकट हो रहा है और जो गंगा नदीकी तरंगोंको बार-बार हिला रहा

१ तीरस्थ २ प्रसारितो भूत्वा मुष्माविगपनाधो गलद्गलो यासां ता । ३ सन्धीनाम् ।

४ वीणावाहना ५ गगाम । ६ प्राप्य । ७ वैकतनितम्ब ।

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

तामान्कान्तहरिन्मुग्धा^१ कृतरजोभृति^२ जगन्मावनी -

मामेच्या^३ द्विजकुञ्जरविरत सनापविच्छेदिनीम् ।

जैनी कीर्तिमिवाततामपमलां गडवज्जनानन्दिनीं

निभ्यायन्^४ त्रिवुवापगां निधिपति प्रीति परामायन् ॥ १५० ॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टि नक्षत्रमहापुराणसंग्रहे भरतराज-
दिग्विजयोद्योगवर्णन नाम पड्विंशतितम पर्व ॥ २३ ॥



है ऐसा वहाँका वायु रानियोके मार्गके परिश्रमको हरण कर रहा था ॥ १४९ ॥ वह गंगा ठीक जिनेन्द्रदेवकी कीर्तिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार जिनेन्द्र देवकी कीर्तिने समस्त दिशाओ-को व्याप्त किया है उसी प्रकार गंगा नदीने भी पूर्व दिशाको व्याप्त किया था, जिनेन्द्र भगवान्-की कीर्तिने जिस प्रकार रज अर्थात् पापका नाश किया है उसी प्रकार गंगा नदीने भी रज अर्थात् धूलिका नाश किया था, जिनेन्द्र भगवान्की कीर्ति जिस प्रकार जगत्को पवित्र करती है उसी प्रकार गंगा नदी भी जगत्को पवित्र करती है, जिनेन्द्र भगवान्की कीर्ति जिस प्रकार द्विज कुंजर अर्थात् श्रेष्ठ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योके द्वारा सेवित है उसी प्रकार गंगा नदी भी द्विज कुंजर अर्थात् पक्षियो और हाथियोके द्वारा सेवित है, जिनेन्द्र भगवान्की कीर्ति जिस प्रकार निरन्तर ससार-भ्रमण-जन्य सन्तापको दूर करती है उसी प्रकार गंगा नदी भी सूर्यकी किरणोसे उत्पन्न सन्तापको नष्ट करती थी और जिनेन्द्र भगवान्की कीर्ति जिस प्रकार विस्तृत, निर्मल और सदा लोगोको आनन्द देनेवाली है उसी प्रकार वह गंगा नदी भी विस्तृत, निर्मल तथा सदा लोगोको आनन्द देती थी । इस प्रकार उस गंगा नदीको देखते हुए निधियोके स्वामी भरत महाराज परम प्रीतिको प्राप्त हुए थे ॥ १५० ॥

इस प्रकार आर्ष नामये प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण महापुराणसंग्रहके हिन्दी-भाषानुवादमे भरतराजकी दिग्विजयके उद्योगको वर्णन करनेवाला छव्वीसवाँ पर्व पूर्ण हुआ ।



सप्तविंशतितम पर्व

अथ व्यापारयामास ह्य तत्र^१ चिन्तां पति । प्रसन्नै सलिलै पाथं वितरन्थामिवात्मन ॥१॥
 व्यापारितह्य तत्र प्रभुमात्मन्य सारथि । प्रासादसरमिन्धूच वचश्चतोऽनुरञ्जनम् ॥२॥
 इयमाह्लादिताशेषभुवना देवनिम्नगा । रजो विधु^२ रता भाति भारताव स्थयभुव ॥३॥
 पुजाताथ हिमाद्रिं च सागर च सहानदा । प्रसूतौ^३ च प्रवेशे च गम्भीरा निमलशया ॥४॥
 ह्रमो वनगजा प्राप्य निर्वाण्यत^४ मदश्च्युत^५ । मुनीन्द्रा इव सद्भिद्या^६ गम्भीरा तापत्रिच्छिदम् ॥५॥
 इत पिबन्ति वयेसा पथोऽस्या कृतनि-स्वना । इतोऽमी पूरयन्त्यनां मुस्तासारा शरद्वना ॥६॥
 अस्या प्रवाहममोधिषत्ते गाम्भीर्ययोगत । अमो^७ विजयाधेन तुङ्गनाम्बचलात्मना ॥७॥
 अस्या पथ प्रवाहेष नूनमक्षिप्र्यितुश्च भवेत् । क्षारण पथसा स्वेन दृष्टमानान्तराशय ॥८॥
 पद्महादिसवत प्रमथान्वि मानसात् । प्रसूता पथे पुष्प्यां शुद्धजन्मा हि पूर्यते ॥९॥
 व्योयापगामिसां प्राहुर्वियत्^८ पतितां क्षितौ । गङ्गादेवागृह विध्वगाप्लाव्य स्वजलप्लवै ॥१०॥

अथानन्तर वहाँपर जो स्वच्छ जलसे अपने लिए (भरतके लिए) पादोदक प्रदान करती हुई-सी जान पड़ती थी ऐसी गंगा नदीपर महाराज भरतने अपनी दृष्टि डाली ॥ १ ॥ उस समय सारथिने महाराज भरतको गंगापर दृष्टि डाल द्रष्टु देखकर चित्तको प्रसन्न करनेवाले निम्नलिखित समयानुकूल वचन कहे ॥ २ ॥ हे महाराज ! यह गंगा नदी ठीक ऋषभदेव भगवान्की वाणीके समान जान पड़ती है, क्योंकि जिस प्रकार ऋषभदेव भगवान्की वाणी समस्त ससारको आनन्दित करती है उसी प्रकार यह गंगा नदी भी समस्त लोकको आनन्दित करती है और ऋषभदेव भगवान्की वाणी जिस प्रकार रज अर्थात् पापोंको नष्ट करनेवाली है उसी प्रकार यह गंगा नदी भी रज अर्थात् धूलिको नष्ट कर रही है ॥ ३ ॥ गम्भीर तथा निर्मल जलसे भरी हुई यह गंगा नदी उत्पत्तिके समय तो हिमवान् पर्वतको पवित्र करती है और प्रवेश करते समय समुद्रको पवित्र करती है ॥ ४ ॥ जिस प्रकार गम्भीर और सन्तापको नष्ट करनेवाली सद्भिद्या (सभ्यज्ञान) को पाकर बड़े-बड़े मुनि लोग मद अर्थात् अहंकार छोड़ कर मुक्त हो जाते हैं उसी प्रकार ये जगली हाथी भी इस गम्भीर तथा सन्तापको नष्ट करनेवाली गंगा नदीको पाकर मद अर्थात् गण्डस्थलसे झरनेवाले तोयविशपको छोड़कर शान्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥ इधर ये वनके हाथी शब्द करते हुए इसका पानी पी रहे हैं और इधर जलकी वृष्टि करते हुए ये गरुडभट्टके मेघ इसे भर रहे हैं ॥ ६ ॥ अत्यन्त ऊँचा और सदा निश्चल रहनेवाला विजयाध पर्वत भी जिसे धारण नहीं कर सका है ऐसे इसके प्रवाहको गम्भीर होनेसे समुद्र सदा धारण करता रहता है ॥ ७ ॥ सम्भव है कि अपने खारे जलसे जिसका अन्त कारण निरन्तर जड़ता रहता है सोमा समुद्र इस गंगा नदीके जलके प्रवाहसे अवश्य ही व्यासरहित हो जायेगा ॥ ८ ॥ यह गंगा प्रमत्त मनके समान निर्मल हिमवान् पर्वतके पथ नामक सरोवरसे निकल कर पृथिवीपर प्रसिद्ध हुई है सो ठीक ही है क्योंकि जिसका जन्म शुद्ध होता है वह पूज्य होता ही है ॥ ९ ॥ यह गंगा अपने जलके प्रवाहमे गंगादेवीके घरकी चारो ओरसे भिगोकर आकाश

१ गङ्गा-गम ।

२ उपनिष्ठाज ।

३ मुनिनी भवन्ति मुक्ता-व ।

४ मदच्युत ल० ।

५ प्रमागमस्याय ।

६ गङ्गा-गङ्गा ।

७ विद्यत ल० ६ २० ।

त्रिभतिं हिमवानेना शशाङ्ककरनिर्मलाम् । आ गिन्धो. प्रसृतां कर्त्तुमिव स्वां लोकपावनीम् ॥ ११ ॥
 वनराजीद्वयेनेय विभाति^१ तटवर्तिना । वामगोरिव युग्मेन विनीलेन कृतश्रिया^२ ॥ १२ ॥
 स्वतटाश्रयिणी धत्ते हभमालां कलस्त्रनाम् । काञ्चीमिवेयमम्भोजरज पिञ्जरविग्रहाम् ॥ १३ ॥
 नदीमर्गोरिव स्वच्छ^३ मृणालशकलामला । सविभनिं रघुमान्दृश्य मन्थं श्लाघ्य हि तादृशम्^४ ॥ १४ ॥
 राजहर्मरिय^५ सेव्या लक्ष्मीरिव विभाति तं । तन्वनी जगत प्रीतिमलद्वयमहिमा परं ॥ १५ ॥
 वनवेदीमिय धत्ते समुत्तुङ्गां हिरण्मयीम् । आज्ञामिव तत्रालङ्घ्यां नमोमार्गविलङ्घनीम् ॥ १६ ॥
 इतः प्रसीद देवेमा शरलक्ष्मी विलोक्य । वनराजिषु मरुदा^६ मरिन्सु मरम्याषु च ॥ १७ ॥
 इमं सप्तच्छदा पौष्प विकिरन्ति रजोऽभित । पट्टवाममिवामोदसवामितहरिन्मुग्धम् ॥ १८ ॥
 वाणै^७ कुसुमवाणस्य वाणैरिव विकासिभि । द्वियतं^८ कामिनां चेतो रम्य हरि न कस्य वा ॥ १९ ॥
 विकसन्ति सरोजानि सरस्सु सममुत्पलं । विकामिलोचनानीव वटनानि शरच्छ्रियः ॥ २० ॥
 पङ्कजेषु विलीयन्ते^९ भ्रमरा गन्धलालुपा । कामिनीमुखपद्मेषु कामुका इव काहला^{१०} ॥ २१ ॥
 मनोजशरपुङ्खाब्जैः पञ्चैर्मधुकरा इमं । विचरन्त्यब्जिनीपण्डे मकरन्दरमोत्सुका ॥ २२ ॥

से अर्थात् हिमवान् पर्वतके ऊपरसे पृथिवीपर पड़ी है इसलिए इसे आकाशगगा भी कहते हैं ॥ १० ॥ जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल है, समुद्र तक फैली हुई है और लोकको पवित्र करनेवाली है ऐसी इस गगाको यह हिमवान् अपनी कीर्तिके समान धारण करता है ॥ ११ ॥ यह गगा अपने तटवर्ती दोनों ओरके वनोसे ऐसी सुशोभित हो रही है मानो इसने नीले रंगके दो वस्त्र ही धारण कर रखे हो ॥ १२ ॥ कमलके परागसे जिनका शरीर पीला-पीला हो गया है और जो मनोहर शब्द कर रही है ऐसी हसोकी पक्तियोंको यह नदी इस प्रकार धारण करती है मानो मन्द-मन्द शब्द करती हुई सुवर्णमय करधनी ही धारण किये हो ॥ १३ ॥ यह नदी स्वच्छ मृणालके टुकड़ोंके समान निर्मल अन्य सखी स्वरूप सहायक नदियोंको अपने-मे मिलाकर धारण करती है सो ठीक ही है क्योंकि ऐसे पुरुषोंकी मित्रता ही प्रशंसनीय कहलाती है ॥ १४ ॥ अनेक राजहंस (पक्षमे बड़े-बड़े राजा) जिसकी सेवा करते हैं, जो ससारको प्रेमी उत्पन्न करनेवाली है, और जिसकी महिमा भी कोई उल्लघन नहीं कर सकता ऐसी यह गगा आपकी राजलक्ष्मीके समान सुशोभित हो रही है ॥ १५ ॥ जो अत्यन्त ऊँची है, सोनेकी बनी हुई है, आकाश-मार्गको उल्लघन करनेवाली है और आपकी आज्ञाके समान जिसका कोई उल्लघन नहीं कर सकता ऐसी वनवेदिकाको यह गगा नदी धारण कर रही है ॥ १६ ॥ हे देव, प्रसन्न होइए और इधर वनपक्तियों, नदियों और तालाबोंमे स्थान जमाये हुई शरदऋतुकी इस शोभाको निहारिए ॥ १७ ॥ ये सप्तपर्ण जातिके वृक्ष अपनी सुगन्धिसे समस्त दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले सुगन्धिचूर्णके समान फूलोंकी परागको चारों ओर बिखेर रहे हैं ॥ १८ ॥ इधर कामदेवके वाणोंके समान फूले हुए वाण जातिके वृक्षों-द्वारा कामी मनुष्योंका चित्त अपहृत किया जा रहा है सो ठीक ही है क्योंकि रमणीय वस्तु क्या अपहृत नहीं करती ? अथवा किसे मनोहर नहीं जान पड़ती ? ॥ १९ ॥ इधर तालाबोंमे नील कमलके साथ-साथ साधारण कमल भी विकसित हो रहे हैं और जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो जिनमे नेत्र विकसित हो रहे हैं ऐसे शरदऋतुरूपी लक्ष्मीके मुख ही हो ॥ २० ॥ इधर ये कुछ-कुछ अव्यक्त शब्द करते हुए सुगन्ध-के लोभी भ्रमर कमलोंमे उस प्रकार निलीन हो रहे हैं जिस प्रकार कि चाटुकारी करते हुए काभी जन स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोंमे निलीन—आसक्त होते हैं ॥ २१ ॥ जो मकरन्द रमणा गान

१ विभति ल० । २ धृतश्रिया ल०, द०, इ० । ३ स्वच्छमृणाल-ल० । ४ तादृशम् ल० । ५ पक्षी गाना । ६ प्रमिद्धम् । ७ क्षिण्टिभि । ८ अपहृतम् । ९ आश्लिष्यन्ति । निलीयन्ते ल० । १० मनुष्यजनानां ।

रुचिता कम्पजकिञ्चलैरावान्धत मधुवता । सुवर्णरुपितैरङ्गैः कामान्नरिव मुमुरा ॥२३॥
 स्थलेषु स्थलपद्मिनी विकसन्त्यश्वकासति । शरच्छिद्यो निगापस्था दृष्यशालो द्वयोद्यिता ॥२४॥
 स्थलाब्जशङ्किनी हसी सरस्य जरजरते । सहस्रपक्षविक्षेप विशतीय निमज्जति ॥२५॥
 हसीऽथ निजवाधाय चञ्चरादुल्लसत्तिसम् । पाथमुदभ्या ददात्यस्मै शशाङ्ककरकौमलम् ॥२६॥
 कृतयत्ना प्लवन्तऽमी राजहंसा सरोजले । सरोजिनीरज कीञ्च भूतपक्षा शनैः शनैः ॥२७॥
 चक्रवाकी सरस्तारे सरङ्गैः स्थगिताममूर्ध् । अपश्यन् कर्णं रौति चक्राह साधुलोचन ॥२८॥
 अभ्यसि वरटाशङ्की भातराष्ट्र कृतस्वनम् । सरस्तरङ्गमुप्राङ्गो कौककान्तामनिच्छतीम् ॥२९॥
 अनुगङ्गातट भाति साप्तरपणमिदं वनम् । सुमनीरेषुभिर्ध्वोनि वितानधियमादधत् ॥३०॥
 मन्दकिनीतरङ्गा यपवनोऽथधर्म हनन् । शनैः स्पृशति नोऽङ्गानि शैथिल्यनविधूनन ॥३१॥
 अतिप्यमिव नस्तन्वन् हतगङ्गाम्बुसीकर । अभ्यसि पवमानोऽथ वनवीथीर्दिधूनयन् ॥३२॥
 अगोप्यमिदं दध दधैःपुषित वनम् । लतालयैर्विभारयन्त कुसुमप्रस्तराञ्चितैः ॥३३॥

करनेके लिए उत्कण्ठित हो रहे हैं ऐसे ये भ्रमर कामदेवके बाणोंकी मूठके समान आभावाल अपने पंखोंसे कमलिनियोंके समूहमें अहाँ तहाँ विचरण कर रहे हैं, घूम रहे हैं ॥ २२ ॥ जिनके अंगापाग कमलकी केशरस रूपा होनेके कारण सुवर्णके समान पीले-पीले हो गये हैं ऐसे ये भ्रमर कामरूपी अग्निके स्फुलिङ्गोंके समान जान पड़ते हैं ॥ २३ ॥ जगह-जगह पृथिवीपर फूल हुए स्थल-कमलिनियोंके पेड़ ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सबकी जीतनेकी इच्छा करने वाली शरद्वस्तुरूपी लक्ष्मीके खड़े हुए कपड़ेके तम्बू ही हों ॥ २४ ॥ जो कमलोंकी परागसे व्याप्त हो रहा है ऐसे सरोवरमें कमलकी स्थलकमल सभसती हुई यह हंसी पंखोंके विक्षेपको रोककर अर्थात् पंख हिलाये बिना ही प्रवेश करती है और पानीमें डूब जाती है ॥ २५ ॥ यह इस चन्द्रमाकी किरणोंके समान कौमल और देवोप्यमान मृणालकी अपनी चौंचसे उठाकर और क्षीरसहित मक्खनके समान कोई पदाथ समझकर अपने बच्चेके लिए दे रहा है ॥ २६ ॥ कमलिनीके परागसे भरे हुए तालाबके जलमें ये हंस धीरे धीरे पंख हिलाते हुए बड़े प्रयत्नसे तर रहे हैं ॥ २७ ॥ तालाबके तीरपर तरगोसे तिरोहित हुई चकवीको नहीं देखता हुआ यह हम आँखोंमें आँसू भरकर बड़ी कर्णको साथ रो रहा है ॥ २८ ॥ सम्भोगकी इच्छा करनेवाला यह शब्द करता हुआ हंस तालाबकी तरगोसे जिसका शरीर सफेद हो गया है ऐसी चकवी के सम्मुख जा रहा है जब कि वह चकवी इस हंसकी इच्छा नहीं कर रही है ॥ २९ ॥ गंगा तदी व किनारे किनारे यह सप्तपण जातिक वृक्षोका वन ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो अपने फूलोंकी परागस आकाशमें चँदीवासी शामा ही धारण कर रहा हो ॥ ३० ॥ मागकी थकावट को दूर करता हुआ आर किनारेके वनोंको हिलाता हुआ यह गंगाकी लहरोसे उठा हुआ पवन हम लोगोंके शरीरका धीरे धीरे स्पृश कर रहा है ॥ ३१ ॥ वनका पक्षियोंको हिलाता हुआ यह वायु ग्रहण की हुई गंगाके जलकी वृद्धोस ऐसा जान पड़ता है मानो हम लोगोंका अतिथि-सत्कार करता हुआ ही आ रहा हो ॥ ३२ ॥ हे देव, जो गायोके संचारसे रहित है अर्थात् अत्यन्त दुःख

१ आस्था ४ । २ कन्दवन् पिङ्गल । ३ विस्फुलिङ्गा । ४ पटकुटय । ५ दृष्य वस्त्र च तद्गुह । ६ मगान्नवनीतवदभ्या । ७ कृतयत्न ल० द० ह० अ० प म० । ८ स्तनिताम् आस्थां ताम । ९ आलोचयन् । १० हंसकान्ति गङ्गावान् । वरटा हंसकाता स्पात् वरटा वरलापि य इति वज्रदन्ता । १० मितनरचञ्चुवर्णवान् हम् । राजहंसास्तु ते चञ्चुवर्ण लालिती सिता । अर्लनैवन्तरागाम्भातराष्ट्रा सिततरे इयमिधानान् । ११ कृतस्वन द० व ल० । कृतस्वनम् अ० । १२ अभ्यसम् । १३ तन्वन । १४ अतिप्यम् । १५ सावर ल० प० ह० । १६ अभिमुखपाग पठन । १७ प्रमाणरश्मिम् । अवन्दुमशय वा । १८ विभारयन् द० ल० द० । १९ शयन ।

मन्दारवनर्वायीना सान्द्रच्छायाः समाश्रिताः । चन्द्रकान्तशिलास्वेने ररम्यन्ते नमःपद ॥३४॥
 अहो तटवनस्यास्य रामणीयकमद्भुतम् । अवधृतनिजावामा रिरसन्तेऽत्र यत्सुराः ॥३५॥
 मनोभवनविगस्य लक्ष्मीगत्र वितन्वते । सुरदम्पतिभिः स्वेरमारुधरनिविभ्रमैः ॥३६॥
 इय निधुवनासक्ताः सुरस्त्रीरतिकोमलाः । ह्यमतीव तरङ्गोत्थैः श्रीकरैरमरापगा ॥३७॥
 इत किन्नरसगीतमितः मिद्धोपवर्णितम् । इतो विद्याधरीनृत्यमि तस्तद्गतिविभ्रमः ॥३८॥
 नृत्तमप्सरसा पश्यन् शृण्वस्तद्गीतनि रचनम् । वाजिवज्रोऽयमुद्ग्राव मममास्ते रवकान्तया ॥३९॥
 निष्पयाय वनेऽमुग्मिनृतुवर्गो विवर्धते । परस्परमिव द्रष्टुमुत्सुक्यायितमानसः ॥४०॥
 अगोक्तस्वरत्राय तनुते पुष्पमञ्जरीम् । लाक्षारक्तेन रगस्त्रीणा चरणेरमिताडित ॥४१॥
 पुंस्कोकिलकलालापमुखरीकृतदिङ्मुखः । चूतोऽय मञ्जरीधत्ते मदनस्येव तीरिकाः ॥४२॥
 चम्पका विक्रमन्तोऽत्र कुसुमतां वितन्वति । प्रदीपानिव पुष्पाधान् दधतीमे मनोभुवः ॥४३॥
 सहकारेण्वमी मत्ता विरुवन्ति मधुवतः । विजिगीषोरनङ्गस्य काहला इव पुरिताः ॥४४॥
 कोकिलानकनिःस्वानैरलिज्यारवजृम्भितैः । अभिषेणयतीवात्र मनोभूर्भुवनत्रयम् ॥४५॥

है और जो देवोंके द्वारा अधिष्ठित है अर्थात् जहाँ देव लोग आकर क्रीडा करते हैं ऐसा यह वन फूलोंके विछौनोंसे सुगोभित इन लतागृहोंसे अतिशय सुशोभित हो रहा है ॥ ३३ ॥ इधर मन्दार वृक्षोंकी वन-पक्षियोंकी घनी छायामें बैठे हुए ये देव लोग चन्द्रकान्त मणियोंकी शिलापर बार-बार क्रीडा कर रहे हैं ॥३४॥ अहा, इस किनारेके वनकी सुन्दरता कैसी आश्चर्यजनक है कि देव लोग भी अपने-अपने निवासस्थान छोड़कर यहाँ क्रीडा करते हैं ॥ ३५ ॥ जिन्होंने अपनी इच्छानुसार रति-क्रीडा प्रारम्भ की है ऐसे देव-देवागनाओंके द्वारा यहाँ काम-देवके घरकी शोभा बढ़ायी जा रही है । भावार्थ — देव-देवागनाओंकी स्वच्छन्द रतिक्रीडाको देखकर मालूम होता है कि मानो यह कामदेवके रहनेका घर ही हो ॥ ३६ ॥ यह गंगा अपनी तरंगोंसे उठी हुई जलकी बूँदोंसे ऐसी जान पड़ती है मानो सम्भोग करनेमें असमर्थ होकर दीनता-भरे अस्पष्ट शब्द करनेवाली देवागनाओंकी हँसी ही कर रही हो ॥३७॥ इधर किन्नरोंका सगीत हो रहा है, इधर सिद्ध लोग वीणा बजा रहे हैं, इधर विद्याधरियाँ नृत्य कर रही हैं और इधर कुछ विद्याधरियाँ विलासपूर्वक टहल रही हैं ॥३८॥ इधर यह किन्नर अपनी कान्ता-के साथ-साथ अप्सराओंका नृत्य देखता हुआ, और उनके सगीत शब्दोंको सुनता हुआ सुखसे गला ऊँचा कर बैठा है ॥ ३९ ॥ परस्परमें एक-दूसरेको देखनेके लिए जिसका मन उत्कण्ठित हो रहा है ऐसा ऋतुओंका समूह इस वनमें एक साथ इकट्ठा होता हुआ बढ़ रहा है ॥ ४० ॥ लाखोंसे रगे हुए विद्याधरियोंके चरणोंसे ताडित हुआ यह अशोक वृक्ष इस वनमें पुष्प-मजरियोंको धारण कर रहा है ॥ ४१ ॥ कोकिलोंके आलापसे जिसने समस्त दिशाओंको वाचालित कर दिया है ऐसा यह आम्रवृक्ष कामदेवकी आँखोंकी पुतलियोंके समान पुष्प-मजरियोंको धारण कर रहा है ॥४२॥ वसन्तऋतुके फैलनेपर इस वनमें जो चम्पक जातिके वृक्ष विकसित हो रहे हैं और फूलोंके समूह धारण कर रहे हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कामदेवके दीपक ही धारण कर रहे हो ॥ ४३ ॥ इधर ये मदोन्मत्त भ्रमर आम्र वृक्षोंपर ऐसा शब्द कर रहे हैं मानो सबको जीतनेकी इच्छा करनेवाले कामदेवरूपी राजाके बाजे ही बज रहे हो ॥४४॥ कोयलो-

१ अवज्ञात । २ रन्तुमिच्छन्ति । ३ यस्मात् कारणात् । ४ शक्ता ल०, इ० । ५ रतिकाहला ल०, द०, इ० । ६ नृत्यम् अ०, इ० । ७ युगपत् । निष्पयायो प०, ल०, द०, अ०, स० । ८ पुंस्कोकिलानामालाप ल० । ९ वाणा । तारका. ल० । १० विक्रमन्त्यत्र ल०, द०, इ०, अ०, प०, म० । ११ वसन्तकाले । १२ विस्तृते सति । अविवक्षितकर्मकोऽकर्मक इत्यकर्मकत्वमत्र । १३ दधतीऽमी ल०, द०, इ०, अ०, प०, म० । १४ ध्वनन्ति । १५ मेनया अभियाति । णिज्वहुल कृजादिपु णिज् ।

निचुल^१ सहकारण विकसद्यत्र माधवाम् । तनाति लक्ष्मामक्षूणामहो प्रावृट्श्रिया समम् ॥४६॥
 माधवास्तत्रकेष्वथ माधवोऽथ विजृम्भते । घनलक्ष्माप्रहासस्य लीलां त उ-सु विश्वत ॥४७॥
 वासन्त्यो विक्रयन्त्यता वम-तनुस्मितश्रियम् । तस्याना कुसुमामोदैराकुलीकृतपटपदा ॥४८॥
 महिलकाविततामादैर्विलोलाकृतपटपदा^२ । पादपु पद घटे शुचि^३ पुष्पशुचिरिमत् ॥४९॥
 कदम्बामादसुरभि^४ केतकाधूलिधूसर^५ । सापात्ययानिलो^६ दव नित्यमत्र विजृम्भत ॥५०॥
 माधन्ति कोकिला शश्वन् सममत्र शिखण्डिमि । कलहसाकलरधानै समूहित^७ विकृजिता ॥५१॥
 कृजन्ति काकिला मत्ता केकायन्त^८ कलापिन । उमयस्यास्य वगस्य हसा^९ प्रत्यालपन्त्यमी ॥५२॥
 इतोऽमा किन्नराणात्मनुकृजन्ति^{१०} धटपदा । सिद्धोपवीणिता यपु निहनुतऽन्यनृतरवनः ॥५३॥
 नितनपुरक्षकारमितो हसविकृजितम् । इतश्च खचरीनृत्यमनुनृत्यच्छिराबलम्^{११} ॥५४॥
 इतश्च सकृतोत्सङ्गे सुप्तान् हसान् सशावभान् । प्रात प्रबोधयत्युद्यन्^{१२} खचरीनूपुरारत्र ॥५५॥
 इतश्च रचितानलपुष्पतल्पमनोहरा^{१३} । चन्द्रकान्तशिलागर्भा सुरैर्मोग्या लतालया ॥५६॥

के मधुरशब्दरूपी नगाडो और भ्रमरोंकी गुजार रूप प्रत्यचाकी टकारध्वनिसे यहाँ ऐसा मालूम होता है मानो कामदेव तीनों लोकोको जीतनेके लिए सेनासहित चढ़ाई ही कर रहा हो ॥ ४५ ॥ अहा, कैसा आश्चर्य है कि आम्रवृक्षके साथ साथ फूलता हुआ यह निचुल जातिका वृक्ष इस वनमें वर्षाऋतुकी शोभाके साथ-साथ वसन्तऋतुकी भारी शोभा बढ़ा रहा है ॥४६॥ इधर इस वनमें चारों ओरसे वन-लक्ष्मीके उत्कृष्ट हास्यकी शोभा बढ़ानेवाले माधवीलता के गुच्छोपर आज वसन्त बड़ी वृद्धिको प्राप्त हो रहा है ॥ ४७ ॥ जो अपने विकाससे वसन्त ऋतुक हास्यकी शोभा बढ़ा रही है और जो फूलोंकी सुगन्धिसे भ्रमरोंको व्याकुल कर रही है ऐसा ये वसन्तमें विकसित होनेवाली माधवीलताए विकसित हो रही है - फूल रही है ॥४८॥ जिसने मालतीकी फली हुई सुगन्धिसे भ्रमरोंको चंचल कर दिया है और फूल ही जिसका पवित्र हास्य है ऐसा यह ग्रीष्मऋतु वृक्षोपर पर रख रहा है—अपना स्थान जमा रहा है ॥४९॥ हे देव वदम्ब पुष्पोकी सुगन्धिसे सुगन्धित तथा केतकीकी धूलिसे धूसर हुआ यह वर्षाऋतु का धायु इस वनमें सदा बहता रहता है ॥५०॥ इस वनमें मयूरोके साथ-साथ कोयल सदा उमत्त रहते हैं और कल हसियो (वदको) के मनोहर शब्दोंके साथ अपना शब्द मिलाकर बोलते हैं ॥५१॥ इधर उमत्त कोकिलाएँ कुहू कुहू कर रही हैं मयूर केका घाणी कर रहे हैं और ये हम इन दोनोंके शब्दोंकी प्रतिध्वनि कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ इधर ये भ्रमर किन्नरियोंके द्वारा गाये हुए गीताका अनुकरण कर रहे हैं और इधर यह कोयल सिद्धोंके द्वारा बजायी हुई वीणाके गानावा छिपा रहा है ॥ ५३ ॥ इधर नूपुरोंकी झकाङ्को जीतता हुआ हसोका शब्द हा रहा है आर इधर जिसका अनुकरण कर मयूर नाच रहे हैं ऐसा विद्याधरियोंका नृत्य हो रहा है ॥ ५४ ॥ इधर बालूके टीलाकी गीष्म अपने वच्चोंसहित सोय हुए हसोंको प्रात कालके समय यह विद्याधरियां नूपुरोंका ऊँचा शब्द जगा रहा है ॥ ५५ ॥ इधर जो बहुत-स फूलोंसे बनायी हुई गम्याओमें मनोहर जान पड़ते हैं जिनके मध्यमें चन्द्रकांत मणिकी शिलाए पड़ी हैं ॥ ५६ ॥ निचुल विजृम्भते इत्यभिधानात् । २ वसन्त भवाम । अलिमत्त पुष्पक एतद् वाग्वी मानवी लता इत्यभिधानात् । एतानि पुष्पेषु वसन्तकाले बाहुल्येन जायमानस्य नामानि । ३ वाम तग-उदय । म्या गच्छन्तु रतवक इत्यभिधानात् । ४ प्रपम् । ५ पुष्पाण्यथ शुचिरिमत् । ६ कदम्ब । ७ केतकायन्त । ८ केकायन्तु धूसर इत्यभिधानात् । ९ वर्षाकालवायु । १० मिश्रित । ११ ५५१ कुपम् । १२ प्रयत्नरं कुपम् । १३ अललाप कुपम् । १४ अनुगतं नृत्यम् । १५ ५५५ प० ।

इतीदं वनमत्यन्तरमणीयैः परिच्छदैः । स्वर्गोद्यानगतां प्रीतिं जनयेन् स्वमदा^१ मदा ॥५७॥
 वहिस्तटवनादेतद् दृश्यते काननं महत् । नानाद्रुमलतागुल्मनीरुद्रमिरतिदुर्गमम्^२ ॥५८॥
 दृष्टीनामग्नयग्न्येऽस्मिन् वने मृगकदम्बकम् । नानाजानीयमुद्भ्रान्तं मन्यश्रोमानं प्रधावति ॥५९॥
 इदमस्मद्वलक्षोभादुत्प्लुतमृगसकुलम् । वनमाकुलितप्राणमिवाभान्यन्धकारितम् ॥६०॥
 गजयूथमितं कच्छादन्धकारमिवाभित । त्रिशिलष्टं बलसश्रोभादपमर्पन्यनिद्रुतम् ॥६१॥
 शनैः प्रयाति मजिघ्रन् दिग्गं प्रोन्मिश्रपुष्करं । ममदाहिरिवाद्भीन्दो मद्रोऽयं गजयूथपः ॥६२॥
 महाहिरयमायाम् मिमानं इव भूरुहाम् । उग्रमन्त्रायच्छते^३ कच्छाद्वर्जकृतशरीरक ॥६३॥
 'गयुपोता निकुञ्जे' पुञ्जीभूता वनन्त्यमी ।^४ वनस्पेवान्त्रमतानाञ्चमृक्षोभाद्भिनिमृता ॥६४॥
 अयमेकचर^५ पोत्रसमुत्पातान्तिकस्थलः^६ । रणद्धिं वर्त्म मन्यस्य वराहमतीवरोपण ॥६५॥
 सैनिकैर्यमारुह^७ पापाणलकुटादिभिः । व्याकुलीकुरुने^८ सैन्यं गण्डो^९ गण्ड^{१०} इव स्फुटम् ॥६६॥
 प्राणा इव वनादस्माद् विनिष्क्रामन्ति मन्तताः । मिहा बहुदवज्वाला^{११} धुन्वाना केमरच्छटा ॥६७॥

हुई हैं और जो देवोके उपभोग करने योग्य हैं ऐसे लतागृह वने हुए हैं ॥५६॥ इस प्रकार यह वन अत्यन्त रमणीय सामग्रीसे देवोके सदा नन्दन वनकी प्रीतिको उत्पन्न करता रहता है ॥ ५७ ॥

इधर किनारेके वनके बाहर भी एक बड़ा भारी वन दिखाई दे रहा है जो कि अनेक प्रकारके वृक्षो, लताओ, छोटे-छोटे पौधो और झाड़ियोसे अत्यन्त दुर्गम है ॥ ५८ ॥ जिसमे दृष्टि भी नहीं जा सकती ऐसे इस वनमे सेनाके क्षोभसे घबड़ाया हुआ यह अनेक जातिके मृगो-का समूह बड़े जोरसे दौड़ा जा रहा है ॥५९॥ जो हमारी सेनाके क्षोभसे भयभीत हुए हरिणो-से व्याप्त है तथा जिसमे जीवोके प्राण आकुल हो रहे हैं ऐसा यह वन अन्धकारसे व्याप्त हुए-के समान जान पड़ता है ॥ ६० ॥ इधर सेनाके क्षोभसे अलग-अलग हुआ यह हाथियोका झुण्ड गगा किनारेके जलवाले प्रदेशसे अन्धकारके समान चारो ओर बड़े वेगसे भागा जा रहा है ॥ ६१ ॥ हाथियोके झुण्डकी रक्षा करनेवाला यह भद्र गजराज सूँडको ऊँचा उठाता हुआ तथा दिशाओको सूँघता हुआ धीरे-धीरे ऐसा जा रहा है मानो शोपनागसहित सुमेरु पर्वत ही जा रहा हो ॥ ६२ ॥ जिसने अपने शरीरके ऊर्ध्वभागको ऊँचा उठा रखा है ऐसा यह बड़ा भारी सर्प जलवाले प्रदेशसे साँस लेता हुआ इस प्रकार आ रहा है मानो वृक्षोकी लम्बाईको नापता हुआ ही आ रहा हो ॥६३॥ इधर इस लतागृहमे इकट्ठे हुए ये अजगरके बच्चे इस प्रकार ब्वास ले रहे हैं मानो सेनाके क्षोभसे वनकी अँतडियोके समूह ही निकल आये हो ॥६४॥ जो अकेला ही फिरा करता है, जिसने अपनी नाकसे समीपके स्थल खोद डाले है, और जो अत्यन्त क्रोधी है ऐसा यह शूकर सेनाका मार्ग रोक रहा है ॥६५॥ सेनाके लोगोने जिसे पत्थर लकड़ी आदिसे रोक रखा है ऐसा यह गण्ड अर्थात् छोटे पर्वतके समान दिखनेवाला गैडा हाथी स्पष्ट रूपसे सेनाको व्याकुल कर रहा है ॥६६॥ जो दावानलकी ज्वालाके समान पीले और विस्तृत गरदनपर-के वालोके समूहोको हिला रहे हैं ऐसे ये सिंह इस वनसे इस प्रकार

१ नाकिनाम् । २ प्रतानिनीलताभिः । 'लता प्रतानिनी वीरुत् गुत्तिमन्युपलमित्यपि' इत्यभिधानात् ।
 ३ बहुजलप्रदेशात् । 'जलप्रायमनूप स्यात् पुंसि कच्छस्तथाविधः ।' इत्यभिधानात् । ४ विभक्तम् ।
 ५ आघ्राणयन् । ६ प्रमितिं कुर्वन्निव । ७ दीर्घाभवति । यमुध्न स्वेऽङ्गे चाजा " इत्यात्मनेपदी । -त्तागच्छते ल०, इ० । ८ अजगरगिशवः । ९ निकुञ्जेऽस्मिन् ल०, द०, इ० । १० पुरीतत् । ११ एकाकी ।
 १२ मुवाग्रः । 'मुवाग्रे क्रोडहलयो पोत्रम्' इत्यभिधानात् । 'पोत्रणोहलक्रोडमुखे ऋद्' इति सूत्रेण मिद्धि ।
 १३ वेष्टिनः । १४ आकुली-ल० । १५ खड्गीमृगः । १६ गण्डशैल इव । १७ दवज्वालामदृशा ।

गुगुलुना^१ वनादेश महिषो धनकद्वर । निर्याति मृत्युदण्डमविपाणाप्राप्तिमीषण ॥६८॥
 ललालधयो लोलजिह्वा व्यालोहितक्षणा । व्यालो^२ वलस्य सक्षोभममी तवन्थनाकुला ॥६९॥
 शरम^३ स समुपस्य पतञ्जलापितोऽपि सन् । नैव दुःखासिक्तो वेद^४ चरणै पृष्टवर्तिभिः ॥७०॥
 चमरोऽयं^५ चमरोधाद् विद्रुतो^६ हुतमुत्पन्नः । क्षोभ तनोति सैन्यस्य दर्पो रूपीय^७ दुधर ॥७१॥
 शशा शशजय देव सैनिकैरनुद्रुत^८ । शरणायव भीतामा^९ मध्येसैन्य निलीयते ॥७२॥
 सारङ्गाऽयं तनुः^{१०} ज्ञायाकृमापितवन^{११} शनैः । प्रयाति शृङ्गमारेण शाखिभवं प्रशुष्यता ॥७३॥
 दक्षिणेततया^{१२} दिव्यगमिधावन्तपीक्षिता^{१३} । प्रजानुपालन न्याय्य तवाचष्टे मृगप्रजा^{१४} ॥७४॥
 कलापा बहमारण मन्द मन्द गजस्थसौ । कशपाशश्च तच्च वनलक्ष्म्यास्तनूरहै ॥७५॥
 नेत्रावलाभिघातवन् धनभूम्या सचन्द्रकै^{१५} । कलापिनामय सधो विमात्यस्मिन् वनस्थले ॥७६॥
 सक्राइता^{१६} रथाङ्गानां स्वनमाकर्णयन् सुहृ । हरिणानामिदं मूढ नापसपति वत्मन^{१७} ॥७७॥

निकल रहे ह मानो उसके प्राण ही निकल रहे हो ॥६७॥ जो मेघके समान कद्वर वण है, जिसके सींगका अग्रभाग यमराजकी दाढके समान है तथा जो अत्यन्त भयंकर ह ऐसा यह भसा इस गुगुलुके वनसे बाहर निकल रहा है ॥६८॥ जिनकी पूँछ हिल रही है जिह्वा चचल हो रही है और नेत्र अत्यन्त लाल हो रहेह ऐसे ये सिंह आदि क्रूर जीव स्वयं व्याकुल न होकर ही सेना का क्षोभ बढ़ा रहे ह ॥६९॥ यह अष्टापद आकाशमें उछलकर यद्यपि पीठके बल गिरता है तथापि पीठपर रहनेवाले पैरोसे यह दुःखका अनुभव नहीं करता । भावाय-अष्टापद नामका एक जगली जानवर होता है उसके पीठपर भी चार पाव होते ह । जब कभी वह आकाशमें छलांग मारनेक बाद चित्त अर्थात् पीठके बल गिरता है तो उसे कुछ भी कष्ट नहीं होता क्योंकि वह अपने पीठपरके पैरोसे संभलकर खड़ा हो जाता है ॥७०॥ जो मूर्तिमान् अहंकारके समान है, दुर्जेय है और सेनासे घिर जानेके कारण जल्दी-जल्दी छलांग मारता हुआ इधर उधर दौड़ रहा है ऐसा यह मृग सेनाका क्षोभ बढ़ा रहा है ॥७१॥ हे देव यह खरगोश दौड़ रहा है, यद्यपि सैनिकाने इसका पीछा नहीं किया है तथापि यह भीरु होनेसे इधर-उधर दौड़कर शरण ढूँढनेके लिए आपकी सेनाके बीचमें ही कहीं छिप जाता है ॥७२॥ जिसने अपने शरीरकी वातिये वनको भी काला कर दिया है ऐसा यह कृष्णसार जातिका मृग सूखे हुए वृक्षके समान अनेक शाखाआवाले सींगोंके भारसे धीरे धीरे जा रहा है ॥७३॥ देखिए दाहिनी ओर घाव लगनेमे जा चारा ओर चक्कर लगा रहा है ऐसा यह हरिणोका समूह मानो आपसे यही कह रहा है कि आपको सब जीवोंका पालन करना योग्य है ॥७४॥ जो अपनी पूँछके द्वारा वनलक्ष्मीके केशपाशकी शोभाको बढ़ा रहा है ऐसा यह मयूर पूँछके भारसे धीरे धीरे जा रहा है ॥७५॥ इधर इस वनस्थलमें यह मयूरोंका समूह ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो अपनी पूँछपरके चन्द्रकामे वनकी पृथिवीरूपी स्त्रीक नेत्रोक समूहकी शोभा ही बढ़ा रहा हो ॥७६॥ इधर दगिया चलत हुए रणवे पहियके शरको बार-बार सुनता हुआ यह हरिणोका समूह माग

१ कौणिकानाम् । २ गुग्गुलुनाम् । ३ कलीवे कौणिको गुग्गुलु पुर इत्यभिधानात् । ४ चरत् । ५ दुष्टमृगा । ६ निभान्ता । ७ अष्टापद । ८ कद्वयमृगचरणो भूत्वा । ९ जानाति । १० अश्व । ११ सेनानिरोधात् । १२ वाचमान । १३ रूपीय च ल० । १४ सप्तप्लतगती उल्लस्य गच्छन् । १५ अनुगत । १६ सैन्यमध्य । १७ दिव्यगमिधावन् प्रयोगनाम । १८ प्रजानुपालनं न्याय्य तवाचष्टे मृगप्रजम् ॥ ल० । १९ नृपतिरवलोकितता । २० मृगमन्द्र । २१ चारारं कुचताम् । २२ क्रीडाभूत इति अङ्गप्रार्थे सप्तविधानाम् वृत्रार्थे परस्मैपत्नी । २३ वत्मन ल० । २४ दूरम् अ० ।

हरिणीप्रेक्षितेऽप्येता पश्यन्ति सकुन्तलम् । स्वां नेत्रशोभां कामिन्यो बहिर्वहेषु मध्वजान् ॥७८॥
 इत्यनाकुलमेवेद मन्यैरयाकुलीकृतम् । वनमालक्ष्यते विश्वगमयाधमृगद्विजम् ॥७९॥
 जैर्योऽप्यातपो नायमिहास्मान् देव वाधते । वने महातरुच्छाया नैरन्तर्यानुवन्धिनि ॥८०॥
 इमे वनद्रुमा भान्ति सान्द्रच्छाया मनोरमा । त्वद्भक्त्यै वनलक्ष्येव मण्डपा विनिवेशिता ॥८१॥
 गरस्य स्वच्छमलिला वारितोऽप्यास्तटद्रुमै । स्थापिता वनलक्ष्येव प्रपा भान्ति क्लमच्छिद्र ॥८२॥
 बहुत्राणामनाकीर्णमिदं खड्गिभिराततम् । सर्हास्तिकमपश्यन्त वनं युग्मद्वलायतं ॥८३॥
 इत्थ वनस्य मामृद्ध्य निरूपयति सारथी । वनभूमिमतीयाय मम्राड्विदितान्तराम् ॥८४॥
 तदाञ्चीयखुरोद्घातादुन्थिता वनरंणव । दिशा मुखेषु सलग्नास्तेनुयं वनिकाश्रियम् ॥८५॥
 सादिना^१ वारवाणानि^२ स्पृतान्यपि^३ मितशुकैः । कापाथार्णवा^४ जातानि ततानि वनरंणुभिः ॥८६॥
 वनरंणुभिरालग्नैर्जटीभूतानि योपित । स्तनाशुकानि वृच्छेण दधुरवश्रमालया ॥८७॥
 कुम्भस्थलीषु संयक्ता करिणामश्वरंणव । सिन्दरश्रियमातेनुर्धानुभूमिसमुत्थिता^५ ॥८८॥

से एक ओर नहीं हट रहा है ॥७९॥ ये स्त्रियाँ हरिणियोंके नेत्रोंमें अपने नेत्रोंकी गोभा वडे कौतूहलके साथ देख रही हैं और हरिणोंकी पूँछोंमें अपने केशोंकी गोभा निहार रही हैं ॥७८॥ जिसमें हरिण पक्षी आदि सभी जीव एक-दूसरेको वाधा किये बिना ही निवास कर रहे हैं ऐसा यह वन यद्यपि सैनिकोंके द्वारा व्याकुल किया गया है तथापि आकुलतासे रहित ही प्रतीत हो रहा है ॥७९॥ हे देव, जो वडे-वडे वृक्षोंकी घनी छायासे सदा सहित रहता है ऐसे इस वनमें रहनेवाले हम लोगोंको यह तोत्र घाम कुछ भी वाधा नहीं कर रहा है ॥८०॥ ये घनी छायावाले वनके मनोहर वृक्ष ऐसे जान पड़ते हैं मानो आपकी भक्तिके लिए वनलक्ष्मीके द्वारा लगाये हुए मण्डप ही हो ॥८१॥ किनारेपर-के वृक्षोंसे जिनकी सब गरमी दूर कर दी गयी है ऐसे स्वच्छ जलसे भरे हुए ये छोटे-छोटे तालाब ऐसे मालूम होते हैं मानो वन-लक्ष्मीने क्लेश दूर करनेवाली प्याऊ ही स्थापित की हो ॥८२॥ हे प्रभो, यह वन आपकी सेना-के समान जान पड़ता है क्योंकि जिस प्रकार आपकी सेना बहुत-से बाणासन अर्थात् धनुषोंसे व्याप्त है उसी प्रकार यह वन भी वाण और असन जातिके वृक्षोंसे व्याप्त है, जिस प्रकार आपकी सेना खड्गी अर्थात् तलवार धारण करनेवाले सैनिकोंसे भरी हुई है उसी प्रकार यह वन भी खड्गी अर्थात् गैडा हाथियोंसे भरा हुआ है, जिस प्रकार आपकी सेना हाथियोंके समूहसे सहित है उसी प्रकार यह वन भी हाथियोंके समूहसे सहित है और जिस प्रकार आपकी सेनाका अन्त नहीं दिखाई देता उसी प्रकार इस वनका भी अन्त नहीं दिखाई देता ॥८३॥ इस प्रकार सारथिके वनकी समृद्धिका वर्णन करते रहनेपर सम्राट् भरत उस वनभूमिको इस तरह पार कर गये कि उन्हें उसकी लम्बाईका पता भी नहीं चला ॥८४॥ उस समय घोड़ोंके समूहके खुरों-के आघातसे उठी हुई वनकी धूलि समस्त दिशाओंमें व्याप्त होकर परदेकी शोभा धारण कर रही थी ॥८५॥ घुडसवारोंके कवच, यद्यपि ऊपरसे सफेद वस्त्रोंसे ढँके हुए थे तथापि वनकी धूलिसे व्याप्त होनेके कारण ऐसे मालूम पड़ते थे मानो कपाय रंगसे रंगे हुए ही हो ॥८६॥ मार्गके परिश्रमसे अलसाती हुई स्त्रियाँ वनकी धूलि लगनेसे भारी हुए स्तन ढँकनेवाले वस्त्रों-को बड़ी कठिनाईसे धारण कर रही थी ॥८७॥ गेरू रंगकी भूमिसे उठी हुई मार्गकी धूलि

१ लोचनेषु । २ पक्षी । ३ प्रवृद्ध । ४ तव भजनाय । ५ पानीयशालिका । 'प्रपा पानीयशालिका' इत्यभिधानात् । ६ झिण्डि मर्जक, पक्षे चाप । ७ गण्डमूग, पक्षे आयुर्विक । ८ उभयत्रापि गजसमूहम् । ९ अज्ञातान्तरमवधिप्रमिन्ननयकर्मणि । १० अश्वारोहकाणाम् । 'अश्वारोहास्तु सादिन' इत्यभिधानात् । ११ कञ्चुका । 'कञ्चुको वारवाणोऽप्यो' इत्यभिधानात् । १२ यतानि । १३ कपायरञ्जितानि । १४ गैरिक ।

तो 'मभ्यन्दिनेऽभ्यर्च्ये' दिदाय तावत्सुमान् । विनिगीधुरिषारुद्रप्रताप शुद्धमण्डल ॥८९॥
 सरस्तारतरुच्छायामाश्रयन्ति स्म यत्रिण । शरदातपसतापात् सकृच्चपत्रैसपद ॥९०॥
 हमा कलसपण्डपु पुञ्जाभूतान् स्वशावकान् । पक्षैराच्छायासासुरसोडजरदातपान् ॥९१॥
 वन्द्यः सस्वरमा भवु सरसारवगाहितुम् । मदधुतिषु तप्तासु मुक्ता मधुकरम्रज ॥९२॥
 'गाम्नामै' कृतच्छाया प्रदान्तो राजयूथपा । शाखोद्धारमिवातन्वन् सरासो करपाङ्किता ॥९३॥
 यूथ धनवशाहाणानुपदुपरि पुञ्जितम् । तदा प्रविश्य 'वेशान्तमधिशिष्ये' सकदम् ॥९४॥
 मृणालैरङ्गमावेष्टय स्थिता हसा विरजित । प्रविष्टा शरणायव शशाङ्ककपञ्जरम् ॥९५॥
 चक्रवाकयुवा भज घन शबलमाततम् । सर्वाङ्गलम्पुणालुर्विनालमिव कङ्कुकम् ॥९६॥
 पुण्डराकालपश्रण कृतच्छायोऽब्जिनाधने । रानहसस्तदा भजे हसामि सह भज्जनम् ॥९७॥
 विममङ्गै कृताहारा मृणालैरवगुण्डिता । विलिनापत्रतल्पेपु शिखिर हसशावका ॥९८॥
 इति शारदिकं ताम तच्चान तापमातप । पुलिनेषु प्रवृत्तेषु न हसा धृतिमादधु ॥९९॥

हाथियाक गण्डस्थलोमे लगकर सिन्दूरकी शोभा धारण कर रही थी ॥८८॥ तदनन्तर मध्याह्निक
 का समय निकट आनेपर सूर्य अत्यन्त देदीप्यमान होने लगा । उस समय वह सूर्य किसी विजि
 गीपु राजाक समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार विजिगीपु राजा प्रताप (प्रभाव)
 धारण करता है उसी प्रकार सूर्य भी प्रताप (प्रकृष्ट गरमी) धारण कर रहा था और जिस
 प्रकार विजिगीपु राजाका मण्डल (स्वदेश) शुद्ध अर्थात् आन्तरिक उपद्रवोंसे रहित होता है
 उसी प्रकार सूर्यका मण्डल (बिम्ब) भी मेघ आदिका आवरण न होनेसे अत्यन्त शुद्ध (निर्मल)
 था ॥८९॥ गण्डरुतुक घामके सन्तापसे जिनके पक्षोंकी शोभा सकुचित हो गयी है ऐसे पक्षी
 सरोवराक किनारेक वृक्षोंकी छायाका आश्रय लेने लगे ॥ ९० ॥ जो मध्याह्निकी गरमी सहन
 करनेमें असमर्थ ह और इसीलिए जो कमलोक समूहमें आकर इकट्ठे हुए ह ऐसे अपने बच्चोंको
 हम पक्षी अपने पक्षास ढँकने लगे ॥ ९१ ॥ मदका प्रवाह गरम हो जानेसे जिन्हें भ्रमरोके समूह
 ने छोड़ दिया है ऐसे जंगली हाथी अबगाहन करनेक लिए सरोवरोंकी ओर जाने लगे ॥ ९२ ॥
 मूषकी किरणमें पीड़ित हुए हाथी वृक्षोंकी डालियाँ तोड़ तोड़कर अपने ऊपर छाया करते
 हुए जा रहे थे और उनमें ऐंम मालूम होते थे मानो शालाओंका उद्धार ही कर रहे हों ॥९३॥
 उस समय जंगली गुराणा समूह कीचड़सहित छोटे-छोटे शालाबोम प्रवेश कर परस्पर एक
 दूसरेक ऊपर चढ़ हा गवन कर रहे थे ॥ ९४ ॥ अपने गरीरको मृणालके तन्तुओंसे लपेट
 कर बैठ गए हम ऐंम सुशोभित हो रहे थे मानो अपनी रक्षा करनेक लिए चन्द्रमाकी किरणोंसे
 बने हुए पिण्डैव ही घम गय हा ॥ ९५ ॥ जो उष्णता सहन करनेमें असमर्थ है ऐसे किसी तरुण
 चमवाने अपन भव गरीरमें लगे हुए भाँटे मोटे तथा विस्तृत शवालको धारण कर रक्षा था
 और उसमें वह ऐसा मान्म होता था माना नील रंगका कुरता ही धारण कर रहा हो ॥९६॥
 जिन्होंने कमलिनिवास वनमें भक्षे कमलम्प छत्रसे छाया बना ली है ऐसा राजहंस उस मध्याह्निक
 क समय अपनी हँमिवाले नाथ जलम्प गात लगा रहा था ॥ ९७ ॥ जिन्होंने मणालके टुकड़ाका
 जालार बिदा है और मणाल तन्तुअमें ही जिनका गरीर नका हुआ है तेम हंसाक बच्चे कमलिनी
 क पत्ररूपा पर्यापण मो गढ़ थे ॥ ९८ ॥ तम प्रकार गण्डरुतुका घाम तीव्र सन्ताप फैला रहा

१ कल्याण २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००

मध्यस्थोऽपि तदा तीव्र तताप तरणिर्भुवम् । नून तीव्रप्रतापाना माध्यस्थमपि तापकम् ॥१००॥
 स्वेदविन्दुभिरावद्धजालकानि^१ नृपस्त्रिय^२ । चटनान्यदुरब्जिन्य^३ पद्मानीवागुर्गाकरं ॥१०१॥
 नृपवल्लभिकावक्त्रपद्मजेष्वपुपच्छ्रियम् । धर्मविन्दुद्गमो निर्यल्लावण्यरसप्रवरन ॥१०२॥
 गलदधर्माश्रुविन्दुनि सुगानि नृपयापिताम् ।^४ अवज्यायततानीव राज्ञीवानि विरेजिरं ॥१०३॥
 नृपाङ्गनामुखाब्जानि धर्मविन्दुभिरावभु । मुक्ताफलैर्द्वीभूतैरिवालकविभूषणैः ॥१०४॥
 रथवाहा^५ रथान्दुरायस्ताः^६ फनिलैर्मुखै^७ । तीव्र तपति तिग्माङ्गौ^८ समेऽपि^९ प्रस्वलत्खुरा^{१०} ॥१०५॥
 हस्ववृत्तखुरास्तुङ्गास्तनुस्निग्धतनूरुहा^{११} । पृथ्वासना^{१२} महावाहाः प्रययुर्वायुरंहम्^{१३} ॥१०६॥
 महाजवजुषो वक्त्रादुद्धमन्तः खुरानिव । महोरस्का स्फुरत्पौर्या^{१४} द्रुत जग्मुर्महाहया ॥१०७॥
 समुच्छ्रितपुरो भागा शुद्धावर्ता^{१५} मनोजवाः । अपर्याप्तेषु^{१६} मार्गेषु द्रुतमीयुस्तुरङ्गमा ॥१०८॥
 मेधासत्त्वजवोपेता विनीताञ्चटुलक्रमा । गल्हमाना^{१७} इव स्पन्दं^{१८} महीमञ्चा द्रुत ययु ॥१०९॥
 अश्वेभ्योऽपि रथेभ्योऽपि पत्तयो वेगित^{१९} ययु । सांपानत्कै^{२०} पदै^{२१} स्थाणुकण्टकोपललङ्घिन ॥११०॥

था और उससे तपे हुए नदियोंके किनारोपर हसोको सन्तोष नहीं हो रहा था ॥१९॥ उस समय सूर्य यद्यपि मध्यस्थ था—आकाशके बीचोबीच स्थित था, पक्षपातरहित था तथापि वह पृथिवीको बहुत ही सन्तुष्ट कर रहा था सो ठीक ही है क्योंकि तीव्र प्रतापी पदार्थोंका मध्यस्थ रहना भी सन्ताप करनेवाला होता है ॥१००॥ जिस प्रकार कमलिनियाँ (कमलकी लताएँ) जलकी बूँदोंसे सुशोभित कमलोंको धारण करती हैं उसी प्रकार महाराज भरतकी स्त्रियाँ पसीनेकी बूँदोंसे जिनपर मोतियोंका जाल-सा बन रहा है ऐसे अपने मुख धारण कर रही थी ॥१०१॥ रानियोंके मुख-कमलोपर जो पसीनेकी बूँदे उठी हुई थी वे निकलते हुए सौन्दर्य रूपी रसके प्रवाहके समान शोभाको पुष्ट कर रही थी ॥१०२॥ जिनसे पसीनेकी बूँदे टपक रही हैं ऐसे रानियोंके मुख ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो ओसकी बूँदोंसे व्याप्त हुए कमल ही हो ॥१०३॥ जिन पसीनेकी बूँदोंसे रानियोंके मुख-कमल सुशोभित हो रहे थे वे ऐसी जान पड़ती थी मानो केशपाशको अलकृत करनेवाले मोती ही पिघल-पिघलकर तरल रूप हो गये हो ॥१०४॥ उस समय सूर्य बड़ी तेजीके साथ तप रहा था इसलिए जो घोड़े रथोंको ले जा रहे थे उनके मुख परिश्रमसे खुल गये थे, उनमें फेन निकल आया था और उनके खुर समान जमीनपर भी स्खलित होने लगे थे ॥१०५॥ जिनके खुर छोटे और गोल हैं, जिनपर छोटे और चिकने रोम हैं, जो बहुत ऊँचे हैं, जिनका आसन अर्थात् पीठ बहुत बड़ी है, और जिनका वेग वायुके समान है ऐसे बड़े-बड़े उत्तम घोड़े भी जल्दी-जल्दी दौड़े जा रहे थे ॥१०६॥ जो तीव्र वेगसे सहित हैं, जो अपने आगेके खुरोंको मुखसे उगलते हुएके समान जान पड़ते हैं, जिनका वक्ष स्थल बड़ा है और जिनकी नाकके नथने कुछ-कुछ हिल रहे हैं ऐसे बड़े-बड़े घोड़े जल्दी-जल्दी जा रहे थे ॥१०७॥ जिनके आगेका भाग बहुत ऊँचा है, जिनके शरीरपर-के भँवर अत्यन्त शुद्ध हैं, और जिनका वेग मनके समान है ऐसे घोड़े उस छोटे-से मार्गमें बड़ी शीघ्रताके साथ जा रहे थे ॥१०८॥ जो बुद्धि-बल और वेगसे सहित हैं, विनयवान् हैं तथा सुन्दर गमनके धारक हैं ऐसे घोड़े पृथिवीको (रजस्वला अर्थात् धूलिसे युक्त—पक्षमें रजोधर्मसे युक्त—समझ) उसके स्पर्श करनेमें घृणा करते हुए ही मानो बड़े वेगसे जा रहे थे ॥१०९॥ पैदल चलनेवाले

१ जालसमूहानि । कोरकाणि वा । २ प्रालेय । 'अवज्यायस्तु नीहारस्तुपारस्तुहिन हिमम् । प्रालेय मिहिका च' इत्यभिवानात् । ३ रथाश्वा । ४ उत्तन्ता । — रायस्त्वै इत्यपि पाठ । ५ समानभूतलेऽपि । ६ पृथुपृष्ठभागा । ७ वायुवेगा । ८ घोगा । ९ देवमणिशुभ्रगुभावर्ता । १० अममूर्णेषु मत्तु । ११ कुतमाना । १२ वेगद्वयथा भवति तथा । १३ महादवाणै ।

ननोऽध्वगं धनवधमुपगच्छायात्रिद्विनि । सव्यन्दिनानपे^१मम्राट् सप्राप शिविगन्तकम् ॥१०२॥
छत्ररत्नकृतच्छाया दिव्य रथमधिष्ठित । न तदातपमवाया विदामाय^२ विशापति ॥१०३॥
वर्धयोमिरथामर्त्तं गरुधमु^३ रथमकथ । प्रथानमपि^४ नाध्वान शिवेद भरताधिप ॥१०४॥
नोदधान^५ कोऽध्यभृदङ्गे रथाङ्गपरिवर्त्तने^६ । रथवेगोऽपि नाम्याभृत क्लेशो^७ दिव्यानुभावन ॥१०५॥
रथवेगानिलोदन्त^८ व्यायत तद् वज्राशुक्रम् । पञ्चादागामिगैन्यानामिव मार्गममृत्प्रयत^९ ॥१०६॥
रथोद्वतगतिश्रोमादुदभृताङ्गपरिश्रमा । कथ कथमपि प्रापन रथिनोऽन्ये रथ प्रभोः ॥१०७॥
^{११} तमवगेषमवर्त्यन्तुरङ्गैरन्यवाहयन्^{१२} । मादिन प्रभुणा माधं शिविर प्रत्रिविश्रव^{१३} ॥१०८॥
द्वगदप्यकुटीभेदानुत्थितान प्रभुरक्षत । सेनानिवेगममिनः^{१४} सौश्रवाभापहागिनः ॥१०९॥
रौप्यदण्डेषु विन्यस्तान विन्तुतान पटमण्डपान् । माऽपश्यज्जनतातापहाणि मुजनानिव ॥११०॥
किमेतानि स्थलाञ्जानि ह्यमृथान्यमृनि वा । इत्यागङ्क्य स्थलाग्राणि^{१५} द्वगद्वशिरे जने ॥१११॥
मामन्तानां निवेगेषु कायमानानि^{१६} नैकधा^{१७} । निवेशितानि विन्यामनिन्द्या^{१८} प्रभुरग्रत ॥११२॥
परित कायमानानि वीक्ष्य कण्टकिनीवृन्ता । निःकण्टके निजे राज्ये मेने तानेव कण्टकान् ॥११३॥

चीतमे जिन्हें मार्गका परिश्रम भी मालूम नहीं हुआ है ऐसे सैनिक लोग सेनापतिके द्वारा पहले-
से ही तैयार किये हुए शिविर अर्थात् ठहरनेके स्थानपर जा पहुँचे ॥ १०१ ॥ तदनन्तर जब
मध्याह्नका सूर्य अन्त पुरकी म्त्रियोंके मुखकी कान्तिको मलिन कर रहा था तब सम्राट् भरत
शिविरके समीप पहुँचे ॥ १०२ ॥ जिनपर छत्ररत्नके द्वारा छाया की जा रही है और जो
देवनिर्मित मुन्दर रथपर बैठे हुए हैं ऐसे महाराज भरतको उम दोपहरके समय भी गरमीका
कुछ भी दुःख मालूम नहीं हुआ था ॥ १०३ ॥ जिन्होंने समीपमे चलनेवाले वृद्ध जनोके साथ-साथ
अनेक प्रकारकी कथाएँ प्रारम्भ की हैं ऐसे भरतेश्वरको वीते हुए मार्गका भी पता नहीं चला
था ॥ १०४ ॥ दिव्य सामर्थ्य होनेके कारण रथके पहियोंकी चालसे उनके गरीरमे कुछ भी
उदघात (दक्का) नहीं लगा था और न रथका तीव्र वेग होनेपर भी उनके गरीरमे कुछ क्लेश
हुआ था ॥ १०५ ॥ रथके वेगसे उत्पन्न हुए वायुमे ऊपरकी ओर फहराता हुआ उनकी ध्वजा-
का लम्बा वस्त्र ऐसा जान पड़ता था मानो पीछे आनेवाली सेनाके लिए मार्ग ही सूचित कर
रहा हो ॥ १०६ ॥ रथकी उद्वत गतिके क्षोभमे जिनके अंग-अंगमे पीडा उत्पन्न हो रही है ऐसे रथ-
पर सवार हुए अन्य राजा लोग बड़ी कठिनाईमे महाराज भरतके रथके समीप पहुँच सके थे
॥ १०७ ॥ जो घुडसवार लोग महाराज भरतके साथ ही शिविरमे प्रवेग करना चाहते थे उन्होंने
वचने हुए मार्गको अपने उन्ही चलते हुए श्रेष्ठ घोडोमे बड़ी शीघ्रताके साथ तय किया था
॥ १०८ ॥ जो राजभवनोकी शोभाकी ओर भी हँस रहे हैं ऐसे शिविरके चारो ओर खड़े किये
हुए रावटी तम्बू आदि डेराओको महाराज भरतने दूरसे ही देखा ॥ १०९ ॥ उन्होंने चाँदीके
खम्भोपर खड़े किये हुए बहुत बड़े-बड़े कपडेके उन मण्डपोको भी देखा था जो कि सज्जन पुस्तोके
समान लोगोका सन्ताप दूर कर रहे थे ॥ ११० ॥ क्या ये स्थलकमल हैं अथवा हसोके समूह
हैं इस प्रकार आगका कर लोग दूरसे ही उन तम्बूओके अग्रभागोको देख रहे थे ॥ १११ ॥
सामन्त लोगोकी ठहरनेकी जगहपर अनेक प्रकारकी रचना कर जो तम्बू वर्ग रह बनाये गये
थे उन्हें भी महाराज भरतने सामनेसे देखा था ॥ ११२ ॥ तम्बूओके चारो ओर जो कटीली

१ दिनाधिपे ट० । मम्राट्मर्त्ते । २ विविदे । ३ कुलवृद्धादिभि । ४ मुज ल० । ५ अतिदूर गतम् ।
६ पीडा । ७ रथचक्रभ्रमणे । ८ क्लम ट० । श्रम । ९ उद्वतम् । १० अदर्शयत् । ११ अव्वनि मावृभि ।
१२ अनिक्रम्य प्रापत् । १३ प्रवेष्टुमिच्छत् । १४ मेनारचनाया समन्तान् । १५ पटकुट्याग्राणि । 'दृष्य स्थूल
पटकुटीगुणलयनिश्रेणिका तुल्या' इति वैजयन्ती । १६ कुटीभेदा । १७ नानाप्रकारा । १८ ददर्श ।

शक्तिः सह बाधकः अतिरं धरति समम् । गतिविधाः तस्यास्य स्य स्य यथुदुत्तम् ॥११॥
 पुः प्रभावितः प्रत्यक्षवायाः प्रत्यक्षः । गतिविधाः तस्यास्य स्य स्य यथुदुत्तम् ॥१२॥
 प्रयातः धावतापतः भागः भाः रजसप्रलः । इत्युच्यते च यदुच्यते ॥१३॥
 ह्योऽपतपताऽग्यादिताः धावतः तस्मिन् । इति रथापः रथाः दूरः नश्यतः नश्यतः ॥१४॥
 अमुष्माज्जनसः वदन्तुः धावतः । इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥१५॥
 इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥ इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥१६॥
 इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥ इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥१७॥
 इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥ इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥१८॥
 इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥ इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥१९॥
 इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥ इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥२०॥
 इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥ इति ॥ इत्युच्यते च यदुच्यते ॥२१॥

५. सैनिक जूता पहने हुए परोसे डूठ, पाँटे तथा गत्थर आदिवा लापत हुए पाँडे और रयास भी जल्दी जा रहे थे ॥११०॥ शक्ति नामके हथियारको धारण करनेवाले लट्टु धारण करनेवाले के साथ, भाला धारण करनेवाले धनुष धारण करनेवाले के साथ और तलवार धारण करने वाले लोग परस्पर एक-दूसरेके साथ स्पर्धा करते हुए ही माना यदो शीघ्रता के साथ जा रहे थे ॥१११॥ आगे-आगे दाढ़नेसे जाँव बचक अग्रभाग कुछ-कुछ हिल रहे हैं उस यादवा लोग इतनी जल्दी जा रहे थे मानो पक्ष उत्पन्न होनेसे वे उड़े हो जा रहे हों ॥११२॥ बलों, दौड़ो हटो आगेवा भाग मत रोको इस प्रकार जोर जोरम बालनेवाले यादवा लोग अपने सामने के लोगोंको हटा रहे थे ॥११३॥ अर इन घोड़ा के समूहसे एक आर हटा, इन हाथियों के समूहसे भागो, और बिचल हुए इन रथोंसे भी दूर भाग जाओ ॥११४॥ अर, इन बच्चोंको लागोकी इस मोड़से उठाओ और इन हाथियों के आगेसे घाडाका भी शीघ्र हटाओ ॥११५॥ इधर यह कुछ हाथी रास्ता रोककर खड़ा हुआ है आर इधर यह रथ सारथीको गलतीसे माग के बीचसे ही उलट गया है ॥११६॥ इधर दावो जिसने अपना भार गटक दिया है, जिसके लम्बे होठ हैं और जो बहुत घबड़ा गया है ऐसा यह ऊँट मागम इस प्रकार उलटा दौड़ा जा रहा है मानो लोगोंकी विडम्बना ही करना चाहता हो ॥११७॥ इधर इस ऊँटो जमीनपर घबड़ाये हुए खच्चरपर-से गिरतो हुई अन्तःपुरकी स्त्रीको कोई कचुकी बोचम ही धारण कर रहा है परन्तु ऐसा करता हुआ वह स्वयं गिर रहा है ॥११८॥ यह तरुण पुरुष बेझाका मुख देखनेसे आश्चर्य चकित होता हुआ घोड़ेके धक्केसे गिर गया है परन्तु वह मुख में गिर गया है इस तरह अब भी अपने-आपको नहीं जान रहा है ॥११९॥ जिसने अपने बाल खिजाबसे काल घर लिये हैं, जिसकी आँखोंसे बाजल लगा हुआ है और जो किसी कुद्दिनीके पीछे-पीछे जा रहा है ऐसा यह बूढ़ा ठीक तरुण पुरुषको समान आचरण कर रहा है ॥१२०॥ इस प्रकार चलते समयकी बात

१ शक्ति २ शहर ३ दया ४ बाधित ५ २ यष्टिहति ६ ३ कौतिका ७ अतिहेतिका ८ प्रयादन ९ चतुःशुक्र १० पुरोणामि ११ भी विमतभया १२ बालकान् १३ विभक्तान् १४ ५०, ६०, ७०, ८०, ९० १५ हस्तिमुक्तान् १६ गणम् १७ यथ-लं १८ मागम्ये १९ सारथे २० निषन्ता २१ प्रजिता यन्ता भूत २२ रथा रथारवि २३ इत्यभिधानात् २४ उतागित २५ उट्ट २६ भीत गत २७ प्रतिपुलम् २८ अभिभूतमित्यर्थ २९ प्रयातस्तु तदाभूत् ३० कञ्जुकी ३१ युवा ३२ जानति ३३ पल्लवनीकाराय प्रयत्नीयमविनेपरञ्जित ३४ शकरीम ३५ कुद्दिनी ३६ लफटी सम ३७ इत्यभिधानात् ३८ अनुच्छन् ३९ बूढ़ा ४० श्वरा ४१ विरो बूढ़ो जीनो जीनों जरेजपि इत्यभिधानात् ४२

ततोऽवरोधनवृत्मुखच्छायाविशङ्घिनि । मय्यन्दिनातपे^१सम्राट् सप्राप शिविरान्तकम् ॥१२०॥
छत्ररत्नकृतच्छायो दिव्य रथमधिष्ठितः । न तदातपसत्राधां विदामाम^२ त्रिशांपतिः ॥१२१॥
वर्षाभिरथामन्त्रै रारब्धमु^३खसकथः । प्रयातमपि^४ नाध्वानं विवेष्ट भरताधिप ॥१२४॥
नोद्घातः^५ कोऽप्यभूदङ्गो रथाङ्गपरिवर्तनः^६ । रथवेगेऽपि नास्याभूत् क्लेशो^७ दिव्यानुभावन ॥१२५॥
रथवेगानिलोदस्त^८ व्यायत तद्भवजंशुकम् । पञ्चादागामिसैन्यानामिव मार्गमसूत्रयत्^९ ॥१२६॥
रथोद्धतगतिक्रान्भादुद्भूताङ्गपरिश्रमा^{१०} । कथं कथमपि प्रापन् रथिनोऽन्ये रयं प्रभो ॥१२७॥
तम^{११}वशेषमध्वन्यैस्तुरङ्गैरत्यवाहयन्^{१२} । सादिनः प्रभुणा सार्धं शिविरं प्रविधिवत्^{१३} ॥१२८॥
दूराद्दृष्यकुटीभेदानुत्थितान् प्रभुरक्षत । सेनानिवेशममित^{१४} सौधशोभापहासिनः ॥१२९॥
रौप्यदण्डेषु विन्यस्तान् विमृत्तान् पटमण्डपान् । सोऽप्यज्जनतातापहारिण सुजनानिव ॥१३०॥
किमेतानि स्थलाब्जानि हंमयूथान्यमृनि वा । इत्याशङ्क्य स्थलाग्राणि^{१५} दूराद्दृष्टिशिरं जनं ॥१३१॥
सामन्तानां निवेशेषु कायमानानि^{१६} नैकधा^{१७} । निवेशितानि विन्यासैर्निर्दध्यां^{१८} प्रभुरग्रतः ॥१३२॥
परितः कायमानानि व्रीक्ष्य कण्टकिनीवृत्ती^{१९} । निष्कण्टके निजं राज्ये मने तानेव कण्टकान् ॥१३३॥

चीतसे जिन्हे मार्गका परिश्रम भी मालूम नहीं हुआ है ऐसे सैनिक लोग सेनापतिके द्वारा पहले-
से ही तैयार किये हुए शिविर अर्थात् ठहरनेके स्थानपर जा पहुँचे ॥ १२१ ॥ तदनन्तर जब
मध्याह्नका सूर्य अन्त पुरको स्त्रियोके मुखको कान्तिको मलिन कर रहा था तब सम्राट् भरत
शिविरके समीप पहुँचे ॥ १२२ ॥ जिनपर छत्ररत्नके द्वारा छाया की जा रही है और जो
देवनिर्मित सुन्दर रथपर बैठे हुए हैं ऐसे महाराज भरतको उस दोपहरके समय भी गरमीका
कुछ भी दुःख मालूम नहीं हुआ था ॥ १२३ ॥ जिन्होंने समीपमें चलनेवाले वृद्ध जनोके साथ-साथ
अनेक प्रकारकी कथाएँ प्रारम्भ की हैं ऐसे भरतेश्वरको वीते हुए मार्गका भी पता नहीं चला
था ॥ १२४ ॥ दिव्य सामर्थ्य होनेके कारण रथके पहियोंकी चालसे उनके शरीरमें कुछ भी
उद्घात (दक्का) नहीं लगा था और न रथका तीव्र वेग होनेपर भी उनके शरीरमें कुछ क्लेश
हुआ था ॥ १२५ ॥ रथके वेगसे उत्पन्न हुए वायुसे ऊपरकी ओर फहराता हुआ उनकी ध्वजा-
का लम्बा वस्त्र ऐसा जान पड़ता था मानो पीछे आनेवाली सेनाके लिए मार्ग ही सूचित कर
रहा हो ॥ १२६ ॥ रथकी उद्धत गतिके क्षोभसे जिनके अंग-अगमे पीडा उत्पन्न हो रही है ऐसे रथ-
पर सवार हुए अन्य राजा लोग बड़ी कठिनाईसे महाराज भरतके रथके समीप पहुँच सके थे
॥ १२७ ॥ जो घुडसवार लोग महाराज भरतके साथ ही शिविरमें प्रवेश करना चाहते थे उन्होंने
बचे हुए मार्गको अपने उन्हीं चलते हुए श्रेष्ठ घोडोंसे बड़ी शीघ्रताके साथ तय किया था
॥ १२८ ॥ जो राजभवनोकी शोभाकी ओर भी हँस रहे हैं ऐसे शिविरके चारो ओर खड़े किये
हुए रावटी तम्बू आदि डेराओको महाराज भरतने दूरसे ही देखा ॥ १२९ ॥ उन्होंने चाँदीके
खम्भोपर खड़े किये हुए बहुत बड़े-बड़े कपडेके उन मण्डपोंको भी देखा था जो कि सज्जन पुरुषोंके
समान लोगोंका सन्ताप दूर कर रहे थे ॥ १३० ॥ क्या ये स्थलकमल हैं अथवा हसोके समूह
हैं इस प्रकार आगका कर लोग दूरसे ही उन तम्बूओंके अग्रभागोंको देख रहे थे ॥ १३१ ॥
सामन्त लोगोंकी ठहरनेकी जगहपर अनेक प्रकारकी रचना कर जो तम्बू वगैरह बनाये गये
थे उन्हें भी महाराज भरतने सामनेसे देखा था ॥ १३२ ॥ तम्बूओंके चारो ओर जो कटीली

१ दिनाधिपे ट० । मध्याह्नमूर्त्ये । २ विविदे । ३ कुलवृद्धादिभि । ४ मुख ल० । ५ अतिदूर गतम् ।
६ पीडा । ७ रथचक्रभ्रमणे । ८ क्लम ट० । श्रम । ९ उद्धतम् । १० अदर्शयत् । ११ अध्वनि साधुभि ।
१२ अतिक्रम्य प्रापत् । १३ प्रवेष्टुमिच्छत् । १४ मेनारचनाया मन्तान् । १५ पटकुट्याग्राणि । 'दृष्य मूल
पटकुटीगुणलयनिश्रेणिका तुल्या' इति वैजयन्ती । १६ कुटीभेदा । १७ नानाप्रकारा । १८ ददर्श ।

प्रविगम्भिः च निर्यदभिगम्यन्ते निर्योगिभिः । मद्वाग्धेऽपि कन्धोलैर्मन्त्रमाविर्षवद्भवति ॥१४५॥
 जनतोन्मार्गव्यग्रमहादौ वारपालकम् । कृतमङ्गलनिर्वाप्य वाग्धेऽप्येव कृतम्यदम् ॥१४६॥
 चिरानुभूतमप्येवमपूर्वमिव गोमया । नृगो नृपाङ्गण पश्यन् किमप्यार्मान् यविस्मय ॥१४७॥
 निधयो यस्य पर्यन्ते मध्ये रत्नान्यनन्तश । महत् गिविरस्थाम्य विजये कोऽनुवर्गयेत् ॥१४८॥

शार्दूलविक्रीडितम्

य श्रीमानिति विद्वत् स्वगिविर लक्ष्म्या निवासायित
 पश्यन्नात्तृतिर्विलङ्घ्य विजिग्वि^१ स्वर्गापहामिश्रिय ।
 सभ्राम्यन्प्रतिहाररुद्धजनतासवाधमुक्तेन
 प्राविशत् कृतमनिवेशमचिरादान्मालय श्रीपतिः^३ ॥१४९॥
 तत्राविःकृतमङ्गले सुरस्मरिर्द्वार्चाभुवा वायुना
 समुद्राङ्गणवेदिके विकिरिता तापच्छिद शीकरान् ।
 शस्त्रे व स्तुति^२ विस्तृते स्थपतिना मद्य समुत्थापिते
 लक्ष्मीमान् सुखभावमन्नधिपति प्राची^४ दिशं निजंयन् ॥१५०॥

जो कहीपर किसी बड़े भारी वगीचाके समान जान पड़ता है और कही अनेक राजाओकी मण्डलीसे युक्त होनेके कारण सभामण्डपके समान मालूम होता है, जो प्रवेग करते हुए और बाहर निकलते हुए अनेक कर्मचारियोंसे लहरोसे गव्द करते हुए किसी महासागरके किनारेके समान जान पड़ता है । जहाँपर बड़े-बड़े द्वारपाल लोग मनुष्योंकी भीड़को दूर हटानेमे लगे हुए हैं, जहाँ अनेक प्रकारके मंगलमय गव्द हो रहे हैं और इसीलिए जो ऐसा जान पड़ता है मानो सरस्वती देवीने ही उसमे अपना निवास कर रखा हो तथा जो चिरकालसे अनुभूत होनेपर भी अपनी अनोखी गोभासे अपूर्वके समान मालूम हो रहा है ऐसे राजभवनके आँगनको देखते हुए महाराज भरत भी कुछ-कुछ आश्चर्यचकित हो गये थे ॥१४२-१४७॥ जिसके चारो ओर निधियाँ रखी हुई हैं और बीचमे अनेक प्रकारके रत्न रखे हुए हैं ऐसे उस बड़े भारी गिविरकी विगोपताका कौन वर्णन कर सकता है ॥ १४८ ॥ इस प्रकार लक्ष्मीके निवासस्थानके समान सुगोभित अपने गिविरको चारो ओरसे देखते हुए जो अत्यन्त मन्तुष्ट हो रहे हैं ऐसे लक्ष्मीपति श्रीमान् भरतने, चारो ओर दौडते हुए द्वारपालोके द्वारा जिसमे मनुष्योंकी भीड़का उपद्रव दूर किया जा रहा है, जिसपर अनेक पताकाएँ फहरा रही हैं, और जिसमे अनेक प्रकारकी रचना की गयी है ऐसे अपने तम्बूमे गीघ्र ही प्रवेग किया ॥१४९॥ जिसमे मंगल-द्रव्य रखे हुए हैं, गंगा नदीकी लहरोमे उत्पन्न हुए तथा सन्तापको दूर करनेवाली जलकी बूँदोको वरमाते हुए वायुसे जिसके आँगनकी वेदी साफ की गयी है, जो प्रशसनीय है, विस्तृत है तथा स्थपति (गिलावट) रत्नके द्वारा बहुत गीघ्र खड़ा किया गया है, बनाया गया है ऐसे तम्बूमे पूर्व दिशाको जीतनेवाले, निधियोंके स्वामी श्रीमान् भरतने मुखपूर्वक निवास किया

१ रथ्या । 'रथ्या प्रतोली विजिग्वि' इत्यमर । २ विहितमम्यग्रचनम् । ३ भरतेव्य । ४ सम्मार्जित । ५ गृहे । ६ पूर्वाम् ।

राज्ञामावसथेषु शान्तजनताक्षोभेषु पीताम्भसा

मइवानां पद्मपद्मेषु निरङ्ग स्वर नृणामग्निनि ।

गङ्गातीरसरोवगाहिनि वनध्यानाजित हास्तिरु

जिष्णोस्नस्त्ररु चिरादिव कृतायाम् तदा लभ्यत ॥१५१॥

तत्रामीनमुपायनै कुरुधनै कन्याप्रदानादिभि

प्राप्या मण्डलभूभुज ममुस्तिरराधयन माधा^१ ।

सकृद्वा प्रविहाय मानमपर प्राणक्षिपुश्चत्रिण

दूरादानतमान्यो जिनमिव प्राज्यादय^२ नाग्नि ॥१ २॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणमहापुराणमग्रहे भरतराजविजय

प्रयाणवर्णनं नाम सप्तविंशतितम पर्व ॥२७॥

■

॥१५०॥ जिस समय राजाओके तन्त्रुओम मनुष्योंकी भीडका शोभ शान्त हो गया था, घोडा के समूह जल पीकर कपडेके बने हुए मण्डपाम अपने इच्छानुसार घाम खाने लगे थे, और हाथियों के समूह गंगा नदीके किनारेके सरोवरामे अवगाहन कराकर-स्नान कराकर-बनोम बांध दिये गये थे उस समय विजयी महाराज भरतकी वह सेना ऐसी जान पडती थी मानो चिरकालसे ही वहाँ रह रही हो ॥१५१॥ जिस प्रकार श्रेष्ठ भट्टिमाको धारण करनेवाले तथा समवसरण समामें विराजमान जिनै द्वेदेवकी देव लोग आराधना करते ह उसी प्रकार श्रेष्ठ बभ्रवको धारण करनेवाल तथा उस मण्डपमें बठे हुए महाराज भरतको पूर्वदिशाके राजाओने अपनी कुल-परम्परासे आया हुआ धन भटम देकर कन्याएँ प्रदान कर तथा और भी अनेक योग्य वस्तुएँ देकर उनकी आराधना-सेवा की थी । इसी प्रकार उनकी सेनाके द्वारा रोके हुए अन्य कितने ही राजाओने अहंकार छोडकर दूरसे ही मस्तक झुकाकर चक्रवर्तीके लिए प्रणाम किया था ॥१५२॥

इस प्रकार आप नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपटिलक्षण श्रीमहापुराणसंग्रहके भाषानुवांममें भरतराजका राजाओकी विजयके लिए प्रयाण करना इस धानका वणन करनेवाला सत्ताईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

■

अष्टाविंशतितमं पर्व

अथान्येषुर्दिनारम्भे कृतप्राभातिकक्रिय । प्रयाणमकरोच्चक्री चक्ररत्नानुमार्गतः^१ ॥१॥
 अलङ्घ्य चक्रमाक्रान्तपरचक्रपराक्रमम् । दण्डडच्च दण्डितारातिर्द्वयमस्य^२ पुरोऽभवत् ॥२॥
 रक्ष्यं देवमहस्त्रेण चक्र दण्डश्च तादृश । जयाङ्गमिदमेवास्य द्वय शेषः परिच्छिद्यः^३ ॥३॥
 विजयार्धप्रतिस्पर्धिवर्ष्माण यागहस्तिनम्^४ । प्रतस्थे प्रभुरारुह्य नाम्ना विजयपर्वतम् ॥४॥
 प्राची दिशमथो जेतुमापयोध्रेस्तमुद्यतम् । नृन^५ स्तम्बेरमच्याजावृहे^६ विजयपर्वतः^७ ॥५॥
 सुरेभ^८ शरदभ्राममारुढो जयकुञ्जरम् । म रंजे दीप्तमुकुटः सुरेभ^९ सुरराडिभ ॥६॥
 सितातपत्रमस्योच्चैर्विधृतं श्रियमादधे । यशसां प्रसवागारमिव^{१०} तद्व्याजजृम्भितम् ॥७॥
 लक्ष्मीप्रहासविगदा चामराली समन्ततः । व्यधृतस्य विध्वस्ततापा ज्योत्स्नेव शारद्री ॥८॥
 जयद्विरदमारुढो जलजैत्रास्त्रभासुर । जयलक्ष्मीकटाक्षागामगमत् स शरव्यताम्^{११} ॥९॥
 महामुकुटबद्धानां सहस्राणि^{१२} समन्ततः । तमनुप्रचलन्ति स्म सुराधिपमिवामराः ॥१०॥

अथानन्तर—दूसरे दिन सवेरा होते ही जो प्रातः कालके समय करने योग्य समस्त क्रियाएँ कर चुके हैं ऐसे चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्नके पीछे-पीछे प्रस्थान किया ॥१॥ शत्रु-समूहके पराक्रमको नष्ट करनेवाला तथा स्वयं दूसरोके द्वारा उल्लघन न करने योग्य चक्ररत्न और शत्रुओको दण्डित करनेवाला दण्डरत्न, ये दोनों ही रत्न चक्रवर्तीकी सेनाके आगे-आगे रहते थे ॥२॥ चक्ररत्न एक हजार देवोंके द्वारा रक्षित था और दण्डरत्न भी इतने ही देवोंके द्वारा रक्षित था । वास्तवमे चक्रवर्तीकी विजयके कारण ये दो ही थे, शेष सामग्री तो केवल शोभाके लिए थी ॥३॥ अबकी बार चक्रवर्तीने, जिसका शरीर विजयार्ध पर्वतके साथ स्पर्धा कर रहा है ऐसे विजयपर्वत नामके पूज्य हाथीपर सवार होकर प्रस्थान किया था ॥४॥ उस समय ऐसा मालूम होता था मानो समुद्र पर्यन्त पूर्व दिशाको जीतनेके लिए उद्यत हुए महाराज भरतको उस हाथीके छलसे विजयार्ध पर्वत ही धारण कर रहा हो ॥५॥ जिस प्रकार देदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढ़ा हुआ सुशोभित होता है उसी प्रकार देदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला भरत शरद्वृत्तुके बादलोके समान सफेद और देवोंके द्वारा दिये हुए उस विजयपर्वत हाथीपर चढ़ा हुआ सुशोभित हो रहा था ॥६॥ भरतेश्वरके ऊपर लगा हुआ सफेद छत्र ऐसी शोभा धारण कर रहा था मानो छत्रके बहानेसे यशकी उत्पत्तिका स्थान ही हो ॥७॥ लक्ष्मीके हास्यके समान निर्मल और शरद्वृत्तुकी चाँदनीके समान सन्तापको नष्ट करनेवाली चमरोकी पक्ति महाराज भरतके चारो ओर ढोली जा रही थी ॥८॥ विजय नामके हाथीपर आरुढ हुए और विजय प्राप्त करानेवाले प्रकाशमान अस्त्रोंसे देदीप्यमान होनेवाले भरतेश्वर जयलक्ष्मीके कटाक्षोंके लक्ष्य बन रहे थे । भावार्थ—उनकी ओर विजयलक्ष्मी देख रही थी ॥९॥ जिस प्रकार देव लोग इन्द्रके पीछे-पीछे चलते हैं उसी प्रकार हजारो मुकुटबद्ध बड़े-बड़े राजा लोग चारो ओर भरत महाराजके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥१०॥ 'आज

१ अनुगमनात् । २ अरिनिर्कर । परराष्ट्र वा । ३ चक्रिण । ४ परिकर । ५ विजयार्धगिरिणा स्पर्धमान-देहम् । ६ पूजोपेनगजम् । ७ ननु ल० । ८ धरति स्म । ९ विजयार्धगिरि । १० सुगन्धम् । ११ ऐरावतम् । १२ अत्रव्याज । १३ लक्ष्यताम् । 'लक्ष लक्ष्य शरव्य च' इत्यभिधानात् । १४ अपरिमिता इत्यर्थः ।

दूरमद्य प्रयातव्य निवेष्टयमुपाणवम् ।^१ त्वरप्त्रमिति सेनान्य सैनिकानुदतिष्ठयन् ॥११॥
 वयतां प्रस्थितो देवो दवीयश्च^२ प्रयाणकम् । बलाधिकारिणामित्थ यचो बलमनुक्षुभन् ॥१२॥
 अघासि^३ प्रयातव्य गङ्गाद्वारे निवेशनम् । संभ्रायो मागधोऽद्यैव विरह्य पयसा निधिम् ॥१३॥
 समुद्रमद्य पश्याम समुद्रक्षत्तरङ्गकम्^४ । समुद्र लङ्घतेऽद्यैव समुद्र^५ शासन विभो ॥१४॥
 अन्योन्यस्थिति सजल्यै सग्रास्थियत^६ सैनिकाः । प्रयाणभरीप्रधानस्तदोद्यन्^७ घामदिध्वनत्^८ ॥१५॥
 तत प्रचलिता सना सानुगह्य घृतायति । मिमानेय तदागाम पप्रथे प्रथितध्वनि ॥१६॥
 सचामरा बलद्वसा सधलाका^९ पताकिना^{१०} । अविद्याय चमूगहा सतुरङ्गा तरङ्गिणीम्^{११} ॥१७॥
 राजहसै कृताध्यासा कचिदधस्त्वलङ्गति । चमूरो^{१२} भ प्रति प्रायात्^{१३} सा त्रितायत्र जाह्नवी ॥१८॥
 विपरीतामतद्वृत्ति^{१४} निम्नगा^{१५} मुञ्चतस्थिति । त्रिमागगा व्यजेष्टासौ घृतना बहुभागगा ॥१९॥

बहुत दूर जाना है और समुद्रके समीप ही ठहरना है इसलिए जल्दी करो इस प्रकार सेनापति लोग सैनिकोंको जल्दी-जल्दी उठा रहे थे ॥११॥ 'अरे जल्दी करो, महाराज प्रस्थान कर गये, और आजका पडाव बहुत दूर है इस प्रकार सेनापतियोंके वचन सेनाको क्षोभित कर रहे थे ॥१२॥ आज समुद्र तक चलना है, गंगाके द्वारपर ठहरना है और आज ही समुद्रको उल्लंघन कर मागधदेवको वश करना है ॥१३॥ आज हम लोग, जिसम ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं ऐसे समुद्रको देखने और आज ही समुद्रको उल्लंघन करनेके लिए महाराजको मुहर सहित आज्ञा है ॥१४॥ इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करते हुए सैनिकोंने प्रस्थान किया, उस समय प्रयाण-कालमें बजनेवाला नगाडोंके उठे हुए शब्दने आकाशको शब्दायमान कर दिया था ॥१५॥ तदनंतर जिसका शब्द सब ओर फैल रहा है ऐसी वह सेना गंगा नदीके किनारे किनारे लम्बी होकर इस प्रकार चलने लगी मानो उसकी लम्बाईका नाप करती हुई ही चल रही हो ॥१६॥ उस समय वह सेना ठीक गंगा नदीका अनुकरण कर रही थी क्योंकि जिस प्रकार गंगा नदीमें हंस चलते हैं उसी प्रकार उस सेनामें चमर बुलाये जा रहे थे, जिस प्रकार गंगा नदीमें बगुला उठा करते हैं उसी प्रकार उस सेनामें ध्वजाएँ फहरायी जा रही थी और जिस प्रकार गंगा नदीमें अनेक तरंग उठा करते हैं उसी प्रकार उस सेनामें अनेक घोड़े जछल रहे थे ॥१७॥ वह सेना समुद्रकी ओर इस प्रकार जा रही थी मानो दूसरी गंगा नदी ही जा रही हो क्योंकि जिस प्रकार गंगा नदीमें राजहंस निवास करते हैं उसी प्रकार उस सेनामें भी राजहंस अर्थात् श्रेष्ठ राजा लोग निवास कर रहे थे और जिस प्रकार गंगा नदीकी गति कही भी स्थलित नहीं होती उसी प्रकार उस सेनाकी गति भी कही स्थलित नहीं हो रही थी ॥१८॥ अथवा उस सेनाने गंगा नदीको जोर लिया था क्योंकि गंगा नदी विपरीत अर्थात् उलटी प्रवृत्ति करनेवाली थी (पक्षमे वि-परीत - पक्षयोसि व्याप्त थी) परन्तु सेना विपरीत नहीं थी अर्थात् सदा चक्रवर्तीके आज्ञानुसार ही काम करती थी गंगा नदी निम्नगा अर्थात् नीच पुरुषको प्राप्त होनेवाली थी (पक्षमें ढालू स्थानकी ओर बहनेवाली थी) परन्तु सेना उसके विरुद्ध उन्नतगा अर्थात् उन्नत पुरुष-चक्रवर्तीको प्राप्त होनेवाली थी और इसी प्रकार गंगा त्रिमागगा अर्थात् तीन भागोंसे गमन करनेवाली थी (पक्षमें त्रिमागगा, यह गंगाका एक नाम है) परन्तु

१ अणवसमीपे । २ बाग कुरुष्वम । ३ दूरतरम् । ४ आ समुद्रम् । ५ साधनीय । ससाध्यो ह अ० ६०
 ७० । ६ उच्चैश्चलनैश्चिदम् । ७ समदलङ्घनेऽद्यैव ल द० इ० । ८ मय्या सहितम् । ९ गन्तुमुपक्रान्त
 वन्त । १० क्षम । ११ ध्वनिमधारयत् । १२ विसकण्टिकासहितम् । १३ सपताकावतो । १४ तरङ्गवतीम् ।
 १५ अगच्छन् । १६ पणिभि परिवृताम् । प्रतिकूलामिति ध्वनि । १७ विपरीत-वृत्तिरहितेऽत्मय । १८ नीच
 पयशामिति ध्वनि ।

अनुगङ्गातटं यान्ती ध्वजिनी सा ध्वजाशुके । वरगुणमिराकीर्णं सममाजेव खाड्गणम् ॥२०॥

दुर्विगाहा महाग्राहाः^१ सैन्यान्नुत्तेरन्तरं । गङ्गानुगा^२ बुनीवंहीर्बहुराजकुलस्थिताः^३ ॥२१॥

मार्गे^४ बहुविधान् देशान् मरितः पर्वतानपि । वनधान् वनदुर्गाणि गनीरप्यत्यगात् प्रभुः ॥२२॥

अगोपपेप्वरण्येषु^५ दृष्ट व्यापारयन् विभुः । भूमिच्छिद्रपिधानाय^६ क्षणं यन्नमिवातनात् ॥२३॥

पथि प्रणेमुरागत्य सभ्रान्ता मण्डलाधिपाः । दण्डोपनतवृत्तस्य^७ विपयोऽयमिति प्रभुम् ॥२४॥

स^८ चक्रं धेहि^९ राजेन्द्र मधुर^{१०} प्राज^{११} सारथे । सजल्प इति नास्यासीदयन्नावनतद्विपः ॥२५॥

प्रतियोद्धुमशक्तास्त^{१२} प्रथनेषु जिगीषवः । तत्पदं प्रणतिव्याजात् समालिभिरताडयन् ॥२६॥

^{१३}विभुत्वमरिचक्रेषु भूपरागानुरञ्जनम्^{१४} । स्वचक्र इव सोऽधत्त महतां चित्रमीहितम् ॥२७॥

सेना अनेक मार्गोंसे गमन करनेवाली थी ॥१९॥ गगानदीके किनारे-किनारे जाती हुई वह मेना अपनी फहराती हुई ध्वजाओसे ऐसी जान पड़ती थी मानो वनकी धूलिसे भरे हुए आकाशम्भी आँगनको ध्वजाओके वस्त्रोंसे साफ ही कर रही हो ॥२०॥ महाराज भरतकी सेनाओंने गंगाकी ओर आनेवाली उन अनेक नदियोंको पार किया था जो राजकुलकी स्थितिके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार राजकुलकी स्थिति दुर्विगाह अर्थात् दुःखसे जाननेके योग्य होती है उसी प्रकार वे नदियाँ भी दुर्विगाह अर्थात् दुःखसे प्रवेश करने योग्य थी और राजकुलकी स्थिति जिन प्रकार महाग्राह अर्थात् महास्वीकृतिसे सहित होती है उसी प्रकार वे नदियाँ भी महाग्राह अर्थात् बड़े-बड़े मगर-मच्छोंसे सहित थी ॥२१॥ धनवान् महाराज भरत मार्गमें पड़ते हुए अनेक देश नदियाँ, पर्वत, वन, किले और खान आदि सबको उल्लंघन करते हुए आगे चलें जा रहे थे ॥२२॥ गाय आदि जानवरोंके संचारसे रहित अर्थात् अगम्य वनोंमें दृष्टि डालते हुए भग्न-भरत ऐसे जान पड़ते थे मानो पृथिवीके छिद्रोंको टाँकनेके लिए क्षण-भरके लिए न यत्न ही कर रहे हों ॥२३॥ मार्गमें घबड़ाये हुए अनेक मण्डलेश्वर राजा भरतको यह सोचकर प्रणाम कर रहे थे कि यह देश दण्डरत्नके धारकका है ॥२४॥ मार्गमें महाराज भरतेश्वरके समस्त अग्र विजय कर रहे थे :

सध्यादिविषय^१ नास्थ समकक्षो हि पार्थिव । पाद्गुण्यमत प्यास्मिन् चरिता मभूर् प्रभो^२ ॥२८॥
 प्रतिरात्रमुपानासमाभृतान् विषयाधिपान् । समावयन् प्रसादन मास्थ्यगाद् विषयान् बहून् ॥२९॥
 नास्थ^३ व्यापारितो हरता मार्गं धनुषि नार्पिता । कचत् प्रभुधरमथर प्राची दिग्विजिताऽमुना ॥३०॥
 गोकुलानामुपान्तपु सोऽपश्यन् युवबलवान्^४ । वनवत्याभिरायद्धृत्कार्वा गाऽभिरक्षिण ॥३१॥
 मन्थारुर्धमोद्भूतस्वेदबिन्दुचितानना । मथ्यता^५ सकुचो रम्य सलालग्रिक्ततन ॥३२॥
 मन्थरज्जुममादृष्टिवलान्तबाहू^६ श्लथाश्रुका । सन्तस्तनाश्रुका लम्बत्रिलोम^७ गुरादराः^८ ॥३३॥
 क्षु^९ घामिषातोश्चितस्थलगोरसवि^{१०} दुभि^{११} । विरलैरङ्गसल्लग्नै शोभा कामपि पुष्पती ॥३४॥
 म प्रारवानुसारं किञ्चिद्वारममूचना^{१२} । विसस्तनयरीव^{१३} धा कामस्यव पनाकिका ॥३५॥
 न छात्रणपु सल्लापे^{१४} स्वरभारस्थमथना । प्रभुर्गापयधूः पश्यन् किमप्यानात ममुमुक ॥३६॥
 वन वनगजैर्गुष्टे^{१५} प्रभुमन वनेचरा । दन्तैर्वनकरोत्राणामहाधु मह मूर्तिर्नै ॥३७॥

राजाओके प्रमपूण अनुरागको धारण करते थे उसी प्रकार शत्रुओके राज्याम भी भू-परागा
 नुरजन अर्थात् पृथिवीकी धूलिसे अनुरजन धारण करते थे, शत्रुआओ धूलिम मिला देते थे,
 सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी चेष्टाए आश्चर्य करनेवाली होती ही ह ॥२७॥ सचि
 आदि गुणोंके विषयम कोई भी राजा महाराज भरतके बराबर नहीं था इसलिए सचि आदि
 छहो गुण उन्हीम चरिताथ हुए थे । सावाय - कोई भी राजा इनके विरुद्ध नहीं था इसलिए
 इहे किसीसे सचि विग्रह यान, आसत डधीमाव आर आश्रय नहीं करने पड़त थे ॥२८॥
 प्रत्येक देशम भट लेकर आये हुए वहाँके राजाओका बड़ो प्रसन्नतास आदर सत्कार करते हुए
 महाराज भरत बहुत-से देशोंको उल्लघन कर आगे बढ़ते जाते थे ॥२९॥ भरतेश्वरन न तो
 किभा तलवारपर अपना हाथ लगाया था आर न कभी डोरी ही धनुषपर चढायी थी । उन्होने
 केवल अपनी प्रभुत्वशक्तिसे ही पूव दिशाको जीत लिया था ॥३०॥ उन्होने गोकुलके समीप
 ही गायोंकी रक्षा करनेवाल तथा वनकी लताओंसे जिन्होने अपने शिरके बालोंका जूडा बाँध रखा
 है ऐसे तरुण ग्वाला देखे ॥३१॥ कदनियोंके खींचनेसे परिश्रमसे उत्पन्न हुए पसीनेकी बूँदोंसे
 जिनके मुख व्याप्त हो रहे ह, जो लीलापूर्वक नितम्बोंको नचा-नचाकर स्तनोंको हिलाती हुई
 दही मथ रही ह, कदनियोंके खींचनेसे जिनकी भुजाएँ थक गयी है जिनके सब वस्त्र ढीले पड़
 गय ह जिनके स्तनोपर-का वस्त्र भी नोचेकी ओर खिसक गया है, जिनके कूश उदरमे त्रिवलीकी
 रेखाए साफ साफ दिस रही ह, रई (फूल) के आघातसे उछल-उछलकर शरीरसे जहाँ-तहाँ
 लगी हुई दहीकी बड़ी-बड़ी बूंदोंसे जो एक प्रकारकी विचित्र शोभाको पुष्ट कर रही है, मन्थनसे
 होनेवाल झाड़ोंके साथ साथ ही जिहोने कुछ गाना भी प्रारम्भ किया है जिनके केशपाशका
 बंधन खुल गया है और इसीलिए जो कामदेवकी पताकाआके समान जान पड़ती है, तथा
 गोशालाके आँगनोंमे अपने इच्छानुसार वार्तालाप करती हुई जिन्होने दहीका मथना प्रारम्भ
 किया है ऐसी ग्वालाओंकी स्त्रियोंको देखते हुए महाराज भरतेश्वर कुछ उत्कण्ठित हो उठे थे
 ॥३२-३६॥ जगली हाथियोंसे भरे हुए वनमे रहनेवाल भील लोगोंने जगली हाथियोंके
 दाँत और माँती भेंटकर महाराजके दंगन किये थे ॥३७॥ जिनका शरीर दंगम है जिनके

१ सध्यादिविषयानामनुपपन्नानां विषय । २ समानप्रतिपत्तिक । ३ सध्यादिगुणसम्पु । ४ कृतकृत्यम् ।
 ५ प्रभो स० अ० २० । ६ नाभी ल० ६ । ७ तरुणगापालान् । गोपे गोपालगोसस्यागोदुगाभीर
 वल्लवा इत्यभिधानात् । ८ वेपागान् । ९ मथा कुवनी । १० नितम्ब । निका कूपस्य वमी स्यात्
 निका पुष्टपरत्रप इत्यभिधानात् । ११ सशक्तवशला । १२ अनोक्त । १३ मथत । १४ स्वरविश्रवण ।
 १५ शोचन । गोप् गाश्चानकम इत्यभिधानात् । १६ मिथो भाषण । १७ सेविते ।

अयमाङ्गीगन्मिथ्यक्तरोमराजीस्नन्दरी । परिधानीकृनालोलपल्लवव्यक्तसवृती ॥३८॥
 चमरीवालकाविद्वरुवरीवन्धनयुता । फलिनीफरुसङ्ग्रमालारचितकण्डिकाः ॥३९॥
 कस्तूरिकासृगाय्यामवायिता सुरभीमृदः । संचिन्वर्त्तानामोगे प्रसाधनजिवृक्षया ॥४०॥
 पुलिन्दकन्यका, 'मैन्यगमालोकनविस्मिता' । 'अव्याजसुन्दराकारा दूरादालोकयत प्रभु' ॥४१॥
 चमरीवालकान् केचित् केचित् कस्तूरिकाण्डकान् । प्रमोदपायनीकृत्य ददृशुर्मल्लेच्छराजकाः ॥४२॥
 तत्रान्तपालदुर्गाणां सहस्राणि महस्रगः । लब्धचक्रधरादेशः सेनानी ममगिश्रियन् ॥४३॥
 अपूर्वस्तनसदमे, 'कुप्यगारधनेरपि । अन्तपाला, प्रमोदराज्ञा सप्रणामैरमानयन् ॥४४॥
 ततो विदूरमुल्लङ्घ्य सोऽध्वान सह सेनया । गङ्गाद्वारमनुप्रापन् स्वमिवालङ्घ्यमर्णवम् ॥४५॥
 वहिः समुद्रमुद्रिक्त द्वैप्य^१ निम्नोपग^२ जलम् । समुद्रस्येव^३ निव्यन्दमवधेराद् व्यलोकयत् ॥४६॥
 वर्षारम्भो युगारम्भे योऽभूत् कालानुभावत्^४ । तत् प्रभृति सवृद्धं जलं द्वीपान्तमावृणोत् ॥४७॥
 अलङ्घ्यत्वान्^५ महीयस्त्वाद् द्वीपपर्यन्तवेष्टनात् । द्वैप्यमम्बु^६ समुद्रिक्तमगादुपसमुद्रताम् ॥४८॥
 पश्यन्नुपसमुद्रं त गत्वा स्थलपथेन^७ । गङ्गोपवनवेद्यन्तर्भागे^८ सैन्यं न्यवीविशत् ॥४९॥

गरीरपर अभी रोमराजी प्रकट नहीं हुई है, उदर भी जिनका कृण है, वस्त्रके समान धारण किये हुए चचल पत्तोसे जिनके गरीरका सवरण प्रकट हो रहा है, चमरी गायके बालोसे बँधे हुए केशपाशोसे जो बहुत ही सुन्दर जान पड़ती है, गुजाफलोसे बनी हुई मालाओको जिन्होंने अपना कण्ठहार बनाया है, कस्तूरी मृगके वँठनेसे सुगन्धित हुई मिट्टीको आभूषण बनानेकी इच्छासे जो वनके किसी एक प्रदेशमें इकट्ठी कर रही है, जिनका आकार वास्तवमें सुन्दर है और जो सेनाके देखनेसे विस्मित हो रही है ऐसी भीलोकी कन्याओको भरतने दूरसे ही देखा था ॥३८-४१॥ कितने ही म्लेच्छ राजाओने चमरी गायके बाल और कितने ही ने कस्तूरी-मृगकी नाभि भेट कर भरतके दर्शन किये थे ॥४२॥ वहाँपर सेनापतिने चक्रवर्तीकी आज्ञा प्राप्त कर अन्तपालोके लाखो किले अपने वश किये । ॥४३॥ अन्तपालोने अपूर्व-अपूर्व रत्नोके समूह तथा सोना चाँदी आदि उत्तम धन भेट कर भरतेश्वरको प्रणाम किया तथा उसकी आज्ञा स्वीकार की ॥४४॥ तदनन्तर सेनाके साथ-साथ बहुत कुछ दूर मार्गको व्यतीत कर वे गङ्गाद्वारको प्राप्त हुए और उसके बाद ही अपने समान अलघनीय समुद्रको प्राप्त हुए ॥४५॥ उन्होंने समुद्रके समीप ही, समुद्रसे बाहर उछल-उछलकर गहरे स्थानमें इकट्ठे हुए द्वीपसम्बन्धी उस जलको देखा जो कि समुद्रके निष्यन्दके समान मालूम होता था अथवा समुद्रके जलके समान ही निश्चल-स्थायी था अर्थात् उपसमुद्रको देखा, समुद्रका जो जल उछल-उछलकर समुद्रके समीप ही द्वीपके किसी गहरे स्थानमें इकट्ठा होता जाता है वही उपसमुद्र कहलाता है । उपसमुद्र द्वीपके भीतर होता है इसलिए उसका जल द्वैप्य कहलाता है । उपसमुद्रका जल ऐसा जान पड़ता था मानो समुद्रका स्वेद ही इकट्ठा हो गया हो ॥४६॥ कर्मभूमिरूप युगके प्रारम्भमें जो वर्षा हुई थी तबसे लेकर कालके प्रभावसे बढ़ता हुआ वही जल द्वीपके अन्त भाग तक पहुँच गया था ॥४७॥ जो जल समुद्रसे उछल-उछलकर द्वीपमें आया था वह अलघनीय था, बहुत गहरा था और उसने द्वीपके सब समीपवर्ती भागको घेर लिया था इसलिए वही उपसमुद्र कहलाने लगा था ॥४८॥ उस उपसमुद्रको देखते हुए भरतने सुखकर मार्गसे जाकर

१ अग्रन्तरप्रदेशा । २ गुञ्जारचित । ३ अनुपावि । ४ व्याव । ५ कार्पासश्रीखण्डादि । ६ अपूजयन् । ७ समुद्रस्य वहिः । ८ द्वीपमवन्धि । ९ अगाधभावप्राप्तम् । १० प्रव्रवणम् । ११ सामर्थ्यत । १२ अत्यन्तमहत्त्वात् । १३ उत्कटम् । १४ सुखपथेन ल०, सुलपथेन इ०, ल० । 'सुवेन लागते गृह्यते इति सुल', इति 'इ' टिप्पण्याम् । १५ वेद्यन्तभागे ल० ।

वेदिभूतोरणद्वारमस्ति तत्रोच्छ्रितं महत् । शनस्तन^१ प्रविश्यात्तवण सैन्यं न्यविक्षत ॥५०॥
 तत्र^२ वास्तुवशादस्य किञ्चित्सकुचितमयत् । स्व^३वाधारीनिवेशाऽभूदलक्ष्यभूद्विस्तृतं^४ ॥५१॥
 नन्दनप्रतिमं तस्मिन् वने रक्षातपाहिंश्रुष । गन्गातीतानिलस्पर्शैस्तद्वलं सुखभावमत् ॥५२॥
 तस्मिन् पौष्पसाध्य^५ वि कृत्य^६ देव प्रमाणवत् । लवणाग्निजयाद्युत माऽभ्यर्च्य^७ ईविकीं क्रियाम् ॥५३॥
 अधिवासिलजशास्त्र स त्रिरात्रमुपोषिवान् । मन्त्रानुस्मृतिपूर्तात्मा शुचितत्वापगं शुचि ॥५४॥
 सार्य^८ प्राविकनि तीर्थकरणाय समाहित । पुरोधोऽधिष्टितां पूजा स न्यधात् परमेष्ठिनाम् ॥५५॥
 सनान्य बक्षरक्षायै नियोज्य विधिवद् विभु । प्रतस्थ घृतदिभ्यास्त्रा जिर्गापुलवणाग्नुधिम् ॥५६॥
 प्रतिग्रहापसारादिचिन्ताऽभूदास्य चतसि ।^९ विलिलद्वयविपोरधिमहो^{१०} स्थव महामनाम् ॥५७॥
 अजितजयमारुह^{११} रथ दिभ्याम्बुसमृतम् । याजित याजिभिर्दिभ्यैजलस्थलविलिर्धमि ॥५८॥
 परश्यामरथ प्रोच्यैश्चलच्चक्रादिककृतमम् । तम् हुजवना^{१२} वाहा^{१३} दिभ्यस्तथ्यष्टर्षादिताः^{१४} ॥५९॥
 ततोऽस्मै दत्तपुण्याशः पुरोधा^{१५} धृतमङ्गल । त्व द्य विनयस्त्विति स^{१६} इमामृचमापद्य ॥६०॥

गंगाके उपवनकी वेदीके अन्तर्भागम सेनाका प्रवेश कराया ॥४९॥ वहाँ वदिकाम एक बड़ा भारी तोरणद्वार है जो कि उत्तर द्वार कहलाता है उसी द्वारसे धीरे धीरे प्रवेश कर वनके भीतर सेना ठहरी ॥५०॥ वहाँ चक्रवर्तीका जो शिविर था डराके कारण उसकी लम्बाई कुछ सकुचित हो गयी थी पर सेनाकी रचनाका विस्तार अलघनीय था ॥५१॥ जो नन्दन वनके समान है तथा जिसके वृक्ष सूयके आतापको रोकनेवाले हू ऐसे उस वनम भरतकी वह सेना गंगा नदीके शीतल वायुके स्पर्शसे सुखपूर्वक निवास करती थी ॥५२॥ यद्यपि मागध देवको वश करना यह कार्य पौरपसाध्य है अर्थात् पुरुषार्थसे ही सिद्ध हो सकता है तथापि उसम दबकी प्रमाणता मानकर लवण समुद्रको जीतनेके लिए तत्पर हुए भरत महाराजने भगवान् अरहन्त देवके आराधन करनेका विचार किया ॥५३॥ जिसने मन्त्र-त त्रैसि विजयके शस्त्रोंका संस्कार किया है तीन दिन उपवास किया है, मन्त्रके स्मरणसे जिसका आत्मा पवित्र है जो पवित्र शय्यापर बैठा हुआ है स्वयं पवित्र है, सायकाल और प्रातः कालकी समस्त क्रियाओम सावधान है और पुरोहित जिसके समीप बठा है ऐसे उस भरतने पञ्च परमेष्ठीकी पूजा की ॥५४-५५॥ भरतने विधिपूर्वक सेनाकी रक्षाके लिए सेनापतिको नियुक्त किया और स्वयं दिव्य अस्त्र धारण कर लवण समुद्रको जीतनेकी इच्छासे प्रस्थान किया ॥५६॥ समुद्रको उल्लंघन करनेकी इच्छा करने वाल भरतके चिन्तम यह भी चिन्ता नहीं हुई थी कि क्या-क्या साथ लेना चाहिए और क्या क्या यहाँ छोड़ देना चाहिए सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंका धैर्य ही आश्चर्यजनक होता है ॥५७॥ जो देवोपनीत अस्त्र शस्त्रोंसे भरा हुआ है और जिसम जल स्थल दोनोंपर समान रूपसे चलनेवाले दिव्य घोड़े जूते हुए हू ऐसे अजितजय नामके रथपर भरतेश्वर आरूढ़ हुए ॥५८॥ जो पत्नीके समान हरितवर्ण हू जिसपर बहुत ऊँचे चक्रके आकारसे चिह्नित ध्वजा फहरा रही है और जो दिव्य सारथिके द्वारा प्रेरित है-हाँका जा रहा है-ऐसे उस रथको वेग शाली घाटे ल जा रहे थे ॥५९॥ तदनन्तर हे देव, आपकी जय हो इस प्रकार भरतके लिए

१ तत्रोत्तर द ६० । २ द्वारण । ३ गृहसामर्थ्यात् । ४ बलविश्रामविस्तार । ५ सदृशे । ६ -माविशत् ७० । ७ मागधामरमाधनरूपकार्ये । ८ मन्त्रसङ्कृत । ९ अस्तममप्रभातसर्वाधि । १० स्वीकारत्यजनादि । ११ विलिङ्गिनुमिच्छा । १२ मनास्वय अ स ३० । १३ वाहनवाजिभि इयामवर्णीकृतारथम । अनेक सन्ध्याया हरिणा इत्युक्ता । १४ वगिन । १५ निव्यमारथिप्रतिता । नियन्ता प्राजिता यन्ता सूत छाता च सारथि । सव्यष्टेदतिगणस्थी च सङ्गारवभूम्बिन इत्यभिधानात् । (सव्यष्टेति ऋन्त इति वचिन्) १६ चादिन स० । नातिता स० अ । १७ धृतमङ्गलम् अ० स ३० । १८ ऋचं मन्त्रमित्यय ।

जयन्ति त्रिभुताशेषवन्धना धर्मनायकाः^१ । त्वं धर्मविजयी भूत्वा तत्प्रसादाज्जयारिणम् ॥६१॥
 सन्त्यग्निनिलया देवास्त्वद्भुक्त्यन्तर्निवामिनः । तान् विजेतुमयं कालस्तवेत्युच्चैर्जुघोष च ॥६२॥
 ततः कतिपयैरेव नायकैः परिवारितः ।^२ जगतीतलमारुहद् गङ्गाद्वारस्य चक्रभृत ॥६३॥
 न केवल समुद्रान्तःप्रवेशद्वारमेव तत । कार्यमिद्वेरपि द्वारं तदमस्त रथाङ्गभृत^३ ॥६४॥
 धृतमङ्गलवेषस्य^४ तद्वेद्यारोहणं विभोः । विजयश्रीममुद्राहवेद्यारोहणवद् वभौ ॥६५॥
 मद्गृहाङ्गणवेदीय जगतीति विकल्पयन् । दृश व्यापारयामास^५ कुल्याबुद्ध्या महोदधौ ॥६६॥
 स प्रतिज्ञामिवारूढो जगतां महायतिम् । निस्तीर्णमिव^६ तन्पार पारावारमजीगणत् ॥६७॥
 मुहुः प्रचलदुद्वेलकल्लोलमनिलाहतम् । विलङ्घनाभयादुच्चैः फूत्कुर्वन्तमिवारवैः ॥६८॥
 वीचिवाहुभिरन्मुक्तैः सरनैः शीकरोत्करैः । पाद्यं स्वस्येव तन्वान मौक्तिकाक्षतमिश्रितं ॥६९॥
 असङ्ख्यशङ्खमाक्रान्तविश्वद्वीपमपारकम् । परैरलङ्घयमशोभ्यं स्ववलौघानुकारिणम् ॥७०॥
 'उत्केनजृम्भिकारम्भैः सापस्मारमिवोत्त्रणम् । केनाग्रशक्यमाधर्तुं क्वचिदग्नयनवस्थितम् ॥७१॥

पवित्र आशीर्वाद देकर मंगलद्रव्य धारण किये हुए पुरोहितने इस नीचे लिखी हुई ऋचाको पढा ॥६०॥ समस्त कर्मबन्धनको नष्ट करनेवाले धर्मनायक-तीर्थकर देव सदा जयवन्त रहते हैं इसलिए उनके प्रसादसे तू भी धर्मपूर्वक विजय प्राप्त कर, सबको जीत ॥६१॥ उसी समय पुरोहितने यह भी जोरसे घोषणा की कि हे देव, इस समुद्रमे निवास करनेवाले देव आपके उप-भोग करने योग्य क्षेत्रके भीतर ही रहते हैं इसलिए उन्हें जीतनेके लिए आपका यह समय है ॥६२॥ तदनन्तर कुछ वीर पुरुषोसे घिरे हुए चक्रवर्ती भरत गंगाद्वारकी वेदीपर जा चढे ॥६३॥ चक्रवर्तीने उस गंगाद्वारकी वेदीको केवल समुद्रके भीतर प्रवेश करनेका द्वार ही नहीं समझा था किन्तु अपने कार्यकी सिद्धि होनेका भी द्वार समझा था ॥६४॥ मंगल वेषको धारण करने-वाले चक्रवर्तीका उस वेदीपर आरूढ होना विजय-लक्ष्मीके विवाहकी वेदीपर आरूढ होनेके समान बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था ॥६५॥ यह वेदी मेरे घरके आँगनकी वेदी है इस प्रकार कल्पना करते हुए भरतने महासागरपर कृत्रिम नदीकी बुद्धिसे दृष्टि डाली थी । भावार्थ — भरतने अपने बलकी अधिकतासे गङ्गाकी वेदीको ऐसा समझा था मानो यह हमारे घरके आगनकी ही वेदी है और महासमुद्रको ऐसा माना था मानो यह एक छोटी-सी नहर ही है ॥६६॥ वे उस बड़ी लम्बी वेदीपर इस प्रकार आरूढ हुए थे जैसे अपनी प्रतिज्ञापर ही आरूढ हुए हो और समुद्रको उन्होंने ऐसा माना था जैसे उसके दूसरे किनारेपर ही पहुँच गये हो ॥६७॥ उस वेदीपर-से उन्होंने समुद्र देखा, उस समुद्रमे बारबार तटको उल्लंघन करने-वाली लहरे उठ रही थी, पवन उसका ताडन कर रहा था और वह अपने गम्भीर शब्दोंसे ऐसा मालूम होता था मानो उल्लघनके भयसे रो ही रहा हो । तरंगरूपी भुजाओंमे किनारेपर छोड़े हुए रत्नसहित जलके छोटे-छोटे कणोंसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो भग्नके लिए मोती और अक्षतोसे मिला हुआ अर्घ्य ही दे रहा हो । उस समुद्रमे अगम्यान शब्द थे, उगने ममग्न द्वीपोंको आक्रान्त कर लिया था, वह पाररहित था, उसका कोई उल्लघन नहीं कर सकना था और न उसे कोई क्षोभित ही कर पाता था इसलिए वह ठीक भग्नकी मेनाके समुद्रका अनुकरण कर रहा था क्योंकि उसमे भी वजाये जानेवाले अगम्यान शब्द थे, उगने भी ममग्न द्वीप आक्रान्त कर लिये थे—अपने अधीन बना लिये थे, वह भी अपार था, वह भी हमारे द्वारा अलघनीय तथा क्षोभित करनेके अयोग्य था । वह समुद्र किर्मा अपस्मार (मृगी)

१ तीर्थकरा । २ त्वत्पालनक्षेत्र । ३ गङ्गाभृत । ४ रथाङ्गभृत २०, ३०, ४० । ५ कुल्या । ६ निस्तीर्ण । ७ लकारस्य । ८ 'कुल्यात्पा कृत्रिमा गग्न' । ९ पाग्नयनम् । १० उद्गमनद्विडोराभिवृद्धि ।

अकस्मादुच्चरद्भवानमनिमित्तचलायलम्^१ । अकारणकृतावतमति सङ्कुसुकरस्थितिम् ॥७२॥
 हसन्तमिव केनोपलसन्तमिव^२ वाचिमि । चलन्तमिव कल्लालमोघन्तमिव घृणितं ॥७३॥
 सरत्नसुवर्णविषं^३ सुस्तशृङ्गारभीकरम्^४ । स्फुरत्तरङ्गनिर्माकं स्फुरन्तमिव भोगिनम् ॥७४॥
 अत्यन्तमुपानादुद्रिक्तप्रतिश्यायमिवाधिकम् । क्षुतानां शिबुर्याणं ध्वनितानि सहस्रशः ॥७५॥
 आद्यूनमसकृत्पातविश्वस्रोतस्विनीरमम् । रसातिरकादुद्गारं तन्वानमिव रगल्लृतं ॥७६॥
 निजगम्भारपालालमहागतापदशतं^५ । अनृप्यन्तमिषाम्भोभिरातालुविद्युताननम् ॥७७॥

के रोगीके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार अपस्मारका रोगी पेनसहित आती हुई जम्भिकाओं अर्थात् जमुहाइयोसे व्याकुल रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी पेनसहित उठती हुई जम्भिका अर्थात् लहरोसे व्याकुल था, जिस प्रकार अपस्मारका रोगी किमीके द्वारा पकड़ कर नहीं रखा जा सकता उसी प्रकार वह समुद्र भी किसीके द्वारा नहीं राका जा सकता और जिस प्रकार अपस्मारका रोगी किसी भी जगह स्थिर नहीं रहता इसी प्रकार वह समुद्र भी किसी जगह स्थिर नहीं था—लहरोके कारण चंचल हो रहा था । वह समुद्र अकस्मात् ही गम्भीर शब्द करता था बिना कारण ही चंचल था और बिना कारण ही उसमें आवत अर्थात् भँवर पड़ते थे इसलिए उसकी दशा किसी अत्यन्त अस्थिर मनुष्यसे भी बढ़कर हो रही थी क्योंकि अत्यन्त अस्थिर मनुष्य भी अचानक शब्द करने लगता है चिल्ला उठता है बिना कारण ही कापने लगता है और बिना कारण ही आवत करने लगता है इधर-उधर भागने लगता है । वह समुद्र पेन उठनेसे ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ज्वार भाटाओंसे ऐसा मालूम होता था मानो लास्य (नृत्य) ही कर रहा हो लहरोसे ऐसा सुशोभित होता था मानो चल ही रहा हो और हिलनेसे ऐसा दिखाई देता था मानो नशम झूम ही रहा हो अथवा वह समुद्र किसी सर्पके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार सप रत्नसहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी रत्नसहित था जिस प्रकार सपमें उत्कट विष अर्थात् जहर रहता है उसी प्रकार समुद्रमें भी उत्कट विष अर्थात् जल था, जिस प्रकार सप सू सू आदि फुकारोसे भयंकर होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी सू सू आदि शब्दोंसे भयंकर था जिस प्रकार सर्पके देदीप्यमान काचली होती है उसी प्रकार उस समुद्रके भी देदीप्यमान लहरें थी और जिस प्रकार सप चंचल रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी चंचल था । अथवा वह समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो अधिक पानी पीनेसे उसे सर्दी (जुकाम) ही हो गयी हो और इसीलिए हजारों शब्दोंके बहाने छीकें ही ले रहा हो । अथवा वह समुद्र किसी आद्यून अर्थात् बहुत खानेवाले—पेटू मनुष्य के समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार आद्यून मनुष्य बहुत खाता है और बादमें भोजन की अधिकता होनेसे डकारें लता है उसी प्रकार उस समुद्रने भी समस्त नदियोंका जल पी लिया था और बादमें जलकी अधिकता होनेसे वह भी शब्दोंके बहाने डकारें ल रहा था । वह समुद्र अपने गम्भीर पातालरूपी महाउदरके बहानेसे जलसे कभी तृप्त नहीं होता था और इसीलिए मानो उसने तालु पयन्त अपना मुख खोल रखा था । भावाथ—वह समुद्र किसी ऐसे मनुष्यके समान जान पड़ता था जो बहुत खानेपर भी तृप्त नहीं होता क्योंकि जिस प्रकार तृप्त नहीं होनेवाला मनुष्य बहुत कुछ खाकर भी तृप्तासे अपना मुख खोल रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी बहुत कुछ जल ग्रहण कर चुकनेपर भी तृप्तासे अपना मुख खोले रहता था—नदियो

१ अञ्जलम् । २ नितराम् अस्थिरस्थितिम् । असकुसुकोऽस्थिरः इत्यमरः । विशेषनिष्पन्नम् । ३ नृत्यन्तम् । ४ उत्कटजलम् । ५ सीररम् । ६ उत्कटपीनसम् प्रतिश्यायस्तु पीनम् इत्यभिधानात् । ७ औन्निकम् । तस्थिरहितमित्यर्थः । ८ अर्थापि-७ ।

दिशा^१ रावणमाक्रान्त्याचलग्राह^२ विभीषणम्^३ । रक्षमासिव संपातमनिकाय^४ महोदरम्^५ ॥७८॥

वीर्चाद्याहुमिराध्वन्तमजम् नटवेदिकाम् । समर्यादन्वमाहत्य श्रावयन्तमिवात्मनः ॥७९॥

चलद्मिरचलोदग्रैः कल्लोलैरतिवर्तिनम् । सरिद्युवतिसभोगादन्मन्तमिवात्मनि ॥८०॥

तरङ्गिततनु वृद्ध पृथुक व्यक्तरङ्गितम् । सरन्नमतिक्रान्ताङ्ग मग्राहमतिभीषणम् ॥८१॥

लावण्येऽपि न संभोग्य गाम्भीर्येऽन्यनवस्थितम् । महत्त्वेऽपि कृताक्रोश व्यक्तमेव जलाशयम् ॥८२॥

न चास्य मदिरासङ्गो न कोऽपि मदनञ्जर । तक्षायुद्रिकं कन्दर्पमारुढमधुविक्रियम् ॥८३॥

का अन्य जल ग्रहण करनेके लिए तत्पर रहता था । वह समुद्र समस्त दिशाओमें व्याप्त होकर गब्द कर रहा था इसलिए 'रावण' था, उसने अनेक पहाड अपने जलके भीतर डुबा लिये थे इसलिए 'अचलग्राह' था । वह सब जीवोको भय उत्पन्न कराता था इसलिए विभीषण था, अत्यन्त बडा था इसलिए 'अतिकाय' था और बहुत गहरा होनेसे 'महोदर' था इस प्रकार वह ऐसा जान पडता था मानो राक्षमोका समूह ही हो । वह समुद्र अपनी तरगरूपी भुजाओ-के द्वारा किनारेकी वेदीपर निरन्तर आघात करता रहता था इसलिए ऐसा जान पडता था मानो धक्का देकर उसे अपने समर्यादपनेको ही सुना रहा हो । वह पर्वतके समान ऊंची उठती हुई लहरोसे किनारेको उल्लघन कर रहा था इसलिए ऐसा जान पडता था मानो नदीरूप स्त्रियोके साथ सम्भोग करनेसे अपने-आपमें ही नहीं समा रहा हो । उसके गरीरमें अनेक तरगरूपी सिकुडने उठ रही थी इसलिए वह वृद्ध पुरुषके समान जान पडता था, (पक्षमें अत्यन्त बडा था) अथवा वह समुद्र किसी पृथुक अर्थात् बालकके समान मालूम होता था (पक्षमें पृथुक अधिक है जल जिसमें ऐसा था) क्योंकि जिस प्रकार बालक पृथिवीपर घुटनोके बल चलता है उसी प्रकार वह समुद्र भी लहरोके द्वारा पृथिवीपर चल रहा था, जिस प्रकार बालक सरकता है उसी प्रकार वह भी लहरोसे सरकता था, जिस प्रकार बालक अत्यन्त सुन्दर होता है उसी प्रकार वह भी अत्यन्त सुन्दर था । इसके सिवाय वह समुद्र मगरमच्छ आदि जलचरजीवो-से सहित था तथा अत्यन्त भयकर था अथवा वह समुद्र स्पष्ट ही जलाशय (ड और ल में अभेद होनेसे जडाशय) अर्थात् मूर्ख था क्योंकि लावण्य रहनेपर भी वह उपभोग करने योग्य नहीं था जो लावण्य अर्थात् सुन्दरतासे सहित होता है वह उपभोग करने योग्य अवश्य होता है परन्तु समुद्र वैसा नहीं था (पक्षमें लावण्य अर्थात् खारापन होनेसे किसीके पीने योग्य नहीं था) गम्भीरता होनेपर भी वह स्थिर नहीं था, जो गम्भीरता अर्थात् धैर्यसे सहित होता है वह स्थिर अवश्य रहता है परन्तु समुद्र ऐसा नहीं था (पक्षमें गम्भीरता अर्थात् गहराई होनेपर भी वह लहरोसे चंचल रहता था) और महत्त्वके रहते हुए भी वह चिल्लाता रहता था—गालियाँ बका करता था, जो महत्त्व अर्थात् बडप्पनसे सहित होता है वह बडा गान्त रहता है, चिल्लाता नहीं है परन्तु समुद्र ऐसा नहीं था (पक्षमें बडा भारी होनेपर भी लहरोके आघातसे शब्द करता रहता था) इन सब कारणोंसे स्पष्ट है कि वह जडाशय अवश्य था (पक्षमें जल है आशयमें जिसके अर्थात् जलसे भरा हुआ था) । उस समुद्रके यद्यपि मद्यका सगम नहीं था—मद्य-पानका अभाव था तथापि वह आरुढ मधुविक्रिय था अर्थात् मद्यपानसे उत्पन्न होनेवाले विकार—नगाको धारण कर रहा था, इसी प्रकार यद्यपि उसके काम-ञ्जर नहीं था तथापि वह उद्रिक्त-कन्दर्प था अर्थात् तीव्र काम-विकारको धारण करनेवाला था । भावार्थ—इस श्लोकमें श्लेष-

१ रौतीति रावणस्तम् । गब्द कुर्वन्मिति यावत् । पक्षे दगास्यम् । २ पर्वतस्वीकारवन्तम् । पक्षे अचलग्राहमिति कचिद् राक्षसम् । ३ भयकरम् । पक्षे रावणानुजम् । ४ अतिशय मूर्तिम् महान्तमित्यर्थः । पक्षे अतिकायमिति कचिदमुरम् । ५ महाकुक्षिम् । पक्षे महोदरमिति राक्षसम् । ६ उत्कटकामम्, पक्षे उत्कटजलदर्पम् ।

अनाशितमय^१ पीत्वा सुस्वादुसरितां जलम् । गतागतानि कुर्वन्त सतोपादिव धात्रिमि ॥४॥

नदीवधूमिरासेव्य कृतरत्नपरिग्रहम् ।^२ महाभोगिमिराराध्य चातुरन्तमि^३ प्रभुम् ॥५॥

यादोदोधातनिर्घाते दूरोच्चलितशोकरं । सपताकमिवासेपसेयाणधमिनिजयाम् ॥६॥

कुलाचलपृथुस्तम्भजम् द्वापमहौकम्^४ । विनालरत्ननिर्माणमक मालमित्रा^५ द्युतम् ॥७॥

अनादिमस्तपयन्तमसिद्धार्थावगाहनम् । गभीरशब्दसदम श्रुतस्कन्धमिवापरम् ॥८॥

नित्यप्रवृत्तशब्दत्वाद् द्रव्यार्थिकनयाश्रितम् । बाधीनां अणमङ्गित्वान् पयायनयगोचरम् ॥९॥

नित्यानुबद्धतृष्णत्वात् शब्द-जलपरिग्रहान्^६ । गुरुणां^७ च तिरस्कारात् किंराजानमिगान्वहम् ॥१०॥

मूलक विरोधाभास अलंकार है इसलिए प्रारम्भ-कालमें विरोध मालूम होता है परन्तु बादमें उसका परिहार हो जाता है। परिहार इस प्रकार समझना चाहिए कि वह मद्यके सगमसे रहित होकर मधु अर्थात् पुष्परसकी विक्रिया धारण कर रहा था अथवा मनोहर जलपक्षियों की क्रियाएँ धारण कर रहा था और कामज्वरसे रहित होकर भी उद्विक्त-कन्दप था अर्थात् जलके अहंकारसे सहित था। वह समुद्र विनारेपर आती-जाती हुई लहरसे ऐसा जान पड़ता था मानो जिससे कभी तृप्ति न हो ऐसा नदियोंका मीठा जल पीकर लहरा-द्वारा सन्तोषसे गमना गमन ही कर रहा हो। अथवा वह समुद्र चक्रवर्तीके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार चक्रवर्ती अनेक स्त्रियोंके द्वारा सेवित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी नदीरूपी अनेक स्त्रियोंके द्वारा सेवित था जिस प्रकार चक्रवर्तीके पास अनेक रत्नोंका परिग्रह रहता है उसी प्रकार उस समुद्रके पास भी अनेक रत्नोंका परिग्रह था जिस प्रकार चक्रवर्ती महाभोगी अर्थात् बड़े-बड़े राजाओंके द्वारा आराधन करने योग्य होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी महाभोगी अर्थात् बड़े-बड़े सपोंके द्वारा आराधन करने योग्य था और जिस प्रकार चक्रवर्ती चारों ओर प्रसिद्ध रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी चारों ओर प्रसिद्ध था—व्याप्त था। जल-जन्तुओंके आघातसे उड़ी हुई और बहुत दूर तक ऊँची उछटी हुई जलकी बूदोंसे वह समुद्र ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बाकीके समस्त समुद्रोंको जीतनेसे अपनी विजय पताका ही फहरा रहा हो। उस समुद्र का नील रंगका पानी वायुके वेगसे ऊपरको उठ रहा था जिससे वह ऐसा जान पड़ता था मानो कुलाचलरूपी बड़े-बड़े खम्भोंपर बने हुए जम्बूद्वीपरूपी विशाल घरका नील रत्नोंसे बना हुआ एक ऊँचा कोट ही हो। अथवा वह समुद्र दूसरे श्रुतस्कन्धके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार श्रुतस्कन्ध आदि-अन्त रहित है उसी प्रकार वह समुद्र भी आदि-अन्त रहित था, जिस प्रकार श्रुतस्कन्ध समस्त पदार्थोंका अवगाहन निरूपण करनेवाला है उसी प्रकार वह समुद्र भी समस्त पदार्थोंका अवगाहन प्रवेशन धारण करनेवाला है और जिस प्रकार श्रुतस्कन्ध म गम्भीर शब्दोंकी रचना है उसी प्रकार उस समुद्रमें भी गम्भीर शब्द होते रहते थे—अथवा वह समुद्र द्रव्यार्थिक नयका आश्रय लता हुआ-सा जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार द्रव्यार्थिक नयसे प्रत्येक पदार्थमें नित्य शब्दकी प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार उस समुद्रमें भी नित्य शब्द की प्रवृत्ति हो रही थी अर्थात् निरन्तर गम्भीर शब्द होता रहता था। अथवा उसकी लहरें क्षण भगुर थी इसलिए वह पर्यायाधिकके गोचर भी मालूम होता था क्योंकि पर्यायाधिक नय पदार्थोंको क्षणभगुर अर्थात् अनित्य बतलाता है। अथवा वह समुद्र किसी दुष्ट राजाके समान मालूम होता था क्योंकि जिस प्रकार दुष्ट राजा सदा तृष्णासे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी मत्ता तृष्णासे सहित रहता था अर्थात् प्रतिक्षण अनेक नदियोंका जल ग्रहण करते रहने

१ अनृत्तिकरम । २ महामर्षे । ३ साक्षात्क प्रसिद्धमिषय । चातुरङ्ग-स ६० अ० प० । ४ निदूत-
ल० । ५ महाशून्य । ६ जडस्वीकारात् । ७ गुम्फ्याणामव करणान् । ८ कुत्सितराजानम् ।

समत्त्वमतिगम्भीरं भोगिभिर्दृतवेलकम् । सुराजानमिवाव्युच्चैर्वृत्ति मर्यादया धृतम् ॥६१॥

अनेकमन्तरद्वीपमन्तर्वेतिनमात्मनः । दुर्गदंगमिवाहार्यं पालयन्तमलङ्घनैः ॥६२॥

गर्जद्विरितिगम्भीरं नभोव्यापिमिरुजितं । आपूर्यमाणमम्भोभिर्नर्नाधैः किङ्करैरिव ॥६३॥

‘रङ्गितैश्चलितैः’ श्लोभैरुत्थितैश्च विवर्तनैः । ग्रहाविष्टमित्राञ्जृम्भं मध्वान च मधृणितम् ॥६४॥

रत्नाशुचित्रिततल मुक्ताशवलितार्णसम् । ग्रहैरभ्यामित चित्रवक्सुखालोकं च मापणम् ॥६५॥

नदीन रत्नभूयिष्ठमप्राणं चिरजीवितम् । समुद्रमपि चोन्मुद्रं अपकेतुममन्मथम् ॥६६॥

पर भी सन्तुष्ट नहीं होता था, जिस प्रकार दुष्ट राजा जल (जड) अर्थात् मूर्ख मनुष्योसे घिरा रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी निरन्तर जल अर्थात् पानीसे घिरा रहता था, और जिस प्रकार दुष्ट राजा गुरु अर्थात् पूज्य महापुरुषोका तिरस्कार करता है उसी प्रकार वह समुद्र भी गुरु अर्थात् भारी वजनदार पदार्थोका तिरस्कार करता रहता था अर्थात् उन्हें डुवोता रहता था । अथवा वह समुद्र किसी उत्तम राजाके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार उत्तम राजा सत्त्व अर्थात् पराक्रमसे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी सत्त्व अर्थात् जल-जन्तुओसे सहित था, जिस प्रकार उत्तम राजा अत्यन्त गम्भीर होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी अत्यन्त गम्भीर अर्थात् गहरा था, जिस प्रकार उत्तम राजाके समीप अनेक भोगी अर्थात् राजा लोग विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार उस समुद्रकी वेला (तट) पर भी अनेक भोगी अर्थात् सर्प विद्यमान रहते थे, जिस प्रकार उत्तम राजाकी वृत्ति उच्च होती है उसी प्रकार उस समुद्रकी वृत्ति भी उच्च थी अर्थात् उसका जल हवासे ऊँचा उठ रहा था और जिस प्रकार उत्तम राजा मर्यादा अर्थात् कुल-परम्परासे आयी हुई समीचीन पद्धतिसे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी मर्यादा अर्थात् पालीसे सहित था । वह समुद्र अपने मध्यमे रहनेवाले अनेक अन्तर्द्वीपोकी रक्षा कर रहा था वे अन्तर्द्वीप उसके अलघनीय तथा हरण करनेके अयोग्य किलोके समान जान पड़ते थे । वह अतिशय गम्भीर समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो सेवकोके समान निरन्तर बढ़ते हुए, गरजते हुए और आकाशमे फैले हुए मेघोके द्वारा ही जलसे भरा गया हो अथवा वह समुद्र किसी ग्रहाविष्ट अर्थात् भूत लगे हुए मनुष्यके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार ग्रहाविष्ट मनुष्य जमीनपर रेगता है, चलता है, क्षुब्ध होता है, ऊँचा उछलता है और इधर-उधर घूमता है अथवा करवटे वदलता है उसी प्रकार वह समुद्र भी लहरोसे पृथिवीपर रेग रहा था, चल रहा था, क्षुब्ध था, ऊँचा उछलता और इधर-उधर घूमता था अर्थात् कभी इधर लहरता था तो कभी उधर लहरता था, तथा ग्रहाविष्ट मनुष्य जिस प्रकार उज्जृम्भ अर्थात् उठती हुई जमुहाड्योसे सहित होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी उज्जृम्भ अर्थात् उठती हुई लहरोसे सहित था, जिस प्रकार ग्रहाविष्ट मनुष्य शब्द करता है उसी प्रकार समुद्र भी शब्द कर रहा था और जिस प्रकार ग्रहाविष्ट मनुष्य काँपता रहता है उसी प्रकार वह समुद्र भी वायुसे काँपता रहता था । उस समुद्रका तल भाग रत्नोकी किरणोसे चित्र-विचित्र हो रहा था, उसका जल मोतियोसे चित्रित था, और वह चारो ओर मगरमच्छोसे भरा हुआ था इसलिए वह देखनेमे अच्छा भी लगता था और भयानक भी मालूम होता था । वह समुद्र अनेक रत्नोसे

१ भूप्रमर्षणैः । २ चलनैः । ३ उत्थानैः । ४ भ्रमणे । ५ उज्जृम्भणम् । पक्षे जृम्भिकामहितम् । ६ मर्त्ति-पतिम् । निस्वमदृग्म् । ‘नृभावे निपेधे च स्वस्वार्थे व्यतिक्रमे । ईपदर्थे च मादृश्ये तद्विरुद्धतदन्ययोः ॥’ इत्यभिधानात् । ७ आप प्राण यस्य स तम् । पक्षे गतप्राणम् । ८ चिरकालम्यायिनम् । —जीविनम् अ०, प०, व०, न०, ड० । ९ मुद्रया सहितम् । १० मुद्रारहितम् । महान्तमिन्त्यर्थः । ११ झपाड़कितम् । १२ मन् मनो मन्वानोति मन्मथ न मन्मथ अमन्मथस्त मनोद्वगमित्यर्थः ।

अदृष्टपारमक्षोभ्यमसहाय^१ मनुसरम् । सिद्धालयमिव न्यक्तमन्यक्तममृतास्पदम् ॥९७॥
 क्वचि^२ सहोपलब्धार्था^३ दृतसंभ्राजनिभम् । कृताघतममारम्भ क्वचिर्धौलादमरस्मिनि ॥९८॥
 हरिर्मणिप्रमोत्सर्प^४ क्वचिसदिग्ध शंखलम् । क्वचिच्च कानुमो कान्ति तन्वान विदुमाद्गुर ॥९९॥
 क्वचिच्छुनिपुणोद्भेदसमुच्चलितमानिकम् । तारकानिकराकारं हसन्त जलमृत्पथम् ॥१००॥
 वलापयन्तसमू^५ उत्सवराज्ञांशुशीकर^६ । क्वचिदिन्द्रधनुर्लैर्या^७ लिखन्तमिव खाद्विण ॥१०१॥
 रथाङ्गपाणिरित्युचै^८ समुत् रक्षकीर्णिभिः । महानिधिभिर्वापूवमपश्य मरुताकरम् ॥१०२॥

मरा हुआ था इसलिए नदीन अर्थात् दीन नहीं था यह उचित था (पक्षम 'नदी इन नदियोंका स्वामी था) परन्तु अध्राण अर्थात् प्राणरहित होकर भी चिरजीवित अर्थात् बहुत समय तक जीवित रहनेवाला था, समुद्र अर्थात् मुद्रासहित होकर भी उ-मुद्र अर्थात् मुद्रारहित था और झपकेतु अर्थात् मछलीरूप पताकासे सहित होकर भी अममथ अर्थात् कामदेव नहीं था यह विरुद्ध बात थी किन्तु नीचे लिखे अनुसार अथमे परिवर्तन कर देनेसे कोई विरुद्ध बात नहीं रहती । वह प्राणरहित होनेपर भी चिरजीवित अर्थात् चिरस्थायी रहनेवाला था अथवा चिरकालसे जलसहित था समुद्र अर्थात् सागर होकर भी उ-मुद्र अर्थात् उत्कृष्ट आनन्दको देनेवाला था (उद् उत्कृष्टा मुदं हर्षं राति-ददातीति उ-मुद्र) और झपकेतु अर्थात् समुद्र अथवा मछलियोंके उत्पावसे सहित होकर भी अमन्मथ अर्थात् काम नहीं था । अथवा वह समुद्र स्पष्ट ही सिद्धालयके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार सिद्धालयका पार दिखाई नहीं देता है उसी प्रकार उस समुद्रका भी पार दिखाई नहीं देता था — दोनों ही अदृष्टपार थे, जिस प्रकार सिद्धालय अक्षोभ्य है अर्थात् आकुलतारहित है उसी प्रकार समुद्र भी अक्षोभ्य था अर्थात् शोभित करनेके अयोग्य था उसे कोई गँदला नहीं कर सकता था, जिस प्रकार सिद्धालयका कोई सहार नहीं कर सकता उसी प्रकार उस समूहका भी कोई सहार नहीं कर सकता था जिस प्रकार सिद्धालय अनुत्तर अर्थात् उत्कृष्ट है उसी प्रकार वह समुद्र भी अनुत्तर अर्थात् तरनेके अयोग्य था जिस प्रकार सिद्धालय अव्यक्त अर्थात् अप्रकट है उसी प्रकार वह समुद्र भी अव्यक्त अर्थात् अगम्य था और सिद्धालय जिस प्रकार अमतास्पद अर्थात् अमत् (मोक्ष) का स्थान है उसी प्रकार वह समुद्र भी अमत् (जल) का स्थान था । कही तो वह समुद्र पञ्चराग मणिपोस सध्याकालके बादलोंकी शोभा अथवा सदेह धारण कर रहा था और कही नील मणियोंकी किरणोंसे गाढ अधिकारका प्रारम्भ करता हुआ-सा जान पड़ता था । कही हरित मणियोंकी कान्तिके प्रसारसे उसमें शवालका सदेह हो रहा था और कही वह मूँगाओके अंकुरोंसे कुकुमकी कान्ति फैला रहा था । कही सीपोंके सम्पुट खुल जानेसे उसमें मोती तर रहे थे और उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओके समूहसे भरे हुए आकाशकी ओर हँस ही रहा हो । तथा कहीपर किनारेके समीप ही समस्त रत्नोंकी किरणोंसहित जलकी छोटी छोटी बूद पड़ रही थी उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशरूपी आगनम इन्द्रधनुषकी रेखा ही लिख रहा हो । इस प्रकार जो ऊँचे तक बरोहों रत्नासे भरा हुआ था ऐसे उस समुद्रका चक्रवर्तीनि अपूर्व महानिधिसे समान देता ॥ ६८-१०२ ॥

१ अविनायक । २ न विद्यत उत्तर अष्टो यस्मात् स तम । ३ सलिलपीयूषनिवासम् । पक्ष अममस्थानम् ।
 मुधाकरणपसलिलाभ्यमोसवन्तोरिषिपक्वच्छिन्नसहायदिविजम्भृतम् इत्यभिधानात् । ४ पञ्चराग
 मणिश्च । ५ लिप्ति । सदेहद्विपयीकृत । ६ समुत्सवप्रानारत्नमरीचियुतशीकर । ७ -सकर प० ।
 ८ मकरालयम् क ।

दृष्ट्वाऽथ त महाभाग. कृतधीर्धोरनि.स्वनम् । दृष्ट्वैवातुल्यचक्रा गोप्पदावन्नयान्वम् ॥१०३॥

ततोऽभिमनसगिद्यै कृतमिद्वनमस्क्रियः । रथ प्रचोदयेत्युच्चैः प्राजितारमचोदयत ॥१०४॥

विमुक्तप्रग्रहैर्वाहैरुह्यमानो मनोजर्वः । लवणाद्यां द्रुत प्रायाद् यानपात्रायितो रथ ॥१०५॥

रथो मनोरथात् पर्व रथान् पर्व मनोरथ । इति समाच्यवेगोऽर्भो रथो वायि व्यगाहत ॥१०६॥

जलस्तम्भ. प्रयुक्तो नु जल न स्थलतां गतम् । म्यन्दन यदमी वाहा जले निन्युः स्थलास्थया ॥१०७॥

तथैव चक्रचीत्कार तथैवाच्चै प्रधौरितम् । यथा वहिर्जलं पूर्वमहो पुण्य रथाङ्गिनः ॥१०८॥

महद्मिरपि कललालैः ग्रीक्यमानास्तुरङ्गमाः । रथ निन्युरनायामात् प्रत्युत्तेपा म विश्रमः ॥१०९॥

रथचक्रममुत्पीडाजलोत्पीडः खमुत्पतन् । न्यधाद् ध्वजागुके जाड्य जलानामीदृशी गतिः ॥११०॥

नाङ्गरागस्तुरङ्गाणामाद्रितः श्रमवर्मितैः । क्षालित. खुरवेगोत्थैः केवल ग्रीकरैरपाम् ॥१११॥

क्षण रथाङ्गमङ्घ्र्याजलमन्धेर्द्विधाऽभवत् । व्यभावि भाविना वर्त्म चक्रिणामिव सूत्रितम् ॥११२॥

रथोऽस्याभिमता भूमि प्रापन्वारयिचोदितः । मनोरथोऽपि सन्निधि पुण्यमारयिचोदितः ॥११३॥

तदनन्तर—महाभाग्यगाली वृद्धिमान् भरतने गम्भीर गव्व करते हुए उस समुद्रको देखकर, दृष्टि मात्रसे ही उसे गायके खुरके समान तुच्छ समझ लिया ॥१०३॥ और फिर अपने मनोरथकी सिद्धिके लिए सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार कर 'गीघ्र ही रथ बढ़ाओ' इस प्रकार सारथिके लिए जोरसे प्रेरणा की ॥१०४॥ जिनकी रास ढीली कर दी गयी है और जिनका वेग मनके समान है ऐसे घोड़ोंके द्वारा ले जाया जानेवाला वह रथ लवणसमुद्रमे जहाजकी नाई गीघ्रताके साथ जा रहा था ॥१०५॥ मनोरथसे पहले रथ जाता है अथवा रथसे पहले मनोरथ जाता है इस प्रकार जिसके वेगकी सम्भावना की जा रही है ऐसा वह रथ समुद्रमे बड़े वेगके साथ जा रहा था ॥१०६॥ क्या वह जलस्तम्भिनी विद्यासे थँभा दिया गया था अथवा स्थलपनेको ही प्राप्त हो गया था क्योंकि चक्रवर्तीके घोड़े स्थल समझकर ही जलमे रथ खींचे लिये जा रहे थे ॥१०७॥ जिस प्रकार जलके बाहर पहियोका चीत्कार गव्व होता था उसी प्रकार जलके भीतर भी हो रहा था और जिस प्रकार जलके बाहर घोड़े दौड़ते थे उसी प्रकार जलके भीतर भी दौड़ रहे थे, अहा ! चक्रवर्तीका पुण्य भी कैसा आश्चर्यजनक था ॥१०८॥ वे घोड़े बड़ी-बड़ी लहरोसे सींचे जानेपर भी विना किसी परिश्रमके रथको ले जा रहे थे । उन लहरोसे उन्हें कुछ दुख नहीं होता था बल्कि उनका परिश्रम दूर होता जाता था ॥१०९॥ रथके पहियेके आघातसे आकाशकी ओर उछलनेवाले जलके समूहने ध्वजाके वस्त्रमे भी जाड्य अर्थात् भारीपन ला दिया था सो ठीक ही है क्योंकि जलका ऐसा ही स्वभाव होता है । भावार्थ—संस्कृत काव्योमे ड और ल के बीच कोई भेद नहीं माना जाता इसलिए जलानाम्की जगह जडानाम् पढ़कर चतुर्थ चरणका ऐसा अर्थ करना चाहिए कि मूर्ख मनुष्योंका यही स्वभाव होता है कि वे दूसरोमे भी जाड्य अर्थात् मूर्खता उत्पन्न कर देते हैं ॥११०॥ घोड़ोंके शरीर-पर लगाया हुआ अगराग (लेप) परिश्रमसे उत्पन्न हुए पसीनेसे गीला नहीं हुआ था केवल खुरोंके वेगसे उठे हुए जलके छीटोंसे ही धुल गया था ॥१११॥ रथके पहियोंके सघट्टनसे क्षण-भरके लिए जो समुद्रका जल फटकर दोनों ओर होता जाता था वह ऐसा मालूम होता था मानो आगे होनेवाले मगर आदि चक्रवर्तियोंके लिए सूत्र डालकर मार्ग ही तैयार किया जा रहा हो ॥११२॥ सारथिके द्वारा चलाया हुआ चक्रवर्तीका रथ उनके अभिलपित स्थानपर पहुँच

१ महाभाग ल० । २ नारथिम् । ३ त्यक्तरज्जुभि । ४ अगच्छन् । ५ स्थलमिति वृद्ध्या । ६ गतिविशेषा-
क्रान्तम् । ७ जलाद् वहि । स्थले इत्यर्थः । ८ सिच्यमाना । ९ मेचनविधि । १० श्रमहरणकारणम् ।
११ नमुत्पीडनात् । १२ जलममूह । जलाना जडानामिति वृत्ति । १३ स्वदै ।

गया कतिपयान्यधौ योजनानि रथ प्रभो । स्थित^१ऽन्तर्जलमाश्रय्य प्रस्तादिव इव वाधिना ॥११४॥
 द्विपञ्चोजनमागच्छ स्थित^२ मध्यऽणव^३ रथे । रथाङ्गपाणिरासृष्ट^४ अग्राह किल क्षामुकम् ॥११५॥
 स्फुरन्त्य वज्रकाण्डं तद्वनुरारोपितं यदा । तदा जाधितसदहदोलारुडमभूजगत् ॥११६॥
 स्फुरन्मौर्वतिवस्तस्य मुहुः प्रवानयन् रिसा । प्रभोभमनयद्वार्धिं चलत्सिमिकुलाकुलम् ॥११७॥
 सहाय^५ किममुष्मादिधस्तं धिद्वमिदं जगत् । इत्याशङ्क्य क्षणं तस्य तदा नमसि स्वधर ॥११८॥
 चक्रऽपि गुणवत्स्यस्मिन्नुत्कृष्टमणि कार्मुकं । अमोघं सदधौ बाण इलाध्य^६ स्थानकमस्मिन् ॥११९॥
 अहं हि भरतो नाम चक्रा वृषसनन्दन । मत्सान्मवन्तु^७ मदभुक्तिवात्सिनां व्यन्तरामरा ॥१२०॥
 इति व्यक्तलिपिन्यासो दूतमुत्सव इव हुतम् । स पत्रा^८ चक्रिणा सुखं प्रादुसूयामास्थितो गतिम् ॥१२१॥
 जितनिवृत्तिनिर्वापं धरणिं कुवच्चमस्तलान् । न्यपसन्मागधावासे तत्सन्ध्यं क्षोभमानयन् ॥१२२॥
 क्रियं धुमितिऽश्मोधि क्लृपन्तपत्रनाहत । निर्वातं किंस्विदुध्वान्तो भूमिकम्पो नु जृम्भत ॥१२३॥
 इत्याकुलाकुलधियस्तच्छिकायापगा सुरा । पदिवधुस्यस्यैव सन्नद्धा मागधं प्रभुम् ॥१२४॥
 वद दीप्तं शरं कोऽपि पतितोऽश्मत्समाङ्गणे । तनाय प्रकृत^९ क्षोभो न किञ्चित्कारणान्तरम् ॥१२५॥

गया और पुण्यरूपी सारथिके द्वारा प्ररित हुआ उनका मनोरथ भी सफलताको प्राप्त हो गया ॥११३॥ महाराज भरतका रथ समुद्रम कुछ योजन जाकर जलके भीतर ही खड़ा हो गया मानो समुद्रने ऊपरकी ओर बढ़कर उसके छोड़े ही थाम लिये हो ॥११४॥ जब वह रथ समुद्रके भीतर चारह योजन चलकर खड़ा हो गया तब चक्रवर्तीने कुछ कुपित होकर धनुष उठाया ॥११५॥ जिसको प्रत्यक्षा (दोरी) स्फुरायमान है और काण्ड वज्रके समान है ऐसा वह धनुष जिस समय चक्रवर्तीने प्रत्यक्षासे युक्त किया था उसी समय यह जगत् अपने जीवित रहनेके सन्देह रूपी झूलापर आरुढ़ हो गया था अर्थात् समस्त ससारको अपने जीवित रहनेका सन्देह हो गया था ॥११६॥ समस्त दिशाओकी बार-बार शब्दायमान करते हुए चक्रवर्तीके धनुषकी स्फुरायमान प्रत्यक्षाके शब्दने इधर-उधर भागते हुए मच्छोके समूहसे भरे हुए समुद्रको भी क्षोभित कर दिया था ॥११७॥ क्या यह चक्रवर्ती इस समुद्रका सहार करना चाहता है अथवा समस्त ससारका ? इस प्रकार आशंका कर विद्याधर लोग उस समय क्षण भरके लिए आकाशमें खड़े हो गये थे ॥११८॥ जो टेढ़ा होकर भी गुणवान् (पक्षमें दोरीसे सहित) और सरल काय करनेवाला था (पक्षमें सीधा बाण छोड़नेवाला था) ऐसे उस धनुषपर चक्रवर्तीने प्रशसनीय योग्य आसनसे खड़े होकर भी व्यथ न जानेवाला अमोघ नाभिका बाण रखा ॥११९॥ न वृषभ देवका पुत्र भरत नामका चक्रवर्ती हूँ इसलिए मेरे उपभोगके योग्य क्षेत्रम रहनेवाले सब व्यन्तर देव मेरे अधीन हो इस प्रकार जिसपर स्पष्ट अक्षर लिखे हुए है ऐसा हुआ वह चक्रवर्तीके द्वारा चलाया हुआ बाण भुरप दूतकी तरह पूव दिशाकी ओर मुख कर चला ॥१२०-१२१॥ और जिसने वज्रपातके शब्दको जीत लिया है ऐसा भारी शब्द करता हुआ तथा मागध देवकी सनाम क्षोभ उत्पन्न करता हुआ वह बाण आकाश-तलसे मागध देवके निवासस्थानम जा पड़ा ॥१२२॥ क्या यह कल्पान्त कालके वायुसे ताडित हुआ समुद्र ही क्षोभको प्राप्त हुआ है ? अथवा जोरस गन्ध करता हुआ वज्र पड़ा है ? अथवा भूमिकम्प ही हो रहा है ? इस प्रकार जिनकी बुद्धि अत्यन्त व्याकुल हो रही है ऐसे उसके समीप रहनेवाले व्यन्तरदेव तैयार होकर मागध देवक पास आये और उसे घेरकर खड़े हो गये ॥१२३ १२४॥ हे देव, हमारे सभा

१ जलमध्य । २ अण्वण्व । ३ वज्र । ४ स्फुरत्युत्थिता भौर्वी यस्य स तम । ५ चक्रिण । ६ स्थानकम् प्रयागल टांगस्थानम् । ७ मन्त्रीना भवन्तु । ८ मम क्षत्रवाग्नि इत्यर्थ । ९ बाण । १० पूर्वभिन्नीम् । ११ जगति । १२ अत्याकुलवद्वय । १३ विहित ।

येनायं प्रहितः पत्नी नाकिना दानवेन वा । तस्य कर्तुं प्रतीकारमिमं मज्जा वयं प्रभो ॥१२६॥
 इत्यारक्षि^१ भटैस्तूर्णमन्यं विज्ञापितः प्रभुः । अलमाध्वं^२ मटालापरित्युच्चैः प्रत्युवाच तान् ॥१२७॥
 यूय तं^३ एव मद्व्राह्मणः सोऽहमेवास्मि मागधः । श्रुतपूर्वमिदं किं वः सोऽहपूर्वं मयेत्यग्निः ॥१२८॥
 विमर्ति यः पुमान् प्राणान्^४ परिभूतिमलीमन्वान् । न गुणैर्लिङ्गमात्रेण पुमानेयं प्रतीयते ॥१२९॥
 न चित्रपुरुषो वास्तु चञ्चापुरुष^५ एव च^६ । यो विनापि गुणैः पौंसैर्नाग्नैर्व^७ पुरुषायते ॥१३०॥
 न पुमान् यः पुनर्निते स्य कुल जन्म च पौरुषैः । भट्टवृत्रो जनो यस्तु तस्यास्व^८ भवनिर्भुवि ॥१३१॥
 विजिगीषुतया देवा^९ वयं नेच्छाविहारतः^{१०} । ततोऽरिविजयादेव सयदस्तु मदापि नः ॥१३२॥
 वस्तुवाहनराज्याङ्गैराश्रयति यः परम् । परभोगीणमैश्वर्यं^{११} तस्य मन्ये विडम्बनम् ॥१३३॥
 शरशाली प्रभुः कोऽपि मत्तोऽयं^{१२} धनमीप्सति । धनायतोऽस्य दास्यामि निधनं प्रथमै^{१३} ममम् ॥१३४॥
 विचृण्वन् शरं तावन् कोपाग्नेः प्रथमेन्धनम् । करवाणीदमेवास्तु^{१४} तनुशकैरुपेन्धनम्^{१५} ॥१३५॥

भवनके आंगनमे कोई देदीप्यमान वाण आकर पडा है उसीसे यह क्षोभ हुआ है इसका दूसरा कारण नहीं है ॥१२५॥ हे प्रभो, जिस किसी देव अथवा दानवने यह वाण छोडा है हम सब लोग उसका प्रतिकार करनेके लिए तैयार हैं ॥१२६॥ इस प्रकार रक्षा करनेवाले वीर योद्धाओं-ने शीघ्र ही आकर अपने स्वामी मागध देवसे निवेदन किया और मागध देवने भी बडे जोरसे उन्हे उत्तर दिया कि चुप रहो, इस प्रकार वीर वाक्योसे कुछ लाभ नहीं है ॥१२७॥ तुम लोग वे ही मेरे अधीन रहनेवाले देव हो और मैं भी वही मागध देव हूँ, क्या मुझे कभी पहले अपना शत्रु सहन हुआ है ? यह बात तुम लोगोने पहले भी कभी सुनी है ? ॥१२८॥ जो पुरुष पराभव-से मलिन हुए अपने प्राणोको धारण करता है वह गुणोसे पुरुष नहीं कहलाता किन्तु केवल लिङ्ग-से ही पुरुष कहलाता है ॥१२९॥ जो पुरुष, पुरुषोमे पाये जानेवाले गुणोके बिना केवल नामसे ही पुरुष बनना चाहता है वह या तो चित्रमे लिखा हुआ पुरुष है अथवा तृण काष्ठ वगैरहसे बना हुआ पुरुष है ॥१३०॥ जो अपने पराक्रमसे अपने कुल और जन्मको पवित्र करता है वास्तवमे वही पुरुष कहलाता है, इसके विपरीत जो मनुष्य झूठमूठ ही अपनेको वीर कहता है पृथिवीपर उसका जन्म न लेना ही अच्छा है ॥१३१॥ हम लोग शत्रुओको जीतनेसे ही 'देव' कहलाते हैं, इच्छानुसार जहाँ-तहाँ विहार करनेमात्रसे देव नहीं कहलाते इसलिए हम लोगोकी सम्पत्ति सदा शत्रुओको विजय करनेमात्रसे ही प्राप्त हो ॥१३२॥ जो मनुष्य रत्न आदि वस्तु, हाथी घोडे आदि वाहन और छत्र चमर आदि राज्यके चिह्न देकर किसी दूसरेकी आराधना-सेवा करता है उसका ऐश्वर्य दूसरोके उपभोगके लिए हो और मैं ऐसे ऐश्वर्यको केवल विडम्बना समझता हूँ ॥१३३॥ वाण चलानेवाला यह कोई राजा मुझसे धन चाहता है सो इसके लिए मैं युद्धके साथ-साथ निधन अर्थात् मृत्यु दूँगा ॥१३४॥ सबसे पहले मैं इस वाण-को चूर कर अपने क्रोधरूपी अग्निका पहला ई धन बनाऊँगा, यही वाण अपने छोटे-छोटे टुकड़ो-

१ प्रभो वयम् स०, अ०, प०, इ० । २ अङ्गरक्षिभटै । ३ तूर्णी तिष्ठत । ४ ते पूर्वमिन् विद्यमाना एव । ५ परिभव । ६ तृणपुरुष । 'चञ्चोऽनलादिनिर्माणे चञ्चा तु तृणपुरुषे' इत्यभिधानात् । करिकलभन्यायमाश्रित्य पुनः पुरुषशब्दप्रयोगः । ७ वा ल०, व०, अ०, प०, म०, द०, इ० । ८ पुरुषसवन्विभि । ९ अनुत्पत्ति । 'नडो नि शापे' इति अनिप्रत्ययान्तः । १० दीव्यन्ति विजिगीषन्तीति देवा । ११ स्वैरविहारतः । क्रीडाविहारतः इति भावः । १२ परभोगिभ्यो हितम् । १३ अस्मत् । १४ प्रथमै द०, इ०, ल०, अ०, प०, म० । युद्धे । 'युद्धमायोवनं जन्यं प्रथमं प्रविदारणम्' इत्यभिधानात् । १५ अलगकलै (चूर्णीकृतशरीरेन्वनै) । शत्रुशरीरकलै । १६ मधुक्षणम्, अग्निज्वालनम् ।

साक्षेपमिति सरम्माहुर्वीर्यं गिरमूर्जिताम् । ध्वरसाद् दशनज्यास्ता सहस्रमागधामरः ॥१३६॥
 ततस्तमूचुरभ्यर्णा सुरा इत्यपरम्परा । प्रभु शमयितु क्रोधाद् विद्या^१वृद्धैर्धिमो^२ दिधति ॥१३७॥
 यथार्थ^३ वरमर्थं च^४ मित च बहुविस्तरम् । अनाकुल च गम्भीर^५ नाधियामीदृश वच ॥१३८॥
 सत्य परिमव^६ मोदुमशक्त्यो मानशालिनाम् । बल^७प्रद्विभिरोधस्तु स्वपरामधकारणम् ॥१३९॥
 सत्यमेव यशो रक्ष्य प्राणैरपि धनैरपि । तत्तु प्रभुमनाधिय कथ हभ्यत धाधन ॥१४०॥
 अलब्धमावो लब्धार्थपरिरक्षणमित्यपि । द्रुममत्तं सुगन्धलम्ब जिगीषानाश्रय धिना ॥१४१॥
 बलिनामपि सन्त्येव बलीयांसो मनस्विन । बलवानहमस्माति नारमन्तव्यमत परम् ॥१४२॥
 न किञ्चिदभ्यनालोच्य विधेय सिद्धिकाम्यता^८ । तत शर कुतस्योऽय क्रिमीया^९ वेति मृग्यताम् ॥१४३॥
 श्रुत च बहुशोऽस्माभिराप्तीय^{१०} पुष्कल वच । जिनाश्चक्रपरस्पाथ वस्यन्ताहति भारत ॥१४४॥
 नून चक्रिण एवाय जयाशसो शरागम । धूता^{११}धतमसोद्योत समायोऽन्यत्र किं रवे^{१२} ॥१४५॥
 अथवा रलु^{१३} सशय्य चक्रपाणय शर । यनक्ति व्यस्तमवैन^{१४} तन्नामाशरमालिका ॥१४६॥

स मेरी क्रोधरूपी अग्निको प्रज्वलित करनेवाला हो ॥१३५॥ इस प्रकार वह मागध देव क्रोधसे तिरस्कारके साथ-साथ कठोर वचन कहकर दांतोंकी कान्तिको सकुचित करता हुआ जब चुप हो रहा ॥१३६॥ तब कुल-परम्पराको देखनेवाला समीपवर्ती देव उसका क्रोध शमन करनेके लिए उससे कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि राजा लोगोंकी स्थिति विद्याकी अपेक्षा बृद्ध हुए मनुष्योंसे ही होती है, भावार्थ—जो मनुष्य विद्याबृद्ध अर्थात् विद्याकी अपेक्षा बड़े है उहीमे राजा लोगोंकी मर्यादा स्थिर रहती है किन्तु जो मनुष्य केवल अवस्थासे बड़े हैं उनसे कुछ लाभ नहीं होता ॥१३७॥ उन देवोंने जो वचन कहे थे वे समयके अनुकूल थे, अर्थसे भरे हुए थे परिमित थे अथको अपेक्षा बहुत विस्तारवाला थे, आकुलतारहित थे और गम्भीर थे सो ठीक ही है क्योंकि मूर्खोंके ऐसे वचन कभी नहीं निकलते ह ॥१३८॥ उन देवोंने कहा कि हे प्रभो, यह ठीक है कि अभिमानी मनुष्योंको अपना परामव सहन नहीं हो सकता है परन्तु बलवान् पुरुषोंके साथ विरोध करना भी तो अपने परामवका कारण है ॥१३९॥ यह बिलकुल ठीक है कि अपने प्राण अथवा धन देकर भी यशकी रक्षा करनी चाहिए परन्तु वह यश किसी समय पुरुषका आश्रय किये बिना बुद्धिमान् मनुष्योंको किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ? ॥१४०॥ प्राप्त नहीं हुई वस्तुका प्राप्त होना और प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा करना ये दोनों ही कार्य किसी विजिगीषु राजाके आश्रयके बिना सुखपूर्वक प्राप्त नहीं हो सकते ॥१४१॥ हे प्रभो बलवान् मनुष्योंकी अपेक्षा और भी अधिक बलवान् तथा बुद्धिमान् ह इसलिए मैं बलवान् ह इस प्रकार कभी गव नहीं करना चाहिए ॥१४२॥ सिद्धि अर्थात् सफलताकी इच्छा करनेवाले पुरुषको बिना विचारे कुछ भी कार्य नहीं करना चाहिए इसलिए यह बाण कहाँसे आया है ? और किसका है ? पहल इस बातकी खोज करनी चाहिए ॥१४३॥ इस भारतवर्षमें चक्रवर्तियोंके साथ तीर्थ कर निवास करेंगे, अवतार लेंगे ऐसे आप्त पुरुषोंके यथाथ वचन हम लोगों ने अनेक बार सुने ह ॥१४४॥ विजयको सूचित करनेवाला यह बाण अवश्य ही चक्रवर्तीका ही होगा क्योंकि सघन अधिकारको नष्ट करनेवाला प्रकाश क्या भूयके सिवाय किसी अन्य वस्तुमें भी सम्भव हो सकता है ? अर्थात् नहीं ॥१४५॥ अथवा इस विषयमें सशय करना ग्रथ है । यह बाण चक्रवर्तीका ही है क्योंकि इसपर खुदे हुए नामक अक्षरोंकी माला साफ-साफ हो

१ प्रभो स्थितिविद्यावृद्धमवति हि । २ प्रभो ल० । ३ यथावसरमर्थं च द ल० अ
 प म द० । ४ अभिलषणीयम् । ५ बुद्धिहीनानाम् । ६ सिद्धि वाञ्छता । ७ वस्य संबधि ।
 ८ विद्यायनाम् । ९ आप्तमवति । १० रवि विवन् । ११ शङ्का भा कार्पी । १२ चक्रिनामाक्षर ।

तदेनं शरमभ्यर्च्य गन्धमालयाक्षतादिभिः । पूज्याद्यैव विमोराज्ञा गत्वास्मामि. शरार्पणा ॥१४७॥
 मा गा मागध वैचित्य^१ कार्यमेतद् विनिश्चिनु । न शुक्तं तत्प्रतीपत्वं^२ तत्र तद्देववासिनः^३ ॥१४८॥
 तदलं देव संरभ्य^४ तत्प्रातीप्यं^५ न शान्तये । महतः सरिद्रोघस्य^६ कः प्रतीप तरन् सुखी ॥१४९॥
 वलवाननुवर्त्यश्चेदनुनेथोऽद्य चक्रभृत् । महत्सु बैतसी^७ वृत्तिमामनन्त्यविपत्करीम् ॥१५०॥
 इहामुत्र च जन्तूनामुन्नत्यै पूज्यपूजनम् । तापं^८ तत्रानुवध्नाति पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ॥१५१॥
 इति तद्वचनात्किंचित् प्रबुद्ध इव^९ तत्क्षणम् । अज्ञातमेवमेतत्स्यादित्यसौ प्रत्यपद्यत^{१०} ॥१५२॥
 ससभ्रममिवास्याभूच्चित्तं किंचित्समाधिरसम् । साशङ्कमिव^{११} सोद्रेगं प्रबुद्धमिव च क्षणम् ॥१५३॥
 ततः प्रसेदुषी^{१२} तस्य नचिरादेव^{१३} शोमुषी । पूर्वापर व्यलोकित कोपापायात प्रगेमुषी^{१४} ॥१५४॥
 सोऽद्य चक्रभृतामाद्यो भरतोऽलङ्घ्यशासन । प्रतीक्ष्य^{१५} सर्वथास्माभिरनुनेयश्च सादरम् ॥१५५॥
 चक्रित्वं चरमाङ्गत्वं पुत्रत्व च जगद्गुरोः । इत्यस्य पूज्यमेकैकं किं पुनस्तत्समुचितम् ॥१५६॥
 इति निश्चित्य^{१६} संभ्रान्तैरनुयात. सुरोत्तमैः । सहस्रा चक्रिण द्रष्टुमुच्चंचाल स मागधः ॥१५७॥

चक्रवर्तीको प्रकट कर रही है ॥१४६॥ इसलिए गन्ध माला अक्षत आदिसे इस बाणकी पूजा कर हम लोगोको आज ही वहाँ जाकर उनका यह बाण उन्हें अर्पण कर देना चाहिए और आज ही उनकी आज्ञा मान्य करनी चाहिए ॥१४७॥ हे मागध, आप किसी प्रकारके विकारको प्राप्त मत हूजिए, और हम लोगोके द्वारा कहे हुए इस कार्यका अवश्य ही निश्चय कीजिए, क्योंकि उनके देशमे रहनेवाले आपको उनके साथ विरोध करना उचित नहीं है ॥१४८॥ इसलिए हे देव, क्रोध करना व्यर्थ है, चक्रवर्तीके साथ वैर करनेसे कुछ शान्ति नहीं होगी क्योंकि नदीके बड़े भारी प्रवाहके प्रतिकूल तैरनेवाला कौन सुखी हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥१४९॥ यदि वलवान् मनुष्यको अनुकूल बनाये रखना चाहिए यह नीति है तो चक्रवर्तीको आज ही प्रसन्न करना चाहिए, क्योंकि बड़े पुरुषोके विषयमे बैतके समान नम्र वृत्ति ही दुःख दूर करनेवाली है ऐसा विद्वान् लोग मानते हैं ॥१५०॥ पूज्य मनुष्योकी पूजा करनेसे इस लोक तथा परलोक—दोनों ही लोकोमे जीवोकी उन्नति होती है और पूज्य पुरुषोकी पूजाका उल्लघन अर्थात् अनादर करनेसे दोनों ही लोकोमे पापबन्ध होता है ॥१५१॥ इस प्रकार उन देवोके वचनोसे जिसे उसी समय कुछ-कुछ बोध उत्पन्न हुआ है ऐसे उस मागध देवने मुझे यह हाल मालूम नहीं था यह कहते हुए उनके वचन स्वीकार कर लिये ॥१५२॥ उस समय उसके चित्तमे कुछ घबडाहट, कुछ भय, कुछ आशका, कुछ उद्वेग और कुछ प्रबोध-सा उत्पन्न हो रहा था ॥१५३॥ तदनन्तर थोड़ी ही देरमे निर्मल हुई और क्रोधके नष्ट हो जानेसे शान्त हुई उसकी बुद्धिने आगे पीछेका सब हाल देख लिया ॥१५४॥ यह वही चक्रवर्तियोमे पहला चक्रवर्ती भरत है जिसकी कि आज्ञाका कोई उल्लघन नहीं कर सकता, हम लोगोको हरएक प्रकारसे इसकी पूजा करनी चाहिए और आदरसहित इसकी आज्ञा माननी चाहिए ॥१५५॥ यह चक्रवर्ती है, चरमशरीरी है और जगद्गुरु भगवान् वृषभदेवका पुत्र है, इन तीनोंमे-से एक-एक गुण ही पूज्य होता है फिर जिसमे तीनोंका समुदाय है उसकी तो बात ही क्या कहनी है ? ॥१५६॥ इस प्रकार निश्चय कर वह मागध देव शीघ्र हो चक्रवर्तीको देखनेके लिए आकाश-मार्गसे चला, उस समय सम्भ्रमको प्राप्त हुए अनेक अच्छे-अच्छे देव उसके पीछे-पीछे

१ चित्तविकारम् । २ चक्रप्रतिकूलत्वम् । ३ -वर्तिन ल० । ४ मरम्भ मा कार्पो । ५ प्रातिकूल्यम् । ६ प्रवाहस्य । ७ बैतमसम्बन्धिनीम् । अनुकूलतामित्यर्थ । ८ पाप ल० । ९ जन्तो । १० एव । ११ अनु-मेने । १२ इव अवधारणे । १३ प्रमन्नवर्ती । १४ अलकालेनैव । १५ उपशमवर्ती । १६ पूज्य । मागधिक, मशयापन्नमानस । १७ मम्भ्रमवद्भि ।

7777

अथ तद्विषयसंग्रहः । तद्विषयसंग्रहः । तद्विषयसंग्रहः । तद्विषयसंग्रहः । तद्विषयसंग्रहः ।
तद्विषयसंग्रहः । तद्विषयसंग्रहः । तद्विषयसंग्रहः । तद्विषयसंग्रहः । तद्विषयसंग्रहः ।

[illegible]

अथानन्तर-वहाँ गङ्गा रह्यो तब आर्जुनान्तरिममुद्रा लगाए महाराज भरत को कुछ आश्चर्य हुआ गो दीन ही है क्योंकि यन्त्र त्वणममुद्रा आता आत्मयोग महित था ॥१६७॥ तदनन्तर दाताजी विष्णोन्नी पुण्ड्रजरीको विशेषता आ मारयि पौनहल स ममुद्रा देयनेवाला भरतम इस प्रकार कहो लगा ॥१६८॥ कि उन्नीही हई चबल सहारा

१ अथ कृत्वा । २ नमस्करोति स्म । ३ आगता । ४ प्रापित । ५ निधि प्रवर्ता । स्थापितुमर्थं
शिलाकानु सप्रयोजनानि भवन्ति भाव । ६ गङ्गावती । ७ दशज । ८ गङ्गा । ९ उपास्यन् ।
१० पूजयताम् । ११ स्फुरती कृष्णः सम स । १२ लक्ष्मणम् । १३ विष्णुम् । १४ यानमगं गत ।
सारथिरित्यर्थः । १५ आनन्दम् ।

अमुष्यजलमुत्पन्नद्वगगनमेतदालोक्यते गगाङ्ककरकमलच्छविभिरातत श्रीकरैः ।

प्रहासमिव दिग्बधूपरिचयाय विश्वगन्धन तितांस^१ दिव चान्मनः प्रतिदिश यशो भागगः ॥१७०॥

कचिच्छुद्रितशुक्तिमौक्तिकतत सतारं नभो जयत्यलिमलीमस मकरमीनरागिश्रितम् ।

कचित्सलिलमस्य भोगिकुल^२ संकुलं सूत्रतं नरन्द्रकुलमुत्तमस्थितिजिगीषतीवोद्भटम् ॥१७१॥

इतो विशति गाङ्गमम्बु शरद्वदुदाच्छच्छवि स्तुत हिमवतोऽस्तुतश्च सुरसं पय सैन्धवम्^३ ।

तथापि न जलागमेन धृतिरस्य पोष्यते ध्रुव न जलसग्रहैरिह जलाशयो^४ द्रायति^५ ॥१७२॥

वसन्ततिलकावृत्तम्

व्याप्योदरं चलकुलाचलसंनिकाशाः पुत्रा इवास्य तिमयः पयसा प्रपुष्टाः ।

कलोलकाश्च परिमारहिता समन्तादन्योन्यघट्टनपराः सममावसन्ति^६ ॥१७३॥

रूपी भुजाओके द्वारा धारण किये हुए देदीप्यमान मणियोंके समूह ही जिसकी पूजाकी सामग्री है, जो शब्द करते हुए असख्यात गलोसे आकुल है, जो प्रत्येक बेलके साथ जोरसे शब्द कर रहा है, वायुके द्वारा कम्पित हुआ जल ही जिसके नगाडे हैं और जो इन सबसे ऐसा जान पड़ता है मानो आपके लिए अर्घ्य ही देना चाहता हो ऐसा यह समुद्र सदा आपके लिए आनन्द देवे ॥१६९॥ आकाशकी ओर उछलता हुआ और चन्द्रमाकी किरणोंके समान कोमल कान्तिवाले जलके छोटे-छोटे छोटोसे व्याप्त हुआ इस समुद्रका यह जल ऐसा जान पड़ता है मानो दिशारूपी स्त्रियोंके साथ परिचय करनेके लिए चारो ओरसे हास्य ही कर रहा हो अथवा अपना यश बाँटकर प्रत्येक दिशामे फैलाना ही चाहता हो ॥१७०॥ खुली हुई सीपोंके मोतियोंसे व्याप्त हुआ, भ्रमरके समान काला और मकर, मोन, मगर-मच्छ आदि जल-जन्तुओंकी राशि-समूहसे भरा हुआ यह समुद्रका जल कही ताराओसहित, भ्रमरके समान श्याम और मकर मीन आदि राशियों से भरे हुए आकाशको जीतता है तो कही राजाओंके कुलको जीतना चाहता है क्योंकि जिस प्रकार राजाओका कुल भोगी अर्थात् राजाओंके समूहसे व्याप्त रहता है उसी प्रकार यह जल भी भोगी अर्थात् सर्पोंके समूहसे व्याप्त है, जिस प्रकार राजाओका कुल सूत्रत अर्थात् अत्यन्त उत्कृष्ट होता है उसी प्रकार यह जल भी सूत्रत अर्थात् अत्यन्त ऊँचा है, जिस प्रकार राजाओका कुल उत्तम स्थिति अर्थात् मर्यादासे सहित होता है उसी प्रकार यह जल भी उत्तम स्थिति अर्थात् अवधि (हृद) से सहित है, और राजाओका कुल जिस प्रकार उद्भूट अर्थात् उत्कृष्ट योद्धाओसे सहित होता है उसी प्रकार यह जल भी उद्भूट अर्थात् प्रबल है ॥१७१॥ इधर हिमवान् पर्वत-से निकला हुआ तथा शरद्वदुत्तुके बादलोंके समान स्वच्छ कान्तिको धारण करनेवाला गंगा नदीका जल प्रवेश कर रहा है और उस ओर सिन्धु नदीका मीठा जल प्रवेश कर रहा है, फिर भी जलके आनेसे इसका सन्तोष पूरा नहीं होता है, सो ठीक ही है क्योंकि जलाशय (जिसके बीचमे जल है, पक्षमे जड आशयवाला-मूर्ख) जल (पक्षमे जड-मूर्ख) के सग्रहसे कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता है । भावार्थ — जिस प्रकार जलाशय-जडाशय अर्थात् मूर्ख मनुष्य जलसग्रह-जडसग्रह अर्थात् मूर्ख मनुष्योंके सग्रहसे सन्तुष्ट नहीं होता उसी प्रकार जलाशय अर्थात् जलसे भरा हुआ समुद्र या तालाव जल सग्रह अर्थात् पानीके सग्रह करनेसे सन्तुष्ट नहीं होता ॥१७२॥ इस समुद्र-के उदर अर्थात् मध्यभाग अथवा पेटमे व्याप्त होकर पय अर्थात् जल अथवा दूधसे अत्यन्त पुष्ट हुए तथा चलते हुए कुलाचलोके समान वड़े-वड़े इसके पुत्रोंके समान मगरमच्छ और प्रमाणरहित

१ विस्तारितुमिच्छन् । २ सर्पसमूह पक्षे भोगिममूह । ३ सिन्धुनदीमवन्धि । ४ जलाधार जटवृद्धिञ्च । ५ द्रायति तृप्यति । ६ तृप्ती । — ६ माविगन्ति ल०, द० ।

मालिनीवृत्तम्

‘अयमनिभृतवेलो’ रुद्धरोधोऽन्तरालंरनिलवलविलोलैर्भूरिकलोलजालैः ।

तटवनमभिहन्ति व्यक्तमस्मै^१ प्ररुप्यन् मम किल बहिरस्मान्नास्ति वृत्तिर्मुधेति^२ ॥१७८॥

अविगणितमहत्त्वा यूयमस्मान् स्वपादैरभिहथ^३ किमलङ्घ्यं वो वृथा तौङ्ग्यमेतत् ।

वयमिव किमलङ्घ्या. किं गभीरा इतीत्थं परिवदति^४ विराचैर्न^५ मब्धिः कुलाद्रीन् ॥१७९॥

ग्रहर्षिणीवृत्तम्

अत्रायं भुजगशिशुर्विलामिगङ्गा^६ व्यात्तास्यं तिमिममिधावति प्रहृष्टः ।

तं सोऽपि स्वगलविलावलप्रलम्भं^७ स्वान्त्रास्था^८ विहितदयो न जेगिलीति^९ ॥१८०॥

दोधकवृत्तम्

एष^{१०} महामणिरश्मिविहीर्ण तोयममुप्य^{११} धृतामिपशङ्क^{१२} ।

मीनगगोऽनुसरन् सहसास्माद् वह्निभिया पुनरप्यपयाति ॥१८१॥

लोलतरङ्गविलोलितदृष्टिर्वृद्धतरोऽसुमतिः^{१३} सुमत्^{१४} नः ।

ही रथमेष तिमिङ्गिलशङ्की पश्यति पश्य तिमि^{१५} स्तिमिताश्वः^{१६} ॥१८२॥

भुजङ्गप्रयातवृत्तम्

इहामी भुजङ्गाः सरत्नैः फणाग्रैः समुत्क्षिप्य भोगान्^{१७} खमुद्रीक्षमाणाः ।

विभाव्यन्त एते तरङ्गोरुहस्तैर्धृता दीपिकौवा महावार्धिनेव ॥१८३॥

भीतर अपनी देवागनाओके साथ बड़े वेगसे आते हुए देवोंके हजारो क्रीडा करनेके स्थान हैं, हजारो मनोहर वन हैं और हजारो सुन्दर द्वीप हैं तथा वे सब ऐसे जान पड़ते हैं मानो इसके भीतर बने हुए किले ही हो ॥१७७॥ ज्वार-भाटाओसे चचल हुआ यह समुद्र इस वनके बाहर मेरा जाना नहीं हो सकता है इसलिए इसपर प्रकट क्रोध करता हुआ अपने किनारेके वनको वायुके वेगसे अतिशय चचल और पृथिवी तथा आकाशके मध्य भागको रोकनेवाली अनेक लहरोके समूहसे व्यर्थ ही ताडन कर रहा है ॥१७८॥ हे प्रभो, यह गरजता हुआ समुद्र ऐसा जान पड़ता है मानो अपने ऊँचे शब्दोंसे कुल पर्वतोंको यही कह रहा है कि हे कुलपर्वतो, तुम्हारी ऊँचाई बहुत है इसलिए क्या तुम अपने पैरो अर्थात् अन्तके भागोंसे हम लोगोकी ताडना कर रहे हो ? तुम्हारी यह व्यर्थकी ऊँचाई क्या उल्लंघन करनेके अयोग्य है ? क्या तुम हमारे समान अलक्ष्य अथवा गम्भीर हो ? ॥१७९॥ इधर यह साँपका बच्चा अपना बिल समझकर प्रसन्न होता हुआ, मुख फाड़े हुए मच्छके मुखमें दौड़ा जा रहा है और वह भी अपने गले रूप बिलमें लगे हुए इस साँपके बच्चेको अपनी आँत समझ दयाके कारण नहीं निगल रहा है ॥१८०॥ इधर यह मछलियोंका समूह पद्मराग मणिकी किरणोंसे व्याप्त हुए इस समुद्रके जलको मास समझकर उसे लेनेके लिए दौड़ता है और फिर अकस्मात् ही अग्नि समझकर वहाँसे लौट आता है ॥१८१॥ हे देव, इधर देखिए, चचल लहरोसे जिसकी दृष्टि चचल हो रही है और जो बहुत ही बूढ़ा है ऐसा यह मच्छ इस रथको मछलियोंको खानेवाला बड़ा मच्छ समझकर निश्चल दृष्टिसे देख रहा है, हमारा खयाल है कि यह बड़ा दुर्बुद्धि है ॥१८२॥ इधर

१ अस्थिर । अचलमित्यर्थ । २ आकाशमण्डलैर्भूम्याकाशग्रहप्रयोगानयेषु रोधम् । ३ तटवनाय । ४ वृथा । ५ अभिताडयथ । ६ पक्षिष्वनिभि । ७ इव । ८ विवृताननम् । ९ मध्य । मध्यम चावलन च तुद्योऽस्त्री इत्यमर । १० निजपुरीतद्विद्याकृतकृत्य (?) [निजपुरीतद्विभ्रमकृतदय] । ११ भृगु गिलति । १२ पद्मराग । १३ समुद्रस्य । १४ पल्ल । १५ अशोभनबुद्धिः । १६ साधुज्ञातम् । १७ मत्स्य । १८ 'स्तिमिता वादर्धनिश्चलामित्यभिधानात् । १९ शरीराणि । 'भोग सुखे स्त्र्यादिभूतावहेच्च फणकाययो' ।

मुच्यतेऽतएव चारिणश्च लभ्यन्ते स्फुरद्बकोटि ।

महानालवद्वज्रं दापरनक्षत्रं त्रिभुजं त्रिस्तम्भान्तनुम् ॥१८४॥

मत्तमयूरधृत्तम्

ब्रानायाजार् पुष्करवायव्यनिमुचैस्त्रिभुजैश्चो म इगमार कृतलाश्या ।

द्वापाशान मन्ततमस्मिन् सुरकन्या रश्म्यन्त मत्तमयूर सममता ॥१८५॥

नाम् श्यामा कृतवमृषैष्टनादा विधुदन्त स्फुरितभुजहोत्कण्ठरजम् ।

आक्षिप्यन्ता जलदम्भहा नलमस्य व्यर्ति नोपबजितुमल स घनकाले ॥१८६॥

पश्याम्भाधेरनुतटमना वनराज्ञा राजीवास्य प्रशमिततापो विततापाम् ।

चलापपञ्चलकणिकाभि परिघातो नाला शागीमिव सुमनाभि प्रविकीर्णाम् ॥१८७॥

तोटकधृत्तम्

परि^{१३} मग्ना मरम कमलै सुहिता^{१४} सुचिर विचरन्ति मृगा ।

^{१५} उपनारसमुप्य निसगमुला वपति निरुपहुतिमस्य घने ॥१८८॥

अनुनारवन^{१६} मृगधृथमिदं कनकस्थलमुज्ज्वलित रुधिमि ।

परिचाक्ष्य दवानलवाक्त्रि मृगा^{१७} परिधावति धावति तीरमुध ॥१८९॥

रनमहिन फणाके अग्रभागसे अपने मस्तकको ऊँचा उठाकर आकाशकी ओर देखते हुए ये सप एमे जान पड़त ह मानो इस महासमुद्रने अपन तरंगोंरूपी बड़े-बड़े हाथोंसे दीपकोंके समूह ही धारण कर रखे हा ॥१८३॥ जिसके भीतर करोड़ो रत्न देदीप्यमान हो रहे ह ऐसा यह महा समुद्रका जल सपोंके इधर उधर जानेसे ऐसा दिखाई देता है मानो फैल हुए अधकारको नष्ट करन हए, जलते हुए आर चलते हुए अनेक दीपकोसे सहित महानील मणियोंका बना हुआ घर हा हा ॥१८४॥ जिस समय यह समुद्र वायुके आघातसे पुष्कर (एक प्रकारका बाजा) के समान गम्भार और ऊँचे शब्द करता है उस समय इस द्वीपके किनारेपर इन उन्मत्त मयूरोंके साथ साथ नृत्य करती हुई य दवकन्याएँ निरन्तर क्रीडा किया करती ह ॥ १८५ ॥ वर्षाश्रुतुमें वाल्मीकि समूह आर इस समुद्रका जल दोनों एक समान रहते ह क्योंकि वर्षाश्रुतुमें बादलोंके समूह फैले रहत ह और समुद्रका जल भी फैला रहता है बादलोंके समूह जोरसे गरजते हुए आनन्दित होने ह और समुद्रका जल भी जोरसे शब्द करता हुआ आनन्दित होता है — लहराता रहता है वाल्मीकि समूहम विजली चमकती है और समुद्रके जलमें भी सपोंके ऊँचे उठे हुए फणाओ पर रत्न चमकन रहते ह इस प्रकार बादलोंके समूह अपने समान इस समुद्रके जलका आलिंगन करन हए वर्षाश्रुतुम किनी दूसरी जगह नहीं जा सकत यह स्पष्ट है ॥ १८६ ॥ कमलके समान मुग्ध भुग्ना धारण करनवाला ह दव, समुद्रके किनारे किनारेकी इन वनपत्तिकाको देखिए जिनम नि मूयका मताप शिष्टु ही गान् हा गया है जहाँ-तहाँ विस्तृत जल भरा हुआ है, जहाँ पत्तिका व्याप्त हा गही ह और जा बड़ी-बड़ी लहराये उछलत हुए जलकी बूदसे धोइ हुई गान् रंगकी गादियाये समान जान पड़नी ह ॥१८७॥ इस समुद्रक किनारेक वनम उपद्रव गदगद नया म्भावन हा मुग्ध दनवाल म्यानपर आनर मरम कलभी घानाकी ग्रात हुए ये हरिण वन वास मर ना नागायाक चारा आर घूमा करन ह ॥१८८॥ इस किनारेक वनम वान्ति

१ मग्ना भुग्ना १ ।

२ मग्ना भुग्ना २ ।

३ मग्ना भुग्ना ३ ।

४ मग्ना भुग्ना ४ ।

५ मग्ना भुग्ना ५ ।

मग्ना भुग्ना १ । ३ मग्ना २० २० ।

४ मग्ना १ । ८ मग्ना १ । ० मग्ना १ ।

५ मग्ना १ । १२ मग्ना १ ।

६ मग्ना १ । १८ मग्ना १ (वल्मीकाम्)

प्रहर्षिणी

लावण्यादयमभिमारयन्^१ मग्निस्त्रीरासस्तप्रतनुं जलांशुकास्तरङ्गैः ।

आङ्गिलायन्मुहुरपि नोपयाति नृप्ति संमोगैरतिरमिको न तृप्यतीह ॥१६०॥

वसन्ततिलका

रोधोऽधुवांस्य तनुर्गीकरवारिमिवता समाजिता विगलमुच्चलितैस्तरङ्गैः ।

भान्तीह सततलताविगलत्प्रसूनित्योपहारसुमगा द्युमदा^२ निपेक्ष्या ॥१९१॥

मन्दाक्रान्ता

स्वर्गोद्यानश्रियमिव^३ ह्रस्वत्युत्प्रसूने वनेऽस्मिन् मन्दाराणां सरति^४ पवने मन्दमन्दं वनान्तात ।

मन्दाक्रान्ताः^५ सललितपद किञ्चिदारब्धगानाञ्चक्रम्यन्ते खगयुवतयस्तीरदेशेष्वमुष्य ॥१९२॥

प्रहर्षिणी

अगम्य^६ स्तिमिरयमाजिघा^७ सुरारादभ्येति द्रुतमभिभावु^८ कोसुयानिम्^९ ।

गैलोच्चानपि निगिगस्तिर्मानितोऽन्यो व्यत्यास्ते^{१०} समममुना युयुत्समान ॥१९३॥

पृथ्वी

जलाद्रजगरस्तिमिं शयुमपि^{११} स्थलादप्सुजो^{१२} विकर्षति^{१३} युयुत्सया^{१४} कृतदृढग्रहो^{१५} दुर्ग्रह^{१६} ।

तथापि न जयो मिथोऽस्ति समक्षययोरनयोर्ध्रुवं न^{१७} समक्षययोरिह जयेतरप्रक्रमः^{१८} ॥१९४॥

से प्रकाशमान सुवर्णमय स्थानोको देखकर जिसे दावानलकी शका हो रही है ऐसा यह हरिणो-का समूह बहुत शीघ्र किनारेकी पृथ्वीकी ओर लौटता हुआ दौड़ा जा रहा है ॥ १८९ ॥ यह समुद्र, जिनके जलरूपी सूक्ष्म वस्त्र कुछ-कुछ नीचेकी ओर खिसक गये हैं ऐसी नदीरूपी स्त्रियों-को लावण्य अर्थात् सुन्दरताके कारण (पक्षमे खारापनके कारण) अपनी ओर बुलाता हुआ तथा तरंगोके द्वारा बार-बार उनका आलिंगन करता हुआ भी कभी तृप्तिको प्राप्त नहीं होता सो ठीक ही है क्योंकि जो अत्यन्त रसिक अर्थात् कामी (पक्षमे जलसहित) होता है वह इस ससार-मे अनेक बार सम्भोग करनेपर भी तृप्त नहीं होता है ॥१९०॥ जो छोटी-छोटी बूंदोके पानी-के सींचनेसे स्वच्छ हो गयी है, निरन्तर लताओसे गिरते हुए फूलोके उपहारसे जो सदा सुन्दर जान पडती है, और जो देवोके द्वारा सेवन करने योग्य है ऐसी ये यहाँकी किनारेकी भूमियाँ विरल-विरल रूपसे उछलती हुई लहरोसे अत्यन्त सुगोभित हो रही है ॥ १९१ ॥ स्वर्गके उपवनकी शोभाकी ओर हँसनेवाले तथा फूलोसे भरे हुए इस वनमे मन्दार वृक्षोके वनके मध्य भागसे यह वायु धीरे-धीरे चल रहा है और इसी समय जिन्होने कुछ-कुछ गाना प्रारम्भ किया है ऐसी ये धीरे-धीरे चलनेवाली विद्याधरियाँ इस समुद्रके किनारेके प्रदेशोपर लीलापूर्वक पैर रखती उठाती हुई टहल रही है ॥ १९२ ॥ इधर, इस जलमे उत्पन्न हुए अन्य अनेक मच्छोको तिरस्कार कर उनके मारनेकी इच्छा करता हुआ यह इसी जलमे उत्पन्न हुआ बड़ा मच्छ बहुत शीघ्र दूरसे उनके सन्मुख आ रहा है और पर्वतके समान बड़े-बड़े मच्छोको निगलता हुआ यह दूसरा बड़ा मच्छ उस पहले बड़े मच्छके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करता हुआ खड़ा है ॥१९३॥ इधर, यह अजगर जलमे-से किसी बड़े मच्छको अपनी ओर खींच रहा है और मजबूतीसे पकड़ने-

१ अभिसारिका कुर्वन् । २ श्लक्ष्ण । ३ तटभूमय । ४ देवानाम् । ५ ह्रस्वतीति ह्रस्वन् तस्मिन् । ६ मरतीति मरत् तस्मिन् । ७ मन्दगमना । ८ अप्सु भव । ९ आहन्तुमिच्छुः । १० अभिमवशील । ११ शब्दं जलचर वा । १२ वैपरीन्येन न्वित । १३ अजगरम् । १४ मत्स्य । १५ आकपति । १६ योद्धुमिच्छता । १७ परम्परवित्तिदृष्टादृष्टम् । ग्रह न्वीकार । १८ गृहीनुमग्रव । १९ समवलयो । २० अपजय ।

यन^१ वनरात्रिर्दं जलनिधे सभास्तालित वन वनगत्रैव स्फुटविमुक्तपाराविणम् ।
 भृद्वपरिधानश्रियमुपादधद्विन्दे तनोति तटमुच्चलम्पदि दत्तसंमार्जनम् ॥१९५॥
 तरत्तिमिकलेवर स्फुटितगुणिशदकाचित स्फुरत्पलपनिस्वन विवृतरन्ध्रपातालकम् ।
 मयानकमितो नल जलनिधे^३ सत्पञ्चराप्रमुक्ततनु^४ कृत्तिसशयितत्रीचिमालाकुलम् ॥१९६॥
 इता धुतवनाऽनिल शिदिरशीकरानाकिरसुपैति शमकैरुददुमसुगन्धपुष्पाहर^५ ।
 इतद्व पलपोऽनिल स्फुरति धूतकलोलमात् कृतस्वनमयानकस्तिमिकलेवरानाधुनम् ॥१९७॥

शार्दूलचिक्राडितम्

अन्योपान्तमुवचकामति तरां बलोच्चलन्मौक्तिकैराकार्णां कुसुमोपहारजनितां लक्ष्मीं दधाना भृशम् ।
 भवन्त सह सुन्दरीभिरमरा या स्वगलोकात्तर मवाना^१ धृतसंमत्तस्तदवनच्छायातरुसश्रिता ॥१९८॥
 एन ते मकरादयो नलचरा मत्वेव कुक्षिम्मरि^२ वारा राशिमनन्तरायमधिक पुथा इवास्थौरसा^३ ।
 भागस्ये प्रतिलिप्पया नु^४ जवकस्याक्रोशतोप्यग्रतो युष्यन्ते मिलिता परस्परमहो बद्धकुधो घिग्घनम् ॥१९९॥
 लाकानन्दिमिरप्रमा^५ परिगनैरुवावधैर्मोगिना^६ भारुडैरधिमस्तक^७ शुचितमै सतापविच्छेदिमि ।
 पातालैर्निघृतामनसुं हुरपि प्राप्तव्ययैरक्षयैराससारममुप्य नास्ति विगमो^८ रत्नैजलौघैरपि ॥२००॥

बाला यह दुष्ट मच्छ भी लड़नेकी इच्छासे उसे जमीनपर-से अपनी ओर खींच रहा है तथापि
 एक समान बल रखनेवाल इन दोनोंमें परस्पर किसीकी जीत नहीं हो रही है सो ठीक ही है
 क्योंकि इस संसारम जो समान शक्तिवाले हैं उनमें परस्पर जय और पराजयका निणय नहीं
 होता है ॥ १९४॥ जगली हाथियोंके द्वारा अतिशय साडन किया हुआ यह समुद्रका जल,
 जिसम जगली हाथी स्पष्ट रूपसे गजना कर रहे हैं ऐसे किसी वनके समान तथा भृदग वजनेकी
 गाभाका धारण करता हुआ और दिशामामे उछलता हुआ किनारेको बहुत शीघ्र बुद्ध कर
 रहा है ॥ १९५॥ जिसम अनेक मछलियोंके शरीर तैर रहे ह जो खुली हुई सीपोंके टुकड़ोंसे
 व्याप्त है जिसम कठोर शब्द ही रहे ह जिसने अपने रङ्गोम पातालको भी धारण कर रखा
 है और जो तरते हुए सांपामे छूटी हुई काँचलियोंसे लोगोको ऐसा सदेह उत्पन्न करता है मानो
 लहराने समूहमे ही व्याप्त हो ऐसा यह समुद्रका जल इधर बहुत भयानक हो रहा है ॥ १९६॥
 इधर वनको हिलाता हुआ, शीतल जलकी बूँदोंको बरसाता हुआ और वृक्षोंके सुगन्धित फूलों
 को सुगन्धिका हरण करना हुआ वायु धीरे धीरे किनारेकी ओर बह रहा है और इधर बड़े
 म मच्छाने शरीरका कपाता हुआ तथा हिलती हुई लहराके शब्दोंसे भयंकर यह प्रचण्ड वायु
 बह रहा है ॥ १९७ ॥ जा बड़ी-बड़ी लहरास उछलते हुए मोतियोंमें प्राप्त होकर फूलोंके
 उपहारम उत्पन्न हुई अतिशय शोभाकी धारण करती ह किनारेके वनके छायादार वृक्षाके
 पीने वर हुए दव लाग हविन होकर अपनी-अपनी देवागनाअके साथ जिनकी सेवा करते हैं
 और इमीन्ति जा दूसर स्वगलोककी शाभा बनाती हैं ऐसी ये इस समुद्रके किनारेकी भूमियाँ
 अत्यन्त गुणान्वित हैं रही हैं ॥ १९८॥ य मगरमच्छ आदि जलचर जीव, जिसके पास अनन्त
 धा है मग मग मग अपना उतरका पालन-पोषण करनेवाला पिता ममझकर सगे पुत्रोंके समान
 उगाता धा पोषण अपने भाग (हिम्न)का अधिक रूपसे देनेकी इच्छासे गजनाके शब्दोंके बहाने
 विगत ह्य पितार गामने ही इष्ट हार व्राधिन होने हुए परस्परम लड़ रहे ह, हाय ।
 मग धना। पितार ह ॥ १९९॥ मग मोन्तर पडे हुए अनेक पाताला अर्थात् विवरा और

१ दण्ड । २ मच्छ । ३ मच्छ । ४ मच्छ । ५ मच्छ । ६ मच्छ । ७ मच्छ । ८ मच्छ ।
 १ मच्छ । २ मच्छ । ३ मच्छ । ४ मच्छ । ५ मच्छ । ६ मच्छ । ७ मच्छ । ८ मच्छ ।
 १ मच्छ । २ मच्छ । ३ मच्छ । ४ मच्छ । ५ मच्छ । ६ मच्छ । ७ मच्छ । ८ मच्छ ।

स्रग्धरा

वज्रद्रोण्याममु^१य कथयिष्ये जगत् व्यक्तमुद्बुद्बुदाम्बुस्फुजत्वातालस्त्रोच्छ्वामदनिलवलाट्टिचगावर्तमानम्^२ ।
प्रस्तीर्णानेकरत्नान्यपहरति जनेनूनमुत्तमन्त^३ प्रायो रायां^४ त्रियोगो जनयति महतोऽप्युग्रमन्तर्विद्राहम् ॥२०१॥

प्रहर्षिणी

आयुष्मन्निति बहुविस्मयोऽयमद्विधः सद्रव सकलजगज्जनोपजीव्य ।

गम्भीरप्रकृतिरनल्पमस्त्वयोगः प्रायस्त्वामनुहरते^५ विना जडिम्ना^६ ॥२०२॥

वसन्तनिलका

इत्थं नियन्तर्गि^७ परां श्रियमम्बुराजेरावर्णयन्त्यनुगर्नैवचनैर्विचित्रैः ।

प्राप प्रमोदमधिकं नचिराच्च^८ सम्राट् मेनानिवेशमभियातुमना बभूव ॥२०३॥

वडवानलोके द्वारा बार-बार ह्रास होनेपर भी जिनका कभी क्षय नहीं हो पाता है, जो लोगोको आनन्द देनेवाले हैं, प्रमाण-रहित हैं, अनेक प्रकारके हैं, सर्पोंके फणाओपर आरुढ़ हैं, अत्यन्त पवित्र हैं, और मन्तापको नष्ट करनेवाले हैं ऐसे रत्नों तथा जलके समूहोंकी अपेक्षा इस समुद्रका जबतक ससार है तबतक कभी भी नाश नहीं होता । भावार्थ—यद्यपि इस समुद्रके अनेक रत्न इसके विवरो-विलोमे घुसकर नष्ट हो जाते हैं और जलके समूह वडवानलमे जलकर कम हो जाते हैं तथापि इसके रत्न और जलके समूह कभी भी विनाशको प्राप्त नहीं हो पाते क्योंकि जितने नष्ट होते हैं उसमे कहीं अधिक उत्पन्न हो जाते हैं ॥२००॥ बहुत बड़े पातालरूपी छिद्रोंके द्वारा ऊपरकी ओर बढ़ते हुए वायुके जोरसे जो चारो ओर घूम रहा है और जिसमे जलके अनेक बबूले उठ रहे हैं ऐसा यह समुद्रका उदर अर्थात् मध्यभाग वज्रकी कड़ाहीमे खीलता हुआ-सा जान पड़ता है अथवा लोग इसके जहाँ-तहाँ फैले हुए अनेक रत्न ले जाते हैं इसलिए मानो यह भीतर ही भीतर सन्तप्त हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि धनका वियोग प्राय करके बड़े-बड़े पुरुषोंके हृदयमे भी भयकर दाह उत्पन्न कर देता है ॥२०१॥ हे आयुष्मन्, जिस प्रकार आप अनेक आञ्चर्योंसे भरे हुए हैं उमी प्रकार यह समुद्र भी अनेक आञ्चर्योंसे भरा हुआ है, जिस प्रकार आपके पास अच्छे-अच्छे रत्न हैं उसी प्रकार इस समुद्रके पास भी अच्छे-अच्छे रत्न हैं, जिस प्रकार ससारके समस्त प्राणी आपके उपजीव्य हैं अर्थात् आपकी सहायतासे ही जीवित रहते हैं उमी प्रकार इस समुद्रके भी उपजीव्य हैं अर्थात् समुद्रमे उत्पन्न हुए रत्न मोती तथा जल आदिसे अपनी आजीविका करते हैं, जिस प्रकार आप गम्भीर प्रकृतिवाले हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी गम्भीर (गहरी) प्रकृतिवाला है और जिस प्रकार आप अनल्पसत्त्व योग अर्थात् अनन्त शक्तिको धारण करनेवाले हैं उमी प्रकार यह समुद्र भी अनल्पमस्त्व योग अर्थात् बड़े-बड़े जलचर जीवोंमे सहित है अथवा जिस प्रकार आप अनालसत्त्व योग अर्थात् आलस्यके सम्बन्धसे रहित हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी अनालसत्त्व योग अर्थात् नाल (नग) रहित जीवोंके सम्बन्धसे सहित है इस प्रकार यह समुद्र ठीक आपका अनुकरण कर रहा है । यदि अन्तर है तो केवल इतना ही है कि यह जलकी ऋद्धिसे सहित है और आप जल अर्थात् मूर्ख (जड) मनुष्योंकी ऋद्धिसे सहित हैं ॥२०२॥ इस प्रकार जब सारथिने समुद्रकी उत्कृष्ट शोभाका वर्णन किया तब सम्राट् भरत बहुत ही अधिक आनन्दको प्राप्त हुए तथा शीघ्र ही अपनी छावनीमे जानेके लिए उद्यत हुए ॥२०३॥

१ -वर्त्यमानम् २०, ५०, ८० । २ धनानाम् । ३ अनुकरोति । ४ जडत्वेन । ५ माय्यो । ६ आयु ।

मालिनी

अथ रथपरिवृत्यै^१ सारथीं कृच्छ्रकृच्छ्राद् विपमवलने^२ सुप्तप्रोवमश्चानुत्सौ^३ ।
 पुनरिति मन्दं वाचिवेगोपशान्ते^४ शिबिरमग्निनिधीनामीशिता सप्रतस्थे ॥२०४॥
 कथमपि रथचक्रं^५ सारथिन्वाग्बुरुद्धं^६ प्रवहणकृतकापान् वाजिनोऽनुप्रसाध्य ।
 रथमधि जलमब्धौ^७ धोद्यामास सूतो जलधिरपि नृपानु^८ ब्रज्ययधोच्चाल ॥२०५॥
 अथमयमुद्रमारो^९ वारिराशवरूथ स्थगयति रथवेगादेप मिश्रोमिरब्धि ।
 इति किञ्च^{१०} तन्मद्भिस्तव्यमाणी रथोऽथ जघनशुरगकृष्टं प्राप पारेसमुद्रम्^{११} ॥२०६॥

शिखरिणी

^{१२} सरहास्यस्तोऽथ ^{१३} समघटितसर्वाङ्गघटनो रथ क्षमात् प्राप्तो रथचरणहेतिश्च^{१४} कुशली ।
 गुरक्षा घाताक्षा जलधिमलिलैरक्षतक्षुरा मह पुण्य जिह्गोरिति किञ्ज जजल्पुस्तटजुष^{१५} ॥२०७॥
 नृपगद्गान्तर प्रणतमणिमौहपातकरैरधस्तात्तद्वेद्या सजयजयधोपैरधिकृते^{१६} ।
 बहिर्गिरि^{१७} सन्धैयुगपदसकृदोपितजयैर्विमुदष्ट प्रापत् रवशिबिरवहिस्तोरणमुवम् ॥२०८॥

अथानन्तर—जब सारथिने बड़ी कठिनाईसे रथ लौटानेके लिए विपम रूपसे घूमनेके धारण गलको कुछ टेढ़ा कर धोड़ोको हाँका, मन्द-मन्द वायु बहने लगा और लहरोंका वेग शान्त हो गया तब निधियोके स्वामी भरतने छावनीकी ओर प्रस्थान किया ॥२०४॥ पानीसे रथे हुए रथके पहियोंको किसी तरह बाहर निकालकर और बार-बार हाँकने अथवा बोझ धारण करनेके कारण कुपित हुए धोड़ोंको प्रसन्न कर सारथि समुद्रमें जलके भीतर ही रथ चला रहा था और वह समुद्र भी उस रथके पीछे-पीछ जानेके लिए ही मानो उछल रहा था ॥२०५॥ अरे, यह समुद्रकी बड़ी भारी लहर रथकी छतरीको अवश्य ही ठक लेगी और इसर रथके वेगसे समुद्रकी लहरें भी फट गयी हैं इस प्रकार किनारेपर खड़े हुए लोग जिसके विषयमें अनेक प्रकारक तर्क-वितर्क कर रहे हैं ऐसा वह वेगशाली धोड़ोंसे खीचा हुआ रथ समुद्रके किनारेपर आ पहुँचा ॥२०६॥ जिसक समस्त अर्गोंकी रचना एक समान सुन्दर है ऐसा यह रथ लहरों की उल्लंघन करता हुआ कुशलतापूर्वक किनारे तक आ गया है, चक्ररत्नको धारण करनेवाला चक्रवर्ती भरत भी सकुशल आ गये हैं और समुद्रक अलमें जिनक समस्त अंग घुल गये हैं तथा जिनके गुरु भी नही धिम हैं ऐसे घाड़े भी राजी-मुसी आ पहुँचे हैं । अहा ! विजयी चक्रवर्तीका रथ भारी पुण्य है इस प्रकार किनारेपर खड़े हुए लोग परस्परम वार्तालाप कर रहे थे ॥२०७॥ जा बेनीने नौवे गंगाढारपर नियुक्त किए गये हैं, जिन्हाने नवाये हुए मणिमय मुकुटों पर अपने अपने हाथ जोड़कर ग्ये हैं और जो जय-जय गानका उच्चारण कर रहे हैं ऐसे राजा लोग तथा गंगाजी बाहर तक साथ बार-बार जयघोष करनेवाले मैत्रिक लोग जिसे देख

१ परिवृत्यै । २ विपमवलने कुच्छिन्नोर्ध्व यथा भरति तथा । प्रेरितुमिच्छी सति । ३ गमयित्वा ।
 ४ प्रसन्ने । प्रसाद नीतिः । ५ अनुगमनेन । ६ जघनम् । ७ तीरस्थ । ८ बगान्वाकृष्ट ।
 ९ गमय्य पारम् । १० मन्त्रान् ब्रज्यन् गुरगायन् इति त्रिधापातपुण्य । वरद्विना तथकोषन्यान् ।
 ११ गमनं यथा भरति तथा पश्य । १२ यथा । १३ तन्मद्भिन् । तीरस्था इत्ययम् । १४ अधिकारिभि ।
 १५ तट-भाटः ।

शार्दूलविक्रीडितम्

तत्रोद्धोषितमङ्गलैर्जयजयेत्यानन्दितो वन्दिमिर्गत्वातः शिविरं नृपालयमहाद्वार समासादयन् ।

^१ अन्तर्वर्गिकलोकवारवनितादत्ताक्षताशासनं प्राविशन्नजिकेतन निधिपतिर्वातो ह्यसत्कृतनम् ॥ २०६ ॥

वसन्ततिलका

देवोऽयमक्षततनुर्विजिताब्धिरागात् ते यूयमानयत साक्षतसिद्धशेषाः ।

आशीध्वमाध्वमिह^३ समुखमेत्य तूर्णमित्युत्थितः कलकलः कटके तदाभूत् ॥ २१० ॥

जीवेति नन्दतु भवानिति वर्धिषीष्टाः देवेति निर्जयरिपूनिति गां^४ जयेति ।

एव 'स्ताच्चिरायुरिति कामितमाप्नुहीति'^५ पुण्याशिषां शतमलम्भि तदा स वृद्धैः ॥ २११ ॥

जीयादरीनिह भवानिति निर्जितारिर्देव प्रशाधि^६ वसुधामिति सिद्धरत्नः ।

एवं जीवताच्चिरमिति प्रथमं चिरायुरायोजि मङ्गलधिया पुनरुक्तवाक्यैः ॥ २१२ ॥

देवोऽयमम्बुधिमगाधमलङ्घ्यपारमुलङ्घ्य लब्धविजयः पुनरप्युपायात्^७ ।

पुण्यैकसारथिरिहेति विनान्तरायैः पुण्ये प्रसेदुषि^८ नृणां किमिवास्त्यलङ्घ्यम् ॥ २१३ ॥

रहे हैं ऐसा वह भरत अपनी छावनीके बाहरवाली तोरणभूमिपर आ पहुँचा ॥ २०८ ॥ वहाँपर जय जय इस प्रकार मगलशब्द करते हुए बन्दीजन जिन्हे आनन्दित कर रहे हैं ऐसे वे महाराज भरत छावनीके भीतर जाकर राजभवनके बड़े द्वारपर जा पहुँचे वहाँ परिवारके लोगो तथा वेश्याओने उन्हे मगलाक्षत तथा आशीर्वाद दिये । इस प्रकार निधियोके स्वामी भरतने जिसपर वायुके द्वारा ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे अपने तम्बूमे प्रवेश किया ॥ २०९ ॥ जिन्होने शरीरमे कुछ चोट लगे बिना ही समुद्रको जीत लिया है ऐसे ये भरत महाराज आ गये हैं, इसलिए तुम मगलाक्षतसहित सिद्ध तथा शेषाक्षत लाओ, तुम आशीर्वाद दो और तुम बहुत शीघ्र सामने जाकर खड़े होओ इस प्रकार उस समय सेनामे बड़ा भारी कोलाहल उठ रहा था ॥ २१० ॥ हे देव, आप चिरकाल तक जीवित रहे, समृद्धिमान् हो, सदा बढ़ते रहे, आप शत्रुओको जीतिए, पृथिवीको जीतिए, आप चिरायु रहिए और समस्त मनोरथोको प्राप्त कीजिए — आपकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो इस प्रकार उस समय वृद्ध मनुष्योंने भरत महाराजके लिए सैकड़ो पवित्र आशीर्वाद प्राप्त कराये थे ॥ २११ ॥ यद्यपि भरतेश्वर शत्रुओको पहले ही जीत चुके थे तथापि उस समय उन्हे आशीर्वाद दिया गया था कि देव, आप शत्रुओको जीतिए, यद्यपि उन्होने चौदह रत्नोको पहले ही प्राप्त कर लिया था तथापि उन्हे आशीर्वाद मिला था कि हे देव । आप पृथिवीका शासन कीजिए, और इसी प्रकार वे पहले ही से चिरायु थे तथापि आशीर्वादमे उनसे कहा गया था कि हे देव, आप चिरकाल तक जीवित रहे — चिरायु हो । इस प्रकार मगल समझकर लोगोने उन्हे पुनरुक्त (कार्य हो चुकनेपर उसी अर्थको सूचित करनेके लिए फिरसे कहे हुए) वचनोसे युक्त किया था ॥ २१२ ॥ एक पुण्य ही जिनका सहायक है ऐसे महाराज भरत अगाध और पाररहित समुद्रको उल्लङ्घन कर तथा योग्य उपायसे विजय प्राप्त कर बिना किसी विघ्न-बाधाके यहाँ वापस आ गये हैं सो ठीक ही है क्योंकि निर्मल पुण्यके रहते

१ कञ्चुको । 'अन्तर्वर्गिका अन्तःपुराविकारिण ।' 'अन्तःपुरेण्वनिकृन् म्यादन्तर्वर्गिका जन' इत्यभिधानान् । २ आशीर्वचन । ३ आशिप कुरुध्वम् । ४ भुवम् । ५ भव । ६ याहि । ७ यामु श्रनुशिष्टो लोद । ८ उपागमत् । ९ प्रमन्ने मति ।

इत्थं स्वपुण्यपरिपावजमिष्टलाभं^१ संश्लाघयन्^२ जनतया^३ श्रुतपुण्यघोषः ।
चक्री सभागृहगतो नृपचक्रमध्ये शक्रोपमः पृथुनृपासनमध्यवात्सीत्^४ ॥२१०॥

हरिणी

श्रुततटवने रक्ताशोकप्रवालपुटोद्भिदि^५ स्पृशति पवने मन्दं तरङ्गविभेदिनि ।
अनुसरसरित्सैन्यैः सार्धं प्रभुः सुखमावसज्जलनिधिजयश्लाघागीर्मिर्जिनाननुचिन्तयन् ॥२११॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे
पूर्वार्णवद्वारविजयवर्णनं नामाष्टाविंश पर्व ॥२८॥



सचय करना चाहिए ॥ २१९ ॥ इस प्रकार जिसने लोगोके समूहसे पुण्यकी घोषणा सुनी है
ऐसे चक्रवर्ती भरत, अपने पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए इष्ट वस्तुओके लाभकी प्रशंसा करते
हुए सभाभवनमे पहुँचे और वहाँ राजाओके समूहके मध्यमे इन्द्रके समान बड़े भारी राज-
सिंहासनपर आरूढ हुए ॥ २२० ॥ जिस समय किनारेके वनको हिलानेवाला, रक्त अशोक
वृक्षकी कोपलोके सपुटको भेदन करनेवाला और लहरोको भिन्न-भिन्न करनेवाला वायु धीरे-
धीरे बह रहा था उस समय समुद्रको जीतनेकी प्रशंसा और आशीर्वादके साथ-साथ जिनेन्द्र
भगवान्का स्मरण करते हुए भरतने गंगा नदीके किनारे-किनारे ठहरी हुई सेनाके साथ सुख-
से निवास किया था ॥२२१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहके
भाषानुवादमे पूर्वसमुद्रके द्वारको विजय करनेका वर्णन
करनेवाला अष्टाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।



पुण्यादयः सग्नयः ॥ त्रिणापुरादिकवन्मनिनाहनशिविमात्रम् ।

म तद्धृत् धार्थसमर सधमा त्रिजित पुत्र वगवामि त्रिमिति जगत्त्राप्यम् ॥ १५॥

पुण्यादयः सग्नयः ॥ त्रिणापुरादिकवन्मनिनाहनशिविमात्रम् ।

तुल्यवर्गः समत्राणः त्रिणापुरादिकवन्मनिनाहनशिविमात्रम् ॥ १५॥

चक्रायुधः समत्राणः त्रिणापुरादिकवन्मनिनाहनशिविमात्रम् ।

चक्रायुधः समत्राणः त्रिणापुरादिकवन्मनिनाहनशिविमात्रम् ॥ १५॥

पुण्यं जलं सग्नयः ॥ त्रिणापुरादिकवन्मनिनाहनशिविमात्रम् ।

पुण्यं जलं सग्नयः ॥ त्रिणापुरादिकवन्मनिनाहनशिविमात्रम् ॥ १५॥

पुण्यं पदं त्रिणापुरादिकवन्मनिनाहनशिविमात्रम् ।

पुण्यं मुखाधितिं जनं मुखाधितिं ॥ त्रिणापुरादिकवन्मनिनाहनशिविमात्रम् ॥ १५॥

पुण्यं त्रिणापुरादिकवन्मनिनाहनशिविमात्रम् ।

पुण्यं त्रिणापुरादिकवन्मनिनाहनशिविमात्रम् ॥ १५॥

हुए मनुष्याका क्या उत्पन्नताय (प्राप्ति न हानि योग्य) रह जाता है ? अथवा कुछ भी नहीं ॥ १५॥ मनुष्याका प्राप्ति करनेवाला भक्त चक्रवर्ती पुण्यक प्रभावसे, जिसमें ज्वार भाग उठ रह है और जिसमें लहरोंके समूह बाधुन तात्त्विक हो रह है तब समुद्रका उत्पन्न कर शीघ्र ही मागध नका जोत दिया मा ठीक ही है क्योंकि अनिष्टय धनवान् पुण्यक रहन हुए मसारम अत्रय जवान् जीवनन जवान् क्या रह जाता है ? अथवा कुछ भी नहीं ॥ १५॥ बहुत भारी लम्बीका धारण करनेवाला चक्रवर्ती भरतन पुण्यकमेक उत्पन्न हा बिना किम् उत्पन्नक उत्पन्न करनेक अयोग्य समुद्रका उत्पन्न कर समुद्रका जल ही जिसकी सोमा है एमी पथिकीका अपने जवान् कर दिया मा ठीक ही है क्योंकि षष्ठ पदार्थोंकी भित्तिके लिए पुण्यक बन्दर बार का माधन नहीं है ॥ १५॥ शत्रुओंके समूहके लिए जिनकी मय्यति बहुत ही भयकर है तब चक्रवर्ती भरतने अन्यन्त भयकर मगर भन्टाक समूहम भर हुए समुद्र का उत्पन्न कर अन्य किमीक वग न हानि योग्य मागध दक्की निश्चित रूपन वहा कर लिया, सा ठीक हा है क्योंकि लक्ष्म पुण्यक बन्दर बार काइ वगीकरण (वग करनेवाला) नहीं है ॥ १५॥ पुण्य हा मनुष्याका जलम स्थलक समान हा जाता है पुण्य ही स्थलमें जलके समान हानर शीघ्र ही समस्त मन्तापका भष्ट कर देता है और पुण्य ही जल तथा स्थल दोनों जगहके भयमें एक तीसरा पन्थ हाकर गरण होता है इसलिए ह भव्यजनों तुम लोग जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कह हुए पुण्यकम करा ॥ १५॥ पुण्य ही आपत्तिक समय किसीक द्वारा उत्पन्न न करनके योग्य उत्कृष्ट गरण है पुण्य ही वरिष्ठ मनुष्याक लिए धन देनेवाला है और पुण्य ही मुखकी इच्छा करनेवाला लागाक लिए सुख देनेवाला है, इसलिए ह सज्जन पुरपा । तुम लोग जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कह हुए इस पुण्यरूपी रत्नका सचय करो ॥ १५॥ जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करनेक उत्पन्न होनेवाला पहला पुण्य है मुखाधिति दान देनेमे उत्पन्न हुआ दूसरा पुण्य है व्रत पालन करनेक उत्पन्न हुआ तीसरा पुण्य है और उपवास करनेमे उत्पन्न हुआ चौथा पुण्य है इस प्रकार पुण्यकी इच्छा करनेवाला पुरुषाका ऊपर लिख हुए चार प्रकारक पुण्याका

१ सामा २० ३० ४० ५० ६० । २ स्वाधीन धनार । सप्तम् । ४ प्राप्ति ।
- विद्याभुषण ल २० । ५ प्रतिपत्ति ।

इत्थं स्वपुण्यपरिपावजमिष्टलाभं^१ सश्लाघयन्^२ जनतया^३ श्रुतपुण्यघोषः ।
चक्री सभागृहगतो नृपचक्रमध्ये शक्रोपमः पृथुनृपासनमध्यवात्सीत्^४ ॥२२०॥

हरिणी

धुततटवने रक्ताशोकप्रवालपुटोद्भिदि^५ स्पृशति पवने मन्दं तरङ्गविभेदिनि ।
अनुसरसस्त्सैन्यैः मार्धं प्रभुः सुखमावसज्जलनिधिजयश्लाघात्रीर्मिर्जिनाननुचिन्तयन् ॥२२१॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे
पूर्वार्णवद्वारविजयवर्णनं नामाष्टाविंश पर्व ॥२८॥



सचय करना चाहिए ॥ २१९ ॥ इस प्रकार जिसने लोगोके समूहसे पुण्यकी घोषणा सुनी है
ऐसे चक्रवर्ती भरत, अपने पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए इष्ट वस्तुओके लाभकी प्रशंसा करते
हुए सभाभवनमे पहुँचे और वहाँ राजाओके समूहके मध्यमे इन्द्रके समान बडे भारी राज-
सिंहासनपर आरूढ हुए ॥ २२० ॥ जिस समय किनारेके वनको हिलानेवाला, रक्त अशोक
वृक्षकी कोपलोके सपुटको भेदन करनेवाला और लहरोको भिन्न-भिन्न करनेवाला वायु धीरे-
धीरे वह रहा था उस समय समुद्रको जीतनेकी प्रशंसा और आशीर्वादके साथ-साथ जिनेन्द्र
भगवान्का स्मरण करते हुए भरतने गंगा नदीके किनारे-किनारे ठहरी हुई सेनाके साथ सुख-
से निवास किया था ॥२२१॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहके
भाषानुवादमे पूर्वममुद्रके द्वारको विजय करनेका वर्णन
करनेवाला अट्ठाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।



एकोनविंशत्तम पर्व

अथ चक्रवर्ती ननों वृक्षे-यामिष्टमाधनाम् । प्रतस्थ दक्षिणामार्गां त्रिगीपुरनुत्तायधि ॥१॥
 'यताऽस्य' पदद्वयानां धनिराम-द्रुमुत्तरम् । मूर्ति-त 'काहलारावरधिध्वानं निरादध' ॥२॥
 प्रयाणभरानि रजान सम्मृच्छन् गगनं हित । दिष्टान्मायनयन क्षाम हृदयानि च त्रिदिशाम् ॥३॥
 चित्रं पवनोद्धूता जिगापाजयकतना । धारिधेरिध 'कालानुद्वेलानां' ॥४॥
 एकता लवणाम्माधि-यता-युपसागर । समभ्य 'यान्त्रलोपाऽस्य मृतायाऽधिधियावमा ॥५॥
 हस्तधरयपादात् द्वाक्ष मनमधरा । पदं बलमस्यति पप्रथ व्याप्य रादमा' ॥६॥
 पुर प्रतस्थ ऋष्यन चक्रेण तदनन्तरम् । ताम्बा विधाधिन मार्गे तद्वत् प्रयया सुगम् ॥७॥
 तच्चक्रमरिचक्रस्य करल क्रकचायितम् । दण्डाऽपि दण्डपक्षस्य कालदण्ड' द्वापर ॥८॥
 प्रययां निकषाम्माधि' समया तदवदिकाम् । अनुबलावन मग्राट मयैः सधाययन्' दिशः ॥९॥
 अनुवर्धित' 'कपलद्वय' स्वामनाकिनाम् । आपालतां नृपाद्राणां मूर्ति रापयति स्म स ॥१०॥
 चरित चलित पूव निर्यात निःसृत पुर । प्रयाण यातमथास्मिन्' मनानानिधिरिभि ॥११॥

अथानन्तर — चक्रवर्ती भरत समस्त इष्ट वस्तुओंका मिट्ट करनेवाली जिनेन्द्रवर्ती पूजा कर दक्षिण दिशाकी जीतनेकी इच्छा करते हुए समुद्रके किनारे किनारे चले ॥ १ ॥ जिस समय चक्रवर्ती जा रहे थे उस समय तुरहीक शब्दास मिली हुई पदरूपी नगाडाकी गम्भीर ध्वनि समुद्रकी गजनाको भी ढक रही थी ॥२॥ हाथियाकी चिंघाडासे मिले हुए प्रस्थानके समय बजनेवाले नगाडाके शब्द समस्त दिशाआ तथा शत्रुओंक हृदयोंको क्षोभ प्राप्त करा रहे थे ॥ ३ ॥ जीतनेकी इच्छा करनेवाले चक्रवर्तीकी वायुसे उड़ती हुई विजय पताकाएँ ऐसी सुनो भित हो रही थी मानो ज्वारसे उठी हुई समुद्रकी लहरोंको ही बुला रही हा ॥ ४ ॥ उस सेनाके एक ओर (दक्षिणकी ओर) तो लवण समुद्र था और दूसरी (उत्तरकी) ओर उपसागर था उन दोनोंक बीच जाता हुआ वह सनाका समूह ऐसा सुनोभित हो रहा था मानो तीसरा समुद्र ही हो ॥५॥ हाथी, घोड़े, रथ पियादे देव और विद्याधर यह छह प्रकारकी चक्रवर्तीकी सेना आकाश और पथिवीक अन्तरालको व्याप्त कर सब ओर फैल गयी थी ॥ ६ ॥ सेनामें सबसे आगे दण्डरत्न और उसक पीछे चक्ररत्न चलता था तथा इन दोनोंके द्वारा साफ किये हुए मार्गमें सुखपूर्वक चक्रवर्तीकी सेना चलती थी ॥ ७ ॥ चक्रवर्तीका वह एक चक्र ही शत्रुओंक समूहको नष्ट करनेके लिए करोतक समान था तथा दण्ड ही दण्ड देने योग्य शत्रुओंके लिए दूसरे यमदण्डक समान था ॥ ८ ॥ सम्राट भरत समुद्रक समीप-समीप किनारेकी वेदीके पास पास किनारेक अनुसार अपनी सेनाके द्वारा दिशाओंको गुजाते हुए — सचेत करते हुए चल ॥ ९ ॥ अपनी अलघनीय सेनाको समुद्रके किनारे किनारे चलाते हुए चक्रवर्ती भरत अपनी आज्ञा रूपी लताकी राजारूपी पवतोंके मस्तकपर चढ़ाते जाते थे ॥ १० ॥ महाराज भरतके शत्रु उनके सेनापतियोंके समान थे क्योंकि जिस प्रकार महाराजक चलनेकी इच्छा होते ही सेनापति

१ गच्छत । २ पृ ५० इ द० । ३ मिथिन । ४ आच्छादयति स्म । ५ मिश्रोभवन । ६ उज्जुम्भितान् । ७ स्पृष्टां वतुमिच्छत । ८ गच्छन् । ९ द्वाकापुथिव्या । भूधाको रोदस्यो रोदसी च त इत्यमर । १० दण्ड रत्नेन । ११ करपत्रमिवाचरितम् । १२ यमस्य दण्ड । १३ अश्वोद्य समीपम् । निकषा त्वन्तिके मध्ये । १४ तदवदिकाम् । १५ साधयन । १६ प्रापयन । १७ भरते ।

निष्क्रान्त इति सभ्रान्तैरायात इति र्भावः । प्राप्त^१ इत्यनवस्थैश्च^२ प्रणमे मोऽरिभूमिपैः ॥१२॥

^३ महापगारायस्येव तत्तरस्य वलीयम् । यो यः 'प्रतीपमभवत् स स निर्मलतां ययौ ॥१३॥

'प्रतीपवृत्तिमादशं छायात्मानं^४ च नात्मनः । विक्रमैकरमश्चक्री मोऽसौ^५ किमुत द्विपम् ॥१४॥

चमूरवश्रवादेव^६ कँश्चिदस्य विगेविभिः । चमूरुत्तमारुद्रमनिद्रं पलायितं^७ ॥१५॥

^{११} महाभोगैर्नृपैः कँश्चिद् भयादुन्मृष्टमण्डलं^{१२} । भुजङ्गैरिव निर्मोकस्तन्यजेऽपि परिच्छिदः^{१३} ॥१६॥

प्रदुष्टान् भोगिनः^{१४} काश्चिन् प्रभुरुद्धृत्य मन्त्रतः^{१५} । वल्मीकैष्विव दुर्गेषु^{१६} कुल्यानन्याननिष्ठिपन्^{१७} ॥१७॥

पहले ही चलनेके लिए तैयार हो जाते हैं उसी प्रकार उनके शत्रु भी महाराजको चलनेके लिए तत्पर मुनकर स्वयं चलनेके लिए तत्पर हो जाते थे अर्थात् स्थान छोड़कर भागनेकी तैयारी करने लगते थे अथवा भरतकी ही शरणमें आनेके लिए उद्यत हो जाते थे, जिस प्रकार महाराजके नगरसे बाहर निकलते ही सेनापति उनसे पहले बाहर निकल आते हैं उसी प्रकार उनके शत्रु भी महाराजको नगरसे बाहर निकला हुआ सुनकर स्वयं अपने नगरसे बाहर निकल आते थे अर्थात् नगर छोड़कर बाहर जानेके लिए तैयार हो जाते थे अथवा भरतसे मिलनेके लिए अपने नगरसे बाहर निकल आते थे और जिस प्रकार महाराजके प्रस्थान करते ही सेनापति उनसे पहले प्रस्थान कर देते हैं उसी प्रकार उनके शत्रु भी महाराजका प्रस्थान सुनकर उनसे पहले ही प्रस्थान कर देते थे अर्थात् अन्यत्र भाग जाते थे अथवा चक्रवर्तीसे मिलनेके लिए आगे बढ़ आते थे ॥११॥ चक्रवर्ती भरत नगरमें बाहर निकला यह सुनकर जो व्याकुल हो जाते थे, चक्रवर्ती आया यह सुनकर जो भयभीत हो जाते थे और वह समीप आया यह सुनकर जो अस्थिरचित्त हो जाते थे ऐसे शत्रु राजा लोग उन्हें जगह-जगह प्रणाम करते ॥१२॥ जिस प्रकार किसी महानदीके बलवान् वेगके विरुद्ध खड़ा हुआ वृक्ष निर्मूल हो जाता है-जड़सहित उखड़ जाता है उसी प्रकार जो राजा उस बलवान् चक्रवर्तीके विरुद्ध खड़ा होता था-उसके सामने विनयभाव धारण नहीं करता था वह निर्मूल हो जाता था-वगसहित नष्ट हो जाता था ॥१३॥ एक पराक्रम ही जिसे प्रिय है ऐसा वह भरत जब कि दर्पणमें उलटे पड़े हुए अपने प्रतिविम्बको भी सहन नहीं करता था तब शत्रुओंको किस प्रकार सहन करता ? ॥१४॥ कितने ही विरोधी राजाओंने तो उनकी सेनाका गव्व सुनते ही बहुत दूर भागकर हरिणकी वृत्ति प्रारम्भ की थी ॥१५॥ और कितने ही वैभवशाली बड़े-बड़े राजाओंने भयसे अपने-अपने देश छोड़कर छत्र चमर आदि राज्य-चिह्नोंको उस प्रकार छोड़ दिया था जिस प्रकार कि बड़े-बड़े फणाओंको धारण करनेवाले सर्प अपने बलयाकार आसनको छोड़कर काँचली छोड़ देते हैं ॥१६॥ जिस प्रकार दुष्ट सर्पोंको मन्त्रके जोरसे उठाकर वामीमें डाल देते हैं उसी प्रकार भरतने अन्य कितने ही भोगी-विलासी दुष्ट राजाओंको मन्त्र (मन्त्रियोंके साथ की हुई सलाह) के जोरसे उखाड़कर किलोमें डाल दिया था, उनके स्थानपर अन्य कुलीन राजाओंको बैठाया

१ समीप प्राप्त । २ अवस्थामतिक्रान्ते । त्यक्तपूर्वस्वभावैरित्यर्थः । ३ महानदीवेगमयः । ४ प्रतिकूलम् ।

५ प्रतिकूलवृत्तिम् । ६ छायास्वरूपम् । 'आत्मा यत्नो धृतिर्वृद्धिः स्वभावो ब्रह्म वार्ष्णेयः च' इत्यमरः । ७ महति स्म । ८ सेनाध्वनिममाकर्णनात् । ९ कम्भोजादिदेशजक्रूरविशेषवर्तनम् । 'कदली कन्दली चीनश्चमूरप्रियकावपि ।

ममूद्धचेति हरिणा भूमौ अजिनयोनयः ।' इत्यभिवानात् । १० पलायिभिः ल०, प०, द०, । ११ पक्षे महाकायैः । 'भोगः मुखे श्चन्द्रादिभूतवहेष्च फणकादयो' इत्यभिवानात् । १२ त्वक्तभूमार्गः । पक्षे त्यक्तवलयः ।

१३ परिच्छिदोऽपि छत्रचामरार्द्रादिपरिकरोऽपि परित्रयन्तः । १४ पक्षे मर्यान् । १५ मन्त्रपतिः । १६ मन्कुलजाम् ।

१७ व्यापयति स्म ।

अनपशरणैरवैस्तापविच्छेदमिच्छुमि । तत्पादपादपञ्चाया यययि गुणशीलम् ॥१८॥
 केषांचित् पत्रनिर्मात्रं छायापायं च भूभुजाम् । पादपानामिषं प्राप्तं नमम्यणश्चकार यः ॥१९॥
 प्रस्तोष्मप्रसरां गात्रमुन्मत्तं तोऽपराधम् । प्राप्तोऽस्मिन् वरिभूषणं प्राप्नुमत्तस्यनायकम् ॥२०॥
 वैरकाम्यति व स्मास्मिन् प्रागाध विननाश म । विदिध्यापयिषाह्नं जालम् कुन्तम् किम् ॥२१॥
 वस्तुवाहनसवस्वमाच्छिद्यं प्रमुराहरन् । अरिग्रमरिचक्रपुं व्यक्तमव ययय म ॥२२॥
 स्वयमर्पितसवस्वा नमन्तश्चक्ररतिनम् । पूजमप्यय पश्चादधिशरिग्रमाचरन् ॥२३॥
 साधनरमुनाकां या घरा एतमाप्नोति । साधनरय त ताप नाशोऽभूद्धृत्तमाप्नोति ॥२४॥
 कुल्या कुलधनान्यस्म दत्वा स्वां भुजमानिजन् । कुल्या धनराजस्य जिगीषाम्ना हि पाथिवा ॥२५॥
 प्रजा करमराक्रान्ता यस्मिन् स्वामिनि दु म्भिमा । तमुद्धृत्य प तस्य पुनर्दण्डं यथाद्विभु ॥२६॥

था ॥१८॥ जिह अय कोई शरण नहीं थी और जो अपना मताप नष्ट करना चाहत थे ऐम कितने ही राजाओंने मुख तथा शान्ति देनेवाली भरतक चरणरूपी वृक्षाकी छायाका आश्रय लिया था ॥१८॥ जिस प्रकार समीप आया हुआ शीत ऋतु वक्षाव पत्र अथात् पत्ताका नाश कर देता है और उनकी छाया अर्थात् छाहरीका अभाव कर देता है उसी प्रकार समीप आये हुए भरतने कितने ही राजाओंक पत्र अर्थात् हाथी घोडे आदि वाहना (मवारिया) का नाश कर दिया था और उनकी छाया अर्थात् शान्तिका अभाव कर दिया था । भावाथ-भरतक समीप आते ही कितने ही राजा लोग वाहन छोडकर भाग जात थ तथा उनक मुखकी शान्ति भयसे नष्ट हो जाती थी ॥१९॥ महाराज भरतक समीप आत ही शत्रु राजाओंका सब तेज (पक्षमें गरमी) नष्ट हो गया था उनक भारी भारी द्वासोच्छवास चलने लगे थे और वे अत करणमें व्याकुल हो रहे थ इसलिए वे मरणो मुख मनुष्यकी समानताको प्राप्त हो रहे थे ॥२०॥ जिस पुरुषने भरतके साथ शत्रुता करनेकी इच्छा की थी वह पहल ही नष्ट हो चुका था, सो ठीक ही है क्योंकि अग्निको वृक्षानेकी इच्छा करनेवाला पतंगा क्या कभी सकुशल रह सकता है ? अर्थात् नहीं ॥२१॥ महाराज भरतने शत्रुओंक हीरा मोती आदि रत्न तथा सवारी आदि सब धन छीन लिया था और इस प्रकार उन्होंने समस्त अरि अर्थात् शत्रुओंके समूहको स्पष्ट रूपसे अरि अर्थात् धनरहित कर दिया था ॥२२॥ अपने आप समस्त धन भेंट कर चक्रवर्तीको नमस्कार करनेवाले राजा लोग यद्यपि पहले शत्रु थ तथापि पीछेसे वे बडे भारी अधिकारी हुए थे ॥२३॥ जो पृथिवी पहल भरतकी सेनासे आक्रान्त होकर भयभीत हो रही थी वही पृथिवी अव अपने धनसे भरतको सन्तोष प्राप्त कराकर निमग्न हो गयी थी ॥२४॥ उच्च कुलोमें उत्पन्न हुए अनेक राजाओंने भरतेश्वरके लिए अपनी कुल-परम्परासे चला आया धन देकर फिरसे अपनी पृथिवी प्राप्त की थी सो ठीक ही है क्योंकि वे राजा विजयाभिलाषी राजाक लिए धनरूपी जालके प्रवाहकी प्राप्तिके लिए कुल्या-नदी अथवा नहरके समान होते ह । भावाथ-विजयी राजाओंको धनकी प्राप्ति साधारण राजाओंसे होती है ॥२५॥ जिस राजाके रहते हुए प्रजा करके बोझसे दबकर दु खी हो रही थी,

१ वाहननिर्माशम पक्ष पणविनाशम् । २ सेजोहानिम् । ३ समीपस्य । ४ निरस्तप्रभावप्रसरा । पक्षे निरस्तोष्णप्रसरा । ५ मरते । ६ मरणकालमाप्नुपुरुषसमानतामित्यथ । ७ वरमिच्छति । ८ यो नास्मिन् । ९ (ना पुमान् इति ६० टिप्पणी) । १० क्षयितुमिच्छ । १० आकृष्य । ११ स्वीकृत्य । १२ न विद्यते । १३ धन यथा तानि अरीणि तथा आवस्तुत्वम् निधनत्वमित्यथ । १३ अधिकशत्रुत्वमिति ध्वनि । १४ सन्धे । १५ निरस्तमीति । १६ कुलजा । १७ उपाजयति स्म । १८ गतिस्थानाजोपाजनपु । १८ सरित् । कुल्या कुलवधु मरित् । अथवा कृत्रिममरित् । तत्पक्षे कुल्याल्पा कृत्रिमा सरित् । १९ दु खिता ल० । १० योग्य दण्डकारिपुरुषं स्थापयामास ।

निजग्राह नृपान् दृष्टाननुजग्राह सत्क्रियान् । न्याय्यं क्षात्रं ऽयमिन्धेव प्रजाहितविधिलम्बया ॥२७॥
 योगक्षेमौ जगत्त्रितयै न प्रजास्वेव केवलम् । प्रजापालेऽपि प्रायस्तस्य चिन्त्यत्वमीयतुः ॥२८॥
 पार्थिवस्यैकराष्ट्रस्य मता वर्णाश्रमाः प्रजाः । पार्थिवा सार्वभौमस्य प्रजा यत्तेन ते धृताः ॥२९॥
 पुण्यं साधनमस्यैक चक्र तस्यैव पोषकम् । तद्द्वय साध्यसिद्ध्यङ्गं सेनाङ्गानि विभूतये ॥३०॥
 इति मण्डलभूपालान् बलात् प्राणमयन्नयम् । मानमेवामनक् तेषां न सेवाप्रणय विभुः ॥३१॥
 प्रतिप्रयाणमभ्येत्य प्राणसिपुरमु नृपाः । प्राणरक्षामिवास्याज्ञां वहन्तः स्वेपु मूर्धसु ॥३२॥
 प्रणताननुजग्राह सातिरंकेः फलैः प्रभुः । किमु कल्पतरोः सेवास्त्यफलात्पफलापि वा ॥३३॥
 संप्रक्षितै स्मितैर्हसैः सविश्रम्भैश्च जतिपतैः । सम्राट् समावयामास नृपान् समानैरपि ॥३४॥
 स्मितै प्रसाद सजलपैर्विस्त्रम्भं हसितैर्मुदम् । प्रेक्षितैरनुरागं च व्यनक्ति स्म नृपेषु सः ॥३५॥

भरतने उसे हटाकर उसके पदपर किसी अन्य नीतिमान् राजाको बैठाया था ॥२६॥ उन्होंने अहंकारी राजाओको दण्डित किया था और सत्कार अथवा उत्तम कार्य करनेवाले राजाओ-पर अनुग्रह किया था सो ठीक ही है क्योंकि प्रजाका हित करनेकी इच्छासे क्षत्रियोका यह धर्म ही न्यायपूर्ण है ॥२७॥ राजा भरतने जगत्की स्थितिके लिए केवल प्रजाके विषयमे ही योग (नवीन वस्तुको प्राप्त करना) और क्षेम (प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा करना) की चिन्ता नहीं की थी किन्तु प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाओके विषयमे भी प्रायः उन्हें योग और क्षेमकी चिन्ता रहती थी ॥२८॥ किसी एक देशके राजाकी प्रजा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्ण रूप मानी जाती है परन्तु चक्रवर्तीकी प्रजा नम्रीभूत हुए राजा लोग ही माने जाते हैं इस-लिए चक्रवर्तीको प्रजाके साथ-साथ राजाओकी चिन्ता करना भी उचित है ॥२९॥ भरतके समस्त कार्योको सिद्ध करनेवाला एक पुण्य ही मुख्य साधन था, और चक्ररत्न उस पुण्यकी पुष्टि करनेवाला था, पुण्य और चक्ररत्न ये दोनों ही उसके साध्य (सिद्ध करने योग्य विजय रूप कार्य) की सिद्धिके अंग थे, बाकी हाथी घोड़े आदि सेनाके अंग केवल वैभवके लिए थे ॥३०॥ इस प्रकार मण्डलेश्वर राजाओसे बलपूर्वक प्रणाम कराते हुए चक्रवर्तीने उनका केवल मान भग ही किया था, अपनी सेवाके लिए जो उनका प्रेम था उसे नष्ट नहीं किया था ॥३१॥ प्राणोकी रक्षाके समान भरतकी आज्ञाको अपने मस्तकपर धारण करते हुए अनेक राजा लोग प्रत्येक पड़ावपर आकर उन्हें प्रणाम करते थे ॥३२॥ प्रणाम करनेवाले राजाओको महाराज भरतने बहुत अधिक फल देकर अनुगृहीत किया था सो ठीक ही है क्योंकि कल्पवृक्षकी सेवा क्या कभी फलरहित अथवा थोड़ा फल देनेवाली हुई है ? ॥३३॥ सम्राट् भरतने कितने ही राजाओकी ओर देखकर, कितने ही राजाओकी ओर मुसकराकर, कितने ही राजाओकी ओर हँसकर, कितने ही राजाओके साथ विश्वासपूर्वक वार्तालाप कर, और कितने ही राजाओ-का सन्मान कर उन्हें प्रसन्न किया था ॥३४॥ उन्होंने कितने ही राजाओपर मुसकराकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी, कितने ही राजाओपर वार्तालाप कर अपना विश्वास प्रकट किया था, कितने ही राजाओपर हँसकर अपना हर्ष प्रकट किया था और कितने ही राजाओपर प्रेमपूर्ण

१ निग्रह कर्गेति स्म । २ दर्पाविष्टान् । ३ स्वीकृतवान् । ४ न्यायादनपेन । ५ क्षत्रियधर्म । ६ पार्थिवेषु । ७ एकदेशवत् । ८ क्षत्रियादिवर्णा ब्रह्मचर्याद्या आश्रमा । ९ प्रजायन्ते प०, ल० । १० पार्थिवा । ११ स्वीकृता । १२ प्रहोभूतानकुर्वन् । १३ गर्वमेव । १४ मर्दयति स्म । 'भञ्जोऽयमर्दने' । १५ नमस्कुर्वन्ति स्म । १६ तैर्दत्तवनात् माधिकं । १७ स्निग्धावलोकनं । मप्रेक्षणै ल० । १८ मविश्रामं । 'ममी विश्रम्भ-विश्रामो' इत्यमर । १९ वचने । २० वस्त्राभरणादिपूजनं ।

‘अतार्क्ष्यं प्रणतानप सैमताप्साद् विराधिन । शमप्रतापी दमो जगु’^१ वाधियस्याधिना गुणी ॥३९॥

प्रसन्नया दशदास्य प्रसाद् प्रणत रिपी । भूमन्ननाम्पुंन काप मय्य यदुनटां नृप ॥३७॥

अज्ञान्मणिमिरत्यद्वैवर्तास्तुर्हमतैर्द्वजै । सैव सैवच कश्चिन्नेनात् माऽभ्यनन्ददुपानतान् ॥३८॥

‘साराधायितमवाप्त्य स्फुट’^२ सागधिकनृप । कानयजिगुणानुधै प्रसादमग्नित्वापुर्व ॥३९॥

कुरुनवन्तीन् पाञ्चालान् काशींश्च मह कोमलै । वैदर्भानप्यनायामादापरय^३ चमूपति ॥४०॥

‘व्रजन् भद्राश्च कच्छाश्च चम्पान् चम्पान् ससुहृत्मान् । पुण्ड्रानाण्डोश्च गान्धा^४श्च’^५ मतमध्रावचद् विजा ॥४१॥

दशार्णान् कामरूपाश्च काश्मीरानप्युशानरान् । भव्यमानपि भूपालान् माऽचिराद् यगमानयन् ॥४२॥

दुहुरस्मै नृपा प्राच्यकलिङ्गाद्वारजान्^६ गगान् । गिरीनिव महारुद्रायान्^७ ‘व्रथात’मदनिमरान् ॥४३॥

‘दशाणकजनास्तानपि चदिङ्गजान्’^८ । दिङ्नागस्पर्थिना नागो^९ ‘आदुनागो’ वनाधिप ॥४४॥

विमोक्षलभरक्षामभामहन्तीथ दुर्महम् । सुपुत्रेऽनन्तरयानि गर्भिणी^{१०} वसुधरा ॥४५॥

दृष्टि डालकर अपना प्रम प्रकट किया था ॥३५॥ उहने नञ्जीभूत राजाआवो सन्तुष्ट किया था और विरोधी राजाआवो अच्छी तरहसे मन्तप्त किया था मो ठीक ही है क्योंकि पृथिवीको जीतनेके लिए शान्ति और प्रताप ये दो ही राजाआवो योग्य गुण माने गये ह ॥३६॥ राजा भरत नमस्कार करनेवाल पुरुषपर अपनी प्रसन्न दृष्टिस प्रसन्नता प्रकट करते थे और साथ ही शत्रुके ऊपर भाह टपी कर क्रोध प्रकट करते जात थे इसलिए यह उक्ति सच मालूम होती है कि राजा लोग नट तुल्य होते ह ॥३७॥ उत्तम उत्तम मणिआवो भेंट कर नमस्कार करते हुए अग देशमे राजाओपर ऊँचे-ऊँचे हाथियोंको भेंट कर नमस्कार करते हुए वग देशके राजाओं पर और मणि तथा हाथी दोनोंको भेंट कर नमस्कार करते हुए कलिंग देशके राजाआपर वह भरत बहुत ही प्रमन्न हुए थे ॥३८॥ भरतेश्वरके प्रसादकी इच्छा करनेवाले मगध देशके राजा उनके उत्कृष्ट गुण गा रहे थे इसलिए वे ठीक मागध अथात् बन्दीजनोंके समान जान पड़ते थे ॥३९॥ भरत महाराजके सेनापतिने कुरु, अचन्ती, पांचाल, काशी, कोशल और वैष्ण देशोंके राजाओको बिना किसी परिश्रमके अपनी ओर खींच लिया था अर्थात् अपने वश कर लिया था ॥४०॥ भद्र कच्छ, चेदि, वत्स सुह्य, पुण्ड्र, औण्ड्र और गौड देशोमे जा-जाकर सेनापतिने सब जगह भरत महाराजकी आज्ञा सुनायी थी ॥४१॥ उसने दशाण, कामरूप, कश्मीर, उशीनर और मध्यदेशके समस्त राजाओंको बहुत शीघ्र वश कर लिया था ॥४२॥ वहाँके राजाओं ने जिनसे मदके निम्नरने शर रहे है ऐसे, पूव देशमे उत्पन्न होनेवाले तथा कलिंग और अगार देशमें उत्पन्न होनेवाल पक्षियोंके समान ऊँचे-ऊँचे हाथी महाराज भरतके लिए भेंटमें दिये थे ॥४३॥ जिनमें हाथी उत्पन्न होते हैं ऐसे वनोंके स्वामियोंने दिग्गजोंके साथ स्पर्द्धा करनेवाले, दशाणक वनमें उत्पन्न हुए तथा चेदि और ककूश देशमें उत्पन्न हुए हाथी महाराजके लिए प्रदान किये थे ॥४४॥ उस समय भरतेश्वरको पृथिवीपर जहाँ-तहाँ अनेक रत्न भेंटमें मिल रहे थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो गर्भिणीके समान पृथिवीने चक्रवर्तीकी सेनाके बोझसे उत्पन्न हुए दु सह औषको न सह सकनेके कारण ही अनन्त रत्न उत्पन्न किये हुए हो ॥४५॥

१ तपयामास । २ सन्तापयति स्म । ३ जगु ल० इ० अ० प स । ४ व्यक्ती बभूव । ५ नटसदृश ।

६ अङ्गदेशाधिपान् । ७ अन्तर्य । ८ मानवान् । ९ मागधीयत -प इ० । स्तुतिपाठका द्वाचरितान् ।

१ मगधाधिप । ११ स्त्रीवृत्तवान् । १२ गच्छन् । १३ शासनम आशामित्यर्थ । १४ प्राकदिकसंबन्धिक

लिङ्गदेशाद्गारजान् । १५ गल्त् । १६ दशाणदेशसंबन्धि । १७ चदिकसेवज्ञान् ल०, द० । १८ दधति स्म ।

१९ गजवन । २ गभस्थश्चिगुरिव ।

आपाण्डरगिरिप्रस्थादा च वैभारपर्वतात् । आशैलाद् गोरथादस्य विचे^१ र्जयकुञ्जरा ॥४६॥
 वङ्गाङ्गपुण्ड्रमगधान्^२ मलदान् काशिकौमलान् । सेनानी. परिवभ्राम जिगीपुर्जयसाधनं ॥४७॥
 कालिन्दकालकूटौ च किरातविषय तथा । मल्लदेशं च सप्रापन्म^३ तादस्य^४ चमृपति ॥४८॥
 धुनी सुमागधी गङ्गां गोमती च कपीवतीम् । रथास्कां^५ च नदी तीर्त्वा^६ भ्रेमुरस्य चमृगजा ॥४९॥
 गम्भीरामतिगम्भीरां कालतोयां च कौशिकीम् । नदी कालमही ताम्रारुणां निचुरामपि^७ ॥५०॥
 तं लौहित्य^८ समुद्रं च कम्बुकं च महत्सरः । चमृततङ्गजास्तस्य भेजु. प्राच्य^९ वनोपगाः ॥५१॥
 दक्षिणेन^{१०} नदं शोणमुत्तरेण च नर्मदां । बीजानदीमुभयतः परितो मेखलानदीम् ॥५२॥
 विचेरुः स्वखुरोद्धतधूलीसरुद्धदिद्युखाः ।^{११} जविनोऽस्य स्फुरत्योथा^{१२} जयसाधनवाचिन ॥५३॥
 औदुम्बरी^{१३} च पनसां तमसां प्रमृशामपि ।^{१४} पपुरस्य द्विपा. शुक्तिमती च यमुनामपि ॥५४॥
 चेदिपर्वतमुल्लङ्घ्य चेदिराष्ट्रं^{१५} विजिग्यिरे^{१६} । पम्पा^{१७} सरोऽम्भोऽतिगमा विमोरस्य तुरगमा ॥५५॥
 तमृश्यमूकमाक्रम्य कोलाहलगिरि श्रिताः । प्राङ्माल्यगिरिमासेदुर्जयिनोऽस्य जयद्विपा ॥५६॥
 नागप्रियाद्रिमाक्रम्य^{१८} कुतपावज्या विमो. । सेनाचरा. स्वसाच्चक्रुर्गजाश्चेदिककूशजान्^{१९} ॥५७॥
 नदी वृत्रवती^{२०} क्रान्त्वा बन्धेभक्षतरोधसम्^{२१} । भेजुश्चित्रवतीमस्य चमूवीरास्तुरंगमै ॥५८॥

हिमवान् पर्वतके निचले भागसे लेकर वैभार तथा गोरथ पर्वत तक सब जगह भरत महाराजके विजयी हाथी घूम रहे थे ॥४६॥ सबको जीतनेकी इच्छा करनेवाला भरतका सेनापति अपनी विजयी सेनाके साथ-साथ बग, अग, पुण्ड्र, मगध, मालव, काशी और कोशल देशोमे सब जगह घूमा था ॥४७॥ भरतकी सम्मतिसे वह सेनापति कालिन्द, कालकूट, भीलोका देश, और मल्ल देशमे भी पहुँचा था ॥४८॥ उनकी सेनाके हाथी सुमागधी, गंगा, गोमती, कपीवती और रथास्का नदीको तैरकर जहाँ-तहाँ घूम रहे थे ॥४९॥ पूर्व दिशाके पास-पास जानेवाले उनकी सेनाके हाथी अत्यन्त गहरी गम्भीरा, कालतोया, कौशिकी, कालमही, ताम्रा, अरुणा और निचुरा आदि नदियो तथा लौहित्य समुद्र और कम्बुक नामके बड़े-बड़े सरोवरोमे घूमे थे ॥५०-५१॥ जिन्होने अपने खुरोसे उठी हुई धूलिसे समस्त दिशाएँ भर दी है, जो बड़े वेगशाली हैं और जिनके नथने चंचल हो रहे हैं ऐसे महाराज भरतकी विजयी सेनाके घोड़े शोण नामके नदकी दक्षिण ओर, नर्मदा नदीकी उत्तर ओर, बीजा नदीके दोनों ओर और मेखला नदीके चारो ओर घूमे थे ॥५२-५३॥ भरतके हाथियोने उदुम्बरी, पनसा, तमसा, प्रमृशा, शुक्तिमती और यमुना नदीका पान किया था ॥५४॥ चक्रवर्तीके घोडोने पम्पा सरोवरके जलको पार किया था तथा चेदि नामके पर्वतको उल्लघन कर चेदि नामके देशको जीता था ॥५५॥ सबको जीतनेवाले भरतके विजयी हाथी ऋष्यमूक पर्वतको उल्लघन कर कोलाहल पर्वत तक जा पहुँचे थे और फिर माल्य पर्वतके पूर्व भागके समीप भी जा पहुँचे थे ॥५६॥ भरतकी सेनाके लोगोने देहली-जैसा समझ अवज्ञापूर्वक नागप्रिय पर्वतको उल्लघन कर चेदि और ककूश देशमे उत्पन्न हुए हाथियोको अपने अधीन कर लिया था ॥५७॥ उनकी सेनाके वीर पुरुष घोडोके द्वारा वृत्रवती नदीको पार कर जिसके किनारे जगली हाथियोसे खूँदे गये हैं ऐसी चित्र

१ चरन्ति स्म । २ मलयान् ३०, अ० । मालयान् ५० । मालवान् ल०, द० । ३ आज्ञात । ४ चक्रिण । ५ रथस्या अ० । रेवस्या ५०, ट० । रवस्या द० । ६ अवतीर्य । ७ निघुरामपि ल० । ८ लौहित्यसमुद्रनाम-सरोवरम् । ९ पूर्व । १० शोणनदस्य दक्षिणस्या दिशि । ११ वेगिन । १२ नामिका । १३ उदुम्बरी स०, ३०, अ०, ५०, द०, ल० । १४ 'ययु' इत्यपि पाठ । यानमकुर्वन् । १५ चेदिदेशम् । १६ जयन्ति स्म । १७ पम्पानरोजलमतिक्रान्ता । १८ देहली । १९ -सेरुजान् ल०, द० । २० वेत्रवती ३० । छत्रवती ५० । वृत्तवती अ०, स०, । २१ वनगजक्षुण्णतटात् ।

रुद्रा माल्यवतारिवन ययमसकुलम् । यामुनं च पय पाप्मा जिह्युरग्न्य द्विपा दिवा ॥५१॥
 अनुवेणुमतीतार गवाक्ष णयमाचनम् । घासभूमि ममाक्रम्य दशार्णामप्यलङ्घयत् ॥५०॥
 विशाला नालिका सिन्धु परा निकुन्दरीमपि । यहुग्रां च रम्या च नदा निकृतिनीमपि ॥५१॥
 ऊहा^१ च समतायां च कजामपि कपीवतीम् । निविध्या च धुना जम्भूमती च मरिदुत्तमाम् ॥५२॥
 वसुमत्थापगामकिशगामिना शकरावताम् । सिप्रा च वृत्तमाला च परिजा पनसामपि ॥५३॥
 नदामघनिकाया च हस्तिपाना च निम्नगाम् । कागधुमापगा^२ व्याघ्री धुना चमण्वतामपि ॥५४॥
 शतभागा च नन्दा च नदा करमवेगिनीम् । चुलितायां च रेवां च सप्तपारां च काशिकाम् ॥५५॥
 सरिखोभ्रुगाघापा विष्णुगार्दभ्य तद्वलम् । गुरगमभ्रुगात्पाततारा विलारिणाभ्यधन ॥५६॥
 तैरश्चिक गिरिक्रात्वा रुद्रा वैद्यभूधरम् । मदा कृगद्विमुलङ्घय पारियात्रमशिभियन् ॥५७॥
 गत्वा पुष्पगिरि प्रस्थान् सान् नितगिरिपि^३ । गदागिरिनिकुञ्जपु^४ यन्मन्यस्य यिनाश्रमु^५ ॥५८॥
 वातपृष्ठदरीभागा मृक्षवत् कुक्षिमि^६ समम् । तस्मैनिका श्रयन्ति स्म कम्बलाद्रितगा^७ यपि ॥५९॥
 वासवन्त महाशूलं विलङ्घ्यासुरधूपन^८ । स्थित्या स्थ सनिका प्रापन् मदमानद्वरविकान्^९ ॥६०॥
 निःसपक्षमिति श्रेष्ठुरितश्रेष्ठश्च सैनिका । निपान् घनविभागपु^{१०} कयन्ता स्थ निर्जगत् ॥६१॥
 दुस्तरा सुतरा जाता सभुक्ता सरिता बलं । स्वाराहाश्च^{११} टुरासहा गिरय क्षुण्णसानव ॥६२॥

वती नदीको प्राप्त हुए थे ॥५१॥ जंगली हाथियासे भरे हुए मारुपवती नदीके किनारेके वनको घेरकर तथा यमुना नदीका पानी पीकर भरतके हाथियाने उस ओरकी समस्त दिशाएँ जीत ली थी ॥५२॥ उनकी विजयी सेनाने वेणुमती नदीके किनारे किनारे जाकर वरस देशकी भूमिपर आक्रमण किया और फिर दशार्णा (घसान) नदीको भी उल्लंघन किया — पार किया ॥५३॥ भरतकी सेनाने विशाला नालिका, सिन्धु पारा, नि कुन्दरी बहुवज्रा, रम्या, सिकसिनी, कुहा समतोया, कजा, कपीवती, निविध्या, नदियाम श्रेष्ठ जम्भूमती वसुमती समुद्र तक जानेवाली शकरावती सिप्रा, वृत्तमाला, परिजा, पनसा, अवतिकाया, हस्तिपानी, कागधु व्याघ्री चमण्वती शतभागा, नन्दा, करमवेगिनी, चुलितापी, रेवा, सप्तपारा, और काशिकी इन अगाध जलसे भरी हुई नदियोंको चारो ओरसे घेरकर जिनके किनारे घोड़ों के खुरोसे खुद गये ह ऐसी उन नदियोंको बहुत चौड़ा कर दिया था ॥५४—५६॥ सैनिकोंने तरश्चिक नामके पर्वतको लंघन कर वडूय नामका पर्वत जा घेरा और फिर कूटाचलको उल्लंघन कर पारियात्र नामका पर्वत प्राप्त किया ॥५७॥ भरतकी वह सेना भुधर गिरिके शिखरोपर चढ़कर सितगिरिके शिखरोपर जा चढ़ी और फिर वहाँसे चलकर उसने मदा नामक पर्वतके लतागृहोंमें विश्राम किया ॥५८॥ भरतके सैनिकोंने ऋक्षवान् पर्वतकी गुफाओं के साथ-साथ वातपृष्ठ पर्वतकी गुफाओका आश्रय लिया और फिर वहाँसे चलकर कम्बल नामक पर्वतके किनारीपर आश्रय प्राप्त किया ॥५९॥ वे सनिक वासवन्त नामके महापर्वतको उल्लंघन कर असुरधूपन नामक पर्वतपर ठहरे और फिर वहाँसे चलकर मवेभ आनग और रेमिक पर्वतपर जा पहुँचे ॥६०॥ सेनाक लीग उन देशोको शत्रुरहित समझकर अपने हाथियोंके द्वारा वनके प्रदेशोम हाथी पकड़ते हुए जहाँ-तहाँ घूम रहे थे ॥६१॥ जो नदियाँ दुस्तर अर्थात् कठिनाईसे तैरने योग्य थी वे ही नदियाँ सैनिकोंके द्वारा उपभुक्त होनेपर सुतर अर्थात् सुखसे

१ बलम् । २ दशार्णान् इत्यपि वक्ष्यते । ३ कुहा ल० । ४ कागधुन्यापगाम । ५ सानून । ६ स्मितगिरि—ल । ७ नितम्बेषु । ८ विश्राम्यति स्म । ९ वातपृष्ठगिरिकन्दरप्रदेशान् । १० भल्लूका इव । ११ तद्दीरस्थित गदाभि सह इत्ययम् । १२ असुरधूपन इति पर्वतविशेषः । १३ मवेभश्च आनङ्गश्च रेमिकश्च तान् । १४ स्त्री भुवन्तः । १५ सुखारोहा ।

राष्ट्राण्यवधयस्तेषां राष्ट्रीयोच्च महीभुजः । फलाय जजिगं मर्तुर्योजिताञ्चासुना^१ फले^२ ॥७३॥
 नृपानवारपारीणान्^३ ३६५५पुपमागरं । बली बलैरवष्टभ्यं प्रापोपवनजान्^४ गजान् ॥७४॥
 रत्नान्यपि त्रिचित्राणि तेभ्यो लब्ध्वा यथेप्सितम् । तानेवास्यापयत्तत्र सन्तुष्टः प्रभुराज्ञया ॥७५॥
 महान्ति गिरिदुर्गाणि निम्नदुर्गाणि च प्रभोः । मिद्धानि बलरुद्धानि किमसाध्यं महीयसाम् ॥७६॥
 इत्थं स पृथिवीमध्यान्^५ पौरस्त्यास्त्रिजयद्वीपान् । प्रतस्थे दक्षिणामाशां^६ दक्षिणायजिगीषया ॥७७॥
 यतो यतो बल जिष्णोः प्रचलत्युडनायकम् । ततस्ततः स्म सामन्ता नमन्त्यानम्रमालयः ॥७८॥
 त्रिकलिङ्गाधिपानोद्गान् कच्छान्धविषयाधिपान् । प्रातरान् केरलाञ्चोलान् पुन्नागाञ्च व्यजंष्ट सः ॥७९॥
 कुड्डुस्वानोलिकांश्चैव स माहिषकमेकुरान् । पाण्डयानन्तरपाण्डयांश्च दण्डेन^७ वगमानयत् ॥८०॥
 नृपानेतान विजित्याशु प्रणमस्य स्वपादयोः । हत्वा तत्सारत्नानि प्रभुः प्रापत् परां सुदम् ॥८१॥
 सेनानारिपि बभ्राम^८ विमोराज्ञा समुद्रहन् । गिरीन् समरितो देशान्^९ कालिङ्गकवनाश्रितान् ॥८२॥
 न माधनैः सम भेजे तैलामिक्षुमतीमपि । नदी नक्ररवां वज्रां ज्वसना च महानदीम् ॥८३॥

तैरने योग्य हो गयी थी । इसी प्रकार जो पर्वत दुरारोह अर्थात् कठिनाईसे चढने योग्य थे वे ही पर्वत सैनिकोंके द्वारा शिखरोंके चूर्ण हो जानेसे स्वारोह अर्थात् सुखपूर्वक चढने योग्य हो गये थे ॥७२॥ देश, उनकी सीमाएँ और देशोंके राजा लोग सम्राट् भरतेश्वरको फल प्रदान करनेके लिए ही उत्पन्न हुए थे तथा बदलेमें भरतने भी उन्हें अनेक फलोंसे युक्त किया था । भावार्थ — सम्राट् भरत जहाँ-जहाँ जाते थे वहाँ-वहाँके लोग उन्हें अनेक प्रकारके उपहार दिया करते थे और भरत भी उनके लिए अनेक प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान करते थे ॥७३॥ जो राजा लोग उपसमुद्रके उस पार रहते थे अथवा उप-समुद्रके भीतर द्वीपोंमें रहते थे उन सबको बलवान् भरतने सेनाके द्वारा अपने वग किया था तथा वनमें उत्पन्न होनेवाले हाथियोंको पकड़-पकड़कर उनका पोषण किया था ॥७४॥ महाराज भरतने उन राजाओंसे अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकारके रत्न लेकर सन्तुष्ट हो अपनी आज्ञासे उनके स्थानोंपर उन्हींको फिरसे विराजमान किया था ॥७५॥ जो बड़े-बड़े किले पहाड़ोंके ऊपर थे और जो जमीनके नीचे बने हुए थे वे सब सेनाके द्वारा घिरकर भरतके वशीभूत हो गये थे, सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंको क्या असाध्य है ? ॥७६॥ इस प्रकार भरतने पूर्व दिशाके समस्त राजाओंको जीतकर दक्षिण दिशाके राजाओंको जीतनेकी इच्छासे उस पृथिवीके मध्यभागसे दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥७७॥ उत्कृष्ट सेनापति सहित विजयी भरतकी सेना जहाँ-जहाँ जाती थी वहाँ-वहाँ के राजा लोग सामन्तोंसहित मस्तक झुका-झुकाकर उन्हें नमस्कार करते थे ॥७८॥ दक्षिणमें भरतने त्रिकलिङ्ग, ओड्र, कच्छ, प्रातर, केरल, चेर और पुन्नाग देशोंके सब राजाओंको जीता था ॥७९॥ तथा कूट, ओलिक, माहिष, कमेकुर, पाण्ड्य और अन्तरपाण्ड्य देशके राजाओंको दण्डरत्नके द्वारा अपने वशीभूत किया था ॥८०॥ सम्राट् भरतने इन सब राजाओंको शीघ्र ही जीतकर उनसे अपने चरणोंमें प्रणाम कराया और उनके सारभूत रत्न लेकर परम आनन्द प्राप्त किया ॥८१॥ चक्रवर्तीकी आज्ञा धारण करता हुआ सेनापति भी कालिङ्गक वनके ममीषवर्ती अनेक पहाड़ों, नदियों तथा देशोंमें घूमा था ॥८२॥ वह अपनी सेनाओंके, साथ-साथ तैला, इक्षुमती, नक्ररवा, वगा और ज्वसना आदि महानदियोंको प्राप्त हुआ था

१ मेनान्या । २ उन्नयनीरे भवान् । 'पागवान्परेभ्य इति च' इति प्राग्जिनोपदेशे च । 'पागवान्परे तीरे' इत्यमर । ३ द्वीपे जानान् । ४ पाटी इत्या । ५ पुषोप वनजान् ल०, द०, इ०, अ० । ६ पूर्वदिग्भवान् । ७ दक्षिणदिशि गता । ८ चान् ल०, द० । ९ वनेन । १० प्रभो—ज० । ११ कश्चिद्गदगमवन्ति ।

राष्ट्राण्यवधयस्तेषां राष्ट्रीयैश्च महौभुजः । फलाय जज्ञिरे भर्तुर्योजिताञ्चामुना^१ फलैः ॥७३॥
नृपानवारपारीणान्^२ दृष्ट्यान्पुपमागरं । वली वलैरवष्टभ्य^३ प्रापोपवनजान् गजान् ॥७४॥
रत्नान्यपि त्रिचिन्नाणि तेभ्यो हृत्वा यथेष्टितम् । तानेवास्थापयत्तत्र संतुष्टः प्रभुराज्ञया ॥७५॥
महान्ति गिरिदुर्गाणि निम्नदुर्गाणि च प्रभोः । सिद्धानि वलरुद्धानि किमसाध्यं महीयसाम् ॥७६॥
इत्थं स पृथिवीमध्यान्^४ पौरस्त्यान्निर्जयन्नृपान् । प्रतस्थे दक्षिणामाशां^५ दक्षिणात्यजिगीषया ॥७७॥
यतो यतो वलं जिण्णोः प्रचलत्युद्धनायकम् । ततस्ततः स्म सामन्ता नमन्त्यानघ्रमौलयः ॥७८॥
त्रिकलिङ्गाधिपानोद्गान् कच्छान्धविषयाधिपान् । प्रातरान् केरलाञ्चोलान् पुन्नागाञ्च व्यजेष्ट सः ॥७९॥
कुडुम्बानोलिकाञ्चैव स माहिषकमेकुरान् । पाण्डयानन्तरपाण्डयाञ्च दण्डेन^६ वशमानयत् ॥८०॥
नृपानेतान् विजित्याशु प्रणमय्य स्वपादयोः । हत्वा तत्साररत्नानि प्रभुः प्रापत् परां मुदम् ॥८१॥
सेनानीरपि बभ्राम^७ विमोराज्ञां समुद्रहन् । गिरीन् ससरितो देशान्^८ कालिङ्गकवनाश्रितान् ॥८२॥
स साधनैः समं भेजे तैलामिक्षुमतीमपि । नदी नक्ररवां वज्रां ज्वसनां च महानदीम् ॥८३॥

तैरने योग्य हो गयी थी । इसी प्रकार जो पर्वत दुरारोह अर्थात् कठिनाईसे चढ़ने योग्य थे वे ही पर्वत सैनिकोंके द्वारा गिखरोके चूर्ण हो जानेसे स्वारोह अर्थात् सुखपूर्वक चढ़ने योग्य हो गये थे ॥७२॥ देग, उनकी सीमाएँ और देशोंके राजा लोग सम्राट् भरतेश्वरको फल प्रदान करनेके लिए ही उत्पन्न हुए थे तथा बदलेमे भरतने भी उन्हें अनेक फलोंसे युक्त किया था । भावार्थ — सम्राट् भरत जहाँ-जहाँ जाते थे वहाँ-वहाँके लोग उन्हें अनेक प्रकारके उपहार दिया करते थे और भरत भी उनके लिए अनेक प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान करते थे ॥७३॥ जो राजा लोग उपसमुद्रके उस पार रहते थे अथवा उप-समुद्रके भीतर द्वीपोंमे रहते थे उन सबको बलवान् भरतने सेनाके द्वारा अपने वश किया था तथा वनमे उत्पन्न होनेवाले हाथियोंको पकड़-पकड़कर उनका पोषण किया था ॥७४॥ महाराज भरतने उन राजाओंसे अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकारके रत्न लेकर सन्तुष्ट हो अपनी आज्ञासे उनके स्थानोंपर उन्हींको फिरसे विराजमान किया था ॥७५॥ जो बड़े-बड़े किले पहाड़ोंके ऊपर थे और जो जमीनके नीचे बने हुए थे वे सब सेनाके द्वारा घिरकर भरतके वशीभूत हो गये थे, सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंको क्या असाध्य है ? ॥७६॥ इस प्रकार भरतने पूर्व दिशाके समस्त राजाओंको जीतकर दक्षिण दिशाके राजाओंको जीतनेकी इच्छासे उस पृथिवीके मध्यभागसे दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥७७॥ उत्कृष्ट सेनापति सहित विजयी भरतकी सेना जहाँ-जहाँ जाती थी वहाँ-वहाँ के राजा लोग सामन्तोंसहित मस्तक झुका-झुकाकर उन्हें नमस्कार करते थे ॥७८॥ दक्षिणमे भरतने त्रिकलिंग, ओद्र, कच्छ, प्रातर, केरल, चेर और पुन्नाग देशोंके सब राजाओंको जीता था ॥७९॥ तथा कूट, ओलिक, महिष, कमेकुर, पाण्ड्य और अन्तरपाण्ड्य देशके राजाओंको दण्डरत्नके द्वारा अपने वशीभूत किया था ॥८०॥ सम्राट् भरतने इन सब राजाओंको शीघ्र ही जीतकर उनसे अपने चरणोंमे प्रणाम कराया और उनके सारभूत रत्न लेकर परम आनन्द प्राप्त किया ॥८१॥ चक्रवर्तीकी आज्ञा धारण करता हुआ सेनापति भी कालिंगक वनके समीपवर्ती अनेक पहाड़ों, नदियों तथा देशोंमे घूमा था ॥८२॥ वह अपनी सेनाओंके, साथ-साथ तैला, इक्षुमती, नक्ररवा, वगा और ज्वसना आदि महानदियोंको प्राप्त हुआ था

१ मेनाभ्या । २ उभयतीरे भवान् । 'पारावारपरेभ्य इति ख' इति प्रागुजितोपेक्ष्य न्व । 'पारावारे परे तीरे' इत्यमर । ३ द्वीपे जानान् । ४ घाटी कृत्वा । ५ पुषोप वनजान् ल०, द०, इ०, अ० । ६ पूर्वदिग्भवान् । ७ दक्षिणदिशि जाता । ८ चैान् ल०, द० । ९ वल्लेन । १० प्रभो-ल० । ११ कलिङ्गदेशमविवि ।

धुनीं वरणीं मायवा। य ममद्रवाम् । मनिः मममुपाय मया पुत्रमदामि ॥८४॥
मसगादाय रं र्वा' पयन मायवीं गुणिम् । मम मागममागत मुमुर् पुचिमानय ॥८५॥
'मुप्रयाग मदा तारा' वृष्णय' य निम्नगाम् । मरीतो य प्रवर्त्त य यमं यय मर्ष व' ॥८६॥
कुत्तां धर्वा य वृणी य वगी मूर्वरिकामि । अयवो य मदा मयन दारि' म्यागुधुवम् ॥८७॥
महद्भा' ममाजामन रि'यारा'नं य रि'यय । 'माग'यनमायय प्रमया मयापादम् ॥८८॥
गागोय द्रुतादि य विदि पायपयगायम् । य गागयमानीद'नं धा'नाद्वयम् ॥८९॥
भायवत य वि'रि'य नि'यय'यमायन । तय मया'ि'य' य'य' य'य'य' ॥९०॥
क'रि'कान् पुगान्'यवि'काल'यययन । रि'य'यनमाय'य'य'य'य'य'य'य'य' ॥९१॥
आ'यान् य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य' ॥९२॥
कालि'यान् मज 'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य' ॥९३॥
'य' ॥९४॥
पाण्डवान् य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य' ॥९५॥

॥८६॥ तथा यतर्णी मायवा और मद्रवा य त्रियारा जो मनि'ो माय पार कर
यह गुण नयाप जा प ता था ॥८६॥ म'ग'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'
देवता हआ वह पवित्र हृदयवाला मयागि माग मगयम्। पाय य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'
तदनंतर उगने मनाआर माय-माय मुप्रयाग ता'वा पाय य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'
नामकी नयावा पाय विद्या ॥८७॥ तथा पुत्रा यया, चर्वा' र'गा मूर्वरिका और अम्बवा
नयीका दयत ह' उगा म'य'y'
महेन्द्र पयतरा उ'य'y'
च'वर यह सनापति मलय पय'पर गया ॥८८॥ य'y'
ददुर पाण्डव ययादक और गीतग' गाम'य'y'
वि'रि'य पयतावा जातना हआ यहाँक राजाआग ययायाम्य लाभ पाकर यह मयापति अतिाय
वृद्धिका प्राप्त हुआ ॥८९-९०॥ प्रवट मयस धारण रि'य ह'य आ'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'y'
तथा गुरवीरताका उत्पन्न करनेवाला है जि'ह ह'ने ता'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'y'
कर जिनक य' हो धन है एम नर्णा'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'y'
जो बड़े कृपण ह और जो कवल गरीरकी अपणा ही पापाणव ममान यठार रहा ह किन्तु हृदय
की अपक्षा भी पापाणव समान यठार हैं ऐम आ'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'y'
की सना है और जो कला-वीरल रूप धनय गदित है एम कलि'य'य'य'य'य'य'य'य'य'य'y'
कलि'य देशक समान ह मूय ह आर लडनवाल ह एम ओण्डू द'य'य'य'य'य'य'y'
सूठ खेलना प्रिय नहीं है और जिनकी चेष्टाण कुटिल ह एम गोल देगा राजाआकी, मधुर
गोष्ठी करनेमें प्रवीण तथा सरलतापूर्वक वार्तालाप करनेवाले करल द'य'य'य'य'y'
भुजदण्ड अत्यन्त बलिष्ठ ह जि'होने शत्रुआके समूह नष्ट कर दिये ह जि'ह हाथी बहुस प्रिय
ह और जो युद्धम प्राय धनुष तथा भाला आदि शस्त्राका अधिकतासे प्रयोग करते ह ऐसे पाण्डव

१ तीय अ० स० ल० । २ सुप्रवगाम् इत्यपि क्वचित् । ३ वृष्णवर्णा ल । ४ अम्बणी ल० । ५ धाव
यति स्म । ६ नागपवत स्थित्वा । ७ आगमत् । ८ गय । ९ मनोहर । विवट सुन्दर प्रावली विद्यालवि
रालयो इत्यभिधानात् । १० दुःख । ११ कृतव्याघ्रान् । व्याजोऽयदे'ो लक्ष्य च इत्यमर । १२ कृपणान् ।
क'यै कृपणलक्ष्मिपचानमित्यप्या इत्यमर । १३ करिवहलक्षेणान । १४ युद्ध । १५ दाविडान् । १६ अलीक
अनृत । १७ यज्जयतान् । १८ कलमोष्ठीषु कञ्चुरान् ल०, व० । १९ प्रतीतान् ।

‘दृष्टापदानानन्यांश्च तत्र तत्र व्युत्थितान्’ । जयसैन्यैरवस्मन्धै^१ सेनानीरनयद् वशम् ॥६६॥
 ते च सत्कृत्य सेनान्य पुरस्कृत्य मसाध्वयम् । चक्रिणं प्रणमन्ति स्म दूरादूरीकृत्यायतिम्^२ ॥६७॥
 करग्रहेण मपीक्य दक्षिणागा वधूमिव । प्रसमं हततन्सारो दक्षिणाधिमगात् प्रभुः ॥६८॥
 ‘लवङ्गलवलीप्रायमेलगुल्मलतान्तिकम्’ । वेलोपान्तवन पठ्यन् महती श्रुतिमाप सः ॥६९॥
 तमासिपेविरे मन्दमान्दोलितसरोजला । एलासुगन्धयः सौम्या वेलान्तवनवायवः ॥७०॥
 मरुदुद्धतशाखाग्रविकीर्णमुमनोऽञ्जलिः । नून प्रत्यगृहीदेनं वनोद्देशो विशांपतिम् ॥७१॥
 पचनाध्वत्शाखाग्रैर्व्यक्तपटपदनिःस्वनै । विश्रान्त्यै मनिकानस्य व्याहरन्निर्व पादपाः ॥७२॥
 अथ तस्मिन् वनाभोगे^३ मन्यमावासयद् विभु । वैजयन्तमहाद्वारनिकटेऽम्बुनिधेस्तटे ॥७३॥
 सन्नागं^४ बहुपुन्नागं^५ सुमनोभि^६ रधिष्ठितम् । बहुपन्नरथ^७ जिष्णोर्वल तद्वनमावसत्^८ ॥७४॥

देगके राजाओको और जिन्होने प्रतिकूल खडे होकर अपना पराक्रम दिखलाया है ऐसे अन्य देगके राजाओको सेनापतिने अपनी विजयी सेनाके द्वारा आक्रमण कर अपने अधीन किया था ॥९१-९६॥ उन राजाओने सेनापतिका सत्कार कर तथा भयसहित कुछ भेट देकर जिन्होने उनका भविष्यत्काल अर्थात् आगे राजा बना रहने देना स्वीकार कर लिया है ऐसे चक्रवर्तीको दूरसे ही प्रणाम किया था ॥९७॥ जिस प्रकार पुरुष करग्रह अर्थात् पाणिग्रहण सत्कारसे किसी स्त्रीको वगीभूत कर लेता है उसी प्रकार चक्रवर्ती भरतने करग्रह अर्थात् टैक्स वसूलीसे दक्षिण दिशाको अपने वश कर लिया था और फिर जवरदस्ती उसके सार पदार्थोंको छीनकर दक्षिण समुद्रकी ओर प्रयाण किया था ॥९८॥ वहाँ वह चक्रवर्ती, जिनमे प्राय लवग और लवलीकी लताएँ लगी हुई हैं तथा जो इलायचीके छोटे-छोटे पौधोकी लताओसे सहित हैं ऐसे किनारेके समीपवर्ती वनको देखता हुआ बहुत भारी सन्तोषको प्राप्त हुआ था ॥९९॥ जो तालावोके जलको हिला रहा है, जिसमे इलायचीकी सुगन्धि मिली हुई है और जो सौम्य है ऐसे किनारेके वनकी वायु उस चक्रवर्तीकी सेवा कर रही थी ॥१००॥ वायुसे हिलती हुई शाखाओके अग्रभागसे जिसने फूलोकी अजलि बिखेर रखी है ऐसा वह वनका प्रदेश ऐसा जान पड़ता था मानो इस चक्रवर्तीकी अगवानी ही कर रहा हो ॥१०१॥ वृक्षोकी शाखाओके अग्रभाग वायुसे हिल रहे थे और उनपर भ्रमर स्पष्ट शब्द कर रहे थे, जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो वे वृक्ष हाथ हिला-हिलाकर भ्रमरोके शब्दोके वहाने पुकार-पुकारकर विश्राम करनेके लिए भरतके सैनिकोको बुला ही रहे हो ॥१०२॥

अथान्तर-चक्रवर्तीने उस वनके मैदानमे समुद्रके किनारे वैजयन्त नामक महाद्वारके निकट अपनी सेना ठहरायी ॥१०३॥ वह वन और भरतकी सेना दोनो ही समान थे क्योंकि जिस प्रकार वन सनाग अर्थात् मोथाके पौधोसे सहित था उसी प्रकार सेना भी सनाग अर्थात् हाथियोसे सहित थी, जिस प्रकार वन बहुपुन्नाग अर्थात् नागकेशरके बहुत वृक्षोसे सहित था उसी प्रकार सेना भी बहुपुन्नाग अर्थात् अनेक उत्तम पुरुषोसे सहित थी, जिस प्रकार वन मुमन अर्थात् फूलोमे सहित था उसी प्रकार वह सेना भी सुमन अर्थात् देव अथवा अच्छे हृदय-वाले पुरुषोसे सहित थी, और जिस प्रकार वन बहुपन्नरथ अर्थात् अनेक पक्षियोसे सहित होता

१ दृष्टनामध्यान् । ‘अपादान कर्मणि स्यादतिवृत्तेऽवखण्डने ।’ इत्यभिधानात् । २ अम्युत्थितान् । ३ आक्रम्य । ४ अङ्गीकृतनपदम् । ५ वनात्कारेण । ६ चन्दनलना । ७ ‘तताङ्कितम्’ इत्यपि क्वचित् । तत विस्तृतम् । ८ आह्वयति स्मेव । ९ विस्तारे । १० प्रशस्तगजम् । मुनागवृक्ष च । ११ पुरुषथेष्ठ नागकेसर च । १२ देवै कुमुदैश्च । १३ वट्वाहनन्यन्दनम् बहुलविहग च । ‘पनत्रिपन्नपतत्पन्नरथाण्डजा’ इत्यभिधानात् । १४ एवमिव वनमेवविधं वनमावसत् ।

अवतारितपर्याण^१मुखमाण्डाद्युपस्करा । स्फुरन्प्रोथैर्मुखैरञ्वाः श्मां^२ जघ्रुर्विविध्वत्सवः^३ ॥११२॥
 गान्द्रपद्मरज कीर्णा^४ मरसामन्तिकस्थले । मन्द^५ दुधुवुरङ्गानि वाहा कृतविवर्तनाः ॥११३॥
 विवभावस्वरे कन्जरजःपुत्रोऽनिलोद्धत^६ । अयन्न^७ रचितोऽश्वानामिवोच्चैः पटमण्डप ॥११४॥
 रजस्वला^८ महां स्पृष्ट्वा^९ जुगुप्सव इवोन्मिता । द्रुत विविधुरम्मामि सरसीना महाहया ॥११५॥
 वाग्नि^{१०} वारिजकिजल्कननान्यश्वा विगाहिना । वातमग्न्यङ्गराग स्व भेजुरस्मोजङ्गुभिः ॥११६॥
 मरोवगाहनिर्धृतश्रमाः पीताम्भमो हया । आर्मलिनाश्रमध्युपविततान् पटमण्डपान् ॥११७॥
 नालिकेरद्रुमे^{११} वार्मादुचितो^{१२} वर्मगालिनः । निवेगो हास्तिकस्यास्य विभोस्नालीवनेषु च ॥११८॥
 प्रपतन्नालिकेरौघस्थपुटा वनभूमय । हस्तिनां स्थानतामीयुस्नैरेव^{१३} ग्रान्तमारितैः^{१४} ॥११९॥
 द्विपानुदन्त्यनर्स्तात्र^{१५} वमथुव्यञ्जितश्रमान् । निन्युर्जलोपयोगाय सरांस्यमिनिषादिनः^{१६} ॥१२०॥
 नीचैर्गनेन^{१७} सुव्यक्तमार्गमंजनितश्रमान् । गजानाद्योरणा निन्युः मरसीरवगाहने^{१८} ॥१२१॥

अकुरोसे सुन्दर, चक्रवर्तीके घोडोकी घुडसाले थी ॥१११॥ जिनपर-से पलान और लगाम आदि सामग्री उतार ली गयी है ऐसे घोडे जमीनपर लोटनेकी इच्छा करते हुए, हिलते हुए नथनो-से युक्त मुखोसे जमीनको सूँघ रहे थे ॥११२॥ कमलोकी सान्द्र परागसे भरे हुए, तालावके समीपवर्ती प्रदेगपर लोटकर वे घोडे धूलि झाडनेके लिए धीरे-धीरे अपने गरीर हिला रहे थे ॥११३॥ जो कमलोकी परागका समूह वायुसे उडकर आकाशमे छा गया था वह ऐसा सुगोभित हो रहा था मानो घोडोके लिए बहुत ऊँचा कपडेका मण्डप ही बनाया गया हो ॥११४॥ वडे-वडे घोडे पृथिवीको रजस्वला अर्थात् धूलिसे युक्त (पक्षमे रजोधर्म-से युक्त) देखकर ग्लानि करते हुए-से उठे और गीघ्र ही सरोवरोके जलमे घुस गये ॥११५॥ कमलकी केगरसे भरे हुए जलमे प्रविष्ट हुए घोडोका अगराग (गोभाके लिए शरीरपर लगाया हुआ एक प्रकारका लेप) यद्यपि धुल गया था तथापि उन्होंने कमलोके परागसे अपने उस अगरागको पुन प्राप्त कर लिया था । भावार्थ—कमलोकी केगरसे भरे हुए पानीमे स्नान करनेसे उनके गरीरपर जो कमलोकी केगरके छोटे-छोटे कण लग गये थे उनसे अगराग-की कमी नही मालूम होती थी ॥११६॥ सरोवरोमे घुसकर स्नान करनेसे जिनका सब परि-श्रम दूर हो गया है और जिन्होंने इच्छानुसार जल पी लिया है ऐसे घोडे कपडेके वडे-वडे मण्डपो-मे कुछ-कुछ नेत्र वन्द किये हुए खडे थे ॥११७॥ ऊँचे-ऊँचे गरीरोसे सुगोभित होनेवाले, महाराज भरतके हाथियोके डेरे नारियल और ताड वृक्षके वनोमे वनाये गये थे जो कि सर्वथा उचित थे ॥११८॥ जो वनकी भूमि ऊपरसे पडते हुए नारियलोके समूहमे ऊँची-नीची हो रही थी वही नारियलोके एक ओर हटा देनेसे हाथियोके योग्य स्थान वन गयी थी ॥११९॥ जिन्हे बहुत प्यास लगी है तथा जो वमथु अर्थात् सूँडसे निकाले हुए जलके छीटोसे अपना परिश्रम प्रकट कर रहे हैं ऐसे हाथियोको महावत लोग पानी पिलानेके लिए तालावोपर ले गये थे ॥१२०॥ जो धीरे-धीरे चलनेमे मार्गमे उत्पन्न हुए परिश्रमको प्रकट कर रहे हैं ऐसे हाथियोको महावत

१ पण्यवनवर्लीनादिपरिकरा । २ आप्रापयन्ति स्म ३ विवर्नयितुमिच्छव । ४-कीर्णं ल० । ५ कम्पन्ति स्म । ६ -निलोद्धुत ल० । ७ अय नु ल० । ८ कुमुदरजोवनीम्, ऋतुमनीमिति ध्वनि । ९ दृष्ट्वा ल०, द० । १० जगानोन्मथ । ११ पमाणम् । 'वर्म देहप्रमाणयो' इत्यभिधानान् । १२ गजैरेव । १३ स्वहरेर्नीयावाणेन पर्यन्तव्रजान्ति । १४ नृपितान् । 'उदन्या नु पिपाना नृत्' इत्यभिधानान् । १५ कन्धी-रगप्रवृत्ति । 'वमथु करजोक्त' इत्यभिधानान् । १६ हस्त्यारोहा । 'हस्त्यारोहा निषादिन' इत्यमर । १७ मन्दागनेन । मन्ददाम्नेन वा । अगमनेनेत्यर्थ । 'अन्ये नीचैर्मन्द्युच्चैः' । १८ अवगाहनार्थम् ।

प्रवेष्टुमञ्जिनापयच्छन्न नामो नयग्रहः । नैष्ठत् प्रचोद्यमानोऽपि वारि वारी विशङ्कया ॥१२२॥
 वन विलोकयन् स्वैर कवलचित्तपलम्बम् । गजद्विपरगृहातोऽपि किमप्यामीत् समुत्सुक ॥१२३॥
 स्वैर न पपुरम्भासि नागृहन् कवलानपि । कवल धनममोगसुखानां^३ सस्मरुगजाः ॥१२४॥
 उष्ण्वारं स्फुरद्वाक्मन्त्रं व्याप्ति युद्धिषान् सर । सशयूनिष^४ नीलाङ्गान् सविमुत् इषाम्बुदान् ॥१२५॥
 वनद्विपमदामोदवाहिने गन्धवाहिने^५ । अज कुप्यन्नलोपान्तं निय कृष्णान्निपादिना ॥१२६॥
 अकस्मात् कुपितो दन्ता शिरश्चिर्यग्विभूनयन् । अनङ्गुशवशास्नायमाधारणमम्बुदयत् ॥१२७॥
 वन्यानेकपसभोगमक्रान्तमदवामनाम् । विमोक्ष सरसीं नैच्छन्मदुःमः करिणामिव ॥१२८॥
 पीत वनद्विपै पृथमस्य तदानवासितम् । द्विप करण मज्जिघ्नन्^{१०} नापादास्फालयत् परम् ॥१२९॥
 पीताम्बुसो मदोत्सर्गं द्वि निन्यु सरोर्जलम् । राजा सुधा धनादान नून वाञ्छन्ति नोन्नता ॥१३०॥
 उष्ण्वार सरोमध्य निमग्नोऽपि मदद्विप । ररणदम्भि^{११} रसुत्पत्य रज्यत स्म मधुवर्त ॥१३१॥
 पीताम्बुरन्तुस्पाधि वृंहितो मदकुपेर । दुधाम^{१२} गङ्गाङ्गुह्यो^{१३} रणगङ्गुपवारिमिः ॥१३२॥

लोग नहलानेके लिए तालाबोपर ल गये थे ॥१२१॥ कोई नवीन पकड़ा हुआ हाथी बार-बार प्रेरित होनेपर भी कमलिनीके पत्तासे ढँके हुए जलम समुद्रकी आगकासे प्रवेश नहीं करना चाहता था ॥१२२॥ बहुत दिनका पकड़ा हुआ भी कोई हाथी अपने इच्छानुसार खाने योग्य नवीन पत्तोवाल वनको देखता हुआ विलक्षण रीतिसे उत्कण्ठित हो रहा था ॥१२३॥ कितने ही हाथियोने इच्छानुसार न तो पानी ही पिया था और न घास ही उठाये थे, वे केवल वनके सम्भोगसे उत्पन्न सुखोंका स्मरण कर रहे थे ॥१२४॥ जिनकी सूँड ऊँची उठी हुई है आर जिनकी बगलम सुवर्णकी मालाएँ वेदीप्यमान हो रही ह ऐसे हाथियोको महावत लोग सरोवरापर ले जा रहे थे, उस समय वे हाथी ऐसे जान पड़ते थे मानो अजगरसहित नील पर्वत ही हो अथवा बिजलीसहित मेघ ही हो ॥१२५॥ जो जंगली हाथीके मदकी गंधको धारण करनेवाले वायुसे कुपित हो रहा है ऐसे किसी हाथीको उसका महावत बड़ी कठिनाईसे जलके समीप ले जा सका था ॥१२६॥ अचानक कुपित हुआ कोई हाथी अपने शिरको तिरछा हिला रहा था, वह अंकुशके वश भी नहीं होता था और महावतको खेदखिन्न कर रहा था ॥१२७॥ जंगली हाथीके सम्भोगसे जिसमें मदकी वास फैल रही है ऐसी हथिनीको जिस प्रकार कोई मदोन्मत्त हाथी नहीं चाहता है उसी प्रकार जिसम जंगली हाथियोंकी क्रीडास मदकी गंध मिली हुई है ऐसी सरोवरीमे कोई मदोन्मत्त हाथी प्रवेश नहीं करना चाहता था ॥१२८॥ जिस पानीको पहले वनके हाथी पी चुके थे और इसीलिए जो मदकी गंधसे मरा हुआ था ऐसे पानीको सेनाके हाथियोने नहीं पिया था, वे केवल सूँडस सूँघ-सूँघकर उसे उछाल रहे थे ॥१२९॥ जिन हाथियोने तालाबका पानी पिया था उन्होंने अपना मद बहा-बहाकर तालाबका वह पानी बहा दिया था, सो ठीक ही है क्योंकि जो उग्रत अर्थात् बड़े होते ह वे किसीका व्यथ ही धन लेनेकी इच्छा नहीं करते हैं ॥१३०॥ कोई मदोन्मत्त हाथी यद्यपि सूँड ऊपर उठाकर तालाबक मध्यभागमें डूबा हुआ था तथापि आकाशमें उड़कर चम्कते हुए भ्रमरोंस वह यहाँ है इस प्रकार साफ समझ पड़ता था । ॥१३१॥ जो पानी पी चुका है और जिसकी गजना मेघोंके साथ स्पर्धा कर रही है ऐसा कोई मदोन्मत्त हाथी अपने कुरलके जलकी तेज फटकारस कपोलोंकी खुजली शान्त कर रहा था

१ नवी नूननो ग्रह स्वीकारो यन्म स । २ गजवधनहेतुमुत्पत्तिश्चङ्कया । वारी तु गजवधनी इति भाष्यम् । ३ वनस्य सभोगा जातमुखानाम् । ४ उद्गतहस्ताग्रान् । ५ सुवर्णमयसवरत्नान् । ६ द्रव्या वरत्ना स्नात इति भाष्यम् । ७ अजगरसहितान् । ८ अनिलाय । ९ विगाह ल० द । १० आघ्रापयन् । ११ न पिबन्ति स्म । १२ भृशं गुञ्जन्ति । १३ अपनयति स्म । १४ कपोलकण्डूयमम् ।

विमुक्तं व्यक्तसूक्तारं करमुत्क्षिप्य वारणैः । वारि स्फटिकदण्डस्य लक्ष्मीमूहं खमुच्चलत् ॥१३३॥
 उदगार्हविनिर्भृतश्रमा. केचिन्मतङ्गजाः । ^३विममङ्गै रधुसृप्ति हेलया कवलीकृतैः ॥१३४॥
 मृणालैरधिदन्ताग्रमर्षितैर्विबभुर्गजाः । अजस्रमम्बुससेकाद् रदैः ^५प्रारोहितैरिव ^६॥१३५॥
 प्रमाद्यन् द्विरदः कश्चिन्मृणालं स्वकरोद्धनम् । ददावालान् बुभूयैव नियन्त्रे ^७द्विगुणीकृतम् ॥१३६॥
 चरणालग्नमाकर्षन् मृणाल मीलुकां गजः । बहि मरस्तट ^{१०}व्यास्यदन्दुतन्तुकगङ्गाया ^९॥१३७॥
 करैरुत्क्षिप्य पद्मानि स्थिताः स्तम्बेरमा वभु । देवतानुस्मृतिं किञ्चित् कुर्वन्तोऽधोरिवोद्धृतैः ॥१३८॥
 सरस्तरङ्गधौताङ्गा रेजुस्तुङ्गा मतङ्गजाः । शृङ्गारिता इवालग्नैः सान्द्रैरम्भोजरेणुभिः ॥१३९॥
 ययुः करिभिरारुढं परिहृत्य ^{१२}सरोजलम् । पतत्रिण. सरस्तीरं तद्युक्तमवलीयसाम् ॥१४०॥
 सरोवगाहनिर्गिक्तमूर्त्योऽपि ^{१३}मतङ्गजाः । ^{१४}रजःप्रमाथैरात्मानं चक्रुरेव मलीभसम् ॥१४१॥
 वय जात्यैव मातङ्गा ^{१५}मदनोद्दीपिताः पुनः । कुतस्त्या शुद्धिरस्माकमित्यात्त-नु ^{१६}रजो गजैः ॥१४२॥

वसन्ततिलकावृत्तम्

इत्थं सरस्सु रुचिरं प्रविहृत्य नागाः संतापमन्त ^{१७}रुदितं प्रशमय्य तौयैः ।

तीरद्विमानुपययुः किमपि प्रतोषाद् बन्ध तु तत्र नियत न विदांबभूवु ^{१८}॥१४३॥

॥१३२॥ कितने ही हाथी सूँड ऊँची उठाकर सू सू शब्द करते हुए ऊपरको पानी छोड़ रहे थे, उस समय आकाशकी ओर उछलता हुआ वह पानी ठीक स्फटिक मणिके बने हुए दण्डकी शोभा धारण कर रहा था ॥१३३॥ पानीमे प्रवेश करनेसे जिनका सब परिश्रम दूर हो गया है, ऐसे कितने ही हाथी लीलापूर्वक मृणालके टुकड़े खाकर सन्तोष धारण कर रहे थे ॥१३४॥ कितने ही हाथी अपने दाँतोंके अग्रभागपर रखे हुए मृणालोसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निरन्तर पानीके सीचनेसे उनके दाँत ही अकुरित हो उठे हो ॥१३५॥ मदसे अत्यन्त उन्मत्त हुआ कोई हाथी अपनी सूँडसे ऊपर उठाये हुए मृणालको बाँधनेकी साँकल समझकर उसे दोहरी कर महावतको दे रहा था ॥१३६॥ अपने पैरमे लगे हुए मृणालको खीचता हुआ कोई भीरु हाथी उसे बाँधनेकी साँकल समझकर तालाबके बाहरी तटपर ही खड़ा रह गया था ॥१३७॥ अपनी सूँडोसे कमलोको उठाकर खड़े हुए हाथी ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो हाथोमे अर्घ लेकर किसी देवताका कुछ स्मरण ही कर रहे हो ॥१३८॥ जिनके गरीर तालाबकी लहरोसे धुल गये हैं ऐसे ऊँचे-ऊँचे हाथी सघन रूपसे लगे हुए कमलोकी परागसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो स्नान कराकर उनका शृंगार ही किया गया हो ॥१३९॥ हाथियोसे घिरे हुए तालाबके जलको छोड़कर सब पक्षी तालाबके किनारेपर चले गये थे सो ठीक ही है 'क्योकि निर्वल प्राणियोको ऐसा ही करना योग्य है ॥१४०॥ तालाबोमे प्रवेश करनेसे जिनके गरीर निर्मल हो गये हैं ऐसे कितने ही हाथी धूल उड़ाकर फिरसे अपने-आपको मैला कर रहे थे ॥१४१॥ प्रथम तो हम लोग जातिसे ही मातंग अर्थात् चाण्डाल हैं (पक्षमे-हाथी हैं) और फिर मद अर्थात् मदिरासे (पक्षमे-गण्डस्थलसे बहते हुए तरल पदार्थमे) उत्तेजित हो रहे हैं इसलिए हम लोगोकी बुद्धि अर्थात् पवित्रता (पक्षमे-निर्मलता) कहाँमे रह सकती है ऐसा समझकर ही मानो हाथियोने अपने ऊपर धूल डाल ली थी ॥१४२॥ इस प्रकार वे हाथी बहुत देर तक मरोवरोमे क्रीडा कर और अन्तरगमे उत्पन्न हुए मन्तापको जलसे शान्त कर किनारेके वृक्षो-

१ खमन्वन्त् ८०, ८०, ८०, ८०, ८०, ८० । २ जनावगाह । ३ मगादवण्ट । ४ वनवन् । ५ दन्त ८०, ८० । ६ मजानवारोह, अङ्गुरि । ७ वग्नरज्जु । ८ आगेडकोय । ९ मग्नतीवाहप्रदेय । १० प्रतिपति स्म । 'जमु धेगो' । ११ शृङ्गलान्त्र । 'अव शृङ्गदे' । 'अन्दुको निगयोऽन्तो म्याद्' इत्यभिप्रा-
 नान् । १२ न्यक्वा । १३ नृद । १४ मूलिप्रक्षेप । १५ ध्वपचा इति ध्वनिः । १६ उव । १७ अमन्तगो-
 दन्तम् । १८ न त्रिदन्ति स्म ।

हस्या सराश्व करिणो निजदानवारि सवधिं विनिभयादनुणाश्रं मन्त ।
 तद्दीधिहस्तजनितप्रतिरोधशङ्का व्यासगिनो नु सरस प्रसम निराशु ॥१४४॥
 आधोरणा मदमफीमलिनान् करीद्वान् निर्णेतुं मग्नु सरसामधगाहयन्त ।
 शेकुन कवलमपामुपयोगमात्र तारस्थिताननु नयैस्तदवाकरन्त ॥१४५॥
 त्वैर नवाश्वपरिपातमयत्नलभ्यतांरुमपु न कृत कवलमहोऽपि ।
 छायास्वलम्बि न तु विश्रमण प्रमिद्वै स्तम्भैर्मयत मद सलु नारमनान ॥१४६॥
 नाश्वर हृत गुरुतररपि नातिपातां युद्धेषु जातु न किमप्यपराद्धमपि ।
 भारक्षमाश्च करिण सविशेषमव वद्धास्तथाप्यनिमृता इति दिक्चलस्यम् ॥१४७॥
 बन्धीय न किमिति हत त्रिभापराधाज् जानात मो प्रतिकलस्यचिरादिदं व ।
 इत्युचलसणि विध्य शिरांसि मध्ये वैर नु यशु गजा स्म त्रिभावयन्ति ॥१४८॥
 आघातुका द्विरदिन सविशेषमव गात्रापरान्तकर बालधिपु न्ययोजि ।
 बधन सिन्धुरवरास्त्रितर सथा नो गात्रामवत्यविरताश्च परय बध ॥१४९॥

के समीप आ गये थे यद्यपि वहा उनके बांधनेका स्थान नियत था तथापि क्रीडासे उत्पन्न हुए अतिशय सन्तोषसे उन्हें उसका कुछ भी ज्ञान नही था ॥१४३॥ हाथियोंने तालाबोंका जो पानी पिया था उसे मानो अपना बदला चुकानेके लिए ही अपने मदरूपी जलसे बढा दिया था, इस प्रकार प्यासरहित हो सुखकी सांस लेंते हुए वे हाथी, ये तालाब अपनी लहरेंरूपी हाथास कहीं हम रोक न ल ऐसी आशका कर तालाबोंसे शीघ्र ही बाहर निकल आये थे ॥१४४॥ मदरूपी स्याहीसे मलिन हुए हाथियोंको निमल करनेके लिए तालाबोंके जलम प्रवेश कराते हुए महावत जब उहे जलके भीतर प्रविष्ट नही करा सके तब उन्होने केवल जल ही पिलाना चाहा परन्तु बहुत कुछ अनुनय विनय करनेपर भी वे किनारेपर खडे हुए उन हाथियोंको केवल जल भी पिलानेके लिए समथ नही हो सके थे । भावाध - मदोमत्त हाथी न तो पानीमें ही घुसे थे और न उन्होने पानी ही पिया था ॥१४५॥ मदोमत्त हाथियोंने न तो अपने इच्छा नुसार बिना यत्नके प्राप्त हुआ पानी ही पिया था, न किनारेक वृक्षोंसे कुछ तोडकरखाया ही था और न वृक्षोंकी छायामें कुछ विश्वास ही प्राप्त किया था खेद है कि यह मद कभी भी आत्मा का भला करनेवाला नही है ॥१४६॥ इन हाथियोंने शरीर भारी होनेसे शीघ्र ही माग तय नही किया यह बात नही है अर्थात् इन्होने भारी होनेपर भी शीघ्र ही माग तय किया है, इन्होने युद्धम भी कभी अपराध नही किया है और ये भार होनेके लिए भी सबसे अधिक समथ ह फिर भी केवल चंचल होनेसे इहे बढ होना पडा है इसलिए इस चंचलताको ही धिक्कार हो ॥१४७॥ तुम लोग इस प्रकार बिना अपराधक हम लोगोंको क्यों बांध रहे हो ? तुम्हारा यह काय तुम्हें शीघ्र ही इसका बदला देगा यह तुम खूब समझ लो इस प्रकार बांधनेके कारण महावतोंमें जो घर था उसे वे हाथी अकुशको ऊपर उछालकर मस्तक हिलाते हुए स्पष्ट रूपसे जतला रहे थे ॥१४८॥ जो हाथी जीनोंका घात करनेवाल थे वे शरीरके आगे पीछे तथा सूँड और पूँछ आदि

१ नमेयात् । परिणान परीकृत नमेयनिममावधि इत्यभिधानात् । २-दनुणा इवसन्ति ल० । ३-दनुणा इवसन्ति ल० । ३ गदान् वतुम् । ४ तीर स्थितान्-ल० । ५ कारयन्ति स्म । ६ नैव । ७ मत्त । प्रमिद्वो गजितो मत्त इत्यभिधानात् । ८ आगमहितम् । ९ नानुयातो प० ल० । १ चञ्चला । ११ बधनं कुरुष्व । १२१८ । १ भो मधम । १४ चञ्चलदकुश यथा भवति तथा । अकुशोऽप्री सणि स्त्रियाम् इत्यभिधानात् । १५ निव । गारार्षातुको हिम इत्यभिधानात् । १६ अपरगान्त । शरीरापरभाग । द्वौ पूषपश्चाद इत्युक्तं हस्तिनो मध्यप्रदेशं नर इत्युक्ते हस्तिनो हस्त बालधिरित्युक्त पुच्छविशेष शरीरमध्य । १७ अघातुका । १८ अमयता । अत्रिकादित्यय । १९ सयत ।

आलानिता वनतरुष्वतिमात्रमुच्चस्फुटेषु सिन्धुरवराश्च तथोच्चकैर्यत् ।
तन्नूनमाश्रयणमिष्टमुदात्तमेव सधारणाय महतामहतान्मसारम् ॥१५०॥
इत्थ नियन्तुमिरनेकपवृन्दमुच्चैरालानितं तरुषु मामि^३ निमीलिताक्षम् ।
तस्थौ मुखं विचतुरेण^४ कृताङ्गहारं^५ लीलोपयुक्तकवलं स्फुटकर्णतालम् ॥१५१॥
उत्तारिताखिलपरिच्छदलाघवेन प्रव्यञ्जितद्रुतगतिकं मलक्ष्यवेगा ।
आपातुमम्बुसरसां परितः प्रससुरुच्छृङ्खलै^६ रनुगताः कलमैः करिण्य ॥१५२॥
प्राक्पीतमम्बु सरसां^७ कृतमौष्टकेण^८ स्वोद्गालं^९ दूषितमुपात्ततदङ्गगन्धम्^{१०} ।
नापातुमैच्छदुदिदन्^{११} पितोऽपि वर्कः^{१२} सर्वो हि वाञ्छति जनो विषयं मनोज्ञम् ॥१५३॥
पीत पुरा गजतया सलिलं मदाम्बु सवासितं सरसिजाकरमेत्य तूर्णम् ।
प्रीत्या पपुः कलभकाश्च करेणवश्च संभोगहेतुरुदितो^{१३} हि सगन्ध^{१४} भावः ॥१५४॥

प्रहर्षिणी

पीत्वाऽम्बो व्यपगमितान्तरङ्गतापाः सतापं बहिरुदितं सरोवगाहैः ।
नीत्वान्तं^{१५} गजकलमैः सम करिण्य. संभोक्तु सपदि वनद्रुमान् विचेरुः ॥१५५॥

सब जगह बन्धनोसे युक्त किये गये थे और जो हाथी किसीका घात नहीं करते थे वे बन्धनसे युक्त नहीं किये गये थे इससे यह सिद्ध होता है कि जो अविरत अर्थात् हिंसा आदि पापोंके त्यागसे रहित हैं उन्हींके कर्मबन्धन सुदृढ रूपसे होता है और जो विरत अर्थात् हिंसा आदि पापोंके त्यागसे सहित हैं उनके कर्मका बन्ध नहीं होता ॥१४९॥ जिनके स्कन्ध बहुत ऊँचे गये हैं ऐसे वनके वृक्षोमे ही सेनाके ऊँचे-ऊँचे हाथी बाँधे गये थे सो ठीक ही है क्योंकि महा-पुरुषोंको धारण करनेके लिए जिसकी स्वगति नष्ट नहीं हुई है ऐसा बहुत बड़ा ही आश्रय चाहिए ॥१५०॥ इस प्रकार महावतोंके द्वारा ऊँचे वृक्षोमे बाँधा हुआ वह हाथियोंका समूह अपनी आधी आँखें बन्द किये हुए सुखसे खड़ा था, उस समय वह अपना सब गरीर हिला रहा था, लीलापूर्वक ग्रास ले रहा था और कान फड़फड़ा रहा था ॥१५१॥ पलान आदि सब सामान उतार लेनेसे हलकी होकर जिन्होंने जल्दी-जल्दी चलकर अपनी शीघ्र गति प्रकट की है, तथा चंचल बच्चे जिनके पीछे-पीछे आ रहे हैं ऐसी हथिनियाँ तालावोंका पानी पीनेके लिए चारों ओर-से जा रही थी ॥१५२॥ तालावोंके जिस पानीको पहले ऊँटोंके समूह पी चुके थे, जो ऊँटोंके उगालसे दूषित हो गया था और जिसमे ऊँटोंके गरीरकी गन्ध आने लगी थी ऐसे पानीको हाथीका बच्चा प्यासा होनेपर भी नहीं पीना चाहता था, सो ठीक ही है क्योंकि सभी कोई अपने मनके विषयभूत पदार्थके अच्छे होनेकी चाह रखते हैं ॥१५३॥ जिसे पहले हाथियोंके समूह पी चुके थे और जिसमे उनके मद जलकी गन्ध आ रही है ऐसे पानीको हथिनियाँ तथा उनके बच्चे बहुत गो तालावपर जाकर बड़े प्रेमसे पी रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि समानता ही साथ-साथ खाने-पीने आदि सम्भोगका कारण होती है ॥१५४॥ जिन्होंने जल पीकर अन्तरगका सन्ताप दूर किया है और तालावमे घुसकर बाहरी सन्ताप नष्ट किया है ऐसी हथिनियाँ अपने

१ आश्रयण । २ यस्मान् वारणान् । ३ अयं । ४ विद्वद्भ्यानि विगतानि चत्वारि यम्य तेन । ५ अङ्गविक्षेपम् ।
६ पाद । ७ न्यच्छन्दस्तिभि । ८ नमृगम् । ९ उष्ट्रमूत्रेण । १० निजोद्गार । ११ उष्ट्रगरीरगन्धम् ।
१२ भृश नृपिन । १३ तत्पगज । विषय अ० । १४ उक्त्वा । १५ पश्चिमलन्व मिश्रन् च । १६ नागम् ।

बहूनां सकुसुमपल्लवाग्रमङ्गान् गुल्मौघानपि सरसा कङ्करीश्र्वे ।
 सुस्नादून् मृदुविटपान् वनदुमाणा तद्यथ कथलवति स्म धेनुकानाम् ॥१५६॥
 कुञ्जेषु प्रतनुतुण्डाङ्गान् प्रमृदून् यप्रान्तानपि रदनै र्शानघनिघ्नम् ।
 बल्लव्यग्रप्रसनचण फलेग्रहि सन् व्यालोल कलमगणश्चिर विजहे ॥१५७॥
 प्रत्यग्रा किसलयिनीगृहाण शाखा म हृद्युच्चैरनगहन निपाद कुञ्जे ।
 समोर्ग्यानुपसरसल्लकीवनान्तानिस्थव व्यहृत वने करणुवग ॥१५८॥
 समोर्गवनमिति निर्विशन् यथेष्ट स्वातभ्यामुदुरपि भूगतनिबद्ध ॥१५९॥
 मद्धव्य सहकलम करणुवग संप्रापत् समुचितमामना निवेशम् ॥१५९॥
 विप्रस्तेरपयमुपाहृतस्तुरग पयस्तो रथ इह मग्नधूर्तिरक्ष ॥१६०॥
 एतास्ता हृतमपयात्थपत्य मार्गाद् वारस्त्रीवहनपराश्र वगमय ॥१६०॥
 विप्रस्त करमनिरीक्षणाद् गजोऽथ भीरव्य प्रकटयति प्रधावमान ।
 उत्प्रस्तात्पतति च वेसरादमुष्माद् विप्रस्तस्तनजघनांशुका पुरधी ॥१६१॥
 इत्युच्चैव्यतिवदता धृयजानानां सजल्यै क्षुमितसरोऽकौक्षकैश्च ॥१६१॥
 व्याक्तीशैर्जनितरवैश्च सैनिकानां सक्षोम क्षणममत्रमूषु राशाम् ॥१६२॥

बच्चोके साथ खानेके लिए शीघ्र ही वनके वृक्षोंकी ओर चली गयी ॥१५५॥ वह हथिनियोंका समूह लताओके पुष्पसहित नवीन पत्तोंके अग्रभागोंको, छोटे छोटे पाधोंको, रसीले कङ्करी वृक्षोंको और वनके वृक्षोंकी स्वादिष्ट तथा कोमल शाखाओंको खा रहा था ॥१५६॥ लता गृहोम पतली घासके अकुरोको खूँदता हुआ खेतोंकी मेढको अपने दाँतोंसे धीरे धीरे तोड़ता हुआ लताओके अग्रभागके खानेमे चतुर तथा फलोंको तोड़ता हुआ वह चंचल हाथियोंके बच्चों का समूह चिरकाल तक क्रीडा करता रहा था ॥१५७॥ पत्तेवाली नवीन लताओंको ग्रहण कर लची-ऊँची शाखाओसे युक्त सघन वनमे जा, लतागृहमे बैठ और खानेके योग्य सल्लकी वनोंके समीप जा इस प्रकार महावतोंकी आज्ञासे वह हथिनियोंका समूह वनमें इधर-उधर विहार कर रहा था ॥१५८॥ इस प्रकार जो अनेक प्रकारकी क्रीडाओके द्वारा वनका अपनी इच्छा नुसार उपभोग कर रहा है स्वतन्त्रतापूर्वक आगे चलनेसे महावत लोग जिसे रोक रहे है और जो बाँधनेके योग्य है ऐसा वह हथिनियोंका समूह बच्चोंके साथ अपने ठहरने योग्य स्थानपर जा पहुँचा ॥१५९॥ इधर हाथियोंसे डरे हुए इन घोड़ोंने यह रथ कुमागमें ले जाकर पटक दिया है, इसका घुरा और भीरा टूट गया है तथा वेश्याओंको ले जानेमे तत्पर ये खच्चरियाँ अपना मार्ग छोड़कर बहुत शीघ्र भागी जा रही हैं ॥१६०॥ इधर यह ऊट देखनेसे डरा हुआ हाथी दौड़ा जा रहा है और उससे अपना भीरुपना प्रकट कर रहा है तथा इधर जिसके स्तन और जघन परका वस्त्र खिसक गया है ऐसी यह स्त्री डरे हुए खच्चरसे गिर रही है ॥१६१॥ इस प्रकार जोर-जारस वालते हुए साधारण पुरुषोंकी बातचीतके शब्दोंसे, सोभको प्राप्त हुए गधे ऊँट तथा बलाक शत्रोस और परस्पर बुलानेसे उत्पन्न हुए सनिकोंके कठोर शब्दोंसे राजाओंकी

१ वृसानि । कङ्करी वृक्ष वलीव इत्यभिधानात् । २ करिणीनाम् । करिणी धनुवा वशा इत्यमर ।
 मुरभाणाम् । ३ कामल । ४ मन्थन् । ५ सावन्तान् । स्नुवग्र सानुरस्त्रियाम् इत्यमर । ६ भक्षणममथ ।
 ७ फलानि गृह्णन् । ८ मर्त्यं कृष । ९ आस्त्व । १० सादिजनानुनयै । ११ विहाति स्म । १२ अनुभवन् ।
 १३ सान्निभि । १४ निपिड । १५ उत्तान यथा पतित । १६ मग्नयानमुख । १७ निगतावयम् ।
 १८ वमरा । १९ भयं गत । २० शक्तितात् । २१ परस्परप्रापमाणानाम् । २२ वृषभै । २३ परस्पराल्लयै ।

मालिनी

अवनिपनिगमाजंगानुयातन्तुरगोरुगत्रिभययोगान्निर्जयन् लोऽपालान् ।
 प्रनिदिगमुप-रुगत्राजिगत्राणि शिविरमविगदुर्जयन्दिनां पुण्यघोरैः ॥१६३॥
 अथ सगमिजिर्नाना गन्धमादाय मान्द्रुतनश्चनर्वाधिमन्दमायान् समन्तान् ।
 श्रममग्निलमनोन्मीनं कर्तुमस्योपचारं प्रति हव सगन्धः^३ मिन्युर्ना^४ गन्धवाहः ॥१६४॥
 अविदिनपरिमाणैरन्विता रत्नशङ्खः^५ स्फुग्निमणिशिखाग्रमोगिमि^६ मेवनीयः ।
 मन्तमुपचिन्ताम्ना^७ रट्टदिग्विजालो जलनिधिमनुजहं^८ तस्य मेनानिवेगः ॥१६५॥

शार्दूलविक्रीडितम्

तत्रावासितमाश्रितो^९ निधिपतिर्गन्ता रथेनाम्बुधिं जत्रास्त्रप्रतितर्जितामग्गमस्त व्यन्तरादीधरम् ।
 जिह्वा मागधवन क्षणाद्वरतनु तन्माहमस्मान्निधेर्द्विष शशदलचकार यशसा कल्पान्तररथायिना ॥१६६॥
 लेभेऽभेद्यमुरदृष्ट वरतनोर्ग्रेव्यकं च स्फुरच्चूडारत्नमुदशु दिव्यकटकान् मूत्र च रत्नोज्ज्वलम् ।
 मद्रौरिति पूजित म भगवान्^{१०} श्रीवेज्यन्तारण्य-द्वारेण प्रतिसनिवृत्त्य कटक प्राविक्षदुत्तोरणम् ॥१६७॥

सेनाओमे क्षण-भरके लिए बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया था ॥१६२॥ घोड़ोपर बैठे हुए अनेक राजाओंका समूह जिसके पीछे-पीछे चल रहा है ऐसा वह चक्रवर्ती अपने बड़े भारी वैभवसे लोकपालोको जीतता हुआ तथा प्रत्येक दिशामें वन्दीजनोके मंगल गानोके साथ-साथ आशीर्वाद सुनता हुआ अपने उच्च गिविरमें प्रविष्ट हुआ ॥१६३॥

अथानन्तर जो किनारेके वनकी पवित्रयोको हिला रहा है ऐसा वायु कमलिनियोकी उत्कट गन्ध लेकर धीरे-धीरे चारो ओर बह रहा था और समुद्रके द्वारा भेजे हुए किसी खास-सम्बन्धीके समान चक्रवर्तीके समस्त परिश्रमको दूर कर रहा था ॥१६४॥ उस समय वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान (पडाव) ठीक समुद्रका अनुकरण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार समुद्र प्रमाणरहित शंख और रत्नोसे सहित होता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी प्रमाणरहित शख आदि निधियो तथा रत्नोसे सहित था, जिस प्रकार समुद्र, जिनके मस्तक-पर अनेक रत्न देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसे भोगी अर्थात् सर्पोंमें सेवनीय होता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी, जिनके मस्तकपर अनेक मणि देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसे भोगी अर्थात् राजाओके द्वारा सेवनीय था, जिस प्रकार समुद्र निरन्तर बढ़ता रहता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी निरन्तर बढ़ता जाता था, और जिस प्रकार समुद्र सब दिशाओको घेरे रहता है उसी प्रकार वह चक्रवर्तीकी सेनाका स्थान भी सब दिशाओको घेरे हुए था ॥१६५॥ जिसने अपनी सेना समुद्रके किनारे ठहरा-दी है और जिसने अपने विजय-शील शस्त्रोसे मागध देवकी सभाको जीत लिया है ऐसे निधियोके स्वामी चक्रवर्तीने रथके द्वारा समुद्रमें जाकर मागध देवके समान व्यन्तरोके स्वामी वरतनु देवको भी जीता और समुद्रके भीतर रहनेवाले उसके वरतनु नामक द्वीपको कल्पान्त काल तक स्थिर रहनेवाले अपने यशसे सदाके लिए अलंकृत कर दिया ॥१६६॥ भरतने वरतनु देवसे कभी न टूटनेवाला कवच, देदीप्यमान हार, चमकता हुआ चूडारत्न, दिव्य कड़े और रत्नोसे प्रकाशमान यज्ञोपवीत इतनी वस्तुएँ प्राप्त की। तदनन्तर उत्तम रत्नोसे जिसकी पूजा की गयी है ऐसे ऐश्वर्यशाली

१ आगच्छन् । २ अपनयति स्म । ३ बन्धु । ४ समुद्रेण । ५ चक्रादिरत्नशङ्खनिधिभिः । ६ पक्षे मौक्तिकादि-
 रत्नशङ्खैः । ७ पक्षे सर्प । ८ वर्द्धितस्वरूप । ९ अनुकरोति स्म । १० निवासितवल । १० पूज्यः ।

स्वच्छ एवं हृदय स्फुटं प्रकृत्य मुक्ताफल-छन्ना एव चान्तगतरागमाग्न वयममुद्यमप्रबालाङ्गुर ।
 सर्वस्व च समपथक्षुपन यन्त्रन्तवण^२ दक्षिणो वारा राशिरभात्यवद्विभुमर्मा निर्व्याजमाराधयन् ॥१६८॥
 आस्थाने^३ जयदुन्दुभीनयु नदर^४ प्राभातिक महारे गम्भारच्यनितैत्र्यध्वनिमिथ स्पष्टमुच्चारयन् ।
 सुव्यक्त स जलाशयोऽप्यनल^५ धीर्चारापति श्रापति निम्न स्थितिरेतिथाय सुचिर शब्दो यथाय जिनम्

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपट्टिलक्षणमहापुराणसमूहे
 दक्षिणार्णवद्वारविजयवर्णनं नामैकोनत्रिंश पर्व ॥२६॥

■

भरतने वजयन्त नामक समुद्रके द्वारसे वापस लौटकर अनेक प्रकारके तोरणोंसे सुशोभित किये गये अपने शिविरमें प्रवेश किया ॥१६७॥ उस समय वह दक्षिण दिशाका लवणसमुद्र ठीक मन्त्रीकी तरह छलरहित हो भरतकी सेवा कर रहा था, क्योंकि जिस प्रकार मन्त्री अपने स्वच्छ हृदयको प्रकट करता है उसी प्रकार वह समुद्र भी मोतियाके छलसे अपने स्वच्छ हृदय (मध्यभाग) को प्रकट कर रहा था, जिस प्रकार मन्त्री अपने अन्तरंगका अनुराग (प्रेम) प्रकट करता है उसी प्रकार वह समुद्र भी उत्पन्न होते हुए मूर्गाओंके अकुरोसे अपने अन्तरंगका अनुराग (लाल वण) प्रकट कर रहा था, जिस प्रकार मन्त्री अपना सर्वस्व समपण कर देता है उसी प्रकार समुद्र भी अपना सर्वस्व (जल) समपण कर रहा था, जिस प्रकार मन्त्री अपना गुप्त धन उनके समीप रखता है उसी प्रकार वह समुद्र भी अपना गुप्त धन (मणि आदि) उनके समीप रख रहा था जिस प्रकार मन्त्री दक्षिण (उदार सरल) होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी दक्षिण (दक्षिणदिशावर्ती) था ॥१६८॥ अथवा जिस प्रकार इन्द्र दास होकर अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मीके स्वामी प्रथम जिनेन्द्र भगवान् वृषभदेवकी सेवा करता था उसी प्रकार वह समुद्र भी दास होकर राज्यलक्ष्मीके अधिपति भरत चक्रधरकी सेवा कर रहा था, क्योंकि जिस प्रकार इन्द्र आस्थान अर्थात् सभामे जाकर विजय-दुन्दुभि बजाता था उसी प्रकार वह समुद्र भी भरतके आस्थान अर्थात् सभामण्डपके समीप अपनी गजनासे विजय-दुन्दुभि बजा रहा था जिस प्रकार इन्द्र प्रातः कालके समय पढ़े जानेवाले मंगल-पाठके लिए जय जय शब्दका उच्चारण करता था उसी प्रकार वह समुद्र भी प्रातः कालके समय पढ़े जानेवाले भरतके मंगल-पाठके लिए अपने गम्भीर शब्दासे जय जय शब्दका स्पष्ट उच्चारण कर रहा था, जिस प्रकार इन्द्र जलाशय (जडाशय) अर्थात् केवलज्ञानकी अपेक्षा अल्पज्ञानी होकर भी अपने ज्ञानकी अपेक्षा अजलधी (अजडधी) अर्थात् विद्वान् (अजडा धीयस्य स) अथवा अजड (ज्ञानपूण परमात्मा) का ध्यान करनेवाला (अजड ध्यायतीत्यजडधी) था उसी प्रकार वह समुद्र भी जलाशय अर्थात् जलयुक्त होकर भी अजलधी अर्थात् जल प्राप्त करनेकी इच्छासे (नास्ति जल धीयस्य स) रहित था इस प्रकार वह समुद्र चिरकाल तक भरतेश्वर की सेवा करता रहा ॥१६९॥

इस प्रकार आप नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपट्टिलक्षण महापुराणसंग्रहके भाषानुवाच्य दक्षिण समुद्रके द्वारके विजयका वणन करनेवाला
 उनतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

■

१ प्रापयन् । २ अतजन्म् । ३ समवसरण । ४ सप्ता ध्वनन् । ५ पटुवृद्धि । ६ भृत्यवृत्ति ।

त्रिंशत्तमं पत्रं

^१अपगन्तं निजंनुमुनः ^३प्रभु-यया । ^२दक्षिणापन्निभागं वर्णाकुर्वन् स्वमायने ॥१॥

पुरः प्रयातमश्रीयैरन्वक्तुं प्रचलित २ । मये हस्तिपदा प्रायान् सर्वत्रेवात्र पतय ॥२॥

^३सदेवचलमित्यस्य चतुरङ्ग विमोचकम् । विगाभृता बले साहं गजगिरिदेविप्रये ॥३॥

प्रचलद्दलमक्षोभादुच्चाल क्लिणव । महतामनुवृत्तिं नु श्रावयन्नुज्जीविनाम् ॥४॥

बलैः प्रगल्भं^{१०} निर्भुक्ता^{११} प्रहन्ति स्म^{१२} महीभुज^{१३} । नरितं^{१४} स्मरन्ति स्म^{१५} महाद्वय ॥५॥

सुरमा^{१६} वृत्तनिर्वाणा^{१७} स्पृहणीया बुभुक्षुभि^{१८} । महति^{१९} समसुयोगे^{२०} फलन्ति^{२१} स्मास्यन्दिदय^{२२} ॥६॥

अभेद्या दृष्टयवानां^{२३} विपन्नजयं^{२४} हेतव । शक्तयोऽस्य स्फुरन्ति स्म^{२५} सेनाश्च विजिगीषुषु ॥७॥

फलेन^{२६} योजितास्तक्षणा^{२७} सपक्षा^{२८} दुरगमिन । नागचै^{२९} समसेतस्य योवा जग्मुर्जयाद्गताम् ॥८॥

अथानन्तर-पश्चिम दिशाको जीतनेके लिए उद्यत हुए चक्रवर्ती भरत अपनी सेनाके द्वारा दक्षिण ओर पश्चिम दिशाके मध्यभाग (नेत्रहत्य दिशा) को जीतते हुए निकले ॥१॥ उनकी सेनामे घोडोके समूह सबसे आगे जा रहे थे, रथ मयमे पीछे चल रहे थे, हाथियोका समूह बीचमे जा रहा था और प्यादे सभी जगह चल रहे थे ॥२॥ हाथी, घोडे, रथ, प्यादे इस प्रकार चार तरहकी भरतकी सेना देव और विद्याधरोंकी सेनाके साथ-साथ चल रही थी । इस प्रकार वह सेना अपने छह अगोके द्वारा चारो ओर विस्तार पा रही थी ॥३॥ उस चलती हुई सेनाके क्षोभसे समुद्र भी धुंभित हो उठा था - लहराने लगा था और ऐसा जान पड़ता था मानो 'सबको महापुरुषोका अनुकरण करना चाहिए' यही बात सेवक लोगोको सुना रहा हो ॥४॥ सेनाके द्वारा जबरदस्ती आक्रमण किये हुए राजा लोग नम्र हो गये थे, नदियोमे कीचड़ रह गया था और बड़े-बड़े पहाड समान - जमीनके सदृश-हो गये थे ॥५॥ जिनका उपभोग अत्यन्त मनोरम है, जो सन्तोष उत्पन्न करनेवाली हैं, और जो उपभोगकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके द्वारा चाहने योग्य है ऐसी इस चक्रवर्तीकी समस्त सिद्धियाँ इसके बड़े भारी उद्योगोके साथ-ही-साथ फल जाती थी अर्थात् सिद्ध हो जाती थी - ॥६॥ जिन्हे कोई भेद नहीं सकता है, जिनका सगठन अत्यन्त मजबूत है और जो शत्रुओके क्षयका कारण है ऐसी भरतकी शक्ति तथा सेना दोनो ही शत्रु राजाओपर अपना प्रभाव डाल रहे थे ॥७॥ भरतके योद्धा उनके बाणोके समान थे, क्योंकि जिस प्रकार योद्धा फल अर्थात् इच्छानुसार लाभसे युक्त किये जाते थे उसी प्रकार बाण भी फल अर्थात् लोहेकी नोकसे युक्त किये जाते थे, जिस प्रकार योद्धा तीक्ष्ण अर्थात् तेजस्वी थे उसी प्रकार बाण भी तीक्ष्ण अर्थात्

१ 'रूप्याद्रिनाथनतमौलिविराजितसदोहनिर्गलितदीप्तिमयाङ्घ्रिपद्मम् । देव नमामि सतत जगदेकनाथ भक्त्या प्रणष्टदुरित जगदेकनाथम् ॥ 'त' पुस्तकेऽधिकोऽयं श्लोक । २ अपरदिगवधिम् । ३ अभ्युदयवान् । ४ नैर्ऋत्य-दिग्भागम् । ५ पश्चात् । ६ अगच्छत् । ७ सदेव ल० । ८ प्रकाशते स्म । ९ भटानाम् । १० बलात्कारेण । ११ निजिता । १२ प्रणता इव आचरन्ति स्म । १३ महीभुज वृक्षा वा । १४ कर्दमा इवाचरिता । १५ सिद्धिपक्षे रागसहिता । फलपक्षे रससहिता । 'गुणे रागे द्रवे रस' इत्यमर । १६ कृतसुखा । १७ भोक्तु-मिच्छुभि । आश्रितजनैरित्यर्थ । १८ उत्साहैः । १९ फलानीवाचरन्ति स्म । २० कार्यसिद्धय । २१ दृढ-सबन्धाः । २२ क्षय-ल० । २३ प्रभुमन्त्रोत्साहरूपा । २४ तीरिफलेन अभीष्टफलेन च । २५ पत्रसहिता सहायाश्च । २६ बाण ।

दूरमुत्सारिता सैन्यं परित्यक्तपरिच्छदा । विपश्चा सत्यमवास्थ विपक्षत्वमुपाययु ॥९॥

आक्रान्तं भूभृतो नित्यं भुञ्जाना फलसपदम्^१ । कुपितित्वं^२ मयुश्चित्रं कोपऽप्यस्य विरोधिन ॥१०॥

सधिविग्रहचिन्तास्य^३ पदविद्यास्त्रं भूत् परम् । भूतया^४ तत्रपक्षस्य क सधानं विग्रह ॥११॥

हृत्पजेतप्यपक्षोऽपि यदयं दिग्जयोधत । तद्धूमं^५ भुक्तिमात्मीयां तद्वराजेन^६ परीधियान्^७ ॥१२॥

आक्रान्ता सनिकैरस्य विभो पारऽणव^८ सुव । पूगहुमकृतच्छाया नालिकेरधनैस्त्वता ॥१३॥

निपप^९ नालिकेराणां तरुणानां क्षुतो^{१०} रस । सरस्तीरतरुच्छाया विधान्तरस्य सैनिकं^{११} ॥१४॥

पैने थ, जिस प्रकार योद्धा सपक्ष अर्थात् सहायकोसे सहित थ उसी प्रकार बाण भी सपक्ष अर्थात् पक्षोसे सहित थ, और जिस प्रकार योद्धा दूर तक गमन करनेवाले थ उसी प्रकार बाण भी दूर तक गमन करनेवाले थे इस प्रकार वे दोनों साथ-साथ ही विजयके अग हो रहे थे ॥१॥ भरत के विपक्ष (विरुद्ध पक्षो येपा ते विपक्षा) अर्थात् शत्रुओका उनकी सेनाने दूर भगा दिया था और उनके छत्र चमर आदि सब सामग्री भी छीन ली थी इसलिए वे सचमुच ही विपक्ष पनेको (विगत पक्षो येपा ते विपक्षास्तेपा भावस्तस्वम्) प्राप्त हो गये थे अर्थात् सहायरहित हो गये थ ॥९॥ यह एक आश्चर्यकी बात थी कि भरतके विरोधी राजा सेनाके द्वारा आक्रमण किये जानेपर तथा उनके क्रोधित होनेपर भी अनेक प्रकारकी फल सम्पदाओका उपभोग करते हुए कुपतित्व अर्थात् पृथिवीके स्वामीपनेको प्राप्त हो रहे थे । भावाथ — इस श्लोकमें श्लेष मूलक विरोधाभास अलंकार है इसलिए पहल तो विरोध मालूम होता है बादमें उसका परिहार हो जाता है । श्लोकका जो अर्थ ऊपर लिखा गया है उससे विरोध स्पष्ट ही झलक रहा है क्योंकि भरतके क्रोधित होनेपर और उनकी सेनाके द्वारा आक्रमण किये जानेपर कोई भी शत्रु सुखी नहीं रह सकता था परन्तु नीचे लिखे अनुसार अर्थ बदल देनेसे उस विरोधका परिहार हो जाता है—भरतके विरोधी राजा लोग, उनके कुपित होने तथा सेनाके द्वारा आक्रमण किये जानेपर अपनी राजधानी छोड़कर जंगलोंमें भाग जाते थे, वहाँ फल खाकर ही अपना निर्वाह करते थे और इस प्रकार कुपतित्व अर्थात् कुत्सित राजवृत्ति (दरिद्रता) को प्राप्त हो रहे थे ॥१०॥ उस भरतको सन्धि (स्वर अथवा व्यजनोंको मिलाना) और विग्रह (व्युत्पत्ति) की चिन्ता केवल व्याकरण शास्त्रमें ही हुई थी अन्य शत्रुओके विषयमें नहीं हुई थी सो ठीक ही है क्योंकि जिसने समस्त शत्रुओंको नष्ट कर दिया है उसे कहाँ सन्धि (अपना पक्ष निबल होनेपर बलवान् शत्रुके साथ मेल करना) करनी पड़ती है ? और कहाँ विग्रह (युद्ध) करना पड़ता है ? अर्थात् कहीं नहीं ॥११॥ इस प्रकार भरतके यद्यपि जीतने योग्य कोई शत्रु नहीं था तथापि वे जो दिग्विजय करनेके लिए उद्यत हुए थे सो केवल दिग्विजयके छलसे अपने उपभोग करने योग्य क्षेत्रम चक्कर लगा आये थे — घूम आये थे ॥१२॥ महाराज भरतके सैनिकाने, जहाँ सुपारीके वृक्षोंके द्वारा छाया की गयी है और जो नारियलके वनोंसे व्याप्त हो रही है ऐसे समुद्रके किनारेकी भूमिपर आक्रमण किया था ॥१३॥ सरोवरोंके किनारेके वृक्षोंकी छायाम विश्राम करनेवाले भरतके सैनिकोंने नारियलके तरुण अर्थात् बड़े-बड़े वृक्षों

१ सहायपुरपरहितत्वम् । २ आक्रान्ता भूभृतो ल० । भूभृत् राजान पवताश्च । ३ अभीष्टफलसपदम्, वन स्तितिलमप च । ४ भूभृतित्वं भुक्तिरूपतित्वं च । ५ सधानयुद्धचिन्ता च । ६ गच्छास्त्रेपु । ७ निरस्त गत्रपगम्य । ८ पालनधनम् । ९ दिग्विजयछचना । १० प्रशिक्षणीकृतवान् । ११ समद्वतोरम । पारे मध्यज्य पट्टपा । १२ पान क्रियत स्म । १३ निमृत् ।

स्फुरपक्ष्यमपानपत्रा नूनोऽन्यिन् । तालावनेषु^१ तन्मन्यं शुश्रुवे मर्मरं वनि^२ ॥१५॥
 मम ताम्रलवलीमिरपद्यत क्रमुकान विभु । एककार्यन्वमस्माकमितीव^३ मिलितान्मिय ॥१६॥
 नृपस्नाम्रलवलीनामुपत्नान् क्रमुद्रुमान् । निःशायन वेष्टि^४ तांस्नाभिमुंसुते दृग्गतीयितान् ॥१७॥
 स्वाध्यायमित्र कुर्वाणान वनेऽविरतमनान्^५ । वीन्सुनीनिव सोऽपश्यद यत्रान्नं मितशामिन ॥१८॥
 पनमानि मुदन्यन्न कण्टकीनि वृष्टिन्वचि । सुरमान्यमृतातीव जना प्राप्नुवन् यथेभ्यनम् ॥१९॥
 नालिकेरय पान पनमान्यजन परम् । मरीचान्युपदशच्च वन्या^६ वृत्तिरहो नृगम् ॥२०॥
 मरमानि मरीचानि किमप्यास्वाय विकिरान् । न्वन^७ प्रभुरद्राक्षीद् गलदश्रुविलोचनान् ॥२१॥
 विदश्य^८ मञ्जरीमनीषा मरीचाना मशङ्कितम् । शिरां विबुन्वतोऽपश्यन् प्रभुस्तरुणमकंदान् ॥ २२ ॥
 वनस्पर्शान् कलानघ्रान् वीक्ष्य लोकोपकारिण । जाना कलद्रुमास्मिन्वे^९ निरागमन्ता जना ॥२३॥
 लतायुवतियमन्ता प्रमवाह्य वनद्रुमा । करदा^{१०} इव तस्यामन् प्रीणयन्त फलैर्जनान् ॥२४॥
 नालिकेरामर्दमत्ता^{११} किचिदावृणितेक्षणा । यतोऽस्य जगुगमन्द्रकुहर^{१२} मिहलाजनाः ॥२५॥

से निकला हुआ रस खूब पिया था ॥१८॥ वहाँ भरतकी सेनाके लोगोंने ताड़ वृक्षोंके वनोमें वायुके हिलनेसे उठी हुई बहुत कठोर मूखे पत्तोंकी मर्मर-ध्वनि सुनी थी ॥१५॥ वहाँ सम्राट् भरतने हम लोगोंका एक ही समान कार्य होगा यही समझकर जो पानकी वेलोंके साथ-साथ परस्परमें मिल रहे थे ऐसे मुपारीके वृक्ष देखे ॥१६॥ जो पानोंकी लताओंके आश्रय थे तथा जो उनके साथ लिपटकर स्त्री-पुरुषके समान जान पड़ते थे ऐसे मुपारीके वृक्षोंको बड़े गौरके साथ देखकर महागज भरत बहुत ही प्रसन्न हुए थे ॥१७॥ उन वनोमें सूर्यास्तके समय निवास करनेवाले जो पक्षी निरन्तर गवद कर रहे थे और ऐसे जान पड़ते थे मानो सूर्यास्तके समय निवास करनेवाले तथा स्वाध्याय करते हुए मुनि ही हो उन्हें भरतने देखा था ॥१८॥ जो भीतर कोमल हैं तथा बाहरी त्वचापर काँटोंसे युक्त हैं ऐसे अमृतके समान मीठे कटहलके फल सेनाके लोगोंने अपनी इच्छानुसार खाये थे ॥१९॥ वहाँ पीनेके लिए नारियलका रस, खानेके लिए कटहलके फल और व्यजनके लिए मिरचे मिलती थी, इस प्रकार सैनिकोंके लिए वनमें होनेवाली भोजनकी व्यवस्था भी सुखकर मालूम होती थी ॥२०॥ जो सरस अर्थात् गीली मिरचे खाकर कुछ-कुछ गवद कर रहे हैं और जिनकी आँखोंसे आँसू गिर रहे हैं ऐसे पक्षियोंको भी भरतने देखा था ॥२१॥ जो तरुण वानर बहुत तेज मिरचोंके गुच्छोंको निश्चरूपसे खाकर बादमें चरपरी लगनेसे सिर हिला रहे थे उन्हें भी महाराजने देखा ॥२२॥ उस समय वहाँ फलोंसे झुके हुए तथा लोगोंका उपकार करनेवाले वृक्षोंको देखकर लोग कल्प-वृक्षोंके अस्तित्वमें शंका रहित हो गये थे ॥२३॥ जो लतारूप स्त्रियोंसे लिपटे हुए हैं और अनेक फलोंसे युक्त हैं ऐसे वनके वृक्ष अपने फलोंसे सेनाके लोगोंको सन्तुष्ट करते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो भरतके लिए कर ही दे रहे हो ॥२४॥ जो नारियलकी मदिरा पीकर उन्मत्त हो रही हैं और इसीलिए जिनके नेत्र कुछ-कुछ घूम रहे हैं ऐसी सहल द्वीपकी स्त्रियाँ वहाँ गद्गद

१ तालवनेषु । २ शुष्कपर्णध्वनि । 'अथ मर्मर, स्वनिते वस्त्रपर्णानाम्' इत्यभिवानात् । ३ पर्णक्रमुकमेलनादेक-कार्यत्वमिति । ४ आश्रयभूतान् । 'स्थादुपघ्नोऽन्तिकाश्रये' इत्यमर । ५ विध्याय वे-ल० । ६ -स्वनम् ल० । ७ विहगान् । ८ यत्र रविरस्त गतस्तत्र वासिन । ९ भक्षयन्ति स्म । भक्षितवन्त इत्यर्थ । १० वनवान् । ११ रव कुर्वत । १२ भक्षयित्वा । १३ निस्सन्देहा । १४ कर सिद्धाय ददतीति करदा, कुटुम्बिजना इवेत्यर्थ । 'आलस्योपहत पाद पाद पापण्डमाश्रित । राजान सेवते पाद पाद कृपिमुपागत ॥' १५ प्रचलायित । १६ गम्भीरगहर यथा भवति तथा । गद्गदमहितकम्पन कुहरगवदेनोच्यते ।

त्रिकूट मलयोत्सङ्ग गिरौ पाण्ड्यकवाङ्क । जगुरस्य यशो मन्त्रसूच्छना किन्नराङ्गना ॥२६॥
 मलयोपान्तरान्तरा सद्वाचलवनपु च । यशो वनचरस्त्रामिरुजगस्य जयाजितम् ॥२७॥
 चन्दनोद्यानमाध्व मन्द गन्धवहा ववौ । मलयाचलकृन्त्रैभ्या हरत्रिभरर्शिकिरान् ॥२८॥
 विष्वग्विसारा^१ दाक्षिण्य^२ समु^३ यद्यपि सोऽनिल । समावयन्नि वासिधैर्विभ्रा भ्रममपाहरत् ॥२९॥
 एलालवद्वसराससुरभिः सित मुख । स्नानरापाण्डुभि सा^४ द्रचन्दनद्रव्यचर्चिते ॥३०॥
 सल^५ लघुमुभिर्यातानतम्बभरमथर^६ । स्मितैरनङ्गपुष्पास्त्रस्तवकोद्भूतविभ्रमे ॥३१॥
 काकिलालापसधुर^७ रलितै^८ (ललित) रनतिस्फुर । मृदुवाहूलतान्दोल सुमगैश्च विचेष्टित ॥३२॥
 लास्य स्तलप^९ चासैमुक्ताप्रायैर्विभूषणै । मदमन्त्रुभिस्तृगातजिगालिकुलनिमित्तै^{१०} ॥३३॥
 तमालवनवाधीषु सचरन्त्यो यद्वच्छया । मनो रथ नहरारुण्यौवना करलक्ष्मि ॥३४॥
 प्रसाध्य दक्षिणामाशा^{११} विभुस्त्रैराज्यपालकान् । सम प्रणमयामास विजित्य जयसाधनै ॥३५॥

कण्ठसे महाराज भरतका यश गा रही थी ॥२५॥ त्रिकूट पवतपर, मलयगिरिके मध्यभाग पर और पाण्ड्यकवाटक नामके पवतपर किन्नर जातिकी देवियाँ गम्भीर स्वरसे चक्रवर्ती का यश गा रही थी ॥२६॥ इसी प्रकार मलय गिरिके समीपवर्ती वनमें और सह्य पवतके वनमें भीलोंकी स्त्रियाँ विजयसे उत्पन्न हुआ महाराजका यश जोर जोरसे गा रही थी ॥२७॥ उस समय मलय गिरिके लतागूहोंसे झरनाके जलके छोटे-छोटे कण हरण करता हुआ तथा चन्दनके बगीचेको हिलाता हुआ वायु धीरे धीरे वह रहा था ॥२८॥ वह वायु दक्षिण दिशा को छोड़कर चारो ओर वह रहा था और ऐसा जान पड़ता था मानो अतिथि-सत्कारके द्वारा भरतका सम्मान करता हुआ हो उनका परिश्रम दूर कर रहा था । भावाय—इस श्लोकम दाक्षिण्य शब्दके श्लेष तथा अपि शब्दके सन्निधानसे नीचे लिखा हुआ विरोध प्रकट होता है—
 'वह वायु यद्यपि दाक्षिण्य (स्वामीके इच्छानुसार प्रवृत्ति करना) भावको छोड़कर स्वच्छन्दता पूर्वक चारो ओर घूम रहा था तथापि उसने एक आज्ञाकारी सेवककी तरह भरतका अतिथि सत्कार कर उनका सत्र परिश्रम दूर कर दिया था, जो स्वामीके विरुद्ध आचरण करता है वह उसकी सेवा क्यों करेगा ? यह विरोध है परन्तु दाक्षिण्य शब्दका दक्षिण दिशा अथ लनेसे यह विरोध दूर हो जाता है ('दक्षिणो दक्षिणोद्भूतसरलच्छन्दवर्तिषु इति मेदिनी, दक्षिणस्य भावो दाक्षिण्यम पक्षे दक्षिणव दाक्षिण्यम) ॥२९॥ तमाल वृक्षोंके वनकी गलियोंमें इच्छानुसार इधर उधर घूमती हुई केरल देशकी तरुण स्त्रियाँ इलायची, लौंग आदि सुगन्धित वस्तुओंके सम्बन्धसे जिनके निश्वास सुगन्धित हो रहे ह ऐसे मुखोंसे, जो घिसे हुए चन्दनके गाढ़ उपसे सुशोभित हो रहे हैं ऐसे स्तनोंसे, नितम्बोंके भारसे मथर लीलासहित सुकोमल गमनसे जो कामदेवके पुष्परूपी शस्त्रोंके गुच्छोंके खिलनेके समान सुशोभित हो रहे ह एस मन्द हास्यसे कोयलकी कूकके समान मनोहर तथा अव्यक्त वाणीसे, सुकोमल बाहु रूपी लताओंके इधर-उधर फिरानेसे सुन्दर चेष्टाओंसे, जिसमें स्खलित होते हुए पैर पड़ रहे ह ऐसे नृत्यामे, अधिस्ततर मोतिमाक बने हुए आभूषणोंसे, भ्रमरसमूहकी गुंजारकी जीतनेवाले मदसे मनाहर उत्कृष्ट गीतोंसे चक्रवर्ती भरतका मन हरण कर रही थी ॥३०-३४॥ इस प्रकार महाराज भरतने अनन्य विजयी सेनाक द्वारा दक्षिण दिशाको वश कर चोल, केरल और पाण्ड्य

१ त्रिकूट म० २ ल अ० ३ स । त्रिकूटगिरिमलयाचलसानी । २ वनचर-ल । ३ विसरणशील ।
 ४ दाक्षिण्यनिर्वा । आनुकूल्यन च । ५ अतिथी साधुभि उपचाररित्यय । ६ उच्छवास । ७ गमन ।
 ८ मन्द । ९ जित यचन । ११ मिञ्जन अ प ब० स० । ११ विरायपु जातान् । चोरकेरल
 पाण्ड्यान् ।

कालिङ्गकैर्गजैरस्य मलयोपान्तभ्रमरा । तुल्यतिग्मिन्मानमाक्रान्ताः स्वेन वर्मणा ॥३६॥
 दिग्वा प्रान्तेषु विश्रान्तैर्दिग्जयैः समगर्वा । दिग्गजस्य स्वमादके गोभार्य तन्वयान्नगम् ॥३७॥
 ततोऽपरान्तमारुह्य मत्प्राचलतटोपग । पश्चिमाणवर्वेयान्त पालकानजयट विभु ॥३८॥
 जयमाधनमन्याध्वेगार्त्तारं जयजृम्भत । महायाजनमयुजैः परं पारमवाष्टभन ॥३९॥
 उपगिन्धु रिति व्यनगुभयोर्न्तार्योत्रलम् । दृष्टास्य सा रमाश्रुभ्यत्रिवाभृदाकुलाकुल ॥४०॥
 तत स्म वलमश्रोभाद्रिनो वारि प्रमर्पति । इत स्म वलमश्रोभात ततोऽद्विः प्रतिमर्पति ॥४१॥
 हरिन्मणिप्रभोन्मपेस्ततमध्वेवर्भा जलम् । चिराद् विजृम्भतमर्पव मशैवलमध्वस्तलम् ॥४२॥
 पन्नरागागुमिभिन्न कचनाध्वेवर्भाजलम् । श्रोभाद्रिवाःस्य हृन्दीर्णमुचलच्छोणितच्छटम् ॥४३॥
 मह्योमङ्ग लुड्गविधनन दुःख न्यवेद्यत । सोऽपि संधारयन्नेन बन्धुन्यमिवातनोन ॥४४॥
 अमलैर्वलमवष्टे मार मरुतिर्पाटित । शायोद्वारमिव व्यक्तमवरोद् रङ्गपाटपैः ॥४५॥

इन तीन राजाओको एक साथ जीता और एक ही साथ उनसे प्रणाम कराया ॥३५॥ जो अपने शरीरसे मानो मलय पर्वतकी ऊँचाईकी ही तुलना कर रहे हैं ऐसे कलिङ्ग देशके हाथियोने मलय पर्वतके समीपवर्ती अन्य समस्त छोटे-छोटे पर्वतको व्याप्त कर लिया था ॥३६॥ दिग्विजयके समय दिग्वाओके अन्त भागमे विश्राम करनेवाले भरतके हाथियोने दिग्गजपना अपने अधीन कर लिया था अर्थात् स्वयं दिग्गज बन गये थे इसलिये अन्य आठ दिग्गजोंकी कथा केवल गोभा-के लिए ही रह गयी थी ॥३७॥ तदनन्तर पश्चिमी भागपर आरुढ़ होकर सहाय पर्वतके किनारे के समीप होकर जाते हुए भरतने पश्चिम समुद्रकी वेदीके अन्तकी रक्षा करनेवाले राजाओको जीता ॥३८॥ भरतकी वह विजयी सेना समुद्रके समीप किनारे-किनारे सब जगह फैल गयी थी और वह इतनी बड़ी थी कि उसने समुद्रका दूसरा किनारा भी व्याप्त कर लिया था ॥३९॥ उस समय हवासे लहराता हुआ उपसमुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो दोनों किनारेपर भरतकी सेना देखकर भयसे ही अत्यन्त आकुल हो रहा हो ॥४०॥ उस किनारेका उपसमुद्र सेनाके क्षोभसे इस किनारेकी ओर आता था और इस किनारेका उपसमुद्र सेनाके क्षोभसे उस किनारे-की ओर जाता था ॥४१॥ ऊपर फैली हुई हरे मणियोंकी कान्तिसे व्याप्त हुआ वह समुद्रका जल ऐसा सुगोभित हो रहा था मानो इस समुद्रका शेवालसहित नीचेका भाग ही बहुत समय बाद उलटकर ऊपर आ गया हो ॥४२॥ कहीं-कहींपर पन्नराग मणियोंकी किरणोंसे व्याप्त हुआ समुद्रका जल ऐसा जान पड़ता था मानो सेनाके क्षोभसे समुद्रका हृदय ही फट गया हो और उसीसे खूनकी छटाएँ निकल रही हो ॥४३॥ सहाय पर्वतकी गोदमे लोटता हुआ (लहराता हुआ) वह समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो उससे अपना दुःख ही कह रहा हो और सहयपर्वत भी उसे धारण करता हुआ ऐसा मालूम होता था मानो उसके साथ अपना बन्धुभाव (भाई-चारा) ही बढ़ा रहा हो ॥४४॥ सेनाके असहाय सघटनोंसे अत्यन्त पीडित हुआ वह सहयपर्वत अपने टूटे हुए वृक्षोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो अपने मस्तकपर लकड़ियोंका गट्टा रख-

१ कलिङ्गवने जाते । कलिङ्गवनजाता उन्नतकायाश्च । उक्त च दण्डिना देशविरोधप्रतिपादनकाले 'कलिङ्ग-वनसभूता मृगप्राया मतङ्गजा' इति । २ मलयदेशसमीपस्थपर्वता । ३ गुणयद्भि — अ०, इ०, स० । ४ दिग्गजा सन्तीति कथाभेद । ५ अपरदिग्भागम् । ६ व्याप्य । ७ वेलान्त—इत्यपि क्वचित् । ८ प्रभु ल० । ९ विजृम्भितम् ल० । १० —मयुच्चै द०, ल०, अ०, प०, स० । ११ अपरतीरम् । १२ अशिथ्रियत् । १३ उपसमुद्र । १४ परिणतम् । चिरकालप्रवर्तितम् । १५ हृत् हृदयम् शीर्णं विदं णं सत् । १६ —मुच्छ्वल-ल० द० । १७ सह्यगिरिसानी । १८ पश्चिमाणवर्वत । १९ पल्लव गृहीत्वा आक्रोशम् । २० भुग्न । 'रुग्ण भुग्ने' इत्यमर । भुग्न—ल० । भग्न—द० ।

चलत्सर्वो गुहार^१ भ्रैषिमुल्लङ्घाकुल रमम् ।^२ महाप्राणाऽद्विस्त्रकान्ति^३ मियायव चलन्त ॥४६॥
 चलच्छाखी चलत्सरः चलच्छिथिलमगल । नागैवाचलता भग्रे साऽद्विरव चलाचल ॥४७॥
 गनतावन^४ सभोगैस्तुरङ्गचरवृत्तैः । सहोसन्नमुव क्षुण्णा स्थलीभाव क्षणाद् ययु ॥४८॥
 अपश्चिमाणस्तटादा च मध्यमपर्वतात् । आतुङ्गवरकादत्रैस्तुङ्गगण्डोपलङ्घितात् ॥४९॥
 त कृष्णगिरिमुल्लङ्घ्य त च शैल सुमन्दरम् । मुकुन्द चाद्रिमुद्वसा जयेमास्तस्य वन्नमु ॥५०॥
 तत्रोपरान्तकान् नागात् हस्वग्रीवान् परान् रदैः । युक्तान् पानायतस्त्रिगैः श्यामान् स्वान् मृदुवच ॥५१॥
 महोसन्नानुदग्राज्ञान् रत्नजिह्वीष्ठतालुकान् । मानिनो दाघवालोष्ठान् पन्नगधमदय्युत ॥५२॥
 सतुष्टान् स्वे यने धूरान् दृढपादान् सुवपण । स भग्न तद्वनाधारे मसभ्रममुपाह्वितान् ॥५३॥
 वनरोमावलीस्तुङ्गतराहो^५ बहूनदा । पूर्वापराभिगा^६ सोऽन्यत् सहाद्रेदुहितृवि^७ ॥५४॥
 सचरत्नापणप्राहैर्मा^८ भैरथा नदीम् । नक्षत्रकृतावर्तैर्दारुणेण च दारुणाम् ॥५५॥

कर भरतके प्रति अपनी पराजय ही स्वीकृत कर रहा हो (पूव कालम यह एक पद्धति थी कि पराजित राजा सिरपर लकड़ियोंका गट्टा रखकर गलेमें कुल्हाड़ी लटकाकर अथवा मुखमें तण दवाकर विजयी राजाक सामने जाते थे और उससे क्षमा मांगते थे ।) ॥४५॥ वह पर्वत रूपी बड़ा भारी प्राणी सेनाके द्वारा घायल हो गया था, उसके शिखर टूट-फूट गये थे, उसका सत्त्व अर्थात् धैर्य विचलित हो गया था—उसके सब सत्त्व अर्थात् प्राणी इधर-उधर भाग रहे थे, वह गुफाओके छिद्रोंसे व्याकुल शब्द कर रहा था और इन सब लक्षणोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो बहुत शीघ्र मरना ही चाहता हो ॥४६॥ उस पर्वतके सब वृक्ष हिलने लगे थे, सब प्राणी इधर उधर चंचल हो रहे थे—भाग रहे थे और उसके चारो ओरका मध्यभाग भी शिथिल होकर हिलने लगा था इस प्रकार वह पर्वत नाममात्रसे ही अचल रह गया था, वास्तवम चल हो गया था ॥४७॥ लोगोंकी वनक्रीड़ाओसे तथा घोड़ोंके खुरोंके सघटनसे उस सह्य पर्वतके ऊपरकी भूमि चूर-चूर होकर क्षण भरम स्थलपनेको प्राप्त हो गयी थी अर्थात् जमीनके समान सपाट हो गयी थी ॥४८॥ चन्द्रवर्ती भरतके मदोन्मत्त विजयी हाथी, पश्चिम समुद्रके किनारेसे लकर मध्यम पर्वत तक और मध्यम पर्वतसे लकर ऊँची-ऊँची चट्टानोंसे चिह्नित तुगवरक पर्वत तक, कृष्ण गिरि सुमन्दर तथा मुकुन्द नामके पर्वतको उल्लंघन कर, चारो ओर घूम रहे थे ॥४९-५०॥ जिनकी गरदन कुछ छोटी है जो देखनेमें उत्कृष्ट ह मोटे लम्बे और चिकने दाँतोंसे सहित ह, काल ह, जिनकी सब इन्द्रियाँ अच्छी हैं चमड़ा कोमल है पीठ चौड़ी है शरीर ऊँचा है, जोम होठ और तालू लाल ह जो मानी ह, जिनकी पूँछ और होंठ लम्बे हैं जिनसे कमलके समान गंधवाला मद झर रहा है जो अपने ही वनमें सन्तुष्ट ह शूरवीर ह, जिनके पर मजबूत हैं शरीर अच्छा है और जिन्हें उन वनोंके स्वामी बड़े हर्ष या क्षोभके साथ भेंट देनेके लिए कामे ह ऐसे पश्चिम दिशाम उत्पन्न होनेवाले हाथी भी भरतने प्राप्त किये थे ॥५१-५३॥ वन ही जिनकी रोमावली ह और ऊँचे किनारे ही जिनके नितम्ब ह ऐसी सह्य पर्वतकी प्रश्रियाके समान पूव तथा पश्चिम समुद्रकी ओर बहनेवाली अनेक नदियाँ महाराज भरतने उल्लंघन की थी—पार की थी ॥५४॥ चलते फिरते हुए भयंकर मगरमच्छोंसे भयानक भीमरथी नदी नाकुआसे समूहसे की हुई आवर्तोंसे भयंकर दारुणेण नदी, किनारे

१ गुहारभ्रै ल० । २ मिह्रादिमहत्त्वमहप्राण । प्राणी हूनपास्ते चाले काले जीवऽनिले वले । इत्यनि धातुः । मरणात् भाम (मृतिम्) । ४ गनता ल द । ५ पश्चिमपश्चिमसीपान् । ६ कुङ्गलकन्धोत्कृष्टान् । ७ पानान्ति-ल० । ८ सुनान् । ९ बह्नुपरिभागान् । १ उपायनीकृतान् । ११ नितम्बः । १२ अगात् ।
 १ पुश्रारि । १४ भीमरथी ल० ।

माति य शिखरस्तुङ्गैर्वृन्नायतनिशरै । सपताकैर्विमानैर्घैर्विभ्रमायव सश्रित ॥६६॥

य पूर्वापरकोटिभ्यां विगाह्याम्बुनिधिं स्थित । नूनं दाग्रथात् सव्यं ममुना प्रचिकापतिं ॥६७॥

नयन्ति निझरा यस्य शङ्खस्पर्ष्टिं तटद्भुमान् । स्वपादाध्रमिण पोष्या प्रभुणतीव शसिनुम् ॥६८॥

तन्मध्यपुत्र पापागस्तलितोच्चलिताम्भसः । नदीयधूः कृतध्वान निझरहसताव य ॥६९॥

वनाभोगमपयन्त यस्य दग्धुमिवाक्षम । मृगुपाताय दायाग्निः शिर्यशय्यधिराहति ॥७०॥

ज्वलद्वावपरातानि यत्कृगानि वनेचरः । चामाकरमथानात्र लक्ष्यं ने शुचिं सत्रिभौ ॥७१॥

समातङ्गं वन यस्य समुज्ज्वपरिमहम् । विजातिं कण्टकाकीर्णं कचिद्वृत्तेऽतिकष्टताम् ॥७२॥

क्षीव कुञ्जरयोगेऽपि कचिदक्षावकुञ्जरम्^१ । विप्रमपि^२ सत्यप्रपन्नं माति यद्वनम् ॥७३॥

था जिस प्रकार आप पृथुवश अर्थात् विस्तृत उत्कृष्ट वश (कुल) को धारण करनेवाला थे उसी प्रकार वह विध्याचल भी पृथुवश अर्थात् बड़े-बड़े बासके वृक्षोको धारण करनेवाला था, जिस प्रकार आप घृतायति अर्थात् उत्कृष्ट भविष्यको धारण करनेवाले थे उसी प्रकार वह विध्याचल भी घृतायति अर्थात् लम्बाईको धारण करनेवाला था और जिस प्रकार आप दूसरोके द्वारा अलघ्य अर्थात् अजेय थे उसी प्रकार वह विध्याचल भी दूसरोके द्वारा अलघ्य अर्थात् उल्लघन न करने योग्य था ॥६५॥ जिनसे बहुत दूर तक फैलनेवाला झरने झर रहे हैं ऐसे ऊँचे-ऊँचे शिखरों से वह पवत ऐसा मुशोभित हो रहा था मानो पताकाओसहित अनेक विमानोंके समूह हो विश्राम करनेके लिए उसपर ठहरे हो ॥६६॥ वह पवत अपने पूव और पश्चिम दिशाके दोनों कोणोंसे समुद्रमें प्रवेश कर खड़ा हुआ था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो दावानलके डरसे समुद्रके साथ मित्रता ही करना चाहता हो ॥६७॥ उस विध्याचलके झरने 'स्वामीको अपने चरणोंको आश्रय लनेवाले पुरुषोंका अवश्य ही पालन करना चाहिए मानो यह सूचित करनेके लिए ही अपने किनारेके वृक्षोका सदा पालन-पोषण करते रहते थे ॥६८॥ वह पवत शब्द करते हुए निझरनोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो अपने किनारेके ऊँचे-नीचे पत्थरोंसे स्खलित होकर जिनका पानी ऊपरकी ओर उछल रहा है ऐसी नदीरूपी स्त्रियोंकी हँसी ही कर रहा हो ॥६९॥ उस पवतके शिखरोंपर लगा हुआ दावानल ऐसा जान पड़ता था मानो उसके सीमारहित बहुत बड़े वनप्रदेशको जलानेके लिए असमर्थ हो ऊपरसे गिरकर आत्म घात करनेके लिए ही उसके शिखरोंपर चढ़ रहा हो ॥७०॥ आषाढ महीनेके समीप जलते हुए दावानलसे घिरे हुए उस पवतके शिखर वहाँके भीलोंको सुवर्णसे बने हुएके समान दिखाई देते थे ॥७१॥ उस पवतका वन कहीं-कहीं मातंग अर्थात् हाथियोंसे सहित था अथवा मातंग अथान् चाण्डालोंसे सहित था भुजंग अर्थात् सर्पोंके परिवारसे युक्त था अथवा भुजंग अर्थात् नीच (विट गुण्ड) लोगोंके परिवारसे युक्त था और अनेक प्रकारके काँटोंसे भरा हुआ था अथवा अनेक प्रकारके उपद्रवी लोगसे भरा हुआ था इसलिए वह बहुत ही दुःखदायी अथवा शोचनीय अवस्थाको धारण कर रहा था ॥७२॥ उस पवतपर-का वन क्षीबकुञ्जर अथान् मन्मेमत्त हाथियोंसे युक्त होकर भी अक्षीबकुञ्जर अर्थात् मदो-मत्त हाथियोंसे रहित था और विपन्न अर्थात् पतामे रहित होकर भी सत्यप्रपल्लव अर्थात् पत्तों तथा कोपलोंसे सहित

१ इव । २ मित्रत्वम् । ३ समन्त्रेण । ४ अनुमिच्छति । ५ तटनिम्नोन्नत । ६ प्रपातस्तत्तटो मग्नः सत्रिभानान् । ७ प्राप्य । ८ मग्नः पश्ये सचाण्डालम् । ९ सप्तप पक्ष सविट । १ पक्षिताति पक्ष नीच जानि । ११ मत्तगज । १२ अक्षीब मन्मलवणम् मामु यत्तु लवणमक्षीवं वक्षिरञ्च तन । कुञ्जो गुम्फगुह्यान्तो रानीति गन्तीति । १३ बीना पत्राणि पक्षा यस्मिन् सन्तीति अथवा विगताश्वम् ।

स्फुटद्वेण्डरोन्मुक्तैर्व्यस्तैर्मुक्ताफलैः कचिन । वनलऽथो ह्यन्तीव स्फुटदन्ताशु^१ यदने ॥७४॥

गुह्यामुपस्फुटद्वाग्निर्जगत्प्रतिगच्छवैः । गर्जनीव न्तस्पर्धो महिम्ना य कुलाचलं ॥७५॥

स्फुटन्निन्नोन्नतोद्देशश्चित्रवर्णेश्च वानुभि^२ । मृगपैतवर्गैश्च चित्राङ्ग विभन्ति यः ॥७६॥

उत्पलन्त्योपभयो यस्य वनान्तेषु तर्मासुरे । देवनाभिरिवोत्तिष्ठा^३ दंष्ट्रिकाग्निमिरचिद^४ ॥७७॥

वचिन्मृगेन्द्रमिदंभकुम्भोच्चलिनमौन्तिके^५ । मधुपान्तस्थल एते प्रकीर्णकुसुमश्रियम् ॥७८॥

स तमालोक्यन दरादाम्भ्याद महागिरिम् । आत्यन्तमिवायक्तं मन्दन्तेन्तट्ट^६ ॥७९॥

स तद्वनगतान् दरादपश्यद् वनकचुरान । ययूयानुचुर्चगान^७ किर्णान् स्त्रिणोऽपि च ॥८०॥

सरिद्वध्वस्तदुत्पन्ने^८ त्रियुक्तशफरीक्षणा । तट्टलभा इवापश्यन् स्फुटद्विस्तमन्मना^९ ॥८१॥

था इस प्रकार विरोधस्प होकर भी मुञ्चोभित हो रहा था । भावार्थ — इस श्लोकमें विरोधाभास अलंकार है, विरोध ऊपर दिखाया जा चुका है अब उसका परिहार देग्विए — वहाँका वन क्षीवकुजर अर्थात् मदोन्मत्त हाथियोंमें युक्त होनेपर भी अक्षीवकुजर अर्थात् समुद्री नमक तथा हाथीदाँतोको देनेवाला था अथवा मोहाजनाके लनामण्डपोको प्रदान करनेवाला था और विपन्न अर्थात् पक्षियोंके पक्षोंमें सहित होकर भी उत्तम पत्तों तथा नवीन कोपलोसे सहित था (अक्षीव च कुञ्जञ्चेत्यक्षीवकुञ्जं, ती राति ददानीत्यक्षीवकुञ्जरम् अथवा 'अक्षीवाणा गोभाञ्जनाना कुञ्ज लनागृह् राति ददाति', 'सामुद्र यन्तु लवणमक्षीव वगिर च तन्' 'कुञ्जो दन्तेऽपि न म्रियाम्' 'गोभाञ्जने शिशुनीक्षणगन्धकाक्षीवमोचका इति सर्वत्रामर) ॥७३॥ उस पर्वतके वनमें कही-कहीपर फटे हुए बाँसोंके भीतरमें निकलकर चारों ओर फैले हुए मोतियोंमें ऐसा जान पड़ता था मानो वनलक्ष्मियाँ ही दाँतोंकी किरणें फैलाती हुई हँस रही हो ॥७४॥ गुफाओंके द्वारोंमें निकलती हुई झगनोंकी गम्भीर प्रतिध्वनियोंसे वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो अपनी महिमाके कारण कुलाचलोके साथ स्पर्धा करता हुआ गरज ही रहा हो ॥७५॥ वह पर्वत ऊँचे नीचे प्रदेशोंसे, अनेक रंगकी धातुओंसे और हरिणोंके अचिन्तनीय वर्णोंसे प्रकट रूप ही एक विचित्र प्रकारका आकार धारण कर रहा था ॥७६॥ उस पर्वतके वनोमें रात्रि प्रारम्भ होनेके समय अनेक प्रकारकी औपधियाँ प्रकाशमान होने लगती थी जो कि ऐसी जान पड़ती थी मानो देवताओंने अन्धकारको नष्ट करनेवाले दीपक ही जलाकर लटका दिये हो ॥७७॥ कही-कहीपर उस पर्वतके समीपका प्रदेश, सिंहोंके द्वारा फाड़े हुए हाथियोंके मस्तकोंसे उछलकर पड़े हुए मोतियोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो बिखरे हुए फूलोंकी गोभा ही धारण कर रहा हो ॥७८॥ जो वायुसे हिलते हुए किनारेके वृक्षोंसे बुलाता हुआ-सा जान पड़ता था ऐसे अपनेमें आसक्त उस महापर्वतको दूरसे ही देखते हुए चक्रवर्ती भरत उसपर जा पहुँचे । ॥७९॥ वहाँ जाकर उन्होंने उस पर्वतके वनोमें रहनेवाले झुण्डके झुण्ड भील और हाथी देखे । वे भील मेघोंके समान काले थे और धनुषोंके बाँसोंको ऊँचा उठाकर कन्धोंपर रखे हुए थे तथा हाथी भी मेघोंके समान काले थे और धनुषके समान ऊँची उठी हुई पीठकी हड्डीको धारण किये हुए थे ॥८०॥ उस पर्वतके किनारेपर उन्होंने चंचल मछलियाँ ही जिनके नेत्र हैं और बोलते हुए पक्षियोंके शब्द ही जिनके मनोहर शब्द हैं ऐसी उस विन्ध्याचलकी प्यारी स्त्रियोंके समान नदीरूपी स्त्रियोंको बड़ी ही उत्कण्ठके साथ

१ स्फुरदन्ताशु-ल० । २ व्यक्त । ३ गैरिकादिभि । ४ उद्भूता । ५ -च्छ्वलत-ल०, द० । ६ पुष्पोपहार-गोभाम् । ७ अनवरतम् । ८ सममूहान् । ९ उद्गतधनुषो वेणून् । उद्गतधनुराकारपृष्ठस्थाञ्च । १० पर्वतमानी । ११ विहगध्वनिरेवाव्यक्तवाचो यासा ता । -मुन्मना ल०, द० ।

भाति य शिखरैस्तुङ्गैर्दूरयावतनिश्चरैः । सप्तार्कैर्विमानैर्धैरिन्द्रमायय सश्रित ॥६६॥
 य पूर्वापरकोटिभ्यो विगाह्याम्बुनिधिं स्थित । नूनं दावत्रयात् सपथ्यममुना प्रचिक्रीपतिं ॥६७॥
 नयन्ति निम्नरा यस्य शश्वत्पुष्टिं तद्गुमान् । स्तम्भादाश्रयिण पोल्या प्रसृणतीव शसितुम् ॥६८॥
 तन्मध्यपुत्रपाशागस्तलितोच्चलितास्मसः । नदाग्रधू कृतज्वान मित्ररहमतीव य ॥६९॥
 वनामोगमपयन्त यस्य दग्धुमिवायम । शृगुपातय^१ दावाग्निं शिखराभ्यधिराहति ॥७०॥
 जलहावपीतानि यः कृगनि वनेचर । चाभाकरमयानाव लक्ष्यन्त^२ पुचिं सन्निर्या ॥७१॥
 समातङ्ग^३ वन यस्य समुज्ज्वपरिग्रहम् । विजाति^४ कण्ठाकीर्णं वचिद्वत्सेतिक्रप्ताम् ॥७२॥
 शीव^५ कुञ्जरयोगेऽपि वचिद्वत्सीनकुञ्जरम्^६ । विपन्नमपि^७ सत्पत्रपक्ष्य भाति यद्वनम् ॥७३॥

था, जिस प्रकार आप पृथुवंश अर्थात् विस्तृत-उत्कृष्ट वंश (कुल) को धारण करनेवाले थे उसी प्रकार वह विध्याचल भी पृथुवंश अर्थात् बड़े-बड़े वासक वृक्षाको धारण करनेवाला था, जिस प्रकार आप धृतायति अर्थात् उत्कृष्ट भविष्यको धारण करनेवाले थे उसी प्रकार वह विध्याचल भी धृतायति अर्थात् लम्बाईको धारण करनेवाला था, और जिस प्रकार आप दूसरोंके द्वारा अलघ्य अर्थात् अजेय थे उसी प्रकार वह विध्याचल भी दूसरोंके द्वारा अलघ्य अर्थात् उल्लघन न करने योग्य था ॥६५॥ जिनसे बहुत दूर तक फैलनेवाले झरने झर रहे ह ऐसे ऊँचे-ऊँचे शिखरों से वह पवत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पताकाआसहित अनेक विमानोंके समूह ही विभ्राम करनेके लिए उसपर ठहरे हों ॥६६॥ वह पवत अपने पूर्व और पश्चिम दिशाके दोनों कोणोंसे समुद्रमे प्रवेश कर खड़ा हुआ था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो दावानलके डरमे समुद्रमे साथ मित्रता ही करना चाहता हो ॥६७॥ उस विध्याचलके झरने 'स्वामीको अपने चरणोंको आश्रय लेनेवाले पुरुषोंका अवश्य ही पालन करना चाहिए मानो यह सूचित करनेके लिए ही अपने किनारेके वृक्षोंका सदा पालन-पोषण करते रहते थे ॥६८॥ वह पवत शब्द करते हुए निम्नरानोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो अपने किनारेके ऊँचे-नीचे पथरोंसे स्थलित होकर जिनका पानी ऊपरकी ओर उछल रहा है ऐसी नदीरूपी स्त्रियोंकी हसी ही कर रहा हो ॥६९॥ उस पर्वतके शिखरोंपर लगा हुआ दावानल ऐसा जान पड़ता था मानो उसके सोमारहित बहुत बड़े वनप्रदेशको जलानेके लिए असमर्थ हो ऊपरसे गिरकर आत्म घात करनेके लिए ही उसके शिखरोंपर चढ़ रहा हो ॥७०॥ आषाढ महीनेके समीप जलते हुए दावानलसे घिरे हुए उस पवतके शिखर वहाँके भीलोंको सुवर्णसे बने हुएके समान दिखाई देते थे ॥७१॥ उस पवतका वन कहीं-कहीं मातंग अर्थात् हाथियोंसे सहित था अथवा मातंग अथान् चाण्डालोंसे सहित था भुजग अर्थात् सर्पोंके परिवारसे युक्त था अथवा भुजग अर्थात् नौच (बिट-गुण्ड) लोगोंके परिवारसे युक्त था और अनेक प्रकारके काँटोंसे भरा हुआ था अथवा अनेक प्रकारके उपद्रवी लोगोंसे भरा हुआ था इसलिए वह बहुत ही दुःखदायी अथवा 'गोचनीय अवस्थाको धारण कर रहा था ॥७२॥ उस पवतपद-का वन क्षीबकुंजर अर्थात् मदोमत्त हाथियोंसे युक्त होकर भी अक्षीबकुंजर अर्थात् मदोमत्त हाथियोंसे रहित था और विपन्न अर्थात् पत्तोंमे रहित होकर भी सत्पत्रपल्लव अर्थात् पत्तों तथा कोपलोंसे सहित

१ इव । २ मित्रत्वम् । ३ समन्ध । ४ शृगुमिच्छति । ५ तटनिम्नोन्नत । ६ प्रपातपतनाय । प्रपातस्त्वतटो भग इव निजानात् । ७ शीघ्रम् । ८ भगवन् सचाण्डालम् । ९ सप्तप पक्षे सविट । १० पक्षिताति पक्ष नोच जानि । ११ सत्पत्रम् । १२ अक्षीबं मयु ठवणम् साम् यत् लक्षणमशीव वनिञ्च तत् । कुञ्जो ममगुहान्नी रातीति मनीति । १३ वीना पत्राणि पशा यस्मिन् सतीति अथवा विगताश्चम ।

स्फुटद्वेण्डरोन्मुक्तैर्यस्मैर्मुक्ताफलैः क्वचिन् । वनलक्ष्म्यो हयन्तीव स्फुटद्वन्ताशु^१ यद्रने ॥७४॥

गुहामुग्गफुरद्रीरनिर्जरप्रतिगच्छकैः । गर्जतीन् नृत्तस्पर्धो महिज्ञा य^२ कुलाचलैः ॥७५॥

स्फुटन्निन्नोन्नतोद्देशश्चित्रवर्णश्च धानुमि^३ । मृगापरैरतस्यैश्च चित्रान्तर विभर्ति य^४ ॥७६॥

ज्वलन्त्योपधयो यस्य वनान्तेषु तर्मासुग्रे । देवनाभिरिवोत्तिग्ना^५ द्वापिकाग्निमिरिच्छद^६ ॥७७॥

वचिन्मृगेन्द्रमिक्षेमकुम्भोच्चलितमौक्तिकै^७ । मनुष्यान्तस्थल वत्ते प्रकीर्णंमुमश्रियम्^८ ॥७८॥

य तमालोक्यन् दूरादाययाद महागिरिम् । आहयन्तमिवायक्त^९ मन्दन्तंमन्दन्तुमे^{१०} ॥७९॥

य तद्वनगतान् दूरादपश्यद् वनस्त्रुगन् । मयूथानुत्तनुर्वशान् किरानान् कग्निणोऽपि च ॥८०॥

सरिद्वध्वस्तदुत्पन्ने^{११} विवृत्तशफरीक्षणा । तद्रत्नमा द्वापयन् स्फुरद्भिग्नमन्मना^{१२} ॥८१॥

था इस प्रकार विरोधरूप होकर भी मुगोभित हो रहा था । भावार्थ - इस जल्लोकमे विरोधा-
भास अलकार है, विरोध ऊपर दिखाया जा चुका है अब उमका परिहार देखिए - वहाँका
वन क्षीवकुजर अर्थान् मदोन्मत्त हाथियोमे युक्त होनेपर भी अक्षीवकुजर अर्थात् समुद्री
नमक तथा हाथीदाँतोको देनेवाला था अथवा मोहाजनाके लतामण्डपोको प्रदान करनेवाला
था और विपत्र अर्थात् पक्षियोंके पखोमे सहित होकर भी उत्तम पत्तो तथा नवीन कोपलोसे
सहित था (अक्षीव च कुञ्जश्चेत्यक्षीवकुञ्जौ, ती राति ददातीत्यक्षीवकुञ्जरम् अथवा
'अक्षीवाणा गोभाञ्जनाना कुञ्ज लनागृह रानि ददाति', 'सामुद्र यत्तु लवणमक्षीवं
वगिर च तत्' 'कुञ्जो दन्तेऽपि न म्त्रियाम्' 'गोभाञ्जने शिश्रुतीक्ष्णगन्धकाक्षीवमोचका
इति सर्वत्रामर) ॥७३॥ उस पर्वतके वनमे कही-कहीपर फटे हुए बाँसोके भीतरमे निकल-
कर चारो ओर फैले हुए मोतियोसे ऐसा जान पड़ता था मानो वनलक्ष्मियाँ ही दाँतोकी किरणे
फैलाती हुई हैं रही हो ॥७४॥ गुफाओके द्वारोसे निकलती हुई झरनोकी गम्भीर प्रतिध्वनियो-
से वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो अपनी महिमाके कारण कुलाचलोके साथ स्पर्धा
करता हुआ गरज ही रहा हो ॥७५॥ वह पर्वत ऊँचे नीचे प्रदेशोसे, अनेक रंगकी धातुओसे
और हरिणोके अचिन्तनीय वर्णोसे प्रकट रूप ही एक विचित्र प्रकारका आकार धारण कर रहा
था ॥७६॥ उस पर्वतके वनोमे रात्रि प्रारम्भ होनेके समय अनेक प्रकारकी औपधियाँ प्रकाश-
मान होने लगती थी जो कि ऐसी जान पड़ती थी मानो देवताओने अन्धकारको नष्ट करनेवाले
दीपक ही जलाकर लटका दिये हो ॥७७॥ कही-कहीपर उस पर्वतके समीपका प्रदेश, सिंहोके
द्वारा फाड़े हुए हाथियोके मस्तकोसे उछलकर पड़े हुए मोतियोसे ऐसा जान पड़ता था मानो
बिखरे हुए फूलोकी शोभा ही धारण कर रहा हो ॥७८॥ जो वायुसे हिलते हुए किनारेके वृक्षो-
से बुलाता हुआ-सा जान पड़ता था ऐसे अपनेमे आसक्त उस महापर्वतको दूरसे ही देखते हुए
चक्रवर्ती भरत उसपर जा पहुँचे । ॥७९॥ वहाँ जाकर उन्होने उस पर्वतके वनोमे रहनेवाले
झुण्डके झुण्ड भील और हाथी देखे । वे भील मेघोके समान काले थे और धनुषोके बाँसोको
ऊँचा उठाकर कन्धोपर रखे हुए थे तथा हाथी भी मेघोके समान काले थे और धनुषके समान
ऊँची उठी हुई पीठकी हड्डीको धारण किये हुए थे ॥८०॥ उस पर्वतके किनारेपर उन्होने
चचल मछलियाँ ही जिनके नेत्र हैं और बोलते हुए पक्षियोंके शब्द ही जिनके मनोहर शब्द
हैं ऐसी उस विन्ध्याचलकी प्यारी स्त्रियोके समान नदीरूपी स्त्रियोको बड़ी ही उत्कण्ठाके साथ

१ स्फुरद्वन्ताशु-ल० । २ व्यक्त । ३ गैरिकादिभि । ४ उद्धृता । ५ -ज्वलन्त-ल०, द० । ६ पुष्पोपहार-
गोभाम् । ७ अनवरतम् । ८ ससमूहान् । ९ उद्गतधनुषो वेणून् । उद्गतधनुराकारपृष्ठस्याश्च । १० पर्वतमानौ ।
११ विहगध्वनिरेवाव्यक्तवाचो यासा ता । -मुन्मना ल०, द० ।

मध्येविध्यमयैक्षिष्ट^१ नमदां सरिदुत्तमाम् । प्रततामित्र तकार्तिमासमुद्रमपरिकाम् ॥२॥
 तरङ्गितपयोवेतां भुवो^२ वैणीमिवायताम् । पताकानिघ विन्ध्याद्रे^३ रापात्रिजयशसिनीम् ॥३॥
 सा धुनी बलसक्षोमादुद्धीनविहगावलि । विभोरुपागम बन्धुतोरणेव क्षण ध्यमात् ॥४॥
 नमदां^४ सत्यमधासीद्धमदा नृपयोपिताम् । धदुपौरुत्तरतास्ता क्षफरीमिरयद्वयत् ॥५॥
 तामुत्तीय जनक्षोमादुत्पत पतगावलिम् । बल विन्ध्योत्तरप्रस्थानाक्रामत् कुतुपास्थया^५ ॥६॥
 तस्यां^६ दक्षिणतोऽपश्यद् विन्ध्य^७ मुत्तरतोऽप्यसौ ।^८ द्विधाकृतमिवा मानमपयत् दिशोद्भयोः ॥७॥
 स्कन्धावारनिवेशोऽस्य नमदाममितोऽद्युतत् । प्रथिम्ना^९ विध्यमावेष्टय स्थितो विध्य इवापरः ॥८॥
^{१०} गङ्गागण्डोपलैरधैरश्ववक्त्रैश्च^{११} विद्रुते । स्कन्धावार स रिध्यश्च मिदां^{१२} नायापतुर्मिथ ॥९॥
 बलोपमुष्मनिःशेषफलपल्लवपादप । अपसूनलतावीरुद्रिभ्यो बध्यस्तदाभवत् ॥१०॥
 वैणवैस्तण्डुलैर्मुक्ताफलमिश्रै कृताचना । अस्पृष्ट^{१३} सैनिका स्वैर रम्या विध्याचलस्थली^{१४} ॥११॥

देखा ॥८१॥ तदनन्तर उन्होंने विध्याचलके मध्य भागमें समुद्र तक फैली हुई और किसी से न रुकनेवाली उसकी कीर्तिके समान नमदा नामकी उत्तम नदी देखी ॥८२॥ जिसके जल का प्रवाह अनेक लहरोसे भरा हुआ है ऐसी वह नमदा नदी पृथिवीरूपी स्त्रीकी लम्बी चौटी के समान जान पड़ती थी अथवा शेष सब पर्वतोंको जीत लनेकी सूचना करनेवाली विध्याचल की विजय-पताकाके समान मालूम होती थी ॥८३॥ सेनाके क्षोभसे जिसके ऊपर पक्षियोंकी पक्षियाँ उड़ रही है ऐसी वह नदी क्षण भरके लिए ऐसी जान पड़ती थी मानो उसने चक्रवर्ती के आनेपर तोरण ही बाँधे हों ॥८४॥ चूँकि वह नर्मदा नदी जलको पार करनेवाली रानियोंके लिए उनकी जाँघोंके पास मछलियोंके द्वारा धक्का देती थी इसलिए वह सचमुच ही उन्हें नमदा अर्थात् क्रीडा प्रदान करनेवाली हुई थी ॥८५॥ मनुष्योंके क्षोभसे जिसके पक्षियोंकी पक्षि ऊपर को उड़ रही है ऐसी उस नमदा नदीको पार कर उस सेनाने देहली समझकर विध्याचलके उत्तर की ओर आक्रमण किया ॥८६॥ वहाँ भरतने दक्षिण और उत्तर दोनों ही ओर विध्याचलको देखा, उस समय दोनों ओर दिखाई देनेवाला वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो अपने दो भाग कर दोनों दिशाओंको ही अपण कर रहा हो ॥८७॥ भरतकी सेनाका पड़ाव नमदा नदी के दोनों किनारोंपर था और वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अपने विस्तारसे विध्याचल को घेरकर कोई दूसरा विध्याचल ही ठहरा हो ॥८८॥ उस समय सेनाका पड़ाव और विध्याचल दोनों ही परस्परमें किसी भेद (विशेषता) को प्राप्त नहीं हो रहे थे क्योंकि जिस प्रकार सेनाके पड़ावमें हाथी थे उसी प्रकार विध्याचलमें भी हाथियोंके समान ही गण्डोपल अर्थात् बड़ी-बड़ी काली चट्टानें थी और सेनाके पड़ावमें जिस प्रकार अनेक छोटे इधर-उधर फिर रहे थे उसी प्रकार उस विध्याचलमें भी अनेक अश्ववक्त्र अर्थात् घोड़ोंके मुखके समान मुखवाले विनर जातिके देव इधर-उधर फिर रहे थे (कवि-सम्प्रदायमें किन्नरोंके मुखोंका वणन घोड़ोंके मुखोंके समान किया जाता है) ॥८९॥ सेनाने उस विध्याचलके समस्त फल, पत्ते और वृक्षाका उपभोग कर लिया था और लताओं तथा छोटे छोटे पौधोंको पुष्परहित कर दिया था इसलिए वह विध्याचल उस समय विध्याचल अर्थात् फल पुष्प आदिसे रहित हो गया था ॥९०॥ मोतियामें मिले हुए बाँसो चावलसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते हुए सैनिक लोगोंने वहाँ इच्छा

१-मयैक्षिष्ट अ० स ६० । २-प्रवणीम् । ३-नम क्रीडा ता दन्ताति नमदा । ४-ऊरुसमीपे । ५-यदपो हृत्पुत्तरस्ती-अ० । ५ पत्नी । ६-देवोति बुद्ध्या । ७-नमनाया । ८-दक्षिणस्या निशि स्थित । ९-उत्तरस्यां दिशि स्थितम् । १०-विध्याचलम् नमनाविध्याचलमध्ये विमिश्र द्विधाकृत्य गतेति भाव । ११-पृथुत्वेन । १२-गङ्गा । १३-विद्रुते । १४-भेम् । १५-निवसन्ति स्म । १६-स्थिति क ।

मध्येविन्ध्यमथैक्षिष्ट^१ नमदा सरिदुत्तमाम् । प्रततामिव तत्कार्तिमासमुद्रमपरिकाम् ॥८१॥
 तरङ्गितपयोवेगां मुखो^२ वेणीमिवायताम् । पताकानिब विन्ध्याङ्गे^३ शपात्रिजयशशिनीम् ॥८२॥
 सा शुनी बलसक्षोमादुद्धीनविहगावलि । विभोरुपागम वद्धतोरणव क्षण क्षयमात् ॥८३॥
 नमदा^४ सख्यमेवासीन्नमदा नृपयोपिताम् । यदुपोरुत्तरन्तीस्ता^५ गङ्गासीमिषदृश्यत् ॥८४॥
 तामुत्तीथ जनक्षोमादुत्पत पतगावलिम्^६ । बलं विन्ध्योत्तरप्रस्थानाक्रामत् कुतुपास्थया^७ ॥८५॥
 तस्यां^८ दक्षिणतोऽपश्यद् विन्ध्यं मुत्तरतोऽप्यसौ ।^९ द्विधाकृतमिवा-मानमपयत्त दिशोऽहयो ॥८६॥
 स्कन्धावारनिवेशोऽस्य नमदासमितोऽद्युतत् । प्रथिम्ना^{१०} विन्ध्यमावेष्टय स्थितो विन्ध्य इवापर ॥८७॥
^{११} गङ्गागण्डोपलैरश्वैश्च वक्त्रैश्च विद्रुतैः । स्कन्धावार स विन्ध्यश्च मिदा^{१२} भागापतुर्मिथ ॥८८॥
 बलीपसुननि-शेषफलपल्लवपादप । अप्रसूनलतावारुन्धि-धो व-ध्यस्तदामवत् ॥८९॥
 वैणवैस्तण्डुलैमुक्ताफलमिश्रैः शृताचना । मध्यपु^{१३} सैनिका स्वैर रम्या विन्ध्याचलस्थला^{१४} ॥९०॥

देखा ॥८१॥ तदनन्तर उन्होंने विन्ध्याचलके मध्य भागमें समुद्र तक फैली हुई और किसी से न रूकनेवाली उसकी कीर्तिके समान नमदा नामकी उत्तम नदी देखी ॥८२॥ जिसके जल का प्रवाह अनेक लहरोसे भरा हुआ है ऐसी वह नमदा नदी पृथिवीरूपी स्त्रीकी लम्बी चौड़ी के समान जान पड़ती थी अथवा शेष सब पर्वतोंको जीत लेनेकी सूचना करनेवाली विन्ध्याचल की विजय पताकाके समान मालूम होती थी ॥८३॥ सेनाके क्षोभसे जिसके ऊपर पक्षियोंकी पक्षियाँ उड़ रही हैं ऐसी वह नदी क्षण भरके लिए ऐसी जान पड़ती थी मानो उसने चक्रवर्ती के आनेपर तोरण ही बाँधे हो ॥८४॥ चूँकि वह नमदा नदी जलको पार करनेवाली रानियोंके लिए उनकी जाँघोंके पास मछलियोंके द्वारा घबका देती थी इसलिए वह सचमुच ही उन्हें नमदा अर्थात् क्रीडा प्रदान करनेवाली हुई थी ॥८५॥ मनुष्योंके क्षोभसे जिसके पक्षियोंकी पक्षि ऊपर को उड़ रही है ऐसी उस नमदा नदीको पार कर उस सेनाने देहली समझकर विन्ध्याचलके उत्तर की ओर आक्रमण किया ॥८६॥ वहाँ भरतने दक्षिण और उत्तर दोनों ही ओर विन्ध्याचलको देखा उस समय दोनों ओर दिखाई देनेवाला वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो अपने दो भाग कर दोनों दिशाओंको ही अपण कर रहा हो ॥८७॥ भरतकी सेनाका पड़ाव नमदा नदी के दोनों किनारोंपर था और वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अपने विस्तारसे विन्ध्याचल को घेरकर कोई दूसरा विन्ध्याचल ही ठहरा हो ॥८८॥ उस समय सेनाका पड़ाव और विन्ध्याचल दोनों ही परस्परम किसी भेद (विशेषता) को प्राप्त नहीं हो रहे थे क्योंकि जिस प्रकार सेनाक पड़ावमें हाथी थे उसी प्रकार विन्ध्याचलमें भी हाथियोंके समान ही गण्डोपल अर्थात् बड़ी-बड़ी काली चट्टानें थी और सेनाक पड़ावमें जिस प्रकार अनेक घोड़े इधर-उधर फिर रहे थे उसी प्रकार उस विन्ध्याचलमें भी अनेक अश्ववक्त्र अर्थात् घोड़ोंके मुखके समान मुखवाल किन्नर जानिके देव इधर-उधर फिर रहे थे (कवि-सम्प्रदायमें किन्नरोंके मुखोंका वणन घोड़ोंके मुखाक समान किया जाता है) ॥८९॥ सेनाने उस विन्ध्याचलके समस्त फल, पत्ते और वृक्षाका उपभोग कर लिया था और लताओ तथा छोटे-छोटे पौधोंको पुष्परहित कर दिया था इसलिए वह विन्ध्याचल उस समय व-ध्याचल अर्थात् फल-पुष्प आदिसे रहित हो गया था ॥९०॥ मोतियोम मिल हुए बाँसी चाबलसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते हुए सैनिक लोगोंने वहाँ इच्छा

१-मगीष्ट म० स ६० । २ प्रवणीम् । ३ नम क्रीडा या दगातीति नमः । ४ ऊहसमीपे । यन्पो
 हपत्तरन्ती-ल० । ५ परी । ६ देवलीति बुद्ध्या । ७ नमनाया । ८ दक्षिणस्या ऋषि स्थित । ९ उत्तरस्या
 ऋषि स्थितम् । १० विन्ध्याचलम नमःविन्ध्याचलमध्य विभिन्न विधाकृत्य गतति भाव । ११ पृथुत्वेन ।
 १२ मग्ना । १३ विप्रैः । १४ भेदम् । १५ निवसन्ति स्म । १६-स्थिति ल० ।

सुराष्ट्रेष्वजय-साम्रिभिराजमिवाधिकृतम् । यया प्रदक्षिणीकृत्य भाविर्तीधमनुस्मरन् ॥१०२॥
 क्षौमांशुकदुहलैश्च रीतपट्टाम्बररपि । पटामर्दश्च^१ दशोसा ददन्नुस्तमुपायन ॥१०३॥
 काश्चित् समानदानान्या काश्चिद्वि^२ सम्मन्त्रापितं । प्रसन्नैर्वाक्षित काश्चित् भूपाविमुरजयत् ॥१०४॥
 गजप्रव^३ कर्जा यश्चै रत्नैरपि वृषगिर्ध^४ । तमाननुनृपास्तुष्टा स्वराष्ट्रोपगत प्रभुम् ॥१०५॥
 तरस्विमिव पुमेषावय सखगुणान्वितं । तुरगमैस्तुष्टा^५ षैविभुमाराधयन् पर ॥१०६॥
 कश्चित्काश्चोत्तमाह्वानैर्तिलारट्टसै^६ चव^७ । वानायुजं^८ सगाधारार्धपर्यं रपि वाणिमि ॥१०७॥
 कुलोपकुलसमूहैर्नानादिपुत्राचारिमिः । आजानेयै^९ समग्रान्नै प्रसुमेक्षत पायिवा ॥१०८॥
 प्रविप्रयाणमित्यस्य रत्नलामो न कवलम् । यशोलाभश्च दु साध्यान् थलात् साधयती नृपान् ॥१०९॥
 जलस्थलपथान् विष्यत्सारूप्य जयसाधनै । प्रत्यन्तपालभूपालानजयसत्त्वमूर्पति ॥११०॥
 त्रिलङ्घ्य विविधान् देशानरण्यानी सरिद्रुगिरीन् । तथ तत्र^{१०} विमोराज्ञासेनानीराश्वशुश्रुवन्^{११} ॥१११॥
 प्राध्याजिव स भूपालान् प्रतीच्यानप्यनुकमान् । आश्वयन् हस्ततन्मानघन प्रापापराम्बुधिम् ॥११२॥

सेवा कराते हुए अथवा उनसे प्रीतिपूर्वक साक्षात्कार (मुलाकान) करते हुए, चक्रवर्ती भरत गिरनार पर्वतक मन्तोहर प्रदेशोम जा पहुँचे ॥१०१॥ भविष्यत कालम होनेवाले तीर्थ कर नेमिनाथका स्मरण करते हुए वे चक्रवर्ती सोरठ देशम सुमेरु पर्वतके समान ऊँचे गिरनार पर्वतकी प्रदक्षिणा कर आगे बढ़े ॥१०२॥ उन उन देशोंके राजाओंने उत्तम उत्तम रेशमी वस्त्र, चायना सिल्क तथा और भी अनेक प्रकारके अच्छे-अच्छे वस्त्र भेंट देकर महाराज भरतक दर्शन किये ॥१०३॥ भरतने कितने ही राजाओंको समान तथा दानसे, कितने ही राजाओंको विश्वास तथा स्नेहपूर्ण वात्सीयतसे और कितने ही राजाओंको प्रसन्नतापूर्ण दृष्टिसे अनुरक्त किया था ॥१०४॥ कितने ही राजाओंने सन्तुष्ट होकर उत्तम हाथी, कुलीन घोड़े और अनेक प्रकारके रत्नोंसे अपने देशम आये हुए महाराज भरतको पूजा की थी-॥१०५॥ अन्य कितने ही राजाओंने वेगसे चलनेवाले, तथा शरीर, बुद्धि अवस्था और बल आदि गुणोंसे सहित तुष्टक आदि देशोमे उत्पन्न हुए घोड़ोंके द्वारा भरतकी सेवा की ॥१०६॥ कितने ही राजाओंने उसी देशके घोड़े घोड़ियोंसे उत्पन्न हुए तथा एक देशके घोड़े और अन्य देशकी घोड़ियोंसे उदरन्न हुए नाना दिशाओं और देशोंमें सचार करनेवाले कुलीन और पूर्ण अगोपाग धारण करनेवाले काम्बोज, बाल्हीक, ततिल, आरट्ट, सैघव, वानायुज, गान्धार और वापि देशम उत्पन्न हुए घोड़े भेंट कर महाराजक दर्शन किये थे ॥१०७-१०८॥ इस प्रकार भरत को प्रत्येक पहावपर केवल रत्नोंकी ही प्राप्ति नहीं हुई थी कि तु अपने पराक्रमसे बड़े-बड़े दु साध्य (कठिनाइयोंसे जीते जाने योग्य) राजाओंको जीत लनेसे यशकी भी प्राप्ति हुई थी ॥१०९॥ भरतक सनापतिने अपनी विजयी सेनाओंके द्वारा चारो ओरस जल तथा स्थलके माग रोककर पहाड़ी राजाओंको जीता ॥११०॥ सेनापतिने अनेक प्रकारके देश, बड़े बड़े जंगल, नदियाँ और पर्वत लल्लंघन कर सज जगह शीघ्र ही सम्राट भरतकी आज्ञा स्थापित की ॥१११॥ इस प्रकार चक्रवर्ती क्रम क्रमसे पूर्व दिशाके राजाओंका समान पश्चिम दिशाके राजाओंको भी बग करता हुआ तथा उसक अभिसान और घतका हरण करता हुआ पश्चिम समुद्रकी ओर

१ गूजवन्धय पटा । २ रत्न । ३ येष । ४ वानाविध । ५ तुरङ्गैर्गजरायाध । ६ ततिल आरट्ट मिश्रुङ्ग । ७ वानाध्वज जान । ८ वाणिमन्त्र पाणय द० वाणय ल० । ९ कुलीन । आजानया कुलाना रय । १० यमिजानान जातवन्धिरिव । १० प्रभा- ल । ११ आवयति स्म ।

प्रभासमजयत्तत्र प्रभास व्यन्तराधिपम् । प्रभासमूहमकस्य स्वभासा तजयत्प्रभु ॥१२३॥
जयधाराशकरीजाल^२ मुक्तामाल ततोऽमरात् । खेभ सान्तानिका^३ मालां हसमालां च चक्रमृत् ॥१२४॥
इति पुण्योदयाजिष्णुजगामरसत्तमान् । तस्मात् पुण्यधन प्राप्ता शम्भुदजयतो जितम् ॥१२५॥

शार्दूलविक्रीडितम्

स्वर्ग^१ सुहृत्तुरङ्गसाधनखुरक्षुण्णा^२ न्महास्थण्डिलाद्
उद्भूतैरणर^३ णुमिजलनिधे कालुष्यमापादयत् ।
सिन्धुद्वारमुपत्य तत्र विधिना जित्वा प्रभासामर
तस्मात्पारधनायवापदतुलश्रीरग्रणीश्चक्रिणाम् ॥१२६॥
लक्ष्म्यान्दोल^४ लतामिवोरसि दधत् संतानपुष्पस्रन
मुक्ताहममयन^५ जालयुगलेनालकृतोच्चैस्तनु ।
लक्ष्म्युद्राह^६ गृहादिवाप्रतिमयो^७ निवजिधेरम्भसा
लक्ष्मीशो रुरुचे भृश नववरच्छायार्थ^८ परामुद्रहन् ॥१२७॥

जिसने दिव्य अस्त्र धारण किये हैं ऐसे भरतने पहलेक समान रथपर चढ़कर गोष्पदके समान तुच्छ समझते हुए लवण समुद्रम प्रवेश किया ॥१२२॥ अपनी प्रभासे सूयकी प्रभाके समूहको तिरस्कृत करते हुए भरतने वहाँ जाकर अतिशय कान्तिमान् प्रभास नामके व्यन्तरोंके स्वामी को जीता ॥१२३॥ तदनन्तर चक्रवर्तिने उस प्रभासदेवसे जयलक्ष्मीरूपी मछलीको पकड़ने के लिए जालके समान मोतियोंका जाल कल्पवृक्षक फूलोंकी माला और सुवर्णका जाल भट स्वरूप प्राप्त किये ॥१२४॥ इस प्रकार विजयी भरतने अपने पुण्यकर्मके उदयसे अच्छे-अच्छ देवोंको भी जीता इसलिए हे पण्डितजन तुम भी उत्कृष्ट फल देनेवाले पुण्यरूपी धनका सदा उपाजन करो ॥१२५॥ अनुपम लक्ष्मीके धारक भरत, उछलते हुए बड़े-बड़े घोड़ोंकी सेना क खुरोंसे खुदी हुई पथिवीसे उडती हुई रथकी धूलिक द्वारा समुद्रको कल्पता प्राप्त कराते हुए (गेंदला करते हुए) सिन्धुद्वारपर पहुँचे और वहाँ उन्होंने विधिपूर्वक प्रभास नामके देवको जीतकर उसमें सारभूत धन प्राप्त किया ॥१२६॥ जो अपने वक्ष स्थलपर लक्ष्मीक झूला की लताक समान कल्पवृक्षक फूलोंकी माला धारण किये हुए है, जिसका ऊँचा शरीर मोती आर सुवर्णके बने हुए दो जालास अलङ्कृत हो रहा है, जो निभय है और लक्ष्मीका स्वामी है ऐसा यह भरत लक्ष्मीक विवाहगृहके समान समुद्रसे निकल रहा है और नवीन वरकी उत्कृष्ट कान्तिको धारण करता हुआ अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥१२७॥ इस प्रकार समुद्र-पयन्त पूव दिशाक राजाआधो बजयन्त पवत तत्र दक्षिण दिशाक राजाओको और पश्चिम समुद्र

१ प्रहृष्टगतिम् । २ जयधारेव गङ्गा मसी तस्या जालम पाश । ३ कल्पवृक्षजानाम् । ४ वल्लत् । ५ चूर्णी वृत्तान् । ६ गङ्गाशायप्रदेशान् । ७ सत्परायणम् । ८ मयान्यन् । ९ लक्ष्म्या प्रडलोलिकारजम् ।
१ माण्यधन । ११ विवाह । १२ मयर्हित । १३ नूतनवरणाभाम् ।

को सीमा तक पश्चिम दिशाओं को जानकर दिशान्त्रोके नमान समस्त गजाओंमें नमस्कार करने
हूँ तथा देवोंको भी कम्पायमान करने हूँ। गजाधिगज भग्नने समस्त दिशाओंको दायुगहित
कर दिया ॥१२८॥ पुण्यमें सबको विजय करनेवाली चक्रवर्तीकी लक्ष्मी मिलती है, इन्द्रकी
दिव्य लक्ष्मी भी पुण्यमें मिलती है, पुण्यमें ही तीर्थंकरकी लक्ष्मी प्राप्त होती है और परम
कल्याणरूप मोक्षलक्ष्मी भी पुण्यमें ही मिलती है। इस प्रकार यह जीव पुण्यमें ही चाहे प्रकाशकी
लक्ष्मीका पात्र होता है, इसलिए हे सुधी जन । तुम लोग भी जिनैन्द्र भगवान्‌के पवित्र
आगमके अनुसार पुण्यका उपार्जन करो ॥१२९॥

इस प्रकार आर्य नाममें प्रसिद्ध भगवज्जिनमेताचार्यप्रणीत त्रिषष्टिरक्षग मन्त्रावलीमन्त्रके
भाषानुवादमें पश्चिममन्त्रके द्वारका विजय वर्गन करनेवाला
नीमवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

एकत्रिंशत्तमं पर्व

कावरीमथ निर्वेतुमाशामभ्युद्यतो विभु । प्रतस्थे वाजिभूयिष्ठे साधने स्थगयन् दिश ॥१॥
 धारितैर्गतैर्मुत्साहैः सत्त्व शिक्षां च छाषवै । आतिं धपुगणैस्तशास्तदाश्चानां विजशिरे^१ ॥२॥
 धौरित गतिचातुर्थ्यं साहस्तु पराक्रम । शिक्षाविनयसपत्ता रामच्छाया धपुगुण ॥३॥
 पुरोभागा निवास्यतु^२ पद्माङ्गागै^३ कृतोद्यमा । प्रथयुर्वृतमभ्यानमभ्यनीनां स्तुरङ्गमा ॥४॥
 खुरोद्भूतान् महारेणून् स्वाङ्गस्पर्शमयादिषु । केचिन् व्यती^४ युरभ्यध्व^५ महाश्वा कृतविक्रमा ॥५॥
 छायात्मान^६ सहोद्यान^७ कचिरसोद्भुमिवाक्षमा । खुरैरघट्टयन् बाहा स तु सौम्याक्षवाधित^८ ॥६॥
 केचिद्वृत्तमिवातेनुमहारङ्गे तुरङ्गमा । क्रमैश्चट्टक्रमणारम्भ^९ कृतमड्डुकवादनै^{१०} ॥७॥
 स्थिरप्रकृतिसचानामश्चानां चलताऽभवत् । प्रचलत्खुरसङ्क्षुण्णमुखां गतिषु केवलम् ॥८॥
 कोटयोऽष्टादशास्य स्युर्बाजिना वायुरहसाम्^{११} । आजानेयप्रधानानां^{१२} योग्यानां चक्रवर्तिनः ॥९॥
 रुद्धरोधोवनाक्षुण्णव्यतटमूर्हासयन्त्यप । सिन्धो^{१३} प्रतीपता^{१४} भजे प्रयाती सा पताकिनी ॥१०॥

अथानन्तर-उत्तर दिशाको जीतनेके लिए उद्यत हुए चक्रवर्ती भरत जिनमें अनेक घोड़े ह ऐसी सेनाओंसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए निकले ॥१॥ उस समय घोड़ोंके गुण जानने वाले लोगोंने धौरित नामकी गतिसे उनकी चाल जानी, उत्साहसे उनका बल जाना, स्फूर्तिके साथ हलकी चाल चलनेसे उनकी शिक्षा जानी और शरीरके गुणोंसे उनको जाति जानी ॥२॥ गतिकी चतुराईको धौरित उत्साहको पराक्रम विनयको शिक्षा और रोमोकी कान्तिको शरीरका गुण कहते हैं ॥३॥ अच्छी तरह मार्ग तय करनेवाल घोड़े मागम बहुत जल्दी-जल्दी जा रहे थे और ऐस जान पड़ते थे मानो अपने पीछेके भागोसे अगले भागोंको उल्लंघन ही करना चाहते हों ॥४॥ अपने खुरोसे उड़ती हुई पृथिवीकी धूलिका कहीं हमारे ही शरीरके साथ स्पर्श न हो जावे इस भयसे ही मानो अनेक बड़े-बड़े घोड़े अपना पराक्रम प्रकट करते हुए मागमें उस धूलिको उल्लंघित कर रहे थे ॥५॥ कितने ही घोड़े अपनी छायाका भी अपने साथ चलना नहीं सह सकते थे इसलिए ही मानो वे उसे अपने खुरोंसे तोड़ रहे थे परन्तु सूक्ष्म होनेसे उस छायाको कुछ भी बाधा नहीं होती थी ॥६॥ कितने ही घोड़े ऐसे जान पड़ते थे मानो चलनेके प्रारम्भमें बजते हुए नगाड़े आदि वाजोंके साथ-साथ अपने पैरोसे पृथ्वीरूपी रगभूमिपर नृत्य ही कर रहे हा ॥७॥ जिनका स्वभाव और पराक्रम स्थिर है परन्तु जिन्होंने अपने चलते हुए खुरोंसे पृथ्वी खोद डाली है ऐसे घोड़ोंकी चंचलता केवल चलनेमे ही थी अथत्र नहीं थी ॥८॥ जिनका वेग वायुके समान है जो उत्तम जातिके हैं और जो योग्य ह ऐसे चक्रवर्तीके घोड़ों की सग्या अठारह करोड़ थी ॥९॥ जिसने किनारेके वन रोक लिये हैं जिसने किनारेकी पृथिवी

१ धाराभि । आस्कन्दिन धौरितक रचितं वलित प्लतम् । गतयोऽभू पञ्च धारा । पदस्तप्लत्योत्प्लत्य गमनम् आस्कन्दिनम् । २ द्वाकगिहिक्रोडनकुलगत सदृशम् धौरितकम् । मध्यमवगेन चक्रवद् भ्रमणम रचितम् । ३ धूमिगलितम वलितम् । मृगसाम्यन रुद्धर्षं प्लतम् । आस्कन्दिताग्नि पञ्चपन्नि धाराशब्दवाच्यानि । धारत्यन्तगनि मा य आस्कन्दिताग्निभेदेन पञ्चविधा भवतीत्यर्थ । ४ गमनम् । ५ बुबुधिर । ६ पूर्वकायान् । ७ भतिगन्तुम् । ८ अपरकायै । ९ अश्वनि समर्था । १० अतीत्यागच्छन् । ११ मार्ग । १२ छायास्वरूपस्य । १३ छायात्मा । १४ ग्राघ्रगमनारम्भे । १५ वाचविषा । १६ पवनवगिनाम् । १७ जात्यश्वमुखानाम् । १८ विघनघा । १९ प्रतिबुलनाम् ।

प्रभोऽग्निमानुषा मित्रं मेन्वाग्निनायवान । तत्पर्वतमन्त्रमाग्निप्रेते सुगन्धं ॥११॥
 गङ्गावर्णनयोपवासेनायां समुत्पन्नताम । तत्पर्वतमन्त्रमाग्निप्रेते सुगन्धं ॥१२॥
 अनुमित्रं गुप्तं मेन्वाग्निनायवान । तत्पर्वतमन्त्रमाग्निप्रेते सुगन्धं ॥१३॥
 स मित्रमिण्डिमामनयत्पर्वतमन्त्रं । तत्पर्वतमन्त्रमाग्निप्रेते सुगन्धं ॥१४॥
 स दैत्यं पर्वतात्तत्पर्वतमन्त्रमाग्निप्रेते सुगन्धं ॥१५॥
 सोऽञ्जलं त्रिभुवोपान्तनिपातितमग्निप्रेते सुगन्धं ॥१६॥
 स नगो नानुत्पन्नमग्निप्रेते सुगन्धं ॥१७॥
 रजो विनायकं पौत्रं पर्वतं पर्वतो यनम । सोऽञ्जलं त्रिभुवोपान्तनिपातितमग्निप्रेते सुगन्धं ॥१८॥
 त्रिमित्रं पर्वतात्तत्पर्वतमन्त्रमाग्निप्रेते सुगन्धं ॥१९॥
 ११ पितृन्तोरणासुर्दन्ताय यनोऽग्निम । नियन्त्रितं १२ यत्पर्वतमन्त्रमाग्निप्रेते सुगन्धं ॥२०॥
 यनोपान्तमुत्र मेन्वाग्निनायवान । तत्पर्वतमन्त्रमाग्निप्रेते सुगन्धं ॥२१॥

तोड़ दी है और जो जलको रग करने की जानी है ऐसी चल्ती हुई वह मेना मानो सिन्धु नदीके साथ शत्रुना ही धारण कर रही थी । भावार्थ—वह मेना सिन्धु नदीको जानि पहचानी हुई जा रही थी ॥१०॥ वह सिन्धु नदी मानो चक्रवर्ती भरतके आनेसे मनुष्य होकर ही मुख देनेवाली अपनी लहंगेके पवनसे धीरे-धीरे मेनाके मुख लोगोंकी सेवा कर रही थी ॥११॥ जो गंगा नदीके समस्त वर्णनसे सहित है और फेनोने भरी हुई है ऐसी गामने आयी हुई सिन्धु नदीको देखते हुए निधिपति—भरत उत्तर दिशाको जीती हुईके समान गमजने लगे थे ॥१२॥ सिन्धु नदीके किनारे-किनारे अपनी मेनाओंके द्वारा उत्तर दिशाके राजाओंको वश करने हुए कुलकर—भरत धीरे-धीरे विजयार्थ पर्वतके समीप जा पहुँचे ॥१३॥ जो मणियोंके बने हुए नीं शिखरोसे बहुत विशाल मालूम होता था ऐसा वह चाँदीका विजयार्थ पर्वत भरतने दूरसे ऐसा देखा मानो शिखरोके वहानेसे अर्ध ही धारण कर रहा हो ॥१४॥ जिनकी शाखाओंके अग्रभागरूपी भुजाएँ वायुसे हिल रही हैं ऐसे वृक्षोंसे वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो दूरसे सन्मुख आये हुए विजयी भरतको बुला ही रहा हो ॥१५॥ शिखरोके समीपसे ही पड़ते झरनोंके जलसे वह पर्वत ऐसा अच्छा सुशोभित हो रहा था मानो चक्रवर्ती भरतके आनेपर उनके लिए पाद्य अर्थात् पेर धोनेका जल ही देना चाहता हो ॥१६॥ वह पर्वत पुन्नाग, नागकेसर और मुपारी आदिके वृक्षोंसे भरे हुए तथा मनोहर अपने किनारेके वनके प्रदेशोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो विश्राम करनेके लिए स्वामी भरतको बुला ही रहा हो ॥१७॥ जो अपने वनके चारों ओर वायुसे उड़ते हुए फूलोंकी परागका चँदोवा तान रहा है और शब्द करते हुए कोकिल ही जिसके नगाडे हैं ऐसा वह पर्वत भरतका सन्मान करनेके लिए सामने खड़े हुए के समान जान पड़ता था ॥१८॥ इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? इतना ही बहुत है कि वह पर्वत बड़े प्रेमसे प्रकट किये हुए सत्कारके सब साधनोंसे दिग्विजय करनेके लिए उद्यत हुए भरतका मानो सत्कार ही कर रहा था ॥१९॥ जिसके चारों ओर तोरण बँधे हुए हैं ऐसी वनकी ऊँची वेदीको उल्लंघन कर सेनापतियोंके द्वारा नियन्त्रित की हुई (वश की हुई) सेनाने वनके भीतर प्रवेश किया ॥२०॥ समस्त दिशाओंमें फैलनेवाली सेनाओंसे उस वनके समीप

१ सुखस्याहरणम् स्वीकारो येभ्यः (पञ्चमी) स्ते तैः, सुखाकरैरित्यर्थः । २ फेनाढ्याम् प०, ल० । ३ विशाल । ४ रजतमय । ५ मविधातुमिच्छुः । ६ अभात् । ७ सकुलैः, ल०, प०, द०, स०, अ०, इ० । ८ वस्तुम् । ९ विस्तारयन् । १० अभिमुखमुपिपत्तन् । ११ विभक्त अ०, प०, द०, स०, ल०, इ० । १२ नियमितम् ।

अभूतपूवमुद्भूतप्रतिध्वान् बलध्वनिम् । भ्रुत्वा ^१बलवदुरग्रेषु^२स्तिथञ्चो घनगोचरा ॥२२॥
 बलक्षोमादिभो^३ निर्यन् बलक्षोऽमाद्^४ वनान्तरात् । सुरेम^५ सुविमक्ताङ्ग^६ सुरम^७ इव वप्मणा ॥२३॥
 प्रबोधजृम्भणादास्य व्याददौ^८ किल केमरी । न मऽस्त्य^९ तमयं किञ्चिन् पश्यतस्तीव दशयन् ॥२४॥
 शरमो रमसाद्^{१०}धमुत्प योत्तानित पतन् । सुस्य एव परै^{११} पृष्टै^{१२}रभूक्षिर्मानृकौशलत्^{१३} ॥२५॥
^{१४}विषाणोल्लिखितस्कन्धो रुषिताऽऽताम्रितक्षण^{१५} । खुरोस्पातावनि सैन्यैदृशे महिषो विभी^{१६} ॥२६॥
 चमुरवध्रवोद्भूत^{१७}साध्वसा क्षुद्रका मृगा । विजयाद्गुहोत्सगान् युगशय^{१८} इवाश्रयन् ॥२७॥
 अनुहुता^{१९} मृगा शवै पलायां चत्रिरेऽमित । विग्रस्ता वेपमानाङ्गा^{२०} मिक्तामयरसैरिव ॥२८॥
 वराहाररति^{२१} मुक्त्वा वराहा मुक्पल्लवा^{२२} । विनेपु^{२३} विस्फुट्यथा^{२४} अभूक्षोमादितोऽमुत् ॥२९॥
^{२५}वरणावरणास्तस्थु करिणोऽन्य भयहुता । हरिणा हरिणा^{२६} रतिगुहा^{२७}तानधिनिश्चियरे ॥३०॥

की समस्त भूमियाँ भर गयी थीं उनके पक्षीरूपी प्राण उड़ गये थे और उस समय वे ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वासोच्छवाससे रहित ही हो गयी हो । अर्थात् सेनाओंके बोझसे दबकर मानो मर ही गयी हों ॥२१॥ जो पहले कभी सुननेमें नहीं आया था और जिसकी प्रतिध्वनि उठ रही थी ऐसा सेनाका कलकल शब्द सुनकर वनमें रहनेवाले पशु बहुत ही भयभीत और दुःखी हो गये थे ॥२२॥ जो अपने शरीरकी अपेक्षा ऐरावत हाथीके समान था जिसके समस्त अंग पागोंका विभाग ठीक-ठीक हुआ था, और जो मधुर गजना कर रहा था ऐसा कोई सफेद रंगका हाथी सेनाके क्षोभसे वनके भीतरसे निकलता हुआ बहुत ही अच्छा सुशोभित हो रहा था ॥२३॥ मेरे मनमें कुछ भी भय नहीं है जिसकी इच्छा हो सो देख ले इस प्रकार दिखलाता हुआ ही मानो कोई सिंह जागकर जमुहाई लता हुआ भुह खोल रहा था ॥२४॥ अष्टापद बड़े वेगसे ऊपरकी ओर उछलकर ऊपरकी ओर मुँह करके नीचे पड़ गया था परन्तु बनानेवाले (नामकम) की चतुराईसे पीठपरके पैरोंसे ठीक-ठीक आ खड़ा हुआ था—उसे कोई चोट नहीं आयी थी ॥२५॥ जो पत्थरसे अपने कंधे घिस रहा है, जिसके नेत्र क्रोधित होनेसे कुछ-कुछ लाल हो रहे हैं और जो खुरोंसे पथिवी खोद रहा है ऐसा एक निभय भैसा सेनाके लोगोंने देखा था ॥२६॥ सेनाके शब्द सुननेसे जिनके भय उत्पन्न हो रहा है ऐसे छोटे छोटे पशु प्रलयकालके समान विजयार्ध पर्वतकी गुफाओंके मध्य भागका आश्रय ले रहे थे । भावाथ—जिस प्रकार प्रलयकालके समय जीव विजयार्धकी गुफाओंमें जा छिपते हैं उसी प्रकार उस समय भी अनेक जीव सेनाके शब्दसे डरकर विजयार्धकी गुफाओंमें जा छिपे थे ॥२७॥ जिनके पीछे-पीछे बच्चे दौड़ रहे हैं और जिनका शरीर कंप रहा है ऐसे डरे हुए हरिण चारों ओर भाग रहे थे तथा वे उस समय ऐसे मालूम होते थे मानो भयस्पी रससे सींचे ही गये हो ॥२८॥ सेनाके क्षोभसे जिन्होंने जलमें भरे हुए छोटे-छोटे तालाब (तलया) छोड़ दिये हैं और जिनके झुण्ड बिखर गये हैं ऐसे मूअर अपने उत्तम आहारम प्रम छोड़कर इधर उधर घुस रहे थे ॥२९॥ कितने ही अन्य हाथी भयमें भागकर वृक्षोंसे ढकी हुई जगहमें छिपकर जा खड़े हुए थे और हरिण सिंहोंकी गुफाओं

१ तत्रम् । २ घट्ट । ३ रजे । ४ क्षोभनध्वनि । ५ मुष्पकनादयव । ६ देवगण । ७ विषत
 ८ निर्माणकम अथवा विधि । ९ पापाणा ल । १० रोपणारुणीवृत्तः ।
 ११ प्रत्यक्षाले यथा । १२ अनुगता । १३ कम्पमानशरीरा ।
 १४ नानि स्म । विविग ल० । १५ विप्रकीणवृन्दा ।

अमृतपुत्रमुद्भूतप्रतिध्वान बलध्वनिम् । भुगा^१ बलघटुश्रेष्ठ^२ स्तियक्षो वनगोचरा ॥२२॥
 बलक्षोमाद्रिमो^३ निर्यन् बलक्षोऽमाद् वनाचरात् । सुरेम^४ सुविमलज्ज^५ सुरम^६ इव वध्मणा ॥२३॥
 प्रबोधजृम्भणादास्य^७ याददौ^८ किल केमरी । न मऽस्य तमय किञ्चिन् पश्यतेस्तीव दशयन् ॥२४॥
 शरभो रमसाद्भ्रमुत्पथोत्तानित पतन् । सुस्थ एव परं दृष्टरैरभूश्चिर्मातृकौशलत्^९ ॥२५॥
 ११ विषाणोलिखितरुधो रुषिवाऽऽस्ताम्रितक्षण^{१०} । सुरोत्थातावनि सैन्यैदरशो महिपो विमी^{११} ॥२६॥
 चमूरवभ्रवोद्भूत^{१२} साध्वमा क्षुद्रका मृगा^{१३} । विजयाद्रगुहोत्सगान् युगभय^{१४} द्वाभयन् ॥२७॥
 अनुवृता^{१५} मृगा शवै पलायां चमिरेऽमित । विग्रस्ता त्रेपमानाङ्गा^{१६} मिक्ताभयरसैरिव ॥२८॥
 वराहाररति^{१७} सुक्त्वा वराहा मुक्तपल्लवा^{१८} । विनेपु^{१९} विस्फुट्यथा^{२०} अमृक्षोमादितोऽमुत ॥२९॥
 तरणावरणास्तस्थु करिणोऽन्ये मयद्रुता । हरिणा हरिणा^{२१} रतिगुहान्तानधिशिथिर ॥३०॥

की समस्त भूमियाँ भर गयी थी उनके पक्षीरूपी प्राण उड़ गये थे और उस समय वे ऐसी जान पड़ती थी मानो श्वासोच्छ्वाससे रहित ही हो गयी हा । अर्थात् सेनाओंके बोझसे दबकर मानो मर ही गयी हों ॥२१॥ जो पहले कभी सुननेमें नहीं आया था और जिसकी प्रतिध्वनि उठ रही थी ऐसा सेनाका कलकल शब्द सुनकर वनम रहनेवाले पशु बहुत ही भयभीत और डु खी हो गये थे ॥२२॥ जो अपने शरीरकी अपेक्षा ऐरावत हाथीके समान था, जिसके समस्त अंगो पागोका विभाग ठीक-ठीक हुआ था, और जो मधुर गजना कर रहा था ऐसा कोई सफेद रंगका हाथी सेनाके क्षोभसे वनके भीतरसे निकलता हुआ बहुत ही अच्छा सुशोभित हो रहा था ॥२३॥ मेरे मनमें कुछ भी भय नहीं है जिसकी इच्छा हो सो देख ले इस प्रकार दिखलाता हुआ ही मानो कोई सिंह जागकर जमुहाई रूता हुआ मुह खोल रहा था ॥२४॥ अष्टापद बड़े वेगसे ऊपरकी ओर उछलकर ऊपरकी ओर मुँह करके नीचे पड़ गया था परन्तु बनानेवाले (नामकम) की चतुराईसे पीठपरके परोसे ठीक ठीक आ खड़ा हुआ था—उसे कोई चोट नहीं आयी थी ॥२५॥ जो पत्थरसे अपने कंधे घिस रहा है, जिसके नेत्र क्रोधित होनेसे कुछ-कुछ लाल हो रहे हैं और जो खुरोंसे पथिवी खोद रहा है ऐसा एक निमय भैसा सेनाके लोगोंने देखा था ॥२६॥ सेनाके शब्द सुननेसे जिनके भय उत्पन्न हो रहा है ऐसे छोटे-छोटे पशु प्रलयकालके समान विजयाध पवतकी गुफाओंके मध्य भागका आश्रय ल रहे थे । भावाथ—जिस प्रकार प्रलयकालके समय जीव विजयाधकी गुफाओंमें जा छिपते हैं उसी प्रकार उस समय भी अनेक जीव सेनाके शब्दसे डरकर विजयाधकी गुफाओंमें जा छिपे थे ॥२७॥ जिनके पीछे-पीछे बच्चे दौड़ रहे हैं और जिनका शरीर कंप रहा है ऐसे डरे हुए हरिण चारों ओर भाग रहे थे तथा वे उस समय ऐसे मालूम होते थे मानो भयरूपी रससे सींचे ही गये हों ॥२८॥ सेनाके क्षोभसे जिन्होंने जलमें मरे हुए छोटे छोटे तालाब (तलया) छोड़ दिये हैं और जिनके झुण्ड बिखर गये हैं ऐसे मूँजर अपने उत्तम आहारम ग्रम छोड़कर इधर उधर घुस रहे थे ॥२९॥ कितने ही अन्य हाथी भयमें भागकर वृथासे ढकी हुई जगहमें छिपकर जा खड़े हुए थे और हरिण सिंहकी गुफाओं

१ अधिपम् । २ तपसु । ३ वज्र । ४ रेज । ५ क्षोभनध्वनि । ६ सुव्यक्तभावयव । ७ देवगण । ८ विवृत मरणात् । ९ पश्यतिभि । १० निर्माणकम अथवा विधि । ११ पापाणो ल० । १२ रोपेणाकणीकृत । १३ निर्भीति । १४ सेनाऽन्याकणनाग्रजान । १५ प्रलयकाले यथा । १६ अनुगता । १७ कम्पमानशरीरा । १८ उदृष्टादृष्टानिम् । १९ त्यज्यवगत्या । २० नश्यति स्म । विविगु ल० । २१ विप्रकीर्णवृन्दा । २२ कर्षविनाशान्ना मत् । २३ सिंह ।

१ गोपायिताऽहमस्याङ्गेमध्यम कृमावसन् । स्वैरचारी चिरादस्य स्वयाऽस्मि परमान् २ विमो ॥४१॥
 विद्धि मां विजयाद्वार्यममु च तिरिमूर्जितम् । अयोऽन्ये सभयादावामरुध्यायचलस्थिती ॥४२॥
 द्रव दिग्विजयस्यार्द्धं विमज्जनय सानुमान् । विजयाद्वैश्रुतिं धत्ते ३ तास्यात् तद्रथो वयम् ॥४३॥
 आयुष्मन् युष्मदायाशा मुष्नी सज्जमिवोद्बुधन् । पदातिनिर्विशपोऽस्मि विज्ञाप्य किमत परम् ॥४४॥
 इति युष्मस्तथोत्थाय ४ शिवैस्तार्थाश्रुभि प्रमुम् । सोऽम्पि ५ सुं सार्द्धं ह्यन्याग निवेदयन् ॥४५॥
 तदा प्रणेतुरामन्त्रमानका पथि वामुचाम् । विचरुमस्तो म दमाधूतघनवीथय ॥४६॥
 ननुतु सुरनतवय सलीलानर्तितभुव । जगुश्च मङ्गलायस्य जयशसीनि किन्नरा ॥४७॥
 कृताभिषेकमन च शुभनेपथ्यधारिणम् । युयोज रत्नलाभन लम्भयन् स जयाशिष ॥४८॥
 स तस्मै रत्नभृद्धार सितमातपधारणम् । प्रकाणक ६ युग दिव्य ददौ च हरिविष्टरम् ॥४९॥
 इति प्रसाधितस्नन वचोभि सानुवचनै । प्रमादतरलां दृष्टिं तत्र याणारयत् प्रभु ॥५०॥
 विसर्जितश्च सानुज प्रभुणा कृतसत्क्रिय । मृत्युर्त्र प्रतिपद्यास्य स्वमोक प्रत्यगात् सुर ॥५१॥
 विजयाद्वै जित कृत्स्न जित दक्षिणभारतम् । मवानो निधिराद् तच्च चक्ररत्नमपूजयत् ॥५२॥

चक्रवर्त्तिनि भी उसे सत्कारपूर्वक उत्तम आसनपर बैठाया ॥४०॥ भरतसे उस देवने कहा कि
 मैं इस पवतका रक्षक हूँ और इस पवतके बीचके शिखरपर रहता हूँ । हे प्रभो, मैं आजतक
 अपनी इच्छानुसार रहता था—स्वतन्त्र था परन्तु आज बहुत दिनमें आपके अधीन हुआ हूँ
 ॥४१॥ मूझ तथा इस ऊँचे पवतको आप विजयार्थ जानिए अर्थात् हम दोनोंका नाम विजयार्थ
 है और हम दोनों ही परस्पर एक दूसरेसे आश्रयसे अलङ्घ्य तथा निश्चल स्थितिसे युक्त हैं ॥४२॥
 हे देव, यह पवत दिग्विजयका आधा-आधा विभाग करता है इसलिए ही यह विजयार्थ नामको
 धारण करता है आर उसपर रहनेसे मेरा भी विजयाध नाम रुढ़ हो गया है ॥४३॥ हे आयुष्मन्,
 मैं आपकी आज्ञाको मालाके समान मस्तकपर धारण करता हूँ और आपके पदल चलनेवाले
 एक सनिकके समान ही हूँ, इसके सिवाय मैं और क्या प्रार्थना कहूँ ? ॥४४॥ इस प्रकार कहता
 हुआ और दिग्विजय करनेवाल चक्रवर्त्तियोंका अभिषेक करना मेरा काम है इस तरह अपने
 निषेधकी सूचना करता हुआ वह देव उठा और अनेक देवोंके साथ-साथ कल्याण करनेवाले
 तीर्थजलसे सम्प्राप्त भरतका अभिषेक करने लगा ॥४५॥ उस समय आकाशमें गम्भीर शब्द
 करते हुए नगाड़े बज रहे थे और वन-गलियोंकी कम्पित करता हुआ वायु धीरे धीरे बह रहा
 था ॥४६॥ लीलापूर्वक भाहोको नचाती हुई नृत्य करनेवाली देवागनाएँ नृत्य कर रही थीं
 और किन्नर देव भरतकी विजयको सूचित करनेवाल मंगलगीत गा रहे थे ॥४७॥ तदनन्तर
 जिनका अभिषेक किया जा चुका है और जो सफेद वस्त्र धारण किये हुए हैं ऐसे भरतको विजय
 करनेवाला आशीर्वाद देते हुए उस देवने अनेक रत्नोंको प्राप्तिसे युक्त किया अर्थात् अनेक
 रत्न भन् किये ॥४८॥ उस देवने उनके लिए रत्नोंका भूगार सफेद छत्र, दो चमर और एक
 दिव्य सिंहासन भी भेंट किया था ॥४९॥ इस प्रकार ऊपर लिखे हुए सत्कारसे तथा विनय
 सहित यचनासे प्रसन्न हुए भरतने उस देवपर प्रसन्नतासे चंचल हुई अपनी दृष्टि डाली ॥५०॥
 अनन्तर भरतने जिसका आन्तर-सत्कार किया है और जाओ इस प्रकार आज्ञा देकर जिसे
 जिना किया है एसा वह विजयाध देव उनका दासपना स्वीकार कर अपने स्थानपर वापस
 चला गया ॥५१॥ विजयाध पवतक जीत रत्नपर समस्त दक्षिण भारत जीत लिया गया

१ रत्ना । २ नावमान परवान इत्यत्र । परवाप्रावसानपि इत्यभिधानात् । ३ परस्परमाधाराधयरूप
 शययान । ४ तस्मिन् विष्टिनि स्तितस्व तस्य भाव ताभ्यम् तस्मान् । ५ विजयाद्व इति वृद्धय ।
 ६ पतिगता । ७ मङ्गलम् । ८ विजयाद्वभूगार । ९ धामरयुगलम् ।

आहूता कचिदाजमुं प्रमुणा मण्डलाधिपा । अनाहूताश्च समञ्जुर्विभु चारभटा^१ पर ॥६५॥
 विदेश^२ किल यातयो जतन्या म्लेच्छभूमिषा^३ । इति सचिन्त्य सामन्तै प्राय सज्ज^४ धनुषलम् ॥६६॥
 धविन शरनाराचसमृतेषु धिव^५ वनै । यवेदयन्निवात्मानमृणदासमधीशिनाम् ॥६७॥
 धनुर्धरा धनु सज्जमा^६ स्फास्य^७ चक्रपु^८ पर । चिकीपव इवारोणा जीवारुपं सहुकृता ॥६८॥
 करवालान् करे कृत्वा तुलयति स्म कचन । स्वामिसत्कारभारणं नून तान् प्रमिमित्सव^९ ॥६९॥
^{१०}सर्वमिता मृश रज्जुमया प्रोद्धासितासय^{११} । निर्मोकैरिव^{१२} विशिलै^{१३} ललज्जिह्वामहाहय ॥७०॥
 सादोप स्फुटिता^{१४} केचिद् बलगन्ति स्मामितो मदा । अस्तुषता^{१५} पुरोऽप्रातीन् पश्यन्त^{१६} इव समुत्थम् ॥
^{१७}अक्षै^{१८} यक्षैश्च^{१९} शस्त्रैश्च शिरस्यै^{२०} सतनुग्रकै^{२१} । दधुजयनशालानां^{२२} लाला^{२३} रथ्या सुसमृता ॥७१॥
 रथिनो^{२४} रथकट्यासु^{२५} गुवारायुधसपद^{२६} । समारोप्यापि पत्तिभ्यो भञ्जुरघातिगौरवम्^{२७} ॥७२॥

तथा और भी अनेक राजा लोग अपनी समस्त सेना और सवारियाँ लेकर उसी समय आ पहुँचे ॥६४॥ कितने ही मण्डलेश्वर राजा भरतके बुलाये हुए आये थे और कितने ही शूर वीर लोग बिना बुलाये ही उनके समीप आ उपस्थित हुए थे ॥६५॥ अब विदेशमें जाना है और म्लेच्छ राजाओंको जीतना है यही विचार कर सामन्तोंने प्राय धनुष-बाणको धारण करने वाली सेना तैयार की थी ॥६६॥ धनुष धारण करनेवाले योद्धा छोटे-बड़े बाणोंसे भरे हुए तरकसोंके बाधनेसे ऐसे जान पड़ते थे मानो वे अपने स्वामियोंसे यही कह रहे हों कि हम लोग आपके ऋणके दास हैं अर्थात् आज तक आप लोगोंने जो हमारा भरण-पोषण किया है उसके बदल हम लोग आपकी सेवा करनेके लिए तत्पर हैं ॥६७॥ हुकार शब्द करते हुए कितने ही धनुषधारी लोग अपने डोरीसहित धनुषको आस्फालन कर खींच रहे थे और उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शत्रुओंके जीवोंको ही खींचना चाहते हों ॥६८॥ कितने ही योद्धा लोग हाथमें तलवार लेकर उसे तील रहे थे मानो स्वामीसे प्राप्त हुए सत्कारके भारके साथ उसका प्रमाण ही करना चाहते हों ॥६९॥ जो कवच धारण किये हुए हैं और जिनकी तलवारें चमक रही हैं ऐसे कितने ही योद्धा इतने अच्छे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनकी काँचली कुछ ढीली हो गयी है और जीभ बार-बार बाहर लपक रही है ऐसे बड़े-बड़े सप ही हों ॥७०॥ कितने ही योद्धा अभिमानमहित हाथमें तलवार उठाये और गजना करते हुए चारों ओर इस प्रकार घूम रहे थे माना शत्रुओंको अपने सामने ही देख रहे हों ॥७१॥ आग्नेय बाण आदि अस्थ, महा स्तम्भ आदि व्यस्थ, तलवार धनुष आदि शस्त्र, शिरकी रक्षा करनेवाले लोहके टाप और बबल आग्निमें भरे हुए रथोंके समूह ठोक आयुधशालाओंकी गोमा धारण कर रहे थे ॥७२॥ रथाम सवार होनेवाले योद्धा यद्यपि भारी भारी शस्त्रावली रथोपर रखकर जा रहे थे तथापि

१ वीरभटा । शरवीरच विजान्ता भरचारभटा मन इति हलायुध । २ नानादेश । ३ भूमज म० द० अ० प म० ल० इ । ४ सन्नदीकृतम् । ५ ज्ञामहितम् । ६ आताड्य टणत्कार कृत्वा । स्फास्य चक्रपु द द अ म० प० म० ल इ । ७ आक्षयपति स्म । ८ भारण सह । ९ प्रमानुमिच्छव । १० पुनर्वचसा । ११ निमिलं । १२ चरन । १३ आस्फालित भुजा । १४ रथ्या । १५ निगायुध । १६ गरलगुडायायुध । १७ सामा बीणा । १८ रथिया । १९ रथसमूह्य । २० अतिरक्षा । २१ योद्धा । २२ रथ्या । २३ रथसमूह्य । २४ अतिरक्षा । २५ योद्धा । २६ रथ्या । २७ अतिरक्षा ।

प्रचेलु सवसामग्रथा नृपा समृतकोटिका^१ । प्रभोश्चिर जयोद्योगभाकरह्य्याहिमाचलम् ॥८२॥
 भटलोकुटिकै^२ कचिद्वृत्ता लालाटिकै^३ पर । नृपा पश्चात्कृतानीका विमोर्निकटमाथयु ॥८३॥
 सम तादिति साम तैरापतरि^४ ससाधनै । समिन्द्रशासनभक्षी समस्य जयकारित^५ ॥८४॥
 सामवायिक^६ साम तसमाजैरिति सवत । सरिदोघैरिवाम्भोधिरापयत विमोचलम् ॥८५॥
 सवन^७ सावनि^८ सोऽद्रि परितो ररुधे बलै । जिनजन्मोत्सवे मरुनीकैरिव^९ नाकिनाम् ॥८६॥
 विजयाद्वाचलप्रस्था^{१०} विमोर्ध्यासिता बलै । स्वर्गाशामश्रियं तनुर्विमन्तैवमन्दिरे^{११} ॥८७॥
 प्रक्ष्वेलिते^{१२} रथं विध्वक् प्रहपिततुरगमम् । प्रवृद्धितगज सैथ अनिसादकरोद्^{१३} गिरिम् ॥८८॥
 बलध्वानं गुहारत्रै प्रतिभुञ्जत^{१४} सुद्वहन् । सोऽद्रिरुद्विक्तद्रोघी^{१५} भुष फूत्कारमातनोत् ॥८९॥
 अत्रान्तरे ज्वल-मौलिप्रभापिञ्जरिताम्बर । ददते प्रभुणा ध्योमि गिरिवतरत् सुरा ॥९०॥
 स ततोऽवतरच्छद्रेभौ^{१६} सानुचरोऽमर । सवन^{१७} कल्पशाखीष रसद्रामरणाश्रुक^{१८} ॥९१॥

भरतेश्वरका हिमवान् पर्वत तक विजय प्राप्त करनेका उद्योग बहुत समयम पूरा होगा ऐसा समझकर राजा लोग सब प्रकारकी सामग्रीसे कोठे भर भरकर निकले ॥८२॥ कितने ही राजा लाठी धारण करनेवाले योद्धाओंके साथ, और कितने ही ललाटकी ओर देखनेवाले उत्तम सेवकोंके साथ, अपनी सेना पीछे छोड़कर भरतके निकट आये ॥८३॥ इस प्रकार अपनी अपनी सना सहित चारों ओरसे आते हुए अनेक सामन्तोंने एक जगह इकट्ठे होकर, जिनकी आज्ञा सब जगह देदीप्यमान है ऐसे चक्रवर्तीका जय जयकर किया ॥८४॥ जिस प्रकार नदियोंके समूहसे समुद्र भर जाता है उसी प्रकार सहायता देनेवाले सामन्तोंके समूहसे भरतकी सेना सभी ओरसे भर गयी थी ॥८५॥ जिस प्रकार भगवान् के जन्म-कल्याणके समय वन और भूमि सहित सुमेरु पर्वत देवोंकी सेनाओंसे भर जाता है उसी प्रकार वह विजयाध पर्वत भी वन और भूमिसहित चारों ओरसे सेनाओंसे भर गया था ॥८६॥ भरतकी सेनाओंसे अधिकृत हुए विजयाध पर्वतके शिखर अलग-अलग तने हुए राजमण्डपोंसे स्वर्गकी शोभा धारण कर रहे थे ॥८७॥ जिसम चारों ओरसे रथ चल रहे हैं, घोड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी गरज रहे हैं ऐसी उस सेनाने उस विजयाध पर्वतको एक शब्दोंके ही अधीन कर दिया था अर्थात् शब्दमय बना दिया था ॥८८॥ गुफाओंके छिद्रोंसे जिसकी प्रतिध्वनि निकल रही है ऐसे सेना के शब्दोंको धारण करता हुआ वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो सेनासे घिर जानेके कारण फू फू गान् ही कर रहा हो अर्थात् रो ही रहा हो । ८९॥

इसी बीचमें भरतने देदीप्यमान मुकुटकी कात्तिसे जिसने आकाशको भी पीला कर दिया है और जो पर्वतपर-से नीचे उतर रहा है ऐसा एक देव आकाशम देखा ॥९०॥ जिसके आभूषण तथा वस्त्र देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसा वह देव अपने सेवकोंसहित उस पर्वतसे उतरता हुआ ऐसा मुग्धोभित हो रहा था मानो जिनके आभूषण और वस्त्र देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसा वनसहित

१ भूपा ल । २ तण्डुनादिमारवाहकवलीवर्ण । ३ लुटम् आपुर्ण यपा त । ४ प्रभोर्भविर्गिभि लालाटिक प्रभाभोर्भविर्गि वायणमन्त्र य दयभिषयानाम् । ५ जयकार नीत सजातजयकारो वा जय जयति स्तुत इति यावत् । ६ मित्रि । ७ वनसहित । ८ अवनिमहित । ९ राय । १० शानम । ११ मण्डल ल० । १२ तिरनाम्नि दरशा मु निहता स्पात इत्यभिधानाम् । १३ शब्दमयमरौत् । १४ प्रतिध्वनिभूतम् मनो प्रोत्थनप्रतिपन्न दयभिषयानाम् । १५ उग्रटमेनानिरोध । १६ अनुचर सहित । १७ वनसहित

प्रचलु सवसामग्रथा^१ नृपा सभृतकोष्टिका^२ । प्रभोश्चिर जयोद्योगमाकलय्याहिमाचलम् ॥८२॥
 मटर्लाङ्गिकै^३ कचिद्धृता लालाटिकै^४ पर । नृपा पश्चात्कृतानीका विभोर्निकटमाययु ॥८३॥
 ममन्नादिति सामन्तरापतज्जि ससाधनै । समिद्धशासनश्चक्री समेत्य जयकारित^५ ॥८४॥
 सामवायिकै^६ सामन्तममार्जैरिति सर्वत । सरिदोधैरिवाम्भोधिरापूयत विभोबलम् ॥८५॥
 सवन^७ सावनि^८ सोऽद्रि परितो रुरुधे बलै । जिनजन्मोत्सवे मेरुभीकैरिव^९ नाकिनाम् ॥८६॥
 विजयाद्वाचलप्रस्था^{१०} विमोर्भासिता बलै । स्वर्गापासश्रिय तेनुर्विमलैर्नृपमन्दिरै^{११} ॥८७॥
 प्रन्वेलित^{१२} रथ विष्वक् प्रहपिततुरगमम् । प्रवृहत्तगजं सैन्य ध्वनिसादकरोद्^{१३} गिरिम् ॥८८॥
 बलध्वान गुहारभ्रै^{१४} प्रतिश्रुतै^{१५} मुब्रहन् । सोऽद्रिर्द्विज्जितद्रोधो^{१६} ध्रुव फूत्कारमातनोत् ॥८९॥
 भग्नान्तर अवलम्बलिप्रमापिञ्जलिाम्बर^{१७} । दृष्टो प्रमुणा व्योम्नि गिरिवतरत् सुर^{१८} ॥९०॥
 स ततोऽवतरज्जवेमौ^{१९} सानुचरोऽमर । सवन^{२०} कल्पशाखीव लसदाभरणांशुक^{२१} ॥९१॥

भरतेश्वरका हिमवान् पवत तक विजय प्राप्त करनेका उद्योग बहुत समयमे पूण होगा ऐसा समझकर राजा लोग सब प्रकारकी सामग्रीसे कोठे भर भरकर निकले ॥८२॥ कितने ही राजा लाठी धारण करनेवाल योद्धाओंके साथ और कितने ही ललाटकी ओर देखनेवाले उत्तम सेवकोंके साथ अपनी सेना पीछे छोड़कर भरतके निकट आये ॥८३॥ इस प्रकार अपनी अपनी सेना सहित चारों ओरसे आते हुए अनेक सामन्तोंने एक जगह इकट्ठे होकर, जिनकी आज्ञा सब जगह देदीप्यमान है ऐसे चक्रवर्तीका जय जयकरे किया ॥८४॥ जिस प्रकार नदियोंके समूहसे समुद्र भर जाता है उसी प्रकार सहायता देनेवाल सामन्तोंके समूहसे भरतकी सेना सभी ओरसे भर गयी थी ॥८५॥ जिस प्रकार भगवान्के जन्म-कल्याणके समय वन और भूमि सहित समुद्र पवत देवोंकी सेनाओंसे भर जाता है उसी प्रकार वह विजयाध पवत भी वन और भूमिसहित चारों ओरसे सेनाओंसे भर गया था ॥८६॥ भरतकी सेनाओंसे अधिष्ठित हुए विजयाध पवतके शिखर अलग-अलग तने हुए राजमण्डपोसे स्वर्गकी शोभा धारण कर रहे थे ॥८७॥ जिसमें चारों ओरसे रथ चल रहे हैं, घोड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी गरज रहे हैं ऐसी उस सेनाने उस विजयाध पवतको एक शब्दोंके ही अधीन कर दिया था अर्थात् गन्धर्व वना दिया था ॥८८॥ गुफाओंके छिद्रोंसे जिसकी प्रतिध्वनि निकल रही है ऐसे सेना के शब्दोंको धारण करता हुआ वह पवत ऐसा जान पड़ता था मानो सेनासे घिर जानेके कारण फू फू शब्द ही कर रहा हो अर्थात् रो ही रहा हो । ८९॥

इसी बीचम भरतने देदीप्यमान मुकुटकी कात्तिसे जिसने आकाशको भी पीला कर दिया है और जो पवतपर-से नीचे उतर रहा है ऐसा एक देव आकाशम देखा ॥९०॥ जिसके आभूषण तथा वस्त्र द्दीप्यमान हो रहे हैं ऐसा वह देव अपने सेवकोंसहित उस पवतसे उतरता हुआ ऐसा मुग्धाभित हो रहा था मानो जिसके आभूषण आर वस्त्र देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसा वनसहित

१ भूया ल । २ तन्मन्त्रान्निवारवाहबलोवर्ण । ३ लटुटम् आयुध यपा त । ४ प्रभोर्भाविर्गभि 'लालाटिक' प्रभोभाविर्गो वायव्यमन्त्र य इत्यभिधानान् । ५ जयकार नीत सजातजयकारी वा जय जयति स्तुत इति यावत् । ६ मिलित । ७ वनमहित । ८ अवनिमहित । ९ मय । १ सावनि । ११ मण्डल । १२ निजमान्ति स्वश सु मिन्ना स्यान् इत्यभिधानान् । १३ दण्डमयमकरान् । १४ प्रतिध्वनिभूतम् यना प्रतिध्वन्यनिध्वान इत्यभिधानान् । १५ उत्तरन्मेनानिरोध । १६ अनुसर सहित । १७ वनन सहित

दिव्यः प्रभान्वयः^१ कोऽपि संमूर्च्छति^२ किमम्बरे । तडित्पुञ्जं किमग्न्यचिरिति^३ दृष्टः क्षणं जनैः ॥१०॥
 किमप्येतदधिज्योतिरित्यादावविशेषतः । पश्चादवयवव्यक्त्या प्रव्यक्तपुरुषाकृति ॥१३॥
 कृतमालश्रुतिव्यक्त्यै^४ कृतमाल म चम्पकैः । कृतमाल इवोत्फुल्लो निद्रभ्यं प्रभुणाऽग्रतः ॥१४॥
 सप्रणामं च संप्राप्तं तं वीक्ष्य महसा विभु । यथाहंप्रतिपत्त्याऽस्मा आसनं प्रत्यपादयत्^५ ॥१५॥
 प्रभुणाऽनुमतञ्चाय कृतामनपरिग्रहः । क्षणं विमिस्मिये पश्यन् धामां मुप्याति मानुषम्^६ ॥१६॥
 सभाषितश्च मन्त्राजा पूर्व^७ पूर्वार्द्धभाषिणा । सुर प्रचक्रमे वक्तुमिति प्रश्रयवद्वचः ॥१७॥
 क वयं क्षुद्रका देवः क भवान् दिव्यमानुषः । पीतन्य^८ मुचितं मन्यं^९ वाचाटयति^{१०} नः स्फुटम् ॥१८॥
 आयुष्मन् कुशलं प्रष्टुं जिहीमः^{११} शासितुस्तव । त्वदायत्ता यतः^{१२} कृत्स्ना जगतः कुशलक्रिया ॥१९॥
 लोकस्य कुशलाधाने^{१३} निरुद्धं^{१४} यस्य कौशलम् । कुशलं^{१५} दक्षिणस्याऽस्य बाहोस्ते क्षमा जिगीषतः १००
 देवानां प्रियं देवत्वं तवागेषजगज्जयान् । नाम्नैव तु वयं देवा जातिमात्रकृतोक्तयः ॥१०१॥
 गीर्वाणा^{१६} वयमन्यत्र^{१७} जिगीषौ जितगीडगरा^{१८} । त्वयि कुण्ठगिरो^{१९} जाताः प्रस्त्रलद्वर्गगदगदाः १०२

कल्पवृक्ष ही हो ॥१९॥ क्या कोई दिव्य प्रभाका समूह आकाशमे फैल रहा है ? अथवा
 क्या विजलीका समूह है ? अथवा क्या अग्निकी ज्वाला है ? इस प्रकार अनेक कल्पनाओ-
 से लोगोने जिसे क्षण-भर देखा था जो पहले तो यह कोई कान्तिका समूह है इस प्रकार सामान्य
 रूपसे देखा गया था, परन्तु वादमे अवयवोके प्रकट होनेसे जिमका पुरुषका-सा आकार साफ-
 साफ प्रकट हो रहा था, जो अपना कृतमाल नाम प्रकट करनेके लिए चम्पाके फूलोकी माला
 पहने हुआ था और जो उससे फूले हुए कृतमाल वृक्षके समान जान पड़ता था ऐसे उस देवको
 चक्रवर्ती भरतने अपने सामने खड़ा हुआ देखा ॥१२-१४॥ आनेके साथ ही नमस्कार करते हुए
 उस देवको अकस्मात् अपने सामने देखकर भरतने उसे यथायोग्य सत्कारके साथ आसन दिया
 ॥१५॥ भरतकी आज्ञासे वह देव आसनपर बैठा और उनके लोकोत्तर तेजको देखता हुआ
 क्षण-भरके लिए आश्चर्य करने लगा ॥१६॥ प्रथम ही, पहले बोलनेवाले सम्राट् भरतने
 जिसके साथ बातचीत की है ऐसा वह देव नीचे लिखे अनुसार विनयसहित वचन कहने लगा
 ॥१७॥ हे देव, हम क्षुद्र देव कहाँ ? और आप दिव्य मनुष्य कहाँ ? तथापि मैं ऐसा मानता
 हूँ कि हम लोगोका यथायोग्य देवपना ही हम लोगोको स्पष्ट रूपसे वाचालित कर रहा है अर्थात्
 जवरदस्ती बलवा रहा है ॥१८॥ हे आयुष्मन्, आप-जैसे शासन करनेवालोका कुशल-मगल
 पूछनेके लिए हम लोग लज्जित हो रहे हैं क्योंकि इस जगत्का सब तरहका कल्याण करना
 आपके ही अधीन है ॥१९॥ जगत्का कल्याण करनेके लिए जिसकी चतुराई प्रसिद्ध है और जो
 समस्त पृथिवीको जीतना चाहती है ऐसी आपकी इस दाहिनी भुजाकी कुशलता है न ?
 ॥१००॥ हे देव, आप देवोके भी प्रिय हैं, आपने समस्त जगत्को जीत लिया है इसलिए यह
 देवपना आपके ही योग्य है हम लोग तो अत्यन्त तुच्छ देव हैं-केवल देव जातिमे जन्म होनेसे
 ही देव कहलाने लगे हैं । यहाँ पर 'देवाना' 'प्रिय' ये दोनो ही पद पृथक्-पृथक् हैं, अथवा ऐसा

१ प्रभान्वयः । २ व्याप्नोति । ३ अग्निगिह्वामतिक्रान्तः । ४ कृतमालनामा । कृतमाल आरग्वधः । 'आरग्वधे
 राजवृक्षं यम्भाकचतुरगुला । आरेवतव्याधिघातकृतमालमुवर्णका ॥' इत्यभिधानात् । ५ दृश्यते स्म । ६ प्रापयत् ।
 ७ तेजः । ८ चक्रिणः । ९ मानुषमनोतम् । १० मस्कृतभाषिणा । पूर्वार्धभाषिणा । ११ पीतन्यम् । १२ नूनम् । १३ वाचालः करोति ।
 १४ लज्जामहे । १५ यस्मान् कारणात् । १६ क्षेमकरणे । १७ प्रव्याप्तम् । १८ क्षेमः किम् । १९ गीरेव श्यापानुग्रह-
 समर्था वाणा नाथन निग्रहानुग्रहयोरेषामिति गीर्वाणा देवा इत्यर्थः । २० जिगीषो न्वत्त अन्यत्र । २१ शीत-
 शीघ्रगः दृढः । मन्दानामीश्वरः इत्यर्थः । शीते घेरने एते शीतगवः तेषामीश्वरः क्रियामु मन्दानामीश्वरा
 इत्यर्थः । 'मूढापापदृनिर्भागा । मन्दा म्यु ।' इत्यमरः । २२ मन्दवचनम् ।

राजोक्तिस्त्वयि राजेन्द्र राजतेऽनन्यगामिनी । अमण्डमण्डलां कुरुता पट्खण्डां गा नियच्छति ॥१०३॥
 चक्रात्मना चरुत्प प्रतापस्तव दु सह । प्रथते दण्डनीतिश्च दण्डरत्नछलाद् विमो ॥१०४॥
 ईशितव्या^१ महा कृत्स्ना स्वतन्त्रस्त्वमसीश्वर । निधिरत्नद्विरैश्वर्यं क परस्वाद्दश प्रसु ॥१०५॥
 अमत्यराकिनी लोच गश्वत्कीर्तिरनगला^२ । सरस्वती च वाचाला कथ त ते^३ प्रिये^४ प्रमो ॥१०६॥
 इति प्रतातमाहात्म्य त्वा समाजयितु^५ दिव । त्वद्वल्लभानसक्षोमसाध्वसाद् वयमागता ॥१०७॥
 कृत्स्ना वयमस्यादे^६ स्वपदा^७ दधिचालिन । भूमिमेतावती^८ तावत् त्वया देवावतारिता ॥१०८॥
 विप्रकृण^९ तरावासवासिनो व्यन्तरा वयम् । सविधेयास्त्वय^{१०} दानीं प्रत्यासन्ना पदातय ॥१०९॥
 विद्धि मां धिजयादस्य ममज्ञममृताशनम् । कृतमाल गिरेरस्य कूटेऽमुष्मिन् कृतालभम् ॥११०॥
 मयि स्वसा^{११} कृते^{१२} देव स्वीकृतोऽय महाचल^{१३} । समुद्राकाननरयास्य गिरेगर्मविदस्म्यहम् ॥१११॥
 गमनोऽह गिरेरस्मी यत्स्वरूपमिदमुच्यते । द्वीपाधिबलये कृत्स्ने नास्माक कोऽप्यगोचर ॥११२॥

अथ करना चाहिए कि हे प्रिय, समस्त जगत्को जीतनेसे आप देवोंके भी देव हैं ॥१०१॥
 हम गीर्वाण ह और आपके अतिरिक्त विजयकी इच्छा करनेवाले किसी दूसरे पुरुषके विषय में यद्यपि हम वचनरूपी तीक्ष्ण बाणोंको धारण करते हैं तथापि आपक विषयमे हम लोग कुण्ठितवचन हो रहे ह हमारा अहंकार जाता रहा है और हमारे वचन गद्गद स्वरसे निकल रहे ह ॥१०२॥ हे राजेन्द्र आप छह खण्डोंमे बँटी हुई समस्त प्रदेशसहित इस सम्पूर्ण पृथिवी का शासन करते ह इसलिए दूसरी जगह नहीं रहनेवाली राजोक्ति आपम ही सुशोभित हो रही है—आप ही वास्तवमें राजा हैं ॥१०३॥ हे विमो, चक्ररत्नके बहानेसे यह आपका दु सह प्रताप देदीप्यमान हो रहा है और दण्डरत्नक छलसे आपकी दण्डनीति प्रसिद्ध हो रही है ॥१०४॥ यह समस्त पृथिवी आपके अधीन है—पालन करने योग्य है, आप इसके स्वतन्त्र ईश्वर ह और निधियां तथा रत्न ही आपका ऐश्वर्य है इसलिए आपके समान ऐश्वर्यशाली दूसरा कौन है ? ॥१०५॥ हे प्रमो, आपकी कीर्ति स्वच्छन्द होकर समस्त लोकमें सदा अकली फिरा करती है और सरस्वती वाचाल है अर्थात् बहुत बोलनेवाली है फिर भी न जाने ये दोनों ही स्त्रिया आपको प्रिय क्यों ह ? ॥१०६॥ इस प्रकार जिनका माहात्म्य प्रसिद्ध है ऐसे आपकी सेवा करनेके लिए हम लोग आपकी सेनाके शब्दके क्षोभसे मयभीत हो आकाश से यहाँ आये ह ॥१०७॥ हे देव हम लोग इस पवतके शिखरपर रहते ह और अपने म्यानसे कभी भी विचलित नहीं होते परन्तु इस भूमिपर आपके द्वारा ही अवतारित हुए हैं—उतारे गये हैं ॥१०८॥ हम लोग दूर-दूर तक अनेक स्थानोंमे रहनेवाले व्यन्तर ह अब आप हम लागावा अपने समीप रहनेवाले सेवक बना लीजिए ॥१०९॥ आप मुझे इस पवतके इस गिरपर रहनेवाला और विजयाध पवतका मम जाननेवाला कृतमाल नामका देव जानिए ॥११०॥ ह दय, आपने मुझ वग कर लिया है इसलिए इस महापवतको अपने अधीन हुआ हो ममयाग क्यावि म गुफाआ और वनमहित इस पवतका समस्त भीतरी हाल जानता हूँ ॥१११॥ अयया म इस पवतका भीतरी हाल जाननेवाला हू यह बहुत ही थोडा कहा गया है क्याकि ममन्त द्वीप और समुद्राक भीतर ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है जो हम लोगका जाना

१ राजाति १०० गामिनी । २ ए वचनो भविष्यु योग्या । ४ प्रनिवृत्तरहिता । ५ कीर्तिमरस्वत्यौ । ६ तिग्म (बभूवु) । ७ नक्षिणम् । ८ स्वम्यानाम् । ९ एतावद्भूमिरयन्तम् । यावत्तावच्च साक्ष्यस्वयो मानवाणां । १० सविद्यायिषु योग्या । ११ मन्धीन कन ।

१ वटस्थानवटस्थांश्च^१ कृतस्थान कोटरोटजान्^२ । २ अक्षपाटान् क्षपाटांश्च^३ विद्धि नः सार्वसर्वगान्^४ ॥ ११३ ॥
इति प्रशान्तमोजस्वि^५ वचः संभाष्य सादरम् । सोऽमरो वित^६ तारास्मै भूपणानि चतुर्दश^७ ॥ ११४ ॥
तान्यनन्योपलभ्यानि प्राप्य चक्री परां मुदम् । भेजे^८ तत्कृतसत्कारैः सुर सोऽग्याप संमदम् ॥ ११५ ॥
तं रूप्याद्रिगुहाद्वारप्रवेगोपायशंसिनम् । प्रविसर्ज्य स्वसेनान्यं प्राहिणोत् प्रभुरग्रतः ॥ ११६ ॥
त्वमुद्घाट्य गुहाद्वारं यावन्निर्वाति^९ सा गुहा । तावत् पाश्चात्त्यखण्डस्य^{१०} निर्जयाय कुरुद्यमम् ॥ ११७ ॥
इति चक्रधरादेश^{११} मूर्ध्ना माल्यमिवोद्वहन् । कृतमालामरोद्विष्टकृत्स्नोपायप्रयोगवित् ॥ ११८ ॥
कृती कतिपर्यरेप तुरगैः सपरिच्छदैः । प्रतस्थे वाजिरत्नेन दण्डपाणिश्चमूपतिः ॥ ११९ ॥
किञ्चिच्चान्तरमुल्लङ्घ्य स सिन्धोर्वनवेदिकाम् । विगाह्य विजयार्द्धस्य संप्रापत् तटवेदिकाम् ॥ १२० ॥
तत्सोपानेन रूप्याद्वेराख्य जगतीतलम् । प्रत्यङ्मुखो^{१२} गुहोत्संगं^{१३} माससाढ चमूपतिः ॥ १२१ ॥
जयताञ्चक्रवर्तीति सोऽश्वरत्नमधिष्ठित^{१४} । दण्डेन^{१५} ताडयामास गुहाद्वारं स्फुरद्ध्वनिः ॥ १२२ ॥
दण्डरत्नाभिघातेन गुहाद्वारे निरगले^{१६} । तद्गर्माद् बलवानूपमा निर्ययौ किल संततः^{१७} ॥ १२३ ॥
दधदण्डाभिघातोत्थ^{१८} क्रैङ्कारमररीपुटम्^{१९} । सवेदनमिवास्वेदि^{२०} निर्गतासु गुहोष्मणा ॥ १२४ ॥

हुआ न हो ॥११२॥ हे सार्व अर्थात् सबका हित करनेवाले, वटके वृक्षोपर, छोटे-छोटे गड्ढोमे, पहाडोके शिखरोपर, वृक्षोकी खोली और पत्तोंकी झोपडियोमे रहनेवाले तथा दिन और रात्रिमे भ्रमण करनेवाले हम लोगोको आप सब जगह जानेवाले समझिए ॥११३॥ इस प्रकार आदरसहित शान्त और ओजपूर्ण वचन कहकर उस देवने भरतके लिए चौदह आभूषण दिये ॥११४॥ जो किसी दूसरेको प्राप्त नहीं हो सकते थे ऐसे उन आभूषणोको पाकर चक्रवर्ती परम हर्षको प्राप्त हुए और चक्रवर्तीके द्वारा किये हुए सत्कारोसे वह देव भी अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुआ ॥११५॥ तदनन्तर विजयार्ध पर्वतकी गुफाके द्वारसे प्रवेश करनेका उपाय बतलानेवाले उस देवको भरत चक्रवर्तीने विदा किया और गुफाका द्वार खोलनेके लिए सबसे आगे अपना सेनापति भेजा ॥११६॥ चक्रवर्तीने सेनापतिसे कहा कि तुम गुफाका द्वार उघाडकर जबतक गुफा शान्त हो तबतक पश्चिम खण्डको जीतनेका उद्योग करो ॥११७॥ इस प्रकार चक्रवर्तीकी आज्ञाको मालाके समान मस्तकपर धारण करता हुआ और कृतमाल देवके द्वारा बतलाये हुए समस्त उपायोके प्रयोगको जाननेवाला वह चतुर सेनापति कुछ घोडे और सैनिकोके साथ दण्डरत्न हाथमे लेकर अश्वरत्नपर आरूढ होकर चला ॥११८-११९॥ और कुछ थोडी दूर जाकर तथा सिन्धु नदीके वनकी वेदीको उल्लघन कर विजयार्ध पर्वतके तटकी वेदीपर जा पहुँचा ॥१२०॥ प्रथम ही वह सेनापति सीढियोके द्वारा विजयार्ध पर्वतकी वेदिकापर चढा और फिर पश्चिमकी ओर मुँहकर गुफाके आगे जा पहुँचा ॥१२१॥ अश्वरत्नपर बैठे हुए सेनापतिने चक्रवर्तीकी जय हो इस प्रकार कहकर दण्डरत्नसे गुफाद्वारका ताड़न किया जिससे बडा भारी शब्द हुआ ॥१२२॥ दण्डरत्नकी चोटसे गुफाका द्वार खुल जानेपर उसके भीतरसे बडी भारी गरमी निकलने लगी ॥१२३॥ दण्डरत्नके प्रहारसे उत्पन्न हुए क्रैङ्कार शब्दको धारण करते हुए दोनो किवाड ऐसे जान पडते थे मानो वेदनासे सहित होनेके

१ न्यग्रोधस्थान् । २ पातालस्थान् । 'गताविटो भुवि ब्रवन्ने' इत्यभिधानात् । ब्रवन्नेगताविटोऽगादा भुवो विवर-वाचका इति कात्येनोक्तम् । ३ वृक्षविवरणं गालाम् जातान् 'पर्णगालोटजोऽम्ब्रियाम्' इत्यभिधानान् । ४ राक्षसेभ्योऽज्यान् । ५ क्षरा रात्रि तस्यामटन्तीति क्षराटा तान् राक्षसानित्यर्थः । 'पलकपो रात्रिमटो रात्र्यटो जललोहित' इत्यभिधानात् । ६ महितान् । ७ तेजोऽन्वितम् । ८ ददौ । ९ निन्दकादिचतुर्दशाभरणानि । १० चक्रिकृत । ११ उपशान्तिमेति । १२ पश्चिमवर्गस्य । १३ आज्ञाम् । १४ पश्चिमाभिमुख । १५ ममीपम् । १६ आन्ड । १७ दण्डरत्नेन । १८ अर्गलगृहिने मति । १९ विन्मृत । २० ध्वनिविशेष । २१ कवाटपुगटम् 'कटावमरर तुन्ने' इत्यभिधानान् । २२ म्विद्यनि न्म म्वेदिनमित्यर्थः ।

उद्घाटितकवाटन द्वारणोष्माणमुद्गमन् । रराज राशत शैलो लघोच्छ्वासश्चिरादिव ॥१२५॥
 कवाटपुटविश्लेषादुच्चचार महान् ध्वनि । दण्डनामिहसस्याद्विराक्रोश इव विस्फुरन् ॥१२६॥
 गुहोष्मणा स नाश्लेषि^१ विदूरमपवाहित^२ । तरन्धिनाश्चरत्नेन देवतामिश्र रक्षित^३ ॥१२७॥
 निपतुरमरस्त्राणा दृक्षपै^४ सममम्बरात् । सुमन प्रक्रास्तस्मिन् हासा इव जयश्रिय ॥१२८॥
 सन्वेदी^५ ससोपानां रूप्याद्रे समतायिवान् । सोऽभ्यैत्^६ सतोरणां सिन्धो पश्चिमा वनवदिकाम् ॥१२९॥
 वदिका तामसिन्नम्य सज्जगाह^७ परा^८ भुवम् । नानाकरपुरग्रामसीमारामैरलङ्कृताम् ॥१३०॥
 प्रविष्टमात्र एवास्मिन् प्रजाह्वासमुपाययु । सम^९ दारगवैरन्या घटन्ते स्म^{१०} पलायितुम् ॥१३१॥
 कचित् कृतधियो धीरा सार्घा पुण्याक्षतादिभि । प्रत्यग्रहीपुरभ्येत्य सबल बलनायकम् ॥१३२॥
 न भतव्य न भतव्यमाध्वमाध्व यथासुखम् । इत्य^{११} स्याज्ञाकरो^{१२} विष्वग्भ्रेसुराश्वासितप्रजा ॥१३३॥
 म्लेच्छरसण्डमसण्डाश्च परिक्रामन् प्रदक्षिणम् । तत्र तत्र विभोराज्ञा म्लच्छराजैरजिग्रहत^{१३} ॥१३४॥
 इदं चक्रवर्त्तक्षेत्रं स वैय निकटे^{१४} प्रभु । तमाराधयितुं यूय त्वरध्व सह साधनै^{१५} ॥१३५॥
 भरतस्यादिराजस्य चक्रिणोऽप्रतिशासनम्^{१६} । शासन शिरसा दध्म^{१७} यूयमित्यन्वशाश्च^{१८} तान् ॥१३६॥

कारण चिल्ला ही रहे हो, उहे दु खसे पसीना ही आ गया हो और गुफाके भीतरकी गरमी से उनके प्राण ही निकले जा रहे हों ॥१२४॥ जिसके किवाड खुल गये है ऐसे द्वारसे गरमी को निकालता हुआ वह विजयाध पवत ऐसा जान पड़ता था मानो बहुत दिन बाद उसने उच्छ्वास ही लिया हो ॥१२५॥ दोनो किवाडोंके खुलनेसे एक बड़ा भारी शब्द हुआ था और वह ऐसा जान पड़ता था मानो दण्डरत्नके द्वारा ताडित हुए पवतके रोनेका शब्द ही हो ॥१२६॥ बेगशाली अश्वरत्न जिसे बहुत दूर तक भगा ल गया है और देवताओने जिसकी रक्षा की है ऐसे उस सेनापतिको गुफाकी गरमी छू भी नहीं सकी थी ॥१२७॥ उस समय उस सेना पतिपर देवागनाओके कटाक्षोके साथ-साथ आकाशसे फूलोके समूह पड़ रहे थे और वे जयलक्ष्मी के हासक समान जान पड़ते थे ॥१२८॥ सेनापति सीढ़ियोसहित विजयाध पवतके किनारे को वेदीको उल्लंघन करता हुआ तोरणसहित सिन्धु नदीके पश्चिम ओरवाली वनकी वेदिका के सम्मुख पहुचा ॥१२९॥ उसने उस वेदिकाको भी उल्लंघन कर अनेक खानि, पुर, ग्राम, सीमा आर याग उगीचोसे सुन्दर म्लच्छखण्डकी उत्तम भूमिमें प्रवेश किया ॥१३०॥ उस भूमिमें सेनापतिक प्रवेश करते ही वहाकी समस्त प्रजा घबड़ा गयी, उसमें-से कितने ही लोग म्रिया तथा गाय भस आदिके साथ भागनेके लिए तैयार हो गये ॥१३१॥ कितने ही बुद्धिमान् तथा धीर वीर पुरप पवित्र अक्षत आदिका वना हुआ अर्घ लकर सेनासहित सेनापतिके सम्मुख गये और उसका सत्कार किया ॥१३२॥ अरे डरो मत, डरो मत, जिसको जिस प्रकार सुख हा उसी प्रकार रहो इस प्रकार प्रजाको आश्वासन देते हुए चक्रवर्त्तकि सेवक चारो ओर घूमे थे ॥१३३॥ अखण्ड आनाका धारण करनेवाला वह सेनापति प्रदक्षिणा रूपसे म्लेच्छखण्ड में घूमना हुआ जगह-जगह म्लच्छ राजाआस चक्रवर्त्तकी आज्ञा स्वीकृत करवाता जाता था ॥१३४॥ सेनापतिने म्लच्छ राजाआका यह भी सिखलाया कि यह चक्रवर्त्तिका क्षेत्र है और वह प्रसिद्ध चक्रवर्त्ती समीप ही है इसलिए तुम सब अपनी-अपनी सेनाआके साथ उनकी सेवा करनेके लिए गौत्रता करो । चक्रवर्त्ती भरत इस युगके प्रथम अथवा सबसे मुख्य राजा हैं इसलिए कभी भंग नहा जानेवाली उनकी आज्ञाका तुम सब अपने मस्तकपर धारण करो ॥१३५-१३६॥

१ न आग्निनि । अग्निनि । अग्निपुत्रम् । ४ प्रक्षिपति स्म । मग्नाह ८० । ५ पवित्रमाम ।
 (अममाम) कर्त्तव्यनिधि । ७ घटन्ते स्म । ८ यथासुख निष्ठन । ९ सनाय । १० भूया । ११ अग्नाह
 यत् । १२ सम १ आग्नि । १३ न विद्यत प्रतिशासनं यस्य । १४ धारयत । १५ गति स्म ।

जाता वय धिरादय मनाथा इत्युदाशिपः^१ । केचिच्चक्रधरस्याज्ञामगता^२ प्रत्यपसत^३ ॥१३७॥
 मधिविग्रहयानादिपाङ्गुण्यवृत्तविग्रमाः । वलात प्रमाणिताः केचिद् ऐश्वर्यलवङ्गिताः ॥१३८॥
 कांश्चिद्गुर्गाश्रितान् म्लेच्छानवस्कन्दनिरोधनै^४ । सेनानीर्वगमानिन्ये नमत्यज्ञोऽधिकं क्षतः^५ ॥१३९॥
 केचिद् बलैरब्रष्टव्या स्तत्पीडां सोढुमश्रमाः । गामने चक्रिणस्तरथुः स्नेहो नार्पीलितात खलात ॥१४०॥
 इत्युपायैरुपायज्ञः साधयन्म्लेच्छभूभुजः । तेभ्यः कन्यादिरत्नानि प्रभोर्भोग्यान्युपाहरत ॥१४१॥
 धर्मकर्मवहिर्भूता इत्यर्मी म्लेच्छका मताः । अन्यथाऽन्यैः^६ समाचारैरार्यावर्तेन^७ ते ममाः ॥१४२॥
 इति प्रसाध्य तां भूमिमभूमि^८ धर्मकर्मणाम् । म्लेच्छराजवलैः साद्वै^९ सेनानीन्यवृत्तन् पुनः ॥१४३॥
 रराज राजराजस्य साध्वरत्वचमृपतिः । सिद्धदिग्विजयी जैत्रः प्रताप इव मूर्तिमान् ॥१४४॥
 सतोरणामतिक्रम्य स सिन्धोर्वनवेदिकाम् । विगाढञ्च^{१०} ससोपानां रूप्याद्रेस्तटवेदिकाम् ॥१४५॥
 आरूढो जगतीमद्रेच्यूदोरस्को^{११} महाभुजः । पङ्क्तिर्मसिः प्रशान्तांप्स सोऽध्यवासीद् गुहामुखम्^{१२} ॥१४६॥
 तत्रार्मीनश्च सगोध्य बह्वपाय गुहोहरम् । कृतारक्षाविधिः सम्यक् प्रत्यायाच्छिविर^{१३} प्रभोः ॥१४७॥

‘आज हम लोग बहुत दिनमे सनाथ हुए हैं इसलिए जोर-जोरसे आशीर्वाद देते हुए कितने ही बुद्धिमान् लोगोने चक्रवर्तीको आज्ञा स्वीकृत की थी ॥१३७॥ जिन्होने सन्धि, विग्रह और यान आदि छह गुणोमे अपना पराक्रम दिखाया था और जो थोड़े-से ही ऐश्वर्यसे उन्मत्त हो गये थे ऐसे कितने ही राजाओसे सेनापतिने जबरदस्ती प्रणाम कराया था ॥१३८॥ किलेके भीतर रहनेवाले कितने ही म्लेच्छ राजाओको सेनापतिने उनका चारो ओरसे आवागमन रोककर वश किया था सो ठीक ही है क्योंकि अज्ञानी लोग अधिक दुःखी किये जानेपर ही नम्रोभूत होते हैं ॥१३९॥ कितने ही राजा लोग सेनाओके द्वारा धिक्कर उससे उत्पन्न हुए दुःखको सहन करनेके लिए असमर्थ हो चक्रवर्तीके शासनमे स्थित हुए थे, सो ठीक ही है क्योंकि बिना पेले खल अर्थात् खलीसे स्नेह अर्थात् तेल उत्पन्न नहीं होता (पक्षमे बिना दुःखी किये हुए खल अर्थात् दुर्जनसे स्नेह अर्थात् प्रेम उत्पन्न नहीं होता) ॥१४०॥ इस प्रकार उपायोको जाननेवाले सेनापति-ने अनेक उपायोके द्वारा म्लेच्छ राजाओको वश किया और उनसे चक्रवर्तीके उपभोगके योग्य कन्या आदि अनेक रत्न भेटमे लिये ॥१४१॥ ये लोग धर्मक्रियाओसे रहित हैं इसलिए म्लेच्छ माने गये हैं, धर्मक्रियाओके सिवाय अन्य आचरणोसे आर्यखण्डमे उत्पन्न होनेवाले लोगोके समान हैं ॥१४२॥ इस प्रकार वह सेनापति, धर्मक्रियाओसे रहित उस म्लेच्छभूमिको वश कर म्लेच्छराजाओकी सेनाके साथ फिर वापस लौटा ॥१४३॥ जिसने दिग्विजय कर लिया है, सबको जीतना ही जिसका स्वभाव है, और जो अश्वरत्नसे सहित है ऐसा वह राजाधि-राज भरतका सेनापति ऐसा सुगोभित हो रहा था मानो मूर्तिमान् प्रताप ही हो ॥१४४॥ तोरणोसहित सिन्धु नदीके वनकी वेदीको उल्लघन कर वह सेनापति सीढियोसहित विजयार्थ पर्वतके वनकी वेदीपर जा चढा ॥१४५॥ जिसका वक्ष स्थल बहुत बड़ा है और जिसकी भुजाएँ बहुत लम्बी हैं ऐसा वह सेनापति पर्वतकी वेदिकापर चढकर छह महीनेमे जिसकी गरमी शान्त हो गयी है ऐसी गुफाके द्वारपर ठहर गया ॥१४६॥ वहाँ ठहरकर उसने अनेक विघ्नो-से भरे हुए गुफाके भीतरी भागको शुद्ध (साफ) कराया और फिर अच्छी तरहसे उसकी रक्षा

१ उद्गताशीर्वाचना । २ निष्कपटवृत्तयो भूत्वा । ३ अङ्गीकार कृतवन्त । ४ घाटीनिरोधनै । निग्रहस्तु निरोध स्याद् इत्यमरः । अम्बासाधनात्मकनिग्रहै । उक्त च विदग्धचूडामणौ ‘अभ्यवस्कन्दनं त्वम्बामाधनम्’ (घरेका नाम) । ५ अधिक पीडितो भूत्वा । ६ वेष्टिता । ७ विवाहादिभि । ८ पुण्यभूम्या आर्याखण्डे-नेत्यर्थः । ‘आर्यावर्तं पुण्यभूमि’ इत्यभिव्यानात् । ९ अस्थानम् । १० प्रविष्ट । ११ विशालवक्षस्थल । १२ तस्यो । १३ गुहाद्वारम् । १४ स्कन्धावार प्रत्यागात् ।

अथ समुद्रमागम्य सार्वाकैर्नृपसत्तमैः । प्रत्यगृह्यत सेनानीः सज्जयानकनिःस्वनम् ॥१४८॥
 विमनस्तोरणामुच्चैः प्रचलत्कतुर्भालिकाम् । महावीथीमतिक्रम्य प्राविक्षत् स नृपालयम् ॥१४९॥
 तुरगमधराद्दूरान् कृत्वावतरणं कृत्वा । प्रमोदनासनस्थस्य प्रापदास्थानमण्डपम् ॥१५०॥
 दूरान्तघलन्मौलिसिद्धकरकुटुम्बल । प्रणनाम प्रमुग्धम्यैर्वाक्ष्यमाण सविस्मितैः ॥१५१॥
 सुतरज्यकारणं म्लेच्छराजं ससाध्वसम् । प्रणेम प्रमुरम्यत्य ललाटस्पृष्टभूतलैः ॥१५२॥
 तदुपाहृत रक्षाधैर्यं च यक्षपङ्क्तिरिति । नामावशं च तानस्मै प्रमवेऽसौ म्भवेदयत् ॥१५३॥
 सप्रसादं च समानं सत्कृतास्ते महीभुजः । प्रमोदनुमताद्भूय स्वमोकं प्रत्ययासिपुः ॥१५४॥
 इत्थं पुण्योदयाचक्री बलात् प्रत्यतपालकान् । विजित्यै दण्डमात्रेण जयं पुण्यास्ते कुतः ॥१५५॥

मालिनी

अथ नृपतिसमाजेनाचितं सामुरागं विजितसकलदुःखं ग्रहयन् म्लेच्छनाथान् ।
 पुनरपि विनयायायोजि सौऽग्रेसरत्वे जयं ह्य जयविह्वैर्मानितो रत्नमन्त्रा ॥१५६॥
 जयति जिनवराणः शासनं यत्प्रसादात् पदमिदमधिराजा प्राप्यते हेतुयैव ।
 समुचितनिधिरक्षप्राज्यभोगोपभोगप्रकण्ठिसुखसारं भूरि सपत्न्यसारम् ॥१५७॥

का उपाय कर वह चक्रवर्तीकी छावनीमें वापस लौट आया ॥१४७॥ सेनापतिके वहाँ पहुँचने पर अनेक उत्तम-उत्तम राजाओंने अपनी सेनाओंके साथ सामने जाकर विजयसूचक नगाडोंके शब्दाके साथ-साथ उसका स्वागत-सत्कार किया ॥१४८॥ जिसमें अनेक तोरण लगे हुए हैं और जिसमें बहुत ऊँची अनेक पताकाओंके समूह फहरा रहे हैं ऐसे राजमागको उल्लङ्घन कर वह सेनापति महाराज भरतके डेरेमें प्रविष्ट हुआ ॥१४९॥ वह व्यवहार कुशल सेनापति दूरसे ही उत्तम घोड़ेपर-से उतर पड़ा और जहाँ महाराज भरत राजसिंहासनपर बैठे हुए थे उस सभा मण्डपमें जा पहुँचा ॥१५०॥ दूरसे ही झुके हुए चंचल मुकुटपर जिसने अपने दोनों हाथ जोड़कर रखे हैं और सभासद् लोग जिसे आश्चर्यके साथ देख रहे हैं ऐसे सेनापतिने महाराज भरतकी नमस्कार किया ॥१५१॥ जिन्होंने अपने ललाटसे पृथिवीतलका स्पर्श किया है और जो जय जय शब्द करनेसे बाधालित हो रहे हैं ऐसे म्लेच्छ राजाओंने भयसहित सामने आकर भरत को नमस्कार किया ॥१५२॥ उन म्लेच्छ राजाओंके द्वारा उपहारमें लाये हुए रत्न आदिको सामने रखकर सेनापतिने महाराज भरतस नाम ल लेकर सबका परिचय कराया ॥१५३॥ महाराजने प्रसन्नताके साथ सम्मान करके उन सब राजाओंका सत्कार किया तदनन्तर व राजा महाराजकी अनुमतिमें अपने-अपने स्थानपर वापस चल गये ॥१५४॥ इस प्रकार चक्रवर्ती ने पुण्य कर्मने उन्त्यमें केवल दण्डरत्नक द्वारा ही म्लेच्छ राजाओंको जबरदस्ती जीत लिया था सा ठीक ही है क्याकि पुण्य विना विजय कहाँसे हो सकती है ? ॥१५५॥

अथानन्तर-अनर राजाओंने समूहने प्रमूवक जिसका सत्कार किया है जिसने मद्र विल जीत लिये हैं जिमने म्लेच्छ राजाओंका नम्रीभूत किया है, जो साक्षात् विजयके सामान मुनामित हा रहा है और विजयन चिह्नसे जिसका सम्मान किया गया है ऐसे उस सेनापति का रनाय स्वामा भरत महाराजने विजय प्राप्त करनेके लिए फिर भी प्रधान सेनापतिक पदपर नियुक्त किया ॥१५६॥ याग्य निधियाँ रत्न तथा उत्कृष्ट भोग-उपभोगकी वस्तुआ

१ मन्त्र । २ म्लेच्छराजस्य आहूत । ३ पूजयन् । ४ प्रभा ममोप नीत । ५ नामोदयम् । ६ म्लेच्छ राजान् । ७ निरावार्य मन्त्रियम् । ८ म्लेच्छराजान् प्रत्यन्ता म्लेच्छराज स्यान्त्यभिधानान् ।

शार्दूलविक्रीडितम्

छत्र चन्द्रकरापहासि रुचिरं चामीकरप्रोज्ज्वलद्-

दण्डं चामरयुग्मकं सुरसरिङ्घिण्डीरपिण्डच्छविः ।

रुक्माद्रेरिव सत्रिभक्तमपरं कूटं मृगेन्द्रासन

लेभेऽसौ विजयार्द्धनाथविजयाद्रत्नान्ययान्यान्यपि ॥१५८॥

गीर्वाणः कृतमाल इत्यभिमत संपूज्य तं सादरं

^१प्रादादामरणानि यानि न पुनस्तेषामिहास्त्युन्मितिः^२ ।

सन्नाट् तैरचका^३ दलकृततनु कल्पद्रुम. पुष्पितो

मेरो. सानुमिवाश्रितो मणिमयं सोऽध्यासितो विष्टरम् ॥१५९॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणमहापुराणसंग्रहे

विजयार्द्धगुहाद्वारोद्धाटनवर्णनं नामैकत्रिंशं पर्व ॥३१॥

■

के द्वारा जिसमे सुखोका सार प्रकट रहता है, और जिसमे अनेक सम्पदाओका प्रसार रहता है ऐसा यह चक्रवर्तीका पद जिसके प्रसादसे लीलामात्रमे प्राप्त हो जाता है ऐसा यह जिनेन्द्र भगवान्का शासन सदा जयवन्त रहे ॥१५७॥ महाराज भरतने विजयार्द्ध पर्वतके स्वामीको जीतकर उससे चन्द्रमाकी किरणोकी हँसी करनेवाला सुन्दर छत्र, सुवर्णमय देदीप्यमान दण्डोसे युक्त तथा गंगा नदीके फेनके समान कान्तिवाले दो मनोहर चमर, सुमेरु पर्वतसे अलग किये हुए उसके शिखरके समान सिंहासन तथा और भी अन्य अनेक रत्न प्राप्त किये थे ॥१५८॥ 'कृतमाल' इस नामसे प्रसिद्ध देवने सत्कार कर महाराज भरतके लिए जो आभूषण दिये थे इस भरतक्षेत्रमें उनकी उपमा देने योग्य कोई भी पदार्थ नहीं है । उन अनुपम आभूषणोसे जिनका शरीर अलंकृत हो रहा है और जो मणियोंके बने हुए सिंहासनपर विराजमान है ऐसे महाराज भरतेश्वर उस समय मेरु पर्वतके शिखरपर स्थित फूले हुए कल्प वृक्षके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१५९॥

इस प्रकार आर्व नामसे प्रसिद्ध, भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपटिलक्षण महापुराणमग्नहके

हिन्दी भाषानुवादमे विजयार्द्ध पर्वतकी गुफाका द्वार उघाडनेका

वर्णन करनेवाला इकतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

■

द्वात्रिंशत्तम पर्व

अथान्यद्युत्पारुडसभ्रमेवलनायकै । प्रत्यपाव्यत^१ सनद्धं प्रयाणसमय प्रभो ॥१॥
 गजताश्वायथ्यानां पादाताना च सकुलै । न नृपाजिरमेवासीद् रुद्धमद्वेवना^२ यपि ॥२॥
 नयकुञ्जरमारु परातो^३ नृपकुञ्जरै । रेजे^४ नियन्त्रयाणाय सम्राट् शक्र इवामरै ॥३॥
 किञ्चिन् पश्चात्सुर^५ गरा सेनान्या शोधिते पयि । ध्वजिनी सकुच यासीदीर्याशुद्धिं श्रितेष सा ॥४॥
 प्रगुणस्थानसोपाना^६ रूप्याङ्गे श्रेणिसभ्रमात् । मुने शुद्धिरिव श्रेणामारुढा सा पताकिनी^७ ॥५॥
 तमिन्नति गुहा यासी गिरिव्याससमायति^८ । उच्छ्रिता योजनायधौ^९ ततोऽर्द्धाधिकविस्तृति^{१०} ॥६॥
 वाञ्छ कषाट्योयुग्म या स्वोच्छ्रायमितोच्छ्रति । दध्ने पृथक्^{११} स्वविष्कम्भसाधिकद्व्यशविस्तृति^{१२} ॥७॥
 परा यमणिनिर्माणरुचिमद्द्वारक^{१३} यना । तदधस्तलनिस्सप्तसि^{१४} धुञ्जोतोविराजिता ॥८॥
 अश्वनयोद्घाटना^{१५} न्यपा मुक् वा चक्रिचमूपतिम् । तश्चिरगलितत्वाच्च^{१६} प्रागेव कृतनिवृति^{१७} ॥९॥

अथानन्तर—दूसरे दिन जिहें जल्दी हो रही है और जो हरएक प्रकारसे तैयार है ऐसे सेनापति लोग चक्रवर्तीके चलनेके समयकी प्रतीक्षा करने लगे ॥१॥ हाथियोंके समूह, घोड़ोंके समूह रथोंके समूह और पैदल चलनेवाले सैनिक, इन सबकी भीडसे केवल महा राजका आंगन ही नहीं भर गया था किन्तु विजयाघ पवतके वन भी भर गये थे ॥२॥ विजयी हाथीपर चढ़ा हुआ और अनेक श्रेष्ठ राजाओंसे घिरा हुआ चक्रवर्ती जब विजयके लिए निकला तब ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि ऐरावत हाथीपर चढ़ा हुआ और देवोंसे घिरा हुआ इन्द्र सुशोभित होता है ॥३॥ भरतकी वह सेना कुछ पश्चिमकी ओर जाकर सेनापतिके द्वारा घुड़ किये हुए भागमे सकुचित होकर चल रही थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो वह ईर्यापथ गुदिका ही प्राप्त हुई हो ॥४॥ जिस प्रकार मुनियोंकी विशुद्धता उत्तम गुणस्थान (आठव, नावें दशवें रथो मीनियोंसे युक्त श्रेणी (उपशम श्रेणी अथवा क्षपकश्रेणी) पर चढ़ती है उमो प्रकार चक्रवर्तीकी सेना जिसपर उत्तम सीढ़ियां बनी हुई है ऐसी विजयार्थ पवत का श्रेणीपर जा चढ़ी थी ॥५॥ वहाँ तमिसा नामकी वह गुफा थी जो कि पवतकी चौड़ाई के बराबर लम्बी थी, आठ योजन ऊँची थी और उससे डेढ़दी अर्थात् बारह योजन चौड़ी थी जो अपनी ऊँचाईके बराबर ऊँचे और कुछ अधिक छह-छह योजन चौड़े वज्रमयी किवाड़ोंके युगल धारण कर रही थी जिसके दरवाजेकी चौखट महामूल्य रत्नोंसे बनी हुई होनेसे अत्यन्त देदीप्यमान थी जा अपने नीचेम निकलते हुए सिन्धु नदीके प्रवाहसे सुशोभित थी, चक्रवर्तीके सेनापतिना छाड़कर जिसे और कोई उपाड नहीं सकता था, जो सेनापतिके द्वारा पहल ही उपाड ने जानस गात पड गयी थी—भीतरकी गरमी निकल जानेसे ठण्डी पड गयी थी । जो यद्यपि जगन्नी मृष्टि^१ समान अनात्ति^२ थी तथापि किमीव द्वारा बनायी हुईके समान मालम

१ प्रतीत्यन रम । २ मीयानाम् २० । पतातीनाम् २० । ४ परिवृत । ५ निगच्छन् । ६ पश्चिमाभि मगम । ७ कजमस्थानमापाना प्रवृष्टगुणस्थानसोपानाच । ८ सेना । ९ पञ्चाग्योजनयामति भाव । १० अष्टयोजनान्धान । ११ गन्गयोजनविस्तारत्वय । १२ यमल्लवार्ण एनकवार्णम् । १३ द्वाग्योजन विगारव गुणरा माधिकिनीय विस्तारम् । यमल्लवार्ण एनकवार्णस्य माधिकययोजनविस्तृति रित्य । १४ गारवार्णयस्तननिगच्छन् । देव्या अयमन्त्र निगच्छन्ति भाव । १५ तेन चमूपनिना ममपात्तिवशात्तान । १६ द्योतनाभि ।

जगत्स्थितिरिवानाद्या घटितेव^१ च केनचिन्^२ । जैनी^३ श्रुतिरिवोपात्तगाम्भीर्या मुनिभिर्मता ॥१०॥
व्यायता जीवितागेव मूच्छेव च तमोमयी । गतेबोलाघता^४ कृच्छ्रान्मुक्तोष्मा गोधितोदरा^५ ॥११॥
कुटीव च प्रसूताया निषिद्धान्यप्रवेगना । कृतरक्षाविधिद्वारे धृतमङ्गलसंविधिः ॥१२॥
तामालोक्य बलं^६ जिष्णोर्दूरादासीत्स साध्वसम् । तमसा सूचिभेदेन कज्जलेनेव सभृताम् ॥१३॥
चक्रिणा ज्ञापितो भूयः सेनानीः सपुरोहितः । तत्तमोनिर्गमोपाये प्रयत्नमकरोत्ततः ॥१४॥
काकिणीमणिरत्नाभ्या प्रतियोजनमालिखत् । गुहाभित्तिद्वये सूर्यसोमयोर्मण्डलद्वयम् ॥१५॥
तत्प्रकाशकृतोद्योतं मज्ज्योत्स्नातमसंनिधिम् । गुहामध्यमपध्वान्तं व्यगाहत ततो बलम् ॥१६॥
चक्ररत्नज्वलद्दीपे ससेनान्या^७ पुरः स्थिते । बलं तदनुमार्गेण प्रविमज्ज्य द्विधा ययौ ॥१७॥
परिमिन्धु^८ नदीस्रोतः प्राक् पश्चाच्चोमयोः^९ पथोः । बलं^{१०} प्रायज्जलं सिन्धोरुपयुज्योपयुज्य तत् ॥१८॥
पथि द्वैधे^{११} स्थिता तस्मिन् सेनाग्रण्या नियन्त्रिता^{१२} । सा चम्^{१३} संशयद्वैधे^{१३} तदा प्रापद् दिगाश्रयम्^{१४} ॥
ततः प्रयाणकै^{१५} कैश्चिन प्रभूतयवसोदकै^{१५} । गुहार्द्धसंमितां^{१६} भूमिं व्यतीयाय^{१७} पतिर्विशाम् ॥२०॥

होती थी, अत्यन्त गम्भीर (गहरी) होनेके कारण जिसे मुनि लोग जिनवाणीके समान मानते थे क्योंकि जिनवाणी भी अत्यन्त गम्भीर (गूढ़ अर्थोंसे भरी हुई) होती है । जो जीवित रहनेकी आशाके समान लम्बी थी, मूच्छकि समान अन्धकारमयी थी, गरमी निकल जाने तथा भीतरका प्रदेश शुद्ध हो जानेसे जो नीरोग अवस्थाको प्राप्त हुईके समान जान पड़ती थी, जिसमे चक्रवर्तीकी सेनाको छोड़कर अन्य किसीका प्रवेग करना मना था, जिसके द्वारपर रक्षाकी सब विधि की गयी थी, जिसके समीप मगलद्रव्य रखे हुए थे और इसलिए जो प्रसूता (वच्चा उत्पन्न करनेवाली) स्त्रीकी कुटी (प्रसूतिगृह) के समान जान पड़ती थी ॥६-१२॥ सुईकी नोकसे भी जिसका भेद नहीं हो सकता ऐसे कज्जलके समान गाढ़ अन्धकारसे भरी हुई उस गुफाको देखकर चक्रवर्तीकी सेना दूरसे ही भयभीत हो गयी थी ॥१३॥ तदनन्तर जिसे चक्रवर्तीने आज्ञा दी है ऐसे सेनापतिने पुरोहितके साथ-साथ, उस अन्धकारसे निकलनेका उपाय करनेके लिए फिर प्रयत्न किया ॥१४॥ उन्होने गुफाकी दोनों ओरकी दीवालोपर काकिणी और चूडामणि रत्नसे एक-एक योजनकी दूरीपर सूर्य और चन्द्रमाके मण्डल लिखे ॥१५॥ तदनन्तर उन मण्डलोके प्रकाशसे जिसमे प्रकाश किया जा रहा है, चाँदनी और धूप दोनों ही जिसमे मिल रहे हैं तथा जिसका सब अन्धकार नष्ट हो गया है, ऐसे गुफाके मध्य भागमे सेनाने प्रवेग किया ॥१६॥ आगे-आगे सेनापतिके साथ-साथ चक्ररत्नरूपी देदीप्यमान दीपक चल रहा था और उसके पीछे-पीछे उसी मार्गसे दो भागोमे विभक्त होकर सेना चल रही थी ॥१७॥ वह सेना सिन्धु नदीके प्रवाहको छोड़कर पूर्व तथा पश्चिमकी ओरके दोनों मार्गोमे सिन्धु नदीके जलका उपयोग करती हुई जा रही थी ॥१८॥ उन दोनों मार्गोपर चलती हुई तथा सेनापतिके द्वारा वश की हुई वह सेना उस समय दिगाओमम्बन्धी मगयकी द्विविधताको प्राप्त हो रही थी अर्थात् उसे इस बातका मगय हो रहा था कि पूर्वदिशा कौन है ? और पश्चिम दिशा कौन है ? ॥१९॥ तदनन्तर जिनमे घास और पानी अधिक है ऐसे कितने ही मुकाम चलकर महाराज

१ निर्मितेव । २ केनचित् पुरुषेण । ३ परमागम । ४ ऋजुत्व गतेव । 'उल्लाघो निर्गन्तो गदान्' । ५ गोधितान्तरालं । ६ गुहाम् । ७ सेनापतिमन्त्रिणे । ८ सिन्धुनदीप्रवाह वर्जयित्वा । पश्चिद्दम्य वर्जनार्थत्वात् । ९ पश्चान् पूर्वपरः । १० अगच्छत् । ११ द्विप्रकारवती । १२ नियमिता । १३ मगयभेद मगयविनाश वा । १४ उपदेशाश्रय वा मगयभेद प्राप । पूर्वदिशिभेदे सेना नन्देह्वनी जानेत्यर्थः । १५ नृण, ग्राम । 'घामो यवम नृणमर्जमिन्वनिग्रानान्' । १६ गुहानामर्द्धप्रमिताम् । १७ अन्यगान् ।

'यत्रो-मग्नजला सि-धुर्निमग्नजलया समम् । प्रविष्टा त्रियगुद्देश^१ त^३ प्राप बलमीशितु ॥२१॥
 तयोरारात्तटे सै-य निवेश्य भरतेश्वर । वैषम्यमुभयोनद्यो प्रेक्षाचक्रे सकौतुकम् ॥२२॥
 पङ्काऽथ पातयत्य-या^२ दार्वाद्युप्लावत्यरम् । मिथो विरुद्धसगवे सगते त कथयन् ॥२३॥
 नद्यारत्तरणोपाय को नु स्यादिति तदयन् । द्रुतमाह्वापयामास तत्रस्थ स्थपतिं पतिं ॥२४॥
 'तयोरारात्तटे पश्यन् पतन्निपतजलम् । दृष्ट्वैव तुलयामास^३ जलाञ्जलिमिव^४ क्षणम् ॥२५॥
 उपयुच्छवामयत्यनां महान् वायु स्फुरन्ध्र । वायुस्तदन्यथावृत्तिं रमुप्या च विजृम्भत ॥२६॥
 उपनाहादत^५ कोऽन्य प्रतीकारोऽनयोरिति । निषग्वर इवारमे सक्त्रमोपक्रम^६ कृती ॥२७॥
 अमानुषवर्णपु य केचन महाद्भुता । स तानानाययामास^७ दिव्यशक्त्यनुभावत ॥२८॥
 सारदारमिहत्तम्य^८ स्तम्भानन्तजलस्थितान्^९ । स्थपति स्थापयामास^{१०} तेषामुपरि सक्त्रमम्^{११} ॥२९॥
 बलव्यसनमाशङ्क्य^{१२} चिरवृत्तौ^{१३} स धारधी । क्षणाभिप्यादयामास सक्त्रम प्रभुशासनात् ॥३०॥
 कृत बलकल सै-यनिष्ठित सेतुकमणि । तत्रैव च बल कृत्स्नमुत्तार पर तटम्^{१४} ॥३१॥

भरतने गुफाकी आधी भूमि तय की ॥२०॥ और जहाँपर उमग्नजला नदी 'निमग्नजला
 नदीके साथ-साथ दोनों तरफकी दीवालोकें कुण्डोसे निकलकर सिधु नदीमें प्रविष्ट होती
 है उस स्थानपर चक्रवर्तीकी सेना जा पहुची ॥२१॥ महाराज भरतेश्वर उन दोनों नदियों
 के किनारेके समीप ही सेना ठहराकर कौतुकके साथ उन दोनों नदियोंकी विपमता देखने लगे
 ॥२२॥ इन दोनोंमें-से एक अर्थात् निमग्नजला तो लकड़ी आदिको शीघ्र ही नीचे ल जा रही
 है और दूसरी अर्थात् उमग्नजला प्रत्येक पदार्थको शीघ्र ही ऊपरकी ओर उछाल रही है ।
 यद्यपि ये दोनों परस्पर विरुद्ध ह तथापि किसी प्रकार यहा आकर सिधु नदीमें मिल रही ह
 ॥२३॥ इन नदियोंके उतरनेका उपाय क्या है ? इस प्रकार विचार करते हुए चक्रवर्तीने
 वहाँ खड़े-खड़े ही शीघ्र ही अपने स्थपति (सिलावट) रत्नको बुलाया ॥२४॥ जिनका पानी
 ऊपर तथा नीचेकी ओर जा रहा है ऐसी उन दोनों नदियोंको देखते हुए सिलावट रत्नने उन्हें
 अपनी दृष्टिमात्रसे ही क्षण भरमें अजलि भर जलके समान तुच्छ समझ लिया ॥२५॥ उसने
 समझ लिया कि इस उमग्नजला नदीको इसके नीचे रहनेवाला महावायु ऊपरकी ओर उछा
 लता है और इस निमग्नजला नदीको उसके ऊपर रहनेवाला महावायु नीचेकी ओर ले जाता
 है ॥२६॥ इसलिए इन दोनोंका पुल बाँधनेके सिवाय और क्या उपाय हो सकता है ऐसा
 विचार कर उत्तम बढाये समान कायकुशल सिलावट रत्नने उन नदियोंके पार होनेका उपाय
 अयात् पुल बाँधनेका उपाय प्रारम्भ कर दिया ॥२७॥ उसने अपनी दिव्य शक्तिकी सामर्थ्यसे
 निजन बनाम जा कुछ बड़े-बड़े वृक्ष ये व भँगवाये । भावाथ - अपने आश्रित देवोंके द्वारा
 मघन जगलासे बड़े-बड़े वृक्ष भँगवाये ॥२८॥ उसने मजबूत लकड़ियोंके द्वारा जलके भीतर
 मजबूत समूहे खड़े कर उनपर पुल तयार कर दिया ॥२९॥ अधिक समय लगनेपर सेनाको
 दुःख होगा इस बातका विचार कर उस गम्भीर बुद्धिके धारक सिलावटने भरतेश्वरकी आज्ञा
 में क्षण भरमें ही पुल तयार कर लिया था ॥३०॥ पुल तैयार होने ही सेनाओंने आनन्दसे
 बालाहक किया और उमा समय चक्रवर्तीकी समस्त सेना उत्तरकर नन्धिवे उस किनारे

१ यस्मिन् प्रदेशे । २ पुरापरमिति न्यन्तान् निगद्य । ३ प्रदेशम् । ४ काष्ठाणि । ५ स तत्रोन्मयम् ल० ६०,
 अ १ म० । ६ उन्मयः । ७ उत्पन्ननिपनरूपत्वात् अत्रलियुक्तजलवन । ८ अधोगमनवृत्तिः । ९ बधनान्
 रिता । १० मज्जमम् । ११ आनन्दम् । १२ निपत्य । १३ जलस्थितान् ब० २० । जले स्थितान् ६० ।
 १४ आनन्दम् । १५ मज्जम् । १६ बन्धनं योहा भविष्यन्ति विगच्छन् । १७ चिरकालेऽतीतं सति ।
 १८ अतः ।

नायकैः सममन्येद्युः प्रभुर्गजघटावृतः । महापथेन तेनैव जलदुर्गं व्यलङ्घयत ॥३२॥
 ततः कतिपयैरेव प्रयाणैरतिवाहितैः^१ । गिरिदुर्गं विलङ्घ्योदग्गुहाद्वारं रमवासदत ॥३३॥
 निरगलीकृतं द्वारं^२ पौरस्त्यैरिभसाधनैः । व्यतीत्य प्रभुरस्याद्रेरधुवास वनावनिम्^३ ॥३४॥
 अधिशय्य गुहागर्भं चिरं मातुर्विवोदरम् । लब्धं जन्मान्तरं मेने^४ नि सृते सैनिकैर्वहिः ॥३५॥
 गुह्यमतिगृध्रेव^५ गिलित्वा^६ जनतामिमाम् । जरणाशक्तितो^७ नूनमुज्जगाल^८ वहिः पुनः ॥३६॥
 व्यजनैरिव शाखाग्रैर्वीजयन् वनवीरुधाम् । गुहोष्मणां चिरं खिन्नां चमूमाश्वासयन्मरुत् ॥३७॥
 तद्वनं पवनाधृतं चलच्छाखाकरोत्करैः । प्रभोरुपागमे तोषान्ननर्तेव धृतार्तवम्^९ ॥३८॥
 पूर्ववत् पश्चिमे खण्डे बलाग्रण्या प्रसाधिते । विजेतुं मध्यमं खण्डं साधनैः प्रभुरुद्ययौ ॥३९॥
 न करैः पीडितो लोको न भुवः शोषितो रसः । नार्केणेव जनस्तस्य प्रभुणाऽभ्युद्यताप्युदक्^{१०} ॥४०॥
 कौबेरी दिशमास्थाय^{११} तपत्येकान्ततः^{१२} करैः । भानुर्भरतराजस्तु भुवस्तापमपाकरोत् ॥४१॥
 कृतव्यूहानि^{१३} सैन्यानि संहतानि^{१४} परस्परम् । नातिभूमि ययुर्जिष्णोर्न स्वैरं परिवभ्रमुः^{१५} ॥४२॥

पर जा पहुँची ॥३१॥ दूसरे दिन हाथियोंके समूहसे घिरे हुए महाराज भरतने अनेक राजाओं-
 के साथ-साथ उसी जलमय महामार्गसे कठिन रास्ता तय किया ॥३२॥ तदनन्तर कितने ही
 मुकाम चलकर और उस पर्वतरूपी दुर्ग (कठिन मार्ग) को उल्लघन कर वे उस गुफाके उत्तर
 द्वारपर जा पहुँचे ॥३३॥ आगे चलनेवाली हाथियोंकी सेनाके द्वारा उघाड़े हुए उत्तर द्वारको
 उल्लघन कर चक्रवर्तीने विजयार्थ पर्वतके वनकी भूमिमें निवास किया ॥३४॥ माताके उदर-
 के समान गुहाके गर्भमें चिरकाल तक निवास कर वहाँसे बाहर निकले हुए सैनिकोंने ऐसा
 माना था मानो दूसरा जन्म ही प्राप्त हुआ हो ॥३५॥ सेनाको बाहर प्रकट करती हुई वह
 गुफा ऐसी जान पड़ती थी मानो पहले वह बड़ी भारी तृष्णा इस मनुष्य-समूहको निगल गयी
 थी परन्तु पचानेकी शक्ति न होनेसे अब उसे फिर बाहर उगल रही हो ॥३६॥ उस समय
 पखोंके समान वनलताओंकी शाखाओंके अग्रभागसे हवा करता हुआ वायु ऐसा जान पड़ता
 था मानो चिरकाल तक गुफाकी गरमीसे दुःखी हुई सेनाको आश्वासन ही दे रहा हो ॥३७॥
 जिसने ऋतु-सम्बन्धी अनेक फल-फूल धारण किये हैं और जो वायुसे हिल रहा है ऐसा वह वन
 उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो चक्रवर्तीके आनेपर सन्तुष्ट होकर हिलते हुए अपने शाखा
 रूपी हाथोंके समूहसे नृत्य ही कर रहा हो ॥३८॥ जब सेनापति पहलेकी तरह यहाँके भी
 पश्चिम म्लेच्छ खण्डको जीत चुका तब महाराज भरत अपनी सेनाओंके द्वारा मध्यम म्लेच्छ
 खण्डको जीतनेके लिए उद्यत हुए ॥३९॥ यद्यपि भरत सूर्यके समान उत्तर दिशाकी ओर
 निकले थे तथापि जिस प्रकार सूर्य अपने कर अर्थात् किरणोंसे लोगोंको पीडित करता है पृथिवी-
 का रस अर्थात् जल सुखा देता है, और मनुष्योंको सन्तुष्ट करता है उस प्रकार उन्होंने अपने
 कर अर्थात् टेक्ससे लोगोंको पीडित नहीं किया था, पृथिवीका रस अर्थात् आनन्द नहीं सुखाया
 था—नष्ट नहीं किया था और न मनुष्योंको सन्तुष्ट अर्थात् दुःखी ही किया था ॥४०॥ सूर्य
 उत्तर दिशामें पहुँचकर अपनी किरणोंसे सन्ताप करता है परन्तु महाराज भरतने पृथिवीका
 सन्ताप दूर कर दिया था ॥४१॥ जिनमें अनेक व्यूहोंकी रचना की गयी है और जो परस्परमें
 मिली हुई हैं ऐसी भरतकी सेनाएँ न तो उनसे बहुत दूर ही जाती थी और न म्लेच्छन्दितापूर्वक

१ अपनीतं । २ उत्तरगुहाद्वारम् । ३ पुरोगत । ४ वनभूमिम् । ५ मन्यते स्म । ६ अतिवाञ्छया ।
 ७ निगर्ण कृत्वा । ८ जरणाशक्त्यभावान् । ९ उद्गिलति स्म । १० ऋतौ भवम् आनन्दम् पृथिव्यादि । धृतमार्तव
 येन तत् । ११ उत्तरदिशामागः । १२ उत्तरगत्या दिशि स्थित्वा । १३ नित्यम् । १४ विहितरचनानि ।
 १५ संवद्धानि मिलितानि वा ।

प्रसाधितानि दुर्गाणि कृत आशक्त्यसाधनम् । परचक्रमवष्टब्धं चक्रिणो जयसाधनै ॥४३॥
 दलवाक्त्रामिषाण्य^२ रक्षणायश्च सञ्चिता । यतितर्भ्य क्षितिग्राणे निगापोवृत्तमादृशम् ॥४४॥
 इत्यलङ्कारवल्गुश्चक्रा चक्ररत्नमनुवज्रम् । कियतामपि ता^३ भूमिमवाष्ट^४ र्भूमौ त्वसाधनै ॥४५॥
 तावच्च परचक्रणं स्वचक्रस्य^५ पराभवम् । चिलातावतनामानौ प्रभू शुश्रुवतु किल ॥४६॥
 अमृतपूर्वमतश्च^६ परचक्रमुपस्थितम् । व्यसन प्रतिकलम्भमित्यास्तां सगतां मिथ ॥४७॥
 तता धनुषप्राय सहाश्राय सहास्तिकम् । इतोऽमुतश्च सज्जमे^७ तत्सैन्य म्लेच्छराजयो ॥४८॥
 कृताञ्चविग्रहारम्भा सरम्म प्रतिपद्य तौ । निष्क्रम्य^८ चक्रिण सैन्यैर्मैजतुर्विजिगीषुताम् ॥४९॥
 तावच्च सुधियो धीरा कृतकार्याश्च मन्त्रिण । निषिध्य तौ रणारम्भाद् दृष्ट पथ्यमिदं जगु ॥५०॥
 न किञ्चिदप्यनालोच्य विधेय सिद्धिकाम्यता^९ । अनालोचितकार्याणां दवीयस्यो^{१०} र्धसिद्धय ॥५१॥
 काऽयं प्रमुरवष्टम्भी कुतस्त्यो वा कियद्वल^{११} । बलवान् इत्यनालोच्य नामिषेण्य^{१२} कथंचन^{१३} ॥५२॥
 विनयाद्वचलोह्वही नैव सामान्यमानुष । दिव्यो^{१४} दिव्यानुभावो^{१५} वा भवेद्वेष न सशय ॥५३॥

इधर उधर ही घूमती थी ॥४२॥ चक्रवर्तीकी विजयी सेनाओंने अनेक किले अपने वश किये, जिन्हे कोई वश नहीं कर सकता था, ऐसे राजाओंको वश किया और शत्रुओंके देश घेरे ॥४३॥ बलवान्के साथ युद्ध नहीं करना, शरणमें आये हुएकी रक्षा करना, और अपनी पृथिवीकी रक्षा करनेमें प्रयत्न करना यही विजयकी इच्छा करनेवाले राजाके योग्य आचरण है ॥४४॥ इस प्रकार जिनकी सेना अथवा पराक्रमको कोई उल्लंघन नहीं कर सकता ऐसे चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्नके पीछे-पीछे जाते हुए अपनी सेनाके द्वारा जहाँकी कितनी ही भूमिको अपने अधीन कर लिया ॥४५॥ इतनेमें ही चिलात और आवत नामके दो म्लेच्छ राजाओंने शत्रुओंकी सेनाके द्वारा अपनी सेनाका पराभव होता सुना ॥४६॥ हमारे देशमें शत्रुओंकी सेना आकर उपस्थित होना यह हम दोनोंके लिए बिल्कुल नयी बात है, इस आये हुए सकटका हमें प्रतिकार करना चाहिए ऐसा विचारकर वे दोनों ही म्लेच्छ राजा परस्पर मिल गये ॥४७॥ तदनन्तर जिसमें प्राय करके धनुष धारण करनेवाले योद्धा हैं तथा जो हाथियों और घोड़ोंके समूहसे सहित हैं ऐसी उन दोनों राजाओंकी सेना इधर-उधरसे आकर इकट्ठी मिल गयी ॥४८॥ जिन्होंने भारी युद्ध करनेका उद्योग किया है ऐसे वे दोनों ही राजा क्रोधित होकर तथा पराक्रम प्रकट कर चक्रवर्तीकी मनाआके साथ विजिगीषुपनको प्राप्त हुए अर्थात् उन्हें जीतनेकी इच्छासे उनके प्रतिद्वन्द्वी हो गये ॥४९॥ इसीके बीच, बुद्धिमान् धीर-वीर तथा सफलतापूर्वक कार्य करनेवाले मन्त्रियोंने उन दोनों राजाओंको युद्धके उद्योगसे रोककर नीचे लिखे अनुसार हितकारी वचन कहे ॥५०॥ हे प्रभो, सिद्धिकी इच्छा करनेवालाको बिना विचारे कुछ भी नहीं करना चाहिए क्योंकि जो बिना विचारे कार्य करत है उनके कार्योंकी सिद्धि बहुत दूर हो जाती है ॥५१॥ हमारा सनाका रोदनवाला यह कौन राजा है ? कहाँसे आया है ? इसकी सेना कितनी है और यह कितना बलवान् है ? इन सब बातोंका विचार किये बिना ही उसकी सेनाके सम्मुख बिम्बा भा तरह नहा जाना चाहिए ॥५२॥ विजयाध पवतको उल्लंघन करनेवाला यह कोई माधारण मनुष्य नहीं है यह या तो कोई देव हागा या कोई दिव्य प्रभावका धारक होगा इसमें

१ व्याजम् । २ अभियन्ताय । मर्यादा । ४ वष्टयनि स्म । ५ परमयन । ६ त्वराप्स्य ७ आवया । ८ मन्त्रमन्त्र । अपिवा मन्त्र विचार । १० निदिमिच्छता । ११ दूरतया । १२ विषयबल अ० स० १० । १३ मनन अभिवाग्य । १४ मर्यादा । १५ दृष्ट । १६ निष्पत्तिमय ।

तदास्तां समरारम्भः समाव्यो दुर्गमश्रयः । तदाश्रितैरनायासात् जंतु शक्यो रिपुमहान् ॥ ५४ ॥
 समावदुर्गमेतन्न क्षेत्र केनाभिभूयते । हिमवद्विजयार्द्धाद्विगङ्गा^१मिन्धुतटावधि ॥ ५५ ॥
 अन्यच्च देवताः सन्ति सत्यमस्मत्कुलं चिन्ताः । नागामेघमुग्ग नाम ते निरुन्धन्तु शान्नवान् ॥ ५६ ॥
 इति तद्वचनाज्जातजयाशसौ जनेश्वरौ । देवतानुस्मृति सद्यः चक्रनुः कृतपूजनौ ॥ ५७ ॥
 ततस्ते जलदाकारधारिणो घनगर्जिताः । परितो वृष्टिमातेनु सानिलामनिलाशनाः^३ ॥ ५८ ॥
 तज्जलं जलदोर्गार्णं बलमालाव्य जैष्णवम्^४ । अधस्तिर्यग्गथोऽर्ध्वं च समन्तादभ्यदुद्रवत्^५ ॥ ५९ ॥
 न चेल^६वनोपमस्यासीत् गिविरं वृष्टिराग्निनुः । बहिरंकार्णव कृन्तनमकरोद् व्याघ्र रोदसी ॥ ६० ॥
 छत्ररत्नमुपर्याग्मिचर्मरत्नमधोऽभवत् । ताभ्यामावेष्टय तद्गुह्यं बलं^७ स्थूतमिवाभित ॥ ६१ ॥
 मध्वेरत्नद्वयस्यास्य स्थितमागमसमाद् दिनात् । जलप्लवे बल भर्तुर्व्यक्तमण्डायित^८ तदा ॥ ६२ ॥
 चक्ररत्नकृतोद्योते रुद्रद्वन्द्वयोजने । तत्राण्डकं^९ स्थित जिष्णोर्निरावाधमभूद् बलम् ॥ ६३ ॥
 प्रविमक्तचतुर्द्वारं सेनान्यान्तः सुरक्षितम् । बहिर्जयकुमारेण ररक्षे किल तद्वलम् ॥ ६४ ॥
 तदा पटकुटीभेदाः^{१०} कीटिकाश्च विगङ्गटाः^{११} । कृताः स्थपतिरत्नेन^{१२} रथाश्चाम्बरगोचराः ॥ ६५ ॥

कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ५३ ॥ इसलिए युद्धका उद्योग दूर रहे, हम लोगोको किसी किलेका आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि किलेका आश्रय लेनेवाले पुरुष वडेसे वडे शत्रुको सहज ही जीत सकते हैं ॥ ५४ ॥ हिमवान् पर्वतसे विजयार्ध पर्वत तक और गंगा नदीसे सिन्धु नदीके किनारे तक का यह हमारा क्षेत्र स्वभावसे ही किलेके समान है, इसका पराभव कोन कर सकता है ? इसे कौन जीत सकता है ? ॥ ५५ ॥ और दूसरी बात यह भी है कि हमारी कुल-परम्परासे चले आये नागमुख और मेघमुख नामके जो देव हैं वे अवश्य ही शत्रुओको रोक लगे ॥ ५६ ॥ इस प्रकार मन्त्रियोके वचनोसे जिन्हे विजय करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है ऐसे उन दोनो राजाओ-ने शीघ्र ही पूजन कर देवताओका स्मरण किया ॥ ५७ ॥ स्मरण करते ही नागमुख देव, वादलो-का आकार धारण कर घनघोर गर्जना करते हुए चारो ओर अज्ञावायुके साथ-साथ जलकी वृष्टि करने लगे ॥ ५८ ॥ मेघोके द्वारा वरसाया हुआ वह जल भरतेश्वरकी सेनाको डुवोकर ऊपर नीचे तथा अगल-वगल चारो ओर वहने लगा ॥ ५९ ॥ यद्यपि वह जल इतना अधिक वरसा था कि उसने आकाश और पृथिवीके अन्तरालको व्याप्त कर बाहर एक समुद्र-सा बना दिया था परन्तु चक्रवर्तीके गिविर (छावनी)मे वस्त्रका एक टुकड़ा भिगोने योग्य भी वृष्टि नहीं हुई थी ॥ ६० ॥ उस समय भरतकी सेनाके ऊपर छत्ररत्न था और नीचे चर्मरत्न था, उन दोनो रत्नोसे घिरकर रुकी हुई सेना ऐसी मालूम होती थी मानो चारो ओरसे सी ही दी गयी हो अर्थात् चर्मरत्न और छत्ररत्न इन दोनोमे चारो ओरसे टाँके लगाकर बीचमे ही रोक दी गयी हो ॥ ६१ ॥ उस जलके प्रवाहमे भरतकी वह सेना सात दिनतक दोनो रत्नोके भीतर ठहरी थी और उस समय वह ठीक अण्डाके समान जान पडती थी ॥ ६२ ॥ जिसमे चक्ररत्नके द्वारा प्रकाश किया जा रहा है ऐसे उस बारह योजन लम्बे-चाँडे अण्डाकार तम्बूमे ठहरी हुई भरतकी सेना सब तरहकी पीडासे रहित थी ॥ ६३ ॥ उस वडे तम्बूमे चारो दिशाओमे चार दरवाजे विभक्त किये गये थे, उसके भीतरकी रक्षा सेनापतिने की थी और बाहरसे जय-कुमार उस सेनाकी रक्षा कर रहे थे ॥ ६४ ॥ उस समय मिलावट रत्नने अनेक प्रकारके कपडे-के तम्बू, घासकी बड़ी-बड़ी झोपडियाँ और आकाशमे चलनेवाले रथ भी तयार किये थे ॥ ६५ ॥

^१ गाङ्गमिन्धु-८० । ^२ नागमेघ-ल० । ^३ नागा । ^४ जिष्णोश्चक्रिण नवन्धि । ^५ अभिधावनि म्म । ^६ पटमात्रं यथा भवति । ^७ ऊनम् ततुना न्वद्वन्मिन्धु । ^८ अण्डमिवावग्निम् । ^९ पञ्चजरे । ^{१०} कीटिका कुटीरा, शाला । ^{११} किटिकाश्च ल०, २०, ३० ५०, ६० । ^{१२} विगङ्गा । ^{१३} रथा नचरगोचरा ५० ।

वहि कलन्तु श्रुत्वा किमतदिति पार्थिवा । कर व्यापारयामासु क्रुद्धा कौक्षेयक^१ प्रति ॥६६॥
 ततश्चन्द्रादिष्टो^२ गणवद्भामरास्तदा । नागानुत्सारयामासु^३ राक्षसो^४ दुष्टतै क्षणात् ॥६७॥
 बलवान् कुस्त्राजोऽपि^५ मुक्तसिंहप्रगजित । दिव्यास्त्रै^६ यज्ञागान् रथ दिव्यमधिष्ठित ॥६८॥
 तदा रणाङ्गणे वपन् शरचारामनारतम् । स रेज घृतसन्नाह^७ प्रावृषेण्य^८ इयाम्बुद ॥६९॥
 तन्मुक्ता विशिरा दात्रा रजिर समराजिर । द्रष्टु तिरोहिताजागान् दीपिका इव बोधिता ॥७०॥
 ततो निवृत्त^९ जिह्वा नागान् मघमुखानसौ । कुमारो रणसरम्भात् प्राप्तमघस्वरश्रुति^{१०} ॥७१॥
 कुस्त्रानस्तदा स्फुजपजन्य^{११} स्तनितोर्जितै । गजितैर्निजयन् मघमुखान् ख्यातस्तदाशया ॥७२॥
 तोपितैरवदानेन^{१२} घोपितोऽस्थ जयोऽभरै । दध्यनदुन्दुभिध्वानवधिरौकृतदिडमुत्सै ॥७३॥
 ततो दृष्टापदानोऽय^{१३} तुष्टुवे^{१४} चक्रिणा मुहु । नियोजितश्च सत्कृत्य घोरो धीराग्रणीपदे ॥७४॥
 इन्द्रजाल इवामुष्मिन् व्यतिक्रान्तऽहिविप्रवे । प्रत्यापत्तिमगाद् भूयो बलमात्रिभवजयम् ॥७५॥
 निध्वस्त पन्नगानीक विबलौ म्लेच्छनायकौ । चक्रिणश्चरणावेत्थ मयन्नान्तौ प्रणेभतु ॥७६॥
 घन यशोधन चास्मै कृताग परिशोधनम्^{१५} । दत्त्वा प्रसीद देवति तौ भृत्यत्वमुपैयतु ॥७७॥

बाहर कोलाहल सुनकर 'यह क्या है इस प्रकार कहते हुए राजाओंने क्रोधित होकर अपना हाथ तलवारकी ओर बढ़ाया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर उस समय जिहें चक्रवर्तिनि आदेश दिया है ऐस गणवद्ध जातिके देवाने क्रुद्ध होकर अपने हुकार शब्दोंके द्वारा क्षण भरमे नागमुख देवोंको हटा दिया ॥ ६७ ॥ अतिशय बलवान् कुस्त्राजी राजा जयकुमारने भी दिव्य रथपर बैठकर मिह-गजना करते हुए, दिव्य शस्त्रोंके द्वारा उन नागमुख देवोंको जीता ॥ ६८ ॥ उस समय युद्धके आगनम निरन्तर बाणोंकी वर्षा करता हुआ और शरीरपर कवच धारण किये हुए वह जयकुमार वर्षाशत्रुके बादलके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ६९ ॥ जयकुमारके द्वारा छाड़े हुए वे देदीप्यमान बाण युद्धके आगनमें ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो छिपे हुए नागमुखों को दप्तनेके लिए जलाये हुए दीपक ही हों ॥ ७० ॥ तदनन्तर वह जयकुमार नागमुख और मेघ मुख देवाको जीतकर तथा मेघेश्वर नाम पाकर उस युद्धसे वापस लौटा ॥ ७१ ॥ उस समय वह जयकुमार विजली गिरानेके पहल भयकर शब्द करते हुए बादलोंकी गजनाके समान अपनी तज गजनाके द्वारा मेघमुख देवाको जीतता हुआ मेघेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ था ॥ ७२ ॥ बार-बार वजते हुए दुन्दुभियोंके शब्दासे जिहाने समस्त दिशाएँ बहिरी कर दी ह ऐसे देवों ने इस जयकुमारके पराक्रमसे सन्तुष्ट होकर इसका जयजयकार किया था ॥ ७३ ॥ तदनन्तर जिनका पराक्रम देव लिया गया है ऐसे इम जयकुमारकी चक्रवर्तिनि भी बार-बार प्रशंसा की और उन वीरवा गन्वार कर उहाने उमे मुग्ध गुरखीरके पदपर नियुक्त किया ॥ ७४ ॥ इन्द्र जालक समान वह नागमुख देवाका उपद्रव नास्त हो जानेपर जिसकी जीत प्रकट हो रही है एमी वह भरतका मना पुन स्वस्थताया प्राप्त हा गयी अर्थात् उपद्रव टल जानेपर सुखका अनुभव करने लगी ॥ ७५ ॥ नागमुख देवोंकी सनाक भाग जानेपर व दोना ही चिलात और आवत नामक म्लेच्छ राजा निरल हा गय आर भयसे घबड़ाकर चक्रवर्तिनि चरणोंके समीप आवर प्रणाम करने लग ॥ ७६ ॥ उन्होंने अपराध क्षमा कराकर भरतक लिए बहुत-सा धन तथा यशमयी धन लिया और हाना, प्रमत्त हाए इस प्रकार कहकर उनकी दासता स्वीकार

१ राक्षसम् । २ आर्षाणि । ३ पञ्चपिनात यज्ञ । ४ क्रुद्धा । ५ जयकुमार । ६ घृतसन्नाह । ७ प्रावृषि भव । ८ गमराणा । ९ वपन् । १० प्राप्तमघस्वरश्रुति । ११ मघ । १२ पराक्रमण । १३ दृष्टापदानात् । १४ तुष्टुवे । १५ दध्यनदुन्दुभिध्वानवधिरौकृतदिडमुत्सै । १६ इन्द्रजालम् । १७ यशोधनम् । १८ दत्त्वा प्रसीद देवति तौ भृत्यत्वमुपैयतु ।

निस्पृहतां महीमनां कुर्वन्नर्वाङ्मिथीश्वरः^१ । आ हिमाद्रितटाद्भूय प्रयाणमकरोद् वलैः ॥७८॥
 सिन्धुरोधोभुव^२ क्षुब्धन् प्रयाणे जयसिन्धुरैः । सिन्धुप्रपातमासीदन्^३ सिन्धुदेव्या न्यपेचि^४ मः ॥७९॥
 ज्ञात्वा ममागतं जिष्णु देवि स्वावामगोचरम् । उपयाय^५ समुद्रं त्य रत्नार्घं सपरिच्छदा^६ ॥८०॥
 पुण्यै^७ सिन्धुजलैरेन हेमकुम्भगतोद्धतैः । ग्राभ्यपिञ्चत् स्वहस्तेन मद्रामननिवेगितम् ॥८१॥
 कृतमङ्गलनेपथ्यमभ्यनन्दज्यागिषा^८ । देव त्वदगर्गनादद्य पूताऽस्मीत्यवदच्च तम् ॥८२॥
 तत्र मद्रासन दिव्यं लब्ध्वा तदुपदौकितम् । कृतानुव्रजनां^९ किञ्चित् सिन्धुदेवी व्यसर्जयत् ॥८३॥
 हिमाचलमनुप्राप्तस्तत्तटानि जय^{१०} जयम् । कैश्चित्प्रयाणकैः प्रापत् हिमवत्कूटसनिधिम्^{११} ॥८४॥
 पुरोहितसखस्तत्र कृतोपवसनक्रियः । अध्यजेत^{१२} शुचिं गय्यां दिव्यास्त्राण्यधिवासयन्^{१३} ॥८५॥
 विधिरेष न चाशक्तिरिति^{१४} संभावितो नृपैः । स राज्यमकरोच्चापं^{१५} वज्रकाण्डमयत्नतः ॥८६॥
 तत्रामोघ शरं दिव्यं^{१६} समवत्तोर्ध्वगामिनम् । वैशाखस्थानमास्थाय^{१७} म्वनामाक्षरचिह्नितम् ॥८७॥
 मुक्तसिंहप्रणादेन यदा मुक्तः शरोऽमुना^{१८} । तदा सुरगणैस्तुष्टैर्मुक्तोऽस्य कुसुमांजलिः ॥८८॥

की ॥७७॥ इस समस्त पृथिवीको गत्रुरहित करते हुए प्रथम निधिपति-चक्रवर्तीने फिर अपनी सेनाके साथ-साथ हिमवान् पर्वतके किनारे तक गमन किया ॥७८॥ गमन करते समय अपने विजयी हाथियोंके द्वारा सिन्धु नदीके किनारेकी भूमिको खूँदते हुए भरतेश्वर जब सिन्धुप्रपात-पर पहुँचे तब सिन्धु देवीने उनका अभिषेक किया ॥७९॥ वह देवी भरतको अपने निवास-स्थानके समीप आया हुआ जानकर रत्नोका अर्घ लेकर परिवारके साथ उनके पास आयी थी ॥८०॥ और, उसने अपने हाथसे सुवर्णके सैकड़ो कलशोमे भरे हुए सिन्धु नदीके पवित्र जलसे भद्रासनपर बैठे हुए महाराज भरतका अभिषेक किया था ॥८१॥ अभिषेक करनेके बाद उस देवीने मंगलरूप वस्त्राभूषण पहने हुए महाराज भरतको विजयसूचक आशीर्वादोसे आनन्दित किया तथा यह भी कहा कि हे देव, आज आपके दर्शनसे मैं पवित्र हुई हूँ ॥८२॥ वहाँ उस सिन्धु देवीका दिया हुआ दिव्य भद्रासन प्राप्त कर भरतने आगेके लिए प्रस्थान किया और कुछ दूर तक पीछे-पीछे आती हुई सिन्धु देवीको विदा किया ॥८३॥ हिमवान् पर्वतके समीप पहुँचकर उसके किनारोको जीतते हुए भरत कितने ही मुकाम चलकर हिमवत् कूटके निकट जा पहुँचे ॥८४॥ वहाँ उन्होंने पुरोहितके साथ-साथ उपवास कर और दिव्य अस्त्रोकी पूजा कर डाभकी पवित्र गय्यापर गयन किया ॥८५॥ अस्त्रोकी पूजा करना यह एक प्रकारकी विधि ही है, कुछ चक्रवर्तीका असमर्थपना नहीं है, ऐसा विचार कर राजाओने जिनका सम्मान किया है ऐसे भरतराजने बिना प्रयत्नके ही अपना वज्रकाण्ड नामका धनुष डोरीसे सहित किया ॥८६॥ और वैशाख नामका आसन लगाकर अपने नामके अक्षरोसे चिह्नित तथा ऊपरकी ओर जानेवाला अपना अमोघ (अव्यर्थ) दिव्य वाण उस धनुषपर रखा ॥८७॥ जिस समय सिहनाद करते हुए भरतने वह वाण छोड़ा था उस समय देवोके समूहने सन्तुष्ट होकर उनपर फूलोकी अजलियाँ छोड़ी थी, अर्थात् फूलोकी वर्षा की थी ॥८८॥

१ उत्कृष्टनिधिपति । 'वरे त्वर्वाङ्मि'त्यभिधानात् । २ सिन्धुनदीतीरभूमी । ३ मचूर्णयन् । ४ सिन्धुनदी-पतनकुण्डम् । ५ आगच्छन् । ६ न्यपेचि द० । सेवते स्म । ७ उपाययौ । ८ मपरिकरा । ९ पवित्रैः । १० विहितानुगमनाम् । ११ जयन् जयन् ल०, अ०, इ० । जय जयन् प०, य० । १२ हिमवन्नामकूट । १३ अधिजेते न्म । १४ मन्त्रैरभिपूजयन् । १५ शक्यभावो न । १६ मोर्वीमहितम् । १७ सधानमकरोत् । १८ वैशाखस्थाने स्थित्वा, वितन्त्यन्तरेण स्थिते पादद्वये विशाख, तथा चोक्त धनुर्वेदे । वामपादप्रकारे दक्षिणसक्तोचे प्रत्यलीट दक्षिणजघात्रनारे वाममक्तोचे चालीटम् । नुन्रपादयुगम् नमपदम् । वितन्त्यन्तरेण स्थिते पादद्वये विशाख, मण्डलावृत्ति पादद्वय मण्डलम् । १९ चरित्रा ।

स गरी दूरमुपत्य क्वचिद्व्यस्तलद्गति । मप्राप्यद्विमयम्^१ तद्देवमाकल्पयन् पतन् ॥८९॥
 स मागधवक्राध्याय^२ नातचक्रधरागम । उच्चचाल च^३ मालिस्तत्रिवामा^४ सुरासम ॥९०॥
 सप्राप्तश्च तमुद्देश यमध्यास्ते स्म चक्रभृत । द्रोपद^५ सरम्मो धनु^६ र्यामसहृत्स्पर्शन् ॥९१॥
 तुद्रोऽय हिमयानद्विरलङ्घ्यश्च पृथग्जन^७ । लङ्घिता^८ऽथ स्वया दव त्वद्दृत्तमतिमानुपम^९ ॥९२॥
 विप्रकृष्टान्तरा^{१०} क्वास्मदाद्यामा क्व भगच्छर । तथाऽप्राकम्पितास्नन^{११} पततैरुपद^{१२} धयम् ॥९३॥
 त्वप्रताप शरण्याजादुस्पतन् गगनाङ्गणम् । गणवद्वपद^{१३} कनुमस्मान् नाहूतधान् भुयम् ॥९४॥
 विजिताधि समाक्रान्तविनयाद्गुहोदर । हिमाद्रिगिरिपरप्वच जूम्मत स जयोद्यम^{१४} ॥९५॥
 जयबादोऽनुवादोऽय^{१५} सिद्धदिग्विजयस्थ त । जयतान् नन्दताग्निज्ज्णो बद्धिर्षीष्ट भवानिति ॥९६॥
 समुच्चरन्^{१६} नयध्वानमुपर स सुर समम् । प्रमु समाश्रयामास^{१७} सोषचार सुरोत्तम ॥९७॥
 अमिषिच्य च राजे^{१८} राजवद्विधिना^{१९} ददा । गोशापचन्दन^{२०} सोऽस्मै सममापधिमालया^{२१} ॥९८॥
 त्वद्भुक्तिवासिनो^{२२} देव दूरानमितमालय^{२३} । दद्यात्स्वामानमन्यव त्वग्रसादभिराडिक्षण ॥९९॥

जिसकी गति कही भी स्खलित नहीं होती ऐसा वह बाण ऊपरकी ओर दूर तक जाकर वहाँपर रहनेवाले देवके भवनमें पड़कर उस भवनको हिलाता हुआ हिमवत्कूटपर जा पहुँचा ॥९॥ मागध देवके समान कुछ विचार कर जिसने चक्रवर्तीका आगमन समझ लिया है ऐसा वहाँका रहनेवाला देव अपना मस्तक झुकाता हुआ चला ॥१०॥ और जिसने अपना कुछ क्रोध रोक लिया है ऐसा वह देव धनुषकी चापका स्पश करता हुआ उस स्थानपर जा पहुँचा जहाँपर कि चक्रवर्ती विराजमान थे ॥९१॥ वह देव भरतसे कहने लगा कि हे देव, यह हिमवान् पवत अत्यन्त ऊँचा है और साधारण पुरुषोंके द्वारा उल्लंघन करने योग्य नहीं है फिर भी आज आपने उसका उल्लंघन कर दिया है इसलिए आपका चरित्र मनुष्याको उल्लंघन करनेवाला अर्थात् लोकोत्तर है ॥९२॥ हे देव, बहुत दूर बने हुए हम लोगोंके आवास कहाँ ? और आपका बाण कहाँ ? तथापि पड़ते हुए इस बाणने हम सबको एक ही साथ कम्पित कर दिया ॥९३॥ हे देव यह आपका प्रताप बाणके व्याजसे आकाशमें उछलता हुआ ऐसा जान पड़ता था मानो हम लोगोंको गणबद्ध (चक्रवर्तीके अधीन रहनेवाली एक प्रकारकी देवोंकी सेना) देवोंके स्थानपर नियुक्त होनेके लिए बुला ही रहा था ॥९४॥ जिसने समुद्रको भी जीत लिया है और विजयाध पवतकी गुफाओंके भीतर भी आक्रमण कर लिया है ऐसा यह आपका विजय करनेका उद्यम आज हिमवान् पवतके शिखरोंपर भी फैल रहा है ॥९५॥ हे प्रभो, आपका समस्त दिग्विजय सिद्ध हो चुका है इसलिए हे जयशील, आपकी जय हो, आप समृद्धिमान् हों और सदा बढ़ते रहे इस प्रकार आपका जयजयकार बोलना पुनरुक्त है ॥९६॥ इस प्रकार उच्चारण करता हुआ जो जय जय शब्दोंसे वाचाल हो रहा है ऐसा वह उत्तम देव अथ अनेक उत्तम देवोंके साथ-साथ सब तरहके उपचारोंसे भरतकी सेवा करने लगा ॥९७॥ तथा राजाओंके योग्य विधिसे राजाधिराज भरतका अभिषेक कर उसने उनके लिए औपधियाक समूहके साथ गोशीप नामका चन्दन समर्पित किया ॥९८॥ और कहा कि हे देव, आपका क्षेत्रमें रहनेवाले ये देव आपकी प्रसन्नताकी इच्छा करते हुए दूरसे ही मस्तक झुकाकर आपके लिए नमस्कार

१ संप्राप्यद्विम- ५० ल० । २ विचार्येत्यथ । ३ हिमवत्कूटवासी । हेमवानाम । ४ ईष्यतीक्षित । ५ सामायै । ६ दिग्विमित्यथ । ७ दूर । ८ भवतो बाण । ९ गरण । १ युगपत् । ११ जयोद्योग । १२ साथक पुनवचनमनुवात् । १३ सभाश्रयामास । १४ राजाद्विधानम् । १५ हरिचन्दनम् । १६ वनपुष्पमालया । १७ सब पालनक्षत्रवानिन ।

धेहि^१ देव ततोऽस्मासु प्रसादतरलां दृग्म । स्वामिप्रसादलामो हि वृत्तिलाभो^२ ऽनुजीविनाम्^३ ॥१००॥
निदेशै^४ रुचितैश्वास्मान् स माग्रथितुमर्हसि । वृत्तिलाभादपि प्रायस्तलाम^५ किंरैर्मतः ॥१०१॥
मानयन्निति^६ तद्वाक्यं^७ स तानमरसत्तमान् । व्यसर्जयत्स्वसत्कृत्य यथास्वं कृतमाननान् ॥१०२॥
हिमवज्जयशंसीनि मङ्गलान्यस्य किन्नराः । जगुस्तत्कुञ्जदेशेषु स्वैरमारब्धसृच्छना ॥१०३॥
असकृत किन्नरस्त्रीणामाधुन्वाना स्तनावृत्ती^८ । सरोवीचिमिदो मन्दमाववुस्तद्वनानिला ॥१०४॥
स्थलाब्जिनीवनाद्विप्लवक् विरन् किजल्लजं रज । हिमी हिमाद्रिकुञ्जेभ्यस्तं सिपेवे ममीरणः ॥१०५॥
स्थलाम्भोरुहिणीवास्य कीर्तिः साकं^९ जयश्रिया । हिमाचलनिकुञ्जेषु पप्रथे^{१०} दिग्जयार्जिता ॥१०६॥
हिमाचलस्थलेष्वस्य श्रुतिरासीत् प्रपश्यत् । कृतोपहारकृत्येषु^{११} स्थलाम्भोजैर्विकस्वरैः ॥१०७॥
तमुच्चैर्वृत्तिमाक्रान्तदिक्चक्र विधृतायतिम्^{१२} । स्वमिवानल्पखड्गं हिमाद्रिं वह्नमस्तं^{१३} स ॥१०८॥

कर रहे हैं ॥९९॥ इसलिए हे देव, हम लोगोपर प्रसन्नतासे चचल हुई दृष्टि डालिए क्योंकि स्वामीकी प्रसन्नता प्राप्त होना ही सेवक लोगोकी आजीविका प्राप्त होना है । भावार्थ — स्वामी लोग सेवकोपर प्रसन्न रहे यही उनकी उचित आजीविका है ॥१००॥ हे स्वामिन्, आप उचित आज्ञाओके द्वारा हम लोगोको सन्मानित करनेके योग्य है अर्थात् आप हम लोगोको उचित आज्ञाएँ दीजिए क्योंकि सेवक लोग स्वामीकी आज्ञा मिलनेको आजीविका (तनखाह)की प्राप्तिसे भी कही बढकर मानते हैं ॥ १०१ ॥ इस प्रकारके उस देवके वचनोकी प्रशंसा करते हुए भरतने उन सब उत्तम देवोका सत्कार किया और सबको अपने अधीन कर बिदा कर दिया ॥ १०२ ॥ उस समय अपने इच्छानुसार स्वरोका चढाव-उतार करनेवाले किन्नर देव उस पर्वतके लतागृहोके प्रदेशोमे 'भरतने हिमवान् देवको जीत लिया है' इस बातको सूचित करने-वाले मंगलगीत गा रहे थे ॥ १०३ ॥ उस समय वहाँ किन्नर देवोकी स्त्रियोके स्तन ढकनेवाले वस्त्रोको बार-बार हिलाता हुआ तथा तालाबकी तरगोको छिन्न-भिन्न करता हुआ उस हिमवान् पर्वतके वनोका वायु धीरे-धीरे बह रहा था ॥ १०४ ॥ स्थल-कमलिनियोके वनके चारो ओर केशरसे उत्पन्न हुआ रज फैलाता हुआ तथा हिमवान् पर्वतके लतागृहोसे आया हुआ शीतल वायु महाराज भरतकी सेवा कर रहा था ॥ १०५ ॥ दिग्विजय करनेसे प्राप्त हुई भरतकी कीर्ति जयलक्ष्मीके साथ-साथ स्थलकमलिनियोके समान हिमवान् पर्वतके लतागृहोमे फैल रही थी ॥ १०६ ॥ जिन्होने फूले हुए स्थल-कमलोसे उपहारका काम किया है ऐसे हिमवान् पर्वतके स्थलोमे चारो ओर देखते हुए भरतको बहुत ही सन्तोष होता था ॥१०७॥ वह हिमवान् पर्वत ठीक भरतके समान था क्योंकि जिस प्रकार भरत उच्चैर्वृत्ति अर्थात् उत्कृष्ट व्यवहार धारण करनेवाले थे उसी प्रकार वह पर्वत भी उच्चैर्वृत्ति अर्थात् बहुत ऊँचा था, जिस प्रकार भरतने अपने तेजसे समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली थी उसी प्रकार उस पर्वतने भी अपने विस्तार-से समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली थी, जिस प्रकार भरत आयति अर्थात् उत्तम भवितव्यता (भविष्यत्काल) धारण करते थे उसी प्रकार वह पर्वत भी आयति अर्थात् लम्बाई धारण कर रहा था और जिस प्रकार भरतके पास अनेक रत्नरूपी सम्पदाएँ थी उसी प्रकार उस पर्वतके पास भी अनेक रत्नरूपी सम्पदाएँ थी । इस प्रकार अपनी समानता रखनेवाले उस हिमवान्

१ कुरु । २ जीवितलाभ । 'आजीवो जीविका वार्ता वृत्तिर्वर्तनजीवने' इत्यभिधानात् । ३ मेवकानाम् । ४ शाननं । 'अपवादन्तु निर्देशो निदेश शानन च म । शिष्टिञ्चाज्ञा च' इत्यभिधानात् । ५ आज्ञालाभ । ६ पूजयन् । ७ तद्देवस्य वचनम् । ८ हिमवन्निकुञ्जप्रदेशेषु । 'निकुञ्जकुञ्जौ वा वशीवे लनादिपिटितोदरे' इत्यभिधानात् । ९ उरोजाच्छादनवस्त्राणि । १० नह । 'नाक मन्ना नम मन्' इत्यभिधानात् । ११ प्रष्टुष्टो-ऽभवत् । १२ विहितपुण्योपहारव्यापारेषु । १३ वृन्धनागमम् । १४ वृन्धमानमन्त्रेण ।

अथा तरे^१ गिरीन्द्रस्मिन्^२ वापारितदश प्रभुम् । विनादयिनुमिभ्युच्चैः पुराधा गिरमम्यधान् ॥१०३॥
 हिमवानयमुपुङ्गु^३ सगत सतत श्रिया^४ । कुलक्षोणाभृतां धुर्यो^५ धत्ते युष्मदनुक्रियाम् ॥११०॥
 अहो महानय शलो दुरोरोहो दुरुत्तर^६ । शरसधानमाश्रेण मित्रा^७ युष्म-महादधान् ॥१११॥
 चित्रैरलकृता रत्नैरस्य श्रेणी हिरण्ययी । शतयोजनमाश्राद्या दृक्छिन्नेव भात्यमा ॥११२॥
 स्वपूर्वापरकोटिभ्यां विशाह्य लक्षणानघम् । स्थितोऽथ गिरिरामाति मानदण्डायितो भुव ॥११३॥
 'द्विविस्तृतोऽयमद्रीन्द्रो भरताद् भरतपर्म' । मूले चापरिभाग च तुल्यविस्तारसमति^८ ॥११४॥
 अस्थानुसानु रम्यथ वनराजी विराजत । शश्वदभ्युपिता मिश्रविद्याधरमहारगं ॥११५॥
 तटामोगा^९ विमात्यस्य 'चल'मणिविचित्रिता । चित्रिता इव सन्नान्तं स्ववभूप्रतिबिम्बकै ॥११६॥
 पयदन्ति तटेऽवस्य सप्रेयस्था^{१०} नमश्चरा । स्वैरसमोगमोग्यपु हारिभिलितिकागृहैः ॥११७॥
 विविक्त^{११} रमणीयपु सानुष्वस्य धृतोत्सवा । न धृतिं दधतऽयत्र गीर्वाणा साप्सरोगणा ॥११८॥

पर्वतको भरतने बहुत कुछ माना था—आदरकी दृष्टिसे देखा था ॥ १०८ ॥ इसी बीचमें, जब कि महाराज भरत अपनी दृष्टि हिमवान् पर्वतपर डाल हुए थे—उसकी शोभा निहार रहे थे तब पुरोहित उन्हें आनन्दित करनेके लिए नीचे लिखे अनुसार उत्कृष्ट वचन कहने लगा ॥१०९॥ हे प्रभो यह हिमवान् पर्वत बहुत ही उत्तुंग अर्थात् ऊँचा है, सदा श्री अर्थात् शोभा से सहित रहता है और कुलक्षोणीभृत् अर्थात् कुलाचलोंम श्रष्ट है इसलिए आपका अनुकरण करता है—आपकी समानता धारण करता है क्योंकि आप भी तो उत्तुंग अर्थात् उदारमना है सदा श्री अर्थात् राज्यलक्ष्मीसे सहित रहते हैं और कुलक्षोणीभृत् अर्थात् वशपरम्परासे आये हुए राजाओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ११० ॥ अहा, कितना आश्चर्य है कि यह बड़ा भारी पर्वत, जो कि कठिनाईसे चढ़ने योग्य है और जिसका पार होना अत्यन्त कठिन है डोरीपर बाण रखते ही आपके पुण्य प्रतापसे आपके वश हो गया है ॥१११॥ इसकी सुवर्णमयी श्रेणी अनेक प्रकार के रत्नोंसे सुशोभित हो रही है सौ योजन ऊँची है और ऐसी जान पड़ती है मानो टींकीसे गढ़ कर ही बनायी गयी हो ॥ ११२ ॥ अपने पूर्व और पश्चिमके कोणोंसे 'लवण समुद्रमे प्रवेश कर' पड़ा हुआ यह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो पृथिवीके नापनेका एक दण्ड ही हो ॥११३॥ हे भरतश्रेष्ठ यह श्रेष्ठ पर्वत भरतक्षेत्रसे दूने विस्तारवाला है और मूल, मध्य तथा ऊपर तीनो भागोम इसका समान विस्तार है ॥ ११४ ॥ जिसमें सिद्ध विद्याधर और नागकुमार निरन्तर निवास करते हैं ऐसी यह मनोहर वनकी पवित्र इस पर्वतके प्रत्येक शिखरपर शोभाय मान हो रही है ॥११५॥ देदीप्यमान मणियोंसे चित्र विचित्र हुए इस पर्वतके किनारेके प्रदेश बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे हैं और भीतर पड़ते हुए देवागनाओंके प्रतिबिम्बोंसे ऐसे जान पड़ते हैं मानो उनमें अनेक चित्र ही खींचे गये हों ॥ ११६ ॥ सुन्दर लतागृहोंसे अपनी इच्छानुसार उपभोग करने योग्य इस पर्वतके किनारोंपर अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ विद्याधर लोग टहल रहे हैं ॥ ११७ ॥ जो देव लोग अपनी अप्सराओंके साथ इस पर्वतके निजन पवित्र और रमणीय किनारोंपर क्रीडा कर लेते हैं फिर उन्हें किसी दूसरी जगह सन्तोष नहीं होता

१ अस्मिन्नवसरे । २ यादेव्या लक्ष्म्या च । ३ मुख । ४ वानुकरणम् । ५ अवतरितुमशक्य ।
 ६ राटो ल । ७ त्रिगणविस्तार । ८ भरतपर्व । ९ तुल्या विस्तार—ल० द । १० सानुविस्तार ।
 ११ प्रियतमामहिता । १२ पवित्र । विविक्तौ पूनविजनी इत्यभिधानात् ।

पर्यन्तेऽस्य^१ वनोद्देशा विकासि कुसुमस्मिता । हसन्तीवामरोद्यानश्रियमात्मीयया श्रिया ॥११९॥

स्वेन मूर्ध्ना विमर्त्येप श्रिय नित्यानपायिनीम् ।

स्मार्त्ताः^२ स्मरन्ति यां शच्याः सौभाग्यमदकर्षिणीम् ॥१२०॥

• मूर्ध्नि पद्महृदोऽस्यास्ति धृतश्री^३र्बहुवर्णन । प्रसन्नवारिरुत्फुल्लहैमपङ्कजमण्डन । ॥१२१॥

हृदस्यास्य पुरःप्रत्यक्षोर्ण^४द्वारनिर्गते । गङ्गासिन्धू महानद्यौ धत्तेऽय धरणीधरः ॥१२२॥

सरित रोहितास्यां च दधात्येप शिलोच्चयः । तदुदत्तोर्ण^५द्वारान्निःसृत्योदद्भुखी^६ गताम् ॥१२३॥

महापगामिरित्याभिरलङ्घ्यामिर्विभान्ययम् । तिसृभि शक्तिभिः स्वं वा भूभृद्भावं विभावयन् ॥१२४॥

शिखरैरेष कुत्कीलः कीलयन्निव खाद्गणम् । सिद्धाध्वान^७रुणद्धीद्वै परार्थ्यै रुद्धदिद्भुखैः ॥१२५॥

परश्शतमिहाद्रीन्द्रे सन्त्यावासाः सुधाशिनाम् । येऽनल्पां कल्पजां^८ लक्ष्मी हसन्तीव स्वसंपदा ॥१२६॥

इत्यनेकगुणेऽप्यस्मिन् दोषोऽस्त्येको महान् गिरौ । यत् पर्यन्तगतान्धत्ते गुरुरप्यगुरुद्रुमान्^९ ॥१२७॥

अलङ्घ्यमहिमोदग्रो गरिमाक्रान्तविष्टयः । जगद्गुरोः^{१०}पुरोरामामयं धत्ते धराधरः ॥१२८॥

है ॥ ११८ ॥ जो फूले हुए फूलरूपी हास्यसे सहित है ऐसे इसके किनारेके वनके प्रदेश ऐसे जान पडते है मानो अपनी शोभासे देवोके बगीचेकी शोभाकी हँसी ही कर रहे हो ॥ ११९ ॥ यह पर्वत अपने मस्तक (शिखर) से उस शोभाको धारण करता है, जो कि, सदा नाशरहित है और स्मृतिके जानकार पण्डित लोग जिसे इन्द्राणीके सौभाग्यका अहंकार दूर करनेवाली कहते है ॥ १२० ॥ इसके मस्तकपर पद्म नामका वह सरोवर है जिसमे कि श्री देवीका निवास है, शास्त्रकारोने जिसका बहुत कुछ वर्णन किया है, जिसमे स्वच्छ जल भरा हुआ है, और जो फूले हुए सुवर्ण कमलोसे सुशोभित है ॥ १२१ ॥ यह पर्वत क्रमसे इस पद्मसरोवरके पूर्व तथा पश्चिम तोरणसे निकली हुई गंगा और सिन्धुनामकी महानदियोको धारण करता है ॥ १२२ ॥ तथा पद्म सरोवरके उत्तर तोरणद्वारसे निकलकर उत्तरकी ओर गयी हुई रोहितास्या नदीको भी यह पर्वत धारण करता है ॥ १२३ ॥ यह पर्वत इन अलङ्घ्य तीन महानदियोसे ऐसा सुशोभित होता है मानो उत्साह, मन्त्र और प्रभुत्व इन तीन शक्तियोसे अपना भूभृद्भाव अर्थात् राजापना (पक्षमे पर्वतपना) ही प्रकट कर रहा हो ॥ १२४ ॥ देदीप्यमान तथा दिशाओको व्याप्त करनेवाले अपने अनेक शिखरोसे यह पर्वत ऐसा जान पडता है मानो आकागरूपी आँगनको कीलोसे युक्त कर देवोका मार्ग ही रोक रहा हो ॥ १२५ ॥ इस पर्वतराजपर देवोके अनेक आवास है जो कि अपनी शोभासे स्वर्गकी बहुत भारी शोभाकी भी हँसी करते है ॥ १२६ ॥ इस प्रकार इस पर्वतमे अनेक गुण होनेपर भी एक बडा भारी दोष है और वह यह कि यह स्वयं गुरु अर्थात् बडा होकर भी अपने चारो ओर लगे हुए अगुरु द्रुम अर्थात् छोटे-छोटे वृक्षोको धारण करता है (परिहार पक्षमे अगुरु द्रुमका अर्थ अगुरु चन्दनके वृक्ष लेना चाहिए) ॥ १२७ ॥ यह पर्वत जगद्गुरु भगवान् वृषभदेवकी सदृशता धारण करता है क्योकि जिस प्रकार भगवान् वृषभदेव अपनी अलङ्घ्य महिमासे उदग्र अर्थात् उत्कृष्ट है उसी प्रकार यह पर्वत भी अपनी अलङ्घ्य महिमासे उदग्र अर्थात् ऊँचा है और जिस प्रकार भगवान् वृषभदेवने अपनी गरिमा अर्थात् गुरुपनेसे समस्त विष्वको व्याप्त कर लिया है उसी प्रकार इस पर्वतने भी अपनी गरिमा अर्थात् भारीपनमे समस्त विष्वको व्याप्त कर लिया है । भावार्थ — जिस प्रकार भगवान् वृषभदेवका गुरुपना समस्त लोकमे प्रसिद्ध है उसी प्रकार इस पर्वतका भारीपना भी लोकमे प्रसिद्ध

१ पर्यन्तस्य ल० । २ स्मृतिवेदिन । ३ श्रुता श्री (देवी) येन म । ४ पूर्वपश्चिमदिग्भ्योर्ण । ५ तन्मध्यमोर्ण-स्थान-दिग्भ्योर्ण । ६ उत्तरदिग्भ्योर्ण । ७ देवनेत्राम् । ८ अशक्तिना । ९ पग मन्त्रा मन्त्राधिकात् । १० स्वर्गजाम् । ११ कालागुणम्, लघुनन्तिनि ध्वनि । १२ उपमाम् ।

इत्यस्याऽपि परा शोभा शमयुक्ते^१ पुरोधसि । प्रशशस तमद्वा^२द्र संप्रीता भरताधिप ॥१२६॥
 स्वभुक्तिक्षेत्रसामान साऽभिनन्द्य^३ हिमाचलम् । प्रत्यावृत्तत् प्रभुवन्दु^४ वृषभाद्रि कुतूहलात् ॥१२७॥
 यो योजनशतोच्चाया मूले तापत्र विस्तृत । तद्वद्विस्तृतिमूर्ध्नि भुवा मालिरिवाद्गत ॥१२८॥
 यस्यो सगमुत्रो रम्या कदला^५ पण्डमण्डितै । सभागाय नभागानां वदन्ते स्म^६ लतालय ॥१२९॥
 सन गम^७ सनागश्च सपुष्पाग परिप्लुतम् । यदुपान्त वन सन्ध्य मुच्यत जातु नामर ॥१३०॥
 स्वतटस्फटिकास्सपरप्रमादिग्धहरि-मुत्सम् । शरदभ्रैरिवार^८धवपुप^९ सनमाजुपम्^{१०} ॥१३१॥
 त शैल भुवनस्यैक ललामव^{११} निरूपयन्^{१२} । कल्पामास हृद्भावात् स्वयश-प्रतिमानकम्^{१३} ॥१३२॥
 तमकपाण्डुर^{१४} शलभाकवशान्तमनद्वरम् । स्वयशाराशिनाकाश^{१५} पश्यन्नभिजन-द सः ॥१३३॥
 सोऽचल प्रमुमाया^{१६} त^{१७} मायान्तमखिलद्विपाम् । ग्रन्थग्रहीदिवाभ्यस्य^{१८} विष्वद्वधमिधनानिलै ॥१३४॥
 तत्तटीपान्त्वविश्रान्तसचरोरगकिन्नर । प्रोद्गायमानममल शुश्रुव^{१९} स्वयशाऽमुना ॥१३५॥
 जयलक्ष्मासुखालोकमङ्गलादशविभ्रमा । तत्तटीमिच्छया जहमनाऽस्य स्फटिकामला ॥१३६॥

है अथवा इस पवतने अग्ने विस्तारसे लोकका बहुत कुछ अंश व्याप्त कर लिया है ॥१२८॥
 इस प्रकार जब पुरोहित उस पवतकी उत्कृष्ट शोभाका वर्णन कर चुका तब भरतेश्वरने भी प्रसन्न होकर उस पवतकी प्रशंसा की ॥१२९॥ अपने उपभोग करनेयोग्य क्षेत्रकी सीमा स्वरूप हिमवान् पवतकी प्रशंसा कर महाराज भरत कुतूहलवश वृषभाचलको देखनेके लिए लौटे ॥१३०॥

जो सौ योजन ऊँचा है मूल तथा ऊपर क्रमसे सौ और पचास योजन चौड़ा है एवं ऊपरकी ओर उठा हुआ होनेसे पृथिवीके मस्तकके समान जान पड़ता है । जिसके ऊपरके मनोहर प्रदेश कैलाशके समूहसे सुशोभित लतागूहोसे आकाशगामी देव तथा विद्याधराके उपभोग करने योग्य है नाग सहजना और नागकेशरके वृक्षासे घिरे हुए तथा सेवन करने योग्य जिस पवत के समीपके जनोको देव लोग कभी नहीं छोड़ते है । अपने तटपर लगे हुए स्फटिक मणियोंकी फलती हुई प्रभासे जिसने समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली ह, जिसका शरीर शरदःश्रुतुके बादलोसे बना हुआ-सा जान पड़ता है और जो सदा देव तथा विद्याधरोसे सहित रहता है ऐसे उस पवतको लोकके एक आभूषणके समान देखते हुए श्रीमान् भरतने अपने यशका प्रतिबिम्ब माना था ॥१३१-१३५॥ जो एक सफेद रंगका है और जो कल्पान्त काल तक कभी नष्ट नहीं होता ऐसे उस वृषभाचलको अपने यशकी राशिके समान देखते हुए महाराज भरत बहुत ही आनन्दित हुए थे ॥१३६॥ उस समय वह पवत ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त शत्रुओं की सवमुखी भाग्यको नष्ट करनेवाला चक्रवर्ती भरतको अपने समीप आता हुआ जानकर चारों ओर बहनेवाले वनके वायुके द्वारा सामने जाकर उनका स्वागत-सत्कार ही कर रहा हो ॥१३७॥ वहाँपर भरतने उस पवतके किनारेके समीप विश्राम करते हुए विद्याधर नागकुमार और किन्नर देवोके द्वारा गाया हुआ अपना निमल यश भी सुना था ॥१३८॥ स्फटिकके समान

१ स्तुति कुवति सति । २ प्रशस्य । ३ व्याधुटितवान् । ४ लण्ड-अ० ६० स० ल० । ५ समर्था भवन्ति । ६ नागवृक्षसहितम् । ७ सजक्तसमि । ८ यदुपान्तवन ल० ५० द० अ ५० स । ९ लिप्तविडमुलम् । १० घटित । ११ आकाशपेशनसहितम् देव विद्याधर-सहितम् । १२ तिलकम् । १३ विलोकयन् । १४ सद्गुणम् । १५ बवलं धवलम् । १६ समानम् । १७ आ समन्तान् अय आय तस्य अन्त अन्तक नाग इत्यर्थः । विभूत्यक्तम् समन्तारपुण्यनाशकमित्यर्थः । अन शुभावहो विश्वि रित्यभिधानात् । १८ समन्तात् प्रसारिभि । विष्वद्वधं विष्वगञ्चतात्यभिधानात् । १९ श्रूयत स्म ।

अधिमैखलमस्यामीच्छिलामित्तिपु चक्रिणः । स्वनामाक्षरविन्यासे धृतिर्विश्वक्षमाजितः^२ ॥१४०॥
 काकिणीरत्नमादाय यदा लिलिखिपत्ययम्^३ । तदा राजसहस्राणां^४ नासान्यत्रैक्षताधिराट् ॥१४१॥
 असंख्यकरपकोटीपु येऽतिक्रान्ता धराभुजः । तेषां नामभिराकीर्णं त पश्यन् स सिसिप्मये ॥१४२॥
 ततः किञ्चित् स्वलद्गर्वो विलक्ष्मीभूय^५ चक्रिराट् । अनन्यशासनामेनां न मेने भरतावनीम् ॥१४३॥
 स्वय कस्यचिदेकस्य निरस्यन्नामशासनम् । स मेने निखिलं लोकं प्रायः स्वार्थपरायणम् ॥१४४॥
 अथ तत्र गिलापट्टे स्वहस्ततलनिस्तले^६ । प्रशस्तिमित्युदात्तार्थं व्यलिखत् स यशोधनः ॥१४५॥
 स्वस्तीक्ष्वाकु कुलव्योमतलप्रालेयद्दीधितिः । चातुरन्तं महीभर्ता^७ भरतः शातमातुरः^८ ॥१४६॥
 श्रीमानानम्रनिःशेषखचरामरभूचरः । प्राजापत्यो^९ मनुर्मान्यः शूरः शुचिरुदारधीः ॥१४७॥
 चरमाङ्गधरो धीरो^{१०} धीरैर्यश्चक्रधारिणाम् । परिक्रान्त धराचक्र जिष्णुना येन दिग्जये ॥१४८॥
 यस्याष्टादशकोटयोऽश्वा जलस्थलविलङ्घिनः । लक्षाश्चतुरर्गातिश्च मदेमा जयसाधने ॥१४९॥
 यस्य दिग्विजये विष्वक्खलरंणुभिरुत्थितैः । सदिङ्मुख रत्नमारुहं कपोतगलकंबुरैः ॥१५०॥

निर्मल और विजयलक्ष्मीके मुख देखनेके लिए मगलमय दर्पणके समान उस वृषभाचलके किनारे-
 की दीवारें भरतका मन हरण कर रही थी ॥ १३९ ॥ समस्त पृथिवीको जीतनेवाले चक्रवर्ती
 भरतको उस पर्वतके किनारेकी गिलाकी दीवारोपर अपने नामके अक्षर लिखनेमें बहुत कुछ
 सन्तोष हुआ था ॥ १४० ॥ चक्रवर्ती भरतने काकिणी रत्न लेकर ज्यो ही वहाँ कुछ लिखनेकी
 इच्छा की त्यों ही उन्होंने वहाँ लिखे हुए हजारों चक्रवर्ती राजाओके नाम देखे ॥ १४१ ॥ असख्यात
 करोड़ कल्पोमें जो चक्रवर्ती हुए थे उन सबके नामोंसे भरे हुए उस वृषभाचलको देखकर भरत-
 को बहुत ही विस्मय हुआ ॥ १४२ ॥ तदनन्तर जिसका कुछ अभिमान दूर हुआ है ऐसे चक्र-
 वर्तीने आश्चर्यचकित होकर इस भरतक्षेत्रकी पृथिवीको अनन्यशासन अर्थात् जिसपर दूसरेका
 शासन न चलता हो ऐसा नहीं माना था । भावार्थ — वृषभाचलकी दीवालपर असख्यात
 चक्रवर्तियोंके नाम लिखे हुए देखकर भरतका सब अभिमान नष्ट हो गया और उन्होंने स्वीकार
 किया कि इस भरतक्षेत्रकी पृथिवीपर मेरे समान अनेक शक्तिशाली राजा हो गये हैं ॥ १४३ ॥
 चक्रवर्ती भरतने किसी एक चक्रवर्तीके नामकी प्रशस्तिको स्वयं — अपने हाथसे मिटाया और
 वैसा करते हुए उन्होंने प्रायः समस्त ससारको स्वार्थपरायण समझा ॥ १४४ ॥

अथानन्तर — यश ही जिसका धन है ऐसे चक्रवर्तीने अपने हाथके तलभागके समान
 चिकने उस शिलापट्टपर नीचे लिखे अनुसार उत्कृष्ट अर्थसे भरी हुई प्रशस्ति लिखी ॥ १४५ ॥
 स्वस्ति श्री इक्ष्वाकु वंशरूपी आकाशका चन्द्रमा और चारों दिशाओकी पृथिवीका स्वामी
 मैं भरत हूँ, मैं अपनी माताके सौ पुत्रोंमें-से एक बड़ा पुत्र हूँ, श्रीमान् हूँ, मैंने समस्त विद्याधर
 देव और भूमिगोचरी राजाओको नम्रीभूत किया है, प्रजापति भगवान् वृषभदेवका पुत्र हूँ,
 मनु हूँ, मान्य हूँ, गौरवीर हूँ, पवित्र हूँ, उत्कृष्ट बुद्धिका धारक हूँ, चरमगरीरी हूँ, धीर वीर हूँ,
 चक्रवर्तियोंमें प्रथम हूँ और इसके सिवाय जिस विजयीने दिग्विजयके समय समस्त पृथिवीमण्डल-
 की परिक्रमा दी है अर्थात् समस्त पृथिवीमण्डलपर आक्रमण किया है, जिसके जल और मथल-
 में चलनेवाले अठारह करोड़ घोड़े हैं, जिसकी विजयी सेनामें चौरासी लाख मदोन्मत्त हाथी

१ मतोप । २ मकलमहीविजयिन । ३ लिङ्गिनुमिच्छति । ४ अपरिमिताना राजामिन्यर्थ । ५ विष्मयान्विनो
 भूत्वा । 'विलक्षो विस्मयान्विते' इत्यभिधानात् । ६ वन्दुं च ममन्ते इत्यर्थ । ७ वन्दुं चो द०, प०, उ०,
 अ०, न० । ८ त्रिमुद्र-हिमवद्गिरिपर्यन्तमहीनाथ । ९ शनस्य माता शतमाना तस्या अपत्य शतमातुरः ।
 १० प्रजापते पुरोन्पत्य पुमान् । ११ मन्त्र ।

प्रसाधितदिशो यस्य यश शशिकलामणम् । सुररमकुरुदगात् कुलक्षणाप्रकुक्षिपु ॥१५१॥
 दिग्जय यस्य सैन्यानि विश्रान्तान्यधिदिनम् । चक्रानुभ्रान्तितान्तानि क्राम्या हैमवतास्थले ॥१५२॥
 नसा श्रीनाभिराजस्य पुत्र श्रीवृषभशिन । पटपण्डमण्डितामना यः स्म शास्त्र्यग्निलो महाम् ॥१५३॥
 मत्वाऽसौ गत्वा^१ लक्ष्मीं जित्वर^२ तवभूभुताम् । जगद्विजयरी^३ कातिमणिष्टिदिहाचले ॥१५४॥
 इति प्रशस्तिमारमोधा विलितम् स्वयमभर^४ । प्रसूनप्ररुमुक्तैर्नृपाऽयचकिरऽभर ॥१५५॥
 तत्रोच्चैश्चरद्भवानाभद्रदु-दुमयोऽध्वनम् । दिवि द्वा जयत्यासीदशताप्युच्चैरघापयन् ॥१५६॥
 स्पर्धुनीसीकरासारवाहिनी ग वराहिन । मद्र विधरराधूत सा-द्रमन्दारनन्दना ॥१५७॥
 न कवल शिलाभिन्नायस्य नामाभरावली । लिखितानन चा-द्रेऽपि विम्ब तलान्छनच्छलात् ॥१५८॥
 लिखित^५ साक्षिणे मुक्तिरित्यस्ताहापि शासन । लिखित सोऽचला मुक्तिर्दिगयै साक्षिणोऽमरा ॥१५९॥
 भद्रो महाबुभावोऽय चक्रो दिक्चक्रनिजय । यनाक्रा-त महीचक्रमानत्रयमतिप्रिकान् ॥१६०॥
 सचरात्रिरुद्धपाऽपि हलयालहिताऽमुना । काति स्थलाग्निनायास्य रुद्रा हैमाचलस्थले ॥१६१॥

ह जिसकी दिग्विजयके समय चारा ओर उठी हुई कबूतरके गलेक समान कुछ-कुछ मलिन सेनाकी धूलिसे समस्त दिशाओके साथ साथ आकाश भर जाता है, समस्त दिशाओंको वश करनेवाला जिसका चन्द्रमाकी कलाओके समान निमल यश कुलपवतोंके मध्यभागमें देव लोग बार बार गाते ह दिग्विजयके समय चक्रके पीछ पीछ चलनेसे थकी हुई जिसकी सेनाओंने हिमवान् पर्वतकी तराईको उल्लघन कर दिशाओके अन्तभागमें विश्राम लिया है जो श्री नाभिराजका पौत्र है श्री वृषभदेवका पुत्र है, जिसने छह खण्डोंसे सुशोभित इस समस्त पृथिवीका पालन किया है और जो समस्त राजाओंको जीतनेवाला है ऐसे भुक्त भरतने लक्ष्मीको नखर समक्षकर जगत्में फैलनेवाली अपनी कीर्तिको इस पवतपर स्थापित किया है ॥ १४६ - १५४ ॥ इस प्रकार चक्रवर्तिनी अपनी प्रशस्ति स्वय अक्षरोंके द्वारा लिखी, जिस समय चक्रवर्ती उक्त प्रशस्ति लिख रहे थे उस समय देव लोग उनपर फूलोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ १५५ ॥ वहाँ जोर-जोरसे शब्द करते हुए गम्भीर नगाडे बज रहे थे, आकाशमें देव लोग जय-जय इस प्रकार सैकड़ों आशीर्वाद रूप शब्दोंका उच्चारण कर रहे थे ॥ १५६ ॥ और गंगा नदीके जलकी बूदोंके समूहको धारण करता हुआ तथा कल्पवृक्षोंके सघन वनको हिलाता हुआ वायु धीरे धीरे बह रहा था ॥१५७॥ भरतके नामके अक्षरोंकी पक्ति केवल शिलाकी दीवारपर ही नहीं लिखी गयी थी किन्तु उ-हाने काल चिह्नके बहानेसे चक्रमाके मण्डलमें भी लिख दी थी । भावाय - चन्द्रमा के मण्डलमें जो काला काला चिह्न दिखाई देता है वह उसका चिह्न नहीं है किन्तु भरतके नामके अक्षरोंकी पक्ति ही है यहाँ कविने अपह्नुति अलंकारका आश्रय लेकर वणन किया है ॥१५८॥ अन्य प्रशस्तियोंके समान भरतकी इस प्रशस्तिमें भी लेख, साक्षी और उपभोग करने योग्य क्षेत्र ये तीनों ही बातें थी क्योंकि लेख तो वृषभाचलपर लिखा ही गया था, दिग्विजय करनेसे छह खण्ड भरत उपभोग करनेयोग्य क्षेत्र था और देव लोग साक्षी थे ॥ १५९ ॥ अहा यह चक्रवर्ती बड़ा प्रतापी है क्योंकि इसने समस्त दिशाओंको जीतते समय पूव पश्चिम और दक्षिणके तीनों समुद्रपयन्त समस्त भूमण्डलपर आक्रमण किया है - समस्त भरत को अपने वश कर लिया है । यद्यपि विजयाद्य पर्वत उल्लघन करनेयोग्य नहीं है तथापि इसने

वने वनचरस्त्रीणामुदस्यन्नकावली । मुहुस्सल्लन् कपालेषु नृत्यद्भनशिखण्डिनाम् ॥१७२॥
 विलोलितालिराधु-वस्तुफुल्ला वनवहारा । गिरिनिग्नरसश्लेषशिशिरा मरुदावया ॥१७३॥
 प्रतिप्रयाणमानन्ना नृपास्तद्देशधामिन । प्रभुमाराग्याधकुराकुराता जयसाधन ॥१७४॥
 कृत्स्नामिति प्रसाध्येनामुचरा भरतावनिम् । प्रयासीदुदयो जिष्णुविजयाद्वलस्थली ॥१७५॥
 तत्रावाप्तिरसैन्य^१ च सनान्य^२ प्रभुरादिशन् । अश्रुत^३ गुहाद्वार प्राप्यरघु^४ नयत्यरम् ॥१७६॥
 यावदभ्यति सनानीम्लेच्छराजजयोधमान् । तारयन्मा किलातायुर्माया प^५ मुरसगिन् ॥१७७॥
 दक्षिणोत्तरयो श्रेण्यो निवसन्तोऽग्नरचरा । विद्याधराधिप साद्र प्रभु द्रष्टुमिहाययु^६ ॥१७८॥
 विद्याधरधराधीशरादानम्रमालिनि । नराशुमालिकाभ्याजादाज्ञास्य गिरिमा घना ॥१७९॥
 नमिद्व विनमिश्चैव विद्याधरधराधिपौ । स्वसारधनसामग्रिं त्रिभु^७ प्रदुमुपययु ॥१८०॥
 विद्याधरधरामारधनोपायनसपदा । तदुपानातयाऽन-यस्ययामादिभोदति ॥१८१॥
 तदुपाकृतरनाथ कन्यारत्नपुर सर । सरिन्धरविदोद-मानापूयत तदा प्रभु ॥१८२॥
 स्वसार^८ च नमधन्यां सुमद्री नामक-प्रकाम् । उदुवाह^९ स लम्भावात् कल्याणै तचरोचितै ॥१८३॥

को सुखी कर रहा था ॥१७१॥ वहाँके वनम भीलोंकी स्त्रियोंके वेशोंके समूहको उड़ाता हुआ नृत्य करते हुए वनमयूरीकी पूँछपर बार-बार टकराता हुआ भ्रमरोको इधर-उधर भगाता हुआ, फूली हुई वनकी लताओंको कुछ कुछ हिलाता हुआ और पहाड़ी झरनोंके स्पर्शसे शीतल हुआ वायु चारों ओर बह रहा था ॥१७२-१७३॥ विजय करनेवाली सेनाके द्वारा दबाये हुए उन देशोंमें निवास करनेवाले राजा लोग नम्र होकर प्रत्येक पड़ावपर महाराज भरतकी आराधना करते थे ॥१७४॥ इस प्रकार उत्तर भरत क्षेत्रकी समस्त पृथिवीको वश कर विजयी महाराज भरत फिरसे विजयाध पर्वतकी तराईमें आ पहुँचे ॥१७५॥ वहाँपर उन्होंने सेना ठहराकर सेनापतिके लिए आज्ञा दी कि 'गुफाका द्वार उघाड़कर शीघ्र ही पूव खण्डकी विजय प्राप्त करो ॥१७६॥ जबतक सेनापति म्लेच्छराजाओंको जीतकर वापस आया तबतक सुखपूर्वक रहते हुए महाराज भरतके छह महीने वहाँपर व्यतीत हो गये ॥१७७॥ विजयाध पर्वतकी दक्षिण तथा उत्तर श्रेणीपर निवास करनेवाले विद्याधर लोग अपने-अपने स्वामियोंके साथ महाराज भरतका दशन करनेके लिए वहीपर आये ॥१७८॥ दूरसे ही मस्तक झुकानेवाले विद्याधर राजाओंने नखोंकी किरणोंके समूहके बहानेसे महाराज भरतकी आज्ञा अपने सिरपर धारण की थी । भावार्थ-नमस्कार करते समय विद्याधर राजाओंके मस्तकपर जो भरत महाराजके चरणोंके नखोंकी किरणें पड़ती थी उनसे वे ऐसे मालूम होते थे मानो भरतकी आज्ञा ही अपने मस्तकपर धारण कर रहे हों ॥१७९॥ नमि और विनमि दोनों ही विद्याधरोंके राजा अपने मुख्य धनकी सामग्रीके साथ भरतके दशन करनेके लिए समीप आये ॥१८०॥ नमि और विनमि जो अथ किसीको नहीं मिलनेवाली विद्याधरोंके देशकी मुख्य धनरूप सम्पत्ति भेंटम लाये थे उससे महाराज भरतकी भारी सन्तोष हुआ था ॥१८१॥ जिस प्रकार नदियोंके प्रवाहसे समुद्र पूण हो जाता है उसी प्रकार उस समय नमि और विनमिके द्वारा उपहारम लाये हुए कन्यारत्न आदि अनेक रत्नोंके समूहसे महाराज भरतकी इच्छा पूण हो गयी थी ॥१८२॥ श्रीमान भरतने राजा नमिकी बहिन सुमद्री नामकी उत्तम कन्याके साथ

१ स्थलीम् ल० द इ० अ० स० । २ सैन्यरच ल० । ३ विभु । ४ उद्घाटित । ५ पूवखण्डम् । ६ शीघ्रम् । ७ आगच्छन् । ८ क्षत्र । ९ प्रभु ल० अ० स० इ० द० । १० विद्याधररूपायनीकृत्या । ११ भगिनीम् । भगिनी स्वसा इत्यभिधानात् । १२ परिणीतवान् ।

तां मनोजैरमस्येव स्तुति मप्राप्य चक्रवृत्त । स्व मने मरुतं जन्म परमानन्दनिर्भरम् ॥१८२॥
 नावाञ्जितं तनिःशेषम्लेच्छराजवलोकं वलं । जयलक्ष्मीं पुरस्कृत्य मेनानीः प्रभुमैक्षत ॥१८५॥
 कृतकार्यं च मन्त्रं न ताड्य म्लेच्छनायकान् । विमर्ज्य मन्त्राट् मज्जोऽभूत् प्रत्यायानुमपाट्मर्हाम् ॥१८६॥
 जयप्रयाणजं विप्रस्तदा भयं प्रदध्वन् । विप्रग्यल्लोणवे क्षोभमातन्वन् यो महीभृताम् ॥१८७॥
 ता काण्डकप्रपाताग्न्या प्रागेवोद्धातिना गुहाम् । प्रविशेन्न वलं जिष्णोश्चक्रग्वपुगेगमाम् ॥१८८॥
 गङ्गापगोमयप्रान्तमहावीर्याद्वयेन ग्वा । व्यतीयाय गुहा मेना कृतद्वारा चमभृता ॥१८९॥
 मुच्यमाना गुहा मेन्यैश्चिरादुच्छ्वमितेव ग्वा । चमगपि गुहागंधान्नि सृत्योर्जीवितेव ग्वा ॥१९०॥
 नाट्यमालामरस्तत्र ग्वाधं प्रभुमर्धयन् । प्रत्यगृह्णाद् गुहाद्वारि पृणकुम्भादिमद्गलं ॥१९१॥
 कृतोपच्छन्दनं चासु नाट्यमाल सुगर्भमम् । व्यसर्जयद्यथोद्देशं मन्त्रं भग्नपंथम् ॥१९२॥
 कृतोदयमिन भ्रान्तान्परितो गगनेचरा । परिचेन्नमोभागं मारुत्य धृन्मायकाः ॥१९३॥

मालिनीवृत्तम्

नमिचिनमिपुरो गैरन्वितः खेचरेन्द्रैः मचरगिरिगुहान्तभ्रान्तमुत्पायं दरम् ।
 गविरिव किरणोर्ध्वान्तयन्दिग्विभागान् निधिपतिरुद्वियाय प्रीणयन् जीवलोकम् ॥१९४॥
 सगस्रकिसलयान्त स्पन्दमन्दे सुरस्त्रीस्तननटपरिलक्ष्माममक्रान्तवामे ।
 मरति^१ मरति मन्द कन्दरेष्वद्रिमर्तुनिधिपतिगिरिराणा प्रादुरासन्निवेशाः ॥१९५॥

विद्याधरोके योग्य मगलाचारपूर्वक विवाह किया ॥१८३॥ रसकी धाराके समान मनोहर
 उस मुभद्राको पाकर उत्कृष्ट आनन्दसे भरे हुए, चक्रवर्तीने अपना जन्म सफल माना था ॥१८४॥
 इतनेमे ही जिसने अपनी मेनाके द्वारा समस्त म्लेच्छ राजाओकी सेना जीत ली है ऐसे सेनापति-
 ने जयलक्ष्मीको आगे कर महाराज भरतके दर्शन किये ॥१८५॥ जिसने अपना कार्य पूर्ण किया
 है ऐसे सेनापतिका सम्मान कर और आये हुए म्लेच्छ राजाओको विदा कर सम्राट् भरतेश्वर
 दक्षिणकी पृथिवीकी ओर आनेके लिए तैयार हुए ॥१८६॥ उस समय विजयके लिए प्रस्थान
 करनेकी सूचना देनेवाली भेरियाँ राजाओकी सेनारूपी समुद्रमे क्षोभ उत्पन्न करती हुई चारो
 ओर वज्र रही थी ॥१८७॥ चक्ररत्न जिसके आगे चल रहा है ऐसी भरतकी मेनाने पहलेसे ही
 उधाड़ी हुई काण्डकप्रपात नामकी प्रसिद्ध गुफामे प्रवेश किया ॥१८८॥ उस सेनाने गंगा
 नदीके दोनो किनारोपर-की दो बड़ी-बड़ी गलियोमे-से, सेनापतिके द्वारा जिसका द्वार पहलेसे ही
 खोल दिया गया है ऐसी उस गुफाको पार किया ॥१८९॥ सेनाके द्वारा छोड़ी हुई वह गुफा
 ऐसी जान पड़ती थी मानो चिरकालमे उच्छ्वास ही ले रही हो और वह सेना भी गुफाके रोध-
 से निकलकर ऐसी मालूम होती थी मानो फिरसे जीवित हुई हो ॥१९०॥ वहाँ नाट्यमाल
 नामके देवने दक्षिण गुफाके द्वारपर पूर्णकलश आदि मगलद्रव्य रखकर तथा रत्नोके अर्घसे
 अर्घ देकर भरत महाराजकी अगवानी की थी — सामने आकर सत्कार किया था ॥१९१॥
 भरत महाराजने अनेक प्रकारकी स्तुति करनेवाले उस नाट्यमाल नामके श्रेष्ठ देवका सत्कार
 कर उसे अपने स्थानपर जानेके लिए विदा कर दिया ॥१९२॥ धनुष-बाण धारण करनेवाले
 विद्याधर चारो ओरसे आकाशमार्गको घेरकर, सूर्यके समान अन्धकारसे परे रहकर उदित
 होनेवाले चक्रवर्तीकी परिचर्या करते थे ॥१९३॥ जिनमे नमि और विनमि मुख्य हैं ऐसे विद्या-
 धरोसहित तथा विजयार्ध पर्वतकी गुफाके भीतरी अन्धकारको दूर हटाकर सूर्यके समान
 किरणोके समूहसे दिशाओको प्रकाशित करता हुआ वह निधियोका अधिपति चक्रवर्ती समस्त
 जीवलोकको आनन्दित करता हुआ उदित हुआ अर्थात् गुफाके बाहर निकला ॥१९४॥ रस-

१ मनोजा रमस्येव । २ दक्षिणभूमिम् । ३ सेनान्या । ४ कृतसान्त्वनम् । ५ मुरथ्रेष्ठम् । ६ निजदेशमनति-
 क्रम्य । ७ पुर मरै । ८ उदेति म्म । ९ मुगन्वे । १० वाति मति ।

किसलयपुटभेदी देवदारुमाणामसकृदमरसि चो सीकरायाधुनान् ।

श्रमसलिलममुष्णा दुष्णसभूष्णु जिष्णो रश्मिरगिरितटाताधिप्यत मातरिश्वा ॥१९६॥

सपदिविजयसै यैर्निर्जितम्लेच्छखण्ड समुपहृतजयध्वनिश्रिणादिष्टमाप्रात् ।

जिनमिष जयलक्ष्मी सन्निधान निधीना परि दृढमुपतस्थौ नम्रमौलिश्चमृन्त ॥१९७॥

शादूलविक्राडितम्

जित्वा म्लेच्छनृपौ विजित्य च सुर प्रालेयशैलेनिर्न दम्भा च प्रणमय्य दिव्यमुभय स्वीकृत्य भद्रासनम् ।

हेलानिजितखेचराद्विरधिराट प्रत्यन्तपालान् जयन्सनान्वा विजयी व्यजेष्ट निरिली पट्मण्डभूषां मुवम् ॥१९८॥

पुण्यादित्ययमाहिमाह्वयगिरेरासोयधे प्राक्तनादाचापा च्यपयोनिधेजलनिधेरा च प्रतीच्यादित ।

चक्रैश्चामरिचक्र मीकरकरश्रकेण चक्री वशे तस्मात्पुण्यमुपाजयन्नु सुधियो जने मत सुस्थिता ॥१९९॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणमहापुराणसंग्रहे

भरतोत्तरार्द्धविजयवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तमं पर्व ॥३२॥

युक्त नवीन कोमल पत्तोंके भीतर प्रवेश करनेसे मन्द हुआ तथा देवांगनाओंके स्तनतटपर लगे हुए रेशमी वस्त्रोंमें जिसको सुगन्धि प्रवेश कर गयी है ऐसा वायु जिस समय उस विजयाध्व पवतकी गुफाओंमें धीरे धीरे बह रहा था उस समय निधियोंके स्वामी चक्रवर्तीकी सेनाके डेरोंकी रचना शुरू हुई थी ॥१९५॥ देवदारु वक्षोंके कोमल पत्तोंके सम्पुटको भेदन करनेवाला तथा गंगा नदीके जलकी बूंदोंको बार-बार हिलाता हुआ और विजयाध्व पवतके किनारेके अन्त भागसे आता हुआ वायु गरमोसे उत्पन्न हुए महाराज भरतके पसीनेको दूर कर रहा था ॥१९६॥ चक्रवर्तीके द्वारा आज्ञा प्राप्त होनेमात्रसे ही जिसने अपनी विजयी सेनाओंके द्वारा बहुत शीघ्र समस्त म्लेच्छ खण्ड जीत लिये ह और जो जयलक्ष्मीको ले आया है ऐसा सेनापति अपना मस्तक झुकाये हुए, निधियोंके स्वामी भरत महाराजके समीप आ उपस्थित हुआ । उस समय भरत ठीक जिनेन्द्रदेवके समान मालूम होते थे क्योंकि जिस प्रकार जिनेन्द्र देवके समीप सदा जयलक्ष्मी विद्यमान रहती है उसी प्रकार उनके समीप भी जयलक्ष्मी सदा विद्यमान रहती थी ॥१९७॥ विजयी भरतने (चिलात और आनत नामके) दोनों म्लेच्छराजाओंको जीतकर हिमवान् पवतके स्वामी हिमवान् देवको कुछे ही समयमें जीता, तथा (गंगा सिन्धु नामकी) दोनों देवियोंसे प्रणाम कराकर (उनके द्वारा दिये हुए) दो दिव्य भद्रासन स्वीकृत किये, और विजयाध्व पवतको लीला मात्राम जीतकर उसके समीपवर्ती राजाओंको जीतते हुए उन्होंने सेनापतिके साथ-साथ छह खण्डोंसे सुशोभित भरत क्षेत्रकी समस्त पृथिवीको जीता ॥१९८॥ जिनका हाथ अथवा टक्स शत्रुओंके समूहमें भय उत्पन्न करनेवाला है ऐसे चक्रवर्ती भरतने चक्ररत्नक द्वारा पुण्यसे ही हिमवान् पवतसे लेकर पूर्व दिशाके समुद्र तक और दक्षिण समुद्रसे लेकर पश्चिम समुद्र तक समस्त पृथिवी अपने वश की थी । इसलिए बुद्धिमान लोगोंको जैन-मतमें स्थिर रहकर सदा पुण्य उपाजन करना चाहिए ॥१९९॥

इस प्रकार अ प नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपटिलक्षण महापुराण संग्रहके हिन्दी

भाषानुवादमें उत्तराध्व भरतकी विजयका वर्णन करनेवाला

वर्तीसर्वा पर्व समाप्त हुआ ।

१ अनागत्यन । २ उष्णसजातम् । ३ आगच्छन् । ४ आज्ञात । ५ नाथम् । ६ प्राप्तवानित्यय । ७ सुचिरं
स० ६० । ८ हिमवद्वगिरिपतिम् । ९ भद्रादेवीसिन्धुदेवी । १० पूर्वोत् । ११ दक्षिणसमुद्रात् । १२ भयंकर
कर । भयंकर प्रतिभय मित्यभिधानात् ।

त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व

श्रीमानानमिताजपनृपविगाधगमर । मिन्द्रिग्विजयशक्ती न्यगुनगवा पुर्ग प्रति ॥१॥
नवान्य निधयः मित्रा रवान्यपि अनुदंग । मिन्द्रिगवाधं साद्वं पट्पण्डधरणाभुज ॥२॥
जित्वा महीमिमा वृन्ता लक्षणाभोधिमेगलाम । प्रयाणमकरोच्चक्री ग्राहेतनगर प्रति ॥३॥
प्रकीर्णकचलद्वाचिरहमन्त्रनुदा । निर्ययो विजयाद्वाडितटाट गन्धेय मा चम ॥४॥
करिणीनागिरधीयक्तेलेजंनतोमिनि । दिशो रन्धन्वलाभोधि प्रमयर्षं शुक्रद्वनि ॥५॥
चलता रथचक्राणा चीकारहंयहंपितं । वृहतिर्ग गजंन्द्राणा शब्दाद्वैत तदाभवत् ॥६॥
भेयं प्रस्थानशमिन्यो नेदुगमन्त्रनिःस्वना । अकालमन्त्रिनाशतामानन्त्राना शिग्विडिनाम् ॥७॥
तदाऽभृद्भुद्धमधीय हान्तिक्तेन प्रमपना । न्यगोधि पत्तिवृन्द च प्रयान्या रथकृपया ॥८॥
पादातकृतमवाधान पथ पर्यन्तपानिन ॥ हया गजा वस्थाञ्च भेजुस्तिर्यक्प्रचोदिता ॥९॥
पर्वतोदप्रमास्टो राज विजयपर्वतम् । प्रतस्थे विचलन्मौलि चक्री शक्रममद्यति ॥१०॥
अनुगद्गातद देशान् विलस्य मयग्निगिरीन । कल्याणलयात्रिभ्य प्रापतच्चक्रिणो बलम् ॥११॥

अथानन्तर — जिन्होंने समस्त राजा विद्याधर और देवोको नम्रीभूत किया है तथा समस्त दिग्विजयमे सफलता प्राप्त की है ऐसे श्रीमान् चक्रवर्ती भरत अपनी अयोध्यापुरीके प्रति लौटे ॥१॥ इन महाराज भरतको नी निधियाँ और चाँदह रत्न सिद्ध हुए थे तथा विद्याधरोके साथ-साथ छह खण्डोके समस्त राजा भी इनके वश हुए थे ॥२॥ लवण समुद्र ही जिसकी मेखला है ऐसी इस समस्त पृथिवीको जीतकर चक्रवर्तीने अपने अयोध्या नगरकी ओर प्रस्थान किया ॥३॥ टुलते हुए चमर ही जिसकी लहरे हैं और ऊपर चमकते हुए छत्र ही जिसके बबूले हैं ऐसी वह सेना गंगाके समान विजयार्ध पर्वतके तटसे निकली ॥४॥ हथिनोरूपी नावोसे, घोडोके समूहरूपी लहरोसे और मनुष्योंके समूहरूपी छोटी-छोटी तरंगोसे दिशाओको रोकता हुआ तथा खूब शब्द करता हुआ वह सेनारूपी समुद्र चारो ओर फैल गया ॥५॥ उस समय चलते हुए रथोके पहियोंके चीत्कार शब्दसे, घोडोकी हिनहिनाहटसे और हाथियोंकी गर्जनासे शब्दाद्वैत हो रहा था अर्थात् सभी ओर एक शब्द-ही-शब्द नजर आ रहा था ॥६॥ जिनका शब्द अतिशय गम्भीर है ऐसी प्रस्थान-कालको सूचित करनेवाली भेरियाँ मयूरोको असमयमे ही वादलोके गरजनेकी शका बढ़ाती हुई शब्द कर रही थी ॥७॥ उस समय दौडते हुए हाथियोंके समूहसे घोडोका समूह रुक गया था और चलते हुए रथोके समूहसे पैदल चलनेवाले सिपाहियोंका समूह रुक गया था ॥८॥ पैदल सेनाके द्वारा जिन्हे कुछ बाधा की गयी है ऐसे हाथी घोडे और रथ — थोड़ी दूर तक कुछ तिरछे चलकर ठीक रास्तेपर आ रहे थे । भावार्थ — सामने पैदल मनुष्योंकी भीड देखकर हाथी घोडे और रथ बगलसे बरककर आगे निकल रहे थे ॥९॥ जिनका मुकुट कुछ-कुछ हिल रहा है और जिनकी कान्ति इन्द्रके समान है ऐसे चक्रवर्तीने पर्वतके समान ऊँचे विजय पर्वत नामके हाथीपर सवार होकर प्रस्थान किया ॥१०॥ चक्रवर्ती की वह सेना गंगा नदीके किनारे-किनारे अनेक देश, नदी और पर्वतको उल्लघन करती हुई

१ सिद्धा विद्या-ल०, इ०, द०, अ०, स०, प० । २ पट्खण्डस्थितमहीपाला । ३ मेघध्वनि । ४ मार्गान् । सवाधानपथ अ०, प०, स०, इ०, द० । ५ मार्ग विहाय पर्यन्ते वर्तमाना भूत्वा । ६ सप्रापच्चक्रिणा बलम् ल० ।

कैलासाचलमभ्यणमथालोक्य रथाङ्गभृत् । निवेद्य निकटे सैन्यं प्रययौ जिनमर्चितुम् ॥१२॥
 प्रयातमनुजग्मुस्त भरतश्च महाद्युतिम् । शिचिष्णुमौल्य क्षमापा सौधमेन्द्रमिवामरा ॥१३॥
 अचिराच्च तमासाद्य शरदम्बरसच्छविम् । जिनस्यैव यशोराशिमभ्यनन्दद्विधां पति ॥१४॥
 निपतन्निशरारावैराह्यन्तमिधामरान् । त्रिजगद्गुरुमस्यारात् सेवध्वमिति सादरम् ॥१५॥
 मरुदान्दोलितोदग्रशाखाग्रैस्तटपादपै । प्रतोपादिव नृत्यन्त विकसिकुसुमस्मित ॥१६॥
 तटनिशरसपातैर्दाहुं पाद्यमिबोधतम् । वन्दारो^१मन्यच्च^२दस्य धिष्वगास्कन्दतो^३ जिनम् ॥१७॥
 शिखरोद्दि^४प्तिताम्बोदपटलोद्गी^५णघारिभिः । दाबनीत्यथ सिञ्चन्त स्पर्धयन्तलतावनम् ॥१८॥
 शुचिप्राव^६विनिर्माणै शिखरै^७ स्थगितान्वरै । गतिप्रसरमकस्य न्यक्कुर्वाणमिबोच्छ्रितै^८ ॥१९॥
 क्वचित् किंनरसभोग्यै^९ क्वचित् पद्मगसेवितै । क्वचिच्च^{१०}खचराक्रीडै^{११}धर्मैराविष्कृतश्रियम् ॥२०॥
 क्वचिद्विरलनीलांशुमिलितै स्फटिकोपलै । शशाङ्कमण्डलाशङ्कामातन्वन्त^{१२} नमोजुषाम् ॥२१॥
 हरिन्मणिप्रभाजालैर्भाजालैश्च प्रभाशमनाम्^{१३} । क्वचिदिन्द्रधनुर्लैखामाखिलन्त नमोऽङ्गणे ॥२२॥

क्रमसे कैलास पवतक समीप जा पहुँची ॥११॥ तदनन्तर चक्रवर्तिनि कैलास पवतको समीप ही देखकर सेनाओंको वही पासम ठहरा दिया और स्वयं जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करनेके लिए प्रस्थान किया ॥१२॥ जिस प्रकार सौधम इन्द्रक पीछे-पीछे देदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला अनेक देव जाते हैं उसी प्रकार आगे आगे जाते हुए अतिशय कातिमान् महाराज भरतके पीछे-पीछे देदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला अनेक राजा लोग जा रहे थे ॥१३॥ जिसकी काति शरदऋतुके बादलोंके समान है और इसीलिए जो जिनेन्द्र भगवान्के यशके समूहके समान जान पड़ता है ऐसे उस कलास पवतको बहुत शीघ्र पाकर महाराज भरत बहुत ही प्रसन्न हुए ॥१४॥ जा पड़ते हुए शरनोके शब्दोंसे ऐसा जान पड़ता है मानो समीप आकर तीनों जगत्के गुरु भगवान् वृषभदेवकी सेवा करो इस प्रकार देव लोगोंको आदरपूर्वक बुला ही रहा हो — जिनकी ऊँची-ऊँची शाखाओंके अग्रभाग वायुके द्वारा हिल रहे हैं और जिनपर फूल हुए फूल उनके मन्द हास्यके समान मालूम होते हैं ऐसे अपने किनारोंपर-के वृक्षोंसे जो ऐसा जान पड़ता है मानो सन्तोषसे नृत्य ही कर रहा हो—जो किनारोंपर-स शरनोंके पड़नेसे ऐसा जान पड़ता है मानो जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना करनेके लिए चारों ओरसे आते हुए मव्य जीवों के समूहके लिए पैर धोनेके लिए जल देनेको ही उद्यत हुआ हो — जो शिखरोंसे विदीण हुए बादलोंके समूहसे गिरते हुए जलसे ऐसा जान पड़ता है मानो दावानलके ढरसे अपने समीपवर्ती लताओंके वनको सींच ही रहा हो—जो स्फटिक मणिके सफेद पत्थरोंसे बने हुए और आकाश को घेरनेवाला अपने ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे ऐसा जान पड़ता है मानो सूर्यकी गतिके फैलावको रोक ही रहा हो—जिनमें कहीं तो किन्नर जातिके देव सम्मोग कर रहे हैं, कहीं नागकुमार जातिके देव सेवा कर रहे हैं और कहीं विद्याधर लोग क्रीडा करते हैं ऐसे अनेक वनोंसे जिसकी शोभा प्रकट हो रही है — जो कहींपर कुछ-कुछ नीलमणियोंकी किरणोंसे मिले हुए स्फटिक मणियोंके पत्थरोंसे देवोंको चन्द्रमण्डलकी आशंका उत्पन्न करता रहता है । जो कहींपर हरे रंगके मणियों की प्रभाके समूहसे और स्फटिक मणियोंकी प्रभाके समूहसे आकाशरूपी आननम इन्द्रधनुषकी रेखा लिख रहा था । कहींपर पद्मराग मणियोंकी किरणोंसे मिले हुए स्फटिक मणियोंकी किरणोंसे जिसके किनारेका समीपभाग कुछ-कुछ लाली लिये हुए सफेद रंगका हो गया है और

१ बलासम । २ वान्नीलस्य । ३ आगच्छत । ४ विदारित । ५ उद्गत । ६ स्फटिकपाषाण । ७ सभाग
 ८ अ स० । ८ खचरा-प । ९ खचराणाम् आसमन्तात् क्रीडा यप तानि । १० मातन्वान-द० ल अ०
 स० इ० । ११ पद्मरागाणाम् ।

किंचिदन्तरमारुह्य पश्यन्नाद्रे परां धियम् । प्राप्तावसरमित्यूच वचनं च पुराप्रसा ॥३६॥
 पश्य देव गिरिरस्य प्रदेशान्बहुविस्मयात् । रमन् गिरिदशा यत्र स्वर्गायामेऽप्यनादरा ॥३७॥
 पर्याप्तमतदेवास्य प्राप्तव सुवनातिगम् । द्रवो यदनमभ्यास्त चराचरगुरु पुर ॥३८॥
 महाद्विरयमुत्सगसगिनी सरिदङ्गना । शब्दं विमर्त्ति कामाच गलश्रीलालाशुक्राः ॥३९॥
 क्रीडाहृत्तोरहिंसोऽपि मृगेन्द्रो गिरिकन्दरात् । महाहिमयमाकपदैर्घ्यामुन्नत्यपारयन् ॥४०॥
 सर्वहृन्दं सहान्सर्वान् जनतातापहारिण । सुनीनिध वनाभोगानप धत्तेऽधिमदलम् ॥४१॥
 हरीशसरनिर्मिन्नमदद्विरदमस्तकान् । निश्वस पापभीत्यथ तजयत्यप सारवै ॥४२॥
 धत्ते सानुचरान् भद्रान् उच्चैर्विशान् स्वयग्रहान् । वनद्विपानथ शैलो भवानिव महीभुज ॥४३॥
 ध्वनतो घनसघातान् शरभा रभसादमी । द्विरदाशङ्कयोत्पत्य पतन्तो यान्ति शोच्यताम् ॥४४॥
 कपोलकायसरुग्णश्वको मद्गलबिला ॥४५॥ द्विपान वनसभोग सूचयतीह शारिण ॥४६॥

समझकर नखरूपी अकुरोसे विदारण करता हुआ सिंह देखा ॥३५॥ भरत महाराज कुछ दूर आगे चढकर जब पवतकी शोभा देखने लगे तब पुरोहितने अवसर पाकर नीचे लिखे अनुसार वचन कहे ॥३६॥ हे देव, इस पवतके अनेक आश्चर्योंसे भरे हुए उन प्रदेशोंको देखिए जिन पर कि देव लोग भी स्वर्गवासमें अनादर करते हुए क्रीडा कर रहे हैं ॥३७॥ समस्त लोक उल्लंघन करनेवाली इस पवतकी महिमा इतनी ही बहुत है कि चर और अचर-सभी गुरु भगवान् वृषभदेव इसपर विराजमान ह ॥३८॥ यह महापवत अपनी गोदी अर्थात् नीचे मध्यभागम रहनेवाली और जिनके नील जलरूपी वस्त्र छूट रहे ह ऐसी नदीरूपी स्त्रियोंव कामी पुरुषकी तरह सदा धारण करता है ॥३९॥ यह सिंह अहिंसक होनेपर भी केवल क्रीडा के लिए पवतकी गुफामें-से एक बड़े भारी सपको खींच रहा है परन्तु लम्बा होनेसे खींचने के लिए असमर्थ होता हुआ उसे छोड़ भी रहा है ॥४०॥ यह पवत अपने तटभागपर ऐसे अनेक वनके प्रदेशोंको धारण करता है जो कि ठीक मुनियोंके समान जान पड़ते हैं क्योंकि जिस प्रकार मुनि सब प्रकारके द्वन्द्व अर्थात् शीत उष्ण आदिवी बाधा सहन करते ह उसी प्रकार वे वन प्रदेश भी सब प्रकारके द्वन्द्व अर्थात् पशुपक्षियों आदिके युगल सहन करते हैं—धारण करते हैं जिस प्रकार मुनि सबका कल्याण करते ह उसी प्रकार वनके प्रदेश भी सबका कल्याण कर रहे हैं और जिस प्रकार मुनि जनसमूहके सन्ताप अर्थात् मानसिक व्यथाको दूर करते ह उसी प्रकार वनके प्रदेश भी सन्ताप अर्थात् सूर्यके धामसे उत्पन्न हुई गरमीको दूर करते ह ॥४१॥ यह पवत शब्द करते हुए झरनोंसे ऐसा जान मडता है मानो जिन्होंने अपने नखोंसे मदोन्मत्त हाथियों के मस्तक विदारण किये हैं ऐसे सिंहोंको पापके डरसे तजना ही कर रहा हो—डाट ही दिख रहा हो ॥४२॥ हे नाथ जिस प्रकार आप सानुचर अर्थात् सेवकोसहित, भद्र, उच्च कुल उत्पन्न हुए और उत्तम शरीरवाले अनेक राजाओंको धारण करते ह—उहे अपने अधीन रखते हैं उसी प्रकार यह पवत भी सानुचर अर्थात् शिखरोपर चलनेवाले, पीठपर-की उच्च से मुक्त और उत्तम शरीरवाल भद्र जातिके जगली हाथियोंको धारण करता है ॥४३॥ इधर ये अष्टापद, गरजते हुए मेघोंके समूहको हाथी समझकर उनपर उछलते हैं परन्तु फिर नीचे गिरकर शोचनीय दशाको प्राप्त हो रहे हैं ॥४४॥ कपोलोंके घिसनेसे जिनकी छाल घि

१ अघातुकीऽपि । २ समर्थो भूत्वा । ३ प्राणियुगल पक्षे दुःख । ४ सप्तहितान् । ५ गिरि । ६ ध्वनिसहित । ७ सानुप चरताति सानुचरास्तान् पक्षे अमुचरं संहितान् । ८ उन्नतपष्टास्थीन् पक्ष इक्ष्वाकृवादिबन्धा । ९ स्वविग्रहान् ट । शोभनललाटान् । अवग्रहो ललाटं स्याद् इत्यभिधानात् । पक्षे—मुष्टु स्वतन्त्रतानि पक्षान् । अवग्रह इति ख्यातो वृष्टिरोध मजालिके । स्वतन्त्रतानि पक्षेऽपि प्रतिबधऽप्यवग्रह इत्यभिधानात् । १० भूतवीन् । ११ मघसमूहान् । १२ गण्डस्थलनिघपणसमन् । १३ आर्द्रा । १४ गिरी ।

ज्वलन्धोषधिजालेऽपि निशि नाभ्यति किंर । तमोविशद्भयाऽस्याग्नेरिन्द्रनीलमयास्तगीः ॥५८॥
 हरिस्मणितटोत्सपमधुपानत्र भूधरे । तृणादुरधिधोपन्य मृगा यान्ति विलक्ष्यताम् ॥५९॥
 सरोजरागैरक्षाशुच्छरितो वनराजय । तता सप्यात्पवनव पुष्पन्तीह परां श्रियम् ॥६०॥
 सूर्याशुभि परामृष्टा सूर्यकान्ता चलत्यमा । प्रायस्तेजस्वि सपकस्तज पुष्पाति तादृशम् ॥६१॥
 इहन्दुकरसस्पर्शाप्रक्षरन्तोऽप्यनुक्षपम् । चन्द्रकान्ता न हीयन्त विचित्रा पुद्गलस्थिति ॥६२॥
 सुराणामभिगम्यत्वात् सिंहासनपरिग्रहात् । महत्त्वादचलयाच गिरिरप जिनायत ॥६३॥
 शुद्धस्फटिकसङ्गाशनिमलोदारविग्रह । शुद्धामेव शिवायास्तु तत्रायमचलाधिप ॥६४॥
 इति क्षसर्षि तस्याद् परां शोभा पुरोधसि । ससान्द्रत हवानन्द पर प्राप परतप ॥६५॥
 किंचिच्चान्तरमुल्लङ्घ्य प्रसन्नो नान्तरात्मना । प्रत्यासन्ननिस्थानं विदामास विदांवर ॥६६॥
 निपनत्पुष्पवर्षेण दुन्दुभीनां च नि स्वने । विदांभूव लोकशमभ्यासकृतसनिधिम् ॥६७॥

किनारेके समीप संचार करते हुए नक्षत्रोंके समूहपर मणियोंकी क्रांति पड़ रही है जिससे वे मणियोंके समान ही जान पड़ते हैं, पृथक् रूपसे दिखाई नहीं देते हैं ॥५७॥ यद्यपि यही रात्रिके समय ओषधियोंका समूह प्रकाशमान रहता है तथापि किनार जातिके देव अधिकारकी आशका से इन्द्रनील मणियोंके बने हुए इस पवतके किनारोंके सम्मुख नहीं जाते हैं ॥५८॥ इस पवत पर हरित मणियोंके बने हुए किनारोंकी फैलती हुई किरणोंको हरी घासके अकुर समझकर हरिण आते हैं परन्तु घास न मिलनेसे बहुत ही आश्चर्य और लज्जाको प्राप्त होते हैं ॥५९॥ इधर पद्मराग मणियोंकी किरणों-सी व्याप्त हुई वनकी पक्षियाँ ऐसी उत्कृष्ट शोभा धारण कर रही हैं मानो उनपर सध्याकालकी लाल लाल धूप ही फल रही हो ॥६०॥ ये सूर्यकान्त मणि सूर्यकी किरणोंका स्पर्श पाकर जल रही हैं सो ठीक ही है क्योंकि प्राय तेजस्वी पदार्थका सम्बन्ध तेजस्वी पदार्थके तेजको पुष्ट कर देता है ॥६१॥ इस पवतपर चन्द्रमाकी किरणोंका स्पर्श होनेपर चन्द्रकांत मणियोंसे यद्यपि प्रत्येक रात्रिको पानी झरता है तथापि ये कुछ भी कम नहीं होते सो ठीक ही है क्योंकि पुद्गलका स्वभाव बड़ा ही विचित्र है ॥६२॥ अथवा यह पवत ठीक जिनेन्द्रदेवके समान जान पड़ता है क्योंकि जिम प्रकार जिनेन्द्रदेवके समीप देव आते हैं उसी प्रकार इस पवतपर भी देव आते हैं, जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवने सिंहासन स्वीकार किया है उसी प्रकार इस पवतने भी सिंहासन अर्थात् सिंहके आसनोंको स्वीकार किया है - इसपर जहाँ-तहाँ सिंह बैठे हुए हैं अथवा सिंह और असन वृक्ष स्वीकार किये हैं, जिस प्रकार जिनेन्द्रदेव महान् अर्थात् उत्कृष्ट हैं उसी प्रकार यह पवत भी महान् अर्थात् ऊँचा है और जिनेन्द्रदेव जिस प्रकार अचल अर्थात् अपने स्वरूपमें स्थिर हैं उसी प्रकार यह पवत भी अचल अर्थात् स्थिर है ॥६३॥ हे देव जिसका उदार शरीर शुद्ध स्फटिकके समान निमल है ऐसा यह पवतराज कैलास शुद्धात्माकी तरह आपका कल्याण करनेवाला हो ॥६४॥ इस प्रकार जब पुरोहितने उस पवतकी उत्कृष्ट शोभाका वणन किया तब शत्रुओंको सन्तुष्ट करनेवाले महाराज भरत इस प्रकार परम आनन्दको प्राप्त हुए मानो सुखरूप ही हो गये हों ॥६५॥ विद्वानोंमें श्रेष्ठ भरत चक्रवर्ती प्रसन्न चित्तसे कुछ ही आगे बढ़े थे कि उन्हें वहाँ समीप ही जिनेन्द्रदेवका समवसरण जान पड़ा ॥६६॥ ऊपरसे पड़ती हुई पुष्पवृष्टिसे और दुन्दुभि बाजोंके शब्दोंसे उन्होंने जान

१ विस्मयताम् । २ पद्मराग । ३ मिथिता । ४ बद्धयन्ति । ५ रात्री रात्री । ६ न कृणा भवन्ति । ७ हरि विष्टरस्वीकारान पक्ष सिंहानामशनवृक्षाणा च स्वीकारात् । ८ स्तुतिं कुर्वति सति । ९ सुप्तायत । १० परं शत्रु तापयतीति परतपचक्र । ११ जानाति स्म । १२ समीपविक्रितस्थितिम् ।

नमः स्फटिकनिर्माणं प्राकारवलयं ततः । प्रस्थासतेर्जिनस्यैव लब्धशुक्तिं ददर्श स ॥१०३॥
 तत्र कल्पोपमै^१र्देवै^२ महाद्वारपालकैः । सादरं सोऽभ्यनुज्ञातं प्रविशेश सर्वा विमा ॥१०४॥
 समन्ताद्योजनायामविष्कम्भपरिमण्डलम् । श्रीमण्डपं जगद्विश्वमपश्यन्मान्तमात्मनि ॥१०५॥
 तत्रापश्य मुनीनिद्बोधोपादेवीश्च कल्पजा । सायिका नृपकान्ताश्च ज्योतिषव्योरोगामरी ॥१०६॥
 भावनव्यन्तरज्योति कल्पद्रान्पार्थिवान्मृगान् । भगवत्पादसम्प्रेक्षाप्रातिप्रोत्फुल्लोचनान् ॥१०७॥
 गणानिति क्रमात् पश्य परीचाय परंतप । त्रिमरालस्य पीठस्य प्रथमां मखलां श्रित ॥१०८॥
 तत्रानव मुदा चक्री धमचक्रधनुष्यम् । यक्षे द्वैविधत्तं मूर्ध्ना प्रभविम्भामुकारि यत् ॥१०९॥
 द्वितीयमखलायां च प्राचददौ महाध्वजान् । चक्रेमोक्षान्जपञ्चास्यस्रग्वस्त्रगदशस्त्रितान् ॥११०॥
 मखलाया तृतीयस्थामथैषिष्ठ जगद्गुरुम् । वृषभं स कृती वस्यो श्रीमद्गन्धकुटीस्थिता ॥१११॥
 तद्गर्भे रत्नसदमरुचिरे हरिविष्टरे । मरुद्गन्धर्वोसुप्ते सुनिविष्ट महातनुम् ॥११२॥
 छत्रत्रयकुतच्छायमप्यच्छायमघच्छिद्यम् । स्वतेजोमण्डलाक्रान्तान्सुरासुरमण्डलम् ॥११३॥
 अशोकशालिचिह्नेन व्यञ्जय तमिवाजसा । स्वपादाश्रयिणां शोकनिरासं शक्तिमात्मन ॥११४॥
 चलप्रकीर्णकाकीर्णपयन्तं कान्तविग्रहम् । स्वमाद्रिमिव धम्रान्तं पतन्निशरसंकुलम् ॥११५॥

किया ॥१०३॥ आगे चलकर उन्होंने आकाशस्फटिकका बना हुआ तीसरा कोट देखा । वह कोट ऐसा जान पड़ता था मानो जिनेन्द्रदेवकी समीपताके कारण उसे शुद्धि ही प्राप्त हो गयी हो ॥१०४॥ वहाँ महाद्वारपालके रूपमें खड़े हुए कल्पवासी देवोंसे आदरसहित आज्ञा लेकर भरत महाराजने भगवान्की समामें प्रवेश किया ॥१०५॥ वहाँ उन्होंने चारों ओरसे एक योजन लम्बा, चौड़ा, गोल और अपने भीतर समस्त जगतको स्थान देनेवाला श्रीमण्डप देखा ॥१०६॥ उसी श्रीमण्डपके मध्यम उन्होंने जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंके दर्शन करनेसे उत्पन्न हुई प्रीतिसे जिनके नेत्र प्रफुल्लित हो रहे हैं ऐसे क्रमसे बैठे हुए उज्ज्वल ज्ञानके धारी मुनि कल्पवासिनी देवियाँ आधिकाओंसे सहित रानी आदि स्त्रियाँ, ज्योतिषी व्यन्तर और भवनवासी देवोंकी देवियाँ, भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देव, राजा आदि मनुष्य और मृग आदि पशु ऐसे बारह सुघ देखे तथा इन्हींको देखते हुए महाराज भरतने तीन कटनीदार पीठकी प्रथम कटनीका आश्रय लेकर उसकी प्रदक्षिणा दी ॥१०७—१०९॥ उस प्रथम कटनीपर चक्रवर्तीने, जिन्हें यक्षोंके इन्द्रोने अपने मस्तकपर धारण कर रखा है और जो सूर्यके बिम्बका अनुकरण कर रहे हैं ऐसे चारों दिशाओंके चार धमचक्रोंकी प्रसन्नताके साथ पूजा की ॥११०॥ दूसरी कटनीपर उन्होंने चक्र, हाथी, बैल, कमल, सिंह, माला, वस्त्र और गरुडके चिह्नोंसे चिह्नित आठ महाध्वजाओंकी पूजा की ॥१११॥ तदनन्तर विद्वान् चक्रवर्ती ने, जिसपर शोभायुक्त गन्धकुटी स्थित थी ऐसी तीसरी कटनीपर जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव को देखा ॥११२॥ उस गन्धकुटीके भीतर जो रत्नोंकी बनावटसे बहुत ही सुन्दर और भद्र पद्मके शिखरके समान ऊँचे सिंहासनपर बैठे हुए थे, जिनका शरीर बड़ा — जिनपर तीन छत्र छाया कर रहे थे परन्तु जो स्वयं छाया रहित थे, पापाको नष्ट करनेवाले थे, जिन्होंने अपने प्रभामण्डलसे मनुष्य, देव और धरणेन्द्र सभीके समूहको प्राप्त कर लिया था—जो अशोक वृक्षके चिह्नसे ऐसे जान पड़ते थे मानो अपने चरणोंका आश्रय लेनेवाले जीवोंका शोक दूर करनेके लिए अपनी शक्ति ही प्रकट कर रहे हों—जिनके समीपका भाग चारों ओरसे बल्लते हुए चामरोसे व्याप्त हो रहा था, जो सुन्दर शरीरके धारक थे और इसीलिए जो उस सुमेध

क ते गुणा गनेन्द्राणामप्यगण्यो क भारता । तथापि प्रयत्ने स्वीतु मत्स्या त्वद्गुणनिर्णयौ ॥१२८॥
 फलाय त्वद्गता भक्तिरनुरूपाय प्रकल्पते । स्वामिसपत्न्यपुष्पाति ननु सपत्न्यरूपराम् ॥१२९॥
 घातिकममलापायात् प्रादुरासन् गुणास्तव । घनावरणनिमुक्तमूर्त्तैर्मानोयथाऽशव ॥१३०॥
 यथाथदशनशानसुखवीर्यादिलब्धयः । क्षायिक्यस्तव निर्जाता घातिकमविनिजयात् ॥१३१॥
 क्वलाल्प पर च्योतिस्तव द्वय यदोदगात् । तदा लाकमलोक च त्वमबुद्धा विनावधे ॥१३२॥
 सा प्रयत्नं तव वक्तीश वच शुद्धिरशेषमा । न हि वाग्विभवा मन्दघियामस्तीह पुष्कल ॥१३३॥
 वन्तुप्रामाण्यतो द्वय वच प्रामाण्यमिध्यत । न ह्यशुद्धतराद् वक्तु प्रमवन्त्युज्ज्वला गिर ॥१३४॥
 सप्तमज्ज्वात्मिकेयं त भारती विश्वगोचरा । आसप्रतातिममला त्वय्युद्गावधितु क्षमा ॥१३५॥
 स्यादस्त्येव हि नास्त्येव स्यादवक्तव्यमित्यपि । स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्यमिति ते साव भारती ॥१३६॥

हू ॥१२७॥ हे देव जो गणधर देवोके द्वारा भी गम्य नहीं हू ऐसे कहा तो आपके अनन्त गुण और कहाँ मुझ सरोखा मन्द पुरुष ? तथापि आपके गुणोंके अधीन रहनेवाली भक्तिसे प्ररित होकर आपकी स्तुति करनेका प्रयत्न करता हूँ ॥१२८॥ हे भगवन्, आपके विषय में की हुई थोड़ी भक्ति भी बहुत भारी फल देनेके लिए समर्थ रहती है सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीकी सम्पत्ति सेवक जनोकी सम्पत्तिकी परम्पराको पुष्ट करती हो है ॥१२९॥ हे नाथ, जिस प्रकार मेघोंके आवरणसे छूटे हुए सूर्यकी अनेक किरणें प्रकट हो जाती ह उसी प्रकार घातिया कर्मरूपी मलके दूर हो जानेसे आपके अनेक गुण प्रकट हुए हैं ॥१३०॥ हे प्रभो, घातिया कर्मोंको जीत लनेसे आपके यथाथ दशन, ज्ञान सुख और वीर्य आदि क्षायिक लब्धियाँ प्रकट हुई ह ॥१३१॥ हे देव जिस समय आपके केवलज्ञान नामकी उत्कृष्ट ज्योति प्रकट हुई थी उसी समय आपने मर्यादाके बिना ही समस्त लोक और अलोकको जान लिया था ॥१३२॥ हे ईश सब जगह जानेवाली अर्थात् संसारके सब पदार्थोंका निरूपण करनेवाली आपके वचनोंकी शुद्धि आपके सर्वज्ञपनेको प्रकट करती है सो ठीक ही है क्योंकि इस जगत्में मन्द बुद्धि वाल जीवोंके इतना अधिक वचनोंका वमव कभी नहीं हो सकता है ॥१३३॥ हे देव, वक्ता की प्रमाणतासे ही वचनोंकी प्रमाणता मानी जाती है क्योंकि अत्यन्त अशुद्ध वक्तासे उज्ज्वल वाणी कभी उत्पन्न नहीं हो सकती है ॥१३४॥ हे नाथ समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाली आपकी यह सप्तभंगरूप वाणी ही आपमें आप्तपनेकी निमल प्रतीति उत्पन्न करानेके लिए समर्थ है ॥१३५॥ हे सबका हित करनेवाला, आपकी सप्तभंगरूप वाणी इस प्रकार है कि जीवादि पदार्थ कथंचित् हूँ ही, कथंचित् नहीं हूँ ही, कथंचित् दोनों प्रकार हूँ ही कथंचित् अवक्तव्य हूँ ही कथंचित् अस्तित्व रूप होकर अवक्तव्य है कथंचित् नास्तित्व रूप होकर अवक्तव्य हैं और कथंचित् अस्तित्व तथा नास्तित्व—दोनों रूप होकर अवक्तव्य है । विशापाथ—जैनागममें प्रत्येक वस्तुमें एक-एक धर्मके प्रतिपक्षी धर्मकी अपेक्षासे सात-सात भग माने गये ह जो कि इस प्रकार ह—१ स्यादस्त्येव २ स्यान्नास्त्येव, ३ स्यादस्ति च नास्त्येव, ४ स्यादवक्तव्यमेव ५ स्यादस्ति चावक्तव्य च, ६ स्यान्नास्ति चावक्तव्य च और ७ स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्य च । इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ससारका

१ -मध्यगम्या ल । २ प्रयत्न करिष्ये । ३ त्वद्गुणाधीनतया । ४ निवृत्ता जाता । ५ उदेति रूप । ६ सवर्ण ताम् । ७ सबगा । ८ सम्पूण । ९ आप्तस्य निश्चित्यम् । १ स्यादस्त्येवेत्यादिना सप्तभगी योजनीया कथ मिति चेत् (१) स्यादस्त्येव (२) स्यान्नास्त्येव, (३) द्वयमपि मिलित्वा स्यादस्तिनास्त्येव (४) स्यादवक्तव्यमेव (५) स्यान्नावक्तव्यपदेन सह स्यादस्ति नास्त्येव द्वयं योजनीयम् कथम् ? स्यान्नास्त्यवक्तव्यम् (६) स्यान्नास्त्य चावक्तव्यमिति (७) स्यादस्तिनास्त्यचावक्तव्यमिति । ११ सबहित ।

विरुद्धावद्धागजालरुद्धाभ्यामुग्धवृद्धिषु । अभ्रद्वेयमनासेषु मार्वज्यं त्वयि तिष्ठते ॥१३७॥

रविः पयोधरोत्सगसुसरदिमर्विकामिभिः । सूच्यतेऽवजैर्यथा तद्वदुज्जैर्वाग्विमवैर्मवान् ॥१३८॥

प्रत्येक पदार्थ स्वचतुष्टय (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) की अपेक्षा अस्तित्व रूप ही है, परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तित्व रूप ही है और एक साथ दोनो धर्म नहीं कहे जा सकनेके कारण अवक्तव्य रूप भी है, इस प्रकार प्रत्येक पदार्थमे मुख्यतासे अस्तित्व, नास्तित्व और अवक्तव्य ये तीन धर्म पाये जाते हैं। इन्ही मुख्य धर्मोंके संयोगसे सात-सात धर्म हो जाते हैं। जैसे 'जीवोऽस्ति' जीव है। यहाँपर जीव और अस्तित्व क्रियामे विगोप्य विगोपण सम्बन्ध है। विगोपण विगोप्यमे ही रहता है इसलिए जीवका अस्तित्व जीवमे ही है दूसरी जगह नहीं है, इसी प्रकार 'जीवो नास्ति'-जीव नहीं है यहाँपर भी जीव और नास्तित्वमे विगोप्य-विगोपण सम्बन्ध है इसलिए ऊपर कहे हुए नियमसे नास्तित्व जीवमे ही है दूसरी जगह नहीं है। जीवके इन अस्तित्व और नास्तित्व रूप धर्मोंको एक साथ कह नहीं सकते इसलिए उसमे एक अवक्तव्य नामका धर्म भी है। इन तीनों धर्मोंमे-से जब जीवके केवल अस्तित्व धर्मकी विवक्षा करते हैं तब 'स्याद् अस्त्येव जीव' ऐसा पहला भग होता है, जब नास्तित्व धर्मकी विवक्षा करते हैं तब 'नास्त्येव जीव' ऐसा दूसरा भग होता है, जब दोनोंकी क्रम-क्रमसे विवक्षा करते हैं तब 'स्यादस्ति च नास्त्येव जीव' इस प्रकार तीसरा भग होता है, जब दोनोंकी अक्रम अर्थात् एक साथ विवक्षा करते हैं तब दो विरुद्ध धर्म एक कालमे नहीं कहे जा सकनेके कारण 'स्यादवक्तव्यमेव' ऐसा चौथा भग होता है, जब अस्तित्व और अवक्तव्य इन दो धर्मोंकी विवक्षा करते हैं तब 'स्यादस्ति चावक्तव्य च' ऐसा पाँचवाँ भग होता है, जब नास्तित्व और अवक्तव्य इन दो धर्मोंकी विवक्षा करते हैं तब 'स्यान्नास्ति चावक्तव्य च' ऐसा छठा भग हो जाता है और जब अस्तित्व, नास्तित्व तथा अवक्तव्य इन धर्मोंकी विवक्षा करते हैं तब 'स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्य च' ऐसा सातवाँ भग हो जाता है। संयोगकी अपेक्षा प्रत्येक पदार्थमें प्रत्येक धर्म सात-सात भगके रूप रहता है इसलिए उन्हें कहनेके लिए जिनेन्द्र भगवान्ने सप्त-भगी (सात भगोके समूह) रूप वाणी-के द्वारा उपदेष्टा दिया है। जिस समय जीवके अस्तित्व धर्मका निरूपण किया जा रहा है उस समय उसके अवशिष्ट धर्मोंका अभाव न समझ लिया जाये इसलिए उसके साथ विवक्षा-सूचक स्याद् गच्छका भी प्रयोग किया जाता है तथा सन्देह दूर करनेके लिए नियमवाचक एव या च आदि निपातोका भी प्रयोग किया जाता है जिससे सब मिलाकर 'स्यादस्त्येव जीव' इस वाक्यका अर्थ होता है कि जीव किसी अपेक्षासे है ही। इसी प्रकार अन्य वाक्योंका अर्थ भी समझ लेना चाहिए। जैनधर्म अपनी व्यापक दृष्टिसे पदार्थके भीतर रहनेवाले उसके समस्त धर्मोंका विवक्षानुसार कथन करता है इसलिए वह स्याद्वाचक कहलाता है। वास्तवमे इस सर्वमुखी दृष्टिके बिना वस्तुका पूर्ण स्वरूप कहा भी तो नहीं जा सकता ॥१३६॥ हे देव, जिनकी बुद्धि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरुद्ध तथा सम्बन्धरहित वचनोंके जालमे फँसकर व्यामृग्य हो गयी है ऐसे कुदेवोंमे श्रद्धान नहीं करने योग्य सर्वज्ञता आपमे विराजमान है। भावार्थ - सर्वज्ञ वही हो सकता है जिसके वचनोमे कहीं भी विरोध नहीं आता है। ससारके अन्य देवों-देवताओं-के वचनोमे पूर्वापर विरोध पाया जाता है और इसीमे उनकी भ्रान्त बुद्धिका पता चल जाता है इन सब कारणोंको देखते हुए 'वे सर्वज्ञ थे' ऐसा विज्वाव नहीं होता परन्तु आपके वचनो अर्थात् उपदेशोमे कहीं भी विरोध नहीं आता तथा आपने वस्तुके ममस्त धर्मोंका वर्णन किया है इनमे आपकी बुद्धि-ज्ञान-निभ्रान्त है और इसीलिए आप सर्वज्ञ हैं ॥१३७॥ जिन प्रकार मेघोंके

१. प्रज्ञानभूते निर्णयाय तिष्ठतीत्यर्थ । 'स्येवप्रकाशने इति न्येवविषये वान्मनेन्दे-जिवान्दे निर्णय प्रमाण-भूत इत्य न्येय ।

यथा धृतमसे दूरात्तत्र्यं ते विस्तै शिखा^१ । तथा त्वमपि सुयनै^२ सूरैरासोक्तिमहसि^३ ॥१३९॥
 आहामाध्यामिकीय ते ज्ञानसपन्महोदया । बहिर्विभूतिरवैषा शास्ति न शास्त्रता^४ त्वयि ॥१४०॥
 पराध्यमासन सैह कल्पित सुरशिखिपि ॥ रत्नस्कन्धुरित^५ भाति तावक^६ मरुत्तद्भवत् ॥१४१॥
^७सुरैरुच्छ्रितमेतने छत्राणा त्रयमूर्जितम् । त्रिजगत्त्रयमेवे^८ चिह्नं न प्रतीम कथं वयम् ॥१४२॥
 चामराणि तवामूनि धीम्यमानानि चामर । शसयनन्यसामायमैश्वर्यं भुवनातिगम् ॥१४३॥
 परितस्त्वस्समा देव वर्णन्त्येते सुराम्बुदा । सुमनोवपमुद्गन्धि^९ याहूतमधुपवजम् ॥१४४॥
 सुरदुन्दुभयो मद्र^{१०} ध्वनन्त्येते नभोऽङ्गणे । सुरकिंकरहस्ताप्रताडितास्त्वज्योत्सवे ॥१४५॥
 सुरैरासवितोपान्तो जनताशोकतापनुत्^{११} । प्रायस्त्वामयमवेति^{१२} तवाशोकमहाऽह ॥१४६॥
 स्वदेहदीप्तयो दीप्रा प्रसरयमित सभाम् । धृतबालातपच्छायास्त्वाना नयनोत्सवम् ॥१४७॥

बीचमें जिसकी समस्त किरणें छिप गयी ह ऐसा सूर्य यद्यपि दिखाई नहीं देता तथापि फूले हुए कमलोंसे उसका अस्तित्व सूचित हो जाता है उसी प्रकार आपका प्रत्यक्ष रूप भी दिखाई नहीं देता तथापि आपके श्रेष्ठ वचनोंके वैभवके द्वारा आपके प्रत्यक्ष रूपका अस्तित्व सूचित हो रहा है । भावार्थ — आपके महान् उपदेश ही आपको सबज्ञ सिद्ध कर रहे हैं ॥१३८॥ अथवा जिस प्रकार सघन अ प्रकारमें यद्यपि मयूर दिखाई नहीं देता तथापि अपने शब्दोंके द्वारा दूर से ही पहचान लिया जाता है उसी प्रकार आपका आप्तपना यद्यपि प्रकट नहीं दिखाई देता तथापि आप अपने स्पष्ट और सत्याथ वचनोंसे आप्त कहलानेके योग्य हैं ॥१३९॥ अथवा हे देव जिसका बड़ा भारी अभ्युदय है ऐसी यह आपकी अध्यात्मसम्बन्धी ज्ञानरूपी सम्पत्ति दूर रहे आपकी यह बाह्य विभूति ही हम लोगोंको आपके हितोपदेशीपनका उपदेश दे रही है । भावार्थ — आपकी बाह्य विभूति ही हमें बतला रही है कि आप मोक्षमागरूप हितका उपदेश देनेवाला सच्चे वक्ता और आप्त ह ॥१४०॥ हे भगवन् देवरूप कारीगरोंके द्वारा बनाया हुआ और रत्नोंकी किरणोंसे मिला हुआ आपका यह श्रेष्ठ सिंहासन मेरु पर्वतके शिखर के समान सुशोभित हो रहा है ॥१४१॥ देवोंके द्वारा ऊपरकी ओर धारण किया हुआ यह आपका प्रकाशमान छत्रत्रय आपकी तीनों लोकोंकी प्रभुताका चिह्न है ऐसा हम क्यों न विश्वास करें ? भावार्थ — आपके भस्तकके ऊपर आकाशमें जो देवोंने तीन छत्र लगा रखे है वे ऐसे मालूम होते हैं मानो आप तीनों लोकोंके स्वामी है यही सूचित कर रहे हों ॥१४२॥ देवोंके द्वारा ढुलाये हुए ये चमर तीनों जगत्को उल्लघन करनेवाले आपके असाधारण ऐश्वर्यको सूचित कर रहे है ॥१४३॥ हे देव, ये देवरूपी मेघ आपकी सभाके चारों ओर अत्यन्त सुगन्धित तथा भ्रमरोंके समूहको बुलानेवाली फूलोंकी वर्षा कर रहे ह ॥१४४॥ हे प्रभो, आपके विजयोत्सवमें देवरूप किंकरोंके हाथोंके अग्र भागसे ताडित हुए ये देवोंके दुन्दुभि बाजे आकाश रूप आगनम गम्भीर शब्द कर रहे हैं ॥१४५॥ जिसका समीप भाग देवोंके द्वारा सेवित है अर्थात् जिसके समीप देव लोग बैठे हुए हैं और जो जनसमूहके शोक तथा सन्तापको दूर करने वाला है ऐसा यह अशोकवृक्ष प्राय आपका ही अनुकरण कर रहा है क्योंकि आपका समीप भाग भी देवोंके द्वारा और आप भी जनसमूहके शोक और सन्तापको दूर करनेवाले ह ॥१४६॥ जिसने ^{१३} धारण की है और जो नेत्रोंका उत्सव बढा रही है ऐसी यह आपकी सभाके चारों ओर फल रही है । भावार्थ —

दिव्यभाषा तत्राग्रेयभाषा भेदानुकारिणी । निरस्यति मनोऽवान्तमवाचामपि^१ देहिनाम् ॥१४८॥
 प्रतिदार्पयन् भूतिगिरिमष्टनयो प्रभो । महिमान तत्राचष्टे विस्मष्टं विष्टपानिगम् ॥१४९॥
 त्रिमंखलम्य पीठम्य मेगेग्वि गर्गयम् । चूलिकेव त्रिमान्युच्चं सेव्या गन्धकुटी तव ॥१५०॥
 वन्दारुणा मुनीन्द्रागा स्तोत्रप्रतिरचमृदु । स्तोनुकामेव मन्त्र्या त्वा मेरा भान्यनिसमदान ॥१५१॥
 पराव्यरत्निसीणामेनासन्त्यन्तमास्त्रगम् । त्वामव्यामीनमानम्रा नाक्रमार्जो भजन्त्यमी ॥१५२॥
 मणिसामणयोऽसीपा नन्नाणां भान्ति मौलयः । मदीपा इव गन्धार्घा, स्थापितास्वप्नान्तिके^२ ॥१५३॥
 नताना मुक्कोटीना चक्राम्यत्रिमस्तनम् । प्रमादागा इवाल्लगना युष्मन्पादनखागवः ॥१५४॥
 तन्वर्षणस्तन्तविरवान्धसमर्थोपिनाम् । दधन्यमनि वस्त्राणि त्वदुपाङ्घ्र्यमनुजश्रियम् ॥१५५॥
 वक्त्रेण्वमग्नारोणां मधत्ते कुङ्कुमश्रियम् । युष्मन्पादनलच्छाया प्रमरन्ती जयाऽरुणा ॥१५६॥
 गणाधुपित^३ भूभागमव्यवर्ता त्रिमंखल । पीठादिरयमाभानि तत्रावि^४ कृतमङ्गलः ॥१५७॥
 प्रथमोऽस्य परिक्षेपो धर्मचक्रैर^५ कृतः । द्वितीयोऽपि तत्राऽर्मीभिर्द्विद्वष्टासु महाध्वजै ॥१५८॥
 श्रीमण्डपनिवेशने योजनप्रमितोऽप्ययम् । त्रिजगज्जन्ताऽजन्तप्रावेशोपग्रहश्च^६ ॥१५९॥
 धूर्लीगालपरिक्षेपो मानस्तस्माः सरामि च । त्वानिका मल्लिलापूर्णा वर्द्धवनपरिच्छिदः ॥१६०॥

आपके भामण्डलकी प्रभा सभाके चागे ओर फैल रही है ॥१६०॥ ममस्त भाषाओंके भेदोका अनुकरण करनेवाली अर्थात् ममस्त भाषाओं रूप परिणत होनेवाली आपकी यह दिव्य ध्वनि जो वचन नहीं बोल सकते ऐसे पशु पक्षी आदि तिर्यचोंके भी हृदयके अन्धकारको दूर कर देती है ॥१६८॥ हे प्रभो, आपकी यह प्रातिहार्यरूप आठ प्रकारकी विभूति आपकी लोकोत्तर महिमाको स्पष्ट रूपसे प्रकट कर रही है ॥१६९॥ मेरु पर्वतके समान ऊँचे तीन कटनीदार पीठपर सबके द्वारा सेवन करने योग्य आपकी यह ऊँची गन्धकुटी मेरुकी चूलिकाके समान मुग्धोभित हो रही है ॥१५०॥ वन्दना करनेवाले उत्तम मुनियोंके स्तोत्रोंकी प्रतिध्वनिसे यह गन्धकुटी ऐसी जान पड़ती है मानो भक्तिवग हृषसे आपकी स्तुति ही करना चाहती हो ॥१५१॥ हे प्रभो, जो श्रेष्ठ रत्नोमे बनी हुई और अतिगय देदीप्यमान इस गन्धकुटीमे विराजमान है ऐसे आपकी, स्वर्गमे रहनेवाले देव नम्र होकर सेवा कर रहे हैं ॥१५२॥ हे देव, जो अग्रभागमे लगे हुए मणियोंमे सहित है ऐसे इन नमस्कार करते हुए देवोंके मुकुट एमे जान पड़ते हैं मानो आपके चरणोंके समीप दोषकसहित रत्नोंके अर्घ ही स्थापित किये गये हो ॥१५३॥ नमस्कार करते हुए करोड़ो देवोंके मस्तकोपर जो आपके चरणोंके नखोंकी किरणें पड़ रही हैं वे ऐसी मुग्धोभित हो रही हैं मानो उनपर प्रसन्नताके अग ही लग रहे हो ॥१५४॥ आपके नखरूपी मुग्धोभित हो रही है मानो ये देवागताओंके मुख आपके चरणोंके समीपमे दर्पणमे जिनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है ऐसे ये देवागताओंके मुख आपके चरणोंके समीपमे

सालग्नितयमुत्तुङ्गचतुर्गोपुरमण्डितम् । मङ्गलद्रव्यसदाहो निधयस्तोरणानि च ॥१६१॥
 नाट्यशालाद्वयं दीप्त लसदपङ्क्तिद्वयम् । वनराजिपरिशेषश्चैत्यद्वयमपरिवृत^१ ॥१६२॥
 वनवेदीद्वयं प्रोच्चैर्ध्वजमालोत्ततावनि । कल्पद्रुमवनाम गा^२ स्तूपहर्म्यावलीत्यपि ॥१६३॥
 सदोऽवनि^३ रिय देव नृसुरासुरपावनी । त्रिजगत्सारसदोह इवैकत्र निवेशित ॥१६४॥
 बहिर्विभूतिरित्युच्चैराविष्टतमहोदया । लक्ष्मीमाध्यात्मिकीं ध्यन् ध्यनन्ति णिन तावकीम् ॥१६५॥
 समापरिच्छद् सोऽय सुरस्तव विनिर्मित । वैराग्यातिशयं नाथ नोपहृत्य^४ प्रतर्कित^५ ॥१६६॥
 द्यन्तुतमाहाभ्याल्लिजगद्ब्रह्मो भवान् । स्तुत्योपतिष्ठमान^६ मा^७ पुनातात्पूतशासन ॥१६७॥
 अल स्तुतिप्रपञ्चन तवाचिन्त्यतमा गुणा । जयशान नमस्तुभ्यमिति संक्षेपत स्तुभे ॥१६८॥
 जयश जय निदग्धकर्म^८ धनजयाजर । जय लोकगुरो साव जयताजय जिवर^९ ॥१६९॥
 जय लक्ष्मीपत जिष्णो जयानन्तगुणोज्ज्वल । जय विश्वनगद्वन्धो जय विश्वजगद्धित ॥१७०॥
 जयाखिलजगद्वेदिन् जयाखिलसुखोदय । जयाखिलजगद्यष्ट नयाखिलजगद्गुरो ॥१७१॥
 जय निर्जितमोहारे जय सर्जितममथ । जय जमजरातङ्कविजयिन् विजितान्तक ॥१७२॥

वनोका समूह - ऊँचे-ऊँचे चार गोपुर दरवाजोसे सुशोभित तीन कोट, मंगल द्रव्योंका समूह, निधियाँ, तोरण - दो दो नाट्यशालाएँ, दो-दो सुंदर धूप घट, चैत्यवृक्षोसे सुशोभित वन पवित्रियोंकी परिधि - दो वनवेदी, ऊँची-ऊँची ध्वजाओंकी पवित्रसे भरी हुई पृथिवी, कल्पवृक्षो के वनका विस्तार, स्तूप और मकानाकी पवित्र - इस प्रकार मनुष्य देव और धरणेद्रोंकी पवित्र करनेवाली आपकी यह समामूमि ऐसी जान पड़ती है मानो तीनों जगत्की अच्छी अच्छी वस्तुओका समूह ही एक जगह इकट्ठा किया गया हो ॥१६०-१६४॥ हे जिनेद्र, जिससे आपका महान् अभ्युदय या ऐश्वर्य प्रकट हो रहा है ऐसी यह आपकी अतिशय उत्कृष्ट बाह्य विभूति आपकी अन्तरंग लक्ष्मीको स्पष्ट रूपसे प्रकट कर रही है ॥१६५॥ हे नाथ, जिसके विषयमे कोई तक वितक नहीं कर सकता ऐसी यह देवोंके द्वारा रची हुई आपके समस्त सरणकी विभूति आपके वैराग्यके अतिशयको नष्ट नहीं कर सकती है । भावाथ - समवसरण समाकी अनुपम विभूति देखकर आपके हृदयमें कुछ भी रागभाव उत्पन्न नहीं होता है ॥१६६॥ इस प्रकार जिनकी अद्भुत महिमा है जो तीनों लोकोंके स्वामी है और जिनका शासन अतिशय पवित्र है ऐसे आप स्तुतिके द्वारा उपस्थान (पूजा) करनेवाल मुझे पवित्र कीजिए ॥१६७॥ हे भगवन्, आपकी स्तुतिका प्रपच करना यथ है क्योंकि आपके गुण अत्यन्त अचिन्त्य हैं इसलिए मैं संक्षेपसे इतनी ही स्तुति करता हूँ कि हे ईशान, आपकी जय हो और आपको नमस्कार हो ॥१६८॥ हे ईश, आपकी जय हो हे कमरूप ईधनको जलानेवाले, आपकी जय हो, हे जरारहित, आपकी जय हो, हे लोकोंके गुरु, आपकी जय हो, हे सबका हित करनेवाले, आपकी जय हो, और हे जयशील, आपकी जय हो ॥१६९॥ हे अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीके स्वामी जयनशील आपकी जय हो । हे अनन्तगुणोसे उज्ज्वल, आपकी जय हो । हे समस्त जगत्के वधु आपकी जय हो । हे समस्त जगत्का हित करनेवाले, आपकी जय हो ॥१७०॥ हे समस्त जगत्को जाननेवाले, आपकी जय हो । हे समस्त सुखोंको प्राप्त करनेवाले आपकी जय हो । हे समस्त जगत्मे श्रेष्ठ, आपकी जय हो । हे समस्त जगत्के गुरु, आपकी जय हो ॥१७१॥ हे मोहरूपी शत्रुको जीतनेवाल, आपकी जय हो । हे कामदेवको भत्सना करने

१ अलङ्कृत परिष्कारो विभूषणम् इत्यभिधानान् । २ नवाभोग द० इ० । ३ समवसरणभूमिः । ४ न भागवति । ५ ऊशतोत ऊहितुमगदर इत्ययम् । ६ स्तोत्रेणाचयनम् । ७ पवित्र कुर । ८ जयशील ।

जय निर्मद निर्माय जय निर्मोह निर्मम । जय निर्मल निर्द्वन्द्व जय निष्कल^१ पुष्कल ॥१७३॥
जय प्रबुद्ध सन्मार्ग जय दुर्मार्गरोधन । जय कर्मारिमर्माविद्ध^२ मर्मचक्र जयोद्धर^३ ॥१७४॥
जयाध्वरपते यज्वन् जय पूज्य महोदय । जयोद्धर जयाचिन्त्य^४ सद्धर्मरथसारथे ॥१७५॥
जय निस्तीर्णसंसारपारवारगुणाकर । जय निःशेषनिर्णीतविद्यारत्नाकर प्रभो ॥१७६॥
नमस्ते परमानन्तसुखरूपाय तायिने^५ । नमस्ते परमानन्दमयाय परमात्मने ॥१७७॥
नमस्ते भुवनोद्भासिज्ञानभाभारभासिने^६ । नमस्ते नयनानन्दिपरमौदारिकस्त्रिपे ॥१७८॥
नमस्ते मस्तकन्यस्तस्वहस्ताञ्जलिकुड्मलैः । स्तुताय त्रिदशाधीशैः स्वर्गावतरणोत्सवे ॥१७९॥
नमस्ते प्रचलन्मौलिघटिताञ्जलिबन्धनैः । नुताय^७ मेरुशैलाग्रस्नाताय सुरसत्तमैः ॥१८०॥
नमस्ते मुकुटोपाग्रलग्रहस्तपुटोद्भटैः^८ । लौकान्तिकैरधीष्टाय^९ परिनिष्क्रमणोत्सवे ॥१८१॥
नमस्ते स्वकिरीटाग्ररत्नग्रावान्तचुम्बिमिः । कराब्जमुकुलैः प्रासकेवलेज्याय नाकिनाम् ॥१८२॥
नमस्ते पारनिर्वाणकल्याणेऽपि प्रवत्स्यति^{१०} । पूजनीयाय वहीन्द्रैर्ज्वलन्मुकुटकोटिमि ॥१८३॥

वाले, आपकी जय हो । हे जन्मजरारूपी रोगको जीतनेवाले, आपकी जय हो । हे मृत्युको जीतनेवाले, आपकी जय हो ॥ १७२॥ हे मदरहित, मायारहित, आपकी जय हो । हे मोह-रहित, ममतारहित, आपकी जय हो । हे निर्मल और निर्द्वन्द्व, आपकी जय हो । हे शरीर-रहित, और पूर्ण ज्ञानसहित, आपकी जय हो ॥ १७३ ॥ हे समीचीन मार्गको जाननेवाले, आपकी जय हो । हे मिथ्या मार्गको रोकनेवाले, आपकी जय हो । हे कर्मरूपी शत्रुओके मर्मको वेधन करनेवाले, आपकी जय हो । हे धर्मचक्रके द्वारा विजय प्राप्त करनेमे उत्कट, आपकी जय हो ॥ १७४ ॥ हे यज्ञके अधिपति, आपकी जय हो । हे कर्मरूप ई धनको ध्यानरूप अग्नि-मे होम करनेवाले, आपकी जय हो । हे पूज्य तथा महान् वैभवको धारण करनेवाले, आपकी जय हो । हे उत्कृष्ट दयारूप चिह्नसे सहित तथा हे समीचीन धर्मरूपी रथके सारथि, आपकी जय हो ॥१७५॥ हे ससाररूपी समुद्रको पार करनेवाले, हे गुणोंकी खानि, आपकी जय हो । हे समस्त विद्यारूपी समुद्रका पान करनेवाले, हे प्रभो, आपकी जय हो ॥१७६॥ आप उत्कृष्ट अनन्त सुखरूप है तथा सबकी रक्षा करनेवाले है इसलिए आपको नमस्कार हो । आप परम आनन्दमय और परमात्मा है इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १७७ ॥ आप समस्त लोकको प्रकाशित करनेवाले ज्ञानकी दीप्तिके समूहसे देदीप्यमान हो रहे है इसलिए आपको नमस्कार हो । आपके परमौदारिक शरीरकी कान्ति नेत्रोंको आनन्द देनेवाली है इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १७८ ॥ हे देव, स्वर्गावतरण अर्थात् गर्भकल्याणकके उत्सवके समय इन्द्रोने अपने हाथोंकी अजलिरूपी बिना खिले कमल अपने मस्तकपर रखकर आपकी स्तुति की थी इसलिए आपको नमस्कार हो ॥१७९॥ अपने नम्र हुए मस्तकपर दोनों हाथ जोड़कर रखनेवाले उत्तम-उत्तम देवोंने जिनकी स्तुति की है तथा सुमेरु पर्वतके अग्रभागपर जिनका जन्माभिषेक किया गया है ऐसे आपके लिए नमस्कार है ॥ १८० ॥ दीक्षाकल्याणकके उत्सवके समय अपने मुकुटके समीप ही हाथ जोड़कर लगा रखनेवाले लौकान्तिक देवोंने जिनका अधिष्ठान अर्थात् स्तुति की है ऐसे आपके लिए नमस्कार हो ॥ १८१ ॥ अपने मुकुटके अग्रभागमे लगे हुए रत्नोंका चुम्बन करनेवाले देवोंके हाथरूपी मुकुलित कमलोंके द्वारा जिनके केवलज्ञानकी पूजा की गयी है ऐसे आपके लिए नमस्कार हो ॥१८२॥ हे भगवन्, जब आपका मोक्षकल्याणक होगा

१ गरीरबन्धनरहित । २ मर्म विध्यति ताडयतीति मर्माविन् तस्य ननुद्धि । 'नहिर्वृत्तिवृत्तिपिन्धिमहितनिम्बि चो वारकन्येति' दीर्घ । ३ उद्भट । ४ दयाचिह्न द०, ल०, इ०, अ०, प०, म० । ५ पात्रकाय । ६ ज्ञान-ग्निममूहप्रकाशिने । ७ नुताय । ८ भ्रमद्भि, समर्थ वा । ९ अधिविष्टाय मन्त्रागनुमतायेत्यर्थ । १० भाविनि ।

नमस्ते प्राप्तकल्याणमहेज्याय महोजिव । प्राज्ययैलोक्यरात्राय ज्यायस ज्यायसामपि ॥१८४॥

नमस्ते नतनाकी-द्रधुलारत्नाचिताद्ध्यय । नमस्ते दुजपारातिनिजयापार्जितधिय ॥१८५॥

नमोऽस्तु तुभ्यमिद्वर्द्धे सपर्यामहर्त पराम् । रहोरजोऽरिधातायै प्राप्ततन्नामह्वयै ॥१८६॥

जितान्तक नमस्तुभ्य जितमोह नमो स्तु त । जितानङ्ग नमस्त स्तादे^१ विरागाय स्वयम्भवे ॥१८७॥

त्वा नमस्त्यन् जननमैनम्यत सुहृती पुमान् । गां जयजितजत^२ द्यस्वजयोद्धोपणाकृती ॥१८८॥

त्वस्तुत पूतवागस्मि चत्स्मृत पूतमानसः । स्वशत पूतदहाऽस्मि धन्याऽस्म्यद्य स्वदाक्षणात् ॥१८९॥

अहमद्य कृतार्थाऽस्मि च^३ माथ सकल मम । सुनिवृत्त^४ इशां मद्य सुप्रसन्न मनाऽद्य म ॥१९०॥

त्वचीर्यसरसि स्वच्छे पुण्यतीथसुसमृते । सुस्नातोऽह चिरादद्य पूतोऽस्मि सुरनिवृत्त^५ ॥१९१॥

त्वत्पादनलभाजालसलिलैरस्तकलमपे । अधिमस्तकमालनैरमिषिण इवास्त्यहम् ॥१९२॥

एकत सावभौमधीरियमप्रतिशासना । एकतश्च भवत्पादसवालोककपावना ॥१९३॥

उस समय भी देदीप्यमान मुकुटोंको धारण करनेवाले वल्लिकुमार देवोंके इन्द्र आपकी पूजा करेंगे इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १८३ ॥ हे नाथ, आपको गर्भ आदि कल्याणकोके समय बड़ी भारी पूजा प्राप्त हुई है, आप महान् तेजके धारक ह, आपको तीन लोकका उत्कृष्ट राज्य प्राप्त हुआ है और आप बड़ोंमें भी बड़े अथवा श्रेष्ठोम भी श्रेष्ठ ह इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १८४ ॥ नमस्कार करते हुए स्वर्गके इन्द्रोंके मुकुटम लगे हुए मणियोंसे जिनके चरणोंकी पूजा की गयी है ऐसे आपके लिए नमस्कार हो और जिन्होंने कमरूपी दुर्जय शत्रुओंको जीतकर अनन्तचतुष्टयरूपी उत्तम लक्ष्मी प्राप्त की है ऐसे आपके लिए नमस्कार हो ॥ १८५ ॥ हे उत्कृष्ट श्रद्धियोंको धारण करनेवाले, आप उत्कृष्ट पूजाके योग्य है तथा रहस अर्थात् अन्तराय रज अर्थात् ज्ञानावरण दशनावरण और अरि अर्थात् मोहनीय कर्मके नष्ट करनेसे आपने 'अरिहन्त' ऐसा साधक नाम प्राप्त किया है इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १८६ ॥ हे मृत्युको जीतनेवाले, आपकी नमस्कार हो । हे मोहको जीतनेवाले, आपको नमस्कार हो । और हे कामको जीतनेवाले आप वीतराग तथा स्वयम्भू है इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ १८७ ॥ हे नाथ, जो आपको नमस्कार करता है वह पुण्यात्मा पुरुष अन्य अनेक नम्र पुरुषोंके द्वारा नमस्कृत होता है और जो आपके विजयकी घोषणा करता है वह कुशल पुरुष जीतने योग्य समस्त कमरूप शत्रुओंको जीतकर गो अर्थात् पृथिवी भाषाणीको जीतता है ॥ १८८ ॥ हे देव, आज आपकी स्तुति करनेसे मेरे वचन पवित्र हो गये हैं आपका स्मरण करनेसे मेरा मन पवित्र हो गया है आपको नमस्कार करनेसे मेरा शरीर पवित्र हो गया है और आपके दशन करनेसे मैं धन्य हो गया हूँ ॥ १८९ ॥ हे भगवन्, आज मैं कृतार्थ हो गया हूँ आज मेरा जन्म सफल हो गया है आज मेरे नेत्र सन्तुष्ट हो गये हैं और आज मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया है ॥ १९० ॥ हे देव स्वच्छ और पुण्यरूप जलसे खूब भरे हुए आपके तीथरूपी सरोवरम मैंने चिरकालसे अच्छी तरह स्नान किया है इसीलिए मैं आज पवित्र तथा सुखसे सन्तुष्ट हो रहा हूँ ॥ १९१ ॥ हे प्रभो, जिसने समस्त पाप नष्ट कर दिये हूँ ऐसा जो यह आपके चरणोंके नखोंकी कार्तिका समूहरूप जल मेरे भस्तकपर लग रहा है उससे मैं ऐसा मालूम होता हूँ मानो मेरा अभियेक ही किया गया हो ॥ १९२ ॥ हे विभो, एक बार तो मुझे दूसरेके शासनसे रहित यह चक्रवर्तीकी विभूति प्राप्त हुई है और एक बार

१ ज्याया यात्राय । २ अन्तरायानावरणमाहनीयघातान । ३ अहमिति नामप्रसिद्धाय । ४ भवतु ।

५ नमस्तुभ्य । ६ भाजितजेनग्रपदा । ७ अभ्यस्तपुष्यवत्यौ । ८ सुसन्तुष्ट ।

यद्विभ्रान्तिविमृष्टेन महदेनो मयाऽर्जितम् । तत्त्वत्सदर्शनाह्नीन तमो नैव रवेर्यथा ॥१९४॥

एतत्पद्मस्मृतिमात्रेण पुमानेति पवित्रताम् । किमुत त्वद्गुणस्तुत्या भक्त्यैवं सुप्रयुक्तया ॥१९५॥

भगवंस्त्वद् गुणस्तोत्राद् यन्मया पुण्यमार्जितम् । तेनास्तु त्वत्पदाम्भोजे परा भक्ति सदापि मे ॥१९६॥

चसन्ततिलकावृत्तम्

इत्थं चराचरगुरुं परमादिदेव स्तुत्वाऽधिराट् धरणिपैः सममिद्वबोधः ।

आनन्दवापलवसिक्तपुरःप्रदेशो भक्त्या ननाम करकुड्मललग्नमौलिः ॥१९७॥

श्रुत्वा पुराणपुरुषाच्च पुराणधर्म कर्मारिचक्रजयलब्धविशुद्धबोधात् ।

संप्रीतिमाप परमां भरताधिराजः प्रायो धृतिः कृतधियां स्वहितप्रवृत्तौ ॥१९८॥

आमृच्छ्य च स्वगुरुमादिगुरु निर्धीनो व्यालोलमौलितटताडितपादपीठः ।

भूयोऽनुगम्य च मुनीन् प्रणतेन मूर्ध्ना स्वावामभूमिमभिगन्तुमना बभूव ॥१९९॥

भक्त्यापितां स्रजमिवाधिपदं जिनस्य स्वां दृष्टिमन्वितलम्सुमनोविक्रामाम् ।

शेषान्धयैव च पुनर्विनिवर्त्य कृच्छान् चक्राधिपो जिनसमाभवनात्प्रतस्थे ॥२००॥

समस्त लोकको पवित्र करनेवाली आपके चरणोकी सेवा प्राप्त हुई है ॥१९३॥ हे भगवन्, दिशाभ्रम होनेसे विमूढ होकर अथवा दिग्विजयके लिए अनेक दिशाओमें भ्रमण करनेके लिए मुग्ध होकर मैंने जो कुछ पाप उपार्जन किया था वह आपके दर्शन मात्रसे उस प्रकार विलीन हो गया है जिस प्रकार कि सूर्यके दर्शनसे रात्रिका अन्धकार विलीन हो जाता है ॥१९४॥ हे देव, आपके चरणोके स्मरणमात्रसे ही जब मनुष्य पवित्रताको प्राप्त हो जाता है तब फिर इस प्रकार भक्तिसे की हुई आपके गुणोकी स्तुतिसे क्यों नहीं पवित्रताको प्राप्त होगा ? अर्थात् अवश्य ही होगा ॥१९५॥ हे भगवन्, आपके गुणोकी स्तुति करनेसे जो मैंने पुण्य उपार्जन किया है उससे यही चाहता हूँ कि आपके चरणकमलोमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे ॥१९६॥ इस प्रकार चर अचर जीवोके गुरु सर्वोत्कृष्ट भगवान् वृषभदेवको नमस्कार कर जिसने आनन्द-के आँमुओकी बूँदोसे सामनेका प्रदेश सींच दिया है, जिसका ज्ञान प्रकाशमान हो रहा है, और जिसने दोनो हाथ जोड़कर अपने मस्तकसे लगा रखे हैं ऐसे चक्रवर्ती भरतने भक्तिपूर्वक भगवान्-को नमस्कार किया ॥१९७॥ कर्मरूपी शत्रुओके समूहको जीतनेसे जिन्हें विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ है ऐसे पुराण पुरुष भगवान् वृषभदेवसे पुरातन धर्मका स्वरूप सुनकर भरताधिपति महाराज भरत बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषोको प्राय अपना हित करनेमें ही सन्तोष होता है ॥१९८॥ तदनन्तर अपने चंचल मुकुटके किनारेसे जिन्होंने भगवान्के पादपीठका स्पर्श किया है ऐमे निधियोके स्वामी भरत महाराज अपने पिता आदिनाथ भगवान्से पूछकर तथा वहाँ विराजमान अन्य मुनियोको नम्र हुए मस्तकमें नमस्कार कर अपनी निवासभूमि अयोध्याको जानेके लिए तत्पर हुए ॥१९९॥ चक्राधिपति भरतने जिसमें अनुक्रमसे खिले हुए सुन्दर फूल गुँथे हुए हैं और जो श्री जिनेन्द्रदेवके चरणोमें भक्तिपूर्वक अर्पित की गयी है ऐसी मालाके समान, सुन्दर मनकी प्रमत्ततासे युक्त अपनी दृष्टिको शेषाश्वन नम्र बड़ी कठिनाईमें हटाकर भगवान्के समाभवन अर्थात् समवसरणमें प्रस्थान किया ॥२००॥

१ जिनेन्द्रियनमामदेन । २ मत्स्वानम् । ३ नष्टम् । ४ आदिप्रम्य । ५ -मर्जितम् ल० । ६ शोभनमनो-विश्रान्तं मुमुक्षुविश्रान्तं च । ७ मिद्वेपान्मया ।

आलोकयन् जिनसमावनिभूतिमिद्वौ विस्फारितक्षणयुगौ युगदोषशङ्कु ।
 पृथ्वीश्वरैरनुगतं प्रणतोत्तमाङ्गैः प्रस्थावृत्तस्त्वसदनं मनुष्यशकतु ॥२०१॥
 पुण्योदयाक्षिपिपतिर्विजिताखिलाशस्तच्चिर्जितौ^१ गमितपष्टिसमा^२सहस्र ।
 प्रीत्याऽभिवन्द्य जिनमाप परं प्रमोदं^३ तत्पुण्यसंग्रहविधीं सुभियो यतस्त्वम्^४ ॥२०२॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे
 भरतराजकैलासाभिगमनवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३३॥



भगवान्के समवसरणकी प्रकाशमान विभूतिको देखनेसे जिनके दोनों नेत्र खुल रहे हैं, जिनकी भुजाएँ युग (जुवाँरी) के समान लम्बी हैं, मस्तक झुकाये हुए अनेक राजा लोग जिनके पीछे पीछे चल रहे हैं और जो कुलकरोके वशकी पताकाके समान जान पड़ते हैं ऐसे भरत महाराज अपने घरकी ओर लौटे ॥२०१॥ चूँकि पुण्यके उदयसे ही चक्रवर्तीने समस्त दिशाएँ जीतीं, तथा उनके जीतनेमें साठ हजार वर्ष लगाये और फिर प्रीतिपूर्वक जिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त किया । इसलिए हे बुद्धिमान् जन, पुण्यके संग्रह करनेमें प्रयत्न करो ॥२०२॥

इस प्रकार आप नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण
 महापुराणसंग्रहके भाषानुवादमें भरतराजका कलास पद्यतपर
 जानका वणन करनेवाला ततोसर्वा पद्य समाप्त हुआ ।



चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व

अथावस्थ^१ कैलासादद्रीन्द्रादिव^२ देवराट् । चक्री प्रयाणमकरोद् विनीतामिमुग्वं कृती ॥१॥
 सैन्यैरनुगतो रेजे^३ प्रयाश्चक्री निजालयम् । गङ्गा^४ इव दुर्वारः सरिदोघैरपाम्पतिः ॥२॥
 ततः कतिपयैरेव प्रयाणैश्चक्रिणो बलम् । अयोध्यां प्रापदाबद्धतोरणां चित्रकंठनाम् ॥३॥
 चन्दनद्रवसंसिक्तसुसंस्पृष्ट^५ महीतला । पुरी स्नातानुलिसेव सा रंजे पत्युरागमे ॥४॥
 नातिदूरं^६ निविष्टस्य प्रवेशसमये प्रभोः^७ । चक्रमस्तारि चक्रं च नाक्रस्त^८ पुरगोपुरम्^९ ॥५॥
 सा पुरी गोपुरोपान्तस्थितचक्रांशुरञ्जिता । धृतम^{१०} ध्यातपेवासीत् कुङ्कुमापिञ्जरच्छविः ॥६॥
 सत्यं भरतराजोऽयं धौरेयश्चक्रिणामिति । धृतदिव्येव^{११} सा जज्ञे ज्वलच्चक्रा पुरः^{१२} पुरी ॥७॥
 ततः कतिपये^{१३} देवाश्चक्ररत्नाभिरक्षिणः । स्थितमेकपदं^{१४} चक्रं वीक्ष्य विस्मयमाययुः ॥८॥
 सुरा जातरुष केचिन्किं किमित्युच्चरद्गिरः । अलातचक्रव^{१५} ऋमु^{१६} करवालापितै करैः ॥९॥
 किमम्बरमणेर्विम्बमम्बरात्परिलम्बते । प्रतिसूर्यं किमुद्भूत इत्यन्ये^{१७} मुमुहुर्मुहु ॥१०॥

अथानन्तर — सुमेरु पर्वतसे इन्द्रकी तरह कैलास पर्वतसे उतरकर उस बुद्धिमान् चक्रवर्ती-
 ने अयोध्याकी ओर प्रस्थान किया ॥१॥ सेनाके साथ-साथ अपने घरकी ओर प्रस्थान करता
 हुआ चक्रवर्ती ऐसा सुशोभित होता था मानो नदियोंके समूहके साथ किसीसे न रुकनेवाला
 गंगाका प्रवाह समुद्रकी ओर जा रहा हो ॥ २ ॥ तदनन्तर कितने ही मुकाम तय कर चक्रवर्ती-
 की वह सेना जिसमे तोरण बँधे हुए हैं और अनेक ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसी अयोध्या नगरी-
 के समीप जा पहुँची ॥ ३ ॥ जिसकी बृहत्कार साफ की हुई पृथिवी घिसे हुए गीले चन्दनसे
 सीची गयी है ऐसी वह अयोध्यानगरी उस समय इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो उसने
 पतिके आनेपर स्नान कर चन्दनका लेप ही किया हो ॥४॥ महाराज भरत नगरीके समीप ही
 ठहरे हुए थे वहाँसे नगरीमें प्रवेश करते समय जिसने समस्त शत्रुओके समूहको नष्ट कर दिया
 है ऐसा उनका चक्ररत्न नगरके गोपुरद्वारको उल्लंघन कर आगे नहीं जा सका — बाहर ही
 रुक गया ॥ ५ ॥ गोपुरके समीप रुके हुए चक्रकी किरणोंसे अनुरक्त होनेके कारण जिसकी
 कान्ति कुकुमके समान कुछ-कुछ पीली हो रही है ऐसी वह नगरी उस समय इस प्रकार जान
 पड़ती थी मानो उसने सन्ध्याकी लालिमा ही धारण की हो ॥ ६ ॥ जिसके आगे चक्र-
 रत्न देदीप्यमान हो रहा है ऐसी वह नगरी उस समय ऐसी जान पड़ती थी मानो
 यह भरतराज सचमुच ही सब चक्रवर्तियोंमें मुख्य है, अपनी इस बातकी प्रामाणिकता
 सिद्ध करनेके लिए उसने तप्त अयोगोलक आदिको ही धारण किया हो ॥ ७ ॥ तदनन्तर
 चक्ररत्नकी रक्षा करनेवाले कितने ही देव चक्रको एक स्थानपर खड़ा हुआ देखकर
 आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ जिन्हे क्रोध उत्पन्न हुआ है ऐसे कितने ही देव, क्या है ?
 क्या है ? इस प्रकार चिल्लाते हुए हाथमें तलवार लेकर अलातचक्रकी तरह चारो ओर
 घूमने लगे ॥ ९ ॥ क्या यह आकाशसे सूर्यका विम्ब लटक पड़ा है ? अथवा कोई दूसरा ही
 सूर्य उदित हुआ है ? ऐसा विचार कर कितने ही लोग बार-बार मोहित हो गये थे ॥ १० ॥

^१ अन्तीर्य । ^२ मेरो । ^३ गच्छन् । ^४ गागौघ ल०, । ^५ मुष्टममाजित । ^६ समीपे । ^७ विभो. ल०,
 २० । ^८ प्रवेश नाकरोत् । ^९ पुरगोपुरे २०, ल० । ^{१०} उपय । ^{११} अग्रभागे । ^{१२} केचन । ^{१३} गुणपन्
 न्दि वा । ^{१४} चक्रवत्तवाप्लाग्निभ्रमणवन् । ^{१५} मुह्वन्ति न्म ।

कस्याप्यकालचक्रेण^१ पतितं^२ विरोधिन । क्रूरेणैव ग्रहणाद्य यत्तश्चक्रेण चक्रितम् ॥११॥
 अथवाद्यापि जेतव्य^३ पक्ष कोऽप्यस्ति चक्रिण । चक्रस्तरलनत कैश्चिद्विषयं तज्जैर्वितर्कितम् ॥१२॥
 सेनानीप्रमुखास्तावत् प्रभवे^४ तन्नयवेदयन् । तद्भार्ताऽऽकणनाद्यक्री विमत्प्रासीत्सविस्मय ॥१३॥
 अवि-तयच्च किं नाम चक्रमप्रतिशासने । मयि स्थित स्तरलत्यय च्चिदप्यस्मिन्लङ्गति ॥१४॥
 सप्रधायमिदं तावदि-चाहूय पुरोधसम् । धीरो धीरतरां चाधमिस्त्युच्चैराजगौ मनु ॥१५॥
 वदन्तोऽस्य मुष्माभ्योजाद् व्यक्ताकृता^५ सरस्वती । नियमौ सवलकारा शम्भलाव^६ जयप्रिय ॥१६॥
 चक्रमाक्रान्तदिक्चक्रमरिचक्रमयकरम् । कस्मात्प्राप्तमपुरद्वारि क्रमत यद्भूताकरक ॥१७॥
 विशदिविजयं पूवदक्षिणापरवार्द्धिषु । यदासीदस्वलद्वृत्तिरूप्याद्रेश्च गुहाद्वये ॥१८॥
 चक्र तदधुना कस्मात् स्तरलत्यस्मद्गुहाद्वये । प्रायोऽस्माभिर्विरह्येन मवितव्यं जिर्ग पुणा ॥१९॥
 किमसाध्यो द्विपक्षविदस्यस्मद्भक्तिगोचर^७ । सनाभि^८ कोऽपि किं वाऽस्मान् द्वेष्टि दुष्टान्तराशय ॥२०॥
 य कोऽप्यकारणद्वेषी खलोऽस्मान्नाभिनन्दति । प्राय स्तरलन्ति चतासि महस्त्वपि दुरात्मनाम् ॥२१॥
 विमत्सराणि चेतांसि महतां परवृद्धिषु । मत्सरीणि तु तान्यव क्षुद्राणाम-यद्वृद्धिषु ॥२२॥
 अथवा दुमदाविष्ट^९ कश्चिदप्रणतोऽस्ति मे । स्वचग्यस्तम्मदोषिष्ठस्यै^{१०} नून चक्रेण चक्रितम् ॥२३॥

आज यह चक्र क्रूरग्रहके समान चक्र हुआ है इसलिए अकालचक्रके समान किसी विरोधी शत्रु पर अवश्य ही पड़ेगा ॥११॥ अथवा अब भी कोई चक्रवर्तीके जेतव्य पक्षम है — जीतने योग्य शत्रु विद्यमान है इस प्रकार चक्रके रुक जानेसे चक्रके स्वरूपको जाननेवाले कितने ही लोग विचार कर रहे थे ॥१२॥ सेनापति आदि प्रमुख लोगोंने यह बात चक्रवर्तीसे कही और उसके सुनते ही वे कुछ आश्चर्य करने लगे ॥ १३ ॥ वे विचार करने लगे कि जिसकी आज्ञा कही भी नहीं रुकती ऐसे मेरे रहते हुए भी, जिसकी गति कहीं भी नहीं रुकी ऐसा यह चक्ररत्न आज क्यों रुक रहा है ? ॥ १४ ॥ इस बातका विचार करना चाहिए यही सोचकर धीर वीर मनु ने पुरोहितको बुलाया और उसने नीचे लिखे हुए बहुत ही गम्भीर वचन कहे ॥१५॥ कहते हुए भरत महाराजके मुखकमलसे स्पष्ट अभिप्रायवाली और उत्तम-उत्तम अलंकारोसे सजी हुई जो वाणी निकल रही थी वह ऐसी जान पड़ती थी मानो विजयलक्ष्मीकी दूती ही हो ॥१६॥ जिसने समस्त दिशाओंके समूहपर आक्रमण किया है जो शत्रुओंके समूहके लिए भयंकर है और जिसने सूर्यकी किरणोंका भी तिरस्कार कर दिया है ऐसा यह चक्र मेरे ही नगरके द्वारमें क्यों नहीं आगे बढ़ रहा है — प्रवेश कर रहा है ? ॥१७॥ जो समस्त दिशाओंको विजय करनेमें पूव-दक्षिण और पश्चिम समुद्रमें कहीं नहीं रुका, तथा जो विजयाधकी दोनों गुफाओंमें नहीं रुका वही चक्र आज मेरे घरके आंगनमें क्यों रुक रहा है ? प्राय मेरे साथ विरोध रखनेवाला कोई विजिगीषु (जीतकी इच्छा करनेवाला) ही होना चाहिए ॥१८-१९॥ क्या मेरे उपभोगके योग्य क्षेत्र (राज्य) में ही कोई असाध्य शत्रु मौजूद है अथवा दुष्ट हृदयवाला मेरे गोत्रका ही कोई पुरुष मुझसे द्वेष करता है ॥२०॥ अथवा बिना कारण ही द्वेष करनेवाला कोई दुष्ट पुरुष मेरा अभिनन्दन नहीं कर रहा है — मेरी वृद्धि नहीं सह रहा है सो ठीक ही है क्योंकि दुष्ट पुरुषोंके हृदय प्राय कर बड़े आदमियोंपर भी बिगड़ जाते हैं ॥२१॥ महापुरुषोंके हृदय दूसराकी वृद्धि होनेपर मात्सर्यसे रहित होते हैं परन्तु क्षुद्र पुरुषोंके हृदय दूसरोंकी वृद्धि होने पर ईर्ष्यामिहित होते हैं ॥२२॥ अथवा दुष्ट अहंकारसे घिरा हुआ कोई मेरे ही घरका

१ अपमृत्युना । २ गन्तव्यम् मग्न्यमिरयय । ३ जेतव्यपक्ष ल० द० । ४ चक्रिणे । ५ विचायम । ६ व्यक्ताभिप्राया । ७ कुट्टणी । ८ भुक्तिभग्नैः । ९ सविण्ड । सविण्डास्तु सनाभय इत्यभिधानात् । नाभिसद्व्योत्यय । १० आत्मवर्गे भव ।

खलपेक्ष्य^१ लघीया^२ नप्युच्छेद्यो लघु^३ तादृशः । क्षुद्रो रेगुरिवाश्विन्यो र्जत्यरिस्पेशितः ॥२४॥
 वलादुद्वरणीयो हि क्षोदीयानपि^४ कण्टकः । अनुव्रतः पट्टस्योऽग्नौ भवेत्पाडाकरो भृशम् ॥२५॥
 चक्रं नाम परं दैवं रत्नानामिदमग्रिमम् । गतिम्वर्त्तनमेतस्य न विना कारणाद् भवेत् ॥२६॥
 तनो वाल्यमिदं कार्यं यच्चक्रेणार्थं सूचितम् । सचिन्तं खलु राज्याङ्गे^५ विकृतिर्नाल्पकारणात् ॥२७॥
 तदत्र कारणं चिन्त्यं त्वया धीमन्निदन्तर्या^६ । अनिरूपितं कार्याणां नेह नामुत्र मिद्वयः ॥२८॥
 त्वयीदं कार्यविज्ञानं तिष्ठेत्^७ दिव्यचक्षुषि । तमग्ना छेदने कोऽन्यः प्रभवेदशुमालिनः ॥२९॥
 निवेद्य कार्यमित्यस्मै दैवज्ञाय^८ मितार्थैः । विरराम प्रभुः प्रायः प्रभवो मितभाषिणः ॥३०॥
 ततः प्रमत्तगम्भीरपदालंकारकोमलाम् । भारती भरतेशस्य प्रबोधायैति सोऽब्रवीत् ॥३१॥
 अस्ति माधुर्यमस्त्योजस्तदस्ति पदसौष्टवम् । अस्यर्थानुगमोऽन्यत्किं^९ यन्नास्ति त्वद्वचोभयं^{१०} ॥३२॥
 शास्त्रज्ञा वयमेकान्तान् नामिज्ञा कार्ययुक्तिषु । शास्त्रप्रयोगवित् कोऽन्यस्त्वन्यमो राजनीतिषु ॥३३॥
 त्वमादिराजो राजर्षिस्तद्विद्यास्त्वं^{११} दुपक्रमम्^{१२} । तद्विदस्तत्प्रयुज्जाना न जिहीमः कथं वयम् ॥३४॥

पुण्य नम्र नहीं हो रहा है, जान पड़ता है यह चक्र उसीका अहंकार दूर करनेके लिए बक्र हो
 रहा है ॥२३॥ शत्रु अत्यन्त छोटा भी हो तो भी उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, ट्रेप करने-
 ला छोटा होनेपर भी शीघ्र ही उच्छेद करने योग्य है क्योंकि आँखमे पड़ी हुई धूलकी
 शणिकाके समान उपेक्षा किया हुआ छोटा शत्रु भी पीडा देनेवाला हो जाता है ॥२४॥ काँटा
 यदि अत्यन्त छोटा हो तो भी उसे जवरदस्ती निकाल डालना चाहिए क्योंकि पैरमे लगा हुआ
 काँटा यदि निकाला नहीं जायेगा तो वह अत्यन्त दुःखका देनेवाला हो सकता है ॥२५॥ यह
 चक्ररत्न उत्तम देवरूप है और रत्नोमे मुख्य रत्न है इसकी गतिका स्खलन बिना किसी कारण-
 से नहीं हो सकता है ॥२६॥ इसलिए हे आर्य, इस चक्रने जो कार्य सूचित किया है वह कुछ
 छोटा नहीं है क्योंकि यह राज्यका उत्तम अंग है इसमे किसी अल्पकारणसे विकार नहीं हो
 सकता है ॥२७॥ इसलिए हे बुद्धिमान् पुरोहित, आप इस चक्ररत्नके रुकनेमे क्या कारण है
 इसका अच्छी तरह विचार कीजिए क्योंकि बिना विचार किये हुए कार्योंकी सिद्धि न तो इस
 लोकमे होती है और न परलोक ही मे होती है ॥२८॥ आप दिव्य नेत्र है इसलिए इस कार्य-
 ज्ञान आपमे ही रहता है अर्थात् आप ही चक्ररत्नके रुकनेका कारण जान सकते हैं क्योंकि
 अन्धकारको नष्ट करनेमे सूर्यके सिवाय और कौन समर्थ हो सकता है ? ॥२९॥ इस प्रकार
 महाराज भरत थोड़े ही अक्षरोके द्वारा इस निमित्तज्ञानीके लिए अपना कार्य निवेदन कर
 चुप हो रहे सो ठीक ही है क्योंकि प्रभु लोग प्रायः थोड़े ही बोलते हैं ॥३०॥ तदनन्तर निमित्त-
 ज्ञानो पुरोहित भरतेश्वरको समझानेके लिए प्रसन्न तथा गम्भीर पद और अलंकारोसे कोमल
 वचन कहने लगा ॥३१॥ जो माधुर्य, जो ओज, जो पदोका सुन्दर विन्यास और जो अर्थकी
 सरलता आपके वचनोमे नहीं है वह क्या किसी दूसरी जगह है ? अर्थात् नहीं है ॥३२॥
 हम लोग तो केवल शास्त्रको जाननेवाले हैं कार्य करनेकी युक्तियोमे अभिज्ञ नहीं हैं परन्तु
 राजनीतिमे शास्त्रके प्रयोगको जाननेवाला आपके समान दूसरा कौन है ? अर्थात् कोई
 नहीं है ॥३३॥ आप राजाओमे प्रथम राजा हैं और राजाओमे ऋषिके समान श्रेष्ठ होनेसे
 गर्जिए हैं यह राजविद्या केवल आपसे ही उत्पन्न हुई है इसलिए उसे जाननेवाले हम लोग

१ नैवेद्यणीय । २ अनिग्रहयेन लघु । ३ शीघ्रम् । ४ पीडा करोति । ५ अतिग्रहयेन क्षुद्र । ६ मुप्युच्छेत् ।
 ७ चक्रे । ८ प्रतीप्रमानम्वरूपतया । ९ अविचारित । १० निश्चित भवति । ११ नैमित्तिकाय । १२ व्यक्त पद,
 १३ नञ् वचन-प्रसञ्चे । १४ राजविद्या । १५ त्वद्वचनम् ल० । त्वया पूर्व प्रवर्तित कार्यविज्ञानम् ।

तथापि त्वत्कृतोऽस्मासु सत्कारोऽनन्यगोचर । तनोति गौरवं लोके तत स्मो यन्मुमुषता ॥३५॥
 इत्थनुश्रुतमस्माभिर्देव दैवज्ञशासनम् । नास्ति चक्रस्य विभ्रान्ति सावशेषे दिशां जय ॥३६॥
 ज्वलदधिं कराळ बो जैत्रमस्त्रमिदं तत । सस्तम्भितमिवातक्यं पुरद्वारि विरुम्बत ॥३७॥
 अरिर्मित्रमरेर्मित्रं मित्रमित्रमिति श्रुति । श्रुतिमात्रे स्थिता देव प्रजास्वय्यनुशासति ॥३८॥
 तथाप्यस्यैव जतय पक्ष कोऽपि तवाधुना । योऽन्तगृहे कृतोऽस्थान क्रूरो रोग इवोदरे ॥३९॥
 बहिमण्डलमवासीत् परिक्रान्तमिदं स्वया । अन्तमण्डलसमुद्भिन्नाभाद्यापि जायते ॥४०॥
 जितजेतव्यपक्षस्य न मन्त्रा भ्रातरस्तव । व्युत्थिताश्च सजातीय विधाताय न नु प्रमा ॥४१॥
 स्वपक्षैरेव तेजस्वी महानप्युपहृदयते । प्रत्यकमरुकान्तेन वलतेदमुदाहृतम् ॥४२॥
 विबलोऽपि सजातीयो लब्ध्वा तीक्ष्ण प्रतिष्कसम् । दण्ड परश्वधस्यैव निबह्यति पार्थिवम् ॥४३॥
 भ्रातरोऽमी तवाजयथा बलिनो मानशास्त्रिन । यदीयांस्तेषु धीरो धीरो बाहुबली बली ॥४४॥
 एकादशतसख्यास्ते सोदर्या वीरशास्त्रिन । प्रमोरादिगुरोर्नायं प्रणमाम इति स्थिता ॥४५॥

आपके ही सामने उसका प्रयोग करते हुए क्यों न लज्जित हों ॥३४॥ तथापि आपके द्वारा किया हुआ हमारा असाधारण सत्कार लोकमें हमारे गौरवको बढ़ा रहा है इसलिए ही मैं कुछ कहनेके लिए तैयार हुआ हूँ ॥३५॥ हे देव, हम लोगोंने निमित्तज्ञानियोंका ऐसा उपदेश सुना है कि जबतक दिग्विजय करना कुछ भी बाकी रहता है तबतक चक्ररत्न विभ्राम नहीं लता अर्थात् चक्रवर्तीकी इच्छाके विरुद्ध कभी भी नहीं रुकता है ॥३६॥ जो जलती हुई ज्वालाओं से भयंकर है ऐसा वह आपका विजयी शस्त्र नगरके द्वारपर गुप्त रीतिसे रोकेहुएके समान अटक कर रह गया है ॥३७॥ हे देव आपके प्रजाका शासन करते हुए शत्रु मित्र, शत्रुका मित्र, और मित्रका मित्र ये शब्द केवल शास्त्रमें ही रह गये हैं अर्थात् व्यवहारमें न आपका कोई मित्र है और न कोई शत्रु ही है सब आपके सेवक है ॥३८॥ तथापि अब भी कोई आपके जीतने योग्य रह गया है और वह उदरमें किसी भयंकर रोगके समान आपके घरमें ही प्रकट हुआ है ॥३९॥ आपके द्वारा यह बाह्यमण्डल ही आक्रान्त — पराजित हुआ है परन्तु अन्तर्मण्डलकी विशुद्धता तो अब भी कुछ नहीं हुई है । भावाथ — यद्यपि आपने बाहरके लोगोंको जीत लिया है तथापि आपके घरके लोग अब भी आपके अनुकूल नहीं हैं ॥४०॥ यद्यपि आपने समस्त शत्रु पक्षको जीत लिया है तथापि आपके भाई आपके प्रति नम्र नहीं हैं—उन्होंने आपके लिए नमस्कार नहीं किया है । वे आपके विरुद्ध खड़े हुए हैं और सजातीय होनेके कारण आपके द्वारा विधात करने योग्य भी नहीं हैं ॥४१॥ तेजस्वी पुरुष बड़ा होनेपर भी अपने सजातीय लोगों के द्वारा रोका जाता है यह बात सूर्यके सम्मुख जलते हुए सूर्यका त मणिके उदाहरणसे स्पष्ट है ॥४२॥ सजातीय पुरुष निबल होनेपर भी किसी बलवान् पुरुषका आश्रय पाकर राजा को उस प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार निबल दण्ड कुल्हाड़ीका तीक्ष्ण आश्रय पाकर अपने सजातीय वृक्ष आदिको नष्ट कर देता है ॥४३॥ ये आपके बलवान् तथा अभिमानी भाई अजेय हैं और इनमें भी अतिशय युवा धीर वीर तथा बलवान् बाहुबली मुख्य हैं ॥४४॥ आपके ये निन्यानवे भाई बड़े बलशाली हैं हम लोग भगवान् आदिनाथको छोड़कर और

१ विभिन्नशास्त्रम् । २ —मिवात्पथ स० इ० अ० । —मिवाग्यक्तं प ल० । ३ विरुद्धावरणा । ४ बाध्यते । ५ सूर्यकास्तथापाणेन । ६ उदाहरण कृतम् । ७ प्रतिश्रयम् प ल० । सहायम् । ८ परश्वी । पराजित परस्वय इत्यभिधानात् । ९ नागपति (लूप बह हिंसायाम्) । १० पृथिव्या भवम् । वृक्षं नृपं च । ११ कनिष्ठ । जययज स्म कनिष्ठयवीर्यो वरजानुजा इत्यभिधानात् । १२ एकोन—ल० २० इ प । १ बाहुबलिना रहितन सह इय संख्या वृषभसेनेन प्रागेव दीक्षावग्रहणान् ।

तद्वन्न^१ प्रतिकर्तव्यमाशु चक्रधर त्वया । ऋणव्रणाग्निगत्रूणां श्रेय नोपेक्षते कृती ॥४६॥
 राजन् राजन्वती भूयात् त्वयैवेयं वसुधरा । माभूद्राजवती^२ तेषां भूमना द्वैराज्यदुःस्थिता^३ ॥४७॥
 त्वयि राजनि राजोक्तिर्देव नान्यत्र राजते । मिहे स्थितं मृगेन्द्रोक्तिं हरिणा विमृशुः कथम् ॥४८॥
 देव त्वामनुवर्तन्तां भ्रातरो भूतमत्सराः । ज्येष्ठस्य कालमुख्यस्य शास्त्रोक्तमनुवर्तनम् ॥४९॥
 तच्छासनहरा^४ गत्वा सोपायमुपजयन्^५ तान् । त्वदाज्ञानुवगान् कुर्युर्विगृह्य^६ ब्रूयुरन्यथा ॥५०॥
 मिथ्यामदोद्धतः कोऽपि नोपेयाद्यदि ते वशम् । स नाशयेद्वतात्मानमात्मगृहं^७ च राजकम् ॥५१॥
 राज्यं कुलकलत्रं च नेष्ट साधारणं^८ द्वयम् । मुङ्क्ते सार्द्धं परैर्यस्तन्न^९ नरः पशुरेव सः ॥५२॥
 किमत्र बहुनोक्तेन त्वामेत्य प्रणमन्तु ते । यान्तु वा शरणं देव त्रातार जगता जिनम् ॥५३॥
 न तृतीया गतिस्तेषामेवैषां^{१०} द्वितीया गतिः^{११} । प्रविशन्तु त्वदास्थानं वनं वामी मृगैः समम् ॥५४॥
 स्वकुलान्युत्सुकानीव^{१२} दहन्त्यननुवर्तनैः । अनुवर्तीनि तान्येव नेत्रस्थानन्दशु^{१३} परम् ॥५५॥

किसीको प्रणाम नहीं करेगे ऐसा वे निश्चय कर बैठे हैं ॥४५॥ इसलिए हे चक्रधर, आपको इस विषयमें शीघ्र ही प्रतिकार करना चाहिए क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ऋण, घाव, अग्नि और शत्रुके वाकी रहे हुए थोड़े भी अशकी उपेक्षा नहीं करते हैं ॥४६॥ हे राजन्, यह पृथिवी केवल आपके द्वारा ही राजन्वती अर्थात् उत्तम राजासे पालन की जानेवाली हो, आपके भाइयो-के अधिक होनेसे अनेक राजाओके सम्बन्धसे जिसकी स्थिति विगड गयी है ऐसी होकर राजवती अर्थात् अनेक साधारण राजाओसे पालन की जानेवाली न हो । भावार्थ—जिस पृथिवीका शासक उत्तम हो वह राजन्वती कहलाती है और जिसका शासक अच्छा न हो, नाममात्रका ही हो वह राजवती कहलाती है । पृथिवीपर अनेक राजाओका राज्य होनेसे उसकी स्थिति छिन्न-भिन्न हो जाती है इसलिए एक आप ही इस रत्नमयी वसुधराके शासक हो, आपके अनेक भाइयोमें यह विभक्त न होने पावे ॥४७॥ हे देव, आपके राजा रहते हुए राजा यह शब्द किसी दूसरी जगह सुशोभित नहीं होता सो ठीक ही है क्योंकि सिंहके रहते हुए हरिण मृगेन्द्र शब्दको किस प्रकार धारण कर सकते हैं ? ॥४८॥ हे देव, आपके भाई ईर्ष्या छोडकर आपके अनुकूल रहे क्योंकि आप उन सबमें बडे हैं और इस कालमें मुख्य हैं इसलिए उनका आपके अनुकूल रहना शास्त्रमें कहा हुआ है ॥४९॥ आपके दूत जावे और युक्तिके साथ बातचीत कर उन्हें आपके आज्ञाकारी बनावे, यदि वे इस प्रकार आज्ञाकारी न हो तो विग्रह कर (विगडकर) अन्य प्रकार भी बातचीत करे ॥५०॥ मिथ्या अभिमानसे उद्धत होकर यदि कोई आपके वश नहीं होगा तो खेद है कि वह अपने-आपको तथा अपने अधीन रहनेवाले राजाओके समूहका नाश करावेगा ॥५१॥ राज्य और कुलवती स्त्रियाँ ये दोनों ही पदार्थ साधारण नहीं हैं, इनका उपभोग एक ही पुरुष कर सकता है । जो पुरुष इन दोनोंका अन्य पुरुषोंके साथ उपभोग करता है वह नर नहीं है पशु ही है ॥५२॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है या तो वे आकर आपके प्रणाम करे या जगत्की रक्षा करनेवाले जिनेन्द्रदेवकी शरणको प्राप्त हो ॥५३॥ आपके उन भाइयोकी तीसरी गति नहीं है, इनके ये ही दो मार्ग हैं कि या तो वे आपके निविर्गमे प्रवेश करे या मृगोंके साथ वनमें प्रवेश करे ॥५४॥ सजातीय लोग परस्परके विरुद्ध आचरणमें अगरके

१ बाणान् । २ कुम्भितराजवती । 'सुगति देशे राजन्वान् स्वात्तनोऽन्यत्र राजवान् अन्यभिमानान् । ३ द्वयो-
 रानो राज्येन दुःस्थिता । ४ त्वच्छासन-द०, ल० । दूता । ५ उक्त्वा । ६ विवाद दुःस्थिता । ७ आत्मना
 स्वीकृत्य । ८ सर्वेषामनुभवनीयम् । ९ द्वयम् । १०-मेवैषा ल० । ११ उग्रम् । १२ स्वकुलानि । १३
 भगवन् इत्यर्थः । १३ पर अ०, इ०, म० ।

प्रशान्तमत्सरा वा तास्त्वां नत्वा नम्रमौल्य । सोदर्या सुखमथ तो त्वप्रसादामिकाद्विज्ञान ॥५१॥
 इति शासति शास्त्रज्ञे पुरोधसि सुमधसि । प्रतिपद्यापि तत्कार्यं चर्का शुक्रोद्य तत्क्षणम् ॥५२॥
 आरुह्यकलुषा दृष्टिं क्षिपन्दिक्षिव दिग्बलिम् । सधूमामिष कोपाग्ने शिरा भ्रुकुटिमुक्षिपन् ॥५३॥
 भ्रातृमा^१ ण्डकृतामपविषवेगमिवोद्धमन् । घातच्छलेनो च्छलन् रोषाद् वमापे पक्ष्या गिर ॥५४॥
 किं किमात्थ^२ दुरात्मानो भ्रातर प्रणतान माम् । पश्य मण्डचण्डोत्कापातासान्^३ शररूसात्कृतान् ॥५५॥
 अदृष्टमश्रुत कृत्यमिदं वैरमकारणम् । अदध्या किल दुरात्वादिति^४ तेषा मनीषितम् ॥५६॥
 यौवनोन्मादजस्तेषां मयवातोऽस्ति^५ दुमद^६ । ज्वलच्चक्रामितापन स्वेदस्तस्य प्रतिक्रिया ॥५७॥
 अकरा^७ मोक्षुमिच्छति^८ गुरुश्चाभिमान्तक^९ । तर्कि^{१०} भटावलेपन^{११} भुक्तिं ते श्रावयन्तु^{१२} म ॥५८॥
 प्रसिध्यानिपातन^{१३} भुक्तिं ते साधयन्तु वा । शिताखकण्डकोत्सगपतिताङ्गारणाङ्गणे ॥५९॥
 क्व वय जितजेतव्या मोक्षव्य^{१४} सगता क्व से । तथापि^{१५} सविमागोऽस्तु तेषा मदनुषत्तने ॥६०॥

समान जलाते रहते हैं और वे ही लोग परस्परमे अनुकूल रहकर नेत्रोंके लिए अतिशय आनन्द रूप होते हैं ॥५५॥ इसलिए ये आपके भाई मात्स्य छोड़कर शांत हो मस्तक झुकाकर आपको नमस्कार करें और आपकी प्रसन्नताकी इच्छा रखते हुए सुखसे बुद्धिको प्राप्त होते रहे ॥५६॥ इस प्रकार शास्त्रके जाननेवाले बुद्धिमान् पुरोहितके कह चुकनेपर चक्रवर्ती भरतने उसीके कहे अनुसार काय करना स्वीकार कर उसी क्षण क्रोध किया ॥५७॥ जो क्रोधसे कलुषित हुई अपनी दृष्टिको दिशाओंके लिए बलि देते हुएके समान सब दिशाओंमें फँक रहे है, क्रोधरूपी अग्निकी धूमसहित शिखाके समान भ्रुकुटियाँ ऊँची चढ़ा रहे ह, भाईरूपी मूलघनपर किये हुए क्रोधरूपी विषके वेगको जो वचनोके छलसे उगल रहे है और जो क्रोधसे उछल रहे ह ऐसे महाराज भरत नीचे लिखे अनुसार कठोर वचन कहने लगे ॥५८-५९॥ हे पुरोहित क्या कहा ? क्या कहा ? वे दुष्ट भाई मुझे प्रणाम नहीं करते है, अच्छा तो तू उन्हें मेरे दण्डरूपी प्रचण्ड उत्कापातसे टुकड़े किया हुआ देख ॥६०॥ उनका यह काय न तो कभी देखा गया है, न सुना गया है, उनका यह वर बिना कारण ही किया हुआ है, उनका खयाल है कि हम लोग एक कुलम उत्पन्न होनेके कारण अवध्य ह ॥६१॥ उन्हें यौवनके उन्मादसे उत्पन्न हुआ यौद्धा होनेका कठिन वायुरोग हो रहा है इसलिए जलते हुए चक्रके सन्तापसे पसीना आना ही उसका प्रतिकार-उपाय है ॥६२॥ वे लोग पूज्य पिताजीके द्वारा दी हुई पृथिवीको बिना कर दिये ही भोगना चाहते हैं परन्तु केवल योद्धापनेके अहंकारसे क्या होता है ? अब या तो वे लोगोको सुनावें कि भरत ही इस पृथिवीका उपभोग करनेवाला है हम सब उसके अधीन है या युद्धके मदानमें तीक्ष्ण शस्त्ररूपी काँटोके ऊपर जिनका शरीर पड़ा हुआ है ऐसे वे भाई प्रतिशय्या-दूसरी शय्या अर्थात् रणशय्यापर पड़कर उसका उपभोग प्राप्त कर ! भावाथ-जीते-जो उन्हें इस पृथिवीका उपभोग प्राप्त नहीं हो सकता ॥६३-६४॥ जिसने जीतने योग्य समस्त लोगोको जीत लिया है ऐसा कहीं तो म और मेरे उपभोग करने योग्य क्षेत्रम स्थित कहीं वे लोग ? तथापि मेरे आज्ञानुसार चलनेपर उनका भी विभाग (हिस्सा)

- १ भाण्ड मण्डमात्रादि भाण्मूला वणिग्घन । नमीमात्र मुरगाणा मूषण भाजनऽपि च । २ उत्पन्न ।
 ३ व सि । ४ सण्ड । ५ कुत्र भवा मुरयास्तथा भाव तस्मात् । ६ वय भटा इति गद्य । ७ दुर्निवार ।
 ८ अबलिम् । भागधय करो वन्ति इत्यभिमानान् । ९ भूमिम् । १० कुमिता । ११ तर्हि । १२ भटगवैण ।
 १३ क्षापयन्तिवत्यथ । १४ पूव गद्याया प्रतिगद्या-अग्य गद्यातस्या निपातन मरणगप्या इत्यथ ।
 १५ वसि । १६ सगता गताविभाग ।

न मोक्तुमन्यथाकारं^१ मही तेभ्यो ददाम्यहम् । कथकारमिदं^२ चक्रं विश्रमं यात्वतज्जयं^३ ॥६६॥
 इदं महदनाख्येयं^४ यत्प्राज्ञो बन्धुवत्सलः । स बाहुबलिसाह्योऽपि^५ भजते विवृति कृती ॥६७॥
 अबाहुबलिनानेन^६ राजकेन न तेन किम् । नगरेण गरेणेव^७ भुक्तेनापोदनं^८ किम् ॥६८॥
 किं किंकरैः करालास्त्रप्रतिनिर्जितं^९ शात्रवैः । अनाज्ञावगमेतस्मिन् नवविक्रमशालिनि^{१०} ॥६९॥
 किं वा सुरभट्टैरभिरुद्मटारमटीरसैः^{११} । मयैवमसमा स्पर्द्धा तस्मिन्कुर्वति गर्विते ॥७०॥
 इति जल्पति सरम्भाच्च^{१२} क्रपाणावुपक्रमम्^{१३} । तस्योपचक्रमे कर्तुं पुनरित्थं पुरोहितः ॥७१॥
 जितजेतध्यतां देव घोषयन्नपि किं मुधा । जितोऽसि क्रोधवेगेन प्राग्जय्यो वशिनां हि सः ॥७२॥
 बालास्ते बालभावेन^{१४} विल^{१५} सन्त्वपयेऽप्यलम् । देवे जितारिषड्वर्गे न तमः^{१६} स्थातुमर्हति ॥७३॥
 क्रोधान्धतमसे मग्न यो नात्मानं समुद्धरेत् । स कृत्यसंग्रहद्वैधाज्ञो^{१७} त्रीतुमलंतराम् ॥७४॥
 किं तरां स विजानाति कार्याकार्यमनात्मवित् । यः स्वान्तःप्रमवान् जंतुमरीञ्च प्रभवेत्प्रभुः ॥७५॥
 तदेव विरमामुष्मात् सरम्भादपकारिणः । जितात्मानो जयन्ति क्षमां क्षमया हि जिगीषवः ॥७६॥

हो सकता है ॥६५॥ और किसी तरह उनके उपभोगके लिए मैं उन्हें यह पृथिवी नहीं दे सकता हूँ। उन्हें जीते बिना यह चक्ररत्न किस प्रकार विश्राम ले सकता है ? ॥६६॥ यह बड़ी निन्दाकी बात है कि जो अतिशय बुद्धिमान् है, भाइयोमे प्रेम रखनेवाला है, और कार्यकुशल है वह बाहुबली भी विकारको प्राप्त हो रहा है ॥६७॥ बाहुबलीको छोड़कर अन्य सब राज-पुत्रोने नमस्कार भी किया तो उससे क्या लाभ है और पोदनपुरके बिना विषके समान इस नगरका उपभोग भी किया तो क्या हुआ ॥६८॥ जो नवीन पराक्रमसे शोभायमान बाहुबली हमारी आज्ञाके वश नहीं हुआ तो भयकर शस्त्रोसे शत्रुओका तिरस्कार करनेवाले सेवकोसे क्या प्रयोजन है ? ॥६९॥ अथवा अहंकारी बाहुबली जब इस प्रकार मेरे साथ अयोग्य ईर्ष्या कर रहा है तब अतिशय गूरवीरत्तरूप रसको धारण करनेवाले मेरे इन देवरूप योद्धाओसे क्या प्रयोजन है ? ॥७०॥ इस प्रकार जब चक्रवर्ती क्रोधसे बहुत बढ-बढकर बातचीत करने लगे तब पुरोहितने उन्हें शान्त कर उपायपूर्वक कार्य प्रारम्भ करनेके लिए नीचे लिखे अनुसार उद्योग किया ॥७१॥ हे देव, मैंने जीतने योग्य सबको जीत लिया है ऐसी घोषणा करते हुए भी आप क्रोधके वेगसे व्यर्थ ही क्यों जीते गये ? जितेन्द्रिय पुरुषोको तो क्रोधका वेग पहले ही जीतना चाहिए ॥७२॥ वे आपके भाई बालक है इसलिए अपने बालस्वभाव-से कुमारगमे भी अपने इच्छानुसार क्रीडा कर सकते हैं परन्तु जिसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छहो अन्तरंग शत्रुओको जीत लिया है ऐसे आपमे यह अन्धकार उठरने-के योग्य नहीं है अर्थात् आपको क्रोध नहीं करना चाहिए ॥७३॥ जो मनुष्य क्रोधरूपी गाढ अन्धकारमे डूबे हुए अपने आत्माका उद्धार नहीं करता वह कार्यके संग्रहणी द्विविधासे पार होनेके लिए समर्थ नहीं है। भावार्थ - क्रोधसे कार्यकी सिद्धि होनेमे सदा सन्देह बना रहता है ॥७४॥ जो राजा अपने अन्तरंगसे उत्पन्न होनेवाले शत्रुओको जीतनेके लिए समर्थ नहीं है वह अपने आत्माको नहीं जाननेवाला कार्य और अकार्यको कैसे जान सकता है ? ॥७५॥ इसलिए हे देव, अपकार करनेवाले इस क्रोधसे दूर रहिए क्योंकि जीतकी इच्छा रखनेवाले जिते-

१ अन्यथा । २ कथम् । ३ तेषां जयाभावे । ४ अवाच्यम् । ५ बाहुबलिनानाम् । ६ बाहुबलिकुमाररहितेन । ७ गरेणेव । ८ पोदनपुररहितेन । ९ तज्जित - ल०, द० । १० बाहुबलिनि । ११ अधिकभयानकरसः । १२ मोहान् । १३ वृद्धारम्भम् । १४ बालत्वेन । १५ गर्विता भूत्वा वर्तन्त इत्यर्थः । १६ अज्ञानम् । १७ बालसन्देहद्विविध्यान् ।

विजिते द्वयवर्गाणां सुश्रुतश्रुतसपत्न्याम् । परलोकजिगापूर्णा क्षमा साधनमुत्तमम् ॥७७॥
 लेखसंध्य च कार्येऽस्मिन् त्रिकलोऽतिपरिश्रमः । तृणाकुर नखच्छेद्ये क 'परश्वधमुद्धरत् ॥७८॥
 ततस्तिक्ष्णमाणेन साध्यो भ्रातृगणस्त्वया । मोषचार प्रयुक्तेन वचोहरगणेन स ॥७९॥
 अथैव च प्रहेतव्या सम लेखैवचोहरा । गद्या ब्रूयुश्च तानेत^३ चक्रिण भजताग्रजम् ॥८०॥
 कल्पानोकहसेवेव तत्सेवाऽभीष्टदायिनी । गुरुकल्पोऽग्रजश्चक्री स माय^४ सर्वथापि व ॥८१॥
 विदूरस्थेन युष्माभिरश्वर्यं तस्य राजते । तारागणैरनासन्नैरिव बिम्बं निशांपते ॥८२॥
 माद्याय नास्य तोपाय यद्ममद्भिर्विना भवेत् । सहभोग्य हि व धूनामधिराज्य सता मुद ॥८३॥
 इदं वाचिकमभ्यस्तु हेत्यार्यादवधायताम् । इति तोपायनैल्लेखै प्रत्याय्यास्ते^५ मनस्विन ॥८४॥
 यशस्य^६ मिदमवाय कार्यं श्रेयस्यमर्थ च । चिन्त्यमुत्तरकार्यं च साम्ना तेष्ववशपु वै ॥८५॥
 विभ्यता^७ जननिवादादनुष्ठेयमिदं त्वया । स्थायुर्^८ हि यशो लोक 'गत्वर्या' ननु सपद^९ ॥८६॥
 इति तद्वचनाश्चक्री वृत्तिमारभतौ जहां । अनुवचनसाध्या हि महतां चित्तवृत्तय ॥८७॥
 आस्तां मुप्रवली तावद् यत्नसाध्यो^{१०} महाबल^{११} । शेषरथ परीक्षिष्य भ्रातृमिस्तद् द्विजिह्वताम्^{१२} ॥८८॥

द्वय पुरुष केवल क्षमाके द्वारा ही पृथिवीको जीतते ह ॥७६॥ जिन्होंने इन्द्रियोंके समूहको जीत लिया है शास्त्ररूपी सम्पदाका अच्छी तरह श्रवण किया है और जो परलोकको जीतने की इच्छा रखते ह ऐसे पुरुषोंके लिए सबसे उत्कृष्ट साधन क्षमा ही है ॥७७॥ जो लेख लिख कर भी किया जा सकता है ऐसे इस कायम अधिक परिश्रम करना व्यर्थ है क्योंकि जो तृणाकुर नखसे तोड़ा जा सकता है उसके लिए भला कौन कुल्हाड़ी उठाता ह ॥७८॥ इसलिए आपको शान्त रहकर भेंटसहित भेजे हुए दूतोंके द्वारा ही यह भाइयोका समूह वश करना चाहिए ॥७९॥ आज ही आपको पत्रसहित दूत भेजना चाहिए, वे जाकर उनसे कहे कि चलो और अपने बड़े भाईकी सेवा करो ॥८०॥ उनकी सेवा कल्पवृक्षकी सेवाके समान आपके सब मनोरथोंको पूरा करनेवाली होगी । वह आपका बड़ा भाई पिताके तुल्य है, चक्रवर्ती है और सब तरहसे आप लोगोंके द्वारा पूज्य है ॥८१॥ जिस प्रकार दूर रहनेवाल तारागणोंसे चंद्रमाका बिम्ब सुशोभित नहीं होता ह उसी प्रकार दूर रहनेवाल आप लोगोंसे उनका ऐश्वर्य सुशोभित नहीं होता ह ॥८२॥ आप लोगोंके बिना यह राज्य उनके लिए सन्तोष देनेवाला नहीं हो सकता क्योंकि जिसका उपभोग भाइयोके साथ साथ किया जाता है वही साम्राज्य सज्जन पुरुषोंको आनंद देनेवाला होता है ॥८३॥ यह मौखिक सन्देश ह बाकी समाचार पत्रसे मालूम कीजिए इस प्रकार भेंटसहित पत्रोंके द्वारा उन प्रतापी भाइयोको विश्वास दिलाना चाहिए ॥८४॥ हे आय, आपके लिए यही काय यश देनेवाला है और यही कल्याण करनेवाला है यदि वे इस तरह शांतिसे वश न हों तो फिर आगेके कायका विचार करना चाहिए ॥८५॥ आपको लोकापवादसे डरते हुए यही काय करना चाहिए क्योंकि लोकमय ही स्थिर रहनेवाला है सम्पत्तियां तो नष्ट हो जानेवाली ह ॥८६॥ इस प्रकार पुरोहितके वचनास चक्रवर्तीने अपनी क्रोधपूर्ण वृत्ति छोड़ दी सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी चित्तकी वृत्ति अनुकूल वचन कहनेसे ही ठीक हो जाती है ॥८७॥ इस समय जो प्रयत्नस भग नहीं किया जा सकता ऐसा महाबलवान् बाहुबली दूर रहे पहले शेष भाइयोके द्वारा ही

१ परशम । २ सहमानन । ३ आगच्छन । ४ पूय । ५ मदनवाक । 'मदेगवाग वाचिक स्याद्' इत्यभिधानात् ।
 ६ विद्यास्या । ७ यगस्वरम् । ८ धयम्बरम् । ९ जनापवागान । १० स्थिरतरम् । ११ गमनगीला
 १२ यत्र साध्या महामुत्र अ य स० इ० ल० । १ बाहुबलिन वृटिलताम् ।

इति निर्द्धार्य कार्यज्ञानं कार्ययुक्तौ विविक्तधीः । प्राहिणोत्स्य निमृष्टार्थान्^१ दनाननुजसनिधिम् ॥८९॥
 गत्वा च ते^२ यथोद्देशं दृष्ट्वा तांस्तान्यथोचितम् । जगुः सन्देशमशस्य तंभ्यो दत्ता यथाश्रितम् ॥९०॥
 अथ ते सह संभूय कृतकार्यनिवेदनात् । दूतानित्यूचुरारुडप्रभुत्वमदकर्कशाः ॥९१॥
 यदुक्तमादिराजेन तत्सत्यं^३ नोऽमिसमतम् । गुरोरसंनिधौ पूज्यो ज्यायान्भ्राताऽनुजैरिति ॥९२॥
 प्रत्यक्षो गुरुरस्माकं प्रतपन्नेषु विश्वदृक् । स नः प्रमाणमैश्वर्यं तद्विनीर्णमिदं हि न ॥९३॥
 तदत्र गुरुपादाज्ञा तन्त्रा^४ न स्वैरिणो^५ वयम् । न देयं भरतेशेन नादेयमिह किञ्चन ॥९४॥
 यत्तु न सविमागार्थमिदमामन्त्रणं कृतम् । चक्रिणा तेन सुप्रीता^६ प्रीणार्थं वयमागलान् ॥९५॥
 इति सत्कृत्य तान्दूतान् सन्मानैः प्रभुवत्प्रभौ । विहितोपायनाः^७ सद्यः प्रतिलेखैर्व्यमर्जयन् ॥९६॥
 दूतसात्कृतसन्मानाः^८ प्रभुसात्कृतवीचिकाः^९ । गुरुसात्कृत्य तत्कार्यं^{१०} प्रापुस्ते गुरुसनिधिम् ॥९७॥
 गत्वा च गुरुमद्राक्षुर्मितोचितपरिच्छदाः^{११} । महागिरिमिवोत्तुङ्ग कैलासशिखरालयम्^{१२} ॥९८॥
 प्रणिपत्य विधानेन प्रपूज्य च यथाविधि । व्यजिज्ञपन्निदं वाक्यं कुमारः मारविद्विषम् ॥९९॥
 त्वत्तः स्मो लब्धजन्मानस्त्वत्तः प्राप्ता परां श्रियम् । त्वत्प्रसादैषिणो देव त्वत्तो नान्यमुपास्महे^{१३} ॥१००॥

उनकी कुटिलताकी परीक्षा करूंगा । इस प्रकार निश्चय कर कार्य करनेमे जिसकी वृद्धि कभी भी मोहित नहीं होती ऐसे चक्रवर्तीने कार्यके जाननेवाले नि सृष्टार्थ दूतोको अपने भाइयोके समीप भेजा ॥८८-८९॥ उन दूतोने भरतके आज्ञानुसार जाकर उनके योग्यरीतिसे दर्शन किये और उनके लिए चक्रवर्तीका सन्देश सुनाया ॥९०॥ तदनन्तर-प्राप्त हुए ऐश्वर्यके मदसे जो कठोर हो रहे हैं ऐसे वे सब भाई दूतोके द्वारा कार्यका निवेदन हो चुकनेपर परस्परमे मिलकर उनसे इस प्रकार वचन कहने लगे ॥९१॥ कि जो आदिराजा भरतने कहा है वह सच है और हम लोगोको स्वीकार है क्योंकि पिताके न होनेपर बड़ा भाई ही छोटे भाइयोके द्वारा पूज्य होता है ॥९२॥ परन्तु समस्त ससारको जानने-देखनेवाले हमारे पिता प्रत्यक्ष विराजमान है वे ही हमको प्रमाण है, यह हमारा ऐश्वर्य उन्हीका दिया हुआ है ॥९३॥ इसलिए हम लोग इस विषयमे पिताजीके चरणकमलोकी आज्ञाके अधीन हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं । इस ससारमे हमे भरतेश्वरसे न तो कुछ लेना है और न कुछ देना है ॥९४॥ तथा चक्रवर्तीने हिस्सा देनेके लिए जो हम सबको आमन्त्रण दिया है अर्थात् बुलाया है उससे हम लोग बहुत सन्तुष्ट हुए हैं और गले तक तृप्त हो गये हैं ॥९५॥ इस प्रकार राजाओकी तरह योग्य सन्मानोसे उन दूतोका सत्कार कर तथा भरतके लिए उपहार देकर और बदलेके पत्र लिखकर उन राजकुमारोने दूतोको गीघ्र ही बिदा कर दिया ॥९६॥ इस प्रकार जिन्होने दूतोका सन्मान कर भरतके लिए योग्य उत्तर दिया है ऐसे वे सब राजकुमार, पूज्य पिताजीका दिया हुआ कार्य उन्हीको सौपनेके लिए उनके समीप पहुँचे ॥९७॥ जिनके पास परिमित तथा योग्य सामग्री है ऐसे उन राजकुमारोने किसी महापर्वतके समान ऊँचे और कैलासके शिखरपर विद्यमान पूज्य पिता भगवान् वृषभदेवके जाकर दर्शन किये ॥९८॥ उन राजकुमारोने विधिपूर्वक प्रणाम किया, विधिपूर्वक पूजा की और फिर कामदेवको नष्ट करनेवाले भगवान्से नीचे लिखे वचन कहे ॥९९॥ हे देव, हम लोगोने आपसे ही जन्म पाया है, आपसे ही यह उत्कृष्ट विभूति पायी है और अब भी आपकी प्रसन्नताकी इच्छा रखते हैं, हम लोग आपको छोडकर और किसीकी उपासना नहीं

^१ न्यूनार्थान् । अमकृतनपादितप्रयोजनानित्यर्थ । ^२ कुमारः । ^३ अस्माकम् । ^४ प्रकाशते । ^५ प्रधाना । ^६ त्रेच्छाचारिणः । ^७ ननोपिता । ^८ तृप्ता । ^९ कन्धरपर्यन्तम् । ^{१०} कृतप्रामृता । ^{११} दूतानामायत्तीकृत । ^{१२} भरतायसीहननदेना । ^{१३} भरतकृतकार्यम् । ^{१४} पकिंग । ^{१५} कैलासशिखरमालयो यस्य । ^{१६} तापनान ।

'गुरुप्रसाद इत्युच्चैर्जनो वक्तव्येय केवलम् । वयं तु तद्गमामिजास्त्वत्प्रसादाजितमिथ' ॥१०१॥
 त्वत्प्रणामानुरक्तानां त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणाम् । त्वद्वच किंकराणां नो यद्वा तद्वाऽस्तु^३ नापरम् ॥१०२॥
 इति स्थिते प्रणामार्थं भरतोऽस्माञ्जुहोति^४ । तच्चार्त्त कारणं विप्र किं मदं किञ्चु मत्सर ॥१०३॥
 युष्मत्प्रणमनाभ्यासरसदुललित^५ शिरः । नान्यप्रणमने देव धृतिं बध्नाति जातु न ॥१०४॥
 किमप्योपरज-पुञ्जपिञ्जर वारि मानसे । निषेव्य राजहंसोऽयं रमतेऽन्यसरोजले ॥१०५॥
 किमप्यर शिरोजान्तं^६ सुमनोगं बलालित^७ । तुम्बीवनान्तं मम्यति प्राणा-तऽपि मधुमत ॥१०६॥
 मुक्ताफलाच्छमापाय^८ गगनाम्बुनवाम्बुदात् । शुष्यत्सरोऽम्बु किं वाञ्छेदुदं पक्षपि^९ चातक ॥१०७॥
 इति युष्मत्पदा-जन्म^{१०} रजोरञ्जितमस्तका । प्रण-तुमसदासां^{११} नामिहामुत्र^{१२} च नेदमहि^{१३} ॥१०८॥
 परप्रणामविमुखीं मयसगविधजिताम् । वीरदीक्षा वयं धर्तुं भवत्प्राप्त्युपागता ॥१०९॥
 तद्देव कथयास्माकं हितं पथ्य च वरम यत् । येनेहामुत्र च स्याम^{१४} त्वद्वन्निदृढवासना ॥११०॥
 परप्रणामसजातमानभङ्गमयातिगाम्^{१५} । पदवीं तावकीं^{१६} दद भवेमहि^{१७} भवे भवे ॥१११॥
 मानखण्डनसभूतपरिभूति^{१८} मयातिगा । योगिनः सुखमेधम्ये वनेषु हरिमि समम् ॥११२॥

करना चाहते ॥१००॥ इस ससारम लीग यह पिताजीका प्रसाद है ऐसा केवल कहते ही हैं परन्तु आपके प्रसादसे जि-हें उत्तम सम्पत्ति प्राप्त हुई है ऐसे हम लोग इस वाक्यके रसका अनुभव ही कर चुके हैं ॥१०१॥ आपको प्रणाम करनेम तत्पर, आपकी प्रसन्नताको चाहनेवाला और आपके वचनोके किंकर हम लोगोंका चाहे जो हो परन्तु हम लोग और किसीकी उपासना नहीं करना चाहते हैं ॥१०२॥ ऐसा होनेपर भी भरत हम लोगोको प्रणाम करनेके लिए बुलाता है सो इस विषयमें उसका मद कारण है अथवा मात्सर्य यह हम लोग कुछ नहीं जानते ॥१०३॥ हे देव जो आपको प्रणाम करनेके अभ्यासके रससे मस्त हो रहा है ऐसा यह हमारा शिर किसी अन्यको प्रणाम करनेमे सन्तोष प्राप्त नहीं कर रहा है ॥१०४॥ क्या यह राजहंस मानसरोवरमें कमलोंकी परागकी समूहसे पील हुए जलकी सेवा कर किसी अन्य तालाबके जलकी सेवा करता है ? अर्थात् नहीं करता है ? ॥१०५॥ क्या अप्सराओके केशोंमें लगे हुए फूलोंकी सुगंधसे सन्तुष्ट हुआ भ्रमर प्राण जानेपर भी तूँबीके धनमें जाता है अर्थात् नहीं जाता है ॥१०६॥ अथवा जो चातक नवीन मेघसे गिरते हुए मोतीके समान स्वच्छ आकाश गत जलको पी चुका है क्या वह प्यासा होकर भी सूखते हुए सरोवरके जलको पीना चाहेगा ? अर्थात् नहीं ॥१०७॥ इस प्रकार आपके चरणकमलोकी परागसे जिनके मस्तक रंग रहे हैं ऐसे हम लोग इस लोक तथा परलोक-दोनों ही लोकोंमें आप्तमिन्न देव और मनुष्योंको प्रणाम करनेके लिए समर्थ नहीं हैं ॥१०८॥ जिसमें किसी अन्यको प्रणाम नहीं करना पड़ता, और जो भयके सम्बन्धसे रहित है ऐसी वीरदीक्षाको धारण करनेके लिए हम लोग आपके समीप आये हुए हैं ॥१०९॥ इसलिए हे देव जो माग हित करनेवाला और सुख पहुचाने वाला हो वह हम लोगोंको कहिए जिससे इस लोक तथा परलोक दोनों ही लोकोंमे हम लोगों की वासना आपकी भक्तिम दृढ हो जावे ॥११०॥ हे देव जो दूसरोंको प्रणाम करनेसे उत्पन्न हुए मानभंगके भयसे दूर रहती है ऐसी आपकी पदवीको हम लोग भवभवमें प्राप्त होते रह ॥१११॥ मानभंगसे उत्पन्न हुए तिरस्कारके भयसे दूर रहनेवाले योगी लोग वनों

१ गुरुप्रसादमामय्य । २ प्रसादोजित-० ल० । ३ यत्किंचिद् भवति तत्स्तु । ४ आह्वातुमिच्छति । ५ गर्वितम् । ६ दवस्त्रीणां के-मध्यपुष्पग-बलालित । ७ अलावुवनमयम् । ८ अभिगच्छति । ९-मापीय द० ल० । आपाय-गीत्वा । १० पिपामधपि । ११ पञ्चमल । १२ नमस्कृतम् । १३ अनाप्तानाम् । १४ समर्थ । १५ नवाम । १६ भगम । लोट । १६ अतिक्रान्ताम् । १७ तव सर्वधिनीम् । १८ प्राप्नुम । भू प्राप्तावात्मनपदम् । १९ परिभव ।

ब्रुवानानिति साक्षेपं स्थापयन्मथि शाश्वते । भगवानिति तानुच्चैरन्वगादनुगासिता^१ ॥११३॥
 महामाना^२ वपुष्मन्तो^३ वयस्सत्त्वगुणान्विता । कथमन्यस्य सत्राह्या यूयं मद्रा द्विपा इव ॥११४॥
 मङ्गिना^४ किमु राज्ञेन जीवितेन चलेन किम् । किं च भो यौवनोन्मादैरैश्वर्यबलदूषितैः ॥११५॥
 किं वलैर्बलिनं गम्यैः किं^५ हार्यैर्वस्तुवाहनैः । तृष्णाभिबोधनैरमिः किं धनैस्त्रिधनैरिव ॥११६॥
 भुक्त्वापि सुचिरं कालं यैर्न तृप्तिः क्लमः^६ परम् । त्रिषयैस्तैरलं भुक्तैर्विषमिधैरिवाग्नैः ॥११७॥
 किं च भो विषयास्वादः कोऽप्यनास्वादितोऽस्ति वः । स एव पुनरास्वादः किं तेनास्त्यागितभवः^७ ॥११८॥
 यत्र शस्त्राणि मित्राणि शत्रवः पुत्रवान्ववा । कलत्र सर्वभोगीणा^८ धरा राज्यं धिगीदृग् ॥११९॥
 भुक्तुं नृपशार्दूलो^९ भरतो भरतावनिम् । यावत्पुण्योदयस्तावत्तत्रालं वोऽतितिक्षया^{१०} ॥१२०॥
 तेनापि^{११} त्याज्यमेवेदं राज्यं मङ्गि^{१२} यदा तदा । हंतोरगाश्चतस्रास्य युध्यध्वे वत किं मुधा ॥१२१॥
 तदलं स्पृहया दध्व यूय धर्ममहातरोः । दयाकुसुममल्लानि यत्तन्मुक्तिफलप्रदम्^{१३} ॥१२२॥
 पराराधनैर्न्योन परैराराध्यमेव यत् । तद्वो महामिमानानां तपो मानाभिरक्षणम् ॥१२३॥
 दीक्षा रक्षा गुणा भृत्या दयेयं प्राणवल्लभा । इति ज्याय^{१४} स्तपोराज्यमिदं ग्लाध्यपरिच्छदम् ॥१२४॥

मे सिंहोके साथ सुखसे बढ़ते रहते हैं ॥११२॥ इस प्रकार आक्षेपसहित कहते हुए राजकुमारो-
 को अविनाशी मोक्षमार्गमे स्थित करते हुए हितोपदेशी भगवान् वृषभदेव इस प्रकार उपदेश
 देने लगे ॥११३॥ महा अभिमानी और उत्तम शरीरको धारण करनेवाले तथा तारुण्य अवस्था,
 बल और गुणोंसे सहित तुम लोग उत्तम हाथियोंके समान दूसरोके सवाह्य अर्थात् सेवक (पक्षमे
 वाहन करने योग्य सवारी) कैसे हो सकते हो ? ॥११४॥ हे पुत्रो, इस विनाशी राज्यसे क्या
 हो सकता है ? इस चंचल जीवनसे क्या हो सकता है ? और ऐश्वर्य तथा बलसे दूषित हुए
 इस यौवनके उन्मादसे क्या हो सकता है ? ॥११५॥ जो बलवान् मनुष्योंके द्वारा जीती जा
 सकती है ऐसी सेनाओसे क्या प्रयोजन है ? जिनकी चोरी की जा सकती है ऐसे सोना, चाँदी,
 हाथी, घोडा आदि पदार्थों से क्या प्रयोजन है ? और ई धनके समान तृष्णारूपी अग्निको प्रज्वलित
 करनेवाले इस धनसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥११६॥ चिरकाल तक भोग कर भी जिनसे तृप्ति
 नहीं होती, उलटा अत्यन्त परिश्रम ही होता है ऐसे विष मिले हुए भोजनके समान इन विषयोका
 उपभोग करना व्यर्थ है ॥११७॥ हे पुत्रो, तुमने जिसका कभी आस्वादन नहीं किया हो ऐसा
 भी क्या कोई विषय बाकी है ? यह सब विषयोका वही आस्वाद है जिसका कि तुम अनेक बार
 आस्वादन (अनुभव) कर चुके हो फिर भला तुम्हे इनसे तृप्ति कैसे हो सकती है ? ॥११८॥
 जिसमे शस्त्र मित्र हो जाते हैं, पुत्र और भाई वगैरह शत्रु हो जाते हैं तथा सबके भोगने योग्य
 पृथिवी ही स्त्री हो जाती है ऐसे राज्यको धिक्कार हो ॥११९॥ जबतक पुण्यका उदय है
 तबतक राजाओमे श्रेष्ठ भरत इस भरत क्षेत्रकी पृथिवीका पालन करे इस विषयमे तुम लोगोका
 क्रोध करना व्यर्थ है ॥१२०॥ यह विनश्वर राज्य भरतके द्वारा भी जब कभी छोडा हो जावेगा
 इसलिए इस अस्थिर राज्यके लिए तुम लोग व्यर्थ ही क्यो लडते हो ॥१२१॥ इसलिए ईर्ष्या
 कर्ना व्यर्थ है, तुम लोग धर्मरूपी महावृक्षके उम दयारूपी फूलको धारण करो जो कभी भी
 म्रान नहीं होता और जिसपर मुक्तिरूपी महाफल लगता है ॥१२२॥ जो दूसरोकी आराधनासे
 उत्पन्न हुई दीनतासे रहित है बल्कि दूसरे पुरुष ही जिसकी आराधना करते हैं ऐसा तपञ्चरण
 ही महा अभिमान धारण करनेवाले तुम लोगोके मानकी रक्षा करनेवाला है ॥१२३॥ जिसमे
 दीक्षा ही रक्षा करनेवाली है, गुण ही मेवक है, और यह दया ही प्राणप्यागी स्त्री है इस

^१ अनुदेशक । ^२ महामिमानिन प्रमाणान्व । ^३ मवाह्या । ^४ विनश्वरेण । ^५ हनुं योग्यं । ^६ गन्तानि ।
^७ तृप्ति । ^८ नाप्ये । ^९ सर्वेषां भोगेन्यो हिता । ^{१०} नृपश्चेष्ट । ^{११} अज्ञमया । ^{१२} भवनेनापि । ^{१३} यस्मिन्
 न्योनैस्त्रिधनैरिव । ^{१४} कारणात् । ^{१५} महाफलम् ल० । ^{१६} चेष्टम् ।

इत्याकण्य विमोर्षाक्य पर निर्वेदमागता । महाप्राप्तायमास्थाय^१ निष्क्रान्तास्ते गृहाद्वनम्^२ ॥१२५॥
 निर्दिष्टा गुरुणा साक्षादीक्षां नववधूमिव । नवा इव वरा प्राप्य रजुस्ते युवपार्थिवा ॥१२६॥
 या कवग्रहपूर्वेण^३ प्रणयनातिभूमिगा^४ । तथा पाणिगृहीत्येव^५ दीक्षया ते धृति^६ दधु ॥१२७॥
 तपस्तावमथासाद्य त चक्रासुनृपय । स्वजोरुद्धविधासा^७ ग्रीष्ममर्का^८ शवो यथा ॥१२८॥
 तऽतितीव्रैस्तपयोगैस्तनूभूतां तनु दधु । तपोलक्ष्म्या समुत्कीर्णामिव दीप्तां तपोगुणै ॥१२९॥
 स्थिता सामयिके वृत्त^९ जिनकल्पविशयिते । ते तपिरे तपस्ताव ज्ञानशुद्धयुपवृ हितम् ॥१३०॥
 वैराग्यस्य परा^{१०} क्रीटामारूढास्ते युगेधरा । स्वमाश्रुस्तपोलक्ष्मीं राज्यलक्ष्म्यामनुसुका ॥१३१॥
 तपोलक्ष्म्या परिप्लव्वा^{११} मुक्तिलक्ष्म्यां कृतस्पृहा । ज्ञानसपथसन्नास्ते राजलक्ष्मीं विसस्मर ॥१३२॥
 द्वादशाङ्गश्रुतस्कन्धमधीत्यैते महाधिय । तपो भावनयात्मानमलक्ष्णु प्रकृष्टया ॥१३३॥
 स्वाध्यायेन मनोरोधस्ततोऽक्षाणां विनिजय । इत्याकलस्य ते धीरा स्वाध्यायधियमादधु ॥१३४॥
 आचारागन नि शेष साध्याचारमवेदिषु ।^{१२} चर्याशुद्धिमतो^{१३} रज्जुरतिक्रम^{१४} विवजिताम् ॥१३५॥

प्रकार जिसकी सब सामग्री प्रशंसनीय है ऐसा यह तपरूपी राज्य ही उत्कृष्ट राज्य है ॥१२४॥
 इस प्रकार भगवान्‌के वचन सुनकर वे सब राजकुमार परम वैराग्यको प्राप्त हुए और महादीक्षा
 धारण कर घरसे वनके लिए निकल पड़े ॥१२५॥ साक्षात् भगवान् वृषभदेवके द्वारा दी हुई
 दीक्षाको नयी स्त्रीके समान पाकर वे तरुण राजकुमार नये वरके समान बहुत ही अधिक
 सुशोभित हो रहे थे ॥१२६॥ उनकी वह दीक्षा किसी विवाहिता स्त्रीके समान जान पड़ती
 थी क्योंकि जिस प्रकार विवाहिता स्त्री कचग्रह अर्थात् केश पकड़कर बड़े प्रणय अर्थात् प्रेमसे
 समीप आती है उसी प्रकार वह दीक्षा भी कचग्रह अर्थात् केशलोच कर बड़े प्रणय अर्थात् शुद्ध
 नयोंसे उनके समीप आयी हुई थी इस प्रकार विवाहिता स्त्रीके समान सुशोभित होनेवाली दीक्षासे
 वे राजकुमार अन्त करणमें सुखको प्राप्त हुए थे ॥१२७॥ अध्यानन्तर जिन्होंने अपने तेजसे
 समस्त दिशाओकी रोक लिया है ऐसे वे राजर्षि तीव्र तपश्चरण धारण कर ग्रीष्म ऋतुके सूर्यकी
 किरणोंके समान अतिशय देदीप्यमान हो रहे थे ॥१२८॥ वे राजर्षि जिस शरीरको धारण किये
 हुए थे वह तीव्र तपश्चरणसे कृश होनेपर भी तपके गुणोंसे अत्यन्त देदीप्यमान हो रहा था
 और ऐसा मालूम होता था मानो तपरूपी लक्ष्मीके द्वारा उकेरा ही गया हो ॥१२९॥ वे लोग
 जिनकल्प दिग्म्वर मुद्रासे विशिष्ट सामायिक चारित्र्यमें स्थित हुए और ज्ञानकी विशुद्धिसे बढ़ा
 हुआ तीव्र तपश्चरण करने लगे ॥१३०॥ वैराग्यकी चरम सीमाको प्राप्त हुए उन तरुण
 राजर्षियोंने राज्यलक्ष्मीसे इच्छा छोड़कर तपरूपी लक्ष्मीको अपने वश किया था ॥१३१॥ व
 राजकुमार तपरूपी लक्ष्मीके द्वारा आलिंगित हो रहे थे, मुक्तरूपी लक्ष्मीमे उनकी इच्छा लग
 रही थी और ज्ञानरूपी सम्पदामे आसक्त हो रहे थे । इस प्रकार वे राज्यलक्ष्मीको विलकुल
 ही भूल गये थे ॥१३२॥ उन महाबुद्धिमानोंने द्वादशाङ्गरूप श्रुतस्कन्धका अध्ययन कर तपकी
 उत्कृष्ट भावनामे अपने आत्माको अलङ्कृत किया था ॥१३३॥ स्वाध्याय करनेसे मनका
 निरोध होता है और मनका निरोध होनेसे इन्द्रियाका निग्रह होता है यही समझकर उन
 धीर-धीर मुनियोंने स्वाध्यायम अपनी बुद्धि लगायी थी ॥१३४॥ उन्होंने आचारागके

१ आस्थित्य । २ वन प्रति गृहाभिष्क्रान्ता - निगता । ३ प्रकृष्टनयन स्तुतेन । ४ सीमातिक्रान्ता । ५ तस्या
 पाणिनीय प्राप्य मुखमतरपागता प० ल । पन्ना । ६ मतोपम । ७ सकलान्ति । ८ ग्रीष्मकाल प्राप्य ।
 ९ चारित्र्य । १० वाद्य-म० अ० प० स० ६०, ल० । ११ आलिङ्गिता । १२ चारित्र्यबुद्धिम् ।
 १३ आचाराङ्गपरिगणान् । १४ अतीचार ।

ज्ञात्वा सूत्रकृतं^१ सूक्तं निखिलं सूत्रतोऽर्थतः । धर्मक्रियासमाधाने ते दधुः सूत्रधारताम् ॥१३६॥
 स्थानाध्ययनं मध्यायशतैर्गम्भीरमविवृणुत् । विगाह्य तत्त्वरत्नानामयुक्ते भेदमङ्गमा ॥१३७॥
 समवायाख्यमङ्गं ते समधीत्य सुमेधसः । द्रव्यादिविषयं सम्यक् समवायं मभुत्सत ॥१३८॥
 स्वभ्यस्तात्पञ्चमादङ्गाद् व्याख्याप्रज्ञसिंजितात् । साध्ववादीवरन्^२ धीराः प्रश्नार्थान् विविधानमी ॥१३९॥
^३ज्ञातृधर्मकथां सम्यक् बुद्ध्वा बोद्धुनबोधयन् । धर्म्यां कथामसमोहात्ते यथोक्तं^४ महर्षिणा ॥१४०॥
 तेऽधीत्योपासकाध्यायमङ्गं सप्तममूर्जितम् । निखिलं श्रावकाचारं श्रोतृभ्यः समुपादिशन् ॥१४१॥
 तथान्तकृद्गङ्गादङ्गात् मुनीनन्तकृतो^५ दश^६ । तीर्थं प्रति^७ विदामासुः सोढासहोपसर्गकान् ॥१४२॥
 अनुत्तरविमानौपपादिकान्दश तादृशान् । शमिनो नवमादङ्गाद् विदाचक्रुर्विदांवरा ॥१४३॥
 प्रश्नव्याकरणात्प्रश्नमुपादाय शरीरिणाम् । सुखदुःखादिसप्राप्तिं व्याचक्रुस्ते समाहिताः ॥१४४॥
 विपाकसूत्रनिर्ज्ञातिसदस्यकर्मपङ्क्तयः । बद्धकक्षास्तदुच्छिस्तौ^८ तपश्चक्रुस्तन्निद्रता ॥१४५॥
 दृष्टिवादेन निर्ज्ञातदृष्टिभेदा जिनागमे । ते तेनुः परमां भक्तिं परं सवेगमाश्रिताः ॥१४६॥
 तदन्तर्गतं^९ निःशेषश्रुततत्त्वावधारिणः । चतुर्दशमहाविद्यास्थानान्यध्यैषत क्रमात् ॥१४७॥

द्वारा मुनियोका समस्त आचरण जान लिया था इसीलिए वे अतिचाररहित चर्याकी विशुद्धता-
 को प्राप्त हुए थे ॥१३५॥ वे शब्द और अर्थसहित समस्त सूत्रकृतागको जानकर धर्मक्रियाओ-
 के धारण करनेमें सूत्रधारपना अर्थात् मुख्यताको धारण कर रहे थे ॥१३६॥ जो सैकड़ों
 अध्यायोसे समुद्रके समान गम्भीर है ऐसे स्थानाध्ययन नामके तीसरे अंगका अध्ययन कर उन्होंने
 तत्त्वरूपी रत्नोंके भेद भी ही जान लिये थे ॥१३७॥ समीचीन बुद्धिको धारण करनेवाले
 उन राजकुमारोंने समवाय नामके चौथे अंगका अच्छी तरह अध्ययन कर द्रव्य आदिके समूह-
 को जान लिया था ॥१३८॥ अच्छी तरह अभ्यास किये हुए व्याख्याप्रज्ञप्ति नामके पाँचवे
 अंगसे उन धीर-वीर राजकुमारोंने अनेक प्रकारके प्रश्न-उत्तर जान लिये थे ॥१३९॥
 वे धर्मकथा नामके छठे अंगको जानकर और उसका अच्छी तरह अवगम कर महर्षि भगवान्
 वृषभदेवके द्वारा कही हुई धर्मकथाएँ अज्ञानी लोगोको बिना किसी त्रुटिके ठीक-ठीक बतलाते
 थे ॥१४०॥ अतिगय श्रेष्ठ उपानकाध्ययन नामके सातवे अंगका अध्ययन कर उन्होंने श्रोताओके
 लिए समस्त श्रावकाचारका उपदेष्टा दिया था ॥१४१॥ उन्होंने अन्त कृद्गङ्गा नामके आठवे अंगसे
 प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें असह्य उपसर्गोंको जीतकर मुक्त होनेवाले दश अन्त कृत मुनियो-
 का वृत्तान्त जान लिया था ॥१४२॥ जाननेवालोमें श्रेष्ठ उन राजकुमारोंने अनुत्तरविमा-
 नौपपादिक नामके नौवे अंगसे प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें असह्य उपसर्ग जीतकर अनुत्तर
 विमानोमें उत्पन्न होनेवाले दश-दश मुनियोका हाल जान लिया था ॥१४३॥ वे स्थिर चित्त-
 वाले मुनिराज प्रश्नव्याकरण नामके दशवे अंगसे प्रश्न समझकर जीवोंके सुख-दुःख आदिका
 वर्णन करने लगे ॥१४४॥ विपाकसूत्र नामके ग्यारहवे अंगसे जिन्होंने कर्मोंकी शुभ-अशुभ
 नमस्त प्रकृतियाँ जान ली हैं ऐसे वे मुनि कर्मोंका नाश करनेके लिए तत्पर हो प्रमाद छोड़कर
 नीम्र तपश्चरण करते थे ॥१४५॥ दृष्टिवाद नामके बारहवे अंगसे जिन्होंने समस्त दृष्टिके
 भेद जान लिये हैं ऐसे वे राजकुमार परम सवेगको प्राप्त होकर जैनशास्त्रोमें उत्कृष्ट भक्ति
 करने लगे थे ॥१४६॥ उन बारहवे अंगके अन्तर्गत समस्त श्रुतज्ञानके रहस्यका निश्चय
 करनेवाले उन मुनियोने क्रममें चौदह महाविद्याओके स्थान अर्थात् चौदह पूर्वोक्ता भी अध्ययन

ततोऽमी श्रुतनिशेषश्रुतायां श्रुतचक्षुष । श्रुताथमावनोत्कर्षाद् ददुः शुद्धिं संपोषिधौ ॥१४८॥
 वाग्देया सममालापो मया मौनमनारतम् । इतीप्यतीव सतापं व्यधत्तैषु तपःक्रिया ॥१४९॥
 तनुतापमसह्य ते सहमाना मनस्थिन । बाह्यमाभ्यात्मिकं चोग्रं तप सुचिरमाचरन् ॥१५०॥
 ग्रीष्मऽककरसतापं महमाना सुदुः सहम् । त मजुरातपस्थानमारूढगिरिमस्तका ॥१५१॥
 शिलातलेषु तप्तेषु निवेशितपदद्वया । प्रलम्बितमुजास्तस्थुर्गिगमग्रावगोचरं ॥१५२॥
 तप्तपांसुचिता भूमिर्दाबद्धा घनस्थली । याता जलाशया शोषं दिशो भ्रूमाधकारिता ॥१५३॥
 हृत्पत्युग्रतर ग्रीष्मे सप्तशृङ्गगिरिकानने । तस्थुरातपयोगन ते सोढजरदातपा ॥१५४॥
 मेघाधकारिता शेषदिव्यक्रे जलदागम । योगिनो गमयन्ति स्म तस्मूलेषु शवरी ॥१५५॥
 मुसलस्थूलधाराभिबधत्सु जलबाहिषु । निशामनैषुरेव्यध्या^१ बाधिकीं^२ ते महर्षयः ॥१५६॥
 ध्यानगर्मं गृहा त स्या धृतिस्रावारसवृता^३ । सह ते स्म महासखास्त घनाघनदुर्दिनम् ॥१५७॥
 त हिमानीं^४ परिक्लिष्टा तनुयष्टिं हिमागम । दधु^५ रम्यवकाशेषु^६ शयाला मौनमास्थिता ॥१५८॥
 अनम्रमुषिता^७ पथ नमास्तऽनमिसविन । धृतिसवर्मितै रगै सेहिरे हिममास्तान् ॥१५९॥

किया था ॥१४७॥ तदनन्तर जिन्होंने समस्त श्रुतके अर्थोंका श्रवण किया है और श्रुतज्ञान ही जिनके नेत्र ह ऐसे वे भूनि श्रुतज्ञानकी भावनाके उत्कषसे तपश्चरणमे विशुद्धता धारण करने लगे ॥१४८॥ ये लोग सरस्वती देवीके साथ तो बातचीत करते है और मेरे साथ निरन्तर मौन धारण करते ह इस प्रकार ईर्ष्या करतो हुईके समान तपश्चरणकी क्रिया उन्हें बहुत सन्ताप देती थी ॥१४९॥ असह्य कायक्लेश सहन करते हुए वे तेजस्वी मुनि अतिशय कठिन अतरंग और बाह्य दोनों प्रकारका तप चिरकाल तक करते रहे ॥१५०॥ ग्रीष्मऋतुमें पर्वतोंके शिखरपर आरूढ होकर अत्यन्त असह्य सूर्यकी किरणोंके सतापको सहन करते हुए वे आतापन योगको प्राप्त हुए थे अर्थात् धूपमें बैठकर तपस्या करते थे ॥१५१॥ पर्वतोंके अग्रभागकी चट्टानोंकी तपी हुई शिलाओपर दोनों पैर रखकर तथा दोनों मुजाएँ लटका कर खड़े होते थे ॥१५२॥ जिस ग्रीष्मऋतुमें पृथिवी तपी हुई धूलिसे व्याप्त हो रही है, वनके सब प्रदेश दावानलसे जल गये है तालाब सूख गये है और दिशाएँ धूँसे अधकारपूर्ण हो रही ह इस प्रकारके अत्यन्त कठिन और जिसम पर्वतोंके वन जल गये हैं ऐसी ग्रीष्मऋतुमे तीव्र सताप सहन करते हुए व मुनिराज आतापन योग धारण कर खड़े होते थे ॥१५३-१५४॥ जिसमें समस्त दिशाओका समूह बादलोंके छा जानेसे अन्धकारयुक्त हो गया है ऐसी वर्षाऋतु म व योगी वृक्षोंके नीचे ही अपनी रात्रियाँ बिता देते थे ॥१५५॥ जब बादल मूसलके समान मोटी मोटी धाराअसे पानी बरसाते थे तब वे महर्षि वर्षाऋतुकी उन रात्रियोंको निश्चल होकर व्यतीत करते थे ॥१५६॥ ध्यानरूपी गमगृहके भीतर स्थित और घैयरूपी ओढनी को ओढे हुए व महाबलवान् भूनि बादलोंसे ढके हुए दुर्दिनोंको सहन करते थे ॥१५७॥ शीत ऋतुके त्रिनोंम मौन धारण कर खुले आकाशमें शयन करते हुए वे मुनि बहुत भारी वर्षोंसे अत्यन्त दुःखी हुई अपने शरीरको लकड़ीके समान निश्चल धारण करते थे ॥१५८॥ वे मुनि नग्न होकर भी कभी अग्निसेवन नहीं करते थे, वस्त्रोंसे सहित हुएके समान सदा निद्वन्द्व रहते थे

१ पर्वतशिखरपाशप्रदम् । २ संश्लेष । ३ प्रवृद्धातपा । ४ मधय । ५ नयन्ति स्म । ६ निश्चला निभया हयथ । ७ वर्षाशालमवधिनीम । ८ वासगृहम् । ९ धयकम्बलपरिवष्टिता । १० हिममहति । ११-२३ आव - प ल । १२ तरलतामु मगुहान्द्रितप्रबलवायुसहितप्रदेगपु । १३ अनम्र यथा भवति तथा सावरणमिधयथ । १४ स्थिता । १५ धयकचचिन ।

हेमनीपु^१ त्रियामासु स्थगितास्ने^२ हिमोच्चैर्य^३ । प्रावारितै^४ रिवाङ्गै^५ स्वैर्धाराः स्वैरमशेरत ॥१६०॥
 त्रिकालविषयं योगमास्थायैव^६ दुरुद्धहम् । सुचिरं धारयन्ति स्म धीरास्ते धृतियोगत ॥१६१॥
 दधानास्ते तपस्तापमन्तर्दोषं दुरासदम् । रंजुस्तरङ्गितैरङ्गैः प्रायोऽनुकृतवार्द्धयः ॥१६२॥
 तं स्वभुक्तोज्झितं भूयो नैच्छन् भोगपरिच्छदम् । निर्भुक्तमाल्यनिःसारं मन्यमाना मनीषिणः ॥१६३॥
 फेनोर्मिहिमसन्ध्याभ्रचल जीवितमङ्गिनाम् । मन्वाना दृढमासक्ति भेजुस्ते पथि शाश्वते ॥१६४॥
 संसारावासनिर्विण्णा गृहावासाद्विनिःसृताः । जैने मार्गे विमुक्त्यङ्गे ते परां धृतिमादधुः ॥१६५॥
 इतो^७ऽन्यदुत्तरं^८ नास्तीत्यारूढदृढभावना । तेऽभी मनोवचकायैः श्रद्धधुर्गुशशासनम् ॥१६६॥
 तेऽनुरक्ता जिनप्रोक्ते सूक्ते धर्मे सनातने । उत्तिष्ठन्ते स्म मुक्त्यर्थं बद्धकक्ष्या सुसुधवः ॥१६७॥
 सवेगजनितश्रद्धाः शुद्धे वर्त्मन्यनुत्तरे । दुरापां भावयामासुस्ते महाव्रतभावनाम् ॥१६८॥
 अहिंसा सत्यमस्येयं ब्रह्मचर्यं विमुक्तताम्^९ । राज्यभोजनपष्टानि व्रतान्येतान्यभावयन् ॥१६९॥
 यावज्जीवं व्रतेष्वेते दृढीकृतसंगराः^{१०} । त्रिविधेन^{११} प्रतिक्रान्तदोषाः शुद्धिं परां दधुः ॥१७०॥
 सर्वास्मभविनिर्मुक्ता निर्मला^{१२} निष्परिग्रहाः । मार्गमाराधयन्नेनं व्युत्सृष्टतनुयष्टय ॥१७१॥

और धैर्यरूपी कवचसे ढके हुए अंगोसे शीतल पवनको सहन करते थे ॥१५९॥ शीतऋतुकी रात्रियोमे वर्फके समूहसे ढके हुए वे धीर-वीर मुनिराज स्वतन्त्रतापूर्वक इस प्रकार गयन करते थे मानो उनके अग वस्त्रसे ही ढके हो ॥१६०॥ इस प्रकार वे धीर-वीर मुनि तीनो काल-सम्बन्धी कठिन योग लेकर अपने धैर्यगुणके योगसे उन्हे चिर काल तक धारण करते थे ॥१६१॥ अन्तरगमे देदीप्यमान और अतिशय कठिन तपके तेजको धारण करते हुए वे मुनि तरंगोके समान अपने अंगोसे ऐसे जान पड़ते थे मानो समुद्रका ही अनुकरण कर रहे हो ॥१६२॥ वे बुद्धिमान् अपने-द्वारा उपभोग कर छोड़ी हुई भोगसामग्रीको भोगमे आयी हुई मालाके समान सारहीन मानते हुए फिर उसकी इच्छा नहीं करते थे ॥१६३॥ वे प्राणियोके जीवनको फेन, ओस अथवा सन्ध्याकालके बादलोके समान चंचल मानते हुए अविनाशी मोक्षमार्गमे दृढता-के साथ आसक्तिको प्राप्त हुए थे ॥१६४॥ ससारके निवाससे विरक्त हुए और घरके आवास-से छूटे हुए वे मुनिराज मोक्षके कारणभूत जिनेन्द्रदेवके मार्गमे परम सन्तोष धारण करते थे ॥१६५॥ इससे बढकर और कोई शासन नहीं है इस प्रकारकी मजबूत भावनाएँ जिन्हे प्राप्त हो रही हैं ऐसे वे राजर्षि मन वचन कायसे भगवान्के शासनका श्रद्धान करते थे ॥१६६॥ जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहे हुए और अनादिसे चले आये यथार्थ जैनधर्ममे अनुरक्त हुए वे मोक्षाभिलाषी मुनिराज मोक्षके लिए कमर कसकर खड़े हुए थे ॥१६७॥ सवेग होनेसे जिन्हे शुद्ध और सर्वश्रेष्ठ मोक्षमार्गमे श्रद्धान उत्पन्न हुआ है ऐसे वे मुनि कठिनाईसे प्राप्त होने योग्य महाव्रतकी भावनाओका निरन्तर चिन्तन किया करते थे ॥१६८॥ अहिंसा, सत्य, अर्चार्थ, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग और रात्रिभोजनत्याग इन छह महाव्रतोका वे निरन्तर पालन करते थे ॥१६९॥ जिन्होंने ऊपर कहे हुए छह व्रतोकी जीवनपर्यन्तके लिए दृढप्रतिज्ञा धारण की है और मन, वचन तथा कायसे उन व्रतोके ममस्त दोष दूर कर दिये हैं ऐसे वे मुनिराज परम विगुद्धिको धारण कर रहे थे ॥१७०॥ जिन्होंने मन्त्र प्रकारके आरम्भ छोड़ दिये हैं, जो ममना-रहित हैं, परिग्रहरहित हैं और वर्णरूप लकड़ीसे भी जिन्होंने ममत्व छोड़ दिया है ग्ने वे

१. हेमनीपु २०, ५० । हेमन्तदग्निनीपु । २. आच्छादितं । ३. हिमोच्चयन्यगिनान्तन्वान् प्रादग्गान्वि-
 ४. ५. प्रविण्णा । ६. योगमास्थान् । ७. दुरुद्धहम् । ८. नि परिग्रहनाम् । ९. दृढीकृतप्रतिज्ञा ।
 १०. मम ममत्वेन । ११. त्रिविधमन्येन निम्न । १२. निर्मला २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७० ।

सत्रोपविधिनिमुक्ता युक्ता धर्मे जिनेदित । नैच्छन् बालाग्रमात्रं च द्विधाम्नात्^२ परिग्रहम् ॥१७२॥
 निमूर्च्छास्त^३ स्त्रदेहेऽपि धमवत्तमि सुस्थिताः । सतोपमावनापास्तनृणा सतो विजहिर^४ ॥१७३॥
 वमन्ति स्मानिकेतास्ते^५ यत्रास्त^६ मानुमानित^७ । तत्रैकत्र^८ कश्चिद्देशे नैस्सग्य परमास्थिता^९ ॥१७४॥
 विविक्तैका^{१०} तसवित्वाद्^{११} ग्रामप्रेकाहवासिन^{१२} । पुरध्वपि न यज्ञाहात्पर तस्थुनुपर्यय^{१३} ॥१७५॥
 शून्यागारश्मशानादिविधिकालयगोचरा^{१४} । ते वीरवसतीर्मेष्टुज्जिताः सप्तभिर्भयै ॥१७६॥
 तेऽभ्यन^{१५} दन्महासत्त्वा पाकसत्त्वरधिष्ठिताः । गियग्रकन्दरारण्यवसती प्रतिवासरम् ॥१७७॥
 सिंहशृङ्गशादूलतरङ्गवादि^{१६} निपेवित । वनान्त ते वसन्ति स्म तदारसितभीषण^{१७} ॥१७८॥
 स्फुरत्पुरुषसादूलगर्जितप्रतिनि^{१८} स्वनै । आगुञ्जत्पवतप्रान्ते^{१९} ते स्म तिष्ठन्त्यसाध्वसा ॥१७९॥
 कण्ठीरवकिशोराणा^{२०} कठोर^{२१} कण्ठनिस्वभै । प्रोश्वादिनि^{२२} वने ते स्म निवसन्त्यस्तभीतय ॥१८०॥
 नृभ्यश्च^{२३} धरयन्त सधरद्वाक्निगगा ।^{२४} प्रवद्वकौशिकध्वाननिरुद्धो^{२५} पातकानना ॥१८१॥
 शिषानाम^{२६} शिबैध्वनैराहृद्वातिलदिक्षुखा । महापितृवनोद्देशा निशास्वेभि^{२७} सिपेविर^{२८} ॥१८२॥

मुनि जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहे हुए मोक्षमागकी आराधना करते थे ॥१७१॥ सब प्रकारके परिग्रहसे रहित होकर जिनेन्द्रदेवके द्वारा कहे हुए धमका आचरण करते हुए वे राजकुमार बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारके कहे हुए परिग्रहोंमें-से बालकी नोकके बराबर भी किसी परिग्रहकी चाह नहीं करते थे ॥१७२॥ जिन्हें अपने शरीरमें भी ममत्व नहीं है, जो धर्मके मागम स्थित ह और सन्तोषकी भावनासे जिन्होंने तृष्णाको दूर कर दिया है ऐसे वे उत्तम मुनिराज सब जगह विहार करते थे ॥१७३॥ परिग्रह-त्याग व्रतको उत्कृष्ट रूपसे पालन करने वाल वे गृहरहित मुनिराज जहाँ सूर्य डूब जाता था वही किसी एक स्थानमें ठहर जाते थे ॥१७४॥ वे राजपि एकान्त आर पवित्र स्थानमें रहना पसन्द करते थे इसलिए गाँवोंमें एक दिन रहते थे और नगरोंमें पाँच दिनसे अधिक नहीं रहते थे ॥१७५॥ वे मुनि सात भयोंसे रहित होकर शून्यगृह अथवा श्मशान आदि एकान्त स्थानोंमें वीरताके साथ निवास करते थे ॥१७६॥ व महाबलवान् राजकुमार सिंह आदि दुष्ट जीवोंसे भरी हुई पर्वतोंकी गुफाओं और जगलो म ही प्रतिदिन निवास करना अच्छा समझते थे ॥१७७॥ सिंह, रीछ, भेड़िया, व्याघ्र, चीता आदिसे भरे हुए और उन्हींके शब्दोंसे भयंकर वनके बीचमें वे मुनिराज निवास करते थे ॥१७८॥ चारों ओर फैलते हुए व्याघ्रकी गजनाकी प्रतिध्वनियोंसे गूँजते हुए पवतके किनारों पर वे मुनि निमग्न होकर निवास करते थे ॥१७९॥ सिंहोंके बच्चोंकी कठोर कण्ठगजनासे शब्दायमान वनमें मुनिराज भयरहित होकर निवास करते थे ॥१८०॥ जहाँ नाचते हुए शिररहित घड़ोंके समीप डाकिनियोंके समूह फिर रहे हैं जिनके समीपके घन उल्लुओंके प्रचण्ड शब्दोंसे भर रह हैं और जहाँ शृगालोंके अमंगलरूप शब्दोंसे सब दिशाएँ व्याप्त हो रही हैं ऐसी बड़ी-बड़ी श्मशानभूमियोंमें रात्रिके समय वे मुनिराज निवास करते थे ॥१८१-१८२॥

१ स्थिता प० ल० । २ बाह्याभ्यन्तररूपेण द्विधा प्रोक्तम् । ३ निर्मोहा । ४ विहरन्ति स्म । ५ अनगारा । ६ आश्रित्य । ७ प्राया । ८ वचन्निनियनप्रदेन । ९ आधिता । १० विगुडविजनप्रदेनोपु स्यातु प्रियत्वा दिनि भाव । ११ एरुदिवसवासिन । १२ निवसन्ति स्म । १३ एकान्तप्रदेशा गाचरविषया यथा ते । १४ शृङ्ग भल्लूक वर^१ हामुगगादूलपीतारसमृगादि । १५ तथा सिद्धान्तेनाम् आरावभयकरे । १६ स्वन्त्यवनसानुमध्य । १७ मि गावानाम । १८ कटिर्न प० ल० द० । १९ ध्वनि पुबनि । २० मभीष । २१ प्रचण्ड ल० प० । २२ वृत्तधूकनिनाभ्याप्त । २३ जम्बुकानाम् । २४ अमङ्गलै । २५ तपायन । २६ सञ्जत स्म ।

मिहा इव नृसिंहास्ते^१ तस्थुर्गिरिगुहाश्रयाः । जिनोक्त्यनुगतैः स्वान्तरनुद्विष्टैः^२ समाहिताः ॥१८३॥
 पाकसत्त्वं^३ गताकीर्णां वनभूमिं मयानकाम्^४ । तेऽध्यवात्सुस्त^५ मित्रासु^६ निगासु ध्यानमास्थिताः^७ ॥१८४॥
 न्यपेवन्त वनोद्देशान् निपेव्यान्वनदन्तिमिः । ते तदन्ताग्रनिमिञ्चतस्स्थपुष्टितान्तरान्^८ ॥१८५॥
 वनेषु वनमातङ्गवृ^९ हितप्रतिनादिनीः । दरीस्तेऽध्युपु^{१०} रासृष्टैराक्रान्ताः करिञ्चुभिः^{११} ॥१८६॥
 स्वाध्याययोगमसक्ता न स्वपन्ति स्म रात्रिषु । सूत्रार्थमावनोद्युक्ता जागरूका^{१२} सदा यमी ॥१८७॥
 पल्यङ्गेन निषण्णास्ते वीरासनजुषोऽथवा^{१३} । शयाना वैकपाश्वेन शर्वरीस्त्यवाहयन्^{१४} ॥१८८॥
 त्यक्तोपधिमरा धीरा व्युत्सृष्टाङ्गा निरम्बराः । नैर्किञ्चन्यविशुद्धास्ते मुक्तिमार्गममार्गयन् ॥१८९॥
 निर्व्यपेक्षा निराकाङ्क्षा वायुवीथ्यनुगामिनः^{१५} । व्यहरन् वसुधामेनां सग्रामनगराकराम् ॥१९०॥
 विहरन्तो महीं कृत्स्नां ते कस्याप्यनभिद्रुहः^{१६} । मातृकल्पा दयालुत्वात्पुत्रकल्पेषु देहिषु ॥१९१॥
 जीवाजीवविभागज्ञा ज्ञानोद्योतस्फुरद्दृग्गः । सावद्य परिजहुस्ते प्रासुकावगन्थागनाः^{१७} ॥१९२॥
 स्याद्यत्किञ्चिच्च मावद्यं तत्सर्वं त्रिविधेन ते । रत्नत्रितयशुद्धयर्थं यावज्जीवमवर्जयन् ॥१९३॥
 त्रयान् हरितिकायांश्च पृथिव्यप्पवनानलान् । जीवकायानपायेभ्यस्ते^{१८} स्म रक्षन्ति यत्नतः ॥१९४॥

सिंहके समान निर्भय, सब पुरुषोमे श्रेष्ठ और पर्वतोकी गुफाओमे ठहरनेवाले वे मुनिराज जिनेन्द्र-
 देवके उपदेशके अनुसार चलनेवाले खेदरहित चित्तसे शान्त होकर निवास करते थे ॥१८३॥
 वे मुनिराज अँवैरी रातोके समय सैकड़ो दुष्ट जीवोसे भरी हुई भयंकर वनकी भूमियोमे ध्यान
 धारण कर निवास करते थे ॥१८४॥ जो जगली हाथियोके द्वारा सेवन करने योग्य हैं तथा
 जिनके मध्यभाग हाथियोके दाँतोके अग्रभागसे टूटे हुए वृक्षोसे ऊँचे नीचे हो रहे हैं ऐसे वन-
 के प्रदेशोमे वे महामुनि निवास करते थे ॥१८५॥ जिनमे जगली हाथियोकी गर्जनाकी
 प्रतिध्वनि हो रही है और उस प्रतिध्वनिसे कुपित हुए सिंहोसे जो भर रही है ऐसी वनकी
 गुफाओमे वे मुनि निवास करते थे ॥१८६॥ वे मुनिराज स्वाध्याय और ध्यानमे आसक्त
 होकर रात्रियोमे भी नहीं सोते थे, किन्तु सूत्रोके अर्थके चिन्तनमे तत्पर होकर सदा जागते
 रहते थे ॥१८७॥ वे मुनिराज पर्यंकासनसे बैठकर, वीरासनसे बैठकर अथवा एक करवट-
 से ही सोकर रात्रियाँ बिता देते थे ॥१८८॥ जिन्होने परिग्रहका भार छोड़ दिया है, शरीरसे
 ममत्व दूर कर दिया है, जो वस्त्ररहित हैं और परिग्रहत्यागसे जो अत्यन्त विशुद्ध हैं ऐसे वे
 धीर-वीर मुनि मोक्षका मार्ग ही खोजते रहते थे ॥१८९॥ किसीकी अपेक्षा न करनेवाले, आका-
 क्षाओसे रहित और आकाशकी तरह निर्लेप वे मुनिराज गाँव और नगरोके समूहसे भरी हुई
 इस पृथिवीपर विहार करते थे ॥१९०॥ समस्त पृथिवीपर विहार करते हुए और किसी
 भी जीवसे द्रोह नहीं करते हुए वे मुनि दयालु होनेसे समस्त प्राणियोको पुत्रके तुल्य मानते
 थे और उनके साथ माताके समान व्यवहार करते थे ॥१९१॥ वे जीव और अजीवके विभाग-
 को जाननेवाले थे, ज्ञानके प्रकाशसे उनके नेत्र देदीप्यमान हो रहे थे अथवा ज्ञानका प्रकाश
 ही उनका स्फुरायमान नेत्र था, वे प्रासुक अर्थात् जीवरहित स्थानमे ही निवास करते थे और
 उनका भोजन भी प्रासुक ही था, इस प्रकार उन्होने समस्त सावद्य भोगका परिहार कर दिया
 था ॥१९२॥ उन मुनियोने रत्नत्रयकी विशुद्धिके लिए, संसारमे जितने सावद्य (पापारम्भ-
 नहिन) कार्य हैं उनका जीवन पर्यन्तके लिए त्याग कर दिया था ॥१९३॥ वे त्रयकाय, वनस्पति

१ पुण्यश्रेष्ठा । २ ज्वेदितै । ३ क्रूरमृग । ४ भयकराम् । ५ निवसन्ति स्म । ६ अन्धकारवतीषु 'तमिन्ना
 तमिन्ना रात्रि इत्यनिधानान् । ७ आश्रिता । ८ निम्नोन्नतमध्यान् । ९ अविबन्ति स्म । १० मिह ।
 ११ जागरूका । १२ वा । १३ नयन्ति स्म । १४ वायुवन्नि परिग्रहा इत्यर्थः । १५ अत्रातुका ।
 १६ निष्पानमाहागा । १७ अपनार्य ।

अदीनमनस शान्ता परमोपेक्षयान्विता । मुक्तिसाध्यास्त्रिभिर्गुणा कामभोगेष्वविस्मिता ॥१९५॥
 जिनाशानुगता शश्वत्सत्तातोद्विभमानसा । गमवासंजराभृत्युपरिवतनमीरवा ॥१९६॥
 श्रुतज्ञानदृशो दृष्टपरमार्था विचक्षणः । ज्ञानदीपिकया साक्षाच्चक्रुस्ते पदमक्षरम् ॥१९७॥
 ते चिर भावयन्ति स्म सन्मार्गं मुक्तिसाधनम् । परदत्तविशुद्धान्नभोजिन पाण्यमन्नका ॥१९८॥
 शक्तितामिहसो द्रिष्ट क्रयक्रीतादि लक्षणम् । सूत्रे^१ निषिद्धमाहारं नैच्छ प्राणात्ययेऽपि च ॥१९९॥
 भिक्षां नियतवेलायां गृहपद्वत्यनतिक्रमात् । शुद्धामाददिरे धीरा न निवृत्तौ^२ समाहिता ॥२००॥
 शीतमुष्ण विहृश च स्निग्धं सलवणं न वा । तनुस्थित्यथमाहारमाजहुस्ते^३ गतस्पृहा ॥२०१॥
 अक्षन्नक्षणमात्रं ते प्राणधृत्य^४ विष्यन्तु^५ । धर्माथमव^६ प्राणान् धारयन्ति स्म केवलम् ॥२०२॥
 न नृप्यन्ति स्म ते लघौ^७ व्यधीदक्षाल्यलब्धित । मन्यमानास्तपोलाममधिकं धृतकसमया ॥२०३॥

काय पृथिवीकाय जलकाय, वायुकाय और अग्निकाय इन छह कायके जीवोंकी बड़े यत्न से रक्षा करते थे ॥१९४॥ उन मुनियोका हृदय दीनतासे रहित था वे अत्यन्त शान्त थे परम उपेक्षासे सहित थे मोक्ष प्राप्त करना ही उनका उद्देश्य था, तीन गुप्तियोंके धारक थे और काम भोगोंमें कभी आश्चय नहीं करते थे ॥१९५॥ वे सदा जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाके अनुसार चला करते थे, उनका हृदय ससारसे उदासीन रहा करता था और वे गमम निवास करना, बुढ़ापा और मृत्यु इन तीनोंके परिवतनसे सदा भयभीत रहते थे ॥१९६॥ श्रुतज्ञान ही जिनके नेत्र हैं और जो परमाथको अच्छी तरह जानते हैं ऐसे वे चतुर मुनिराज ज्ञानरूपी दीपिका के द्वारा अविनाशी परमात्मपदका साक्षात्कार करते थे ॥१९७॥ जो दूसरेके द्वारा दिये हुए विशुद्ध अन्नका भोजन करते हैं तथा हाथ ही जिनके पात्र हैं ऐसे वे मुनिराज मोक्षके कारणस्वरूप समीचीन मागका निरन्तर चिन्तन करते रहते थे ॥१९८॥ शक्ति अर्थात् जिसमें ऐसी शक्ति हो जावे कि यह शुद्ध है अथवा अशुद्ध, अभिहृत अर्थात् जो किसी दूसरेके यहाँसे लाया गया हो उद्दिष्ट अर्थात् जो खासकर अपने लिए तैयार किया गया हो और क्रयक्रीत अर्थात् जो कीमत देकर बाजारसे खरीदा गया हो इत्यादि आहार जैन शास्त्रोंमें मुनियोंके लिए निषिद्ध बताया है । वे मुनिराज प्राण जानेपर भी ऐसा निषिद्ध आहार लेनेकी इच्छा नहीं करते थे ॥१९९॥ मुनियोंकी वृत्तिमें सदा सावधान रहनेवाले वे धीर-वीर मुनि घरोंकी पक्तियोंका उल्लंघन न करते हुए निश्चित समयमें शुद्ध भिक्षा ग्रहण करते थे ॥२००॥ जिनकी लालसा नष्ट हो चुकी है ऐसे वे मुनिराज शरीरकी स्थितिके लिए ठण्डा, गरम, रूखा, चिकना, नमक-सहित अथवा बिना नमकका जैसा कुछ प्राप्त होता था वैसा ही आहार ग्रहण करते थे ॥२०१॥ वे मुनि प्राण धारण करनेके लिए अक्षन्नक्षण मात्र ही आहार लते थे और केवल धमसाधन करनेके लिए ही प्राण धारण करते थे । भावाथ — जिस प्रकार गाड़ी ओंगनेके लिए थाड़ी सी चिकनाईकी आवश्यकता होनी है भल ही वह चिकनाई किसी भी पदार्थकी हो इसी प्रकार शरीररूपी गाड़ीको ठीक-ठीक चलानेके लिए कुछ आहारकी आवश्यकता होती है भल ही वह सरम या नीरस कैसा ही हो । अल्प आहार लेकर मुनिराज शरीरको स्थिर रखते हैं और उससे समय धारण कर मोक्षकी प्राप्ति करते हैं वे मुनिराज भी ऐसा ही करते थे ॥२०२॥ वे पापरहित मुनिराज, आहार मिल जानेपर सन्तुष्ट नहीं होते थे और नहीं मिलनेपर तपश्चरण

१ मुक्तिसाध्या अ० प० ३० स० । मुक्तिसाध्या ल० । २ जम । ३ पाणिपालका ४० ल० स० ६ । पाणिपत्रभाजना । ४ स्थूलतण्डुलाद्यनाम्निक दत्त्वा स्वीकृतं कलमीन्नादिक । ५ आत्मानमुद्दिश्य । ६ पणान्त्रिक दत्त्वा स्वीकृतम् । ७ परमागम । ८ निषेधितम् । ९ यस्याचारे । १० आन्दु । ११ प्राणधारणार्थम् । १२ भुञ्जन् स्म । १३ धम निमित्तम् । १४ एते सति ।

स्तुति निन्दा मुग्नं दुःख तथा मान^१ विमाननाम् । सममावेन तेष्वप्यन् सर्वत्र समद्रष्टिन ॥२०४॥
 वाच्यमन्त्रमास्थाप्य चरन्तो गोचराग्रिण । निराग्निं स्नाप्यलाभेन नामज्जन् मौनमगरम् ॥२०५॥
 महोपवासग्लानाणां यतस्ते स्म तनुन्धितौ । तनाप्यशुभमादार नैपिपुर्मनसाऽप्यमी ॥२०६॥
 गोचराग्रगतां योग्यं भुञ्जन्तमविचिन्वितम् । प्रत्याग्याय पुनर्वाग निययुक्ते तपोवनम् ॥२०७॥
 तपस्तापतन्भूततनवोऽपि मुनीन् ॥ अनुवृत्तात्तपोयोगान्न चेलुद्वैतसंगरा ॥२०८॥
 तीव्र तपस्यता^२ तेषां गच्छेत् प्रज्ञाभञ्जकः । प्रतिज्ञा या तु मद्भ्यान्निद्रावशिथिलैव सा ॥२०९॥
 नाभूत्परिपहैर्मज्जन्तेषां चिरमुपोषुषाम् । गता पण्डिता एव भवन्तान् जेतुमक्षमा ॥२१०॥
 तपस्तनूनात्तापाद^३ भूतेषां पण्डितः । निष्ठस्तस्य सुवर्णस्य दीप्तिर्नन्वतिरेकिणी^४ ॥२११॥
 तपोऽस्मिन्तद्वीक्षाज्ञानेऽन्नं शुद्धिं परां दृष्टुं । तप्ताया तनुमपाया शुद्धयन्यान्मा हि हेमवन् ॥२१२॥
 स्वगस्तिस्मात्रदेहान्ते ध्यानशुद्धिं गन्तराम् । सर्वं हि पण्डितेन^५ वाद्यन् गान्मशुद्धये ॥२१३॥
 योगजा मिद्वदस्तेषामणिमाद्रिगुणैश्च । प्रादुर्गमन्विशुद्धं हि तप सते महत्कल्म ॥२१४॥

रूपी अधिक लाभ सनजते हुए विपाद नहीं करते थे ॥२०३॥ सब पदार्थों में समान दृष्टि रखने-
 वाले वे मुनि मुनि, निन्दा मुग्न दुःख तथा मान-अपमान सभीको समान रूपसे देखते थे ॥२०४॥
 वे मुनि मौन धारण करके ईर्यानिमित्तने गमन करते हुए आहारके लिए जाते थे और आहार
 न मिलनेपर भी मौनव्रतकी प्रतिज्ञा भग नहीं करते थे ॥२०५॥ अनेक महोपवास करनेसे
 जिनका शरीर म्लान हो गया है ऐसे वे मुनिराज केवल शरीरकी स्थितिके लिए ही प्रयत्न करते
 थे परन्तु अगुद्ध आहारकी मनसे भी कभी इच्छा नहीं करते थे ॥२०६॥ गोचरीवृत्तिके धारण
 करनेवालोंमें मुख्य वे धीर-वीर मुनिराज शीघ्र ही योग्य अन्नका भोजन कर तथा आगेके लिए
 प्रत्याख्यान कर तपोवनके लिए चले जाते थे ॥२०७॥ यद्यपि तपश्चरणके सन्तापसे उनका
 शरीर कृण हो गया था तथापि दृढप्रतिज्ञाको धारण करनेवाले वे मुनिराज प्रारम्भ किये हुए
 तपसे विराम नहीं लेते थे ॥२०८॥ तीव्र तपस्या करनेवाले उन मुनियोंके शरीरमें यद्यपि
 शिथिलता आ गयी थी तथापि समीचीन ध्यानकी सिद्धिके लिए जो उनकी प्रतिज्ञा थी वह शिथिल
 नहीं हुई थी ॥२०९॥ चिरकाल तक उपवास करनेवाले उन मुनियोंका परीषहोके द्वारा
 पराजय नहीं हो सका था बल्कि परीषह ही उन्हें जीतनेके लिए अस्मर्थ होकर स्वयं पराजय-
 को प्राप्त हो गये थे ॥२१०॥ तपस्वरूपी अग्निके सन्तापसे उनके शरीरकी कान्ति बहुत ही
 उत्कृष्ट हो गयी थी सो ठीक ही है क्योंकि तपे हुए सुवर्णकी दीप्ति बढ़ ही जाती है ॥२११॥
 तपश्चरणरूपी अग्निसे तप्त होकर जिनके शरीर अतिशय देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसे वे मुनि-
 राज अन्तरगकी परम विशुद्धिको धारण कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि शरीररूपी मूसा
 (साँचा) तपाये जानेपर आत्मा सुवर्णके समान शुद्ध हो ही जाती है ॥२१२॥ यद्यपि उनके
 शरीरमें केवल चमड़ा और हड्डी ही रह गयी थी तथापि वे ध्यानकी उत्कृष्ट विशुद्धता धारण
 कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि उपवास आदि समस्त बाह्य साधन केवल आत्मशुद्धिके लिए
 ही हैं ॥२१३॥ योगके प्रभावसे उत्पन्न होनेवाली अणिमा महिमा आदि ऋद्धियाँ उन मुनियों-
 के प्रकट हो गयी थी सो ठीक ही है क्योंकि विशुद्ध तप बहुत बड़े-बड़े फल उत्पन्न करता है ॥२१४॥

१ पूजाम् । २ अवज्ञाम् । ३ मौनित्वम् । ४ गोचार । ५ मौनप्रतिज्ञाम् । ६ इच्छा न चक्षुः ।
 ७ गोचारभिज्ञाया मुखरतां गता । ८ शीघ्रम् । ९ प्रत्याख्यानं गृहीत्वा । १० - नारै-
 नः, १०, ३०, ५०, ६० । ११ दृढप्रतिज्ञा । १२ तपः कुर्वताम् । १३ तपोऽग्निजनितसन्तापात् ।
 १४ न व्यतिरेकिणी ल०, ६० । १५ अनशनादि ।

तपोमय प्रणीतोऽग्निं कमाख्याहुतयोऽभवन् । विधिगास्त^२ सुयज्वानो भन्त्र स्वायमुव वच ॥२१॥
 महाज्वर^३पतिर्देवो वृषभो दक्षिणो दया । फल कामित्तससिद्धिरपवग क्रियावधि^४ ॥२१६॥
 इतामामाधभीमिष्टि^५ममिसधाय तऽञ्जसा । प्राचीवृत्त^६अनूचाना^७स्तपोयज्ञमनुत्तरम् ॥२१७॥
 इयमृमनगाराणा परां सगाय^८ भावनाम् । त तथा^९ निवहन्ति स्म निसर्गोऽय महीयसाम् ॥२१८॥
 किमत्र बहुना धमक्रिया यावत्स्थविष्टुता । तां कृन्तां ते स्वसाचक्रुस्त्यक्तराज्यविक्रिया^{१०} ॥२१९॥

वसन्ततिलकावृत्तम्

इत्थं पुराणपुरुषादधिगम्य बोधिं

तत्तीयमानससर प्रियराजहसा ।

य राज्यभूमिमवधूय^{१३} विधूतमोहा

प्राप्ताजिपुमरतराजमन तुकामा^{१४} ॥२२०॥

ते पौरवा^{१५} मुनिवरा पुरुधैयसारा

धीरानगारचरितेपु^{१६} कृतावधाना ।

योगीश्वरानु^{१७} गतमागमनुप्रपन्ना

श^{१८} नो^{१९} दिशस्त्वरिललोकहितैकताना^{२०} ॥२२१॥

जिसमें तपश्चरण ही संस्कारकी हुई अग्नि थी, कम ही आहुति अर्थात् होम करने योग्य द्रव्य थे विधिविधानको जाननेवाले वे मुनि ही होम करनेवाले थे । श्री जिनेन्द्रदेवके वचन ही मन्त्र थे भगवान् वृषभदेव ही यज्ञके स्वामी थे, दया ही दक्षिणा थी, इच्छित वस्तुकी प्राप्ति होना ही फल था और मोक्षप्राप्त होना ही कार्यकी अन्तिम अवधि थी । इस प्रकार भगवान् ऋषभ देवके द्वारा कहे हुए यज्ञका सकल्प कर उन तपस्वियोंने तपरूपी श्रेष्ठ यज्ञकी प्रवृत्ति चलायी थी ॥२१५-२१७॥ इस तरह वे मुनि, मुनियोंकी उत्कृष्ट भावनाकी प्रतिज्ञा कर उसका अच्छी तरह निर्वाह करते थे सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंका यह स्वभाव ही है ॥२१८॥ इस विषयम बहुत कहनेसे क्या लाभ है उन सब मुनियोने राज्यअवस्थामें होनेवाला समस्त विकार भावोंको छोड़कर अनादि कालसे जितनी भी वास्तविक क्रियाएँ चली आती थी उन सबको अपने अधीन कर लिया था ॥२१९॥

इस प्रकार पुराणपुरुष भगवान् आदिनाथसे रत्नत्रयकी प्राप्ति कर जो उनके तीर्थरूपी मानससरोवरके प्रिय राजहंस हुए थे, जिन्होंने राज्यभूमिका परित्याग कर सत्र प्रकार का मोह छोड़ दिया था जो भरतराजको नमस्कार नहीं करनेकी इच्छासे ही दीक्षित हुए थे उत्कृष्ट धैर्य ही जिनका बल था, जो धीर-वीर मुनियोंके आचरण करनेम सदा सावधान रहते थे जो योगिराज भगवान् वृषभदेवके द्वारा अंगीकार किये हुए मागका पालन करते थे और जो

१ मंष्टृताग्नि 'प्रणीत मंष्टृनानल इत्यभिधानान् । २ तपोधना । ३ महायज्ञ । ४ होमाते याचकाग्नीना देयद्रव्यम् । ५ क्रियावसान । ६ ऋषभसंवधिनीम् । ७ यजनम् । ८ वधू । ९ प्रवचन माङ्गे अधीनित । अनुधान प्रवचन साङ्गे-गोती इत्यभिधानान् । १ प्रतिज्ञा कृत्वा । ११ गंवहन्ति स्म त० ल । १२ त्यक्तराजमभूद्विकारा । १३ त्यक्तव्यय । १४ नमस्कार न वतुकामा । १५ पुरो मन्त्रिण । १६ यथाचारम् । १७ अंगीकृत्य । १८ मुग्धम् । १९ वा प० स ल० । न अस्मान् । २ जनहितप्रयवत्तम् ।

आर्द्रलविक्रीडितम्

नन्वा विश्वसृज चराचरगुरु देव 'निर्वाणाचिंत

नान्यस्य प्रणति व्रजाम इति ये दीक्षा परा सश्रिता ।

ते न यन्तु तपोविभूतिमुचिता स्त्रीकुन्य मुक्तिश्रिया

वद्वेच्छावृषभान्मजा जिनजुषामं ग्रेमराः श्रेयसे ॥२२२॥

म श्रीमान् भरतेऽरः 'प्रणिधिभिर्यान्प्रहृता नानयन्

सभोक्तु निगिला विभज्य वसुधा मार्व च येनोऽशकत् ।

निर्वाणाय पितृपभ जिनवृष ये शिश्रियु श्रेयसे

ते नां मानधना हरन्तु दुरित निर्दग्धकर्मन्वनाः ॥२२३॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे

भरतराजानुजदीक्षावर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३४॥

□

समस्त लोकका हित करनेवाले थे ऐसे वे भगवान् वृषभदेवके पुत्र तुम सबका कल्याण करे ॥२२०-२२१॥ तस और स्थावर जीवोंके गुरु तथा इन्द्रोके द्वारा पूज्य भगवान् वृषभदेवको नमस्कार कर अब हम किसी दूसरेको प्रणाम नहीं करेंगे ऐसा विचार कर जिन्होंने उत्कृष्ट दीक्षा धारण की थी, जिन्होंने योग्य तपश्चरणरूपी विभूतिको स्वीकार कर मोक्षरूपी लक्ष्मीके प्रति अपनी इच्छा प्रकट की थी और जिनेन्द्र भगवान्की सेवा करनेवालोंमे सबसे मुख्य हैं ऐसे भगवान् वृषभदेवके पुत्र हम सबके कल्याणके लिए हो ॥२२२॥ वह प्रसिद्ध श्रीमान् भरत अपने दूतोंके द्वारा जिन्हे नम्रता प्राप्त नहीं करा सका और न विभाग कर जिनके साथ समस्त पृथिवीका उपभोग ही कर सका तथा जिन्होंने निर्वाणके लिए अपने पिता श्री जिनेन्द्रदेवका आश्रय लिया ऐसे अभिमानरूपी धनको धारण करनेवाले और कर्मरूपी ईधनको जलानेवाले वे मुनिराज हम सब लोगोंके पापोंका नाश करे ॥२२३॥

इस प्रकार आर्पणामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण महापुराण

मग्नहके भाषानुवादमे भरतराजके छोटे भाइयोंकी दीक्षाका वर्णन

करनेवाला चौतीसवां पर्व समाप्त हुआ ।

□

१ इन्द्र । २ जिन जुपन्ते सेवन्त इति जिनजुष तेषाम् । ३ चरे । 'प्रणिधि प्रार्थने चरे' इत्यभिधानान् ।
४ नमर्षो नाभूत् । ५ आश्रयन्ति स्म ।

पञ्चत्रिंशत्तम पर्व

अथ चक्रधरस्यासीत् किञ्चित् चित्ताकुल मन । दोर्बलिन्यनुनेतव्य^१ यूनि दोदपशालिनि ॥१॥
 अहो भ्रातृगणोऽस्माकं नामिनन्दति^२ नन्दयुम् । सनामिस्वादयभ्यस्व मयमानोऽयमामन^३ ॥२॥
 अवध्य^४ शतमित्यास्था नूनं भ्रातृशतस्य म । यत् प्रणामविमुख गतवच्च^५ प्रतीपताम् ॥३॥
 न तथाऽस्मादृशां खणे भवत्यप्रणते द्विपि । दुर्गवित्तं यथा शक्तिवर्गे न्तर्गेहवर्तिनि ॥४॥
 मुखैरनिष्टवाग्बद्धिदापितैरतिभूमिता । दहन्त्यलातवच्च स्वा^६ प्रातिकूल्यानिलरिता ॥५॥
 प्रतापवृत्तय^७ काम सन्तु बान्य कुमारका । वास्यात् प्रभृति यऽस्माभि स्वतन्म्यणापलालिता ॥६॥
 युवा तु दोबली प्राज्ञ क्रमज्ञ प्रश्रयी^८ पटु । कथं नाम गतोऽस्मासु चिक्रिया^९ सुजनोऽपि सत् ॥७॥
 कथं च सोऽनुनेतव्या^{१०} बली मानधनोऽधुना । जयाङ्ग यस्य दोषं श्लाघ्यते रणमूढनि ॥८॥
 सोऽयं भुजबली बाहुबलशाली मदोद्धत । महानिव गजो माघन् दुप्रहोऽनुनयैर्विना ॥९॥
 न स सामान्यसदृशं प्रह्लासवति दुमदी । प्रहो दुष्ट इवाविष्टो^{११} मन्त्रविद्याचणैर्विना^{१२} ॥१०॥

अथानन्तर भुजाओके गर्वसे शोभायमान युवा बाहुबलीको वश करनेके लिए चक्रवर्ती का मन कुछ चित्तासे आकुल हुआ ॥१॥ वह विचारने लगा कि यह हमारे भाइयोंका समूह एक ही कुलमें उत्पन्न होनेसे अपने-आपको अवध्य मानता हुआ हमारे आनन्दका अभिनन्दन नहीं करता है अर्थात् हमारे आनन्द-वैभवसे ईर्ष्या रखता है ॥२॥ हमारे भाइयोंके समूहका यह विश्वास है कि हम सा भाई अवध्य ह इसीलिए ये प्रणाम करनेसे विमुख होकर मेरे शत्रु हो रहे ह ॥३॥ किसी शत्रुके प्रणाम न करनेपर मुझे बसा खेद नहीं होता जैसा कि घरके भीतर रहनेवाल मिथ्याभिमानो भाइयोंके प्रणाम नहीं करनेसे हो रहा है ॥४॥ अनिष्ट वचन रूपी अग्निसे उद्दीपित हुए मुखोंसे जो अत्यन्त घूमसहित हो रहे हैं और जो प्रतिकूलतारूपी वायुसे प्रेरित हो रहे ह ऐसे ये मेरे निजी भाई अलातचक्रकी तरह मुझे जला रहे हैं ॥५॥ जिन्हें हमने बालकपनसे ही स्वतन्त्रतापूर्वक खिला पिलाकर बड़ा किया है ऐसे अन्य कुमार यदि मेरे विरुद्ध आचरण करनेवाले ह तो खुशीसे हों परन्तु बाहुबली तरुण बुद्धिमान् परिपाटी को जाननेवाला, विनयी, चतुर और सज्जन होकर भी मेरे विषयम विकारको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥६-७॥ जो अतिशय बलवान् है, मानरूपी घनसे युक्त है, और विजयका अग स्वरूप जिसकी भुजाआवा बल युद्धक अग्रभागमें बड़ा प्रणसनीय गिना जाता है ऐसे इस बाहुबलीको इस समय किस प्रकार अपने अनुकूल बनाना चाहिए ॥८॥ जो भुजाओके बलसे शोभायमान है और अभिमानरूपी मदसे उद्धत हो रहा है ऐसा यह बाहुबली किसी मदोद्धत बड़े हाथीके समान अनुनय अथान् शान्तिसूचक कोमल वचनोंके बिना वश नहीं हो सकता ॥९॥ यह अह्वारी बाहुबली सामान्य सद्गतासे वश नहीं हो सकता क्याकि शरीरम घुसा हुआ दुष्ट पिशाच

१ बाहुबलिकुमार । २ वशीकृतु योग्य सति । ३ नामिनन्दयति । ४ आनन्दम । ५ भ्रातृगण । ६ बहुजन एकवचनपणावच्छेद इति बुद्ध्या । ७ भ्रातृगणस्य प० ४ द । ८ दस्मात् कारणान् । ९ प्राप्तम् । १० प्रतिकूलत्वम् । ११ बाधवा । १२ प्रतिकूलवृत्तता । १३ विनयवान् । १४ विकारम् । १५ स्वीकार्य । १६ प्रवर्तित । १७ प्रवृत्त । १८ मयैरित्ययम् ।

शेषक्षत्रिययूनां च तस्य चास्यन्तर^१ महत् । सृगमामान्यमानार्थैर्वन्तु^३ किं प्रस्यते हरिः ॥११॥

मोऽभेद्यो नीतिचुञ्चुवाद् दण्ड्याः यो न विवर्था । नैष मामप्रयोगस्य विषयो विकृताशयः ॥१२॥

ज्वलन्त्येव स तेजस्वी स्नेहंनोपवृत्तोऽपि यत्नः । यत्नाहुतिप्रमेयेन यथेष्टान्निमग्नानिलः^५ ॥१३॥

स्वभावपरूपे चास्मिन् प्रयुक्तं माम नार्थकृतं । वपुषि द्विरदस्येव योजितं त्वन्यमोषधम् ॥१४॥

प्रायो व्याख्यात एवास्य भावः शेषः कुमारैः । 'महाजात्रिमुर्गम्यन्तर्गम्यभोगंनोन्मुखं'^६ ॥१५॥

भूयोऽप्यनुनयस्य परीक्षित्यामहे मतम् । नयाप्यप्रणने नस्मिन् विषये चिन्त्यमुनयम् ॥१६॥

जातिव्याजनिगूढान्तर्विक्रियो^७ निष्प्रतिक्रियः । सोऽन्तर्ग्रहोऽप्यनो वदिरियाजेय दण्डेन कुलम्^८ ॥१७॥

अन्तःप्रकृतिजः^९ कोपो विधाताय प्रभोमनः । तन्नाग्याग्रमवदृजन्मा वदिर्यया गिरः ॥१८॥

तदाशु प्रतिकर्तव्यं स बली वक्रता श्रितः । ऋते ग्रह इवामुष्मिन् प्रशान्ते शान्तिरेव न ॥१९॥

इति निश्चित्य कार्यज दत्त मन्त्रविशारदम् । तन्प्रान्त प्राणिनाञ्चरानि नृप्राणतयाऽन्विनम्^{१०} ॥२०॥

मन्त्रविद्यामे चतुर पुरुषोके विना वश नहीं हो सकता ॥१०॥ शेष क्षत्रिय य्वाओमे और वाहुवलीमे बड़ा भारी अन्तर है, माधारण हृग्णि यदि पाशमे पकट लिया जाता है तो क्या उससे सिंह भी पकड़ा जा सकता है ? अर्थात् नहीं । भावार्थ—हृग्णि और सिंहमे जिनना अन्तर है उतना ही अन्तर अन्य कुमारो तथा वाहुवलीमे है ॥११॥ वह नीनिमे चतुर होनेमे अभेद्य है, अर्थात् फोड़ा नहीं जा सकता, पराक्रमी है इसलिए युद्धमे भी वश नहीं किया जा सकता और उसका आशय अत्यन्त विकारयुक्त हो रहा है इसलिए उसके साथ शान्तिका भी प्रयोग नहीं किया जा सकता । भावार्थ—उसके साथ भेद, दण्ड और माम तीनों ही उपायोगे काम लेना व्यर्थ है ॥१२॥ जिस प्रकार यज्ञकी अग्नि धोकी आहुति पडनेसे और भी अधिक प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार वह तेजस्वी वाहुवली स्नेह अर्थात् प्रेमसे उपवृत्त होकर और भी अधिक प्रज्वलित हो रहा है—क्रोधित हो रहा है ॥१३॥ जिस प्रकार हाथीके शरीरपर लगायी हुई चमड़ाको कोमल करनेवाली ओषधि कुछ काम नहीं करती उसी प्रकार स्वभावसे ही कठोर रहनेवाले इस वाहुवलीके विषयमे साम उपायका प्रयोग करना भी कुछ काम नहीं देगा ॥१४॥ जो मेरी आज्ञासे विमुख है, जिन्होंने राज्यभोग छोड़ दिये हैं और जो वनमे जानेके लिए उन्मुख हैं ऐसे वाकी समस्त राजकुमारोने इसका अभिप्राय प्रायः प्रकट ही कर दिया है ॥१५॥ यद्यपि यह सब है तथापि फिर भी कोमल वचनोके द्वारा उसकी परीक्षा करोगे । यदि ऐसा करनेपर भी नम्रीभूत नहीं हुआ तो फिर आगे क्या करना चाहिए इसका विचार करना चाहिए ॥१६॥ भाईपनेके कपटसे जिसके अन्तरगमे विकार छिपा हुआ है और जिसका कोई प्रतिकार नहीं है ऐसा यह वाहुवली घरके भीतर उठी हुई अग्निके समान समस्त कुलको भस्म कर देगा ॥१७॥ जिस प्रकार वृक्षोकी शाखाओके अग्रभागकी राडसे उत्पन्न हुई अग्नि पर्वतका विधात करनेवाली होती है उसी प्रकार भाई आदि अन्तरग प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ प्रकोप राजाका विधात करनेवाला होता है ॥१८॥ यह बलवान् वाहुवली इस समय प्रतिकूलताको प्राप्त हो रहा है इसलिए इसका शीघ्र ही प्रतिकार करना चाहिए क्योंकि क्रूर ग्रहके समान इसके शान्त हो जानेपर ही मुझे शान्ति हो सकती है ॥१९॥ ऐसा निश्चय कर चक्रवर्तीने कार्यको जाननेवाले, मन्त्र करनेमे चतुर तथा निःसृष्टार्थतासे सहित

१ भेद । 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्द्विभेदतादर्थ्यं' इत्यभिधानात् । २ सामान्य कृत्वा । ३ जाले । 'वानाय पुमि जाल स्यात्' इत्यभिधानात् । ४ उज्जामि । ५ कार्यकारी न । ६ त्वचे हितम् । ७ मम शानम् । ८ वनाभिमुख । ९ अभिप्राय । १० अन्तर्गूढविकार । ११ गृह गोत्र च । १२ स्ववर्गो जात । १३ असद्वृत् नपादितप्रयोजनतया ।

उचित^१ युग्ममाख्यो वयसा नातिकर्कशः । अनुदत्तन वेपेण प्रतस्थे स तदन्तिकम् ॥२१॥
 आत्मनेव द्वितीयन स्निग्धेभानुगतो द्रुतम् । निजानुजीविलोकेन^२ हस्तशम्भल^३ बाह्विना ॥२२॥
 सोऽन्वी^४ वक्ति चद्रवमह द्रूयामकथन^५ । निगूढं यदि स द्रूयाद् विरह^६ विग्रहे घटे^७ ॥२३॥
 सधि च पणव^८ च कुर्यात् सोऽन्तरमव न । विक्रम्य^९ क्षिप्रमेष्ट्यामि^{१०} विजिगीषावसगत^{११} ॥२४॥
 गुणयन्निति सपत्तिविपत्ती स्वान्यपक्षयो । स्वय निगूढमन्त्रवादिनिर्मोहोऽन्यमन्त्रिभि ॥२५॥
 मन्त्रभदमयाद् गढ स्वपक्षे^{१२} प्रयाणके । युद्धापसारभूमीश्च^{१३} स पश्यन् दूरमत्यगात्^{१४} ॥२६॥
 क्रमेण देशान् सि^{१५} दूश्च^{१६} देशसर्षीश्च^{१७} सोऽतिवन्^{१८} । प्रापत् सत्थ्यातराग्रैस्तत् पुर पोदनसाह्वयम् ॥२७॥
 बहि पुरमथासाध रम्या सस्यवतीमुख । पक्षशाखिवनोद्देशान् स पश्यन् प्राप^{१९} द्युम् ॥२८॥
 पश्यन् स्तम्बकरिस्तम्बान्^{२०} प्रभूतफल^{२१} शाखिन । कृतारक्षान् जनैयसात् स मने स्वार्थिन^{२२} जनम् ॥२९॥
 सकुटुम्बिभि^{२३} रक्षात्रै^{२४} नृचक्षिरभिनन्दितान् । केदारलाव^{२५} सघर्षत्^{२६} यथोषान्मयशामयत्^{२७} ॥३०॥

दूतको बाहुबलीके समीप भेजा । भावाय-जिस दूतके ऊपर काय सिद्ध करनेका सब भार सौंप दिया जाता है वह नि सप्ताथ दूत कहलाता है । यह दूत स्वामीके उद्देश्यकी रक्षा करता हुआ प्रसगानुसार काय करता है । चक्रवर्ती भरतने ऐसा ही दूत बाहुबलीके पास भेजा था ॥२०॥ जो उमरमें न तो बहुत छोटा था और न बहुत बड़ा ही था ऐसा वह दूत अपने योग्य रथपर सवार होकर नम्रताके वेषसे बाहुबलीके समीप चला ॥२१॥ जिसने मागमें काम आने वाली भोजन आदिकी समस्त सामग्री अपने साथ ले रखी है और जो प्रेम करनेवाला है ऐसे अपने ही समान एक सेवकसे अनुगत होकर वह दूत वहाँसे शीघ्र ही चला ॥२२॥ वह दूत मागमें विचार करता जाता था कि यदि वह अनुकूल बोलेगा तो मैं भी अपनी प्रशंसा किये बिना ही अनुकूल बोलूँगा और यदि वह विरुद्ध होकर युद्धकी बात करेगा तो मैं युद्ध नहीं होनेके लिए उद्योग करूँगा ॥२३॥ यदि वह सधि अथवा पणवच (कुछ भेंट देना आदि) करना चाहेगा तो मेरा यह अंतरंग ही है अर्थात् मैं भी यही चाहता हूँ, इसके सिवाय यदि वह चक्रवर्तीको जीतनेकी इच्छा करेगा तो मैं भी कुछ पराक्रम दिखाकर शीघ्र वापस लौट आऊँगा ॥२४॥ इस प्रकार जो अपने पक्षकी सम्पत्ति और दूसरेके पक्षकी विपत्तिका विचार करता जाता था, जो अपने मन्त्रको छिपाकर रखनेसे दूसरे मन्त्रियोंके द्वारा कभी फोड़ा नहीं जा सकता था और जो मन्त्रभेदके डरसे पडावपर किसी एकान्त स्थानमें गुप्त रीतिसे शयन करता था ऐसा वह दूत युद्ध करने तथा उससे निकलनेकी भूमियोंको देखता हुआ बहुत दूर निकल गया ॥२५-२६॥ क्रम क्रमसे अनेक देश, नदी और देशोकी सीमाओका उल्लंघन करता हुआ वह दूत बाहुबली के पोदनपुर नामक नगरमें जा पहुँचा ॥२७॥ नगरके बाहर धानोसे युक्त मनोहर पृथिवी को पाँकर और पवे हुए चावलोके खेताको देखता हुआ वह दूत बहुत ही आनन्दको प्राप्त हुआ था ॥२८॥ जो बहुत-से फलोसे शोभायमान है और किसानोके द्वारा बड़े यत्नसे जिनकी रक्षा की जा रही है ऐस धानके गुच्छाको दसते हुए दूतने मनुष्याको बड़ा स्वार्थी समझा था ॥२९॥ जो खेताको देखकर आनन्दसे नाच रहे हैं और खेत काटनेके लिए जिन्होंने हसिया ऊँचे उठा रखे

१ बाहनम् । २ सव स्थाद् बाहन धान युग्म पत्र च धोरणम् इत्यभिधानान् । ३ अनुवरजनम् । ४ पाथय । ५ अनुवृत्तम् । ६ अनुवृत्तम् । ७ अदण्डमानम् । - मन्त्र-जन सः । ८ कलहं कृत्वा । ९ नागम् । १० कर्गम् । ११ निगूढप्रियम् । १२ प्राप्नोतिमिव । १३ विक्रमं कृत्वा । १४ आगच्छामि । १५ मधि न गत मति । १६ पशान् । १७ यथापसारणायाम्भूमि । १८ द्रूयमानं ल० प० अ० स० । १९ नने । २० देश साम्न । २१ अनात्र मन्त्रम् । २२ आनन्दम् । २३ बाह्विगुच्छान् । २४ धार्य बाहि स्तम्बकरि स्तम्बा गुच्छान्गान्ति । २५ इत्यभिधानान् । २६ व न । २७ निजप्रयोजनवत्तम् । २८ द्रूयावर्त्त । २९ उन्नतलवित्रे । ३० एतन् । ३१ समम् । ३२ अष्टान् ।

कचिच्छुकमुखाकृष्टकणाः^१ कणिशमञ्जरी । शालिवन्त्रेपु^२ सोऽपश्यद् विटमुक्ता इव स्त्रियः ॥३१॥
 सुगन्धिकलमामोदमंवादि^३ श्वर्मितानिलैः । वामयन्तीर्दिशः शालिकणिशैरवतमिता ॥३२॥
 पीनस्तनतटोत्सगगलद्धर्मांशुविन्दुभिः । मुक्तालकारजा लक्ष्मी घट्यन्तीर्निजोग्मि ॥३३॥
 मरजोऽञ्जरजःकीर्णसामन्तरुचिरैः कचैः । चूडामात्रधर्ता स्वैरग्रन्थितान्पलटामकैः ॥३४॥
 दधतीरातपह्वान्तमुखपर्यन्तसंगिनीः । लावण्यस्येव कणिमाः श्रमघमांशुविप्रुप ॥३५॥
 शुकान् शुकच्छदच्छायैरुचिराङ्गीस्तनोशुकैः । छोट्कुर्वन्तीः कलक्काण सोऽपश्यच्छालिगोपिका ॥३६॥
 श्रमघात्रकुटीयन्त्रचीत्कारैरिक्षुवाटकान् । फृक्कुर्वत इवाट्टाक्षीदतिपीडामयेन म ॥३७॥
 उपक्षेत्रं^४ च गोधेर्नर्महोधोभरमन्थरा^५ । वात्पकेनोत्सुका स्तन्य^६ क्षरतीनिचत्राय^७ म ॥३८॥
 इति स्म्यान् पुरस्यास्य सीमान्तान् म विलोकयन् । मेने कृतार्थमात्मान लब्धतद्गनोन्मवम् ॥३९॥
 उपगल्यभुवः^८ कुल्याप्रणालीप्रसूतोदकाः । शालीक्षुजीरकश्रेत्रैर्वृतास्तस्य^९ मनोऽहरन् ॥४०॥
 वापीकूपतडागैश्च सारामैरम्बुजाकरैः । पुरस्याम्य बहिर्देशाम्नेनादृश्यन्त हारिणः ॥४१॥
 पुरगोपुरमुलङ्घ्य स निचायन् वणिक्पथान् । तत्र^{१०} पूगीकृतान् मेने रत्नरागोन्निर्वीनिव ॥४२॥

है ऐसे कुटुम्बसहित किसानोके द्वारा प्रशसनीय, खेत काटनेके सघर्षके लिए वजती हुई तुरईके गव्दोको भी वह दूत सुन रहा था ॥३०॥ कहीं धानके खेतोमें वह दूत जिनके कुछ दाने तोताओं ने अपने मुखसे खींच लिये हैं ऐसी वालोके समूह इस प्रकार देखता था मानो विट पुस्पोंके द्वारा भोगी हुई स्त्रियाँ ही हो ॥३१॥ जो सुगन्धित धानको सुगन्धिके समान मुवासित अपनी स्वासकी वायुसे दगो दिशाओको सुगन्धित कर रही थी, जिन्होंने धानकी वालोसे अपने कानोंके आभूषण बनाये थे, जो अपने वक्ष स्थलपर स्थूल स्तनतटके समीपमें गिरती हुई पसीनेकी बूंदोंसे मोतियोंके अलंकारसे उत्पन्न होनेवाली शोभाको धारण कर रही थी, जो परागसहित कमलोकी रजसे भरे हुए माँगसे सुन्दर तथा अच्छी तरह गुँथी हुई नीलकमलोकी मालाओंसे सुशोभित केशोंसे चोटियाँ बाँधे हुई थी, जो घामसे दु खी हुए मुखपर लगी हुई सौन्दर्यके छोटे-छोटे टुकड़ोंके समान पसीनेकी बूंदोंको धारण कर रही थी, जिनके शरीर तोतेके पखोंके समान कान्तिवाली-हरी-हरी चोलियोंसे सुशोभित हो रहे थे, और जो मनोहर गब्द करती हुई छो-छो करके तोतोको उडा रही थी ऐसी धानकी रक्षा करनेवाली स्त्रियाँ उस दूतने देखी ॥३२-३६॥ जो चलते हुए कोल्हूओंके चीत्कार शब्दोंके बहाने अत्यन्त पीडासे मानो रो ही रहे थे ऐसे ईखके खेत उस दूतने देखे ॥३७॥ खेतोंके समीप ही, बड़े भारी स्तनके भारसे जो धीरे-धीरे चल रही हैं, जो बछड़ोंके समूहसे उत्कण्ठित हो रही हैं और जो दूध झरा रही हैं ऐसी नवीन प्रसूता गायें भी उसने देखी ॥३८॥ इस प्रकार इस नगरके मनोहर सीमाप्रदेशोंको देखता हुआ और उन्हें देखकर आनन्द प्राप्त करता हुआ वह दूत अपने आपको कृतार्थ मानने लगा ॥३९॥ जिनके चारो ओर नहरकी नालियोंसे पानी फैला हुआ है और जो धान ईख और जीरेके खेतोंसे घिरी हुई हैं ऐसी उस नगरके बाहरकी पृथिवियाँ उस दूतका मन हरण कर रही थी ॥४०॥ वावडी, कुएँ, तालाब, बगीचे और कमलोंके समूहोंसे उस नगरके बाहरके प्रदेश उस दूतको बहुत ही मनोहर दिखाई दे रहे थे ॥४१॥ नगरके गोपुरद्वारको

१ घान्याशा । २ केदारपु । ३ परिस्पधि । ४ उच्छ्वास । ५ शिखाम् । 'शिखा चूडा केशपाश' इत्यभिवानात् । ६ इक्षुयन्त्रगृह । ७ क्षेत्रसमीपे । ८ गोनवसूतिका । 'वेनु स्यान्नवप्रसूतिका' इत्यभिधानात् । ९ महापीनभारमन्दगमना । १० क्षीरम् । ११ ददर्श । 'चायम् पूजानिशामनयो' । १२ ग्रामान्तभूमि । 'ग्रामान्तमुपशल्य स्याद्' इत्यभिधानात् । १३ दूतस्य । १४ वृन्दोक्तान् । 'पूग त्रमुकवृन्दयो' इत्यभिधानात् । पुञ्जीकृतानित्यर्थ । पुञ्जीकृतान् ल० । पूगकृतान् अ०, प०, म०, इ० ।

नृपोपायनवाजीमलालामदज्जलविलम् । कृतच्छन्मिषालोक्य सोऽभ्यनन्दकृपाङ्गणम् ॥४३॥

स निवेदितवृत्तान्तो महादौवारपालकै । नृप नृपासनासीनमुपासी^३ दद वचोहर ॥४४॥

पृथुवक्षर्ण^४ ट तुङ्गमुकुटोदग्रशृङ्गकम् । जयलक्ष्मीविलासिन्या क्रीडाशैलमिवैककम् ॥४५॥

ललाटपट्टमारुढः पट्टार्धं सुविस्तृतम् । जयधिय इवोद्गाहपट्ट दधतमुच्चकै ॥४६॥

दधान तुलिताशेषराज्यक्यशोधनम् । तुलादण्डमिवोद्वृद्धमूमर भुजदण्डकम् ॥४७॥

मुखन पङ्कजच्छाया नेत्राभ्यामुत्पलश्रियम् । दधानमधना^५ सङ्घविजातिमञ्जलाशयम्^६ ॥४८॥

विभ्राणमतिविस्तीर्ण मनो वक्षश्च यद्वृथम् । वाग्देवीकमलावत्योगत नित्यावकाशताम् ॥४९॥

रक्षावृत्तिपरिक्षेप गुणग्राम^७ महाफलम् । निवेशयन्तमात्माङ्गे मन सु च महीयसाम् ॥५०॥

स्फुरन्मरणोद्योतच्छधना निखिला विश । प्रतापचलनेनेव लिम्पन्तमलघोयसा ॥५१॥

मुखन चन्द्रकान्तेन^८ पद्मरागेण^९ चारुणा । चरणेन विराजन्त वज्रसारेण^{१०} वज्रमणा ॥५२॥

उल्लघन कर बाजारके मार्गों को देखता हुआ वह दूत वहाँ इकट्ठी की हुई रत्नोंकी राशियोंको निधियोंके समान मानने लगा ॥४२॥ जो राजाको भेंटम आये हुए घोड़े और हाथियोंकी लार तथा मदजलसे कीचड़सहित हो रहा था और उससे ऐसा मालूम होता था मानो उसपर जल ही छीटा गया हो ऐसे राजाके आँगनको देखकर वह दूत बहुत ही प्रसन्न हो रहा था ॥४३॥ जिसने मुख्य मुख्य द्वारपालोंके द्वारा अपना वृत्तान्त कहला भेजा है ऐसा वह दूत राजसिंहासन पर बठे हुए महाराज बाहुबलीके समीप जा पहुँचा ॥४४॥ वहाँ जाकर उसने महाराज बाहुबलीको देखा उनका वक्ष स्थल किनारेके समान चौड़ा था, वे स्वयं ऊँचे थे और उनका मुकुट शिखरके समान उन्नत था इसलिए वे विजयलक्ष्मीरूपी स्त्रीके क्रीडा करनेके लिए एक अद्वितीय पवतके समान जान पड़ते थे—जिसपर यह बंधा हुआ है ऐसे लम्बे-चौड़े ललाटपट्टको धारण करते हुए वे ऐसे जान पड़ते थे मानो विजयलक्ष्मीका उत्कृष्ट विवाहपट्ट ही धारण कर रहे हों । वे बाहुबली स्वामी, जिसने समस्त राजाओंका यशरूपी धन तोल लिया है और जिसने समस्त पृथिवीका भार उठा रखा है ऐसे तराजूके दण्डके समान भुजदण्डको धारण कर रहे थे—यद्यपि वे मुखसे कमलकी और नेत्रोंसे उत्पलकी शोभा धारण कर रहे थे तथापि उनके समीप न तो विजाति अर्थात् पक्षियोंकी जातियाँ थी और न वे स्वयं जलाशय अर्थात् सरोवर ही थे । भावाथ—इस श्लोकम विरोधाभास अलंकार है इसलिए विरोधका परिहार इस प्रकार करना चाहिए कि वे यद्यपि मुख और नेत्रोंसे कमल तथा उत्पलकी शोभा धारण करते थे तथापि उनके पास विजाति अर्थात् वनसकर लोगोंका निवास नहीं था और न वे स्वयं जलाशय अर्थात् जड़ आशयवाले मूल ही थे । वे बाहुबली जिनपर क्रमसे सरस्वती देवी और लक्ष्मीदेवीका निरन्तर निवास रहता था ऐसे अत्यन्त विस्तृत (उदार और लम्बे चौड़े) मन और वक्ष स्थलको धारण कर रहे थे—वे, प्रजाकी रक्षाके कारण तथा बड़े-बड़े फल देनेवाले गुणोंके समूहको अपने शरीरम धारण कर रहे थे और अन्य महापुरुषोंके मनमें धारण कराते थे—वे अपने देनीप्यमान आभूषणोंकी कातिके छलमे ऐसे जान पड़ते थे मानो अपने विनाल प्रतापरूपी अग्निस समस्त निशाओंको लिप्त ही कर रहे हों । वे चन्द्रकान्त मणिके समान मुखस, पद्मराग मणिके समान सुन्दर चरणोंमे और वज्रके समान सुदृढ़ अपने

१ परानुप्रासमृतीकृत । २ वदमितम् । ३ उपागमत् । ४ सानुम् । ५ अनासन्नहीनजातिम् । ६ पञ्च विजातिम् । ७ अयं बद्धिम् । ८ मत्स्वतोलक्ष्म्या । ९ गुणममृत्म् । निमग (गाँव) भिति ध्वनि । १० चन्द्रवत् चान्तम् । ११ चन्द्रावतिगल्पति ध्वनि । १२ पद्मवत् । पद्मरागरत्ननि ध्वनि । १३ यद्यपि स्थिरावयवम् । वज्रान्तर मारणनि ध्वनि ।

हरिन्समिपमस्ममिर्वक हरिन्त्रिपम् । लोकावष्टम्भमाधानु^१ मृष्टमागेन वेधया^२ ॥५३॥
^३सर्वाङ्गसगत नेत्रो दधान क्षात्रमजितम् । नन^४ नेत्रामयैरेव घटिन पग्माणुभि ॥५४॥
 तमिन्यालोक्रयन् दराद् धाम्न^५ पुञ्जमिवोच्छ्रियम् । चचाल प्रणिधि^६ किञ्चित् प्रणिधाना^७ निधीगितुः ॥५५॥
 प्रणमश्चरणावेभ्य दयद्गनन शिर । यय-फार^८ कुमारेण नानिदरे न्यवेगि म ॥५६॥
 त शामनहर जिगोर्निधिष्टमुचितामने । कुमारे निजगादेति स्मिनाशन विवगाकिरन् ॥५७॥
 चिराच्चक्रधरस्याद्य वय^९ चिन्त्यन्वमागना । मद्र मद्र^{१०} जगत्तुर्वहुचिन्त्यस्य चक्रिण^{११} ॥५८॥
 विश्व^{१२} ज्ञजयोद्योगमद्यापि न समापयन्^{१३} । म कचिद्^{१४} भुभुजा मत्तं^{१५} कुशलं दक्षिणो भुज ॥५९॥
 श्रुता विश्वदिशः मिद्धा जिताश्च निगित्वा नृपाः । कर्तव्यज्ञेयमस्य ह्य स्मिन्नि वद नाम्नि वा ॥६०॥
 इति प्रशान्तमोजस्रि वचःसार मितान्तरम् । वदन् कुमारो दनस्य वचनावसर^{१६} व्यधान ॥६१॥
 क्षयोपाक्रमे वक्तु वचो हारि^{१७} वचोहर । वागव्यवित्र म्पिण्ड्य^{१८} दशयन् दशनागुभि^{१९} ॥६२॥
 स्वध्वच^{२०} समुत्सर्जनेऽस्मिन् कार्यं सुव्यक्तमीक्ष्यते । अमस्कृतोऽपि^{२१} यत्रार्थं प्रत्यक्षयति^{२२} मादश^{२३} ॥६३॥
 वय वचोहरा नाम प्रभो, शामनहारिण, । गुणदोषविचारेषु मन्दान्तच्छन्दवर्तिन^{२४} ॥६४॥

शरीरसे बहुत ही अधिक मुगोभित हो रहे थे । उनकी कान्ति हरे रंगकी थी इसलिए वे ऐसे जान पड़ते थे मानो आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेवके द्वारा लोकको महारा देनेके लिए बनाया हुआ हस्ति मणियोंका एक खम्भा ही हो । समस्त शरीरमें फैले हुए अतिगद्य श्रेष्ठ क्षात्रतेज-को धारण करते हुए महाराज बाहुवली ऐसे जान पड़ने थे मानो तेजस्व परमाणुओंसे ही उनकी रचना हुई हो । जिसकी ज्वाला ऊपरकी ओर उठ रही है ऐसे तेजके पुजके समान महाराज बाहुवलीको दूरसे देखता हुआ वह चक्रवर्तीका दूत अपने ध्यानमें कुछ विचलित-सा हो गया अर्थात् घबड़ा-सा गया ॥४५-५५॥ दूरसे ही झुके हुए शिरको धारण करनेवाले उस दूतने जाकर कुमारके चरणोंमें प्रणाम किया और कुमारने भी उसे सत्कारके साथ अपने समीप ही बैठाया ॥५६॥ कुमार बाहुवली अपने मन्द हास्यकी किरणोंको चारों ओर फैलाते हुए योग्य आसनपर बैठे हुए उस भरतके दूतसे इस प्रकार कहने लगे ॥५७॥ कि आज चक्रवर्ती-ने बहुत दिनमें हम लोगोंका स्मरण किया, हे भद्र, जो समस्त पृथिवीके स्वामी है और जिन्हे बहुत लोगोंकी चिन्ता रहती है ऐसे चक्रवर्तीकी कुशल तो है न ? ॥५८॥ जिसने समस्त क्षात्रियोको जीतनेका उद्योग आज तक भी समाप्त नहीं किया है ऐसे राजाधिराज भरतेश्वर-की वह प्रसिद्ध दाहिनी भुजा कुशल है न ? ॥५९॥ सुना है कि भरतने समस्त दिशाएँ वश कर ली हैं और समस्त राजाओंको जीत लिया है । हे दूत, कहो अब भी उनको कुछ कार्य बाकी रहा है या नहीं ? ॥६०॥ इस प्रकार जो अत्यन्त शान्त है, तेजस्वी है, साररूप है, और जिनमें थोड़े अक्षर हैं ऐसे वचन कहकर कुमारने दूतको कहनेके लिए अवसर दिया ॥६१॥

तदनन्तर दाँतोकी किरणोंसे शब्द और अर्थ दोनोंको मिलाकर दिखलाता हुआ दूत मनोहर वचन कहनेके लिए तैयार हुआ ॥६२॥ वह कहने लगा कि हे प्रभो, आपके इस वचन-रूपी दर्पणमें आगेका कार्य स्पष्ट रूपसे दिखाई देता है क्योंकि उसका अर्थ मुझ-जैसा मूर्ख भी प्रत्यक्ष जान लेता है ॥६३॥ हे नाथ, हम लोग तो दूत हैं केवल स्वामीका समाचार ले जाने-

१ आचारम् । २ आदिब्रह्मणेत्यर्थ । ३ सप्ताङ्ग अथवा सर्वशरीर । ४ इव । ५ वाग्मा तेजसाम् । ६ चर । ७ गुणदोषविचारानुस्मरण प्रणिधानम्, तस्मात् । अभिप्रायादित्यर्थ । ८ चिन्तितु योग्याश्चिन्त्या तेषा भाव चिन्त्यत्वम् । ९ कुशलम् । १० क्षेत्र-इ० । ११ सम्पूर्ण न कुर्वन् । १२ किम् । १३ वचनस्यावसरम् । १४ मनोज्ञम् । १५ पिण्डीकृत्य । १६ दन्तकान्तिभि । १७ तव वाग्दपणे । १८ सत्काररहित । १९ प्रत्यक्ष करोति । २० मद्बुद्धि । २१ चक्रवर्तिन । - छन्दचारिण ल०, द० ।

ततश्चक्रधरेणाय यदादिष्ट^१ प्रियोचितम् । प्रथोऽनृगौरवादेव तद्ग्राह्यं साध्वसाधु वा ॥६५॥
 गुरोवचनमाद्यमधिकल्प्यति^२ या श्रुति । तत्प्रामाण्यदमुष्याज्ञा सविधया त्वयाधुना ॥६६॥
 एष्ट्वारु^३ प्रथमो राज्ञो मरतो मवदग्रज । परिह्रान्ता महा कृत्स्ना यन नामयतोऽभरान् ॥६७॥
 गङ्गाद्वारं समुल्लङ्घ्य यो रथेनाप्रतिष्ठा^४ । चलदाविद्वकलोल^५ मकरोन्मकरालयम् ॥६८॥
 शरभ्याजं प्रतापमि^६ चलयस्य जलेऽम्बुधे । पपी न केवलं चाङ्घ्रिं मानं च त्रिदिशोऽस्मिन् ॥६९॥
 मा नाम प्रणतिं यस्य^७ घ्राजिपुत्रसद कथम् । आकृष्टा शरपाशेन प्राध्वकृत्य^८ गले बलात् ॥७०॥
 शरभ्यमकरोधस्य शरपातो महाम्बुधौ । प्रसम मगधावास क्रान्तद्वादशयोजन ॥७१॥
 विजयाद्वाचले यस्य विजयो घोषितोऽमरै^९ । जयतो विजयाद्देश शरेणामोघपातिना ॥७२॥
 कृतमालादयो द्वा गता यस्य विधेयताम्^{१०} । कृतमस्योभयश्रेणीन^{११} भोगजयवर्णन ॥७३॥
 गुहामुखमप्यन्त^{१२} व्यतीत्य जयसाधनै^{१३} । उत्तरा विजयाद्द्विष्यो^{१४} व्यगाहत ता महीम् ॥७४॥
 म्लेच्छाननिच्छतोऽप्याज्ञा प्रच्छाद्य^{१५} जयसाधनै^{१६} । सनान्या यो जयं प्राप बलादाच्छिद्य^{१७} तद्धनम् ॥७५॥

वाल ह हम लोग सदा स्वामीके अभिप्रायके अनुसार चलते है तथा गुण और दोषोंका विचार करनेमें भी असमर्थ हैं ॥६४॥ इसीलिए हे आय चक्रवर्तीने जो प्रिय और उचित आज्ञा दी है वह अच्छी हो या बुरी, केवल कहनेवालेके गौरवसे ही स्वीकार करने योग्य है ॥६५॥ गुरुके वचन बिना किसी तक-वितर्कके मान लेना चाहिए यह जो शास्त्रका वचन है उसे प्रमाण मानकर इस समय आपको चक्रवर्तीकी आज्ञा स्वीकार कर लेनी चाहिए ॥६६॥ वह भरत इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ है अथवा इक्ष्वाकु अर्थात् भगवान् वपभदेवका पुत्र है राजाओंमें प्रथम है, आपका बड़ा भाई है और इसके सिवाय देवोंसे भी नमस्कार कराते हुए उसने समस्त पृथिवी अपने वश कर ली है ॥६७॥ उसने गंगाद्वारको उल्लङ्घन कर अकेले ही रथपर बैठकर समुद्रको जिसको चंचल लहरें एक दूसरेसे टकरा रही हैं ऐसा कर दिया ॥६८॥ बाणके बहाने से इसकी प्रतापरूपी अग्नि समुद्रके जलमें भी प्रज्वलित रहती है, उस अग्निने केवल समुद्र को ही नहीं पिया है किन्तु देवाका मान भी पी डाला है ॥६९॥ भला, देव लोग उसे कैसे न नमस्कार करगे ? क्योंकि उसने बाणरूपी जालसे गलेमें बाँधकर उन्हें जबरदस्ती अपनी ओर खींच लिया था ॥७०॥ बारह योजन दूर तक जानेवाले उसके बाणने महासागरमें रहनेवाले मागधदेवके निवासस्थानको भी जबरदस्ती अपना निशाना बनाया था ॥७१॥ व्यर्थ न जाने वाल बाणके द्वारा विजयाध पवतके स्वामी विजयाधदेवको जीतनेवाला उस भरतकी विजय घोषणा देवोंने भी की थी ॥७२॥ कृतमाल आदि देव उसकी अधीनता प्राप्त कर चुके हैं और उत्तर दक्षिण दोनों श्रेणियोंके विद्याधरोंने भी उसकी जयघोषणा की है ॥७३॥ जिसका अध वार दूर कर लिया गया है ऐसे गुफाके दरवाजेको अपनी विजयी सेनाके साथ उल्लङ्घन कर उसने विजयाध पवतकी उत्तर दिशाकी भूमिपर भी अपना अधिकार कर लिया है ॥७४॥ म्लेच्छ लोग यद्यपि उसकी आज्ञा नहीं मानना चाहते थे तथापि उसने सेनापतिके द्वारा अपनी

१ उपनेगितम् । २ भेषमकृत्वा । इक्ष्वाको भवान्मान सजात । ४ अमहाय । ५ परस्परताडित । अथवा कुटिल । आविद्ध कुटिलं मुनं बलितं बक्रम इत्यभिधानम् । ६ अगु । माङ्गयोगान्दमाव । ७ बधर्न कृत्वा । प्राप्य बध इति सूत्रेण निर्मज्ञाया तितुस्त्रयाद्दक्षन्यस्त तत्पुरुष इति समास समासे को नञ् प्य नि वशात् प्रत्यय एवादेन । ८ लम्प्यम् । ९ विनयप्राप्तिनाम् । विनयो विनयप्राप्ति इत्यभिधानम् । १० पर्याप्तम् । ११ श्रेणीभागजयवर्णनम् द० इ० । श्रेणिभोगजयवर्णनं ल० । १२ अपमताग्यद्वारं कृत्वा । १३ मवदग्रज । १४ वनानाकृत्यम् ।

कृतोऽभिषेको यस्याराधये-य सुगम्यतमै । यस्याचलेन्द्राद्रेषु स्थलपद्मायित यश ॥७६॥
 स्वार्धः पर्युपायतां^१ य स्पर्धुन्यधिदेवने^२ । वृषभाद्रितटे येन टङ्गोऽर्कीर्णं कृत यश. ॥७७॥
 घटदासीकृता लक्ष्मी. सुराः किरारता गताः । यस्य स्वार्धान्नरत्नस्य निवयः^३ मुच्यते वनम् ॥७८॥
 स यस्य जयमैन्यानि निर्जिन्य निमिला दिश । भ्रमन्ति स्माग्निलाम्बोधितान्तवनभूमिषु ॥७९॥
 त्वामायुष्मन् जगन्मान्यो मानयन्^४ कुशलाशिषा । यमादिशन्ति चक्राङ्गा^५ ययन्नविगजनाम् ॥८०॥
 मदीयं राज्यमाक्रान्तनिखिलद्वीपमागम् । राजतेऽस्मन्प्रियभ्रात्रा न बाहुवलिना विना ॥८१॥
 ता. संपदस्तदैश्वर्यं ते मोगा. य परिच्छद । ये मम वन्धुभिर्भुङ्क्ता^६ मविभक्तमुग्रादयं ॥८२॥
 अन्यच्च नमिताशेषेनसुरासुरखेचरम् । नाधिराज्य विमान्यस्य^७ प्रणामत्रिमुग्रे^८ त्रयि ॥८३॥
 न दुनोति मनस्तीव रिपुरप्रणतस्तथा । वन्धुरप्रणमन् गन्नादृ दुर्विदग्धो यया प्रभुम् ॥८४॥
 "तदुपेत्य प्रणामेन पूज्यतां प्रभुरश्रमा^९ । प्रभुप्रणतिरेवेष्टा प्रसूतिनेनु सपशाम् ॥८५॥
 अवन्ध्यशासनस्यास्य शासनं^{१०} ये विमन्वन्ते । शासनं द्विपतां तेषां चक्रमप्रतिशामनम् ॥८६॥
 प्रचण्डदण्डनिर्घातं निपातपरिगण्डितान् । तदाज्ञागण्डनव्यग्रान् पश्यन्तान्^{११} मण्डलाधिपान् ॥८७॥

सेनासे हराकर और जवरदस्ती उनका धन छीनकर उनपर विजय प्राप्त की है ॥७५॥ अच्छे-
 अच्छे देवोंने आकर उसका अभिषेक किया है और उसका निर्मल यश बड़े-बड़े पर्वतोंके शिखरों-
 पर स्थलकमलोके समान सुशोभित हो रहा है ॥७६॥ गंगा-सिन्धु दोनों नदियोंके देवताओं-
 ने रत्नोंके अर्घों के द्वारा उसकी पूजा की है तथा वृषभाचलके तटपर उसने अपना यश टाकीसे
 उधेरकर लिखा है ॥७७॥ उसने लक्ष्मीको घटदासी अर्थात् पानी भरनेवाली दासीके समान
 किया है, देव उसके सेवक हो रहे हैं, समस्त रत्न उसके स्वाधीन हैं और निधियाँ उमेधन प्रदान
 करती रहती हैं ॥७८॥ और उसकी विजयी सेनाओंने समस्त दिशाओंको जीतकर
 सब समुद्रोंके किनारेके वनोंकी भूमिमें भ्रमण किया है ॥७९॥ हे आयुष्मन्, जगन्मे माननीय
 वही महाराज भरत अपने चक्रवर्तीपनेको प्रसिद्ध करते हुए कल्याण करनेवाले आशीर्वादसे
 आपका सन्मान कर आज्ञा कर रहे हैं ॥८०॥ कि समस्त द्वीप और समुद्रों तक फैला हुआ, यह
 हमारा राज्य हमारे प्रिय भाई बाहुवलीके विना शोभा नहीं देता है ॥८१॥ सम्पत्तियाँ वही
 हैं, ऐश्वर्य वही है, भोग वही है और सामग्री वही है जिसे भाई लोग सुखके उदयको बाँटते हुए
 साथ-साथ उपभोग करें ॥८२॥ दूसरी एक बात यह है कि आपके प्रणाम करनेसे विमुख
 रहनेपर जिसमें समस्त मनुष्य, देव, धरणेन्द्र और विद्याधर नमस्कार करते हैं ऐसा उनका
 चक्रवर्तीपना भी सुशोभित नहीं होता है ॥८३॥ प्रणाम नहीं करनेवाला शत्रु स्वामीके मनको
 उतना अधिक दुखी नहीं करता है जितना कि अपनेको झूठमूठ चतुर माननेवाला और
 अभिमानसे प्रणाम नहीं करनेवाला भाई करता है ॥८४॥ इसलिए आप किसी अपराधकी
 क्षमा नहीं करनेवाले महाराज भरतके समीप जाकर प्रणामके द्वारा उनका सत्कार कीजिए
 क्योंकि स्वामीको प्रणाम करना अनेक सम्पदाओंको उत्पन्न करनेवाला है और यही सबकी
 इष्ट है ॥८५॥ जिसकी आज्ञा कभी व्यर्थ नहीं जाती ऐसे उस भरतकी आज्ञाका जो कोई
 भी उल्लंघन करते हैं उन शत्रुओंका शासन करनेवाला उसका वह चक्ररत्न है जिसपर स्वयं
 किमीका शासन नहीं चल सकता ॥८६॥ आप भरतकी आज्ञाका खण्डन करनेसे व्याकुल
 हुए इन मण्डलाधिपति राजाओंको देखिए जो भयकर दण्डरूपी वज्रके गिरनेसे खण्ड-खण्ड

१ अयुजयताम् । २ गंगासिन्धू देव्यौ । ३ पूजयन् । ४ चक्रिण । ५ तत्कारणात् । ६ आज्ञाम् । ७ अवज्ञा
 कुर्वन्ति । ८ शिक्षकम् । ९ दण्डरत्नाशनि । १० पश्यन्तान् ब०, अ०, प०, द०, स०, इ० ।

'तदस्य द्रुतमायुष्मन् पूर्यास्य मनोरथम् । युवशोरम्भु सांग यात् सगत निलिल जगत् ॥८८॥
 इति तद्वचनस्या^७ त कृतम^८ दस्मितो युवा । धीर वचो गभीरायमाचक्षते विचक्षण ॥८९॥
 साधुः साधुवृत्तत्वं स्वया घटयता प्रभो । वाचस्पत्य तदवष्ट पोषक स्वमतस्य यत् ॥९॥
 साम^९ दशयता नाम भेददण्डौ विशेषत । प्रयुज्जानेन साध्यः^{१०} स्वातन्त्र्यं दर्शितं यथा ॥९१॥
 स्वतन्त्रस्य प्रभो सत्यं स त्वमन्तश्चरश्चर^{११} । अन्यथा कथमवाप्त्य^{१२} यन्क्षयन्तगतं गतम् ॥९२॥
 'निर्मृष्टायतथाऽस्मासु निर्दिष्टस्त्व निधीशिना । विशिष्टोऽसि न वैशिष्ट्यं परममस्पृगीदृशम् ॥९३॥
 अथ खलु खलाचारो यद्वलात्कारदशनम् । स्वगुणोत्कीर्णन दोषोज्जायनं च परशु यत् ॥९४॥
 विवृणोति खलोऽन्येषां दोषान् स्वांश्च गुणान् स्वयम् । सवृणोति च दोषान् स्वान् परकीयान् गुणानपि ॥९५॥
 अनिराकृतसत्तापां सुमनोभि^{१३} समुक्षिताम् । फलहीनां श्रयत्यज्ञ^{१४} खलता^{१५} खलतामिव^{१६} ॥९६॥
 सतामसमतां विष्वगाचितां विरसं फलैः । मध्ये तु खलतामनां खलता लोकतापिनीम् ॥९७॥
 भोप्रदानं^{१७} सामादौ प्रयुक्तमपि बाध्यते । पराम्या भेददण्डाभ्यां व्याप्य^{१८} विप्रतिपेक्षिनि^{१९} ॥९८॥

हो रहे ह ॥८७॥ इसलिए हे दीर्घायु कुमार, आप शीघ्र ही चलकर इसके मनोरथ पूरा कीजिए । आप दोनों भाइयोंके मिलापसे यह समस्त ससार मिलकर रहेगा ॥८८॥ इस प्रकार उस दूतके कह चुकनेके बाद चतुर और जवान बाहुबली कुमार कुछ मन्द मन्द हसकर गम्भीर अर्थसे भरे हुए धीर वीर वचन कहने लगे ॥८९॥ वे बोले कि हे दूत, अपने स्वामी की साधु वृत्तिको प्रकट करते हुए तूने सब सच कहा है क्योंकि जो अपने मतकी पुष्टि करने वाला हो वही कहना ठीक होता है ॥९०॥ साम अर्थात् शान्ति दिखलाते हुए तूने विशपकर भेद आर दण्ड भी दिखला दिये ह तथा उनका प्रयोग करते हुए तूने यह भी बतला दिया कि तू अपना अर्थ सिद्ध करनेमें कितना स्वतन्त्र है ? ॥९१॥ इस प्रकार कहनेवाला तू सचमुच ही अपने स्वतन्त्र स्वामीका अन्तरंग दूत है, यदि ऐसा न होता तो तू उसके हृदयगत अभिप्रायको कैसे प्रकट कर सकता था ॥९२॥ चक्रवर्तिनि तुझपर समस्त कायभार सौंपकर मेरे पास भेजा है, यद्यपि तू चतुर है तथापि इस प्रकार दूसरेका ममछेदन करना चतुराई नहीं है ॥९३॥ अपनी जबरदस्ती दिखलाना वास्तवमें दुष्टोंका काम है तथा अपने गुणोंका वणन करना और दूसरोम दोष प्रकट करना भी दुष्टोंका ही काम है ॥९४॥ दुष्ट पुरुष, दूसरेके दोष और अपने गुणोंका स्वयं वणन किया करते ह तथा अपने दोष और दूसरेके गुणोंको छिपाते रहते ह ॥९५॥ खलता अर्थात् दुष्टता खलता अर्थात् आकाशकी बेलके समान है क्योंकि जिस प्रकार आकाशकी बेलसे किसीका सन्ताप दूर नहीं होता उसी प्रकार दुष्टतासे किसीका सन्ताप दूर नहीं होता, जिस प्रकार आकाशकी बेल सुमन अर्थात् फूलोंसे शून्य होती है उसी प्रकार दुष्टता भी सुमन अर्थात् विद्वान् पुरुषोंसे शून्य होती है और जिस प्रकार आकाशकी बेल फलरहित होती है उसी प्रकार दुष्टता भी फलरहित होती है अर्थात् उससे किसीका कुछ लाभ नहीं होता ऐसी इस दुष्टताका केवल मूल लोग ही आश्रय रते ह ॥९६॥ जो मज्जन पुरुषाको इष्ट नहीं है जो सब ओरसे विरस अर्थात् नीरस अथवा विद्रव्यरूपी फलाम व्याप्त है तथा लागाको सन्ताप देनेवाली है ऐसी इस खलता-दुष्टताको मैं दु खलता अथान् दु खनी बेल ही समझता हूँ ॥९७॥ यदि न्यायपूर्ण विराध करनेवाला पुरुषके विषय

१ तन वारिजान । २ वच । ३ शान्तिम् । ४ परब्रह्मकरणान्निवोजन । ५ हृदय वनमान । ६ व्यवन करापि । ७ वस्त्रम् । ८ अमङ्गलमपान्निप्रयाजवतया । ९ निवृत्त । १० कृषुम् । शान्तमहृदयम् । ११ श्रयत्यज्ञं स ॥ १२ यन्क्षयन्तम् । १३ आकाशलतामिव । १४ दानमहितम् । १५ व्यापाम्निम् पुरम् । १६ भ्रमणशाल्या विचार गच्छति मति ।

यथा^१ विषयमेवैषामुपायानां नियोजनम् । मित्रं न नष्टिपयां^२ कल्पयति परामयम् ॥१०९॥
 नैकान्तशमनं त्वासं समाश्रितं महोत्तमि^३ । मित्रेऽपि^४ ति जने तते सर्पिर्पाशान्मुयेचनम् ॥११०॥
 उपप्रदानसम्प्रेषं प्रायं^५ मन्ये महोजमि । नमिन्महानदानेऽपि दासिन्याजं पुनः जग ॥१११॥
 लोहस्येवापतसन्त्य मृदुता न मनस्विनः । दण्डोऽप्यनुनयप्राप्ते त्वागते न गृह्णीषि^६ ॥११२॥
 ततो^७ व्यन्यामयन्नेना^८ नुपायाननुपायघिन । स्वयं प्रयोगवगुण्यान मीढन्नेत्र न मादज^९ ॥११३॥

मे पहले कुछ देनेके विधानके साथ सामका प्रयोग किया जाने और बादमें भेद तथा दण्ड उपाय काममें लाये जावे तो उनके द्वारा पहले प्रयोगमें लाया हुआ साम उपाय बाधित हो जाता है ।
 भावार्थ—यदि न्यायवान् विरोधीके लिए पहले कुछ देनेका प्रयोगन देकर साम अर्थात् शान्तिका प्रयोग किया जावे और बादमें उसके लिए भेद तथा दण्डकी धमकी दी जावे तो ऐसा करनेसे उसका पहले प्रयोग किया हुआ साम उपाय व्यर्थ हो जाता है क्योंकि न्यायवान् विरोधी उसकी कूटनीतिको सहज ही समझ जाता है ॥१०८॥ गाम, दाम, दण्ड, भेद इन चारो उपायोका यथायोग्य स्थानमें नियोग करना कायगिट्टिका काग्य है और विपरीत नियोग करना पराभवका कारण है । भावार्थ—जो जिनके योग्य है उनके साथ वही उपाय काममें लानेसे सफलता प्राप्त होनी है और विरुद्ध उपाय काममें लानेमें निश्चय प्राप्त होता है ॥१०९॥ प्रतापगाली पुरुषके साथ साम अर्थात् शान्तिका प्रयोग करना अकान्तरूपमें शान्ति करनेवाला नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रतापगाली मनुष्य मित्रध अर्थात् स्नेही होनेपर भी यदि क्रोधसे उत्तप्त हो जावे तो उसके साथ शान्तिका प्रयोग करना मित्रध अर्थात् चिकने किन्तु गरम धीमे पानी सींचनेके समान है । भावार्थ—जिन प्रकार गरम धीमे पानी डालनेसे वह शान्त नहीं होता बल्कि और भी अधिक चटपटाने लगता है उसी प्रकार क्रोधी मनुष्य शान्तिके व्यवहारसे शान्त नहीं होता बल्कि और भी अधिक बड़बड़ाने लगता है ॥११०॥ इसी प्रकार अतिशय प्रतापगाली पुरुषको कुछ देनेका विधान करना भी मैं नि सार समझता हूँ क्योंकि हजारो समिधाएँ (लकड़ियाँ) देनेपर भी प्रज्वलित अग्नि कैसे शान्त हो सकती है । ॥११०१॥ जिस प्रकार लोहा तपानेसे नरम नहीं होता उसी प्रकार तेजस्वी मनुष्य कष्ट देनेसे नरम नहीं होता इसलिए उसके साथ दण्डका प्रयोग करना निरर्थक है क्योंकि अनुनय विनय कर पकड़ने योग्य हाथीपर ही दण्ड चल सकता है सिंहपर नहीं । विशेष—लोहा गरम अवस्था में नरम हो जाता है इसलिए यहाँ लोहाका उदाहरण व्यतिरेकरूपसे मानकर ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है कि जिस प्रकार तपा हुआ लोहा नरम हो जाता है उस प्रकार तेजस्वी मनुष्य कष्ट में पड़कर नरम नहीं होता इसलिए उसपर दण्डका प्रयोग करना व्यर्थ है । अरे, दण्ड भी प्रेम पुचकार कर पकड़ने योग्य हाथीपर ही चल सकता है न कि सिंहपर भी ॥११०२॥ इसलिए इन साम दान आदि उपायोका विपरीत प्रयोग करनेवाले और इसलिए ही उपाय न जाननेवाले आप जैसे लोग इन चारो उपायोके प्रयोगका ज्ञान न होनेसे स्वयं दुखी होते हैं ॥११०३॥

१ सामभेदादि योग्यपुरुषमनतिक्रम्य । २ वचननियोजनम् । ३ मप्रतापे । ४ एतत्सदृशम् । ५ इन्वनसमूहः ।
 ६ उपतप्तस्य लोहस्य यथा मृदुतास्ति तथा उपतप्तस्य मनस्विनो मृदुता नास्तीत्यर्थः । ७ सिंहे । ८ विपरीत्येन योजनम् । ९ त्रेतानु—४०, ८०, १००, १५०, २०० । ममावोन् । १० भवादृशं ८०, १००, १५०, २००, २५० ।

सात्राऽपि दुर्का सांभ्या वयमि युपसहते । तत्रो सक प्रयुञ्जानो यन्त्र सुरवायत भवान् ॥१०४॥
 वरमाधिक इत्यथ न इलाप्यो भरताधिप । जरन्नपि गत्र कत्रा गाहते किं हर शिशो ॥१०५॥
 प्रणय प्रथयश्चेति सगनेषु सनामिषु । तन्वेवासगतध्वजं तद्द्वयस्य हता गति ॥१०६॥
 ज्यष्ट प्रणम्य इत्यतस्कासमस् धन्यदा सदा । मूर्ध्नि शीरोपितसङ्गस्म प्रणाम इति क क्रम ॥१०७॥
 दूत ना दूयत चित्तमन्योऽसकानुवगन । तेजस्वा भानुरवैक विमन्याऽप्यस्यत परम् ॥१०८॥
 राजोन्मिषि तस्मिन् सविमर्शाऽविवेधसा । राजराज स इत्यथ स्फोटो गण्डस्य मूधनि ॥१०९॥
 कामं स राजराजोऽस्तु रक्षैर्यतोऽतिगृध्नुताम् । वय राजान इत्येव सौराज्य स्व न्यवस्थिता ॥११०॥
 बालानिव छलादस्मान् आहूय प्रणमय च । पिण्डीसण्ड इवामाति महीरण्डस्तदर्पित ॥१११॥
 स्वदोषमफल श्लाघ्य यत्किंचन मनस्विनाम् । न चातुरन्तमप्येव परभूतिकाफलम् ॥११२॥

हे दूत, हम लोग शान्तिसे भी वश नहीं किये जा सकते यह निश्चय होनेपर भी आप हमारे साथ अहंकारका प्रयोग कर रहे हैं, इससे स्पष्ट मालूम होता है कि आप भूख ह ॥१०४॥ भरतेश्वर उमरम बड़े हैं इतने ही से वे प्रशसनीय नहीं कहे जा सकते क्योंकि हाथी बूढ़ा होनेपर भी क्या सिंहके बच्चेकी बराबरी कर सकता है ? ॥१०५॥ हे दूत, प्रेम और विनय ये दोनों परस्पर मिल हुए कुटुम्बी लोगोम ही सम्भव हो सकते ह, यदि उन्ही कुटुम्बियोमे विरोध हो जावे तो उन दोनों ही की गति नष्ट हो जाती है । भावाध-जबतक कुटुम्बियोमे परस्पर मेल रहता है तबतक प्रेम और विनय दोनों ही रहते ह और ज्यो ही उनमे परस्पर विरोध हुआ त्यो ही दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥१०६॥ बड़ा भाई नमस्कार करने योग्य है यह बात अन्य समयमें अच्छी तरह हमेशा हो सकती है परन्तु जिसने मस्तकपर तलवार रख छोड़ी है उसको प्रणाम करना यह कौन-सी रीति है ? ॥१०७॥ हे दूत, दूसरेके अहंकारके अनुसार प्रवृत्ति करनेसे हमारा चित्त दु खी होता है क्योंकि ससारम एक सूय ही तेजस्वी है । क्या उससे अधिक और भी कोई तेजस्वी है ॥१०८॥ आदि ब्रह्मा भगवान् वषभदेवने 'राजा' यह शब्द मेरे लिए आर भरतके लिए-दोनोंके लिए दिया है, परन्तु आज भरत 'राजराज' हो गया है सो यह कपोल के ऊपर उठे हुए गूमड़ेके समान व्यथ है ॥१०९॥ अथवा रत्नोंके द्वारा अत्यन्त लोभको प्राप्त हुआ वह भरत अपने इच्छानुसार भल ही 'राजराज' रहा आवे, हम अपने धमराज्यम स्थिर रहकर राजा ही बने रहेंगे ॥११०॥ वह भरत बालकोंके समान छलसे हम लोगोंको बुलाकर और प्रणाम कराकर कुछ पृथिवी देना चाहता है ता उसका दिया हुआ पृथिवीका टुकड़ा पत्नीके टुकड़ेके समान तुच्छ मालूम होता है ॥१११॥ तेजस्वी मनुष्योंके लिए जो कुछ थोड़ा बहुत अपनी भुजारूपी वक्षका फल प्राप्त हाता है वही प्रशसनीय है उनके लिए दूसरेकी माह रूपी रत्तावा फल अथान् माहके इशारेसे प्राप्त हुआ चार समुद्रपयन्त पृथिवीका ऐश्वर्य भी

१ विरति गते सनि । २ तत्र सृष्टी स्थिते पुति । उत्सक साहसम् गवमित्यथ । ३ समानताम् । ४ प्राप्नाति । ५ स्नह । ६ विनय । ७ भा । ८ प्रणयप्रथयस्य । ९ अस्माकम् । १० वगन ल० द० अ प स । ११ भानो मन्त्राणां । १२ भरते । १३ आन्त्रिद्वारा । १४ भरतवरपक्ष राणा प्रभूणा राजा राजराज राणा यथाणा राजा राजराज लाभजित इति ध्वनि । भुवधनिधन तिय शवयय पट्टणा चतुराया मप्ताङ्गराज्यानि एतन्मृग राजन्त इति राजान । १५ पिटव । विस्फाट पिटवस्त्रिपु द्यवभिधानान् । १६ गङ्गागङ्गा । गलगङ्गो गङ्गमाला न्यभिधानान् । १७ उपरात्यय । १८ कुरर इति ध्वनि । १ सुराज्यगगार । २० आम्बीय । २१ बलान्वि २० । २२ व्याजान । २३ नमस्कारविदा । २४ विगावगङ्गा । २५ भरतन न्त । २६ चत्वाग निगन्ता यय सन् । २७ प्रभुत्वम् ।

पराजोषहतां लक्ष्मीं यो वाञ्छेत् पार्थिवोऽपि सन् । सोऽपार्थयति तां मुक्तिं सर्पांस्त्रिमिव दुण्डुभम्^३ ॥११३॥
 परावमानमलिनां भूति^४ धत्ते नृपोऽपि यः । नृपशोस्तस्य^५ नन्वेव भारो राज्यपरिच्छदः ॥११४॥
 मानमङ्गार्जितैर्मैरिग्यः प्राणान्धर्तुर्मीहते । तस्य भद्ररदस्येव त्रिदशस्य कुतो मिदं^६ ॥११५॥
 छत्रभङ्गाद्विनायस्य^७ छायाभङ्गोऽमिलक्ष्यते । यो मानभङ्गाभागेण विभर्त्यधनतः शिरः ॥११६॥
 मुनयोऽपि समानाश्चेत् त्यक्तभोगपरिच्छदाः । को नाम राज्यभोगार्था पुमानुज्ज्वल ममानताम्^८ ॥११७॥
 वरं वनाधिवायोऽपि वरं प्राणविमर्जनम् । कुलाभिमानिनः पुमो न पराजाविधेयता^९ ॥११८॥
 मानमेवाभिरक्षन्तु धीराः प्राणैः प्रणश्वरैः । नन्वलकुर्वते विप्रः शश्वन्मानार्जितं यशः ॥११९॥
^{११} चारु चक्रधरस्याय त्वयाऽन्युक्तं^{१२} पराक्रमः । कुनो यतोऽयं वादोऽयं^{१३} स्तुतिनिन्दापरायणः^{१४} ॥१२०॥
 वचोभिः पोषयन्त्येव पण्डिता परिप्लव्यपि^{१५} । प्रक्रान्तायाः^{१६} स्तुताविष्ट मिहो ग्राममृगो^{१७} ननु ॥१२१॥
 इदं वाचनिकं कृत्स्नं त्वदुक्तं प्रतिभाति न । काम्यं त्रिविजयागमं कथनोच्छ्रितं सुश्रुता ॥१२२॥

प्रगसनीय नहीं है ॥११२॥ जिस प्रकार पनया माँप 'मर्प' डम शब्दको निरर्थक करता है उसी प्रकार जो मनुष्य राजा होकर भी दूसरेकी आज्ञामें उपहन हुई लक्ष्मीको धारण करता है वह 'राजा' इस शब्दको निरर्थक करता है ॥११३॥ जो पुरुष राजा होकर भी दूसरेके अपमानसे मलिन हुई विभूतिको धारण करता है निश्चयमें उर्गे मनुष्यरूपी पशुके लिए यह राज्यकी समस्त सामग्री भारके समान है ॥११४॥ जिसके दाँत टूट गये हैं ऐसे हाथीके समान जो पुरुष मानभग होनेपर प्राप्त हुए भोगोपभोगसे प्राण धारण करना चाहता है उस पुरुषमें और पशुमें भेद कैसे हो सकता है ? ॥११५॥ जो राजा मानभगके भारसे झुके हुए शिरको धारण करता है उसकी छायाका नाश छत्रभग होनेके बिना ही हो जाता है । भावार्थ — यहाँ छाया शब्दके दो अर्थ हैं अनातप और कान्ति । जब छत्रभग होता है तभी छाया अर्थात् अनातपका नाश होता है परन्तु यहाँपर छत्रभगके बिना ही छायाके नाशका वर्णन किया गया है इसलिए विरोध मालूम होता है परन्तु छत्रभगके बिना ही उनकी छाया अर्थात् कान्तिका नाश हो जाता है, ऐसा अर्थ करनेसे उसका परिहार हो जाता है ॥११६॥ जिन्होंने भोगोपभोगकी सब सामग्री छोड़ दी है ऐसे मुनि भी जब अभिमान (आत्मगौरव) से सहित होते हैं तब फिर राज्य भोगनेकी इच्छा करनेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा जो अभिमानको छोड़ देगा ? ॥११७॥ वनमें निवास करना अच्छा है और प्राणोको छोड़ देना भी अच्छा है किन्तु अपने कुलका अभिमान रखनेवाले पुरुषको दूसरेकी आज्ञाके अधीन रहना अच्छा नहीं है ॥११८॥ धीर वीर पुरुषोको चाहिए कि वे इन नश्वर प्राणोके द्वारा अभिमानकी ही रक्षा करे क्योंकि अभिमान के साथ कमाया हुआ यश इस संसारको सदा सुशोभित करता रहता है ॥११९॥ तूने जो बहुत कुछ बढ़ाकर चक्रवर्तीके पराक्रमका वर्णन किया है सो ठीक है क्योंकि तेरा यह सब कहना स्तुति निन्दामें तत्पर है अर्थात् स्तुतिरूप होकर भी निन्दाको सूचित करनेवाला है ॥१२०॥ पण्डित लोग नि सार वस्तुको भी अपने वचनोसे पुष्ट किया ही करते हैं सो ठीक ही है क्योंकि स्तुति प्रारम्भ करनेपर कुत्तेको भी सिंह कहना पड़ता है ॥१२१॥ हे दूत, तेरे द्वारा कहा

१ अपगतार्थ करोति । २ पार्थिवाख्याम् । ३ राजिल । 'समी राजिलदुण्डुभी' इत्यभिधानात् । ४ सपदम् । ५ मनुजानुद्ध । ६ भेद । ७ तेजोहानि । ८ अभिमानान्विता । ९ साभिमानिताम् । १० अधीनता । ११ वर ल०, द०, अ०, प०, स०, इ० । १२ अतिक्रम्योक्त । १३ मत्यवाद अथवा अमत्यारोपमर्थवादः । १४ स्तुतिरूपोऽयं वादो निन्दारूपोऽयं वादश्चेति द्वये तत्परः । १५ अतिनिस्मारवम्बपि । १६ प्रारम्भिताया न्याम् । १७ मारमेय । १८ वनापनयन ।

दशचाक्रचरा^१ वृत्तिं नलि^२ भिक्षामिवाहरन् । दीनताया परां कोटिं^३ प्रमुरारोपितस्त्रया ॥१२३॥
 सत्य दिग्विजय चक्रा त्तिवानमरानिति । प्रत्येयमिदमतत्तु^४ चिन्त्यमथ^५ ननु स्वया ॥१२४॥
 स किं न दमयथायां सुप्तो नोपोपिताऽथवा । प्रवृत्तो जलमायायां^६ शरपात समाचरन् ॥१२५॥
 कृतचक्रपरिश्रान्तिं दण्डनायतिशालिना । घटयन्^७ पार्थिवानेप सकुलालायते वत ॥१२६॥
 आग^८ परागमात^९ इन् स्त्रयमेव कलकित । चिर कलकयत्यप कुल^{१०} कुलमृतामपि ॥१२७॥
 नृपानाकपतो दूरान्मन्त्रैस्तत्रैश्च योजितै । स्थाप्यत कियदेतस्य पौरुष लज्जाया विना ॥१२८॥
 दुनोति नो भूश दृत स्थाप्यतऽस्य यदाहव । दोलायित जले यस्य बल मेच्छवलैस्तदा ॥१२९॥
 यशोधनमसहायं क्षत्रपुत्रेण रथ्यताम् । निखनन्तो^{११} निधीन् भूमौ बहुवो निधन^{१२} गता ॥१३०॥
 रथै किमस्ति वा कृत्य यान्त्ररक्षिमिता^{१३} भुवम् । न यान्ति यत्कृत याति केवल निधन नृपा १३१

हुआ यह समस्त काय हम लोगोको केवल वचनाडम्बर ही जान पड़ता है क्योंकि कहाँ तो इमका दिग्विजयका प्रारम्भ करना और कहा धन इकट्ठा करनेम तत्पर होना ? ॥१२२॥ जिस प्रकार भिक्षुक चक्र धारण कर भिक्षा मागता हुआ अतिशय दीनताको प्राप्त होता है उसी प्रकार चक्रवर्तीकी वृत्ति धारण कर भिक्षाके समान कर वसूल करता हुआ तेरा स्वामी भरत तेरे द्वारा दीनताकी परम सीमाको प्राप्त करा दिया गया है ॥१२३॥ यह ठीक है कि चक्रवर्ती दिग्विजयके समय देवोको भी जीत लिया है परन्तु यह बात केवल विश्वास करने योग्य है अन्यथा तू यहाँ इतना तो विचार कर कि जलस्तम्भन करनेम प्रवृत्त हुए तेरे स्वामी भरतने जब बाण छोड़ा था तब वह क्या दमकी शय्यापर नहीं सोया था अथवा उसने उपवास नहीं किया था ॥१२४-१२५॥ जिस प्रकार कुम्हार आयति अर्थात् लम्बाईसे शोभायमान ढण्डेके द्वारा चक्रको घुमाता हुआ पार्थिव अर्थात् मिट्टीके घट बनाता है उसी प्रकार भरत भी आयति अर्थात् सुन्दर भविष्यसे शोभायमान ढण्डे (दण्डरत्न) से चक्र (चक्ररत्न) को घुमाता हुआ पार्थिव अर्थात् पृथिवीके स्वामी राजाओंको वश करता फिरता है इसलिए कहना पड़ता है कि तुम्हारा यह राजा कुम्हारके समान आचरण करता है ॥१२६॥ वह भरत पापकी धूलिको उड़ाता हुआ स्वयं कलकित हुआ है और कुलीन मनुष्योंके कुलको भी सदाके लिए कलकित कर रहा है ॥१२७॥ हे दूत, प्रयोगमे लाये हुए मन्त्र-तन्त्रोके द्वारा दूरसे ही अनेक राजाओंको बुलानेवाल इस भरतका पराक्रम तू लज्जाके बिना कितना वणन कर रहा है ? ॥१२८॥ हे दूत, जिन समय तू इसके युद्धकी प्रशंसा करता है उस समय हम लोगोको बहुत दुःख होता है क्योंकि उस समय म्लच्छाकी सेनाके द्वारा भरतकी सेना पानीम हिंडोल झूल रही थी अर्थात् हिंडोलके समान कंप रही थी ॥१२९॥ क्षत्रियपुत्रको तो जिसे कोई हरण न कर मके ऐसे यगस्वी धनकी ही रक्षा करनी चाहिए क्योंकि इस पृथिवीम निधियोंको गाड़कर रखनेवाल अनेक लोग मर चुके ह । भावाय-अमरता यशसे ही प्राप्त होती है ॥१३०॥ अथवा जो रत्न एवं हाथ पथिवी तक भी साथ नहीं जाते और जिनके लिए राजा लोग केवल मृत्युको ही प्राप्त हाते ह ऐम रत्नास क्या निकल सकता है ? ॥१३१॥

१ चक्रवर्त्य चाक्रो मा चामौ चरी च चात्रचरी ताम् । चक्रचरसवधिनीम । चाक्रचरी ल० द० अ० प० म । २ वरम् । परमप्रापम् । ४ क्षपय कृत्वा वि वाम्यम् । ५ व यमाणम् । ६ अमरजय । ७ मनुजलम्भनमन्त्रमयायाम् । ८ दण्डरत्नन मयन वा । ९ नृपान् । पृथिवीविकारीन्व । मृत्पिण्डान् । १० पराग । अपराचरणम् । परागाराधाराग इत्यभिधानान् । ११ मनुनाम् । कुलमृतामपि ट० । १२ निधिन । १ विनाम् । १४ ह्यन्त्रमित्राम् । अरतिस्तु निधनिष्ठेन भुविना इत्यभिधानान् । १५ गत्यन्तरगमनन गह न यान्ति ।

तुलापुरुष एवायं यो नाम निगिलैर्नृपे । नुलितो रत्न^१पुञ्जेन यत नैश्वर्यमीदृशम् ॥१३२॥
 ध्रुव स्वगुरुणा दत्तामाचिच्छि^२सति नो भुवम् । ^३त्रयाग्येय-वसुन्मृज्य गृ नोऽस्य किमापयम् ॥१३३॥
 दूत तातव्रीतीर्णा नो महीमेना कुलोचिताम् । भ्रातृजायामिवाऽऽदिन्यो नान्य लज्जा भवन्तने ॥१३४॥
 देयमन्यत् स्वतन्त्रेण यथाकाम जिगं पुणा । मुक्त्वा कुलकलत्रं च क्ष्मातल च भुजाजितम् ॥१३५॥
 भूयस्त^४दलमालपर्य स वा भुङ्क्ता महीतलम् । चिरमेकानपत्राङ्कमह वा भुजविहमी ॥१३६॥
 कृतं वृथा मटालापरि^५र्थमिद्विचहिष्कृतं । मङ्ग्रामनिकपे व्यक्ति पारंपर्य समास्य च ॥१३७॥
 ततः समरसंवदे यद्वा तद्वाऽस्तु नो द्वयो । नीरं कमिदमेक नो वयो हर^६ वयोहर^७ ॥१३८॥
 इत्यावि^८कृतमानेन कुमारेण वचोहरः । द्रुतं विमर्जितोऽगच्छन्^९ पति मन्त्राहयेन^{१०} परम् ॥१३९॥
 तदा मुकुटसवदादुच्छलत्मानिकोटिमि^{११} । कृतोरुतुक^{१२} शतक्षेपैः द्वयोत्तम्ये महीगिभिः ॥१४०॥
 क्षण समरसंवदपिञ्चुनो मटसकटेः^{१३} । श्रूयते स्म मटालापो वले भुजचर्लागितुः ॥१४१॥
 चिरात् समरसंमर्दं स्वामिनोऽयमभूदिह । किं वय स्वामिन्कारादनृणांमवितु श्रमा ॥१४२॥

जो समस्त राजाओके द्वारा रत्नोकी रागिसे तोला गया है ऐसा यह भरत एक प्रकारका तुला-
 पुरुष है खेद है कि ऐसा ऐश्वर्य नहीं होता ॥१३२॥ अवश्य ही वह भरत अपने पूज्य पिता
 श्री भगवान् वृषभदेवके द्वारा दी हुई हमारी पृथिवीको छीनना चाहता है सो इस लोभीका
 प्रत्याख्यान अर्थात् तिरस्कार करनेके सिवाय और कुछ उपाय नहीं है ॥१३३॥ हे दूत,
 पिताजीके द्वारा दी हुई यह हमारे ही कुलकी पृथिवी भरतके लिए भाईकी स्त्रीके समान है
 अब वह उसे ही लेना चाहता है सो तेरे ऐसे स्वामीको क्या लज्जा नहीं आती ? ॥१३४॥ जो
 मनुष्य स्वतन्त्र है और इच्छानुसार शत्रुओको जीतनेकी इच्छा रखते हैं वे अपने कुलकी स्त्रियो
 और भुजाओसे कमायी हुई पृथिवीको छोडकर बाकी सब कुछ दे सकते हैं ॥१३५॥ इसलिए
 बार-बार कहना व्यर्थ है, एक छत्रसे चिह्नित इस पृथिवीको वह भरत ही चिरकाल तक उपभोग
 करे अथवा भुजाओमे पराक्रम रखनेवाला मैं ही उपभोग करूँ । भावार्थ—मुझे पराजित किये
 बिना वह इस पृथिवीका उपभोग नहीं कर सकता ॥१३६॥ जो प्रयोजनकी सिद्धिसे रहित है
 ऐसे शूरवीरताके इन व्यर्थ वचनोसे क्या लाभ है ? अब तो युद्धरूपी कसौटीपर ही मेरा और
 भरतका पराक्रम प्रकट होना चाहिए ॥१३७॥ इसलिए हे दूत, तू यह हमारा सन्देशरहित एक
 वचन ले जा अर्थात् जाकर भरतसे कह दे कि अब तो हम दोनोंका जो कुछ होना होगा वह
 युद्धकी भीडमे ही होगा ॥१३८॥ इस प्रकार अभिमान प्रकट करनेवाले कुमार बाहुबलीने उस
 दूतको यह कहकर शीघ्र ही बिदा कर दिया कि जा और अपने स्वामी को युद्धके लिए जल्दी
 तैयार कर ॥१३९॥ उस समय जिनके मुकुटोके सघर्षणसे करोड़ो मणि उछल-उछलकर इधर-
 उधर पड रहे हैं और उन मणियोसे जो ऐसे जान पडते हैं मानो अग्निके सैकड़ो फुलिंगोको
 ही इधर-उधर फैला रहे हो ऐसे राजा लोग उठ खडे हुए ॥१४०॥ उसी क्षण अनेक योद्धाओसे
 भरी हुई महाराज बाहुबलीकी सेनामे युद्धकी भीडको सूचित करनेवाला योद्धा लोगोका
 परस्परका आलाप सुनाई देने लगा था ॥१४१॥ इस समय स्वामीके यह युद्धकी तैयारी बहुत
 दिनमे हुई है, क्या अब हम लोग स्वामीके सत्कारसे उन्नत (ऋणमुक्त) हो सकेंगे ? भावार्थ—
 स्वामीने आजतक पालन-पोषण कर जो हम लोगोका महान् सत्कार किया है क्या उसका बदला

१ रत्नायम् । २ छेत्तुमिच्छति ३ निराकरणीयत्वम् । 'प्रत्याख्यातो निराकृतः' इत्यभिधानात् । हेयत्वमित्यर्थ
 (हेयत्वमेव औपघमित्यर्थ) । ४ लुब्धस्य । ५ अनुजकलत्रम् । ६ आदातुमिच्छो । ७ तत् कारणात् । ८ बहु-
 प्रनापरलम् । ९ नि सन्देशम् । १० स्वीकुरु । ११ भो दूत । १२ गच्छ पतिं द०, ल०, । १३ सन्नद्धं कुरु ।
 १४ रत्नममूहै । १५ अनात् । १६ भटममूहै ।

पोषयति महापाला भूयानवसर प्रति । न चेद्वसर साय^१ किमेभिस्तृणमानुषै ॥१४३॥
 कलवरमिदं स्याज्यमजनीय यशोधनम् । जयग्रीर्विजये लब्ध्वा नात्पोदका रणोत्सव ॥१४४॥
 मदातपशरच्छाये प्रत्यङ्गैर्वाणजजरै । लप्स्यामहे कदा नाम विभ्रम रणमण्डपे ॥१४५॥
 प्रत्यनीककृतानेकव्यूह^२ निर्मिथ सायकै । शरशस्यामसबाधमध्याशिष्ये कदा न्वहम् ॥१४६॥
 कणतालानिलाधृति^३ विधूतसमरश्रम । गजस्कन्धे निधीश्रामि^४ कदाहं क्षणमूर्छित ॥१४७॥
 नन्तिदन्ता गलप्रोतोद्गलद^५ स्खलद्वया । जयलक्ष्मीकक्षाणां कदाऽहं लक्ष्यतां भजे ॥१४८॥
 गनदतान्तरालम्विस्थान्प्रमालावरत्रया^६ । कहि^७ दोलामिवारोप्य तुलयामि जयधियम् ॥१४९॥
 भ्रुवाणैरिति सद्ग्रामरसिकैरुद्भूतैर्भटै । शस्त्राणि सशिरस्त्राणि सज्जायासन् षष्ठे बले ॥१५०॥
 तत कृतमय भूयो मटभ्रुकुण्डितजितै । पलायितमिव काऽपि^८ परिच्छित्तिमगादह^९ ॥१५१॥
^{१०}अधोऽप्यभटानीकनेत्रच्छायापिता रुचम् । दधान इव सिग्मांशुगसीदारकमण्डल ॥१५२॥
^{११}क्षणमस्ताचलप्रस्थकाननक्षमाजपल्लवै । सदृगालोहितच्छायो दृक्षोऽर्कांशुसस्तर^{१२} ॥१५३॥

हम कुछ दे सकेंगे ? ॥१४२॥ राजा लोग किसी खास अवसरके लिए ही सेवक लोगोंका पालन पोषण करते हैं यदि वह अवसर नहीं साधा गया अर्थात् अवसर पडनेपर स्वामीका काय सिद्ध नहीं किया गया तो फिर तणसे बने हुए इन पुरुषोंसे क्या लाभ है ? भावार्थ—जो पुरुष अवसर पडनेपर स्वामीका साथ नहीं देते वे घास-फूसके बने हुए पुरुषोंके समान सबथा सारहीन हैं ॥१४३॥ अब यह शरीर छोडना चाहिए, यशरूपी धन कमाना चाहिए और विजय लाभकर जयलक्ष्मी प्राप्त करनी चाहिए, यह युद्धका उत्सव कुछ थोडा फल देनेवाला नहीं है ॥१४४॥ हम लोग घावोंमें जजर हुए शरीरके प्रत्येक अंगोंसे, जिसमें घामको मन्द करनेवाली बाणोंकी छाया पड रही है ऐसे युद्धके मण्डपमें कब विभ्राम करेंगे ? ॥१४५॥ कोई कहता था कि मैं कब अपने बाणोंसे शत्रुओंकी सेनाके द्वारा किये हुए अनेक व्यूहोंको छेदकर विना किसी उपद्रवके बाणोंकी शय्यापर शयन करूँगा ॥१४६॥ कोई कहता था कि मैं कब युद्धमें क्षण भरके लिए मूर्छित होकर हाथीके कानरूपी ताडपत्रकी धातुके चलनेसे जिसके युद्धका सब परिश्रम दूर हो गया है ऐसा होता हुआ हाथीके कंधेपर बैठूँगा ? ॥१४७॥ हाथीके दाँतरूपी अर्गलोंमें पिरोये जानेसे जिसकी अलडियाँ निकल रही हैं तथा जिसके मुखसे टूटे-फूटे शब्द निकल रहे हैं ऐसा होता हुआ मैं कब जयलक्ष्मीके कटाक्षोंका निशाना बन सकूँगा ? भावार्थ—वह दिन कब होगा जब कि मैं मरता हुआ भी विजय प्राप्त करूँगा ? ॥१४८॥ कोई कहता था कि हाथियोंके दाँतोंके बीचमें लटकती हुई अपनी अलडियोंके समूहरूपी मजबूत रस्तीपर झूलके समान विजयलक्ष्मीका बैठकर मैं कब उसे तोलूँगा ? ॥१४९॥ इस प्रकार कहते हुए युद्धके प्रेमी बड़े बड़े यादवात्राने प्रत्येक मेनाम अपने अपने शस्त्र तथा शिरकी रक्षा करनेवाली टोपियाँ सँभाल ली ॥१५०॥

तदनन्तर त्रिं समाप्त हो गया सो ऐसा मालूम होता था मानो योद्धाओंकी भीहृदिके निरूप्यारसे भयभीत होकर वहीं भाग ही गया हो ॥१५१॥ अयानन्तर सूयका मण्डल लाल हो गया मानो उमने क्राधिन् हुए योद्धाओंकी सेनाके नेत्रोंकी छायाके द्वारा दी हुई लाल वान्ति ही धारण की हो ॥१५२॥ उम समय क्षण भरके लिए मूर्यकी किरणाका समूह अस्ताचल

१ न मध्यमेन । २ विभ्राम ल० द० अ० प० स० । ३ शत्रुहृन्मनारचनाम् । ४ अवधूतन । ५ निषण्णो भवामि । ६ गजस्कन्धो इति नविष्यत्ये लट् । ७ परिप । ८ साङ्गान्य । ९ निषङ्गन । १० निजप्रीतद् मालङ्करणम् । ११ दूष्या कर्मा वरत्रा स्याद् इत्यभिधानम् । १२ कर्मा । १३ विनाशम् । १४ त्रिग । १५ अवाप्यन् । १६ मानु । १७ रविरिरणममूह ।

करिगिर्यग्रसलग्नैः मानुरालक्ष्यत क्षणम् । पानमीन्या करालाग्रैः करालम्बमिवाश्रयन् ॥ १५४ ॥
 पतन्त वारुणी संगतः परिलुप्तविभावमुम्^३ । नालम्बत वताम्नाद्रिर्मानु विन्ध्यदिवैनयः^४ ॥ १५५ ॥
 गतो नु दिनमन्वेष्टु^५ प्रविष्टो नु रमातलम् । तिरोहितो नु शृङ्गाग्रैरस्तात्रे नैश्चि मानुमान् ॥ १५६ ॥
 विघटय्य तमो नेश^६ करैराक्रम्य भूभृत^७ । दिनावर्माने पर्यास्थदहो^८ रविरनशुक^९ ॥ १५७ ॥
 तिर्यङ्मण्डलगतैव^{१०} नष्टवः भानुरथ भ्रमन् । विप्ररुपाज्जनैर्मर्दिरग्राहो^{११} पतन्नयः ॥ १५८ ॥
 व्यसनेऽस्मिन्^{१२} दिनंशम्य शुचैव परिपाडिताः । विच्छायाणि सुग्यान्यूहु^{१३} स्तमोरद्वा दिगङ्गना ॥ १५९ ॥

के गिखरपर लगे हुए वनके वृक्षोकी कोपलोके समान कुछ-कुछ लाल रंगका दिखाई दे रहा था ॥१५३॥ उस समय वह सूर्य अस्ताचलके गिखरपर लगे हुए किरणोंसे क्षण-भरके लिए ऐसा जान पड़ता था मानो नीचे गिरनेके भयसे अपने किरणरूपी हाथोंसे किसीके हाथका सहारा ही ले रहा हो ॥१५४॥ जो सूर्य वारुणी अर्थात् पश्चिम दिशा (पक्षमे मदिरा) के समागमसे पतित हो रहा है और जिसका कान्तिरूपी धन नष्ट हो गया है ऐसे सूर्यको मानो पापसे डरते हुए ही अस्ताचलने आलम्बन नहीं दिया था । भावार्थ — वारुणी शब्दके दो अर्थ होते हैं मदिरा और पश्चिम दिशा । पश्चिम दिशामे पहुँचकर सूर्य प्राकृतिक रूपसे नीचेकी ओर ढलने लगता है । यहाँ कविने इसी प्राकृतिक दृश्यमे श्लेषमूलक उत्प्रेक्षा अलंकारकी पुट देकर उसे और भी सुन्दर बना दिया है । वारुणी अर्थात् मदिराके समागमसे मनुष्य अपवित्र हो जाता है उसका स्पर्श करना भी पाप समझा जाने लगता है, सूर्य भी वारुणी अर्थात् पश्चिम दिशा (पक्षमे मदिरा) के समागमसे मानो अपवित्र हो गया था । उसका स्पर्श करनेसे कहीं मैं भी पापी न हो जाऊँ इस भयसे अस्ताचलने उसे सहारा नहीं दिया — गिरते हुएको हस्तालम्बन देकर गिरनेसे नहीं बचाया । सूर्य डूब गया ॥१५५॥ उस समय सूर्य दिखाई नहीं देता था सो ऐसा जान पड़ता था मानो बीते हुए दिनको खोजनेके लिए गया हो, अथवा पाताललोकमे घुस गया हो अथवा अस्ताचलके शिखरोंके अग्रभागसे छिप गया हो ॥१५६॥ जिस प्रकार कोई वीर पुरुष दारिद्र्यरूपी अन्धकारको नष्ट कर और अपने कर अर्थात् टैक्स-द्वारा भूभृत अर्थात् राजाओपर आक्रमण कर दिन अर्थात् भाग्यके अन्तमे अनशुक अर्थात् विना वस्त्रके यो ही चला जाता है उसी प्रकार सूर्य रात्रिसम्बन्धी अन्धकारको नष्ट कर तथा कर अर्थात् किरणोंसे भूभृत अर्थात् पर्वतोपर आक्रमण कर दिनके अन्तमे अनशुक अर्थात् किरणोंके विना यो ही चला गया — अस्त हो गया, यह कितने दुःखकी बात है । ॥१५७॥ यह सूर्य तो मेरे पर्वतके चारों ओर गोलाकार तिरछी गतिसे निरन्तर घूमता रहता है तथापि दूर होनेसे दिखाई नहीं देता इसलिए मूर्ख पुरुषोंको नीचे गिरता हुआ-सा जान पड़ता है ॥१५८॥ सूर्यकी इस विपत्तिके समय मानो शोकसे पीड़ित हुई दिशारूपी स्त्रियाँ अन्धकारसे भर जानेके कारण कान्तिरहित मुख धारण कर रही थीं । भावार्थ — पतिकी विपत्तिके समय जिस प्रकार कुलवती स्त्रियोंके मुख शोकसे कान्तिहीन हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्यकी विपत्तिके समय दिशारूपी स्त्रियोंके मुख शोकसे कान्तिहीन हो गये थे । अन्धकार छा जानेमे दिशाओंकी

१ विस्तृताग्रैः । 'करालो दन्तुरे तुङ्गे विशाले विकृतेऽपि च' इत्यभिधानात् । २ वरुणमवन्धिदिक्मगान् । मघनगादिति ध्वनि । ३ कान्तिरेव धन यस्य । पक्षे विभा च वमु च विभावमुनो, परिलुप्ते विभावमुनो यस्य तम् । ४ न धरति स्म । ५ पापात् । ६ गवेपणाय । ७ निशासवन्वि । ८ पर्वतानाम् । नृगश्च । ९ दिवगान्ते । भाष्यावसाने च । दिवाव — ल०, द० । १० पतितवान् । ११ कान्तिरहित, वन्ध्रगति इति ध्वनि । १२ मेघरदक्षिणरूपतिर्यग्बिम्बगमनेन । १३ दृगात् । १४ स्वीकृत । १५ विपदि । १६ धरन्ति स्म ।

पश्चि-यो ग्लानपद्मास्या द्विरेकरुणाकृते । शोच-त्य इव सवृत्ता वियोगादहिमत्विष ॥१६०॥
 सध्यातपतता यासन् वना-यस्तमहीभृत । परीतानीव दावाग्निशिखयातिकरालया ॥१६१॥
 अनुरक्तापि सध्याय परित्यक्ता विवस्वता । अविष्टेधाग्निमारक्तच्छविरालक्ष्यताम्बर ॥१६२॥
 शनैराकाशवाराशिविहुमोघानराजिवत् । रुक्चे दिशि वारुण्या सध्यासिन्दूरसच्छवि ॥१६३॥
 चक्रव कामनस्तापदीपनो नु हुताशन । पप्रथे पश्चिमाशान्ते सध्यारागो जपारण ॥१६४॥
 सांध्यो राग स्फुरन् दिक्षु क्षणमैक्षि प्रियागम । मानिनानां मनोराग कृस्नो मूछन्निवैकत ॥१६५॥
 धृतरक्षाशुकां सध्यामनुयन्तीं दिनाधिपम् । बहुमने सतीं लोक कृतानुमरगामिव ॥१६६॥
 चक्रवाकीं धृतोत्कण्ठमनुयान्तीं कृतस्वनाम् । विजहावेव चक्राह्वो नियतिं को नु लडघयेत् ॥१६७॥
 रवे किमपराधोऽय कालस्य नियत किमु । रथाद्गमिधुना-यासन् विधुक्तानि यतो मिथ ॥१६८॥
 घन तमो विनाशेण यानश निखिला दिश । विना तेजस्विना प्रायस्तमो रु-धे नु सततम् ॥१६९॥
 तमो ऽघगुण्डिता रज रजना तारकातता । विनालवसना भास्वन्मौक्तिकेवाभिसारिका ॥१७॥

शोभा जाती रही थी ॥१५९॥ कमलिनयोके कमलरूपी मुख मुरझा गये थे जिससे वे ऐसी जान पड़ती थी मानो सूयका वियोग होनेसे अमरोके करुणाजनक शब्दोंके बहाने रुदन करती हुई शोक हो कर रही हो ॥१६०॥ सायकालके लाल-लाल प्रकाशसे व्याप्त हुए अस्ताचलके घन ऐसे जान पड़ते थे मानो अत्यन्त भयकर दावानलकी शिखासे ही घिर गये हों ॥१६१॥ यद्यपि यह सध्या अनुरक्त अर्थात् प्रेम करनेवाली (पक्षमें लाल) थी तथापि सूर्यने उसे छोड़ दिया था इसलिए ही वह लाल रंगकी सध्या आकाशम ऐसी जान पड़ती थी मानो उसने अग्निम ही प्रवेश किया हो । भावाय - पतिव्रता स्त्रियां पतियोके द्वारा अपमानित होनेपर अपनी विशुद्धताका परिचय देनेके लिए सीताके समान अग्निमें प्रवेश करती ह यहाँपर कविने भी समासोक्ति अलंकारका आश्रय लेकर सध्यारूपी स्त्रीको सूयरूपी पतिके द्वारा अपमानित होनेपर अपनी विशुद्धता - सच्चरित्रताका परिचय देनेके लिए सध्या कालकी लालिमारूपी अग्निम प्रवेश कराया है ॥१६२॥ सिन्दूरके समान श्रेष्ठ कान्तिको धारण करनेवाली वह सध्या धीरे धीरे पश्चिम दिशामें ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो आकाशरूपी समुद्रम भूंगाके वगीचाकी पवित्र ही हो ॥१६३॥ जवाके फूलके समान लाल-लाल वह सध्याकालकी लाली पश्चिम दिशाके अन्तम ऐसी फैल रही थी मानो चकवियोके मनके सत्तापको बढाने वाली अग्नि ही हो ॥१६४॥ समस्त दिशाओंमें फलती हुई सध्याकालकी लाली क्षण भरके लिए ऐसी दिखाई देती थी मानो पतियोके आनेपर मान करनेवाली स्त्रियोके मनका समस्त अनुराग ही एक जगह इकट्ठा हुआ हो ॥१६५॥ लाल किरणेंरूपी वस्त्र धारण कर सूयरूपी पतिवे पीछ-पीछ जाती हुई सध्याको लोग पतिके साथ मरनेवाली सतीके समान बहुत कुछ मानत थे ॥१६६॥ चक्वाने वडी उत्कण्ठासे अपने पीछ-पीछे आती हुई और दाब्द करती हुई चक्कीको आतिर छाड़ ही दिया था सो ठीक ही है क्योंकि नियति अर्थात् दैविक नियमका उत्प्लवण कौन कर सकता है ? ॥१६७॥ उस समय चक्वा चकवियोके जोड़े परस्परमें बिछुड गये थे - अलग अलग हो गये थे सा यह क्या सूयका अपराध है ? अथवा कालका अपराध है ? अथवा भाग्यना ही अपराध है ? ॥१६८॥ सूयके बिना सब दिशाओंम गाढ़ अंधकार फैल गया था सो ठीक ही है क्योंकि तजस्वाक बिना प्राय मग्न आर अंधकार ही भर जाता है ॥१६९॥ अंधकारम पिरी हुई और ताराअसि व्याप्त हुई वह रात्रि ऐसी सुशोभित हो रही

१ उद्दीप्तशरी । २ मध्याह्नक । ३ द० । ४ प्रमथन् । ५ सममरणात् । अग्निप्रवर्गं भुवतीमित्यय । ६ ममर । ७ चक्रवाक । ८ अ । ९ द० । १० व्याप्तादि । ११ सममाच्छादित । १२ वया ।

ततान्धतमसे लोकं जनेर्नर्मालितेक्षणे । नाद्वयन पुर मित्रिन मि-यान्वेनेन दपिने ॥१७१॥
 प्रसह्य^१ तमया रुद्रो लोकोऽन्तःस्थाकुलीमवन । दृष्टिर्वपत्य दृष्टेनुं बहु मेने शयालुताम् ॥१७२॥
 दीपिका गचिता रेजुः प्रतिवेक्षम स्फुरन्निष । घनान्तमयोद्रे प्रसृता इव सचिका ॥१७३॥
 तमो विधूय दूरेण जगदानन्दिभिः करैः । उदियाय शशी लोक श्रांणेण शालयन्निव ॥१७४॥
 अरण्डमनुरागेण निज मण्डलमुद्रहन् । सुगजेन कृतानन्दमुदगाद विभुस्कर ॥१७५॥
 द्रुवाकृष्टहरिण हरि हरिणलाञ्छनम् । निमिगेघः प्रदुष्टाव करिग्रथयन् ममान ॥१७६॥
 ततनारावली रेजे ज्योत्स्नापूर सुधाच्छवे । मधुद्वन्द्व इवाकाशमिन्धोगेऽपि परिश्रम ॥१७७॥
 मपोत इवान्निच्छन् शशी निमिर्जंघलम् । नाग महर्षीमान्न विजगामे नम मर ॥१७८॥
 तमो निःशेषमुदधय जगदाप्लावयन् करैः । शालेयाञ्जुन्नदा विधुः सुशमयमिमाननां ॥१७९॥
 तमो दूर विधयाऽपि विभुरार्ग्यत कन्दवान् । निमर्गज तमो नून महनाऽपि मुदुम्यजम् ॥१८०॥

थी मानो नील वस्त्र पहने हुई और चमकीले मोनियोंके आभूषण धारण किये हुई कोई अभि-
 सारिणी स्त्री ही हो ॥१७०॥ जिस प्रकार मिथ्या दर्शनमें दूषित पुण्योको कुछ भी दिखाई नहीं
 देता — पदार्थके स्वरूपका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होना उसी प्रकार गाढ़ अन्धकारमें भरे हुए
 लोकमें पुरुषोको आँख खोलनेपर भी सामनेकी कुछ भी वस्तु दिखाई नहीं देती थी ॥१७१॥
 जवरदस्ती अन्धकारसे घिरे हुए लोग भीतर ही भीतर व्याकुल हो रहे थे और उनकी दृष्टि भी
 कुछ काम नहीं देती थी इसलिए उन्होंने सोना ही अच्छा समझा था ॥१७२॥ घर-घरमें लगाये
 हुए प्रकाशमान दीपक ऐसे अच्छे सुगोभित हो रहे थे मानो अत्यन्त गाढ़ अन्धकारको भेदन
 करनेके लिए बहुत-सी सुडियाँ ही तैयार की गयी हो ॥१७३॥ इतने ही में जगत्को आन-
 न्दित करनेवाली किरणोंसे अन्धकारको दूरसे ही नष्ट कर चन्द्रमा इस प्रकार उदय हुआ
 मानो लोकको दूधसे नहला ही रहा हो ॥१७४॥ वह चन्द्रमा किसी उत्तम राजाके समान
 ससारको आनन्दित करता हुआ उदय हुआ था, क्योंकि जिस प्रकार उत्तम राजा अनुराग
 अर्थात् प्रेमसे अपने अखण्ड (सम्पूर्ण) मण्डल अर्थात् देशको धारण करता है उसी प्रकार वह
 चन्द्रमा भी अनुराग अर्थात् लालिमासे अपने अखण्डमण्डल अर्थात् प्रतिविम्बको धारण कर रहा
 था और उत्तम राजा जिस प्रकार चारों ओर अपना कर अर्थात् टैक्स फैलाता है उसी प्रकार
 वह चन्द्रमा भी चारों ओर अपने कर अर्थात् किरणें फैला रहा था ॥१७५॥ हरिणके चिह्न-
 वाले चन्द्रमाको देखकर अन्धकारका समूह बड़ा होनेपर भी इस प्रकार भाग गया था जिस प्रकार
 कि हरिणको पकड़े हुए सिंहको देखकर हाथियोंका बड़ा भारी झुण्ड भाग जाता है ॥१७६॥
 जिसमें ताराओंकी पङ्क्ति फैली हुई है ऐसा चन्द्रमाकी चाँदनीका समूह उस समय ऐसा
 अच्छा जान पड़ता था मानो वृद्धवृद्धोसहित ऊपरसे पड़ता हुआ आकाशरूपी समुद्रका प्रवाह
 ही हो ॥१७७॥ इसके वच्चेके समान वह चन्द्रमा अन्धकाररूपी शैवालको खोजता हुआ
 तारेरूपी हंसियोंसे भरे हुए आकाशरूपी सरोवरमें अवगाहन कर रहा था — इधर-उधर
 घूम रहा था ॥१७८॥ समस्त अन्धकारको नष्ट कर जगत्को किरणोंसे भरते हुए चन्द्रमाने
 उस समय यह समस्त ससार अमृतमय बना दिया था ॥१७९॥ अन्धकारको दूर करके भी
 वह चन्द्रमा कलकी वन रहा था सो ठीक ही है क्योंकि स्वाभाविक अन्धकार बड़े पुरुषोंसे छूटना

^१ दृष्टात् । २ नेत्रविफलत्वदर्शनात् । ३ शयनशीलताम् । ४ घनावतमसोद्भेदे ट० । निविडान्धकारभेदेने ।
^५ दृष्टा । ६ इवान्निष्टान् ल०, द०, प० । ७ विवेश ।

मियजेव करै स्पृष्टा दिशस्तिमिरभदिभि । शनैदश इवालोकमातनु शिशिरत्विषा ॥१८१॥

इति प्रदोषसमय जाते प्रस्पृष्टतारके । सौधोत्सगमुबो भेज्ज पुरप्रथ सह कामिमि ॥१८२॥

चन्दनद्रवसिक्ताङ्ग य स्तविष्य^१ साव्रतसिका । लसदाभरणा रजुस्तन्म्य कल्पलता इव ॥१८३॥

इ दुपाद समुत्कषमगाभकरकतन । तदोदवानिवोद्वेलो मनोवृत्तिषु कामिनाम् ॥१८४॥

रमणा^२ रमणीयाश्च चन्द्रपादा सचन्दना । मदांश्च मदनाभ्युत्थमातवन् रमणीजने ॥१८५॥

शशाङ्ककरनशास्त्रैस्तनयन्निखिल जगत् । नृपवल्लभिकावासा मनोभूरभ्यपेणयन्^३ ॥१८६॥

नास्त्रादि मदिरा स्वेर नाजघ्रे न करऽपिता । कवल मदनावेशात्तत्कण्यो भजुस्त्वताम्^४ ॥१८७॥

उत्सगसगिना भर्तुं काचिमदविधूर्णिता । कामिनी मोहनास्त्रेण बतानङ्गेन तर्जिता ॥१८८॥

सखीवचनमुल्लङ्घ्य भङ्गस्त्वा मान निरगता^५ । प्रयाती रमणावास काप्यनङ्गेन धीरिता^६ ॥१८९॥

शफलावचनदूना काचित् पयश्श्रुलोचना । चक्राह्वेय मृश तपे नायाति प्राणवल्लभ ॥१९०॥

नून्यगानस्वनै^७ खोणामलिज्याकलशकृतै^८ । पूवरगमिवानङ्गो रचयामास कामिनाम् ॥१९१॥

भी कठिन है ॥१८०॥ जिस प्रकार वैद्यके द्वारा तिमिर रोगको नष्ट करनेवाले हाथोंसे स्पर्श की हुई आँख धीरे धीरे अपना प्रकाश फलाने लगती है उसी प्रकार चन्द्रमाके द्वारा अंधकार को नष्ट करनेवाली किरणासे स्पर्श की हुई दिशाएँ धीरे धीरे अपना प्रकाश फलाने लगी थी ॥१८१॥ इस प्रकार जिसमें तारागण स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं ऐसा सायकालका समय होनेपर सब स्त्रियाँ अपने-अपने पतियोंके साथ महलोकी छतोंपर जा पहुँची ॥१८२॥ जिनके समस्त शरीरपर घिसे हुए चन्दनका लेप लगा हुआ है, जो मालाएँ धारण किये हुई हैं, कानोंमें आभूषण पहने हैं और जिनके समस्त आभरण देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसी वे स्त्रियाँ कल्पलताओंके समान सुगोमित हो रही थी ॥१८३॥ उस समय चन्द्रमाकी किरणोंसे जिस प्रकार समुद्र लहराता हुआ वृद्धिको प्राप्त होने लगता है उसी प्रकार कामी मनुष्योंके मनमें काम उद्बलित होता हुआ बढ़ रहा था ॥१८४॥ सुन्दर पति, चन्द्रमाकी किरणों और चन्दन सहित मद ये सब मिलकर स्त्रियोंमें कामकी उत्पत्ति कर रहे थे ॥१८५॥ चन्द्रमाकी किरणें रूपी विजयी शस्त्रोंके द्वारा समस्त जगत्को तिरस्कृत करता हुआ कामदेव राजाकी स्त्रियोंके निवासस्थानमें भी सेनासहित जा पहुँचा था ॥१८६॥ तरुण स्त्रियोंने न तो मदिराका स्वाद लिया, न इच्छा नुसार उसे सूँघा और न हाथमें ही लिया, केवल कामदेवके आवेशसे ही उत्कण्ठाकी प्राप्त हो गयी, अर्थात् कामसे विह्वल हो उठी ॥१८७॥ पतिकी गोदमें बैठी हुई और मदसे झूमती हुई कोई स्त्री कामदेवके द्वारा मोहन अस्त्रसे ताड़ित की गयी थी ॥१८८॥ कामदेवसे प्रेरित हुई कोई स्त्री सखीने वचन उल्लङ्घन कर तथा मान छोड़कर स्वतन्त्र हो अपने पतिके निवासस्थानको जा रही थी ॥१८९॥ कोई स्त्री पतिके न आनेपर वापस लौटी हुई दूतीके वचनोंसे दुखी होकर आँखोंसे आँसू छोड़ रही थी और चक्कीके समान अत्यन्त विह्वल हो रही थी — तड़प रही थी ॥१९०॥ नून्य हृदयसे गाय हुए स्त्रियोंके सुन्दर गीतोंसे तथा भ्रमरपंक्तिके मनाहर वचनोंसे कामदेव कामी पुरुषोंके लिए पूवरग अर्थात् नाटकके प्रारम्भमें होनेवाला एक अंग विना ही माना बना रहा था । भावार्थ — उस समय स्त्रियाँ पतियोंकी प्राप्तिके लिए बेमुश्किल हाथ लगा रही थी और उद्विग्न हुए भ्रमरोंकी गुजार फल रही थी जिसमें ऐसा मालूम होना था माना कामदेवकी नट कामक्रीडान्ध नाट्यक पहल होनेवाले संगीत विना ही शिल्ला रहा हो । नाट्यक पहल जा मंगल-संगीत होता है उस पूवरग बहुत है ॥१९१॥

१ मातृभारिण । २ प्रियतमा । ३ मन्त्राङ्गल । ४ सनया सहाभ्यगमयन् । ५ उत्कण्ठिताम् । ६ प्रविषय रहिता । ७ धय नाता । ८ वित्तगमादनहनुगोत्रविशय । ९ कलम्बनिभम् ।

‘गोत्रस्खलनसंवृद्धं मन्थुमन्थामनन्यजः’ । नोपैक्षिष्ट प्रियोत्संगमनयन्नवसंगताम् ॥१९२॥
 नेन्दुपादैर्धृतिं लेभे नोशीरर्न जलाद्र्या । खण्डिता मानिनी काचिदन्तस्तापे वलीयसि ॥१९३॥
 काचिदुत्तापिभिर्वाणैस्तापिताऽपि मनोभुवा । निनम्बिनी प्रतीकारं नैच्छद्वैर्यावलम्बिनी ॥१९४॥
 अनुरक्तया दूरं नीतया प्रणयोचिताम् । भूमिं यूनाऽन्यया मोढः सन्देशः परुषाक्षरः ॥१९५॥
 आलि^{१०} त्वं नालिक^{११} बृहि गतः किञ्च विलक्षनाम्^{१२} । प्रियानामा^{१३} क्षरः क्षीणैः मोहान्मय्यवतारितैः ॥
 यथा तव हृतं चेतस्तया लज्जाऽग्रहारि किम् । येन निरूप^{१४} भूयोऽपि प्रणयोऽस्मासु तन्यते ॥१९७॥
 सैवानुवर्तनीयो ते सुभगं मन्थमानिनी । अस्थाने योजिता प्रीतिर्जायतेऽनुशयाय^{१५} ते^{१६} ॥१९८॥
 इति प्राणप्रियां कांचिदसदिशन्ती^{१७} मन्थीजने । युवा सादरमभ्येन्य नानुनिन्ये^{१८} न मानिनीम् ॥१९९॥
 चन्द्रपादास्तपन्तीव चन्दनं दहतीव माम् । मंथुक्षयत इवाऽर्माभिः कामाग्निर्व्यजनानिलैः ॥२००॥

गोत्रस्खलन अर्थात् भूलसे किसी दूसरी स्त्रीका नाम ले देनेसे जिमका क्रोध बढ रहा है ऐसी किसी अन्य नवीन ब्याही हुई स्त्रीकी भी कामदेवने उपेक्षा नहीं की थी किन्तु उसे भी पतिके समीप पहुँचा दिया था । भावार्थ—प्रौढा स्त्रियोकी अपेक्षा नवोढा स्त्रियोमे अधिक मान और लज्जा रहा करती है परन्तु उस चन्द्रोदयके समय वे भी कामसे उन्मत्त हो सब मान और लज्जा भूलकर पतियोके पास जा पहुँची थी ॥१९२॥ जिस किमी स्त्रीका पति वचन देकर भी अन्य स्त्रीके पास चला गया था ऐसी अभिमानिनी खण्डिता स्त्रीके मनका सन्ताप इतना अधिक बढ गया था कि उसे न तो चन्द्रमाकी किरणोसे सन्तोष मिलता था, न उशोर (खस) से और न पखेसे ही ॥१९३॥ धीरज धारण करनेवाली कोई स्त्री कामदेवके द्वारा अत्यन्त पीडा देनेवाले बाणोसे दुःखी होकर भी उसका प्रतीकार नहीं करना चाहती थी । भावार्थ—अपने धैर्यगुणसे कामपीडाको चुपचाप सहन कर रही थी ॥१९४॥ कोई तरुण पुरुष प्रेमसे भरी हुई अपनी अन्य स्त्रीको प्रेम करने योग्य किसी दूर स्थानमे ले गया था, वहाँ वह उसके कठोर अक्षरोसे भरे हुए सन्देशको चुपचाप सहन कर रही थी ॥१९५॥ कोई स्त्री अपनी सखीसे कह रही थी कि हे सखि, सच कह कि क्या वह भ्रमसे मेरे विषयमे कहे हुए और अत्यन्त क्षीण अपनी प्रियाके नामके अक्षरोसे कुछ चकित हुआ था ? ॥१९६॥ कोई स्त्री अपने अपराधी पतिसे कह रही थी कि हे निर्लज्ज, जिसने तेरा चित्त हरण किया है क्या उसने तेरी लज्जा भी छीन ली है ? क्योंकि तू फिर भी मुझपर प्रेम करना चाहता है ॥१९७॥ कोई स्त्री पतिको ताना दे रही थी कि आप अपने आपको बडा सौभाग्यशाली समझते है इसलिए जाइए उसी मान करनेवाली स्त्रीकी सेवा कीजिए क्योंकि अयोग्य स्थानमे की गयी प्रीति आपके सन्तापके लिए ही होगी । भावार्थ—मुझसे प्रेम करनेपर आपको सन्ताप होगा इसलिए अपनी उसी प्रेयसीके पास जाइए ॥१९८॥ इस प्रकार सखियोके लिए सन्देश देती हुई किसी अहंकार करनेवाली प्यारी स्त्रीको उसका तरुण पति आकर बडे आदरके साथ नहीं मना रहा था क्या ? अर्थात् अवश्य ही मना रहा था ॥१९९॥ कोई स्त्री अपनी सखीसे कह रही थी कि ये चन्द्रमाकी किरणे मुझे सन्ताप दे रही है, यह चन्दन जला-सा रहा है और यह पखोकी हवा मेरी कामाग्निको बढा

१ नामस्खलन । २ प्रवृद्धक्रोधात् । ३ काम । ४ नववधूमित्यर्थ । ५ लामज्जकः । ‘मूलेऽस्योशीरसस्त्रियाम्’ ।
 ‘अभय नलद सेव्यममृणालं जलाशयम् । लामज्जक लघुलयमवदाहेष्टकापथे ।’ इत्यभिधानात् । ६ व्यजनेन ।
 ७ वियुक्ता । ८ सघानम् (शय्यागृहम्) । ९ वाचिकम् । १० भो सखि । ११ अनुत्तम् । १२ विस्मयान्विताम् ।
 १३ दिव्यै । १४ निर्लज्ज । १५ अह सुभगेति मन्थमाना रामा । १६ पश्चात्तापाय । १७ तव । १८ सज-
 लन्तीम् । वचन प्रेषयन्तीम् । १९ न्येऽथ ल०, द० । अनुनय नाकरोदिति न । (अपि तु करोत्येव) ।

तमानयानुनायह नय मा वा तद्वक्तिकम् । त्वदधीना मम प्राणा प्राणेशे बहुवल्लभे^१ ॥२०१॥
 इत्यनङ्गातुरा काचित् सदिशन्ती सरसीं मिथ^२ । मुञ्जेवरोधमाश्लेपि पत्या प्रत्यग्रत्नचिह्ना^३ ॥२०२॥
 राज्य मनोभवस्यास्मिन् स्वैरं ररम्यतामिति । कामिनीकलकाचीभिरुद्धोपीव घोषणा ॥२०३॥
 कर्णात्पलनिलीनालिकुलकोलाहलस्वने । उपजेप^४ किमु स्त्रीणां कणजाह^५ मनोमुवा ॥२०४॥
 स्तनाङ्गरागसमदा परिरम्भोऽतिनिदय । वधूधे कामिभृद्वेषु रभसश्च कचग्रह ॥२०५॥
 धारनकलुषा दृष्टिमुखमापात्^६ लाधरम् । रतात् कामिनामासात् सात्कृत वाऽसकृत्कृतम् ॥२०६॥
 पुष्पसमदसुरमीरास्त्रस्तजघनाश्रुकाम् । सभोगावसतौ^७ शय्या मिथुनान्यधिशेरत् ॥२०७॥
 कैश्चिद् वीरमटर्माविरणारम्भकृतोत्सवे । प्रियोपरोधा-मन्दच्छैरप्यासेषि रतोत्सव^८ ॥२०८॥
 कश्चिन् कात्यङ्गनासगमुससगकृतस्पृहा । प्रियाङ्गनापरिच्यङ्गमङ्गीचक्षुन मानिन ॥२०९॥
 निजितारिमटैर्मौग्या प्रिया मास्माभिरेयथा । इति जातिमया कश्चिन्न भजु शयनायपि ॥२१०॥
 शरत्तप्यगतानल्पसुससकल्पत पर । नाभ्यनन्दन् प्रियातत्तमनल्पच्छा भटोत्तमा ॥२११॥
 स्वकामिनीभिरारब्धवीरालापैर्मटे परै । विभावरी विमाताऽपि सा नावेदि रणोन्मुखै ॥२१२॥

सी रही है ॥२००॥ इसलिए मनाकर या तो उन्हें यहाँ ले आ या मुझे ही उनके पास ले चल, यह ठीक है कि प्राणपतिके अनेक स्त्रियाँ हैं इसलिए उन्हें मेरी परवाह नहीं है किन्तु मेरे प्राण तो उन्हींके अधीन हैं ॥२०१॥ इस प्रकार कामदेवसे पीड़ित होकर कोई स्त्री अपनी सखीसे सन्देश कह ही रही थी कि इतनेमें उस नवीन विरहिणी स्त्रीको पास हो छिपे हुए उसके पतिने दोना भुजाओंसे पकड़कर परस्पर आलिंगन किया ॥२०२॥ उस समय मनोहर शब्द करती हुई स्त्रियोंकी करवनियाँ मानो यही घोषणा कर रही थीं कि आप लोग कामदेवके इस राज्यमें इच्छानुसार क्रीडा करो ॥२०३॥ उन स्त्रियोंके कर्णफूलके कमलोंमें छिपे हुए भ्रमरोंके समूह कोलाहल कर रहे थे और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेव स्त्रियोंके कानोंके समीप लगकर कुछ गुप्त बातें ही कर रहा हो ॥२०४॥ उस समय कामी लोगोके समूहमें स्त्रियोंके स्तनोपर लगे हुए लेपको मदन करनेवाला और अत्यन्त निदय आलिंगन बढ़ रहा था तथा वेगपूर्वक केशाकी पकड़ा-पकड़ी भी बढ़ रही थी ॥२०५॥ सम्भोगके बाद कामी लोगोके नेत्र कुछ-कुछ लाल और कलुषित हो गये थे, मुख कुछ-कुछ गुलाबी अघरोसे युक्त हो गया था तथा उससे सी-सी शब्द भी बार-बार हो रहा था ॥२०६॥ सम्भोग क्रियाके समाप्त होनेपर स्त्री और पुरुष दोना ही उन शय्याओंपर सो गये जो कि फूलोंके सम्मर्दसे सुगन्धित हो रही थी और जिनपर खुलकर अधोवस्त्र पड़े हुए थे ॥२०७॥ जिन्हें होनेवाले युद्धके प्रारम्भमें बड़ा आनन्द आ रहा था ऐसे कितने ही शूरवीर योद्धाओंने इच्छा न रहते हुए भी अपनी प्यारी स्त्रियोंके आग्रहमें सम्भोग सुखका अनुभव किया था ॥२०८॥ कीर्तिरूपी स्त्रीके समागमसे उत्पन्न होनेवाला सुखमें जिनकी इच्छा लग रही है ऐसे कितने ही मानी योद्धाओंने अपनी प्यारी स्त्रियोंका आलिंगन स्वीकार नहीं किया था ॥२०९॥ 'जब हम लोग शत्रुके योद्धाओंको जीत लेंगे तभी प्रियाका उपभोग करेंगे अथवा नहीं ऐसी प्रतिज्ञा कर कितने ही स्वाभाविक शूरवीर शय्याआपर ही नहीं गये थे ॥२१०॥ बड़ी-बड़ी इच्छाआका धारण करनेवाला कितने ही उत्तम शूरवीरोंने बाणाकी शय्यापर सोनेसे प्राप्त हुए भारी सुखका संकल्प किया था इसलिए ही उन्होंने प्यारी स्त्रियाकी शय्यापर सोना अच्छा नहीं समझा था ॥२११॥ जिन्होंने अपनी स्त्रियाके साथ अनेक शूरवीरोंकी बयाएँ कहना प्रारम्भ किया है ऐसे युद्धके

१ बहुस्त्रीके सति । २ रक्षि । ३ नूतनविपुला । ४ रही बभाप । भेदुमत्र भूचित । ५ वणमूले । ६ गन्ध । ७ मुरवावधान । नास्माभि-४० द० ४०, ५० स०, ६० । ९ प्रभातापि ।

तमानयानुनीयेह नय मा था तदतिकम् । त्वद्धीना मम प्राणा प्राणेशे बहुबलमे ॥२०१॥
 इत्यनङ्गातुरा काचित् सदिशन्ती सखीं मिथ २ । भुजोपरोधमाश्लेषि पत्न्या प्रत्यग्रखण्डिता ३ ॥२०२॥
 राय मनोभवस्यास्मिन् स्वैर ररम्यतामिति । कामिनीकलकांचीमिरुद्धोपीव घोषणा ॥२०३॥
 कर्णात्खलनिलीनालिकुलकोलाहलस्वनै । उपजपे ४ किमु खीणो कणजाह ५ मनोमुषा ॥२०४॥
 स्तनाङ्गरागसमर्दो परिरम्भोऽतिनिदय । वधूधे कामिघृ-देषु रमसञ्च कचग्रह ॥२०५॥
 भारककलुषा दष्टिमुखमापा ६ लाघरम् । रतान्त कामिनामासीत् सीकृत वाऽसकृत्कृतम् ॥२०६॥
 पुष्पसमदसुरभीरास्तजघनाञ्जुकाभ् । समोगावसतौ ७ शय्या मिथुनान्यधिशेरत् ॥२०७॥
 कैश्चिद् वीरमटैर्भाविरणारम्भकृतोत्सवै । प्रियोपरोधा-म-देच्छैरप्यासेवि रतोत्सव ॥२०८॥
 कचिन् कीत्यङ्गनासगमुत्ससगकृतस्पृहा । प्रियाङ्गनापरिप्लव्गमङ्गीचक्रुन् मानिन ॥२०९॥
 निजितारिमटैर्भोग्या प्रिया मास्मानि-र-यथा । इति जातिमदा कचिन्न भञ्ज शयनान्यपि ॥२१०॥
 शरतरुपगतानरुपसुत्सकल्पत परे । नाभ्यनन्दन् प्रियातहमनस्येच्छा भटोत्तमा ॥२११॥
 स्वकामिनीभिरार-धवारालापैर्मटै परै । विभावरी विमाताऽपि ८ सा नात्रेदि रणो-मुखै ॥२१२॥

सो रही है ॥२००॥ इसलिए मनाकर या तो उन्हें यहा ले आ या मुसे ही उनके पास ल चल, यह ठीक है कि प्राणपतिके अनेक स्त्रिया हैं इसलिए उन्हें मेरी परवाह नहीं है किन्तु मेरे प्राण तो उन्हीके अधीन हैं ॥२०१॥ इस प्रकार कामदेवसे पीडित होकर कोई स्त्री अपनी सखीसे सन्देश कह ही रही थी कि इतनेमें उस नवीन विरहिणी स्त्रीको पास ही छिपे हुए उसके पतिने दोनों भुजाओसे पकडकर परस्पर आलिंगन किया ॥२०२॥ उस समय मनोहर शब्द करती हुई स्त्रियोकी करधनिया मानो यही घोषणा कर रही थीं कि आप लोग कामदेवके इस राज्यमें इच्छानुसार क्रीडा करो ॥२०३॥ उन स्त्रियोके कणफूलके कमलोंमें छिपे हुए भ्रमरोंके समूह कोलाहल कर रहे थे और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेव स्त्रियोंके कानोंके समीप लगकर कुछ गुप्त बातें ही कर रहा हो ॥२०४॥ उस समय कामी लोगोंके समूहमें स्त्रियोंके स्तनोंपर लगे हुए लेपको मदन करनेवाला और अत्यन्त निदय आलिंगन बढ रहा था तथा वेगपूर्वक केशाकी पकडा-पकडी भी बढ रही थी ॥२०५॥ सम्भोगके बाद कामी लोगोंके नेत्र कुछ-कुछ लाल और कलुषित हो गये थे, मुख कुछ-कुछ गुलाबी अधरोसे युक्त हो गया था तथा उसमें सी-सी शब्द भी बार-बार हो रहा था ॥२०६॥ सम्भोग क्रियाके समाप्त होनेपर स्त्री और पुरुष दोनों ही उन शय्याओंपर सो गये जो कि फूलोंके सम्मर्दसे सुगन्धित हो रही थी और जिनपर सुलकर अधोवस्त्र पडे हुए थे ॥२०७॥ जिन्हें होनेवाल युद्धके प्रारम्भमें बडा आनन्द आ रहा था ऐसे कितने ही गुरवीर योद्धाओंने इच्छा न रहते हुए भी अपनी प्यारी स्त्रियाके आग्रहसे सम्भोग सुखका अनुभव किया था ॥२०८॥ कीर्तिरूपी स्त्रीके समागमसे उत्पन्न होनेवाल सुखम जिनकी इच्छा लग रही है ऐसे कितने ही मानी योद्धाओंने अपनी प्यारी स्त्रियाका आलिंगन स्वीकार नहा किया था ॥२०९॥ 'जब हम लोग शत्रुके योद्धाआवो जीत लेंगे तभी प्रियाका उपभोग करेंगे अन्यथा नहीं ऐसी प्रतिज्ञा कर कितने ही स्वाभाविक गुरवीर गम्याआपर ही नहीं गय थे ॥२१०॥ बडी-बडी इच्छाआका धारण करनेवाले कितने ही उत्तम गुरवीराने बाणाकी गम्यापर सोनेसे प्राप्त हुए भारी सुखका सत्त्व किया था इमन्त्रि ही उन्होंने प्यारी स्त्रियाकी गम्यापर सोना अच्छा नहीं समझा था ॥२११॥ जिहने अपनी स्त्रियाके साथ अनेक गुरवीराकी क्याएँ कहना प्रारम्भ किया है ऐसे युद्धके

१ बहुभीने मनि । २ रहसि । ३ नूतनविभूषता । ४ रही बभाष । अङ्कुमत्र भूषित । ५ वचनूके । ६ स्तनाङ्ग । ७ मुस्तावगान । नास्मानि-य ८ य० प० स०, ६० । ९ प्रमानापि ।

केचिद्विष्णुस्यैवमनसोऽपि पञ्च विष्णुः । तान्मन्त्रान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२१३॥

प्रहारकर्कशो दृष्टदशनः प्रणिष्टः । तान्मन्त्रान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२१४॥

स्तानुवर्तने गात्रपरिभ्रंशगर्भे । तान्मन्त्रान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२१५॥

द्वन्द्ववर्धनं तान्मन्त्रान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२१६॥

तामामकृतकन्तेनमः ॥२१७॥ तान्मन्त्रान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२१८॥

तेषां निधुवनाश्चमन्त्रमिमांसा ॥२१९॥ तान्मन्त्रान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२२०॥

अथ वनं चिरं तन्मन्त्रं तान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२२१॥ तान्मन्त्रान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२२२॥

विघटनं तान्मन्त्रं तान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२२३॥ तान्मन्त्रान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२२४॥

तावदात्मनो दिनान्मन्त्रं तान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२२५॥ तान्मन्त्रान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२२६॥

किरणैस्तन्मन्त्रं तमः तान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२२७॥ तान्मन्त्रान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२२८॥

कोकान्तानुगणेन मम पञ्चमः तान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२२९॥ तान्मन्त्रान्मन्त्रं चैव मन्त्रस्य भवः ॥२३०॥

सन्मुख हुए अन्य योद्धा लोगोंने मन्त्रों को भी नहीं जाना नहीं पड़ी थी । भावार्थ — कथाएँ कहते-कहते गति नमान हो गयी मन्त्रों को भी उन्हें मालूम नहीं हुआ ॥२१२॥ युद्ध आरंभभोगमें एक-ना जानन् माननेवाले तिनने ही गोनगोना चित्त यद्यपि युद्ध के रसमें आमक्त हो रहा था तथापि उन्होंने नामने प्राप्त हुए गोनभोगके रसका भी इच्छा-नुसार उपभोग किया था ॥२१३॥ उन योद्धाओंने गणके प्रारम्भके नमान ही मभोगका प्रारम्भ किया था, क्योंकि जिस प्रकार गणका प्रारम्भ पण्णन्के प्रहारे (चोटों) से कठोर होता है उसी प्रकार सभोगका प्रारम्भ भी पण्णन्के प्रहारे अर्थात् कचगह, नन्वक्षत आदिसे कठोर था, और जिस प्रकार गणका प्रारम्भ होंठ चबाये जानेसे निर्दय होता है उसी प्रकार सभोगका प्रारम्भ भी होंठोंके चुम्बन आदिसे निर्दय था ॥२१४॥ काममें पीड़ित हुई कितनी ही स्त्रियाँ पतियोका गाढ आलिंगन कर, चुम्बनके लिए उन्हें अपना मुख देकर और उनके साथ सभोगकर उनका मन हरण कर रही थी ॥२१५॥ आधी नजरसे देखना, भीतर-ही-भीतर हँसते हुए अव्यक्त शब्द कहना, असमयमें रस जाना, बड़ी तेजीके साथ करवट बदलना, भौहोको आड़ी तिरछी चलाना और स्वाभाविक स्नेहमें भरा हुआ झूठा छल-कपट दिखाना आदि स्त्रियों-के अनेक व्यापारोंसे सभोगका एक दीर नमान हो जानेपर भी कामी पुरुषोंका पुन सभोग प्रारम्भ हो रहा था और बड़ा ही रमिला था ॥२१६-२१७॥ उस समय वह रात्रि पोदन-पुरके स्त्री-पुरुषोंके उस बड़े हुए सभोगको देख नहीं सकी थी इसलिए ही मानो उलट पड़ी थी अर्थात् समाप्त हो चुकी थी — प्रातः कालके रूपमें बदल गयी थी ॥२१८॥ जिसका चन्द्रमा-रूपी मुख नीचेकी ओर लटक रहा है ऐसी पश्चिम दिशारूपी स्त्री मानो यही कहती हुई खड़ी थी कि हे स्त्री पुरुषो, रहने दो, बहुत देर तक क्रीडा कर चुके, नहीं तो तुम दोनों ही दुःख पाओगे ॥२१९॥ सूर्यने सायकालके समय चकवा-चकवियोंको परस्पर अलग-अलग किया था इसी सन्तापसे व्याप्त हुआ मानो वह फिरसे उदय होने लगा ॥२२०॥ इतनेमें ही दिनका प्रारम्भ हुआ, रात्रिका अन्धकार विलीन हो गया और सूर्यने अपनी किरणोंके समूहसे पूर्व-दिशाका आलिंगन किया ॥२२१॥ रात्रिका अन्धकार तो सूर्यकी लाल किरणोंसे ही नष्ट हो गया था अब तो सूर्यको केवल दिनरूपी लक्ष्मीका आलिंगन करना बाकी रह गया था ॥२२२॥ सूर्य चकवियोंके अनुरागके साथ-ही-साथ कमलोकी शोभा बढ़ा रहा था और उदय

१ गाढ परि ल० । २ अव्यक्तभाषणः । ३ विषमभ्रुभिः । ४ प्रलय गता । ५ ताम्यता ल० । ६ विघटन-कृतैः । ७ व्याप्त । ८ आलिङ्गन प्रकार । ९ आलिङ्गनम् । १० -गद्गच्छन् ल०, द० ।

तम कवाटमुद्घाट्य दिक्षुलानि प्रकाशयन् । जगद्बुद्धादिताक्ष^१ वा व्यधादुष्णकर^२ करै ॥२२४॥
 'प्रातस्तारामथोत्थाय पद्माकरपरिमहम् । तन्मन् भानु प्रतापन जिगीषोवृत्तिम^३वगात्^४ ॥२२५॥
 सुकण्ठा पदुरयुच्चै प्रसो प्राबोधिकास्तदा । स्वय प्रबुद्धमप्यन प्रबोधेन^५ युयुक्षव^६ ॥२२६॥

हरिणीच्छद

अशिशिरकरो लोकानदी जनैरभिनन्दितो
 बहुमतकर तेजस्तन्वक्षितोऽयमुदेप्यति ।
 नृधर जगतामुद्योताय स्वमप्युदयोचित
 विधिमनुसरन्^१ शय्योत्सग जहीहि मुदे श्रिय ॥२२७॥
 कतरकतम^२ नाक्रान्तास्ते^३ बलैर्बलशालिनो
 भुजबलमिद लोक प्रायो न वेत्ति तवात्मक ।
 भरतपतिना सार्द्धं युद्धे जयाय कृतोद्यमो
 नृपधर भवान् मूयाद् मर्ता नृवीरजबन्धिव ॥२२८॥
 रविरविरलानभ्रन्^४ जातानिवाभ्रमशालिनां
 तुहिनकणिकपातानां^५ प्रमृज्य करोत्करै ।
 अयमुदयति प्रासानन्दैरितोऽम्बुजिनीवनै
 उदयसमये प्रयुयातो^६ घृताग्रमिवाऽम्बुजै ॥२२९॥

होते ही चाँदनीकी शोभाको भी चुराता जाता था - नष्ट करता जाता था ॥२२३॥ सूर्यने अपने किरणरूपी हाथोंसे अधकाररूपी किवाड़ खोलकर दिशाओंके मुँह प्रकाशित कर दिये थे और समस्त जगत् नेत्र खोल दिये थे ॥२२४॥ वह सूर्य विजयकी इच्छा करनेवाला किसी राजाकी वृत्तिका अनुकरण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार विजयकी इच्छा करनेवाला राजा बड़े सबेरे उठकर अपने प्रतापसे पद्माकर अर्थात् लक्ष्मीका हाथ स्वीकार करता है उसी प्रकार सूर्य भी बड़े सबेरे उदय होकर अपने प्रतापसे पद्माकर अर्थात् कमलोंके समूहको स्वीकार कर रहा था - अपने तेजसे उन्हें विकसित कर रहा था ॥२२५॥ यद्यपि उस समय महाराज बाहुवली स्वयं जाग गये थे तथापि उन्हें जगानेका उद्योग करते हुए सुन्दर कण्ठवाला बन्दीजन जोर-जोरसे नीचे लिखे हुए भंगलपाठ पढ़ रहे थे ॥२२६॥ हे पुरुषोत्तम, जो लोगोंको आनन्द देनेवाला है और लोग जिसकी प्रशंसा कर रहे हैं ऐसा यह सूर्य सब लोगोको अच्छा लगनेवाला तेजको फैलाता हुआ इधर पूव दिशासे उदय हो रहा है इसलिए आप भी जगत्को प्रकाशित और लक्ष्मीको आनन्दित करनेके लिए सूर्योदयके समय होनेवाली योग्य क्रियाओंको करते हुए गय्याका मध्यभाग छोड़िए ॥२२७॥ हे राजाओंमें श्रेष्ठ, आपकी सेनाओंने कितने-कितने बलशाली राजाआपर आक्रमण नहीं किया है ये छोटे छोटे लाग प्राय आपकी भुजाओंके बलको जानते भी नहीं हैं । हे नरवीर, आपने भरतेस्वरके साथ युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिए उद्यम किया है इसलिए विजयलक्ष्मीके स्वामी आप ही हैं ॥२२८॥ हे देव, बगीचेके वृक्षापर पड़ी हुई आगकी बूँदोंका निरन्तर पड़ते हुए आँसुओंके समान अपनी किरणोंके समूहसे शीघ्र ही पाछता हुआ यह सूर्य उदय हो रहा है और उदय होते समय ऐसा जान पड़ता है मानो कमलिनियाँ वन जिन्हें आनन्द प्राप्त हो रहा है ऐसे कमलोंके द्वारा अच्छे स्वर उभरी

१ विवर्तनचक्र । २ अतिगपप्रान्तवाले । ३ अनुकरोति स्म । ४ प्रवाचन - ६० ८० । ५ योऽनुमिच्छति । ६ अनुगच्छन् । ७ वे के । ८ नव । ९ जयशत्रु । १० गताया - ८ ६० । ११ प्रतिगद्गीत ।

अथमनुसरन् कोकः कान्ता तटान्तरगायिनी-

मधिरलगलद्वापव्याजाट्टिबोन्मृजनां शुचम् ।

विशति विमिनीपत्रच्छन्ना मरोजमरस्तटी

नरमिजरजःकणौ पक्षौ विधय जनैः जनैः ॥२३०॥

जरठविमिनीकन्दच्छायासुपस्तरलास्त्रिप-

स्तुहिनकिरणो द्विक्पर्यन्तादय प्रतिमररु ।

अनुकुमुदिनीपण्ड तन्वन करानमृतश्च्युतो

द्रव्यति परिचङ्गासग त्रियोगभयादिव ॥२३१॥

तिमिरकणिं यूथ भिन्ना तदम्परिलुना-

मिव तनुमय त्रिभ्रच्छां निगाककम्परी ।

वनमिव नभ क्रान्त्वाऽस्ताद्रेगुहागहनान्यत-

श्रयति निपत निद्रासगाद् विजिह्वितनारक ॥२३२॥

सरति सरमीतीर हंसः मयारमकृजित

अटिति घटते कोकद्वन्द्व विशापमिवाधुना ।

पतति पतता वृन्द विचक् द्रुमेषु कृतारु

गतमिव जगन्प्रत्यापत्ति ममुग्रति भास्वति ॥२३३॥

उदयगिरिग्रावश्रेणीमरोस्तरागिगी

गगनजलधेरातन्वाना प्रवालवनश्रियम् ।

दिशिभवदने मिन्दूरश्रीरलक्तकपाटला

प्रमरतितरा सन्ध्यादीसिर्दिगाननमण्डनी ॥२३४॥

अगवानी ही कर रहे हो ॥२२९॥ इधर देखिए, जो दूसरे किनारेपर सो रही है और निरन्तर वहते हुए आँसुओके वहानेसे जो मानो शोक ही छोड़ रही है ऐसी अपनी स्त्री चकवीके पीछे-पीछे जाता हुआ यह चकवा कमलोके परागसे भरे हुए अपने दोनों पखोको झटकाकर कमलि-नियोके पत्तोसे ढके हुए कमलसरोवरके तटपर धीरे-धीरे प्रवेश कर रहा है ॥२३०॥ यह चन्द्रमा पके हुए मृणालकी कान्तिको चुरानेवाली अपनी कान्तिको सब दिशाओके अन्तसे खींच रहा है तथा अमृत वरसानेवाली अपनी किरणोको प्रत्येक कुमुदिनियोके समूहपर फेलाता हुआ वियोगके डरसे ही मानो उनके साथ आलिङ्गनके सम्बन्धको दृढ़ कर रहा है ॥२३१॥ जो अन्धकाररूपी हाथियोके समूहको भेदन कर उनके रक्तसे ही तर हुएके समान लाल-लाल दिखनेवाले शरीर (मण्डल) को धारण कर रहा है तथा नीद आ जानेसे जिसकी नक्षत्ररूपी आँखोकी पुतलियाँ तिरोहित अथवा कुटिल हो रही हैं ऐसा यह चन्द्रमारूपी सिंह वनके समान आकाशको उल्लघन कर अब अस्ताचलकी गुहारूप एकान्त स्थानका निश्चित रूपसे आश्रय ले रहा है ॥२३२॥ सूर्य उदय होते ही हंस, सारस पक्षियोकी बोलीसे सहित सरोवरके किनारे-पर जा रहे हैं, चकवा चकवियोके जोड़े परस्परमे इस प्रकार मिल रहे हैं मानो अब उनका शाप ही दूर हो गया हो, पक्षियोके समूह चारो ओर शब्द करते हुए वृक्षोपर पड़ रहे हैं और यह जगत् फिरसे अपने पहले रूपको प्राप्त हुआ-सा जान पड़ता है ॥२३३॥ उदयाचलकी चट्टानोपर पैदा होनेवाले कमलोके समान लाल तथा आकाशरूपी समुद्रमे मूँगाके वनकी

१ अभिनिवेशात् । २ वक्रिततारक । अक्ष कनीनिकेति ध्वनि । ३ विगतशापम् । आक्रोशमित्यर्थ । ४ आश्रयति । ५ पक्षिणाम् । ६ कृतसमन्ताद् ध्वनिः । कृतारव ल० । ७ पूर्वस्थितिम् । ८ उदिते सति । ९ आदित्ये । १० विद्रुम । ११ मण्डयतीति मण्डनी ।

कमलमलिनी नाल^१ वण्टु^२ मत प्रविकस्वर
 गतमरुता बालाकस्य प्रसारिमिरझुभि ।
 परिगतमिव^३ प्रादुष्यन्ति कणैरनिलाचिषां
 नियतविपद धिग् व्यामूढि विवेकपराङ्मुखीम् ॥२३५॥
 उपनततरुनाधुवाना विलोलितपट्पदा
 कृतपरिचया वीचीचक्रे सरस्सु सरोरहाम् ।
 रतिपरिमलानाकथत सरोजरजो जडा^४
 प्रलिदिशममी मन्द वान्ति^५ प्रगतनभारता ॥२३६॥

मालिनीच्छन्द

नृपवर जिनभतुमङ्गलैरभिरिष्टै
 प्रकटितजयघोषस्त्व विबुध्यस्व भूय ।
 भवति निखिलविघ्नप्रप्रशान्तियतस्त
 रणशिरसि जयश्रीकामिनी कामुकस्य ॥२३७॥
 जयति दिविननाथै प्राप्तपूजद्धिरहन्
 धुतदुरितपरागो धीतरागोऽपराग^६ ।
 कृतनतिशतयन्त्र प्रबलन्मालिरज
 ञ्छुतिरुचिररोचिमजरीपिञ्जराङ्गभि ॥२३८॥

शोभा फलाती हुई, दिशारूपी हाथियोंके मुखपर सिन्दूरके समान दिखनेवाली, महावरके समान गुलाबी और दिशाओंके मुखोंको अलङ्कृत करनेवाली यह प्रभात-सन्ध्याको कान्ति चारों ओर बढी तेजीसे फैल रही है ॥२३४॥ हे नाथ, यह खिला हुआ कमल लाल सूर्यकी फैलने वाली किरणोंसे लाल-लाल हो रहा है और ऐसा मालूम होता है मानो अग्निके फैलते हुए फुल्लों से व्याप्त ही हो रहा हो तथा इसी भयसे यह भ्रमरी उसमें प्रवेश करनेके लिए समथ नहीं हो रही है । आचार्य कहते हैं कि जिसमें आपत्ति सदा निश्चित रहती है और जो विवेकसे पराङ्मुख है ऐसी मूर्खताको धिक्कार है ॥२३५॥ हे राजन्, जो उपवनके वृक्षोंको हिला रहा है, भ्रमरों को चंचल कर रहा है जिसने कमलोंके तालाबमें लहरोके साथ परिचय प्राप्त किया है, जो स्त्री-पुरुषोंके सभोगकी सुगंधको सींच रहा है और जो कमलोंके परागसे भारी हो रहा है ऐसा यह प्रातःकालका वायु सब दिशाओंमें धीरे धीरे बह रहा है ॥२३६॥ हे राजाओंमें श्रेष्ठ, जिनमें जय-जयकी घोषणा प्रकट रूपसे की गयी है ऐसे जिनेन्द्र भगवात्के इन इष्ट मंगलोंसे आप फिरेम जग जाइए क्योंकि इहाँ मंगलाङ्ग द्वारा रणके अग्रभागमें विजयलक्ष्मी रूपी स्त्रीको चाहने वाले आपका समस्त विघ्नाकी अच्छी तरह शान्ति हागी ॥२३७॥

अनेक इन्द्रादि द्वारा जिन्हें पूजाकी श्रद्धा प्राप्त हुई है जिन्होंने पापरूपी धूल नष्ट कर डाली है, जो धीतराग हैं — जिन्होंने रागद्वय नष्ट कर लिये हैं और नमस्कार करते हुए इन्द्रादि देवीय मान मुकुटके रत्नसि मिली हुई सुन्दर किरणोंकी मंजरीस जिनके चरण कुछ-कुछ पील हो

१ भवमय । २ प्रवेशाय । ३ व्याप्तम् । ४ मुरतमभय दम्पत्यनुभुक्त्वस्तूपाकपुराणपरिमलान । ५ मन्त्र । ६ प्रातःकाल भव । ७ धीतरागः । ८ इन्द्र । ९ व्याप्त ।

जयति जयविलास सूच्यते यस्य पौण्य-

रलिकुलतरुगर्मनिर्जितानङ्गमुक्तेः ।

^१ अनुपदयुगमन्त्रं भङ्गशोकादिवाचि-

एकतकरुणनिनादं सोऽयमाद्यो जिनन्द्र ॥२३०॥

जयति जितमनोभूर्भूरिदामां स्वयम्भू-

जिनपतिरपराग^३ क्षालिताग पराग ।

मुरमुकुटविट्कोदृढ^४ पादाम्बुजश्रीः-

जगद् जगद्गारप्रान्तविश्रान्तबोधः ॥२४०॥

जयति मदनवाणैरक्षतान्मापि योऽधान^५

त्रिभुवनजयलक्ष्मीकामिनी वक्षमि स्वे ।

स्वयमवृत्त च मुक्तिप्रेयसी य विरूपा^६-

प्यनन्तरं सुगताति तन्वती सोऽयमर्हन् ॥२४१॥

जयति समरभेरीभैरवारावभीम

बलमरचि न कृजच्चण्डकोटण्डकाण्डम् ।

भ्रुकुटिकुटिलमास्य येन नाकारि वोच्चैः

मनमिजरिपुधाने सोऽयमाद्यो जिनेश^७ ॥२४२॥

स जयति जिनराजो दुर्विभाव^८ प्रभावः

प्रभुरभिभवितु य^९ नाशकन्मारवा^{१०}रः ।

द्विविजविजयद्वारुडगर्वोऽपि^{११} गर्व

न हृदि हृदिशयोऽधाद् यत्र^{१३} ^{१४}कुण्ठास्त्रवीर्यः ॥२४३॥

रहे हैं ऐसे श्री अर्हन्तदेव सदा जयवन्त रहे ॥२३८॥ जिनके भीतर भ्रमरोके समूह गुजार कर रहे हैं और उनसे जो ऐसे मालूम होते हैं मानो अपनी पराजयके शोकसे रोते हुए कामदेवके करुण क्रन्दनको ही प्रकट कर रहे हो तथा उसी हारे हुए कामदेवने अपने पुष्परूपी शस्त्र भगवान्के चरण-युगलके सामने डाल रखे हो ऐसे पुष्पोके समूहसे जिनके विजयकी लीला सूचित होती है वे प्रथम जिनन्द्र श्री वृषभदेव जयवन्त हो ॥२३९॥ जिन्होंने कामदेवको जीत लिया है, जिनका तेज अपार है, जो स्वयम्भू हैं, जिनपति हैं, वीतराग हैं, जिन्होंने पापरूपी धूलि धो डाली है, जिनके चरणकमलोकी शोभा देव लोगोने अपने मुकुटके अग्रभागपर धारण कर रखी है और जिनका ज्ञान लोक-अलोकरूपी घरके अन्त तक फैला हुआ है ऐसे श्री प्रथम जिनन्द्र सदा जयवन्त रहे ॥२४०॥ जिनकी आत्मा कामदेवके बाणोसे घायल नहीं हुई है तथापि जिन्होंने तीनो लोकोकी जयलक्ष्मीरूपी स्त्रीको अपने वक्ष स्थलपर धारण किया है और मुक्तिरूपी स्त्रीने जिन्हे स्वयं वर बनाया इसके सिवाय वह मुक्तिरूपी स्त्री विरूपा अर्थात् कुरूपा (पक्षमे आकाररहित) होकर भी जिनके लिए उत्कृष्ट सुख-समूहको बढा रही है वे अर्हन्तदेव सदा जयवन्त हों ॥२४१॥ जिन्होंने जगद्विजयी कामदेवरूपी शत्रुको नष्ट करनेके लिए न तो युद्धके नगाडोके भयकर शब्दोसे भीषण तथा शब्द करते हुए धनुषोसे युक्त सेना ही रखी और न अपना मुँह ही भौहोसे टेढा किया वे प्रथम जिनन्द्र भगवान् वृषभदेव सदा जयवन्त रहे ॥२४२॥ जो सब जगत्के स्वामी हैं, कामदेवरूपी योद्धा भी जिन्हे जीतने-

१ पदयुगसमीपे । २ बहलतेजा । ३ अपगताराग । ४ बलम्भा वृत्त । ५ लोकालोकालयप्रान्त । ६ धारयति स्म । ७ अमूर्तापि, कुरूपापीति ध्वनि । ८ अप्रमितसुखपरम्पराम् । ९ जिनन्द्र ल०, द० । १० अचिन्त्य । ११ समर्थो ना भूत् । १२ अत्यर्थ । १३ सर्वज्ञे । १४ मन्द । 'कुण्ठो मन्द क्रियासु च' इत्यभिधानात् ।

जयति तरुशोको दुन्दुभि पुष्पवर्ष^१
 चमरिहसमत विष्टर सैहमुदम्^२ ।
 वचनमसममुच्चैरातपत्र च तज^३
 त्रिभुवनजयचिह्न यस्य^४ सार्वो जिनोऽसौ ॥२४४॥
 जयति जननतापच्छेदि यस्य क्रमाब्ज
 विपुलफलदमाराधनाकीन्द्रभृङ्गम् ।
 समुपनतजनाना प्रीणन कल्पवृक्ष
 स्थितिमतनुमहिम्ना सोऽवतात्तीर्यकृद् ॥२४५॥
 नृवर भरतराज्योऽप्यूर्जितस्यास्य युष्मद्
 भुजपरिघयुगस्य प्राप्नुयाच्चैव कक्षाम्^५ ।
 भुजबलमिदमास्तौ दृष्टिमात्रेऽपि कस्त
 रणनिधकगतस्य स्थातुमीश क्षितीश ॥२४६॥
 तदलमधिप कालक्षेपयोगेन निद्रा
 जहिहि महति कृ य आगरुकस्त्वमधि^६ ।
 सपदि च जयलक्ष्मीं प्राप्य भूयोऽपि देव
 जिनमवनम^७ भक्त्या शासितार जयाय ॥२४७॥
 हरिणीच्छन्द
 इति समुचितरचैरुच्चावचैरयमङ्गलै
 मुद्यन्तिपदभूयोऽस्मीभिजयाय विबोधित ।
 क्षयनममुचिन्निद्रापायान् स पार्थिवकुञ्जर
 सुरगज इषोत्सग गङ्गाप्रतीरमुख शनै ॥२४८॥

के लिए समर्थ नहीं हो सका तथा जिनके सामने, देवोंको जीतनेसे जिसका अहंकार बढ़ गया है
 ऐसा कामदेव भी शस्त्र और सामर्थ्यके कुण्ठित हो जानेसे हृदयम अहंकार धारण नहीं कर
 सका ऐसे अचिन्त्य प्रभावके धारक वे प्रसिद्ध जिनेन्द्रदेव सदा जयवन्त रहें ॥२४३॥ अशोक वृक्ष,
 दुन्दुभि पुष्पवृष्टि, चमर, उत्तम सिंहासन, अनुपम वचन, ऊँचा छत्र और भामण्डल ये आठ
 प्रातिहाय जिनके तीना लोकाको जीतनेके चिह्न ह वे सबका हित करनेवाले श्री वृषभ
 जिनेन्द्र सदा जयवन्त रहे ॥२४४॥ जिनके चरणकमल जन्मरूप सन्तापको नष्ट करनेवाले ह,
 स्वर्ग मोक्ष आदि बड़े-बड़े फल देनेवाले हैं, दूरसे नमस्कार करते हुए इन्द्र ही जिनके भ्रमर हैं
 और जो गारुड आय हुए लोगोंको कल्पवृक्षके समान सन्तुष्ट करनेवाले हैं ऐसे वे तीर्थंकर
 भगवान् सदा विजयी हों और अपने विशाल माहात्म्यसे तुम सबकी रक्षा करें ॥२४५॥
 हे पुरुषोत्तम महाराज भरत भी आपके दोना भुजारूपी अर्गलदण्डोंकी तुलना नहीं प्राप्त कर
 सकत हैं अथवा भुजाआका बल तो दूर रहे जब आप युद्धके निकट जा पहुँचते ह तब आपके
 दगने मात्रस ही ऐसा वीर राजा ह जो आपके सामने खड़ा रहनेके लिए समय हो सके ॥२४६॥
 इसलिए ह अधीश्वर, समय यतीत करना व्यर्थ है, निद्रा छोड़िए इस महान् कायम सदा जाग
 रुक रहिए और शीघ्र ही विजयलक्ष्मीका पाकर अन्य सत्र जगह विजय प्राप्त करनेके लिए सत्रपर
 गमन करनेवाले द्वाधिव जिनद्रदवकी भक्तिपूर्वक फिरसे नमस्कार कीजिए ॥२४७॥
 इस प्रकार जिनम अच्छ अच्छ पन्नाकी याचना की गयी है एस अनेक प्रकार

१ प्रस्तुतम् । २ प्रभामण्डलम् । ३ नवहित । ४ समानताम् । ५ तद् कारणम् । ६ जागरणीयम् ।
 ७ भव । ८ नमस्तुम् । ९ मानाद्वरार ।

जयकरिघटायन्धै^१ रुन्धन^२ दिशो मदविहलै-

^३र्वलपरिवृटैरारुढश्रीरुदृढपराक्रमः ।

^४नृपकतिपयैरारादेन्य प्रणम्य दिदक्षितो

भुजवलि युवा भेजे मेन्यैर्भुव ममरोचिनाम् ॥२४६॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणमहापुराणसंग्रहे

कुमारबाहुवलिरणोद्योगवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशत्तम पर्व ॥३१॥



उत्कृष्ट तथा राजाओके योग्य, विजय करानेवाले मगल-गीतोके द्वारा बाहुवली महाराज विजय प्राप्त करनेके लिए जगे और जिस प्रकार ऐरावत हाथी निद्रा छूट जानेसे गंगाके किनारेकी भूमिका साथ धीरे-धीरे छोड़ता है उसी प्रकार उन्होंने भी निद्रा छूट जानेसे धीरे-धीरे गय्याका साथ छोड़ दिया ॥२४८॥ सेनाके मुख्य-मुख्य लोगोंके द्वारा जिसकी शोभा बढ रही है, जो स्वयं विशाल पराक्रम धारण किये हुए है और कितने ही राजा लोग दूर-दूरसे आकर प्रणाम करते हुए जिसे देखना चाहते हैं ऐसा वह तरुण बाहुवली मदोन्मत्त विजयी हाथियोंकी घटाओसे दिशाओको रोकता हुआ सेनाके साथ-साथ युद्धके योग्य भूमिमें जा पहुँचा ॥२४९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत तिरसठगलाकापुरुषोका

वर्णन करनेवाले महापुराणमग्रहमें कुमार बाहुवलीके युद्धका उद्योग

वर्णन करनेवाला पैतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।



षट्त्रिंशत्तमं पर्व

अथ दूतवचश्चण्डमरुदाज्ञातपूर्णिता । प्रवचाल बलाम्भोधिर्जिष्णोराकृष्य रोदसी ॥१॥
 सादृश्यामिक्यो^१ महाभेयस्तदा भार प्रदध्नुः । यद्वा नै साध्विम भेजु^२ खड्गम्यग्रा नमश्चरा ॥२॥
 बलानि प्रविमक्तानि^३ निधीशस्य विनिययु । पुर पादातमश्वीयमारादाराच्च^४ हास्तिकम् ॥३॥
 रथकल्यापरिक्षेपो^५ बलस्योमथपशयो^६ । अग्रत पुष्टतश्वासीदूर्ध्वं च खचरामरा ॥४॥
 पङ्कगबलसामग्र्या सम्पन्न पाथिवैरमा^७ । प्रतस्थे भरताधीशो निजानुजजिगीषया ॥५॥
 महान् गजघगाव^८ घो^९ रेजे सजयकेतन । गिरीणामिव सघात सञ्चारी सह शालिभि^{१०} ॥६॥
 'इत्योत'मदजलासारसिक्तभूमिमदद्विपै^{११} । प्रतस्थे रुद्रदिक्चक्रै शैलैरिव सनिघ्नरै ॥७॥
 पयस्तम्भैरमा रेजुस्तुङ्गमा^{१२} शृङ्गारिताङ्गका । साद्रसध्यातपक्रान्ताश्चलन्त इव भूधरा ॥८॥
 चमूमतङ्गजा रेजु सजा^{१३} सजयकेतना । कुलशैला इवायाता प्रभो स्वबलदशने^{१४} ॥९॥
 गजस्कन्धगमा^{१५} रेजुधृगता बिधृताङ्गकुशा । प्रदीप्तोद्भटनेपथ्या^{१६} दर्पा सविण्णिता इव ॥१०॥

अथानन्तर-दूतके वचनरूपी तेज वायुके आघातसे प्रेरित हुआ चक्रवर्तीका सेना रूपी समुद्र आकाश और पृथिवीको रोकता हुआ चलने लगा ॥१॥ उस समय युद्धकी सूचना करनेवाल बड़े-बड़े नगाड़े गम्भीर शब्दोंसे बज रहे थे और उनके शब्दोंसे तलवार उठानेमें व्यग्र हुए विद्याधर भयभीत हो रहे थे ॥२॥ चक्रवर्तीकी सेनाएँ अलग-अलग विभागोंमें विभक्त होकर चल रही थीं, सबसे आगे पैदल सैनिकोंका समूह था, उससे कुछ दूरपर घोड़ोंका समूह था और उससे कुछ दूर हटकर हाथियोंका समूह था ॥३॥ सेनाके दोनों ओर रथोंके समूह थे तथा आगे पीछे और ऊपर विद्याधर तथा देव चल रहे थे ॥४॥ इस प्रकार छह प्रकारकी सेना मामग्रीसे सम्पन्न हुए महाराज भरतेश्वरने अपने छोटे भाईको जीतनेकी इच्छासे अनेक राजाओंके साथ प्रस्थान किया ॥५॥ उस समय विजय-पताकाओंसे सहित बड़े-बड़े हाथियोंके समूह ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो वृक्षोंके साथ-साथ चलते हुए पर्वतोंके समूह ही हों ॥६॥ जिनसे झरते हुए मदजलकी वृष्टिसे समस्त भूमि सींची गयी है और जिन्होंने सब दिशाएँ रोक ली हैं ऐसे मदोमत हाथियाँके साथ चक्रवर्ती भरत चल रहे थे, उस समय वे हाथी ऐसे मालूम होते थे मानो झरनोंसे सहित पर्वत ही हों ॥७॥ जिनके समस्त शरीरपर शृंगार किया गया हो और जो बहुत ऊँचे हैं ऐसे वे विजयके हाथी ऐसे सुशोभित होते थे मानो सध्याकालकी सघन धूपसे व्याप्त हुए चलते फिरते पर्वत ही हों ॥८॥ जो सब प्रकारसे सजाये गये हैं और जिनपर विजय-पताकाएँ पहरा रही हैं ऐसे वे सेनाके हाथी इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो महाराज भरतकी अपना बल दिखानेके लिए कुलाचल ही आये हो ॥९॥ जिन्होंने देनीप्यमान तथा वीररमके योग्य वेष धारण किया है, और जिन्होंने अकुल हाथम ल रखा है एस हाथियाने वचापर बठे हुए महाबल लोग ऐसे जान पड़ते थे मानो एक जगह

१ छायापुच्छिक्यो । २ मुदह्नुः । ३ मुष्णान सः । ४ आपुषस्वीकारव्याकुला । ५ मन्वरमदृश्या प्रविमा
 मितानि । ६ गभीरे । ७ रथममूहपरिवृत्ति । ८ उमयपान्वयोः रित्यय मीनवतनिकयो मूलं नारण पुनर्ग
 प्राप्ता । वेननन जीवन्तो वननिरा । ९ महः । १० वाममूहः । ११ कूर्पः । १२ श्रवणः । १३ दग्धवृक्षः ।
 पारानंवाज आमारः । १४ सम्रदीहृता । १५ निजबलमानः । १६ गमारोहका । १७ वीररमान्धकागः ।

कौक्षेयकैर्निगताग्रधाराग्रैः सादिनो वभु । मूर्त्तिभ्य भुजोपाग्रलग्नैर्वा^३ म्वै. पगक्रमैः ॥११॥
 धन्विनः शरनाराचं मधुतेपुधयो वभुः । वनश्माजा महाशाय्याः कोटस्थैरिवाहिमि ॥१२॥
 रथिनो रथकञ्चासु सभृतोचितहेतय । मटग्रामवाधितरणे प्रस्थिता नाविका द्व ॥१३॥
 मटा हस्त्युरसं भेजुः मशिरस्त्रतनुत्रकाः^३ । ममुत्पातनिगतामिपागय पादरक्षणे^{१०} ॥१४॥
 पुस्फुरः^{११} रफुरदन्त्रावा मटाः मद्रंशिता^{१२} परे । औत्पानिका^{१३} इवानीला मोल्कामेवा. ममुत्पिताः ॥१५॥
 करवाल कालाग्र करं कृत्वा मटोऽपरः । पत्रयन् मुग्गरम तम्मिन्^{१४} म्रगोयं परिजिज्ञान्^{१५} ॥१६॥
 कराग्रविधृतं ग्वङ्ग तुलयन् कोऽयभाद् भर ।^{१६} प्रमिमि-सुग्विधानेन^{१७} स्वाभिगन्तकारगौरवम् ॥१७॥
 महामुकुटवद्धाना माधनानि^{१८} प्रनस्थिरे । पादानहान्तिकाउर्वीयरथकञ्चापरिच्छिदं^{१९} ॥१८॥
 वभुर्मकुटवद्धान्ते रत्नाग्रदग्रमालयः । मलीलालोकपालानामगा^{२०} भुवमिवागताः ॥१९॥
 परिवेष्ट्य निर्यन्तं^{२१} पार्थिवा पृथिवीश्वरम् । दृगन् म्ववलमामग्री दर्शयन्तो यथाययम् ॥२०॥
^{२२} प्रन्यग्रममरारम्भमंश्रवोद्भ्रान्तचेतसः ।^{२३} मटीगश्वामयामासु मटाः^{२४} प्रन्याय्य धीरितैः^{२५} ॥२१॥

इकट्ठा हुआ अभिमान ही हो ॥१०॥ घुडसवार लोग, जिनकी आगेकी धारका अग्रभाग बहुत तेज है ऐसी तलवारोसे ऐसे जान पड़ते थे मानो उनके पराक्रम ही मूर्तिमान् होकर उनकी भुजाओंके अग्रभाग अर्थात् हाथोमे आ लगे हो ॥११॥ जिनके तरकस अनेक प्रकारके बाणोसे भरे हुए हैं ऐसे धनुर्धारो लोग इस प्रकार जान पड़ते थे मानो बड़ी-बड़ी शाखावाले वनके वृक्ष कोटरोमे रहनेवाले सर्पोसे ही सुशोभित हो रहे हो ॥१२॥ जिन्होंने रथोके समूहमे युद्धके योग्य सब शस्त्र भर लिये हैं ऐसे रथोपर बैठनेवाले योद्धा लोग इस प्रकार चल रहे थे मानो युद्धरूपी समुद्रको पार करनेके लिए नाव चलानेवाले खेवटिया ही हो ॥१३॥ जिन्होंने गिरपर टोप और शरीरपर कवच धारण किया है तथा हाथमे पैनी तलवार ऊँची उठा रखी है ऐसे कितने ही योद्धा लोग हाथियोके पैरोकी रक्षा करनेके लिए उनके मामने चल रहे थे ॥१४॥ जिनके हाथोमे शस्त्रोके समूह चमक रहे हैं और जो लोहेके कवच पहने हुए हैं ऐसे कितने ही योद्धा ऐसे देदीप्यमान हो रहे थे मानो किसी उत्पातको सूचित करनेवाले उल्कासहित काले काले मेघ ही उठ रहे हो ॥१५॥ कोई अन्य योद्धा पैनी धारवाली तलवार हाथमे लेकर उसमें अपने मुखका रंग देखता हुआ अपने पराक्रमका परिज्ञान प्राप्त कर रहा था ॥१६॥ कोई अन्य योद्धा हाथके अग्र भागपर रखी हुई तलवारको तोलता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो वह उससे अपने स्वामीके आदर-सत्कारका गौरव ही तोलना चाहता हो ॥१७॥ पैदल सेना, हाथियोके समूह, घुडसवार और रथोके समूह आदि सामग्रीके साथ-साथ महामुकुट-वद्ध राजाओकी सेनाएँ भी चल रही थी ॥१८॥ रत्नोंकी किरणोसे जिनके मुकुट ऊँचे उठ रहे हैं ऐसे वे मुकुटवद्ध राजा इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो लीलासहित लोकपालोके अंश ही पृथ्वीपर आ गये हो ॥१९॥ अनेक राजा लोग महाराज भरतको घेरकर चल रहे थे और दूरसे ही अपनी सेनाकी सामग्री यथायोग्यरूपसे दिखलाते जाते थे ॥२०॥ नवीन

१ निशित । २ अश्वारोहा । 'अश्वारोहास्तु सादिन' इत्यभिधानात् । ३ इव । ४ प्रव्वेडनास्तु नाराचा । ५ इपुधि तूणीर । 'तूणीपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इपुधिर्द्वयो' । तूण्यामित्यभिधानात् । सभृतेषुधय ल०, द०, अ०, प०, स०, इ० । ६ समरसमुद्रोत्तरणार्थम् । ७ कर्णधारा । 'कर्णधारस्तु नाविक' इत्यभिधानात् । ८ हस्तिमुखम् । ९ कवच । १० पादरक्षार्थम् । ११ स्फुरन्ति स्म । १२ कवचिता । 'सनद्धो वमित सज्जो दशितो व्यूढकण्टक' इत्यभिधानात् । १३ उत्पातहेतव । १४ स्व शौर्यम् ल० । १५ बुबुधे । १६ प्रमातुमिच्छु । प्रतिमित्यु - द०, ल०, प०, इ०, अ०, स० । १७ खड्गेन सह । १८ वलानि । १९ परिकरै । २० केचित् लो-कपाला इत्यर्थ । २१ निर्ययु । २२ नूतनरणाम्भमश्रवणादुद्भ्रान्तचेतो यासा तास्ता । २३ भटयोपित । २४ विश्वास्य । २५ धीरवचनै ।

भूरणवस्तदाभीयवुरोद्धता खलङ्घिनः^१ । क्षणविघ्नितसप्रेक्षा^२ प्रचक्रुरमराङ्गना ॥२२॥
 रज सतमसे रङ्गदिक्चक्रे ज्योमलङ्घिनि । चक्रोघातो नृणा चक्रे दश स्वविषयोऽमुखी ॥२३॥
 समुद्रमटरमप्राय^३ भगालापैमहीश्वरा । प्रयाणके हृति प्रापुजनजलैरपादौ ॥२४॥
 रणभूमिं प्रसाध्यारात् स्थितो बाहुबली नृप । अथ च नृपशादूल^४ प्रस्थितो निर्निघन्त्रग ॥२५॥
 न विघ्न किञ्चु खलवन्न स्याद् भ्रात्रोरनयोरिति । प्रायो न शान्तये युद्धमानयोरनुजीविनाम्^५ ॥२६॥
 विरूपकमिदं युद्धमारब्ध भरतशिना । पेश्वमददुर्वारा स्वैरिण प्रमवोऽथवा^६ ॥२७॥
 इम मकुम्भदा कि नैनौ वारयितु क्षमा । येऽभी समग्रसामग्रभा^७ सङ्ग्रामयितुमागता ॥२८॥
 अहो महानुभावोऽथ कुमारो भुजविह्वली । क्रुद्धे चक्रधरेऽप्यव यो योद्धु समुख स्थित ॥२९॥
 अथवा तन्त्रभूयस्त्वं^८ न जयाङ्गं मनस्विन । तनु सिंहो जयत्यक् संहितानपि^९ दन्तिनः ॥३०॥
 अथ च चक्रवृद् दवो नेष्ट सामान्यमानुषः । योऽमिरक्ष्य सहस्रेण प्रणम्राणां सुधामुजाम्^{१०} ॥३१॥
 तस्मा भूदनयोरुद्ध जनसक्षयकारणम् । कुवन्तु देवताः शान्तिं यदि सनिहिता इमा ॥३२॥
 इति माध्यस्थ्यवृत्त्यै^{११} जना इलाप्य बभौ जगु । पञ्चपातहता केचित् स्वपक्षोत्कषमुज्जगु ॥३३॥

द्वका प्रारम्भ सुनकर जिनके चित्त व्याकुल हो रहे हैं ऐसी स्त्रियोंको वीर योद्धा बड़ी धीरताके साथ समझाकर आश्वासन दे रहे थे ॥२१॥ उस समय घोड़ोंके खुरोंसे उठी हुई और आकाशको उल्लघन करनेवाली पृथिवीकी धूल क्षण भरके लिए देवागनाओंके देखनेमें भी बाधा कर रही थी ॥२२॥ समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाले और आकाशको उल्लघन करनेवाले उस धूलिसे उत्पन्न हुए अधिकारमें चक्ररत्नका प्रकाश ही मनुष्योंके नेत्रोंको अपना अपना विषय ग्रहण करनेके सम्मुख कर रहा था ॥२३॥ राजा लोग रास्तेमें अत्यन्त उत्कट और रससे भरे हुए योद्धाओंके परस्परके वार्तालापसे तथा इसी प्रकारके अन्य लोगोंकी बातोंसे ही उत्साहित हो रहे थे ॥२४॥ उधर राजा बाहुबली रणभूमिको दूरसे ही युद्धके योग्य बनाकर ठहरे हुए हैं और इधर राजाओंमें सिंहके समान तेजस्वी महाराज भरत भी यत्रणा रहित (उच्छ खल) होकर उनके सम्मुख जा रहे हैं ॥२५॥ नहीं मालूम इस युद्धमें इन दोनों भाइयोंका क्या होगा ? प्राय कर इनका यह युद्ध सेवकोंकी शान्तिके लिए नहीं है । भावाय — १ युद्धम सेवकोंका कल्याण दिखाई नहीं देता है ॥२६॥ भरतेश्वरने यह युद्ध बहुत ही अयोग्य प्रारम्भ किया है सो ठीक ही है क्योंकि जो ऐश्वर्यके मदसे रोके नहीं जा सकते ऐसे प्रभु लोग स्वेच्छाचारी ही होते हैं ॥२७॥ जो ये मुकुटबद्ध राजा समस्त सामग्रीके साथ युद्ध करनेके लिए आय हुए हैं वे क्या इन दोनोंको नहीं रोक सकते हैं ? ॥२८॥ अहो भुजाआवा पराक्रम रखनेवाला यह कुमार बाहुबली भी महाप्रतापी है जो कि चक्रवर्तिके क्रुपित होनेपर भी उस प्रकार युद्धके लिए सम्मुख खड़ा हुआ है ॥२९॥ अथवा शूरवीर लोगोंको सामग्रीकी अधिकता विजयका कारण नहीं है क्योंकि एक ही सिंह झुण्डके झुण्ड हाथियोंको जीत रता है ॥३०॥ नमस्कार करते हुए हजारों देव जिसकी रक्षा करते हैं ऐसा यह चक्रको धारण करने वाला भरत भी साधारण पुरुष नहीं है ॥३१॥ इसलिए जो अनेक लोगोंके विनाशका कारण है ऐसा इन दानावा युद्ध नहीं हो तो अच्छा है, यदि देव लोग यहाँ समीपम हो तो वे इस युद्ध की शान्ति कर ॥३२॥ इस प्रकार बितने ही लोग मध्यम्य भावसे प्रगंसनीय वचन कह रहे थे

१ आकाशङ्घिनः । २ आक्रोशना । ३ रजोन्धकारे । ४ वीररगवृत्तः । ५ अलङ्घ्यता । ६ ममीपे । ७ नृपशङ्ख भरण इत्यप । ८ निरङ्कुल । ९ भटानाम् । १० कष्टम् । ११ — वा यत् ल० । १२ यत् कारयितुम् । १३ अपाहि । १४ सेनाबाहुल्यम् । १५ समुक्तान् । १६ देवानाम् । १७ तत्र कारणान् । १८ अथ ।

एवं प्रायज्जनानां पैर्महोनाया त्रिनोदिना । इत्थं प्राप्नुममुदजं यत्र वीराप्रणांभ्यां^३ ॥३४॥
 दोर्ध्रं विनागव्यस्य कुल्लिलमगतिभि । तमु प्रनिभयः प्रायस्मिन्मित्रात्मन्नमनिधौ ॥३५॥
 इत्यभ्यर्णे जले जिहो यत्र भुजबलीभिः । जयमन्त्रैरित्युच्यते यत्र चाननिरुद्धिर्दृक् ॥३६॥
 अयोध्याजले धीरा मन्त्रजज्ञाजय । ज्ञानपारवर्तामामुगन्त्याऽन्य प्रयुयुसया^४ ॥३७॥
 तत्रच मन्त्रिणो मुन्या यत्र गायोयन्मति । ज्ञानपे ननयोर्युत्^५ प्रयोः क्रूरयोश्चि ॥३८॥
 वरमागन्धर्ववेनो नानयोः सचन धनि । क्षयो जलस्य पत्रस्य^६ प्याज्जनाने^७ जृम्भित ॥३९॥
 इति निश्चिन्त्य मन्त्रजा भीया नयो जनधया । तयोन्मुमति लब्धा धर्म्य रणमघोपयन् ॥४०॥
 अस्तरणरणेनाल जनसहाराणि । महानेन मयमंश गर्गयात्र प्रजोक्त्र^८ ॥४१॥
 बलैरुपपरीक्षेचमन्ययाऽप्युपगते^९ । नरन्नु युवपरेष मियो युद्ध त्रिगन्तम् ॥४२॥
 भ्रमने^{१०} विना भय म्योदर्या युवोर्गिह । विनाश्च त्रिनोमेदाने^{११} धर्मो तेष मनाभिषु ॥४३॥
 इत्युक्तं पार्थिवं यत्र म्योपरेषश्च मन्त्रिभि । ता हन्तान प्रत्यपमाना^{१२} तादृश युद्धमुद्धता^{१३} ॥४४॥

और किलने ही पदापानमें प्रेरित होकर अपने ही पक्षकी प्रगना कर रहे थे ॥३३॥ प्राय लोगोंके इसी प्रकारके वचनोने मन बहलाने हुए राजा लोग नीत्र ही उस स्थानपर जा पहुँचे जहाँ वीरजिरोमणि कुमार बाहुबली पहलेने विराजमान था ॥३४॥ बाहुबलीके समीप पहुँचते ही भरतके योद्धा, जिसका जनु कभी उल्लघन नहीं कर सकने ऐसा बाहुबलीकी भुजाओका दर्प देखकर प्राय कुछ डर गये ॥३५॥ इस प्रकार चक्रवर्ती भरतकी सेनाके समीप पहुँचनेपर वीरोके गव्दोसे दिशाओको भरनेवाली बाहुबलीकी सेना समुद्रके जलके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥३६॥

अथानन्तर — दोनों ही मेनाओंमें जो शूरवीर लोग थे वे परस्पर युद्ध करनेकी इच्छासे अपने हाथी घोड़े आदि सजाकर सेनाकी रचना करने लगे — अनेक प्रकारके व्यूह आदि बनाने लगे ॥३७॥ इतनेमें ही दोनों ओरके मुख्य-मुख्य मन्त्री विचारकर इस प्रकार कहने लगे कि क्रूरग्रहोके समान इन दोनोंका युद्ध शान्तिके लिए नहीं है ॥३८॥ क्योंकि ये दोनों ही चरम शरीरी हैं, इनकी कुछ भी क्षति नहीं होगी, केवल इनके युद्धके बहानेसे दोनों ही पक्षके लोगोका क्षय होगा ॥३९॥ इस प्रकार निश्चय कर तथा भारी मनुष्योंके सहारसे डरकर मन्त्रियोने दोनोंकी आज्ञा लेकर धर्मयुद्ध करनेकी घोषणा कर दी ॥४०॥ उन्होंने कहा कि मनुष्योंका सहार करनेवाले इस कारणहीन युद्धसे कोई लाभ नहीं है क्योंकि इसके करनेसे बड़ा भारी अधर्म होगा और यशका भी बहुत विधात होगा ॥४१॥ यह बलके उत्कर्षकी परीक्षा अन्य प्रकारसे भी हो सकती है इसलिए तुम दोनोंका ही परस्पर तीन प्रकारका युद्ध हो ॥४२॥ इस युद्धमें जो पराजय हो वह तुम दोनोंको भीहके चढ़ाये बिना ही — सरलतासे सहन कर लेना चाहिए तथा जो विजय हो वह भी अहंकारके बिना तुम दोनोंको सहन करना चाहिए क्योंकि भाई भाइयोका यही धर्म है ॥४३॥ इस प्रकार जब समस्त राजाओ और मन्त्रियोने बड़े आग्रह-के साथ कहा तब कही बड़ी कठिनातासे उद्धत हुए उन दोनों भाइयोने वैसा युद्ध करना स्वीकार

१ एवमाद्यं । २ प्राप्ता ल०, प०, द० । ३ भुजबली स्थित । ४ विचार्य । ५ बाहुबलिनि । ६ अत्यामने सति । ७ भरतस्य । ८ वीरा ल०, द०, अ०, प०, स०, इ० । ९ वाजिन अ०, स०, द० । १० प्रकर्षेण योद्धुमिच्छया । ११ नावयो — ल० । १२ सहायस्य । १३ युद्धच्छेन । १४ एव सति । युद्धे सतीत्यर्थ । १५ कीर्तिनाय । १६ घटते इत्यर्थ । १७ तत् कारणात् । १८ क्रोधाभावेनेत्यर्थ । १९ गर्वाभावादित्यर्थ । २० अनुमेनाते ।

जलदृष्टिनिबुद्धेषु^१ याऽनयाजयमाप्स्यति । स जयप्राप्तिलामिन्या पतिरस्तु इत्यवदत् ॥४५॥
 इत्युद्धोष्य कृतानन्दमानदिन्या गभारया । मया चमूपधानानां^२ म्यधुरकप्र सनिधिम् ॥४६॥
 मृपा भरतगृहा य तामकप्र यथायत्न । य बाहुबलिगृह्याश्च पार्थिव्यास्तानताऽन्यत ॥४७॥
 मध्ये महीभृतां तपा रत्नतुस्ता नृपा स्थिता । गता निषधनालार्द्रा कुनभिदिव^३ सनिधिम् ॥४८॥
 तयोभुजवली रजे गह्वरावसच्छवि । जम्बुकुम् इषासुत्र सभृङ्गाऽमित^४ मृदज ॥४९॥
 रराज राजराजोऽपि तिरागेदमधिग्रह । सच्छ्लिष इषाद्रा द्र तप्तवामाकरच्छवि ॥ ५०॥
 दधद्दीरतरां दृष्टिं निर्निमपामनुद्वताम्^५ । दृष्टियुद्ध जय प्राप प्रथम^६ भुजविग्रमा ॥५१॥
 त्रिनिवाय कृतक्षामनियाय यलाणयम् । मर्यादाया यथापास^७ जयनायाजयनृपा ॥५२॥
 सरसीजलमागाधा^८ जलयुद्धे मदोदता । दिग्गजाविष ता दार्ढ्यर्यायु^९ क्षामामनुभुज ॥५३॥
 अधिवक्षस्तरं जिघ्गो रजुरच्छा पलच्छा । शैलमनुस्त्रिवात्सलसगि^{१०} य सुतयाऽम्मसाम् ॥५४॥
 जलाघो भरतशन मुक्तो दावलशालिन । प्रांशारमाप्य दूरण मुत्तमाराण समापतत् ॥५५॥

किया ॥४४॥ इन दोनोंके बीच जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध और बाहुम जो विजय प्राप्त करेगा वहो विजय लक्ष्मीका स्वयं स्वीकार किया हुआ पति हो, इस प्रकार सबका आनंद देनेवाली गम्भीर भेरियाके द्वारा जिसमें सबको हृष हो इस रीतिस धोपणा कर मंत्री लोगाने सेनाके मुख्य-मुख्य पुरुषोंको एक जगह इकट्ठा किया ॥४५-४६॥ जा भरतक पक्षवाले राजा थे उह एक ओर बठाया और जो बाहुबलीके पक्षके थे उह दूसरी ओर बठाया ॥४७॥ उन सब राजाओं के बीचमें बैठे हुए भरत और बाहुबली ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किसी कारणसे निषध और नीलपर्वत ही पास-पास आ गये हैं ॥४८॥ उन दोनोंमें नीलमणिके समान सुन्दर छविको धारण करता हुआ और काले-काले केशोंसे सुशोभित कुमार बाहुबली ऐसा जान पड़ता था मानो भ्रमरोसे सहित ऊँचा जम्बूवृक्ष ही हो ॥४९॥ इसी प्रकार मुकुटसे जिसका शरीर ऊँचा हो रहा है और जो तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिको धारण करनेवाला है ऐसा राज राजेश्वर भरत भी इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानो धूलिकासहित गिरिराज - सुमेरु ही हो ॥५०॥ अत्यन्त धीर तथा पलकोंके संचारसे रहित शान्त दृष्टिको धारण करते हुए कुमार बाहुबलीने दृष्टियुद्धमें बहुत शीघ्र विजय प्राप्त कर ली ॥५१॥ हर्षसे क्षोभ मचाते हुए बाहुबलीके दुर्निवार सेनारूपी समुद्रको रोककर राजाओंने बड़ी मर्यादाके साथ कुमार बाहुबलीको विजयसे युक्त किया अर्थात् दृष्टियुद्धमें उनकी विजय स्वीकार की ॥५२॥ तदनन्तर मदोदत दिग्गजोंके समान अभिमानसे उद्वत हुए वे दोनों भाई जलयुद्ध करनेके लिए सरोवरके जलमें प्रविष्ट हुए और अपना लम्बी-लम्बी भुजाओंसे एक दूसरेपर पानी उछालने लगे ॥ ५३ ॥ चक्रवर्ती भरतके वक्ष स्थलपर बाहुबलीके द्वारा छोड़ी हुई जलकी उज्ज्वल छटाएँ ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो सुमेरुपर्वतके मध्यभागमें जलका प्रवाह ही पड़ रहा हो । ॥५४॥ भरतेश्वरके द्वारा छोड़ा हुआ जलका प्रवाह अत्यन्त ऊँचे बाहुबलीके मुखको दूर छोड़कर दूरसे ही नीचे जा पड़ा ॥ भवार्थ - भरतेश्वरने भी बाहुबलीके ऊपर पानी फेंका था परन्तु बाहुबलीके ऊँचे होनेके कारण वह पानी उनके मुख तक नहीं पहुँच सका, दूरसे ही नीचे जा पड़ा । भरतका शरीर पाँच-सौ धनुष ऊँचा था और बाहुबलीका पाँच-सौ पञ्चीस

१ जलयुद्धदृष्टियुद्धबाहुयुद्ध । २ निबुद्ध बाहुयुद्ध इत्यभिधानात् । ३ चक्र । ४ कारणात् । ५ सम्मेलनमित्यर्थ । ६ तयोमध्ये । ७ नीलकेश । ८ शान्ताम् । ९ शीघ्रम् । १० अनुजम् । ११ यद्यप्ये तस्य कनिष्ठयकीयोऽवरजानुजा इत्यभिधानात् । १२ प्रविष्टी । १३ परस्पर जलसेचनं चक्रम् । १४ प्रवाही । १५ उन्नतस्य ।

भरतेशः स्त्रियात्रापि न यत्नः तत्र न । २ न यत्नो ज्ञान्य भयोऽप्युन्नेपितो जयः ॥५६॥

नियुद्धमथे नर्गां नृमित्रा विजयिन्मो । ३ विजयिन्मो ता रत्नमयंरतु ॥५७॥

वलिनाग्नोदितेभिः ॥ ४ भर्गो नृमित्रा विजयिन्मो । ५ नृमित्रा विजयिन्मो वायुयु नयोर्महत ॥५८॥

ज्वलन्मुकुटमाचरो नृमित्रा विजयिन्मो । ६ नृमित्रा विजयिन्मो चर्मा भेजे क्षण भ्रमन् ॥५९॥

यवीयान् नृपगादन्त्यायाम् विजयिन्मो । ७ विजयिन्मो नानयद् नमि प्रभुरित्येव गौरवान् ॥६०॥

१० भुजोपरोधमुत्पन्नं न न भवेत्तमो नृमित्रा । ११ विजयिन्मो नीलाद्रिमहाकटक्रमाचरम् ॥६१॥

तदा कलकलक्षणे पद्मं भुजवर्तिनः । १२ नृमित्रा विजयिन्मो तदा नमि नमि नमि ॥६२॥

समभर्माभमाणेषु पादित्येवमभरणम् । १३ विजयिन्मो प्राप्य ययो चर्मा विलक्षताम् ॥६३॥

वदन्मुकुटिद्वान्तरधिराग्नोदितम् । १४ क्षण दुर्गता भेजे चर्मा प्रचलितम् । १५ कुधा ॥६४॥

क्रोधान्धेन तदा दग्धे नृमित्रा पद्मजम् । १६ नृमित्रा विजयिन्मो ज्ञेयपिपक निधीशिता ॥६५॥

१७ आधानमात्रमेत्यागदः ॥ १८ नृमित्रा विजयिन्मो अरयन्त्यान्य पर्यन्तम् १९ तन्मो मन्दीकृतातपम् ॥६६॥

धनुष । इमल्लिग वाहुवलीने हाग छोटा हुआ पानी भरतके मुख तथा वक्ष स्थलपर पडता था परन्तु भरतके हाग छोटा हुआ पानी बीचमें ही रह जाना था - वाहुवलीके मुख तक नहीं पहुँच पाता था ॥५५॥ तब प्रताप जब अग्ने-अग्ने जलयुद्धमें भी विजय प्राप्त नहीं की तब वाहुवलीकी नानाओंने फिरने अपनी विजयकी घोषणा कर दी ॥५६॥ अथानन्तर सिंहके समान पराक्रमको धाग्न करनेवाले धीरवीर तथा परम्पर स्पर्धा करनेवाले वे दोनों नर-शार्दूल - श्रेष्ठ पुष्प वाहुयुद्धकी प्रतिज्ञा कर गगभूमिमें आ उतरे ॥५७॥ अपनी-अपनी भुजाओंके अहंकारमें मुगोभित उन दोनों भाग्योंका, अनेक प्रकारसे हाथ हिलाने, ताल ठोकने, पैतरा बदलने और भुजाओंके व्यायाम आदिमें बड़ा भारी वाहु युद्ध (मल्ल युद्ध) हुआ ॥५८॥ जिसके मुकुटकी दीप्तिका समूह अतिजय देदीप्यमान हो रहा है ऐसे भरतको वाहुवलीने लीला मात्रमें ही घुमा दिया और उस समय घूमते हुए चक्रवर्तिने क्षण-भरके लिए अलातचक्रकी लीला धारण की थी ॥५९॥ वाहुवलीने राजाओंमें श्रेष्ठ, बड़े तथा भरत क्षेत्रको जीतनेवाले भरत-को जीतकर भी 'ये बड़े हैं'इ सी गौरवसे उन्हें पृथिवीपर नहीं पटका ॥६०॥ किन्तु भुजाओंसे पकड़कर ऊँचा उठाकर कन्धेपर धारण कर लिया । उस समय भरतेश्वरको कन्धेपर धारण करते हुए वाहुवली ऐसे जान पडते थे मानो नीलगिरिने बड़े-बड़े शिखरोसे देदीप्यमान हिमवान् पर्वतको ही धारण कर रखा हो ॥६१॥ उस समय वाहुवलीके पक्षवाले राजाओंने बड़ा कोला-हल मचाया और भरतके पक्षके लोगोंने लज्जासे अपना शिर झुका लिया ॥६२॥ दोनों पक्षके राजाओंके साक्षात् देखते हुए चक्रवर्ती भरतका अत्यन्त अपमान हुआ था इसलिए वे भारी लज्जा और आश्चर्यकी प्राप्त हुए ॥६३॥ जिसने भौहे चढा ली है, जिसकी रक्तके समान लाल-लाल आँखे डधर-डधर फिर रही है और जो क्रोधसे जल रहा है ऐसा वह चक्रवर्ती क्षण-भरके लिए भी दुर्निरीक्ष्य हो गया अर्थात् वह क्रोधसे ऐसा जलने लगा कि उसे कोई क्षण-भर नहीं देख सकता था ॥६४॥ उस समय क्रोधसे अन्धे हुए निधियोंके स्वामी भरतने वाहुवलीकी पराजय करनेके लिए समस्त शत्रुओंके समूहको उखाड़कर फेंकनेवाले चक्ररत्नका स्मरण किया ॥६५॥ स्मरण करते ही वह चक्ररत्न भरतके समीप आया, भरतने वाहुवलीपर चलाया

१ वाहुयुद्धम् । २ प्रतिज्ञा कृत्वा । ३ प्रविष्टावित्यर्थ । ४ वलनभुजास्फालनम् । वलिता - प०, इ० । ५ पदाचारिभिः । ६ वाहुवन्ध । ७ काष्ठाग्निभ्रमणस्थ । ८ अनुज । ९ ज्येष्ठम् । १० बाहुपीडन यथा भवति तथा । ११ परिभवम् । १२ विस्मयान्वितम् । १३ उच्छिन्नम् । - मुक्षिप्त - ल०, द० । १४ स्मृतम् । १५ एतच्चक्रम् । १६ भुजवलिनः । १७ समीपे ।

कृत^१ कृत वतानन साहसनति धिक्कृत । तदा महत्तमैश्चक्रा जगामानुशय^२ परम् ॥६०॥
 कृतापदान इत्युच्चै^३ करण तुल्यभूपम् । साऽधर्तार्याभता^४ धीराऽनिकृष्टा^५ भूमिमापिपत् ॥६१॥
 सत्कृत स जयाशसमभ्यस्य नृपसत्तमैः । मने सात्कपमारमान तदा मुञ्चवली प्रभु ॥६२॥
 अधिन्त्यथ किञ्चाम कृत^६ राज्यस्य मङ्गिन^७ । समाकृता विधिर्मात्रा ज्यप्येनायमनुष्ठित^८ ॥६३॥
 विपाकरुद्रसाध्राज्य क्षणप्यसि धिगस्त्रिदम् । दुस्त्यज त्यजदप्यतद्विभिदुष्कलप्रवत् ॥६४॥
 अहो विषयसाध्याना धैर्यदम^९ पकारिता । मरुरथमरुथरथ^{१०} सन्नैर्नाग्धियत्^{११} जन ॥६५॥
 को नाम मतिमानाप्तेद् विषयान् वेषदात्तान् । यथा यशगता ज तुर्वार्यमथपरम्पराम् ॥६६॥
 धर विष यदकस्मिन् भवे हन्ति न हन्ति वा । विषयास्तु पुनश्मन्ति हन्ति जन्तूननश्मत् ॥६७॥
 आपातमात्र^{१२} रम्याणां विपाकरुद्रकात्मनाम् । विषयाणां कृत^{१३} नाजो^{१४} यात्यनयानपाथकम् ॥६८॥

परन्तु उनके अवध्य होनेस वह उनकी प्रदक्षिणा देकर तजरहित हो उन्हीके पास जा ठहरा ।
 भावाथ - देवोपनीत शस्त्र कुटुम्बवे लोगपर सफल नहीं होत, बाहुवली भरतेद्वरक एवपितृक
 भाई ये इसलिए भरतका चक्र बाहुवलीपर सफल नहीं हो सका, उसका तज फीका पड़ गया
 और वह प्रदक्षिणा देकर बाहुवलीके समीप ही ठहर गया ॥६६॥ उस समय बड़े-बड़े राजाओंने
 चक्रवर्तीको धिक्कार दिया और दु खके साथ कहा कि 'वस-वस' 'यह साहस रहने दो - वन्द
 करो, यह सुनकर चक्रवर्ती और भी अधिक सन्तापका प्राप्त हुए ॥६७॥ आपने खूब पराक्रम
 दिखाया, इस प्रकार उच्च स्वरसे कहकर धीर वीर बाहुवलीने पहल ता भरतराजको हाथसे
 तोला और फिर कंधेसे उतारकर नीचे जमीनपर रख दिया अथवा (धीरो अनिकृष्टा ऐसा
 पदच्छेद करनेपर) उच्च स्थानपर विराजमान किया ॥६८॥ अनेक अच्छे-अच्छे राजाओंने
 समीप आकर महाराज बाहुवलीके विजयकी प्रशंसा करते हुए उनका सत्कार किया और
 बाहुवलीने भी उस समय अपने आपको उत्कृष्ट अनुभव किया ॥६९॥ साथ ही साथ वे यह
 भी चिन्तवन करने लगे कि देखो, हमारे बड़े भाईने इस नक्षर राज्यके लिए यह कैसा लज्जा
 जनक काय किया है ॥७०॥ यह साम्राज्य फलकालमें बहुत दु ख देनवाला है, और क्षणभंगुर
 है इसलिए इसे धिक्कार हो, यह व्यभिचारिणी स्त्रीके समान है क्योंकि जिस प्रकार व्यभि
 चारिणी स्त्री एक पतिको छोड़कर अन्य पतिके पास चली जाती है उसी प्रकार यह साम्राज्य
 भी एक पतिको छोड़कर अन्य पतिके पास चला जाता है । यह राज्य प्राणियोंको छाड़
 देता है परन्तु अविवेकी प्राणी इसे नहीं छोड़ते यह दु खकी बात है ॥७१॥ अहा, विषयोंमें
 आसक्त हुए पुरुष, इन विषयजनित सुखोंका निन्द्यपना, अपकार, क्षणभंगुरता और नीरस
 पनेको कभी नहीं सोचते ह ॥७२॥ जिनके वशम पड़े हुए प्राणी अनेक दु खोंकी परम्पराको
 प्राप्त होते हैं ऐसे विषयके समान भयंकर विषयोंको कौन बुद्धिमान् पुरुष प्राप्त करना चाहेगा ?
 ॥७३॥ विष खा लेना कहीं अच्छा है क्योंकि वह एक ही भवमे प्राणीको मारता है अथवा नहीं
 भी मारता है परन्तु विषय सेवन करना अच्छा नहीं है क्योंकि ये विषय प्राणियोंको अनन्त बार
 फिर फिरसे मारते ह ॥७४॥ जो प्रारम्भ कालमें तो मनोहर मालूम होते ह परन्तु फलकाल-

१ अलमलम् । २ पश्चात्तापम् । ३ कृतापदान इत्यभिधानात् । ४ कुजोपादान - अ ल । ५ भुजशिक्षरात् ।
 स्कन्धो भुजशिरोऽनोऽन्त्री इत्यभिधानात् । ६ अवस्थाम् । ७ - मापपत् ५० ल० ।
 ८ निमित्तम् । ९ विनद्वरस्य । १० - मधिष्ठित ५० ल० । ११ परिणमन । १२ कुत्सितत्वम् ।
 १३ विनद्वरत्वम् । १४ आसक्त । १५ न मृग्यते । न विचायत इत्यथ । १६ अनुमदनकाल ।
 १७ निमित्तम् । १८ पुमान् ।

अत्यन्तरमिकानादौ पर्यन्ते प्राणहारिण । किंपाकपाकविषमान विषयान् कः कृती भजेत ॥७६॥
 शस्त्रप्रहारदीप्ताग्निवज्राशनि महोरगाः । न तयोद्वेजका पुंसां यथाऽमी विषयद्विषः ॥७७॥
 महाविधिरात्रमग्रामर्मामारण्यसरिर्गिरीन् । भोगार्थिनो भजन्यज्ञा धनलाम धनायया ॥७८॥
 दीर्घदोर्घातनिर्वात निर्धोपविषमीकृते । यादसां यादसां पन्थां चरन्ति विषयार्थिनः ॥७९॥
 ममापतच्छरवातनिरुद्धगगनाङ्गणम् । रणाङ्गण विगन्त्यस्तभियो भोगैर्विलोमिताः ॥८०॥
 चरन्ति वनमानुष्या यत्र सत्रासलोचनाः । ताः पर्यटन्त्यरण्यानीर्भोगाशोपहता जडाः ॥८१॥
 मरितो विषमावर्तमीषणा ग्राह्यमकुलाः । तितीर्षन्ति वताविष्टा विषमैर्विषयग्रहैः ॥८२॥
 आरोहन्ति दुरारोहान् गिरीनामभियोऽङ्गिनः । रसायनरम्यज्ञानं बलवादविमोहिताः ॥८३॥
 अनिष्टवन्तिवेद्यमालिङ्गति बलाजरा । कुर्वन्ती पलितव्याजाद् रम्येन कचग्रहम् ॥८४॥
 भोगेन च्युत्सुक प्रायो न च वेद हिताहितम् । भुक्तस्य जरमा जन्तोर्मृतस्य च किमन्तरम् ॥८५॥
 प्रमद्य पातयन् भूमौ गात्रेषु कृतवेपथु । जरापातो नृणां कष्टो ज्वरः शीत इवोद्भवन् ॥८६॥

मे कडवे (दु ख देनेवाले) जान पडते हैं ऐसे विषयोके लिए यह अज्ञ प्राणी क्या व्यर्थ ही अनेक दुःखोको प्राप्त नहीं होता है ? ॥७५॥ जो प्रारम्भ कालमे तो अत्यन्त आनन्द देनेवाले हैं और अन्तमे प्राणोका अपहरण करते हैं ऐसे किंपाक फल (विपफल) के समान विषम इन विषयो-को कौन बुद्धिमान् पुरुष सेवन करेगा ? ॥७६॥ ये विषयरूपी शत्रु प्राणियोको जैसा उद्वेग करते हैं वैसा उद्वेग शस्त्रोका प्रहार, प्रज्वलित अग्नि, वज्र, विजली और वडे-वडे सर्प भी नहीं कर सकते हैं ॥७७॥ भोगोकी इच्छा करनेवाले मूर्ख पुरुष धन पानेकी इच्छासे वडे-वडे समुद्र, प्रचण्ड युद्ध, भयकर वन, नदी और पर्वतोमे प्रवेग करते हैं ॥७८॥ विषयोकी चाह रखनेवाले पुरुष जलचर जीवोकी लम्बी-लम्बी भुजाओके आघातसे उत्पन्न हुए वज्रपात-जैसे कठोर गव्दोसे धुव्व हुए समुद्रमे भी जाकर सचार करते हैं ॥७९॥ भोगोमे लुभाये हुए पुरुष, चारो ओरसे पडते हुए वाणोके समूहसे जहाँ आकाशरूपी आँगन भर गया है तमे युद्धके मैदानमे भी निर्भय होकर प्रवेश कर जाते हैं ॥८०॥ जिनमे वनचर लोग भी भयसहित नेत्रोसे सचार करते हैं ऐसे भयकर वडे-वडे वनोमे भी भोगोकी आशासे पीडित हुए मूर्ख मनुष्य घूमा करते हैं ॥८१॥ कितने दु खकी बात है कि विषयरूपी विषम ग्रहोसे जकडे हुए कितने ही लोग, ऊँची-नीची भँवरोसे भयकर और मगरमच्छोसे भरी हुई नदियोको भी पार करना चाहते हैं ॥८२॥ रसायन तथा रस आदिके ज्ञानका उपदेश देनेवाले धूर्तोके द्वारा मोहित होकर उद्योग करनेवाले कितने ही पुरुष कठिनाईसे चढने योग्य पर्वतोपर भी चढ जाते हैं ॥८३॥ यह जरा सफेद-वालोके वहानेसे वेगपूर्वक केशोको पकडती हुई अनिष्ट स्त्रीके समान जवरदस्ती आलिंगन करती है ॥८४॥ जो प्राणी भोगोमे अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा है वह हित और अहितको नहीं जानता तथा जिसे वृद्धावस्थाने घेर लिया है उसमे और मरे हुएमे क्या अन्तर है ? अर्थात् बेकार होनेसे वृद्ध मनुष्य भी मरे हुएके समान है ॥८५॥ यह बुढ़ापा मनुष्यको शीतज्वरके समान अनेक कष्ट देनेवाला है क्योंकि जिस प्रकार शीतज्वर उत्पन्न होते ही जवरदस्ती जमीनपर

१ अम्बीरपक्वफल । २ वज्ररूपाशनि । ३ भयंकरा । ४ धनलाभवाञ्छया । ५ अशनि । ६ जलजन्तूनाम् ।
 'यादासि जलजन्तव' इत्यभिधानात् । यादसा पत्यौ ममुद्रे । 'रत्नाकरो जलनिधिर्यादि पतिरपा पति'
 इत्यभिधानात् । ७ वनेचराः । ८ भयसहिता । ९ तरीतुमिच्छन्ति । १० ग्रस्ता इत्यर्थः । ११-प्यभियोगिन
 ७०, ५०, ४०, ३० । १२ पलितस्तम्भोपधमिद्धरसज्ञानाज्जातबलवादान्मोहिता । १३ भोक्तु योग्यवस्तुषु ।
 १४ न जानाति । १५ भेद । १६ बलात्कारेण । १७ कम्प । १८ प्राप्ति ।

अहसाद्^१ मतिभ्रंश^२ वाचामस्फुन्तामपि । जरा मुरा च निविष्टा^३ घटयत्यागु दहिनाम् ॥८७॥
 कालव्यालगन्नेनेदमायुरालानक बलात् । चान्यत् यद्व्याधान जाधितालम्बन नृणाम् ॥८८॥
 शरीरबलमतघ गजरुणधदस्थिरम् । रोगा^४ रूपाहत यद् जरहेहकुर्त्तरकम् ॥८९॥
 इत्यशाश्वतमप्यतद् राज्यादि भरतधर । शाश्वत मन्यत नष्ट आहापहतधतन ॥९०॥
 चिरमाकलयशेवमग्रजस्यानुदात्तनाम्^५ । व्याजहारनमुद्दिश्य गिर प्रपक्ष्याश्वरा ॥९१॥
 शृणु भो नृपशाकृष्ट क्षण^६ बैलद्वयमुत्सृज । मुह्यतद्^७ त्वयाऽलम्बि दुराहमतिमाह्वयम् ॥९२॥
 अभये मम ब्रह्मादौ त्वया चक्र नियोजितम् । विद्वग्किंचिरकर^८ यात्रे शीघ्रे वज्रमिवापगतम् ॥९३॥
 अयत्र भ्रातृमाण्डानि मरुत्तया राज्य यदाधितम् । त्वया धर्मो यशश्चैव^९ 'तन' 'प' 'प' 'ल' मजितम् ॥९४॥
 चक्रमृज्ज्वरत स्रष्टु सूनुरायस्य योऽग्रणा । कुलस्योद्धारक सोऽभूद्विती^{१०} 'डा' 'स्था' च त्वया ॥९५॥
 जिता च भवतैवाय^{११} 'य' 'प' 'लो' 'प' 'ह' 'ता' 'मि' 'मा' 'म्' । म^{१२} 'य' 'से' 'न' 'न्य' 'भो' 'र्गा' 'ना' 'नृ' 'प' 'ध्रि' 'य' 'म' 'न' 'ध' 'री' 'म्' ॥९६॥
 प्रेयसाय तवैवास्तु राज्यधार्या त्वयाऽऽरता । नोचितया ममायुष्मन् यथा^{१३} 'न' 'हि' 'स' 'ता' 'मु' 'द्रे' ॥९७॥

पटक देता है उसी प्रकार बुढापा भी जबरदस्ती जमोनपर पटक देता है और जिस प्रकार शीतज्वर शरीरम कम्पन पैदा कर देता है उसी प्रकार बुढापा भी शरीरम कम्पन पैदा कर देता है ॥८६॥ शरीरमें प्रविष्ट हुई तथा उपभोगमें आयी हुई जरा और मदिरा दोनों ही लोगोंके शरीरको शिथिल कर देती है, उनकी बुद्धि भ्रष्ट कर देती हैं और वचनोमे अस्पष्टता ला देती है ॥८७॥ जिसके बलका सहारा मनुष्योंके जीवनका आलम्बन है ऐसा यह आयुरूपी सम्भा कालरूपी दुष्ट हाथीके द्वारा जबरदस्ती उखाड दिया जाता है ॥८८॥ यह शरीरका बल हाथीके कानके समान चंचल है और यह जीण-शीण शरीररूपी झापडा रोगरूपी चूहोंके द्वारा नष्ट किया हुआ है ॥८९॥ इस प्रकार यह राज्यादि सब विनश्वर ह फिर भी मोहके उदयसे जिसकी चेतना नष्ट हो गयी है ऐसा भरत इन्हें नित्य मानता है यह कितने दुःखी बात है ? ॥९०॥ इस प्रकार बड़े भाईकी नीचताका चिरकाल तक विचार करते हुए बाहुबलीने भरतको उद्देश्य कर नीचे लिखे अनुसार कठोर अक्षरोंवाली बाणी कही ॥९१॥ हे राजाओंमें श्रेष्ठ, क्षण भरके लिए अपनी लज्जा या झेंप छोड, मैं कहता हूँ सो सुन । तूने मोहित होकर ही इस न करने योग्य बड़े भारी साहसका सहारा लिया है ॥९२॥ जो कभी भिद नहीं सकता । ऐसे मेरे शरीररूपी पवतपर तूने चक्र चलाया है सो तेरा यह चक्र वज्रके बने हुए पवतपर पडते हुए वज्रके समान व्यथ है ऐसा निश्चयसे समझ ॥९३॥ दूसरी बात यह है कि जो तूने भाईरूप भरतनोंको तोडकर राज्य प्राप्त करना चाहा है सो उससे तूने बहुत ही अच्छा धर्म और यशका उपाजन किया है ॥९४॥ तूने अपनी यह स्तुति भी स्थापित कर दी कि चक्रवर्ती भरत आदिब्रह्मा भगवान् नृपभदेवका ज्येष्ठ पुत्र था तथा वह अपने कुलका उद्धारक हुआ था ॥९५॥ हे भरत, आज तूने जिसे जीता है और जो पापसे भरी हुई है ऐसी इस राज्य लक्ष्मीको तू एक अपने ही द्वारा उपभोग करने योग्य तथा अविनाशी समझता है ॥९६॥ जिसका तूने आदर किया है ऐसी यह राज्यलक्ष्मी अब तुझे ही प्रिय रहे, हे आयुष्मन् अब यह मेरे योग्य नहीं है क्योंकि बन्धन सज्जन पुरुषोंके आनन्दके लिए नहीं होता है । भावार्थ - यह लक्ष्मी स्वयं एक प्रकारका बन्धन है अथवा कर्म बन्धका कारण है इसलिए सज्जन पुरुष इसे

१ धमम् । २ भ्रंशम् । ३ अनुमुक्ता । ४ मूयिक । ५ जीण । ६ निकृष्टताम् । ७ विस्मयान्वितत्वम् । ८ मुखीति मुह्यन् तेन । ९ न किंचित्कृत । किमपि कतुमसमय इत्यर्थ । १० राज्याभिलाषेण । ११ प्रशस्तम् । १२ स्तुति । १३ यस्मात् कारणात् । १४ अनयभोगाविताम् । १५ बन्धकारणपरिग्रह ।

दूषितां कश्चैरेनां फलिनीमपि ते श्रियम् । करेणापि स्पृशेद् धीमान् लतां कण्टकिनी च क० ॥९८॥
 विषकण्टकजालीव त्याज्यैषा सर्वथाऽपि नः । निष्कण्टकां तपोलक्ष्मीं स्वाधीनां कर्तुमिच्छताम् ॥९९॥
 मृष्यतां^१ च तदस्माभिः कृतमागो^२ यदीदृशम् । प्रच्युतो विनयात् सोऽहं स्वं चापलमदीदृशम्^३ ॥१००॥
 इत्युच्चरद् गिरामोघो^४ मुखाद् बाहुबलीशितुः । ध्वनिरवदादिवाऽऽतप्तं^५ जिणोराह्लादयन्मनः ॥१०१॥
 हा दुष्ट^६ कृतमित्युच्चैरात्मानं स विगर्हयन् । अन्ववातस्य पापेन कर्मणा स्वेन चक्राद् ॥१०२॥
 प्रयुक्तानुनयं भूयो मनुमन्त्र्यं स धीरयन् । न्यवृत्तञ्च स्वसकल्पाद् हो स्थैर्यं मनस्विनाम् ॥१०३॥
 महाबलिनि निक्षिप्तराज्यर्द्धिः स स्वनन्दने । दीक्षामुपादधे जैनी गुरोराराधयन् पदम् ॥१०४॥
 दीक्षावल्ल्या परिप्वक्तं स्त्यक्ताशेषपरिच्छदः । स रजे सलतः^७ पत्रमोक्षक्षामं^८ इव द्रुम ॥१०५॥
 गुरोरनुमतेऽधीती^९ दधदेकविहारिताम् । प्रतिमायोगमावर्ष^{१०} मातस्थे किल संवृतः^{११} ॥१०६॥
 स^{१२} शसितव्रतोऽनाश्वान्^{१३} वनवल्लीततान्तिकः । बल्मीकरन्ध्रनि सर्पत् सर्पैरासीद् भयानकः^{१४} ॥१०७॥
^{१५} श्वसदाविर्मवद्भोगं^{१६} भुजङ्गशिगुजृम्भितैः । विषाङ्कुरैरिवोपाङ्घ्रि^{१७} स रजे वेष्टितोऽमितः ॥१०८॥

कभी नहीं चाहते ॥९७॥ यद्यपि यह तेरी लक्ष्मी फलवती है तथापि अनेक प्रकारके काँटोसे —
 विपत्तियोसे दूषित है । भला, ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो काँटेवाली लताको हाथसे
 छुयेगा भी ॥९८॥ अब हम कण्टकरहित तपरूपी लक्ष्मीको अपने अधीन करना चाहते हैं
 इसलिए यह राज्यलक्ष्मी हम लोगोके लिए विषके काँटोकी श्रेणीके समान सर्वथा त्याज्य
 है ॥९९॥ अतएव जो मैंने यह ऐसा अपराध किया है उसे क्षमा कर दीजिए । मैं विनयसे
 च्युत हो गया था अर्थात् मैंने आपकी विनय नहीं की सो इसे मैं अपनी चचलता ही समझता
 हूँ ॥१००॥ जिस प्रकार मेघसे निकलती हुई गर्जना सन्तप्त मनुष्योको आनन्दित कर देती
 है उसी प्रकार महाराज बाहुबलीके मुखसे निकलते हुए वाणीके समूहने चक्रवर्ती भरतके सन्तप्त
 मनको कुछ-कुछ आनन्दित कर दिया था ॥१०१॥ 'हा मैंने बहुत ही दुष्टताका कार्य किया है'
 इस प्रकार जोर-जोरसे अपनी निन्दा करता हुआ चक्रवर्ती अपने पाप कर्मसे बहुत ही सन्तप्त
 हुआ ॥१०२॥ जिसमे अनेक प्रकारके अनुनय-विनयका प्रयोग किया गया है इस रीतिसे
 अन्तिम कुलकर महाराज भरतको बार-बार प्रसन्न करता हुआ बाहुबली अपने सकल्पसे पीछे
 नहीं हटा सो ठीक ही है क्योंकि तेजस्वी पुरुषोकी स्थिरता भी आश्चर्यजनक होती है ॥१०३॥
 उसने अपने पुत्र महाबलीको राज्यलक्ष्मी सौंप दी और स्वयं गुरुदेवके चरणोकी आराधना करते
 हुए जैनी दीक्षा धारण कर ली ॥१०४॥ जिसने समस्त परिग्रह छोड़ दिया है तथा जो दीक्षा
 रूपी लतासे आलिङ्गित हो रहा है ऐसा वह बाहुबली उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो
 पत्तोके गिर जानेसे कुशल लतायुक्त कोई वृक्ष ही हो ॥१०५॥ गुरुकी आज्ञामे रहकर शास्त्रोका
 अध्ययन करनेमे कुशल तथा एक विहारोपन धारण करनेवाले जितेन्द्रिय बाहुबलीने एक
 वर्ष तक प्रतिमा योग धारण किया अर्थात् एक ही जगह एक ही आसनसे खड़े रहनेका नियम
 लिया ॥१०६॥ जिन्होंने प्रशसनीय व्रत धारण किये हैं, जो कभी भोजन नहीं करते, और
 जिनके समीपका प्रदेश वनकी लताओसे व्याप्त हो रहा है ऐसे वे बाहुबली वामीके छिद्रोसे
 निकलते हुए सर्पोसे बहुत ही भयानक हो रहे थे ॥१०७॥ जिनके फणा प्रकट हो रहे हैं ऐसे
 फुँकारते हुए सर्पके बच्चोकी उछल-कूदसे चारो ओरसे घिरे हुए वे बाहुबली ऐसे सुशोभित

१ सम्यताम् । २ अपराध । ३ मृशमपश्यम् । ४ प्रवाह । ५ भरतस्य । ६ दुष्टु ट० । निन्दा । 'निन्दाया
 दुष्टु सुष्टु प्रशसने ।' इत्यभिधानात् । ७ निजवैराग्यादित्यर्थ । ८ आलिङ्गित । ९ लतया सहित ।
 १० पर्णमोचनकृश । ११ अधीतवान् । १२ वर्षाविधि । १३ निभूत । १४ स्तुत । १५ उपवासी ।
 १६ भयकर । १७ उच्छ्वसत् । १८ फण । १९ अङ्घ्रिसमीपे ।

दधान स्कन्धपयन्तलम्बिनी केशवल्लरी । मा^३ वगादृष्टृणाहिमण्डलं हरिचन्दनम् ॥१०३॥
 माधवीलतया गाढमुपगृ^३ प्रकुलया । शाखाबाहुभिराघट्टय सन्नाप्यव^४ सहामया^५ ॥१०४॥
 विद्याधरा करालून^६ पल्लवा सा किलागुपत् । पादया कामिनावाह्य^७ मामि नम्राऽनुनय्यता^८ ॥१०५॥
 रजे स तदवस्थोऽपि तपो दुश्चरमाचरन् । कामाय मुक्तिरामि^९ न्योऽसृहयालु शृशीमयम् ॥१०६॥
 तपस्तनूनपात्ताप^{१०} सतप्तस्यास्य केवलम् । शरारमश्रुपञ्चाप्यशोष^{११} कर्मप्यशमदम् ॥१०७॥
 ताम्रं तपस्यतोऽप्यस्य नासात् काश्चिदुपप्लवः । अचित्य महतां धैर्य यनायाति^{१२} न विक्रियाम् ॥१०८॥
 सर्वसह^{१३} क्षमामार प्रशान्त शीतल जलम् । निमग पयन दीप्त^{१४} स जिगत्य हुताशनम् ॥१०९॥
 क्षुध पिपासां शीतोष्णं सदशमशकद्वयम् । मार्गाप्यवनमसिद्धयै^{१५} द्वद्वादि सहत स्म स ॥११०॥
 स नाग्य^{१६} परम विभ्रशामदीन्द्रियधूतकै । मद्वाच्यस्य^{१७} सा^{१८} गुप्तिर्नाग्य नाम पर तप ॥१११॥
 रतिं चारतिमप्यप द्वितय स्म तितिक्षते^{१९} । न श्यरतिवाधा हि विषयानमिषङ्गिण^{२०} ॥११२॥

हो रहे थे मानो उनके चरणोंके समीप विपके अंकुरे ही लग रहे हो ॥१०८॥ क-घों पयन्त
 लटकती हुई केशरूपी लताओंको धारण करनेवाले वे बाहुबली मुनिराज अनेक काले सर्पोंके
 समूहको धारण करनेवाले हरिचन्दन वृक्षका अनुकरण कर रहे थे ॥१०९॥ फूली हुई वासन्ती
 लता अपनी शाखारूपी भुजाओंके द्वारा उनका गाढ आलिंगन कर रही थी और उससे वे ऐसे
 जान पड़ते थे मानो हार लिये हुए कोई सखी ही अपनी भुजाओंसे उनका आलिंगन कर रही हो
 ॥११०॥ जिसके कोमल पत्ते विद्याधारियोंन अपने हाथसे तोड़ लिये हैं ऐसी वह वासन्ती लता
 उनके चरणोंपर पड़कर सूख गयी थी और ऐसी मालूम होती थी मानो कुछ नम्र होकर अनुनय
 करती हुई कोई स्त्री ही पैरोंपर पड़ी हो ॥१११॥ ऐसी अवस्था होनेपर भी वे कठिन तपश्चरण
 करते थे जिससे उनका शरीर कुश हो गया था और उससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मुक्तिरूपी
 स्त्रीकी इच्छा करता हुआ कोई कामी ही हो ॥११२॥ तपरूपी अग्निके सन्तापसे सन्तप्त
 हुए बाहुबलीका केवल शरीर ही खड़े-खड़े नहीं सूख गया था किन्तु दुःख देनेवाले कम भी सूख
 गये थे अर्थात् नष्ट हो गये थे ॥११३॥ तीव्र तपस्या करते हुए बाहुबलीके कभी कोई उपद्रव
 नहीं हुआ था सो ठीक ही है क्योंकि बड़े पुरुषोंका धैर्य अचित्य होता है जिससे कि वे कभी
 विकारको प्राप्त नहीं होते ॥११४॥ वे सब बाधाओंको सहन कर लेते थे, अत्यन्त शान्त थे,
 परिग्रह रहित थे और अतिशय देदीप्यमान थे इसलिए उन्होंने अपने गुणोंसे पृथ्वी, जल, वायु,
 और अग्निको जीत लिया था ॥११५॥ वे मार्गसे च्युत न होनेके लिए भूख, प्यास, शीत, गरमी,
 तथा डार, मच्छर आदि परीयहोके दुःख सहन करते थे ॥११६॥ उत्कृष्ट नाग्य व्रतको धारण
 करते हुए बाहुबली इन्द्रियरूपी धूर्तोंके द्वारा नहीं भेदन किये जा सके थे । ब्रह्मचर्यकी उत्कृष्ट
 रूपसे रक्षा करना ही नाग्य व्रत है और यही उत्तम तप है । भावाय — वे यद्यपि नग्न रहते
 थे तथापि इन्द्रियरूप धूर्त उन्हें विकृत नहीं कर सके थे ॥११७॥ वे रति और अरति इन दोनों
 परिपहोंको भी सहन करते थे अर्थात् रागके कारण उपस्थित होनेपर किसीसे राग नहीं करते
 थे और द्वेषके कारण उपस्थित होनेपर किसीसे द्वेष नहीं करते थे सो ठीक ही है क्योंकि विषयों

१ भुजशिखर । २ अनुकरोति स्म । ३ आलिङ्गित । ४ सख्या । ५ सहारया अ० स० इ० ल० । ६ छेदित ।
 ७ ईषद् । ८ अनुनयं कुवती । ९ अग्नि । १० उद्ध्वत्ति पू क्षुध इति शम्भुप्रत्ययान्त । उद्ध्वभूत शरीर
 मित्यर्थ । ११ धर्मेण । १२ सकलपरीयहोपसग सहमान । १३ भूभारमित्यर्थ । १४ सपेविशेषेण दीप्त ।
 १५ परीयहान् । १६ गन्तव्यम् । १७ प्रसिद्धा । १८ रक्षा । १९ सहते स्म । २० विषयवाञ्छारहितस्य ।

नास्याग्नीत स्त्रीकृता बाधा भोगनिर्वेदमायुषः^१ । शरीरमशुचि स्त्रैण^२ पश्यतश्चर्मपुत्रिकाम् ॥११९॥
स्थितश्चर्या निपद्यां च शय्यां चामोढ हंलया । मनमाऽनभि^३मंथित्सन्नपा^४नच्छयनामनम् ॥१२०॥
स सेहं वधमाक्रोश परमार्थविदां वर । शरीरकं स्वयं त्याज्ये निःस्पृहोऽनमिनन्दधुः^५ ॥१२१॥
याचिन्नित्रेण नास्येष्टा विप्राणेन^६ तनुस्थितिः । तेन^७ वाचंयमो^८ भूत्वा याच्चावाधामसोढ सः ॥१२२॥
जल मल नृणस्पृशं मोऽमोढो^९ टोत्तमक्षम । व्युत्सृष्टतनुमस्कारो निर्विशेषसुखासुखः^{१०} ॥१२३॥
रोगस्यायतन^{११} देहमाध्यायन्^{१२} धीरधीरमौ । विविधातङ्कजां बाधा सहते स्म सुदुःसहाम् ॥१२४॥
प्रज्ञापरिपह प्राज्ञो ज्ञानज गर्वमुत्सृजन् । आसर्वज^{१३} तदुत्कर्षात् स ससाह^{१४} ससाहसः ॥१२५॥
स सत्कारपुरस्कारे नार्मीजातु ममुत्सुकः । पुरस्कृतां मुद नागात् सत्कृतो न स्म तुष्यति ॥१२६॥
परीपहमलाम च मनुष्यो जयति स्म सः । अजानादर्शनोद्धता बाधासीनास्य योगिनः ॥१२७॥

की इच्छा न रखनेवाले पुरुषको रति तथा अरतिकी बाधा नहीं होती ॥११८॥ भोगसे विरक्त हुए तथा स्त्रियोंके अपवित्र शरीरको चमड़ेकी पुतलीके समान देखते हुए उन बाहुबली महाराजको स्त्रियोंके द्वारा की हुई कोई बाधा नहीं हुई थी अर्थात् वे अच्छी तरह स्त्रीपरिषह सहन करते थे ॥११९॥ वे हमेशा खड़े रहते थे और जूता तथा शयन आदिकी मनसे भी इच्छा नहीं करते थे इसलिए उन्होंने चर्या, निपट्टा और गय्या परिषहको लीला मात्रमे ही जीत लिया था ॥१२०॥ जो स्वयं नष्ट हो जानेवाले शरीरमे निस्पृह रहते हैं और न उसमे कोई आनन्द ही मानते हैं ऐसे परमार्थके जाननेवालोमे श्रेष्ठ बाहुबली महाराज वध और आक्रोश परिषहको भी सहन करते थे ॥१२१॥ याचनासे प्राप्त हुए भोजनके द्वारा शरीरकी स्थिति रखना उन्हें इष्ट नहीं था इसलिए वे मौन रहकर याचना परिषहकी बाधाको सहन करते थे ॥१२२॥ जिन्होंने उत्तम क्षमा धारण की है, शरीरका सत्कार छोड़ दिया है और जिन्हे सुख तथा दुःख दोनों ही समान हैं ऐसे उन मुनिराजने स्वेद मल तथा तृण स्पर्श परिषहको भी सहन किया था ॥१२३॥ 'यह शरीर रोगोका घर है' इस प्रकार चिन्तन करते ही वे-धीर-वीर बुद्धिके धारक बाहुबली बड़ी कठिणतासे सहन करनेके योग्य रोगोसे उत्पन्न हुई बाधाको भी सहन करते थे ॥१२४॥ ज्ञानका उत्कर्ष सर्वज्ञ होने तक है अर्थात् जबतक सर्वज्ञ न हो जावे तबतक ज्ञान घटता बढ़ता रहता है इसलिए ज्ञानसे उत्पन्न हुए अहंकार-सर्वज्ञ का त्याग करते हुए अतिशय बुद्धिमान् और साहसी वे मुनिराज प्रज्ञा परिषहको सहन करते थे । भावार्थ — केवलज्ञान होनेके पहले सभीका ज्ञान अपूर्ण रहता है ऐसा विचार कर वे कभी ज्ञानका गर्व नहीं करते थे ॥१२५॥ वे अपने सत्कार पुरस्कारमे कभी उत्कण्ठित नहीं होते थे । यदि किसीने उन्हें अपने कार्यमे अगुआ बनाया तो वे हर्षित नहीं होते थे और किसीने उनका सत्कार किया तो सन्तुष्ट नहीं होते थे । भावार्थ — अपने कार्यमे किसीको अगुआ बनाना पुरस्कार कहलाता है तथा स्वयं आये हुएका सम्मान करना सत्कार कहलाता है । वे मुनिराज सत्कार पुरस्कार दोनोंमे ही निरुत्सुक रहते थे — उन्होंने सत्कार पुरस्कार परिषह अच्छी तरह सहन किया था ॥१२६॥ सदा सन्तुष्ट रहनेवाले बाहुबलीजीने अलाभ परिषहको जीता था तथा अज्ञान और अदर्शनसे उत्पन्न होनेवाली बाधाएँ भी उन मुनिराजको नहीं हुई थी ॥१२७॥

१ निर्वेद गतस्य । —मीयुष ५०, इ०, द० । २ स्त्रीसवन्वि । ३ अभिमघानमकुर्वन् । ४ पादत्राण । 'पादू-
व्पानत् स्त्री' इत्यभिधानात् । ५ आनन्दरहित । ६ याचनया निवृत्तेन । ७ भोजनेन । ८ तेन कारणेन ।
९ मीनी भूत्वा । १० धृत । ११ समानमुखदुःखः । १२ गृहम् । १३ स्मरन् । १४ ज्ञानोत्कर्षान् । उपर्युपरि
केवलज्ञानादित्यर्थः । १५ सहते स्म ।

दधान स्कन्धेपयन्तलम्बिना केशवल्लरा । माऽ^१ वगाद्बटृष्णाहिमण्डलं हरिचन्दनम् ॥१०६॥
 माघवीलतया गात्रमुपगृह्य^२ प्रफुल्लया । शाखाबाहुभिरावेष्टय सप्राच्यव^३ महामया^४ ॥११०॥
 विद्याधरा करात्कृतं पल्लया सा किलाशुपत् । पादया कामिनावास्व^५ मामि नम्राऽनुनम्यता^६ ॥१११॥
 रजे स तदवस्थोऽपि तपो दुश्चरमाचरन् । कामाथ मुनिकामि-या^७ स्तुहयातु वृशामवन् ॥११२॥
 तपस्तनूनपात्ताप^८ सतसस्यास्य कवचम् । शरीरमशुपन्नाचशोष^९ कर्माप्यशमदम् ॥११३॥
 ताम् तपस्यतोऽप्यस्य नासीत् काश्चिदुपप्लव^{१०} । अचिन्त्य महता भय यनायाति^{११} न विभ्रियाम् ॥११४॥
 सर्वसह^{१२} क्षमामार प्रशान्त शीतल जलम् । नि मग पवन दास^{१३} स जिगाय हुताशनम् ॥११५॥
 क्षुध पिपासा शीतोष्ण सदशमशकद्वयम् । मागाप्यघनमसिद्धयै^{१४} द्वन्द्वानि सहत स्म स ॥११६॥
 स नाग्य^{१५} परम विभ्रजामदाद्रियधृतक । ब्रह्मचर्यस्य^{१६} सा^{१७} गुप्तिर्नाग्य नाम पर तप ॥११७॥
 रतिं चारतिमप्यप द्वितय स्म तितिक्षत^{१८} । न रत्यरतिबाधा हि विषयानमिषमिण^{१९} ॥११८॥

हो रहे थे मानो उनके चरणोंके समीप विपके अंकुरे ही लग रहे हो ॥१०८॥ कर्धों पयन्त लटकती हुई केशरूपी लताओंको धारण करनेवाले वे बाहुबली मुनिराज अनेक काल सपोंके समूहको धारण करनेवाले हरिचन्दन वक्षका अनुकरण कर रहे थे ॥१०९॥ फूली हुई वासन्ती लता अपनी शाखारूपी भुजाओंके द्वारा उनका गाठ आलिंगन कर रही थी और उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो हार लिये हुए कोई सखी ही अपनी भुजाओंसे उनका आलिंगन कर रही हो ॥११०॥ जिसके कोमल पत्ते विद्याधरियोंने अपने हाथसे तोड़ लिये हैं ऐसी वह वासन्ती लता उनके चरणोंपर पड़कर सूख गयी थी और ऐसी मालूम होती थी मानो कुछ नम्र होकर अनुनय करती हुई कोई स्त्री ही पैरोंपर पड़ी हो ॥१११॥ ऐसी अवस्था होनेपर भी वे कठिन तपश्चरण करते थे जिससे उनका शरीर कृश हो गया था और उससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मुक्तिरूपी स्त्रीकी इच्छा करता हुआ कोई कामी ही हो ॥११२॥ तपरूपी अग्निके सन्तापसे सन्तप्त हुए बाहुबलीका केवल शरीर ही खड़े-खड़े नहीं सूख गया था किन्तु दुःख देनेवाले काम भी सूख गये थे अर्थात् नष्ट हो गये थे ॥११३॥ तीव्र तपस्या करते हुए बाहुबलीके कभी कोई उपद्रव नहीं हुआ था सो ठीक ही है क्योंकि बड़े पुरुषोंका धैर्य अचिन्त्य होता है जिससे कि वे कभी विकारको प्राप्त नहीं होते ॥११४॥ वे सब बाधाओंको सहन कर लते थे, अत्यन्त शान्त थे, परिग्रहरहित थे और अतिशय देदीप्यमान थे इसलिए उन्होंने अपने गुणोंसे पृथ्वी, जल, वायु और अग्निको जीत लिया था ॥११५॥ वे मागसे च्युत न होनेके लिए भूख, प्यास शीत, गरमी, तथा ड्रास, मच्छर आदि परीषहोंके दुःख सहन करते थे ॥११६॥ उत्कृष्ट नाग्य व्रतको धारण करते हुए बाहुबली इन्द्रियरूपी घूर्तोंके द्वारा नहीं मेदन किये जा सके थे । ब्रह्मचर्यकी उत्कृष्ट रूपसे रक्षा करना ही नाग्य व्रत है और यही उत्तम तप है । भावाथ -- वे यद्यपि नग्न रहते थे तथापि इन्द्रियरूप घूर्त उन्हें विकृत नहीं कर सके थे ॥११७॥ वे रति और अरति इन दोनों परिषहोंको भी सहन करते थे अर्थात् रागके कारण उपस्थित होनेपर किसीसे राग नहीं करते थे और द्वेषके कारण उपस्थित होनेपर किसीसे द्वेष नहीं करते थे सो ठीक ही है क्योंकि विषयों

१ भुजशिखर । २ अनुकरोति स्म । ३ आलिङ्गित । ४ सख्या । ५ सहारया अ० स० इ० ल । ६ छेदित । ७ ईषद् । ८ अनुनयं कृषती । ९ अग्नि । १० उद्धर्वात् पुं शप इति णम्प्रत्ययान्त । उद्ध्वभूत शरीरमित्यर्थ । ११ धैर्येण । १२ सकलपरीषहोपसम सहमान । १३ भूभारमित्यर्थ । १४ तपोविशेषेण दीप्त । १५ परीषहान् । १६ गन्तव्यम् । १७ प्रसिद्धा । १८ रक्षा । १९ सहते स्म । २० विषयवाञ्छारहितस्य ।

नास्यासीत् स्त्रीकृता बाधा भोगनिर्वेदमायुषः^१ । शरीरमशुचि स्त्रैण^२ पश्यतश्चर्मपुत्रिकाम् ॥११९॥
 स्थितश्चर्यां निपद्यां च शय्यां चासौढ हेलया । मनसाऽनभि^३मंधित्सन्नपां नच्छयनामनम् ॥१२०॥
 स संहं वधमाक्रोश परमार्थविदां वरः । शरीरके स्वयं त्याज्ये निःस्पृहोऽनमिनन्दथु^४ ॥१२१॥
 याचित्रियेण नास्येष्टा विप्याणेन^५ तनुस्थितिः । तेन^६ वाचंयमो^७ भूत्वा याच्चावाधामसौढ सः ॥१२२॥
 जल्ल मल तृणस्पर्शं सौऽसौढो^८ ढोत्तमक्षमः । व्युत्स्पृष्टतनुमस्कारो निर्विशेषसुरासुखः^९ ॥१२३॥
 रोगस्यायतनं^{१०} देहमाध्यायन्^{११} धीरधीरसौ । विविधातङ्कजां बाधां सहते स्म सुदुःमहाम् ॥१२४॥
 प्रज्ञापरिपह प्राज्ञो ज्ञानज गर्वमुन्मृजन् । आम्बर्वजं^{१२} तदुत्कर्षान् स मसाह^{१३} ममाहसः ॥१२५॥
 स सत्कारपुरस्कारं नासीजानु समुत्सुकः । पुरस्कृतो मुद नागात् सत्कृतो न स्म तुप्यति ॥१२६॥
 परीपहमलाम च सन्तुष्टो जयति स्म सः । अज्ञानादर्शनोद्धता बाधासीन्नास्य योगिनः ॥१२७॥

की इच्छा न रखनेवाले पुरुषको रति तथा अरतिकी बाधा नहीं होती ॥११८॥ भोगसे विरक्त हुए तथा स्त्रियोके अपवित्र शरीरको चमड़ेकी पुतलीके समान देखते हुए उन बाहुवली महाराजको स्त्रियोके द्वारा की हुई कोई बाधा नहीं हुई थी अर्थात् वे अच्छी तरह स्त्रीपरिपह सहन करते थे ॥११९॥ वे हमेशा खड़े रहते थे और जूता तथा शयन आदिकी मनसे भी इच्छा नहीं करते थे इसलिए उन्होंने चर्या, निपद्या और गय्या परिपहको लीला मात्रमे ही जीत लिया था ॥१२०॥ जो स्वयं नष्ट हो जानेवाले शरीरमे निःस्पृह रहते हैं और न उसमे कोई आनन्द ही मानते हैं ऐसे परमार्थके जाननेवालोमे श्रेष्ठ बाहुवली महाराज वध और आक्रोश परिपहको भी सहन करते थे ॥१२१॥ याचनासे प्राप्त हुए भोजनके द्वारा शरीरकी स्थिति रखना उन्हें इष्ट नहीं था इसलिए वे मीन रहकर याचना परिपहकी बाधाको सहन करते थे ॥१२२॥ जिन्होंने उत्तम क्षमा धारण की है, शरीरका सत्कार छोड़ दिया है और जिन्हे सुख तथा दुःख दोनों ही समान हैं ऐसे उन मुनिराजने स्वेद मल तथा तृण स्पर्श परिपहको भी सहन किया था ॥१२३॥ 'यह शरीर रोगोका घर है' इस प्रकार चिन्तन करते ही वे-धीर-वीर बुद्धिके धारक बाहुवली बड़ी कठिनतासे सहन करनेके योग्य रोगोसे उत्पन्न हुई बाधाको भी सहन करते थे ॥१२४॥ ज्ञानका उत्कर्ष सर्वज्ञ होने तक है अर्थात् जबतक सर्वज्ञ न हो जावे तबतक ज्ञान घटता बढ़ता रहता है इसलिए ज्ञानसे उत्पन्न हुए अहकारका त्याग करते हुए अतिगय बुद्धिमान् और साहसी वे मुनिराज प्रज्ञा परिपहको सहन करते थे । भावार्थ — केवलज्ञान होनेके पहले सभीका ज्ञान अपूर्ण रहता है ऐसा विचार कर वे कभी ज्ञानका गर्व नहीं करते थे ॥१२५॥ वे अपने सत्कार पुरस्कारमे कभी उत्कण्ठित नहीं होते थे । यदि किसीने उन्हें अपने कार्यमे अगुआ बनाया तो वे हर्षित नहीं होते थे और किसीने उनका सत्कार किया तो सन्तुष्ट नहीं होते थे । भावार्थ — अपने कार्यमे किसीको अगुआ बनाना पुरस्कार कहलाता है तथा स्वयं आये हुएका सम्मान करना सत्कार कहलाता है । वे मुनिराज सत्कार पुरस्कार दोनोंमे ही निस्तुक् रहते थे — उन्होंने सत्कार पुरस्कार परिपह अच्छी तरह सहन किया था ॥१२६॥ सदा सन्तुष्ट रहनेवाले बाहुवलीजीने अलाभ परिपहको जीता था तथा अज्ञान और अदर्शनसे उत्पन्न होनेवाली बाधाएँ भी उन मुनिराजको नहीं हुई थी ॥१२७॥

१ निर्वेद गतस्य । — मीयुष प०, इ०, द० । २ स्त्रीसबन्धि । ३ अभिनर्गवानमकुर्वन् । ४ पादत्राण । 'पाङ्क-
 त्पानत् स्त्री' इत्यभिधानात् । ५ आनन्दरहित । ६ याचनया निवृत्तेन । ७ भोजनेन । ८ तेन कारणेन ।
 ९ मीनो भूत्वा । १० धृत । ११ समानमुखदुःखः । १२ गृहम् । १३ स्मरन् । १४ ज्ञानोत्कर्षात् । उपर्युपरि
 केवलज्ञानादित्यर्थः । १५ सहते स्म ।

परीपहजयादस्य विपुला निजराऽभवत् । कमणां निजरापाय परापहजय पर ॥१२८॥

क्रोध तितिक्षया^१ मानमुत्सेक^२परिवजन । मायामृजुतया लाम मतापण जिगाय सः ॥१२९॥

^३पक्षेन्द्रियाव्यनायासात् सोऽजयजितमन्मथ । विषयन्धनदासस्य कामाग्ने शमन तप ॥१३०॥

आहारमयसज्ञे च समैधुनपरिग्रह । अनङ्गविजयादत्ता^४ सज्ञा क्षपयति स्म स ॥१३१॥

इत्यन्तरङ्गशत्रूणां स भञ्जन् प्रसर मुहु । जयति स्माऽऽत्मनाऽऽमानमात्मविद् विदिताग्निर^५ ॥१३२॥

मत्त च समिती सर्वा मम्यगिन्द्रियरोधनम् । अचलतां च कशानां प्रतिलुब्धनसर्गरम् ॥१३३॥

आवश्यकेष्वसथाभमस्नान भित्तिशायिताम् । अदन्तधावन स्थित्वा मुक्तिं मत्त च नासकृत्^६ ॥१३४॥

प्राहुमूलगुणानेतान् तथोत्तरगुणा पर । सर्पा माराधन यय साऽतनिष्ठातनुमुनि^७ ॥१३५॥

^{१०}पुतेष्वहापयन्^८ कांचिद् मत्तशुद्धिं परां भित । साऽदीपि किण्वैर्मास्थानिद दासैस्तपोऽशुभि ॥१३६॥

गौरवैस्त्रिभिरुमुक्त परां नि शङ्कतां गत । ^९धर्मदशभिरारुददास्याऽभू मुक्तिवत्सनि ॥१३७॥

शुसि त्रयमयी^{११} गुप्तिं श्रिता जानासिमासुर । सर्वमित^{१२} समितिमि स भज विजिगीषुताम् ॥१३८॥

इस प्रकार परिपहोके जीतनेस उनके बहुत बड़ी कर्मोंकी निजरा हो गयी थी सो ठीक ही है क्योंकि परिपहोंको जीतना ही कर्मोंकी निजरा करनेका श्रेष्ठ उपाय है ॥१२८॥ उन्होंने क्षमासे क्रोधको, अहंकारके त्यागसे मानको, सरलतासे मायाको और सन्तोषसे लोभको जीता था ॥१२९॥ कामदेवको जीतनेवाला उन मुनिराजने पाँच इंद्रियाको अनायास ही जीत लिया था सो ठीक ही है क्योंकि विषयरूपी ई धनस जलती हुई कामरूपी अग्निको शमन करनेवाला तपश्चरण ही है । भावाथ—इंद्रियोंको बश करना तप है और यह तभी हो सकता है जब कामरूपी अग्निको जीत लिया जावे ॥१३०॥ उन्होंने कामको जीत लनेसे आहार, भय, मयुन और परिग्रह इन सज्ञाओंको नष्ट किया था ॥१३१॥ इस प्रकार अन्तरंग शत्रुओंके प्रसारको बार बार नष्ट करते हुए उन आत्मज्ञानी तथा समस्त पदार्थोंको जाननेवाले मुनिराजने अपने आत्मा के द्वारा ही अपने आत्माको जीत लिया था ॥१३२॥ पाँच महाव्रत, पाँच समितियाँ, पाँच इंद्रियदमन, वस्त्र परित्याग, केशोका लोंच करना, छह आवश्यकोंमें कभी बाधा नहीं होना, स्नान नहीं करना, पृथिवीपर सोना, दाँतीन नहीं करना, खड़े होकर भोजन करना और दिन में एक बार आहार लेना, इन्हें अट्ठाईस मूलगुण कहते हैं । इनके सिवाय चौरासी लाख उत्तर गुण भी है, वे महामुनि उन सबके पालन करनेमें प्रयत्न करते थे ॥१३३-१३५॥ इनमें कुछ भी नहीं छोड़ते हुए अर्थात् सबका पूण रीतिसे पालन करते हुए वे मुनिराज व्रतोकी उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त हुए थे तथा जिस प्रकार देदीप्यमान किरणोंसे सूर्य प्रकाशमान होता है उसी प्रकार वे भी तपकी देदीप्यमान किरणोंसे प्रकाशमान हो रहे थे ॥१३६॥ वे रसगौरव, शब्द गौरव, और ऋद्धिगौरव इन तीनोंसे सहित थे अत्यन्त नि शल्य थे और दशधर्मोंके द्वारा उन्हें मोक्षमागम अत्यन्त दृढता प्राप्त हो गयी थी ॥१३७॥ वे मुनिराज किसी विजिगीषु अर्थात् शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजाके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार विजिगीषु राजा किसी दुर्ग आदि सुरक्षित स्थानका आश्रय लता है, तलवारसे देदीप्यमान होता है और कबच पहने रहता है उसी प्रकार उन मुनिराजने भी तीन गुप्तियोंरूपी दुर्गोंका आश्रय ल रखा था, वे भी ज्ञानरूपी तलवारस देदीप्यमान हो रहे थे और पाँच समितिरूप कबच पहन रखा था । भावाथ — यथाथमें वे कमरूप शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा रखते थे

१ क्षमया । २ गर्ग । ३ त व० अ स० इ० प० द० पस्तकसमसोऽय क्रम । ल० पुस्तके १२९ १३० इत्थोक्तयोर्व्यतिक्रमोऽस्ति । ४ समूहम् । ५ जातसकलपदाथ । ६ प्रतिज्ञाम् । ७ एकभुक्तमित्यथ । ८ मूलोत्तर गुणानाम् । ९ महान् । १० प्रोक्तगुणेषु । ११ हानिमकुबन् । १२ उत्तमक्षमादिभि । १३ रक्षाम् । १४ कवचित् ।

कषायतस्करैर्नास्य हृतं रत्नत्रयं धनम् । सतत जागरूकस्य भूयो भूयोऽप्रमाद्यत ॥१३६॥
 वाचंयमस्य^१ तस्यासान्न जातु विकथादरः । नामिद्यतेन्द्रियैरस्य मनोदुर्गं सुसंवृतम् ॥१४०॥
 मनोऽगारे महत्यस्य बोधिता ज्ञानदीपिका । व्यदीपि तत्^२ एवासन् विश्वेऽर्था ध्येयतापदे ॥१४१॥
 मतिश्रुताभ्या निःशेषमर्थतत्त्वं विचिन्वतः^३ । करामलकवद् विश्व तस्य विस्पष्टतामगात् ॥१४२॥
 परीषहजयैर्दीप्तो विजितेन्द्रियशात्रवः । कषायशत्रूनुच्छेद्य स तपो राज्यमन्वभूत् ॥१४३॥
 योगजाश्रद्धयस्तस्य प्रादुरासंस्तपोवलात् । यतोऽस्याविरभूच्छक्तिस्त्रैलोक्यक्षोभण प्रति ॥१४४॥
 चतुर्भेदेऽपि बोधेऽस्य समुत्कर्षस्तदोदभूत्^४ । तत्तदावरणीयानां क्षयोपशमजृम्भितः ॥१४५॥
 मतिज्ञानसमुत्कर्षात् कोष्ठबुद्ध्यादयोऽभवन् । श्रुतज्ञानेन^५ विश्वाङ्गपूर्ववित्रादिविस्तरः ॥१४६॥
 परमावधिमुल्लङ्घ्य स सर्वावधिमासदत् । मनःपर्ययबोधे^६ च संप्रापद् विपुलां^७ मतिम् ॥१४७॥
 ज्ञानशुद्ध्या तपःशुद्धिरस्यासीदतिरेकिणी । ज्ञान हि तपसो मूलं यद्वन्मूलं महातरोः ॥१४८॥

॥१३८॥ कषायरूपी चोरोके द्वारा उनका रत्नत्रयरूपी धन नहीं चुराया गया था क्योंकि वे सदा जागते रहते थे और बार-बार प्रमादरहित होते रहते थे । भावार्थ — लोकमे भी देखा जाता है कि जो मनुष्य सदा जागता रहता है और कभी प्रमाद नहीं करता उसकी चोरी नहीं होती । भगवान् बाहुबली अपने परिणामोके शोधमे निरन्तर लवलीन रहते थे और प्रमादको पासमे भी नहीं आने देते थे इसलिए कषायरूपी चोर उनके रत्नत्रयरूपी धनको नहीं चुरा सके थे ॥१३९॥ वे सदा मौन रहते थे इसलिए कभी उनका विकथाओमे आदर नहीं होता था । और उनका मनरूपी दुर्ग अत्यन्त सुरक्षित था इसलिए वह इन्द्रियोके द्वारा नहीं तोडा जा सका था । भावार्थ — वे कभी विकथाएँ नहीं करते थे और पाँचो इन्द्रियो तथा मनको वशमे रखते थे ॥१४०॥ उनके मनरूपी विशाल घरमे सदा ज्ञानरूपी दीपक प्रकाशमान रहता था इसलिए ही समस्त पदार्थ उनके ध्येयकोटिमे थे अर्थात् ध्यान करने योग्य थे । भावार्थ — पदार्थोंका ध्यान करनेके लिए उनका ज्ञान होना आवश्यक है, मुनिराज बाहुबलीको सब पदार्थोंका ज्ञान था इसलिए सभी पदार्थ उनके ध्यान करने योग्य थे ॥१४१॥ वे मति और श्रुत ज्ञानके द्वारा ससारके समस्त पदार्थोंका चिन्तन करते रहते थे इसलिए उन्हे यह जगत् हाथपर रखे हुए आँवलेके समान अत्यन्त स्पष्ट था ॥१४२॥ जो परिषहोको जीत लेनेसे देदीप्यमान हो रहे हैं और जिन्होने इन्द्रियरूपी शत्रुओको जीत लिया है ऐसे वे बाहुबली कषायरूपी शत्रुओको छेदकर तपरूपी राज्यका अनुभव कर रहे थे ॥१४३॥ तपश्चरणका बल पाकर उन मुनिराजके योगके निमित्तसे होनेवाली ऐसी अनेक ऋद्धियाँ प्रकट हुई थी जिनसे कि उनके तीनों लोकोमे क्षोभ पैदा करनेकी शक्ति प्रकट हो गयी थी ॥१४४॥ उस समय उनके मतिज्ञानावरण आदि कर्मोंके क्षमोपशमसे मतिज्ञान आदि चारो प्रकारके ज्ञानोमे वृद्धि हो गयी थी ॥१४५॥ मतिज्ञानको वृद्धि होनेसे उनके कोष्ठबुद्धि आदि ऋद्धियाँ प्रकट हो गयी थी और श्रुत ज्ञानके बढ़नेसे समस्त अगो तथा पूर्वोके जानने आदिकी शक्तिका विस्तार हो गया था ॥१४६॥ वे अवधिज्ञानमे परमावधिको उल्लघन कर सर्वावधिको प्राप्त हुए थे तथा मन पर्यय ज्ञानमे विपुलमति मन पर्यय ज्ञानको प्राप्त हुए थे ॥१४७॥ उन मुनिराजके ज्ञानकी शुद्धि होनेसे तपकी शुद्धि भी बहुत अधिक हो गयी थी सो ठीक ही है क्योंकि जिस प्रकार किसी बड़े वृक्षके ठहरनेमे मूल कारण उसकी जड़ है उसी प्रकार तपके ठहरने आदिमे मूल कारण ज्ञान है ॥१४८॥

१ मौनव्रतित । २ ज्ञानदीपिकाया सकाशात् । ३ चिन्तयतः । ४ उदेति स्म । ५ द्वादशाङ्गचतुर्दशपूर्ववेदित्व-
 तन्निरूपणादिविस्तर । ६ बोधि प०, ल० । ७ विपुलमतिमन पर्ययज्ञानम् ।

तपसोऽग्नौ चोपस्रतपसा चातिकर्षितः^१ । स दीप्ततपसाभ्यन्त दिदाप^२ दीप्तिमानिव ॥१४९॥
 सोऽस्तप्यत तपस्तप्त तपो घोर महद्य यत् । तथोत्तराण्यपि प्राप्तममुरकुर्याप्यनुग्रमात् ॥१५०॥
 तपोमिरकृशैरेभि स बर्मा मुनिसत्तम ।^३ घनापराधनिमुक्त करैरिव गमस्तिमान् ॥१५१॥
 विक्रियाऽष्टतयी^४ चित्र प्रादुरासात्तपोबलात् । विक्रियां निलिलां हित्वा तीव्रमस्य तपस्तपः^५ ॥१५२॥
 प्रासौपथ्यैरस्यासीत् सनिधिजगत हित ।^६ आमशङ्खेल^७ नष्टाद्यै^८ प्राणिनामुपकारिण ॥१५३॥
^९ अनाशुपोऽपि तस्यासाद्^{१०} रसद्धिं शक्तिमाग्रत । तथायत्समुद्रता बलद्विरपि पत्रधे ॥१५४॥
 अक्षीणावसथ^{११} सोऽभूत्तथाऽक्षाने^{१२} महानस (नस)^{१३} । सूत हि फलेमक्षीण तपाऽश्रु^{१४} णमुपासितम् ॥१५५॥
 निर्द्ध्वं द्रष्टृत्तिरध्यात्ममिति निर्जित्य त्रितय । ध्यानाभ्यास मनश्चक्रे योगी योगविदां वर ॥१५६॥
 क्षमामथोत्तमा भजे पर मादवमाजयत् । सत्यं शाच तपस्यागात्राकिंचन्य च सयमम् ॥१५७॥
 ब्रह्मचर्यं च धर्मस्य ध्यानस्यैता हि भावना ।^{१५} योगसिद्धौ परां^{१६} सिद्धिमामनन्तीह योगिन ॥१५८॥

वे महामुनि उग्र, और महाउग्र तपसे अत्यन्त कृश हो गये थे तथा दीप्त नामक तपस सूर्यके समान अत्यन्त देदीप्यमान हो रहे थे ॥१४९॥ उन्होने तप्तघोर और महाघार नामके तपश्चरण किये थे तथा इनके सिवाय उत्तर तप भी उनक खूब बढ़ गये थे ॥१५०॥ इन बड़े-बड़े तपोंसे वे उत्तम मुनिराज ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो मेघोंके आवरणसे निकला हुआ सूर्य ही अपनी किरणोंसे सुशोभित हो रहा हो ॥१५१॥ यद्यपि वे मुनिराज समस्त प्रकारकी विक्रिया अर्थात् विकार भावोंको छोड़कर कठिन तपस्या करते थे तथापि आश्चर्यकी बात है कि उनके तपके बलसे आठ प्रकारकी विक्रिया प्रकट हो गयी थी । भावाथ — रागद्वेष आदि विकार भावाको छोड़कर कठिन तपस्या करनेवाले उन बाहुबली महाराजके अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, और वशित्व यह आठ प्रकारकी विक्रिया ऋद्धि प्रकट हुई थीं ॥१५२॥ जिहे अनेक प्रकारकी औषध ऋद्धि प्राप्त है और जो आमश, श्वेल तथा जल्ल आदिके द्वारा प्राणियोंका उपकार करते हैं ऐसे उन मुनिराजकी समीपता जगत्का कल्याण करनेवाली थी । भावाथ — उनके समीप रहनेवाले लोगोंके समस्त रोग नष्ट हो जाते थे ॥१५३॥ यद्यपि वे आहार नहीं लते थे तथापि शक्ति मात्रसे ही उनके रसऋद्धि प्रकट हुई थी और तपश्चरणके बलसे प्रकट हुई उनकी बल ऋद्धि भी विस्तार पा रही थी । भावार्थ — भोजन करनेवाले मुनिराजके ही रसऋद्धिका उपयोग हो सकता है परन्तु वे भोजन नहीं करते थे इसलिए उनके शक्तिमात्रसे रसऋद्धिका सद्भाव बतलाया है ॥१५४॥ वे मुनिराज अक्षीणसवास तथा अक्षीणमहानस ऋद्धिको भी धारण कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि पूण रीतिसे पालन किया हुआ तप अक्षीण फल उत्पन्न करता है ॥१५५॥ विकल्परहित चित्तकी^१ वृत्ति धारण करना ही अध्यात्म है ऐसा निश्चय कर योगके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ उन जितेन्द्रिय योगिराजने मनको जोतकर उसे ध्यानके अभ्यासमें लगाया ॥१५६॥ उत्तमक्षमा, उत्तममादव, उत्तमआजब, उत्तमसत्य, उत्तमशीच, उत्तमसयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ये दश धमध्यानकी भावनाएँ हैं । इस लोकमें योगकी सिद्धि होनेपर ही उत्कृष्ट सिद्धि — सफलता — मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है ऐसा योगी लोग मानते हैं ॥१५७—१५८॥

१ कृशोक्त । २ रवि । ३ मेघ । ४ तरणि । ५ अष्टप्रकाराः । ६ विकारम् । ७ तप कुवत । ८ छि । ९ निष्ठोवन । १० स्वदोषमलाद्य । ११ अनशनव्रतिन । १२ अमृतसवादि । १३ आलय । १४ महत् । १५ त० पुस्तके महानस पाठ सुपाठ इति टिप्पणे लिखितम् । १६ अन्योन्यम् । १७ ध्याननिष्पन्ने सति । १८ मुनितम् ।

अनित्यान्नाणमंसरैकत्वाऽन्यत्वान्यशौचताम् । निर्जरास्वसंरो^१धलोकस्थित्यनुचिन्तनम् ॥१५९॥
 धर्मस्याख्याततां बोधेर्दुर्लभत्वं च लक्षयन् । सोऽनुप्रेक्षाविधिं^२दध्यौ विशुद्धं द्वादशात्मकम् ॥१६०॥
^३आज्ञापायौ विपाक च सस्थान चानुचिन्तयन् । सध्यानममजद् धर्म्यं कर्मांशान् परिशातयन् ॥१६१॥
 दीपिकायामिवामुष्यां ध्यानदीप्तौ निरीक्षिताः । क्षण विशीर्णाः कर्मांशाः कज्जलांशा इवामितः ॥१६२॥
 तद्देहदीप्तिप्रसरो दिङ्मुखेषु परिस्फुरन् । तद्वनं गारुडग्रात्रच्छायातर्त^४मित्रातनोत् ॥१६३॥
 तत्पदोपान्तविश्रान्ता विश्रव्ध्व^५मृगजातयः । ब्रवाधिरे मृगैर्नान्यैः क्रूरैरक्रूरतां श्रितैः ॥१६४॥
 विरोधिनीऽप्यमी मुक्तविरोध^६स्वैरमासिताः । तस्योपाङ्ग्रीमसिहाद्याः शशंसुर्वैभवं मुनेः ॥१६५॥
 'जरजम्बूकमाघ्राय मस्तके^७व्याघ्रधेनुका । स्वशावनिर्विशेषं^८तामपीष्यत्^९स्तन्यमात्मनः ॥१६६॥
 करिणो हरिणारातीनन्वीयुः सह यूथपैः । स्तनपानोत्सुका भेजुः करिणीः सिंहपोतकाः ॥१६७॥
 कलमान्^{१०}कलमाङ्गारमुखरान् नखरैः खरैः । कण्ठीरवः स्पृशन् कण्ठे नाभ्यनन्दि^{११}न यूथपैः ॥१६८॥
 करिण्यो विसिनीपत्रपटैः पानीयमानयत् । तद्योगपीठपर्यन्तभुवः सम्मार्जनेच्छया ॥१६९॥
^{१२}पुष्करैः^{१३}पुष्करोदस्तैर्न्यस्तैरधिपदद्वयम् । स्तम्बेरमा मुनिं भेजुरहो शमकरं तपः ॥१७०॥
 उपाङ्गि भोगिनां^{१४}भोगैर्विनीलैर्व्यरुचन्मुनिः । विन्यस्तैरर्चनायेव नीलैरुपलढामकैः ॥१७१॥

अनित्य, अशरण, ससार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आसूव, सवर, निर्जरा, लोक, बोधि
 दुर्लभ और धर्माख्यातत्व इन बारह भावनाओंका उन्होंने विगुद्ध चित्तसे चिन्तन किया था
 ॥१५९-१६०॥ वे आज्ञा, अपाय, विपाक और सस्थानका चिन्तन करते हुए तथा कर्मोंके
 अशोको क्षीण करते हुए धर्मध्यान धारण करते थे ॥१६१॥ जिस प्रकार दीपिकाके प्रज्व-
 लित होनेपर उसके चारो ओर कज्जलके अंश दिखाई देते हैं उसी प्रकार उनकी ध्यानरूपी
 दीपिकाके प्रज्वलित होनेपर उसके चारों ओर क्षणभर नष्ट हुए कर्मोंके अंश दिखाई देते थे
 ॥१६२॥ सब दिशाओमें फैलता हुआ उनके शरीरकी दीप्तिका समूह उस वनको नीलमणि-
 की कान्तिसे व्याप्त हुआ-सा बना रहा था ॥१६३॥ उनके चरणोंके समीप विश्राम करनेवाले
 मृग आदि पशु सदा विश्वस्त अर्थात् निर्भय रहते थे, उन्हें सिंह आदि दुष्ट जीव कभी बाधा नहीं
 पहुँचाते थे क्योंकि वे स्वयं वहाँ आकर अक्रूर अर्थात् शान्त हो जाते थे ॥१६४॥ उनके चरणो-
 के समीप हाथी, सिंह आदि विरोधी जीव भी परस्परका वैर-भाव छोड़कर इच्छानुसार उठते-
 बैठते थे और इस प्रकार वे मुनिराजके ऐश्वर्यको सूचित करते थे ॥१६५॥ हालकी व्यायी,
 हुई सिंही भैसेके बच्चेका मस्तक सूँघकर उसे अपने बच्चेके समान अपना दूध पिला रही थी
 ॥१६६॥ हाथी अपने झुण्डके मुखियोंके साथ-साथ सिंहोंके पीछे-पीछे जा रहे थे और स्तन-
 के पीनेमें उत्सुक हुए सिंहके बच्चे हथिनियोंके समीप पहुँच रहे थे ॥१६७॥ बालकपनके
 कारण मधुर शब्द करते हुए हाथियोंके बच्चोंको सिंह अपने पैंने नाखूनोसे उनकी गरदनपर
 स्पर्श कर रहा था और ऐसा करते हुए उस सिंहको हाथियोंके सरदार बहुत ही अच्छा समझ
 रहे थे - उसका अभिनन्दन कर रहे थे ॥१६८॥ उन मुनिराजके ध्यान करनेके आसनके
 समीपकी भूमिको साफ करनेकी इच्छासे हथिनियाँ कमलिनीके पत्तोंका दोना बनाकर उनमें
 भर-भरकर पानी ला रही थी ॥१६९॥ हाथी अपने सूँडके अग्रभागसे उठाकर लाये हुए
 कमल उनके दोनों चरणोंपर रख देते थे और इस तरह वे उनकी उपासना करते थे । अहा,

१ मवर । २ ध्यायति स्म । ३ आज्ञाविचयापायविचयी । ४ कृशीकुर्वन् । ५ व्याप्तम् । ६ निश्चला ।
 ७ विरोधा ल०, प०, अ०, स०, द०, । ८ जरजन्तुक ल०, इ० । जरत् वृद्ध । ९ नवप्रसूतव्याघ्री ।
 १० नमानम् । ११ पाययति स्म । १२ स्तनक्षीरम् । १३ मनोज्ञ-ध्वनिनिर्विशेषान् । १४ द्वौ नवौ पूर्वमर्थ
 गमयत, अन्यनन्दोदित्यर्थः । १५ कमल । १६ कराग्रोद्धत । १७ सर्पाणा शरीरैः ।

फणमाग्नोद्गता रभ्रात्^१ फणिन^२ शितयोऽद्युतम् । कृता कुयल्यैरर्घा मुनेरिय पदान्तिक ॥१७२॥
 रेजुवनरता मत्रै शाखाग्रै कुसुमोज्ज्वलै । मुनिं भजनयो भगवत् पुष्पाधनतिपूर्वकम् ॥१७३॥
 शशद्विकासिकुसुमै शाखाग्रैरनिलाहृतै । वसुधनद्रुमास्तोपाग्नितृण्य^३ इवासकम् ॥१७४॥
 कलैरलिस्तोद्गानै^४ फणिनो ननुतु किल । उरफणा फणरक्षांशुदाग्रै^५ भाग^६ चिचरित ॥१७५॥
 पुस्कोकिलकलापडिण्डिमानुगतैलयै^७ । चक्षु धवस्तु पदयसु^८ सद्द्विपोऽनटिपु^९ सुहु ॥१७६॥
 महिम्ना शमिन^{१०} शान्तमित्यभूत्तथ काननम् । धत्ते हि महतां योग^{११} शममप्यशमात्मसु^{१२} ॥१७७॥
 शान्तस्यनैनदन्ति स्म वना^{१३} तेऽस्मिन् शकुन्तय । घोषयन्त इवात्य^{१४} शान्तमतसपोवनम् ॥१७८॥
 तपोनुमावादस्यैव प्रशान्तऽस्मिन् वनाश्रय । विनिपात^{१५} कुतोऽप्यामीत् कस्यापि न कथञ्चन ॥१७९॥
^{१६} महसास्य तपोयोगजृम्भितन महीयसा । वसुधुतवद्दुःखान्ता तियज्जोऽप्यनभिद्रुह^{१७} ॥१८०॥
 गतिस्त्वलनतो ज्ञात्वा योगस्य तं मुनीश्वरम् । असहृत्पूजयामासुरवताथ नमश्चरा ॥१८१॥
 महिम्नाऽस्य तपोवीयजनितेनालघायसा । सुदुरासनकम्पोऽभूत्ततमृभा सुधाशिनाम् ॥१८२॥

तपश्चरण कैसी शान्ति उत्पन्न करनेवाला है, ॥१७०॥ वे मुनिराज चरणोंके समीप आये हुए सर्पोंके काले फणाओंसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो पूजाके लिए नीलकमलाकी भालाएँ ही बनाकर रखी हों ॥१७१॥ बामीके छिद्रोंसे जिन्होंने केवल फणा ही बाहर निकाले हैं ऐसे काल सप उस समय ऐसे जान पड़ते थे मानो मुनिराजके चरणोंके समीप किसीने नील-कमलोंका अघ ही बनाकर रखा हो ॥१७२॥ वनकी लताएँ फूलोंसे उज्ज्वल तथा नीचेकी झुकी हुई छोटी छोटी डालियोंसे ऐसी अच्छी सुशोभित हो रही थीं मानो फूलोंका अघ लेकर भक्तिसे नमस्कार करती हुई मुनिराजकी सेवा ही कर रही हों ॥१७३॥ वनके वृक्ष, जिनपर सदा फूल खिले रहते हैं और जो वायुसे हिल रहे हैं ऐसे शाखाओंके अग्रभागोंसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सन्तोपसे बार-बार नृत्य ही करना चाहते हों ॥१७४॥ जिनके फणा ऊँचे उठ रहे हैं ऐसे सप, भ्रमरोंके शब्दरूपी सुन्दर गानेके साथ-साथ फणाओंपर लगे हुए रत्नोंकी किरणोंसे देदीप्यमान अपने फणाओंको घुमा घुमाकर नृत्य कर रहे थे ॥१७५॥ मोर, कोकिलोंके सुन्दर शब्दरूपी ढिण्डिम बाजेके अनुसार होनेवाले लयके साथ-साथ सर्पोंके देखते रहते भी बार-बार नृत्य कर रहे थे ॥१७६॥ इस प्रकार अतिशय शान्त रहनेवाले उन मुनिराजके माहात्म्यसे वह वन भी शान्त हो गया था सो ठीक ही है, क्योंकि महापुरुषोंका संयोग क्रूर जीवोंमें भी शान्ति उत्पन्न कर देता है ॥१७७॥ इस वनमें अनेक पक्षी शान्त शब्दोंसे चहक रहे थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो इस बातकी घोषणा ही कर रहे हों कि यह तपोवन अत्यन्त शान्त है ॥१७८॥ उन मुनिराजके तपके प्रभावसे यह वनका आश्रम ऐसा शान्त हो गया था कि यहाँके किसी भी जीवको किसीके भी द्वारा कुछ भी उपद्रव नहीं होता था ॥१७९॥ तपके सम्बन्धसे बड़े हुए मुनिराजके बड़े भारी तेजसे तियचोंके भी हृदयका अधिकार दूर हो गया था और अब वे परस्परमें किसीसे द्रोह नहीं करते थे — अहिंसक हो गये थे ॥१८०॥ विद्याधर लोग गति भग हो जानेसे उनका सद्भाव जान लेते थे और विमानसे उतरकर ध्यान में बैठे हुए उन मुनिराजकी बार-बार पूजा करते थे ॥१८१॥ तपकी शक्तिसे उत्पन्न हुए मुनिराजके बड़े भारी माहात्म्यसे जिनके भस्तक झुके हुए हैं ऐसे देवोंके आसन भी बार-बार कम्पाय

१ बल्मीकविलास । २ कृष्णा । ३ नतिपुमिच्छव । ४-द्वीतं छ० । ५ दीप्त-इ० ल० । ६ शरीरः । ७ सारनिबद्ध । ८ सर्पेषु । कुण्डली गूढपाञ्चभुजवा काकोदर फणी इत्यभिधानात् । ९ सर्पद्विप । मयूर इत्ययम् । १० नटन्ति स्म । ११ यते । १२ संयोग । १३ क्रूरस्वरूपेषु । १४ अत्यन्तप्रसन्नम् । १५ बाधेत्यर्थः । १६ तेजसा । १७ अहिंसका ।

विद्याधर्यः कदाचिच्च क्रीडाहेतोरुपागताः । बलीरुद्रेष्टयामासु^१मुने सर्वाङ्गसगिनीः ॥१८३॥
 इत्युपारुद्धं मद्ध्यानबलोद्धततपोबलः । स लेख्याशुद्धिमास्कन्दन्^२ शुक्लध्यानोन्मुखोऽभवत् ॥१८४॥
 वत्सरानगनस्यान्ते भरतेगेन पूजितः । स भेजे परमज्योतिः केवलस्थं यदक्षरम् ॥१८५॥
 मंछिष्टो भग्तावीशः सोऽस्मत्त^३ इति यत्किल । हृद्यस्य^४ हार्द^५ तेनासीत् तन्पूजाऽपेक्षि^६ केवलम् ॥१८६॥
 केवलार्कोदयान् प्राक्च पश्चाच्च विधिवद् व्यधात् । सपर्यां भरतावीशो योगिनोऽस्य प्रसन्नधीः ॥१८७॥
^१स्वाग.प्रमार्जनार्थेज्या ^२प्राक्तनी भरतेगिनः । ^३पाश्चात्याऽस्यायताऽपीज्या ^४केवलोत्पत्तिमन्वभूत् ॥
 या कृता भरतेगेन महंज्या स्वानुजन्मन । प्राप्तकेवलबोधस्य को हि तद्वर्णने क्षमः ॥१८९॥
^५स्वजन्मानुगमो^६ऽस्येको धर्मरागस्तथाऽपरः । जन्मान्तरानुबन्धश्च^७ प्रेमबन्धोऽतिनिर्मरः ॥१९०॥
^८इत्येकगोऽप्यमी भक्तिप्रकर्षस्य प्रयोजनाः । तेषां नु सर्वम्यामग्रा का न पुष्पाति सत्क्रियाम् ॥१९१॥
 मामात्यः समहीपाल^९ मान्त पुरपुरोहितः । त ब्राह्मवलययोगीन्द्र प्रणनामाविराट् मुदा ॥१९२॥

मान होने लगते थे ॥१८२॥ कभी-कभी क्रीडाके हेतुसे आयी हुई विद्याधरियाँ उनके सर्वं शरीर-
 पर लगी हुई लताओको हटा जाती थी ॥१८३॥ इस प्रकार धारण किये हुए समीचीनधर्म-
 ध्यानके बलसे जिनके तपकी शक्ति उत्पन्न हुई है ऐसे वे मुनि लेख्याकी विगुद्धिको प्राप्त होते
 हुए शुक्लध्यानके सम्मुख हुए ॥१८४॥ एक वर्षका उपवास समाप्त होनेपर भरतेश्वरने
 आकर जिनकी पूजा की है ऐसे महामुनि बाहुवली कभी नष्ट नहीं होनेवाली केवलज्ञानरूपी
 उत्कृष्ट ज्योतिको प्राप्त हुए । भावार्थ — दीक्षा लेते समय बाहुवलीने एक वर्षका उपवास किया
 था । जिस दिन उनका वह उपवास पूर्ण हुआ उसी दिन भरतने आकर उनकी पूजा की और
 पूजा करते ही उन्हें अविनाशी उत्कृष्ट केवलज्ञान प्राप्त हो गया ॥१८५॥ वह भरतेश्वर
 मुझसे सकलेशको प्राप्त हुआ है अर्थात् मेरे निमित्तसे उसे दुःख पहुँचा है यह विचार बाहुवलीके
 हृदयमे विद्यमान रहता था, इसलिए केवलज्ञानने भरतकी पूजाकी अपेक्षा की थी । भावार्थ —
 भरतके पूजा करते ही बाहुवलीका हृदय शल्यरहित हो गया और उसी समय उन्हें केवलज्ञान
 भी प्राप्त हो गया ॥१८६॥ प्रसन्न है बुद्धि जिसकी ऐसे सम्राट् भरतने केवलज्ञानरूपी सूर्यके
 उदय होनेके पहले और पीछे—दोनों ही समय विधिपूर्वक उन मुनिराजकी पूजा की थी ॥१८७॥
 भरतेश्वरने केवलज्ञान उत्पन्न होनेके पहले जो पूजा की थी वह अपना अपराध नष्ट करनेके
 लिए की थी और केवलज्ञान होनेके बाद जो बड़ी भारी पूजा की थी वह केवलज्ञानकी उत्पत्ति-
 का अनुभव करनेके लिए की थी ॥१८८॥ जिन्हे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे अपने छोटे
 भाई बाहुवलीकी भरतेश्वरने जो बड़ी भारी पूजा की थी उसका वर्णन करनेमे कौन समर्थ
 हो सकता है ? ॥१८९॥ प्रथम तो बाहुवली भरतके छोटे भाई थे, दूसरे भरतको धर्मका
 प्रेम बहुत था, तीसरे उन दोनोंका अन्य अनेक जन्मोंसे सम्बन्ध था, और चौथे उन दोनोंमे बड़ा
 भारी प्रेम था इस प्रकार इन चारोंमे-से एक-एक भी भक्तिकी अधिकताको बढ़ानेवाले हैं, यदि
 यह सब सामग्री एक साथ मिल जाये तो वह कौन-सी उत्तम क्रियाको पुष्ट नहीं कर सकती
 अर्थात् उससे कौन-सा अच्छा कार्य नहीं हो सकता ? ॥१९०—१९१॥ सम्राट् भरतेश्वरने

१ मोचयामासु । २ प्रकटीभूत् । ३ गच्छन् । ४ मत् । ५ भुजवलि । ६ स्नेह । 'प्रेमा ना प्रियता हार्दं
 प्रेम स्नेह' इत्यभिधानात् । ७ हार्देन । ८ भरतपूजापेक्षि । ९ केवलज्ञानम् । १० निजापराधनिवारणार्था ।
 ११ प्राग्भवा । १२ पञ्चाद्भवा । १३ अत्यधिका । १४ निजजननेन । १५ अनुगमनम् । महोत्पत्तिरित्यर्थः ।
 १६ — नुबद्धश्च व०, अ०, न०, प०, इ० । १७ एकैकमपि । १८ महीपाले महित ।

किमत्र बहुना रत्नैः कृतोऽथ स्वर्णदाजलम् । पाद्य रत्नाधिपा दापास्तण्डुले-या च माणिक्यैः ॥१९३॥
 हवि^१ पायूपपिण्डन धूपो देवदुमाशकै^२ । पुष्पार्चा पारिजातादिसुरागसुमनश्च^३ ॥१९४॥
 सरस्वा निधय सर्वे फलस्थाने नियोजिता । पूजां रत्नमयामिरथ रत्नेशो निरवतयन् ॥१९५॥
 सुराश्चासनकम्पन शततत्कयलोदया । चक्रुरस्थ परामिज्या शता^४धरपुरभरा ॥१९६॥
 वधुमन्द स्वरधानतरुधननचुम्बय । तदा सुगन्धयो घाता स्वधुनीशाकराहरा ॥१९७॥
 मन्त्र पयोमुखां मार्गे दध्वनुश्च सुरानका । पुष्पात्करो दिवोऽपतत् कम्पानाकहसमव ॥१९८॥
 रतातपत्रमस्योच्चैर्निर्मित सुरशिबिरभि । पराध्यमणिनिर्माणमभाद् दिव्य च विष्टरम् ॥१९९॥
 स्वयं व्यधूयतास्योच्चै^५ प्रान्तयोश्चामरात्कर । सभाषनिश्च तद्याग्या पत्रये प्रयितोदया ॥२००॥
 सुरैरिष्यचित प्राप्तकवलद्विं स योगिराट् । व्यधुत् मुनिमिजुष्ट^६ शशायोदुभिराश्रित ॥२०१॥
 घातिकमक्षयोद्भूतामुद्गहन परमष्टिताम् । विजहार महौ कृत्स्ना सोऽभिगम्य^७ सुधाशिनाम् ॥२०२॥
 इत्थं स विश्वविद्विश्च प्रीणयन् स्ववचोऽमृतैः । कैलासमण्डलं प्रापत् पूत सनिधिना गुरो^८ ॥२०३॥

मन्त्रियोंके साथ, राजाभाके साथ और अन्त पुरकी समस्त स्त्रियों तथा पुरोहितके साथ उन बाहुबली मुनिराजको बड़े हर्षसे नमस्कार किया था ॥१९२॥ इस विषयमें अधिक कहाँतक कहा जावे, संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि उसने रत्नोंका अघ बनाया था, गंगाके जलकी जलधारा दी थी, रत्नोंकी ज्योतिके दीपक चढाये थे, मोतियसि अक्षतकी पूजा की थी, अमृतके पिण्डसे नैवेद्य अर्पित किया था, कल्पवृक्षके टुकड़ों (चूर्णों) से धूपकी पूजा की थी, पारिजात आदि देववृक्षोंके फूलोंके समूहसे पुष्पाकी अर्चा की थी, और फलोंके स्थानपर रत्नों सहित समस्त निधियाँ चढा दी थी इस प्रकार उसने रत्नमयी पूजा की थी ॥१९३-१९५॥ आसन कम्पायमान होनेसे जिन्हें बाहुबलीके केवलज्ञान उत्पन्न होनेका बोध हुआ है ऐसे इन्द्र आदि देवोंने आकर उनकी उत्कृष्ट पूजा की ॥१९६॥ उस समय स्वर्गके बगीचेके वृक्षाको हिलाने में चतुर तथा गंगा नदीकी बँदोंको हरण करनेवाला सुगन्धित वायु धीरे धीरे बह रहा था ॥१९७॥ देवोंके नगाडे आकाशमें गम्भीरतासे बज रहे थे और कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुआ फूलों का समूह आकाशमें पड रहा था ॥१९८॥ उनके ऊपर देवरूपी कारीगरोंके द्वारा बनाया हुआ रत्नोंका छत्र सुशोभित हो रहा था और नीचे बहुमूल्य मणियोंका बना हुआ दिव्य सिंहासन देदीप्यमान हो रहा था ॥१९९॥ उनके दोनों ओर ऊँचाईपर चमरोंका समूह स्वयं डुल रहा था तथा जिसका ऐश्वर्य प्रसिद्ध है ऐसी उनके योग्य सभाभूमि अर्थात् गङ्गकुटी भी बनायी गयी थी ॥२००॥ इस प्रकार देवोंने जिनकी पूजा की है और जिन्हें केवलज्ञानरूपी ऋद्धि प्राप्त हुई है ऐसे वे योगिराज अनेक मुनियोंसे घिरे हुए इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रों से घिरा हुआ चन्द्रमा ही हो ॥२०१॥ जो घातियाकर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुई अहन्त परमेष्ठी की अवस्थाको धारण कर रहे हैं तथा इसीलिए देव लोग जिनकी उपासना करते हैं ऐसे भगवान् बाहुबलीने समस्त पृथिवीमें विहार किया ॥२०२॥ इस प्रकार समस्त पदार्थोंको जाननेवाले बाहुबली अपने वचनरूपी अमृतके द्वारा समस्त ससारको सन्तुष्ट करते हुए, पूज्य पिता भगवान् वृषभदेवके सामीप्यसे पवित्र हुए कैलास पर्वतपर जा पहुँचे ॥२०३॥

मालिनी

सकलनृपसमाजे^१ दृष्टिमल्लाम्बुयुद्धे-

धिजितभरतकीर्तिर्यः प्रवव्राज मुक्त्यै ।

तृणमिव विगणय्य प्राज्यसाम्राज्यमार

चरमतनुधराणामग्रणीः सोऽवताद् वः ॥२०४॥

भरतविजयलक्ष्मीर्जाज्वलच्चक्रमृत्या

यमिनमभिगमन्ती क्षत्रियाणां समक्षम् ।

चिरतरमव^३धूतापत्रपापा^४त्रमासी-

दधिगतगुरुमार्गः सोऽवताद् दोर्वली वः ॥२०५॥

स जयति जयलक्ष्मीमंगमागमवन्ध्या

विदवदधिकधामा सनिधौ पार्थिवानाम् ।

सकलजगद्गारव्यासकीर्तिस्तपस्या^५-

मभजत यशसे यः सूनुरादस्य धातुः ॥२०६॥

जयति भुजवलीशो बाहुवीर्यं स यस्य

प्रथितमभवदग्रे क्षत्रियाणां नियुद्धे ।

भरतनृपतिनामा^६ यस्य नामाक्षराणि

स्मृतिपथमुपयान्ति^७ प्राणिवृन्द पुनन्ति ॥२०७॥

जयति भुजगवक्त्रोद्धान्तनिर्यदगराग्निः^८

प्रशममसकृदापत् प्राप्य पादौ यदीयौ ।

सकलभुवनमान्यः खेचरस्त्रीकराग्रो-

द्व्यथितविततवीरुद्वेष्टितो दोर्वलीशः ॥२०८॥

जिन्होने समस्त राजाओकी सभामे दृष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध और जलयुद्धके द्वारा भरत-
की समस्त कीर्ति जीत ली थी, जिन्होने बड़े भारी राज्यके भारको तृणके समान तुच्छ समझकर
मुक्ति प्राप्त करनेके लिए दीक्षा धारण की थी और जो चरमशरीरियोमे सबसे मुख्य थे ऐसे
भगवान् बाहुवली तुम सबकी रक्षा करे ॥२०४॥ सब क्षत्रियोके सामने भरतकी विजय-
लक्ष्मी देदीप्यमान चक्रकी मूर्तिके वहानेसे जिन बाहुवलीके समीप गयी थी परन्तु जिनके द्वारा
सदाके लिए तिरस्कृत होकर लज्जाका पात्र हुई थी और जिन्होने अपने पिताका मार्ग (मुनिमार्ग)
स्वीकृत किया था वे भगवान् बाहुवली तुम सबकी रक्षा करे ॥२०५॥ जो अनेक राजाओके
सामने सफल हुई जयलक्ष्मीके समागमकी आशाको धारण कर रहे थे, सबसे अधिक तेजस्वी
थे, जिनकी कीर्ति समस्त जगत् रूपी घरमे व्याप्त थी और जिन्होने वास्तविक यशके लिए तप
धारण किया था वे आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेवके पुत्र सदा जयवन्त हो ॥२०६॥ जिनकी
भुजाओका बल क्षत्रियोके सामने भरतराजके साथ हुए मल्लयुद्धमे प्रसिद्ध हुआ था, और
जिनके नामके अक्षर स्मरणमे आते ही प्राणियोके समूहको पवित्र कर देते हैं वे बाहुवली स्वामी
सदा जयवन्त हो ॥२०७॥ जिनके चरणोको पाकर सर्पोंके मुँहके उच्छ्वाससे निकलती हुई
विषकी अग्नि बार-बार गान्त हो जाती थी, जो समस्त लोकमे मान्य है, और जिनके शरीरपर
फँली हुई लताओको विद्याधरियाँ अपने हाथोंके अग्रभागसे हटा देती थी वे बाहुवली स्वामी

१ समझे । २ भृश ज्वलन् । ३ भुजवलिना अवधीरता । ४ लज्जाभाजनम् । ५ भगवान्छाम् । ६ तपः इत्यर्थः ।
७ सह । ८ उगगतानि भूत्वा । ९ विपाणि ।

जयति भरतराजमंशुर्मह्यमरत्ना

पल्लुलितनखन्दु सधुराद्यस्य सनु ।

भुगगुलकलापैराकुलैर्नाकुलस्य

धृतिबलकलितो वा योगभृच्चैव भज ॥२०९॥

शित्तिभिरलिकुलाभराभुज लम्बमान

विहितभुजधितङ्का मृज्जवैल्लिताम् ।

जलधरपरिराध्याममूढव भूधः

श्रियमपुपदन्नां दोनला य स बोऽध्यात् ॥२१॥

त जयति हिमकाले यो हिमानापरात्

यपुरचल इवाचैभिर्भदाविथभूव ।

मधघनसलिलाधयश्च धौतोऽध्याकाले

स्वरष्टि^१किरणानप्युष्णकाले विपेह^२ ॥२११॥

जगति जयिनमन योगिन योगिधर्य

रथिगतमहिमान भानित^३ माननीयः ।

स्मरति हृदि नितान्त य स शान्तान्तरात्मा

भजति विजयलक्ष्मामाभु जैर्माभजय्याम् ॥२१२॥

इत्यापे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणाते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे

भुजबलिजलमल्लदृष्टियुद्धविजयदाक्षाकेवलतोत्पत्तिवर्णन नाम पदत्रिशतमं पञ्च ॥२६॥

सदा जयवन्त हों ॥२०८॥ भरतराजक ऊचे भुकुटके अग्र भागम लगे हुए रत्नोसे जिनके चरण के नखरूपी चन्द्रमा अत्यन्त चमक रहे थे, जो धय और बलसे सहित थे तथा जो इसलिए ही क्षोमको प्राप्त हुए सर्वोंक समूहसे कभी आकुलताको प्राप्त नहीं हुए थे वे आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेवके पुत्र बाहुबली योगिराज सदा जयवन्त रहें ॥२०९॥ भ्रमरोंके समूहके समान काल, भुजाओं तक लटकते हुए तथा जिनका अग्रभाग टेढ़ा हो रहा है ऐसे मस्तकके बालोंसे जिनको भुजाओका अग्रभाग ढक गया है और इसलिए ही जो मेघोक आवरणसे मलिन शिखरवाले पर्वतकी पूण शोभाको पुष्ट कर रहे हैं वे भगवान् बाहुबली हम सबकी रक्षा करें ॥२१०॥ जो शीतकालमें बर्फसे ढके हुए ऊचे शरीरको धारण करते हुए पर्वतके समान प्रकट होते थे, वर्षाऋतुम नवीन मेघोके जलके समूहसे प्रक्षालित होते थे — भीगते रहते थे और ग्रीष्मकालमे सूयकी किरणोंको सहन करते थे व बाहुबली स्वामी सदा जयवन्त हों ॥२११॥ जिन्होंने अन्तरंग-बहिरंग शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली है, बड़े-बड़े योगिराज ही जिनकी महिमा जान सकते हैं, और जो पूज्य पुरुषोंके द्वारा भी पूजनीय हैं ऐसे इन योगिराज बाहुबलीको जो पुरुष अपने हृदयमें स्मरण करता है उसका अन्तरात्मा शान्त हो जाता है और वह शीघ्र ही जिनेन्द्रभगवान्की अजय्य (जिसे कोई जीत न सके) विजयलक्ष्मी — मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥२१२॥

इस प्रकार आप नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण महापुराणसंग्रहके

भाषानुवादभ बाहुबलीका जल-युद्ध मल्ल-युद्ध और नव-युद्धम विजय प्राप्त करना

दीक्षा धारण करना, और केवलज्ञान उत्पन्न होनेका वर्णन

करनवाला छत्तीसवां पञ्च समाप्त हुआ ।

१ कृष्ण । २ आच्छादितबाहुबली । ३ बक । अविद्वद्ध कुटिल भुग्न वल्लित वक्रमित्यपि इत्यभिधानात् ।

४ हिमसहतिवर्षितम् । हिमानी हिमसंहति इत्यभिधानात् । ५ प्रावृत्काले । ६ सूय । ७ सहति स्म ।

८ जयघोषम् । ९ पूजितम् । १० उपशान्तचित्त ।

हिमवद्विजयाधेनौ मागधाद्याश्च दक्षता । खड्गशस्त्रोभयधेन्योस्त नमुनघ्नमौलय ॥१२॥
 सौमिषिक्तोऽपि नोसिक्तो बभूव नृपसत्तमै । महता हि मनोवृत्तिर्नासक^१परिरम्भिणा ॥१३॥
 चामरैर्वीर्यमानोऽपि न^२निवृत्तिमगाद् विभु । आनृप्यसयिमक्षा धारितीहानुशयानुग ॥१४॥
 दोषलिघ्नात्सघर्षात् नास्य तजो विकथितम् । प्रत्युतात्कथिहक्षा वा घृष्टस्य निकृपापले ॥१५॥
 निष्कण्टकमिति प्राप्य साम्राज्य भरताधिप । यमौ मास्वानिवाद्रिक्तप्रताप शुद्धमण्डल ॥१६॥
 क्षेमैकतानता भजु प्रजास्तस्मिन् सुराजनि । यागक्षेमौ वित्तवान् मन्वाना स्त्रा^३सनाथताम् ॥१७॥
 यथास्य सविमज्जामी सभुक्ता निधयोऽमुना । सभोग सविभागश्च फलमर्थाजन द्वयम् ॥१८॥
 रत्नान्यपि यथाकाम^४निधिष्ठानि निधाशिना । रत्नानि ननु तावन् यानि यान्युपयागिताम् ॥१९॥
 मनुश्चक्रमृतामाय पटखण्डभरताधिप । राजराजोऽधिराट् सम्राडित्यस्याद्यापित यश ॥२०॥
 नन्दनो वृषभशस्य भरत शातमातुर । इत्यस्य रौदसा व्याप शुभा कार्तिरन्धरी ॥२१॥
 कीदृक् परिच्छदस्तस्य विभवश्चक्रवर्तिन । इति^५प्रभवशादस्य विभवोद्देशकातनम् ॥२२॥
 गल्लमदजलास्तस्य गजा सुरगजोपमा । लक्षाश्चतुरशातिस्त^६रद^७सुकरित ॥२३॥

सेवा कर रहे थे ॥११॥ हिमवान् और विजयाघ पर्वतके अधीश्वर हिमवान् तथा विजयाघ देव मागध आदि अय अनेक देव, और उत्तर-दक्षिण श्रेणीके विद्याधर अपने मस्तक झुका झुकाकर उन्हें नमस्कार कर रहे थे ॥१२॥ अनेक अच्छे अच्छे राजाओंके द्वारा अभिषिक्त होनेपर भी उन्हें कुछ भी अहंकार नहीं हुआ था सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी मनोवृत्ति अहंकारका स्पश नहीं करती ॥१३॥ यद्यपि उनके ऊपर चमर ढुलाये जा रहे थे तथापि वे उसस सन्तोषको प्राप्त नहीं हुए थे क्योंकि उन्हें निरन्तर इस बातका पछतावा हो रहा था कि मने अपनी विभूति भाइयोंको नहीं बाँट पायी ॥१४॥ भाई बाहुबलीके संघर्षसे उनका तेज कुछ कम नहीं हुआ था किन्तु कसौटीपर घिसे हुए सोनेके समान अधिक ही हो गया था ॥१५॥ इस प्रकार निष्कण्टक राज्यको पाकर महाराज भरत उस सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहे थे जिसका कि प्रताप बढ़ रहा है और मण्डल अत्यन्त बृद्ध है ॥१६॥ योग (अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति करना) और क्षेम (प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा करना) को फलानेवाले उन उत्तम राजा भरतके विद्यमान रहते हुए प्रजा अपने आपको सनाथ समझती हुई कुशल मंगलको प्राप्त होती रहती थी ॥१७॥ महाराज भरतने निधियाका यथायोग्य विभाग कर उनका उपभोग किया था सो ठीक ही है क्योंकि स्वयं सम्भोग करना और दूसरेको विभाग कर देना ये दो ही धन कमानेके मुख्य फल हैं ॥१८॥ निधियोंके स्वामी भरतने रत्नोंका भी इच्छानुसार उपभोग किया था सो ठीक ही है क्योंकि वास्तवमें रत्न वही हैं जो उपयोगमें आवें ॥१९॥ यह सोलहवाँ मनु है, चक्रवर्तियोंमें प्रथम चक्रवर्ती है, पट खण्ड भरतका स्वामी है राजराजेश्वर है अधिराट है और सम्राट है इस प्रकार उसका यश उद्घोषित हो रहा था ॥२०॥ यह भरत भगवान् वृषभदेवका पुत्र है और इसकी माताके सौ पुत्र हैं इस प्रकार इसकी कमी नष्ट नहीं होनेवाली उज्ज्वल कीर्ति आकाश तथा पृथिवीमें व्याप्त हो रही थी ॥२१॥ उस चक्रवर्ती का परिवार कितना था ? और विभूति कितनी थी ? राजा श्रेणिकके इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए गौतमस्वामी उसकी विभूतिका इस प्रकार वर्णन करने लगे ॥२२॥ महाराज भरतके जिनके गण्डस्थलसे मदरूपी जल शर रहा है, और जो जड़े हुए सुसज्जित दाँतोंसे सुशो

१ उत्सेक अहंकारवान् । २ गर्वालङ्घिनी । ३ सुखम् । ४ अनुभुक्तानि । ५ अग्निप्रस्नवशात् । ६ रद उपलक्षिता । ७ स्वर्णकटकखण्ड ।

दिव्यरत्नविनिर्माणरथास्तावन्त^१ एव हि । मनोवायुजवाः सूर्यरथप्रस्पृधिरंहसः^२ ॥२४॥

कोटयोऽष्टादशाश्वानां भूजलाम्बरचारिणाम् । यत्खुराग्राणि धौतानि पूतैस्त्रिपथगा^३ जलैः ॥२५॥

चतुर्भिरधिकाग्रीतिः कोटयोऽस्य पदातयः । येषां सुभटसंमर्दे निरुद्ध^४ पुरुषव्रतम् ॥२६॥

वज्रास्थिवन्धन^५ वाज्रैर्वलयैर्वेष्टितं वपुः । वज्रनाराचनिर्भिन्नम^६ भेद्यमभवत् प्रभोः ॥२७॥

यमसुप्रविभक्ताङ्गं चतुरस्र^७ सुमंहति^८ । वपुः सुन्दरमस्यामीत् संस्थानेनादिना विभाः ॥२८॥

निष्टसकनकच्छाय सच्चतुःपट्टिलक्षणम् । रुरुचे व्यञ्जनैस्तस्य निमर्गसुभगं वपुः ॥२९॥

गारीरं यच्च यावच्च बलं षट्खण्डभूभुजाम् । ततोऽधिकतरं तस्य बलमासीद् बलीयसः ॥३०॥

शासन तस्य चक्राङ्गमामिन्धोरनिवारितम् । शिरोभिरुद्धमारुढविक्रमैः पृथिवीश्वरैः ॥३१॥

द्वात्रिंशन्मौलिवद्धानां सहस्राणि महीक्षिताम्^९ । कुलाचलैरिवाद्ग्रीन्द्रः स रेजे यैः परिष्कृतः ॥३२॥

तावन्त्येव सहस्राणि दृशानां सुनिवेशिनाम् । यैरलंकृतमाभाति चक्रभृक्षेत्रमायतम् ॥३३॥

^{१०} कलामिजान्यसंपन्ना देव्यस्तावन्प्रमास्सृताः । रूपलावण्यकान्तीनां याः शुद्धाकरभूमयः ॥३४॥

म्लेच्छराजादिभिर्दत्तास्तावन्त्यो नृपवल्लभाः । अप्सरःसंकथाक्षोणी यकामिरवतारिताः ॥३५॥

अधरुद्धाश्च तावन्त्यस्तन्व्यः कोमलविग्रहाः । मदनोद्दीपनैर्यासां दृष्टिवाणैर्जितं जगत् ॥३६॥

भित्त हैं ऐसे ऐरावत हाथीके समान चौरासी लाख हाथी थे ॥२३॥ जिनका वेग मन और वायुके समान है अथवा जिनकी तेज चाल सूर्यके साथ स्पर्धा करनेवाली है ऐसे दिव्य रत्नोके वने हुए उतने ही अर्थात् चौरासी लाख ही रथ थे ॥२४॥ जिनके खुरोके अग्रभाग पवित्र गगाजलसे धुले हुए हैं और जो पृथिवी, जल तथा आकाशमे समान रूपसे चल सकते हैं ऐसे अठारह करोड घोडे हैं ॥२५॥ अनेक योद्धाओके मर्दन करनेमे जिनका पुरुषार्थ प्रसिद्ध है ऐसे चौरासी करोड पैदल सिपाही थे ॥२६॥ महाराज भरतका शरीर वज्रकी हड्डियोंके वन्धन और वज्रके ही वेष्टनोसे वेष्टित था, वज्रमय कीलोंसे कीलित था और अमेद्य अर्थात् भेदन करने योग्य नहीं था । भावार्थ - उनका शरीर वज्रवृषभनाराचसहननका धारक था ॥२७॥ उनका शरीर चतुरस्र था - चारो ओरसे मनोहर था, उसके अंगोपागोका विभाग समानरूपसे हुआ था, अगोकी मिलावट भी ठीक थी और समचतुरस्र नामके प्रथम सहननसे अत्यन्त सुन्दर था ॥२८॥ जिसकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान थी और जिसपर चौसठ लक्षण थे ऐसा उसका स्वभावसे ही सुन्दर शरीर तिल आदि व्यंजनोसे बहुत ही सुशोभित हो रहा था ॥२९॥ छहो खण्डके राजाओका जो और जितना कुछ गारीरिक बल था उससे कहीं अधिक बल उस बलवान् भरतके शरीरमे था ॥३०॥ जिसका चक्र ही चिह्न है और समुद्रपर्यन्त जिसे कोई नहीं रोक सकता ऐसे उसके शासनको बडे-बडे पराक्रमको धारण करनेवाले राजालोग अपने शिरपर धारण करते थे ॥३१॥ उनके बत्तीस हजार मुकुटवद्ध राजा थे, उन राजाओसे वेष्टित हुए महाराज भरत कुलाचलोसे घिरे हुए सुमेरु पर्वतके समान सुशोभित होते थे ॥३२॥ महाराज भरतके अच्छी-अच्छी रचनावाले बत्तीस हजार ही देग थे और उन सबसे सुशोभित हुआ चक्रवर्तीका लम्बा-चौडा क्षेत्र बहुत ही अच्छा जान पड़ता था ॥३३॥ उनके उतनी ही अर्थात् बत्तीस हजार ही देवियां थी जो कि उच्च कुल और जातिसे सम्पन्न थी तथा रूप लावण्य और कान्तिकी शुद्ध खानिके समान जान पड़ती थी ॥३४॥ इनके सिवाय जिन्होंने पृथिवीपर अप्सराओकी कथाओको उतार लिया था ऐसी म्लेच्छ राजा आदिकोके द्वारा दी हुई बत्तीस हजार प्रिय रानियां थी ॥३५॥ इसी प्रकार जिनका शरीर अत्यन्त कोमल था और कामको उत्तेजित करने-

१ चतुरांगीनिलसा एव । २ वेगा । ३ गङ्गा । ४ प्रमिद्धम् । ५ पौरुषम् । ६ वन्धनैर्वा - ल० । ७ कीलितम् । ८ मनोजम् । ९ मुनवद्धम् । १० भूभुजाम् । ११ कुलाजाल्यभि-ल० ।

नर्याशुकुसुमोद्देरारकै पाणिपल्लवै । ताम्बूल्यो मुञ्जशाखाभिर्मैत्रु कलरलताभ्रियम् ॥३०॥
 स्तनाब्जकुटमलैरास्यपङ्कजैश्च विकासिमि । अञ्जि-य इव ता रजुमदनाधामभूमिका ॥३१॥
 मन्ये पात्राणि गात्राणि तासां कामप्रहोषितौ । पदावेशवशादप्य^१ दशां प्राप्ताऽतिवर्तिनाम् ॥३२॥
 शङ्के^२ निशातपापाणाञ्जलानासां मनोभुवः । यत्रोपास्ते^३ तद्वर्ण्यै स्त्रैरविध्यत् कामिन शर ॥३३॥
 सत्य महेपुष्पी जह्वे तासां मदनध्वनि- । कामस्यारोहनि श्रेणा^४ स्थानीयायु^५ दण्डकौ ॥३४॥
 कटी कुटी मनोजस्य काञ्चीसालकृतावृत्ति । नाभिरासां गर्भीरका कूपिका चित्तज-मन ॥३५॥
 मनोभुवोऽतिवृद्धस्य मयेऽवष्टम्भ^६ यष्टिका । रोमराजि स्तनौ धासां कामरत्नकरण्डकौ ॥३६॥
 कामपाशायतौ बाहू शिरीषोद्गमकोमलौ । कामस्योच्छ्रयमित^७ कण्ठ सुकण्ठानां मनोहर ॥३७॥
 मुख रतिसुखागारप्रमुख^८ मुखबन्धनम् । वैराग्यरसमगस्य तासां च दशनच्छद^९ ॥३८॥
 दम्बिलासा शरास्तासां कर्णातौ लक्ष्यतां गतौ । भ्रूवल्लरी धनुषदिगिगापो पुष्पध्वनि ॥३९॥
 ललाटमोगमतासां मय बाह्यालिका^{१०} स्थलम् । अनङ्गनृपतरिष्ट^{११} भोगकन्दुकधारिण ॥४०॥
^{१२} अलका कामकृष्णादे शिवाच^{१३} परिपुञ्जिता । कृञ्जिता केशवल्लर्या मदनस्यव वागुरा^{१४} ॥४१॥

वाले जिनके नेत्ररूपी बाणोंसे यह समस्त ससार जीता गया था ऐसी बत्तीस हजार रानियाँ और भी उनके अत पुरमें थीं ॥३६॥ वे छियानवे हजार रानियाँ नखोंकी किरणरूपी फूलों के खिलनेसे, कुछ-कुछ लाल हथेलीरूपी पल्लवोंसे और भुजारूपी शाखाओंसे कल्पलताकी शोभा धारण कर रही थीं ॥३७॥ कामदेवके निवास करनेकी भूमिस्वरूप वे रानियाँ स्तनरूपी कमलोंकी बोटियोंसे और खिले हुए मुखरूपी कमलोंसे कमलिनियाँके समान सुशोभित हो रही थीं ॥३८॥ मैं समझता हूँ कि उन रानियोंके शरीर कामरूपी पिशाचकी उन्नतिके पात्र थे क्योंकि उनके आवेशके वशसे ही यह कामदेव सबको उल्लघन करनेवाली विशाल अवस्थाको प्राप्त हुआ था ॥३९॥ अथवा मुझे यह भी शका होती है कि उन रानियोंके नख, कामदेवके बाण पੈने करनेके पापाण थे क्योंकि वह उन्हीपर घिसकर पैने किये हुए बाणोंसे कामी लोगों पर प्रहार किया करता था ॥४०॥ यह भी सच है कि उनकी जंघाएँ कामदेवरूपी धनुर्धारिके बड़े-बड़े तरकस थे और ऊरुदण्ड (घुटनोंसे ऊपरका भाग) कामदेवके चढ़नेकी नसेनीके समान थे ॥४१॥ करधनीरूपी कोटसे घिरी हुई उनकी कमर कामदेवकी कुटीके समान थी और उनकी नाभि कामदेवकी गहरी कूपिका (कुइयाँ) के समान जान पड़ती थी ॥४२॥ मैं मानता हूँ कि उनकी रोमराजि कामदेवरूपी अत्यन्त वृद्ध पुरुषके सहारेकी लकड़ी थी और उनके स्तन कामदेवके रत्न रखनेके पिटारे थे ॥४३॥ शिरीषके फूलके समान कोमल उनकी दोनों भुजाएँ कामदेवके पाशके समान लम्बी थीं और अच्छे कण्ठवाली उन रानियोंका मनोहर कण्ठ कामदेवके उच्छ्वासके समान था ॥४४॥ उनका मुख रति (प्रीति) रूपी सुखका प्रधान भवन था और उनके होंठ वैराग्यरसकी प्राप्तिके मुखबन्धन अर्थात् द्वार बन्द करनेवाले कपाट थे ॥४५॥ उन रानियोंके नेत्रोंके कटाक्ष विजयकी इच्छा करनेवाले कामदेवके बाणोंके समान थे, कानके अन्तभाग उसके लक्ष्य अर्थात् निशानोंके समान थे और मौहूरूपी लता धनुषकी लकड़ीके समान थी ॥४६॥ मैं समझता हूँ कि उन रानियोंके ललाटका विस्तार इष्टभोग रूपी गेंदसे खेलनेवाले कामदेवरूपी राजाके खेलनेका मानो मैदान ही हो ॥४७॥ उनके

१ चक्री । २ शङ्का करोमि । ३ प्राप्त । ४ सदृशी इत्ययम् । ५ आधार । ६ जीवितम् । ७ प्रकृष्टद्वारम् । ८ पीनाह । पीनाही मुखबन्धनमस्य यत् इत्यभिधानात् । ९ रदनच्छद - ल० । १० सेतु । सेतुरालौ स्त्रिया पुमान् । ११ इष्टभोगा एव कन्दुक । १२ चूणकुन्तला । अलकाचूणकुन्तला इत्यभिधानात् । १३ शायका । पयुक् शायक शिशु इत्यभिधानात् । १४ मृगबन्धनी ।

इत्यनङ्गमयीं सृष्टिं तन्वानाः स्वाङ्गसंगिनीम् । मनोऽस्य^१ जगद्गुहः कान्ताः कान्तैः स्वैः कामचेष्टितैः ॥४६॥
 तामां मृदुकरस्पर्शं प्रेमस्निग्धैश्च वीक्षितैः । महती धृतिरस्यार्साज्जल्पितैरपि मन्मथैः^२ ॥४७॥
 स्मितेष्वाङ्गां दरोद्भिन्नो^३ हसितेषु विकस्वरः । फलित^४ परिस्मेषु^५ रसिकोऽभूद्रतद्रुमः ॥४८॥
 भ्रूक्षेपयन्त्रपाषाणैः दृक्क्षेपक्षेपणीकृतैः । बहुदुर्गणस्तामां स्मरोऽभूत् सकचग्रहः ॥४९॥
 खरः प्रणयगर्भेषु कोपेष्वनुनये मृदु । स्तब्धो व्यलीकमानेषु मुग्ध प्रणयकैतवे ॥५०॥
 निर्दयः परिस्मेषु सानुज्ञानो मुखार्पणे । प्रतिपत्तिषु समृद्धः पटु करणचेष्टिते ॥५१॥
 संकल्पे^६ ब्राहितोत्कर्षो मन्दः^७ प्रत्यग्रसंगमे । प्रारम्भे रसिको दीप्तः प्रान्ते करुणकातर^८ ॥५२॥
 इत्युच्चावचतां^९ भेजे तासां दीप्तः स मन्मथः । प्रायो भिन्नरसः कामः कामिनां हृदयंगमः ॥५३॥
 प्रकाममधुरानिधं कामान्^{१०} कामातिरेकिणः । स ताभिर्निर्विशन् रमे^{११} वपुष्मानिव मन्मथः ॥५४॥
 ताश्च तच्चित्तहारिण्यस्तरुण्यः प्रणयोद्धरा । बभूवुः प्राप्तसाम्राज्या इव^{१२} रत्युन्मवश्रियः ॥५५॥

इकट्ठे हुए आगेके सुन्दर बाल कामदेवरूपी काले सर्पके वच्चोके समान जान पडते थे तथा कुछ-कुछ टेढी हुई केशरूपी लताएँ कामदेवके जालके समान जान पडती थी ॥४८॥ इस प्रकार अपने शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली काममयी रचनाको प्रकट करती हुई वे रानियाँ अपनी सुन्दर कामकी चेष्टाओसे महाराज भरतका मन हरण करती थी ॥४९॥ उनके कोमल हाथोके स्पर्शसे, प्रेमपूर्ण सरस अवलोकनसे, और अव्यक्त मधुर शब्दोसे इसे बहुत ही सन्तोष होता था ॥५०॥ रससे भरा हुआ सुरतरूपी वृक्ष इन रानियोके मन्द-मन्द हँसनेपर कुछ खिल जाता था, जोरसे हँसनेपर पूर्णरूपसे खिल जाता था और आलिंगन करनेपर फलोसे युक्त हो जाता था ॥५१॥ भौहोके चलानेरूप यन्त्रोसे फेके हुए पत्थरोके द्वारा तथा दृष्टियोके फेकनेरूपी यन्त्र विशेषो (गुथनो) के द्वारा उन स्त्रियोका बहुत प्रकारका किलेबन्दीका युद्ध होता था और कामदेव उसमे सबकी चोटी पकडनेवाला था । भावार्थ — कामदेव उन स्त्रियोसे अनेक प्रकारकी चेष्टा कराता था ॥५२॥ कामदेव इनके प्रेमपूर्ण क्रोधके समय कठोर हो जाता था, अनुनय करने अर्थात् पतिके द्वारा मनाये जानेपर कोमल हो जाता था, झूठा अभिमान करनेपर उद्वण्ड हो जाता था, प्रेमपूर्ण कपट करते समय भोला या अनजान हो जाता था, आलिंगन-के समय निर्दय हो जाता था, चुम्बनके लिए मुख प्रदान करते समय आज्ञा देनेवाला हो जाता था, स्वीकार करते समय विचार मूढ हो जाता था, हाव-भाव आदि चेष्टाओके समय अत्यन्त चतुर हो जाता था, संकल्प करते समय उत्कर्षको धारण करनेवाला हो जाता था, नवीन समागमके समय लज्जासे कुछ मन्द हो जाता था, सम्भोग प्रारम्भ करते समय अत्यन्त रसिक हो जाता था और सम्भोगके अन्तमे करुणासे कातर हो जाता था । इस प्रकार उन रानियोका अत्यन्त प्रज्वलित हुआ कामदेव ऊँच-नीची अवस्थाको प्राप्त होता था अर्थात् घटता-बढता रहता था सो ठीक ही है जो काम प्राय भिन्न-भिन्न रसोसे भरा रहता है वही कामी पुरुषोको सुन्दर मालूम होता है ॥५३-५६॥ इस प्रकार वह चक्रवर्ती उन रानियोके साथ अत्यन्त मधुर तथा इच्छाओसे भी अधिक भोगोको भोगता हुआ शरीरधारी कामदेवके समान क्रीडा करता था ॥५७॥ भरतके चित्तको हरण करनेवाली और प्रेमसे भरी हुई वे तरुण स्त्रियाँ ऐसी जान पडती थी मानो साम्राज्यको प्राप्त हुई रत्युत्सवरूपी लक्ष्मी ही हो ॥५८॥ उनकी

१ भरनम्य । २ अग्रवर्त । ३ ईपट्टिकसित । ४ फलित ल० । ५ आलिङ्गनेषु । ६ दुर्गयुद्धसदृशः । ७ नव । ८ रज्ज्वरमानुष । ९ नानालकारताम् । १० मनोरथवृद्धिकरान् । ११ मूर्तिमान् । १२ रत्युत्सवे श्रिय ल० ।

नाटकाना सहस्राणि द्वात्रिंशत्प्रमितानि वै । साताद्यानि सगयानि यानि रम्याणि भूमिभिः ॥५९॥
 द्वाससति सहस्राणि^१ पुरामिन्द्रपुरश्चियम् । स्वर्गलोक इवामाति भूलोको वैरलकृत ॥६०॥
 ग्रामकोट्यश्च विज्ञेया विभो पण्णवतिप्रभा । नन्दनोद्देशित्वर्या^३ यासामारामभूमय ॥६१॥
 द्रोणामुखसहस्राणि^५ नवतिनव चैव हि । धनधातयसमृद्धीनामधिष्ठानानि यानि वै ॥६२॥
 पत्तनानां सहस्राणि चत्वारिंशत्तथाऽष्ट च । रत्नाकरा इवामान्ति यपासुका^४ वणिक्पथा ॥६३॥
 पोटशव सहस्राणि खेतानां पुरिमा मता । प्राकारगोपुरादाल^६ स्वातवप्रादिशोमिनाम् ॥६४॥
 भवेयुरत्तरद्वापा पटपञ्चाशत्प्रमामिता । कुमानुपजनाकीर्णा यऽणवस्य रितायिता^७ ॥६५॥
 सवाहानां सहस्राणि सख्यातानि^८ चतुदश । बहन्ति यानि लोकस्य योगक्षेमविधाविधिम् ॥६६॥
 स्थालानां कोटिरेकोणा रचने^९ या नियोजिता । पन्थी स्थालाधिलायानां^{१०} तण्डुलानां महानसे ॥६७॥
^{११}कोटीशतसहस्र स्याद्वल्लानां कुटिब^{१२} समम् । कर्मान्तकपणे यस्य त्रिनियोगो निरन्तर ॥६८॥
 तिलोऽस्य^{१३} वज्रकोट्य स्युर्गाकुलं शशदाकुला । यत्र मन्थरवाट्टास्तिष्ठन्ति स्माप्यगा क्षणम् ॥६९॥
^{१४}कुक्षिवासशतान्यस्य सप्तैवीकानि कोविद् । प्रत्यन्तवासिनो यत्र न्यवात्सु^{१५} कृतसन्नया ॥७०॥

विभूतिमें बत्तीस हजार नाटक थे जो कि भूमियोसे मनोहर थे और अच्छे-अच्छे बाजों तथा गानोंसे सहित थे ॥५९॥ इन्द्रके नगर समान शोभा धारण करनेवाले ऐसे बहुत-हुं हजार नगर थे जिनसे अलंकृत हुआ यह नरलोक स्वर्गलोकके समान जान पड़ता था ॥६०॥ उस चक्रवर्तीके ऐसे छियानवे करोड़ गाव थे कि जिनके बगीचोंकी शोभा नन्दन वनकी भी जीत रही थी । ॥६१॥ जो धन धायकी समृद्धियोंके स्थान थे ऐसे नयानवे हजार द्रोणामुख अर्थात् बन्दरगाह थे ॥ ६२ ॥ जिनके प्रशसनीय बाजार रत्नाकर अर्थात् समुद्रोंके समान सुशोभित हो रहे थे ऐसे अड़तालीस हजार पत्तन थे ॥६३॥ जो कोट, कोटके प्रमुख दरवाजे अटारियाँ, परिखाएँ और परकोटा आदिसे शोभायमान हैं ऐसे सोलह हजार खेत थे ॥६४॥ जो कुमोग भूमि या मनुष्योंसे प्राप्त थे तथा समुद्रके सारभूत पदार्थके समान जान पड़ते थे ऐसे छपन अन्तरद्वीप थे ॥६५॥ जो लोगोंके योग अर्थात् नवीन वस्तुओंकी प्राप्ति और क्षेम अर्थात् प्राप्त हुई वस्तुओंकी रक्षा करना आदिकी समस्त व्यवस्थाओंको धारण करते थे तथा जिनके चारों ओर परिखा थी ऐसे चौदह हजार सवाह थे* ॥ ६६ ॥ पकानेके काम आनेवाले एक करोड़ हण्डे थे जो कि पाकशालामें अपने भीतर डाल हुए बहुत-से चावलोंको पकानेवाले थे ॥६७॥ फसल आनेके बाद जो निरन्तर खेतोंको जोतनेमें लगाये जाते हैं और जिनके साथ बीज बोनेकी नाली लगी हुई है ऐसे एक लाख करोड़ हल थे ॥६८॥ दही मथनेके शब्दोंसे आर्काषित हुए अधिक लोग जहाँ क्षण भरके लिए ठहर जाते हैं और जो निरन्तर गायोंके समूहसे भरी रहती है ऐसी तीन करोड़ अज अर्थात् गौशालाएँ थीं ॥ ६९ ॥ जहाँ आश्रय पाकर समीपवर्ती लोग आकर ठहरते थे ऐसे कुक्षिवासोंकी संख्या पण्डित लोगोंने सात-सी

१ बपे । २ पुराणम् । ३ जयशीला । ४ नवाधिकनवति । ५ प्रशस्था । ६ धूलिकुट्टिम । ७ अप्रतिहत स्थानायिता । ८ द्वे खिलाग्रहते समे इत्यभिधानात् । ९ सख्यातानि - ल० । १० विधानप्रकारम् । ११ पचने । १२ पचनकरो । १३ स्थालीबिलमहन्तीति स्थालीबिलीयास्तेषाम् । पचनाहताम् इत्यर्थः । १४ कोटीना लक्षम् । १५ कुलिप द अ प स इ० । कुलिम ल० । कुटिभै ट । १६ आसन्नफलविषयक्षेत्रवर्णने । १७ गोस्थानकम् । अजो गोष्ठाध्वबृन्देण इत्यभिधानात् । १८ रत्नाना क्रयविक्रयस्थानः । १९ म्लेच्छा । २० निवसन्ति स्म । * पहाड़ोंपर बसनेवाले नगर सवाह कहलाते हैं । † जहाँ रत्नोंका व्यापार होता है उन्हें कुक्षिवास कहत हैं ।

दुर्गाद्वी^१सहस्राणि तस्याष्टाविंशतिमंता ।^२वनधन्वाननिम्नादिविभाग्यां विभागिताः ॥७१॥
 म्लेच्छराजगृहसहस्राणि तस्याष्टदशसंख्यया ।^३रत्नानामुद्भवक्षेत्रं यै^४ममन्तादधिष्ठितम् ॥७२॥
 कालाख्यश्च महाकालो नैस्मर्ष्यः पाण्डुकाह्वया । पद्ममाणवपिङ्गाब्ज^५सर्वरत्नपदादिका ॥७३॥
 निधयो नव तस्यासनं प्रतीतिरिति नामभिः । यैरयं गृहवार्तायां^६निश्चिन्तोऽभून्निर्धाश्वरः ॥७४॥
 निधिः पुण्यनिवेशस्य कालाख्यः प्रथमो मतः । यतो^७लौकिकगन्दादिवार्तानां प्रभवोऽन्वहम् ॥७५॥
 इन्द्रियार्था मनोज्ञा ये वीणावगानकादयः । तान् प्रसूते यथाकालं निधिरेष विशेषतः ॥७६॥
 असिमप्यादिषट्कर्मसाधनद्रव्यमपदः । यतः^८गन्धत् प्रसूयन्ते महाकालो निधिः स वै ॥७७॥
 शय्यामनालयादीनां नै सपर्यात् प्रभवो निधेः । पाण्डुकाद्वान्यमभूति पद्ममोत्पत्तिरप्यतः ॥७८॥
 पद्मांगुलदुकूलदिवस्त्राणां प्रभवो यतः । स पद्माख्यो निधिः पद्मागर्माविर्भावितोऽद्युततः ॥७९॥
 दिव्याभरणभेदानामुद्भवः पिङ्गलान्निधेः । माणवान्नीतिशास्त्राणां शस्त्राणां च समुद्भवः ॥८०॥
 गङ्गान् प्रदक्षिणावर्तात् सौवर्णीं सृष्टिमुत्सृजन्^९ । म गङ्गनिधिस्त्वेङ्गं^{१०}द्रुक्मरोचिर्जितार्कहृक् ॥८१॥
 सर्वरत्नान्महानीलनीलस्थूलं^{११}पलादयः । प्रादुःसन्ति^{१२}मणिच्छायारचितेन्द्रायुधत्विषः ॥८२॥
 रत्नानि द्वितयान्यस्य जीवाजीवविभागतः ।^{१३}क्षमात्राणैश्वर्यसंभोगमाधनानि चतुर्दश ॥८३॥

वतलायी है ॥७०॥ अट्टाईस हजार ऐसे सधन वन थे जो कि निर्जल प्रदेश और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ी विभागोमे विभक्त थे ॥७१॥ जिनके चारो ओर रत्नोके उत्पन्न होनेके क्षेत्र अर्थात् खाने विद्यमान हैं ऐसे अठारह हजार म्लेच्छ राजा थे ॥७२॥ महाराज भरतके काल, महाकाल, नैस्मर्ष्य, पाण्डुक, पद्म, माणव, पिङ्ग, गङ्गा और सर्वरत्न इन प्रसिद्ध नामोसे युक्त ऐसी नौ निधियाँ थी कि जिनसे चक्रवर्ती घरकी आजीविकाके विषयमे विलकुल निश्चिन्त रहते थे ॥७३-७४॥ पुण्यकी निधिस्वरूप महाराज भरतके पहली काल नामकी निधि थी जिससे प्रत्येक दिन लौकिक गन्ध अर्थात् व्याकरण आदिके शास्त्रोकी उत्पत्ति होती रहती थी ॥७५॥ तथा वीणा, वाँभुरी, नगाडे आदि जो-जो इन्द्रियोके मनोज्ञ विषय थे उन्हे भी यह निधि समया-नुसार विशेष रीतिसे उत्पन्न करती रहती थी ॥७६॥ जिससे असि, मपी आदि छह कर्मोके साधनभूत द्रव्य और सपदाएँ निरन्तर उत्पन्न होती रहती थी वह महाकाल नामकी दूसरी निधि थी ॥७७॥ शय्या, आसन तथा मकान आदिकी उत्पत्ति नैस्मर्ष्य नामकी निधिसे होती थी । पाण्डुक निधिसे धान्योकी उत्पत्ति होती थी । इसके सिवाय छह रसोकी उत्पत्ति भी इसी निधिसे होती थी ॥७८॥ जिससे रेगमी मूती आदि सब तरहके वस्त्रोकी उत्पत्ति होनी रहती है और जो कमलके भीतरी भागोसे उत्पन्न हुएके समान प्रकाशमान है ऐसी पद्म नामकी निधि अत्यन्त देदीप्यमान थी ॥७९॥ पिङ्गल नामकी निधिसे अनेक प्रकारके दिव्य आभरण उत्पन्न होते रहते थे और माणव नामकी निधिसे नीतिशास्त्र तथा अनेक प्रकारके शास्त्रोकी उत्पत्ति होती रहती थी ॥८०॥ जो अपने प्रदक्षिणावर्त नामके गङ्गासे मुवर्णकी सृष्टि उत्पन्न करती थी और जिसने उछलती हुई सुवर्ण-जैसी कान्तिसे सूर्यकी किरणोको जीत लिया है ऐसी गङ्गा नामकी निधि थी ॥८१॥ जिसके मणियोकी कान्तिसे इन्द्रधनुषकी शोभा प्रकट हो रही है ऐसी सर्वरत्न नामकी निधिसे महानील, नील तथा पद्मराग आदि अनेक तरहके रत्न प्रकट होते थे ॥८२॥ इनके सिवाय भरत महाराजके जीव और अजीवके भेदसे दो विभागोमे बँटे हुए चाँदह रत्न भी थे जो कि पृथिवीकी रक्षा और ऐश्वर्यके उपभोग करनेके साधन थे ॥८३॥

१ नम्भि । 'समानो मन्त्रन्वानो' इत्यभिधानात् । २ वन्त्रन्निम्नानिम्नादि-द० । वनधन्वननम्नादि-ल० ।
 ३ दुक्षिवानम् । ४ म्लेच्छगर्ज । ५ पिङ्ग पिङ्गल । अब्ज कमल । ६ व्यापारे । ७ कालनिधे । ८ जनयन् ।
 ९ उच्चट् । १० पद्मराग । ११ प्रकटीभवन्ति । १२ पृथ्वीरक्षा ।

चक्रातपद्मदण्डासिमणयश्चम काकिणी । चमगृहपताभाध्यापितक्षपुराधस ॥८४॥

चक्रासिदण्डरक्षानि सच्छाण्यायुधालयात् । जातानि मणिचर्माभ्यां काकिणी श्रीगृहादर ॥८५॥

क्षीरक्षगजवार्जानां प्रभवो रौप्यशूलत । रक्षाचम्यानि साकताज्जिर निधिभि समम् ॥८६॥

निधीना सह रक्षानां गुणान् को नाम वणयत् । वैरावर्जितमूर्धस्त्रि हृदयं चक्रवर्तिन ॥८७॥

भजे पट्टतुजानिष्ठान् मोगान् पद्मद्विभोचितान् । क्षीरत्नसारथिस्तद्वि निधानं सुरसपदाम् ॥८८॥

कान्तारक्षमभूतस्थ सुमन्त्रेयनुपहृतम् । भद्रिकाश्र्मी प्रकृत्यैव जात्या विद्याधरान्वया ॥८९॥

शिरापसुकुमाराहा चम्पकच्छदसच्छवि । वकुलामादनि आसा पाटलो पाटलाधरा ॥९०॥

प्रबुधपद्मसौम्यास्या नालोपलदलेक्षणा । सुभूरलिकुलानालमृदुकुञ्जितमृदुजा ॥९१॥

तनूदरा वरारोहा वामोरुर्निविडस्तनी । मृदुबाहुलता साश्रूमदनाग्नेरिवारणि ॥९२॥

तत्कमा नूपुरामञ्जुजितैर्मुसरीकृतौ । मदनद्विरदस्थश्च तननुजयडिण्डिमम् ॥९३॥

नि श्रेणीकृत्य तज्जङ्घे सङ्कटद्वारवधनाम् । वासगहास्थयाऽमङ्गस्तच्छोणी नूनमासदत् ॥९४॥

चक्र, छत्र दण्ड, असि, मणि, चम और काकिणी ये सात अजीव रत्न थे और सेनापति, गृह पति, हाथी, घोडा, स्त्री, सिलावट और पुरोहित ये सात सजीव रत्न थे ॥८४॥ चक्र, दण्ड, असि और छत्र ये चार रत्न आयुषशालाम उत्पन्न हुए थे तथा मणि, चम और काकिणी ये तीन रत्न श्रीगृहम् प्रकट हुए थे ॥८५॥ स्त्री, हाथी और घोडाको उत्पत्ति विजयाध शालपर हुई थी तथा अय रत्न निधियोके साथ-साथ अयोध्याम् ही उत्पन्न हुए थे ॥८६॥ जिनके द्वारा सेवन किया हुआ चक्रवर्तीका हृदय अतिशय बलिष्ठ हो रहा था उन निधियो और रत्नोका वणन कौन कर सकता है ? ॥८७॥ वह चक्रवर्ती स्त्रीरत्नके साथ-साथ छहीं ऋतुआमें उत्पन्न होनेवाले पद्मद्वयोके योग्य भोगोका उपभोग करता था सो ठीक ही है क्योंकि स्त्री ही समस्त सुख सम्पदाओका भण्डार है ॥८८॥ महाराज भरतके रोगादि उपद्रवोंसे रहित सुमद्रा नामकी स्त्रीरत्न थी, वह सुमद्रा स्वभावसे ही मद्रा अर्थात् कल्याणरूप थी और जातिसे विद्याधरोके वशकी थी ॥८९॥ उसके समस्त अंग शिरीषके फूलके समान कोमल थे, कान्ति चम्पाकी कलीके समान थी, श्वासोच्छवास बकौली (मौलश्री) के फूलके समान सुगन्धित था, अधर गुलाबके फूलके समान कुछ-कुछ लाल थे, मुख प्रफुल्लित कमलके समान सुन्दर था, नेत्र नील कमलके दलके समान थे, भौहें अच्छी थी, केश भ्रमरोके समूहके समान काल, कोमल और कुछ-कुछ टेढ़े थे, उदर कृश था नितम्ब सुन्दर थे, जाँघें मनोहर थी, स्तन कठोर थे और भुजा रूपी लताएँ कोमल थीं इस प्रकार वह सुमद्रा कामरूपी अग्निको उत्पन्न करनेके लिए अरणिके समान थी । भावाथ - जिस प्रकार अरणि नामकी लकड़ीसे अग्नि उत्पन्न होती है उसी प्रकार उस सुमद्रासे दर्शकोके मनमें कामाग्नि उत्पन्न हो उठती थी ॥९०-९२॥ नूपुरोकी मनोहर शकारसे वाचालित हुए उसके दोनों चरण ऐसे जान पड़ते थे मानो कामदेवरूपी हाथीके विजय के नगाडे ही बजा रहे हों ॥९३॥ ऐसा मालूम होता था मानो कामदेव अपने निवासगृहपर पहुँचनेकी इच्छासे उस सुमद्राकी दोनों जघाओंकी नसेनी बनाकर जिसमें उत्तम ऊँह ही

१ चक्रदण्डासि-ल० ६० अ० प० स ६० । २ उत्पत्ति । ३ रत्नसहितानाम् । ४ रत्ननिधिभि । ५ वशी कृतम् । ६ सहाय । ७ स्त्रीरत्नम् । ८ स्थानम् । ९ रोगादिभिरपीडितम् । १० मङ्गलमूर्ति । ११ स्वभावेन । १२ चम्पककुसुमदल । १३ कुबेराक्षी । १४ ईपदक्ष । १५ उत्तमनितम्बा । १६ वरारोहा मत्तकाशिन्युत्तमा वरवर्णिनी इत्यभिधानात् । १७ मनोहर । १८ अग्निमयनकाष्ठम् । १९ सुमद्राचरणी । २० कटिम् । 'कटो ना शोणिकक कटि' शोणि कुकुदमती इत्यभिधानात् ।

निःसृत्य नामिवहमीकात् कामकृष्णभुजंगमः । रोमावलीछलेनास्या यथौ कुचकरण्डकौ^१ ॥९५॥
 निर्मोकमिव कामाहः^२ दधानोद्ध^३ स्तनांशुकम् । भुजगीमिव तद्धृत्यै^४ सैकामेकावलीमधात् ॥९६॥
 वश्रे हारलतां कण्ठलतां सा नाभिलम्बिनीम् । मन्त्ररक्षामिवानङ्गप्रथितां कामट्टीपिनीम् ॥९७॥
 हाराक्रान्तस्तनाभोगा सा स्म धत्ते परां श्रियम् । सीतेव^५ यमकाद्रिस्पृक्प्रवाहा सरिदुत्तमा ॥९८॥
 बाहू तस्या जितानङ्गपादा लक्ष्मीमुदहृतु^६ । कामवह्मद्रुमस्येव प्ररोहौ दोसभूषणौ ॥९९॥ ,
 रंजे करतलं तस्याः सूक्ष्मरेखाभिराततम् । जयरंखा इवाविभ्रदन्त्यस्त्रीनिर्जयार्जिता ॥१००॥
 मुखमुञ्चु तनूदर्यास्तरलापाङ्गमावर्भा । सशर समहेप्वासं^७ जयागारमिवातनो^८ ॥१०१॥
 वक्त्रमस्याः दशदङ्कस्य कान्तिं जित्वा स्वशोभया । दधे नु^९ भूपताकाङ्कं कण्ठभ्यां जयपत्रकम् ॥१०२॥
^{१०} हेमपत्राङ्कितौ तन्व्याः^{११} कर्णौ लीलामवापतुः । स्ववर्धनैर्जयाथैव कृतपत्रावलम्बनौ ॥१०३॥
 कपोलायुज्ज्वलौ तस्या दधनुर्दर्पणश्रियम् । द्रष्टुकामस्य कामस्य^{१२} स्वा दशा दशधा स्थिताः ॥१०४॥
^{१३} मध्येचक्षुरर्धराक्ष्या नासिकाऽभान्मुखोन्मुखी^{१४} । तदामोदमिवाग्रातुं कृतयत्ना कुतूहलात् ॥१०५॥
 कृत्वा श्रोतृपदे^{१५} कर्णौ तत्रे विभ्रमैर्मिथः । कृतस्पर्धे^{१६} इवाभातां पुष्पवाणे^{१७} समापतौ ॥१०६॥

दरवाजेके बन्धन है ऐसे उसके नितम्बोपर जा पहुँचा हो ॥९४॥ रोमावलीके छलसे कामदेव-
 रूपी काला सर्प उसकी नाभिरूपी वामीसे निकलकर उसके स्तनरूपी पिटारोके समीप जा
 पहुँचा था ॥९५॥ वह सुभद्रा कामरूपी सर्पकी काँचलीके समान सुन्दर स्तनवस्त्र
 (चोली) धारण करती थी और उस कामरूप सर्पको सन्तुष्ट करनेके लिए सर्पिणीके समान
 श्रेष्ठ एकावली हारको धारण करती थी ॥९६॥ वह कण्ठमे पड़ी हुई, नाभि तक लटकती हुई
 और कामको उद्दीपित करनेवाली जिस हाररूपी लताको धारण कर रही थी वह ऐसी मालूम
 होती थी मानो कामदेवके द्वारा गूँथा हुआ और मन्त्रोसे मन्त्रित हुआ रक्षाका डोरा ही हो ।
 ॥९७॥ जिसके स्तनोंका मध्यभाग हारसे व्याप्त हो रहा है ऐसी वह सुभद्रा इस प्रकारकी
 उत्कृष्ट शोभा धारण कर रही थी मानो जिसका प्रवाह दोनों ओरके यमक पर्वतोंको स्पर्श कर
 रहा है ऐसी उत्तम सीता नदी ही हो ॥९८॥ कामदेवके पाशको जीतनेवाली तथा देदीप्यमान
 आभूषणोंसे सुशोभित उसकी दोनों भुजाएँ ऐसी शोभा धारण कर रही थी मानो कामरूपी
 कल्पवृक्षके दो अकूरे ही हो ॥९९॥ सूक्ष्म रेखाओंसे व्याप्त हुआ उसका करतल ऐसा सुशो-
 भित हो रहा था मानो अन्य स्त्रियोंके पराजयसे उत्पन्न हुई विजयकी रेखाएँ ही धारण कर
 रहा हो ॥१००॥ जिसकी भीहे ऊपरको उठी हुई है और जिसमें चचल कटाक्ष हो रहे हैं ऐसा
 उस कृशोदरीका मुख ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बाण और महाधनुषसे सहित कामदेव-
 की आयुधशाला ही हो ॥१०१॥ उसका मुख अपनी शोभाके द्वारा चन्द्रमाकी कान्तिको जीत-
 कर क्या कानोंके वहानेसे भीहरूपी पताकाके चिह्नसहित विजयपत्र (जीतका प्रमाणपत्र)
 ही धारण कर रहा था ॥१०२॥ सोनेके पत्रोंसे चिह्नित उसके दोनों कान ऐसी शोभा धारण
 कर रहे थे मानो उन्होंने देवागनाओंको जीतनेके लिए कागज-पत्र ही ले रखे हो ॥१०३॥
 उमके दोनों उज्ज्वल कपोल गेमे जान पड़ते थे मानो अपनी दश प्रकारकी अवस्थाओंको
 देखनेको इच्छा करनेवाले कामदेवके दर्पणकी शोभा ही धारण कर रहे हो ॥१०४॥ उस चचल
 लोचनवाली सुभद्राकी नाक आँवोंके बीचमे मुँहकी ओर झुकी हुई थी और उससे

१-करण्डकम् २०, २०, २०, ४० ५०, ५० । २ प्रशस्तम् । ३ कामाहं सतोपाय । ४ मुख्याम् । ५ सीता-
 नदी । ६ दधानं तम् । ७ महात्राणमस्त्रिणम् । ८ गन्धधालाम् । ९ अनङ्गस्य । १० इव । ११ कर्णपत्र ।
 १२ तन्व्या २०, २० । १३ आत्मोया । १४ चक्षुषोर्मध्ये । १५ मुखस्याभिमुखी । १६ श्रोतृजनस्थाने ।
 १७ कामे नभापती नति ।

अभूत् कान्तिश्चकोराद्या हलाटे सुदितालक । हमपदा तसलप्रनाला पलविश्विना ॥१०७॥
 तस्या विनालविलस्तकवरीवधवधुरम्^१ । कशपाशमनङ्गस्य मन्ध पाश प्रसारितम् ॥१०८॥
 इत्यस्या रूपमुद्गतसीष्ठव त्रिजगाजधि । मत्मानङ्गस्तदङ्गेषु समिधान व्यधात् ध्रुवम् ॥१०९॥
 तद्गालोकनोच्चक्षुस्तद्गात्रस्पशनात्सुक । तमुत्तमोदमाजिघ्रन् रसयश्चासृ-सुरम् ॥११०॥
 तद्गतकलनिकाणश्रुतिससन्नकणक^२ । तद्गात्रविपुलाराम स रम सुरविबुध^३ ॥१११॥
 पञ्च बाणामनङ्गस्य धदन्धतानं कुण्डितान्^४ । पुष्पपुसन्धालोरु प्रसिद्धौव गता प्रथाम् ॥११२॥
 धनुलता मनोजस्य प्राहु पुष्पमयीं जटा । सुकुमारतर खैण^५ वपुरयातनाधनु ॥११३॥
 पञ्चबाणाननङ्गस्य नियच्छति^६ कुतो^७ जडा । यदध कामिनां हारि तदध कामदापनम् ॥११४॥
 स्मितमालोकिता हासी जलित मदममनम्^८ । कामाङ्गमिदमवान्यत् कैतव तस्य पोषकम् ॥११५॥
 आरूढयौवनान्माणौ स्तनावस्या हिमागम । रोम्णा^९ हृषितमस्याङ्गे शिशिरास्य विनियनु^{१०} ॥११६॥
 हिमानिलं कुचोत्कम्पमाहित^{११} सा हतन्लमै । प्रयस्करतलस्पर्शरपनि य^{१२} ऽङ्गायिनी ॥११७॥

वह ऐसी जान पड़ती थी मानो कौतूहलसे मुँहका सुगन्ध सूँघनेके लिए प्रयत्न ही कर रही हो ॥१०५॥ उसके दोनो नेत्र ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो कामदेवके सभापति रहते हुए काना को साक्षी बनाकर परस्परमें हाव भावके द्वारा स्पर्धा ही कर रहे हो ॥१०६॥ जिसपर काली काली अलक बिखर रही हैं ऐसे चकोरके समान नेत्रवाली उस सुभद्राके ललाटपर जो कान्ति थी वह सुवर्णके पट्टियेपर लटकती हुई नीलकमलकी मालाके समान बहुत ही सुन्दर जान पड़ती थी ॥१०७॥ अत्यन्त काल और नीचेकी ओर लटकते हुए कबरीके बधनसे सुशोभित उसके केशपाश ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो फला हुआ कामदेवका पाश ही हो ॥१०८॥ इस प्रकार जिसकी उत्तमता प्रकट है ऐसे उस सुभद्राके रूपको तीनों जगत्का जीतनेवाला जामकर ही मानो कामदेवने उसके प्रत्येक अंगोंमें अपना निवासस्थान बनाया था ॥१०९॥ उसका रूप देखनेके लिए जो सदा चक्षुओंको ऊपर उठाये रहता है, उसके शरीरका स्पर्श करनेके लिए जो सदा उत्कण्ठित बना रहता है जो बार-बार उसके मुखकी सुगन्ध सूँघा करता है, बार बार उसके मुखका स्वाद लिया करता है और उसके सगीतके सुन्दर शब्दोंके सुननेमें जिसके कान सदा तल्लीन रहते हैं ऐसा वह चक्रवर्ती उस सुभद्राके शरीररूपी बड़े बगीचेमें सुखसे सन्तुष्ट होकर क्रीड़ा किया करता था ॥११०-१११॥ कविलोग, जिनका कही प्रतिबन्ध नहीं होता ऐसा सुभद्राका रूप, कोमल स्पर्श, मुखकी सुगन्ध, ओठोंका रस और सगीतमय सुन्दर शब्द इन पाँचको ही कामदेवके पाँच बाण बतलाते हैं । लोकमें जो कामदेवक पाँचो बाणोंकी चर्चा है वह रूढ़ि मात्रसे ही प्रसिद्ध हो गयी है ॥११२॥ मूल लोग कहते हैं कि कामदेवका धनुष फूलोका है परन्तु वास्तवमें स्त्रियोका अत्यन्त कोमल शरीर ही उसका धनुष है ॥११३॥ न जाने क्यों मूल लोग कामदेवको पाँच बाण ही प्रदान करते हैं अर्थात् उसके पाँच बाण बतलाते हैं क्योंकि जो कुछ भी कामी लोगोंके चित्तको हरण करनेवाला है वह सभी कामको उत्तेजित करनेवाला कामदेवका बाण है । भावाथ — कामदेवके अनेक बाण हैं ॥११४॥ स्त्रियोंका मन्द हास्य तिरछी चितवन जोरसे हसना और कामके आवेशसे अस्पष्ट बोलना यही सब कामदेवके अंग हैं इनके सिवाय जो उनका कपट है वह इन्हीं सबका पोषण करनेवाला है ॥११५॥ जो जवानीके कारण गम हो रहे हैं ऐसे सुभद्राके दोनों स्तन हेमन्तऋतुमें ठण्डसे उठे हुए भरतके शरीरके रोमाँचोंको दूर करते थे ॥११६॥ गोदमें शयन करनेवाली सुभद्रा शीतलवायुके

१ गलित । २ सुखतुप्त । ३ तद्गुपादीन । ४ अमलान् । ५ स्त्रिया इदम् । ६ नियमयन्ति । ७ कि कारणम् । ८ मदेनाम्यवतभाषिणम् । ९ कामस्य । १० रोमाञ्चम् । रोमाञ्चो रोमहृषणम् इत्यभिधानात् । ११ नाश चक्रनुरित्यम् । १२ कृतम् । १३ प्रियतमहस्ततल । १४ अपहरति रम ।

मागोक्ककलिका चतुर्मासरी कर्णमंगिनीम् । दधती^१ चम्पकप्रोक्तैः^२ केगान्तैः साऽरुचन्मधौ ॥११८॥
 मधौ^३ मधुमदारक्तलोचनामास्वलद्गतिम् । बहु मेने प्रिय. कान्तां मूर्तामिव मदश्रियम् ॥११९॥
 कलैरलिकुलकाणैः सान्यपुष्टविकृतिजैः । मधुर मधुरभ्यष्टौ^४ तुष्टेवा^५ विगाम्पतिम् ॥१२०॥
^६कलकण्ठीकलकाणमूर्छितैरलिङ्गकृतैः । व्यज्यते स्म स्मराकाण्डावस्कन्दो^७ डिण्डिमायितैः ॥१२१॥
^{१०}पुष्पचूतवनोद्गन्धितफुल्लकमलाकरः । पप्रथे सुरमिर्मासः^{११} सुरभीकृतदिग्मुखः ॥१२२॥
 हृतालिकुलझकार संचरन्मलयानिलः । अनङ्गनृपतेरासीद् घोषयन्निव गासनम्^{१२} ॥१२३॥
 सध्यारुणां कलामिन्दोर्मेने लोको जगद्गम^{१३} । करालामिव रक्ताक्तां^{१४} दृष्ट्वां मदनरक्षसः ॥१२४॥
 उन्मत्तकोकिले काले तस्मिन्नुन्मत्तषट्पदे । नानुन्मत्तो जन. कोऽपि मुक्त्वानङ्ग^{१५} द्रुहो मुनीन् ॥१२५॥
 सायमुदगाहनिर्णिक्तैः^{१६} रङ्गैस्तुहिनर्गातलैः । ग्रीष्मे मदनतापातं सास्याङ्गं निरवापयत्^{१७} ॥१२६॥
 चन्दनद्रवससिक्तसुन्दराङ्गलतां प्रियाम् । परिभ्य^{१८} दृढं दोभ्यां स लेभे गात्रनिवृत्तिम्^{१९} ॥१२७॥
 मदनज्वरतापातं तीव्रग्रीष्मोष्मनिःमहाम्^{२०} । स तां निर्वापयामास स्वाङ्गस्पर्शसुखाम्बुभिः ॥१२८॥

द्वारा उत्पन्न हुई स्तनोकी कँपकँपीको क्लेश दूर करनेवाले प्रिय पतिके करतलके स्पर्शसे दूर करती थी ॥११७॥ अशोकवृक्षकी कलीके साथ-साथ कानोमे लगी हुई आमकी मजरीको धारण करती हुई वह सुभद्रा वसन्तऋतुमे चम्पाके फूलोसे गुंथी हुई चोटीसे बहुत ही अधिक सुशोभित हो रही थी ॥११८॥ वसन्तऋतुमे मधुके मदसे जिसकी आँखे कुछ-कुछ लाल हो रही हैं और जिसकी गति कुछ-कुछ लडखडा रही है — स्खलित हो रही है ऐसी उस सुभद्राको भरत महाराज मूर्तिमती मदकी शोभाके समान बहुत कुछ मानते थे ॥११९॥ वह वसन्तऋतु सन्तुष्ट होकर भ्रमरोकी सुन्दर झकार और कोकिलाओकी कमनीय कूकसे मानो राजा भरतकी सुन्दर स्तुति ही करता था ॥१२०॥ कोयलोके सुन्दर शब्दोसे मिली हुई भ्रमरोकी झकारसे ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेवने नगाडोके साथ अकस्मात् आक्रमण ही किया हो — छापा ही मारा हो ॥१२१॥ फूले हुए आमके वनोसे जो अत्यन्त सुगन्धित हो रहा है, जिसमे कमलोके समूह फूले हुए हैं और जिसने समस्त दिशाएँ सुगन्धित कर दी हैं ऐसा वह वसन्तका चैत्र मास चारो ओर फैल रहा था ॥१२२॥ भ्रमरसमूहकी झकारको हरण करनेवाला, चारो ओर फिरता हुआ मलयसमीर ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेवरूपी राजाके शासनकी घोषणा ही कर रहा हो ॥१२३॥ उस समय सन्ध्याकालकी लालीसे कुछ लाल हुई चन्द्रमाकी कलाको लोग ऐसा मानते थे मानो जगत्को निगलनेवाले कामदेवरूपी राक्षसकी रक्तसे भीगी हुई भयकर डाँढ ही हो ॥१२४॥ जिसमे कोयल और भ्रमर सभी उन्मत्त हो जाते हैं ऐसे उस वसन्तके समय कामदेवके साथ द्रोह करनेवाले मुनियोको छोड़कर और कोई ऐसा मनुष्य नहीं था जो उन्मत्त न हुआ हो ॥१२५॥ सायकालके समय जलमे अवगाहन करनेसे जो म्वच्छ किये गये हैं और जो वर्षके समान शीतल हैं ऐसे अपने समस्त अगोसे वह सुभद्रा ग्रीष्मकालमे कामके सन्तापसे सन्तुष्ट हुए भरतके शरीरको शान्त करती थी ॥१२६॥ जिसकी शरीररूपी सुन्दर लतापर घिसे हुए चन्दनका लेप किया गया है ऐसी अपनी प्रिया सुभद्राको भरत महाराज दोनो हाथोसे गाढ आलिंगन कर अपना शरीर शान्त करते थे ॥१२७॥ जो कामज्वरके सन्तापसे पीडित हो रही है और जिसे ग्रीष्मकालकी तीव्र गरमी विलकुल ही सहन

१ दधन्ती ल० । २ खचितै । ३ वसन्ते । ४ स्तौति स्म । ५ तोपेणैव । ६ कोकिला । ७ मिश्रितै । ८ प्रकटीक्रियते स्म । ९ कामकालघाटी । १० पुष्पीभवत् । पुष्पचूत-ड०, अ०, प०, स०, द०, ल० । ११ वसन्त । १२ आजाम । १३ लोकभक्षकम् । १४ रुधिरलिप्ताम् । १५ कामघातकान् । १६ सध्याकाल-ज्वरवेगमुद् । १७ उष्ण पन्थिह्य शैत्यं चकारेत्यर्थ । १८ आलिङ्ग्य । १९ गरीरमुखम् । २० अमहमानाम् ।

उत्फुल्लमल्लिङ्गमोदवाहिमिग^१ धैवाहिमि । स^२ सायप्रातिकैर्भोजं धृतिं रतिसुराहारैः^३ ॥१२९॥
 उत्फुल्लपादलोद्गाधि मल्लिकामालमारिणीम्^४ । उपगृह्य^५ प्रिया प्रेम्णा नैदायौ^६ सोऽनयस्त्रिशाम् ॥१३०॥
 सा घनस्तनितन्याजात् तर्जितव मनोभुवा । मुजोपपाडमाक्षिप्य^७ दिश्य पत्या तपात्यय^८ ॥१३१॥
 नवाम्बुरुक्षुपा पूरा ध्वनिरुम्भदकेकिनाम् । कदम्बामोदिनो वाता कामिना^९ धृतयऽभवन् ॥१३२॥
 आरूढकालिकां पश्यन् बलाकामालमारिणीम् । घनालीं पथिक माश्रुर्दिशो मनऽधकारिताः ॥१३३॥
 धारारज्जुमिरानद्धा वागुरेव^{१०} प्रसारिता । रोधाय पथिकणानां^{११} लुब्धमनव हन्तुवा ॥१३४॥
 कृतावधि प्रियो नागादगाच्च जलदागम । इत्युदाक्ष्य^{१२} घनात्^{१३} काचिद् हन्ति शूयाऽभवत् सता ॥१३५॥
 धिमिन्द^{१४} केतकीसूयास्तत्पांसूनाकिरभद्व । पाथाना दृष्टिरोधाय धूलिक्षेपमिवाकरोत् ॥१३६॥
 इत्यभ्यर्णसम तस्मिन् काले जलदमालिनि । स वासमवने रम्य प्रियामरमयमुहु ॥१३७॥
 आकृष्टनिष्कुलामोद^{१५} तद्वक्त्रामोदमाहरन् । तस्या स्तनतटोत्सग सोऽनपीद् धार्पिकी^{१६} निशाम् ॥१३८॥
 स रेमे शरदारम्भ विहरन् वान्तया समम् । वनेष्वभिनवोन्निसससच्छद्रसुगन्धिषु ॥१३९॥

नहीं हो सकती ऐसी उस सुमद्राको महाराज भरत अपने शरीरके स्पर्शसे उत्पन्न हुए सुखरूपी जलसे शान्त करते थे ॥१२८॥ खिली हुई मालतीकी सुगन्धको धारण करनेवाला तथा रति समयमें सुख पहुंचानेवाले सायकाल और प्रातःकालकी वायुके द्वारा चक्रवर्ती भरत बहुत ही अधिक सन्तोष प्राप्त करते थे ॥१२९॥ फूले हुए गुलाबकी सुगन्धयुक्त मालतीकी मालाओंको धारण करनेवाली उस सुमद्राको आलिंगन कर महाराज भरत बड़े प्रेमसे ग्रीष्मकालकी रात व्यतीत करते थे ॥१३०॥ वर्षाऋतुमें मेघोंकी गर्जनाके बहानेसे मानो कामदेवने जिसे धुड़की दिखाकर भयभीत किया है ऐसी वह सुमद्रा भुजाओंसे आलिंगन कर पतिके साथ शयन करती थी ॥ १३१ ॥ उस वर्षाऋतुमें नये जलसे मलिन हुए नदियोंके प्रवाह, उमत्त मयूरीके शब्द और कदम्बके फूलोंकी सुगन्धिसे युक्त वायु ये सब कामी लोगोंके सन्तोषके लिए थे ॥१३२॥ जिसपर कालिमा छायी हुई है और जो बगुलाओंकी पंक्तिको धारण कर रही है ऐसी मेघमाला को देखते हुए पथिक आंसू डालते हुए दिशाओंको अधकारपूण मानते थे ॥१३३॥ उस वर्षा ऋतुमें जो जलकी धाराएँ पड़ती थीं उनसे रस्सियोंके समान व्याप्त हुई यह पृथिवी ऐसी जान पड़ती थी मानो कामदेवरूपी शिकारीने पथिकरूपी हिरणोंको रोकनेके लिए जाल ही फैलाया हो ॥१३४॥ जो अनेकी अवधि करके गया था ऐसा पति अबतक नहीं आया और वह वर्षा ऋतु आ गयी इस प्रकार बादलोंको देखकर कोई पतिव्रता स्त्री अपने हृदयमें शून्य हो रही थी अर्थात् चिन्तासे उसकी विचारशक्ति नष्ट हो गयी थी ॥१३५॥ केतकीकी बौडियोंकी भेदन करता हुआ और उनकी धलको चारों ओर बिखेरता हुआ वायु ऐसा जान पड़ता था मानो पथिकोंकी दृष्टि रोकनेके लिए धूलि ही उड़ा रहा हो ॥१३६॥ इस प्रकार उस वर्षाकालमें जब बादलों के समूह अत्यन्त निकट आ जाते थे तब चक्रवर्ती भरत अपने मनोहर महलमें प्रिया सुमद्राको बार-बार प्रसन्न करता था—उसके साथ क्रीड़ा करता था ॥१३७॥ जिसने पानीमें उत्पन्न होने वाले केतकी सुगन्धि खींच ली है ऐसे उस सुमद्राके मुखकी सुगन्धको ग्रहण करता हुआ चक्रवर्ती उसके स्तनतटके समीप ही वर्षाऋतुकी रात्रि व्यतीत करता था ॥१३८॥ शरदऋतु

१ पवन । २ सव्यकालप्रभातकालभेद । ३ रतिसुखकररित्ययम् । ४ बिभ्रतीम् । ५ आलिङ्गय । उपगृह्य ६० प० ६० । उपगृह्य अ ल स० । ६ निदायसंबन्धिनीम् । ७ भुजाम्या पीडयित्वा । ८ वर्षाकाले । ९ सतोपाय । १० मृगवन्धिनी । ११ पाण्यमृगाणाम् । १२ आलोक्य । १३ घनान्तस्तपे प्रीयितवतुका ६० । १४ अग्राम् । १५ हिज्जुल । निष्कुली हिज्जुलोऽम्बुज इत्यभिधानात् । १६ वर्षाकालसंबन्धिनीम् ।

स कान्तां रमयामास हारज्योत्स्नाञ्चितस्तनीम् । शारदी निर्विग्नं ज्योत्स्नां सौधोत्सङ्गेषु हारिषु ॥१४०॥
 मोत्पलां^१ कुब्जकैटव्धां^२ मालां चूडान्तलम्बिनीम् । बाला पत्युरुरसंगान्मेने बहुरतिश्रियम्^३ ॥१४१॥
 इति सौत्कर्षमेवास्यां प्रथयन् प्रेमनिघ्नताम्^४ । स रेमे रतिसाद्भूतो^५ भोगाङ्गैर्दशधोदितैः ॥१४२॥
 सरला निधयो दिव्या^६ पुरं शय्यासने चमू । नाट्य सभाजनं^७ भोज्यं वाहनं चेति तानि वै ॥१४३॥
 दशाङ्गमिति भोगाङ्ग निर्विशन् स्वाशितं^८ भवम् । स चिर पालयामास भुवमेकोष्णवारणाम्^९ ॥१४४॥
 षोडशास्य सहस्राणि गणबद्धामरा. प्रभोः । ये युक्ता धृतनिखिशा निधिरत्नात्मरक्षणे ॥१४५॥
 क्षितिसार^{१०} इति ख्यातः प्रकारोऽस्य गृहावृत्ति । गोपुर सर्वतोभद्रं प्रोहसद्बलतोरणम् ॥१४६॥
 नन्द्यावर्तो निवेशोऽस्य शिविरस्यालघीयस । प्रासादो वैजयन्ताख्यो यः सर्वत्र सुखावहः ॥१४७॥
 दिक्स्वस्तिका सभाभूमिः पराध्यमणिकुट्टिमा । तस्य चङ्क्रमणी^{१२} यष्टि^{१३} सुविधिर्मणिनिर्मिता ॥१४८॥
 गिरिकूटकमित्यासीत् सौधं दिगवलोकने^{१४} । वर्धमानकमित्यन्यत्^{१५} प्रेक्षागृहमभूद् विभो. ॥१४९॥
 घर्मान्तोऽस्य^{१६} महानासीद् धारागृहसमाह्वयः । गृहकूटकमित्युच्चैर्बर्षावासः प्रभोरभूत् ॥१५०॥
 पुष्करावर्त्यभिख्यं च हर्म्यमस्य सुधासितम् । कुबेरकान्तमित्यासीद् भाण्डागारं यदक्षयम् ॥१५१॥

के प्रारम्भमे वह चक्रवर्ती, जिनमे नवीन खिले हुए सप्तच्छद वृक्षोकी सुगन्ध फैल रही है ऐसे वनोमे अपनी स्त्रीके साथ विहार करता हुआ क्रीडा करता था ॥१३९॥ राजभवनकी मनोहर छतोपर शरदऋतुकी चाँदनीका उपभोग करता हुआ वह चक्रवर्ती हारकी कान्तिसे जिसके स्तन सुशोभित हो रहे हैं ऐसी प्रिया सुभद्राको प्रसन्न करता था — उसके साथ क्रीडा करता था ॥१४०॥ जब कभी रानी सुभद्रा पतिके वक्ष स्थलपर लेट जाती थी उस समय उसकी चोटीके अन्त भागसे लटकती हुई नील कमलयुक्त भद्रतरणीके फूलोसे गुम्फित मालाको वह रतिकी लक्ष्मीके समान मानती थी ॥१४१॥ इस प्रकार इस सुभद्रादेवीमे प्रेमकी परवशताको अच्छी तरह प्रकट करता हुआ और रतिमुखके अधीन हुआ वह चक्रवर्ती दश प्रकारके कहे हुए भोगोके साधनोसे क्रीडा करता था ॥१४२॥ रत्नसहित नौ निधियाँ, रानियाँ, नगर, शय्या, आसन, सेना, नाट्यशाला, बरतन, भोजन और सवारी ये दश भोगके साधन कहलाते हैं ॥१४३॥ इस प्रकार अपनेको तृप्त करनेवाले दश प्रकारके भोगके साधनोका उपभोग करते हुए महाराज भरतने चिरकाल तक जिसपर एक ही छत्र है ऐसी पृथिवीका पालन किया ॥१४४॥ चक्रवर्ती भरतके ऐसे सोलह हजार गणबद्ध देव थे जो कि तलवार धारण कर निधि, रत्न और स्वयं उनकी रक्षा करनेमे सदा तत्पर रहते थे ॥१४५॥ उनके घरको घेरे हुए क्षितिसार नामका कोट था और देदीप्यमान रत्नोके तोरणोसे युक्त सर्वतोभद्र नामका गोपुर था ॥१४६॥ उनकी बड़ी भारी छावनीके ठहरनेका स्थान नन्द्यावर्त नामका था और जो सब ऋतुओमे सुख देनेवाला है ऐसा वैजयन्त नामका महल था ॥१४७॥ बहुमूल्य मणियोसे जड़ी हुई दिक्स्वस्तिका नामकी सभाभूमि थी और टहलनेके समय हाथमे लेनेके लिए मणियोकी वनी हुई सुविधि नामकी लकड़ी थी ॥१४८॥ सब दिशाएँ देखनेके लिए गिरिकूटक नामका राजमहल था और उन्ही चक्रवर्तीके नृत्य देखनेके लिए वर्धमानक नामकी नृत्यशाला थी ॥१४९॥ उन चक्रवर्तीके गरमीको नष्ट करनेवाला धारागृह नामका बड़ा भारी स्थान था और वर्षाऋतुमे निवास करनेके लिए बहुत ऊँचा-गृहकूटक नामक महल था ॥१५०॥ चूनासे सफेद हुआ पुष्करावर्त नामका

१ 'कुब्जिका भद्रतरणी वृहत्पत्रातिकेशरा । महासहा' इति वन्वन्तरि । २ रचिताम् । ३ रतिश्रीममानामिति । 'पत्युरुरस्य स्थिता सजिघ्रति स्म सा' प०, ल० । ४ स्नेहावीनताम् । ५ रत्यधीन । ६ देव्य द०, ल०, प० । ७ भाजनमहितम् । ८ स्वस्य तृप्तिजनकम् । ९ मुचिर ल० । १० एकच्छत्राम् । ११ क्षितिसार इति नाम्ना । १२ आलिङ्गभूमिः, आन्दोलनभूमिरित्यर्थ । १३ सुविधिनामा । १४ दिशावलोकनार्थम् । १५ नृत्त-दर्शनगृहम् । १६ घर्मान्तमज्ञाम् ।

वसुधारकमित्यामीत् कोष्ठागार महाव्ययम् । जामूतनामधेय च मञ्जनागारमृजितम् ॥१५२॥
 रत्नमालाऽतिराविण्युवभूवास्यावतमिका । दवरम्यति रम्या सा मता दृप्यकुटी^१ पृथु^२ ॥१५३॥
 सिंहवाहिन्यभूच्छय्या सिंहैरूडा भयानकै^३ । मिहामनमथाऽस्याच्चैर्गुणैर्नाम्नाऽप्यनुत्तरम् ॥१५४॥
 रामराण्युपमाना^४ व्यताप्यानुपमान्यमान^५ । विजयाद्यकुमारण वितार्णानि निधाशिन ॥१५५॥
 भास्वनसूयप्रभ तस्य वभूवातपवारगम् । पराभ्यरत्ननिर्माण जितसूयशतप्रभम् ॥१५६॥
 नात्ना निघुत्प्रभ चास्य रुचिर मणिकुण्डले । जित्वा य^६ वैयुती^७ दासिं रुक्मात स्फुरस्विषी ॥१५७॥
 रक्षांशुजटिलास्तस्य पादुका विषमोचिका^८ । परपां पदमस्पशाद् मुञ्चन्त्या विषट्क्षणम् ॥१५८॥
 अभयाख्यप्रभभूतस्य तनुत्राण प्रभास्वरम् । द्विपता शरनाराचैयदभय महाहवे ॥१५९॥
 रथोऽजितप्रथो नात्ना जयलक्ष्माभरोह^९ । यत्र शस्त्राणि जग्राणि दिव्याभ्यासजनेकदा ॥१६०॥
 चण्डाकाण्डाशनिप्रख्यज्याघाताऽकम्पितात्तिलम् । जितदैत्यामर तस्य वज्रकाण्डमभूदनु^{१०} ॥१६१॥
 अमोघपातास्तस्यासन् नामोधाख्या महपव^{११} । यरसाध्यजय चर्का कृतश्चाघो रणाङ्गणे ॥१६२॥
 प्रचण्डा वज्रतुण्डाख्या शक्तिरत्यारित्तिहर्त्री । वभूव वज्रनिर्माणाश्चाप्या वज्रिजयऽपि या ॥१६३॥
 कुन्त सिंहाटको नाम य सिंहनखरांकुरै^{१२} । स्पधत स्म निशाताप्रो मणिदण्डप्रमण्डन^{१३} ॥१६४॥

खास महल था और कुबेरकान्त नामका भाण्डारगृह था जो वभी खाली नहीं होता था ॥१५१॥
 वसुधारक नामका बड़ा भारी अटूट कोठार था और जीमूत नामका बड़ा भारी स्नानगृह था ॥१५२॥ उस चक्रवर्तिक अवतसिका नामकी अत्यन्त देदीप्यमान रत्नोंकी माला थी और
 देवरम्या नामकी बहुत बड़ी सुन्दर चाँदनी थी ॥१५३॥ भयकर सिंहोंके द्वारा धारण की हुई
 सिंहवाहिनी नामकी शय्या थी और गुण तथा नाम दोनोंसे अनुत्तर अर्थात् उत्कृष्ट बहुत ऊँचा
 सिंहासन था ॥१५४॥ जो विजयाद्यकुमारके द्वारा निधियोंके स्वामी चक्रवर्तिकी लिए समर्पित
 किये गये थे ऐसे अनुपमान नामके उनके चमर उपमाको उल्लघन कर अत्यन्त सुशोभित हो
 रहे थे ॥१५५॥ उस चक्रवर्तिकी बहुमूल्य रत्नोंसे बना हुआ और सकड़ो सूयकी प्रभाको जीतने
 वाला सूयप्रभ नामका अतिशय देदीप्यमान छत्र था ॥१५६॥ उनके देदीप्यमान कान्तिके
 धारक विद्युत्प्रभ नामके दो ऐसे सुन्दर कुण्डल थे जो कि विजलोकी दीप्तिको पराजित कर
 सुशोभित हो रहे थे ॥१५७॥ महाराज भरतके रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त हुई विषमोचिका
 नामकी ऐसी खड़ाऊँ थी जो कि दूसरेके पैरका स्पर्श होते ही भयकर विष छोड़ने लगती थी ॥
 १५८॥ उनके अमेघ नामका कवच था जो कि अत्यन्त देदीप्यमान था और महायुद्धमें शत्रुओं
 के तीक्ष्ण बाणोंसे भी भेदन नहीं किया जा सकता था ॥१५९॥ विजयलक्ष्मीके भारको धारण
 करनेवाला अजितजय नामका रथ था जिसपर शत्रुओंको जीतनेवाले अनेक दिव्य शस्त्र रखे
 रहते थे ॥१६०॥ असमयमें होनेवाले प्रचण्ड वज्रपातके समान जिसकी प्रत्यचाके आघातसे
 समस्त ससारका कंप जाता था और जिसने देव दानव — सभीको जीत लिया था ऐसा वज्रकाण्ड
 नामका धनुष उस चक्रवर्तिकी पास था ॥१६१॥ जो कभी व्यर्थ नहीं पड़ते ऐसे उसके अमोघ
 नामके बड़े-बड़े बाण थे । इन बाणोंके द्वारा ही चक्रवर्ती जिसमें विजय पाना असाध्य हो ऐसे
 युद्धस्थलमें प्रसा प्राप्त करता था ॥१६२॥ राजा भरतके शत्रुओंको खण्डित करनेवाली
 वज्रतुण्डा नामकी शक्ति थी जो कि वज्रकी वनी हुई थी और इन्द्रको भी जीतनेमें प्रशसनीय
 थी ॥१६३॥ जिसकी नोक बहुत तेज थी जो मणियोंके बने हुए ढण्डके अग्रभागपर सुशोभित

१ पटकुटी । २ उपमाप्रमाणम् । ३ भान्ति स्म । ४ कुण्डले । ५ विद्युत्प्रभविघ्नीम् । ६ विषमाचिकाधना ।
 ७ महागर् । ८ मणिमयदण्डाप्र मण्डनम अलंकारी यस्य ।

तस्यासि^१ पुत्रिका दीप्रा रत्नानन्दस्फुरत्सर^२ । लोहवाहिन्यभूत्नाम्ना जयश्रीदर्पणायिता ॥१६५॥
 कणपोऽस्य^३ मनोवेगो जयश्रीप्रणयावह । द्विपत्कुलकुलक्षमा^४ ध्रुवदलने योऽगनीयितः ॥१६६॥
 मौनन्दकारयमस्याभूदसिरत्न स्फुरद्द्युति । यस्मिन् करतलारूढे दोलारूढमिवाखिलम् ॥१६७॥
 प्रादुर्भूतमुख खे^५ विमोर्भूतमुग्धाङ्कितम् । स्फुरताऽऽर्जामुखे येन द्विपां मृत्युमुग्धायितम् ॥१६८॥
 चक्ररत्नमभूजिष्णोर्दिक्चक्राक्रमणक्षमम् । नास्मा सुदर्शन दीप्रा यद्दुर्दर्शमरातिभिः ॥१६९॥
 प्रचण्डश्चण्डवेगाख्यो दण्डोऽभूच्चक्रिणः पृथुः । स यस्य विनियोगोऽभूद् विलकण्टकशोधने ॥१७०॥
 नास्मा वज्रमयं दिव्य चर्मरत्नमभूद् विभोः । तद्वल यद्बलाधानान्निस्तीर्ण^६ जलविप्लवात् ॥१७१॥
 मणिचूडामणिर्नाम चिन्तारत्नमनुत्तरम् । जगच्चूडामणेरस्य चित्तं येनानुरञ्जितम् ॥१७२॥
 सा चिन्ताजननीत्यस्य काकिणी भास्वराऽभवत् । या रूपाद्रिगुहाध्वान्तविनिर्मेदकदीपिका ॥१७३॥
 चमूपातिरयोध्याख्यो नृरत्नमभवत् प्रभोः । समरेऽरिजयाद्यस्य रोदसी व्यानजे यशः ॥१७४॥
 बुद्धिसागरनामास्य पुरोधाः पुरुर्ध्वरभूत् । धर्म्या क्रिया यदायत्ता प्रतीकाराऽपि दैविके ॥१७५॥
 सुधीर्गृहपतिर्नास्मा कामवृष्टिरभीष्टद । व्ययोप^७ व्ययचिन्तायां नियुक्तो यो निर्धीशिन^८ ॥१७६॥

हो रहा था और जो सिंहके नाखूनोके साथ स्पर्धा करता था ऐसा उनका सिंहाटक नामका भाला था ॥१६४॥ जो अत्यन्त देदीप्यमान थी, जिसकी रत्नोसे जड़ी हुई मूठ बहुत ही चमक रही थी, और जो विजयलक्ष्मीके दर्पणके समान जान पड़ती थी ऐसी लोहवाहिनी नामकी उनकी छुरी थी ॥१६५॥ मनोवेग नामका एक कणप (अस्त्रविशेष) था जो कि विजयलक्ष्मीपर प्रेम करनेवाला था और शत्रुओके वगरूपी कुलाचलोको खण्डित करनेके लिए वज्रके समान था ॥१६६॥ भरतके सौनन्दक नामकी श्रेष्ठ तलवार थी जिसकी कान्ति अत्यन्त देदीप्यमान हो रही थी और जिसे हाथमे लेते ही यह समस्त जगत् झूलामे बैठे हुऐके समान काँप उठता था ॥१६७॥ उनके भूतोके मुखोसे चिह्नित भूतमुख नामका खेट (अस्त्रविशेष) था, जो कि युद्धके प्रारम्भमे चमकता हुआ शत्रुओके लिए मृत्युके मुखके समान जान पड़ता था ॥१६८॥ उन विजयी चक्रवर्तीके सुदर्शन नामका चक्र था, जो कि समस्त दिशाओपर आक्रमण करनेमे समर्थ था, देदीप्यमान था और जो शत्रुओके द्वारा देखा भी नहीं जा सकता था ॥१६९॥ जिसका नियोग गुफाके काँटे वगैरह शोधनेमे था ऐसा चण्डवेग नामका बहुत भारी प्रचण्ड (भयकर) दण्ड उस चक्रवर्तीके था ॥१७०॥ भरतेश्वर महाराजके वज्रमय चर्मरत्न था, वह चर्मरत्न, कि जिसके बलसे उनकी सेना जलके उपद्रवसे पार हुई थी — वची थी ॥१७१॥ उनके चूडामणि नामका वह उत्तम चिन्तामणि रत्न था जिसने कि जगत्के चूडामणि-स्वरूप महाराज भरतका चित्त अनुरक्त कर लिया था ॥१७२॥ चिन्ताजननी नामकी वह काकिणी थी जो कि अत्यन्त देदीप्यमान हो रही थी और जो विजयार्थ पर्वतकी गुफाओका अन्धकार दूर करनेके लिए मुख्य दीपिकाके समान थी ॥१७३॥ उन प्रभुके अयोध्य नामका मेनापति था जो कि मनुष्योमे रत्न था और युद्धमे शत्रुओको जीतनेमे जिसका यग आकाश और पृथिवीके बीच व्याप्त हो गया था ॥१७४॥ ममस्त धार्मिक क्रियाएँ जिसके अधीन थी और दैविक उपद्रव होनेपर उनका प्रतिकार करना भी जिसके आश्रित था ऐसा बुद्धिमान नामका महा-बुद्धिमान पुरोहित था ॥१७५॥ उनके कामवृष्टि नामका गृहपति रत्न था, जो कि अत्यन्त बुद्धिमान था, इच्छानुसार नामको देनेवाला था तथा जो चक्रवर्तीके छोटे-बड़े सभी नवर्चोकी

१ भूषिका । 'स्यान्तन्त्री चानिन्त्री च क्षत्रिया चानिन्त्री' इत्यभिधानात् । २ मृष्टि । 'मृष्ट मृष्टगादि-
 मृष्टि स्याद्' इत्यभिधानात् । ३ वज्रोत्पन्नम् ॥ ४ पर्वत । ५ निम्न-गमकम् । ६ शत्रु । ७ चक्रिणः ।

रत्नं रश्मिपतिरस्य धातुं विद्यापदातरी । नास्ति मद्रमुखोऽनकप्रासादघटन पटु ॥१८७॥
 शलोदग्नो महानस्य^२ चागहस्ताक्षरन्मद । मद्रो गिरिचर^३ शुभ्रो नास्ति विजयपवत ॥१८८॥
 पवनस्य जयन् वग हयोऽस्य पवनजय । विजयावगुहोत्सङ्ग हलया यो ब्यलह्वयत् ॥१८९॥
 प्रागुक्तघणन चास्य कीरस रुदनामकम् । स्वभावमधुर हृद्य रसायनमिषापरम् ॥१९०॥
 रक्षान्यतानि दिव्यानि यभूक्षुश्चक्रवर्तिन । दवताकृतश्चाणि यान्यलङ्कयानि विद्विषाम् ॥१९१॥
 आनन्दि-योऽग्निनिर्घोषा भयोऽस्य द्वादशामवन् । द्विपङ्चोजनमापूय स्वैर्ध्वानर्या प्रदध्वन् ॥१९२॥
 आसन् विजयघोषाण्या पटहा द्वादशापर । गृहककिमिरद्भावे सान्द श्रुतनि-स्वना ॥१९३॥
 गम्भारावत्तनामान शङ्का गम्भारनि-स्वना । चतुर्विंशतिरस्यासन् शुभा पुण्याग्निमववा ॥१९४॥
 कटका रत्ननिर्माणा विभोर्वीराङ्गदाह्वया । रजु प्रकोटमावेष्टय तडिद्वलयविभ्रमा ॥१९५॥
 पताकाकोटयोऽस्याष्टचत्वारिंशत्यमा मता । मरुत्येहोशि^४ तोम्रेह्नुर्दंशुकान्मृष्टताङ्गणा ॥१९६॥
 महाकल्याणक नाम दिव्याशनमभूद् विभो । वक्ष्याणाङ्गस्य^५ येनास्य तृसिपुष्टाधलाचित ॥१९७॥
 भक्ष्यामृतगर्भाद्या रुच्यास्वादा सुगन्धय । नान्य^६ जरयितुं^७ शक्ता यान् गरिष्ठरसोत्कटान् ॥१९८॥
 स्वाद्य^८ चामृतकल्याण हृद्यास्वाद सुलसकृतम् । रसायनरस दिव्य पानक चामृताह्वयम् ॥१९९॥

चिंताम नियुक्त था ॥१७६॥ मकान बनानेकी विद्याम जिसकी बुद्धि प्रवेश पाये हुई है और जो अनेक राजभवनोके बनानेमें चतुर है ऐसा भद्रमुख नामका उनका शिलावटरत्न (इजीनियर) था ॥१७७॥ जो पवतके समान ऊँचा था, बहुत बड़ा था, पूज्य था, जिससे मद झर रहा था, भद्र जातिका था और जिसका गजन उत्तम था ऐसा विजयपवत नामका सफेद हाथी था ॥१७८॥ जिसने विजयाधपवतकी गुफाके मध्यभागको लीलामात्रम उल्लघन कर दिया था ऐसा वायुके वेगको जीतनेवाला पवनजय नामका घोड़ा था ॥१७९॥ और जिसका वणन पहल कर चुके हैं, जिसका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो स्वभावसे ही मधुर है और जो किसी अन्य रसायनके समान हृदयको आनन्द देनेवाला है ऐसा सुभद्रा नामका स्त्रीरत्न था ॥१८०॥ इस प्रकार चक्रवर्तीके ये दिय रत्न थे जिनकी देव लोग रक्षा किया करते थे, और जिन्हे शत्रु कभी उल्लघन नहीं कर सकते थे ॥१८१॥ उस चक्रवर्तीके समुद्रके समान गम्भीर आवाजवाली आनन्दिनी नामकी वारह मेरियाँ थी जो अपनी आवाजको बारह योजन दूर तक फैलाकर बजती थी ॥१८२॥ इनके सिवाय बारह नगाडे और थे जिनकी आवाज धरके मयूर ऊँची गरदन कर बड़े आनन्दके साथ सुना करते थे ॥१८३॥ जिनकी आवाज अतिशय गम्भीर है जो शुभ ह और पुण्यरूपी समुद्रसे उत्पन्न हुए हैं ऐसे गम्भीरावत नामके चौबीस शस्त्र थे ॥१८४॥ उस प्रभुके रत्नोके बने हुए वीरागद नामके कडे थे जो कि हाथकी कलाईको घेरकर सुशोभित हो रहे थे और जिनकी कान्ति बिजलीके बड़ोके समान थी ॥१८५॥ वायुके शकोरेसे उडते हुए कपडोंसे जिन्होंने आकाशरूपी आँगनको झाड़कर साफ कर दिया है ऐसी उसकी अडतालीस करोड़ पताकाएँ थी ॥१८६॥ महाराज भरतके महाकल्याण नाम का दिव्य भोजन था जिससे कि कल्याणमय शरीरको धारण करनेवाले उनके बलसहित तृप्ति और पुष्टि दोनों ही होती थी ॥१८७॥ जो अत्यन्त गरिष्ठ रससे उत्कट है जिन्हें कोई अन्य पचा नहीं सकता तथा जो रुचिकर स्वादिष्ट और सुगन्धित है ऐसे उसके अमृतगम नामके भक्ष्य अर्थात् खाने योग्य मोदक आदि पदार्थ थे ॥१८८॥ जिनका स्वाद हृदयको अच्छा

१ वास्तुविद्यास्थान स्वीकृतबद्धि । २ पूज्य । ३ गिरिवर ल प० । ४ चलननोच्चलत् । ५ आहारण । ६ पुण्या । ७ जीर्णोक्तुम् । ८ अतिगुह । ९ क्रमकदाडिमादि । ओदनाद्यशनं स्वाद्य ताम्बूलादि जलान्कम् । पेय स्वाद्यमपपाद्य त्याग्यायेतानि शक्तिके ।

पुण्यकल्पतरोरासन् फलान्येतानि चक्रिणः । यान्यनन्योपभोग्यानि भोगाङ्गान्यतुलानि वै ॥१६०॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृग्रूपमंपदनीदृशी । पुण्याद् विना कुतस्तादृगभेद्यं गात्रबन्धनम् ॥१६१॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृग्निधिरत्नर्द्धिरुज्जिता । पुण्याद् विना कुतस्तादृगिभाश्चादिपरिच्छदः ॥१६२॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृगन्तःपुरमहोदयः । पुण्याद् विना कुतस्तादृग् दशाङ्गो भोगसम्भवः ॥१६३॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृगाज्ञाद्वीपाद्विलङ्घिनी । पुण्याद् विना कुतस्तादृगजयश्रीजित्वरी दिशाम् ॥१६४॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृक्प्रतापः प्रणतामरः । पुण्याद् विना कुतस्तादृगुद्योगो लङ्घितार्णवः ॥१६५॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृक् प्राभवः त्रिजगज्जयि । पुण्याद् विना कुतस्तादृक् नगराजजयोत्सवः ॥१६६॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृक् सत्कारः स्तत्कृतोऽधिकः । पुण्याद् विना कुतस्तादृक् सरिद्व्यभिपेचनम् ॥१६७॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृक् सचराचलनिर्जयः । पुण्याद् विना कुतस्तादृगललाभोऽन्यदुर्लभः ॥१६८॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृग्यतिर्मरतेऽस्थिले । पुण्याद् विना कुतस्तादृक् कीर्तिर्दिक्कृतलङ्घिनी ॥१६९॥
 ततः पुण्योद्योदभूतां मत्वा चक्रभृत श्रियम् । चिनुध्वं भो बुधाः पुण्यं यत्पुण्यं सुखसपदाम् ॥२००॥

लगनेवाला है और मसाले वगैरहसे जिनका सस्कार किया गया है ऐसे अमृतकल्प नामके उनके स्वाद्य पदार्थ थे तथा रसायनके समान रसीला अमृत नामका दिव्य पानक अर्थात् पीने योग्य पदार्थ था ॥१८९॥ चक्रवर्तीके ये सब भोगोपभोगके साधन उसके पुण्यरूपी कल्पवृक्षके फल थे, उन्हे अन्य कोई नहीं भोग सकता था और वे ससारमे अपनी बराबरी नहीं रखते थे ॥१९०॥

पुण्यके विना चक्रवर्तीके समान अनुपम रूपसम्पदा कैसे मिल सकती है ? पुण्यके विना वैसा अभेद्य शरीरका बन्धन कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना अतिशय उत्कृष्ट निधि और रत्नोकी ऋद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है ? पुण्यके विना वैसे हाथी, घोड़े आदिका परिवार कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना वैसे अन्तःपुरका वैभव कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना दस प्रकारके भोगोपभोग कहाँ मिल सकते हैं ? पुण्यके विना द्वीप और समुद्रोको उल्लघन करनेवाली वंसी आज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है ? पुण्यके विना दिशाओको जीतनेवाली वंसी विजयलक्ष्मी कहाँ मिल सकती है ? पुण्यके विना देवताओको भी नम्र करनेवाला वंसा प्रताप कहाँ प्राप्त हो सकता है ? पुण्यके विना समुद्रको उल्लघन करनेवाला वंसा उद्योग कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना तीनो लोकोको जीतनेवाला वंसा प्रभाव कहाँ हो सकता है ? पुण्यके विना वंसा हिमवान् पर्वतको विजय करनेका उत्सव कैसे मिल सकता है ? पुण्यके विना हिमवान् देवके द्वारा किया हुआ वंसा अधिक मत्कार कहाँ मिल सकता है ? विना पुण्यके नदियोंकी अधिष्ठात्री देवियोंके द्वारा किया हुआ वंसा अभिषेक कहाँ हो सकता है ? पुण्यके विना विजयार्थ पर्वतको जीतना कैसे हो सकता है ? पुण्यके विना अन्य मनुष्योंको दुर्लभ वंसे रत्नोका लाभ कहाँ हो सकता है ? पुण्यके विना समस्त भग्नक्षेत्रमे वंसा मुन्दर विस्तार कैसे हो सकता है ? और पुण्यके विना दिनाओके किनारेको उल्लघन करनेवाली वंसी कौनि कैसे हो सकती है ? इसलिए है पण्डित जन, चक्रवर्तीकी विभूतिको पुण्यके उद्यमसे उत्पन्न हुई मानकर उस पुण्यका मन्त्र करो जो कि समस्त भुव और मध्यराओको दुकानके समान

रत्न रथपतिरप्यस्य वास्तुविद्यापदात्तथा । नास्मा भद्रमुखोऽनकप्रासादघटन पटु ॥१७७॥
 शैलोदग्रो महानस्य^१ यागहस्ताक्षरन्मद । भद्रो गिरिचर^२ शुभो नास्मा विजयपवत ॥१७८॥
 पवनस्य जयन् वेग हयोऽस्य पवनजय । विजयाद्गुहोत्सङ्ग हृत्पया यो व्यलङ्घयत् ॥१७९॥
 प्रागुत्तमवर्णन चास्य स्मारक रुदनामकम् । स्वभावमधुर हृद्य रसायनमिवापरम् ॥१८०॥
 रत्नान्येतानि दिव्यानि धमूबुध्रकवतिन । दयताकृतरभाणि यान्यलङ्घयानि विद्विषाम् ॥१८१॥
 आनन्दि^३योऽब्धिनिर्घाषा भयोऽस्य द्वादशभवन । द्विपङ्क्तोजनमाप्य स्वैर्ध्वनिर्घा प्रदध्वनु ॥१८२॥
 आसन् विजयघोषाख्या पटहर द्वादशपरे । गृहककिमिरुद्धावै सानन्द ध्रुतनिःस्वना ॥१८३॥
 गम्भीरावत्तनामान शङ्खा गम्भीरनिःस्वना । चतुर्विंशतिरस्यासन् शुभा पुण्याब्धिसमथा ॥१८४॥
 कटका रत्ननिर्माणा विभोर्धाराहृदाह्वया । रत्न प्रकोष्ठमावष्टय तटिद्वलयविभ्रमा ॥१८५॥
 पताकाकोन्थोऽस्याष्टचत्वारिंशत्प्रभा मता । मरुत्प्रेक्षोर्लि^४तोऽप्रेक्षुर्दशुकान्मृष्टसाङ्गणा ॥१८६॥
 महाकल्याणक नाम दिव्याशनमभूद् विभो । कथयाणाङ्गस्य^५ येनास्य तृत्तिपुष्टीबलान्वित ॥१८७॥
 भक्ष्याश्चाभृतगर्भाद्या रुच्यास्वादा सुगन्धय । नान्य^६ जरयितुं शक्ता यान् गरिष्ठरसोत्कटान् ॥१८८॥
 स्वाद्य^७ चाभृतकल्याण्य हृद्यास्वाद सुसंस्कृतम् । रसायनरस दिव्य पानक चाभृताह्वयम् ॥१८९॥

चित्ताम नियुक्त था । ॥१७६॥ मकान बनानेकी विद्याम जिसकी वृद्धि प्रवेश पाये हुई है और जो अनेक राजभवनोके बनानेमें चतुर है ऐसा भद्रमुख नामका उनका शिलावटरत्न (इजीनियर) था ॥१७७॥ जो पवतके समान ऊँचा था, बहुत बड़ा था, पूज्य था, जिससे मद झर रहा था भद्र जातिका था और जिसका गजन उत्तम था ऐसा विजयपवत नामका सपेद हाथी था ॥१७८॥ जिसने विजयाधपवतकी गुफाके मध्यभागको लीलामात्रमें उल्लङ्घन कर दिया था ऐसा वायुके वेगको जीतनेवाला पवनजय नामका घोड़ा था ॥१७९॥ और जिसका वणन पहल कर चुके हैं जिसका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो स्वभावसे ही मधुर है और जो किसी अन्य रसायनके समान हृदयको आनन्द देनेवाला है ऐसा सुभद्रा नामका स्त्रीरत्न था ॥१८०॥ इस प्रकार चक्रवर्तिके ये दिव्य रत्न थे जिनकी देव लोग रक्षा किया करते थे, और जिन्हें शत्रु कभी उल्लङ्घन नहीं कर सकते थे ॥१८१॥ उस चक्रवर्तिके समुद्रके समान गम्भीर आवाजवाली आनन्दिनी नामकी बारह भेरियाँ थी जो अपनी आवाजको बारह योजन दूर तक फैलाकर बजती थी ॥१८२॥ इनके सिवाय बारह नगाडे और थे जिनकी आवाज धरके मयूर ऊँची गरदन कर बड़े आनन्दके साथ सुना करते थे ॥१८३॥ जिनकी आवाज अतिशय गम्भीर है, जो शुभ ह और पुण्यरूपी समुद्रसे उत्पन्न हुए है ऐसे गम्भीरावत नामके चौबीस शख थे ॥१८४॥ उस प्रभुके रत्नोके बने हुए वीरागद नामके कडे थे जो कि हाथकी कलाईको घेरकर सुशोभित हो रहे थे और जिनकी कान्ति बिजलीके बडोक समान थी ॥१८५॥ वायुके झँकोरेसे उडत हुए कपडोसे जिन्होंने आकाशरूपी आँगनको झाडकर साफ कर दिया है ऐसी उसकी अडतालीस करोड पताकाएँ थी ॥१८६॥ महाराज भरतके महाकल्याण नाम का दिव्य भोजन था जिससे कि कल्याणमय शरीरको धारण करनेवाल उनके बलसहित तृप्ति और पुष्टि दोनों ही होती थी ॥१८७॥ जो अत्यन्त गरिष्ठ रससे उत्कट ह, जिन्हें कोई अय पचा नहीं सकता तथा जो रुचिकर, स्वादिष्ट और सुगन्धित है ऐसे उसके अमृतगम नामके भक्ष्य अर्थात् खाने योग्य मोदक आदि पदार्थ थे ॥१८८॥ जिनका स्वाद हृदयको अच्छा

१ वास्तुविद्यास्थान स्वीकृतवृद्धि । २ पूज्य । ३ गिरिचर अ० प० । ४ चलनमोच्चलत । ५ आहारण । ६ पुष्टपा । ७ जीर्णीकृतम् । ८ अतिगुरु । ९ क्रमुकदाडिमादि । ओदनाद्यगर्न स्वाद्य ताम्बुलादि जलान्कितम् । येय स्वाद्यमभूपाद्य रसायनान्यतानि शक्तिनम् ।

पुण्यकृततरोरासन् फलान्येतानि चक्रिणः । यान्यनन्योपभोग्यानि भोगाङ्गान्यतुलानि वै ॥१६०॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृग्रूपमपदनीदृगी । पुण्याद् विना कुतस्तादृगभेद्यं गात्रवन्धनम् ॥१६१॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृङ्निधिरलर्द्धिरुज्जिता । पुण्याद् विना कुतस्तादृगिभाश्चादिपरिच्छदः ॥१६२॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृगन्तःपुरमहोदयः । पुण्याद् विना कुतस्तादृग् दशाङ्गो भोगसम्भवः ॥१६३॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृगाज्ञाद्वीपाध्विलङ्घिनी । पुण्याद् विना कुतस्तादृगजयश्रीर्जित्वरी दिशाम् ॥१६४॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृक्प्रतापः प्रणतामरः । पुण्याद् विना कुतस्तादृगुद्योगो लङ्घितार्णवः ॥१६५॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृक् प्राभवः त्रिजगज्जयि । पुण्याद् विना कुतस्तादृक् नगराजजयोत्सवः ॥१६६॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृक् सत्कारस्तत्कृतोऽधिकः । पुण्याद् विना कुतस्तादृक् सरिद्व्यभिषेचनम् ॥१६७॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृक् खचराचलनिर्जयः । पुण्याद् विना कुतस्तादृगललाभोऽन्यदुर्लभः ॥१६८॥
 पुण्याद् विना कुतस्तादृगायतिर्मरतेऽखिले । पुण्याद् विना कुतस्तादृक् कीर्तिर्दिकृतलङ्घिनी ॥१६९॥
 ततः पुण्योदयोद्भूतां मत्वा चक्रभृतः श्रियम् । चिनुध्व भो ब्रुधाः पुण्यं यत्पुण्यं सुखसंपदाम् ॥२००॥

लगनेवाला है और मसाले वगैरहसे जिनका सस्कार किया गया है ऐसे अमृतकल्प नामके उनके स्वाद्य पदार्थ थे तथा रसायनके समान रसीला अमृत नामका दिव्य पानक अर्थात् पीने योग्य पदार्थ था ॥१८९॥ चक्रवर्तीके ये सब भोगोपभोगके साधन उसके पुण्यरूपी कल्पवृक्षके फल थे, उन्हें अन्य कोई नहीं भोग सकता था और वे ससारमे अपनी बराबरी नहीं रखते थे ॥१९०॥

पुण्यके बिना चक्रवर्तीके समान अनुपम रूपसम्पदा कैसे मिल सकती है ? पुण्यके बिना वैसा अभेद्य शरीरका बन्धन कैसे मिल सकता है ? पुण्यके बिना अतिशय उत्कृष्ट निधि और रत्नोकी ऋद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है ? पुण्यके बिना वैसे हाथी, घोड़े आदिका परिवार कैसे मिल सकता है ? पुण्यके बिना वैसे अन्तःपुरका वैभव कैसे मिल सकता है ? पुण्यके बिना दस प्रकारके भोगोपभोग कहाँ मिल सकते हैं ? पुण्यके बिना द्वीप और समुद्रोको उल्लघन करनेवाली वैसी आज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है ? पुण्यके बिना दिशाओको जीतनेवाली वैसी विजयलक्ष्मी कहाँ मिल सकती है ? पुण्यके बिना देवताओको भी नम्र करनेवाला वैसा प्रताप कहाँ प्राप्त हो सकता है ? पुण्यके बिना समुद्रको उल्लघन करनेवाला वैसा उद्योग कैसे मिल सकता है ? पुण्यके बिना तीनों लोकोको जीतनेवाला वैसा प्रभाव कहाँ हो सकता है ? पुण्यके बिना वैसा हिमवान् पर्वतको विजय करनेका उत्सव कैसे मिल सकता है ? पुण्यके बिना हिमवान् देवके द्वारा किया हुआ वैसा अधिक सत्कार कहाँ मिल सकता है ? बिना पुण्यके नदियोंकी अधिष्ठात्री देवियोंके द्वारा किया हुआ वैसा अभिषेक कहाँ हो सकता है ? पुण्यके बिना विजयार्थ पर्वतको जीतना कैसे हो सकता है ? पुण्यके बिना अन्य मनुष्योंको दुर्लभ वैसे रत्नोका लाभ कहाँ हो सकता है ? पुण्यके बिना समस्त भरतक्षेत्रमे वैसा सुन्दर विस्तार कैसे हो सकता है ? और पुण्यके बिना दिशाओके किनारेको उल्लघन करनेवाली वैसी कीर्ति कैसे हो सकती है ? इसलिए हे पण्डित जन, चक्रवर्तीकी विभूतिको पुण्यके उदयसे उत्पन्न हुई मानकर उन पुण्यका नम्र करो जो कि समस्त सुख और सम्पदाओकी दुकानके समान

१ हिमवन्निधि । २ हिमवन्धनमुद्वन । ३ गङ्गामिन्दुदेवी । ४ वनागम प्रभावो वा । ५ लम्बिनी इ० ।
 ६ तत्र पारसः ।

शार्दूलविक्रीडितम्

इत्यानिष्कृतसपदो विजयिनस्तस्याखिलइमाभूता
 स्कीतामप्रतिशासनां प्रथयत् पट्खण्डराज्यधियम् ।
 कालोऽभरपतरोऽप्यगात् क्षण इव प्राक्पुण्यकर्मदया
 दुर्भूतैः प्रमदावहै पटुजैर्मोर्गैरतिस्वाद्भुमि ॥२०१॥
 भानारब्धनिधानदशविलसत्सपत्तिगुर्वामिमां
 साम्राज्यधियमकमोगनियता^२ कृत्वाऽखिला पालयन् ।
 योऽभूच्चैव किलाकुल कुलवधूमकामिषाङ्गस्थिता
 सोऽथ चक्रधरोऽभुनक्तु^३ सुवममूमकातपत्रो धिरम् ॥२०२॥
 यन्नाम्ना भरतावनित्वमगमत् पट्खण्डभूपा^४ मही
 यना^५ सेतुहिमाद्रिरक्षितमिदं क्षेत्रं कृतारिक्षयम् ।
 यस्याविर्निधिरत्नसपदुषिता लक्ष्मीर सायिनी
 स श्रीमान् भरतेश्वरो निधिभुजामग्रेसराऽभूत् प्रभु ॥२०३॥
 यस्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनस्तोता स्वयं कस्यचिद्
 ध्वयो योगिजनस्य यश्च न तरो ध्याता स्वयं कस्यचित् ।
 यो न तूतृनपि^६ नेतुमुन्नतिमलं^७ नन्तव्यपक्षं^८ स्थितं
 स श्रीमान् जयताजगत्त्रयगुरुर्दिव पुरु पावन ॥२०४॥

है ॥१९१-२००॥ इस प्रकार जिसने सम्पदाएँ प्रकट की हैं, जिसने समस्त राजाओंको जीत लिया है, और जो दूसरेके शासनसे रहित अपने छह खण्डकी विस्तृत राज्यलक्ष्मीको निरन्तर फैलाता रहता है ऐसे उस चक्रवर्ती भरतका बड़ा भारी समय पूर्व पुण्यकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए सब तरहका आनन्द देनेवाला और अत्यन्त स्वादिष्ट छहों ऋतुओंके भोगोंके द्वारा क्षण भरके समान व्यतीत हो गया था ॥२०१॥ अनेको रत्नो निधियों और देशोंसे सुशामित हुई सम्पत्तिके द्वारा जो भारी गौरवको प्राप्त हो रही है ऐसी इस समस्त साम्राज्यलक्ष्मीको एक अपने ही उपभोग करनेके योग्य बनाकर उसका पालन करता हुआ जो चक्रवर्ती गोदम वठी हुई कुलवधूकी रक्षा करते हुएके समान कभी व्याकुल नहीं हुआ वह भरत एक छत्रवाली इस पृथिवीका चिरकाल तक पालन करता रहा था ॥२०२॥ छह खण्डोंसे विभूषित पृथिवी जिसके नामसे भरतभूमि नामको प्राप्त हुई जिसने दक्षिण समुद्रसे लेकर हिमवान् पर्वत तकके इस क्षेत्रम शत्रुओंका क्षय कर उसकी रक्षा की, तथा प्रकट हुई निधि और रत्न आदि सम्पदाओं से योग्य लक्ष्मी जिसके वक्ष स्थलपर शयन करती थी वह प्रभु - श्रीमान् भरतेश्वर निधियोंके स्वामी अर्थात् चक्रवर्तियोम प्रथम और मुख्य चक्रवर्ती हुआ था ॥२०३॥ जो तीनों जगत्के जीवोंके द्वारा स्तुति करनेके योग्य ह परन्तु जो स्वयं किसीकी स्तुति नहीं करते बड़े-बड़े योगी लोग जिनका ध्यान करते ह परन्तु जो किसीका ध्यान नहीं करते, जो नमस्कार करनेवालोंको भी उन्नत स्थानपर ल जानेके लिए समय ह परन्तु स्वयं नमस्कार करने योग्य पक्षमें स्थित हैं अथान् किसीको नमस्कार नहीं करते वे तीनों जगत्क गुरु अत्यन्त पवित्र श्रीमान् भगवान्

१ निधि । २ आत्मन एकस्यैव भोगनियताम् । ३ पालयति स्म । ४ पटखण्डालकारा । ५ दक्षिणसमुद्रात् प्रारभ्य हिमवद्गिरिपर्यन्तम् । ६ नमनशीलान् । ७ समय । ८ नमनयाग्यपक्षे । स्वयं कस्यापि नन्ता नत्स्य ।

यं नत्वा पुनरानमन्ति न परं स्तुत्वा च यं नापरं

भव्याः मस्तुवते श्रयन्ति न परं यं संश्रिताः श्रेयसे ।

यं मत्कृत्य कृतादरं कृतधियः सत्कुर्वते नापरं

स श्रीमान् वृषभो जिनो भवमयाज्ञम्रायतां तीर्थकृत् ॥२०५॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे

भरतेश्वराभ्युदयवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमं पर्व ॥३७॥



वृषभदेव सदा जयवन्त रहे ॥२०४॥ भव्य लोग जिन्हे नमस्कार कर फिर किसी अन्यको नमस्कार नहीं करते, जिनकी स्तुति कर फिर किसी अन्यकी स्तुति नहीं करते, जिनका आश्रय लेकर कल्याणके लिए फिर किसी अन्यका आश्रय नहीं लेते, और बुद्धिमान् लोग जिनका सबने आदर किया है ऐसे जिनका सत्कार कर फिर किसी अन्यका सत्कार नहीं करते वे श्रीमान् वृषभ जिनेन्द्र तीर्थकर हम सबकी संसारके भयसे रक्षा करे ॥२०५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिषष्टिलक्षण महापुराणसंग्रहके भाषानुवादमे भरतेश्वरके वैभवका वर्णन करनेवाला यह सैतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

अष्टत्रिंशत्तम पर्व

१ यथारिषिषागगामिन्य सूक्तयोऽहताम् । धृताधृतमसा दाप्राथारिष्योऽक्षुमतामिव ॥१॥
 त जीयात् वृषभो मोहयिषसुसमिद जवात् । पन्विषेव^२ यद्विद्या सद्य समुदतिष्ठत् ॥२॥
 त न वा परम ज्योतिवृषभ वीरम^३ वत् । द्विजन्मनामधोत्पत्तिं वक्ष्ये श्रेणिक मो ऋणु ॥३॥
 भरतो भारत वर्ष^४ निर्जित्य सह पार्थिवैः । पृथ्या वपसहस्रेस्तु दिशां निवधृत जवात् ॥४॥
 कृतकृत्यस्य तस्यान्तश्चि^५ तेयमुदपद्यत । परार्थे सपदास्माकी सीपयोगा कथं भवेत् ॥५॥
 महामहमह कृत्वा जिनेन्द्रस्य महोदयम् । प्रीणयामि जगद्विश्वं विष्वग्^६ विश्राणयन् धनम् ॥६॥
 नानगारा वसू^७ यस्मत् प्रतिगृह्णति नि स्पृहा । सागार कतम^८ पूज्यो धनधान्यसमृद्धिभिः ॥७॥
 यऽणुवतधरा धारा धौरेया^९ गृहभधिनाम् । तर्पणीया हि तेऽस्माभिराभ्यर्चितैवसुयाहने ॥८॥
 इति निश्चित्य राजेन्द्र सत्कृतमुचितानिमान् । परीक्षिषुपुराह्वास्त तदा सर्वान् महीभुज ॥९॥
 सदाचारैर्निर्जैरिष्टैरनुजीविमि रन्विता । अथास्मदुत्सवे धूयमायातति^{१०} पृथक् पृथक् ॥१०॥
 हरितैरक्षुरैः पुष्पैः फलैश्चाकीर्णमङ्गणम् । सम्राट्चीकरतेषां परीक्षायै स्ववेदमनि ॥११॥
 तेष्वग्रता विना सगात्^{११} प्राविशन् नृपमन्दिरम् । तानेकत समुत्साय शोषानाह्वययत् प्रभु ॥१२॥

जो समस्त भाषाओंमें परिणत होनेवाली है, जिसने अज्ञानरूपी गाढ़ अधिकारको नष्ट कर दिया है और जो सूर्यकी किरणोंके समान देदीप्यमान है वह अरहत भगवान्की सुन्दर वाणी सदा जयवन्त हो ॥१॥ गारुडी विद्याके समान जिनकी विद्याने मोहुरूपी विपसे सोये हुए इस समस्त संसारको बहुत शीघ्र जगा दिया वे भगवान् वृषभदेव सदा जयवन्त रहें ॥२॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक, मैं उन परमज्योति-स्वरूप भगवान् वृषभदेव तथा भगवान् महावीर स्वामीको नमस्कार कर अब यहाँसे द्विजोंकी उत्पत्ति कहता हूँ सो सुनो ॥३॥ भरत चक्रवर्ती अनेक राजाओंके साथ भारतवर्षको जीतकर साठ हजार वर्षमे दिग्विजयसे वापस लौटे ॥४॥ जब वे सब काय कर चुके तब उनके चित्तमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि दूसरे के उपकारमे मेरी इस सम्पदाका उपयोग किस प्रकार हो सकता है ? ॥५॥ मैं श्री जिनेन्द्रदेवका बड़े ऐश्वर्यके साथ महामह नामका यज्ञ कर धन वितरण करता हुआ समस्त संसारको सन्तुष्ट करूँ ? ॥६॥ सदा निस्पृह रहनेवाले मुनि तो हम लोगोंसे धन लेते नहीं है परन्तु ऐसा गृहस्थ भी कौन है जो धन धान्य आदि सम्पत्तिके द्वारा पूजा करनेके योग्य है ॥७॥ जो अणु व्रतको धारण करनेवाले हैं, धीर वीर हैं और गृहस्थोंमे मुख्य है ऐसे पुरुष ही हम लोगोंके द्वारा इच्छित धन तथा सवारी आदिक वाहनोके द्वारा तपण करनेके योग्य है ॥८॥ इस प्रकार निश्चय कर सत्कार करनेके योग्य व्यक्तियोंकी परीक्षा करनेकी इच्छासे राजराजेश्वर भरतने उस समय समस्त राजाओंको बुलाया ॥९॥ और सबके पास खबर भेज दी कि आप लोग अपने-अपने सदाचारी इष्ट मित्र तथा नौकर-चाकर आदिके साथ आज हमारे उत्सवमे अलग-अलग आवें ॥१०॥ इधर चक्रवर्तीने उन सबकी परीक्षा करनेके लिए अपने घरके आंगनमे हरे-हरे अक्षुर, पुष्प और फल खूब भरवा दिये ॥११॥ उन लोगोंमें जो अग्रती थे वे

ते तु स्वव्रतसिद्धयर्थमीहमाना^१ महान्वयाः । नैपुः^२ प्रवेशनं तावद् यावदाद्राङ्कुराः पथि ॥१३॥
 सवान्यैर्हरितैः कीर्णमनाक्रम्य नृपाङ्गणम् । निश्चक्रमु^३ कृपालुत्वात् केचित् सावद्यमीरवः ॥१४॥
 कृतानुबन्धना^४ भूयश्चक्रिणः किल तेऽन्तिकम् । प्रासुकेन^५ पथाऽन्येन भेजुः क्रान्त्वा नृपाङ्गणम् ॥१५॥
 प्राक् केन हेतुना यूय नायाताः पुनरागताः । केन ब्रूतेति पृष्टास्ते प्रत्यभाषन्त चक्रिणम् ॥१६॥
 प्रवालपत्रपुष्पादेः पर्वणि व्यपरोपणम्^६ । न कल्पतेऽद्य तज्जानां^७ जन्तूनां नो^८ऽनमिदुहाम् ॥१७॥
 सन्त्येवानन्तगो जीवा हरितेऽप्यङ्कुरादिषु । निगोता इति सार्वज्ञ^९ देवास्माभिः श्रुतं वचः ॥१८॥
 तस्मान्नास्माभिराक्रान्तमद्यत्वे^{१०} त्वद्गृहाङ्गणम् । कृतोपहारमाद्राद्रि^{११} फलपुष्पाङ्कुरादिभिः ॥१९॥
 इति तद्वचनात् सर्वान् सोऽभिनन्द्य दृढव्रतान् । पूजयामास लक्ष्मीमान्^{१२} दानमानादिसत्कृतैः ॥२०॥
 तेषां कृतानि चिह्नानि सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः ।^{१३} उपात्तैर्ब्रह्मसूत्राह्वैरेकाद्येकादशान्तकैः ॥२१॥
 गुणभूमिकृताद् भेदात्^{१४} क्लृप्तयज्ञोपवीतिनाम्^{१५} । सत्कारं क्रियते स्मैवामव्रताश्च बहिः कृताः ॥२२॥
 अथ ते कृतसन्मानाः चक्रिणा व्रतधारिणः । भजन्ति स्म परं दार्ढ्यं^{१६} लोकश्चैनानपूजयत् ॥२३॥
 इज्यां वार्तां च दत्तिं च स्वाध्यायं सयमं तपः । श्रुतोपासकसूत्रत्वात् स तेभ्यः समुपादिशत् ॥२४॥

बिना किसी सोच-विचारके राजमन्दिरमें घुस आये । राजा भरतने उन्हें एक ओर हटाकर वाकी बचे हुए लोगोको बुलाया ॥१२॥ परन्तु बड़े-बड़े कुलमें उत्पन्न हुए और अपने व्रतकी सिद्धिके लिए चेष्टा करनेवाले उन लोगोंने जबतक मार्गमें हरे अकूरे हैं तबतक उसमें प्रवेश करनेकी इच्छा नहीं की ॥१३॥ पापसे डरनेवाले कितने ही लोग दयालु होनेके कारण हरे धान्योसे भरे हुए राजाके आँगनको उल्लंघन किये बिना ही वापस लौटने लगे ॥१४॥ परन्तु जब चक्रवर्तीने उनसे बहुत ही आग्रह किया तब वे दूसरे प्रासुक मार्गसे राजाके आँगनको लाँघकर उनके पास पहुँचे ॥१५॥ आप लोग पहले किस कारणसे नहीं आये थे, और अब किस कारणसे आये हैं ? ऐसा जब चक्रवर्तीने उनसे पूछा तब उन्होंने नीचे लिखे अनुसार उत्तर दिया ॥१६॥ आज पर्वके दिन कोपल, पत्ते तथा पुष्प आदिका विघात नहीं किया जाता और न जो अपना कुछ बिगाड़ करते हैं ऐसे उन कोपल आदिमें उत्पन्न होनेवाले जीवोका भी विनाश किया जाता है ॥१७॥ हे देव, हरे अकुर आदिमें अनन्त निगोदिया जीव रहते हैं, ऐसे सर्वज्ञ-देवके वचन हमलोगोंने सुने हैं ॥१८॥ इसलिए जिसमें गीले-गीले फल, पुष्प और अकुर आदिमें शोभा की गयी है ऐसा आपके घरका आँगन आज हम लोगोंने नहीं खूँदा है ॥१९॥ इस प्रकार उनके वचनोंमें प्रभावित हुए सम्पत्तिशाली भरतने व्रतोमें दृढ़ रहनेवाले उन सबकी प्रशंसा कर उन्हें दान मान आदि मत्कारमें सम्मानित किया ॥२०॥ पद्म नामकी निधिमें प्राप्त हुए एकमें लेकर ग्यारह तककी मर्यावाले ब्रह्मसूत्र नामके सूत्रमें (व्रतसूत्रमें) उन सबके चिह्न किये ॥२१॥ प्रतिमाओंके द्वाग किये हुए भेदके अनुसार जिन्होंने यज्ञोपवीत धारण किये हैं ऐसे इन सबका भरतने सत्कार किया तथा जो व्रती नहीं थे उन्हें वैसे ही जाने दिया ॥२२॥ अयानन्तर चक्रवर्तीने जिनका सम्मान किया है ऐसे व्रत धारण करनेवाले वे लोग अपने-अपने व्रतोंमें जीन भी दृढ़ताको प्राप्त हो गये तथा अन्य लोग भी उनकी पूजा आदि करने लगे ॥२३॥ भरतने उन्हें उपासकाध्ययनागने इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, सयम और

कुलधर्माऽयमित्यपामहत्पूजाविचरणम् । तदा भरतराजर्षिरवबोधचक्रनुक्रमात् ॥२५॥
 प्रोक्ता पूजाहतामिज्या सा चतुर्धा सदाचनम् । चतुर्मुखमहः कल्पद्रुमाश्चाष्टाह्निकोऽपि च ॥२६॥
 तत्र नित्यमहो नाम शशजिनगृह प्रति । स्वगृहाश्रायमानाऽर्चा गन्धपुष्पाक्षतादिका ॥२७॥
 चैत्यचैत्यालयादानां भक्त्या निर्माणं च यत् । शासनीकृत्य दानं च ग्रामादानां सदाचनम् ॥२८॥
 या च पूजा मुनीन्द्राणां नित्यदानानुपक्रिणा । स च नित्यमहो नेयो यथा शक्त्युपकुरिषत ॥२९॥
 महासुकुटुबद्धैश्च क्रियमाणा महामह । चतुर्मुख स विज्ञेय सवतोभद्र इत्यपि ॥३०॥
 दत्त्वा किमिच्छक दानं सम्राट्मिन् प्रवर्त्यत । कल्पद्रुममह सोऽयं जगदाशाप्रपूरण ॥३१॥
 आष्टाह्निको मह सावननिको रूढ एव स । महावैद्वध्वजोऽन्यस्तु सुरगण कृतो मह ॥३२॥
 वल्लिस्तपनमित्ययस्त्रिसन्ध्यासवया समम् । उन्नेत्येव विकल्पपु जेमम यच्च सादृशम् ॥३३॥
 पञ्चविधविधानेन या महज्या जिनेशिताम् । विधिज्ञास्तामुसन्तीज्या वृत्तिं प्राथमकल्पिकीम् ॥३४॥
 वाता विशुद्धयुक्त्या स्यात् कृष्यादीनामनुष्ठितिः । चतुर्धा वर्णिता दत्तिदयापात्रसमावयै ॥३५॥
 सानुरूपमनुग्राह्ये प्राणिवृद्धेऽमयप्रदा । विशुद्धयनुगता सेय दयादत्तिमता बुधै ॥३६॥
 महातपोधनाभार्चाप्रतिग्रहपुर सरम् । प्रदानमशनादानां पात्रदानं तदित्यत ॥३७॥

तपका उपदेश दिया ॥२४॥ यह इनका कुलधर्म है ऐसा विचार कर राजर्षि भरतने उस समय अनुक्रमसे अहत्पूजा आदिका वर्णन किया ॥२५॥ वे कहने लगे कि अहन्त भगवान्की पूजा नित्य करनी चाहिए, वह पूजा चार प्रकारकी है सदाचन, चतुर्मुख, कल्पद्रुप और आष्टाह्निक ॥२६॥ इन चारो पूजाओंमें से प्रतिदिन अपने घरसे गन्ध, पुष्प, अक्षत इत्यादि ल जाकर जिनालयम श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना सदाचन अर्थात् नित्यमह कहलाता है ॥२७॥ अथवा भक्तिपूर्वक अहन्तदेवकी प्रतिमा और मन्दिरका निर्माण कराना तथा दानपत्र लिखकर ग्राम खेत आदिका दान देना भी सदाचन (नित्यमह) कहलाता है ॥२८॥ इसके सिवाय अपनी शक्तिक अनुसार नित्य दान देते हुए महामुनियोंकी जो पूजा की जाती है उसे भी नित्य मह समझना चाहिए ॥२९॥ महामुकुटबद्ध राजाओंके द्वारा जो महायज्ञ किया जाता है उसे चतुर्मुख यज्ञ जानना चाहिए । इसका दूसरा नाम सवतोभद्र भी है ॥३०॥ जो चक्रवर्तियोंके द्वारा किमिच्छक (मुहर्मागा) दान देकर किया जाता है और जिसमें जगत्के समस्त जीवों की आशाएँ पूर्य की जाती ह वह कल्पद्रुप नामका यज्ञ कहलाता है । भावाथ — जिस यज्ञमें कल्पवृक्षके समान सबकी इच्छाएँ पूर्य की जावें उसे कल्पद्रुम यज्ञ कहते हैं, यह यज्ञ चक्रवर्ती ही कर सकते ह ॥३१॥ चौथा आष्टाह्निक यज्ञ है जिसे सब लोग करते हैं और जो जगत्म अत्यन्त प्रसिद्ध है । इसके सिवाय एक ऐन्द्रध्वज महायज्ञ भी है जिसे इन्द्र किया करता है ॥३२॥ वलि अर्थात् नवेद्य चढ़ाना, अभिषेक करना तीनो सध्याओम उपासना करना तथा इनके समान और भी जो पूजाके प्रकार हैं वे सब उहीं भेदोंमें अन्तभूत ह ॥३३॥ इस प्रकारकी विधिसे जो जिनेन्द्रदेवकी महापूजा की जाती है उसे विधिके जाननेवाल आचार्य इज्या नामकी प्रथम वृत्ति कहते ह ॥३४॥ विशुद्ध आचरणपूर्वक खेती आदिका करना वार्ता कहलाती है तथा दयादत्ति पात्रदत्ति समदत्ति और अन्वयदत्ति ये चार प्रकारकी दत्ति कही गयी ह ॥३५॥

अनुग्रह करने योग्य प्राणियोंके समूहपर दयापूर्वक मन वचन कायकी शुद्धिके साथ उनके भय दूर करनेको पण्डित लोग दयादत्ति मानते ह ॥३६॥ महातपस्वी मुनियोंके लिए

१ - ता नित्या सा ल० । २ नित्यमह । ३ अर्चा पूजा च नित्यमह । ४ भवत किमिष्टमिनि प्रानपूर्वक तन्मिवाच्छिनस्य गानम् । ५ भवजन भव । ६ प्रथमवर्त्ये भवाम । पटकमसु प्रथमोक्तामित्यथ । ७ अनुष्ठानम् । ८ पूजास्थानविधिपूर्वकम् ।

समानायात्मनाऽन्यस्मै क्रियामन्त्रव्रतादिभिः । 'निस्तारकोत्तमायेह भूहमाश्रितिसर्जनम्' ॥३८॥
 समानदत्तिरप्या न्याय पात्रे मध्यमतामिते^३ । समानप्रतिपत्त्यैव प्रवृत्ता^४ श्रद्धयाऽन्विता ॥३९॥
 आत्मान्वयप्रतिष्ठार्थं सूनवे यदग्रेषत् । सम समयवित्ताभ्यां^५ स्ववर्गस्यातिसर्जनम् ॥४०॥
 सैषा सकलदत्तिः स्यात् स्वाध्यायः श्रुतभावना । तपोऽनशनवृत्त्यादि सयमो व्रतधारणम् ॥४१॥
 विशुद्धा वृत्तिरप्येषां पट्तर्याया द्विजन्मनाम् । योऽतिक्रामेदिमां सोऽजो नाम्नैव न गुणद्विज^६ ॥४२॥
 तपः श्रुतं च जातिश्च त्रय ब्राह्मण्यकारणम् । तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव स ॥४३॥
 अपापोपहता वृत्तिः स्यादेषा जातिरुत्तमा । दत्तीज्याधीति^७ मुख्यत्वाद् व्रतशुद्ध्या सुसंस्कृता^८ ॥४४॥
 मनुष्यजातिरिदं जातिनामोदयोद्भवा । वृत्तिभेदाहिताद्देदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥४५॥
 ब्राह्मणं व्रतसंस्कारान् क्षत्रिया गृहधारणात् । वणिजोऽर्थार्जनान्न्यायथात् शूद्रा^९ न्यगृत्तिमश्रयात् ४६
 तपःश्रुताभ्यामेवातो^{१०} जातिमस्कार इष्यते । असंस्कृतस्तु यस्ताभ्यां जातिमात्रेण न द्विजः ॥४७॥
 द्विजातो हि द्विजन्मेषु क्रियानो गर्भतश्च यः । क्रियामन्त्रविहीनस्तु केवल नामधारक ॥४८॥
 तदेवा जातिसंस्कार इदमिति सोऽधिराट् । स प्रोवाच द्विजन्मभ्यः क्रियाभेदानग्रेषत् ॥४९॥

सत्कारपूर्वक पडगाह कर जो आहार आदि दिया जाता है उसे पात्रदान कहते हैं ॥३७॥ क्रिया, मन्त्र और व्रत आदिसे जो अपने समान है तथा जो ससारसमुद्रसे पार कर देनेवाला कोई अन्य उत्तम गृहस्थ है उसके लिए पृथिवी मुवर्ण आदि देना अथवा मध्यम पात्रके लिए समान बुद्धिसे श्रद्धाके साथ जो दान दिया जाता है वह समानदत्ति कहलाता है ॥३८-३९॥ अपने वशकी प्रतिष्ठाके लिए पुत्रको समस्त कुलपद्धति तथा धनके साथ अपना कुटुम्ब समर्पण करनेको सकल-दत्ति कहते हैं । शास्त्रोकी भावना (चिन्तवन) करना स्वाध्याय है, उपवास आदि करना तप है और व्रत धारण करना सयम है ॥४०-४१॥ यह ऊपर कही हुई छह प्रकारकी विशुद्ध वृत्ति इन द्विजोंके करने योग्य है । जो इनका उल्लंघन करता है वह मूर्ख नाममात्रसे ही द्विज है, गुणसे द्विज नहीं है ॥४२॥ तप, शास्त्रज्ञान और जाति ये तीन ब्राह्मण होनेके कारण हैं, जो मनुष्य तप और शास्त्रज्ञानसे रहित है वह केवल जातिसे ही ब्राह्मण है ॥४३॥ इन लोगोकी आजीविका पापरहित है इसलिए इनकी जाति उत्तम कहलाती है तथा दान, पूजा, अध्ययन आदि कार्य मुख्य होनेके कारण व्रतोकी गुद्धि होनेसे वह उत्तम जाति और भी सुसंस्कृत हो गयी है ॥४४॥ यद्यपि जाति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई मनुष्य जाति एक ही है तथापि आजी-विकाके भेदमे होनेवाले भेदके कारण वह चार प्रकारकी हो गयी है ॥४५॥ व्रतोके संस्कारसे ब्राह्मण, मन्त्र धारण करनेमे क्षत्रिय, न्यायपूर्वक धन कमानेसे वैश्य और नीच वृत्तिका आश्रय लेनेमे मनुष्य शूद्र कहलाते हैं ॥४६॥ इसलिए द्विज जातिका संस्कार तपव्रत और शास्त्रा-न्यायने ही माना जाता है परन्तु तपव्रत और शास्त्राभ्यासमे जिमका संस्कार नहीं हुआ है वह जातिमात्रमे द्विज कहलाना है ॥४७॥ जो एक बार गर्भमे और दूसरी बार क्रियामे इस प्रकार दो बार उत्पन्न हुआ हो उसे द्विजन्मा अथवा द्विज कहते हैं परन्तु जो क्रिया और मन्त्र दोनोंमे ही रहित है वह केवल नामको धारण करनेवाला द्विज है ॥४८॥ इसलिए इन द्विजोकी जातिमे संस्कारको दृढ़ करने हुए मन्त्राद् भरतेश्वरने द्विजोंके लिए नीचे लिखे अनुसार क्रियाओके समस्त भेद कहे ॥४९॥

ताश्च क्रियास्त्रिधाऽऽज्ञाता भवकाध्यायसंग्रह । सद्दृष्टिमिरनुष्ठेया महोदका शुभावहा ॥५०॥
 गर्भावयक्रियाश्चैव तथा दीक्षान्वयक्रिया । कत्रन्वयक्रियाश्चेति तास्त्रिधैव बुधैर्मता ॥५१॥
 आधानाद्यास्त्रिपञ्चाशज ज्ञेया गर्भान्वयक्रिया । चत्वारिंशदधाष्टौ च स्मृता दीक्षावयक्रिया ॥५२॥
 कत्रन्वयक्रियाश्चैव सप्त तत्रैः समुच्चिताः । तासां यथाक्रमं नामनिर्देशोऽयमनूयत ॥५३॥
 भङ्गानां सप्तमादङ्गाद् दुस्तरादणवादि । श्लोकैरष्टाभिरुच्ये प्राक्तं ज्ञानलब्धं मया ॥५४॥
 आधानं प्रीतिसुप्रीता धृतिर्भोद प्रियोद्भव । नामकमवहिर्यानिनिपद्या प्राशनं तथा ॥५५॥
 धृष्टिश्च केशवापश्च लिपिसंख्यानसंग्रह । उपनीतिश्च चर्या व्रतावतरणं तथा ॥५६॥
 विवाहो वणलामश्च कुलचर्या गृहीशिता । प्रशान्तिश्च गृहत्यागो दीक्षाद्य जिनरूपता ॥५७॥
 मौनाध्ययनवृत्तत्वं ताथकृत्स्न्य भावना । गुरुस्थानाभ्युपगमो गणोपग्रहणं तथा ॥५८॥
 स्वगुरुस्थानसंक्रान्तिर्निस्तसगत्वात्मभावना । योगनिर्वाणसंप्राप्तियोगनिर्वाणसाधनम् ॥५९॥
 इन्द्रोपपादामिपेकौ विधिदानं सुखोदय । इन्द्रत्यागावतारी च हिरण्योत्कृष्टजमता ॥६०॥
 मन्दरेन्द्राभिपेकश्च गुरुपूजोपलम्भनम् । यौवराज्यं स्वराज्यं च चक्रलामो दिशां जय ॥६१॥
 चक्राभिपेकसाम्राज्यं निष्क्रान्तिर्योगसंग्रह । आहन्त्य तद्विहारश्च यागत्यागोऽग्रनिवृत्तिः ॥६२॥
 अथ पञ्चाशदेता हि मता गर्भावयक्रिया । गर्भाधानादिनिर्वाणपथं ता परमागम ॥६३॥
 अवतारो वृत्तलाम् स्थानलामो गणग्रह । पूजाराध्यपुण्ययज्ञा दृढचर्यापयागिता ॥६४॥
 इत्युदिष्टाभिरष्टाभिरुपनीत्यादयः क्रियाः । चत्वारिंशत्प्रमायुक्तास्ताः स्युर्दीक्षावयवक्रिया ॥६५॥

उन्होंने कहा कि श्रावकाध्याय संग्रह में वे क्रियाएँ तीन प्रकारकी कही गयी हैं, सम्यग्दृष्टि पुरुषोंको उन क्रियाओंका पालन अवश्य करना चाहिए क्योंकि वे सभी उत्तम फल देनेवाली और शुभ करनेवाली हैं ॥५०॥ गर्भावय क्रिया, दीक्षावय क्रिया और कत्रन्वय क्रिया इस प्रकार विद्वान् लोगोंने तीन प्रकारकी क्रियाएँ मानी हैं ॥५१॥ गर्भान्वय क्रियाएँ, आधान आदि तिरपन जानना चाहिए और दीक्षावय क्रियाएँ अठतालीस समझना चाहिए ॥५२॥ इनके सिवाय उस विषयके जानकार विद्वानोंने कत्रन्वय क्रियाएँ सात संग्रह की हैं । अब आगे यथाक्रमसे उन क्रियाओंका नाम निर्देश किया जाता है ॥५३॥ जो समुद्रसे भी दुस्तर है ऐसे बारह अर्गोंमें सातवें अर्ग (उपासकाध्ययनाग) से जो कुछ मुझे ज्ञानका अंश प्राप्त हुआ है उसे मैं नीचे लिखे हुए आठ श्लोकोसे प्रकट करता हूँ ॥५४॥ १ आधान, २ प्रीति, ३ सुप्रीति, ४ धृति, ५ भोद, ६ प्रियोद्भव, ७ नामकम्, ८ वहिर्यानि, ९ निपद्या, १० प्राशन, ११ धृष्टि, १२ केशवाप, १३ लिपि संख्यानसंग्रह, १४ उपनीति, १५ व्रतचर्या, १६ व्रतावतरण, १७ विवाह १८ वणलाम, १९ कुलचर्या, २० गृहीशिता, २१ प्रशान्ति, २२ गृहत्याग, २३ दीक्षाद्य, २४ जिनरूपता, २५ मौनाध्ययनवृत्तत्वं, २६ तीथकृत्स्न्यभावना, २७ गुरुस्थानाभ्युपगम, २८ गणोपग्रहण, २९ स्वगुरु स्थानसंक्रान्ति ३० निस्तसगत्वात्मभावना, ३१ योगनिर्वाणसंप्राप्ति, ३२ योगनिर्वाणसाधन, ३३ इन्द्रोपपाद, ३४ अभिपेक, ३५ विधिदान, ३६ सुखोदय, ३७ इन्द्रत्याग, ३८ अवतार, ३९ हिरण्योत्कृष्टजमता ४० मन्दरेन्द्राभिपेक, ४१ गुरुपूजोपलम्भन, ४२ यौवराज्य, ४३ स्वराज्य, ४४ चक्रलाम, ४५ दिग्विजय, ४६ चक्राभिपेक, ४७ साम्राज्य, ४८ निष्क्रान्ति, ४९ योगसंग्रह, ५० आहन्त्य, ५१ तद्विहार, ५२ योगत्याग और ५३ अग्रनिवृत्ति । परमागम म ये गर्भसे लेकर निर्वाणपयन्त तिरपन क्रियाएँ मानी गयी हैं ॥५५-६३॥ १ अवतार, २ वृत्तलाम, ३ स्थानलाम, ४ गणग्रह ५ पूजाराध्य, ६ पुण्ययज्ञ, ७ दृढचर्या और ८ उपयोगिता

१ नामसंकीर्तन । २ अनुवादयत । ३ आदद्यात्प्राप्तानाम् मध्ये । ४ उपासकाध्ययनात् । ५ उद्देश करिष्य इत्यर्थः । ६ अभ्युपगम । ७ गर्भान्वयक्रियासु आग्नेयप्रोदक्षक्रिया मक्त्वा घृष्या उपनीत्यादयः ।

तास्तु कर्त्रन्वया ज्ञेया या प्राप्याः पुण्यकर्तृभिः । फलरूपतया वृत्ताः^१ सन्मार्गाराधनस्य वै ॥६६॥
 सज्जातिः सद्गृहित्वं च पारिव्राज्यं सुरेन्द्रता । साम्राज्यं परमार्हन्त्यं परनिर्वाणमित्यपि ॥६७॥
 स्थानान्येतानि सप्त स्युः परमाणि जगत्त्रये । अर्हद्वागमृतास्वादात् प्रतिलभ्यानि देहिनाम् ॥६८॥
 क्रियाकल्पोऽयमाग्रातो बहुभेदो महर्षिभिः । सक्षेपतस्तु तल्लक्ष्म वक्ष्ये संचक्ष्यं^३ विस्तरम् ॥६९॥
 आधान नाम गर्मादौ सस्कारो मन्त्रपूर्वकः । पत्नीमृतुमती स्नातां पुरस्कृत्यार्हदिज्यया ॥७०॥
 तत्रार्चनाविधौ चक्रत्रय छत्रत्रयान्वितम् । जिनेन्द्रमभितः^५ स्थाप्यं समं पुण्याग्निभिस्त्रिभिः ॥७१॥
 त्रयोऽग्नयोऽर्हद्गणभृच्छेषकेवलनिर्वृतौ । ये हुतास्ते प्रणेतव्याः^६ सिद्धार्चावेद्युपाश्रयाः^७ ॥७२॥
 तेऽप्यर्हदिज्याशेषांगैराहुतिर्मन्त्रपूर्विका । विधेया शुचिभिर्द्रव्यैः पुस्पुत्रोत्पत्तिकाभ्यया^८ ॥७३॥
 तन्मन्त्रास्तु यथाम्नायं वक्ष्यन्तेऽन्यत्र पर्वणि^९ । सप्तधा पीठिकाजातिमन्त्रादिप्रविभागतः ॥७४॥
 विनियोगस्तु सर्वासु क्रियास्वेषां^{११} मतो जिनैः । अव्यामोहादतस्तज्जैः प्रयोज्यास्त^{१२} उपासकैः ॥७५॥
 गर्माधानक्रियामेनां प्रयुज्यादौ यथाविधि । सन्तानार्थं विना रागाद् दम्पतिभ्यां^{१३} न्यवेयताम् ॥७६॥
 इति गर्माधानम् ।

एत कहो हुई आठ क्रियाओके साथ उपनीति नामकी चौदहवी क्रियासे तिरपनवी निर्वाण (अग्र-
 नेवृत्ति) क्रिया तककी चालीस क्रियाएँ मिलाकर कुल अड़तालीस दीक्षान्वय क्रियाएँ कहलाती
 हैं ॥ ६४-६५ ॥ कर्त्रन्वय क्रियाएँ वे हैं जो कि पुण्य करनेवाले लोगोको प्राप्त हो सकती हैं
 और जो समीचीन मार्गकी आराधना करनेके फलस्वरूप प्रवृत्त होती हैं ॥ ६६ ॥ १ सज्जाति,
 २ सद्गृहित्व, ३ पारिव्राज्य, ४ सुरेन्द्रता, ५ साम्राज्य, ६ परमार्हन्त्य और ७ परमनिर्वाण ये सात
 स्थान तीनों लोकोमे उत्कृष्ट माने गये हैं और ये सातों ही अर्हन्त भगवान्‌के वचनरूपी अमृतके
 आस्वादनसे जीवोको प्राप्त हो सकते हैं ॥ ६७-६८ ॥ महर्षियोने इन क्रियाओका समूह
 अनेक प्रकारका माना - अनेक प्रकारसे क्रियाओका वर्णन किया है परन्तु मैं यहाँ विस्तार छोड़-
 कर सक्षेपसे ही उनके लक्षण कहता हूँ ॥ ६९ ॥ चतुर्थ स्नानके द्वारा शुद्ध हुई रजस्वला पत्नी-
 को आगे कर गर्माधानके पहले अर्हन्तदेवकी पूजाके द्वारा मन्त्रपूर्वक जो सस्कार किया जाता है
 उसे आधान क्रिया कहते हैं ॥ ७० ॥ इस आधान क्रियाकी पूजामे जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमाके
 दाहिनी ओर तीन चक्र, बायी ओर तीन छत्र और सामने तीन पवित्र अग्नि स्थापित करे ॥७१॥
 अर्हन्त भगवान् (तीर्थकर) के निर्वाणके समय, गणधरदेवोके निर्वाणके समय और सामान्य
 केवलियोके निर्वाणके समय जिन अग्नियोमे होम किया गया था ऐसी तीन प्रकारकी पवित्र
 अग्नियाँ सिद्ध प्रतिमाकी वेदीके समीप ही तैयार करनी चाहिए ॥७२॥ प्रथम ही अर्हन्त देवकी
 पूजा कर चुकनेके बाद गेप वचे हुए पवित्र द्रव्यसे पुत्र उत्पन्न होनेकी इच्छा कर मन्त्रपूर्वक उन
 तीन अग्नियोमे आहुति करनी चाहिए ॥ ७३ ॥ उन आहुतियोके मन्त्र आगेके पर्वमे शास्त्रा-
 नुसार कहे जावेगे । वे पीठिका मन्त्र, जातिमन्त्र आदिके भेदसे सात प्रकारके हैं ॥ ७४ ॥
 श्रीजिनेन्द्रदेवने इन्ही मन्त्रोका प्रयोग समस्त क्रियाओमे बतलाया है इसलिए उस विषयके जान-
 कार श्रावकोको व्यामोह (प्रमाद) छोड़कर उन मन्त्रोका प्रयोग करना चाहिए ॥ ७५ ॥ इस
 प्रकार कही हुई इस गर्माधानकी क्रियाको पहले विधिपूर्वक करके फिर स्त्री-पुरुष दोनोंको विप-
 यानुरागके विना केवल सन्तानके लिए समागम करना चाहिए ॥ ७६ ॥ इस प्रकार यह गर्मा-
 धान क्रियाकी विधि समाप्त हुई ।

१ प्रवृत्ति । २ क्रियालक्षणम् । ३ वर्जयित्वा । ४ तत्र आधानक्रियायाम् । तत्रार्चनविधौ ८० ।
 ५ जिनत्रिंशन्वय समन्तत । ६ मन्त्रार्था । ७ सिद्धप्रतिमाश्रितनित्यवेदिमनीपाश्रिता । ८ अग्नियु । ९ वाञ्छया ।
 १० सर्ग । ११ मन्त्राणाम् । १२ मन्त्रा । १३ विधीयताम् ८० । व्यधीयताम् ८० । अभिगम्यताम् ।

गर्भाधानात् पर मास तृताय सप्रवतत । प्रातिर्नाम क्रिया प्रीतयाऽनुष्ठेया द्विजन्ममि ॥७७॥
तत्रापि पूर्ववन्मन्त्रपूर्वा पूजा जिनेश्विनाम् । द्वारि तोरणचि यास पूणकुम्भा च समती ॥७८॥
तदादि प्रत्यह भरीशब्दो घण्टाध्वनान्वित^१ । मथाविभयमवसै प्रयोज्यो गृहमधिनि ॥७९॥

इति प्राति ।

आधानात् पञ्चम मासि क्रिया सुप्रातिरिच्यत । या सुप्रातै प्रयोज्यया परमोपासकवसै ॥८०॥
तत्राप्युक्तो विधि पूव सर्वाऽहद्विभयसन्निधौ । कार्यो मन्त्रविधाननै साक्षीकृत्याग्निद्वया ॥८१॥
इति सुप्राति ।

धृतिस्तु सप्तम मासि कार्या तद्वत्क्रियादरै । गृहमधिभिरन्यग्रमनोभिगमवृद्धय ॥८२॥

इति धृति ।

नवम मास्यतोऽभ्यर्णे मादो नाम क्रियाविधि । तद्वद्वार्तः कार्यो गमपुष्टै द्विजोत्तमै ॥८३॥
तत्रेष्टो गात्रिकावधो^२ मङ्गल्य^३ च प्रसाधनम्^४ । रक्षासूत्रविधान^५ च गर्भिण्या द्विजसत्तमै ॥८४॥
इति मोद ।

प्रियोद्भव प्रसूत्या^६ जातकमविधि स्मृत । जिनजातकमाध्याय प्रवर्त्या यो मथाविधि ॥८५॥
अधान्तरविशेषोऽत्र क्रियामन्त्रादिलक्षण । भूयान्^७ समस्त्यसा ज्ञेयो मूलोपासकसूत्रत ॥८६॥

इति प्रियोद्भव ।

गर्भाधानके बाद तीसरे माहमें प्रीति नामकी क्रिया होती है जिसे सन्तुष्ट हुए द्विज लोग करते हैं ॥ ७७ ॥ इस क्रियामें भी पहलेकी क्रियाके समान मन्त्रपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिए, दरवाजेपर तोरण बाँधना चाहिए तथा दो पूण कलश स्थापना करना चाहिए ॥ ७८ ॥ उस दिनसे लेकर गृहस्थोंको प्रतिदिन अपने वैभवके अनुसार घण्टा और नगाड़े बजवाने चाहिए ॥ ७९ ॥ यह दूसरी प्रीति क्रिया है ।

गर्भाधानसे पाँचवें माहमें सुप्रीति क्रिया की जाती है जो कि प्रसन्न हुए उत्तम श्रावको के द्वारा की जाती है ॥ ८० ॥ इस क्रियामें भी मन्त्र और क्रियाओंको जाननेवाले श्रावकोंको अग्नि तथा देवताकी साक्षी कर अर्हन्त भगवान्की प्रतिमाके समीप पहल कही हुई समस्त विधि करनी चाहिए ॥ ८१ ॥ यह तीसरी सुप्रीति नामकी क्रिया है ।

जिनका आदर किया गया है और जिनका चित्त व्याकुल नहीं है ऐसे गृहस्थोंको गर्भकी वृद्धिके लिए गर्भसे सातवें महीनेमें पिछली क्रियाओंके समान ही धृति नामकी क्रिया करनी चाहिए ॥ ८२ ॥ यह चौथी धृति नामकी क्रिया है ।

तदनन्तर नौवें महीनेके निकट रहनेपर मोद नामकी क्रिया की जाती है यह क्रिया भी पिछली क्रियाओंके समान आदरयुक्त उत्तम द्विजोंके द्वारा गर्भकी पुष्टिके लिए की जाती है ॥ ८३ ॥ इस क्रियामें उत्तम द्विजोंको गर्भिणीके शरीरपर गात्रिकावध करना चाहिए अथवा मन्त्रपूर्वक बीजाक्षर लिखना चाहिए मङ्गलमय आभूषणादि पहनाना चाहिए और रक्षाके लिए ककणसूत्र आदि बाधनेकी विधि करनी चाहिए ॥ ८४ ॥ यह पाँचवी मोदक्रिया है ।

तदनन्तर प्रसूति होनेपर प्रियोद्भव नामकी क्रिया की जाती है, इसका दूसरा नाम जातकम विधि भी है । यह क्रिया जिनेन्द्र भगवानका स्मरण कर विधिपूर्वक करनी चाहिए ॥ ८५ ॥

इसका पूण

क्रिया मन्त्र आदि अवा तर विशय कार्य बहुत भारी है इसलिए ॥ ८६ ॥ प्राप्त करना चाहिए ॥ ८६ ॥ यह छठवी

द्वादशाहान पर नामकर्म जन्मदिनान्मनम् । अनुकूले मुनस्यास्य पित्रोर्गपि सुखावहे ॥८७॥
यथाविभवमत्रेष्ट देवपितृविजृज्जनम् । अस्त च नामधेय तन स्थाप्यमन्त्रयवृद्धिद्वन ॥८८॥
अष्टोत्तमहन्वाद् वा जिननामकदम्बकान् । घटपत्रविधानेन ब्राह्ममन्त्रनम शुभम् ॥८९॥

इति नामकर्म ।

वहिर्यान् ननो 'द्वित्रैर्माम्निचतुर्गन्त' । यथानुकूलमिष्टेऽहि कार्यं त्र्यादिमङ्गले ॥९०॥
नन प्रभृन्चर्माष्ट हि शिशोः प्रयववेष्मन^३ । वह्निं प्रणयनं मान्वा धान्युत्पङ्गवत्स्य वा ॥९१॥
नत्र वन्धुजनादर्थलाभो यः पाणिनोपिक^४ । म तस्योत्तमकालेऽप्यो धनं पित्र्यं यदाप्स्यति ॥९२॥

इति वहिर्यान्म् ।

नन. पर निषद्यास्य क्रिया बालस्य कल्पायते । नद्योत्थे तल्प^५ आम्नीणे^६ कृतमङ्गलमन्त्रिधौ ॥९३॥
सिद्धान्तनादिक सर्वो विधि पूर्ववदत्र^७ च । यतो^८ दिव्यामनाहन्त्रमस्य स्यादुत्तमगतम् ॥९४॥

इति निषद्या ।

जन्मदिनमे वारह दिनके बाद, जो दिन माना पिता और पुत्रके अनुकूल हो, मुख देनेवाला हो उस दिन नामकर्मकी क्रिया की जानी है ॥८७॥ इस क्रियामे अपने वंशवके अनुमार अर्हन्तदेव और ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिए, द्विजोका भी यथायोग्य सत्कार करना चाहिए तथा जो वंशकी वृद्धि करनेवाला हो ऐसा कोई उत्तम नाम बालकका रखना चाहिए ॥८८॥ अथवा जितेन्द्रदेवके एक हजार आठ नामोके समूहमे घटपत्रकी विधिसे कोई एक शुभ नाम ग्रहण कर लेना चाहिए । भावार्थ - भगवान्के एक हजार आठ नामोके एक हजार आठ कागजके टुकड़ोपर अष्टगन्धमे मुद्रण अथवा अनारकी कलमसे लिखकर उनकी गोली बना लेवे और पीले वस्त्र तथा नागियल आदिमे ढके हुए एक घडेमे भर देवे, कागजके एक टुकड़ेपर 'नाम' ऐसा शब्द लिखकर उसकी गोली बना लेवे इसी प्रकार एक हजार मात्र कोरे टुकड़ोकी गोलियां बनाकर इन सबको एक दूसरे घडेमे भर देवे, अनन्तर किसी अवोध कन्या या बालकसे दोनो घडोमेमे एक-एक गोली निकलवाता जावे । जिस नामकी गोलीके साथ नाम ऐसा लिखी हुई गोली निकले वही नाम बालकका रखना चाहिए । यह घटपत्र विधि कहलानी है ॥८९॥ यह मातवी नामकर्म क्रिया है ।

तदनन्तर दो-तीन अथवा तीन-चार माहके बाद किसी शुभ दिन तुम्ही आदि मासालिक बाजोके साथ-साथ अपनी अनुकूलताके अनुसार वहिर्यान् क्रिया करनी चाहिए ॥९०॥ जिस दिन यह क्रिया की जावे उसी दिनमे माना अथवा बायकी गोदमे बैठे हुए बालकका प्रभूति-गृहसे बाहर ले जाना शान्त्रमम्मन है ॥९१॥ उस क्रियाके करते समय बालकको भाई बान्धव आदिमे पाणिनोपिक - भेटहपमे जो कुछ धनकी प्राप्ति हो उसे इकट्ठा कर, जब वह पुत्र पिताके धनका अधिकारी हो तब उसके लिए सौंप देवे ॥९२॥ यह आठवी वहिर्यान् क्रिया है ।

तदनन्तर, जिसके समीप मङ्गलद्रव्य रखे हुए हैं और जो बालकके योग्य हैं ऐसे विछाये हुए आमनपर उस बालककी निषद्या क्रिया की जानी है अर्थात् उसे उत्तम आमनपर बैठा लेने हैं ॥९३॥ इस क्रियामे सिद्ध भगवान्की पूजा करना आदि सब विधि पहलेके समान ही करनी चाहिए जिसमे इस बालककी उत्तमोत्तम दिव्य आमनपर बैठनेकी योग्यता होनी रहे ॥९४॥ यह नौवी निषद्या क्रिया है ।

१ द्यौ वा वने वा द्विजान् । २ उग्रवा । ३ प्रयववेष्मन मकागान् । ४ परिनोये भव । ५ यथयागम् । ६ विन्तोर्णे । ७ निषद्याक्रियया । ८ निषद्याक्रियया ।

गते मासपृथक्त्वे^१ च जन्माद्यस्य^२ यथाक्रमम् । अन्नप्राशनमाज्ञातं पूजाविधिपुरस्सरम् ॥९५॥

इति अन्नप्राशनम् ।

ततोऽस्य हायने^३ पूर्णं व्युष्टिर्नाम क्रिया मता । वपवधनपर्यायशब्दाच्चा यथाश्रुतम्^४ ॥९६॥

अत्रापि पूर्ववदान जैनी पूजा च पूर्ववत् । इष्टवन्धसमाह्वान समाशादिश्च^५ लक्ष्यताम् ॥९७॥

इति व्युष्टि ।

केशवापस्तु केशानां शुभेऽहि व्यपशेषणम्^६ । क्षौरण कमणा देवगुरुपूजापुरस्सरम् ॥९८॥

गन्धोदकाद्रिगान् कृत्वा केशान् शेषाक्षतोचितान् । मौञ्जवन्धस्थ विधेय स्यात् सचूर्ल^७ स्वाऽन्वयोचितम्^८
रूपनोदकघोताङ्गमनुलिप्त समूषणम्^९ । प्रणमय्य^{१०} मुनीन् पश्चाद् भोजयेद् बन्धुनाशिषा^{११} ॥१००॥

चौलाख्यया प्रतीतेय कृतपुण्याहमङ्गला । क्रियास्यामादतो लोको यतते परया मुदा ॥१०१॥

इति केशवाप ।

ततोऽस्य पञ्चमे वर्षे प्रथमाक्षरदशने । ज्ञेय क्रियाविधिर्नाम्ना लिपिसंस्थानसंग्रहः ॥१०२॥

यथाविभवमत्रापि ज्ञेय पूजापरिच्छद । उपाज्यायपदे चास्य मतोऽधीती^{१३} गृह्यती ॥१०३॥

इति लिपिसंस्थानसंग्रहः ।

क्रियोपनीतिर्नामास्य वर्षे गर्माष्टमे मता । यत्रापनीतकेशस्य मौञ्जी सवतबन्धना ॥१०४॥

जब क्रम क्रमसे सात-आठ माह व्यतीत हो जाय तब अहन्त भगवान्की पूजा आदि कर बालकको अन्न खिलाना चाहिए ॥९५॥ यह दसवीं अन्नप्राशन क्रिया है ।

तदनन्तर एक वष पूर्ण होनेपर व्युष्टि नामकी क्रिया की जाती है इस क्रियाका दूसरा नाम शास्त्रानुसार वर्षवर्धन है ॥९६॥ इस क्रियामें भी पहले ही के समान दान देना चाहिए, जिनेद्र भगवान्की पूजा करनी चाहिए, इष्टवन्धुओंको बुलाना चाहिए और सबको भोजन कराना चाहिए ॥९७॥ यह ग्यारहवी व्युष्टि क्रिया है ।

तदनन्तर, किसी शुभ दिन देव और गुरुकी पूजाके साथ साथ क्षौरकर्म अर्थात् उस्तरासे बालकके बाल बनवाना केशवाप क्रिया कहलाती है ॥९८॥ प्रथम ही बालोंको गन्धोदकसे गोला कर उनपर पूजाके बचे हुए शेष अक्षत रखे और फिर चोटी सहित अथवा अपनी कुलपद्धतिके अनुसार उसका मुण्डन करना चाहिए ॥९९॥ फिर स्नान करानेके लिए लाये हुए जलसे जिसका समस्त शरीर साफ कर दिया गया है, जिसपर लेप लगाया गया है और जिसे उत्तम आभूषण पहनाये गये ह ऐसे उस बालकसे मुनियोंको नमस्कार करावें, पश्चात् सब भाई बन्धु उसे आशीर्वादसे युक्त करें ॥१००॥ इस क्रियामें पुण्याहमंगल किया जाता है और यह चौल क्रिया नामसे प्रसिद्ध है इस क्रियामें आदरको प्राप्त हुए लोग बड़े हृषसे प्रवृत्त होते ह ॥१०१॥ यह केशवाप नामकी बारहवीं क्रिया है ।

तदनन्तर पाँचवें वर्षमें बालकको सवप्रथम अक्षरोंका दशन करानेके लिए लिपिसंस्थान नामकी क्रियाकी विधि की जाती है ॥१०२॥ इस क्रियामें भी अपने वैभवके अनुसार पूजा आदिकी सामग्री जुटानी चाहिए और अध्ययन करानेमें कुशल व्रती गृहस्थको ही उस बालकके अध्यापकके पदपर नियुक्त करना चाहिए ॥१०३॥ यह तेरहवी लिपिसंस्थान क्रिया है ।

गर्भसे आठवें वषमें बालककी उपनीति (यज्ञापवीत धारण) क्रिया होती है । इस क्रियाम केशोंका मुण्डन, वतबन्धन तथा मौञ्जीबन्धनकी क्रियाएँ की

१ सप्ताष्टमासे । २ जन्मनिन्तु प्रारम्भ । ३ सवत्सरे । सवत्सरो वत्सरोऽहो हायनोऽस्त्री शरत समा इत्यभिधानान् । ४ शास्त्रानुसारेण । ५ तत्रापि ल० । ६ सहभोजनादि । ७ अपनयनम् । ८ घृष्टासहितम् । चित्तासन्तिमित्यर्थः । ९ वाक्योचितम् ल० । चान्वयोचितम् द० । १० अलंकारयुक्तशिष्यम् । ११ मुनिभ्यो नमनं वारयिष्या । १२ बन्धुममृतकृताशीवचनेन । १३ अधीतवान् ।

कृताहंत्पजनस्यास्य मौञ्जीबन्धो जिनालये । गुरुमाश्रिविधानव्यो व्रतार्पणपुरस्सरम् ॥१०५॥

शिखी सितांशुकः ग्गान्तर्वर्मा^१ निर्वपविक्रिय^२ । व्रतचिह्नं दधत्सूत्र^३ तदोक्तो ब्रह्मचार्यमा^४ ॥१०६॥

चरणोचितमन्यच्च^५ नामधेयं तदस्य^६ वै । वृत्तिश्च भिक्षयाऽन्यत्र राजन्यादुद्धवैभवान् ॥१०७॥

मोऽन्तःपुरे चरेत् पात्र्या^७ नियोग इति केवलम् । तदग्रं देवमान्कृत्य^८ ततोऽञ्चं योग्यमाहरन्^९ ॥१०८॥

इत्युपनीति ।

व्रतचर्यामतो^{११} वक्ष्ये क्रियामस्योपविभ्रत^{१२} । कट्यूरुरगिरोलिङ्गमनूचानव्रतोचितम् ॥१०९॥

कटीलिङ्गं भवेदस्य मौञ्जीबन्धात्त्रिभिर्गुणै^{१३} । रत्नत्रितयशुद्धयङ्गं तद्धि चिह्नं द्विजात्मनाम् ॥११०॥

तस्येष्टमूरुलिङ्गं^{१४} च सुधौतसितगाटकम्^{१५} । आहंतानां कुलं पूतं विशालं चेति सूचने ॥१११॥

उरोलिङ्गमथास्य स्याद् ग्रथितं मत्तभिर्गुणैः । यज्ञोपवीतकं सप्तपरमस्थानसूचकम् ॥११२॥

गिरोलिङ्गं च तस्येष्टं परं मौण्ड्यमनाविलम्^{१६} । मौण्ड्यं मनोवच कायगतमस्थोपवृत्तं हयन ॥११३॥

एवप्रायेण^{१७} लिङ्गेन विशुद्धं धारयेद् व्रतम् । स्थूलहिंसाविरत्यादि ब्रह्मचर्योपवृत्तं हितम् ॥११४॥

दन्तकाष्ठग्रहो नास्य न ताम्बूलं न चाञ्जनम् । न हरिद्रादिभिः स्नानं शुद्धस्नानं दिनं प्रति ॥११५॥

जाती है ॥१०४॥ प्रथम ही जिनालयमे जाकर जिसने अहन्तदेवकी पूजा की है ऐसे उस बालकको व्रत देकर उसका मौञ्जीबन्धन करना चाहिए अर्थात् उसकी कमरमे मूँजकी रस्सी बाँधनी चाहिए ॥१०५॥ जो चोटी रखाये हुए है, जिसकी सफेद धोती और सफेद दुपट्टा है, जो वेप और विकारोसे रहित है, तथा जो व्रतके चिह्नस्वरूप यज्ञोपवीत सूत्रको धारण कर रहा है ऐसा वह बालक उस समय ब्रह्मचारी कहलाता है ॥१०६॥ उस समय उसके आचरणके योग्य और भी नाम रखे जा सकते हैं । उस समय बड़े वैभववाली राजपुत्रको छोड़कर सबको भिक्षावृत्तिसे ही निर्वाह करना चाहिए और राजपुत्रको भी अन्त-पुरमे जाकर माता आदिसे किसी पात्रमे भिक्षा माँगनी चाहिए, क्योंकि उस समय भिक्षा लेने-का यह नियोग ही है । भिक्षामे जो कुछ प्राप्त हो उसका अग्रभाग श्री अरहन्तदेवको समर्पण करवाकी वचे हुए योग्य अन्नका स्वयं भोजन करना चाहिए ॥१०७-१०८॥ यह चौदहवीं उपनीति क्रिया है ।

अथानन्तर ब्रह्मचर्य व्रतके योग्य कमर, जाँघ, वक्षस्थल और शिरके चिह्नको धारण करनेवाले इस ब्रह्मचारी बालककी व्रतचर्या नामकी क्रियाका वर्णन करते हैं ॥१०९॥ तीन लरकी मूँजकी रस्सी बाँधनेसे कमरका चिह्न होता है, यह मौञ्जीबन्धन रत्न-त्रयकी विगुट्टिका अग हैं और द्विज लोगोका एक चिह्न है ॥११०॥ अत्यन्त धुली हुई सफेद धोती उसकी जाँघका चिह्न है, वह धोती यह सूचित करती है कि अरहन्त भगवान्का कुल पवित्र और विशाल है ॥१११॥ उसके वक्षस्थलका चिह्न सात लरका गुँथा हुआ यज्ञोपवीत है, यह यज्ञोपवीत सात परमस्थानोका सूचक है ॥११२॥ उसके गिरका चिह्न स्वच्छ और उत्कृष्ट मुण्डन है जो कि उसके मन, वचन, कायके मुण्डनको बढ़ानेवाला है । भावार्थ — गिर मुण्डनसे मन, वचन, काय पवित्र रहते हैं ॥११३॥ प्रायः इस प्रकारके चिह्नोंसे विगुट्ट और ब्रह्मचर्यसे बड़े हुए स्थूल हिंसाका त्याग (अहिंसाणु व्रत) आदि व्रत उसे धारण करना चाहिए ॥११४॥ इस ब्रह्मचारीको वृक्षकी दातौन नहीं करनी चाहिए, न पान खाना चाहिए, न अजन लगाना चाहिए और न हल्दी आदि लगाकर स्नान करना चाहिए, उसे प्रतिदिन केवल

१ अन्तर्वन्त्रेण महित । २ वेपविकाररहित । ३ यज्ञसूत्रम् । ४ वर्तनायोगम् । ५ तदाम्य ल० । ६ राजन्य । ७ पात्रे भिक्षा प्रार्थयेदित्यर्थ । ८ भिक्षान्नम् । ९ देवस्य चरुं नमस्कृत्य । १० धोपात्रं मुञ्जीत । ११ -मह ल० । १२ ब्रह्मचर्यव्रत । १३ धवलवन्त्रम् । १४ उष्णीपादिरहितम् । १५ एव प्रकारेण ।

न^१ तन्वाशयन तस्य नान्याङ्गपरिचयम् । भूर्मा^२ केवलमकाकी शयीत व्रतशुद्धय ॥११६॥
 यावद् विद्यासमाप्तिं स्यात् तावदस्येदं व्रतम् । ततोऽप्यूर्ध्वं व्रतं तत् स्याद् तन्मूलं गृहमधिनाम् ॥११७॥
 सूत्रमौपासिकं चास्य स्यादध्येयं गुरोर्मुखात् । विनयनं ततोऽथ शास्त्रमभ्यासमगोचरम् ॥११८॥
 शान्तिविद्याऽथशास्त्रादि^३ चाध्यय नास्य^४ दुष्यति । सुसंस्कारप्रबोधाय^५ वयास्यग्यातयऽपि च ॥११९॥
 'ज्योतिर्ज्ञानमयच्छन्दोज्ञान'^६ ज्ञानं च शाकुनम् । सग्याजानमितीदं च तनाध्ययं विशेषतः ॥१२०॥
 इति व्रतचर्चा ।

ततोऽस्थार्थावधिष्य^७ व्रतवृत्तवतारणम् । विशेषविषयं तच्च स्थितस्थौत्सर्गिकं^८ व्रतं ॥१२१॥
 मधुमांसपरित्यागं पञ्चोदुम्बरवर्जनम् । हिंसादिविरतिश्चास्य व्रतं स्यात् सावकालिकम् ॥१२२॥
 व्रतावतरणं चद् गुरुमाक्षिकृताचनम्^९ । वत्सराद् द्वादशाब्ध्वमथवा षोडशान् परम् ॥१२३॥
 कृतद्विनाचनस्यास्य व्रतावतरणोचितम् । ब्रह्माभरणमाख्यादिग्रहणं गुवनुजया ॥१२४॥
 शस्त्रोपजीविष्यश्चेद्^{१०} धारयेच्छस्त्रमप्यद् । 'स्ववृत्तिपरिरक्षार्थं' शोभार्थं चास्य तन्ग्रहः ॥१२५॥
 भोगप्रसन्नव्रतादेवमवतीर्णं भवेत्तदा । कामप्रसन्नव्रतं^{११} स्वस्य तावदावक्रियोत्तरा^{१२} ॥१२६॥
 इति व्रतावतरणम् ।

जलसे शुद्ध स्नान करना चाहिए ॥११५॥ उसे खाट अथवा पलंगपर नहीं सोना चाहिए, दूसरेके शरीरसे अपना शरीर नहीं रगड़ना चाहिए, और व्रतोको विशुद्ध रखनेके लिए अकेला पृथिवीपर सोना चाहिए ॥११६॥ जबतक विद्या समाप्त न हो तबतक उसे यह व्रत धारण करना चाहिए और विद्या समाप्त होनेपर वे व्रत धारण करना चाहिए जो कि गृहस्थोंके मूलगुण कहलाते हैं ॥११७॥ सबसे पहले इस ब्रह्मचारीको गुरुके मुखसे श्रावकाचार पढ़ना चाहिए और फिर विनयपूर्वक अध्यात्मशास्त्र पढ़ना चाहिए ॥११८॥ उत्तम संस्कारोंको जागृत करनेके लिए और विद्वत्ता प्राप्त करनेके लिए इसे व्याकरण आदि शब्दशास्त्र और न्याय आदि अथशास्त्रका भी अभ्यास करना चाहिए क्योंकि आचार विषयक ज्ञान होनेपर इनके अध्ययन करनेमें कोई दोष नहीं है ॥११९॥ इसके बाद ज्योतिषशास्त्र, छन्दशास्त्र, शकुनशास्त्र और गणितशास्त्र आदिका भी उसे विशयरूपसे अध्ययन करना चाहिए ॥१२०॥ यह पन्द्रहवीं व्रतचर्चा क्रिया है ।

तदनन्तर जिसने समस्त विद्याओंका अध्ययन कर लिया है ऐसे उस ब्रह्मचारीकी व्रतावतरण क्रिया होती है । इस क्रियामें वह साधारण व्रतोंका तो पालन करता ही है परन्तु अध्ययनके समय जो विशेष व्रत ले रखे थे उनका परित्याग कर देता है । ॥१२१॥ इस क्रियाके बाद उसके भक्षुत्याग मांसत्याग पाँच उदुम्बर फलोंका त्याग और हिंसा आदि पाँच स्थूल पापोंका त्याग, ये सदा काल अर्थात् जीवन पयन्त रहनेवाले व्रत रह जाते हैं ॥१२२॥ यह व्रतावतरण क्रिया गुरुको साक्षीपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्की पूजा कर बारह अथवा सोलह वर्ष बाद करनी चाहिए ॥१२३॥ पहले द्विजोंका सत्कार कर फिर व्रतावतरण करना उचित है और व्रतावतरणके बाद गुरुकी आज्ञासे वस्त्र आभूषण और माला आदिका ग्रहण करना उचित है ॥१२४॥ इसके बाद यदि वह शस्त्रोपजीवी अर्थात् क्षत्रिय वगका है तो वह अपनी आजोविकाकी रक्षाके लिए शस्त्र भी धारण कर सकता है अथवा केवल शोभाके लिए भी शस्त्र ग्रहण किया जा सकता है ॥१२५॥ इस प्रकार इस क्रियामें यद्यपि वह भोगोप भोगोंके ब्रह्मव्रतका अथान् ताम्बूल आदिके त्यागका अवतरण (परित्याग) कर देता है तथापि

१ भञ्जक । २ नीतिशास्त्र । ३ दूष्यन ल० द० । ४ प्राप्य । ५ ज्योतिषशास्त्रम् । ६ छन्द शास्त्रम् । ७ गणितशास्त्रम् । ८ वृत्ति जीवन । ९ साधारण । १० कृताराधनम् । ११ वर्ग भव । १२ निजजीवन । १३ धाम्य ल० । १४ धर्ममाणा यवाहिकी ।

ततोऽस्य^१ गुर्वनुज्ञानादिष्टा वैवाहिकी क्रिया । वैवाहिके^२ कुले कन्यामुचितां परिणेष्यतः ॥१२७॥
 सिद्धार्चनविधिं सम्यक् निर्वर्त्य द्विजसत्तमाः । कृताग्नित्रयसंपूजाः कुर्युस्तत्साक्षितां^३ क्रियाम् ॥१२८॥
 पुण्याश्रमे^४ क्वचित् सिद्धप्रतिमामिमुख तयोः । ढम्पत्योः परया भूत्या कार्यं पाणिग्रहोत्सवः ॥१२९॥
 वेद्या^५ प्रणीतमग्नीनां त्रयं द्वयमथैककम् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रसज्य विनिवेशनम् ॥१३०॥
 पाणिग्रहणद्वीक्षायां नियुक्तं तद्वधूवरम् । आससाह^६ चरेद् ब्रह्मव्रतं देवाग्निसाक्षिकम् ॥१३१॥
 क्रान्त्वा स्वस्योचिता भूमिं तीर्थभूमीर्विहृत्य च । स्वगृहं प्रविशेद् भूत्या परया तद्वधूवरम् ॥१३२॥
 विमुक्तकङ्कणं पश्चात् स्वगृहं शयनीयकम् । अधिगम्य यथाकालं भोगाङ्गैरुपलालितम् ॥१३३॥
 सन्तानार्थमृतावेव कामसेवा मिथो भजेत । शक्तिकालव्यपेक्षोऽयं^७ क्रमोऽशक्तेष्वतोऽन्यथा ॥१३४॥
 इति विवाहक्रिया ।
 एव कृतविवाहस्य गार्हस्थ्यमनुतिष्ठतः । स्वधर्मानतिवृत्त्यर्थं वर्णलाभमर्थो^८ ब्रुवे ॥१३५॥
 ऊढमार्योऽप्ययं तावदस्वतन्त्रो गुरोर्गृहे । ततः स्वातन्त्र्यसिद्धयर्थं वर्णलाभोऽस्य वर्णितः ॥१३६॥
 गुरोरनुज्ञया लब्धधनधान्यादिसंपदः । पृथक्कृतालयस्यास्यै^९ वृत्तिर्वर्णासिरेष्यते ॥१३७॥
 तदपि पूर्ववत्सिद्धप्रतिमानर्चनमग्रतः^{१०} । कृत्वाऽस्योपासकान्^{११} मुख्यान् साक्षीकृत्यार्पयेद् धनम् ॥१३८॥

जब तक उसके आगेकी क्रिया नहीं होती तब तक वह कामपरित्यागरूप ब्रह्मव्रतका पालन करता रहता है ॥१२६॥ यह सोलहवीं व्रतावतरण क्रिया है ।

तदनन्तर विवाहके योग्य कुलमें उत्पन्न हुई कन्याके साथ जो विवाह करना चाहता है ऐसे उस पुरुषकी गुरुकी आज्ञासे वैवाहिकी क्रिया की जाती है ॥१२७॥ उत्तम द्विजोको चाहिए कि वे सबसे पहले अच्छी तरह सिद्ध भगवान्की पूजा करे और फिर तीनो अग्नियोकी पूजा कर उनकी साक्षीपूर्वक उस वैवाहिकी (विवाह सम्बन्धी) क्रियाको करे ॥१२८॥ किसी पवित्र स्थानमें बड़ी विभूतिके साथ सिद्ध भगवान्की प्रतिमाके सामने वधू-वरका विवाहोत्सव करना चाहिए ॥१२९॥ वेदीमें जो तीन, दो अथवा एक अग्नि उत्पन्न की थी उसकी प्रदक्षिणाएँ देकर वधू-वरको समीप ही बैठना चाहिए ॥१३०॥ विवाहको दीक्षामें नियुक्त हुए वधू और वरको देव और अग्निकी साक्षीपूर्वक सात दिन तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिए ॥१३१॥ फिर अपने योग्य किसी देगमें भ्रमण कर अथवा तीर्थभूमिमें विहारकर वर और वधू बड़ी विभूतिके साथ अपने घरमें प्रवेश करे ॥१३२॥ तदनन्तर जिनका कंकण छोड़ दिया है, ऐसे वर और वधू अपने घरमें समयानुसार भोगोपभोगके साधनोसे सुशोभित गय्यापर गयन कर केवल सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छासे ऋतुकालमें ही परस्पर काम-सेवन करे । काम-सेवनका यह क्रम काल तथा शक्तिकी अपेक्षा रखता है इसलिए शक्तिहीन पुरुषोके लिए इससे विपरीत क्रम समझना चाहिए अर्थात् उन्हें ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिए ॥१३३-१३४॥ यह सत्रहवीं विवाह-क्रिया है ।

इस प्रकार जिसका विवाह किया जा चुका है और जो गार्हस्थ्यधर्मका पालन कर रहा है ऐसा पुरुष अपने धर्मका उल्लंघन न करे इसलिए उसके अर्थ वर्णलाभ क्रियाको कहते हैं ॥१३५॥ यद्यपि उसका विवाह हो चुका है तथापि वह जबतक पिताके घर रहता है तबतक अस्वतन्त्र ही है इसलिए उसको स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए यह वर्णलाभकी क्रिया कही गयी है ॥१३६॥ पिताकी आज्ञासे जिसे धनधान्य आदि सम्पदाएँ प्राप्त हो चुकी हैं और मकान भी जिसे अलग मिल चुका है ऐसे पुरुषकी स्वतन्त्र आजीविका करने लगनेको वर्णलाभ कहते हैं ॥१३७॥ इस क्रियाके समय भी पहलेके समान सिद्ध प्रतिमाओका पूजन

१ तुरनुमतान् । २ विवाहोचिते । ३ नास्ति ता ल० । ४ पवित्रप्रदेशे । ५ मस्कृतम् । ६ मत्तद्विषयपर्यन्तम् । ७ सन्तानार्थम् ऋतुकाले कामनेवाक्रम । ८ -मनो ल० । ९ विवाहित । १० आर्द्रा । ११ कृत्वाऽन्योप-७० ।

धनमेतदुपादाय स्थिवाऽस्मिन् स्वगृहं पृथक् । गृहिधमस्त्वया धायः कूरस्नो दानादिलक्षण ॥१३९॥
 यथाऽस्मत्पितृदत्तेन धनेनास्माभिरर्चितम् । यतो धमश्च तद्वत्स्व यतो धर्मानुपार्जय ॥१४०॥
 इत्येवमनुशिष्यैर्न^१ वर्णलाभे नियोजयेत् ।^२ सदार सोऽपि त धर्मं तथानुष्ठातुमर्हति ॥१४१॥
 इति वणलामक्रिया ।

लघवणस्य तस्यति कुलचर्याऽनुकील्यत । सा त्विज्यादसिवात्तादिलक्षणा प्राक् प्रपञ्चिता ॥१४२॥
 विशुद्धा वृत्तिरस्यायपटकर्मानुप्रवर्तनम् । गृहिणा कुलचर्येष्टा कुलधर्माऽप्यसौ मत ॥१४३॥
 इति कुलचर्याक्रिया ।

कुलचर्यामनुप्राप्तो धर्मे दाढमथोद्बहन् । गृहस्थाचायभावेन सभ्रयत् स गृहाशिनाम् ॥१४४॥
 ततो वर्णोत्तमवन स्थापयत् स्वा गृहीशिताम् । शुभवृत्तिक्रियामन्त्रविवाहै सोत्तरक्रियै ॥१४५॥
 अनयसदृशैरभि श्रुतवृत्तिक्रियादिभि । स्वमुन्नतिं नयन्नेप तदाऽर्हति गृहाशिताम् ॥१४६॥
 वर्णोत्तमो महाद्वय सुश्रुता द्विजसत्तम । निस्तारको^३ भ्रामयति मानाह्वयेति मानित ॥१४७॥
 इति गृहीशिता ।

सोऽनुरूपं तता लब्ध्वा सूनुमात्मभरक्षमम् । तन्नाशपितगाहस्थं सन् प्रशान्तिमत भ्रयत् ॥१४८॥

कर पिता अय मुख्य श्रावकोको साक्षी कर उनके सामने पुत्रको धन अपण करे तथा यह कहे कि यह धन लेकर तुम इस अपने घरमें पथकरूपसे रहो । तुम्हें दान पूजा आदि समस्त गृहस्थधम पालन करते रहना चाहिए । जिस प्रकार हमारे पिताके द्वारा दिये हुए धनसे मने यश और धमका अजन किया है उसी प्रकार तुम भी यश और धमका अजन करो । इस प्रकार पुत्रको समझाकर पिता उसे वणलाभमें नियुक्त करे और सदाचारका पालन करता हुआ वह पुत्र भी पिताके धमका पालन करनेके लिए समर्थ होता है ॥१३८-१४१॥ यह अठारहवीं वणलाभ क्रिया है ।

जिसे वणलाभ प्राप्त हो चुका है ऐसे पुत्रके लिए कुलचर्या किया कही जाती है और पूजा दत्ति तथा आजीविका करना आदि सब जिसके लक्षण ह ऐसी कुलचर्या क्रियाका पहले विस्तारके साथ वणन कर चुके ह ॥१४२॥ निर्दोषरूपसे आजीविका करना तथा आय पुरूपोंके करने योग्य देवपूजा आदि छह काय करना यही गृहस्थोकी कुलचर्या कहलाती है और यही उनका कुलधम माना जाता है ॥१४३॥ यह उन्नीसवीं कुलचर्या किया है ।

तदनन्तर कुलचर्याको प्राप्त हुआ वह पुरुष धममें दृढताको धारण करता हुआ गृहस्थाचाररूपसे गृहीशिताको स्वीकार करे अर्थात् गृहस्थोंका स्वामी बने । १४४॥ फिर उसे आपको उत्तम वण मानकर आपम गृहीशिता स्थापित करनी चाहिए । जो दूसरे गृहस्थोंम न पायो जावे ऐसी शुभ वृत्ति, क्रिया, मन्त्र, विवाह तथा आगे कही जानेवाली क्रियाएँ, शास्त्र ज्ञान और चारित्र आदिकी क्रियाआसे अपने-आपको उन्नत करता हुआ वह गृहीश अर्थात् गृहस्थाके स्वामी हानेके योग्य होता है ॥१४५-१४६॥ उस समय वर्णोत्तम, महीदेव, सुश्रुत, द्विजसत्तम, निस्तारक भ्रामपति और मानाह इत्यादि कहकर लोगोंको उसका सत्कार करना चाहिए ॥१४७॥ यह बीसवीं गृहीशिता किया है ।

तन्मन्तर वह गृहस्थाचाय अपना भार सभालनेम समथ योग्य पुत्रका पाकर उस अपनी

विषयेष्वनभिष्वङ्गो^१ नित्यस्वाध्यायशीलता । नानाविधोपवायैश्च वृत्तिगिष्टा प्रशान्तता ॥१४०॥

इति प्रशान्ति ।

ततः कृतार्थमानमान मन्यमानो गृह्याश्रमे । यदोद्यतो गृह्यागो तदाऽन्येष क्रियाविविधः ॥१४०॥
 मित्राचर्यानां पुरस्कृत्य सर्वानाहुय समनान । तस्याश्चि सुनवे सर्वं निवेद्यानां गृहं न्यजेत ॥१४१॥
 कुलक्रमस्त्वया नान मपालयोऽस्मन्परोक्षतः । त्रिधा कृतं च नो^२ त्वय त्वयेत्य त्रिनियोग्यताम् ॥१४२॥
 षकोऽगो धर्मकार्येऽतो द्वितीयं स्वगृह्यये । नृतीयं संविभागाय भवेत्स्वन्महजन्मनाम् ॥१४३॥
 पुत्र्यश्च सविभागाहर्हा मम पुत्रं मनाशकैः । त्वं नु भूत्वा कुलज्येष्ठः मन्तति नोऽनुपालय ॥१४४॥
 शुनवृत्तक्रियामन्त्रविधिविज्ञस्त्वमनन्दिन । प्रपालय^३ कुलान्नाय गुण देवांश्च पूजयन् ॥१४५॥
 इत्येवमनुगित्य स्वं ज्येष्ठं सूनुमनाकुलः । ततो दीक्षासुपादानं द्विजं त्वं गृहसुन्यजेत् ॥१४६॥

इति गृह्याग ।

न्यन्तागाम्य मददृष्टेः प्रशान्तस्य गृहीशिनः । प्राग्दीक्षापयिकाने^४ कालादेकशादकवाणि ॥१४७॥
 यन्पुरश्चरण दीक्षाग्रहणं प्रति आर्यते । दीक्षाद्य नान तज्जेयं क्रियाजानं^५ द्विजन्मनः ॥१४८॥

इति दीक्षाद्यम् ।

न्यक्चैलादिमंगम्य जैती दीक्षासुपेयुष^६ । धारणं जानरूपस्य यत्न म्याजिनरूपता ॥१४९॥

गृहस्थीका भार साँप के और आप स्वयं उत्तम गान्तिका आश्रय ले ॥१४८॥ विषयोमें आसक्त नहीं होना, नित्य स्वाध्याय करनेमें नत्तर रहना तथा नाना प्रकारके उपवास आदि करत रहना प्रशान्त वृत्ति कहलानी है ॥१४९॥ यह इक्कीसवीं प्रशान्ति क्रिया है ।

तदनन्तर गृहस्थाश्रममें अपने-आपको कृतार्थ मानता हुआ जब वह गृहत्याग करनेके लिए उद्यत होता है तब उसके यह गृहत्याग नामकी क्रियाकी विधि की जाती है ॥१५०॥ इस क्रियामें सबसे पहले मित्र भगवान्का पूजन कर समस्त इष्टजनोंको बुलाना चाहिए और फिर उनकी साक्षीपूर्वक पुत्रके लिए सब कुछ साँपकर गृहत्याग कर देना चाहिए ॥१५१॥ गृहत्याग करते समय ज्येष्ठ पुत्रको बुलाकर उससे इस प्रकार कहना चाहिए कि पुत्र, हमारे पीछे यह कुलक्रम तुम्हारे द्वारा पालन करने योग्य है । मैंने जो अपने धनके तीन भाग किये हैं उनका तुम्हें इस प्रकार विनियोग करना चाहिए कि उनमें-से एक भाग तो धर्मकार्यमें खर्च करना चाहिए, दूसरा भाग अपने घर खर्चके लिए रखना चाहिए और तीसरा भाग अपने भाइयोंमें बाँट देनेके लिए है । पुत्रोंके समान पुत्रियोंके लिए भी बराबर भाग देना चाहिए । हे पुत्र, तू कुलका बड़ा होकर मेरी सब सन्तानका पालन कर । तू शास्त्र, मन्त्राचार, क्रिया, मन्त्र और विधिको जाननेवाला है इसलिए आलस्यरहित होकर देव और गुरुओंकी पूजा करता हुआ अपने कुलधर्मका पालन कर । इस प्रकार ज्येष्ठ पुत्रको उपदेश देकर वह द्विज निराकुल होवे और फिर दीक्षा ग्रहण करनेके लिए अपना घर छोड़ दे ॥१५२-१५६॥ यह षड्विंशी गृहत्याग नामकी क्रिया है ।

जिसने घर छोड़ दिया है, जो मय्यदृष्टि है, प्रशान्त है, गृहस्थीका स्वामी है और दीक्षाधारण करनेके मनयके कुछ पहले जिसने एक वस्त्र धारण किया है उसके दीक्षाग्रहण करनेके पहले जो कुछ आचरण किये जाते हैं उन आचरणों अथवा क्रियाओंके समूहको द्विजकी दीक्षाद्य क्रिया कहते हैं ॥१५७-१५८॥ यह त्रैविंशी दीक्षाद्य क्रिया है ।

जिसने वस्त्र आदि सब परिग्रह छोड़ दिये हैं और जो जिनदीक्षाको प्राप्त करना चाहता है ऐसे पुत्रका दिगम्बररूप धारण करना जिनद्वन्ता नामकी क्रिया कहलानी है ॥१५९॥

१ निष्वङ्गः । २ अन्त्याम् । ३ कुलपुष्करम् । ४ दीक्षान्वीकागन् प्राक् । ५ क्रियामदृष्टः । ६ गतस्य ।

धनमेतदुपादाय स्थित्वाऽस्मिन् स्वगृह पृथक् । गृहिधमस्त्वया धाय कृत्स्नो दानादिलक्षण ॥१३९॥
 यथाऽस्मत्पितृत्वेन धनेनास्माभिरर्जितम् । यशो धमश्च तद्वत्त्व यशोधर्मानुपाजय ॥१४०॥
 इत्येवमनुशिष्यैर्न वणलाभे नियोजयेत् । सदार सोऽपि त धर्मं तथानुष्ठातुमहति ॥१४१॥
 इति वणलामक्रिया ।

लब्धवणस्य तस्येति कुलचर्याऽनुकीयत । सा खिज्यादक्षितार्तादिलक्षणा प्राक् प्रपञ्चिता ॥१४२॥
 विशुद्धा वृत्तिरस्यायपटकर्मनुप्रवतनम् । गृहिणा कुलचर्येष्टा कुलधर्माऽप्यसौ मत ॥१४३॥
 इति कुलचर्याक्रिया ।

कुलचर्यामनुप्राप्तो धर्मो दाढधमभ्योद्बुधन् । गृहस्थाचायभावन सश्रयत् स गृहीशिनाम् ॥१४४॥
 ततो वर्णोत्तमत्वेन स्थापयत् स्यां गृहीशिताम् । शुभवृत्तिक्रियामन्त्रविवाहै सोत्तरक्रियै ॥१४५॥
 अनप्रसद्वारेभि ध्रुतवृत्तिक्रियादिभि । स्वमुद्यतिं नयन्नेय तदाऽहति गृहाशिताम् ॥१४६॥
 वर्णोत्तमो महाद्वय सुश्रुतो द्विजसत्तम । निस्तारको ग्रामपति मानाहश्चेति मानित ॥१४७॥
 इति गृहीशिता ।

सोऽनुरूप ततो लब्ध्वा सूनुमात्मभरक्षमम् । तन्नारापितगाहस्थ्य सन् प्रशान्तिमत श्रयत् ॥१४८॥

कर पिता अन्य मुख्य श्रावकोको साक्षी कर उनके सामने पुत्रको धन अपण करे तथा यह कहे कि यह धन लेकर तुम इस अपने घरमे पृथकरूपसे रहो । तुम्हे दान पूजा आदि समस्त गृहस्थधम पालन करते रहना चाहिए । जिस प्रकार हमारे पिताके द्वारा दिये हुए धनसे मने यश और धमका अजन किया है उसी प्रकार तुम भी यश और धमका अजन करो । इस प्रकार पुत्रको समझाकर पिता उसे वणलाममें नियुक्त करे और सदाचारका पालन करता हुआ वह पुत्र भी पिताके धमका पालन करनेके लिए समर्थ होता है ॥१३८-१४१॥ यह अठारहवीं वणलाम क्रिया है ।

जिसे वणलाम प्राप्त हो चुका है ऐसे पुत्रके लिए कुलचर्या किया कही जाती है और पूजा दत्ति तथा आजीविका करना आदि सब जिसके लक्षण ह ऐसी कुलचर्या क्रियाका पहले विस्तारके साथ वणन कर चुके ह ॥१४२॥ निर्दोषरूपसे आजीविका करना तथा आय पुरुषोंके करने योग्य देवपूजा आदि छह काय करना यही गृहस्थोंकी कुलचर्या कहलाती है और यही उनका कुलधम माना जाता है ॥१४३॥ यह उन्नीसवीं कुलचर्या किया है ।

तदनन्तर कुलचर्याको प्राप्त हुआ वह पुरुष धममें दृढताको धारण करता हुआ गृहस्थाचायरूपसे गृहीशिताको स्वीकार करे अर्थात् गृहस्थोंका स्वामी बने । १४४॥ फिर उसे आपको उत्तम वण मानकर आपम गृहीशिता स्थापित करनी चाहिए । जो दूसरे गृहस्थोंम न पायी जावे ऐसी शुभ वृत्ति किया, मन्त्र, विवाह तथा आगे कही जानेवाली कियार्ण, शास्त्र ज्ञान और चारित्र आदिकी कियार्णसे अपने-आपको उन्नत करता हुआ वह गृहीश अर्थात् गृहस्थके स्वामी हानेवे योग्य होता है ॥१४५-१४६॥ उस समय वर्णोत्तम, महीदेव, सुश्रुत, द्विजसत्तम, निस्तारक ग्रामपति और मानाह इत्यादि कहकर लोगोंको उसका सत्कार करना चाहिए ॥१४७॥ यह बीसवीं गृहीशिता किया है ।

तदनन्तर वह गृहस्थाचाय अपना भार सभालनेम समर्थ योग्य पुत्रका पाकर उसे अपनी

विप्रयोगेनभिर्वर्तते' नियन्त्रया याचन्तीत्यन्ता । नानावि शोषवाग्नेश्च वृत्तिभिः प्रशान्ता ॥१४०॥

इति प्रशान्ति ।

तत कृतार्थमात्मान मन्यमानो गृह्णाग्रमे । यदोपानो गृह्ण्याने तदाऽन्येष क्रियार्थि ॥१४०॥

मिद्वार्चना पुष्कृत्य सर्वानाद्य समनान । नन्वाग्नि मृनवे सर्व निवेगतो गृह स्यतेन ॥१४१॥

कुलक्रमस्त्रया तान सपालोऽस्म परोक्षत । त्रिषा क्त च नो द्रव्य स्येथ विनियोग्यताम् ॥१४२॥

एकोऽगो धर्मकार्येनो द्वितीय स्वगृह्यये । तृतीय सविभागाय भवेत्तस्मज्जन्मनाम् ॥१४३॥

पुन्यश्च सविभागार्हा सम पुत्र समाजकं । न्व तु भृत्या कुलज्येष्ठ मन्तति नोऽनुपाल्य ॥१४४॥

श्रुनवृत्तिक्रियामन्त्रविहितस्त्वमनन्दिन । प्रपाल्य कुलज्ञाय गृह स्वाश्च पश्येन ॥१४५॥

इत्येवमनुशिष्य स्व ज्येष्ठ मनुमनाकुल । ततो दीक्षामुपगतां द्विज स्व गृहसुगृहेन ॥१४६॥

इति गृहत्याग ।

न्यक्तागाम्य मदृष्टे प्रशान्त्य गृहीतिन । प्राग्दीक्षापश्चात् कालादेः श्राद्धादौ शान्तिः ॥१४७॥

यन्पुत्रश्चरण दीक्षाग्रहण प्रति वार्यत । दीक्षाय नाम तज्ज्य क्रियाजात द्विजन्मन ॥१४८॥

इति दीक्षायम् ।

न्यक्त्वेलादिगम्य जैना दीक्षामुपेयुष । यागण जातन्पम्य यन्न न्याजिनन्पता ॥१४९॥

गृहस्थीका भार सांप दे और आप स्वय उत्तम शान्तिका आश्रय ले ॥१४८॥ विप्रयोगे आमवन नहीं होता, नित्य स्वाध्याय करनेमें नत्तन रहना तथा नाना प्रकारके उपवास आदि करत रहना प्रशान्त वृत्ति कहलाती है ॥१४९॥ यह इक्कीसवी प्रशान्ति क्रिया है ।

तदनन्तर गृहस्थाश्रममें अपने-आपको कृतार्थ मानता हुआ जब वह गृहत्याग करनेके लिए उद्यत होता है तब उसके यह गृहत्याग नामकी क्रियाकी विधि की जाती है ॥१५०॥ इस क्रियामें सबसे पहले मिद्व भगवान्का पूजन कर समस्त इष्टजनोको बुलाना चाहिए और फिर उनकी साक्षीपूर्वक पुत्रके लिए सब कुछ सांपकर गृहत्याग कर देना चाहिए ॥१५१॥ गृहत्याग करते समय ज्येष्ठ पुत्रको बुलाकर उसमें इस प्रकार कहना चाहिए कि पुत्र, हमारे पीछे यह कुलकर्म तुम्हारे द्वारा पालन करने योग्य है । मैंने जो अपने धनके तीन भाग किये हैं उनका तुम्हें इस प्रकार विनियोग करना चाहिए कि उनमें-से एक भाग तो धर्मकार्यमें खर्च करना चाहिए, दूसरा भाग अपने घर खर्चके लिए रखना चाहिए और तीसरा भाग अपने भाइयोंमें बाँट देनेके लिए है । पुत्रोंके समान पुत्रियोंके लिए भी बराबर भाग देना चाहिए । हे पुत्र, तू कुलका बड़ा होकर मेरी सब सन्तानका पालन कर । तू शास्त्र, मदाचार, क्रिया, मन्त्र और विधिको जाननेवाला है इसलिए आलस्यरहित होकर देव और गुरुओंकी पूजा करता हुआ अपने कुलधर्मका पालन कर । इस प्रकार ज्येष्ठ पुत्रको उपदेश देकर वह द्विज निराकुल होवे और फिर दीक्षा ग्रहण करनेके लिए अपना घर छोड़ दे ॥१५२-१५६॥ यह षाईसवी गृहत्याग नामकी क्रिया है ।

जिसने घर छोड़ दिया है, जो सम्यग्दृष्टि है, प्रशान्त है, गृहस्थीका स्वामी है और दीक्षाधारण करनेके समयके कुछ पहले जिसने एक वस्त्र धारण किया है उसके दीक्षाग्रहण करनेके पहले जो कुछ आचरण किये जाते हैं उन आचरणों अथवा क्रियाओंके समूहको द्विजकी दीक्षाद्य क्रिया कहते हैं ॥१५७-१५८॥ यह तेईसवी दीक्षाद्य क्रिया है ।

जिसने वस्त्र आदि सब परिग्रह छोड़ दिये हैं और जो जिनदीक्षाको प्राप्त करना चाहता है ऐसे पुरुषका दिगम्बररूप धारण करना जिनरूपता नामकी क्रिया कहलाती है ॥१५९॥

अशक्यधारणं चद् जन्तूनां कातरा मनाम् । जैन निस्सगतामुख्य रूप धीरनिषेव्यत ॥१६०॥

इति जिनरूपता ।

वृत्तदीक्षोपवासस्य प्रवृत्ते पारणाधिर्घा । मौनाध्ययनवृत्तत्वमिष्टमाश्रुतनिष्ठिते ॥१६१॥

धाधयमो विनीतात्मा विशुद्धकरणत्रय । सोऽधीधीर्धुत कृत्स्नमामूलाद् गुरुसन्निधौ ॥१६२॥

श्रुत हि विधिनानेन भवाममिरुपासितम् । योग्यतामिह पुष्पाति परत्रापि प्रसीदति ॥१६३॥

इति मौनाध्ययनवृत्तवम् ।

ततोऽधीतासिलाचार शास्त्रादिश्रुतविस्तर । विशुद्धाचरणोऽभ्यस्यत् तीथकृत्स्वम् भावनाम् ॥१६४॥

सा तु षोडशधाऽऽज्ञाता महाभ्युदयसाधिनी । सम्यग्दर्शनशुद्धादिलक्षणा प्राक्प्रपञ्चिता ॥१६५॥

इति तीथकृद्भावनम् ।

ततोऽस्य विदिताशेषवेद्यस्य विनितात्मन । गुरुस्थानाभ्युपगम २ मतो गुर्वनुग्रहात् ॥१६६॥

ज्ञानविज्ञानसंपन्न स्वगुरोरेमिसमत । विनीतो घमशीलश्च य सोऽहति गुरो पदम् ॥१६७॥

गुरुस्थानाभ्युपगम ।

तत सुविहितस्यास्य युक्तस्य गणपापण । गणोपग्रहण नाम त्रियाज्ञाता महर्षिभि ॥१६८॥

जिनका आत्मा कातर है ऐसे पुरुषोको जिनरूप (दिगम्बररूप) का धारण करना कठिन है इसलिए जिसमें परिग्रह त्यागकी मुख्यता है ऐसा यह जिनेन्द्रदेवका रूप धीरवीर मनुष्योके द्वारा ही धारण किया जाता है ॥१६०॥ यह चौबीसवों जिनरूपता किया है ।

जिसने दीक्षा लेकर उपवास किया है और जो पारणकी विधिमें अर्थात् विधिपूर्वक आहार लनेमें प्रवृत्त होता है ऐसे साधुका शास्त्रकी समाप्ति पयन्त जो मौन रहकर अध्ययन करनेमें प्रवृत्ति होती है उसे मौनाध्ययनवृत्तत्व कहते हैं ॥१६१॥ जिसने मौन धारण किया है जिसका आत्मा विनय युक्त है, और मन, वचन, काय शुद्ध है ऐसे साधुको गुरुके समीपम प्रारम्भसे लेकर समस्त शास्त्रोका अध्ययन करना चाहिए ॥१६२॥ क्योंकि इस विधिसे भयजीवोके द्वारा उपासना किया हुआ शास्त्र इस लोकमें उनकी योग्यता बढ़ाता है और परलोकमें प्रसन्न रखता है ॥१६३॥ यह पन्चीसवी मौनाध्ययनवृत्तित्व किया है ।

तदनन्तर जिसने समस्त आचार शास्त्रका अध्ययन किया है तथा अन्य शास्त्रोके अध्ययनसे जिसने समस्त श्रुतज्ञानका विस्तार प्राप्त किया है और जिसका आचरण विशुद्ध है ऐसा साधु तीथकर पदकी भावनाओका अभ्यास करे ॥१६४॥ सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि रखना आदि जिसके लक्षण है जो महान् ऐश्वर्यको देनेवाली है तथा पहल जिनका विस्तारके साथ वणन किया जा चुका है ऐसी भावनाएँ सौलह मानी गयी हैं ॥१६५॥ यह छब्बीसवी तीथ कृद्भावनम् नामकी क्रिया है ।

तदनन्तर जिसने समस्त विद्याएँ जान ली हैं और जिसने अपने अन्त करणको बश कर लिया है ऐसे साधुका गुरुके अनुग्रहसे गुरुका स्थान स्वीकार करना शास्त्रसम्मत है ॥१६६॥ जो ज्ञान विज्ञान करके सम्पन्न है, अपने गुरुको इष्ट है अर्थात् जिसे गुरु अपना पद प्रदान करना योग्य समझते हैं जो विनयवान् और घमात्मा है वह साधु गुरुका पद प्राप्त करनव योग्य है ॥१६७॥ यह सत्ताईसवी गुरुस्थानाभ्युपगम क्रिया है ॥

तदनन्तर जो सत्ताचारका पालन करता है गण अर्थात् समस्त मुनिसंघके पोषण

श्रावकानार्यिकामत्र श्राविका मयतानपि । मन्मागे वर्तयन्ते गणपोषणमाचरेन् ॥१६१॥

श्रुतादिभ्यः श्रुत दद्याद् दीक्षादिभ्यश्च दीक्षणम् । धर्माभिभ्योऽपि मन्मं स शश्वन् प्रतिपादयेत् ॥१६२॥

मद्वृत्तान् धारयन् सरिरमद्वृत्तान्निवाग्यन् । शोधयश्च कृतादागोमनान् स त्रिभृयाट् गणम् ॥१६३॥

इति गणोपग्रहणम् ।

गणपोषणमिन्यात्रिकुर्वन्नाचार्यमत्तमः । ततोऽयं स्वगुरुस्थानमकान्तो यतवान् भवेत् ॥१६४॥

अवीतविद्य तद्विद्यैरादत्त मुनिमत्तमैः । योग्यं शिष्यमथाहूय तस्मै स्व भाग्यपयं ॥१६५॥

गुरोरेनुमत्तान् सोऽपि गुरुस्थानमधिष्ठेत् । गुरुवृत्तौ स्वयं निष्ठेत् वर्तयेदग्निल गणम् ॥१६६॥

इति स्वगुरुस्थानावाप्तिः ।

तत्रारोग्यं भवं कृन्त काले कस्मिंश्चिदव्ययः । कुर्यादेकविहारी स नि मगन्वात्मभावनाम् ॥१६७॥

नि मगवृत्तिरेकाकी विहारन् स महानपः । चिन्तापुंरान्मसंस्कारं नान्यं स कर्तुमर्हति ॥१६८॥

अपि रागं समुन्सृज्य शिष्यप्रवचनादिषु । निर्मममवैकतानः सश्चर्याशुद्धिं तदाऽश्रयेत् ॥१६९॥

इति नि मगन्वात्मभावना ।

कृन्वैवमान्मसंस्कारं तत् सहेतुनोद्यतः । कृतान्मशुद्धिरध्यात्मं योगनिर्वाणमानुयात् ॥१७०॥

करनेमे जो तत्पर रहता है उसको महर्षियोने गणोपग्रहण नामकी क्रिया मानी है ॥१६८॥ इस आचार्यको चाहिए कि वह मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओको समीचीन मार्गमे लगाता हुआ अच्छी तरह सधका पोषण करे ॥१६९॥ उमे यह भी चाहिए कि वह शास्त्र अध्ययनकी इच्छा करनेवालोको दीक्षा देवे और धर्मात्मा जीवोके लिए धर्मका प्रतिपादन करे ॥१७०॥ वह आचार्य सदाचार धारण करनेवालोको प्रेरित करे, दुराचारियोको दूर हटावे और किये हुए स्वकीय अपराधरूपी मलको शोधता हुआ अपने आश्रित गणकी रक्षा करे ॥१७१॥ यह अट्टाईसवी गणोपग्रहण क्रिया है ।

तदनन्तर इस प्रकार सधका पालन करता हुआ वह उत्तम आचार्य अपने गुरुका स्थान प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न सहित हो ॥१७२॥ जिसने समस्त विद्याएँ पढ ली हैं और उन विद्याओके जानकार उत्तम-उत्तम मुनि जिसका आदर करते हैं ऐसे योग्य शिष्यको बुलाकर उसके लिए अपना भार सौंप दे ॥१७३॥ गुरुकी अनुमतिसे वह शिष्य भी गुरुके स्थानपर अधिष्ठित होता हुआ उनके समस्त आचरणोका स्वयं पालन करे और समस्त संघको पालन करावे ॥१७४॥ यह उन्तीसवी स्वगुरु-स्थानावाप्ति क्रिया है ।

इस प्रकार सुयोग्य शिष्यपर समस्त भार सौंपकर जो किसी कालमे दुःखी नही होता है ऐसा साधु अकेला विहार करता हुआ 'मेरा आत्मा सब प्रकारके परिग्रहसे रहित है' इस प्रकारकी भावना करे ॥१७५॥ जिसकी वृत्ति समस्त परिग्रहसे रहित है, जो अकेला ही विहार करता है, महातपस्वी है और जो केवल अपने आत्माका ही संस्कार करना चाहता है उसे किसी अन्य पदार्थका संस्कार नही करना चाहिए अर्थात् अपने आत्माको छोडकर किसी अन्य साधु या गृहस्थके सुधारकी चिन्तामे नही पडना चाहिए ॥१७६॥ शिष्य पुस्तक आदि सब पदार्थोमे राग छोडकर और निर्ममत्वभावनामे एकाग्र बुद्धि लगाकर उसे समय उसे चारित्र्यकी शुद्धि धारण करनी चाहिए ॥१७७॥ यह तीसवी नि सङ्गत्वात्मभावना क्रिया है ।

तदनन्तर इस प्रकार अपने आत्माका संस्कार कर जो सुल्लेखना धारण करनेके लिए उद्यत हुआ है और जिसने सब प्रकारसे आत्माकी शुद्धि कर ली है ऐसा

योगो ध्यानं तदर्थो यो यत्नः सवेगपूर्वकः । तमाहुर्योगनिर्वाणसंप्राप्तं परमं तपः ॥१७६॥
 कृता परिहर योग्यं तनुशोधनपूर्वकम् । शरीरं कशबद्दोषैः समं रागादिभिस्तदा ॥१७७॥
 तदेतद्योगनिर्वाणं स यासे पूर्वभावना^१ । जीवितान्ता मृतीच्छा च हित्वा^२ भव्यात्मलब्धये ॥१७८॥
 रागद्वेषौ समुत्सृज्य श्रेयोऽवाप्तौ च सशयम् । अनामीयेषु चात्मीयसकल्पाद् विरमत्तदा ॥१७९॥
 नाहं देहो मनो नास्मि न बाणा न च कारणम् । तत्प्रयत्नस्यत्यनुद्विग्नो मज्जदन्त्यत्वभावनाम् ॥१८०॥
 अहमेको न मे कश्चिन्नैवाहमपि कस्यचित् । इत्यदीनमना सम्यगवत्त्वमपि भावयेत् ॥१८१॥
 यत्तिमाधाय लोकाग्रे नित्यानन्तसुखास्पदे । भावयेद् योगनिर्वाणं स योगी योगसिद्धये ॥१८२॥
 इति निवाणसंप्राप्तिः ।

ततो निःशेषमाहारं शरीरं च समुत्सृजन् । योगीन्द्रो योगनिर्वाणसाधनायोद्यतो भवेत् ॥१८३॥
 उत्तमार्थं^३ कृतास्थानं^४ सन्यस्ततनुखण्ड्यौ । ध्यायन् मनोवचं कायान्^५ बहिर्भूतान् स्वकान् स्वतः ॥१८४॥
 प्रणिधाय^६ मनोवृत्तिं पदेषु^७ परमेष्ठिनाम् । जीवितान्तं स्वसात्कुर्याद् योगनिर्वाणसाधनम् ॥१८५॥
 योगं समाधिनिर्वाणं तत्कृता चित्तनिवृत्तिः^८ । तेनेष्ट साधनं यत्तद् योगनिर्वाणसाधनम् ॥१८६॥
 इति योगनिर्वाणसाधनम् ।

पुरुष योगनिर्वाण क्रियाको प्राप्त हो ॥१७८॥ योग नाम ध्यानका है उसके लिए जो सवेग पूर्वक प्रयत्न किया जाता है उस परम तपको योगनिर्वाण संप्राप्ति कहते हैं ॥१७९॥ प्रथम ही शरीरको शुद्ध कर सल्लेखनाके योग्य आचरण करना चाहिए और फिर रागादि दोषोंके साथ शरीरको कृश करना चाहिए ॥१८०॥ जीवित रहनेकी आशा और मरनेकी इच्छा छोड़कर 'महं भव्य है इस प्रकारका सुयश प्राप्त करनेके लिए सन्यास धारण करनेके पहले भावना की जाती है वह योगनिर्वाण कहलाता है ॥१८१॥ उस समय रागद्वेष छोड़कर कल्याणकी प्राप्तिमें प्रयत्न करना चाहिए और जो पदार्थ आत्माके नहीं है, उनमें 'यह मेरे हैं इस सकल्पका त्याग कर देना चाहिए ॥१८२॥ न म शरीर हूँ न मन हूँ, न बाणो हूँ और न इन तीनोंका कारण ही हूँ । इस प्रकार तीनोंके विषयम उद्विग्न न होकर अयत्न भावनाका चिन्तन करना चाहिए ॥१८३॥ इस ससारमें मैं अकेला हूँ न मेरा कोई है और न मैं भी किसीका हूँ, इस प्रकार उदार चित्त होकर एकत्वभावनाका अच्छी तरह चिन्तन करना चाहिए ॥१८४॥ जो नित्य और अनन्त सुखका स्थान है ऐसे लोकके अग्रभाग अर्थात् मोक्षस्थानमें बुद्धि लगाकर उस योगीको योग (ध्यान) को सिद्धिके लिए योग निर्वाण क्रियाकी भावना करनी चाहिए । भावार्थ सल्लेखनामें बैठे हुए साधुको संसारके अन्य पदार्थोंका चिन्तन न कर एक मोक्षका ही चिन्तन करना चाहिए ॥१८५॥ यह इकतीसवी योगनिर्वाणसंप्राप्ति क्रिया है ।

तदनन्तर—समस्त आहार और शरीरको छोड़ता हुआ वह योगिराज योगनिर्वाण साधनके लिए उद्यत हो ॥१८६॥ जिसने उत्तम अर्थात् मोक्षपदार्थमें आदर बुद्धि की है शरीरसे ममत्व छोड़ दिया है और जिसकी बुद्धि उत्तम है ऐसा वह साधु अपने मन, वचन, कायको अपने आत्मासे भिन्न अनुभव करता हुआ अपने मनकी प्रवृत्ति पंचपरमेष्ठियोंके चरणोंमें लगावे और इस प्रकार जीवनके अन्तमें योगनिर्वाण साधनको अपने अधीन करे—स्वीकार करे ॥१८७—१८८॥ योग नाम समाधिका है उस समाधिके द्वारा चित्तको जो आनन्द होता है उसे निवाण कहते हैं चूँकि यह योगनिवाण इष्ट पदार्थोंका साधन है—इसलिए इसे योगनिर्वाण साधन कहते हैं ॥१८९॥ यह बत्तीसवी योगनिर्वाण साधन क्रिया है ।

१ तद् ध्यानम् अथ प्रयोजनं यस्य । २ प्रथमभावना । ३ भव्याङ्कल-ल० द० । ४ सधयेद् अ०, प० स० । देहमनोवाचप्रयम्य । ५ सयास । ६ इत्यान्तर । ७ हिङ्गभूतात्मकान् स्वतः ट० । पृथग्भूतस्वरूपकान् । ८ एतावद् बुद्ध्या । ९ पञ्चपदेषु । १० चित्ताह्वानम् ।

तथा योग समाधाय कुनप्राणवियं नन । इन्द्रोपपादमाप्नोति गते पुण्ये पुण्ये गताम् ॥१९०॥

इन्द्राः स्युग्निदशार्थाशान्तेपृष्पादस्तपोवलात् । य स इन्द्रोपपाद ग्यान क्रियाऽहन्मार्गमेविनाम् ॥१९१॥

ततोऽर्मा दिव्यशय्याया क्षणादापूर्णयौवनः । परमानन्दमाद्भुतो दीप्तो दिव्येन तेजसा ॥१९२॥

अणिमादिभिरष्टाभिर्युतोऽस्यधारणैर्गुणैः । महजाम्बरदिव्यस्त्रजणिभूषणभूषितः ॥१९३॥

दिव्यानुभावस्य भूतप्रभाव परमुद्बहन् । बोधुष्यते तदाऽर्मायमेन्द्र दिव्यावधिविषा ॥१९४॥

इति इन्द्रोपपादक्रिया ।

पर्याप्तमात्र एवायं प्राप्तजन्मावबोधन । पुनरिन्द्राभिपेक्षेण योज्यतेऽमरगन्तमे ॥१९५॥

दिव्यसगीतवादित्रमद्गोर्गीतिनि स्वनैः । विचित्रैश्चाप्सरानृतैर्निवृत्तेन्द्राभिपेक्षेण ॥१९६॥

ति (कि)रीटमुद्बहन् दीप्त स्वसाम्राज्यैकलान्छनम् । सुर्गकोटिभिरारुढप्रमदैर्जयशरणि ॥१९७॥

स्वर्गा मदशुको दीप्तो भूषितो दिव्यभूषणैः । ऐन्द्रविष्टरमारुढो महानेप महीपते ॥१९८॥

इति इन्द्राभिपेक्ष ।

ततोऽयमानतानेतान् सत्कृत्य सुरमत्तमान् । पदेषु स्थापयन् स्वेषु विधिदाने प्रवर्त्तने ॥१९९॥

स्वविमानद्विदानेन प्रीणितैर्विबुधैर्वृतः । सोऽनुभुङ्क्ते चिर काल सुकृती सुगमामरम् ॥२००॥

तदेतद्विधिदानेन्द्रसुखोदयविकल्पितम् । क्रियाद्वय समाम्नात स्वर्लोकप्रमवोचितम् ॥२०१॥

इति विधिदानसुखोदयौ ।

ऊपर लिखे अनुसार योगोका समाधान कर अर्थात् मन, वचन, कायको स्थिर कर जिसने प्राणोका परित्याग किया है ऐसा साधु पुण्यके आगे-आगे चलनेपर इन्द्रोपपाद क्रियाको प्राप्त होता है ॥१९०॥ देवोंके स्वामी इन्द्र कहलाते हैं, तपश्चरणके बलसे उन इन्द्रोमे जन्म लेना इन्द्रोपपाद कहलाता है । वह इन्द्रोपपादक्रिया अहत्प्रणीत मोक्षमार्गका सेवन करनेवाले जीवोंके ही होती है ॥१९१॥ तदनन्तर वह इन्द्र उसी उपपाद शय्यापर क्षण-भरमे पूर्णयौवन हो जाता है और दिव्य तेजसे देदीप्यमान होता हुआ परमानन्दमे निमग्न हो जाता है ॥१९२॥ वह अणिमा महिमा आदि आठ असाधारण गुणोंसे सहित होता है और साथ-साथ उत्पन्न हुए वस्त्र, दिव्यमाला, तथा मणिमय आभूषणोंसे सुशोभित होता है । दिव्य माहात्म्यसे उत्पन्न हुए उत्कृष्ट प्रभावको धारण करता हुआ वह इन्द्र दिव्य अवधिज्ञानरूपी ज्योतिके द्वारा जान लेता है कि मैं इन्द्रपदमे उत्पन्न हुआ हूँ ॥१९३-१९४॥ यह इन्द्रोपपाद नामकी तैत्तीसवी क्रिया है ।

पर्याप्तक होते ही जिसे अपने जन्मका ज्ञान हो गया है ऐसे इन्द्रका फिर उत्तमदेव लोग इन्द्राभिपेक्ष करते हैं ॥१९५॥ दिव्य सगीत, दिव्य बाजे, दिव्य मंगलगीतोंके शब्द और अप्सराओंके विचित्र नृत्योंसे जिसका इन्द्राभिपेक्ष सम्पन्न हुआ है, जो अपने साम्राज्यके मुख्य चिह्नस्वरूप देदीप्यमान मुकुटको धारण कर रहा है, हर्षको प्राप्त हुए करोड़ों देव जिसका जयजयकार कर रहे हैं, जो उत्तम मालाएँ और वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा देदीप्यमान वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित है ऐसा वह इन्द्र इन्द्रके पदपर आरूढ होकर अत्यन्त पूजाको प्राप्त होता है ॥१९६-१९८॥ यह चौतीसवी इन्द्राभिपेक्ष क्रिया है ।

तदनन्तर नम्रीभूत हुए इन उत्तम-उत्तम देवोंको अपने-अपने पदपर नियुक्त करता हुआ वह इन्द्र विधिदान क्रियामे प्रवृत्त होता है ॥१९९॥ अपने-अपने विमानोंकी ऋद्धि देनेसे सन्तुष्ट हुए देवोंसे घिरा हुआ वह पुण्यात्मा इन्द्र चिरकाल तक देवोंके सुखोका अनुभव करता है ॥२००॥

१ गते सति । २ अग्रेसरत्वम् । ३ संभूत ल०, द० । ४ इन्द्र । ५ निजविमानैश्वर्यवितरणेन । ६ अमरसवन्धि ।

प्रोक्तास्त्विद्रोपपानामिपेकदानं सुरादया । इन्द्रत्यागाख्यमनुना सप्रवन्ध क्रियातरम् ॥२०२॥
 किञ्चिन्मात्रावशिष्टायां स्वस्यामायु स्थितौ सुरद^२ । बुद्ध्वा स्वर्गावतारं स्व सोऽनुशास्यमरानिति २०३
 भो भो सुधाशना यूयमस्मामि पालिताश्चिरम् । केचित् पित्राघिता^३ केचित् पुत्रप्रीत्योपलालिता ॥२०४॥
 पुरोधोमयमात्यानां पदे कचिन्नियोजिता । वयस्यपीठमर्दायस्थाने दृष्टाश्च कचन ॥२०५॥
 स्वप्राणनिर्विशेषं च^४ केचिन् प्रागाय समता । कचि मा यपदं दृष्टा^५ पालका^६ स्वर्निवासिनाम् ॥२०६॥
 कचिच्चमूचरस्थानं^७ केचिच्च स्थजनास्थया । प्रजासामा यमय च केचिच्चानुचरा पृथक् ॥२०७॥
 कचित् परिजनस्थानं कचिच्चान्तपुरे चरा । काश्चिद् वल्लभिका दन्त्यो महादव्यश्च काश्चन ॥२०८॥
 इत्यसाधारणा प्रीतिमया युष्मासु दर्शिता । स्वामिमन्त्रिश्च युष्मामिमम्यसाधारणी धृता ॥२०९॥
 साम्प्रत स्वर्गयोगपु गतो मन्दच्छतामहम् । प्रत्यासन्ना हि मे लक्ष्मीरथ भूलोकगोचरा ॥२१०॥
 युष्मत्साक्षितं तत् कुरु स्वःसाम्राज्यमयोजितम् । यश्चान्यो मत्समो मावी तस्मै सर्वं समर्पितम् ॥२११॥
 इत्यनुसुकतां तेषु मादयन्ननुशिष्यं^८ तान् । कुवन्तिद्रपदत्यागं स व्यथां नैति^९ धीरधी ॥२१२॥
 इन्द्रत्यागक्रिया सैषा तत्स्वर्गागतिरसजनम् । धीरास्थजन्त्यनायासादैव तादृशमप्यहो ॥२१३॥

इति इन्द्रत्यागः ।

इस प्रकार स्वर्गलोक में उत्पन्न होनेके योग्य ये विधिदान और इन्द्र सुखोदय नामकी दो क्रियाएँ मानी गयी हैं ॥२०१॥ ये पैंतीसवीं और छत्तीसवीं विधिदान तथा सुखोदय क्रियाएँ हैं ।

इस प्रकार इन्द्रोपपाद, इन्द्रामिपेक विधिदान और सुखोदय ये इन्द्र सम्बन्धी चार क्रियाएँ कही । अब इन्द्रत्याग नामकी पृथक् क्रियाका निरूपण करता हूँ ॥२०२॥ इन्द्र जब अपनी आयुकी स्थिति थोड़ी रहनेपर अपना स्वर्गसे च्युत होना जान लेता है तब वह देवोंको इस प्रकार उपदेश देता है ॥२०३॥ कि भो देवो मैंने चिरकालसे आपका पालन किया है, कितने ही देवोंको मैंने पिताके समान माना है, कितने ही देवोंको पुत्रके समान बड़े प्रेमसे खिलाया है, कितने ही को पुरोहित, मन्त्री और अमात्यके स्थानपर नियुक्त किया है, कितने ही को मने मित्र और पीठमर्दके समान देखा है । कितने ही देवोंको अपने प्राणोंके समान मानकर उन्हें अपनी रक्षाके लिए नियुक्त किया है, कितने ही को देवोंकी रक्षाके लिए सम्मानयोग्य पद पर देखा है, कितने ही को सेनापतिके स्थानपर नियुक्त किया है कितने ही को अपने परिवारके लोग समझा है, कितने ही को सामान्य प्रजाजन माना है, कितने हीको सेवक माना है कितने हीको परिजनके स्थानपर और कितने ही को अन्त पुरमें रहनेवाले प्रतीहारी आदिके स्थानपर नियुक्त किया है । कितनी ही देवियोंको वल्लभिका बनाया है और कितनी ही देवियोंको महादेवी पदपर नियुक्त किया है, इस प्रकार मैंने आप लोगोंपर असाधारण प्रेम दिखलाया है और आप लोगोंने भी हमपर असाधारण प्रेम धारण किया है ॥२०४-२०९॥ इस समय स्वर्गके भोगोंमें मेरी इच्छा मन्द हो गयी है और निश्चय ही पृथिवी लोककी लक्ष्मी आज मेरे निकट आ रही है ॥२१०॥ इसलिए आज तुम सबकी साक्षीपूवक मैं स्वर्गका यह समस्त साम्राज्य छोड़ रहा हूँ और मेरे पीछे मेरे समान जा दूसरा इन्द्र हानेवाला है उसके लिए यह समस्त सामग्री समर्पित करता हूँ ॥२११॥ इस प्रकार उन सत्र दशोंमें अपनी अनुत्कण्ठा अथान् उन्मासीनताका अनुभव करता हुआ इन्द्र उन सत्रके लिए शिक्षा दे और धीरवीर बुद्धिका धारक हो, इन्द्र पदका त्याग कर दुःखी न हो ॥२१२॥ इस तरह जा स्वर्गके भागाका त्याग करता है वह इन्द्रत्याग किया है । यह भी एक

१ विधिदान । २ स्वर्ग । ३ ल । ४ पिता इवाचरिता । ५ कामावाय । ६ समान यथा भवति तथा । ७ भोगस्थान इत्यर्थ । ८ सेनापति । ९ तत् कारणान् । १० न मच्छति ।

अवतारत्रियाऽस्य न्या नन सपरिवर्तन । इत्याहं न्यान्यान्ते स्वगात्रागिरान ॥२१५॥

सोऽय नृज-समप्राप्त्य। निजि न्यानित्यापुत्र । चेत्, निन्दनमन्याया नमाऽत्ते गुर्गागिर ॥२१६॥

शुभे पांडुनि चमे सन्नुचितमहोदय । तदा न्यागतगन्या न्यागीमनुते न्याम ॥२१७॥

इति इन्द्रावतार ।

ततोऽवर्तनीयो गर्भेऽयै रगतमंगुहोपमे । जनयि-यो महादेव्या श्रीदेवीभिर्विजोतिरे ॥२१८॥

हिरण्यवृष्टि धनदे प्राक् पद्मान्यान् प्रवयति । अन्याय,न्यामिपानन्दान स्वर्गमपदि भगन्म ॥२१९॥

अमृतध्वनने मन्दमावानि न्यासर्मागमे । भदेव्या इर नि श्यामे प्रमृसे पवनार्मे ॥२२०॥

दुन्दुभि चनिने मन्द्रमुद्रिने पयि चाधुचाम । अकाल्मनितागद्गमान्प्रनि जिगण्डिनाम ॥२२१॥

मन्दारवज्रममृनिमामोदाहृतपद्मम् । मुजन्तु गुणकापेणु निश्यामपगुतागिनाम ॥२२२॥

देवीपृथ्वरन्तीपु देवी भुवनमानरम् । लब्ध्या सम समान य श्रीर्धाधीश्वरिर्कानिपु ॥२२३॥

कस्मिश्चित् मुकुताधामे पुण्ये राजपमन्त्रिः । हिरण्यगर्भो धनऽयो निरगयोऽष्टजन्मनाम् ॥२२४॥

हिरण्यसूचितोऽष्टजन्मन्यान् तयाश्रुनिम् । विभ्रागा न क्रिया यत्ते गर्भन्धोऽपि त्रिचोऽभून् ॥२२५॥

इति हिरण्यजन्मना ।

राजचर्यकी वान हे कि धीरवीर पुण्य स्वर्गके वमे तेश्वर्यको भी बिना किर्गो कष्टके छोड देने ॥२१३॥ इस प्रकार यह मैनीमत्री इन्द्रत्याग क्रिया है ।

तदनन्तर-जो इन्द्र आयुके अन्तमे अरहन्तदेवता पूजन कर स्वर्गमे अवतार लेना चाहता है उसके आगेकी अवतार नामकी क्रिया होती है ॥२१४॥ मै मनुष्य-जन्म पाकर बहुत शीघ्र मोक्ष प्राप्त किया चाहता हूँ यही विचार कर वह इन्द्र अपना चित्त सिद्ध भगवान्को नमस्कार करनेमे लगाता है ॥२१५॥ शुभ सोलह स्वप्नोके द्वारा जिसने अपना बड़ा भारी अभ्युदय - माहात्म्य सूचित किया है ऐसा वह इन्द्र उस समय कल्याण करनेवाली स्वर्गावतार नामकी क्रियाको प्राप्त होता है ॥२१६॥ यह अडतीसवी इन्द्रावतार क्रिया है ।

तदनन्तर - वे माता महादेवीके श्री आदि देवियोंके द्वारा शुद्ध किये हुए रत्नमय गर्भागारके समान गर्भमे अवतार लेते हैं ॥२१७॥ गर्भमे आनेके छह महीने पहलेसे जब कुबेर घरपर रत्नोकी वर्षा करने लगता है और वह रत्नोकी वर्षा ऐसी जान पडती है मानो आनन्दसे स्वर्गकी सम्पदा ही भगवान्के साथ-साथ पृथिवीतलपर आ रही हो, जब अमृतके समान सुख देनेवाली वायु मन्द-मन्द वहकर सब दिशाओमे फैल रही हो तथा ऐसी जान पडती हो मानो पवनकुमार देवोके द्वारा निर्माण किया हुआ पृथिवीरूपी देवोका निश्वास ही हो, जब आकाशमे उठी हुई - फैली हुई दुन्दुभि बाजोकी गम्भीर आवाज मयूरोको असमय मे होनेवाली मेघगर्जनाकी शका उत्पन्न कर रही हो, जब गुह्यक नामके देवोके समूह कभी म्लान न होनेवाली और सुगन्धिके कारण भ्रमरोको अपनी ओर खींचनेवाली कल्पवृक्षके फूलोकी मालाओको बरसा रहे हो । और जब श्री, ह्री, बुद्धि, धृति और कीर्ति नामकी देवियाँ लक्ष्मीके साथ आकर स्वयं जगन्माता महादेवीकी सेवा कर रही हो उस समय पुण्यके निवासभूत किसी पवित्र राजमन्दिरमे वे हिरण्यगर्भ भगवान् हिरण्योत्कृष्ट जन्म धारण करते हैं ॥२१८-२२३॥ जो गर्भमे स्थित रहते हुए भी तीन ज्ञानको धारण करनेवाले हैं ऐसे भगवान्, हिरण्य

१ सोऽह ल० । २ झटिति । ३ नमस्कारे । ४ समाहित कुस्ते । ५ गच्छति । ६ जनन्या । 'जनयित्री प्रसूमाता जननी' इत्यभिधानात् । ७ श्रीह्रीधृत्यादिभि । ८ सहागच्छन्त्याम् । ९ अमृतवदाह्लादकरमास्ते । १० व्याप्तमास्ते ल० । ११ वायुकुमारै । १३ देवभेदेषु । १३ स्वय ल० । १४ पुण्यस्थाने । १५ हिरण्योत्कृष्टजन्मताभिधानम् ।

विशेषर जगन्माता महादेवी महात्म्या । पूजा सुमङ्गला यति धरो ऽङ्घ्रि जिनाम्बिका ॥२२५॥

कुलाद्रिनिष्ठा दयः श्रीर्हीर्षीधृतिमानसः । मम लक्ष्म्या पङ्कजाश्च समता जिनमातृकाः ॥२२६॥

जगन्मानसरागायनैः सुमन्त्रैर्देवमुदमि । योऽभिषेकविधिः क्षीरपयाधेः क्षुधिभिर्जलैः ॥२२७॥

मन्दराभिषेकाद्या क्रिया स्य परमहिनः । मा पुन सुप्रसीतयाद् भूया नह प्रसम्यत ॥२२८॥

इति मन्दरान्द्राभिषेकः ।

तत्ता विद्यापद्मना स्य स्वयम्भुवः स्वयम्भुवः । विष्यभाष्यवतिमागित^१गुरुपूजोपलम्भनम् ॥२२९॥

गदुम्भा पूजयन्मन आगार त्रिजगद्गुरुम् । अतिक्षिताऽपि दयस्य सततोऽसीति चिरिमताः ॥२३०॥

इति गुरुपूजनम् ।

तत कुमारश्लेऽस्य पावशाज्यापलम्भनम् । पक्षवन्धाभिषेकश्च तदास्य स्यान्महाजसः ॥२३१॥

इति पावशाज्यम् ।

स्वराज्यमभि राज्यऽभिषेकस्यास्य क्षितीधरैः । शासताः साण्णपामना क्षितिमप्रतिज्ञासनाम् ॥२३२॥

इति स्वराज्यम् ।

चक्रलामा भवदस्य निधिरस्यमुद्रये । त्रिजगद्विभिः पूजा साभिषेकाधिराक्षिति ॥२३३॥

इति चक्रलाम ।

अर्थात् सुवर्णकी वपसि जन्मकी उत्पृष्टता सुगिता होनेके कारण हिरण्योत्पृष्ट जन्म इस साथक नामकी धारण करनेवाली क्रियाकी धारण गरते ६ ॥२२४॥ यह जनतालीसवी हिरण्यात्पृष्ट जन्मता क्रिया है ।

उस समय वह भगवान्की माता विद्येश्वरी, जगन्माता, महादेवी, महासती, पूज्या और सुमङ्गला इत्यादि नामोंकी धारण गरती है ॥२२५॥ गुलाचलोंपर रहनेवाली श्री, ह्री, बुद्धि, धृति, कीर्ति और लक्ष्मी ये छह देवियाँ जिन्मातृका अर्थात् जिनमाताकी सेवा करनेवाली कहलाती हैं ॥२२६॥ जगत्के आन्तर आये हुए द्वात्रोंके द्वारा मेरु पर्वतके मस्तक पर क्षीरसागरके पवित्र जलसे भगवान्का जो अभिषेक किया जाता है वह उन परमेश्वीकी मन्दराभिषेक किया है । यह किया अत्यन्त प्रसिद्ध है इसलिए यहाँ उसका फिरसे विस्तार नहीं किया जाता है ॥२२७-२२८॥ यह चालीसवीं मन्दराभिषेक क्रिया है ।

तदनन्तर स्वयम्भु और स्वयम्भू रहनेवाले भगवान्को विद्याओंकी उपदेश होता है । वे शिष्यभावके बिना ही गुरुकी पूजाको प्राप्त होते हैं अर्थात् किसीके शिष्य हुए बिना ही सबके गुरु कहलाने लगते हैं ॥२२९॥ उस समय द्वात्र लोग आकर हे देव, आप अशिक्षित होनेपर भी सबको मान्य हैं इस प्रकार आदर्योंको प्राप्त होते हुए सबकी रक्षा करनेवाले और तीनों जगत्के गुरु भगवान्की पूजा गरते हैं ॥२३०॥ यह द्वातालीसवीं गुरुपूजा क्रिया है ।

तदनन्तर कुमारका आगेपर उहे युवराजपदकी प्राप्ति होती है, उस समय महा प्रतापवान् उन भगवान्को राजगद्ग योषा जाता है और अभिषेक किया जाता है ॥२३१॥ यह चालीसवीं है ।

राजाधिराज (सम्राट्)के पदपर जिन्मा अभिषेक किया पदपदकी पृथिवीका शासन करत है ऐसे उन तैतालीसवीं स्वराज्य किया है ।

उह पदकी प्राप्ति होती है उस समय

१ गुररिति भाव । ४ पूजयन्मन

विश्वेश्वरा जगन्माता महादेवी महासती । पूज्या सुमङ्गला चेति धत्ते रुद्रिं जिनाम्बिका ॥२२५॥
कुलाद्रिनिलया दम्य श्रीहृषीकेशीतय । सम लक्ष्म्या पद्मेताश्च समता जिनमातृका ॥२२६॥
जन्मान्तरमायातै सुरद्वैर्मेरुमूदनि । योऽभिपेकविधि क्षीरपयोधे शुचिभिजलै ॥२२७॥
मन्दरद्रामिपेकोऽसौ क्रियाऽस्य परमेष्ठिन । सा पुन सुप्रतीतत्वाद् भूयो नेह प्रतन्यते ॥२२८॥

इति मन्दरेद्रामिपेक ।

ततो विद्यापद्मशोऽस्य रघतग्रस्थ स्वयमुवः । शिष्यभावावयतिक्रान्तिं गुरुपूजोपलम्भनम् ॥२२९॥
तद्गङ्गा पूजयन् वनं प्रातार त्रिजगद्गुरुम् । अशिक्षितोऽपि दवस्व समतोऽसीति विस्मिता ॥२३०॥

इति गुरुपूजनम् ।

तत कुमारकालेऽस्य यौवराज्योपलम्भनम् । पट्टव्यासमिपेकश्च तदास्य स्यान्महौजस ॥२३१॥

इति यौवराज्यम् ।

स्वराज्यमधि राज्यऽभिषिक्तस्यास्य क्षितीश्वरै । शासत साणधामना क्षितिमप्रतिशासनाम् ॥२३२॥

इति स्वराज्यम् ।

चक्रलामा भवेदस्य निधिरत्नसमुज्ज्वले । निजप्रकृतिभि पूजा सामिपेकाऽधिराडिति ॥२३३॥

इति चक्रलाम् ।

अर्थात् सुवर्णको वर्पसि जन्मकी उत्कृष्टता सूचित होनेके कारण हिरण्योत्कृष्ट जन्म इस साधक नामको धारण करनेवाली क्रियाको धारण करते हैं ॥२२४॥ यह उनतालीसवीं हिरण्योत्कृष्ट जन्मता क्रिया है ।

उस समय वह भगवान्की माता विश्वेश्वरी, जगन्माता, महादेवी महासती, पूज्या और सुमङ्गला इत्यादि नामोको धारण करती है ॥२२५॥ कुलाचलोंपर रहनेवाली श्री, ह्री, बुद्धि, धृति, कीर्ति और लक्ष्मी ये छह देवियाँ जिनमातृका अर्थात् जिनमाताकी सेवा करनेवाली कहलाती हैं ॥२२६॥ जन्मके अनन्तर आये हुए इन्द्रोके द्वारा मेरु पर्वतके भस्मक पर क्षीरसागरके पवित्र जलसे भगवान्का जो अभिषेक किया जाता है वह उन परमेष्ठीकी मन्दराभिषेक किया है । वह किया अत्यन्त प्रसिद्ध है इसलिए यहाँ उसका फिरसे विस्तार नहीं किया जाता है ॥२२७-२२८॥ यह चालीसवीं मन्दराभिषेक किया है ।

तदनन्तर स्वतन्त्र और स्वयम्भू रहनेवाले भगवान्के विद्याओको उपदेश होता है । वे शिष्यभावके बिना ही गुरुकी पूजाको प्राप्त होते हैं अर्थात् किसीके शिष्य हुए बिना ही सबके गुरु कहलाने लगते हैं ॥२२९॥ उस समय इन्द्र लोग आकर हे देव, आप अशिक्षित होनेपर भी सबको मान्य हैं इस प्रकार आदरको प्राप्त होते हुए सबकी रक्षा करनेवाले और तीनों जगत्के गुरु भगवान्की पूजा करते हैं ॥२३०॥ यह इकतालीसवीं गुरुपूजन किया है ।

तदनन्तर कुमारकाल आनेपर उन्हें युवराजपदकी प्राप्ति होती है उस समय महा प्रतापवान् उन भगवान्के राज्यपट्ट बाँधा जाता है और अभिषेक किया जाता है ॥२३१॥ यह बयालीसवीं यावराज्य किया है ।

तत्पश्चात् समस्त राजाओने राजाधिराज (सम्राट्)के पदपर जिनका अभिषेक किया है और जो हमरेक गामनस रहित इस समुद्र पयन्तकी पृथिवीका शासन करते हैं ऐसे उन भगवान्के स्वराज्यकी प्राप्ति हाती है ॥२३२॥ यह तैतालीसवीं स्वराज्य किया है ।

इसके बाद निधियों और रत्नोंकी प्राप्ति होनेपर उन्हें धनकी प्राप्ति होती है उस समय

१ विष्णु वरी ल० । २ शिष्यरामाव । ३ गुरुपूजाप्राप्ति । स्वस्य स्वयमेव गुरुरिति भाव । ४ पूजयन्त्यन ल० ५ २३१ । ६ आगमापप्रजापरिवार ।

विलसद्यद्वासूत्रेण प्रविभक्ततनुमति । तदनिग्रसरसपातरम्यमूर्तिरिवाद्रिप ॥२४५॥
 सद्गजकृक प्रोचै दिशर भुजयोयुगम् । द्वाधिमश्लाधि विभ्रान १ कुलक्षमाध्वयायितम् ॥२४६॥
 कर्मिणलससक्तलस काशीपरिच्छद । महाद्वीप इवोपातरसवेदोपरिच्छत २ ॥२४७॥
 मन्दारकुसुमामोदलमालिकुलशङ्कतै ३ किमप्यारधमगीतमिव शोखरमुद्रहन् ॥२४८॥
 तल्लालोचितमयच्च दधन्मङ्गलभूषणम् । स तदा लक्ष्यत साक्षालभ्या पुञ्ज इवोच्छिख ४ ॥ ४९॥
 प्राताश्चाभिष्टुबन्त्यन तदामी नृपसत्तमा । विश्वजयो दिशा जेता दिव्यमूर्तिर्भवागिति ॥२५०॥
 पारा प्रकृतिमुप्याश्च कृतपादाभिपेचना । तत्क्रमाचनमादाय कुवन्ति स्वशिरोधृतम् ॥२५१॥
 श्रीदम्यश्च सरिदैव्यो ५ दम्यो विश्वेश्वरा अपि । समुपस्थ नियोगे स्वैस्तदन पयुपासते ॥२५२॥
 इति चक्राभिषेक ॥

चक्राभिषेक इत्येक समाख्यात क्रियाविधि । तदनन्तरमस्य स्थात् साम्राज्याख्य क्रियातरम् ॥२५३॥
 अपरधर्दिनारम्भ धृतपुण्यप्रसाधनः । मध्ये महानृपसम ६ नृपासनमधिष्ठित ॥२५४॥
 दाम्रै प्रकीणकजातै स्वधुनीसीकरोज्ज्वलै । वारनारीकराभूतैर्वीर्यमान समन्वित ॥२५५॥
 सवागते धृथिव्यादिदवतारै ७ परिच्छत ८ इतिप्रशातदीप्त्योजो ९ निमलत्वोपमा १० दिशि ॥२५६॥

पक्षिके समान चञ्चल तथा बड़े बड़े मोतियोसे युक्त हार धारण किये हुए ह शोभायमान यज्ञो
 पवीतसे जिनके शरीरकी उच्चता प्रकट हो रही है और इसी कारण जो तटपर पड़ते हुए
 निक्षरनोसे सुन्दर आकारवाल सुमेरु पर्वतके समान जान पड़ते हैं, जो रत्नोंके कटक अर्थात् कड़ो
 (पक्षम रत्नमय मध्यभागो) से सहित, ऊँचे-ऊँचे शिखरों अर्थात् कंधों (पक्षम चोटियो) से
 युक्त, लम्बाईसे सुशोभित और इसलिए ही दो कुलाचलोंके समान आवरण करनेवाली दो
 भुजाओंको धारण कर रहे ह, जिनकी कमरपर देदीप्यमान करधनी सटी हुई है और उससे जो
 ऐसे जान पड़ते ह मानो चारों ओरसे रत्नमयी वेदीके द्वारा घिरा हुआ कोई महाद्वीप ही हो जो
 मन्दार वृक्षके फूलोंकी सुगन्धिके कारण आकर लगे हुए भ्रमरोंके समूहकी प्रकारसे कुछ गाते
 हुएक समान सुशोभित होनेवाल शखरको धारण कर रहे ह तथा उस कालके योग्य अन्य अय
 मागलिक आभूषण धारण किये हुए ह ऐसे वे भगवान् उस समय ऐसे जान पड़ते हैं मानो
 जिसकी गिखा ऊँची उठ रही है ऐसा साक्षात् लक्ष्मीका पुज ही हो ॥२४९ २४९॥ उस समय
 अन्य उत्तम-उत्तम राजा लोग सन्तुष्ट होकर उनकी इस प्रकार स्तुति करते हैं कि आपने समस्त
 ससारका जीत लिया है आप दिशाओंको जीतनेवाल हैं और दिव्यमूर्ति ह ॥२५०॥ नगरनिवासी
 लोग तथा मन्त्री आदि मुख्य मुख्य पुरुष उनके चरणोंके अभिषेक करते हैं और उनका चरणोदक
 लेकर अपने-अपने मस्तकपर धारण करते ह ॥२५१॥ श्री ह्रीं आदि देवियाँ गंगा सिन्धु
 आदि देवियाँ तथा विश्वेश्वरा आदि देवियाँ अपने-अपने नियोगोंके अनुसार आकर उस समय
 उनकी उपामना करती ह ॥२५२॥ यह चक्राभिषेक नामकी छियालीसवी क्रिया है ।

इस प्रकार उनकी यह एक चक्राभिषेक नामकी क्रिया कही । अब इसके बाद साम्राज्य
 नामकी दूसरी क्रिया कहत ह ॥२५३॥ दूसर दिन प्रात कालक समय जिन्होंने पवित्र आभूषण धारण
 किय ह जो बड़े-बड़े राजाओंकी समावे धीचम गजसिंहासनपर विराजमान ह जिनपर देदीप्यमान
 गंगा नदीके जलक छीटाक ममान उज्ज्वल और गणिकाओंके हाथस हिलामे हुए चमर चारों
 ओरग दलाय जा रहे ह जा धृति नाति दीप्ति, आज और निमलताकी उत्पन्न करनेवाल

१ दपेन इमाधि । २ परिवर्द्धित । ३ इषद् । ४ गङ्गाव्याप्य । ५ दविशालवार । ६ महानृपसभाया मध्य ।
 ७ पृथिव्यादिदवतारै इत्यर्थ । ८ भूषित । ९ दत्तम् । १० आभा दीप्ती बले
 इत्यभिधानात् । १० उपासक ।

नाना प्रजापुत्राः नि य सम्यग्गतेन योगेन । राजापालनार्थं प्र प्रवृत्तः सन् ॥२५॥
 पालितान् प्रजापुत्रान् यत्नं न्यायं पालयन् प्रजा । न्यायं प्रवृत्ताधेः उत्तिष्ठति ॥२६॥
 न्यायश्च त्रितयो दृष्टविश्वः शिष्टपात्रमम् । तेषां यदाहं शोभे शोभे ॥२७॥
 दिव्याम्बुदेवतापान्तरागं वा न्यायं पालयन् । तस्मिन्नुत्प्रसन्नमिव सन् ॥२८॥
 राजवृत्तिमिमां सन्त्यक्तं पालयन्ति स्मिन्नि । तस्मिन्नुत्प्रसन्नमिव सन् ॥२९॥
 पालयन् इमं धर्मं स यत्नं विचार्य नरा । इमां यत्नं विचार्य मां नि त्रितयो न्यायं विचार्य ॥३०॥
 इति न्यायं राजापालनं न्यायं प्रवृत्तः सन् । तस्मिन्नुत्प्रसन्नमिव सन् ॥३१॥
 इति न्यायं राजापालनं न्यायं प्रवृत्तः सन् । तस्मिन्नुत्प्रसन्नमिव सन् ॥३२॥
 इति न्यायं राजापालनं न्यायं प्रवृत्तः सन् । तस्मिन्नुत्प्रसन्नमिव सन् ॥३३॥
 इति न्यायं राजापालनं न्यायं प्रवृत्तः सन् । तस्मिन्नुत्प्रसन्नमिव सन् ॥३४॥
 इति न्यायं राजापालनं न्यायं प्रवृत्तः सन् । तस्मिन्नुत्प्रसन्नमिव सन् ॥३५॥

एव प्रजा प्रजापालनं पालयन्ति स्मिन्नि । तस्मिन्नुत्प्रसन्नमिव सन् ॥३६॥

पृथिवी आदि देवताओंके अंगोमें अर्थात् उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोमें हैं, जो उन देवताओंको समाधानपूर्वक निरन्तर प्रजाके उत्पन्न करनेमें लगा रहे हैं और आदर नस्ते, दान तथा विद्वान् आदिमें जो मन्त्री आदि प्रमुख कार्यकर्ताओंको आनन्दित रह रहे हैं तमें वे महाराज नमस्कार करते हुए राजाओंको इस प्रकार शिक्षा देते हैं कि तुम लोग न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करो, यदि अन्यायमें प्रवृत्ति रगोमें नों अवश्य ही तुम्हारी वृत्तिना लोप हो जावेगा ॥२५४-२५८॥ न्याय दो प्रकारका है - एक दुष्टोका निग्रह करना और दूसरा शिष्ट पुरुषोंका पालन करना । यह क्षत्रियोका मनानन धर्म है । राजाओंको उनकी रक्षा अच्छी तरह करनी चाहिए ॥२५९॥ ये दिव्य अम्बोंके अधिष्ठाता देव भी विधिपूर्वक आराधना करने योग्य हैं क्योंकि उनके प्रसन्न होनेपर युद्धमें विजय अवश्य ही होती है ॥२६०॥ इस राजवृत्तिका अच्छी तरह पालन करते हुए आप लोग आलस्य छोड़कर प्रजाके साथ न्याय-मार्गमें वर्तव्य करो ॥२६१॥ जो राजा इस धर्मका पालन करता है वह धर्मविजयी होता है क्योंकि जिसने अपना आत्मा जीत लिया है तथा न्यायपूर्वक जिसकी आजीविका है ऐसा क्षत्रिय ही पृथिवीको जीत सकता है ॥२६२॥ इस प्रकार न्यायपूर्वक वर्तव्य करनेसे इस मसारमें यशका लाभ होता है, महान् वैभवके साथ पृथिवीकी प्राप्ति होती है, और परलोकमें अभ्युदय अर्थात् स्वर्गकी प्राप्ति होती है और अनुक्रमसे वह तीनों लोकोंको जीत लेता है अर्थात् मोक्ष अवस्था प्राप्त कर लेता है ॥२६३॥ इस प्रकार वे महाराज प्रजापालनकी रीतियोंके विषयमें उन राजाओंको बार-बार शिक्षा देते हैं तथा योग और क्षेमका बार-बार चिन्तन करते हुए उनका स्वयं पालन करते हैं ॥२६४॥ इस प्रकार यह उनकी धर्मसहित साम्राज्य नामकी वह क्रिया है जिसके कि पालन करनेमें यह जीव इस लोक तथा परलोक दोनों ही लोकोंमें समृद्धिको प्राप्त होता है ॥२६५॥ यह सैता-लीसवी साम्राज्य क्रिया है ।

इस प्रकार बहुत दिन तक प्रजा और राजाओंका पालन करते हुए उन महाराजके किसी समय भेदविज्ञान उत्पन्न होनेपर दीक्षा ग्रहण करनेके लिए उद्यम होने लगता है ॥२६६॥

१ पृथिव्यादिदेवताशान् । २ स्नेहं विश्वासं । ३ प्रवृत्तिश्चेत् ५०, ६०, ८० । ४ निजनिजराज्यलोपो भवति । ५ नियमेन भवति । ६ एव सति । ७ शिक्षा कृत्वा । ८ पालयत्येतान् ६०, ७०, ८० । ९ साम्राज्य-नामक्रियान्तरेण ।

विलसद्महासूत्रेण प्रविभक्तनृपति । तटनिम्नरसपातरम्यमूर्तिरिवाद्रिप ॥२४५॥
 सद्रसकृक प्रोचै शिखर भुजयोयुगम् । द्वाविमद्वलाधि बिभ्राण^१ कुलक्षमाध्रद्वयाधितम् ॥२४६॥
 कटिमण्डलससकलसत्काञ्चीपरिच्छद । महाद्वीप इवोपातरसवेदापरिष्कृत^२ ॥२४७॥
 मन्दारकुसुमाभोदलभालिकुलक्षकृतैः ।^३ किमप्यारधमगीतमिय शीखरमुद्वहन् ॥२४८॥
 तत्कालोचितमयश्च दधन्मङ्गलभूषणम् । स तदा लक्ष्यते साक्षालुप्या पुञ्ज इवोच्छित ॥ ४९॥
 धाताश्चाभिष्टुवन्त्येन तदामी नृपसत्तमा । विश्वजयो दिशा जता दिव्यमूर्तिमयानिति ॥२५०॥
 पौरा प्रकृतिमुख्याश्च कृतपादाभिषेचना । तक्रमाचनमाद्राय कुवन्ति स्वशिरोधृतम् ॥२५१॥
 श्रीदम्यश्च सरिरेव्यो^४ दव्यो विश्वेश्वरा अपि । समुपेय नियोगः स्वैस्तदन पयुपासते ॥२५२॥
 इति चक्राभिषेक ।

चक्राभिषेक इत्येक समाप्त्यात् क्रियाविधि । तदनन्तरमस्य स्यात् साम्राज्याख्य क्रियान्तरम् ॥२५३॥
 अपरयुर्दिनारम्भ एतदुप्यप्रसाधन । मध्ये महानृपसम^५ नृपासनमधिष्ठित ॥२५४॥
 दाम्रै प्रकीणकवातै स्वधुनीसीकरोज्ज्वलै । धारनारीकराधृतैर्वीज्यमान समन्वत^६ ॥२५५॥
 सेवागते द्युधिमादिदेवतांश^७ परिष्कृत^८ । धृतिप्रशातदीप्त्योजो^९ निमलत्वोपमा^{१०} द्विमि ॥२५६॥

पवित्रके समान चचल तथा बड़े-बड़े मोतियोसे युक्त हार धारण किये हुए ह, शोभायमान यज्ञो पवीतसे जिनके शरीरकी उच्चता प्रकट हो रही है और इसी कारण जो तटपर पड़ते हुए निम्नरसोसे सुन्दर आकारवाल सुमेरु पर्वतके समान जान पड़ते ह जो रत्नोंके कटक अर्थात् कड़ो (पक्षम रत्नमय मध्यभागो) से सहित, ऊँचे ऊँचे शिखरो अर्थात् कंधों (पक्षम चोटियों) से युक्त, लम्बाईसे सुशोभित और इसलिए ही दो कुलाचलोके समान आचरण करनेवाली दो भुजाओको धारण कर रहे है जिनकी कमरपर देदीप्यमान करधनी सटी हुई है और उससे जो ऐसे जान पड़ते ह मानो चारों ओरसे रत्नमयी वेदीके द्वारा घिरा हुआ कोई महाद्वीप ही हो, जो मन्दार वृक्षके फूलोंकी सुगंधिके कारण आकर लगे हुए भ्रमरोके समूहकी झकारोसे कुछ गाते हुऐके समान सुशोभित होनेवाले शीखरको धारण कर रहे ह तथा उस कालके योग्य अन्य अय मागलिक आभूषण धारण किये हुए है ऐसे वे भगवान् उस समय ऐसे जान पड़ते है मानो जिसकी शिखा ऊँची उठ रही है ऐसा साक्षात् लक्ष्मीका पुज ही हो ॥२४१ २४९॥ उस समय अन्य उत्तम-उत्तम राजा लोग सत्पुत्र होकर उनकी इस प्रकार स्तुति करते है कि आपने समस्त संसारको जीत लिया है आप दिशाओको जीतनेवाल ह और दिव्यमूर्ति ह ॥२५०॥ नगरनिवासी लोग तथा मन्त्री आदि मुख्य-मुख्य पुरुष उनके चरणोके अभिषेक करते ह और उनका चरणोदक लेकर अपने अपने मस्तकपर धारण करते ह ॥२५१॥ श्री ह्री आदि देवियाँ गंगा सिन्धु आदि देवियाँ तथा विन्वेश्वरा आदि देवियाँ अपने-अपने नियोगाके अनुसार आकर उस समय उनकी उपासना करती ह ॥२५२॥ यह चक्राभिषेक नामकी छियालीसवी क्रिया है ।

इस प्रकार उनकी यह एक चक्राभिषेक नामकी क्रिया कही । अब इसके बाद साम्राज्य नामकी दूसरी क्रिया कहत ह ॥२५३॥ दूसरे दिन प्रात बालके समय जिन्होंने पवित्र आभूषण धारण किये हैं, जा बड़े-बड़े राजाओकी सभाके बीचमें राजसिंहासनपर विराजमान हैं जिनपर देदीप्यमान गंगा नदीके जलके छोटोके समान उज्ज्वल और गणिकाओके हाथस हिलाये हुए चमर चारा ओरस दुलाय जा रहे हैं जो धृति, शान्ति, दीप्ति, ओज और निमलताको उत्पन्न करनेवाल

१ दधेन नापि । २ परिवर्धित । ३ यद् । ४ मङ्गादेभ्याम् । ५ पवित्रालङ्कार । ६ मन्त्रानुसमाया मध्य । ७ पृथिव्यक्षेत्रायां युगमनाधिदेवताविजितारोह इत्यर्थ । ८ भूषित । ९ बलम् । आशा दीप्तो बल इत्यभिधानात् । १० उन्मत्त ।

सैषा निष्क्रान्तिरस्येष्टा क्रिया राज्याद् विरज्यत । लौकान्तिकामरैर्भूयो बोधितस्य समागतै ॥२६७॥
 कृतराज्यापणो ज्यष्टे सूनौ^१ पार्थिवसाक्षिकम् । सत्तानपालने चास्य करोतीत्यनुशासनम् ॥२६८॥
 त्वया न्यायधनेनाङ्ग भवितव्य प्रजाधृतौ । प्रजा कामदुषा धेनुमता न्यायेन योजिता ॥२६९॥
 राजवृत्तमिदं विद्धि यन्न्यायेन धनाजनम् । वधन रक्षण चास्य^२ तीर्थे च प्रतिपादनम् ॥२७०॥
 प्रजानां पालनाय च मत मयनुपालनम्^३ । भतिर्हिताहितज्ञानमाश्रिकामुश्रिकाथयो ॥२७१॥
 ततः^४ कृतद्वयजयो वृद्धसयोगलपदा । धर्मार्थ^५ शास्त्रविज्ञानात् प्रज्ञां सस्कनुमहसि ॥२७२॥
 अन्यथा विमतिभूयो^६ युक्तायुक्तानभिज्ञक । अन्यथाऽन्यै प्रणेय^७ स्वान्मिथ्याज्ञानलबोद्धतै ॥२७३॥
 कुलानुपालने चायं महा^८त यत्नमाचरेत् । अज्ञातकुलधर्मो हि दुर्वृत्तैर्दूषयेत् कुलम् ॥२७४॥
 तथायमात्मरक्षाया सदा यत्नपरो भवेत् । रक्षित हि भवेत् सर्वं नृपेणात्मनि रक्षिते ॥२७५॥
 अपायो हि सपत्नेभ्यो^९ नृपस्थारक्षितात्मनः । आत्मानुजीविवर्गाश्च कुद्वलुब्धविमानितात्^{१०} ॥२७६॥
 'तस्माद् रसद्वतीक्षणादीनपायानरियोजितान्'^{११} । परिहृय निजैरिष्टै स्व प्रयत्नेन पालयेत् ॥२७७॥
 स्मात् समञ्जसवृत्तिस्त्वमप्यस्यात्माभिरक्षणे^{१२} । असमञ्जसवृत्तौ हि निजैरप्यभिभूयते ॥२७८॥

जो राज्यसे विरक्त हो रहे हैं और आये हुए लौकान्तिक देव जिन्हें बार-बार प्रबोधित कर रहे हैं ऐसे उन भगवान्की यह निष्क्रान्त नामकी क्रिया कही जाती है ॥२६७॥ वे समस्त राजाओंकी साक्षीपूर्वक अपने बड़े पुत्रके लिए राज्य सौंप देते हैं और सन्तान-पालन करनेके लिए उसे इस प्रकार शिक्षा देते हैं ॥२६८॥ हे पुत्र, तुझे प्रजाके पालन करनेमें न्यायरूप धनसे मुक्त होना चाहिए अर्थात् तू न्यायको ही धन समझ, क्योंकि न्यायपूर्वक पालन की हुई प्रजा मनोरथोंको पूरा करनेवाली कामधेनु गायके समान मानी गयी है ॥२६९॥ हे पुत्र, तू इसे ही राजवृत्त अर्थात् राजाओंका कतव्य समझ कि न्यायपूर्वक धन कमाना, उसकी वृद्धि करना, रक्षा करना तथा तीर्थस्थान अथवा योग्य पात्रोंका देना ॥२७०॥ प्रजाका पालन करने के लिए सबसे अपनी बुद्धिकी रक्षा करनी चाहिए, इस लोक और परलोक दोनों लोकसम्बन्धी पदार्थोंके विषयम हित तथा अहितका ज्ञान होना ही मति कहलाती है ॥२७१॥ इसलिए वृद्ध मनुष्योंकी सगतिरूपी सम्पदासे इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर तुम धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के ज्ञानसे अपनी बुद्धिकी सुसंस्कृत बनानेके योग्य हो अर्थात् बुद्धिके अच्छे सस्कार बनाओ ॥२७२॥ यदि राजा इससे विपरीत प्रवृत्ति करेगा तो वह हित तथा अहितका जानकार न होनेसे बुद्धिभ्रष्ट हो जावेगा और ऐसी दशामें वह मिथ्याज्ञानके अज्ञ मात्रसे उद्धत हुए अथ कुमागगामियोंके वश हो जावेगा ॥२७३॥ राजाओंको अपने कुलकी मर्यादा पालन करने के लिए बहुत भारी प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि जिसे अपनी कुलमर्यादाका ज्ञान नहीं है वह अपने दुराचारसे कुलको दूषित कर सकता है ॥२७४॥ इसके सिवाय राजाको अपनी रक्षा करनेम भी सदा यत्न करते रहना चाहिए क्योंकि अपने आपके सुरक्षित रहनेपर ही अथ सब कुछ सुरक्षित रह सकता है ॥२७५॥ जिसने अपने आपकी रक्षा नहीं की है ऐसे राजाका शत्रुशक्ति तथा क्रोधी लोभी और अपमानित हुए अपने ही सेवकोंसे विनाश हो जाता है ॥२७६॥ इसलिए शत्रुआवे द्वारा किये हुए प्रारम्भम सरल किन्तु फलकालमें कठिन अपायोंका परिहार कर अपने शत्रु वर्गोंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए ॥२७७॥ इसके सिवाय

१ प्रजापती निमित्तम् । २ धनस्य । ३ पात्रे । ४ निजबुद्धिरक्षणम् । ५ ततः कारणम् । ६ नातिग्राह्यम् । ७ भूया इ यं सः । ८ वर्यः । ९ न्यायदेव्य शत्रुभ्यो वा । १० तिरस्कृतान् । ११ तस्मान् कारणान् । १२ रमणामास्यां कुवतामकटुवातीन् रसनकांते अनुमदनकान् स्वादुरसग्रान् विपाककाले कटुवानित्यर्थः । १३ आत्मरक्षानिमित्तम् । - स्मार्तिरण्य अ० पृ० ६० ।

सैषा निष्क्रान्तिरस्येष्टा क्रिया रायाद् विरज्यत । लौकान्तिकामरैर्भूयो बोधितस्य समागतैः ॥२६७॥
 कृतराज्यापणो ज्येष्ठे सुनौ^१ पार्थिवसाक्षिकम् । सत्तानपालने चास्य करोतीयनुशासनम् ॥२६८॥
 त्वया वायधनेनाह भवितव्य प्रजापतौ । प्रजा कामदुघा धेनुमता न्यायन योजिता ॥२६९॥
 राजवृत्तमिदं विद्धि यन्म्यायेन धनाजनम् । वधन रक्षण चास्य^२ तीर्थे च प्रतिपादनम् ॥२७०॥
 प्रजानां पालनाथ च मत मत्पुत्रपालनम्^३ । भतिर्हितहितज्ञानमात्रिकामुत्रिकाथयो ॥२७१॥
 तत्^४ कृतद्रियजयो वृद्धसयोगसपदा । धर्मार्थ^५ शास्त्रविज्ञानात् प्रज्ञां सस्कृतुमहसि ॥२७२॥
 अन्यथा धिमविभूयो^६ युक्तयुक्तानभिज्ञक । अयथाऽयै प्रणेय^७ स्यान्मिथ्याज्ञानलबोद्धतै ॥२७३॥
 कुलानुपालने चाय महान्त यत्नमाचरेत् । अज्ञातकुलधर्मो हि दुवृत्तैर्दूषयेत् कुलम् ॥२७४॥
 तथायमात्सरक्षायां सदा यत्नपरो भवेत् । रक्षित हि भवेत् सर्वं नृपेणात्मनि रक्षिते ॥२७५॥
 अपायो हि सपत्नेभ्यो^८ नृपस्थारक्षितात्मन । आत्मानुजीविबर्गाच्च कुड्मलुब्धविमानितात्^९ ॥२७६॥
 तस्माद् रसदतीक्ष्णादीनपायानरियोजितात्^{१०} । परिहृत्य निजैरिष्टै स्व प्रयत्नेन पालयत् ॥२७७॥
 स्यात् समञ्जसवृत्तित्वमप्यस्यात्माभिरक्षणे^{११} । असमञ्जसवृत्तौ हि निजैरप्यभिभूयते ॥२७८॥

तो राज्यसे विरक्त हो रहे है और आये हुए लौकान्तिक देव जिहें बार-बार प्रबोधित
 कर रहे है ऐसे उन भगवान्की यह निष्क्रान्त नामकी क्रिया कही जाती है ॥२६७॥ वे
 तमस्त राजाओंकी साक्षीपूवक अपने बड़े पुत्रके लिए राज्य सौंप देते हैं और सन्तान-पालन
 करनेके लिए उसे इस प्रकार शिक्षा देते हैं ॥२६८॥ हे पुत्र, तुझे प्रजाके पालन करनेमे न्यायरूप
 धनसे मुक्त होना चाहिए अर्थात् तू यायको ही धन समझ, क्योंकि न्यायपूवक पालन को हुई
 प्रजा मनोरथोंको पूरा करनेवाली कामधेनु गायके समान मानी गयी है ॥२६९॥ हे पुत्र, तू
 इसे ही राजवृत्त अर्थात् राजाओंका कर्तव्य समझ कि न्यायपूवक धन कमाना, उसकी वृद्धि
 करना, रक्षा करना तथा तीर्थस्थान अथवा योग्य पात्रोंका देना ॥२७०॥ प्रजाका पालन करने
 के लिए सबसे अपनी बुद्धिकी रक्षा करनी चाहिए, इस लोक और परलोक दोनों लोकसम्बन्धी
 उद्दार्थके विषयमें हित तथा अहितका ज्ञान होना ही मति कहलाती है ॥२७१॥ इसलिए वृद्ध
 मनुष्योंकी सगतिरूपी सम्पदासे इन्द्रियोपर विजय प्राप्त कर तुम धमशास्त्र और अथशास्त्र
 के ज्ञानसे अपनी बुद्धिको सुसंस्कृत बनानेके योग्य हो अर्थात् बुद्धिके अच्छे सस्कार बनाओ
 ॥२७२॥ यदि राजा इससे विपरीत प्रवृत्ति करेगा तो वह हित तथा अहितका जानकार न
 होनेसे बुद्धिभ्रष्ट हो जावेगा और ऐसी दशामें वह मिथ्याज्ञानके अश मात्रसे उद्धत हुए अय
 कुमागगामियोंके वश हो जावेगा ॥२७३॥ राजाओंको अपने कुलकी मर्यादा पालन करने
 के लिए बहुत भारी प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि जिसे अपनी कुलमर्यादाका ज्ञान नहीं है वह
 अपने दुराचारसे कुलको दूषित कर सकता है ॥२७४॥ इसके सिवाय राजाको अपनी रक्षा
 करनेमें भी सदा यत्न करते रहना चाहिए क्योंकि अपने आपके सुरक्षित रहनेपर ही अय
 सब कुछ सुरक्षित रह सकता है ॥२७५॥ जिसने अपने आपकी रक्षा नहीं की है ऐसे राजाका
 शत्रुआसे तथा क्रोधी लोभी और अपमानित हुए अपने ही सेवकोंसे विनाश हो जाता है ॥२७६॥
 इसलिए शत्रुआके द्वारा किये हुए प्रारम्भम सरल किन्तु फलकालम कठिन अपायोंका परिहार
 कर अपने इष्ट वर्गोंके द्वारा प्रयत्नपूवक अपनी रक्षा करनी चाहिए ॥२७७॥ इसके सिवाय

१ प्रजापती निमित्तम् । २ धनस्य । ३ पात्रे । ४ निजबुद्धिरक्षणम् । ५ तत्त कारणान् । ६ नीतिशास्त्र ।
 ७ भूपाद ५० म । ८ वरप । ९ न्यायेभ्य शत्रुभ्यो वा । १० विरस्तुतान् । ११ तस्मान् कारणान् ।
 १२ रगनामायां कृतात्मकदुष्कान् रसनवाले अनुभवनवाले स्वादुरसप्रान् विपाकवाले कटकानित्यय ।
 १३ आत्मरक्षानिमित्तम् । - रमान्तरण अ० प ६० ।

प्रातिहार्याष्टक दिव्य गगो द्वादशधोदितः । स्तूपहर्म्यावली सालवलय केतुमालिका ॥३०२॥

इत्यादिकामिमां भूतिमद्भुतामुपविभ्रतः । स्थादाहन्त्यमिति ख्यात क्रियान्तरमनन्तरम् ॥३०३॥

इति आहन्त्यक्रिया ।

विहारस्तु प्रतीतार्थो धर्मचक्रपुरस्सरः । प्रपञ्चितश्च प्रागेव ततो न पुनरुच्यते ॥३०४॥

इति विहारक्रिया ।

ततः परार्थसम्पत्त्यै धर्ममार्गोपदेशने । कृततीर्थविहारस्य योगत्यागः परा क्रिया ॥३०५॥

विहारस्योपसहारः सहतिश्च सभावनेः । वृत्तिश्च योगरोधार्था योगत्यागः स उच्यते ॥३०६॥

यच्च दण्डकपाटादिप्रतीतार्थं क्रियान्तरम् । तदन्तर्भूतमेवादस्ततो न पृथगुच्यते ॥३०७॥

इति योगत्यागक्रिया ।

ततो निरुद्धनिःशेषयोगस्यास्य जिनेर्जिनः । प्राप्तशैलेऽवस्थस्य प्रक्षीणा घातिकर्मणः ॥३०८॥

क्रियाग्रनिर्वृतिर्नाम परनिर्वाणमापुषः । स्वभावजनितामूर्ध्वं व्रज्यामास्कन्दतो मता ॥३०९॥

इति अग्रनिर्वृतिः ।

इति निर्वाणपर्यन्ता क्रिया गर्भादिका सदा । मव्यात्मभिरनुप्येयास्त्रिपञ्चाशत्समुच्चयात् ॥३१०॥

यथोक्तविधिनेता स्युरनुप्येया द्विजन्मभिः । योऽप्यत्रान्तर्गतो भेदस्त वच्युत्तरपर्वणि ॥३११॥

प्रातिहार्य आदि बाह्य विभूति प्रकट होती है ॥३०१॥ इस प्रकार आठ प्रातिहार्य, बारह दिव्य सभा, स्तूप, मकानोंकी पक्तियाँ, कोटका घेरा और पताकाओंकी पक्ति इत्यादि अद्भुत विभूति-को धारण करनेवाले उन भगवान्‌के आहन्त्य नामकी एक भिन्न क्रिया कही गयी है ॥३०२-३०३॥ यह आहन्त्य नामकी पचासवी क्रिया है ।

धर्मचक्रको आगे कर जो भगवान्‌का विहार होता है वह विहार नामकी क्रिया है । यह क्रिया अत्यन्त प्रसिद्ध है और पहले ही इसका विस्तारके साथ निरूपण किया जा चुका है इसलिए फिरसे यहाँ नहीं कहते हैं ॥३०४॥ यह इक्यावनवी विहारक्रिया है ।

तदनन्तर धर्ममार्गके उपदेशके द्वारा परोपकार करनेके लिए जिन्होंने तीर्थ विहार किया है ऐसे भगवान्‌के योगत्याग नामकी उत्कृष्ट क्रिया होती है ॥३०५॥ जिसमे विहार करना समाप्त हो जावे, सभाभूमि (समवसरण) विघट जावे, और योगनिरोध करनेके लिए अपनी वृत्ति करनी पडे उसे योगत्याग कहते हैं ॥३०६॥ दण्ड, कपाट आदि रूपसे प्रसिद्ध जो केवलिसमुद्धात नामकी क्रिया है वह इसी योगत्याग क्रियामे अन्तर्भूत हो जाती है इसलिए अलगसे उसका वर्णन नहीं किया है ॥३०७॥ यह बावनवी योगत्याग नामकी क्रिया है ।

तदनन्तर जिनके समस्त योगोका निरोध हो चुका है, जो जिनोके स्वामी है, जिन्हे शीलके ईश्वरपनेकी अवस्था प्राप्त हुई है, जिनके अघातिया कर्म नष्ट हो चुके हैं जो स्वभावसे उत्पन्न हुई ऊर्ध्वगतिको प्राप्त हुए हैं और जो उत्कृष्ट मोक्षस्थानपर पहुँच गये हैं ऐसे भगवान्‌के अग्रनिर्वृति नामकी क्रिया मानी गयी है ॥३०८-३०९॥ यह त्रिरेपनवी अग्रनिर्वृति नामकी क्रिया है ।

इस प्रकार गर्भसे लेकर निर्वाण पर्यन्त जो सब मिलाकर त्रिरेपन क्रियाएँ हैं भव्य पुरुषोंको सदा उनका पालन करना चाहिए ॥३१०॥ द्विज लोगोको ऊपर कही हुई विधिके अनुसार इन क्रियाओंका पालन करना चाहिए । इन क्रियाओंके जो भी अन्तर्गत भेद

१ धृतमार्गोप-५० । २ यत्र दण्ड-५०, ल० । ३ योगत्यागानन्तर्भूतम् । ४ शैले शितावस्थस्य । ५ -मायुष अ०, इ०, ५०, स०, द० । ६ ऊर्ध्वगमनम् । ७ गच्छत ८ समुच्चया ल० । ९ त्रिपञ्चाशत्क्रियासु ।

मैन्ये च कृतसबाहे शनैः समनुगच्छति । मरुद्भूतध्वजघातनिरुद्धपवनाध्वनि ॥२३०॥
 ध्वनत्सु सुरतूर्येषु नृत्यत्यप्सरसां गणे । गायत्रीषु कलक्वाणं किंनरीषु च महलम् ॥२३१॥
 भगवानभिनिष्क्रान्तः पुण्ये^१ कस्मिंश्चिदाश्रमे^२ । स्थितः शिलातले स्वस्मिंश्चेतसीवातिविस्तृते ॥२३२॥
 निर्वाणदीक्षयात्मानं योजयन्ननुतोदयः । सुराधिपैः कृतानन्दमर्षितः परयज्यया ॥२३३॥
 योऽथ शेषो^३ विधियुक्तः^४ केशपूजादिरक्षणः । प्रागव स तु निर्णीतो निष्क्रान्तौ घृषभशिनः ॥२३४॥
 इति निष्क्रान्तिः ।

परिनिष्क्रान्तिरेषा स्यात् क्रिया निर्वाणदायिनी । अतः परं भवेदस्य सुमुखोर्योगसमहः ॥२३५॥
 यदायं त्यक्तबाह्यान्तस्सगो^५ निःसगमाचरेत् । सुदुश्चरः तपोयोगं जिनकल्पमनुत्तरम् ॥२३६॥
 तदाऽस्य क्षपकश्रेणीमारुढस्योचिते पदे^६ । शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धघातिक्रमधनाटवे ॥२३७॥
 प्रादुर्भवति निःशेषहरिन्तमलक्षयात् । केवलाख्यं परं ज्योतिर्लोकालोकप्रकाशकम् ॥२३८॥
 तदेतस्मिंश्च साध्यस्य प्राप्नुय^७ परमं महः । योगसंमह इत्याख्यामनुधत्ते क्रियाम्तरम् ॥२३९॥
 ज्ञानध्यानसमायोगो योगो यस्तत्कृतो महः । महिमातिशयः सोऽयमाज्ञातो योगसमहः ॥२४०॥
 इति योगसमहः ।

ततोऽस्य केयलोत्पत्तौ पूजितस्यामरेश्वरैः । बहिविभूतिरुद्धता प्रातिहार्यादिरक्षणा ॥२४१॥

कर लिया है ऐसी सेना अपनी विशेष रचना बनाकर जिस समय धीरे धीरे उनके पीछे चलने लगती है तथा जिस समय देवोंके तुरही आदि बाजे बजते हैं, अप्सराओंका समूह नृत्य करता है और विघ्नरी देवियाँ मनोहर शब्दोंसे भगलगीत गाती हैं उस समय वे भगवान् किसी पवित्र आश्रममें अपने चित्तके समान विस्तृत शिलातलपर विराजमान होकर दीक्षा लेते हैं। इस प्रकार जिनका उदय आश्चय करनेवाला है और जो निर्वाणदीक्षाके द्वारा अपने आपको युक्त कर रहे हैं ऐसे भगवानकी इन्द्र लोग उत्कृष्ट सामग्रीके द्वारा आनन्दके साथ पूजा करते हैं ॥२८७-२९३॥ इस क्रियामें केश लोंच करना, भगवान्की पूजा करना आदि जो भी कार्य अवशिष्ट रह गया है उस सबका भगवान् वृषभदेवकी दीक्षाके समय ध्वनन किया जा चुका है ॥२९४॥ इस प्रकार यह अढतालीसवीं निष्क्रान्ति क्रिया है ।

यह निर्वाणको देनेवाली परिनिष्क्रान्ति नामकी क्रिया है। अब इसके आगे मोक्षकी इच्छा करनेवाले उन भगवानके योगसमह नामकी क्रिया होती है ॥२९५॥ जब वे भगवान् बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहको छोड़कर निष्परिग्रह अवस्थाको प्राप्त होते हैं और अत्यन्त कठिन तथा सवश्रेष्ठ जिनकल्प नामके तपोयोगको धारण करते हैं तब क्षपक श्रेणीपर आरुढ़ हुए और योग्य पद अर्थात् गुणस्थानमें जाकर शुक्लध्यानरूपी अग्निसे घातियाकमरूपी सघन वनको जला देनेवाले उन भगवान्के समस्त बाह्य और अन्तरंग मलके नष्ट हो जानेसे लोक तथा अलोकको प्रकाशित करनेवाली केवलज्ञान नामकी उत्कृष्ट ज्योतिः प्रकट होती है ॥२९६-२९८॥ इस प्रकार जिनके समस्त काय सिद्ध हो चुके हैं और जिन्हें उत्कृष्ट तेज प्राप्त हुआ है ऐसे भगवान्के यह एक भिन्न विषय होता है जो कि योगसम्मह इस नामको धारण करती है ॥२९९॥ ज्ञान और ध्यानके संयोगको योग कहते हैं और उस योगसे जो अतिशय तेज उत्पन्न होता है यह योगसम्मह कहलाता है ॥३००॥ यह योगसम्मह नामकी उनचासवीं विषय है ।

तन्मन्तरं केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर इन्द्राने जिनकी पूजा की है ऐसे उन भगवान्के

एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथाब्रवीद् द्विजन्मभ्यो^१ मनुदीक्षान्वयक्रिया । यास्ता^२ निःश्रेयसोदरकाञ्चत्वारिंशदथाष्ट च ॥१॥
 श्रूयतां भो द्विजन्मानो वक्ष्ये नै श्रेयसां^३ क्रिया । अवतारादिनिर्वाणपर्यन्ता दीक्षितांचिता ॥२॥
 व्रताविष्करण दीक्षा द्विधाभ्यात च तद्ब्रतम् । महाचाणु च दोषाणां^४ कृत्स्नदेशनिवृत्तिः ॥३॥
 महाव्रतं भवेत् कृत्स्नहिसाद्यागोविवर्जितम् । विरति स्थूलहिंसादिदोषेभ्योऽणुव्रत मतम् ॥४॥
 तदुन्मुखस्य^५ या वृत्तिः पुंसो दीक्षेत्यसौ मता । तामन्विता^६ क्रिया या तु सा स्याद् दीक्षान्वयक्रिया ॥५॥
 तस्यास्तु भेदमङ्गल्यान प्राग्निर्णीत पडष्टकम्^७ । क्रियते तद्विकल्पानामधुना लक्ष्मवर्णनम् ॥६॥
 तत्रावतारसजा स्यादाद्या दीक्षान्वयक्रिया । मिथ्यात्वदूषितं भव्ये सन्मार्गग्रहणान्मुखे ॥७॥
 स तु सन्मुख योगीन्द्र युक्ताचार महाधियम् । गृहस्थाचार्यमथवा पृच्छतीति विचक्षण ॥८॥
 ब्रूत यूय महाप्रज्ञा^९ मद्य धर्ममनाविलम्^{१०} । प्रायो मतानि तीर्थानां^{११} हेयानि प्रतिभान्ति मे ॥९॥
^{१३}श्रौतान्यपि हि वाक्यानि समतानि क्रियाविधौ । न विचारमहिष्णूनि^{१४} दुःप्रणीतानि तान्यपि^{१५} ॥१०॥

अथानन्तर-सोलहवे मनु महाराज भरत उन द्विजोके लिए मोक्ष-फल देनेवाली अड-
 तालीस दीक्षान्वय क्रियाएँ कहने लगे ॥१॥ वे बोले कि हे द्विजो, मैं अवतारसे लेकर निर्वाण
 पर्यन्तकी मोक्ष देनेवाली दीक्षान्वय क्रियाओको कहता हूँ सो तुम लोग सुनो ॥२॥ व्रतोका
 धारण करना दीक्षा है और वे व्रत हिंसादि दोषोके पूर्ण तथा एकदेश त्याग करनेकी अपेक्षा
 महाव्रत और अणुव्रतके भेदसे दो प्रकारके माने गये हैं ॥३॥ सूक्ष्म अथवा स्थूल - सभी
 प्रकारके हिंसादि पापोका त्याग करना महाव्रत कहलाता है और स्थूल हिंसादि दोषोसे
 निवृत्त होनेको अणुव्रत कहते हैं ॥४॥ उन व्रतोके ग्रहण करनेके लिए सन्मुख पुरुषकी जो
 प्रवृत्ति है उसे दीक्षा कहते हैं और उस दीक्षासे सम्बन्ध रखनेवाली जो क्रियाएँ हैं वे दीक्षान्वय
 क्रियाएँ कहलाती हैं ॥५॥ उस दीक्षान्वय क्रियाके भेद अडतालीस हैं जिनका कि निर्णय
 पहले किया जा चुका है । अब इस समय उन भेदोके लक्षणोका वर्णन किया जाता है ॥६॥ उन
 दीक्षान्वय क्रियाओमे पहली अवतार नामकी क्रिया है जब मिथ्यात्वसे दूषित हुआ कोई भव्य
 पुरुष समीचीन मार्गको ग्रहण करनेके सन्मुख होता है तब यह क्रिया की जाती है ॥७॥ प्रथम
 ही वह चतुर भव्य पुरुष योग्य आचरणवाले महाबुद्धिमान् मुनिराजके समीप जाकर अथवा
 किसी गृहस्थाचार्यके समीप पहुँचकर उनसे इस प्रकार पूछता है कि ॥८॥ महाबुद्धिमन्, आप
 मेरे लिए निर्दोष धर्म कहिए क्योंकि मुझे अन्य लोगोके मत प्राय दुष्ट मालूम होते हैं ॥९॥
 धार्मिक क्रियाओके करनेमे जो वेदोके वाक्य माने गये हैं वे भी विचारको सहन नहीं कर सकते
 अर्थात् विचार करनेपर वे नि सार जान पड़ते हैं, वास्तवमे वे वाक्य दुष्ट पुरुषोके बनाये हुए

१ भरत । २ नि श्रेयस मोक्ष उदकम् उत्तरफल यासु ताः । ३ मोक्षहेतून् । नि श्रेयसी ल० । ४ व्रतावि-
 करण प०, द०, ल० । ५ सकलनिवृत्त्येकदेशनिवृत्तिः । ६ तन्महाणुव्रताभिमुखस्य । ७ दीक्षाम् । ८ अनुगता ।
 ९ पण्णामष्टक पडष्टकम् अष्टोत्तरचत्वारिंशत् इत्यर्थः । १० महाप्राज्ञा ल०, द० । ११ निर्दोषम् । १२ हेयानि
 प्रतिभाति माम् इ०, म०, अ० । हतानि प्रतिभाति माम् ल०, द० । १३ वेदसम्बन्धोनि । 'श्रुति स्त्री वेद
 आम्नात' इत्यभिधानात् । १४ दुष्टैः कथितानि । १५ प्रसिद्धान्यपि । तानि वै ल० ।

शार्दूलविक्रीडितम्

इयुर्ध्वभरताधिप स्वसमय सस्थापयन् तान् द्विजान्
 सप्रोवाच कृती सतां बहुभक्ता गर्भान्वयोत्था क्रिया ।
 गर्भाद्या परिनिवृत्तिप्रगमनप्रान्तास्त्रिपञ्चाशत्
 प्रारम्भस्य पुनः प्रवक्तुमुचिता दीक्षान्वयाख्याः क्रिया ॥३१२॥
 यस्त्वेता द्विजसत्तमैरभिमता गर्भादिका सत्क्रिया
 श्रुत्वा सम्यगधीत्यभावितमतिर्जनेश्वर दशमे ।
 सामग्रामुचितां स्वतश्च परत सम्पादयन्नाचरन्
 भव्यात्मा स समग्रधास्त्रिजगति चूडामणित्व मजेत् ॥३१३॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रह
 द्विजोत्पत्ति गर्भान्वयवर्णनं नाम अष्टत्रिंशत्तमं पर्व ॥३८॥



ह उनका आगेके पवम निरूपण करेगे ॥३११॥ इस प्रकार पुण्यवान् भरत महाराजने उन द्विजोंको अपने धममे स्थापित करते हुए गर्भसे लेकर निर्वाणगमन पर्यन्तकी तिरेपन गर्भान्वय कियाएँ कही और उनके बाद कहने योग्य जो दीक्षान्वय कियाएँ थी उनका कहना प्रारम्भ किया ॥३१२॥ उत्तम-उत्तम द्विजाको माननीय इन गर्भाधानादि समीचीन कियाओको सुनकर तथा अच्छी तरह पढ़कर जो जिनेद्र भगवान्के दशनमे अपनी बुद्धि लगाता है और योग्य सामग्री प्राप्त कर दूसरासे आचरण कराता हुआ स्वय भी इनका आचरण करता है वह भव्य पुरुष पूण ज्ञानी होकर तीनों लोकोंके चूडामणिपनेको प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर तीनों लोकके अग्रभागपर विराजमान होता है ॥३१३॥



इस प्रकार आप नामस प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण महापुराणसंग्रहके भाषानुवाचम द्विजाकी उत्पत्ति तथा गर्भान्वय क्रियाआका वर्णन करनवाला अठतीसवाँ पव समाप्त हुआ



श्रुत सुविहितं वेदो द्वादशाङ्गमकल्मषम् । हियोपदेशि यद्वाप्त्यं न वेदोऽग्नौ कृतान्तवाक् ॥२०॥
 पुराण धर्मशास्त्रं च तन्म्याद् वधनिषेधि यत् । वधोपदेशि यत्तत्तु ज्ञेयं धर्मप्रणेतृकम् ॥२१॥
 मावद्यविरतिर्वृत्तमार्यपट्कर्मलक्षणम्^३ । 'चानुराश्रम्यवृत्तं तु परोक्तमयदभ्रमा' ॥२४॥
 क्रियागर्भादिका यास्ता निर्वाणान्ता परोदिता^५ । आधानादिऽमग्रानान्ता न ताः सम्यक्क्रिया मताः ॥२५॥
 मन्त्रास्त एव धर्म्या स्युर्ये क्रियासु नियोजिता । दुर्मन्त्रास्तेऽत्र विज्ञेया ये युक्ताः प्राणिमारणे ॥२६॥
 विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शान्तिहेतवः । क्रूरास्तु देवता हंसा यामा म्याद् वृत्तिरामिपैः ॥२७॥
 निर्वाणमोघनं यत् स्यात्तल्लिङ्गं जिनदेशितम् । 'गुणाजिनादिचिह्नं तु कुलिङ्गं तद्वि वैकृतम्'^८ ॥२८॥
 स्यान्निरामिपमोजित्वं शुद्धिराहारगोचरा । सर्वङ्कपास्तु^९ ते ज्ञेया ये स्युरामिपमोजिनः ॥२९॥
 अहिमाशुद्धिरंसा स्याद् ये नि मद्भा द्यालवः । रता पशुवधे ये तु न ते शुद्धा दुःशया ॥३०॥
 कामशुद्धिमंता तेषा विकामा ये जितेन्द्रिया । मनुष्याश्च स्वदारुणेषु शेषा सर्वे विडम्बकाः ॥३१॥
 इति शुद्ध मत यस्य विचारपरिनिष्ठितम् । स एवास्मदुद्धोता^{१०} धर्मः श्रेयो हितार्थिनाम् ॥३२॥

सिवाय सब धर्माभास तथा मार्गाभास हैं ॥२०-२१॥ जिसके बारह अंग हैं, जो निर्दोष है और जिसमें श्रेष्ठ आचरणोका विधान है ऐसा शास्त्र हो वेद कहलाता है, जो हिंसाका उपदेश देनेवाला वाक्य है वह वेद नहीं है उसे तो यमराजका वाक्य ही समझना चाहिए ॥२२॥ पुराण और धर्मशास्त्र भी वही हो सकता है जो हिंसाका निषेध करनेवाला है । इसके विपरीत जो पुराण अथवा धर्मशास्त्र हिंसाका उपदेश देते हैं उन्हें धूर्तोंका बनाया हुआ समझना चाहिए ॥२३॥ पापारम्भके कार्योंसे विरक्त होना चारित्र्य कहलाता है । वह चारित्र्य आर्य पुरुषोंके करने योग्य देवपूजा आदि छह कर्मरूप है । इसके सिवाय अन्य लोगोंने जो ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमोंका चारित्र्य निरूपण किया है वह वास्तवमें बुरा है ॥२४॥ क्रियाएँ जो गर्भाधानसे लेकर निर्वाणपर्यन्त पहले कही जा चुकी हैं वे ही समझनी चाहिए, इनके सिवाय गर्भसे मरणपर्यन्त जो क्रियाएँ अन्य लोगोंने कही हैं वे ठीक नहीं मानी जा सकती ॥२५॥ जो गर्भाधानादि क्रियाओंमें उपयुक्त होते हैं वे ही मन्त्र धार्मिक मन्त्र कहलाते हैं किन्तु जो प्राणियोंकी हिंसा करनेमें प्रयुक्त होते हैं उन्हें यहाँ दुर्मन्त्र अर्थात् खोटे मन्त्र समझना चाहिए ॥२६॥ शान्तिको करनेवाले तीर्थ-कर आदि ही देवता हैं । इनके सिवाय जिनकी माससे वृत्ति है वे दुष्ट देवता छोड़ने योग्य हैं ॥२७॥ जो साक्षात् मोक्षका कारण है ऐसा जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ निर्ग्रन्थपना ही सच्चा लिङ्ग है । इसके सिवाय मृगचर्म आदिको चिह्न बनाना यह कुलिङ्गियोंका बनाया हुआ कुलिङ्ग है ॥२८॥ मासरहित भोजन करना आहार-विषयक शुद्धि कहलाती है । जो मासभोजी हैं उन्हें सर्व-घाती समझना चाहिए ॥२९॥ अहिंसा शुद्धि उनके होती है जो परिग्रहरहित हैं और दयालु हैं, परन्तु जो पशुओंकी हिंसा करनेमें तत्पर रहते हैं वे दुष्ट अभिप्रायवाले शुद्ध नहीं हैं ॥३०॥ जो कामरहित जितेन्द्रिय मुनि हैं उन्हींके कामशुद्धि मानी जाती है अथवा जो गृहस्थ अपनी स्त्रियोंमें सन्तोष रखते हैं उनके भी कामशुद्धि मानी जाती है परन्तु इनके सिवाय जो अन्य लोग हैं वे केवल विडम्बना करनेवाले हैं ॥३१॥ इस प्रकार विचार करनेपर जिसका मत शुद्ध हो वही आप्त कहला सकता है और उसीके द्वारा कहा हुआ धर्म हित चाहनेवाले लोगोंकी कल्याणकारी हो सकता है ॥३२॥ वह भव्य उन उत्तम उपदेशकसे इस प्रकारका उपदेश

१ यमस्य वचनम् । २ धर्मशास्त्रम् । ३ इज्यावार्तादित्तिस्वाध्यायसयमतपोरूप । ४ ब्रह्मचर्यादिचतुराश्रमे भव । ५ निश्चयेन । ६ पुरोदिता ६०, ८०, १००, १२०, १४० । ७ कृष्णाजित । ८ तद्विधै कृतम् ५०, ८०, ६० । ९ मरुलविनाशका इत्यर्थ । १० तत्प्रोक्त ।

श्रुतं सुविहितं वेदो द्वादशाङ्गमकल्पम् । हिसोपदेशि यद्वाक्यं न वेदोऽयं कृतान्तवाक् ॥२०॥
 पुराणं धर्मशास्त्रं च तन्म्याद् वधनिषेधि यत् । वधोपदेशि यत्तत्तु ज्ञेयं धर्मप्रणेनृकम् ॥२१॥
 यावत्प्रविरतिवृत्तमार्थपट्कर्मलक्षणम् । चानुगम्यवृत्तं तु परोक्तममदङ्गम् ॥२२॥
 क्रियागर्भाद्विद्यायाऽन्तानिर्वाणान्ता परोदिता । आधानाद्विद्वज्ज्ञानान्तान्ता न तामस्यकृत्क्रिया मता ॥२३॥
 मन्त्रास्त एव धर्म्याः स्युः क्रियासु नियोजिता । दुर्मन्त्रास्तेऽत्र विज्ञेया ये युक्ताः प्राणिमागणे ॥२४॥
 विज्ञेश्वरादयो ज्ञेया देवता शान्तिहेतवः । ऋगास्तु देवता ह्येता यामा म्याद् वृत्तिगमिषे ॥२५॥
 निर्वाणमोक्षं यत् न न्यात्तल्लिङ्गं जिनदेशितम् । ण्णाजिनाद्विद्वत् न तु कुलिङ्गं तद्वि वृत्तम् ॥२६॥
 स्यान्निरामिषमोजित्वं शुद्धिराहारगोचरा । सर्वङ्गपास्तु न ज्ञेया ये म्युगमिषमोजिनः ॥२७॥
 अहिमाशुद्धिर्गया स्याद् ये नि मङ्गा न्यालवः । रता पशुवधे ये तु न ने शुद्धा दुःशया ॥२८॥
 कामशुद्धिर्मना तेषां विकामा ये जिनेन्द्रिया । मनुष्याश्च स्वदाग्नेषु शेषा मवे विडम्बकाः ॥२९॥
 इति शुद्धं मतं यस्य विचारपग्निष्ठितम् । स एवासस्तदुन्नातो^{१०} धर्मः श्रेयो हितायिनाम् ॥३०॥

सिवाय मव धर्माभास तथा मार्गाभास है ॥२०-२१॥ जिमके वारह अंग हैं, जो निर्दोष है और जिसमे श्रेष्ठ आचरणोका विधान है ऐसा शास्त्र हो वेद कहलाता है, जो हिंसाका उपदेग देनेवाला वाक्य है वह वेद नहीं है उसे तो यमराजका वाक्य हो समझना चाहिए ॥२२॥ पुराण और धर्मशास्त्र भी वही हो सकता है जो हिंसाका निषेध करनेवाला है । इसके विपरीत जो पुराण अथवा धर्मशास्त्र हिंसाका उपदेग देते हैं उन्हें धूर्तोंका बनाया हुआ समझना चाहिए ॥२३॥ पापारम्भके कार्यसि विरक्त होना चारित्र कहलाता है । वह चारित्र आर्य पुरुषोंके करने योग्य देवपूजा आदि छह कर्मरूप है । इसके सिवाय अन्य लोगोने जो ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमोका चारित्र निरूपण किया है वह वास्तवमे बुरा है ॥२४॥ क्रियाएँ जो गर्भाधानसे लेकर निर्वाणपर्यन्त पहले कही जा चुकी हैं वे ही समझनी चाहिए, इनके सिवाय गर्भसे मरणपर्यन्त जो क्रियाएँ अन्य लोगोने कही हैं वे ठीक नहीं मानी जा सकती ॥२५॥ जो गर्भाधानादि क्रियाओमे उपयुक्त होते हैं वे ही मन्त्र धार्मिक मन्त्र कहलाते हैं किन्तु जो प्राणियोकी हिंसा करनेमे प्रयुक्त होते हैं उन्हें यहाँ दुर्मन्त्र अर्थात् खोटे मन्त्र समझना चाहिए ॥२६॥ शान्तिको करनेवाले तीर्थ-कर आदि ही देवता हैं । इनके सिवाय जिनकी माससे वृत्ति है वे दुष्ट देवता छोडने योग्य हैं ॥२७॥ जो साक्षात् मोक्षका कारण है ऐसा जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ निर्ग्रन्थपना ही सच्चा लिङ्ग है । इसके सिवाय मृगचर्म आदिको चिह्न बनाना यह कुलिङ्गियोका बनाया हुआ कुलिङ्ग है ॥२८॥ मासरहित भोजन करना आहार-विषयक शुद्धि कहलाती है । जो मासभोजी हैं उन्हें सर्व-घाती समझना चाहिए ॥२९॥ अहिंसा शुद्धि उनके होती है जो परिग्रहरहित हैं और दयालु हैं, परन्तु जो पशुओकी हिंसा करनेमे तत्पर रहते हैं वे दुष्ट अभिप्रायवाले शुद्ध नहीं हैं ॥३०॥ जो कामरहित जितेन्द्रिय मुनि हैं उन्हीके कामशुद्धि मानी जाती है अथवा जो गृहस्थ अपनी स्त्रियोमे सन्तोष रखते हैं उनके भी कामशुद्धि मानी जाती है परन्तु इनके सिवाय जो अन्य लोग हैं वे केवल विडम्बना करनेवाले हैं ॥३१॥ इस प्रकार विचार करनेपर जिसका मत शुद्ध हो वही आप्त कहला सकता है और उसीके द्वारा कहा हुआ धर्म हित चाहनेवाले लोगोको कल्याणकारी हो सकता है ॥३२॥ वह भव्य उन उत्तम उपदेगकसे इस प्रकारका उपदेग

१ यमस्य वचनम् । २ धर्मशास्त्रम् । ३ इज्यावार्तादित्तिस्वाध्यायसयमतपोरूप । ४ ब्रह्मचर्यादिचतुराश्रमे भव । ५ निश्चयेन । ६ पुरोदिता ६०, ७०, ८०, ९०, १०० । ७ कृष्णाजित । ८ तद्विवै कृतम् ५०, ६०, ७० । ९ मक्लविनायका इत्यर्थ । १० तत्प्रोक्त ।

श्रुत्वति देशनां तस्माद् भव्योऽस्मा दशिकात्तमात् । मन्माग मतिमाधत्ते दुर्मागरतिमुत्सृजन् ॥३३॥
गुरुजनयिता तत्त्वज्ञान गम मुमस्कृत । तदा तन्नायनार्णाऽर्मा भव्याभ्या धमज्जमना ॥३४॥
भवतारक्रियाऽर्थेया गर्भाधानवद्विष्यत । यता^१ अन्मपरिमाप्ति उभयत्र^२ न विषय ॥३५॥

इत्यवतारक्रिया ।

ततोऽस्य वृत्तलाम स्यात् तदव गुरपादया । प्रणतस्य व्रतमात विधाननापयदुप^३ ॥३६॥

इति वृत्तलामः ।

तत वृतापनामस्य पूजाविधिपुर मर । स्थानलाभो भवेदस्य^४ तन्नायमुचिता विधि ॥३७॥

जिनालय पुर्वा रत्ने पद्ममण्डल लिखन् । विष्णिग्द् वा जिनास्थानमण्डल भमवृत्तकम् ॥३८॥

श्लक्ष्ण पिष्टचूर्णन^५ मलिलालोहितन वा । वतन^६ मण्डलस्यष्ट चन्दनादिद्रवण वा ॥३९॥

तस्मिन्नष्टदले पथे चन वाऽऽस्थानमण्डले । विधिना लिङ्गिग तज्जैरिव्यग्विचरितावन ॥४०॥

जिनाचामिमुग सूरिविधिनैन निवशयन् । तत्वापामकदाक्षपमिति मूर्ध्नि मुहु स्पृशन् ॥४१॥

^१ पञ्चमुष्टिविधानन स्पृष्ट्वनमधिमस्तकम्^२ । पूताऽमि दाक्षयत्युक्त्वा मिद्वशोपा च लम्भयत्^३ ॥४२॥

तत पञ्चनमस्कारपदान्यस्मा उपादितात्^४ । मन्त्रोऽयमग्निलात्^५ पापात्वा^६ पुनातादितारयन्^७ ॥४३॥

कृत्वा विधिमिम पश्चात् पारणाय विसर्जयत् । गुहोरनुग्रहात् माऽपि ममात स्वगृह गजन् ॥४४॥

इति स्थानलाम ।

सुनकर मिथ्यामागम प्रेम छोड़ता हुआ समीचीन भागम अपनी बुद्धि लगाता है ॥३३॥ उस समय गुरु ही उसका पिता है और तत्त्वज्ञान ही सस्कार किया हुआ गम है । वह भव्य पुरप धम रूप जमके द्वारा उस तत्त्वज्ञानरूपी गर्भम अवतीर्ण होता है ॥३४॥ इसकी यह क्रिया गर्भा धानक्रियाके समान मानी जाती है क्योंकि जमकी प्राप्ति दोना ही क्रियाआमें नहीं है ॥३५॥ इस प्रकार यह पहली अवतारक्रिया है ।

तदनन्तर—उसी समय गुरुके चरणकमलोंको नमस्कार करते हुए और विधिपूर्वक व्रतोंके समूहको प्राप्त होते हुए उस भव्यके वृत्तलाम नामकी दूसरी क्रिया होती है ॥३६॥ यह वृत्त लाम नामकी दूसरी क्रिया है ।

तत्पश्चात् जिसने उपवास किया है ऐसे उस भव्यके पूजाकी विधिपूर्वक स्थानलाम नामकी तीसरी क्रिया होती है । इस क्रियामें यह विधि करना उचित है ॥३७॥ जिनालयमें किसी पवित्र स्थानपर आठ पाखुरीका कमल बनावे अथवा गोलाकार समवसरणके मण्डलकी रचना करे ॥३८॥ इस कमल अथवा समवसरणके मण्डलकी रचना पानी मिल हुए महीन चूर्णसे अथवा घिसे हुए चन्दन आदिसे करनी चाहिए ॥३९॥ उस विषयके जानकार विद्वानोंके द्वारा लिखे हुए उस अष्टदलकमल अथवा जिनेद्र भगवान्के समवसरणमण्डलकी जब सम्पूर्ण पूजा हो चुके तब आचार्य उस भव्य पुरुषको जिने द्रदेवकी प्रतिमाके समुख बैठावे और बार-बार उसके मस्तकको स्पश करता हुआ कहे कि यह तेरी श्रावककी दीक्षा है ॥४०-४१॥ पञ्चमुष्टिकी रीतिसे उसके मस्तकका स्पर्श करे तथा 'तू इस दीक्षासे पवित्र हुआ इस प्रकार कहकर उससे पूजाके वचे हुए शपाक्षत ग्रहण करावे ॥४२॥ तत्पश्चात् 'यह मन्त्र तुझे समस्त पापोंसे पवित्र करे इस प्रकार कहता हुआ उसे पञ्च नमस्कार मन्त्रका उपदेश करे ॥४३॥ यह विधि करके आचार्य उसे

१ पिता । २ धम एव जम तेन । ३ यस्मात् कारणात् । ४ गर्भाधानावतारयो । ५ व्रतविधरणशास्त्रोक्त विधिना । ६ उपगतस्य । ७ स्थानलामे । ८ जलमिधितेन वा । ९ उद्धरणम् । १० पञ्चगुरुमुद्राविधानेन । ११ मूर्ध्नि । १२ प्रापयेत् । १३ अस्म उपदेशं कुर्यात् । १४ दुष्कृतात् अपसाम । १५ पवित्र कुर्यात् । १६ वृत्तम् ।

^१निर्दिष्टस्थानलाभस्य पुनरस्य गणग्रहः । स्यान्मिथ्यादेवता स्वस्माद् विनि.गारयतो गृहान् ॥४५॥
 इयन्तं कालमज्ञानात् पूजिताः स्थ^२ कृतादरम् । पूज्यास्त्विदानीमस्माभिरस्मत्समयदेवताः ॥४६॥
^३ततोऽपमृ^४षितेनालमन्यत्र स्वैरमास्यताम् । इति^५ प्रकाशमेवैतान् नीत्वाऽन्यत्र कचिन्त्यजेत् ॥४७॥
 गणग्रहः स एष स्यात् प्राक्तनं देवताङ्गणम् । विसृज्यार्चयतः शान्ता देवताः^६ ममयोचिता ॥४८॥
 इति ग्रहणक्रिया ।
 पूजाराध्याख्यया ख्याता क्रियाऽस्य स्यादतः परा । पूजोपवागमपत्त्या शृण्वतोऽङ्गार्थग्रहम्^७ ॥४९॥
 इति पूजाराध्यक्रिया ।
 ततोऽन्या पुण्ययज्ञाख्या क्रिया पुण्यानुबन्धिनी । शृण्वतः पूर्व^८ विद्यानामथ^९ स्रग्भ्राचारिणः ॥५०॥
 इति पुण्ययज्ञक्रिया ।
 तथाऽस्य दृढचर्या स्यात् क्रिया स्वसमयश्रुतम् । निष्ठाप्य^{१०} शृण्वतो ग्रन्थान् बाह्यान्त्यांश्च काश्चन ॥५१॥
 इति दृढचर्याक्रिया ।
 दृढव्रतस्य तस्यान्या क्रिया स्यादुपयोगिता ।^{११} पर्वोपवासपर्यन्ते प्रतिमायोगधारणम् ॥५२॥
 इति उपयोगिताक्रिया ।

पारणाके लिए विदा करे और वह भव्य भी गुरुके अनुग्रहसे सन्तुष्ट होता हुआ अपने घर जावे ॥४४॥ यह तीसरी स्थानलाभ क्रिया है ।

जिसके लिए स्थानलाभकी क्रियाका वर्णन ऊपर किया जा चुका है ऐसा भव्य पुरुष जब मिथ्यादेवताओको अपने घरसे बाहर निकालता है तब उसके गणग्रह नामकी क्रिया होती है ॥४५॥ उस समय वह उन देवताओसे कहता है कि 'मैंने अपने अज्ञानसे इतने दिन तक आदरके साथ आपकी पूजा की परन्तु अब अपने ही मतके देवताओकी पूजा करूँगा इसलिए क्रोध करना व्यर्थ है । आप अपनी इच्छानुसार किसी दूसरी जगह रहिए ।' इस प्रकार प्रकट रूपसे उन देवताओको ले जाकर किसी अन्य स्थानपर छोड़ दे ॥४६-४७॥ इस प्रकार पहले देवताओका विसर्जन कर अपने मतके शान्त देवताओकी पूजा करते हुए उस भव्यके यह गणग्रह नामकी चौथी क्रिया होती है ॥४८॥ यह चौथी गणग्रह क्रिया है ।

तदनन्तर पूजा और उपवासरूप सम्पत्तिके साथ-साथ अंगोके अर्थसमूहको सुननेवाले उस भव्यके पूजाराध्या नामकी प्रसिद्ध क्रिया होती है । भावार्थ—जिनेन्द्रदेवकी पूजा तथा उपवास आदि करते हुए द्वादशागका अर्थ सुनना पूजाराध्य क्रिया कहलाती है ॥४९॥ यह पाँचवी पूजाराध्य क्रिया है ।

तदनन्तर साधर्मि पुरुषोके साथ-साथ चौदह पूर्वविद्याओका अर्थ सुननेवाले उस भव्यके पुण्यको बढ़ानेवाली पुण्ययज्ञा नामकी भिन्न क्रिया होती है ॥५०॥ यह छठी पुण्ययज्ञा क्रिया है ।

इस प्रकार अपने मतके शास्त्र समाप्त कर अन्य मतके ग्रन्थो अथवा अन्य किन्हीं दूसरे विषयोको सुननेवाले उस भव्यके दृढचर्या नामकी क्रिया होती है ॥५१॥ यह दृढचर्या नामकी सातवी क्रिया है ।

तदनन्तर जिसके व्रत दृढ हो चुके हैं ऐसे पुरुषके उपयोगिता नामकी क्रिया होती है ।

१ उपदेशित । २ भव्य । ३ तत् कारणात् । ४ ईर्ष्या क्रोधेन वा । ५ प्रकट यथा भवति तथा । ६ निजमत । ७ द्वादशाङ्गसंबन्धिद्रव्यमग्रहादिकम् । ८ चतुर्दशविद्याना सबन्धनम् । ९ सहाध्यागिसहितस्य । 'एकब्रह्म-
 व्रताचारा मयः स्रग्भ्राचारिणः ।' इत्यभिधानात् । १० सपूर्णमघीत्य । ११ पर्वोपवासरात्रावित्यर्थ ।

^१निर्दिष्टस्थानलाभस्य पुनरस्य गणग्रहः । स्यान्मिथ्यादेवताः स्वस्माद् विनिर्गमयतो गृहान् ॥४५॥
इत्यन्तं कालमज्ञानात् पूजिताः स्थ^२ कृतादरम् । पूज्यास्त्रिदानीमस्माभिरस्मन्मयदेवता ॥४६॥
^३ततोऽपमृ^४षितेनालमन्यत्र स्वैरमास्यताम् । इति प्रकाशमवैतान् नीत्वाऽन्यत्र कचित्त्यजेत् ॥४७॥
गणग्रहः स एष स्यात् प्राक्तन देवताङ्गणम् । विसृज्यार्चयतः शान्ता देवता ममयोचिता ॥४८॥

इति ग्रहणक्रिया ।

पूजाराध्याख्यया ख्याता क्रियाऽस्य स्यादतः परा । पूजोपवासमपत्त्या शृण्वतोऽन्नार्थग्रहम्^५ ॥४९॥

इति पूजाराध्यक्रिया ।

ततोऽन्या पुण्ययज्ञाख्या क्रिया पुण्यानुबन्धिनी । शृण्वतः पूर्वविद्यानामथ मन्त्रहाचारिणः ॥५०॥

इति पुण्ययज्ञक्रिया ।

तथाऽस्य दृढचर्या स्थान् क्रिया स्वसमयश्रुतम् । निष्ठाप्य^{१०} शृण्वतो ग्रन्थान् ब्राह्मणान्यांश्च कांश्चन ॥५१॥

इति दृढचर्याक्रिया ।

दृढव्रतस्य तस्यान्या क्रिया स्यादुपयोगिता ।^{११} पर्वोपवासपर्यन्ते प्रतिमायोगधारणम् ॥५२॥

इति उपयोगिताक्रिया ।

पारणाके लिए विदा करे और वह भव्य भी गुरुके अनुग्रहसे सन्तुष्ट होता हुआ अपने घर जावे ॥४४॥ यह तीसरी स्थानलाभ क्रिया है ।

जिसके लिए स्थानलाभकी क्रियाका वर्णन ऊपर किया जा चुका है ऐसा भव्य पुरुष जब मिथ्यादेवताओको अपने घरसे बाहर निकालता है तब उसके गणग्रह नामकी क्रिया होती है ॥४५॥ उस समय वह उन देवताओसे कहता है कि 'मैंने अपने अज्ञानसे इतने दिन तक आदरके साथ आपकी पूजा की परन्तु अब अपने ही मतके देवताओकी पूजा करूँगा इसलिए क्रोध करना व्यर्थ है । आप अपनी इच्छानुसार किसी दूसरी जगह रहिए ।' इस प्रकार प्रकट रूपसे उन देवताओको ले जाकर किसी अन्य स्थानपर छोड़ दे ॥४६-४७॥ इस प्रकार पहले देवताओका विसर्जन कर अपने मतके शान्त देवताओकी पूजा करते हुए उस भव्यके यह गणग्रह नामकी चौथी क्रिया होती है ॥४८॥ यह चौथी गणग्रह क्रिया है ।

तदनन्तर पूजा और उपवासरूप सम्पत्तिके साथ-साथ अंगोके अर्थसमूहको सुननेवाले उस भव्यके पूजाराध्या नामकी प्रसिद्ध क्रिया होती है । भावार्थ—जिनेन्द्रदेवकी पूजा तथा उपवास आदि करते हुए द्वादशागका अर्थ सुनना पूजाराध्य क्रिया कहलाती है ॥४९॥ यह पाँचवी पूजाराध्य क्रिया है ।

तदनन्तर साधर्मी पुरुषोके साथ-साथ चौदह पूर्वविद्याओका अर्थ सुननेवाले उस भव्यके पुण्यको बढ़ानेवाली पुण्ययज्ञा नामकी भिन्न क्रिया होती है ॥५०॥ यह छठी पुण्ययज्ञा क्रिया है ।

इस प्रकार अपने मतके शास्त्र समाप्त कर अन्य मतके ग्रन्थो अथवा अन्य किन्हीं दूसरे विषयोको सुननेवाले उस भव्यके दृढचर्या नामकी क्रिया होती है ॥५१॥ यह दृढचर्या नामकी सातवी क्रिया है ।

तदनन्तर जिसके व्रत दृढ हो चुके हैं ऐसे पुरुषके उपयोगिता नामकी क्रिया होती है ।

१ उपदेशित । २ भव्य । ३ तत् कारणात् । ४ ईर्ष्या क्रोधेन वा । ५ प्रकट यथा भवति तथा । ६ निजमत । ७ द्वादशाङ्गसबन्धिद्रव्यमंग्रहादिकम् । ८ चतुर्दशविद्याना सबन्धिनम् । ९ सहाध्यागिसहितस्य । 'एकब्रह्म-व्रताचारा मियः मन्त्रहाचारिणः ।' इत्यभिधानात् । १० सपूर्णमधीत्य । ११ पर्वोपवासरात्रावित्यर्थ ।

वर्णलाभस्ततोऽस्य स्यात् सम्बन्ध^१ मविधित्मन्^२ । समानार्जाविभिर्लब्ध^३ वर्णान्यैरप्याग^४ ॥६१॥
 चतुरः^५ श्रावकज्येष्ठानाह्वय कृतमक्तिप्राप्त् । तान् ब्रूयादस्यनुग्राह्यो भवति स्वयमर्माकृत^६ ॥६२॥
 यूय निस्तारका देवब्राह्मणा लोकपूजिता । अहं च कृतदीक्षाऽस्मि गृहीतांपामकव्रत^७ ॥६३॥
 मया तु चरितो धर्मः पुष्कलां गृहमंधिनाम् । दत्तान्यपि च दानानि कृतं च गुरुपूजनम् ॥६४॥
 अयोनिसम्भवं जन्म लब्ध्वाहं गुर्वनुग्रहात् । चिरमावितमुत्सृज्य प्राप्तो वृत्तमभाविनम्^८ ॥६५॥
 व्रतसिद्धयर्थमेवाहमुपनीतोऽस्मि साम्प्रतम् । कृतविद्यञ्च जातोऽस्मि^९ म्वर्धातोपामकधृत^{१०} ॥६६॥
 व्रतावतरणस्यान्ते^{११} स्वीकृताभरणोऽस्यहम् । पत्नी च सस्कृताऽऽस्मीया कृतपाणिग्रहा पुन^{१२} ॥६७॥
 एव कृतव्रतस्याद्य वर्णलाभो ममांचित । सुलभः सोऽपि युष्माकमनुजानात् सधर्मणाम् ॥६८॥
 इत्युक्तास्ते च तं सत्यमेवमस्तु समञ्जसम्^{१३} । त्वयान्तं श्लाघ्यमेवेतत् कोऽन्यस्त्वन्यदृशो द्विज ॥६९॥
 युष्मादृशमलाभे तु मिथ्यादृष्टिमित्यमा । समानार्जाविभिः कर्तुं सवन्धाऽभिमतां हि न ॥७०॥
 इत्युक्त्वाचैव समाश्वास्य वर्णलाभेन युज्जने । विधिवत् सोऽपि तं लब्ध्वा याति तत्तममकश्चताम् ॥७१॥
 इति वर्णलाभक्रिया ।

वर्णलाभोऽयमुद्दिष्टः कुलचर्याऽनुच्यते । आर्यपट्टकर्मवृत्ति स्यात् कुलचर्याऽस्य पुष्कला ॥७२॥

इति कुलचर्या ।

तदनन्तर — जिन्हे वर्णलाभ हो चुका है और जो अपने समान ही आजीविका करते हैं ऐसे अन्य श्रावकोके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेकी इच्छा करनेवाले उस भव्य पुरुषके वर्णलाभ नामकी क्रिया होती है ॥६१॥ इस क्रियाके करते समय वह भव्य चार बड़े-बड़े श्रावकोको आदर-सत्कार कर बुलावे और उनसे कहे कि आप लोग मुझे अपने समान बनाकर मेरा अनुग्रह कीजिए ॥६२॥ आप लोग ससारसे पार करनेवाले देव ब्राह्मण हैं, ससारमे पूज्य हैं और मैंने भी दीक्षा लेकर श्रावकके व्रत ग्रहण किये हैं ॥६३॥ मैंने गृहस्थोके सम्पूर्ण धर्मका आचरण किया है, दान भी दिये हैं और गुरुओका पूजन भी किया है ॥६४॥ मैंने गुरुके अनुग्रहसे योनिके बिना ही उत्पन्न होनेवाला जन्म धारण किया है, और चिरकालसे पालन किये हुए मिथ्याधर्मको छोड़कर जिसका पहले कभी चिन्तवन भी नहीं किया था ऐसा सम्यक् चारित्र्य धारण किया है ॥६५॥ व्रतोकी सिद्धिके लिए ही मैंने इस समय यज्ञोपवीत धारण किया है और श्रावकाचारके प्ररूपक श्रुतका अच्छी तरह अध्ययन कर विद्वान् भी हो गया हूँ ॥६६॥ व्रतावतरण क्रियाके बाद ही मैंने आभूषण स्वीकार किये हुए हैं, मैंने अपनी पत्नीके भी सस्कार किये हैं और उसके साथ दुवारा विवाहसस्कार भी किया है ॥६७॥ इस प्रकार व्रत धारण करनेवाले मुझको वर्णलाभकी प्राप्ति होना उचित है और वह भी आप साधर्मी पुरुषोकी आज्ञासे सहज ही प्राप्त हो सकती है ॥६८॥ इस प्रकार कह चुकनेपर वे श्रावक कहे कि ठीक है, ऐसा ही होगा, तुमने जो कुछ कहा है वह सब प्रशसनीय है, तुम्हारे समान और दूसरा द्विज कौन है ? ॥६९॥ आप-जैसे पुरुषोके न मिलनेपर हम लोगोको समान जीविका करनेवाले मिथ्यादृष्टियो-के साथ भी सम्बन्ध करना पडता है ॥७०॥ इस प्रकार कहकर वे श्रावक उसे आश्वासन दे और वर्णलाभसे युक्त करावे तथा वह भव्य भी विधिपूर्वक वर्णलाभको पाकर उन सब श्रावकोकी समानताको प्राप्त होता है ॥७१॥ यह तेरहवी वर्णलाभ नामकी क्रिया है ।

यह वर्णलाभ क्रिया कह चुके । अब कुलचर्या क्रिया कही जाती है । आर्य पुरुषोके करने

१ कन्याप्रदानादानादिसम्बन्धम् । २ सविधातुमिच्छत । ३ मद्गार्यपट्टकर्मदिवृत्तिभि । ४ विचक्षणै । ५ चतु मस्यान् । ६ युष्मत्समद्वीकृत । ७ चिरकालमस्कारितम् । मिथ्यात्ववृत्तमित्यर्थ । ८ पूर्वस्मिन्-भाविनम् । मद्भुतमित्यर्थ । ९ सपूर्णविद्य । १० मुष्ट्यधीत । ११-मकव्रत ल०, द० । १२ सावधी-कृतकतिचिद्ब्रतावतारणावसाने । १३ इष्टम् ।

निबन्धः। मे वृत्तमस्य । अग्निं पृथीतिनाम् । कुलपुत्रवर्गानाम् । यथाशक्तदमायः ॥३१॥

ସାମାଜିକ ସମାଜର 'ସର୍ବୋତ୍ତମ' ମୁକାବିଳା । ମୁକାବିଳାରେ ସମସ୍ତଙ୍କ ମଧ୍ୟରୁ ଏକ ମୁକାବିଳାକୁ ନେଇ
 ଏକ ମୁକାବିଳାକାରୀ ।

नमः पूज्यैव तस्य भक्तं दत्तं ज्ञानात्मकम् । नामाविर्भूतमात्रादिभावना समुत्पन्ना । इति च
इति ज्ञानात्मका विद्या ।

गुरु दामोदरः ३२ अथा, गुरुव गार् विरचय । अथैव गुरु वपुःशायसमुद्गाय गुरुदामोदरः ३३
 इति गुरु दामोदरः ।

१७७१/१७७२ वसन्ततुल्य । १७७१/७२ (१७७१) ३ ज्येष्ठमास २००३
 इति तिथ्यादयः ।

ନମଃ ସବୁ ପ୍ରକାରର ସମ୍ମାନ ସ୍ୱରୂପ ସମ୍ମାନ । ଏ ସମୟରେ ମୁଖ୍ୟମନ୍ତ୍ରୀ, ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ
 ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ।

[illegible][illegible][illegible]

तथा तस्य प्रसाद उपरान्त आदि। भावाभावा प्रसङ्गात् उक्तं तन्म
नन्तु ममात् ए प्रसादतः ममात्। नित्या माती जाग्रा है ॥७५॥ यद् मातृया प्रसादता
नित्या है।

तन्मन्त्रात् अथ यद् यस्मात् त्रिष्वङ्गं विभक्त्यै प्राक् स्यात् साधुना । तानि च अनुकारेण निष्ठा
दक्षरपरं लोके जाते । तच्च उच्यते मूलभागे नामका विद्या शृता है ॥७६॥ यद् नवहर्षी
मन्त्रायाम् प्रिया है ।

तत्पार जो पर छाहरन सपावाम भज गया है एम भज्य सुखपरा पहुँच समान एव
यस्य धारण भग्ना यह दोषाद्य नामनी निया माती जाती है ॥७७॥ यह दोषाद्य नामनी
अकारहया निया है ।

इसका जय पा' मुख्य यन्त्र छोटका किन्ता योग्य भाषणवाले मुनिराजस
निगमर रूप धारण करता है तब उसका जिनम्पता समझी किया जाती है ॥७८॥ यह
उन्नीसवीं जिनम्पना किया है ।

इनर गिवाय जा कुछ बियातें याकी रह गयी है व सर जिस प्रकार गर्भान्वय विद्याआम बही गयी है उगो प्रकार प्रतिपादन करने योग्य है । इस और उनम कोई भेद नहीं है॥७९॥ जो भव्य इन बियाआका यथाथरूपम जानकर उनका पालन करता ह वह मुखाके अधीन होता हुआ बहुत गीघ्र निर्वाणको प्राप्त होता ह ॥८०॥ इस प्रकार यह दोभाचय बियाओंका धनन पूर्ण हुआ ।

अथातः सप्रवक्ष्यामि द्विजाः^१ कर्त्रन्वयक्रियाः । या^२ प्रत्यागन्निष्टस्य भवेयुर्मव्यदेहिनः ॥८१॥
 तत्र सज्जातिरित्याद्या क्रिया श्रेयोऽनुबन्धिनी । या सा^३ चागन्मन्यस्य नृजन्मोपगमे भवेत् ॥८२॥
 स नृजन्मपरिप्राप्ता दीक्षायोग्ये सद्गन्वये । विशुद्ध लभते जन्म सैषा सज्जातिरिष्यते ॥८३॥
 विशुद्धकुलजात्यादिसप्तसज्जातिरुच्यते । उदितोदितवंशत्व यतोऽभ्येति पुमान् कृती ॥८४॥
 पितुरन्वयशुद्धिर्या तत्कुलं परिभाष्यते । मातुरन्वयशुद्धिस्तु जातिरित्यमिल्यते ॥८५॥
 विशुद्धिरुमयस्यास्य सज्जातिरनुवर्णिता । यत्प्राप्ता^४ सुलभा^५ बोधिरयनोप^६ नतंगुणैः ॥८६॥
 सज्जन्मप्रतिलम्बोऽयमार्यावर्त^७ विशेषतः । सत्या देहादिसामग्र्या श्रेयः सूते हि देहिनाम् ॥८७॥
 शरीरजन्मना सैषा सज्जातिरुपवर्णिता । पुतन्मूला यतः^{१०} सर्वाः पुसामिष्टार्थमिद्वयः ॥८८॥
 संस्कारजन्मना चान्या सज्जातिरनुकीर्त्यते । यामासाद्य द्विजन्मत्व भव्यात्मा समुपाश्नुते ॥८९॥
 विशुद्धाकरसभूतो मणिः संस्कारयोगतः । यात्युत्कर्षं यथाऽऽत्मैव^{११} क्रियामन्त्रैः सुमस्कृत ॥९०॥
^{१२} सुवर्णधातुरथवा शुद्धयेदासाद्य सस्क्रियाम् । यथा तथैव भव्यात्मा शुद्धयत्यासादितक्रिय ॥९१॥
 ज्ञानजः स तु संस्कारः सम्यग्ज्ञानमनुत्तरम् । अदाय लभते साक्षात् सर्वविन्मुखतः कृती ॥९२॥

अथानन्तर-हे द्विजो, मैं आगे उन कर्त्रन्वय क्रियाओको कहता हूँ जो कि अल्पससारी भव्य प्राणी ही के हो सकती हैं ॥८१॥ उन कर्त्रन्वय क्रियाओमें कल्याण करनेवाली सबसे पहली क्रिया सज्जाति है जो कि किसी निकट भव्यको मनुष्यजन्मकी प्राप्ति होनेपर होती है ॥८२॥ मनुष्यजन्मकी प्राप्ति होनेपर जब वह दीक्षा धारण करने योग्य उत्तम वशमें विशुद्ध जन्म धारण करता है तब उसके यह सज्जाति नामकी क्रिया होती है ॥८३॥ विशुद्ध कुल और विशुद्ध जातिरूपी सम्पदा सज्जाति कहलाती है । इस सज्जातिसे ही पुण्यवान् मनुष्य उत्तरोत्तर उत्तम उत्तम वशको प्राप्त होता है ॥८४॥ पिताके वशकी जो शुद्धि है उसे कुल कहते हैं और माताके वशकी शुद्धि जाति कहलाती है ॥८५॥ कुल और जाति इन दोनोंकी विशुद्धिको सज्जाति कहते हैं, इस सज्जातिके प्राप्त होनेपर बिना प्रयत्नके सहज ही प्राप्त हुए गुणोंसे रत्नत्रयकी प्राप्ति सुलभ हो जाती है ॥८६॥ आर्यखण्डकी विशेषतासे सज्जातित्वकी प्राप्ति शरीर आदि योग्य सामग्री मिलनेपर प्राणियोंके अनेक प्रकारके कल्याण उत्पन्न करती है । भावार्थ-यदि आर्यखण्डके विशुद्ध वशमें जन्म हो और शरीर आदि योग्य सामग्रीका सुयोग प्राप्त हो तो अनेक कल्याणोंकी प्राप्ति सहज ही हो जाती है ॥८७॥ यह सज्जाति उत्तम शरीरके जन्मसे ही वर्णन की गयी है क्योंकि पुरुषोंके समस्त इष्ट पदार्थोंकी सिद्धिका मूलकारण यही एक सज्जाति है ॥८८॥ संस्काररूप जन्मसे जो सज्जातिका वर्णन किया जाता है वह दूसरी ही सज्जाति है उसे पाकर भव्य जीव द्विजन्मपनेको प्राप्त होता है ॥८९॥ जिस प्रकार विशुद्ध खानमें उत्पन्न हुआ रत्न संस्कारके योगसे उत्कर्षको प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रियाओं और मन्त्रोंसे सुसंस्कारको प्राप्त हुआ आत्मा भी अत्यन्त उत्कर्षको प्राप्त हो जाता है ॥९०॥ अथवा जिस प्रकार सुवर्ण पापाण उत्तम संस्कारको पाकर शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार भव्य जीव उत्तम क्रियाओंको पाकर शुद्ध हो जाता है ॥९१॥ वह संस्कार ज्ञानसे उत्पन्न होता है, सबसे उत्कृष्ट ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, जिस समय वह पुण्यवान् भव्य साक्षात् सर्वज्ञ देवके मुखसे उस उत्तम ज्ञान-

१ भो विप्रा । २ प्रत्यासन्नभोक्षस्थ । ३ सा चासन्न - ल० । ४ उत्तरोत्तराम्युदयवदन्वयत्वम् । ५ यत् सज्जाती प्राप्ती सत्याम् । ६ रत्नत्रयप्राप्ति । ७ उपागतै । ८ सज्जातिपरिप्राप्ति । ९ आर्यखण्ड । 'आर्यावर्त' पुण्यभूमि इत्यभिधानात् । १० एषा सज्जातिमूलं कारण यासा ता । ११ यत कारणात् । १२ संस्कारजन्मसज्जातिम् । १३ उत्कर्षं याति । १४ सुवर्णपापाण ।

तदैव परमज्ञानगर्भात् सस्कारजन्मना । जातो भवेद् द्विज-मिति व्रतं शालिष्व भूषित ॥१३॥
 यतचित्त्वं भवेदस्य सूत्रं मन्त्रपुर सरम् । सवज्ञाज्ञाप्रधानस्य द्रव्यभावविकल्पितम् ॥१४॥
 यज्ञोपवीतमस्य स्याद् द्रव्यतत्त्विगुणामकम् । सूत्रमौपासिकं तु स्याद् भावारूढैस्त्रिभिर्गुणै ॥१५॥
 यदव लब्धसस्कार परं ब्रह्माधिगच्छति । तदैवमभिनन्द्याशीवचोभिगणनायका ॥१६॥
 'लम्भयन्त्युचिता शेषा जैनी पुष्पैरयाक्षतै' । स्थिरीकरणमतद्धि धमप्रोत्साहनं परम् ॥१७॥
 अधोनिमग्नं दि-यज्ञानगमसमुद्भवम् । सोऽधिगम्य पर जन्म तदा सज्जातिमागमवेत् ॥१८॥
 ततोऽधिगतसज्जाति सद्गृहित्वमसौ भजेत् । गृहमधीमवज्ञापयट्कर्मण्यनुपालयन् ॥१९॥
 यदुक्तं गृहचर्यायामनुष्ठान विशुद्धिमत् । तदासविहितं कृत्स्नमतन्द्रालु समाचरन् ॥२०॥
 जिनेन्द्रालुब्धसज्जन्मा गणेन्द्रैरनुशिक्षित । स धत्ते परमं ब्रह्मवचसं द्विजसत्तम ॥२१॥
 तमन धमसाज्जुतं श्लाघन्त धार्मिका जना । परं तज 'ह्य ब्राह्मभवतीर्णं महीतलम् ॥२२॥
 स यजन्^२ याजयन्^३ धीमात्^४ यजमानैरुपासित^५ । अप्यापयश्चधीयानो^६ वेदवेत्ता^७ विस्तरम् ॥

को प्राप्त करता है उस समय वह उत्कष्ट ज्ञानरूपी गर्भसे सस्काररूपी जन्म लेकर उत्पन्न होता है और व्रत तथा शीलसे विभूषित होकर द्विज कहलाता है ॥१२-१३॥ सवज्ञ देवकी आज्ञा को प्रधान माननेवाला वह द्विज जो मन्त्रपूर्वक सूत्र धारण करता है वही उसके व्रतोंका चिह्न है वह सूत्र द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है ॥१४॥ तीन लरका जो यज्ञोपवीत है वह उसका द्रव्यसूत्र है और हृदयम उत्पन्न हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी गुणोंसे बना हुआ जो श्रावकका सूत्र है वह उसका भावसूत्र है ॥१५॥ जिस समय वह भव्य जीव संस्कारोंको पाकर परम ब्रह्मको प्राप्त होता है उस समय आचार्य लोग आशीर्वादरूप वचनोंसे उसकी प्रशंसा कर उसे पुष्प अथवा अक्षतोंसे जिनेन्द्र भगवान्की आशिषिका ग्रहण कराते हैं अर्थात् जिनेन्द्रदेवकी पूजासे बचे हुए पुष्प अथवा अक्षत उसके शिर आदि अंगोंपर रखवाते हैं क्योंकि यह एक प्रकारका स्थिरीकरण है और धमम अत्यन्त उत्साह बढ़ानेवाला है ॥१६-१७॥ इस प्रकार जब यह भव्य जीव बिना योनिके प्राप्त हुए दि-यज्ञानरूपी गर्भसे उत्पन्न होनेवाले उत्कष्ट जन्मको प्राप्त होता है तब वह सज्जातिको धारण करनेवाला समझा जाता है ॥१८॥ यह सज्जाति नामकी पहली किया है ।

तदनन्तर जिसे सज्जाति किया प्राप्त हुई है ऐसा वह भव्य सद्गृहित्व कियाको प्राप्त होता है इस प्रकार जो सद्गृहस्थ होता हुआ आय पुरुषोंके करने योग्य छह कर्मोंका पालन करता है, गृहस्थ अवस्थामें करने योग्य ओ-ओ विशुद्ध आचरण कहे गये हैं अर्हत्त भगवान्के द्वारा कहे हुए उन उन समस्त आचरणोंका जो आलस्य रहित होकर पालन करता है जिसने श्री जिनेन्द्रदेवसे उत्तम जन्म प्राप्त किया है और गणधरदेवने जिस निष्ठा दी है ऐसा वह उत्तम द्विज उत्कृष्ट ब्रह्मतेज - आत्मतेजको धारण करता है ॥१९-२०॥ उस समय धमस्वरूप हुए उस भग्यकी अन्य धर्मात्मा लोग यह कहते हुए प्रशंसा करत हैं कि तू पृथिवीतलपर अवतीर्ण हुआ उत्कृष्ट ब्रह्मतेजके समान है ॥२०२॥ पूजा करनेवाले यजमान जिसकी पूजा करते हैं जो स्वयं पूजन करता है, आर दूसरोंसे भी कराता

१ यजमूत्रम् । २ उपासकाधारसंविधि । मनसा विकल्पिते । ४ सम्मत्ज्ञानज्ञानधारित्र । उपलब्धि उपयोगमस्वारर्था । ५ परमज्ञानम परमतया वा । ६ आचार्या । ७ प्रापयति । ८ प्रवचनम् । ९ समाचरन् ६० अ ल० प० इ ह० । १० वृताध्ययनमपत्तिम् । स्याद् ब्रह्मवचस वृताध्ययनाद्धि इत्यभिधानात् । ११ गानमध्वर्युकृष्टनञ् इङ् । १२ यजन् पुषन् । १३ यजन् कारयन् । १४ पूजाकार्यम् । १५ आराधनम् । १६ अप्ययनं कारयन् । १७ आगम - आगमाङ्गम् ।

स्पृशन्नपि महीं नैव स्पृष्टो दोषैर्महीगतैः । देवत्वमात्मन्यात्कुर्यादिहैवाभ्यर्चितैर्गुणैः ॥१०४॥
 नाणिमा महिमैवास्य गरिमैव न लाघवम् । प्राप्तिः प्राकाम्यर्माशित्व वगित्व चेति तद्गुणा ॥१०५॥
 गुणैरेभिरुपास्तमहिमा देवसाद्भवम्^३ । विभ्रल्लोकातिग धाम मह्यमेष महीयते ॥१०६॥
 धर्मैराचरितैः सत्यशौचक्षान्तिदमादिभिः । देवब्राह्मणता श्लाघ्यां स्वस्मिन् मावयन्त्यमौ ॥१०७॥
 अथ जातिमदावेशात् कश्चिदेन द्विजव्रुव । ब्रूयादेव किमद्यैव देवभूय^४ गतो भवान् ॥१०८॥
 त्वमामुष्यायणः^५ किन्न किन्ते^६ ऽम्बाऽमुष्य पुत्रिका^७ । येनैवमुन्नसो^८ भूत्वा यास्यसत्कृत्य मद्विधान् ॥१०९॥
 जातिः सैव कुल तच्च सोऽसि योऽसि प्रगेतनः^९ । तथापि देवतात्मानमात्मान मन्यते भवान् ॥११०॥
 देवतातिथिपित्रिकार्यैश्चप्रयतो^{११} भवान् । गुरुद्विजातिदेवानां प्रणामाच्च पराङ्मुखः ॥१११॥
 दीक्षा जैनी प्रपन्नस्य जातः कोऽतिशयस्तव । यतोऽद्यापि मनुष्यस्त्व पादचारी मही स्पृशन् ॥११२॥
 इत्युपास्तुदसरम्भमु^{१२} पालव्यः^{१३} स केनचित् । ददात्युत्तरमित्यस्मै वचोभिर्युक्तिपेणैः^{१४} ॥११३॥
 श्रूयतां भो द्विजमन्य त्वयाऽस्मद्विच्यसंभवः^{१५} । जिनो^{१६} जनयिताऽस्माक ज्ञानं गर्भोऽतिनिर्मलः ॥११४॥

है, जो वेद और वेदागके विस्तारको स्वयं पढता है तथा दूसरोको भी पढाता है, जो यद्यपि पृथिवीका स्पर्श करता है तथापि पृथिवीसम्बन्धी दोष जिसका स्पर्श नहीं कर सकते है, जो अपने प्रशसनीय गुणोसे इसी पर्यायमे देवपर्यायको प्राप्त होता है, जिसके अणिमा ऋद्धि अर्थात् छोटापन नहीं है किन्तु महिमा अर्थात् बडप्पन है, जिसके गरिमा ऋद्धि है परन्तु लघिमा नहीं है, जिसमे प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वगित्व आदि देवताओके गुण विद्यमान है, उपर्युक्त गुणोसे जिसकी महिमा बढ रही है, जो देवरूप हो रहा है और लोकको उल्लघन करनेवाला उत्कृष्ट तेज धारण करता है ऐसा यह भव्य पृथिवीपर पूजित होता है ॥१०३-१०६॥ सत्य, शौच, क्षमा और दम आदि धर्मसम्बन्धी आचरणोसे वह अपनेमे प्रशसनीय देवब्राह्मणपनेकी सम्भावना करता है अर्थात् उत्तम आचरणोसे अपने आपको देवब्राह्मणके समान उत्तम बना देता है ॥१०७॥

यदि अपनेको झूठमूठ ही द्विज माननेवाला कोई पुरुष अपनी जातिके अहंकारके आवेश-से इस देवब्राह्मणसे कहे कि आप क्या आज ही देवपनेको प्राप्त हो गये है ? ॥१०८॥ क्या तू अमुक पुरुषका पुत्र नहीं है ? और क्या तेरी माता अमुक पुरुषकी पुत्री नहीं है ? जिससे कि तू इस तरह नाक ऊँची कर मेरे ऐसे पुरुषोका सत्कार किये बिना ही जाता है ? ॥१०९॥ यद्यपि तेरी जाति वही है, कुल वही है और तू भी वही है जो कि सबेरेके समय था तथापि तू अपने आपको देवतारूप मानता है ॥११०॥ यद्यपि तू देवता, अतिथि, पितृगण और अग्निके कार्योंमे निपुण है तथापि गुरु, द्विज और देवोको प्रणाम करनेसे विमुख है ॥१११॥ जैनी दीक्षा धारण करनेसे तुझे कौन-सा अतिशय प्राप्त हो गया है ? क्योंकि तू अब भी मनुष्य ही है और पृथिवीको स्पर्श करता हुआ पैरोसे ही चलता है ॥११२॥ इस प्रकार क्रोध धारण कर यदि कोई उलाहना दे तो उसके लिए युक्तिसे भरे हुए वचनोसे इस प्रकार उत्तर दे ॥११३॥ हे अपने आपको द्विज माननेवाले, तू मेरा दिव्य जन्म सुन, श्री जिनेन्द्रदेव ही मेरा पिता है और

१ रत्नत्रयादिगुणलामः । २ प्रकर्षणाममन्तात् सकलाभिलषणीयत्वम् । ३ देवाधीनम् । देव साद्भवन् ल०, द०, इ० । देवसाद्भवेत् अ०, प०, स० । ४ देवत्वम् । ५ कुलीन । 'प्रसिद्धपितुरुत्पन्न आमुष्यायण उच्यते ।' ६ तव । ७ कुलीना पुत्री । ८ येन कारणेन । ९ उद्गतनासिकः । १० प्राग्भव । ११ -एवप्राकृतो ल०, द० । १२ स्वीकृतक्रोध यथा भवति तथा । १३ दूषित । १४ पटुभिः । १५ अस्माक देवोत्पत्तिः । १६ पिता ।

‘तत्राहर्ता त्रिधा’ मित्रा शक्तिं त्रैगुण्यसञ्चिताम् । स्वसात्कृत्य समुद्भूता वयः सस्कारज-मना ॥११५॥
 अयोनिमवस्थानेन देवा एव न भानुषा । अथ वयमिवान्येऽपि सन्ति चेद् ब्रूहि तद्विधान् ॥११६॥
 स्वायम्भुवान्मुखाजातास्ततो देवद्विजा वयम् । व्रतचिह्नं च न सूत्रं पवित्रं सूत्रदर्शितम् ॥११७॥
 पापसूत्रानुगा यूय न द्विजा सूत्रकण्ठका । सन्मागकण्ठकास्तीक्ष्णा केवलं मलदूषिता ॥११८॥
 शरीरजन्म सस्कारजन्म चेति द्विधा मतम् । जन्माज्जिनां मृतिश्चैव द्विधाभ्याता जिनागमैः ॥११९॥
 देहात्तरपरिप्राप्तिं पूर्वदेहपरिक्षयात् । शरीरजन्म विशेष्यं देहभार्जा भवान्तरे ॥१२०॥
 तथा लब्धात्मलाभस्य पुनः सस्कारयोगतः । द्विजन्मतापरिप्राप्तिर्जन्म सस्कारजं स्मृतम् ॥१२१॥
 शरीरमरणं स्वायुरन्ते देहविसर्जनम् । सस्कारमरणं प्रासवत्स्यागं समुद्भवनम् ॥१२२॥
 ‘यतोऽयं लब्धसस्कारो विजहति प्रगेतनम्’ । मिथ्यादर्शनपर्यायं तत्तत्तन्मृते भवेत् ॥१२३॥
 तत्र^{१०} सस्कारजन्मेद्रमपापोपहतं परम् । जातं नो^{११} गृध्रनुज्ञानादतो^{१२} देवद्विजा वयम् ॥१२४॥
 इत्यात्मनो गुणोऽर्पं व्यापयन्म्यायवत्सना । गृहमेधी भवेत् प्राप्य सद्गृहित्वमनुत्तरम् ॥१२५॥
 भूयोऽपि सप्रवक्ष्यामि ब्राह्मणान् सत्क्रियोचितान् । जातिवादाबलेपस्य^{१३} निरासाथमतः परम् ॥१२६॥

ज्ञान ही अत्यन्त निमल गम है ॥ ११४॥ उस गममें उपलब्धि, उपयोग और सस्कार इन तीन गुणोंके आश्रित रहनेवाली जो रहन्तदेवसम्बन्धिनी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य ये तीन भिन्न भिन्न शक्तियाँ हैं उन्हें अपने अधीन कर हम संस्काररूपी जन्मसे उत्पन्न हुए हैं ॥११५॥ हम लोग बिना योनिसे उत्पन्न हुए हैं इसलिए देव ही हैं मनुष्य नहीं हैं, हमारे समान जो और भी हैं उन्हें भी तू देवब्राह्मण कह ॥११६॥ हम लोग स्वयम्भूके मुखसे उत्पन्न हुए हैं इसलिए देवब्राह्मण हैं और हमारे व्रतोंका चिह्न शास्त्रोंमें कहा यह पवित्र सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत है ॥११७॥ आप लोग तो गलेमें सूत्र धारण कर समीचीन मार्गमें तीक्ष्ण कण्ठक बनते हुए पापरूप सूत्रके अनुसार चलनेवाले हैं, केवल मलसे दूषित हैं, द्विज नहीं हैं ॥११८॥ जीवोंका जन्म दो प्रकारका है एक तो शरीरजन्म और दूसरा सस्कार-जन्म । इसी प्रकार जैनशास्त्रोंमें जीवोंका मरण भी दो प्रकारका माना गया है ॥११९॥ पहले शरीरका क्षय हो जानेसे दूसरी पर्यायिम जो दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है उसे जीवोंका शरीरजन्म जानना चाहिए । ॥१२०॥ इसी प्रकार सस्कारयोगसे जिसे पुनः आत्मलाभ प्राप्त हुआ है ऐसे पुरुष को जो द्विजपनेकी प्राप्ति होना है वह सस्कारज अर्थात् सस्कारसे उत्पन्न हुआ जन्म कहलाता है ॥१२१॥ अपनी आयुके अन्तमें शरीरका परित्याग करना शरीरमरण है तथा व्रती पुरुष का पापोंका परित्याग करना सस्कारमरण है ॥१२२॥ इस प्रकार जिसे सब संस्कार प्राप्त हुए हैं ऐसा जीव मिथ्यादर्शनरूप पहलके पर्यायिको छोड़ देता है इसलिए वह एक तरहसे मरा हुआ ही कहलाता है ॥१२३॥ उन दोनों जन्मोंमें-से जो पापसे दूषित नहीं है ऐसा सस्कारसे उत्पन्न हुआ यह उत्कृष्ट जन्म गुरुकी आज्ञानुसार मुझे प्राप्त हुआ है इसलिए मैं देवद्विज या देवब्राह्मण कहलाता हूँ ॥१२४॥ इस प्रकार व्यायमार्गसे अपने आत्माके गुणोंका उत्कर्ष प्रकट करता हुआ वह पुरुष सर्वश्रेष्ठ सद्गृहित्व अवस्थाको पाकर सद्गृहस्थ होता है ॥१२५॥ उत्तम क्रियाओंके करने योग्य ब्राह्मणोंसे उनके जातिवादका अहंकार दूर करनेके लिए इसके

१ ज्ञानगमः । २ सम्यग्ज्ञानज्ञानचारित्र्याणीति त्रिप्रकारः । ३ उपलब्ध्युपयोगसस्कारात्मतां गताम् । ४ अयोनि मववप्रकारान् । अयोनिमववसद्गुणानित्यम् । ५ आगमप्रोक्तम् । ६ सूत्रमात्रमव कण्ठे यपां से । ७ यस्मान् चारणम् । ८ प्राप्तिनम् । ९ मिथ्यादर्शनत्यजनरूपगत्यम् । १० शरीरजन्मसस्कारजन्मनो । ११ अस्माकम् । १२ गृध्रेनुज्ञाया । १३ गवस्य । १४ निराकरणाय ।

ब्रह्म गोऽपि यमि येव ब्राह्मणः । स पुत्राद्वन् । ब्रह्मा स्वयम्भुवगवान् परमेष्ठी^१ जिनोत्तम ॥१२७॥
 स ह्यादिपरमब्रह्मा जिनोन्द्रो गुणवृहणान् । पर ब्रह्म यदायत्तमामनन्ति सुनीश्वरा ॥१२८॥
 नैणाजिनवरो ब्रह्मा जटाकर्चादिलक्षण । यः कामगर्दभो^२ भूत्वा प्रच्युतो ब्रह्मवर्चमान^३ ॥१२९॥
 दिव्यमूर्तेर्जिनेन्द्रस्य ज्ञानगर्भादनाचिलान^४ । समामादितजन्मानो द्विजन्मानस्तनो मताः ॥१३०॥
 वर्णान्त पातिनो नैते मन्तव्या द्विजसत्तमाः । व्रतमन्त्रादिसंस्कारमार्गोपितगौरवाः ॥१३१॥
 वर्णोत्तमानिमान् विद्वः क्षान्तिशौचपरायणान् । संतुष्टान् प्राप्तवैशिष्ट्यान् क्लिष्टाचारभूषणान् ॥१३२॥
 क्लिष्टाचाराः परे नैव ब्राह्मणा द्विजमानिनः । पापारम्भरतां श्वदाहत्य^५ पशुवर्तिनः ॥१३३॥
 सर्वमधमय^६ धर्ममभ्युपेय पशुघ्नताम्^७ । का नाम गतिरेषा स्यात् पापशास्त्रोपजीविनाम् ॥१३४॥
 चोदनालक्षण^८ धर्ममधर्मं प्रतिजानते^९ । ये तेभ्यः कर्मचाण्डालान् पश्यामो नापशान् भुवि ॥१३५॥
 पापिनेर्दण्डनीयाश्च लुण्ठका^{१०} पापपण्डिता । तेऽमी धर्मजुषां ब्राह्मा ये निघ्नन्त्यघृणा^{११} पशन् ॥१३६॥
 पशुहत्याममारम्भान् क्रव्यादभ्योऽपि^{१२} निष्कृषा । यद्युच्छ्रिति^{१३} मुशन्त्येते हन्तैव धार्मिका हताः ॥१३७॥

आगे फिर भी कुछ कहता हूँ ॥१२६॥ जो ब्रह्माकी सन्तान है, उन्हे ब्राह्मण कहते हैं और स्वयम्भू, भगवान्, परमेष्ठी तथा जिनोन्द्रदेव ब्रह्मा कहलाते हैं । भावार्थ — जो जिनोन्द्र भगवान्-का उपदेश सुनकर उनकी शिष्य-परम्परामे प्रविष्ट हुए हैं वे ब्राह्मण कहलाते हैं ॥१२७॥ श्रीजिनोन्द्रदेव ही आदि परम ब्रह्मा हैं क्योंकि वे ही गुणोको बढ़ानेवाले हैं और उत्कृष्ट ब्रह्म अर्थात् ज्ञान भी उन्हीके अधीन है ऐसा मुनियोके ईश्वर मानते हैं ॥१२८॥ जो मृगचर्म धारण करता है, जटा, दाढ़ी आदि चिह्नोंसे युक्त है तथा कामके वश गन्धा होकर जो ब्रह्मतेज अर्थात् ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट हुआ वह कभी ब्रह्मा नहीं हो सकता ॥१२९॥ इसलिए जिन्होंने दिव्य मूर्तिके धारक श्री जिनोन्द्रदेवके निर्मल ज्ञानरूपी गर्भसे जन्म प्राप्त किया है वे ही द्विज कहलाते हैं ॥१३०॥ व्रत, मन्त्र तथा संस्कारोंसे जिन्हे गौरव प्राप्त हुआ है ऐसे इन उत्तम द्विजोंको वर्णोंके अन्तर्गत नहीं मानना चाहिए अर्थात् ये वर्णोत्तम हैं ॥१३१॥ जो क्षमा और शौच गुणके धारण करनेमें सदा तत्पर है, संतुष्ट रहते हैं, जिन्हे विशेषता प्राप्त हुई है और निर्दोष आचरण हो जिनका आभूषण है ऐसे इन द्विजोंको सब वर्णोंमें उत्तम मानते हैं ॥१३२॥ इनके सिवाय जो मलिन आचारके धारक हैं, अपनेको झूठमूठ द्विज मानते हैं, पापका आरम्भ करनेमें सदा तत्पर रहते हैं और हठपूर्वक पशुओका घात करते हैं वे ब्राह्मण नहीं हो सकते ॥१३३॥ जो समस्त हिंसामय धर्म स्वीकार कर पशुओका घात करते हैं ऐसे पापशास्त्रोंसे आजीविका करनेवाले इन ब्राह्मणोंकी न जाने कौन-सी गति होगी ? ॥१३४॥ जो अधर्म स्वरूप वेदमें कहे हुए प्रेरणात्मक धर्मको धर्म मानते हैं मैं उनके सिवाय इस पृथिवीपर और किसीको कर्म चाण्डाल नहीं देखता हूँ अर्थात् वेदमें कहे हुए धर्मको माननेवाले सबसे बढ़कर कर्म चाण्डाल हैं ॥१३५॥ जो निर्दय होकर पशुओका घात करते हैं वे पापरूप कार्योंमें पण्डित हैं, लुटेरे हैं, और धर्मात्मा लोगोंसे बाह्य हैं, ऐसे पुरुष राजाओंके द्वारा दण्डनीय होते हैं ॥१३६॥ पशुओकी हिंसा करनेके उद्योगसे जो राक्षसोंसे भी अधिक निर्दय हैं यदि ऐसे पुरुष ही उत्कृष्टताको प्राप्त होते हो तब

१ परमपदे स्थित । २ कामाद् गर्दभाकारमुख इत्यर्थः । ३ अव्ययनमपत्ते । ४ अकलुपात् । ५ वर्णमात्र-वर्तिन इत्यर्थः । ६ दुष्ट । ७ हठात्, साक्षात् वा । ८ हिंसामयम् । ९ हिंसा कुर्वताम् । १० वेदोक्तलक्षणम् । ११ प्रतिज्ञा कुर्वते । १२ चौरा । १३ नि कृपा । १४ पशुहृन्ननप्रारम्भात् । १५ राक्षसेभ्यः । 'राक्षस कोणप क्रव्यात् क्रव्यादोज्वप आशर' इत्यभिधानात् । १६ उन्नतिम् ।

मलिनाचरिता होते कृष्णवर्गे द्विजब्रुवा । जैनास्तु निमलचारा शुक्लवर्गे मता युधे ॥१३८॥
 १ श्रुतिस्मृति पुरावृत्त वृत्तमत्र क्रियाश्रिता । दत्तालिङ्गकामान्तवृत्ता शुद्धिर्द्विजमनाम् ॥१३९॥
 य विशुद्धतरा वृत्तिं तत्कृता समुपाश्रिता । त शुक्लवर्गे बोधव्या क्षेपा शुद्धे यति कृता ॥१४०॥
 तच्छुद्धशुद्धा बोधव्य यायान्यायप्रवृत्ति । यायो दयाद्वृत्तित्वमयाय प्राणिमारणम् ॥१४१॥
 विशुद्धवृत्तयस्तस्माज्जैना वर्णात्तमा द्विजा । वर्णात्तमतिनो नैत जगन्मान्या इति स्थितम् ॥१४२॥
 स्वादाकारका च पटकमनीविना गृहमधिनाम् । हिंसादोषोऽनुसगी स्याज्जनानां च द्विजन्मनाम् ॥१४३॥
 इत्यग्रं ब्रूमह मत्स्य मे रूपसावद्यसगति । तत्रास्त्यव तथाप्यप्य स्याच्छुद्धि शास्त्रदक्षिता ॥१४४॥
 अपि चैषा विशुद्धपक्ष पक्षश्चर्या च साधनम् । इति श्रितयमस्त्येव तदिदानीं विवृणमह ॥१४५॥
 तत्र पक्षो हि जनाना वृत्तहिंसाविवजनम् । मैत्राप्रमोदकारण्यमाध्यस्थैरुपबृंहितम् ॥१४६॥
 चर्या तु दवतार्य वा म त्रसिद्धयथमव वा । औषधाहारकल्प्य वा न हिंस्यामीति चेष्टितम् ॥१४७॥
 तत्राक्रमकृत १ शुद्धि प्रायश्चित्तैर्विधीयते । पञ्चाद्यात्माख्य १ सुनौ व्यवस्थाप्य गृहोज्जनम् ॥१४८॥

तो दु खके साथ कहना पडेगा कि बेचारे धर्मात्मा लोग व्यर्थ ही नष्ट हुए ॥१३७॥ ये द्विज लोग मलिन आचारका पालन करते ह और झूठमूठ ही अपनेको द्विज कहते है इसलिए विद्वान् लोग इन्हे कृष्णवर्ग अर्थात् पापियोके समूहम गर्भित करते हैं और जन लोग निमल आचारका पालन करते ह इसलिए इन्हे शुक्लवर्ग अर्थात् पुण्यवानोके समूहम शामिल करते है ॥१३८॥ द्विज लोगोकी शुद्धि श्रुति स्मृति पुराण, सदाचार मन्त्र और क्रियाओवे आश्रित है तथा देवताआके चिह्न धारण करने और कामका नाश करनेसे भी होती है ॥१३९॥ जो श्रुति स्मृति आन्किके द्वारा की हुई अत्यन्त विशुद्ध वृत्तिको धारण करते ह उन्हें शुक्लवर्ग अर्थात् पुण्यवानोके समूहमे समझना चाहिए और जो इनसे शप बचते ह उन्हें शुद्धिसे बाहर समझना चाहिए अर्थात् वे महा अशुद्ध है ॥१४०॥ उनकी शुद्धि और अशुद्धि याय और अन्यायरूप प्रवृत्तिमे जाननी चाहिए । दयासे कोमल परिणाम होना याय है और प्राणियोका मारना अन्याय है ॥१४१॥ इससे यह बात निश्चित हो चुकी कि विशुद्ध वृत्तिको धारण करनेवाल जैन लोग ही सब वर्णोम उत्तम ह । वे ही द्विज है । ये ब्राह्मण आदि वर्णोके अतगत न होकर वर्णोत्तम ह और जगत्पूज्य ह ॥१४२॥

अब यहाँ यह बका हो सकती है कि जो असि मयी आदि छह कर्मोंसे आजीविका करने वाल जन द्विज अथवा गृहस्थ ह उनके भी हिंसाका दोष लग सकता है परन्तु इस विषयम हम यह कहते ह कि आपने जो कहा है वह ठीक है आजीविकाके लिए छह कर्म करनेवाल जैन गृहस्थोके थोड़ी-सी हिंसाकी सगति अवश्य होती है परन्तु शास्त्रोम उन दोषाकी शुद्धि भी तो लिखलायी गयी है ॥१४३-१४४॥ उनकी विशुद्धिके अग तीन ह पक्ष चर्या और साधन । अब मैं यहाँ इन्ही तीनका वर्णन करता हू ॥१४५॥ उन तीनाम-से मत्री प्रमोद कारण्य और माध्यस्थ्य भावम वृद्धिके प्राप्त हुआ ममस्त हिंसाका त्याग करना जनियाका पक्ष कहलाता है ॥१४६॥ किसी दवताके लिए किसी मन्त्रकी सिद्धिके लिए अथवा किसी औषध या भोजन बनवानेके लिए म किसी जीवनी हिंसा नहीं कर्नेगा ऐसी प्रतिपा करना चर्या कहलाती है ॥१४७॥ इस प्रतिज्ञाम यदि कभी इच्छा न रहत तू प्रमादम दाप लग जावे ता प्रायश्चित्तम उमकी शुद्धि

१ पाप । २ पुण्य । ३ आगम । ४ धर्मसंहिता । ५ पश्य । ६ श्रुतिस्मृत्यान्वृत्ताम् । ७ जनान्प्राप्तयो लक्षणादि । ८ वर्णमात्रनिन । ९ मन्त्रा । १० हिंसाया अनुमता स्नान इत्यत्र । ११ मत्स्यमित्यङ्गीकार । १२ चष्टित । १३ शास्त्र इत्यत्र । १४ प्रमादमनिन ६ प । १५ आत्मावर्य २० २० ६० अ० ५० म० ।

चक्षेपा गृहिणा प्रोक्ता जातिवितान्ते तु स्यान्नम् । देहाहांगहित-यागाद् यानशुद्ध्यात्मशोभनम् ॥१४७॥
 त्रिवेनेषु न स्पृश्यां वधेनार्हद्विजन्मनाम् । उन्म्यान्मपक्षनिश्चितशोपाणा म्यान्निगृह्णति ॥१४८॥
 चतुर्णामाश्रमाणा च शुद्धि रयादाहते मने । चतुराश्रम्यमन्येषामविचारितसुन्दरम् ॥१४९॥
 ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुक । उन्म्याश्रमान्नु जैनानामुत्तमोत्तरशुद्धित ॥१५०॥
 ज्ञानव्या स्यु प्रपञ्चेन सान्तर्भेदा दृष्ट्विवा ३ । ग्रन्थगौगवर्मान्या तु नात्रैतेषा प्रपञ्चना ॥१५१॥
 सद्गृह्णन्मिद ज्ञेय गुणैरात्मोपवृहणम् । पारिव्राज्यमितां वक्ष्ये सुविशुद्ध क्रियान्तरम् ॥१५२॥

इति सद्गृह्णित्वम् ।

गार्हस्थ्यमनुपलभ्यैव गृहवासाद् विरज्यते ४ । यन्दीक्षाग्रहण तद्वि पारिव्राज्य प्रचक्ष्यते ॥१५३॥
 पारिव्राज्य परिव्राजो भावो निर्वाणदीक्षणम् । तत्र निर्ममता वृत्त्या ज्ञानरूपस्य धारणम् ॥१५४॥
 प्रशरततिथिनक्षत्रयोगलग्नं ग्रहाणकं ५ । निर्ग्रन्थाचार्यमाश्रित्य दीक्षा ग्राह्या मुमुक्षुणा ॥१५५॥
 विशुद्धकुलगोत्रस्य सद्गृह्णत्तस्य वपुर्मनः । दीक्षायोग्यत्वमाज्ञात मुमुक्षुस्य सुमेधमः ॥१५६॥
 ६ ग्रहोपरागग्रहणे परिवेषेन्द्रचापयो । वक्रग्रहोदये मेघपटलरश्मिगतेऽम्बरं ॥१५७॥

की जाती है तथा अन्तमे अपना सब कुटुम्ब पुत्रके लिए सौंपकर घरका परित्याग किया जाता है ॥१४८॥ यह गृहस्थ लोगोकी चर्या कही, अब आगे साधन कहते हैं । आयुके अन्त समयमे बरीर आहार और समस्त प्रकारकी चेष्टाओका परित्याग कर ध्यानकी शुद्धिमे जो आत्माको शुद्ध करना है उसे साधन कहते हैं ॥१४९॥ अरहन्तदेवको माननेवाले द्विजोका पक्ष, चर्या और साधन इन तीनोंमे हिंसाके साथ स्पर्श भी नहीं होता, इस प्रकार अपने ऊपर ठहराये हुए दोषोका निराकरण हो सकता है ॥१५०॥ चारो आश्रमोकी शुद्धता भी श्री अर्हन्तदेवके मतमे ही है । अन्य लोगोने जो चार आश्रम माने हैं वे विचार किये बिना ही सुन्दर हैं अर्थात् जबतक उनका विचार नहीं किया गया है तभीतक सुन्दर हैं ॥१५१॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक ये जैनियोके चार आश्रम हैं जो कि उत्तरोत्तर अधिक विशुद्ध होनेसे प्राप्त होते हैं ॥१५२॥ ये चारो ही आश्रम अपने-अपने अन्तर्भेदोसे सहित होकर अनेक प्रकारके हो जाते हैं, उनका विस्तारके साथ ज्ञान प्राप्त करना चाहिए परन्तु ग्रन्थ बढ जानेके भयसे यहाँ उनका विस्तार नहीं लिखा है ॥१५३॥ इस प्रकार गुणोके द्वारा अपने आत्माकी वृद्धि करना यह सद्गृह्णित्व क्रिया है । अब इसके आगे अत्यन्त विशुद्ध पारिव्राज्य नामकी तीसरी क्रियाका निरूपण करगे ॥१५४॥ यह दूसरी सद्गृह्णित्व क्रिया है ।

इस प्रकार गृहस्थधर्मका पालन कर घरके निवाससे विरक्त होते हुए पुरुषका जो दीक्षा ग्रहण करना है उसे पारिव्राज्य कहते हैं ॥१५५॥ परिव्राट्का जो निर्वाणदीक्षारूप भाव है उसे पारिव्राज्य कहते हैं, इस पारिव्राज्य क्रियामे ममत्व भाव छोडकर दिगम्बररूप धारण करना पडता है ॥१५६॥ मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषको शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र, शुभ योग, शुभ लग्न और शुभ ग्रहोके अगमे निर्ग्रन्थ आचार्यके पास जाकर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए ॥१५७॥ जिसका कुल और गोत्र विशुद्ध है, चरित्र उत्तम है, मुख सुन्दर है और प्रतिभा अच्छी है ऐसा पुरुष ही दीक्षा ग्रहण करनेके योग्य माना गया है ॥१५८॥ जिस दिन ग्रहोका उपराग हो, ग्रहण लगा हो, सूर्य-चन्द्रमापर परिवेष (मण्डल) हो, इन्द्रधनुष उठा हो, दुष्ट ग्रहोका उदय हो, आकाश मेघपटलसे ढका हुआ हो, नष्ट मास अथवा अधिक

१ चेष्टा । २ चतुराश्रमत्वम् । ३ नानाप्रकार । ४ विरक्ति गच्छत । ५ मुहूर्त । ६ ग्रहाणकं ल०, द०, अ०, प०, इ०, म० । ७ चन्द्रादिग्रहणे ।

'नष्टाधिमासदिनय सक्राता' हानिमत्तिथी । दीक्षाविधिं मुमुक्षूणा नेच्छन्ति कृतबुद्धयः ॥१६०॥
 'संप्रदायमनादृत्य यत्स्वित्तम' दीक्षयेदर्थं । स साधुभिर्बहिः कार्यो धृष्टात्यासादनारतः ॥१६१॥
 'तत्र सूत्रप, पादुयांगी द्रा सप्तविंशतिम् । यैर्निर्गते' भवे साक्षात्' पारिव्रज्यस्य लक्षणम् ॥१६२॥
 जातिमूर्तिश्च तत्रस्थ' लक्षण सुन्दराहता । प्रमामण्डलचक्राणि तयागिषवनाथते' ॥१६३॥
 सिंहासनोपधाने च छत्रचामरघोषण । अशोकवृक्षनिधयो गृहशोभावागाहने ॥१६४॥
 क्षेत्रज्ञाऽऽज्ञा समा कर्तिवन्द्यता वाहनानि च । मापाहारसुखानीति तास्यादि सप्तविंशति ॥१६५॥
 जात्यादिकामिमां सप्तविंशतिं परमर्षिनाम् । गुणानाहु मजेदीक्षां स्वेपु' तत्कृतादर ॥१६६॥
 जातिमानप्यनुस्तिन' सभजदहता क्रमो' । यतो जायन्तरे' जात्यो' याति जाति' चतुष्टयोम् ॥
 जातिरे' न' भवेद्विद्या चक्रिणा विजयाश्रिता । परमा जातिराहस्य स्वामोत्या सिद्धिमीयुषाम् ॥१६७॥

मासका दिन हो सक्राति हो अथवा क्षयतिथिका दिन हो उस दिन बुद्धिमान् आचार्य मोक्षकी इच्छा करनेवाला भव्योके लिए दीक्षाकी विधि नहीं करना चाहते हैं अर्थात् उस दिन किसी शिष्यको नवीन दीक्षा नहीं देते हैं ॥१५९-१६०॥ जो मन्दबुद्धि आचार्य इस सम्प्रदायका अनादर कर नवीन शिष्यको दीक्षा दे देता है वह वृद्ध पुरुषोंके उल्लघन करनेमें तत्पर होने से अथ साधुओंके द्वारा बहिष्कार कर देने योग्य है । भावाथ — जो आचार्य असमयमें ही शिष्योंको दीक्षा दे देता है वह वृद्ध आचार्योंकी मान्यताको उल्लघन करता है इसलिए साधुओंको चाहिए कि वे ऐसे आचार्योंको अपने सघसे बाहर कर दें ॥ १६१ ॥ मुनिराज इस पारिव्रज्य क्रियामें उन सत्ताईस सूत्र पदोंका निरूपण करते हैं जिनका कि निणय होनेपर पारिव्रज्यका साक्षात् लक्षण प्रकट होता है ॥१६२॥ जाति मूर्ति, उसमें रहनेवाला लक्षण, शरीर की सुन्दरता, प्रमा मण्डल, चक्र, अभिषेक, नाथता, सिंहासन, उपधान, छत्र, चामर, घोषणा, अशोक वृक्ष निधि, गृहशोभा, अवगाहन, क्षेत्रज्ञ, आज्ञा सभा, कीर्ति वन्दनीयता, वाहन, मापा आहार और सुख ये जाति आदि सत्ताईस सूत्रपद कहलाते हैं ॥१६३-१६५॥ ये जाति आदि सत्ताईस सूत्रपद परमर्षियोंके गुण कहलाते हैं । उस भव्य पुरुषको अपने जाति आदि गुणोंसे आदर न करते हुए दीक्षा धारण करना चाहिए । भावाथ — ये जाति आदि गुण जिस प्रकार परमर्षियोंमें होते हैं उसी प्रकार दीक्षा लनेवाला शिष्यमें भी यथासम्भव रूपसे होते हैं परन्तु शिष्यको अपने जाति आदि गुणोंका सम्मान नहीं कर परमर्षियोंके ही जाति आदि गुणोंका सम्मान करना चाहिए । क्योंकि ऐसा करनेसे वह शिष्य अहंकार आदि दुर्गुणोंसे बचकर अपने आपका उत्थान शीघ्र ही कर सकता है ॥१६६॥ स्वयं उत्तम जातिवाला होने पर भी अहंकाररहित होकर अरहन्तदेवके चरणावी सेवा करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करनेसे वह भव्य दूसरे जन्ममें उत्पन्न होनेपर दिव्या विजयाश्रिता परमा और स्वा इन चार जातियोंका प्राप्त होता है ॥१६७॥ इन्द्रके दिव्या जाति होती है चक्रवर्तियोंके विजयाश्रिता, अरहन्तदेवके परमा और मासको प्राप्त हुए जीवोंके अपने आत्मासे उत्पन्न होनेवाली स्वा

१ मष्टमासस्याधिकभागस्य न्निधोः । २ असंपूर्णतिथी । ३ साधुणमतय । ४ आम्नायम (परम्परा) ।
 ५ दीक्षा स्वीकृत्यान् । ६ वृद्धातिक्रमण तत्पर । ७ पारिव्राज्य । ८ निर्विचन । ९ प्रत्यक्षम् । १० मूर्तिस्थितम् ।
 तत्रय ल० । ११ अभिषेक च अभिषेको नाथता च स्वामित्व च । १२ आरम्भियम् । १३ जात्यान्विम् ।
 १४ अर्णविन । १५ चरणी । १६ जमातर । १७ उत्पत्ति सत्याम । १८ निव्यजातिविजयजाति परमजाति
 स्वामोक्षजातिरिति । १९ इत्यस्य इयम् ।

मूर्त्यादिष्वपि^१ नेतव्या कल्पनेय चतुष्टया । पुगणजैस्समोहान कच्चिच्च^२ त्रितर्या मता ॥१६९॥
 कर्मयेन्मूर्तिमान्मायां रक्षन्मूर्तां शरीरिणाम् । ततोऽवितिष्ठेद् दिव्यादिप्रतीरासुमना मुनि ॥१७०॥
 स्वलक्षणमनिर्देश^३ मन्थमानो जिनेशिनम् । लक्षणान्प्रमिस्राय^४ तपस्येन कृतलक्षणम् ॥१७१॥
 म्हापयन् स्वाङ्गपोन्दर्यं मुनिरुग्र तपश्चरन् । बान्धुन्दिव्यादिपोन्दर्यमनिवार्यपरम्परम् ॥१७२॥
 मर्लीमसाङ्गो व्युत्पष्टस्वकायप्रभवपम । प्रभो^५ प्रभा मुनिर्भ्यायन् भवेन निप्र प्रभास्वर ॥१७३॥
 स्वं मणिस्त्रेह^६ दीपादिनेजोऽपास्य जिन मजन् । तेजोमयमय योगी स्यात्तेजोबलयोज्ज्वल ॥१७४॥
 त्यक्त्वाऽस्त्र^७ वस्त्र^८ शस्त्राणि^९ प्राक्तनानि प्रयान्तिनाक् । जिनमाराध्य योगीन्द्रो धर्मचक्रादिपो भवेन ॥
 त्यक्तस्नानादिसंस्कार सश्रित्य स्नातक^{१०} जिनम् । मूर्तिं मेरोरवाप्नोति पर जन्मामिषेचनम् ॥१७५॥
 स्व^{११} स्वाम्यमैहिकं त्यक्त्वा परमस्वामिन जिनम् । सेवित्वा सेवनीयवन्दनयथेप जगज्जन ॥१७६॥
 स्वोचिततासनभेदाना त्यागात्त्यक्ताम्बरो मुनिः । मैह विष्टरमध्यास्य तीर्थप्रस्थापको भवेन ॥१७७॥
 'स्वोपधानाद्यनादृत्य योऽभृन्निरुप^{१२} विभुवि । ग्रथान स्थण्डिले बाहुमान्नापितगिरस्तट ॥१७८॥

जाति होती है ॥१६८॥ इन चारोकी कल्पना मूर्ति आदिमे कर लेनी चाहिए, अर्थात् जिस प्रकार जातिके दिव्या आदि चार भेद हैं उसी प्रकार मूर्ति आदिके भी समझ लेना चाहिए । परन्तु पुराणोको जाननेवाले आचार्य मोहरहित होनेसे किसी-किसी जगह तीन ही भेदोको कल्पना करते हैं । भावार्थ - मिट्टोमे स्वा मूर्ति नहीं मानते हैं ॥१६९॥ जो मुनि दिव्य आदि मूर्तियोंको प्राप्त करना चाहता है उसे अपना शरीर कृश करना चाहिए तथा अन्य जीवोके शरीरोकी रक्षा करते हुए तपश्चरण करना चाहिए ॥१७०॥ इसी प्रकार अनेक लक्षण धारण करनेवाला वह पुरुष अपने लक्षणोको निर्देश करनेके अयोग्य मानता हुआ जिनेन्द्रदेवके लक्षणोका चिन्तन कर तपश्चरण करे ॥१७१॥ जिनकी परम्परा अनिवार्य है ऐसे दिव्य आदि सौन्दर्यो-की इच्छा करता हुआ वह मुनि अपने शरीरके सौन्दर्यको मलिन करता हुआ कठिन तपश्चरण करे ॥१७२॥ जिसका शरीर मलिन हो गया है, जिसने अपने शरीरसे उत्पन्न होनेवाली प्रभा-का त्याग कर दिया है और जो अर्हन्तदेवकी प्रभाका ध्यान करता है ऐसा साधु शीघ्र ही देदीप्य-मान हो जाता है अर्थात् दिव्यप्रभा आदि प्रभाओको प्राप्त करता है ॥१७३॥ जो मुनि अपने मणि और तेलके दीपक आदिका तेज छोडकर तेजोमय जिनेन्द्र भगवान्की आराधना करता है वह प्रभामण्डलसे उज्ज्वल हो उठता है ॥१७४॥ जो पहलेके अस्त्र, वस्त्र और शस्त्र आदि-को छोडकर अत्यन्त शान्त होता हुआ जिनेन्द्रभगवान्की आराधना करता है वह योगिराज धर्मचक्रका अधिपति होता है ॥१७५॥ जो मुनि स्नान आदिका संस्कार छोडकर केवली जिनेन्द्रका आश्रय लेता है अर्थात् उनका चिन्तन करता है वह मेरुपर्वतके मस्तकपर उत्कृष्ट जन्मामिषेको प्राप्त होता है ॥१७६॥ जो मुनि अपने इस लोक-सम्बन्धी स्वामीपनेको छोडकर परमस्वामी श्रीजिनेन्द्रदेवकी सेवा करता है वह जगत्के जीवोके द्वारा सेवनीय होता है अर्थात् जगत्के सब जीव उसकी सेवा करते हैं ॥१७७॥ जो मुनि अपने योग्य अनेक आसनोके भेदोका त्याग कर दिगम्बर हो जाता है वह सिंहासनपर आरूढ होकर तीर्थको प्रसिद्ध करनेवाला अर्थात् तीर्थ कर होता है ॥१७८॥ जो मुनि अपने तकिया आदिका अनादर कर परिग्रह-

- १ दिव्यमूर्तिविजयमूर्ति परममूर्ति स्वात्मोत्थमूर्तिरिति एवमुत्तरत्रापि योजनीयम् । २ मिट्टादौ । ३ नाममकीर्तन कर्तुमयोग्यमिति । ४ व्यात्वा । ५ गुणै प्रतीत । 'गुणै प्रतीते तु कृतलक्षणाहितलक्षणौ' इत्यभिधानात् । ६ मूर्तिं कुर्वन् । ७ जिनम् । ८ तैलाम्यङ्गन । ९ दिव्यास्त्र । १० -व्यस्त्र-ट० । करमुक्त । ११ सामान्याम् । १२ प्रकृष्टजानातिजयम् । १३ स्वामित्वम् । १४ निजोपवर्हमनादि । 'उपधान तूपवर्हम्' इत्यभिधानात् । १५ नि परिग्रह ।

स महाभ्युदय प्राप्य जिनो भूत्वाऽऽसक्तिय । देवैर्विरचित दीप्रमास्कन्दयुपधानकम् ॥१८०॥
 त्यक्तशातातपत्राणसकलामपरिच्छद । त्रिमिच्छत्रै समुज्जासिरजैरज्ञासत स्वयम् ॥१८१॥
 विविधव्यजन^१ त्यागादनुष्ठिततपोविधि । चामराणां चतुःपृष्ठा वीज्यत जिनपथये^२ ॥१८२॥
 उग्निनामकसगीतघोष कृत्वा तपोविधिम् । स्याद्^३ दुन्दुभुभिनिर्घर्षिषुप्यमाणजयोदय ॥१८३॥
 उद्यानादिदृष्टां छायामपास्य स्वां तपो व्यधात् । यतोऽयमत ण्वास्य स्यादशोकमहाह्रुम ॥१८४॥
 स्व^४ स्वापयमुचित त्यक्त्वा निममत्तामित^५ । स्वय निधिमिरभ्यत्य सेव्यत द्वारि द्रुत ॥१८५॥
 गृहशोभां वृत्तारम्भां दूराकृत्य तपस्यत । श्रीमण्डपादिशोभास्य स्वतोऽभ्यति पुरोगताम् ॥१८६॥
 तपोऽवगाहनादस्य गहना^६ यधितिष्ठत । त्रिगजजनतास्थानसह स्यादवगाहनम् ॥१८७॥
 क्षत्रवास्तुसमुत्सर्गान्^७ क्षेत्रज्ञचमुपयुष । स्वाधानत्रिजग क्षेत्रमैश्वर्यमस्योपजायते ॥१८८॥
 आत्माभिमानमुत्सृज्य मौनमास्थितवानथम् । प्राप्नोति परमामाज्ञां सुरासुरशिरोधृताम् ॥१८९॥
 स्वामिष्टमुत्सृज्य^८ आदिममा^९ उत्सृष्टवानथम् । परमाप्तपदप्राप्तावध्यास्त त्रिजगत्समा ॥१९०॥

रहित हो जाता है और केवल अपनी भुजापर शिरका किनारा रखकर पृथिवीके ऊँचे-नीचे प्रदेशपर शयन करता है वह महाभ्युदय (स्वर्गादिकी विभूति) को पाकर जिन हो जाता है, उस समय सब लोग उसका आदर-सत्कार करते हैं और वह देवोंके द्वारा बने हुए देदीप्यमान तक्तियाको प्राप्त होता है ॥१७९-१८०॥ जो मुनि शीतल छत्र आदि अपने समस्त परिग्रहका त्याग कर देता है वह स्वयं देदीप्यमान रत्नोसे युक्त तीन छत्रोंसे सुशोभित होता है ॥१८१॥ अनेक प्रकारके पखाओके त्यागसे जिसने तपश्चरणकी विधिका पालन किया है ऐसा मुनि जिनेद्रपर्यायमे चौसठ चमरोसे वीजित होता है अर्थात् उसपर चौसठ चमर डुलाये जाते हैं ॥१८२॥ जो मुनि नगाडे तथा सगीत आदिकी घोषणाका त्याग कर तपश्चरण करता है उसके विजयका उदय स्वर्गके दुन्दुभियोंके गम्भीर शब्दोंसे घोषित किया जाता है ॥१८३॥ चैक पहल उसने अपने उद्यान आदिके द्वारा की हुई छायाका परित्याग कर तपश्चरण किया था इसलिए ही अब उसे (अरहन्त अवस्थामें) महाअशोक वृक्षकी प्राप्ति होती है ॥१८४॥ जो अपना योग्य धन छोड़कर निममत्वभावको प्राप्त होता है वह स्वयं आकर दूर दरवाजेपर खड़ी हुई निधियासे सेवित होता है अर्थात् समवसरण भूमिमें निधियाँ दरवाजेपर खड़े रहकर उसकी सेवा करती हैं ॥१८५॥ जिसकी रक्षा सब ओरसे की गयी थी ऐसी घरकी शोभाको छोड़ कर इसने तपश्चरण किया था इसीलिए श्रीमण्डपकी शोभा अपने-आप इसके सामने आती है ॥१८६॥ जो तप करनेके लिए मघन वनम निवास करता है उसे तीनों जगत्के जीवोंके लिए स्थान दे सकनवाली अवगाहन शक्ति प्राप्त हो जाती है अर्थात् उसका ऐसा समवसरण रचा जाता है जिसमें तीना लाकाक समस्त जीव सुखसे स्थान पा सकते हैं ॥१८७॥ जो क्षत्र मज्जन आदिका परित्याग कर गुद्ध आत्माको प्राप्त होता है उसे तीना जगत्के क्षत्रको अपने अधीन रखनेवाला ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥१८८॥ जो मुनि आज्ञा देनेका अभिमान छोड़कर मौन धारण करता है उस मुर आर अमुरोंके द्वारा गिरपर धारण की हुई उत्कृष्ट आज्ञा प्राप्त हाती है अर्थात् उसकी आत्मा सब जीव मानते हैं ॥१८९॥ जो यह मुनि अपने इष्ट सबक तथा भाई आत्मीयों मभाका परित्याग करता है इसलिए उत्कृष्ट अरहन्त पत्नी प्राप्ति हानेपर

१ उपक्रम । २ छत्र । ३ चामर । ४ अहत्यायमिति । ५ स्वदुन्दुभि । ६ घनम । द्रव्यं वृत्तं स्वापयतम रिरथ दस्य धर्मा यगु १ यभिधानान् । ७ निगमन्तं गत । ८ अग्रेसरताम् । ९ प्रवचनात् । १० आत्मरवस्त्वम् ।
 क्षत्रम आत्मा पुनर १ यभिधानान् ।

स्वगुणोत्कीर्तनं त्यक्त्वा न्यक्तकामो महातपाः । स्तुतिनिन्दाममो भूय कोन्यने भुवनेश्वर ॥१६१॥
 वन्दित्वा वन्द्यमर्हन्तं यतोऽनुष्ठितवांस्तपः । ततोऽयं वन्द्यते वन्द्यैरनिन्यगुण्यनिवि ॥१६२॥
 तपोऽयमनुपानत्क^३ पादचारी विवाहनः । कृतवान् पद्मगर्भेषु चरणन्यायमर्हति ॥१६३॥
 वाग्गुप्तो हितवाग्मृत्या यतोऽयं तपमि स्थितः । ततोऽस्य दिव्यमापा स्यात् प्रीणयन्त्यग्निलां ममाम् ॥
 अनाश्वाज्ञियताहारपारणोऽतस्तप्तं यत्तपः^५ । तदस्य दिव्यविजयं परमामृततृप्तयः ॥१६४॥
 न्यक्तकामसुखो भूत्वा तपस्यस्थाच्चिरं यतः । ततोऽयं सुखसाद्भूत्वा पद्मानन्दश्रुं भजेत् ॥१६५॥
 किमत्र बहुनोक्तेन यद्यदिष्टं यथाविधम् । न्यजेन्मुनिरग्नवल्लभं तत्तन्मनोऽस्य तत्तपः^७ ॥१६६॥
 प्राप्नोत्कर्षं तदस्य स्यात्तपश्चिन्तामणे फलम् । यतोऽर्हंजातिमन्यादिप्राप्तिं मयाऽनुवर्णिता ॥१६७॥
 जैनेश्वरी परामाज्ञां सूत्रोद्दिष्टां प्रमाणयन् । तपस्यां यदुपाधत्ते पारिव्राज्यं तदाज्ञयम्^{११} ॥१६८॥
 अन्यच्च बहुवाग्जाले निबद्धं युक्तिवाधितम् । पारिव्राज्यं परित्यज्य ग्राह्यं^{१२} चंदमनुत्तरम्^{१३} ॥२००॥
 इति पारिव्राज्यम् ।

वह तीनो लोकोकी सभा अर्थात् समवसरण भूमिमे विराजमान होना है ॥१९०॥ जो सत्र प्रकारकी इच्छाओका परित्याग कर अपने गुणोकी प्रशंसा करना छोड़ देता है और महातपश्चरण करता हुआ स्तुति तथा निन्दामे समान भाव रखता है वह तीनो लोकोके इन्द्रोके द्वारा प्रशंसित होता है अर्थात् सब लोग उसकी स्तुति करते हैं ॥१९१॥ इस मुनिने वन्दना करने योग्य अर्हन्त-देवकी वन्दना कर तपश्चरण किया था इसीलिए यह वन्दना करने योग्य पूज्य पुरुषोके द्वारा वन्दना किया जाता है तथा प्रशंसनीय उत्तम गुणोका भाण्डार हुआ है ॥१९२॥ जो जूता और सवारीका परित्याग कर पैदल चलता हुआ तपश्चरण करता है वह कमलोके मध्यमे चरण रखनेके योग्य होता है अर्थात् अर्हन्त अवस्थामे देव लोग उसके चरणोके नीचे कमलोकी रचना करते हैं ॥१९३॥ चूँकि यह मुनि वचनगुप्तिको धारण कर अथवा हित मित वचनरूप भापासमितिका पालन कर तपश्चरणमे स्थित हुआ था इसलिए ही इसे समस्त सभाको सन्तुष्ट करनेवाली दिव्य ध्वनि प्राप्त हुई है ॥१९४॥ इस मुनिने पहले उपवास धारण कर अथवा नियमित आहार और पारणाएँ कर तप तपा था इसलिए ही इसे दिव्यतृप्ति, विजय-तृप्ति, परमतृप्ति और अमृततृप्ति ये चारो ही तृप्तियाँ प्राप्त हुई है ॥१९५॥ यह मुनि काम जनित सुखको छोड़कर चिरकाल तक तपश्चरणमे स्थिर रहा था इसलिए ही यह सुखस्वरूप होकर परमानन्दको प्राप्त हुआ है ॥१९६॥ इस विषयमे बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? सक्षेपमे इतना ही कह देना ठीक है कि मुनि सकल्परहित होकर जिस प्रकारकी जिस-जिस वस्तुका परित्याग करता है उसका तपश्चरण उसके लिए वही-वही वस्तु उत्पन्न कर देता है ॥१९७॥ जिस तपश्चरणरूपी चिन्तामणिका फल उत्कृष्ट पदकी प्राप्ति आदि मिलता है और जिससे अर्हन्तदेवकी जाति तथा मूर्ति आदिकी प्राप्ति होती है ऐसी इस पारिव्राज्य नामकी क्रियाका वर्णन किया ॥१९८॥ जो आगममे कही हुई जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाको प्रमाण मानता हुआ तपस्या धारण करता है अर्थात् दीक्षा ग्रहण करता है उसीके वास्तविक पारिव्राज्य होता है ॥१९९॥ अनेक प्रकारके वचनोके जालमे निबद्ध तथा युवितसे वाधित अन्य लोगोके पारिव्राज्य

१ यन्मान् कारणात् । २ गणधरादिभिः । ३ पादत्राणरहितः । ४ पादन्यामस्य योग्यो भवति । ५ अनगनव्रती । ६ अकरोत् । ७ यत् कारणात् । ८ दिव्यतृप्तिविजयतृप्तिपरमतृप्तिमृततृप्ति । ९ आनन्दम् । १० प्रमिद्व तपः । ११ पारमार्थिकम् । १२ अर्हन्तवन्धि पारिव्राज्यम् । १३ -मनुत्तमम् ल० ।

परमजिनपदानुरक्तधी-

र्मजति पुमान् य इमं क्रियाविधिम् ।

म धुननिखिलकर्मबन्धनो

जननजगमरणान्तं कृद् भवेन ॥२१०॥

आदूलविक्रीडितम्

मव्यान्मा ममवाप्य जातिमुचितां जातस्तत्. सद्गृही

पारिव्राज्यमनुत्तरं गुरुमतादामाय या नो द्विष्टम् ।

तत्रैन्द्रो श्रियमाप्तवान् पुनरतश्च्युत्वा गन्धर्वाक्रितां

प्राप्ताईन्त्यपद. समग्रमहिमा प्राप्नोत्यतो निर्वृतिम् ॥२११॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे
दीक्षाकर्त्रन्वयक्रियावर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥३६॥



वाला जो भव्य पुरुष उक्त क्रियाओसहित जिनमतमे कहे हुए इस पुराणके धर्मका अथवा प्राचीन धर्मका स्मरण करता है और उसीके अनुसार आचरण करता है वह ससारसम्बन्धी भयके बन्धनोको शीघ्र ही तोड़ देता है-नष्ट कर देता है ॥२०६॥ जिसकी बुद्धि अत्यन्त उत्कृष्ट जिनेन्द्रभगवान्‌के चरणकमलोमे अनुरागको प्राप्त हो रही है ऐसा जो पुरुष इन क्रियाओकी विधिका सेवन करता है वह समस्त कर्मबन्धनको नष्ट करता हुआ जन्म, बुढ़ापा और मरणका अन्त करनेवाला होता है ॥२१०॥ यह भव्य पुरुष प्रथम ही योग्य जातिको पाकर सद्गृहस्थ होता है फिर गुरुकी आज्ञासे उत्कृष्ट पारिव्राज्यको प्राप्त कर स्वर्ग जाता है, वहाँ उसे इन्द्रकी लक्ष्मी प्राप्त होती है, तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर चक्रवर्ती पदको प्राप्त होता है, फिर अरहन्त पदको प्राप्त होकर उत्कृष्ट महिमाका धारक होता है और इसके बाद निर्वाणको प्राप्त होता है ॥२११॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण महापुराणसंग्रहके भाषानुवादमे दीक्षान्वय और कर्त्रन्वय क्रियाओका वर्णन करनेवाला उनतार्ल सर्वां पर्व समाप्त हुआ ।



या सुर द्राष्ट्रापि परिग्राह्यकृत् दयार्थे । मया सुरद्रता नाम क्रिया प्रागनुयुक्तिगता ॥२०१॥

इति सुरद्रता ।

माघान्यमाधिरात्र स्याद्यज्ञस्तपस्यपुर मरम् । निधिरयमगुद्भूत भागमपपरम्परम् ॥२०२॥

इति माघान्यम् ।

आहान्यम ग माया कम यनि परा क्रिया । यत्र ऋगायतारात्मिकावस्थाणमपद ॥२०३॥

याऽमा दिवाऽध्यानास्य प्राप्ति कृत्वागमपदम् । तदाहं यमिति चेव अन्त्यायनामभाषणम् ॥२०४॥

इत्याहान्यम् ।

भयान्धनमुक्तस्य यावन्था परमात्मन । परिनिवृत्तिरिष्टा मा पर निवागमिष्यपि ॥२०५॥

कृत्वाक्रममलापायान् मनुजिर्याऽन्तरात्मन । मित्रि स्वात्मगत्यधि मा नामाना न गुणाच्छिदा ॥

इति निवृत्ति ।

इत्यागमानुसारण प्राप्ता कयचयक्रिया । मसैता परमस्थानमगतियत्र योगिताम् ॥२०६॥

योऽनुतिष्ठत्यतद्रालु क्रिया ह्येतास्त्रिषोदिता । माऽधिगच्छेत् पर धाम वासप्राप्ता पर निवर्त्त ॥२०७॥

पुष्पिताप्राप्तम्

जिनमतविहित पुराणधर्म य इममनुस्मरति क्रियानियतम् ।

अनुचरति च पुण्यधी स मया भवभयबन्धनमाशु निधुनाति ॥२०९॥

को छोड़कर इसी सर्वोत्कृष्ट पारिव्रज्यको ग्रहण करना चाहिए ॥२००॥ यह तीमरी पारिव्रज्य क्रिया है ।

पारिव्रज्यके फलका उत्पन्न होनेसे जो सुरेन्द्र पन्वी प्राप्ति होती है वही यह सुरेद्रता नामकी क्रिया है इसका वणन पहल किया जा चुका है ॥२०१॥ यह चौथी सुरेद्रता क्रिया है ।

जिसम चक्ररत्नके साथ-साथ निधियो और स्तनोसे उत्पन्न हुए भोगापभोगरूपी सम्पदाओं की परम्परा प्राप्त होती है ऐसा चक्रवर्तीका बड़ा भारी राज्य साम्राज्य कहलाता है ॥२०२॥ यह पाँचवी सांभ्राज्यक्रिया है ।

अर्हत् परमेष्ठीका भाव अथवा कमरूप जो उत्कृष्ट क्रिया है उसे आहन्त्य क्रिया कहते हैं । इस क्रियामे स्वर्गावतार आदि महाकल्याणकरूप सम्पदाओंकी प्राप्ति होती है ॥२०३॥ स्वर्गसे अवतीर्ण हुए अहन्त परमेष्ठीको जो पंचकल्याणकरूप सम्पदाओंकी प्राप्ति होती है उसे आहन्त्य क्रिया जानना चाहिए यह आहन्त्यक्रिया तीनो लोकोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाली है ॥२०४॥ यह छठी आहन्त्यक्रिया है ।

संसारके बन्धनसे मुक्त हुए परमात्माकी जो अवस्था होती है उसे परिनिवृत्ति कहते हैं । इसका दूसरा नाम परनिर्वाण भी है ॥२०५॥ समस्त कमरूपी मलके नष्ट हो जानेसे जो अन्त रात्माकी शुद्धि होती है उसे सिद्धि कहते हैं यह सिद्धि अपने आत्मतत्त्वकी प्राप्तिरूप है अभाव रूप नहीं है और न ज्ञान आदि गुणोके नाशरूप ही है ॥२०६॥ यह सातवी परिनिवृत्ति क्रिया है ।

इस प्रकार आगमके अनुसार ये सात कर्तव्य क्रियाएँ कही गयी हैं इन क्रियाओंका पालन करनेसे योगियोंको परम स्थानकी प्राप्ति होती है ॥२०७॥ जो भय आलस्य छोड़कर निरूपण की हुई इन तीन प्रकारकी क्रियाओंका अनुष्ठान करता है वह उस परमधाम (मोक्ष) को प्राप्त होता है जिसके प्राप्त होनेपर उसे उत्कृष्ट सुख मिल जाता है ॥२०८॥ पवित्र बुद्धिको धारण करने

१ फलोन्त्ये ५ । २ तुच्छभावरूपी न । ३ बुद्धिसुखदुःखादिनवानामात्मगुणानामत्यन्तोच्छित्तिर्भोक्ष इति मतप्रोक्तो भोक्षो न । ४ सुखम् ।

परमजिनपदानुरक्तधी-

मज्जति पुमान् य इम क्रियाविधिम् ।

म युतनिग्विलकर्मबन्धनो

जननजगप्ररणान्तं कृद् भवेत् ॥२१०॥

आदूलविक्रीडितम्

भव्यान्मा ममवाच्य जातिमुचितां जातस्तत् सद्गृही

पारिव्राज्यमनुत्तरं गुरुमतादामाद्य या नो दिशम् ।

तत्रैन्द्री श्रियमाप्तवान् पुनरत इत्युत्वा गतश्चक्रितं

प्राप्ताईन्त्यपद ममग्रमहिमा प्राप्नोत्यनो निर्धृतिम् ॥२११॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसग्रहे
दीक्षाकर्त्रन्वयक्रियावर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तम पर्व ॥३६॥



वाला जो भव्य पुरुष उक्त क्रियाओसहित जिनमतमे कहे हुए इस पुराणके धर्मका अथवा प्राचीन धर्मका स्मरण करता है और उसीके अनुसार आचरण करता है वह ससारसम्बन्धी भयके बन्धनोको शीघ्र ही तोड़ देता है-नष्ट कर देता है ॥२०६॥ जिसकी बुद्धि अत्यन्त उत्कृष्ट जिनेन्द्रभगवान्के चरणकमलोमे अनुरागको प्राप्त हो रही है ऐसा जो पुरुष इन क्रियाओकी विधिका सेवन करता है वह समस्त कर्मबन्धनको नष्ट करता हुआ जन्म, बुढ़ापा और मरणका अन्त करनेवाला होता है ॥२१०॥ यह भव्य पुरुष प्रथम ही योग्य जातिको पाकर सद्गृहस्थ होता है फिर गुरुकी आज्ञासे उत्कृष्ट पारिव्रज्यको प्राप्त कर स्वर्ग जाता है, वहाँ उसे इन्द्रकी लक्ष्मी प्राप्त होती है, तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर चक्रवर्ती पदको प्राप्त होता है, फिर अरहन्त पदको प्राप्त होकर उत्कृष्ट महिमाका धारक होता है और इसके बाद निर्वाणको प्राप्त होता है ॥२११॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण महापुराणमग्रहके
भाषानुवादमे दीक्षान्वय और कर्त्रन्वय क्रियाओका वर्णन
करनेवाला उनतार्त्त सर्वां पर्व समाप्त हुआ ।



चत्वारिंशत्तमं पर्व

अथात मप्रयक्ष्यामि त्रिंशत्तत्तरचूलिकाम्^१ । विगणनिगया यत्र क्रियाणो^२ निम्नगामपि ॥१॥
 ततानै^३ तत्तरदुष्पेय^४ त्रियात्परद्वय^५ । म तद्द्वार त्रियामिन्मि त्राशाना हि यागिनाम् ॥२॥
 आधानानि त्रियात्प्रभ पूरमथ विवर्णयन् । आनिष्टश्राणि चक्राणां त्रय त्रींश्च हरिभुज^६ ॥३॥
 मध्यवन्नि त्रिन-द्राया स्थापयथ यथात्रिभिः । मन्त्ररत्नाऽयमाशास्तत्र^७ तत्पूनाविधा^८ ॥४॥
 नमोऽन्ता नीराशब्दश्चतुर्थ्यन्ता य पन्तताम् । जलन भूमिष्वधार्थं^९ परा शुद्धिम्नु तरफल्म^{१०} ॥५॥
 (नारजस नम)

दर्भास्तरणमत्रधस्तन पद्मगुदायताम् । विगणपतातय दपमथनाय नम पदम् ॥६॥
 (नपमथनाय नम)

गन्धप्रणानम त्रिंश शीलगाधाय ध नम । (शीलगाधाय नम)
 पुष्पप्रणानम-श्रोऽपि विमलाय नम पदम् ॥७॥ (विमलाय नम)

अथानन्तर-आगे इन क्रियाओकी उत्तरचूलिकाका वचन बरगे जिससे कि इन तीनों क्रियाओका विगण निणय किया गया है ॥१॥ इस उत्तरचूलिकाम भी सत्रम पहले क्रियाकल्प अर्थात् क्रियाओके समहवी मिद्विके लिए मन्त्रोंका उद्धार कहेंगा अर्थात् मन्त्रोंकी रचना आदि का निरूपण कहेंगा सो ठीक ही है क्योंकि मुनियोंके वायकी सिद्धि भी मन्त्रोंके ही अधीन होती है ॥२॥ आधानादि क्रियाओके प्रारम्भमें सबसे पहले तीन छत्र, तीन चक्र और तीन अग्नियाँ स्थापित करना चाहिए ॥३॥ और वेदीके मध्य भागम विधिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा विराज मान करनी चाहिए । उक्त क्रियाओके प्रारम्भमें उन छत्र, चक्र अग्नि तथा जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाकी जो पूजा की जाती है वह मन्त्रकल्प कहलाता है ॥४॥ इन क्रियाओके करते समय जलसे भूमि शुद्ध करनेके लिए जिसके अन्तम नम शब्द लगा हुआ है ऐसे नीरजस शब्दको चतुर्थीके एकवचनका रूप पढना चाहिए अर्थात् नीरजसे नम (कमरूप धूलिसे रहित जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार हो) यह मन्त्र बोलना चाहिए । इस मन्त्रका फल उत्कृष्ट विशुद्धि होना है ॥५॥ तदनन्तर डाभका आसन ग्रहण करना चाहिए और उसके बाद विघ्नोंको शान्त करने के लिए दपमथनाय नम (अहंकारको नष्ट करनेवाले भगवान्को नमस्कार हो) इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥६॥ गन्ध समर्पण करनेका मन्त्र है शीलगाधाय नम (शील रूप सुगन्ध धारण करनेवाल जिनेन्द्रदेवको नमस्कार हो) । तथा पुष्प देनेका मन्त्र है विमलाय

१ उपरितनाश यत् चूलिकायाम । २ गर्भत्रियानीनाम । ३ वक्ष्ये । ४ क्रियाकलापकरणाथम । ५ अग्नीन् ।
 ६ वन्मिध्य । ७ गर्भाधानान्क्रियारम्भे । ८ छत्रत्रयान्पूजन । ९ भूमिसंयोगाथ भूमिसेवनायमित्यथ ।
 १० जलमेचनफलम् ।

कुर्यादक्षतपूजार्थमक्षताय नमः पदम् ।

(अक्षताय नमः)

^१धूपायै श्रुतधूपाय नमः पदमुदाहरेत् ॥८॥

(श्रुतधूपाय नमः)

ज्ञानोद्योताय पूर्वं च दीपदाने नमः पदम् ।

(ज्ञानोद्योताय नमः)

मन्त्रः परमसिद्धाय नमः इत्यमृतोद्भूतौ ॥९॥

(परमसिद्धाय नमः)

मन्त्रैरमिस्तु संस्कृत्य यथावज्जगतीतलम् । ततोऽन्वक्^३ पीठिकामन्त्र पठनीयो द्विजोत्तम ॥१०॥

पीठिकामन्त्रः —

सत्यजातपदं पूर्वं चतुर्थ्यन्तं नमः परम् । ततोऽर्हज्जातगवदश्च तदन्तस्तत्परो^५ मतः ॥११॥

ततः परमजाताय नमः इत्यपरं पदम् । ततोऽनुपमजाताय नमः इत्युत्तरं पदम् ॥१२॥

ततश्च स्वप्रधानाय नमः इत्युत्तरो ध्वनिः^४ । अचलाय नमः शब्दादक्षयाय नमः परम् ॥१३॥

अव्यावाधपदं चान्यदनन्तज्ञानगवदनम् । अनन्तदर्शनानन्तवीर्यगवदौ ततः पृथक् ॥१४॥

अनन्तमुखगवदश्च नीरजः शब्द एव च । निर्मलाच्छेद्यगवदौ च तथाऽभेद्याजरश्रुती ॥१५॥

नमः' (कर्ममलसे रहित जिनेन्द्रभगवान्को लिए नमस्कार हो) ॥७॥ अक्षतसे पूजा करनेके लिए 'अक्षताय नमः' (क्षयरहित जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो) यह मन्त्र बोले और धूपसे पूजा करते समय 'श्रुतधूपाय नमः' (प्रसिद्ध वासनावाले भगवान्को नमस्कार हो) इस मन्त्रका उच्चारण करे ॥८॥ दीप चढाते समय 'ज्ञानोद्योताय नमः' (ज्ञानरूप उद्योत—प्रकाश) को धारण करनेवाले जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो) यह मन्त्र पढे और अमृत अर्थात् नैवेद्य चढाते समय 'परमसिद्धाय नमः' (उत्कृष्ट सिद्धभगवान्को नमस्कार हो) ऐसा मन्त्र बोले ॥९॥ इस प्रकार इन मन्त्रोंसे विधिपूर्वक भूमिका सस्कार कर उसके बाद उन उत्तम द्विजोंको पीठिका मन्त्र पढना चाहिए ॥१०॥ पीठिका मन्त्र इस प्रकार है — सबसे पहले, जिसके आगे 'नमः' शब्द लगा हुआ है और चतुर्थी विभक्ति अन्तमे है ऐसे सत्यजात शब्दका उच्चारण करना चाहिए अर्थात् 'सत्यजाताय नमः' (सत्यरूप जन्मको धारण करनेवाले जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो) बोलना चाहिए, उसके बाद चतुर्थ्यन्त अर्हज्जात शब्दके आगे 'नमः' पद लगाकर 'अर्हज्जाताय नमः' (प्रशसनीय जन्मको धारण करनेवाले जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो) यह मन्त्र बोले ॥११॥ तदनन्तर 'परमजाताय नमः' (उत्कृष्ट जन्मग्रहण करनेवाले अर्हन्तदेवको नमस्कार हो) बोलना चाहिए और उसके बाद 'अनुपमजाताय नमः' (उपमा-रहित जन्म धारण करनेवाले जिनेन्द्रको नमस्कार हो) यह मन्त्र पढना चाहिए ॥१२॥ इसके बाद 'स्वप्रधानाय नमः' (अपने-आप ही प्रधान अवस्थाको प्राप्त होनेवाले जिनराजको नमस्कार हो) यह मन्त्र बोले और उसके पश्चात् 'अचलाय नमः' (स्वरूपमें निश्चल रहनेवाले वीतरागको नमस्कार हो) तथा 'अक्षयाय नमः' (कभी नष्ट न होनेवाले भगवान्को नमस्कार हो) यह मन्त्र पढना चाहिए ॥१३॥ इसी प्रकार 'अव्यावाधाय नमः' (बाधाओंसे रहित परमेस्वरको नमस्कार हो), 'अनन्तज्ञानाय नमः' (अनन्तज्ञानको धारण करनेवाले जिनराजको नमस्कार हो), 'अनन्तदर्शनाय नमः' (अनन्तदर्शन—केवल दर्शनको धारण करनेवाले जिनेन्द्रदेवको नमस्कार हो), 'अनन्तवीर्याय नमः' (अनन्त बलके धारक अर्हन्तदेवको नमस्कार हो) 'अनन्तमुखाय नमः' (अनन्तमुखके भाण्डार जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार हो), 'नीरजसे

ततोऽमराप्रमयाणां सागर्भायामशब्दन^१ । ततोऽभ्याभ्यायिनाणां परमाधिपत्यनि^२ ॥१९॥
 पृथग्पृथगिम शब्दास्तैदन्तास्तत्परा^३ मता । उत्तराख्यनुमधाय पदा रभि पदवदन ॥१७॥
 आदा परमकाष्ठति योगरूपाय धानपरम् । नमःशब्दमुदायान्त मन्त्रविम प्रमुदरम् ॥१८॥
 लोकाग्रवासिनां दात्पर कार्या नमा नम । एत परमसिद्धेभ्योऽन्तमिद्विभ्य इत्यपि ॥१९॥
 एव कथलिमिद्वेभ्य पदाद् भूयाऽ तद्वपदर । मिद्विभ्य इत्यमुष्माद्य परम्परदादपि^४ ॥२०॥
 अनादिपदपूषाद्य तस्माद्वर् पदात्परम् । अनाद्यनुपमादिभ्य मिद्वेभ्यश्च नमा नम ॥२१॥

नम (कमरूपी धूलिभ रहित जिनराजको नमस्कार हा), 'निमलाय नम' (कमरूप मलस रहित जिनेद्रभगवान्की नमस्कार हो) 'अच्छेद्याय नम' (जिनका धाई छेना नहीं कर सके ऐसे जिनेद्रदेवको नमस्कार हो) अभयाय नम (जा किसी तरह भिन्न नहीं सके ऐसे अरहन्त को नमस्कार हा) अजराय नम (जो बुढ़ापास रहित है उस नमस्कार हो), अमराय नम (जो मरणस रहित है उस नमस्कार हो) 'अप्रमेयाय नम' (जा प्रमाणस रहित है—छद्मस्थ पुरपने ज्ञास जगम्य है उस नमस्कार हो) 'अगमवासाय नम' (जो जन्म-मरणसे रहित होनेके कारण विसावे गमम निवास नहीं करत एस जिनराजका नमस्कार हा) अक्षोभ्याय नम (जिह कोई क्षोभ उत्पन्न नहीं कर सक्ता एस भगवान्का नमस्कार हा), अविलीनाय नम (जा कभी विलीन-नष्ट नहीं हाते उन परमात्माका नमस्कार हो) धार 'परमधनाय नम' (जो उत्कृष्ट धनरूप है—उह नमस्कार हो) इन अव्यावाय आदि शब्दोंके आगे चतुर्थी विभक्ति तथा नम शब्द लगाकर ऊपर लिखे अनुसार अव्यावाधाय नम आदि मन्त्र पदों का उच्चारण करना चाहिए ॥१४-१७॥ तदनंतर मन्त्रकी जाननेवाला द्विज जिसके आदिमें परमकाष्ठ है और अन्तम योगरूपाय है ऐसे शब्दका उच्चारण कर उसके आगे 'नम' पद लगाता हुआ परमकाष्ठयोगाय नम (जिनका योग उत्कृष्ट सीमाको प्राप्त हो रहा है ऐसे जिनेन्द्रको नमस्कार हो) इस मन्त्रका उद्धार करे ॥१८॥ फिर लोकाग्रवासिने शब्दके आगे नमो नम लगाना चाहिए इसी प्रकार परम सिद्धिभ्य और अहत्सिद्धिभ्य शब्दोंके आगे भी नमो नम शब्दका प्रयोग करना चाहिए अर्थात् क्रमसे 'लोकाग्रवासिने नमो नम' (लोकके अग्रभाग पर निवास करनेवाले सिद्ध परमेश्वरीको बार-बार नमस्कार हो) परमसिद्धिभ्यो नमो नम' (परम सिद्धभगवान्को बार-बार नमस्कार हो) और 'अहत्सिद्धिभ्यो नमो नम' (जिन्होंने अरहन्त अवस्थाके बाद सिद्ध अवस्था प्राप्त की है ऐसे सिद्ध महाराजको बार बार नमस्कार हो) इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिए ॥१९॥ इसी प्रकार केवलिसिद्धिभ्यो नमो नम (केवली सिद्धीको नमस्कार हो) अन्तःकृत्सिद्धिभ्यो नमो नम (अन्तःकृत् केवली होकर सिद्ध होनेवालोंको नमस्कार हो) परम्परसिद्धिभ्यो नम' (परम्परासे हुए सिद्धीको नमस्कार हो) 'अनादिपरम्परसिद्धिभ्यो नम' (अनादि कालसे हुए परम सिद्धीको नमस्कार हो) और 'अनाद्यनुपमसिद्धिभ्यो नमो नम' (अनादिकालसे हुए उपमारहित सिद्धीको नमस्कार हो) इन मन्त्र पदोंका उच्चारण कर नीचे लिखे पद पढ़ना चाहिए । इन नीचे लिखे शब्दोंको सम्बोधनरूपसे दो-दो बार बोलना चाहिए । प्रथम ही हे सम्यग्दृष्टे हे सम्यग्दृष्टे, हे आसन्नसख्य

१ अमराप्रमेषशब्दी । २ सागर्भावासिशब्दन्ति । ३ परमधनशब्द । ४ अव्यावायपदमित्यादय । ५ चतुर्थ्यन्ता । ६ नम शब्दपरा । ७ परम्परशब्दात् । ८ सिद्धेभ्य इति पदात् ।

इति मन्त्रपदानुसूत्रा पदानि नान्यतः पठेत् । द्विरुक्त्वाऽऽमन्त्र्य^१ वक्तव्यं सम्यग्दृष्टिपदं ततः ॥२२॥
असन्नस्य शब्दश्च द्विर्नान्यस्तद्वदेव^२ हि । निर्वाणान्द्रिश्च पूजार्हः स्वाहान्ताऽग्निन्द्र इत्यपि ॥२३॥

कार्यमन्त्रः

ततः स्वकाम्यमिदं यथामिदं^३ पदमुदाहरेत् । सेवाफलं पदपरमस्थानं भवतु तत्परम्^४ ॥२४॥

अपमृत्युविनाशनं भवत्वन्तं^५ पदं श्रेष्ठं । भवत्वन्तमतो वाच्यं समाधिमरणाय परम्^६ ॥२५॥

चूर्णि 'सत्यजाताय नमः, अर्हज्जाताय नमः, परमजाताय नमः, अनुपमजाताय नमः, स्वप्रधानाय नमः, अचलाय नमः, अक्षयाय नमः, अव्यावाधाय नमः, अनन्तज्ञानाय नमः, अनन्तदर्शनाय नमः, अनन्तवीर्याय नमः, अनन्तसुखाय नमः, नीरजसे नमः, निर्मलाय नमः, अच्छेद्याय नमः, अमेद्याय नमः, अजराय नमः, अमराय नमः, अप्रमेयाय नमः, अगर्भवासाय नमः, अक्षोभ्याय नमः, अविलीनाय नमः, परमवनाय नमः, परमकाष्ठयोगरूपाय नमः, लोकाग्रवासिने नमो नमः, परमसिद्धेभ्यो नमो नमः, अर्हत्सिद्धेभ्यो नमो नमः, केवलसिद्धेभ्यो नमो नमः, अन्तःकृत्सिद्धेभ्यो नमो नमः, परम्परसिद्धेभ्यो नमो नमः, आदिपरम्परसिद्धेभ्यो नमो नमः, अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमो नमः, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नस्य आसन्नस्य निर्वाणपूजार्हं निर्वाणपूजार्हं अग्नौ स्वाहा सेवाफलं पदपरमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

पीठिकामन्त्रं पुरं न्यात् पदैर्गभिः समुच्चितैः । जातिमन्त्रमिनो वक्ष्ये यथाश्रुतमनुक्रमान् ॥२६॥

सत्यजन्मपदं नान्तमादौ शरणमप्यतः । प्रपद्यामीति वाच्यं स्याद्वर्हज्जन्मपदं तथा ॥२७॥

हे आसन्नभव्य, हे निर्वाणपूजार्ह, हे निर्वाणपूजार्ह, और फिर अग्नीन्द्र स्वाहा इस प्रकार उच्चारण करना चाहिए (इन सबका अर्थ यह है कि हे सम्यग्दृष्टि, हे निकटभव्य, हे निर्वाण कल्याणकी पूजा करने योग्य, अग्नि कुमार देवोके इन्द्र, तेरे लिए यह हवि समर्पित करता हूँ) ॥२०-२३॥ (अब इसके आगे काम्य मन्त्र लिखते हैं) । तदनन्तर अपनी इष्ट-सिद्धिके लिए नीचे लिखे पदका उच्चारण करना चाहिए 'सेवाफल पदपरमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु' अर्थात् मुझे सेवाके फलस्वरूप छह परम स्थानोंकी प्राप्ति हो, अपमृत्युका नाश हो और समाधिमरण प्राप्त हो ॥२४-२५॥ ऊपर कहे हुए सब मन्त्रोका संग्रह इस प्रकार है

सत्यजाताय नमः, अर्हज्जाताय नमः, परमजाताय नमः, अनुपमजाताय नमः, स्वप्रधानाय नमः, अचलाय नमः, अक्षयाय नमः, अव्यावाधाय नमः, अनन्तज्ञानाय नमः, अनन्तदर्शनाय नमः, अनन्तवीर्याय नमः, अनन्तसुखाय नमः, नीरजसे नमः, निर्मलाय नमः, अच्छेद्याय नमः, अमेद्याय नमः, अजराय नमः, अमराय नमः, अप्रमेयाय नमः, अगर्भवासाय नमः, अक्षोभ्याय नमः, अविलीनाय नमः, परमवनाय नमः, परमकाष्ठयोगरूपाय नमः, लोकाग्रवासिने नमो नमः, परमसिद्धेभ्यो नमो नमः, अर्हत्सिद्धेभ्यो नमो नमः, केवलसिद्धेभ्यो नमो नमः, अन्तःकृत्सिद्धेभ्यो नमो नमः, परम्परसिद्धेभ्यो नमो नमः, आदिपरम्परसिद्धेभ्यो नमो नमः, अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमो नमः, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्य आसन्नभव्य निर्वाणपूजार्हं निर्वाणपूजार्हं अग्नीन्द्र स्वाहा, सेवाफल पदपरमस्थानं भवतु, अपमृत्यु विनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

इस प्रकार इन मन्त्र पदोंके द्वारा यह पीठिका मन्त्र कहा, अब इसके आगे शास्त्रोंके अनुसार अनुक्रमसे जातिमन्त्र कहते हैं ॥२६॥ तान्तं अर्थात् पट्टीविभक्त्यन्तं सत्यजन्म पदके आगे शरण और उसके आगे प्रपद्यामि शब्द कहना अर्थात् 'सत्यजन्म शरणं प्रपद्यामि' (मैं

१ मवाधनं कृत्वा । २ नामन्त्रं कृत्वा । ३ अर्होऽयम् । ४ तस्मादुक्तिः । ५ भवतु शब्दोऽने यस्य तत् । ६ पठेत् ६०, ७०, ८०, ९०, १००, ११०, १२० । ७ समाधिमरणपदम् । ८ आगमनानुक्रमेण । ९ नान्तमिति पाठः, नन्तर अन्तं नन्तम् ।

स्यादेवब्राह्मणायेति स्वाहेत्यन्तमतः पदम् । सुब्राह्मणाय स्वाहान्तः स्वाहान्ताऽनुपमाय गी ॥३५॥

सम्यग्दृष्टिपदं चैव तथा निधिपतिश्रुतिम् । ब्रूयाद् वैश्रवणोक्तिं च द्वि स्वाहेति ततः परम् ॥३६॥

काम्यमन्त्रमतो ब्रूयात् पूर्वजन्मन्त्रविद् द्विजः । ऋषिमन्त्रमितो वक्ष्ये यथाऽऽहोपासकश्रुति ॥३७॥

चूर्णि — सत्यजाताय स्वाहा, अर्हज्जाताय स्वाहा, षट्कर्मणे स्वाहा, ग्रामयतये स्वाहा, अनादि-
श्रोत्रियाय स्वाहा, स्नातकाय स्वाहा, श्रावकाय स्वाहा, देवब्राह्मणाय स्वाहा, सुब्राह्मणाय स्वाहा, अनुपमाय
स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा, सेवाफल पट्परमस्थान भवतु,
अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

ऋषिमन्त्रः

प्रथमं सत्यजाताय नमः पदमुदीर्येत् । गृहीयादर्हज्जाताय नमः शब्दं ततः परम् ॥३८॥

निर्ग्रन्थाय नमो वीतरागाय नम इत्यपि । महाव्रताय पूर्व च नमः पदमनन्तरम् ॥३९॥

त्रिगुप्ताय नमो महायोगाय नम इत्यतः । ततो विविधयोगाय नम इत्यनुपपद्यताम् ॥४०॥

विविधद्विपदं चास्माज्जमः शब्देन योजितम् । ततोऽङ्गधरपूर्वं च पठेत् पूर्वधरध्वनिम् ॥४१॥

‘अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा’ (अनादिकालीन श्रुतके अध्येताको समर्पण करता हूँ), यह मन्त्र-
पद बोलना चाहिए । तदनन्तर इसी प्रकार ‘स्नातकाय स्वाहा’ और ‘श्रावकाय स्वाहा’ ये दो
मन्त्र पढना चाहिए (केवली अरहन्त और श्रावकके लिए समर्पण करता हूँ) ॥३४॥ इसके
बाद ‘देवब्राह्मणाय स्वाहा’ (देवब्राह्मणके लिए समर्पण करता हूँ), ‘सुब्राह्मणाय स्वाहा’
(सुब्राह्मणके लिए समर्पण करता हूँ), और ‘अनुपमाय स्वाहा’ (उपमारहित भगवान्के
लिए हवि समर्पित करता हूँ), ये शब्द बोलना चाहिए ॥३५॥ तदनन्तर सम्यग्दृष्टि, निधि-
पति और वैश्रवण शब्दको दो-दो बार कहकर अन्तमे स्वाहा शब्दका प्रयोग करना चाहिए
अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा’ (हे सम्यग्दृष्टि
हे निधियोके अधिपति, हे कुबेर, मैं तुम्हे हवि समर्पित करता हूँ) यह मन्त्र बोलना चाहिए ॥३६॥
इसके बाद मन्त्रोको जाननेवाला द्विज पहलेके समान काम्यमन्त्र बोले । अब इसके आगे
उपासकाध्ययन-शास्त्रके अनुसार ऋषिमन्त्र कहता हूँ ॥३७॥ जातिमन्त्रोका संग्रह इस
प्रकार है

‘सत्यजाताय स्वाहा, अर्हज्जाताय स्वाहा, षट्कर्मणे स्वाहा, ग्रामयतये स्वाहा, अनादि-
श्रोत्रियाय स्वाहा, स्नातकाय स्वाहा, श्रावकाय स्वाहा, देवब्राह्मणाय स्वाहा, सुब्राह्मणाय
स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा,
सेवाफल पट्परमस्थान भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

ऋषिमन्त्र—प्रथम ही ‘सत्यजाताय नमः’ (सत्यजन्मको धारण करनेवालेको नमस्कार
हो) यह पद बोलना चाहिए और उसके बाद ‘अर्हज्जाताय नमः’ (अरहन्त रूप जन्मको धारण
करनेवालेके लिए नमस्कार हो) इस पदका उच्चारण करना चाहिए ॥३८॥ तदनन्तर
‘निर्ग्रन्थाय नमः’ (परिग्रहरहितके लिए नमस्कार हो), ‘वीतरागाय नमः’ (रागद्वेषरहित जिनेन्द्र
देवको नमस्कार हो), ‘महाव्रताय नमः’ (महाव्रत धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो),
‘त्रिगुप्ताय नमः’ (तीनों गुप्तियोंको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो), ‘महायोगाय नमः’
(महायोगको धारण करनेवाले ध्वनियोंको नमस्कार हो) और ‘विविधयोगाय नमः’ (अनेक
प्रकारके योगोंको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो) ये मन्त्र पढना चाहिए ॥३९-४०॥
फिर नमः शब्दके साथ चतुर्थी विभक्त्यन्त विविधद्वि शब्दका पाठ करना चाहिए अर्थात् ‘विवि-

[illegible][illegible]

मुनिमन्त्रा यमाभ्यामा मुनिमिगगदनिमि । य य मुग्गमन्त्र य यथा 'यमादायभी' श्रुति ॥४७॥

गमस म यतातय रयारममयय य न । नम रयारुगतागम रयारुयनय । यदुम ॥५८॥

धन्य तम (आरा गदियावा धारण करवाला तम तमम्बार हा) म्मा उच्चारण
तम्मा ताहिण । म्मा प्रसार ज्ञात आग तम तम तम्मा दुआ है म्म तुष्यत अमधर और
पूवधर तम्मा ताहिण अथान् 'अङ्गधराय तम (अगरे जाननेवाला नमम्बार
हा) और पूवधराय तम (पूवरे जाननेवाला नमम्बार हा) य मन्त्र बालना चाहिए ।
तम्मा गणधराय नम (गणधरका तमम्बार हो) दम तम्मा उच्चारण करना चाहिए
॥६१-४०॥ फिर परमपिभ्य दक्ष आग तमा तम का उच्चारण करना चाहिए अथान्
परमपिभ्या नमो नम (परम ऋषियावा याग्यार नमम्बार हो) यह मन्त्र बालना चाहिए
और एगर तम अनुपमजाताय तमा नम (उपमारहित जगधारण करनेवाला दो बार-बार
नमम्बार हा) दम मन्त्रका उच्चारण करना चाहिए ॥६२॥ फिर अन्तम सम्पाधन विभवत्यन्त
सम्यग्दृष्टि पन्था दा बार उच्चारण करना चाहिए । और दगो प्रसार मन्त्रका जाननेवाल द्विजा
का सम्पाधनात भूपति और नगरपति तम्मा भी दा-दा बार उच्चारण करना चाहिए ।
तदनन्तर आगे कहा जानेवाला मन्त्रका अवशिष्ट अग भी बालना चाहिए । बालभ्रमण
तम्मा सम्पाधन विभक्तिनम दो बार बहवर् उसके आगे स्वाहा तम्मा उच्चारण करना
चाहिण और फिर यह सत्र बह चुबनेव बाद पहल नमान बाम्यमन्त्र पढ़ना चाहिए ॥४४-४६॥
इन सत्र ऋषिमन्त्रावा संग्रह इस प्रकार है

सत्यजाताय नमः अहज्जाताय नमः, निग्रन्थाय नमः, वीनरागाय नमः, महाप्रताप
नमः त्रिगुप्ताय नमः महायोगाय नमः विविधयोगाय नमः विविधद्वये नमः, अङ्गधराय
नमः पूषधराय नमः गणधराय नमः परमपिम्ब्यो नमो नमः, अनुपमजाताय नमो नमः, सम्य
ग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे भूपते भूपते नगरपते नगरपते कालश्रमण वालश्रमण स्वाहा सेवाफलं पदपरम
स्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरण भवतु ।

तत्त्वोंके जाननेवाले मुनियोंके द्वारा ये ऊपर लिखे हुए मन्त्र मुनिमन्त्र अथवा ऋषिमन्त्र माने गये हैं । अब इनके आगे भगवान् ऋषभदेवकी श्रुतिने जिस प्रकार कहा है उसी प्रकार मन्त्रेन्द्र मन्त्राको कहता हैं ॥४७॥

प्रथम ही म सत्यजाताय स्वाहा (सत्यजन्म) । हवि समर्पण करता हूँ)
यह पद पठना चाहिए फिर अहंजाताय स्वाहा (अहंको हवि

१ वदन्ति स्म । २ ऋषभप्रोक्ता ।

ततश्च दिव्यजाताय स्वाहेत्येवमुदाहरेत् । ततो दिव्यार्च्यजाताय स्वाहेत्येतत्पद पठेत् ॥४९॥

वृथाच्च नेमिनाथाय स्वाहेत्येतदनन्तरम् । सौधर्माय पद चास्मात्स्वाहोक्त्यन्तमनुस्मरेत् ॥ ५० ॥

कल्पाधिपतये स्वाहापद वाच्यमतः परम् । भूयोऽप्यनुचरायादि स्वाहागण्डमुदीरयेत् ॥५१॥

ततः परम्परेन्द्राय स्वाहेत्युच्चारयेत्पदम् । मपठेदहमिन्द्राय स्वाहेत्येतदनन्तरम् ॥५२॥

ततः परमार्हताय स्वाहेत्येतत् पद पठेत् । ततोऽप्यनुपमायेति पद स्वाहापदान्वितम् ॥५३॥

सम्यग्दृष्टिपद चास्माद् बोध्यन्त द्विरुदीरयेत् । तथा कल्पपतिं चापि दिव्यमूर्तिं च सपठेत् ॥५४॥

द्विर्वाच्य वज्रनामेति ततः स्वाहेति सहरेत् । पूर्व्वान् काम्यमन्त्रोऽपि पाठ्योऽस्यान्ते त्रिभिः पदैः ॥५५॥

चूर्णिः—सत्यजाताय स्वाहा, अर्हजाताय स्वाहा, दिव्यजाताय स्वाहा, दिव्यार्च्यजाताय स्वाहा, नेमिनाथाय स्वाहा, सौधर्माय स्वाहा, कल्पाधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परम्परेन्द्राय स्वाहा, अहमिन्द्राय स्वाहा, परमार्हताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा, सेवाफल पट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधि-मरणं भवतु ।

समर्पण करता हूँ) यह उत्कृष्ट पद पठना चाहिए ॥४८॥ फिर 'दिव्यजाताय स्वाहा' (जिसका जन्म दिव्यरूप है उसे हवि समर्पण करता हूँ) ऐमा उच्चारण करना चाहिए और फिर 'दिव्यार्च्यजाताय स्वाहा' (दिव्य तेज स्वरूप जन्म धारण करनेवालेके लिए हवि समर्पण करता हूँ) यह पद पठना चाहिए ॥४९॥ तदनन्तर 'नेमिनाथाय स्वाहा' (धर्मचक्रकी धुरीके स्वामी जिनेन्द्र-देवको समर्पण करता हूँ) यह पद बोलना चाहिए और इसके बाद 'सौधर्माय स्वाहा' (सौधर्मेन्द्र-के लिए समर्पण करता हूँ) इस मन्त्रका स्मरण करना चाहिए ॥५०॥ फिर 'कल्पाधिपतये स्वाहा' (स्वर्गके अधिपतिके लिए समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र कहना चाहिए और उसके बाद 'अनुचराय स्वाहा' (इन्द्रके अनुचरोके लिए समर्पण करता हूँ) यह शब्द बोलना चाहिए ॥५१॥ फिर 'परम्परेन्द्राय स्वाहा' (परम्परासे होनेवाले इन्द्रोके लिए समर्पण करता हूँ) इस पदका उच्चारण करे और उसके अनन्तर 'अहमिन्द्राय स्वाहा' (अहमिन्द्रके लिए समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र अच्छी तरह पढे ॥५२॥ फिर 'परमार्हताय स्वाहा' (अरहन्तदेवके परम-उत्कृष्ट उपासकको समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र पठना चाहिए और उसके पश्चात् 'अनुपमाय स्वाहा' (उपमारहितके लिए समर्पण करता हूँ) यह पद बोलना चाहिए ॥५३॥ तदनन्तर सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पदका दो बार उच्चारण करना चाहिए तथा सम्बोधनान्त कल्पपति और दिव्यमूर्ति गण्डको भी दो-दो बार पठना चाहिए इसी प्रकार सम्बोधनान्त वज्रनामन् शब्द-को भी दो बार बोलकर स्वाहा शब्दका उच्चारण करना चाहिए और अन्तमे तीन-तीन पदोके द्वारा पहलेके समान काम्य मन्त्र पठना चाहिए अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा (हे सम्यग्दृष्टि, हे स्वर्गके अधिपति, हे दिव्य-मूर्तिको धारण करनेवाले, हे वज्रनाम, मैं तेरे लिए हवि समर्पण करता हूँ) यह बोलकर काम्य मन्त्र पठना चाहिए ॥५४-५५॥

ऊपर कहे हुए सुरेन्द्र मन्त्रोका संग्रह इस प्रकार है,

'सत्यजाताय स्वाहा, अर्हजाताय स्वाहा, दिव्यजाताय स्वाहा, दिव्यार्च्यजाताय स्वाहा, नेमिनाथाय स्वाहा, सौधर्माय स्वाहा, कल्पाधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परम्परेन्द्राय स्वाहा, अहमिन्द्राय स्वाहा, परमार्हताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्प-पते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा, सेवाफल पट्परमस्थानं भवतु

१ मन्त्रं ब्रूयात् । २ पट्प-मस्थानेत्यादिभिः ।

नमः शः उपरा चतुर्थः चतुर्थः न्यायः नुसृष्टौ । तता गणधरायेति पदं युक्तनमः पदम् ॥४२॥
 परमर्षिभ्यः इत्यस्मात् परा याच्य नमो नमः । ततोऽनुपमजाताय नमो नमः इतीरयेत् ॥४३॥
 सम्यग् दृष्टिः च । ते धीष्यन्ते द्विहृदाहरेत् । ततो भूपतिशब्दश्च नगरोपपत्तिः पति ॥४४॥
 द्विर्वाच्यौ ताविमा शः दौ धीष्यन्तो मन्त्रवेदिभिः । मन्त्रोपोऽप्यथ तस्मादनन्तरमुदायताम् ॥४५॥
 कालश्रमणशब्दः च द्विहृत्स्वाऽऽमन्त्रगे ततः । स्वाहति पदमुच्चाय प्राग्वत्काव्यानि चोदरेत् ॥४६॥

चूर्णि — सत्यजाताय नमः, अहज्जाताय नमः, निग्रथाय नमः, वातरागाय नमः, महाप्रताय नमः
 त्रिगुप्ताय नमः महायोगाय नमः विविधयोगाय नमः, विविधद्वये नमः अङ्गधराय नमः, पूवधराय नमः गण
 धराय नमः परमर्षिभ्यो नमो नमः, अनुपमजाताय नमो नमः सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे भूपते भूपते नगरपते नगरपते
 कालश्रमण कालश्रमण स्वाहा सेवाफलं पटपरमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

मुनिमन्त्रोऽथमाज्ञातो मुनिमिस्तत्त्वदर्शिभिः । वक्ष्ये सुरद्रमन्त्रं च यथा 'स्माहार्पणी' श्रुतिः ॥४७॥

प्रथमं सत्यजाताय स्वाहस्येतपदं पठन् । ततः स्वाहज्जाताय स्वाहस्येतत्परं पदम् ॥४८॥

धृष्टये नमः (अनेक ऋद्धियोको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो) ऐसा उच्चारण करना चाहिए । इसी प्रकार जिनके आगे नमः शब्द लगा हुआ है ऐसे चतुर्थ्यन्त अगधर और पूवधर शब्दोंका पाठ करना चाहिए अर्थात् 'अङ्गधराय नमः' (अगोवे जाननेवालेको नमस्कार हो) और 'पूवधराय नमः' (पूर्वोके जाननेवालोंको नमस्कार हो) ये मन्त्र बोलना चाहिए । तदनन्तर 'गणधराय नमः' (गणधरको नमस्कार हो) इस पदका उच्चारण करना चाहिए ॥४१-४२॥ फिर परमर्षिभ्यः शब्दके आगे नमो नमः का उच्चारण करना चाहिए अर्थात् परमर्षिभ्यो नमो नमः (परम ऋषियोंको बार-बार नमस्कार हो) यह मन्त्र बोलना चाहिए और इसके बाद अनुपमजाताय नमो नमः (उपमारहित जन्मधारण करनेवालेको बार-बार नमस्कार हो) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिए ॥४३॥ फिर अन्तमः सम्बोधन विभक्त्यन्त सम्यग्दृष्टि पदका दो बार उच्चारण करना चाहिए । और इसी प्रकार मन्त्रोको जाननेवाले द्विजा को सम्बोधनान्त भूपति और नगरपति शब्दका भी दो-दो बार उच्चारण करना चाहिए । तदनन्तर आगे कहा जानेवाला मन्त्रका अवशिष्ट अंश भी बोलना चाहिए । कालश्रमण शब्दको सम्बोधन विभक्तिमें दो बार कहकर उसके आगे स्वाहा शब्दका उच्चारण करना चाहिए और फिर यह सब कह चुकनेके बाद पहलेंके समान वाम्यमन्त्र पढ़ना चाहिए ॥४४-४६॥ इन सब ऋषिमन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है

सत्यजाताय नमः, अहज्जाताय नमः, निग्रथाय नमः, वातरागाय नमः, महाप्रताय नमः, त्रिगुप्ताय नमः, महायोगाय नमः विविधयोगाय नमः, विविधद्वये नमः, अङ्गधराय नमः, पूवधराय नमः गणधराय नमः, परमर्षिभ्यो नमो नमः अनुपमजाताय नमो नमः, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे भूपते भूपते नगरपते नगरपते कालश्रमण कालश्रमण स्वाहा सेवाफलं पटपरमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरणं भवतु ।

तत्त्वाने जाननेवाले मुनियोवे द्वारा ये ऊपर लिखे हुए मन्त्र मुनिमन्त्र अथवा ऋषिमन्त्र माने गये हैं । अथ इनके आगे भगवान् ऋषभदेवका श्रुतिने जिस प्रकार कहा है उसी प्रकार मैं गुरेन्द्र मन्त्राको कहता हूँ ॥४७॥

प्रथम ही मैं 'सत्यजाताय स्वाहा' (सत्यजन्म करनेवालेको हवि समर्पण करता हूँ) यह पद पढ़ना चाहिए फिर 'अहज्जाताय स्वाहा' (अहन्तर योग्य जन्म करनेवालेको हवि

ततश्च दिव्यजाताय स्वाहेत्येवमुदाहरेत् । ततो दिव्यार्च्यजाताय स्वाहेत्येतन्पद पठेत् ॥४९॥

ब्रूयाच्च नेमिनाथाय स्वाहेत्येतदनन्तरम् । सौधर्माय पद चास्मात्स्वाहोस्त्यन्तमनुस्मरेत् ॥ ५०॥

कल्पाधिपतये स्वाहापद वाच्यमत परम् । भूयोऽप्यनुचरायादि स्वाहाशब्दमुदीरयेत् ॥ ५१॥

ततः परम्परेन्द्राय स्वाहेत्युच्चारयेत्पदम् । मपठेदहमिन्द्राय स्वाहेत्येतदनन्तरम् ॥ ५२॥

तत परमार्हताय स्वाहेत्येत पद पठेत् । ततोऽप्यनुपमायेति पद स्वाहापदान्वितम् ॥ ५३॥

सम्यग्दृष्टिपद चास्माद् बोध्यन्त द्विरुदीरयेत् । तथा कल्पपतिं चापि दिव्यमूर्तिं च सपठेत् ॥ ५४॥

द्विर्वाच्यं वज्रनामेति ततः स्वाहेति सहरेत् । पूर्ववत् काम्यमन्त्रोऽपि पाठ्योऽस्यान्ते त्रिभिः पदैः ॥ ५५॥

चूर्णिः—सत्यजाताय स्वाहा, अर्हजाताय स्वाहा, दिव्यजाताय स्वाहा, दिव्यार्च्यजाताय स्वाहा, नेमिनाथाय स्वाहा, सौधर्माय स्वाहा, कल्पाधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परम्परेन्द्राय स्वाहा, अहमिन्द्राय स्वाहा, परमार्हताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा, सेवाफल पट्परमस्थान भवतु, अपमृत्युविनाशन भवतु, ममाधि-मरण भवतु ।

समर्पण करता हूँ) यह उत्कृष्ट पद पठना चाहिए ॥४८॥ फिर 'दिव्यजाताय स्वाहा' (जिसका जन्म दिव्यरूप है उसे हवि समर्पण करता हूँ) ऐसा उच्चारण करना चाहिए और फिर 'दिव्यार्च्यजाताय स्वाहा' (दिव्य तेज स्वरूप जन्म धारण करनेवालेके लिए हवि समर्पण करता हूँ) यह पद पठना चाहिए ॥४९॥ तदनन्तर 'नेमिनाथाय स्वाहा' (धर्मचक्रकी धुरीके स्वामी जिनेन्द्र-देवको समर्पण करता हूँ) यह पद बोलना चाहिए और इसके बाद 'सौधर्माय स्वाहा' (सौधर्मेन्द्र-के लिए समर्पण करता हूँ) इस मन्त्रका स्मरण करना चाहिए ॥५०॥ फिर 'कल्पाधिपतये स्वाहा' (स्वर्गके अधिपतिके लिए समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र कहना चाहिए और उसके बाद 'अनुचराय स्वाहा' (इन्द्रके अनुचरोके लिए समर्पण करता हूँ) यह शब्द बोलना चाहिए ॥५१॥ फिर 'परम्परेन्द्राय स्वाहा' (परम्परासे होनेवाले इन्द्रोके लिए समर्पण करता हूँ) इस पदका उच्चारण करे और उसके अनन्तर 'अहमिन्द्राय स्वाहा' (अहमिन्द्रके लिए समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र अच्छी तरह पढे ॥५२॥ फिर 'परार्हताय स्वाहा' (अरहन्तदेवके परम-उत्कृष्ट उपासकको समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र पठना चाहिए और उसके पश्चात् 'अनुपमाय स्वाहा' (उपमारहितके लिए समर्पण करता हूँ) यह पद बोलना चाहिए ॥५३॥ तदनन्तर सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पदका दो बार उच्चारण करना चाहिए तथा सम्बोधनान्त कल्पपति और दिव्यमूर्ति शब्दको भी दो-दो बार पठना चाहिए इसी प्रकार सम्बोधनान्त वज्रनामन् शब्द-को भी दो बार बोलकर स्वाहा शब्दका उच्चारण करना चाहिए और अन्तमे तीन-तीन पदोके द्वारा पहलेके समान काम्य मन्त्र पठना चाहिए अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा (हे सम्यग्दृष्टि, हे स्वर्गके अधिपति, हे दिव्य-मूर्तिको धारण करनेवाले, हे वज्रनाम, मैं तेरे लिए हवि समर्पण करता हूँ) यह बोलकर काम्य मन्त्र पठना चाहिए ॥५४-५५॥

ऊपर कहे हुए सुरेन्द्र मन्त्रोका सग्रह इस प्रकार है,

'सत्यजाताय स्वाहा, अर्हजाताय स्वाहा, दिव्यजाताय स्वाहा, दिव्यार्च्यजाताय स्वाहा, नेमिनाथाय स्वाहा, सौधर्माय स्वाहा, कल्पाधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परम्परेन्द्राय स्वाहा, अहमिन्द्राय स्वाहा, परमार्हताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्प-पते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा, सेवाफल पट्परमस्थान भवतु

१ सम्यग् ब्रूयात् । २ पट्परमस्थानेत्यादिभिः ।

सुरेन्द्रमन्त्रं पृथक् स्यात् सुरेन्द्रस्यानुत्तमपणम् । मन्त्रं परमराजादि वक्ष्यामीतो यथाश्रुतम् ॥५६॥

प्रागग्रं सत्यजाताय स्वाहेत्येतत् पद पठेत् । तत् स्यादहज्जाताय स्वाहेत्यतस्पर पदम् ॥५७॥

तत्तच्चानुपमेन्द्राय स्वाहेत्येतत् पद मतम् । विजयाच्यजाताय पद स्वाहान्तमवत् ॥५८॥

ततोऽपि नेमिनाथाय स्वाहेत्येतत्पद पठेत् । तत् परमराजाय स्वाहेत्येतदुदाहरेत् ॥५९॥

परमाहताय स्वाहा पदमस्मात्पर पठेत् । स्वाहान्तमनुपायोक्तिरतो वाच्या द्विजममि ॥६०॥

सम्यग्दृष्टिपदं चास्माद् बोध्यं तद् द्विरुदीरयेत् । उग्रतेज पदं चैव दिशाञ्जयपदं तथा ॥६१॥

नेम्यादिविजयं चैत्रं कुर्यात् स्वाहापदोत्तरम् । काम्यमन्त्रं च तं ब्रूयात् प्राग्वदग्ने पदैस्त्रिभिः ॥६२॥

चूर्णि - सत्यजाताय स्वाहा, अहज्जाताय स्वाहा, अनुपमेन्द्राय स्वाहा, विजयाच्यजाताय स्वाहा, नेमिनाथाय स्वाहा, परमराजाय स्वाहा, परमाहताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे उग्रतेज उग्रतेज दिशाञ्जय दिशाञ्जय नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरणं भवतु ।

मन्त्रं परमराजादिमतोऽयं परमर्चनाम् । परं मन्त्रमिदं वक्ष्ये यथाऽऽह परमा श्रुति ॥६३॥

अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरणं भवतु ।

यह सुरेन्द्रको सन्तुष्ट करनेवाला सुरेन्द्र मन्त्र कहा । अब भागे शास्त्रोंके अनुसार परम राजादि मन्त्र कहते हैं ॥५६॥ इन मन्त्रोंमें सर्वप्रथम 'सत्यजाताय स्वाहा' (सत्य जन्म धारण करनेवालेको हवि समर्पण करता हूँ) यह पद पढ़ना चाहिए, फिर 'अहज्जाताय स्वाहा' (अहन्त पदके योग्य जन्म लेनेवालेको समर्पण करता हूँ) यह उत्कृष्ट पद पढ़ना चाहिए ॥५७॥ इसके बाद अनुपमेन्द्राय स्वाहा (उपमारहित इन्द्र अर्थात् चक्रवर्तीके लिए समर्पण करता हूँ) यह पद कहना चाहिए । तदनन्तर 'विजयाच्यजाताय स्वाहा' (विजयरूप तथा तेज पूर्ण जन्मको धारण करनेवालेके लिए समर्पण करता हूँ) इस पदका उच्चारण करना चाहिए ॥५८॥ इसके पश्चात् नेमिनाथाय स्वाहा (धर्मरूप रथके प्रवर्तकको समर्पण करता हूँ) यह पद पढ़ना चाहिए और उसके बाद परमजाताय स्वाहा (उत्कृष्ट जन्म लेनेवालेको समर्पण करता हूँ) यह पद बोलना चाहिए ॥५९॥ फिर 'परमाहताय स्वाहा' (उत्कृष्ट उपासकको समर्पण करता हूँ) यह पद पढ़ना चाहिए और इसके बाद द्विजोको 'अनुपमाय स्वाहा' (उपमारहितके लिए समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र बोलना चाहिए ॥६०॥ तदनन्तर सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पदका दो बार उच्चारण करना चाहिए तथा इसी प्रकार सम्बोधनान्त उग्रतेज पद, दिशाञ्जय पद और नेमिविजय पदको दो बार बोलकर अन्तमें स्वाहा शब्दका उच्चारण करना चाहिए और अन्तमें पहल्वे समान तीन-तीन पदोंसे काम्य मन्त्र बोलना चाहिए अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे उग्रतेज उग्रतेज दिशाञ्जय दिशाञ्जय नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा (हे सम्यग्दृष्टि, हे प्रवण्ड प्रतापके धारक, हे दिशाओंको जीतनेवाले, हे नेमिविजय, मैं तुम्हें हवि समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र बोलकर काम्यमन्त्र पढ़ना चाहिए ॥६१-६२॥

परमराजादि मन्त्रावा संग्रह इस प्रकार है

सत्यजाताय स्वाहा, अहज्जाताय स्वाहा, अनुपमेन्द्राय स्वाहा, विजयाच्यजाताय स्वाहा, नेमिनाथाय स्वाहा, परमजाताय स्वाहा, परमाहताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे उग्रतेज उग्रतेज दिशाञ्जय दिशाञ्जय नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा, सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

ये मन्त्र परमराजादि मन्त्र माने गये हैं । अब यहाँसे आगे जिस प्रकार परम शास्त्रमें १ परमराजादि मन्त्र २ परमजाताय ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ।

तत्रादौ सत्यजाताय नमः पदमुदीरयेत् । वाच्य ततोऽर्हज्जाताय नम इत्युत्तर पदम् ॥६४॥
 ततः परमजाताय नमः पदमुदाहरेत् । परमार्हतशब्द च चतुर्थ्यन्त नम परम् ॥६५॥
 ततः परमरूपाय नमः परमतेजसे । नम इत्युभय वाच्य पदमभ्यात्मद्विभिः ॥६६॥
 परमादिगुणार्थेति पद चान्यन्नमोयुतम् । परमस्थानशब्दश्च चतुर्थ्यन्तो नमोऽन्विन ॥६७॥
 उदाहार्य क्रम ज्ञात्वा ततः परमयोगिने । नमः परमभाग्याय नम इत्युभय पदम् ॥६८॥
 परमर्द्धिपद चान्यच्चतुर्थ्यन्त नमः परम् । स्यात्परमप्रसादाय नम इत्युत्तर पदम् ॥६९॥
 स्यात्परमकाङ्क्षिताय नम इत्यत उत्तरम् । स्यात्परमविजयाय नम इत्युत्तरं वचः ॥७०॥
 स्यात्परमविज्ञानाय नमो वास्तदनन्तरम् । स्यात्परमदर्शनाय नम पदमत परम् ॥७१॥
 ततः परमवीर्याय पद चास्मान्नमः परम् । परमादिसुखार्थेति पदमस्मादनन्तरम् ॥७२॥
 सर्वज्ञाय नमोवाक्यमर्हते नम इत्यपि । नमो नम पद चास्मान्स्यात्पर परमेष्ठिने ॥७३॥

परमादिपदान्नेत्र इत्यस्माच्च नमो नमः । सम्यग्दृष्टिपद चान्ते बोध्यन्तं द्वि प्रयुज्यताम् ॥७४॥

कहा है उसी प्रकार परमेष्ठियोके उत्कृष्ट मन्त्र कहता हूँ ॥६३॥ उन परमेष्ठो मन्त्रोमे सबसे पहले 'सत्यजाताय नमः' (सत्यरूप जन्म लेनेवालेके लिए नमस्कार हो) यह पद बोलना चाहिए और उसके बाद 'अर्हज्जाताय नमः' (अरहन्तके योग्य जन्म लेनेवालेके लिए नमस्कार हो) यह पद पढ़ना चाहिए ॥६४॥ तदनन्तर 'परमजाताय नमः' (उत्कृष्ट जन्म लेनेवालेके लिए नमस्कार हो) यह पद कहना चाहिए और इसके बाद चतुर्थी विभक्त्यन्त परमार्हत शब्दके आगे नमः पद लगाकर 'परमार्हताय नमः' (उत्कृष्ट जिनधर्मके धारकके लिए नमस्कार हो) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥६५॥ तत्पश्चात् अध्यात्म शास्त्रको जाननेवाले द्विजोको 'परमरूपाय नमः' (उत्कृष्ट निर्ग्रन्थरूपको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो) और 'परमतेजसे नमः' (उत्तम तेजको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो) ये दो मन्त्र बोलना चाहिए ॥६६॥ फिर नमः शब्दके साथ परमगुणाय यह पद अर्थात् 'परमगुणाय नमः' (उत्कृष्ट गुणवालेके लिए नमस्कार हो) यह मन्त्र बोलना चाहिए और उसके अनन्तर नमः शब्दसे सहित चतुर्थी विभक्त्यन्त परमस्थान शब्द अर्थात् 'परमस्थानाय नमः' (मोक्षरूप उत्तमस्थानवालेके लिए नमस्कार हो) यह पद पढ़ना चाहिए ॥६७॥ इसके पश्चात् क्रमको जानकर 'परमयोगिने नमः' (परम योगीके लिए नमस्कार हो) और 'परमभाग्याय नमः' (उत्कृष्ट भाग्यशालीको नमस्कार हो) ये दोनों पद बोलना चाहिए ॥६८॥ तदनन्तर जिसके आगे नमः शब्द लगा हुआ है और चतुर्थी विभक्ति जिसके अन्तमे है ऐसा परमर्द्धि पद अर्थात् 'परमर्द्धये नमः' (उत्तम ऋद्धियोके धारकके लिए नमस्कार हो) और 'परमप्रसादाय नमः' (उत्कृष्ट प्रसन्नताको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो) ये दो मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥६९॥ फिर 'परमकाक्षिताय नमः' [उत्कृष्ट आत्मानन्दकी इच्छा करनेवालेके लिए नमस्कार हो] और 'परमविजयाय नमः' [कर्मरूप शत्रुओपर उत्कृष्ट विजय पानेवालेके लिए नमस्कार हो] ये दो मन्त्र बोलना चाहिए ॥७०॥ तदनन्तर 'परमविज्ञानाय नमः' [उत्कृष्ट ज्ञानवालेके लिए नमस्कार हो] और उसके बाद 'परमदर्शनाय नमः' [परम दर्शनके धारकके लिए नमस्कार हो] यह पद पढ़ना चाहिए ॥७१॥ इसके पश्चात् 'परमवीर्याय नमः' (अनन्त बलशालीके लिए नमस्कार हो) और फिर 'परमसुखाय नमः' [परम सुखके धारकको नमस्कार हो] ये मन्त्र कहना चाहिए ॥७२॥ इसके अनन्तर 'सर्वज्ञाय नमः' [ससारके समस्त पदार्थोंको जाननेवालेके लिए नमस्कार हो] 'अर्हते नमः' [अरहन्तदेवके लिए नमस्कार हो], और फिर 'परमेष्ठिने नमो नमः' (परमेष्ठीके लिए बार-बार नमस्कार हो) ये मन्त्र बोलना चाहिए ॥७३॥ तदनन्तर 'परमनेत्रे नमो नमः' (उत्कृष्ट नेताके लिए नमस्कार हो) यह मन्त्र

सुरेन्द्रमन्त्र एव स्यात् सुरेन्द्रस्यानुत्पणम् । मन्त्र परमराजादि वक्ष्यामीतो यथाश्रुतम् ॥५६॥
 प्रागग्र सत्यजाताय स्वाहेत्येतत् पद पठत् । तत् स्यादहज्जाताय स्वाहेत्येतत्पर पदम् ॥५७॥
 ततश्चानुपमन्त्राय स्वाहेत्येतत् पद मतम् । विजयाच्यादिजाताय पद स्वाहान्तमन्वत् ॥५८॥
 ततोऽपि नमिनाथाय स्वाहेत्येतत्पद पठेत् । तत् परमराजाय स्वाहेत्येतदुदाहरेत् ॥५९॥
 परमाहताय स्वाहा पदमस्मात्पर पठेत् । स्वाहान्तमनुपाभोक्तिरतो धाच्या द्विजन्ममि ॥६०॥
 सम्यग्दृष्टिपद चास्माद् बोध्यत द्विरुदारयत् । उग्रतेजः पद चैव दिशाज्यपद तथा ॥६१॥
 नम्यादिविजय चैव कुर्यात् स्वाहापदोत्तरम् । काम्यमन्त्र यत् त म्यात् प्राग्वदन्ते पश्येत्स्मिन् ॥६२॥

चूर्णि - सत्यजाताय स्वाहा, अहज्जाताय स्वाहा, अनुपमन्त्राय स्वाहा विजयाच्याजाताय स्वाहा, नमिनाथाय स्वाहा परमराजाय स्वाहा परमाहताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे उग्रतेज उग्रतेज दिशाजय दिशाजय नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा, सेवाफल घटपरमस्थान भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरण भवतु ।

मन्त्र परमराजादिमन्तोऽय परमष्ठिनाम् । पर मन्त्रमितो वक्ष्ये यथाऽऽह परमा धृति ॥६३॥

अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरणं भवतु ।

यह सुरेन्द्रको सतुष्ट करनेवाला सुरेन्द्र मन्त्र कहा । अब आगे शास्त्रोंके अनुसार परम राजादि मन्त्र कहते हैं ॥५६॥ इन मन्त्रोंमें सवप्रथम 'सत्यजाताय स्वाहा' (सत्य जन्म धारण करनेवालाको हवि समर्पण करता हूँ) यह पद पढ़ना चाहिए, फिर 'अहज्जाताय स्वाहा' (अहन्त पदके योग्य जन्म लनेवालाको समर्पण करता हूँ) यह उत्कृष्ट पद पढ़ना चाहिए ॥५७॥ इसके बाद अनुपमेन्द्राय स्वाहा (उपमारहित इन्द्र अर्थात् चक्रवर्तीके लिए समर्पण करता हूँ) यह पद कहना चाहिए । तदनन्तर विजयाच्याजाताय स्वाहा (विजयरूप तथा तेज पूर्ण जन्मको धारण करनेवालाके लिए समर्पण करता हूँ) इस पदका उच्चारण करना चाहिए ॥५८॥ इसके पश्चात् नेमिनाथाय स्वाहा (धर्मरूप रथके प्रवतकको समर्पण करता हूँ) यह पद पढ़ना चाहिए और उसके बाद 'परमजाताय स्वाहा' (उत्कृष्ट जन्म लनेवालाको समर्पण करता हूँ) यह पद बोलना चाहिए ॥५९॥ फिर 'परमाहताय स्वाहा' (उत्कृष्ट उपासकको समर्पण करता हूँ) यह पद पढ़ना चाहिए और इसके बाद द्विजोंको 'अनुपमाय स्वाहा' (उपमारहितके लिए समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र बोलना चाहिए ॥६०॥ तदनन्तर सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पदका दो बार उच्चारण करना चाहिए तथा इसी प्रकार सम्बोधनान्त उग्रतेज पद, दिशाजय पद और नेमिविजय पदको दो बार बोलकर अन्तम स्वाहा शब्दका उच्चारण करना चाहिए और अन्तम पहल्वे समान तीन-तीन पदांसे काम्य मन्त्र बोलना चाहिए अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे उग्रतेज उग्रतेज दिशाजय दिशाजय नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा (हे सम्यग्दृष्टि, हे प्रचण्ड प्रतापके धारक, हे दिशाओंको जीतनेवाला, हे नेमिविजय मैं तुम्हें हवि समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र बोलकर काम्यमन्त्र पढ़ना चाहिए ॥६१-६२॥

परमराजादि मन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है

'सत्यजाताय स्वाहा अहज्जाताय स्वाहा, अनुपमेन्द्राय स्वाहा विजयाच्याजाताय स्वाहा, नेमिनाथाय स्वाहा परमजाताय स्वाहा, परमाहताय स्वाहा, अनुपमाय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे उग्रतेज उग्रतेज, दिशाजय दिशाजय नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा, सेवाफलं परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरण भवतु ।

ये मन्त्र परमराजादि मन्त्र माने गये हैं । अब यहाँसे आगे जिम प्रकार परम शास्त्रम

तत्रादौ सत्यजाताय नमः पदमुदीर्येत् । वाच्यं ततोऽर्हज्जाताय नम इत्युत्तर पदम् ॥६४॥
 ततः परमजाताय नमः पदमुदाहरेत । परमार्हतशब्द च चतुर्थ्यन्त नमः परम् ॥६५॥
 ततः परमरूपाय नमः परमतेजसे । नम इत्युभय वाच्य पदमध्यान्मदृशिभिः ॥६६॥
 परमादिगुणायैति पद चान्यन्नमोयुतम् । परमस्थानशब्दश्च चतुर्थ्यन्तो नमोऽन्विन ॥६७॥
 उदाहार्यं क्रमं ज्ञात्वा ततः परमयोगिने । नमः परमभाग्याय नम इत्युभय पदम् ॥६८॥
 परमर्द्धिपद चान्यच्चतुर्थ्यन्त नमः परम् । स्यात्परमप्रसादाय नम इत्युत्तर पदम् ॥६९॥
 स्यात्परमकाङ्क्षिताय नम इत्यत उत्तरम् । स्यात्परमविजयाय नमः इत्युत्तरं वच ॥७०॥
 स्यात्परमविज्ञानाय नमो वाक्तदनन्तरम् । स्यात्परमदर्शनाय नमः पदमत परम् ॥७१॥
 ततः परमवीर्याय पद चास्मान्नमः परम् । परमादिसुखायैति पदमस्मादनन्तरम् ॥७२॥
 सर्वज्ञाय नमोवाक्यमर्हते नम इत्यपि । नमो नमः पद चास्मान्स्यात्पर परमेष्ठिने ॥७३॥
 परमादिपदान्नेत्र इत्यस्माच्च नमो नमः । सम्यग्दृष्टिपद चान्ते बोध्यन्त द्वि प्रयुज्यताम् ॥७४॥

कहा है उसी प्रकार परमेष्ठियोके उत्कृष्ट मन्त्र कहता हूँ ॥६३॥ उन परमेष्ठी मन्त्रोमे सबसे पहले 'सत्यजाताय नमः' (सत्यरूप जन्म लेनेवालेके लिए नमस्कार हो) यह पद बोलना चाहिए और उसके बाद 'अर्हज्जाताय नमः' (अरहन्तके योग्य जन्म लेनेवालेके लिए नमस्कार हो) यह पद पढ़ना चाहिए ॥६४॥ तदनन्तर 'परमजाताय नमः' (उत्कृष्ट जन्म लेनेवालेके लिए नमस्कार हो) यह पद कहना चाहिए और इसके बाद चतुर्थी विभक्त्यन्त परमार्हत शब्दके आगे नमः पद लगाकर 'परमार्हताय नमः' (उत्कृष्ट जिनधर्मके धारकके लिए नमस्कार हो) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥६५॥ तत्पश्चात् अध्यात्म शास्त्रको जाननेवाले द्विजोको 'परमरूपाय नमः' (उत्कृष्ट निर्ग्रन्थरूपको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो) और 'परम-तेजसे नमः' (उत्तम तेजको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो) ये दो मन्त्र बोलना चाहिए ॥६६॥ फिर नमः शब्दके साथ परमगुणाय यह पद अर्थात् 'परमगुणाय नमः' (उत्कृष्ट गुण-वालेके लिए नमस्कार हो) यह मन्त्र बोलना चाहिए और उसके अनन्तर नमः शब्दसे सहित चतुर्थी विभक्त्यन्त परमस्थान शब्द अर्थात् 'परमस्थानाय नमः' (मोक्षरूप उत्तमस्थानवालेके लिए नमस्कार हो) यह पद पढ़ना चाहिए ॥६७॥ इसके पश्चात् क्रमको जानकर 'परम-योगिने नमः' (परम योगीके लिए नमस्कार हो) और 'परमभाग्याय नमः' (उत्कृष्ट भाग्य-शालीको नमस्कार हो) ये दोनों पद बोलना चाहिए ॥६८॥ तदनन्तर जिसके आगे नमः शब्द लगा हुआ है और चतुर्थी विभक्ति जिसके अन्तमे है ऐसा परमर्द्धि पद अर्थात् 'परमर्द्धये नमः' (उत्तम ऋद्धियोंके धारकके लिए नमस्कार हो) और 'परमप्रसादाय नमः' (उत्कृष्ट प्रसन्नताको धारण करनेवालेके लिए नमस्कार हो) ये दो मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥६९॥ फिर 'परमकाक्षिताय नमः' [उत्कृष्ट आत्मानन्दकी इच्छा करनेवालेके लिए नमस्कार हो] और 'परमविजयाय नमः' [कर्मरूप शत्रुओपर उत्कृष्ट विजय पानेवालेके लिए नमस्कार हो] ये दो मन्त्र बोलना चाहिए ॥७०॥ तदनन्तर 'परमविज्ञानाय नमः' [उत्कृष्ट ज्ञानवालेके लिए नमस्कार हो] और उसके बाद 'परमदर्शनाय नमः' [परम दर्शनके धारकके लिए नमस्कार हो] यह पद पढ़ना चाहिए ॥७१॥ इसके पश्चात् 'परमवीर्याय नमः' (अनन्त बल-शालीके लिए नमस्कार हो) और फिर 'परमसुखाय नमः' [परम सुखके धारकको नमस्कार हो] ये मन्त्र कहना चाहिए ॥७२॥ इसके अनन्तर 'सर्वज्ञाय नमः' [ससारके समस्त पदार्थोंको जाननेवालेके लिए नमस्कार हो] 'अर्हते नमः' [अरहन्तदेवके लिए नमस्कार हो], और फिर 'परमेष्ठिने नमो नमः' (परमेष्ठीके लिए बार-बार नमस्कार हो) ये मन्त्र बोलना चाहिए ॥७३॥ तदनन्तर 'परमनेत्रे नमो नमः' (उत्कृष्ट नेताके लिए नमस्कार हो) यह मन्त्र

द्वि^१ स्तो^२ त्रिलोकविजयधममूर्तिपदे तत । धमनेमिपद वाच्य द्वि स्वाहति तत परम् ॥७५॥
काम्यमन्त्रमतो मूयात्पूर्ववद्विधिबद्धिज । काम्यसिद्धिप्रधाना हि सर्वे मन्त्राः स्मृता युधै ॥७६॥

चूर्णि - सत्यजाताय नम अहज्जाताय नम, परमजाताय नम, परमाहताय नम परमरूपाय नम, परमतजसे नम, परमगुणाय नम परमस्थानाय नम परमयागिने नम परमभाग्याय नम, परमद्वये नम परमप्रसादाय नम परमकाक्षिताय नम परमविजयाय नम परमविज्ञानाय नम परमदशनाय नम परमवीर्याय नम परमसुखाय नम सवज्ञाय नम, अहते नम परमेष्ठिने नमो नम परमनेत्रे नमो नम सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे त्रिलोकविजय त्रिलोकविजय धममूर्त धममूर्ते धमनेमे धमनेमे स्वाहा सवाफलं पटपरमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु ।

एतं तु पीठिकामन्त्रं सप्त श्रया द्विजोत्तमै । एतै सिद्धाचन कुर्मादाधौ नादिक्रियाविधा ॥७७॥

त्रियामन्त्रास्त एते स्मुराधानादिक्रियाविधौ । सूत्रे गणधरोद्धायै यान्ति साधनमन्त्रताम् ॥७८॥

सभ्यास्त्रग्निश्रयं दक्षपूजने नित्यकर्मणि । भवत्याहुतिमन्त्राश्च त एत विधिसाधिता ॥७९॥

मिद्धार्चासनिधौ मन्त्रान् जपेदष्टोत्तरं शतम् । गन्धपुष्पाक्षतार्वादि निवेदनपुरःसरम् ॥ ८०॥

सिद्धविद्यस्ततो मन्त्रैरमि कर्म समाचरेत् । शुक्लवासा शुचिविनीपशीत्यन्यग्रमानस ॥ ८१॥

कहना चाहिए और उसके बाद सम्बोधनात् सम्यग्दृष्टि पदका दो धार प्रयोग करना चाहिए ॥७४॥ तथा इसी प्रकार त्रिलोकावजय धममूर्ति और धमनेमि शब्दको भी दो-दो बार उच्चारण कर अन्तमें स्वाहा पद बोलना चाहिए अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे, त्रिलोकविजय त्रिलोकविजय धममूर्ते धममूर्ते धमनेमे धमनेमे स्वाहा (हे सम्यग्दृष्टि, हे तीनों लोकोको विजय करनेवाले, हे धममूर्ति और हे धमके प्रवतक, मैं तेरे लिए हवि समर्पण करता हूँ) यह मन्त्र बोलना चाहिए ॥७५॥ तत्पश्चात् द्विजोको पहल्लेके समान विधिपूर्वक काम्यमन्त्र पढ़ना चाहिए क्योंकि विद्वान् लोग सब मन्त्रोसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होना ही मुख्य फल मानते हैं ॥७६॥

परमेष्ठी मन्त्रोका संग्रह इस प्रकार है

सत्यजाताय नम, अहज्जाताय नम, परमजाताय नम, परमाहताय नम, परमरूपाय नम परमतजसे नम, परमगुणाय नम परमस्थानाय नम, परमयागिने नम, परमभाग्याय नम, परमद्वये नम, परमप्रसादाय नम, परमकाक्षिताय नम, परमविजयाय नम, परमविज्ञानाय नम परमदशनाय नम, परमवीर्याय नम परमसुखाय नम, सवज्ञाय नम, अहते नम, परमेष्ठिने नमो नम, परमनेत्रे नमो नम, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे, त्रिलोकविजय त्रिलोकविजय, धममूर्ते धर्ममूर्ते, धमनेमे धमनेमे स्वाहा, सेवाफलं पटपरमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरणं भवतु ।

ब्राह्मणाको ये ऊपर लिखे हुए सात पीठिका मन्त्र जानना चाहिए और गर्भधानादि क्रियाओंकी विधि करनेमें इनमें सिद्धपूजन करना चाहिए ॥७७॥ गर्भधानादि क्रियाओंकी विधि करनेमें ये मन्त्र त्रियामन्त्र कहलाते हैं और गणधराक द्वारा बहे हुए सूत्रमें ये ही साधन मन्त्रपनेवा प्राप्त हो जाते हैं ॥७८॥ विधिपूर्वक सिद्ध किये हुए ये ही मन्त्र सभ्यास्त्रादि समय होना अग्नियाम देवपूजनरूप नित्य कर्म करते समय आहुति मन्त्र कहलाते हैं ॥७९॥ सिद्ध भगवान्की प्रतिमा में गामने पहले गन्ध पुष्प, अक्षत और अघ आदि समर्पण कर एक ही आठ बार उक्त मन्त्रोंका जप करना चाहिए ॥८०॥ तत्पश्चात् जिस विधिसे मिद्ध हो गया है, जा

त्रयोऽग्नयः प्रगेया^१ स्युः कर्मरम्भे द्विजोत्तमैः । रत्नत्रितयसकल्पादग्नीन्द्रमुकुटोद्भवाः ॥८२॥

तीर्थकृद्गणभृच्छे^२ पक्वेत्यन्तमहोत्सवे^३ । पूजाङ्गत्वं^४ समामाग्य पवित्रत्वमुपागता ॥८३॥

कुण्डत्रये प्रगेतव्यास्त्रय एतं महामग्नयः । गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्निप्रनिद्वय ॥८४॥

अस्मिन्नग्नित्रये प्रजां मन्त्रैः कुर्वन् द्विजोत्तमः । आहिताग्निरिति ज्ञेयो नित्येज्या यस्य मग्नानि ॥८५॥

“हविष्पाके च धूपे च दीपोद्बोधनसविद्यौ । वर्हानां^५ विनियोगः स्यादग्नीषा नित्यपूजने ॥८६॥

प्रयत्नेनाभिगृह्यं स्याद्विदमग्नित्रय गृहं । नैव दातव्यमन्येभ्यस्तेऽन्ये ये स्युरग्यमृकताः^६ ॥८७॥

न स्वतोऽग्ने पवित्रत्वं देवतारूपमेव वा । किन्त्वर्हदिव्यमूर्तीज्यासम्बन्धान् पावनोऽनल ॥८८॥

ततः पूजाङ्गतामस्य मन्त्रार्चन्ति द्विजोत्तमाः । निर्वाणक्षेत्रपूजावत्तत्पूजाऽर्तो^७ न दुष्यति ॥८९॥

व्यवहारनयापेक्षा नस्येष्टा पूज्यता द्विजैः । जैनैरन्यवहार्योऽग्नौ^{१०} त्रयोऽग्नत्वेऽग्रजन्मनः^{११} ॥९०॥

साधारणाम्बिन्वसे मन्त्राः सर्वत्रैव क्रियाविधौ । यथा सभयमुन्नेत्ये^{१२} विशेषविषयाश्च तान् ॥९१॥

सफेद वस्त्र पहने हुए हैं, पवित्र है, यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं और जिसका चित्त आकुलतासे रहित है ऐमा द्विज इन मन्त्रोंके द्वारा समस्त क्रियाएँ करे ॥८१॥ क्रियाओंके प्रारम्भमें उत्तम द्विजोंको रत्नत्रयका सकल्प कर अग्निकुमार देवोंके इन्द्रके मुकुटसे उत्पन्न हुई तीन प्रकारकी अग्नियाँ प्राप्त करनी चाहिए ॥८२॥ ये तीनों ही अग्नियाँ तीर्थकर, गणधर और सामान्य केवलीके अग्निम अर्थात् निर्वाणमहोत्सवमें पूजाका अग होकर अत्यन्त पवित्रताको प्राप्त हुई मानी जाती हैं ॥८३॥ गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि नामसे प्रसिद्ध इन तीनों महाअग्नियोंको तीन कुण्डोंमें स्थापित करना चाहिए ॥८४॥ इन तीनों प्रकारकी अग्नियोंमें मन्त्रोंके द्वारा पूजा करनेवाला पुरुष द्विजोत्तम कहलाता है और जिसके घर इस प्रकारकी पूजा नित्य होती रहती है वह आहिताग्नि अथवा अग्निहोत्री कहलाता है ॥८५॥ नित्य पूजन करते समय इन तीनों प्रकारकी अग्नियोंका विनियोग नैवेद्यके पकानेमें, धूप खेनेमें और दीपक जलानेमें होता है अर्थात् गार्हपत्य अग्निसे नैवेद्य पकाया जाता है, आहवनीय अग्निमें धूप खेई जाती है और दक्षिणाग्निमें दीपक जलाया जाता है ॥८६॥ घरमें बड़े प्रयत्नके साथ इन तीनों अग्नियोंकी रक्षा करनी चाहिए और जिनका कोई सस्कार नहीं हुआ है ऐसे अन्य लोगोंको कभी नहीं देनी चाहिए ॥८७॥ अग्निमें स्वयं पवित्रता नहीं है और न वह देवतारूप ही है — किन्तु अरहन्तदेवकी दिव्य मूर्तिकी पूजाके सम्बन्धसे वह अग्नि पवित्र हो जाती है ॥८८॥ इसलिए ही द्विजोत्तम लोग इसे पूजाका अग मानकर इसकी पूजा करते हैं अतएव निर्वाणक्षेत्रकी पूजाके समान अग्निकी पूजा करनेमें कोई दोष नहीं है । भावार्थ — जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवके सम्बन्धसे क्षेत्र भी पूज्य हो जाते हैं उन्नी प्रकार उनके सम्बन्धसे अग्नि भी पूज्य हो जाती है अतएव जिस प्रकार निर्वाण आदि क्षेत्रोंकी पूजा करनेमें दोष नहीं है उसी प्रकार अग्निकी पूजा करनेमें भी कोई दोष नहीं है ॥८९॥ ब्राह्मणोंको व्यवहार नयकी अपेक्षा ही अग्निकी पूज्यता इष्ट है इसलिए जैन ब्राह्मणोंको भी आज यह व्यवहारनय उपयोगमें लाना चाहिए ॥९०॥ ये ऊपर कहे हुए मन्त्र साधारण मन्त्र हैं, सभी क्रियाओंमें काम आते हैं । अब विशेष क्रियाओंसे सम्बन्ध रखनेवाले विशेष मन्त्रोंको यथासम्भव कहता हूँ ॥९१॥

१ मन्त्रार्था । २ जेवली । ३ परिनिर्वाणमहोत्सवे । ४ कारणत्वम् । ५ चरुपचने । ६ गार्हपत्यादीनाम् अग्नित्रयाणाम् । उदात्त्येन हवि पाकादिषु त्रिषु विनियोगः स्यात् । ७ गर्भाधानादिमस्काररहिता । ८ अग्नित्रय-पूजा । ९ ऋणान् । १० व्यवहर्तुं योग्य । ११ त्रिप्रश्नः । — जन्मभिः द०, ल०, अ०, प०, स०, इ० । १२ नृद् । वक्ष्ये ।

गर्भाधानमन्त्र—

सज्जातिभागी भव सद्गृहिभागी भवेति च । पदद्वयमुदीर्यादौ पदानीमान्यत पठेत् ॥९२॥

आदौ मुनीन्द्रभागी भवेत्येते पद वदेत् । सुरेन्द्रभागी परमराज्यभागीति च द्वयम् ॥९३॥

आहृत्यभागी भवेति पदमस्मादनन्तरम् । ततः परमनिर्वाणभागी भव पद भवेत् ॥९४॥

आधान मन्त्र एव स्यान् पूर्वमन्त्रपुरःसर^१ । विनियोगश्च मन्त्राणां यथास्मात् प्रदर्शित ॥९५॥

चूर्णि—सज्जातिभागी भव सद्गृहिभागी भव मुनीन्द्रभागी भव, सुरेन्द्रभागी भव, परमराज्यभागी भव, आहृत्यभागी भव परमनिर्वाणभागी भव, (आधानमन्त्र)

स्यात्प्रातिमन्त्रश्चैत्रलोक्यनाथो भवपदादिक । त्रैकालशानी भव त्रिरत्नस्वामी भवेत्ययम् ॥९६॥

चूर्णि—त्रैलोक्यनाथो भव, त्रैलोक्यशानी भव त्रिरत्नस्वामी भव, (प्रीतिमन्त्र) ?

^२मन्त्रोच्चाराकल्याणभागी भवपदादिक । सुप्रातः मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणवाक्पर ॥९७॥

भागाभव पदोपेतस्ततः निष्क्रान्तियाक्पर । कल्याणमध्यमो भागी भवेत्यतः योजित ॥९८॥

ततश्चाहृत्यकल्याणभागा भव पदादित । ततः परमनिर्वाणकल्याणपदसंगत ॥९९॥

गर्भाधानके मन्त्र—प्रथम ही 'सज्जातिभागी भव (उत्तम जातिको धारण करनेवाला हो) और सद्गृहिभागी भव (उत्तम गृहस्थ अवस्थाको प्राप्त होओ) इन दो पदोंका उच्चारण कर पश्चान् नीचे लिखे पद पठना चाहिए ॥९२॥ पहले 'मुनीन्द्रभागी भव' (महामुनिका पद प्राप्त करनेवाला हो) यह पद बोलना चाहिए और फिर 'सुरेन्द्रभागी भव (इन्द्र पदका भोक्ता हो) तथा 'परमराज्यभागी भव (उत्कृष्ट राज्यका उपभोग करनेवाला हो) इन दो पदोंका उच्चारण करना चाहिए ॥९३॥ तदनन्तर 'आहृत्यभागी भव (अरहत् पदका प्राप्त करनेवाला हो) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए और फिर 'परमनिर्वाणभागी भव (परम निर्वाण पदको प्राप्त करनेवाला हो), यह पद कहना चाहिए ॥९४॥ गर्भाधानकी क्रियामें पहलेके मन्त्रोंके साथ-साथ यह मन्त्र काममें लाना चाहिए इस प्रकार यह आम्नायके अनुसार मन्त्रोंका विनियोगका क्रम दिखलाया है ॥९५॥

गर्भाधानके समय काम आनेवाले विंशति मन्त्रोंका संग्रह इस प्रकार है

सज्जातिभागी भव, सद्गृहिभागी भव, मुनीन्द्रभागी भव, सुरेन्द्रभागी भव, परमराज्यभागी भव, आहृत्यभागी भव, परमनिर्वाणभागी भव ।

अब प्रीतिमन्त्र कहते हैं—त्रैलोक्यनाथो भव (तीनों लोकोंके अधिपति होओ) त्रैकालशानी भव (तीनों कालका जाननेवाला हो) और 'त्रिरत्नस्वामी भव (रत्नत्रय का स्वामी हो) ये तीन प्रीतिक्रियाके मन्त्र हैं ॥९६॥

संग्रह—त्रैलोक्यनाथो भव त्रैकालशानी भव, त्रिरत्नस्वामी भव ।

अब सुप्रीति क्रियाके मन्त्र कहते हैं—सुप्रीति क्रियामें 'अवतारकल्याणभागी भव (गर्भ कल्याणको प्राप्त करनेवाला हो) 'मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव,' (सुमेरु पर्वतपर इन्द्र द्वारा जमाभिषेकके कल्याणका प्राप्त हो), निष्क्रान्तिकल्याणभागी भव (निष्क्रमण कल्याणका प्राप्त करनेवाला हो) आहृत्यकल्याणभागी भव (अरहत् अवस्था—केवलज्ञानकल्याणको प्राप्त करनेवाला हो), और 'परमनिर्वाणकल्याणभागी भव [उत्कृष्ट निर्वाण कल्याणको

१ गर्भाधान । २ वाग्जामत्राङ्गिपुर मन्त्र । ३ अवताराङ्गिकल्याणान्तरमनिर्वाणपञ्चातातः सव्यपञ्चानाम् । मन्त्र इति पदं विद्यमानं भवति ।

भागी भवपदान्तश्च क्रमाद्वाच्यो मनीषिभिः । धृतिमन्त्रमितां वक्ष्ये प्रीत्या शृणुत मो द्विज । ॥१००॥

चूर्णिः—अवतारकल्याणभागी भव, मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव, निष्क्रान्तिकल्याणभागी भव, आर्हन्त्यकल्याणभागी भव, परमनिर्वाणकल्याणभागी भव, (सुप्रीतिमन्त्रः) ।

धृतिक्रियामन्त्र —

आधानमन्त्र एवात्र^१ सर्वत्राहितदातृवाक् । मध्ये यथाक्रमं वाच्यो नान्यो भेदोऽत्र कश्चन ॥१०१॥

चूर्णिः—सज्जातिदातृभागी भव, सद्गृहिदातृभागी भव, मुनीन्द्रदातृभागी भव, सुरेन्द्रदातृभागी भव, परमराज्यदातृभागी भव, आर्हन्त्यपददातृभागी भव, परमनिर्वाणदातृभागी भव, (धृतिक्रियामन्त्र) ।

मोदक्रियामन्त्र —

मन्त्रो मोदक्रियायां च मतोऽयं मुनिसत्तमैः । पूर्वं सज्जातिकल्याणभागी भव पद वदेत् ॥१०२॥

तत सद्गृहिकल्याणभागी भव पद पठेत् । ततो वैवाहकल्याणभागी भव पद मतम् ॥१०३॥

ततो मुनीन्द्रकल्याणभागी भव पद स्मृतम् । पुनः सुरेन्द्रकल्याणभागी भव पदात्पश्च ॥१०४॥

मन्दराभिषेककल्याणभागीति च भवेति च । तस्माच्च यौवराज्यादिकल्याणपदसंयुतम् ॥१०५॥

प्राप्त करनेवाला हो) ये मन्त्र विद्वानोको अनुक्रमसे बोलना चाहिए । अब आगे धृतिमन्त्र कहते हैं सो हे द्विजो, उन्हें तुम प्रीतिपूर्वक सुनो ॥१०७-१००॥

संग्रह—‘अवतारकल्याणभागी भव, मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव, निष्क्रान्तिकल्याणभागी भव, आर्हन्त्यकल्याणभागी भव, परमनिर्वाणकल्याणभागी भव’ ।

धृतिक्रियाके मन्त्र—गर्भाधान क्रियाके मन्त्रोमे सब जगह दातृ शब्द लगा देनेसे धृति क्रियाके मन्त्र हो जाते हैं, विद्वानोको अनुक्रमसे उन्हीका प्रयोग करना चाहिए, आधान क्रियाके मन्त्रोसे इन मन्त्रोमे और कुछ भेद नहीं है । भावार्थ—‘सज्जातिदातृभागी भव’ (सज्जाति-उत्तम जातिको देनेवाला हो), ‘सद्गृहिदातृभागी भव’ (सद्गृहस्थपदका देनेवाला हो), ‘मुनीन्द्र-दातृभागी भव’ (महामुनिपदका देनेवाला हो), ‘सुरेन्द्रदातृभागी भव’ (सुरेन्द्रपदको देनेवाला हो), ‘परमराज्यदातृभागी भव’ (उत्तमराज्य—चक्रवर्तीके पदका देनेवाला हो), आर्हन्त्यदातृ-भागी भव’ (अरहन्त पदका देनेवाला हो) तथा ‘परमनिर्वाणदातृभागी भव’ (उत्कृष्ट निर्वाण पदका देनेवाला हो) धृति क्रियामे इन मन्त्रोका पाठ करना चाहिए ॥१०१॥

संग्रह—‘सज्जातिदातृभागी भव, सद्गृहिदातृभागी भव, मुनीन्द्रदातृभागी भव, सुरेन्द्र-दातृभागी भव, परमराज्यदातृभागी भव, आर्हन्त्यदातृभागी भव, परमनिर्वाणदातृभागी भव’ ।

अब मोदक्रियाके मन्त्र कहते हैं — उत्तम मुनियोने मोदक्रियाके मन्त्र इस प्रकार माने हैं सबसे पहले ‘सज्जातिकल्याणभागी भव’ (सज्जातिके कल्याणको धारण करनेवाला हो) यह पद बोलना चाहिए, फिर सद्गृहिकल्याणभागी भव (उत्तम गृहस्थके कल्याणका धारण करनेवाला हो) यह पद पढ़ना चाहिए, तदनन्तर ‘वैवाहकल्याणभागी भव’ (विवाहके कल्याणको प्राप्त करनेवाला हो) इस पदका उच्चारण करना चाहिए, फिर ‘मुनीन्द्रकल्याणभागी भव’ (महामुनि पदके कल्याणको प्राप्त करनेवाला हो) यह मन्त्र बोलना चाहिए, इसके बाद ‘सुरेन्द्रकल्याणभागी भव’ ॥१०२॥ [इन्द्र पदके कल्याणका उपभोग करनेवाला हो], यह पद कहना चाहिए, फिर ‘मन्दराभिषेककल्याणभागी भव’ [सुमेरु पर्वतपर अभिषेकके कल्याणको प्राप्त हो] यह मन्त्र पढ़ना चाहिए, अनन्तर ‘यौवराज्यकल्याणभागी भव’ [युवराज पदके कल्याणका उपभोग करनेवाला हो] यह पद कहना चाहिए, तत्पश्चात् मन्त्रोके प्रयोग करनेमे विद्वान् लोगोको ‘महाराज्यकल्याणभागी भव’ [महाराज पदके कल्याणका उपभोगता हो] यह

१ मतो ल० । मयो द० । २ धृतिक्रियाम् ।

मागाभयपद पात्र मन्त्रयोगविशारदै । स्थान्महाराज्यकल्याणभागी भव पदं परम् ॥१०६॥

भूय परमराज्याधिकल्याणोपहित^१ मतम् । मागी मवेत्यथाहन्त्यकल्याणेन च योजितम् ॥१०७॥

चूर्णि - सजातिकल्याणभागी भव, सद्गृहिकल्याणभागी भव, वैवाहिकल्याणभागी भव मुनीन्द्रकल्याणभागी भव सुरेन्द्रकल्याणभागी भव, मन्दराभिषेककल्याणभागी भव यौवराज्यकल्याणभागी भव, महाराज्यकल्याणभागी भव परमराज्यकल्याणभागी भव, आहन्त्यकल्याणभागी भव (मोदकिया मन्त्र) ।

प्रियोद्भवमन्त्र -

प्रियोद्भवे च मन्त्रोऽयं सिद्धाचनपुरःसरम् । दिव्यनेमिविजयाय पदात्परमनेमिषाक ॥१०८॥

विजयायत्यथाहन्त्यनेम्यादिविजयाय च । युक्तो मन्त्राक्षरैरेभि स्याहान्त समतो द्विनै ॥१०९॥

चूर्णि - दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा परमनेमिविजयाय स्वाहा, आहन्त्यनेमिविजयाय स्वाहा । (प्रियोद्भवमन्त्र) ।

जन्मसंस्कारमन्त्रोऽयमतेनाभक्तमादित । सिद्धाभिषेकगन्धाम्भुससिक्त शिरसि स्थितम् ॥११०॥

कुलजातिवयोरूपगुणै शीलप्रजाचयै । भाग्याविधवतासौम्यमूर्तित्वै समधिष्ठिता ॥१११॥

सम्यग्दृष्टिस्तत्राभ्येयमतस्त्वमपि^२ पुत्रक । संप्रीतिमाप्नुहि त्रीणि^३ प्राप्य चक्राण्यनुक्रमात् ॥११२॥

इत्यङ्गानि स्पृशेदस्य प्रायः सारूप्ययोगतः^४ । तत्राधायात्मसकल्यं ततः सूक्तमिदं पठेत् ॥११३॥

मन्त्र बोलना चाहिए फिर 'परमराज्यकल्याणभागी भव' (परमराज्यके कल्याणको प्राप्त हो) यह पद पठना चाहिए और उसके बाद 'आहन्त्यकल्याणभागी भव' (अहन्त पदके कल्याणका उपभोग करनेवाला हो) यह मन्त्र बोलना चाहिए ॥१०३-१०७॥

संग्रह- सजातिकल्याणभागी भव, सद्गृहिकल्याणभागी भव वैवाहिकल्याणभागी भव, मुनीन्द्रकल्याणभागी भव, सुरेन्द्रकल्याणभागी भव, मन्दराभिषेककल्याणभागी भव, यौवराज्यकल्याणभागी भव, महाराज्यकल्याणभागी भव, परमराज्यकल्याणभागी भव, आहन्त्यकल्याणभागी भव ।

अब प्रियोद्भव मन्त्र कहते हैं - प्रियोद्भव क्रियाम सिद्ध भगवान्की पूजा करनेके बाद नीचे लिखे मन्त्रोंका पाठ करना चाहिए -

दिव्यनेमिविजयाय, 'परमनेमिविजयाय', और आहन्त्यनेमिविजयाय इन मन्त्राक्षरोंके साथ द्विजोंको अन्तमें स्वाहा शब्दका प्रयोग करना अभीष्ट है अर्थात् 'दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा' (दिव्यनेमिके द्वारा कर्मरूप शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवालेके लिए हृत्वि समपण करता हूँ), परमनेमिविजयाय स्वाहा (परमनेमिके द्वारा विजय प्राप्त करनेवालेके लिए समपण करता हूँ) और आहन्त्यनेमिविजयाय स्वाहा (अहन्त अवस्थारूप नेमिके द्वारा वम गानुओंको जीतनेवाले जिनेन्द्रदेवके लिए समपण करता हूँ) ये तीन मन्त्र बोलना चाहिए ॥१०८-१०९॥

संग्रह- दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा परमनेमिविजयाय स्वाहा, आहन्त्यनेमिविजयाय स्वाहा ।

अब जन्म संस्कारके मन्त्र कहते हैं - प्रथम ही सिद्ध भगवान्के अभिषेकके गन्धोदकसे सिचन रिये हुए बालकको यह मन्त्र पढ़कर गिरपर स्पर्श करना चाहिए और कहना चाहिए कि यह तरी माता कुल जाति, अवस्था, रूप आदि गुणसि सहित है, शीलवती है सन्तानवती है, भाग्यवती है अवैधव्यमे युक्त है, सौम्यशान्तमूर्तिसे सहित है और सम्यग्दृष्टि है इसलिए ह पुत्र इस माताके सम्बन्धमे तू भी अनुक्रमसं दिय चक्र, विजयचक्र और परमचक्र तीना पानाका पावर मत्प्रीतिमा प्राप्त हो ॥११०-११२॥ इस प्रकार आग्नीर्वाह देकर पिता

१ गन्धिमम् । २ कुलजात्यान्विषयायगुणरविष्टितम् । ३ दिव्यचक्रविजयचक्रपरमचक्राणि । ४ समानाभ्युपगमयान् । ५ बालकः । ६ विषयः । ७ निमग्नत्वम् ।

अङ्गादङ्गान्समवमि हृदयादपि जायमे । आत्मा वै पुत्र नामामि म जीव शरटः^१ अतम् ॥११४॥
 श्रीगणेशममृतं^२ पूतं नामावावर्ज्यं^३ युक्तिभिः^४ । घातिजयो भवेत्यस्य^५ हासयेन्नाभिनालकम्^६ ॥११५॥
 श्रीदेव्यो जान^७ ते जान क्रियां कुर्वन्त्विति ब्रुवन् । तत्तनु चूर्णवासेन^८ शनैरुद्धृत्य^९ यन्तत ॥११६॥
 त्वं मन्दराभिपेकार्हो भवेति स्तपयेत्तत । गन्धाम्बुभिश्चिर जीव्या^{१०} इत्यागाम्याश्रतं क्षिपेत् ॥११७॥
 नञ्यात्कर्ममल कृत्स्नमित्यास्येऽस्य^{११} मनामिके । घृतमौषधसंमिद्धमाव^{१२} पेन्मात्रया^{१३} द्विज ॥११८॥
 ततो विश्वेश्वरास्तन्यभागी^{१४} भूया इतीरयन्^{१५} । मातुस्तनमुपामन्य वदनेऽस्य समासजेत्^{१६} ॥११९॥
 प्राग्वर्णितमथानन्दं प्रीतिदानपुर.मरम् । विधाय विधिवत्तस्य जातकर्म समापयेत्^{१७} ॥१२०॥
 जरायुपटल चास्य नाभिनालममायुतम् । शुचौ भूमौ निग्वाताया विक्षिपेन्मन्त्रमापठन् ॥१२१॥
 सम्यग्दृष्टिपदं त्र्योच्य सर्वमानेति चापरम् । वसुधरापद चैव स्वाहान्त द्विल्लाहरेत् ॥१२२॥
 चूर्णि -सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे सर्वमातः सर्वमातः वसुन्धरे वसुन्धरे स्वाहा ।
 मन्त्रेणानेन समन्य भूमौ सोढकमक्षतम् । क्षिप वा गर्भमलं^{१८} न्यस्तपञ्चरत्नतले क्षिपेत् ॥१२३॥

उसके समस्त अंगोंका स्पर्श करे और फिर प्रायः अपने समान होनेसे उसमें अपना सकल्प कर अर्थात् यह मैं ही हूँ ऐसा आरोप कर नीचे लिखे हुए सुभाषित पढ़े ॥११३॥ हे पुत्र, तू मेरे अग अगसे उत्पन्न हुआ है और मेरे हृदयसे भी उत्पन्न हुआ है इसलिए तू पुत्र नामको धारण करनेवाला मेरा आत्मा ही है । तू सैकड़ों वर्षों तक जीवित रह ॥११४॥ तदनन्तर दूध और घीरूपी पवित्र अमृत उसकी नाभिपर डालकर 'घातिजयो भव' (तू घातिया कर्मोंको जीतने-वाला हो) यह मन्त्र पढ़कर युक्तिसे उसकी नाभिका नाल काटना चाहिए ॥११५॥ तत्पश्चात् 'हे जात, श्रीदेव्य ते जातक्रिया कुर्वन्तु' अर्थात् हे पुत्र, श्री, ह्री आदि देवियाँ तेरी जन्मक्रियाका उत्सव करे यह कहते हुए धीरे-धीरे यत्नपूर्वक सुगन्धित चूर्णसे उस बालकके शरीरपर उबटन करे । फिर 'त्व मन्दराभिपेकार्हो भव' अर्थात् तू मेरे पर्वतपर अभिषेक करने योग्य हो यह मन्त्र पढ़कर सुगन्धित जलसे उसे स्नान करावे और फिर 'चिर जीव्या' अर्थात् तू चिरकाल तक जीवित रह इस प्रकार आशीर्वाद देकर उसपर अक्षत डाले ॥११६-११७॥ इसके अनन्तर द्विज, 'नञ्यात् कर्ममल कृत्स्नम्'-अर्थात् तेरे समस्त कर्ममल नष्ट हो जावे यह मन्त्र पढ़कर उसके मुख और नाकमें, औषधि मिलाकर तैयार किया हुआ घी मात्राके अनुसार छोड़े ॥११८॥ तत्पश्चात् 'विश्वेश्वरीस्तन्यभागी भूयाः' अर्थात् तू तीर्थकरकी माताके स्तनका पान करने-वाला हो ऐसा कहता हुआ माताके स्तनको मन्त्रित कर उसे बालकके मुहमें लगा दे ॥११९॥ तदनन्तर जिस प्रकार पहले वर्णन कर चुके हैं उसी प्रकार प्रीतिपूर्वक दान देते हुए उत्सव कर विधिपूर्वक जातकर्म अथवा जन्मकालकी क्रिया समाप्त करनी चाहिए ॥१२०॥ उसके जरायु पटलको नाभिकी नालके साथ-साथ किसी पवित्र जमीनको खोदकर मन्त्र पढ़ते हुए गाड़ देना-चाहिए ॥१२१॥ उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है कि सम्यग्दृष्टि पद, सर्वमाता-पद और वसुन्धरा पदको दो-दो बार कहकर अन्तमें स्वाहा शब्द कहना चाहिए । अर्थात् सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे सर्वमात सर्वमात वसुन्धरे वसुन्धरे स्वाहा (सम्यग्दृष्टि, सर्वकी माता पृथ्वीमें यह समर्पण करता हूँ) इस मन्त्रसे मन्त्रित कर उस भूमिमें जल और अक्षत डालकर पाँच प्रकारके रत्नोंके नीचे गर्भका वह मल रख देना चाहिए और फिर कभी 'त्वत्पुत्रा इव

१ बहुवचनमभिप्रेत्य । २ श्रीगणेशममृतम् । ३ भिक्त्वा । ४ युक्तित ल० । भक्तितः द० ।
 ५ बालस्य । ६ कृत्स्नं कुर्वन् । छिन्द्यादित्यर्थः । ७ पुत्र । ८ जातकर्म । ९ परिमलचूर्णेन । १० जीव ।
 ११ वागे । १२ आवर्जयेद्, क्षिपेद् वा । १३ किञ्चित् परिमाणेन । १४ जिनजननीमन्यमानभागी
 भव । १५ ब्रुवन् । १६ नरोजयेत् । १७ नप्रापयेत् । १८ जरायुपटलम् ।

त्वष्टुना^१ इध मत्पुत्रा भूयासुश्चिरजीविन । इयुदाहृत्य सस्याहं तत्क्षस्य महीतले ॥१२४॥
 क्षारवृक्षोपशायामिरपहय च भूतलम् । स्नाप्या तत्रास्य माताऽसौ सुखोऽगैमित्रितैजर्ल ॥१२५॥
 सम्यग्दृष्टिपद बोध्यविषय द्विरुदीरयत् । पदमासन्नम वेति तद्वद् विश्वेश्वरेत्यपि^३ ॥१२६॥
 तत ऊर्जितपुण्यति जिनमातृपद तथा । स्वाहा^४ सो मन्त्र एष स्यान्मातुः सुस्नानसविधौ ॥१२७॥

चूर्णि—सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नमभ्ये आसन्नमभ्ये विश्वेश्वरे विश्वेश्वरे ऊर्जितपुण्य ऊर्जितपुण्य
 जिनमात जिनमात स्वाहा ।

यथा जिनाम्बिका पुत्रकल्याणायमिषयति । तथेयमपि मत्प-नीत्यान्धयेय विधिं भजन् ॥१२८॥
 नृतायऽहनि चान्तज्ञानदर्शी भवेत्यमुम् । आलोक्यस्समुक्षिप्य निशि ताराङ्कित नम ॥१२९॥
 पुण्याहघोषणापूर्वं कुर्याद् दान च शक्ति । यथायोग्य विद्व्याच्च सवस्याभयबोधणाम् ॥१३०॥
 नातकमविधि सोऽथमाभ्यात पूवसूरिभि । यथायोगमनुष्ठेय सोऽद्यत्वेऽपि द्विजोत्तमै ॥१३१॥
 नामरुमविधाने च मन्त्रोऽयमनुकीर्णत । सिद्धावनविधौ स न मन्त्रा प्रागनुवर्णिता ॥१३२॥
 ततो दिव्याष्टसहस्रनामभागी भवादिकम् । पदत्रितयमुच्चाय मन्त्रोऽत्र परिवर्यताम् ॥१३३॥

चूर्णि,— दिव्याष्टसहस्रनामभागी भव, विजयाष्टसहस्रनामभागी भव परमाष्टसहस्रनामभागी भव ।

मत्पुत्रा चिरजीविनो भूयासु (हे पृथ्वी तेरे पुत्र-कुलपवतोके समान मेरे पुत्र भी चिरजीवी हो) यह कहकर घाय उत्पन्न होनेके योग्य खेतमें जमीनपर वह मल डाल देना चाहिए ॥१२२-१२४॥ तदनन्तर क्षीर वृक्षकी डालियोसे पृथिवीको सुशोभित कर उसपर उस पुत्रकी माताको बिठाकर मन्त्रित किये हुए सुहाते गरम जलसे स्नान कराना चाहिए ॥१२५॥ माताको स्नान करानेका मन्त्र यह है — प्रथम ही सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पदको दो बार कहना चाहिए फिर आसन्नमभ्या विश्वेश्वरी, ऊर्जितपुण्या, और जिनमाता इन पदोंको भी सम्बोधनात् कर दो दो बार बोलना चाहिए और अन्तमें स्वाहा शब्द पढ़ना चाहिए । भावाय — सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नमभ्ये आसन्नमभ्ये विश्वेश्वरि विश्वेश्वरि ऊर्जितपुण्ये ऊर्जितपुण्ये जिनमात जिनमात स्वाहा (हे सम्यग्दृष्टि, हे निकटमव्य, हे सबकी स्वामिनी, हे अत्यन्त पुण्य सचय करनेवाली, जिनमाता तू कल्याण करनेवाली हो) यह मन्त्र पुत्रकी माताको स्नान कराते समय बोलना चाहिए ॥१२६-१२७॥ जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवकी माता, पुत्रके कल्याणोंका देखती है उसी प्रकार यह मेरी पत्नी भी देखे ऐसी श्रद्धासे यह स्नानकी विधि करनी चाहिए ॥ १२८॥ तीसरे दिन रातके समय 'अनन्तज्ञानदर्शी भव (तू अनन्तज्ञानको देखनेवाला हो) यह मन्त्र पढ़कर उस पुत्रको गोनीमें उठाकर ताराआसि सुशोभित आवाश दिखाना चाहिए ॥ १२९ ॥ उसी दिन पुण्याहवाचनके साथ-साथ शक्तिके अनुसार दान करना चाहिए और जितना धन सके उतना सब जीवोंके अभयकी घोषणा करनी चाहिए ॥ १३० ॥ इस प्रकार पूर्वाचार्योंने यह जन्मात्मवकी विधि मानी है — कही है । उत्तम द्विजको आज भी इसका यथा योग्य रीतिम अनुष्ठान करना चाहिए ॥ १३१ ॥

अब आग नामकम करत समय जिन मन्त्राका प्रयोग होता है उन्हें कहत हैं—म विधिमें मिद्ध भगवान्की पूजा करनेके लिए जिन सात पीठिका मन्त्राका प्रयोग होना है उह पहर ही कह चुक हैं । उनक आग न्दिव्याष्टमहमनामभागी भव आनि तीना पन्नाका उच्चारण कर मन्त्र पर्वितिन कर रना चाहिए अथान् न्दिव्याष्टमहमनामभागी भव (एक हजार आठ न्दिव्य नामाना पानेवाला है) विजयाष्टमहमनामभागी भव (विजयम्प एक हजार आठ

श्रेयो विधिस्तु नि.श्रेयः प्रागुक्तो नोच्यते पुनः । वहिर्यानक्रियामन्त्रः ततोऽयमनु गम्यताम् ॥१३४॥

वहिर्यानक्रिया -

तत्रोपनयनिष्क्रान्तिभागी भव पदान्तरम् । सवेद वैवाहनिष्क्रान्तिभागी भव पद तत ॥१३५॥

क्रमान्मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव पद चदेत । ततः सुरेन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव पद स्मृतम् ॥१३६॥

मन्दराभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव पदं ततः । यौवराज्यमहाराज्यपदे भागी भवान्वितं ॥१३७॥

निष्क्रान्तिपदमध्ये स्तो परराज्यपद तथा । आर्हन्त्यराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव शिवापदम् ॥१३८॥

पदंगनिर्य मन्त्रस्तद्विद्विनुजप्यताम् । प्रागुक्तो विधिरन्यस्तु निषद्यामन्त्र उत्तर ॥१३९॥

चृणि - उपनयनिष्क्रान्तिभागी भव, वैवाहनिष्क्रान्तिभागी भव, मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव, सुरेन्द्र-
निष्क्रान्तिभागी भव, मन्दराभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव, यौवराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, महाराज्यनिष्क्रान्ति-
भागी भव, परमराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, आर्हन्त्यनिष्क्रान्तिभागी भव, (वहिर्यानमन्त्र)

निषद्या -

दिव्यसिंहासनपदाद् भागी भव पद भवेत् । एव विजयपरमसिंहासनपदद्वयान् ॥१४०॥

नामोका धारक हो और 'परमाष्टसहस्रनामभागी भव' (अत्यन्त उत्तम एक हजार आठ नामोका पानेवाला हो) ये मन्त्र पढ़ना चाहिए ।

सग्रह- 'दिव्याष्टसहस्रनामभागी भव, विजयाष्टसहस्रनामभागी भव, परमाष्टसहस्रनामभागी भव' ॥१३२-१३३॥ वाकीकी समस्त विधि पहले कही जा चुकी है इसलिए दुबारा नहीं कहते हैं । अब आगे वहिर्यान क्रियाके मन्त्र नीचे लिखे अनुसार जानना चाहिए ॥१३४॥

सबसे पहले 'उपनयनिष्क्रान्तिभागी भव', (तू यज्ञोपवीतके लिए निकलनेवाला हो) यह पद बोलना चाहिए और फिर 'वैवाहनिष्क्रान्तिभागी भव' (विवाहके लिए बाहर निकलने-
वाला हो) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥१३५॥ तदनन्तर अनुक्रमसे 'मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव' (मुनिपदके लिए निकलनेवाला हो) यह मन्त्र कहना चाहिए और उसके बाद 'सुरेन्द्र-
निष्क्रान्तिभागी भव' (सुरेन्द्र पदकी प्राप्तिके लिए निकलनेवाला हो) यह पद बोलना चाहिए ॥१३६॥ तत्पश्चात् 'मन्दरेन्द्राभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव' (सुमेरुपर्वतपर अभिषेकके लिए निकलनेवाला हो) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिए और फिर 'यौवराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव' (युवराज पदके लिए निकलनेवाला हो) यह मन्त्र कहना चाहिए ॥१३७॥ तदनन्तर 'महाराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव' (महाराज पदकी प्राप्तिके लिए निकलनेवाला हो) यह पद बोलना चाहिए और उसके बाद 'परमराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव' (चक्रवर्तीका उत्कृष्ट राज्य पानेके लिए निकलनेवाला हो) यह मन्त्र पढ़ना चाहिए और इसके अनन्तर 'आर्हन्त्यराज्य-
भागी भव' (अरहन्त पदकी प्राप्तिके लिए निकलनेवाला हो) यह मन्त्र कहना चाहिए ॥१३८॥ इस प्रकार मन्त्रोको जानेवाले द्विजोको इन उपर्युक्त पदोके द्वारा मन्त्रोका जाप करना चाहिए । वाकी समस्त विधि पहले कह चुके हैं अब आगे निषद्या मन्त्र कहते हैं ॥१३९॥

सग्रह- 'उपनयनिष्क्रान्तिभागी भव, वैवाहनिष्क्रान्तिभागी भव, मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव, सुरेन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव, मन्दराभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव, यौवराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, महाराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, परमराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव, आर्हन्त्यनिष्क्रान्तिभागी भव ।

निषद्यामन्त्र - 'दिव्यसिंहासनभागी भव' (दिव्य सिंहासनका भोक्ता हो - इन्द्रके

चौलकर्म —

चौलकर्मण्यथो मन्त्र स्याच्चोपनयनादिकम् । मुण्डभागी भवान्त च पदमादावनुस्मृतम् ॥१४८॥

ततो निर्ग्रन्थमुण्डादिभागी भवपद परम् । ततो निष्क्रान्तिमुण्डादिभागी भव पद परम् ॥१४८॥

स्यात्परमनिस्तारककेशभागी भवेत्यतः । परमेन्द्रपदानिश्च केशभागी भवध्वनिः ॥१४९॥

परमार्हन्त्यराज्यादिकेशभागीति त्र्यम्बकम् । भवेत्यन्तपदोपेत मन्त्रोऽस्मिन्स्याच्छिखापदम् ॥१५०॥

शिखासंतेन मन्त्रेण स्यापयेद्विधिवद् द्विज । ततो मन्त्रोऽयमाज्ञातो लिपिमख्यानसंग्रहे ॥१५१॥

चृणि — उपनयनमुण्डभागी भव, निर्ग्रन्थमुण्डभागी भव, परमनिस्तारककेशभागी भव, परमेन्द्र-
केशभागी भव परमराज्यकेशभागी भव, आर्हन्त्यराज्यकेशभागी भव । (इति चौलक्रियामन्त्र)

शब्दपारभागी भव अर्थपारभागी भव । पद शब्दार्थसम्बन्धपारभागी भवेत्यपि ॥१५२॥

चृणि — शब्दपारभागी (भागी) भव, अर्थपारभागी (भागी) भव, शब्दार्थपारभागी (भागी)
भव, (लिपिमख्यानमन्त्र)

उपनीतिक्रियामन्त्र स्मरन्तीम द्विजोत्तमा । परमनिस्तारकादिलिङ्गभागी भवेत्यतः ॥१५३॥

की वर्षवृद्धि करनेवाला हो) और 'आर्हन्त्यराज्यवर्षवर्धनभागी भव' (अरहन्त पदवीरूपी राज्य-
के वर्षका बढ़ानेवाला हो) ॥१४८-१४९॥

संग्रह — 'उपनयनजन्मवर्षवर्धनभागी भव, वैवाहनिष्ठवर्षवर्धनभागी भव, मुनीन्द्रजन्म-
वर्षवर्धनभागी भव, सुरेन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव, मन्दराभिषेकवर्षवर्धनभागी भव, यौवराज्य-
वर्षवर्धनभागी भव, महाराज्यवर्षवर्धनभागी भव, परमराज्यवर्षवर्धनभागी भव, आर्हन्त्य-
राज्यवर्षवर्धनभागी भव' ।

अब चौलक्रियाके मन्त्र कहते हैं — जिसके आदिमें उपनयन शब्द है और अन्तमें 'मुण्ड-
भागी भव' शब्द है ऐसा पहला मन्त्र जानना चाहिए अर्थात् 'उपनयनमुण्डभागी भव' (उपनयन
क्रियामें मुण्डन करनेवाला हो) यह चौलक्रियाका पहला मन्त्र है ॥१४७॥ फिर 'निर्ग्रन्थ-
मुण्डभागी भव' (निर्ग्रन्थ दीक्षा लेते समय मुण्डन करनेवाला हो) यह दूसरा मन्त्र है और उसके
बाद 'निष्क्रान्तिमुण्डभागी भव' (मुनि अवस्थामें केशलोच करनेवाला हो) यह तीसरा मन्त्र
है ॥१४८॥ तदनन्तर 'परमनिस्तारककेशभागी भव' (ससारसे पार उतारनेवाले आचार्यके
केशोंको प्राप्त हो) यह चौथा मन्त्र है और उसके पश्चात् 'परमेन्द्रकेशभागी भव' (इन्द्र पदके
केशोंको धारण करनेवाला हो) यह पाँचवाँ मन्त्र बोलना चाहिए ॥१४९॥ इसके बाद
'परमराज्यकेशभागी भव' (चक्रवर्तिके केशोंको प्राप्त हो) यह छठा मन्त्र है और 'आर्हन्त्य-
राज्यकेशभागी भव' (अरहन्त अवस्थाके केशोंको धारण करनेवाला हो) यह सातवाँ मन्त्र
बोलना चाहिए । द्विजोंको इन मन्त्रोंसे विधिपूर्वक चोटी रखवाना चाहिए । अब आगे लिपि-
संख्यानके मन्त्र कहते हैं ॥१५०-१५१॥

संग्रह—'उपनयनमुण्डभागी भव, निर्ग्रन्थमुण्डभागी भव, निष्क्रान्तिमुण्डभागी भव,
परमनिस्तारककेशभागी भव, परमेन्द्रकेशभागी भव, परमराज्यकेशभागी भव, आर्हन्त्यराज्य-
केशभागी भव' ।

लिपिमख्यानके मन्त्र—'शब्दपारभागी भव' (शब्दोंका पारगामी हो), 'अर्थपारगामी
भागी भव' (सम्पूर्ण अर्थका जाननेवाला हो) और 'शब्दार्थसम्बन्धपारभागी भव' (शब्द
तथा अर्थ दोनोंके सम्बन्धका पारगामी हो) ये पद लिपिसंख्यानके समय कहने चाहिए ॥१५२॥

संग्रह—'शब्दपारगामी भव, अर्थपारगामी भव, शब्दार्थपारगामी भव' ।

उत्तम द्विज नीचे लिखे हुए मन्त्रोंको उपनीति क्रियाके मन्त्ररूपसे स्मरण करते हैं —

चूर्णि - दिव्यसिंहासनभागी भव, विजयसिंहासनभागी भव, परमसिंहासनभागी भव (इति निष्यामन्त्र) ।

अन्नप्राशनक्रिया-

प्राशनऽपि तथा मन्त्र पदस्त्रिमिरुदाहरत् । तानि स्युर्दिव्यविजयाक्षीणामृतपदानि च ॥१४१॥

भागी भव पदान्त्त युक्तेनानुगतानि नु । परमिरथ मन्त्र प्रयाज्य प्राशनं शुभं ॥१४२॥

चूर्णि - दिव्यामृतभागी भव, विजयामृतभागी भव, अक्षीणामृतभागी भव ।

व्युष्टि -

व्युष्टिप्रियाधित मन्त्रमिता वक्ष्य यथाश्रुतम् । तत्रापनयन जन्मवपवधनवाग्युतम् ॥१४३॥

भागी भव प, नेयमान् शपपदाष्टक । पराहनिष्ठवपवधन मुनिवपवधन च ॥१४४॥

सुरेन्द्रजन्मना मदराभिषेकपदं च । यौवराज्यमहाराज्यवपवधनमप्यनुक्रमान् ॥१४५॥

परमाराज्यवपवधनसयुतम् । भागी भव पद याज्य तना मन्त्राऽप्यनुज्ञवत् ॥१४६॥

चूर्णि - उपनयनजन्मवपवधनभागी भव, ववाहनिष्ठवपवधनभागी भव मुनीन्द्रजन्मवपवधनभागी भव सुरेन्द्रजन्मवपवधनभागी भव मदराभिषेकवपवधनभागी भव, यौवराज्यवपवधनभागी भव महाराज्यवपवधनभागी भव परमराज्यवपवधनभागी भव आहृत्यराज्यवपवधनभागी भव, (व्युष्टिक्रियामन्त्र)

आसनपर वठनेवाला हो) विजयसिंहासनभागी भव (चक्रवर्ती विजयोल्लसिन सिंहासनपर वठनेवाला हो) और परमसिंहासनभागी भव (तीर्थवरके उत्कृष्ट सिंहासनपर वठनेवाला हो) ये तीन मन्त्र कहना चाहिए ॥१४०॥

संग्रह- दिव्यसिंहासनभागी भव, विजयसिंहासनभागी भव, परमसिंहासनभागी भव ।

अब अन्नप्राशन क्रियाके मन्त्र कहते हैं - अन्नप्राशन क्रियाके समय तीन पदोंके द्वारा मन्त्र कहने चाहिए और वे पद दिव्यामृत, विजयामृत और अक्षीणामृत इनके अन्तम भागी भव ये योग्य पद लगाकर बाने चाहिए । विद्वानोंको अन्नप्राशन क्रियाम इन पदोंके द्वारा मन्त्रका प्रयोग करना चाहिए । भावाथ - इस क्रियामें निम्नलिखित मन्त्र पढ़ने चाहिए- दिव्यामृतभागी भव (दिव्य अमृतका भाग करनेवाला हो), विजयामृतभागी भव (विजयरूप अमृतका उपभोक्ता हो) और अक्षीणामृतभागी भव (अक्षीण अमृतका भोक्ता हो) ॥१४१-१४२॥

संग्रह - दिव्यामृतभागी भव, विजयामृतभागी भव, अक्षीणामृतभागी भव ।

अब यहाँसे आगे शास्त्रानुसार व्युष्टि क्रियाके मन्त्र कहते हैं - सबसे पहले 'उपनयन के आगे जन्मवपवधन पद लगाकर भागी भव पद लगाना चाहिए और फिर अनुक्रमसे ववाह निष्ठ, मुनीन्द्रजन्म सुरेन्द्रजन्म मदराभिषेक, यौवराज्य, महाराज्य परमराज्य और आहृत्य राज्य इन शप आठ पदोंके साथ वपवधन पद लगाकर भागी भव यह पद लगाना चाहिए । ऐसा करनेसे व्युष्टिक्रियाके सब मन्त्र बन जावेंगे । भावाथ - व्युष्टिक्रियाम निम्नलिखित मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए - उपनयनजन्मवपवधनभागी भव (यज्ञोपवीतरूप जन्मके वपका बढ़ानेवाला हो) ववाहनिष्ठवपवधनभागी भव (विवाह क्रियाके वपका वधक हो), मुनीन्द्रजन्मवपवधनभागी (मुनि पद धारण करनेवाला वपकी वृद्धिसे युक्त हो), सुरेन्द्र जन्मवपवधनभागी भव (इन्द्र जन्मके वपका बढ़ानेवाला हो) मदराभिषेकवपवधनभागी भव (सुमेरु पर्वतपर होनेवाले अभिषेककी वप वृद्धि करनेवाला हो) यौवराज्यवपवधन भागी भव (युवराज पदकी वपवृद्धि करनेवाला हो) महाराज्यवपवधनभागी भव (महाराज पदकी वर्षवृद्धिका उपभोक्ता हो) परमराज्यवपवधनभागी भव (चक्रवर्ती उत्कृष्ट राज्य

चौलकर्म -

चौलकर्णयथो मन्त्रः स्याच्चोपनयनादिकम् । मुण्डभागी भवान्तं च पदमादावनुस्मृतम् ॥१४७॥

ततो निर्ग्रन्थमुण्डादिभागी भवपद परम् । ततो निष्क्रान्तिमुण्डादिभागी भव पद परम् ॥१४८॥

स्यात्परमनिस्तारककेशभागी भवेत्यतः । परमेन्द्रपदादिश्च केशभागी भवध्वनिः ॥१४९॥

परमार्हन्त्यराज्यादिकेशभागीति वाग्द्वयम् । भवेत्यन्तपदोपेत मन्त्रोऽस्मिन्स्याच्छिखापदम् ॥१५०॥

शिवामेतेन मन्त्रेण स्थापयेद्विधिवद् द्विजः । ततो मन्त्रोऽयमाज्ञातां लिपिगख्यानसंग्रहं ॥१५१॥

चूर्णि - उपनयनमुण्डभागी भव, निर्ग्रन्थमुण्डभागी भव, परमनिस्तारककेशभागी भव, परमेन्द्र-
केशभागी भव परमराज्यकेशभागी भव, आर्हन्त्यराज्यकेशभागी भव । (इति चौलक्रियासमन्त्र)

शब्दपारभागी भव अर्थपारभागी भव । पद शब्दार्थसम्बन्धपारभागी भवेत्यपि ॥१५२॥

चूर्णि - शब्दपारगामी (भागी) भव, अर्थपारगामी (भागी) भव, शब्दार्थपारगामी (भागी)
भव, (लिपिगख्यानसमन्त्र)

उपनीतिक्रियासमन्त्रं स्मरन्तीम द्विजोत्तमाः । परमनिस्तारकादिलिङ्गभागी भवेत्यतः ॥१५३॥

की वर्षवृद्धि करनेवाला हो) और 'आर्हन्त्यराज्यवर्षवर्धनभागी भव' (अरहन्त पदवीरूपी राज्य-
के वर्षका बढ़ानेवाला हो) ॥१४३-१४६॥

संग्रह - 'उपनयनजन्मवर्षवर्धनभागी भव, वैवाहनिष्ठवर्षवर्धनभागी भव, मुनीन्द्रजन्म-
वर्षवर्धनभागी भव, मुरेन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव, मन्दराभिषेकवर्षवर्धनभागी भव, यौत्रराज्य-
वर्षवर्धनभागी भव, महाराज्यवर्षवर्धनभागी भव, परमराज्यवर्षवर्धनभागी भव, आर्हन्त्य-
राज्यवर्षवर्धनभागी भव' ।

अब चौलक्रियाके मन्त्र कहते हैं - जिसके आदिमे उपनयन शब्द है और अन्तमे 'मुण्ड-
भागी भव' शब्द है ऐसा पहला मन्त्र जानना चाहिए अर्थात् 'उपनयनमुण्डभागी भव' (उपनयन
क्रियामे मुण्डन करनेवाला हो) यह चौलक्रियाका पहला मन्त्र है ॥१४७॥ फिर 'निर्ग्रन्थ-
मुण्डभागी भव' (निर्ग्रन्थ दीक्षा लेते समय मुण्डन करनेवाला हो) यह दूसरा मन्त्र है और उसके
बाद 'निष्क्रान्तिमुण्डभागी भव' (मुनि अवस्थामे केशलोच करनेवाला हो) यह तीसरा मन्त्र
है ॥१४८॥ तदनन्तर 'परमनिस्तारककेशभागी भव' (ससारसे पार उतारनेवाले आचार्यके
केशको प्राप्त हो) यह चौथा मन्त्र है और उसके पश्चात् 'परमेन्द्रकेशभागी भव' (इन्द्र पदके
केशको धारण करनेवाला हो) यह पाँचवाँ मन्त्र बोलना चाहिए ॥१४९॥ इसके बाद
'परमराज्यकेशभागी भव' (चक्रवर्तिके केशको प्राप्त हो) यह छठा मन्त्र है और 'आर्हन्त्य-
राज्यकेशभागी भव' (अरहन्त अवस्थाके केशको धारण करनेवाला हो) यह सातवाँ मन्त्र
बोलना चाहिए । द्विजोको इन मन्त्रोंसे विधिपूर्वक चोटी रखवाना चाहिए । अब आगे लिपि-
संख्यानके मन्त्र कहते हैं ॥१५०-१५१॥

संग्रह - 'उपनयनमुण्डभागी भव, निर्ग्रन्थमुण्डभागी भव, निष्क्रान्तिमुण्डभागी भव,
परमनिस्तारककेशभागी भव, परमेन्द्रकेशभागी भव, परमराज्यकेशभागी भव, आर्हन्त्यराज्य-
केशभागी भव' ।

लिपिगख्यानके मन्त्र - 'शब्दपारभागी भव' (शब्दोका पारगामी हो), 'अर्थपारगामी
भागी भव' (सम्पूर्ण अर्थका जाननेवाला हो) और 'शब्दार्थसम्बन्धपारभागी भव' (शब्द
तथा अर्थ दोनोंके सम्बन्धका पारगामी हो) ये पद लिपिसंख्यानके समय कहने चाहिए ॥१५२॥

संग्रह - 'शब्दपारगामी भव, अर्थपारगामी भव, शब्दार्थपारगामी भव' ।

उत्तम द्विज नीचे लिखे हुए मन्त्रोंको उपनीति क्रियाके मन्त्ररूपसे स्मरण करते हैं -

युक्त परमर्षिलिङ्गेन भागामयपद भवेत् । परमत्रादिलिङ्गादिभागी भवपद परम् ॥१५४॥

एवं परमराज्यादि परमाह-त्यादि च क्रमात् । युक्त परमनिर्वाणपदं च निग्यापदम् ॥१५५॥

धूर्णि-परमनिस्तारकलिङ्गभागी भव, परमर्षिलिङ्गभागी भव, परमत्रालिङ्गभागी भव, परमराज्यलिङ्गभागी भव परमाह-यलिङ्गभागी भव परमनिर्वाणलिङ्गभागी भव (इत्युपनानिक्रियामत्र)

मन्त्रगानेन शिष्यस्य कृत्या सस्कारमादत्त । निर्विकारण यन्त्रेण कुर्यादन् मयाममम् ॥१५६॥

कापानाच्छादत चैनम-सवासन कारयत् । भाजाय-प्रमत कुर्यादनुषङ्गप्रिमन्त्रम् ॥१५७॥

सूत्रं गणधरद-ध धृतचिह्नं निवाजयत् । मन्त्रपूतमता यन्त्रापघाता स्यादस्या द्विः ॥१५८॥

जात्यव ब्राह्मण पूर्वमिदानी धृतसकृत् । निर्वाता द्विः इयथ रुद्धिमास्तिन्नुतं गुणै ॥१५९॥

दद्या-अणुव्रतायस्म गुरुमाक्षि यथाविधि । गुण-रहितानुगमैर्न सस्कुर्याद् धृतजार्क ॥१६०॥

ततोऽतिवाल्गुविद्या-सिंयोगादस्य निर्दितात् । द्वापासकाध्ययन नामापि चरणोचितम् ॥१६१॥

ततोऽस्य कृतमस्कारः सिन्नाचनपुर-परम् । यथाविधानमाचार्यपूजा कुर्यादत्त परम् ॥१६२॥

तस्मिन्दिनं प्रविष्टस्य भिक्षार्थं गतिवद्भक्षुः । योऽथलाम स दय स्यादुपाध्यायाय सादरम् ॥१६३॥

सबसे पहल परमनिस्तारकलिङ्गभागी भव (तू उत्कृष्ट आचार्यके चिह्नोका धारण करनेवाला हो) फिर 'परमर्षिलिङ्गभागी भव (परमश्रुतिपियोके चिह्नको धारण करनेवाला हो) और परमेन्द्रालिङ्गभागी भव (परम इन्द्रपत्नके चिह्नोंको धारण करनेवाला हो) य मन्त्र बोलना चाहिए । इसी प्रकार अनुक्रमस परम राज्य, परमाहन्त्य आर परम निर्वाण पदका 'लिङ्गभागी भव पदसे युक्त कर परमराज्यलिङ्गभागी भव (परमराज्यके चिह्नोंको धारण करनेवाला हो) परमाह-त्यलिङ्गभागी भव (उत्कृष्ट अरहन्तदेवके चिह्नोंको धारण करनेवाला हो) आर परमनिर्वाणलिङ्गभागी भव' (परमनिर्वाणके चिह्नोका धारक हो) ये मन्त्र बना लेना चाहिए ॥१५३-१५५॥

सग्रह- परमनिस्तारकलिङ्गभागी भव परमर्षिलिङ्गभागी भव, परमेन्द्रालिङ्गभागी भव, परमराज्यलिङ्गभागी भव परमाह-त्यलिङ्गभागी भव, परमनिर्वाणलिङ्गभागी भव ।

इन मन्त्रोंसे प्रथम ही शिष्यका संस्कार कर उसे विकाररहित वस्त्रके द्वारा वस्त्रसहित करना चाहिए अर्थात् साधारण वस्त्र पहनाना चाहिए ॥१५६॥ इसे वस्त्रके भीतर लगेटी देनी चाहिए और उसपर तीन लडकी बनी हुई मूजकी रस्सी बाँधनी चाहिए ॥१५७॥ तदनन्तर गणधरदेवके द्वारा कहा हुआ व्रतोका चिह्नस्वरूप और मन्त्रोंसे पवित्र किया हुआ सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत धारण कराना चाहिए । यज्ञोपवीत धारण करनेपर वह बालक द्विज कहलाने लगता है ॥१५८॥ पहल तो वह केवल जन्मसे ही ब्राह्मण था और अब व्रतोसे संस्कृत होकर दूसरी बार उत्पन्न हुआ है इसलिए दो बार उत्पन्न होनेरूप गुणोंसे वह द्विज ऐसी रुद्धिको प्राप्त होता है ॥१५९॥ उस समय उस पुत्रके लिए विधिके अनुसार गुरुकी साक्षीपूर्वक अणुव्रत देना चाहिए और गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत रूपशीलसे सहित व्रतोंके समूहसे उसका संस्कार करना चाहिए । भावाध - उसे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार व्रत और शील देकर उसके संस्कार अच्छे बनाना चाहिए ॥१६०॥ तदनन्तर गुरु उसे उपासकाध्ययन पढ़ाकर और चारित्रिके योग्य उसका नाम रखकर अतिवाल विद्या आदिका नियोगरूपसे उपदेश दे ॥१६१॥ इसके बाद जिसका संस्कार किया जा चुका है ऐसा वह पुत्र सिद्ध भगवान् की पूजा कर फिर विधिके अनुसार अपने आचार्यकी पूजा करे ॥१६२॥ उस दिन उस पुत्रको

श्रेयो विधिस्तु प्राक्प्रोक्तः तमनून समाचरेत् । यावत्सोऽधीतविद्यः सन् सजेन् सग्रहचारिताम् ॥१६४॥
 अथातोऽस्य प्रवक्ष्यामि व्रतचर्यामनुक्रमात् । स्याद्यत्रोपासकाध्यायः समासेनानु ५ हत ॥१६५॥
 शिरोलिङ्गमुरोलिङ्गं लिङ्गकट्यूरुमश्रितम् । लिङ्गमस्योपनीतस्य प्रागनिर्णोत चतुर्विधम् ॥१६६॥
 तत्तु स्यादसिवृत्त्या वा मप्या कृप्या वणिज्यया । यथास्वं वर्तमानानां^१ सदृष्टीनां द्विजन्मनाम् ॥१६७॥
 कुतश्चित् कारणाद् यस्य कुलं संप्राप्तदूषणम् । सोऽपि राजादिममत्या गोभयेत स्वयदा कुलम् ॥१६८॥
 तदास्योपनयार्हत्वं पुत्रपौत्रादिसन्तती । न निषिद्धं हि दीक्षाहं कुले चेदस्य पूर्वजा ॥१६९॥
 अदीक्षाहं कुले जाता विद्यागिलपोपजीविनः । एतेषामुपनीत्यादिमंस्कारो नाभिसमतः ॥१७०॥
 तेषां स्यादुचितं लिङ्गं स्वयोग्यव्रतधारिणाम् । एकगटकधारित्वं मन्यासमरणावधि ॥१७१॥
 स्यान्निरामिपभोजित्वं^२ कुलस्त्रीसेवनव्रतम् । अनारम्भवधोत्सर्गो^३ ह्यभक्ष्यापेयवर्जनम् ॥१७२॥
 इति शुद्धतरां वृत्तिं व्रतपतामुपेयिवान् । यो द्विजस्तस्य सपूर्णो व्रतचर्याविधिः स्मृतः ॥१७३॥
 दशाधिकारास्तस्योक्ताः सत्रेणोपासिकेन हि । तान्यथाक्रममुद्देशमात्रेणानुप्रचक्ष्महे ॥१७४॥

अपनी जाति या कुटुम्बके लोगोके घरमे प्रवेश कर भिक्षा माँगना चाहिए और उस भिक्षामे जो कुछ अर्थका लाभ हो उसे आदर सहित उपाध्यायके लिए सौंप देना चाहिए ॥१६३॥ वाकीकी सब विधि पहले कही जा चुकी है । उसे पूर्णरूपसे करना चाहिए । इसके सिवाय वह जबतक विद्या पढता रहे तबतक उसे ब्रह्मचर्यव्रत पालन करना चाहिए ॥१६४॥

अथानन्तर जिसमे उपासकाध्ययनका सक्षेपसे सग्रह किया है ऐसी इसकी व्रतचर्या-को अनुक्रमसे कहता हूँ ॥१६५॥ जिसका यज्ञोपवीत हो चुका है ऐसे बालकके लिए शिरका चिह्न (मुण्डन), वक्ष स्थलका चिह्न—यज्ञोपवीत, कमरका चिह्न — मूँजकी रस्सी और जाँघका चिह्न — सफेद धोती ये चार प्रकारके चिह्न धारण करना चाहिए । उनका निर्णय पहले हो चुका है ॥१६६॥ जो लोग अपनी योग्यताके अनुसार तलवार आदि शस्त्रोके द्वारा, स्याही अर्थात् लेखनकलाके द्वारा, खेती और व्यापारके द्वारा अपनी आजीविका करते हैं ऐसे सदृष्टि द्विजोको वह यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए ॥१६७॥ जिसके कुलमे किसी कारणसे दोष लग गया हो ऐसा पुरुष भी जब राजा आदिकी सम्मतिसे अपने कुलको शुद्ध कर लेता है तब यदि उसके पूर्वज दीक्षा धारण करनेके योग्य कुलमे उत्पन्न हुए हो तो उसके पुत्र पौत्र आदि सन्ततिके लिए यज्ञोपवीत धारण करनेकी योग्यताका कही निषेध नहीं है । भावार्थ—यदि दीक्षा धारण करने योग्य कुलमे किसी कारणसे दोष लग जावे तो राजा आदिकी सम्मतिसे उसकी शुद्धि हो सकती है और उस कुलके पुरुषको यज्ञोपवीत भी दिया जा सकता है । न केवल उसी पुरुषको किन्तु उसके पुत्र पौत्र आदि सन्तानके लिए भी यज्ञोपवीत देनेका कही निषेध नहीं है ॥१६८—१६९॥ जो दीक्षाके अयोग्य कुलमे उत्पन्न हुए हैं तथा नाचना गाना आदि विद्या और शिल्पसे अपनी आजीविका करते हैं ऐसे पुरुषोको यज्ञोपवीत आदि सस्कारोकी आज्ञा नहीं है ॥१७०॥ किन्तु ऐसे लोग यदि अपनी योग्यतानुसार व्रत धारण करें तो उनके योग्य यह चिह्न हो सकता है कि वे मन्यासमरण पर्यन्त एक धोती पहने ॥१७१॥ यज्ञोपवीत धारण करनेवाले पुरुषोको मास-रहित भोजन करना चाहिए, अपनी विवाहिता कुलस्त्रीका सेवन करना चाहिए, अनारम्भी हिमाका त्याग करना चाहिए और अभक्ष्य तथा अपेय पदार्थका परित्याग करना चाहिए ॥१७२॥ इस प्रकार जो द्विज व्रतोसे पवित्र हुई अत्यन्त शुद्ध वृत्तिको धारण करता है उसके व्रतचर्याकी पूर्ण विधि समझनी चाहिए ॥१७३॥ अब उन द्विजोंके लिए उपामकाध्ययन सूत्रमे जो दश

तत्रातिशयविद्यायाः कुलावधिरनन्तरम् । वर्णोत्तमपात्रं च तथा सृष्ट्यधिकारिणा ॥१७५॥

व्यवहारशिताऽथास्यादवध्यत्वमदण्ड्यता । मानाहता प्रजासम्बन्धात्तर धन्यनुग्रहान् ॥१७६॥

दक्षाधिकारिवस्तुनि स्युर्लपासरुमग्रह । तानीमानि यथादेश मक्षेपण विवृण्वन् ॥१७७॥

वाल्म्यध्वमुति यथा विद्याशिक्षोद्योगाद् द्विजन्मन । प्रोक्तातिशयविरचिति या क्रिया निजममता ॥१७८॥

तस्यामसत्या मृगात्मा हयादेयानभिज्ञक । मिथ्याधुतिं प्रपद्यत द्विजमायै प्रनारित ॥१७९॥

वाल्म्य एव ततोऽव्यस्यद् द्विजमौपायिकों धुतिम् । स तथा प्राप्तमस्कार स्वरपातारका भवन् ॥१८०॥

कुलाधि कुलाचाररक्षण स्यात् द्विजमन । तस्मिन्नसम्यग्मा नष्टक्रियोऽयकुलतो मजन् ॥१८१॥

वर्णोत्तमत्व वर्णेषु सम्यग्वाधिसम्यग्मस्य वै । तनाथ इत्याध्यतामति स्वरपाद्वारणभ्रम ॥१८२॥

वर्णोत्तमत्व यद्यस्य न स्यान्न स्यात्प्रकृष्टता । अमकृष्टश्च नात्मान शोधयन्न परानपि ॥१८३॥

ततोऽय शुद्धिकाम सन् सवेतान्ध कुलिङ्गिनम् । कुमह्यवा ततस्तज्जान द्वोपान् प्राप्नोत्यमन्यम् ॥१८४॥

प्रदानादस्वमस्यष्ट पात्रं च गुणगारवान् । गुणाधिकोऽस्ति लोकस्मिन् पूज्य स्यालोकपूजित ॥१८५॥

ततो गुणकृता स्वस्मिन् पात्रतो द्रव्यद्विज । तदभावे विमर्शवाद् द्वियतस्य धन नृपे ॥१८६॥

अधिकार कहे ह उन्हे यथाक्रमसे नामवे अनुसार कहता हू ॥१७४॥ उन दश अधिकाराम पहला अतिबाल विद्या दूसरा कुलावधि, तीसरा वर्णोत्तमत्व, चौथा पात्रत्व, पाँचवा सृष्ट्यधि कारिता छठा व्यवहारेशिता, सातवा अवध्यत्व, आठवा अदण्ड्यता नौवा मानाहता और दशवा प्रजासम्बन्धात्तर है । उपासकसग्रहम अनुक्रमसे ये दश अधिकारवस्तुएँ बतलायी गयी ह । उही अधिकार वस्तुओंका उनके नामके अनुसार यहाँ संक्षेपसे कुछ विवरण करता हूँ । ॥१७५ १७७॥ द्विजोको जो बाल्य अवस्थासे ही लेकर विद्या सिखलानेका उद्योग किया जाता है उसे अतिबालविद्या कहते है यह विद्या द्विजाको अत्यन्त इष्ट है ॥१७८॥ इस अति बाल विद्याके अभावमे द्विज भूख रह जाता है उसे हेय उपादेयका ज्ञान नहीं हो पाता और वह अपनेको झूठमूठ द्विज माननेवाले पुरुषोंके द्वारा ठगाया जाकर मिथ्या शास्त्रके अध्ययनमें लग जाता है ॥१७९॥ इसलिए द्विजोको उचित है कि वे बाल्य अवस्थामें ही श्रावकाचारके शास्त्रोका अभ्यास कर क्योंकि उपासकाचारके शास्त्रोंके द्वारा जिसे अच्छे सस्कार प्राप्त हो जाते है वह निज और परको तारनेवाला हो जाता है ॥१८०॥ अपने कुलके आचारकी रक्षा करना द्विजोंकी कुलावधि क्रिया कहलाती है । कुलके आचारकी रक्षा न होनेपर पुरुषकी समस्त क्रियाएँ नष्ट हो जाती ह और वह अय कुलको प्राप्त हो जाता है ॥१८१॥ समस्त वर्णोंम श्रष्ट होना ही इसकी वर्णोत्तम क्रिया है इस वर्णोत्तम क्रियासे ही यह प्रशसाको प्राप्त होता है और निज तथा परका उद्धार करनेमें समर्थ होता है ॥१८२॥ यदि इसके वर्णोत्तम क्रिया नहीं है अर्थात् इसका वर्ण उत्तम नहीं है तो इसके उत्कृष्टता नहीं हो सकती और जो उत्कृष्ट नहीं है वह न तो अपने-आपको शुद्ध कर सकता है और न दूसरेको ही शुद्ध कर सकता है ॥१८३॥ जो स्वय उत्कृष्ट नहीं है ऐसे द्विजको अपनी शुद्धिकी इच्छासे अन्य कुलिङ्गियो अथवा कुवह्यकी सेवा करनी पडती है और ऐसी दशामे वह नि सन्देह उन लोगोंमें उत्पन्न हुए दोषोंको प्राप्त होता है । भावाथ—सदा ऐसे ही काम करना चाहिए जिससे वर्णकी उत्तमताम बाधा न आवे ॥१८४॥ गुणोंका गौरव होनेसे दान देनेके योग्य पात्रता भी इही द्विजोमे होती है क्योंकि जो गुणोंसे अधिक होता है वह ससारमें सब लोगोंके द्वारा पूजित होनेवाले लोगोंके द्वारा भी पूजा जाता है ॥१८५॥ इसलिए द्विजोंको चाहिए कि वे अपने-आपमें गुणों

१ यो विद्याशिक्षोद्योगो द्विजन्मन द ल अ स० इ० । २ द्विजन्मन्द द । ३ वज्र द०, ल० ।

४ कुत्सितब्रह्माणम् । ५ कुलिङ्गकृत्रह्यसेवनात् ।

रक्ष्यः सृष्ट्यधिकारोऽपि द्विजैरुत्तमसृष्टिभिः । असदृष्टिकृतां सृष्टिं परिहृत्य विदूरतः ॥१८७॥
 अन्यथा सृष्टिवादेन दुर्दृष्टेन^१ कुदृष्टयः । लोकं नृपांश्च समोह्य नयन्त्युत्पथगामिताम् ॥१८८॥
 सृष्ट्यन्तरमतो दूरमपास्य नयतत्त्वचित् । अनादिक्षत्रियैः सृष्ट्यां धर्मसृष्टि प्रभावयेत् ॥१८९॥
 तीर्थकृद्भिरियं सृष्टा धर्मसृष्टि सनातनी । तां सञ्चितानृपानेव^२ सृष्टिहंतून् प्रकाशयेत् ॥१९०॥
 अन्यथाऽन्यकृतां सृष्टिं प्रपन्नाः स्युर्नृपोत्तमा । ततो नैश्वर्यमपा स्यात्तत्रस्थाश्च स्युरार्हता ॥१९१॥
 व्यवहारेशितां प्राहु प्रायश्चित्तादिकर्मणि । स्वतन्त्रतां द्विजस्यास्य श्रितस्य परमां श्रुतिम् ॥१९२॥
 तदभावे स्वमन्यांश्च न शोधयितुमर्हति । अशुद्धः परतः शुद्धिर्मर्माप्सन्न्यक्कृतो^३ भवेत् ॥१९३॥
 स्यादवध्याधिकारेऽपि स्थिरात्मा द्विजमत्तम । ब्राह्मणो हि गुणोत्कर्षान्नान्यतो^४ वधमर्हति ॥१९४॥
 सर्वः प्राणी न हन्तव्यो ब्राह्मणस्तु विशेषतः । गुणोत्कर्षापकर्षाभ्यां वधेऽपि द्विजात्मता^५ मता ॥१९५॥
 तस्मादवध्यतामेष पोषयेद् धार्मिके जने । धर्मस्य तद्धि माहात्म्यं तत्स्थो यन्नाभिभूयते ॥१९६॥
 तदभावे च वध्यत्वमयमृच्छति सर्वतः । एवं च सति धर्मस्य नश्येत् प्रामाण्यमर्हताम् ॥१९७॥

के द्वारा की हुई पात्रताको दृढ करे अर्थात् गुणी पात्र बने क्योंकि पात्रताके अभावमे मान्यता नहीं रहती और मान्यताके न होनेसे राजा लोग भी धन हरण कर लेते हैं ॥१८६॥ जिनकी सृष्टि उत्तम है ऐसे द्विजोको मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा की हुई सृष्टिको दूरसे ही छोड़कर अपनी सृष्टिके अधिकारोकी रक्षा करनी चाहिए ॥१८७॥ अन्यथा मिथ्यादृष्टि लोग अपने दूषित सृष्टिवादसे लोगोको और राजाओको मोहित कर कुमार्गगामी बना देगे ॥१८८॥ इसलिए नय और तत्त्वोको जाननेवाले द्विजको चाहिए कि मिथ्यादृष्टियोंकी अन्यसृष्टिको दूरसे ही छोड़कर अनादिक्षत्रियोंके द्वारा रची हुई धर्मसृष्टिकी ही प्रभावना करे ॥१८९॥ तथा इस धर्मसृष्टिका आश्रय लेनेवाले राजाओसे ऐसा कहे कि तीर्थकरोके द्वारा रची हुई यह सृष्टि अनादिकालसे चली आयी है । भावार्थ — यह धर्मसृष्टि तीर्थकरोके द्वारा रची हुई है और अनादि कालसे चली आ रही है इसलिए आप भी इसकी रक्षा कीजिए ॥१९०॥ यदि द्विज राजाओसे ऐसा नहीं कहेंगे तो वे अन्य लोगोके द्वारा की हुई सृष्टिको मानने लगेंगे जिससे उनका ऐश्वर्य नहीं रह सकेगा तथा अरहन्तके मतको माननेवाले लोग भी उसी धर्मको मानने लगेंगे ॥१९१॥ परमागमका आश्रय लेनेवाले द्विजोको जो प्रायश्चित्त आदि कार्योंमे स्वतन्त्रता है उसे ही व्यवहारेशिता कहते हैं ॥१९२॥ व्यवहारेशिताके अभावमे द्विज न अपने आपको शुद्ध कर सकेगा और न दूसरेको ही शुद्ध कर सकेगा तथा स्वयं अशुद्ध होनेपर यदि दूसरेसे अपनी शुद्धि करना चाहे तो वह कभी कृती नहीं हो सकेगा ॥१९३॥ जिसका अन्तःकरण स्थिर है ऐसा उत्तम द्विज अवध्याधिकारमे भी स्थित रहता है अर्थात् अवध्य है क्योंकि ब्राह्मण गुणोकी अधिकताके कारण किसी दूसरेके द्वारा वध करने योग्य नहीं होता ॥१९४॥ सब प्राणियोंको नहीं मारना चाहिए और विशेषकर ब्राह्मणोको नहीं मारना चाहिए । इस प्रकार गुणोकी अधिकता और हीनतासे हिसामे भी दो भेद माने गये हैं ॥१९५॥ इसलिए यह धार्मिक जनोमे अपनी अवध्यताको पुष्ट करे । यथार्थमे वह धर्मका ही माहात्म्य है कि जो इस धर्ममे स्थित रहकर किसीसे तिरस्कृत नहीं हो पाता ॥१९६॥ यदि वह अपने अवध्यताको पुष्ट न करेगा तो सब लोगोसे वध्य हो जावेगा अर्थात् सब लोग उसे मारने लगेंगे और ऐसा होनेपर अर्हन्तदेवके धर्मकी

१ अममीक्षितेन कुदृष्टान्तेन वा । २ ता धर्ममृष्टि प्रकाशयेदित्यर्थः । ३ आत्मानमाश्रिता । अथवा पूर्व ता नश्चिता बोधयेत् तद्वचन्यर्थम् । ४ -नृकृतो ल० । -नृकृती द० । ५ नृपादे सकाशात् । ६ द्विष्टपता (दृष्टनिर्दिष्टनिपादना) ।

ततः सवप्रयत्नेन रक्ष्यो धमः सनातन । स हि सरक्षितो रक्षां कराति सधराचर ॥१९८॥
 स्यादण्ड्य धमप्यधमस्य धमे स्थिरात्मन । धमस्थो हि जनोऽयस्य दण्डप्रस्थापनं प्रभु ॥१९९॥
 'तद्धमस्थी' यमाज्ञाय^१ भावयन् धमदाशमि^२ । अधमस्थपु दण्डस्य प्रणता धार्मिको नृप ॥२००॥
 परिहार्यं यथा देवगुरद्रव्यं हितार्थिभिः । यद्वाह्यं च तथाभूतं न दण्डाहस्ता द्विज ॥२०१॥
 युस्त्यानया गुणाधिन्यमान्यारोपयन् यथा । अदण्ड्यत्वमत्र स्वात्मानं स्थापयदण्डधारिणाम् ॥२०२॥
 अधिकारं ह्यसत्यस्मिन् स्यादण्ड्योऽयं यथतर । ततश्च निस्स्यता प्राप्नो नेहामुत्र च नन्दति ॥२०३॥
 मान्यत्वमस्य सधत्ते मानाहस्य सुमावितम् । गुणाधिको हि मान्यः स्याद् वयं पूज्यश्च सत्तमैः ॥२०४॥
 असत्यस्मिन्नमान्यत्वमस्य स्यात् समतैर्नृणैः । ततश्च स्थानमानादिलामान्याभावात्^३ पदच्युति ॥२०५॥
 तस्मादयं 'गुणैर्यथादात्मन्यारोप्यतां द्विज'^४ । यस्य चानवृत्तादिमपत्तिः सोऽप्यता नृप^५ ॥२०६॥
 स्यात् प्रजातरसवधे^६ स्वोन्नतरपरिच्युति । याऽस्य सौका प्रजासवधान्तरं नामतो गुण ॥२०७॥
 यथा कालायसाविद्ध^७ स्वर्णं याति विधनताम् । न तथाऽस्यायसत्रन्धे स्वगुणोत्पत्तिश्च ॥२०८॥

प्रामाणिकता नष्ट हो जावेगी ॥१९७॥ इसलिए सब प्रकारके प्रयत्नासे सनातनधमकी रक्षा करनी चाहिए । क्योंकि अच्छी तरह रक्षा किया हुआ धम ही चराचर पदार्थोंसे भरे हुए सनातन उसकी रक्षा कर सकता है ॥१९८॥ इसी प्रकार धमम जिसका अन्तःकरण स्थिर है ऐ इस द्विजको अपने अदण्ड्यत्वका भी अधिकार है क्योंकि धममे स्थिर रहनेवाला मनुष्य दूसरेके लिए दण्ड देनेम समर्थ हो सकता है ॥१९९॥ इसलिए धर्मदर्शी लोगोंने द्वारा दिखलाया हुई धर्मात्मा जनोंकी आम्नायका विचार करता हुआ ही धार्मिक राजा अधर्मों जनोंको दण्ड देता है ॥२००॥ जिस प्रकार अपना हित चाहनेवाले पुरोहोंके द्वारा देवद्रव्य और गुरुद्रव्य त्याग करने योग्य है उसी प्रकार ब्राह्मणका घन भी त्याग करने योग्य है । इसलिए ही द्विज दण्ड देनेके योग्य नहीं है ॥२०१॥ इस युक्तिसे अपनेम अधिक गुणोंका आरोप करता हुआ वह जितेन्द्रिय दण्ड देनेवाले राजा आदिके समक्ष अपने आपको अदण्ड्य अर्थात् दण्ड न योग्य पक्षमें ही स्थापित करता है । भावार्थ—वह अपने आपमें इतने अधिक गुण प्राप्त कर लेता है कि जिससे उसे कोई दण्ड नहीं दे सकते ॥२०२॥ इस अधिकारके अभावमें अन्य पुरुषोंसे समान ब्राह्मण भी दण्डित किया जाने लगेगा जिससे वह दरिद्र हो जावेगा और दरिद्र होने न तो इस लोकमें सुखी हो सकेगा और न परलोकमें ही ॥२०३॥ यह ब्राह्मण जो अच्छे तरह सन्मानके योग्य होता है वही इसका मान्यत्व अधिकार है सो ठीक ही है क्योंकि जो गुणों अधिक होता है अर्थात् जिसम अधिक गुण पाये जाते हैं वही पुरुषोंके द्वारा सन्मान करने योग्य वन्दना करने योग्य और पूजा करने योग्य होता है ॥२०४॥ इस अधिकारके न होनेसे उत्तम पुरुष इसका सन्मान नहीं करेंगे और उसके स्थान मान लाभ आदिका अभाव होनेके कारण वह अपने पदसे च्युत हो जावेगा । इसलिए द्विजको चाहिए कि वह यह गुण (मान्यत्व गुण) बड़े यत्नसे अपने आपमें आरोपित करे क्योंकि ज्ञान चरित्र आदि सम्पदाएँ ही उसका य. है इसलिए राजाओंको उसकी पूजा करनी चाहिए ॥२०५-२०६॥ प्रजान्तर अर्थात् अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ सम्बन्ध होनेपर भी जो अपनी उन्नतिसे च्युत नहीं होना है वह इसका प्रजासम्बन्धान्तर नामका गुण है ॥२०७॥ जिस प्रकार काले लोहके साथ मिला हुआ सुव

१ सत्कारणम् । २ धमसबधिनम् । ३ आगमम् । ४ धर्माचार्यमतात् दण्डं करोतीति तात्पर्यम् । ५ धार्मिकम् अ. प. इ. स. । ६ अमान्यत्वात् । ७ पूर्वस्थितस्य स्थानमानादिलामन्याभावात् । ८ गुणो द. ९ द्विज ल. ११ सोऽहता न त द. ११ मवधे सति । १२ अयोमुक्तम् ।

किन्तु प्रजान्तर स्वेन सवद्वं स्वगुणानयम् । प्रापयत्यचिरादेव लोहधानुं यथा रसः ॥२०६॥

उतो महानय धर्मप्रभावेद्योतको गुणः । येनायं स्वगुणैरन्यानान्मम्यान्क्रतुमर्हति ॥२१०॥

असत्यस्मिन् गुणेऽन्यस्मात् प्राप्नुयात् स्वगुणच्युतिम् । सत्येवगुणवत्तास्य निष्कृष्येत द्विजन्मन ॥२११॥

अतोऽतिबालविद्यादीन्नियोगान् दशधोदितान् । यथार्हमात्मसात्कुर्वन् द्विजः स्याल्लोकममनः ॥२१२॥

गुणेष्वेव विघेपोऽन्यो यो वाच्यो बहुवितरः । स उपासकसिद्धान्तादधिगम्य प्रपञ्चतः ॥२१३॥

क्रियामन्त्रानुपङ्गेण व्रतचर्याक्रियाविधौ । दशाधिकारा व्याख्याताः सद्भूतैराहता द्विजैः ॥२१४॥

क्रियामन्त्रास्त्विह ज्ञेया ये पूर्वमनुवर्णिताः । सामान्यविषयाः सप्त पीठिकामन्त्ररूढयः ॥२१५॥

ते हि साधारणा सर्वक्रियामु विनियोगिनः । तत औत्सर्गिकानेतान् मन्त्रान् मन्त्रविदो विदुः ॥२१६॥

विघेपविषया मन्त्राः क्रियासूक्तामु दर्शिताः । इत प्रभृति चाभ्यूह्यास्ते यथान्नायमग्रजैः ॥२१७॥

मन्त्रानिमान् यथायोगं यः क्रियासु नियोजयेत् । स लोके समति याति युक्ताचारो द्विजोत्तम ॥२१८॥

क्रियामन्त्रविहीनास्तु प्रयोक्तृणा न सिद्ध्ये । यथा मुकृतमनाहा सेनाध्यक्षा विनायका ॥२१९॥

विवर्णताको प्राप्त हो जाता है उस प्रकार अन्य पुरुषोंके साथ सम्बन्ध होनेपर इस ब्राह्मणके अपने गुणोंके उत्कर्षमें कुछ बाधा नहीं आती है । भावार्थ—लोहेके सम्बन्धसे मुवर्णमें तो खराबी आ जाती है परन्तु उत्तम द्विजमें अन्य लोगोंके सम्बन्धसे खराबी नहीं आती ॥२०८॥ किन्तु जिस प्रकार रसायन अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाले लोहेको गीघ्र ही अपने गुण प्राप्त करा देता है उसी प्रकार यह ब्राह्मण भी अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाले पुरुषोंको गीघ्र ही अपने गुण प्राप्त करा देता है ॥२०९॥ इसलिए कहना चाहिए कि यह प्रजासम्बन्धान्तर गुण, धर्मकी प्रभावनाको बढ़ानेवाला सबसे बड़ा गुण है क्योंकि इसीके द्वारा यह द्विज अपने गुणोंसे अन्य लोगोंको अपने आधीन कर सकता है ॥२१०॥ इस गुणके न रहनेपर ब्राह्मण अन्य लोगोंके सम्बन्धसे अपने गुणोंकी हानि कर सकता है और ऐसा होनेपर इसकी गुणवत्ता ही नष्ट हो जावेगी ॥२११॥ इसलिए जो अतिबालविद्या आदि दश प्रकारके नियोग निरूपण किये हैं उन्हें यथायोग्य रीतिसे स्वीकार करनेवाला द्विज ही सब लोगोंको मान्य हो सकता है ॥२१२॥ इन गुणोंमें अन्य विघेप गुण बहुत विस्तारके साथ विवेचन करनेके योग्य हैं उन्हें उपासकाध्ययन-शास्त्रसे विस्तारपूर्वक समझ लेना चाहिए ॥२१३॥ इस प्रकार व्रतचर्या क्रियाकी विधिका वर्णन करते समय उस क्रियाके योग्य मन्त्रोंके प्रसंगसे उत्तम आचरणवाले द्विजोंके द्वारा माननीय दश अधिकारोंका निरूपण किया ॥२१४॥ इस प्रकरणमें जिनका वर्णन पहले कर चुके हैं उन्हें क्रियामन्त्र जानना चाहिए और जो सात पीठिकामन्त्र इस नामसे प्रसिद्ध हैं उन्हें सामान्यविषयक समझना चाहिए अर्थात् वे मन्त्र सभी क्रियाओंमें काम आते हैं ॥२१५॥ वे साधारण मन्त्र सभी क्रियाओंमें काम आते हैं इसलिए मन्त्रोंके जाननेवाले विद्वान् उन्हें औत्सर्गिक अर्थात् सामान्य मन्त्र कहते हैं ॥२१६॥ इनके सिवाय जो विघेप मन्त्र हैं वे ऊपर कही हुई क्रियाओंमें दिखला दिये गये हैं । अब व्रतचर्यासे आगेके जो मन्त्र हैं वे द्विजोंको अपनी आम्नाय (शास्त्र परम्परा) के अनुसार समझ लेना चाहिए ॥२१७॥ जो इन मन्त्रोंको क्रियाओंमें यथायोग्य रूपमें काममें लाता है वह योग्य आचरण करनेवाला उत्तम द्विज लोकमें सन्मानको प्राप्त होता है ॥२१८॥ जिस प्रकार अस्त्र-गस्त्र धारण कर नैयार हुए मुख्य-मुख्य योद्धा

१ प्रजान्तरनवन्धेन । २ द्विज । ३ मन्त्रव्येत । नृपेदिन्यर्थ । ४ अधिकारान् । ५ क्रियाणां मन्त्राः क्रियायुक्तान् । ६ पूर्वमनुवर्णितो योगन्तेन । ७ पूर्वोक्तव्रतचर्याक्रियाविधाने । ८ साधारणान् । ९ यथायुक्तिम् । 'यथायुक्तिम्' इत्यभिधानान् । १० नृविहितकवचा । १० मन्त्रमिरहिता ।

ततो विधिमसु सम्यगवगम्य वृतागम^१ । विधानन प्रधानस्या क्रियामत्रपुरस्कृता ॥२१०॥

वसन्ततिलकाधृतम्

इत्थं स धमविनया भरताधिराज

धमक्रियासु^२ कृतधानूपलङ्गमाक्षि ।

तान् सुव्रतान् द्विजवरान् विनिबध्य सम्यक्

धमप्रिय समसृजन् द्विजलोकमगम् ॥२११॥

मालिना

इति भरतनरत्रात् प्राप्तसंकारयागा

^३व्रतपरिचयधारुदारवृत्ता श्रुताभ्या^४ ।

जिनवृषममतानु^५व्रज्यया पूजमाना

जगति बहुमतास्य प्राक्षणा रथातिमीषु ॥२१२॥

शादूलविमोडितम्,

वृत्तस्थान^६थ तान् विधाय समवानिश्वाकुलूडामणि^७

जन वरमनि सुस्थितान् द्विजवरान् समानयन् प्रत्यहम् ।

स्व मन वृत्तिन मुदा^८ परिगता^९ स्वां सृष्टिमुच्चै^{१०} कृता

पश्यन् क सुकृता वृत्ताथपदवीं नात्मानमारोपयत् ॥२१३॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपटिलक्षणमहापुराणसंग्रहे

द्विजोत्पत्तौ क्रियामत्रानुवर्णने नाम चत्वारिंशत्तम पर्व ॥४०॥

■

सेनापतिके बिना कुछ भी नहीं कर सकते उसी प्रकार मन्त्रोंसे रहित क्रियाएँ भी प्रयोग करने वाले पुरुषोंकी कुछ भी सिद्धि नहीं कर सकती ॥२११॥ इसलिए शास्त्रोंका अभ्यास करनेवाले द्विजोंको यह सब विधि अच्छी तरह जानकर मन्त्रोच्चारणके साथ साथ सब क्रियाएँ विधि पूर्वक करनी चाहिए ॥२२०॥ इस प्रकार जिसने धमके द्वारा विजय प्राप्त की है, जो धार्मिक क्रियाओंमें निपुण है और जिसे धम प्रिय है ऐसे भरतक्षेत्रके अधिपति महाराज भरतने राजा लोगोंकी साक्षीपूर्वक अच्छे-अच्छे व्रत धारण करनेवाले उन उत्तम द्विजोंको अच्छी शिक्षा देकर ब्राह्मणवर्णकी सृष्टि की अर्थात् ब्राह्मणवर्णकी स्थापना की ॥२२१॥ इस प्रकार महाराज भरतसे जिन्हें सत्कारका योग प्राप्त हुआ है, व्रतोंके परिचयसे जिनका धारित्र सुन्दर और उदार हो गया है जो शास्त्रोंके अर्थोंको जाननेवाले हैं और श्री वृषभ जिनेन्द्रके मतानुसार धारण की हुई दोक्षासे जो पूजित हो रहे हैं ऐसे वे ब्राह्मण ससारमें बहुत ही प्रसिद्धिको प्राप्त हुए और खूब ही उनका आदर सम्मान किया गया ॥२२२॥ तदनन्तर इक्ष्वाकुकुलचूडामणि महाराज भरत जैनमार्गमें अच्छी तरह स्थित रहनेवाले उन ब्राह्मणोंकी सदाचारमें स्थिर कर प्रतिदिन उनका सम्मान करते हुए अपने आपको धन्य मानने लगे सो ठीक ही है क्योंकि आनन्दसे युक्त तथा उत्कृष्टताको प्राप्त हुई अपनी सृष्टिको देखता हुआ ऐसा कौन पुण्यवान् पुरुष है जो अपने आपको कृतकृत्य न माने ॥२२३॥

इस प्रकार आपनामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्य प्रणीत त्रिपटिलक्षण महापुराणसंग्रहके

भाषानुवाच द्विजोंकी उत्पत्तिमें क्रियामन्त्रोंका वर्णन करनेवाला

यह बालासर्वा पत्र समाप्त हुआ ।

एकचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ चक्रधर. काले व्यतिक्रान्ते कियत्यपि । स्वप्नान्यग्रामयत्^१ कांश्चिदेकदाऽद्भुतदर्शनान् ॥१॥
तत्स्वप्नदर्शनात् किंचिदुत्त्रस्त इव चेतसा । प्रबुद्धः सहसा तेषां फलानीति व्यतर्कयन् ॥२॥
असत्फला इमे स्वप्ना. प्रायेण प्रतिभान्ति^२ माम् । मन्ये दूरफलांश्चैतान् पुराक्लृपे^३ फलप्रदान् ॥३॥
कुतश्चिद् भगवत्यद्य^४ प्रतपत्यादिमर्त्तरि । पजानां कथमेवैवविधोपप्लवम्भवः ॥४॥
ततः^५ कृतयुगस्यास्य^६ व्यतिक्रान्तौ कदाचन । फलमेते प्रदास्यन्ति नूनमेन.प्रकर्षत^७ ॥५॥
युगान्तविप्लवोदरार्कस्त एतेऽनिष्टशसिनः । स्वप्ना. प्रजाप्रजापालसाधारणफलोदयाः ॥६॥
यद्वच्चन्द्रार्कविम्बोत्थविक्रियाजनितं फलम् । जगत्साधारणं तद्वत् सदसच्चास्मदीक्षितम्^८ ॥७॥
इतीदमनुमानं न. स्थूलार्थानुप्रचिन्तनम् । सूक्ष्मतत्त्वप्रतीतिस्तु प्रत्यक्षज्ञानगोचरा^९ ॥८॥
केवलार्कादृते नान्य. सशयध्वान्तभेदकृत् । को हि नाम तमो^{१०} नैशं हन्यादन्यत्र भास्करात् ॥९॥
तत्त्वादर्शे^{११} स्थिते देवे को नामास्मन्मतिभ्रमः । सत्यादर्शे^{१२} करामर्शात् कं पश्येन्मुखसौष्टवम् ॥१०॥
तदत्र भगवद्वक्त्रमङ्गलादर्शदर्शनात् । युक्ता नस्तत्त्वनिर्णीतिः^{१३} स्वप्नानां शान्तिकर्म च ॥११॥
अपि चास्मदुपज्ञे^{१४} यद् द्विजलोकस्य सर्जनम् । गत्वा तदपि विज्ञाप्य भगवत्पादसनिधौ ॥१२॥

अथानन्तर—कितना ही काल बीत जानेपर एक दिन चक्रवर्ती भरतने अद्भुत फल दिखानेवाले कुछ स्वप्न देखे ॥ १ ॥ उन स्वप्नोके देखनेसे जिन्हे चित्तमे कुछ खेद-सा उत्पन्न हुआ है ऐसे वे भरत अचानक जाग पड़े और उन स्वप्नोके फलका इस प्रकार विचार करने लगे ॥ २ ॥ कि ये स्वप्न मुझे प्राय वुरे फल देनेवाले जान पड़ते हैं तथा साथमे यह भी जान पड़ता है कि ये स्वप्न कुछ दूर आगेके पचम कालमे फल देनेवाले होंगे ॥३॥ क्योंकि इस समय भगवान् वृषभदेवके प्रकाशमान रहते हुए प्रजाको इस प्रकारका उपद्रव होना कैसे सम्भव हो सकता है ? ॥४॥ इसलिए कदाचित् इस कृतयुग (चतुर्थकाल) के व्यतीत हो जानेपर जब पापकी अधिकता होने लगेगी तब ये स्वप्न अपना फल देगे ॥५॥ युगके अन्तमे विप्लव फैलाना ही जिनका फल है ऐसे ये स्वप्न अनिष्टको सूचित करनेवाले हैं और राजा तथा प्रजा दोनोंको समान फल देनेवाले हैं ॥६॥ जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्यके विम्बसे उत्पन्न होनेवाली विक्रियासे प्रकट हुआ फल जगतके जीवोको समानरूपसे उठाने पड़ते हैं उसी प्रकार मेरे द्वारा देखे हुए स्वप्नोके फल भी समस्त जीवोको सामान्यरूपसे उठाने पड़ेंगे ॥७॥ इस प्रकार हमारा यह अनुमान केवल स्थूल पदार्थका चिन्तन करनेवाला है, सूक्ष्म तत्त्वकी प्रतीति प्रत्यक्ष ज्ञानसे ही हो सकती है ॥८॥ केवलज्ञानरूपी सूर्यको छोड़कर और कोई पदार्थ सशयरूपी अन्धकार को भेदन करनेवाला नहीं है सो ठीक ही है क्योंकि सूर्यको छोड़कर ऐसा कौन है जो रात्रिका अन्धकार नष्ट कर सके ॥९॥ तत्त्वोका वास्तविक स्वरूप दिखलानेवाले भगवान् वृषभदेवके रहते हुए मुझे बुद्धिका भ्रम क्यों होना चाहिए, भला दर्पणके रहते हुए ऐसा कौन पुरुष है जो हाथके स्पर्शसे मुखकी सुन्दरता देखे ? ॥१०-११॥ इसलिए इस विषयमे भगवान्के मुखरूपी मंगल

१ दर्शन । २ मम प्रकाशन्ते । ३ पञ्चाद्भाविकाले । पञ्चमकाले इत्यर्थः । ४ प्रकाशमाने मति । ५ तस्मात् कारणात् । ६ चतुर्थकालस्य । ७ पाप । ८ युगस्य चतुर्थकालस्यान्ते विप्लव एव उदरक उत्तरफल येषां ते । ९ नयेक्षितम् । १० केवलज्ञानविषया । ११ निशामवन्धि । १२ दर्पणे विद्यमाने सति । १३ तत् कारणात् । १४ स्वप्ननिर्णय । १५ नदा प्रयमोपक्रान्तम् ।

द्रष्टव्या गुरवो नित्यं प्रष्टव्याश्च हिताहितम् । महज्यया च यष्टव्या^१ शिष्टानामिष्टमीदृशम् ॥१३॥
 इत्यात्मगतमालोच्य शयनोत्सगात् पराद्वयत । प्रातस्तर्गं समुत्थाय कृतप्रभातिकप्रिय ॥१४॥
 ततः क्षणमिव स्थित्वा महास्थाने नृपैवृत । चन्दनाभक्त्य गन्तुमुद्यताऽभूत् विश्रापति ॥१५॥
 ब्रूत परिमितैरेव मौलियद्वैरनुत्थितैः । प्रतस्थे चन्दनाहतार्विभूत्या परयाम्बित ॥१६॥
 ततः क्षेपीय^२ पद्मासौ तथा सैवैः परिष्कृत । सम्राट् प्राप तमुद्देशं यत्रास्त स्म गगद्गुरु ॥१७॥
 दूरादव जिनास्थानभूमिं पश्यन्निधीश्वर । प्रणनाम चलन्मौलिघटिताञ्जलिकुन्मल ॥१८॥
 स तां प्रदक्षिणीकृत्य बहिर्भागे सदोऽवनिम् । प्रविवेश विश्रामाशं क्रात्रा कक्षां पृथग्विधा^३ ॥१९॥
 मानस्तम्भमहाचैत्यद्रुमसिद्धाथपादपान् । प्रेक्षमाणा न्यतायाय स्तूपोश्चाचित्पूजितान् ॥२०॥
 चतुष्टयीं घनश्रेणीं ध्वजान् हर्म्यावलीमपि । तत्र तत्रेक्षमाणोऽर्मा तां तां कक्षामलङ्घयत् ॥२१॥
 प्रतिकक्ष सुरस्त्रीणां गीतेनृत्तैश्च हारिभिः । रम्यमानमनावृत्तिस्तत्रास्थासात् परा वृत्ति ॥२२॥
 ततः प्राविशदुत्तुङ्गगोपुरद्वारवत्सना । गणैरभ्युपितां भूमिं श्रीमण्डपपरिष्कृताम् ॥२३॥
 त्रिमलस्य पोम्स्य प्रथमा मललामत । सोऽधिरुह्य परीधाय^४ धमचक्राणि पूजयन् ॥२४॥

दण्डको देखकर हो मुझे स्वप्नोंके यथाय रहस्यका निणय करना उचित है और वही खोटे स्वप्नोंका शांतिकम करना भी उचित है ॥ १२ ॥ इसके सिवाय मने जो ब्राह्मण लोगोंकी नवीन सृष्टि की है उसे भी भगवान्‌के चरणोंके समीप जाकर निवेदन करना चाहिए ॥ १३ ॥ फिर अच्छे पुरुषोंका यह कतव्य भी है कि वे प्रतिदिन गुरुओंके दशन करें, उनसे अपना हित अहित पूछा करें और बड़े वैभवसे उनकी पूजा किया करें ॥१४॥ इस प्रकार मनम विचारकर महाराज भरतने बड़े सबेरे बहुमूल्य शम्पासे उठकर प्रातः कालकी समस्त क्रियाएँ की और फिर थोड़ी देर तक सभामें बैठकर अनेक राजाओंके साथ भगवान्‌की वन्दना की तथा भक्तिके अर्थ जानेके लिए उद्यम किया ॥ १५ ॥ जो साथ ही साथ उठकर खड़े हुए कुछ परिमित मुकुटबद्ध राजाओंसे घिरे हुए ह और उत्कृष्ट विभूतिसे सहित हैं ऐसे महाराज भरतने वन्दनाके लिए प्रस्थान किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर सेना सहित सम्राट भरत शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये जहाँ जगद्गुरु भगवान् विराजमान थे ॥ १७ ॥ दूरसे ही भगवान्‌के समवसरणकी भूमिको देखते हुए निधियोंके स्वामी भरतने नञ्जीभूत मस्तकपर कमलकी बौड़ीके समान जोड़े हुए दोनों हाथ रखकर नमस्कार किया ॥ १८ ॥ उन महाराजने पहले उस समवसरण भूमिके बाहरी भागकी प्रदक्षिणा दी और फिर अनेक प्रकारकी कक्षाओंका उल्लंघन कर भीतर प्रवेश किया ॥ १९ ॥ मानस्तम्भ, महाचैत्यवृक्ष, सिद्धाथवृक्ष और पूजाकी सामग्रीसे पूजित स्तूपोंको देखते हुए उन सबको उल्लंघन करते गये ॥ २० ॥ अपने अपने निश्चित स्थानोंपर चारों प्रकारकी वनकी पक्तियों, ध्वजामों और हर्म्यावलीको देखते हुए उन्होंने उन कक्षाओंका उल्लंघन किया ॥२१॥ समवसरणकी प्रत्येक कक्षामें होनेवाले देवागताओंके मनोहर गीत और नृत्योंसे जिनके चित्तकी वृत्ति अनुरक्त हो रही है ऐसे महाराज भरतको बहुत ही सतोष हो रहा था ॥२२॥ तदनन्तर बहुत ऊँचे गोपुर दरवाजोंके मार्गसे उन्होंने जहाँ गणधरदेव विराजमान थे और जो श्रीमण्डपसे सुशोभित हो रही थी ऐसी सभाभूमिमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ वहाँपर तीन कटनीवाले पीठकी प्रथम कटनीपर चढ़कर धमचक्रकी पूजा करते हुए प्रदक्षिणा दी ॥ २४ ॥ तदनन्तर चक्रवर्ती दूसरी कटनीपर महाध्वजाओंकी पूजा कर तीनों जगत्‌की लक्ष्मीको तिरस्कृत करनेवाली गंध

१ यजनीया । २ क्षणपयन्ताम् । ३ सहोत्थित । ४ अतिशयेन क्षिप्रम् । ५ प्रदेशम् । ६ सभाभूमिम् ।
 ७ नानाप्रकारा । ८ -पापिवान् न० म० । ९ प्रदक्षिणा चक्रे ।

द्रष्टव्या गुरवा नित्यं प्रष्टव्याश्च हिताहितम् । महज्जया च यष्टव्या^१ शिष्टानामिष्टमीष्टम् ॥१३॥
 इत्यात्मगतमालोच्य शय्योत्सगात् पराद्वयत । प्रातस्तर्गं समुत्थाय वृत्तप्राभातिकक्रिय ॥१४॥
 वत^२ क्षणमिव स्थित्वा महास्थाने भूपैवृतः । घट्टनामनय गन्तुमुद्यताऽभूद् विनापति ॥१५॥
 वृत परिमितरथ मौलिबद्धैरनुस्थितै । प्रतस्थे घट्टनादृताविभूत्या परयाचितः ॥१६॥
 ततः क्षेपीय^३ पवासौ गत्वा सैर्यं परिचृत । सम्राट् प्राप तमुद्देशं यत्रास्त स्म जगद्गुरु ॥१७॥
 दूरादव जिनास्थानभूमिं पश्यन्निभीश्वर । प्रणनाम चलन्मौलिधन्विताञ्जलिकुन्मल ॥१८॥
 स ता प्रदक्षिणीकृत्य बहिर्भागं सदाऽवनिम् । प्रविवेश विशामाश आन्तरा कथा पृथग्विधा^४ ॥१९॥
 मानस्तम्भमहाचैत्यद्रुमसिद्धाथपादपान् । प्रेक्षमाणो व्यतायाय स्तूपोश्चाचितपूजितान् ॥२०॥
 चतुर्थीं धनश्रेणीं ध्वजान् हर्म्यावलीमपि । तत्र तत्रेभ्यमाणोऽसौ तां कथामलङ्घयत् ॥२१॥
 प्रतिकक्ष सुरक्षीणो गीतैरनुसैश्च हारिभि । रज्यमानमनावृत्तिस्तत्रास्यामात् परा धृति ॥२२॥
 ततः प्राविक्षदुत्तुङ्गगोपुरद्वारथत्मना । गणैरभ्युपिता भूमिं धामण्डपपरिचृताम् ॥२३॥
 त्रिमलस्य पीठस्य प्रथमां मसलामत । साऽधिरुह्य परीक्षाय^५ धमचक्राणि पूजयन् ॥२४॥

दपणको देखकर हो मुझ स्वप्नावे यथाथ रहस्यका निणय करना उचित है और वही खोटे स्वप्नोका शांतिकम करना भी उचित है ॥ १२ ॥ इसवे सिवाय मने जो ब्राह्मण लोगकी नवीन सृष्टि की है उसे भी भगवान्‌के चरणोंके समीप जाकर निवेदन करना चाहिए ॥ १३ ॥ फिर अच्छ पुस्त्योका यह कत य भी है कि वे प्रतिदिन गुरुआके दशन कर, उनसे अपना हित अहित पूछा करें और बड़े वैभवसे उनकी पूजा बिया करें ॥ १४ ॥ इस प्रकार मनम विचारकर महाराज भरतने बड़े सबेरे बहुमूल्य शय्यासे उठकर प्रात कालकी समस्त क्रियाएँ की और फिर थोड़ी देर तक सभामें बैठकर अनेक राजाओंके साथ भगवान्‌की वन्दना की तथा भक्तिके अय जानैके लिए उद्यम किया ॥ १५ ॥ जो साथ ही साथ उठकर खड़े हुए कुछ परिमित मुकुटबद्ध राजा ओंसे घिरे हुए ह और उत्कृष्ट विभूतिसे सहित ह ऐसे महाराज भरतने वन्दनाके लिए प्रस्थान किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर सेना सहित सम्राट भरत शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये जहाँ जगद्गुरु भगवान् विराजमान थे ॥ १७ ॥ दूरसे ही भगवान्‌के समवसरणकी भूमिको देखते हुए निधियोके स्वामी भरतने नम्रोभूत मस्तकपर कमलकी बोड़ीके समान जोड़े हुए दोनों हाथ रखकर नमस्कार किया ॥ १८ ॥ उन महाराजने पहल उस समवसरण भूमिके बाहरी भागकी प्रदक्षिणा दी और फिर अनेक प्रकारकी कक्षाओंका उल्लघन कर भीतर प्रवेश किया ॥ १९ ॥ मानस्तम्भ, महाचैत्यवृक्ष, सिद्धाथवृक्ष और पूजाकी सामग्रीसे पूजित स्तूपोको देखते हुए उन सबको उल्लघन करते गये ॥ २० ॥ अपने-अपने निश्चित स्थानोंपर चारों प्रकारकी वनकी पक्षियो ध्वजाओं और हर्म्यावलीको देखते हुए उन्होंने उन कक्षाओंका उल्लघन किया ॥ २१ ॥ समवसरणकी प्रत्येक कक्षामें होनेवाले देवागनाओंके मनोहर गीत और नृत्योसे जिनके चित्तकी वृत्ति अनुरक्त हो रही है ऐसे महाराज भरतको बहुत ही सन्तोष हो रहा था ॥ २२ ॥ तदनन्तर बहुत ऊँचे गोपुर दरवाजोके मार्गसे उहोने जहाँ गणधरदेव विराजमान थे और जो श्रीमण्डपसे सुशोभित हो रही थी ऐसी सभाभूमिमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ वहाँपर तीन कटनीवाले पीठकी प्रथम कटनीपर चढ़कर धमचक्रकी पूजा करते हुए प्रदक्षिणा दी ॥ २४ ॥ तदनन्तर चक्रवर्ती दूसरी कटनीपर महाध्वजाओंकी पूजा कर तीनों जगत्‌को लक्ष्मीको तिरस्कृत करनेवाली गंध

१ यजनीया । २ क्षणपयन्तम् । ३ सहोत्पत्तौ । ४ अतिशयेन सिद्धम् । ५ प्रदेष्टम् । ६ समाभूमिम् ।
 ७ नानाप्रकारा । ८ -पाथिवान् ल म० । ९ प्रदक्षिणा चक्रे ।

शुक्लमप्य तद्भागं च पथं तत्प्रचुरोदकम् । पांशुभूमरिता^१ रमरासि इवायं^२ भुगर्हित^३ ॥३८॥
 तारुण्यशाली वृषभ शोताशु परिवेषयुक्त । मिथोऽङ्गोदृतमाद्भर्या पुद्गयौ सद्गन्धच्छिद्यौ ॥३९॥
 रविराशावधूरुलवतसोऽर्द्धस्तिरोहित । सशुष्कस्तररञ्जया पाणपणममुचय ॥४०॥
 षोडशीतेऽथ यामि-यां दृष्टा स्वप्ना विदा वर । फलप्रतिपत्तिं^४ म तद्गता त्वमपाकुरु ॥४१॥
 इति तत्फलविज्ञाननिपुणोऽप्यवधिरिषया । समाजनप्रयोधाथ पप्रच्छ निधिराट् तिनम् ॥४२॥
 'त'प्रज्ञावसिताविस्थ भ्याचष्टे स्म जगद्गुरु । धचनामृतससवै प्राणयन्निविल सद् ॥४३॥
 भगवद्विष्यन्नागमशुभ्रपावहित^५ तदा । ध्यानोपगमिनाभूतमद्विभ्रगत नु वा ॥४४॥
 साधु वत्स कृत साधु धामिकद्विजपूजनम् । किन्तु दोषानुपद्वाऽत्र^६ कोऽप्यस्ति स निशम्यताम् ॥४५॥
 आयुष्मन् भवता सृष्टा य एते गृहमधिन । त तावदुचिताचारा यावत्कृतं युगस्थिति ॥४६॥
 तत 'कलियुगेऽभ्यर्णे' 'जातिमादावलेपत'^७ । भ्रष्टाचारा प्रपश्यन्त^८ स मागप्रमथनीकताम्^९ ॥४७॥
 तेऽमी जातिमदाविष्टा वय लोकाधिका इति । 'पुरा दुरागमैर्लाक मोहयति'^{१०} घनाशया ॥४८॥
 सत्कारलामसवृज्जगर्वा मिथ्यामदोद्वता । जनान् प्रतारयिष्यन्ति^{११} स्वयमुपाय दु ध्रुता^{१२} ॥४९॥

वानर, (६) कौआ आदि पक्षियोंके द्वारा उपद्रव किये हुए उलूख, (७) आनन्द करते हुए भूत,
 (८) जिसका मध्यभाग सूखा हुआ है और किनारोंपर खूब पानी भरा हुआ है ऐसा तालाब,
 (९) धूलिसे धूसरित रत्नोंकी राशि, (१०) जिसकी पूजा की जा रही है ऐसा नैवेद्यको खानेवाला
 कुत्ता, (११) जवान बैल, (१२) मण्डलसे युक्त चन्द्रमा, (१३) जो परस्परम मिल रहे हैं
 और जिनकी शोभा नष्ट हो रही है ऐसे दो बैल, (१४) जो निशारूपी स्त्रीरत्नोंके-से बने हुए
 आभूषणके समान है तथा जो मेघोंसे आच्छादित हो रहा है ऐसा सूय, (१५) छाया रहित सूखा
 वृक्ष और (१६) पुराने पत्तोंका समूह । हे जानियामें श्रेष्ठ, आज मने रात्रिके समय ये सोलह
 स्वप्न देखे हैं । हे नाथ इनके फलके विषयमें जो मुझे सन्देह है, उसे दूर कर दीजिए ॥३६-४१॥
 यद्यपि निधियोके अधिपति महाराज भरत अपने अवधिज्ञानके द्वारा उन स्वप्नोंका फल जाननेमें
 निपुण थे तथापि सभाके लोगोंको समझानेके लिए उन्होंने भगवान्से इस प्रकार पूछा था
 ॥४२॥ भरतका प्रश्न समाप्त होनेपर जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव अपने वचनरूपी अमृतके
 सिंचनसे समस्त सभाको सन्तुष्ट करते हुए इस प्रकार व्याख्यान करने लगे ॥४३॥ उस समय
 भगवान्की दिव्य ध्वनिके अथको सुननेकी इच्छासे सावधान हुई वह सभा ऐसी जान पड़ती थी
 मानो ध्यानमें मग्न हो रही हो अथवा चित्रकी बनी हुई हो ॥४४॥ वे कहने लगे कि हे वत्स,
 तूने जो घर्मात्मा द्विजोंकी पूजा की है सो बहुत अच्छा किया है परन्तु इसमें कुछ दोष है उसे
 तू सुन ॥४५॥ हे आयुष्मन् तूने जो गृहस्थोंकी रचना की है सो जबतक कृतयुग अर्थात् चतुर्थ
 कालकी स्थिति रहेगी तबतक तो ये उचित आचारका पालन करते रहेंगे परन्तु जब कलियुग
 निकट आ जायगा तब ये जातिवादके अभिमानसे सदाचारसे भ्रष्ट होकर समीचीन मोक्ष-मार्गके
 विरोधी बन जावेंगे ॥४६॥ पंचम कालमें ये लोग, हम सब लोगोमें बड़े ह इस प्रकार जातिके
 मदसे युक्त होकर केवल धनकी आशासे छोटे छोटे शास्त्रोंके द्वारा लोगोंको मोहित करते
 रहेंगे ॥४७॥ सत्कारके लाभसे जिनका गव बढ़ रहा है और जो मिथ्या मदसे उद्वत हो
 रहे हैं ऐसे ये ब्राह्मण लोग स्वयं मिथ्या शास्त्रोंको बना बनाकर लोगोंको ठगा करेंगे
 ॥४८॥ जिनकी चेतना पापसे दूषित हो रही है ऐसे ये मिथ्यादृष्टि लोग इतने समय

१ ईपत्पाण्डुरित । २ वरमुक्त । ३ पूजित । ४ सदेष्टम् । ५ तस्य प्रज्ञावमाने । ६ अवधानपरम् । ७ योग ।
 ८ चतुषकाल । ९ पञ्चमकाले । १० समीपे सति । ११ गवत । १२ यास्यन्ति । १३ प्रतिकूलताम् । १४ पञ्चम
 काले । १५ परायावतोलद्विष्टा भविष्यत्यर्थे लङ् । १६ वञ्चयिष्यन्ति । १७ दुःशास्त्राणि ।

शुष्कमर्षं तडागं च पथं तत्र प्रचुरोदकम् । पाशुभूमरिता^१ रमराशि^२ स्वाथ^३ भुगहित^४ ॥३८॥
 तारुण्यशाली वृषभ शोताशु^५ परिवेषयुक्त । मिथोऽज्ञादृतमाद्रस्य^६ पुनर्वी सङ्गच्छिता ॥३९॥
 श्विराशावधूरस्रवतसोऽद्भुतस्तिरोहित । सशुष्कस्तरुच्छाया^७ नाणपणममुद्यय ॥४०॥
 षोडशैतेऽथ यामिन्या दृष्टा स्वप्ना विदां घर । फलविप्रतिपत्तिं^८ म तद्गतां स्वमपाकु^९ ॥४१॥
 इति तत्फलविज्ञाननिपुणोऽप्यवधिरिया । मभाजनप्रबोधाय पप्रच्छ निधिराट् जिनम् ॥४२॥
 "तत्प्रश्नावसिताविस्थ व्याचष्टे स्म जगद्गुरु । वचनामृतमसकै प्राणयन्निमित्तं सद् ॥४३॥
 भगवद्विन्यागथशुश्रूषावहित^{१०} तदा । ध्यानोपगमिवाभूत्तत्सद्विप्रगतं तु या ॥४४॥
 साधु वत्स कृत साधु धार्मिकद्विजपूजन्म् । किन्तु दोषानुपह्नाऽग्रे काऽप्यस्ति स निशम्यताम् ॥४५॥
 आयुष्मन् भवता सृष्टा य एत गृहमधिनि । न तावदुचिताचारा यावत्कृतं युगस्थिति ॥४६॥
 तत् कलियुगऽभ्यर्णे^{११} जातिनादावलेपत^{१२} । भ्रष्टाचारा प्रपत्य त^{१३} मन्मागप्रत्यनीकताम्^{१४} ॥४७॥
 तेऽमी जातिमदाविष्टा वयं लोकाधिका इति । "पुरा दुरागमैर्लोक साहयति^{१५} घनाशया ॥४८॥
 सत्कारलामसदृढगर्वा मिथ्यामदोद्धता । जनान् प्रतारयिष्यन्ति^{१६} स्वयमुपाय दु ध्रुवा^{१७} ॥४९॥ "

वानर, (६) कौआ आदि पक्षियोंके द्वारा उपद्रव किये हुए उलूख, (७) आनन्द करते हुए भूत, (८) जिसका मध्यभाग सूखा हुआ है और किनारोंपर सूब पानी भरा हुआ है ऐसा तालाव, (९) धूलिसे धूसरित रत्नाकी राशि, (१०) जिसकी पूजा की जा रही है ऐसा नैवेद्यको खानेवाला कुत्ता, (११) जवान बेल, (१२) मण्डलसे युक्त चन्द्रमा (१३) जो परस्परम मिल रहे हैं और जिनकी शोभा नष्ट हो रही है ऐसे दो बेल, (१४) जो दिशारूपी स्त्रीरत्नोंके-से बने हुए आभूषणके समान है तथा जो मेघोंसे आच्छादित हो रहा है ऐसा सूर्य, (१५) छाया रहित सूखा वृक्ष और (१६) पुराने पत्तोंका समूह । हे जानियोम श्रेष्ठ, आज मने रात्रिके समय ये सोलह स्वप्न देखे ह। हे नाथ, इनके फलके विषयमें जो मुझे सन्देह है, उसे दूर कर दीजिए ॥३६-४१॥ यद्यपि निधियोंके अधिपति महाराज भरत अपने अवधिज्ञानके द्वारा उन स्वप्नोंका फल जाननेमें निपुण थे तथापि समाके लोगोंको समझानेके लिए उन्होंने भगवान्से इस प्रकार पूछा था ॥४२॥ भरतका प्रश्न समाप्त होनेपर जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव अपने वचनरूपी अमृतके सिंचनसे समस्त समाको सन्तुष्ट करते हुए इस प्रकार व्याख्यान करने लगे ॥४३॥ उस समय भगवान्की दिव्य ध्वनिके अथको सुननेकी इच्छासे सावधान हुई वह समा ऐसी जान पड़ती थी मानो ध्यानमें मग्न हो रही हो अथवा चित्रकी बनी हुई हो ॥४४॥ वे कहने लगे कि हे वत्स, तूने जो धर्मात्मा द्विजोंकी पूजा की है सो बहुत अच्छा किया है परन्तु इसमें कुछ दोष है उसे तू सुन ॥४५॥ हे आयुष्मन्, तूने जो गृहस्थोंकी रचना की है सो जबतक कृतयुग अर्थात् चतुर्थ कालकी स्थिति रहेगी तबतक तो ये उचित आचारका पालन करते रहेंगे परन्तु जब कलियुग निकट आ जायगा तब ये जातिवादके अभिमानसे सदाचारसे भ्रष्ट होकर समीचीन मोक्ष-मार्गके विरोधी बन जावेंगे ॥४६॥ पंचम कालमें ये लोग, हम सब लोगोंमें बडे है इस प्रकार जातिके मदसे युक्त होकर केवल धनकी माशासे छोटे-छोटे शास्त्रोंके द्वारा लोगोंको मोहित करते रहेंगे ॥४७॥ सत्कारके लामसे जिनका गव बढ रहा है और जो मिथ्या मदसे उद्धत हो रहे ह ऐसे ये ब्राह्मण लोग स्वयं मिथ्या शास्त्रोंको बना-बनाकर लोगोंको ठगा करगे ॥४८॥ जिनकी चेतना पापसे दूषित हो रही है ऐसे ये मिथ्यादृष्टि लोग इतने समय

१ ईपत्पाण्डुरित । २ वरुभुक्त । ३ पूजित । ४ सदेहम् । ५ तत्प्रश्न प्रश्नावसिति । ६ अवधानपरम् । ७ योग । ८ चतुर्थकाल । ९ पञ्चमकाले । १० समीपे सति । ११ गवत । १२ यावत्स्थिति । १३ प्रतिकूलताम् । १४ पञ्चम काले । १५ पुरापावतोलहित भविष्यत्यर्थे लङ् । १६ वञ्चयिष्यन्ति । १७ दुःशास्त्राणि ।

कल्याणाङ्गद्वयमेकान्ताद् दयताधिष्ठितश्च यत् । न मिथ्या तदिमं स्वप्ना पञ्चमर्षा^१ निवाध म^२ ॥६२॥
 दद्या स्वप्ने मृगाधीशा ये त्रयोविंशतिप्रमा । निस्त्वपमं विस्त्वमं क्षमां क्षमाभूत्कृतमाधिता^३ ॥६३॥
 तत्फलं सम्मतिं मुक्त्वा शेषतीर्थैरुदय । दुनयानामनुद्भूतित्यापन लक्ष्यतां स्फुटम् ॥६४॥
 पुनरेकाकिन सिंहपोतस्यान्वक् मृगक्षणात् । मवेयु समतस्तार्थं सानुपन्ना^४ कुटिहिन ॥६५॥
 करीन्द्रमारनिमुग्रपृष्ठस्याश्वस्य वीक्षणात् । वृत्तान् तपोगुणा^५ वाहु नाल दुष्यममाधय ॥६६॥
 मूलोत्तरगुणेष्वान्तसङ्गरा कचनालसा । मह्यन्त भूयन्त कचित्तेषु यास्यन्ति मन्दताम् ॥६७॥
 निध्यानादजयूथस्य शुष्कपत्रोपयोगिन । यान्यसदृशता त्यक्तमदाधारा पुरा नरा ॥६८॥
 करीन्द्रक^६ वरारूढशाखाभृगविलोकनात् । आदिक्षत्रा^७ त्रयोविंशतीं क्षमां^८ पास्यन्त्यकुलानरा ॥६९॥
 काकैरुलूकमवाधदानादमकाम्यथा । मुक्त्वा जना मुनीनन्यमतस्थानन्वियुञ्जना ॥७०॥
 प्रनुत्थतां प्रभूतानां भूतानामीक्षणात् प्रजा । भजयुर्नामस्माद्यैव्यतरान् दयतास्यथा^९ ॥७१॥
 शुष्कमप्यतडागस्य पथ^{१०} तऽश्रुस्थितोक्षणात् । प्रत्युत्थायनिवासान् स्याद्वम प्रत्यन्तवासिपु^{११} ॥७२॥
 पांसुधूसररसौघनिष्यानादद्विसप्तमा । नैव प्रादुमविष्यन्ति मुनय पञ्चम युग ॥७३॥
 शुनोर्जितस्य सत्कारैश्चरुमाजनदशनात् । गुणव पात्रमत्कारमाप्स्यत्यग्रतिनो द्विजा ॥७४॥

से उत्पन्न होनेवाले झूठ होते हैं और दबसे उत्पन्न होनेवाले सच्चे होते हैं ॥६१॥ हे कल्याणरूप, चूँकि तू अवश्य ही देवताओंसे अधिष्ठित है इसलिए तेरे ये स्वप्न मिथ्या नहीं ह। तू इनका फल मुझसे समझ ॥६२॥ तूने जो स्वप्नमें इस पृथ्वीपर अकेले विहार कर पवतके शिखरपर चढ़े हुए तेईस सिंह देखे हैं उसका स्पष्ट फल यही समझ कि श्रीमहावीर स्वामीको छोड़कर शेष तेईस तीर्थ करोंके समयम दुष्ट नयोंकी उत्पत्ति नहीं होगी। इस स्वप्नका फल यही बतलाता है ॥६३-६४॥ तदनन्तर दूसरे स्वप्नमें अकेले सिंहके वच्चेके पीछे चलते हुए हरिणोंका समूह देखनेसे यह प्रकट होता है कि श्री महावीर स्वामीके तीर्थम परिग्रहको धारण करनेवाले बहुत-से कुलिंगी हो जावगे ॥६५॥ बड़े हाथीके उठाने योग्य बोझसे जिसकी पीठ झुक गयी है ऐसे घोडेके देखनेसे यह मालूम होता है कि पंचम कालके साधु तपश्चरणके समस्त गुणोंकी धारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥६६॥ कोई मूलगुण और उत्तरगुणोंके पालन करनेकी प्रतिज्ञा लेकर उनके पालन करनेम आलसी हो जायगे, कोई उन्हें मूलसे ही भग कर दगे और कोई उनमें मन्दता या उदासीनताको प्राप्त हो जायेंगे ॥६७॥ सूखे पत्ते खानेवाले बकरीका समूह देखनेसे यह मालूम होता है कि आगामी कालम मनुष्य सदाचारको छोड़कर दुराचारी हो जायेंगे ॥६८॥ गजेन्द्रके कंधेपर चढ़े हुए वानरोंके देखनेसे जान पडता है कि आगे चलकर प्राचीन क्षत्रिय वंश नष्ट हो जायगे और नीच कुलवाल पृथ्वीका पालन करेंगे ॥६९॥ कौबोके द्वारा उलूकको त्रास दिया जाना देखनेसे प्रकट होता है कि मनुष्य धर्मकी इच्छासे जैनमुनियोंकी छोड़कर अय मतके साधुओंके समीप जायेंगे ॥७०॥ नाचते हुए बहुत से भूतोंके देखनेसे मालूम होता है कि प्रजाके लोग नामकम आदि कारणोंसे व्यन्तरीको देव समझकर उनकी उपासना करने लगेंगे ॥७१॥ जिसका मध्यभाग सूखा हुआ है ऐसे तालाबके चारों ओर पानी भरा हुआ देखनेसे प्रकट होता है कि धर्म आयखण्डसे हटकर प्रत्यन्तवासी म्लेच्छ खण्डोंमें ही रह जायेगा ॥७२॥ घूलिसे मलिन हुए रत्नोंकी राशिके देखनेसे यह जान पडता है कि पंचम कालमें ऋद्धिधारी उत्तम मुनि नहीं होंगे ॥७३॥ आदर-सत्कारसे जिसकी पूजा की

१ यस्मात् कारणात् । २ आनीहि । ३ मम सकाशात् । ४ -मास्थिता ट० । ५ अनुगच्छत् । ६ सपरिग्रहा । ७ दशानात् । ८ पालयिष्यति । ९ भूरीणाम् । १० देवबुद्ध्या । ११ म्लेच्छदेशेषु प्रत्यन्तो म्लेच्छदेशः स्यात् ।

लम्बिताश्च पुरद्वारि^१ ताश्चतुर्विंशतिप्रमा । राजवेश्ममहाद्वारगोपुरप्वप्यनुप्रमात् ॥८८॥
 यदा किल विनिघाति प्रविशत्यप्यथ प्रभु । तदा मौह्यप्रलम्भाभिरस्य स्याद्दहता स्मृति ॥८९॥
 स्मृत्वा ततोऽहदर्शनां भक्त्या कृत्वाभिनन्दनाम् । पूजयत्यभिनिष्क्रामन् प्रविशश्च स पुण्यधी ॥९०॥
 रेजु सूत्रेषु सप्रोक्ता घण्टास्ता परमष्टिनाम् ।^२सद्व्यधृतिग्रीका प्रधानामिष पशला ॥९१॥
 लोकचूडामणेश्वरस्य मौलिलगना विरजिर । पादच्छाया जिनस्य च घण्टास्ता लोकसमता ॥९२॥
 रत्नतोरणविन्यास स्थापितास्ता निर्धाशिना । दृष्ट्वाहद्वन्द्वनाहतालङ्काराऽप्यासीत्तदादर ॥९३॥
 पौरजनैरत स्वेपु^३ वेश्मतोरणदामसु । यथाविभवमायदा घण्टास्ता सपरिच्छदा^४ ॥९४॥
 आदिराजकृता सृष्टिं प्रजास्ता बहुमनिर । प्रत्यगार यतोऽद्यापि लक्ष्या घ-दनमालिका ॥९५॥
 वन्दनार्थं कृता माला यतस्ता भरतशिना । ततो घ-दनमालार्यां प्राप्य रुद्धिं गता क्षिती ॥९६॥
 धमशीले महीपाले यान्ति तच्छीलतां^५ प्रजा । अताच्छील्यमतच्छालं^६ यथा राजा तथा प्रजा ॥९७॥
 तदा कालानुभावन प्रायो धमप्रिया नराः । साधीय साधुवृत्तेऽस्मिन् स्वामिन्यासन् हित रता ॥९८॥
 सुकालश्च सुराजा च सम सन्निहित द्वयम् । ततो धमप्रिया जाता प्रजास्तेदनुराघत ॥९९॥

माओसे सजे हुए बहुत-से घण्टे बनवाये तथा ऐसे-ऐसे चौबीस घण्टे बाहरके दरवाजेपर, राजभवन के महाद्वारपर और गोपुर दरवाजापर अनुक्रमसे टेंगवा दिये ॥८७-८८॥ जब वे चक्रवर्ती उन दरवाजोंसे बाहर निकलते अथवा भीतर प्रवेश करते तब मुकुटके अग्रभागपर लगे हुए घण्टाओसे उहे चौबीस तीर्थंकराका स्मरण हो आता था । तदनन्तर स्मरण कर उन अरहन्तदेवकी प्रतिमाओंको वे नमस्कार करते थे इस प्रकार पुण्यरूप बुद्धिको धारण करनेवाल महाराज भरत निकलते और प्रवेश करते समय अरहन्तदेवकी पूजा करते थे ॥८९-९०॥ सूत्र अर्थात् रस्सियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले वे परमेष्ठियोंके घण्टा ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो उत्तम-उत्तम अर्थसे भरी हुई और सूत्र अर्थात् आगम वाक्योंसे सम्बन्ध रखनेवाली ग्रन्थोंकी सुंदर टीकाए ही हों ॥९१॥ महाराज भरत स्वयं तीनों लोकोंके चूडामणि थे उनके मस्तक पर लगे हुए वे लोकप्रिय घण्टा ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनेन्द्रदेवके चरणोंकी छाया ही हो ॥९२॥ निधियोंके स्वामी भरतने अरहन्तदेवकी वन्दनाके लिए जो घण्टा रत्नोंके तोरणों की रचनाम स्थापित किये थे उहे देखकर अथ लोग भी उनका आदर करने लगे थे अर्थात् अपने-अपने दरवाजेके तोरणोंकी रचनामें घण्टा लगवाने लगे थे । उसी समयसे नगरवासी लोगोंने भी अपने-अपने घरकी तोरणमालाओंमें अपने-अपने बभ्रवके अनुसार जिनप्रतिमा आदि सामग्रीसे युक्त घण्टा बांधे थे ॥९३-९४॥ उस समय प्रथम राजा भरतकी बनायी हुई इस सृष्टिको प्रजाके लोगोंने बहुत माना था यही कारण है कि आज भी प्रत्येक घरपर वन्दन मालाए दिखाई देती हैं ॥९५॥ चूंकि भरतेश्वरने वे मालाएँ अरहन्तदेवकी वन्दनाके लिए बनवायी थी इसलिए ही वे वन्दनमाला नाम पाकर पृथिवीमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुई ह ॥९६॥ यदि राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है और राजा धर्मात्मा नहीं होता है तो प्रजा भी धर्मात्मा नहीं होती है, यह नियम है कि जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है ॥९७॥ उस समय कालके प्रभावसे प्राय सभी लोग धमप्रिय थे सो ठीक ही है क्योंकि सदाचारी भरतके राजा रहते हुए सब लोग अपना हित करनेमें लगे हुए थे ॥९८॥ उस समय अच्छा राजा और अच्छी प्रजा दोनों ही एक साथ मिल गये थे इसलिए राजाके अनुरोधसे प्रजा

१ बहिर्द्वारि ल म०, द० । २ रत्नादिसम्बन्ध । ३ तोरणमालासु । ४ जिनविम्बादिपरिकरसहिता । ५ धमशीलताम् । ६ अधमत्वम् । ७ अधमशीले सति ।

जिनानुस्मरणे तस्य समाधानमुपयुज्य । शैथिल्याद् गात्रत्रयस्य 'क्षस्तान्याभरणान्यहो ॥११३॥
 तथापि बहुचिन्तस्य धमचिन्ताऽधवद् ददा । धर्मेहि चिन्तितं सर्वं चिन्त्य ह्यादनुचिन्तितम् ॥११४॥
 तस्यासिद्धा क्रियारम्भा धमचिन्तापुरस्सरा । धाता जातमहोदकरुपुण्यपाकौत्थसपद् ॥११५॥
 प्रातश्नमीलिताक्षः सन् सध्यारागाख्या दिश । स मनेऽहत्पद्मभोजरागणचानुरञ्जिता ॥११६॥
 प्रातश्चन्द्रतनुमुद्भूतनैशाश्वतमस^२ रयिम् । भगवत्कवलाकस्य प्रतिबिम्बममस्त स ॥११७॥
 प्रमातमरतोद्भूतप्रभुर्द^३ कमलाकरात् । हृदि सोऽधाजिनालापकलापानिव शीतलान् ॥११८॥
 धार्मिकस्यास्य कामाधचिन्ताऽभूदानुपङ्गिका^४ । तात्पर्यं त्वभवद्वर्मे कृत्स्नधेयाऽनुवधिनि ॥११९॥
 प्रातस्तथाय धर्मस्थै^५ कृतधर्मानुचिन्तन । ततोऽधकामसपत्तिं सहामार्त्यन्यरूपयत्^६ ॥१२०॥
 तस्यादुत्थितमात्रोऽसौ सपूज्य गुरुदैवतम् । कृतमङ्गलनेपथ्यो^७ धर्मासनमधिष्ठित ॥१२१॥
 प्रजानां सदसद्वृत्तचिन्तनै क्षणमासित । तत आयुक्तकान्^८ स्वेपु नियोगेऽश्वत्थाद् विभु ॥१२२॥
 नृपासनमथाध्यास्य महादशनमध्यग^९ । नृपान् समावयामास सवावसरकाङ्क्षिण ॥१२३॥
 काञ्चिदालोकनै काञ्चिस्मिन्नैराभायणै परान् । काञ्चिस्तमानदानाद्यैस्तपयामास पार्थिवान् ॥१२४॥

हुए जिनमन्दिरम ही रहते थे और उस समय ठीक मुनियोंका आचरण धारण करते थे ॥११२॥
 जिनेन्द्रदेवका स्मरण करनेमेवे समाधानको प्राप्त हो रहे थे — उनका चित्त स्थिर हो रहा था और
 आश्चय है कि शरीरके वधन शिथिल होनेसे उनके आभूषण भी निकल पड़े थे ॥११३॥ यद्यपि
 उहे बहुत पदार्थोंकी चिन्ता करनी पड़ती थी तथापि उनके धमकी चिन्ता अत्यन्त दृढ थी सो
 ठीक ही है क्योंकि धमकी चिन्ता करनेपर चिन्ता करने योग्य समस्त पदार्थोंका चिन्तवन अपने
 आप हो जाता है ॥११४॥ बड़े भारी फल देनेवाल पुण्यकर्मके उदयसे जिन्हे अनेक सम्पदाएँ
 प्राप्त हुई हैं ऐसे भरतकी समस्त क्रियाओंका प्रारम्भ धमके चिन्तवनपूर्वक ही होता था अर्थात्
 महाराज भरत समस्त कार्योके प्रारम्भम धमका चिन्तवन करते थे ॥११५॥ वे प्रातः काल आँख
 खोलकर जब समस्त दिशाओंको सबेरेकी लालिमासे लाल-लाल देखते थे तब ऐसा मानते थे मानो
 ये दिशाएँ जिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंकी लालिमासे ही लाल-लाल हो गयी हैं ॥११६॥ जिसने
 रात्रिका गाढ अधकार नष्ट कर दिया है ऐसे सूर्यको प्रातः कालके समय उदय होता हुआ
 देखकर वे ऐसा समझकर उठते थे मानो यह भगवान्के केवलज्ञानका प्रतिबिम्ब ही हो ॥११७॥
 प्रातः कालकी वायुके चलनेसे खिले हुए कमलोंके समूहकी वे अपने हृदयमें जिनेन्द्र भगवान्
 की दिव्यध्वनिके समूहके समान शीतल समझते थे ॥११८॥ वे बहुत ही धर्मात्मा थे, उनके
 काम और अथकी चिन्ता गौण रहती थी तथा उनका मुख्य तात्पर्य सब प्रकारका कल्याण
 करनेवाले धर्ममें ही रहता था ॥११९॥ वे सबेरे उठकर पहले धर्मात्मा पुरुषोंके साथ धर्मका
 चिन्तवन करते थे और फिर मन्त्रियोंके साथ अर्थ तथा कामरूप सम्पदाओंका विचार करते
 थे ॥१२०॥ वे शय्यासे उठते ही देव और गुरुओंकी पूजा करते थे और फिर मागलिक वेष
 धारण कर धर्मासनपर आरूढ होते थे ॥१२१॥ वहाँ प्रजाके सदाचार और असदाचारका विचार
 करते हुए वे क्षण भर ठहरते थे तदनन्तर अधिकारियोंको अपने-अपने कामपर नियुक्त करते
 थे अर्थात् अपना-अपना कार्य करनेकी आज्ञा देते थे ॥१२२॥ इसके बाद समाधानके बीचमें
 जाकर राजासिंहासनपर विराजमान होते तथा सेवाके लिए अवसर चाहनेवाल राजाओं
 का समान करते थे ॥ १२३॥ तब ही राजाओंको दशनसे, कितनों ही को भुसकानसे,

१ मलितानि । २ निपात

३ मङ्गलालंकार । ४

म० । महद्दशन मया

५ धमस्य सह । ६ विचारमकरोत् ।

७ स । समासदन प० ल०,

तेन^१ पाद्गुण्यमभ्यस्तमपरिज्ञानहानये । शासतोऽस्याधिपक्षां क्षमां कृत^२ सध्यादिचक्षया^३ ॥१३८॥
 राजविद्याश्चतस्रोऽभू कदाचिच्च कृतक्षणा^४ । ध्याचक्षया^५ राजपुत्रेभ्य उयातये स विचक्षण ॥१३९॥
 कदाचिन्निधिरत्नानामकरोत्स निराक्षणम् । भाण्डागारपद तानि तस्य तन्त्रं पदऽपि च ॥१४०॥
 कदाचिद्मशास्त्रेषु या^६ स्युर्विप्रतिपक्षय^७ । निराचकार^८ ता कृत्स्ना व्यापयन्^९ विध्विन्मत्तम्^{१०} ॥१४१॥
 आक्षीपज्ञेषु तत्त्वेषु कांश्चित् सजातसशयान् । ततोऽप्याकृत्य सशतस्तत्तय^{११} निरणीनयत्^{१२} ॥१४२॥
 तथाऽसावयशास्त्रार्थे^{१३} कामनीतो च पुष्कलम् । प्रावीण्य प्रथयामास यथात्र न पर कृती^{१४} ॥१४३॥
 हस्ति-तन्त्रेऽश्वत-त्रे च दृष्ट्वा स्वात-त्र्यमाशितु । मूलतन्त्रस्य^{१५} कर्ताऽयमि-यास्था^{१६} तद्विदामभूत् ॥
 आयुर्वेदे स दीर्घायुरायुर्वेदो नु मूर्तिमान् । इति लोको निराकर इत्याद्यते स्म निधीज्ञानम् ॥१४५॥
 सोऽधीतो^{१७} पदविद्यायां स कृता^{१८} बागलकृता^{१९} । स छन्दसाप्रतिष्ठद^{२०} इत्यासान् समत सताम् ॥१४६॥
 तदुपज्ञ निमित्तानि शाकुन^{२१} तदुपक्रमम्^{२२} । तत्सर्गा^{२३} ज्योतिषा^{२४} ज्ञान त-मत-तन^{२५} तत्त्रयम्^{२६} ॥१४७॥

समस्त पृथिवी जीत ली है और जो इस भरतक्षेत्रमे स्वतन्त्र हैं ऐसे उन भरतको अपने तथा परराष्ट्रको कुछ भी चिन्ता थी, यदि चिन्ता नहीं थी, तो केवल तत्र अर्थात् स्वराष्ट्रकी ही चिन्ता थी ॥१३७॥ उन्होंने अपना अज्ञान नष्ट करनेके लिए ही छह गुणोका अभ्यास किया था क्योंकि जब वे शत्रुरहित पृथिवीका पालन करते थे तब उन्हें संधि विग्रह आदिकी चर्चा क्या प्रयोजन था ॥१३८॥ अतिशय विद्वान् महाराज भरत केवल प्रसिद्धिके लिए ही कभी कभी बड़े उत्साहके साथ राजपुत्रोंके लिए आ-वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन चार राजविद्याओंका व्याख्यान करते थे ॥१३९॥ वे कभी कभी निधियो और रत्नोका भी निरीक्षण करते थे । क्योंकि निधियों और रत्नोंमें-से कुछ तो उनके भाण्डारमें थे और कुछ उनकी सेनामें थे ॥१४०॥ कभी-कभी वे सवज्ञदेवका मत प्रकट करते हुए धर्मशास्त्रम जो कुछ विवाद थे उन सबका निराकरण करते थे ॥१४१॥ भगवान् अरहन्तदेवके वहे हुए तत्त्वोम जिन किन्हीको सदेह उत्पन्न होता था उन्हें वे उस सन्देहसे हटाकर तत्त्वोका यथाथ निणय कराते थे ॥१४२॥ इसी प्रकार वे अथशास्त्रके अर्थमें और कामशास्त्रमें अपना पूण चातुय इस तरह प्रकट करते थे कि फिर इस ससारमें उनके समान दूसरा चतुर नहीं रह जाता था ॥१४३॥ हस्ति-तन्त्र और अश्वत-त्रमें महाराज भरतकी स्वतन्त्रता देखकर उन शास्त्रोंके जाननेवाल लोगोंको यही विश्वास हो जाता था कि इन सबके मूल शास्त्रोंके कर्ता यही है ॥१४४॥ आयुर्वेद के विषयमें तो सब लोग निधियोंके स्वामी भरतको बिना किसी शंकाके यही प्रशंसा करते थे कि यह दीर्घायु क्या मूर्तिमान् आयुर्वेद ही है अर्थात् आयुर्वेदने ही क्या भरतका शरीर धारण किया है ॥१४५॥ इसी प्रकार सज्जन लोग यह भी मानते थे कि वे व्याकरण विद्यामे कुशल है शा-दालकारमे निपुण हैं, और छन्दशास्त्रके प्रतिबिम्ब ह ॥१४६॥ निमित्तशास्त्र सबसे पहले उ-हीके बनाये हुए है, शाकुनशास्त्र उन्हीके कहे हुए है और ज्योतिष शास्त्रका ज्ञान उन्ही

१ चक्रिणा । २ पर्याप्तम् । अलमित्यर्थ । ३ सन्धि-विग्रह-भावादिविचारेण । ४ आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्ड नीतिश्चतस्रो राजविद्या । ५ कृतोत्साह । ६ वदति स्म । ७ सैन्यस्थाने परिग्रहे वभूवुरित्यर्थ । ८ विस्वादा । ९ निराकृतवान् । १० प्रकटीकुर्वन् । ११ सवज्ञमतम् । १२ संशयात् । १३ निणयमकारयत् । १४ नीति शास्त्रार्थे । १५ कुशल । १६ गजशास्त्रे । १७ मूलशास्त्रस्य । १८ इति बुद्धि । १९ वैद्यशास्त्रे । २० नि शङ्कम् । २१ व्याकरणशास्त्रमधीतवान् । २२ कुशल । २३ शा-दालकारे । २४ प्रतिनिधि । २५ तदुपज्ञानि तानि ल० म० । तेन प्रथमीकृतम् । २६ शाकुनशास्त्रम् । २७ तन प्रथममुपका-तम् । २८ तस्य भरतस्य सृष्टि । २९ ज्योतिषशास्त्रम् । ३० तन कारणेन । ३१ निमित्तादित्रयम् ।

तेन^१ पाद्गुणप्रथमस्तमपरिज्ञानहानये । शासतोऽस्याविपक्षा इमां कृत^२ सध्यादिचर्चा^३ ॥१३८॥
 राजविद्याश्चतस्रोऽभू कदाचिच्च कृतक्षण^४ । व्याचक्ष्य^५ राजपुत्रेभ्य ख्यातये स विचक्षण^६ ॥१३९॥
 कदाचिच्चिधिरत्नानामकरोत्स निराक्षणम् । भाण्डागारपद तानि तस्य तन्त्रं पदेऽपि च ॥१४०॥
 कदाचिद्धमशास्त्रेषु या स्युर्विप्रतिपत्तय^७ । निराचकार^८ ता कृत्स्ना ख्यापयन् विश्वविन्मतम्^९ ॥१४१॥
 आसोपज्ञेषु तत्त्वेषु कश्चित् सजातसशयान् । ततोऽप्याकृत्य सशतस्तत्त्व^{१०} निरणीनयत्^{११} ॥१४२॥
 तथाऽसाधयशास्त्रार्थे^{१२} कामनीतौ च पुष्कलम् । प्रावीण्य प्रथयामास यथात्र न पर कृती^{१३} ॥१४३॥
 हस्तितन्त्रे^{१४}ऽश्वतन्त्रे च इष्ट्वा स्वातन्त्र्यमीशितु । मूलतन्त्रस्य^{१५} कताऽयमित्यास्था^{१६} तद्विदामभूत् ॥
 आयुर्वेदे स दीर्घायुरायुर्वेदो नु मूर्तिमान् । इति लोको निरारक^{१७} श्लाघते स्म निधीक्षितम् ॥१४५॥
 सोऽधीती^{१८} पदविद्यायां स कृती^{१९} बागलकृती^{२०} । स छन्दसप्रतिच्छन्द^{२१} इत्यासीत् समत सताम् ॥१४६॥
 तदुपज्ञ निमित्तानि शाकुन^{२२} तदुपक्रम^{२३} । तत्सर्गा^{२४} ज्योतिषा^{२५} ज्ञान तन्मत तेन^{२६} तत्त्रयम्^{२७} ॥१४७॥

समस्त पृथिवी जीत ली है और जो इस भरतक्षेत्रमें स्वतन्त्र हैं ऐसे उन भरतको अपने तथा परराष्ट्रकी कुछ भी चिन्ता थी, यदि चिन्ता नहीं थी, तो केवल तत्र अर्थात् स्वराष्ट्रकी ही चिन्ता थी ॥१३७॥ उन्होंने अपना अज्ञान नष्ट करनेके लिए ही छह गुणोंका अभ्यास किया था क्योंकि जब वे शत्रुरहित पृथिवीका पालन करते थे तब उन्हें सचि विग्रह आदिकी चर्चा क्या प्रयोजन था ॥१३८॥ अतिशय विद्वान् महाराज भरत केवल प्रसिद्धिके लिए ही कभी कभी बड़े उत्साहके साथ राजपुत्रोंके लिए आचीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन चार राजविद्याओंका व्याख्यान करते थे ॥१३९॥ वे कभी कभी निधियो और रत्नोंका भी निरोक्षण करते थे । क्योंकि निधियों और रत्नोंमेंसे कुछ तो उनके भाण्डारमें थे और कुछ उनकी सेनामें थे ॥१४०॥ कभी-कभी वे सवज्ञदेवका मत प्रकट करते हुए धर्मशास्त्रमें जो कुछ विवाद थे उन सबका निराकरण करते थे ॥१४१॥ भगवान् अरहन्तदेवके बड़े हुए तत्त्वोम जिन किन्हींको सन्देह उत्पन्न होता था उन्हें वे उस सन्देहसे हटाकर तत्त्वोंका यथाथ निणय कराते थे ॥१४२॥ इसी प्रकार वे धर्मशास्त्रके अधमें और कामशास्त्रमें अपना पूरा चातुर्य इस तरह प्रकट करते थे कि फिर इस ससारमें उनके समान दूसरा चतुर नहीं रह जाता था ॥१४३॥ हस्तितन्त्र और अश्वतन्त्रमें महाराज भरतकी स्वतन्त्रता देखकर उन शास्त्रोंके जाननेवाले लोगोंको यही विश्वास हो जाता था कि इन सबके मूल शास्त्रोंके कर्ता यही हैं ॥१४४॥ आयुर्वेद के विषयमें तो सब लोग निधियोंके स्वामी भरतकी बिना किसी शकाके यही प्रशंसा करते थे कि यह दीर्घायु क्या मूर्तिमान् आयुर्वेद ही है अर्थात् आयुर्वेदने ही क्या भरतका शरीर धारण किया है ॥१४५॥ इसी प्रकार सज्जन लोग यह भी मानते थे कि वे व्याकरण विद्यामें कुशल हैं, शब्दालकारमें निपुण हैं, और छन्दशास्त्रके प्रतिबिम्ब हैं ॥१४६॥ निमित्तशास्त्र सबसे पहले उन्हींके बनाये हुए है, शकुनशास्त्र उन्हींके कहे हुए है और ज्योतिष शास्त्रका ज्ञान उन्हीं

१ चक्रिणा । २ पर्याप्तम् । अल्पित्यर्थः । ३ सचिविग्रहमात्रादिविचारण । ४ आचीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्ड नीतिश्चतस्रो राजविद्या । ५ कृतोत्साह । ६ वदति स्म । ७ सम्यस्थाने परिग्रहे बभूवुरित्यर्थः । ८ विप्रवादा । ९ निराकृतवान् । १० प्रकटीकृतम् । ११ सवज्ञमतम् । १२ सधयात् । १३ निणयमकारयत् । १४ नीति शास्त्रार्थः । १५ कुशल । १६ गजशास्त्रे । १७ मूलशास्त्रस्य । १८ इति बुद्धिः । १९ वचनशास्त्र । २० नि धङ्कम् । २१ व्याकरणशास्त्रमधीतवान् । २२ कुशल । २३ शब्दालकारे । २४ प्रतिनिधिः । २५ तदुपज्ञनिमित्तानि ल म । तेन प्रथमोक्तम् । २६ शकुनशास्त्रम् । २७ तन प्रथममपक्रान्तम् । २८ तस्य भरतस्य सृष्टिः । २९ ज्योतिषशास्त्रम् । ३० तेन कारणेन । ३१ निमित्तादित्रयम् ।

न निमित्त^१ निमित्ताना^२ तन्त्रे तन्त्रे मन्त्राकुने । दैवज्ञाने^३ परं दैवमिन्द्रमृग्यमन्त्रां विष्णुम् ॥१२८॥
 तत्त्वभूतौ समुद्भूतमभूत पुन्यलक्षणम् । उदाहरणमन्यत्र लभितं येन नवनो ॥१४९॥
 अन्येष्वपि कलाशास्त्रग्रंथेषु कृतागमाः । तमेवादृशं मालोच्य मन्त्रांगान् च्यवन्निपु^४ ॥१५०॥
 येनाम्य सहजा प्रज्ञा पर्वजन्मानुषद्विर्णा^५ । तेनैषा विद्वद्विद्यासु जाना परिणिनि परा ॥१५१॥
 तथैवैषु शास्त्रेषु कलासु मन्त्रासु च । लोके न समन्ति प्राप्य तद्विद्याना मनोऽभवत् ॥१५२॥
 किमत्र बहुनोक्तेन प्रजापारमिता मनुः । इत्यस्य लोफुत्तम्य म भेजे सूत्रधारनाम् ॥१५३॥
 राजमिद्वान्ततत्त्वज्ञो^६ धर्मशास्त्रार्थतत्त्वविन् । परिगृह्यतः कलाज्ञाने मोऽभून्महिं सुमेधमाम् ॥१५४॥
 इत्यादिगज^७ तन्त्रमन्त्राङ्गो राजर्षिनायकम्^८ । तन्मात्रं भौममिन्द्रस्य दिशामून्लित यथा ॥१५५॥

मालिनी

इति^१ सकलकलानामेकमोक्तं^२ म चक्री
 कृतमतिमिर्जर्य^३ सगत मविचित्रमन ।
 बुधसदसि^४ सदस्थान् बोधयन् विश्वविद्या
 व्यवृणुत^५ बुधचक्रीत्युच्छलन्कीर्तिकेनु^६ ॥१५६॥

सृष्टि है इसलिए उक्त तीनो शास्त्र उन्हीके मत है ऐसा समझना चाहिए ॥१४७॥ वे
 निमित्त शास्त्रोके निमित्त हैं, और तन्त्र, मन्त्र, शकुन तथा ज्योतिष शास्त्रमे उत्तम अधिष्ठाता
 हैं इस प्रकार सब लोगोमे अधिक मान्यताको प्राप्त हुए थे ॥१४८॥ महाराज भरतके उत्पन्न
 नेपर पुरुषके सब लक्षण उत्पन्न हुए थे इसलिए दूसरी जगह उनके शरीरके उदाहरण ही
 जाते थे ॥१४९॥ शास्त्रोके जाननेवाले पुरुष ऊपर कहे हुए शास्त्रोके सिवाय अन्य कला-
 श्त्रोके संग्रहमे भी भरतको ही दर्पणके समान देखकर सगयके अंगोसे विरत होते थे अर्थात्
 अपने-अपने सशय दूर करते थे ॥१५०॥ चूँकि उनकी स्वाभाविक बुद्धि पूर्वजन्मसे सम्पर्क रखने-
 ली थी इसलिए ही उनकी समस्त विद्याओमे उत्तम प्रगति हुई थी ॥१५१॥ इस प्रकार
 समस्त शास्त्र और समस्त कलाओमे प्रतिष्ठा पाकर वे भरत उन विद्याओके जाननेवालोमे
 अन्य हुए थे ॥१५२॥ इस विषयमे बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? इतना कहना ही पर्याप्त है
 बुद्धिके पारगामी कुलकर भरत समस्त लोकाचारके सूत्रधार हो रहे थे ॥१५३॥ वे राज-
 शास्त्रके तत्त्वोको जानते थे, धर्मशास्त्रके जानकार थे, और कलाओके ज्ञानमे प्रसिद्ध थे । इस
 प्रकार उत्तम विद्वानोके मस्तकपर सुशोभित हो रहे थे अर्थात् सवमे श्रेष्ठ थे ॥१५४॥ अहो,
 उनका प्रथम राज्य कैसा आश्चर्य करनेवाला है, यह सम्राट् है, राजर्षियोमे मुख्य है, इनका
 सार्वभौम पद भी आश्चर्यजनक है इस प्रकार उनका यश समस्त दिशाओमे उछल रहा था
 ॥१५५॥ इस प्रकार जो समस्त कलाओका एकमात्र स्थान है, जो बुद्धिमान् पुरुषोके साथ
 विनाशी मित्रता करना चाहता है और 'यह विद्वानोमे चक्रवर्ती है अथवा विद्वान् चक्रवर्ती
 है' इस प्रकार जिसकी कीर्तिरूपी पताका फहरा रही है ऐसा वह चक्रवर्ती भरत विद्वानोकी
 सभामे समस्त विद्याओका उपदेग देता हुआ समस्त विद्याओका व्याख्यान करता था ॥१५६॥

१ कारणम् । २ निमित्तशास्त्राणाम् । ३ ज्योतिष शास्त्रे । ४ स मतोऽधिकम् इ० । स गतोऽधिकम् ल०, म० ।
 ५ सपूर्णशास्त्रम् । ६ मुकुरम् । ७ विरमन्ति स्म । ८ कारणेन । ९ अनुसवन्धिनी । १० नृपविद्यास्वरूपज्ञ ।
 ११ आदिराजस्य प्रथा । १२ राजर्षिनायकस्य प्रथा । १३ सर्वभूमीगस्य प्रकाश । १४ मुख्य । १५ गृह ।
 १६ अविनाशी । १७ सदसि योग्यान् । १८ विवरणमकरोत् । १९ विद्वज्जन ।

जिनविहितमनून सस्मरन् धर्ममार्गं
 स्वयमधिगततत्त्वो बोधयन् मागमन्यान् ।
 कृतमतिररिर्हर्षा क्षमां पालयन्निःसपत्ना
 चिरमरमत भोगैर्भूरिसारै स सम्राट् ॥१५७॥

शार्दूलविश्रीडितम्

लक्ष्मीवारवनितासमागमसुखस्यैकाधिपत्यं दधत्
 दूरोत्सारितदुर्णयं प्रशमिनीं तेजस्वितामुद्वहन् ।
 यायोपार्जितवित्तकामघटनं शस्त्रे च शस्त्रे कृती
 राजर्षिं परमोदयो जिनजुषा'मग्रेसर सोऽभवत् ॥१५८॥

इत्थार्पे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे
 भरतराजस्वप्नदर्शनतत्त्वलोपवर्णनं नाम एकचत्वारिंशत्तमं पत्रम् ॥४१॥



जिसने समस्त तत्त्वोंको जान लिया है और जिसकी बुद्धि परिपक्व है ऐसा सम्राट् भरत, जिनेन्द्रदेवके कहे हुए न्यूनतारहित धर्ममागका स्मरण करता हुआ तथा वही माग अन्य लोगोंको समझाता हुआ और शत्रुरहित सम्पूर्ण पृथिवीका पालन करता हुआ सारपूर्ण भोगोंके द्वारा चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा था ॥१५७॥ जो लक्ष्मी और सरस्वतीके समागमसे उत्पन्न हुए सुखके एक स्वामित्वको धारण कर रहा है, जिसने समस्त दुष्ट नय दूर हटा दिये हैं, जो शान्तियुक्त तेजस्वीपनेको धारण कर रहा है जिसने न्यायपूर्वक कमाये हुए धनसे कामका संयोग प्राप्त किया है, जो शस्त्र और शास्त्र दोनोंमें ही निपुण है राजर्षि है और जिसका अभ्युदय अतिशय उत्कृष्ट है ऐसा वह भरत जिनेन्द्रदेवकी सेवा करनेवालोंमें अग्रेसर अर्थात् सबसे श्रेष्ठ था ॥१५८॥

इस प्रकार आपनामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिषष्टिलक्षण महापुराणसंग्रहके
 मापानुवादम् भरतराजके स्वप्न तथा उनके फलका वर्णन
 करनेवाला इकतालीसवां पत्र समाप्त हुआ ।



द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व

^१मध्येमभमयान्येयुर्निविष्टो^२ हरिविष्टरे । क्षात्र^३ वृत्तमुपादिक्षन्महितान्^४ पाथिवान् प्रति ॥१॥
 श्रूयतां भो महात्मानः सर्वे^५ क्षत्रियपुङ्गवा । क्षत्रत्राणे नियुक्ता रथं^६ यूयमायनं वेधया ॥२॥
 तत्त्राणे च नियुक्तानां वृत्तं वः पञ्चधोदितम् । तन्निगम्य^७ यथाम्नायं प्रवर्तन् प्रजान्ति ॥३॥
 तच्चेदं कुलमत्यात्मप्रजानामनुपालनम् । समञ्जसत्वं चैन्येवमुद्दिष्टं पञ्चभेदमाह ॥४॥
 कुलानुपालनं तत्र कुलान्नायानुरक्षणम् । कुलोचितसमाचारपरिरक्षणलक्षणम् ॥५॥
 क्षत्रियाणां कुलाम्नायं कीदृशश्चेन्नगम्यताम्^८ । आद्येन वेधया सृष्टं^९ सर्गोऽयं क्षत्रपूर्वकं^{१०} ॥६॥
 स चैव भारत^{११} वर्षमवतीर्णां दिवोऽग्रतः । पुरा^{१२} भवे ममाराध्य रत्नत्रितयमर्जितम् ॥७॥
 द्विरष्टौ भावनास्तत्र तीर्थकृत्वोपपादिनी । भावयित्वा शुभोदकां द्युलोकाग्रमविष्टितं^{१३} ॥८॥
 तेनास्मिन् भारते वर्षे धर्मतीर्थप्रवर्तने । ततः^{१४} कृतावतारं क्षात्रमर्गं प्रवर्तितं ॥९॥
 तत्कथं कर्मभूमित्वादद्यत्वे द्वितीयं प्रजा । कर्तव्या^{१५} रक्षणीयंका प्रजान्या रक्षणोयता ॥१०॥
 रक्षणाभ्युद्यता येऽत्र क्षत्रिया स्युस्तदन्वया । मोऽन्वयोऽनादिसंतत्या वीजवृक्षवद्विद्यते ॥११॥

अथानन्तर—किसी एक दिन सभाके बीचमे सिंहासनपर बैठे हुए भरत डकट्ठे हुए राजाओके प्रति क्षात्रधर्मका उपदेश देने लगे ॥१॥ वे कहने लगे कि हे समस्त क्षत्रियोमे श्रेष्ठ महात्माओ, आप लोगोको आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेवने दुखी प्रजाकी रक्षा करनेमे नियुक्त किया है ॥२॥ दुखी प्रजाकी रक्षा करनेमे नियुक्त हुए आप लोगोका धर्म पाँच प्रकारका कहा है उसे सुनकर तुम लोग शास्त्रके अनुसार प्रजाका हित करनेमे प्रवृत्त होओ ॥३॥ वह तुम्हारा धर्म कुलका पालन करना, बुद्धिका पालन करना, अपनी रक्षा करना, प्रजाकी रक्षा करना और समजसपर्ना इस प्रकार पाँच भेदवाला कहा गया है ॥४॥ उनमे-से अपने कुल-म्नायकी रक्षा करना और कुलके योग्य आचरणकी रक्षा करना कुल-पालन कहलाता है ॥५॥ अब क्षत्रियोका कुलाम्नाय कैसा है ? सो सुनिए । आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेवने क्षत्रपूर्वक ही इस सृष्टिकी रचना की है अर्थात् सबसे पहले क्षत्रियवर्णकी रचना की है ॥६॥ जिन्होने पहले भवमें अतिशय श्रेष्ठ रत्नत्रयकी आराधना कर तथा तीर्थ कर पद प्राप्त करानेवाली और शुभ फल देनेवाली सोलह भावनाओका चिन्तवन कर स्वर्गलोकके सबसे ऊपर अर्थात् सर्वार्थसिद्धिमे निवास किया था वे ही भगवान् सर्वार्थसिद्धिसे आकर इस भारतवर्षमे अवतीर्ण हुए हैं ॥७-८॥ जिसमे धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करनी है ऐसे इस भारतवर्षमे सर्वार्थसिद्धिसे अवतार लेकर उन्होने क्षत्रियोकी सृष्टि प्रवृत्त की है ॥९॥ वह क्षत्रियोकी सृष्टि किस प्रकार प्रवृत्त हुई थी ? इसका समाधान यह है कि आज कर्मभूमि होनेसे प्रजा दो प्रकारकी पायी जाती है । उनमे एक प्रजा तो वह है जिसकी रक्षा करनी चाहिए और दूसरी वह है जो रक्षा करनेमे तत्पर है ॥१०॥ जो प्रजाकी रक्षा करनेमे तत्पर है उसीकी वशपरम्पराको क्षत्रिय कहते हैं यद्यपि यह वश अनादिकालकी सन्ततिसे वीज वृक्षके समान अनादि कालका है तथापि

१ सभामध्ये । २ निविष्टो ल०, म० । ३ क्षत्रियमवन्वि । ४ मिलितान् । ५ सर्व-प०, ल०, म० । ६ भव प० । ७ श्रुत्वा । ८ श्रूयताम् । ९ क्षत्रशब्द । १० क्षेत्रम् । ११ पूर्वस्मिन् । १२ आश्रित । १३ कृतावतारेण इ०, स०, अ० । १४ रक्षितु योग्या ।

जिनविहितमनून सस्मरन् धममागं
 स्थथमधिगतत वो बोधयन् मागमन्यान् ।
 वृत्तमतिरखिला क्षमां पालयन्नि सपत्नां
 चिरभरमत भोगैभूरिसारै स सम्राट् ॥१५७॥

शार्दूलविक्रीडितम्

लक्ष्मीवाग्बनितासमागमसुरस्यैकाधिपत्य दधत्
 दूरोत्सारितदुर्जय प्रशमिनीं तेजस्वितामुद्वहन् ।
 यायोपार्जितवित्तकामघटन शस्त्रे च शस्त्रे कृती
 राजर्षि परमोदयो जिनजुषा'मग्रेसर सोऽभवत् ॥१५८॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे
 भरतराजस्वप्नदर्शनतत्फलोपवर्णन नाम एकचत्वारिंशत्तमं पत्र ॥४१॥



जिसने समस्त तत्त्वोंको जान लिया है और जिसकी बुद्धि परिपक्व है ऐसा सम्राट् भरत, जिनेन्द्रदेवके कहे हुए न्यूनतारहित धर्ममागका स्मरण करता हुआ तथा वही माग अन्य लोगोंको समझाता हुआ और शत्रुरहित सम्पूर्ण पृथिवीका पालन करता हुआ सारपूर्ण भोगोंके द्वारा चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा था ॥१५७॥ जो लक्ष्मी और सरस्वतीके समागमसे उत्पन्न हुए सुखके एक स्वामित्वको धारण कर रहा है, जिसने समस्त दुष्ट नय दूर हटा दिये हैं, जो शान्तियुक्त तेजस्वीपनेको धारण कर रहा है, जिसने यायपूवक कमाये हुए धनसे कामका संयोग प्राप्त किया है जो शस्त्र और शास्त्र दोनोंमें ही निपुण है, राजर्षि है और जिसका अभ्युदय अतिशय उत्कृष्ट है ऐसा वह भरत जिनेन्द्रदेवकी सेवा करनेवालोंमें अग्रेसर अर्थात् सबसे श्रेष्ठ था ॥१५८॥

इस प्रकार आपनामसे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण महापुराणसंग्रहके
 आपानुवादमे भरतराजके स्वप्न तथा उनके फलका वर्णन
 करनेवाला इकतालीसवां पत्र समाप्त हुआ ।



द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व

^१मध्येसभमथान्येद्युर्निविष्टो^२ हरिविष्टरे । क्षात्रं^३ वृत्तमुपादिक्ष्वसहितान्^४ पाथिवान् प्रति ॥१॥
 श्रूयतां भो महात्मानः सर्वे^५ क्षत्रियपुङ्गवा । क्षतत्राणे नियुक्ता रथे^६ वृयमाणेन वेधया ॥२॥
 तत्राणे च नियुक्तानां वृत्तं च पञ्चभोदितम् । तन्निगम्य^७ यथाज्ञाय प्रवर्तं च प्रजान्ति ॥३॥
 तच्चेदं कुलमत्यात्मप्रजानामनुपालनम् । समञ्जसत्वं चेत्येवमुद्दिष्टं पञ्चभेदमाह ॥४॥
 कुलानुपालनं तत्र कुलान्नायानुरक्षणम् । कुलोचितसमाचारपरिरक्षणलक्षणम् ॥५॥
 क्षत्रियाणां कुलान्नायः कीदृशश्चेन्निश्चयताम् । आद्येन वेधया सृष्टं मर्गोऽयं क्षत्रपूर्वक^८ ॥६॥
 स चैव भारत^९ वर्षमवतीर्णो दिवोऽग्रतः । पुरा^{१०} भवे समाराध्य रत्नत्रितयमर्जितम् ॥७॥
 द्विरष्टौ भावनास्तत्र तीर्थकृत्वोपपादिनी । भावयित्वा शुभोदकां शुलोकाग्रमधिष्ठित^{११} ॥८॥
 तेनास्मिन् भारते वर्षे धर्मतीर्थप्रवर्तने । ततः^{१२} कृतावतारेण क्षात्रमर्गः प्रवर्तितः ॥९॥
 तत्कथं कर्मभूमित्वादद्यत्वे द्वितीया प्रजा । कर्तव्या^{१३} रक्षणीयका प्रजान्या रक्षणोद्यता ॥१०॥
 रक्षणाभ्युद्यता येऽत्र क्षत्रियाः स्युस्तदन्वयाः । सोऽन्वयोऽनादिसत्तया बीजवृक्षवद्विद्यते ॥११॥

अथानन्तर-किसी एक दिन सभाके बीचमे सिंहासनपर बैठे हुए भरत डकट्टे हुए राजाओके प्रति क्षात्रधर्मका उपदेश देने लगे ॥१॥ वे कहने लगे कि हे समस्त क्षत्रियोमे श्रेष्ठ महात्माओ, आप लोगोको आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेवने दुखी प्रजाकी रक्षा करनेमे नियुक्त किया है ॥२॥ दुखी प्रजाकी रक्षा करनेमे नियुक्त हुए आप लोगोका धर्म पाँच प्रकारका कहा है उसे सुनकर तुम लोग शास्त्रके अनुसार प्रजाका हित करनेमे प्रवृत्त होओ ॥३॥ वह तुम्हारा धर्म कुलका पालन करना, बुद्धिका पालन करना, अपनी रक्षा करना, प्रजाकी रक्षा करना और समजसपर्ना इस प्रकार पाँच भेदवाला कहा गया है ॥४॥ उनमे-से अपने कुल-म्नार्थकी रक्षा करना और कुलके योग्य आचरणकी रक्षा करना कुल-पालन कहलाता है ॥५॥ अब क्षत्रियोका कुलान्नाय कैसा है ? सो सुनिए । आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेवने क्षत्रपूर्वक ही इस सृष्टिकी रचना की है अर्थात् सबसे पहले क्षत्रियवर्णकी रचना की है ॥६॥ जिन्होंने पहले भवमे अतिशय श्रेष्ठ रत्नत्रयकी आराधना कर तथा तीर्थ कर पद प्राप्त करानेवाली और शुभ फल देनेवाली सोलह भावनाओका चिन्तन कर स्वर्गलोकके सबसे ऊपर अर्थात् सर्वार्थसिद्धिमे निवास किया था वे ही भगवान् सर्वार्थसिद्धिसे आकर इस भारतवर्षमे अवतीर्ण हुए हैं ॥७-८॥ जिसमे धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करनी है ऐसे इस भारतवर्षमे सर्वार्थसिद्धिसे अवतार लेकर उन्होंने क्षत्रियोकी सृष्टि प्रवृत्त की है ॥९॥ वह क्षत्रियोकी सृष्टि किस प्रकार प्रवृत्त हुई थी ? इसका समाधान यह है कि आज कर्मभूमि होनेसे प्रजा दो प्रकारकी पायी जाती है । उनमे एक प्रजा तो वह है जिसकी रक्षा करनी चाहिए और दूसरी वह है जो रक्षा करनेमे तत्पर है ॥१०॥ जो प्रजाकी रक्षा करनेमे तत्पर है उसीकी वशपरम्पराको क्षत्रिय कहते हैं यद्यपि यह वंश अनादिकालकी सन्ततिसे बीज वृक्षके समान अनादि कालका है तथापि

१ सभामध्ये । २ निविष्टो ल०, म० । ३ क्षत्रियसबन्धि । ४ मिलितान् । ५ सर्व-प०, ल०, म० । ६ भव प० । ७ श्रुत्वा । ८ श्रूयताम् । ९ क्षत्रशब्द । १० क्षेत्रम् । ११ पूर्वस्मिन् । १२ आश्रित । १३ कृतावतारेण इ०, स०, अ० । १४ रक्षितु योग्या ।

विशपतस्तु तत्सर्गं क्षत्रजालव्यपेक्षया^१ । तथा समुचितचारं प्रजार्थं न्यायवृत्तिता ॥१२॥
 स तु पायोऽनतिमान्त्या धमस्याथसमजनम् । रक्षणं वधनं चास्य पात्रे च विनियोजनम् ॥१३॥
 सैषा चतुष्टयी वृत्तिर्न्याय सन्निरदीरित^२ । जैनधर्मानुवृत्तिश्च न्यायो लोकोत्तरो मत ॥१४॥
 दिव्यमूर्तेरुपस्थं जिनादुत्पादयजिनाम् । रत्नत्रयं तु^३ तद्योनिनृपास्तस्माद्योनिना ॥१५॥
 सतो महावयो पद्मा नृपा लोकोत्तमा मता । पथिस्थिता स्वयं धर्म्यं स्थापयन्त परानपि ॥१६॥
 तैस्तु सवप्रयत्नेन कार्यं स्वान्वयरक्षणम् । तत्पालनं कथं कायमिति चेत्तदनुयते^४ ॥१७॥
 स्वयं महावयस्त्वेन महिम्नि क्षत्रिया रियता । धर्मास्थया न शोपादि^५ ग्राह्यं तै परलिङ्गिनाम् ॥१८॥
 तच्छोपादिग्रहे दोषं कश्चेन्माहात्म्यविच्युति । अपाया यहवदचास्मिन्नस्तत्परिव्रजनम् ॥१९॥
 माहात्म्यप्रच्युतिस्तावत् कृत्वाऽऽयस्य^६ शिरोनतिम् । तत्^७ शोपायुपादाने क्वाश्चिद्वृष्टत्वात्मन ॥२०॥
 प्रक्षिपन् परपापण्डी विपपुष्पाणि निक्षिपेत् । यद्यस्य मूर्ध्नि न वेव स्यादपायो महीपते ॥२१॥
 वशीकरणपुष्पाणि निक्षिपद्यदि मोहने^८ । ततोऽयं मूढवद्वृत्तिरुपयादन्यवश्यताम् ॥२२॥
 तच्छोपाशीवच^९ शान्तिवचनादन्यलिङ्गिनाम्^{१०} । पार्थिवैः परिहृतव्यं भवेन्न्यक्^{११} कृत्वाऽऽयस्य^{१२} ॥२३॥

विशपता इतनी है कि क्षेत्र और कालकी अपेक्षासे उसकी सृष्टि होती है । तथा प्रजाके लिए न्यायपूर्वक वृत्ति रखना ही उनका योग्य आचरण है ॥११-१२॥ धमका उल्लेखन न कर वधनका कमाना रक्षा करना, बढ़ाना और योग्य पात्रमें दान देना ही उन क्षत्रियोंकी न्याय कहलाता है ॥१३॥ इस चार प्रकारकी प्रवृत्तिको सज्जन पुरुषोंने क्षत्रियोका न्याय कहा है तथा जैनधर्मके अनुसार प्रवृत्ति करना ससारमें सबसे उत्तम न्याय माना गया है ॥१४॥ दिव्य मूर्तिको धारण करनेवाला श्री जिनेन्द्रदेवसे उत्पन्न होकर तीर्थ वरोंको उत्पन्न करनेवाला जो रत्नत्रय है वही क्षत्रियोकी योनि है अर्थात् क्षत्रिय पदकी प्राप्ति रत्नत्रयके प्रतापसे ही होती है । यही कारण है कि क्षत्रिय लोग अयोनिज अर्थात् बिना योनिके उत्पन्न हुए कहलाते हैं ॥१५॥ इसलिए बड़े बड़े वशोंमें उत्पन्न हुए राजा लोग लोकोत्तम पुरुष माने गये हैं । ये लोग स्वयं धममागमें स्थित रहते हैं तथा अय लोगोंको भी स्थित रखते हैं ॥१६॥ उन क्षत्रियोंको सवप्रकारके प्रयत्नोंसे अपने वशकी रक्षा करनी चाहिए । वह वशकी रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए यदि तुम लोग यह जानना चाहते हो तो मैं आगे कहता हूँ ॥१७॥ बड़े-बड़े वशोंमें उत्पन्न होनेसे क्षत्रिय लोग स्वयं बडप्पनमें स्थिर हैं इसलिए उन्हें अयमर्तियोंके धममें श्रद्धा रखकर उनके शपाक्षत आदि ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥१८॥ उनके शपाक्षत आदिके ग्रहण करनेमें क्या दोष है ? कदाचित् कोई यह कहे तो उसका उत्तर यह है कि उससे अपने महत्त्वका नाश होता है और अनेक विघ्न या अनिष्ट आते हैं इसलिए उनका परित्याग हो कर देना चाहिए ॥१९॥ अय मतावलम्बियोंको शिरोनति करनेसे अपने महत्त्वका नाश हो जाता है इसलिए उनके शपाक्षत आदि होनेसे अपनी निवृष्टता हो सकती है ॥२०॥ सम्भव है द्वेष करनेवाला कोई पाखण्डी राजाके शिरपर विपपुष्प रख दे तो इस प्रकार भी उसका नाश हो सकता है ॥२१॥ यह भी हो सकता है कि कोई वशीकरण करनेके लिए इसके शिरपर वशीकरण पुष्प रख दे तो फिर यह राजा पागलके समान आचरण करता हुआ दूसराकी वश्यताको प्राप्त हो जावेगा ॥२२॥ इसलिए राजाआवों अन्यमर्तियोंके शपाक्षत आग्नीर्वाद और शान्तिवचन

१ भरतभैरववशिष्टपिण्डादिनाल । २-रत्नत्रय व० ल० म० । ३ क्षत्रियाणामुत्पत्तिस्थानम् । ४ तस्मात् कारणान् । ५ अनुकल्प्यते ।-दनुकल्प्यते व० ल० म० । ६ न्यायतस्मान्नावादिभ्यम् । ७ अयतिङ्गित । ८ शोपायिनां सारागान् । ९ मोहन निमित्तम् । १० तत् कारणान् । ११ नातिमन्त्रपुष्पाह्वाचनादि । १२ नीचगुणता । १४ तच्छोपायिनां प्रचारण ।

जैनास्तु पार्थिवास्तेषामहंपादोपसेविनाम् । तच्छेषानुमतिर्न्याय्या यत् पापक्षयो भवेत् ॥२४॥

रत्नत्रितयमूर्तित्वादादिक्षत्रियव्रजजः । जिनाः सनाभयोऽमीषाम् तस्मच्छेषवारणम् ॥२५॥

यथा हि कुलपुत्राणां माल्य गुरुशिरोद्धृतम् । मान्यमेवं जिनेन्द्राऽधिस्पर्शान्माल्यादिभूषितम् ॥२६॥

कथं मुनिजनादेपां शेषोपादानमन्यपि । नाशङ्क्य तत्सजातीयास्ते राजपरमर्षयः ॥२७॥

अक्षत्रियाश्च वृत्तस्था क्षत्रिया एव दीक्षिताः । यतो रत्नत्रयायत्तजन्मना तेषां तदगुणाः ॥२८॥

ततः स्थितमिदं जैनान्मतादन्यमतस्थिताः । क्षत्रियाणां न शेषादिप्रदानेऽधिकृता इति ॥२९॥

कुलानुपालने यत्नमतं कुर्वन्नु पार्थिवा । अन्यथाऽन्यं प्रतार्यन् पुगणाभाग्यदेजनान् ॥३०॥

कुलानुपालनं प्रोक्तं वक्ष्ये मत्त्यनुपालनम् । मतिर्हि ताहितज्ञानमात्रिकामुत्रिकार्ययोः ॥३१॥

तत्पालनं कथं स्याच्चेदविद्यापरिवर्जनान् । मिथ्याज्ञानमविद्या स्यादतत्त्वे तत्त्वभावना ॥३२॥

आप्तोऽप्यज्ञं भवेत्तत्त्वमाप्तो दोषावृत्तिः क्षयात् । तस्मात्तन्मतमभ्यस्येन्मनोमलमपासितुम् ॥३३॥

आदिका परित्याग कर देना चाहिए अन्यथा उनके कुलमे हीनता हो सकती है ॥२३॥ राजा लोग जैन हैं इसलिए अरहन्तदेवके चरणोकी सेवा करनेवाले उन राजाओको अरहन्तदेवके शेषाक्षत आदि ग्रहण करनेकी अनुमति देना न्याययुक्त ही है क्योंकि उससे उनके पापका क्षय होता है ॥२४॥ रत्नत्रयकी मूर्तिरूप होनेसे आदि क्षत्रिय श्री वृषभदेवके वंशमे उत्पन्न हुए जिनेन्द्रदेव इन राजाओके एक ही गोत्रके भाई-बन्धु हैं इसलिए भी इन्हे उनके शेषाक्षत आदि धारण करना चाहिए । भावार्थ—रत्नत्रयकी मूर्ति होनेसे जिस प्रकार अन्य तीर्थंकर भगवान् वृषभदेवके वंशज कहलाते हैं उमी प्रकार ये राजा लोग भी रत्नत्रयकी मूर्ति होनेसे भगवान् वृषभदेवके वंशज कहलाते हैं । एक वंशमे उत्पन्न होनेसे ये सब परस्परमे एक गोत्रवाले भाई-बन्धु ठहरते हैं इसलिए राजाओको अपने एकगोत्री जिनेन्द्रदेवके शेषाक्षत आदिका ग्रहण करना उचित ही है ॥२५॥ जिस प्रकार कुलपुत्रोको गुरुदेवके शिरपर धारण की हुई माला मान्य होती है उसी प्रकार जिनेन्द्रदेवके चरणोके स्पर्शसे सुशोभित हुई माला आदि भी राजाओको मान्य होनी चाहिए ॥२६॥ कदाचित् कोई यह कहे कि राजाओको मुनियोसे शेषाक्षत आदि किस प्रकार ग्रहण करना चाहिए तो उनकी यह शका ठीक नहीं है क्योंकि राजर्षि और परमर्षि दोनों ही सजातीय हैं ॥२७॥ जो क्षत्रिय नहीं हैं वे भी दीक्षा लेकर यदि सम्यक्चारित्र धारण कर लेते हैं तो क्षत्रिय ही हो जाते हैं इसलिए रत्नत्रयके अधीन जन्म होनेसे मुनिराज भी राजाओके समान क्षत्रिय माने जाते हैं ॥२८॥ उपर्युक्त उल्लेखसे यह बात निश्चित हो चुकी कि जैन मतसे भिन्न मतवाले लोग क्षत्रियोको शेषाक्षत आदि देनेके अधिकारी नहीं हैं ॥२९॥ इसलिए राजा लोगोको अपने कुलकी रक्षा करनेमे सदा यत्न करते रहना चाहिए अन्यथा अन्य मतावलम्बी लोग झूठे पुराणोका उपदेश देकर उन्हे ठग लेंगे ॥३०॥ इस प्रकार क्षत्रियोका कुलानुपालन (कुलके आम्नायकी रक्षा करना) नामका पहला धर्म कह चुके अब दूसरा मत्त्यनुपालन (बुद्धिकी रक्षा करना) नामका धर्म कहते हैं । इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी पदार्थोके हित-अहितका ज्ञान होना बुद्धि कहलाती है ॥३१॥ उस बुद्धिका पालन किस प्रकार हो सकता है ? यदि यह जानना चाहो तो उसका उत्तर यह है कि अविद्याका नाश करनेसे ही उसका पालन होता है । मिथ्या ज्ञानको अविद्या कहते हैं और अतत्त्वोमे तत्त्वबुद्धि होना मिथ्या ज्ञान कहलाता है ॥३२॥ जो अरहन्तदेवका कहा हुआ हो वही तत्त्व

राजविद्यापरिज्ञानादहिकेऽर्थे दृढा मति । धर्मशास्त्रपरिज्ञानान्मतिर्लोकद्वयाभिता ॥३४॥

क्षत्रियास्त्रीर्थमुत्पाद्य येऽभूवन् परमपथ । त महादेवशब्दामिधेया माहात्म्ययोगत ॥३५॥

आदिक्षत्रियवृत्तस्था पाथिना ये महान्वया । महत्वाद्युगतास्तऽपि महादेवप्रया गता ॥३६॥

तदेव्यश्च महादेव्यो महामिजनयोगत । महद्भिः परिणीतत्वात् प्रसूतेश्च महात्मनाम् ॥३७॥

इत्येवमादिभ्यते पक्षे जनैरन्यमताश्रयी । यदि कश्चित् प्रतिग्र्याग्निध्यात्पोपहताशय ॥३८॥

वयमव महादेवा जगन्निस्तारका वयम् । नास्मदासात् परोऽस्त्यासो मत मास्मन्मतापरम् ॥३९॥

इत्यग्र ब्रूमहे नैतत्सार ससारवारिधे । य समुत्तरणोपायः स मार्गो जिनदेशित ॥४०॥

आसोऽहं वीतदोषत्वादासम्मन्यास्ततोऽपर । तेषु वागात्मभाग्यातिशयानामविभावनात् ॥४१॥

वागाद्यतिशयोपेत साव सर्वायद्भिज्जगत् । स्यादास परमधी च परमात्मा सनातन ॥४२॥

स वागतिशयो ज्ञेयो येनाय विभुरग्रमात् । वचसैकेन दिव्येन प्रीणयत्यखिलां समाम् ॥४३॥

तथाऽऽत्मातिशयोऽप्यस्य दोषावरणसक्षयात् । अनन्तज्ञानद्वन्द्वीयसुखातिशयसन्निधि ॥४४॥

प्राप्तिहार्यमयी भूतिरद्भूतिश्च समावने । गणाश्च द्वादशेत्येव स्यान्नाग्यातिशयोऽहत् ॥४५॥

हो सकता है और अरहन्त भी वही हो सकता है जो ज्ञानावरण दशनावरण मोहनीय और अन्तराय कमका क्षय कर चुका हो । इसलिए अपने मनका मल दूर करनेके लिए अरहन्तदेवके मतका अभ्यास करना चाहिए ॥३३॥ राजविद्याका परिज्ञान होनेसे इस लोक सम्बन्धी पदार्थों में बुद्धि दृढ हो जाती है और धर्मशास्त्रका परिज्ञान होनेसे इस लोक तथा परलोक दोनों लोक सम्बन्धी पदार्थोंमें दृढ हो जाती है ॥३४॥ जो क्षत्रिय तीर्थ उत्पन्न कर परमपि हो गये हैं वे अपने माहात्म्यके योगसे महादेव कहलाते हैं ॥३५॥ बड़े-बड़े वशोंमें उत्पन्न हुए जो राजा लोग आदिक्षत्रिय-भगवान् वृषभदेवके चारित्र्यमें स्थिर रहते हैं वे भी माहात्म्यके योगसे महादेव इस प्रसिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥३६॥ ऐसे पुरुषोंकी स्त्रिया भी बड़े पुरुषोंके साथ सम्बन्ध होनेसे, बड़े पुरुषोंके द्वारा विवाहित होनेसे और महापुरुषोंको उत्पन्न करनेसे महादेवियाँ कहलाती हैं ॥३७॥ इस प्रकार जैनियोंके द्वारा अपना पक्ष स्थिर कर लेनेपर मिथ्यादर्शनसे जिसका हृदय नष्ट हो रहा है ऐसा कोई अन्यमतावलम्बी पुरुष यदि कहे कि हम ही महादेव हैं, संसारसे तारनेवाले भी हम ही हैं, हमारे देवके सिवाय अन्य कोई देव नहीं है और हमारे धर्मके सिवाय अन्य कोई धर्म नहीं है ॥३८-३९॥ परन्तु इस विषयमें हम यही कहते हैं कि उसका यह कहना सारपूर्ण नहीं है क्योंकि संसारसमुद्रसे तिरनेका जो उपाय है वह जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ मार्ग ही है ॥४०॥ रागद्वेष आदि दोषोंसे रहित होनेके कारण एक अहन्तदेव ही आप्त हैं उनके सिवाय जो अन्य देव हैं वे सब आप्तम्भय हैं अर्थात् झूठमूठ ही अपनेको आप्त मानते हैं क्योंकि उनमें वाणी आत्मा और भाग्यके अतिशयका कुछ भी निश्चय नहीं है ॥४१॥ जिनेन्द्र भगवान् वाणी आदिके अतिशयसे सहित हैं सबका हित करनेवाले हैं समस्त पदार्थोंको साक्षात् देखनेवाले हैं परमेश्वर हैं परमात्मा हैं और सनातन हैं इसलिए वे ही आप्त हो सकते हैं ॥४२॥ भगवान् अरहन्तदेव अपनी जिस एक दिव्य वाणीके द्वारा समस्त सभाको सन्तुष्ट करते हैं वही उनकी वाणीका अतिशय जानना चाहिए ॥४३॥ इसी प्रकार ज्ञानावरण, दश नावरण माहनीय और अन्तराय धर्मके अत्यन्त क्षय हो जानेसे जो उनके अनन्त ज्ञान अनन्त दान, अनन्त सुख और अनन्त बलकी समीपता प्रकट होती है वही उनके आत्माका अतिशय है ॥४४॥ तथा आठ प्राप्तिहायक विभूति प्राप्त होना, समवसरणभूमिकी रचना होना

१ प्रवचनम् । २ नृगनाम्ने पि प० अ स० इ ल म० । ३ महाकुल । ४ विवाहितत्वात् । ५ प्रतिज्ञात् । ६ अस्माकमाप्तान् । ७ दाय्यम् । ८ अनिचयात् । ९ परमपदस्थ ।

वागाद्यतिगयैरंभिरन्वितोऽनन्यगोचरैः । भगवान्निष्ठितार्थोऽहं परमेष्ठी जगद्गुरुः ॥४६॥
 न च तादृग्विध कश्चित् पुमानस्ति मतान्तरे । ततोऽन्ययोगे व्यावृत्त्या मिदमाप्तवमर्हति ॥४७॥
 इत्याप्तानुमतं क्षात्रमिमं धर्ममनुस्मरन् । मतान्तरादनासीयान्^३ स्वान्वयं विनिवर्तयेत् ॥४८॥
 वृत्तादनात्मनीनाद्वी^४ स्यादेवमनुरक्षिता । तद्वध्नाच्च मरक्षेत् क्षत्रियः क्षितिमश्नताम् ॥४९॥
 उक्तस्यैवार्थतत्त्वस्य भूयोऽप्याविडिचकीर्षया । निदर्शनानि त्रीण्यत्र वक्ष्यामगतान्यनुमान ॥५०॥
 व्यक्तये पुरुषार्थस्य स्यात् पुरुषनिदर्शनम् । तथा निगलदृष्टान्तं य सग्यारिनिदर्शनं ॥५१॥
 ज्ञेयं पुरुषदृष्टान्तो नाम मुक्तेतरात्मनोः । यन्निदर्शनभावेन मुक्त्यमुक्त्यो समर्थनम् ॥५२॥
 ससारीन्द्रियविज्ञानद्वर्गीर्यसुखचारताः । तन्वावासौ च निर्वेद^५ यतते सुगलिप्यया ॥५३॥
 मुक्तस्तु न तथा किन्तु गुणैरुत्तरतीन्द्रियैः । परं सौख्यं स्वमाद्भूतमनुभुङ्क्ते निरन्तरम् ॥५४॥
^६तत्रैन्द्रियकविज्ञानं स्वल्पज्ञानतया स्वयम् । परं शास्त्रोपयोगाय श्रयति ज्ञानवित्तकर्म ॥५५॥
 तथैन्द्रियकदृक्शक्ति^७ आत्मावर्गभागदर्शनः^८ । अर्थानां विप्रकृष्टानां^९ भवेत् सदृशनोत्सुकः ॥५६॥
 तथैन्द्रियवर्गीर्यश्च सहायपेक्षयेप्सितम् । कार्यं घटयितुं वाञ्छेत् स्वयं तत्माधनाक्षमः ॥५७॥
 तत्रैन्द्रियसुखी कामभोगैरत्यन्तमुन्मना^{१०} । वाञ्छेत् सुखं परार्थीनमिन्द्रियार्थानुत्पत्तं^{११} ॥५८॥

और वारह सभाएँ होना यह सब अरहन्तदेवके भाग्यका अतिशय है ॥४५॥ जो किन्ही दूसरोमे न पाये जानेवाले इन वाणी आदिके अतिगयोसे सहित हैं तथा कृतकृत्य हैं ऐसे भगवान् अरहन्त परमेष्ठी ही जगत्के गुरु हैं ॥४६॥ अन्य किसी भी मतमे ऐसा-अरहन्तदेवके समान कोई पुरुष नहीं है इसलिए अन्य योगकी व्यावृत्ति होनेसे अरहन्तदेवमे ही आप्तपना सिद्ध होता है ॥४७॥ इस प्रकार आप्तके द्वारा कहे हुए इस क्षात्रधर्मका स्मरण करते हुए क्षत्रियोको अनाप्त पुरुषोके द्वारा कहे हुए अन्य मतोसे अपने वशको पृथक् करना चाहिए ॥४८॥ इस प्रकार जिनमे आत्माका हित नहीं है ऐसे आचरणसे अपनी बुद्धिकी रक्षा की जा सकती है और बुद्धिकी रक्षा-से ही क्षत्रिय अखण्ड पृथिवीकी रक्षा कर सकता है ॥४९॥ ऊपर जो पदार्थका स्वरूप कहा है उसीको फिर भी प्रकट करनेकी इच्छासे यहाँपर क्रमानुसार तीन उदाहरण कहते हैं ॥५०॥ अपना पुरुषार्थ प्रकट करनेके लिए पहला पुरुषका दृष्टान्त है, दूसरा निगल अर्थात् बेडीका दृष्टान्त है और तीसरा ससारी जीवोका दृष्टान्त है ॥५१॥ जिस उदाहरणसे मुक्त और कर्मबन्ध सहित जीवोके मोक्ष और बन्ध दोनो अवस्थाओका समर्थन किया जावे उसे पुरुषका दृष्टान्त अथवा उदाहरण जानना चाहिए ॥५२॥ यह ससारी जीव सुख प्राप्त करनेकी इच्छासे इन्द्रियोसे उत्पन्न हुए ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख और सुन्दरताको शरीररूपी घरमे ही अनुभव करनेका प्रयत्न करता है ॥५३॥ परन्तु मुक्त जीव ऐसा नहीं करता वह तो ऊपर कहे हुए अतीन्द्रिय गुणोसे अपने स्वाधीन हुए परम सुखका निरन्तर अनुभव करता रहता है ॥५४॥ इनमे-से ऐन्द्रियिक ज्ञानवाला ससारी जीव स्वयं अल्पज्ञानी होनेसे शास्त्रोका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए ज्ञानका चिन्तन करनेवाले अन्य पुरुषोका आश्रय लेता है ॥५५॥ इसी प्रकार जिसके इन्द्रियोसे देखने-की शक्ति है ऐसा पुरुष अपने समीपवर्ती कुछ पदार्थोको ही देख सकता है इसलिए वह दूरवर्ती पदार्थोको देखनेके लिए सदा उत्कण्ठित होता रहता है ॥५६॥ जिसके इन्द्रियोसे उत्पन्न हुआ वीर्य है वह किसी इष्ट कार्यको स्वयं करनेमे असमर्थ होकर उसे दूसरेकी सहायताकी अपेक्षासे करना चाहता है ॥५७॥ तथा जिसके इन्द्रियजनित सुख है ऐसा पुरुष काम भोगादिकोसे

१ अन्येषु वागाद्यतिशययोगाभावात् । २ जिने । ३ आप्ताभावप्रोक्तात् । ४ अनात्महितादपसार्य । ५ देहा-लयो । ६ अनुभवितुम् । ७ इन्द्रियानिन्द्रियज्ञानिनोर्मध्ये । ८-चित्तकम् प० । चिन्तकम् ल०, म० । ९ इन्द्रिय-जनितदर्शनशक्तिमान् । १० वस्तुनि द्विवाप्रविभक्ते आसन्नभागदर्शन । ११ दूरवर्तिनाम् । १२ समुत्कण्ठ । १३ विषयवाञ्छया ।

तथैन्द्रियिकसौन्दर्य स्नानमास्यानुलेपनै । विभूषणैश्च सौन्दर्यं सस्फुटममिलप्यति ॥५९॥
 दोषधातुमलस्थान दहमैन्द्रियिकं बहन् । पुमान्विष्णोर्भेषज्यतद्रक्षास्वाकुलो^२ मचेत् ॥६०॥
 दोषान्पश्यैश्च^३ जात्यादीन् देहातस्तज्जिह्वासा^४ । प्रेक्षाकारी^५ तप कर्तुं प्रयस्यति यदा कदा ॥६१॥
 स्वीकुचचिद्रियावास^६ सुखमायुश्च तद्गतम् । आवासान्तरमयिच्छेत् प्रेक्षमाण^७ प्रणश्वरम् ॥६२॥
 यस्त्वतीन्द्रियविज्ञानरुबीयसुससतति । शरीरावाससौन्दर्यै स्वात्मभूतैरधिष्ठित ॥६३॥
 तस्योक्तदोषसस्पर्शा^{१०} भवेन्नैव कदाचन । तद्दानाप्तस्ततो^{१२} श्रेय स्यादनाप्तस्त्वतद्गुण ॥६४॥
 स्फुटीकरणमस्यैव^{१३} वाक्याथस्याधुनोच्यते । अतोऽनाविष्टृत तत्र तत्त्वता^{१४} नावबुध्यते ॥६५॥
 तथ्याऽतीन्द्रियज्ञानं शास्त्रार्थ^{१५} न परं श्रयेत् । शास्ता इत्यत्रिकालज्ञ केवलामललोचन ॥६६॥
 तथाऽतीन्द्रियद्वयार्थो स्यादपूर्वार्थदशने । तेनादृष्टं न वै किञ्चिद्गुणपद्विषदशना ॥६७॥
 क्षायिकानन्तवीयश्च नान्यसाचि^{१६} ध्यमीक्षत । कृतकस्य स्वयं प्राप्तलोकाग्रशिलरालय ॥६८॥

अत्यन्त उत्कण्ठित होता हुआ इन्द्रियोके विषयोंकी तृष्णासे पराधीन सुखकी इच्छा करता है ॥५८॥ इसी प्रकार इन्द्रियोसे उत्पन्न होनेवाली सुन्दरतासे युक्त पुरुष स्नान, माला, विलेपन और आभूषण आदिसे अपनी सुन्दरताका संस्कार करना चाहता है । भावाथ-आभूषण आदि धारण कर अपने शरीरकी सुन्दरता बढ़ाना चाहता है ॥५९॥ दोष, धातु और मलके स्थान स्वरूप इस इन्द्रिजनित शरीरको धारण करता हुआ पुरुष भोजन और औषधि आदिके द्वारा उसकी रक्षा करनेमें सदा व्याकुल रहता है ॥६०॥ जन्म मरण आदि अनेक दोषोंको देखता हुआ और शरीरसे दुःखी हुआ कोई विचारवान् पुरुष जब उसे छोड़नेकी इच्छासे तप करनेका प्रयास करता है तब वह इन्द्रियोंके निवास स्वरूप शरीरको, उससे सम्बन्ध रखनेवाले सुख और आयुको भी स्वीकार करता है और अन्तमें उसे भी नष्ट होता हुआ देखकर दूसरे ऐन्द्रियिक निवासकी इच्छा करता है । भावाथ-तपश्चरण करनेका इच्छुक पुरुष यद्यपि शरीरको हेय समझकर छोड़ना चाहता है परन्तु साधन समझकर उसे स्वीकार करता है और जबतक इष्ट-मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो जाती तबतक प्रथम शरीरके जजर हो जानेपर द्वितीय शरीरकी इच्छा करता रहता है ॥६१-६२॥ परन्तु जिसके अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय दशन, अतीन्द्रिय बल और अतीन्द्रिय सुखकी सन्तान है और जो अपने आत्मस्वरूप शरीर, आवास तथा सुन्दरता आदिसे सहित है उसके ऊपर कहे हुए दोषोंका स्पर्श कभी नहीं होता है इसलिए जिसके अतीन्द्रिय ज्ञान, वीय और सुखकी सन्तान है उसे ही आप्त जानना चाहिए और जिसके उक्त गुण नहीं हैं उसे अनाप्त समझना चाहिए ॥६३-६४॥ अब आगे इसी वाक्याथका स्पष्टीकरण करते हैं क्योंकि जबतक किसी पदार्थका स्पष्टीकरण नहीं हो जाता है तबतक उसका ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता है ॥६५॥ जिसके अतीन्द्रिय ज्ञान है ऐसा पुरुष किसी दूसरे शास्त्रके अथका आश्रय नहीं लेता, किन्तु केवलज्ञानरूपी निमल नेत्रोंको धारण करनेवाला और तीनों कालोंके सब पदार्थोंको जाननेवाला वह स्वयं सबको उपदेश देता है ॥६६॥ इसी प्रकार जिसके अतीन्द्रिय दशन हैं ऐसा जीव कभी अपूर्व पदार्थके देखनेकी इच्छा नहीं करता क्योंकि जो एक साथ समस्त पदार्थोंको देखता है उसका न देखा हुआ कोई पदार्थ भी तो नहीं है ॥६७॥ जिसके क्षायिक अनन्तवीय है वह पुरुष भी किसी अन्य जीवकी सहायता नहीं चाहता किन्तु

१ आहार । २ देहरक्षणम् । ३ उत्पत्त्यादीन् । ४ शरीरपीडित । ५ तत्त्यागच्छया । ६ समीक्ष्यकारी । ७ प्रयत्नं वराति । ८ इन्द्रियसुखहनुपामादिकम् । ९ विचारयन् । १० स्नानम् । ११ अतीन्द्रियविमाना निमान् । १२ तत् कारणम् । १३ अतीन्द्रियस्यादिन्द्रियव्यापस्य । १४ निश्चयन । १५ शास्त्रनिमित्तम् । १६ अयमहायत्नम् ।

अतीन्द्रियसुखोऽन्यान्मा स्याद्भोगैरुत्सुको न वै । भोग्यवस्तुगता चिन्ता जायते नाम्य ज्ञानत ॥६६॥
 प्राप्तातीन्द्रियसौन्दर्यो नेच्छेन्स्नानादिसक्रियाम् । स्नातको नित्यशुद्धान्मा बहिरन्तर्गन्धयान ॥७०॥
 अतीन्द्रियात्मदेहश्च नाहारादीनपेक्षते । क्षुद्रव्याधिविपन्नस्त्राद्विवाश्रान्तीतननु य वै ॥७१॥
 मवेच्च न तपःकामो वीतजातिजरामृतिः । नावायान्तरमन्विच्छेदन्मवाये च सुम्वित ॥७२॥
 स एवमसिलैर्दोषैर्मुक्तो युक्तोऽसिलैर्गुणै । परमात्मा पर ज्योतिः परमेष्ठीति गीयते ॥७३॥
 कामरूपित्वमाप्तस्य लक्षणं चेन्न साम्प्रतम्^१ । सराग कामरूपी स्यादकृतार्थश्च योऽज्ञया ॥७४॥
 प्रकृतिस्थेन^२ रूपेण प्राप्तुं यो^३ नालम्बोप्सितम् । स वैकृतेन^४ रूपेण कामरूपी कथं सुग्री ॥७५॥
 इति पुरुषनिर्दर्शनम् ।

निगलस्थो^५ यथानेष्ट गन्तुं देशमलंतराम् । कर्मबन्धनवद्भोऽपि नेष्ट धाम^६ तथेयूयान^७ ॥७६॥
 यथेह बन्धनान्मुक्तः परं स्वातन्त्र्यमृच्छति । कर्मबन्धनमुक्तोऽपि तथोपाच्छे^८त स्वतन्त्रताम् ॥७७॥
 निगलस्थो विपाशश्च स एवैक^९ पुमान्यथा । कर्मवद्भो विमुक्तश्च स एवात्मा मतस्तथा ॥७८॥
 इति निगलनिर्दर्शनम् ।

मुक्तेतरात्मनोर्व्यक्त्यै द्वयमेतन्निर्दिशितम्^{१०} । तद्दृढीकरणायेष्ट^{१०} सन्मंसारिनिर्दर्शनम् ॥७९॥

वह स्वयं कृतकृत्य होकर लोकके अग्र शिखरपर सिद्धालयमे जा पहुँचता है ॥६८॥ इसी प्रकार अतीन्द्रिय सुखको धारण करनेवाला पुरुष भी भोगोसे उत्कण्ठित नहीं होता, क्योंकि उसे भोग करने योग्य वस्तुओकी चिन्ता ही कभी नहीं होती है ॥६९॥ जिसे अतीन्द्रिय सौन्दर्य प्राप्त हुआ है वह भी कभी स्नान आदि क्रियाओकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि बहिरग और अन्तरग मलका क्षय हो जानेसे वह स्वयं स्नातक कहलाता है और उसका आत्मा निरन्तर शुद्ध रहता है ॥७०॥ इसी प्रकार जिसके अतीन्द्रिय आत्मा ही शरीर है वह आहार आदिकी अपेक्षा नहीं करता क्योंकि उसका आत्मारूप शरीर क्षुधा, व्याधि, विप और शस्त्र आदिकी बाधासे रहित होता है ॥७१॥ जिसके जन्म, जरा और मरण नष्ट हो चुके हैं वह कभी तपकी इच्छा नहीं करता तथा जो आत्मारूपी घरमे सुखसे स्थित रहता है वह कभी दूसरे आवासकी इच्छा नहीं करता ॥७२॥ इस प्रकार जो समस्त दोषोसे रहित है, समस्त गुणोसे सहित है, परमात्मा है और उत्कृष्ट ज्योतिः स्वरूप है वही परमेष्ठी कहलाता है ॥७३॥ कदाचित् आप यह कहें कि कामरूपित्व अर्थात् इच्छानुसार अनेक अवतार धारण करना आप्तका लक्षण है तो आपका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि जो कामरूपी होता है वह अवश्य ही रागसहित तथा अकृतकृत्य होता है ॥७४॥ जो स्वाभाविक रूपसे अपना इष्ट प्राप्त करनेके लिए समर्थ नहीं है वह कामरूपी विकृत रूपसे कैसे सुखी हो सकता है ? ॥७५॥ यह पुरुषका उदाहरण कहा, अब निगलका उदाहरण कहते हैं ।

जिस प्रकार निगल अर्थात् बेडीमे बँधा हुआ जीव अपने इष्ट स्थानपर जानेके लिए समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार कर्मरूप बन्धनसे बँधा हुआ जीव भी अपने इष्ट स्थानपर नहीं पहुँच सकता ॥७६॥ जिस प्रकार इस लोकमे बन्धनसे छूटा हुआ पुरुष परम स्वतन्त्रताको प्राप्त होता है उसी प्रकार कर्मबन्धनसे छूटा हुआ पुरुष भी स्वतन्त्रताको प्राप्त होता है ॥७७॥ और जिस प्रकार बेडीसे बँधा हुआ तथा बेडीसे छूटा हुआ पुरुष एक ही माना जाता है उसी प्रकार कर्मोंसे बँधा हुआ तथा कर्मोंसे छूटा हुआ पुरुष भी एक ही माना जाता है ॥७८॥ यह निगलका उदाहरण है, इस प्रकार मुक्त और ससारी आत्माओको प्रकट करनेके लिए ये दो

१ युक्तम् । २ स्वभावस्थेन । ३ अशक्त । ४ विकारजेन । ५ शृङ्खलाबन्धनस्थः । ६ स्थानम् । ७ गच्छेत् । ८ गच्छेत् । ९ -दर्शनम् प०, ल०, म० । १० पुरुषार्थवृद्धिकरणाय ।

यत्ससारिणमात्मानमूरीकृत्यान्यतन्त्रताम्^१ । तस्योपदेशो मुक्तस्य स्वातन्त्र्योपनिर्देशनम् ॥८०॥
 मतं ससारिदृष्टान्तं सोऽयमासीदवशने^२ । मुक्तात्मना भवेदव^३ स्वातन्त्र्यं प्रकटीकृतम् ॥८१॥
 तद्यथा ससृता वैही न स्वतन्त्र कथंचन । कमबन्धवशीभावाज्जीवयन्याश्रितश्च यत्^४ ॥८२॥
 तत् परप्रधानत्वमस्यैतत्^५ प्रतिपादितम् । स्याच्छलत्वं च पुंसोऽस्य वेदनासहनादिभि^६ ॥८३॥
 वेदनान्याकुलीभावश्चलत्वमिति लक्ष्यताम्^७ । क्षयवत्त्वं^८ च दवादिभवे^९ लब्धद्विसंक्षयात् ॥८४॥
 बाध्यत्वं ताडनानिष्टवचनप्राप्तिरस्य वै । अन्तर्बन्धास्य^{१०} विज्ञानमक्षबोध^{११} परिक्षयी^{१२} ॥८५॥
 अन्तर्बह्मज्ञानास्य स्यादेन्द्रियिकदशनम् । वीर्यं च तद्विधं तस्य शरीरबलमल्पकम् ॥८६॥
 स्यादस्य^{१३} सुप्तमप्येवमप्यभिद्विगमोचरम् । रजस्वलत्वमप्यस्य स्यात्कमाशौ कलङ्कनम् ॥८७॥
 भवेत् कममलावेशादय एव मलीमसः । ज्ञेयत्वं चास्य गात्राणां द्विधामावेन स्पण्डनम् ॥८८॥
 मुद्गराद्यभिघातेन भेद्यत्वं स्याद् विदारणम् । जरावत्त्वं वयोहानि प्राणत्यागो मृतिमत्ता ॥८९॥
 प्रमथत्वं^{१४} परिच्छिद्यदेहमात्रावच्छ्रिता । गमवासोऽभकत्वेन जनयुदरदु स्थिति ॥९०॥

उदाहरण कहे, अब उक्त कथनको दृढ़ करनेके लिए ससारी जीवोंका उदाहरण कहना चाहिए ॥७९॥ ससारी जीवोंको लेकर जो उनकी परतन्त्रताका कथन करना है उनकी उसी परतन्त्रता के उपदेशम मुक्त जीवोंकी स्वतन्त्रताका उदाहरण हो जाता है । भावाय—ससारी जीवोंकी परतन्त्रताका वणन करनेसे मुक्त जीवोंकी स्वतन्त्रताका वणन अपने आप हो जाता है क्योंकि ससारी जीवोंकी परतन्त्रताका अभाव होना ही मुक्त जीवोंकी स्वतन्त्रता है ॥८०॥ अरहन्त देवके मतमें ससारीका उदाहरण वही माना गया है कि जिसमें मुक्त जीवोंकी स्वतन्त्रता प्रकट हो सके ॥८१॥ आगे इसी उदाहरणको स्पष्ट करते हैं—संसारमें यह जीव किसी प्रकार स्वतन्त्र नहीं है क्योंकि कमबन्धनके वश होनेसे यह जीव अन्यके आश्रित होकर जीवित रहता है ॥८२॥ यह ससारी जीवकी परतन्त्रता बतलायी इसी प्रकार सुख दुःख आदिकी वेदनाओंके सहनेसे इस पुरुषमें चंचलता भी होती है ॥८३॥ सुख-दुःख आदिकी वेदनाओंसे जो याकुलता उत्पन्न होती है उसे चंचलता समझना चाहिए और देव आदिकी पर्यायमें प्राप्त हुई ऋद्ध्योका जो क्षय होता है उससे इस जीवके क्षयपना (नश्वरता) जानना चाहिए ॥८४॥ इस जीवको जो ताडना तथा अनिष्ट वचनोंकी प्राप्ति होती है वही इसकी बाध्यता है और इन्द्रियोसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान क्षय होनेवाला है इसलिए वह अन्तःसहित है ॥८५॥ इसका दशन भी इन्द्रियोसे उत्पन्न होता है इसलिए वह भी अन्तःसहित है और इसका वीर्य भी वैसा ही है अर्थात् अन्तःसहित है क्योंकि इसके शरीरका बल अत्यन्त अल्प है ॥८६॥ इन्द्रियोसे उत्पन्न होनेवाला इसका सुख भी प्रायः ऐसा ही है तथा कर्मोंके अंशोंसे जो कलंकित हो रहा है वही इसका मेलापन है ॥८७॥ कमरूपी मलके सम्बन्धसे मलिन भी है और शरीरके दो-दो टुकड़े होनेसे इसमें छेद्यत्व अर्थात् छिन्न भिन्न होनेकी शक्ति भी है ॥८८॥ मुद्गर आदिके प्रहारसे इसका शरीर विदीर्ण हो जाता है इसलिए इसमें भेद्यत्व भी है जो इसकी अवस्था कम होती जाती है वही इसका वुडापा है और जो प्राणोंका परित्याग होता है वह इसकी मृत्यु है ॥८९॥ यह जो परिमित

१ परापोनत्वमिति यत् । २ परतन्त्रस्य । ३ सप्तमते । ४ एव च सति । ५ यत् कारणात् । ६ ससारिणः । ७ वन्नाभवनानिभिः । ८ लक्षणम् । ९ क्षयोऽप्यास्तीति क्षयवान् तस्य भावः क्षयवत्त्वम् । १० देवाधिभवे ८० । देवाधित्व । ११ अतोऽप्यास्तीति अतवत् । १२ इन्द्रियज्ञानम् । १३ स्वयं परिणमित्वाविति हेतुगमित विनोपगमनतः । एवमुत्तरोत्तराणि धीयम् । १४ एवंविधम् । अतवन्विरयः । १५ यूलिधूमरत्वम् । १६ प्रभातुं योग्यत्वम् । १७ परिमितः ।

अथवा कर्मनोकर्मगमैऽस्य परिवर्तनम् । गर्भवागो विलीनत्वं स्याद् देहान्तर्गम्यक्रमः ॥१॥
 क्षुभितत्वं च सक्षोभः क्रोधाद्याविष्टचेतसः । भवेद् विविधयोगोऽस्य नानायोगिषु यत्रम् ॥२॥
 मसारावास एषोऽस्य चतुर्गतिविवर्तनम् । प्रतिजन्मान्यथाभावो ज्ञानादीनामसिद्धता ॥३॥
 सुखासुखं बलाहारो देहावासौ च देहिनाम् । विवर्तन्ते तथा ज्ञान इकग्रन्ती च रजोजुषाम् ॥४॥
 एवंप्रायास्तु ये भावा मंसारिषु विनश्वराः । मुक्तात्मनां न मन्थ्यन्ते भावान्तेषां नानश्वराः ॥५॥
 मुक्तात्मना भवेद् भावः स्वप्रधानत्वमग्रिमम् । प्रतिलब्धात्मलाभत्वात् परद्रव्यानपेक्षणम् ॥६॥
 वेदनाभिभवाम्भावाच्चलत्व गभीरता । स्यादक्षयत्वमक्षय्य क्षायिकातिगयोदयः ॥७॥
 अव्याबाधत्वमस्यैष्ट जीवाजीवैर्वाच्यता । भवेदनन्तज्ञानत्व विश्वार्थाक्रमबोधनम् ॥८॥
 अनन्तदर्शनत्व च विश्वतत्त्वाक्रमेक्षणम् । योऽन्यैर्प्रतिघातोऽस्य सा मनानन्तवीर्यना ॥९॥
 भोग्यैर्वर्गैर्वर्णैस्सुख्यमनन्तसुखता मता । नीरजस्व भवेदस्य व्यपायः पुण्यपापयो ॥१०॥
 निर्मलत्व तु तस्यैष्ट बहिरन्तर्मलच्युति । स्वभावविमलोऽनादिमिद्धो नास्तीह कञ्चन ॥११॥
 योऽस्य जीवघनाकारपरिणामो मलक्षयात् । तदच्छेद्यत्वमाप्नातमभेद्यत्वं च तत्कृतम् ॥१२॥
 अक्षरत्वं च मुक्तस्य क्षरणाभावतो मतम् । अप्रमेयत्वमात्मोत्थैर्गुणैरुद्वैरमेयता ॥१३॥

शरीरमे हका रहता है वह इसका प्रमेयपना है और जो वालक होकर माताके पेटमे दु खसे रहता है वह इसका गर्भवास है ॥६०॥ अथवा कर्म नोकर्मरूपी गर्भमे जो इसका परिवर्तन होता रहता है इसका गर्भवास है और एक शरीरसे दूसरे शरीरमे जो सक्रमण करना है वह विलीनता है ॥६१॥ क्रोध आदिसे आक्रान्त चित्तमे जो क्षोभ उत्पन्न होता है वह इसका क्षुभितपना है, और नाना योगियोमे परिभ्रमण करना इसका विविध योग कहलाता है ॥६२॥ चारो गतियोमे परिवर्तन करते रहना इस जीवका संसारावास कहलाता है और प्रत्येक जन्ममे ज्ञानादि गुणोका अन्य-अन्य रूप होते रहना असिद्धता कहलाती है ॥६३॥ कर्मरूपी रजसे युक्त रहनेवाले इन ससारी जीवोके जिस प्रकार सुख-दु ख, बल, आहार, शरीर और घर बदलते रहते हैं उसी प्रकार उनके ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य भी बदलते रहते हैं ॥६४॥ इस प्रकार ससारी जीवोके जो विनश्वरभाव हैं वे मुक्त जीवोके नहीं हैं, उनके सब भाव अविनश्वर हैं ॥६५॥ मुक्त जीवोके उन भावोमे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होनेसे परद्रव्यकी अपेक्षासे रहित जो सर्वश्रेष्ठ स्वतन्त्रपना है वही पहला भाव है ॥६६॥ सुख दु ख आदिकी वेदनासे होनेवाले परभावका अभाव होनेसे जो अचचलता होती है वही उनकी गम्भीरता है और कर्मों के क्षयसे जो अति-गयोकी प्राप्ति होती है वही उनका अविनाशी अक्षयपना है ॥६७॥ किसी भी जीव अथवा अजीवसे इन्हे बाधा नहीं पहुँचती यही इनका अव्याबाधपना है और ससारके समस्त पदार्थोको एक साथ जानते हैं यही इनका अनन्तज्ञानीपन है ॥६८॥ समस्त तत्त्वोको एक साथ देखना ही इनका अनन्तदर्शनपन है और अन्य पदार्थोके द्वारा प्रतिघातका न होना अनन्तवीर्यपना है ॥६९॥ भोग करने योग्य पदार्थोमे उत्कण्ठा न होना अनन्तसुखपना माना जाता है और पुण्य तथा पापका अभाव हो जाना नीरजसपन कहलाता है ॥७०॥ बहिरग और अन्तरग मलका नाश होना ही इसका निर्मलपना कहलाता है क्योंकि इस ससारमे ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो स्वभावसे ही निर्मल हो और अनादि कालसे सिद्ध हो ॥७१॥ कर्मरूपी मलके नाश होनेसे जो जीवके प्रदेगोका घनाकार परिणमन होता है वही इसका अच्छेद्यपना है और उसी कर्मरूपी मलके नाश होनेसे इसके अभेद्यपना माना जाता है ॥७२॥ मुक्त जीवका

१ दूक् च शक्तिश्च दूक्शक्ती । २ कर्मफलभाजाम् । ३ एवमादयः । ४ स्वभावः । ५ चेतनाचेतनैः । ६ युगपत् । ७ परिणमनम् ।

बहिरन्तमलापायाद्गमभवसत्तिमता । कमनोकमविश्लेषात् स्याद्गौरवलाघवम् ॥१०४॥
 तादवस्थ^१ गुणैरुद्दे^२ रक्षोभ्यत्वमतो भवेत् । अविलीनत्वमाभायैगुणैरप्यप्रपृक्तता^३ ॥१०५॥
 प्राग्देहाकारमूर्तित्व यदस्याहेयमक्षरम् । साऽमीष्टा परमा काष्ठा योगरूपत्वमात्मन ॥१०६॥
 लोकाप्रवासलोक्यशिखरे शाश्वती स्थिति^४ । अशयपुरुषार्थाना निष्ठा^५ परमसिद्धता ॥१०७॥
 य समग्रैगुणैरमिर्जानादिमिरलकृत । किं तस्य कृतकृत्यस्य परद्रव्योपसपणै ॥१०८॥
 एष ससारिदृष्टान्तो व्यतिरेकेण^६ साधयत् । परमात्मानमात्मान प्रभुमप्रतिशासनम् ॥१०९॥
 त्रिभिर्निर्दशनैरमिराविष्कृतमहोदय । स आसस्तन्मते धीरैराधेया मतिरामन ॥११०॥
 एव हि क्षत्रियश्रेष्ठो भवद् दृष्टपरम्पर । मतान्तरपु द्वौ स्थित्य भावयन्नपत्तिभि ॥१११॥
 दिगन्तरभ्यो व्यावस्थ प्रबुद्धा मतिमा मन । सन्मार्गे स्थापयन्नेव^७ कुर्यान्मत्पनुपालनम् ॥११२॥
 आश्रिकाशुश्रिकापायात् परिरक्षणमात्मन । आत्मानुपालन नाम तदिदानीं विवृण्महे ॥११३॥
 आश्रिकापायसरक्षा सुप्रतीतैव धीमताम् । विपक्षच्छाद्यपायाना परिरक्षणलक्षणा ॥११४॥

कभी क्षरण अर्थात् विनाश नहीं होता इसलिए इसमें अक्षरता अर्थात् अविनाशीपन है और आत्मासे उत्पन्न हुए श्रेष्ठ युगोसे इसका प्रमाण नहीं किया जा सकता इसलिए इसमें अप्रमेय पना है ॥१०३॥ बहिरग और अन्तरग मलका नाश हो जानेसे इसका गर्भावास नहीं माना जाता है और कम तथा नोकमका नाश हो जानेसे इसमें गुरुता और लघुता भी नहीं होती है ॥१०४॥ यह आत्मासे उत्पन्न हुए प्रशसनीय गुणोंसे अपने स्वरूपमें अवस्थित रहता है इसलिए इसमें अक्षोभ्यपना है और आत्माके गुणोंसे कभी रहित नहीं होता इसलिए अविलीनपना है ॥१०५॥ जो कभी न छूटने योग्य और कभी न नष्ट होने योग्य पहलेके शरीरके आकार इसकी मूर्ति रहती है वही इसकी परम हृद् है और वही इसकी योगरूपता है ॥१०६॥ तीनों लोकोके शिखरपर जो इसकी सदा रहनेवाली स्थिति है वही इसका लोकाप्रवास गुण है और जो समस्त पुरुषार्थोंकी पूणता है वही इसकी परमसिद्धता है ॥१०७॥ इस प्रकार जो इन ज्ञान आदि समस्त गुणोंसे अलकृत है उस कृतकृत्य हुए मुक्त जीवको अथ द्रव्योंकी प्राप्तिसे क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ नहीं ॥१०८॥ यह ससारी जीवका दृष्टान्त व्यतिरेक रूपसे आत्माको, जिसपर किसीका शासन नहीं है और जो प्रभुरूप है ऐसा परमात्मा सिद्ध करता है । भावार्थ— इस ससारी जीवके उदाहरणसे यह सिद्ध होता है कि यह आत्मा ही परमात्मा हो जाता है ॥१०९॥ इस प्रकार इन तीन उदाहरणोंसे जिसका महोदय प्रकट हो रहा है वही आप्त है उसी आप्तके मतमें धीर-वीर पुरुषोंको अपनी बुद्धि लगानी चाहिए ॥११०॥ इस तरह जिसने सब परम्परा देख ली है और जो अन्य मतोंमें युक्तियोंसे दुष्टताका चिन्तन करता है वही सब क्षत्रियोम श्रेष्ठ कहलाता है ॥१११॥ क्षत्रियको चाहिए कि वह अपनी जागृत बुद्धिको अथ दिशाया अर्थात् मतासे हटाकर समीचीन मार्गमें लगाता हुआ उसकी रक्षा करे ॥११२॥ इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी अपायोंसे आत्माकी रक्षा करना आत्माका पालन करना कहलाता है । अब आगे इसी आत्माके पालनका वर्णन करते हैं ॥११३॥ विपक्ष आश्रिकापायास अपनी रक्षा करना ही जिसका लक्षण है ऐसी इस लोकसम्बन्धी अपायोंसे

१ अगुरुलघुत्वम् । २ स्वरूपावस्थानम् । ३ न केवल देहादिभि । ज्ञानाङ्गिगुणरपि । ४ अत्यव्ययता । —रम्यप वृत्तता । ५ अपव्ययता इति पाठ अपव्ययत्व गुणगुणीभावराहित्यम् । ६ निष्ठापत्ति । परिसमाप्तिरित्यर्थ । ७ व्यतिरेकिदृष्टान्तम् । ८ एव इति सति । ९—अथ ६० ल० म० ।

तत आमुत्रिपाययज्ञाविधिरनुचते । तद्रक्षणं च धर्मेण धर्मो ह्यापन्नतिक्रिया ॥११५॥
 धर्मो रक्षत्यपायभ्यो धर्मोऽभीष्टफलप्रदः । धर्मं श्रेयस्करोऽमुत्र धर्मेणैवाभिनन्दयु ॥११६॥
 तस्मान्दुर्मैकतान् यन् कुर्याद्विपत्तिक्रियाम् । एव हि रक्षितोऽपायाद् भवेदात्मा मवान्तरं ॥११७॥
 बह्वपायमिदं राज्यं त्याज्यमेव मनस्विनाम् । यत्र पुत्रा समोदर्या^१ वैरायन्ते^२ निरन्तरम् ॥११८॥
 अपि चात्र मन रोदवहुले का मुखासिका^३ । मनसो निवृत्तिं मौर्यमुग्रन्तीह विचक्षणा ॥११९॥
 राज्ये न सुखलेखोऽपि दुरन्ते दुरितावहे । सर्वतः शत्रुमानस्य प्रत्युतान्नामुग^४ महन ॥१२०॥
 नतो राज्यमिदं हेयमपथ्यमिव भेषजम् । उपादेयं तु विद्वद्विस्तप पथ्यमिवाशनम् ॥१२१॥
 इति प्रागेव निर्विद्यं राज्यं भोगं न्यजेत सुधीः । तथा न्यन्तुमशक्तोऽन्ते त्यजेद् राज्यपरिच्छदम् ॥१२२॥
 कालजानिभिरादिष्टे निर्णीते रयमेव वा । जीवितान्ते तनुत्यागमति दयादत्तः सुधीः ॥१२३॥
 त्यागो हि परमो धर्मस्त्याग एव पर तपः । त्यागादिह यज्ञोलाभ परत्राभ्युदयो महान् ॥१२४॥
 मत्वेति तनुमाहारं राज्यं च सपरिच्छदम् । त्यजेद्वायतने^५ पुण्यं^६ पूजाविधिपुरस्सरम् ॥१२५॥

होनेवाली रक्षा तो विद्वान् पुरुषोको विदित ही है । ॥११४॥ इसलिए अब परलोक सम्बन्धी अपायोसे होनेवाली रक्षाकी विधि कहते हैं । परलोक सम्बन्धी अपायोसे रक्षा धर्मके द्वारा ही हो सकती है क्योंकि धर्म ही ममस्त आपत्तियोंका प्रतिकार है—उनसे बचनेका उपाय है ॥११५॥ धर्म ही अपायोसे रक्षा करता है, धर्म ही मनचाहा फल देनेवाला है, धर्म ही परलोक-में कल्याण करनेवाला है और धर्मसे ही इस लोकमें आनन्द प्राप्त होता है ॥११६॥ इसलिए धर्ममें एकचित्त होकर भविष्यत् कालमें आनेवाली विपत्तियोंका प्रतिकार करना चाहिए क्योंकि ऐसा करनेसे ही आत्माकी दूसरे भवमें विपत्तिसे रक्षा हो सकती है ॥११७॥ जिस राज्यके लिए पुत्र तथा सगे भाई आदि भी निरन्तर वशुता किया करते हैं और जिसमें बहुत अपाय है ऐसा यह राज्य बुद्धिमान् पुरुषोको अवश्य ही छोड़ देना चाहिए ॥११८॥ एक वान यह भी है कि जिसमें मानसिक खेदकी बहुलता है ऐसे इस राज्यमें सुखपूर्वक कैसे रहा जा सकता है क्योंकि इस ससारमें पण्डितजन मनकी निराकुलताको ही सुख कहते हैं ॥११९॥ जिसका अन्न अच्छा नहीं है और जिसमें निरन्तर पाप उत्पन्न होते रहते हैं ऐसे इस राज्यमें सुखका लेज भी नहीं है बल्कि सब ओरसे शक्ति रहनेवाले पुरुषको इस राज्यमें बड़ा भारी दुःख बना रहता है ॥१२०॥ इसलिए विद्वान् पुरुषोको अपथ्य औपधिके समान इम राज्यका त्याग कर देना चाहिए और पथ्य भोजनके समान तप ग्रहण करना चाहिए ॥१२१॥ इम नर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिए कि वह राज्यके विषयमें पहलेसे ही विरक्त होकर भोगोपभोगका त्याग कर दे, यदि वह इस प्रकार त्याग करनेके लिए समर्थ न हो तो कमसे कम अन्न ममय उन्ने राज्यके आडम्बरका अवश्य ही त्याग कर देना चाहिए ॥१२२॥ इमं विद्वान् यदि कालको जाननेवाला निमित्तज्ञानी अपने जीवनका अन्त समय बतला दे अथवा अपने आप ही उसका निर्णय हो जावे तो बुद्धिमान् क्षत्रियको चाहिए कि वह उस समयमें वर्गन पत्न्यागको बुद्धि धारण करे अर्थात् सल्लेखना धारण करनेमें बुद्धि लगावे ॥१२३॥ क्योंकि त्याग ही परम धर्म है, त्याग ही परम तप है, त्यागसे ही इस लोकमें कीर्तिकी प्राप्ति होती है और त्यागमें ही परलोकमें महान् ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥१२४॥ ऐसा मानकर क्षत्रियको किसी पवित्र स्थानमें गहकर पूजा आदिकी विधि करके गरीर आहार और चमन छत्र आदि उपकरणोंमें सहित राज्यका पत्न्याग कर देना

१ अन अ०, न०, म०, ल० । २ एकोदशे जाति । ३ ब्रह्म दुर्बल । ४ मुद्रास्थिता । ५ पुनः किमिति ज्ञेय ।
 ६ वैराग्यपरो नृन्ना । ७ श्रावणम् । ८ प्रसिद्धि ।

यथैव सल्लु गोपालो सध्यस्थिचलने गवाम् । तदस्थि स्थापयन् प्राग्वत् कुर्याद्योग्या प्रतिक्रियाम् ॥१५०॥
 तथा नृपोऽपि संग्राम मृत्युमुख्य व्यसौ^१ सति । तपदे पुत्रमवाप्त्य भ्रातर वा नियोजयेत् ॥१५१॥
 सति चैव कृतज्ञोऽयं नृप इत्यनुरक्तताम् । उपैति मृत्यवर्गाऽस्मिन्^२ भवेच्च ध्रुवयोधना^३ ॥१५२॥
 यथा सल्लपि गोपाल कृमिदष्टे गवाङ्गणे । तद्योग्यमौषध दत्त्वा करो-यस्य प्रतिक्रियाम् ॥१५३॥
 तथैव पृथिवीपालो दुर्विध^४ स्वानुजीविनम्^५ । विमनस्कं विदित्वैनं सौचित्य^६ सनियोजयत् ॥१५४॥
 विरक्तो ह्यनुजीवी^७ स्यादल-घोषितजीवन^८ । प्रमोर्विमान^९ नाद्यैव तस्मान्नैनं विरक्षयत्^{१०} ॥१५५॥
^{११} तदौगत्थं घणस्थानकृमिसमरसन्निभम् । वि-चा तत्प्रतीकारमाशु कुर्याद्विना पति ॥१५६॥
 बहुनापि न दत्तेन सौचित्यमनुजाविनाम् । उचितात् स्वामिसन्मानाद् यथैषां जायत इति ॥१५७॥
 गोपालको यथा यूथे स्वे महोक्ष^{१२} मरक्षमम् । ज्ञात्वास्य नस्यकर्मादि विदध्याद् गात्रपुष्टये ॥१५८॥
 तथा नृपोऽपि सैन्ये स्वे थोद्धार मदसत्तमम् । ज्ञात्वाैनं जीवनं प्राग्य दत्त्वा समानयत् कृती ॥१५९॥
 कृतापदान^{१३} तद्योग्यै सत्कारैः प्रीणयन् प्रभु । न मुच्यतेऽनुरक्तै स्वैरनुजीविभिर-वहम् ॥१६०॥
 यथा च गोपो गोयूथं कण्टकोपलवर्जिते । शीतातपादिव्याधाभिरु-श्रिते चारयन्^{१४} बने ॥१६१॥

आनन्दको प्राप्त होते रहते ह-सन्तुष्ट बने रहते ह ॥१४९॥ जिस प्रकार ग्वालिया सधिस्यानसे गायोंकी हड्डीके विचलित हो जानेपर उस हड्डीको वही पैठालता हुआ उसका योग्य प्रतिकार करता है उसी प्रकार राजाको भी युद्धमें किसी मुख्य मृत्युके मर जानेपर उसके पदपर उसके पुत्र अथवा भाईको नियुक्त करना चाहिए ॥१५०-१५१॥ ऐसा करनेसे मृत्यु लोग 'यह राजा बड़ा कृतज्ञ है ऐसा मानकर उसपर अनुराग करने लगेंगे और अवसर पडनेपर निरन्तर युद्ध करनेवाले बन आयेंगे ॥१५२॥ कदाचित् गायोंके समूहको कोई कीड़ा काट लता है तो जिस प्रकार ग्वालिया योग्य औषधि देकर उसका प्रतिकार करता है उसी प्रकार राजाको भी चाहिए कि वह अपने सेवकको दरिद्र अथवा खेदखिन्न जानकर उसके चित्तको सन्तुष्ट करे ॥१५३-१५४॥ क्योंकि जिस सेवकको उचित आजीविका प्राप्त नहीं है वह अपने स्वामीके इस प्रकारके अपमानसे विरक्त हो जायेगा इसलिये राजाको चाहिए कि वह कभी अपने सेवकको विरक्त न करे ॥१५५॥ सेवककी दरिद्रताको घावके स्थानमें कीड़े उत्पन्न होनेके समान जानकर राजाको शोच्य हो उसका प्रतिकार करना चाहिए ॥१५६॥ सेवकोंको अपने स्वामीसे उचित समान पावर जैसा सन्तोष होता है वैसा सन्तोष बहुत धन देनेपर भी नहीं होता है ॥१५७॥ जिस प्रकार ग्वाला अपने पशुओंके झुण्डमें किसी बड़े बलकी अधिक भार धारण करनेमें समय जानकर उसके शरीरकी पुष्टिके लिए नस्य कम आदि करता है अर्थात् उसकी नाकमें तेल डालता है और उसे खली आदि खिलाता है उसी प्रकार चतुर राजाको भी चाहिए कि वह अपनी सेनामें किसी योद्धाको अत्यंत उत्तम जानकर उसे अच्छी आजीविका देकर सम्मानित करे ॥१५८-१५९॥ जो राजा अपना पराक्रम प्रकट करनेवाले वीर पुरुषको उसके सेवक सत्कारसे सन्तुष्ट रखता है उसके मृत्यु उसपर सदा अनुरक्त रहते ह और कभी भी उसका ॥१६०॥ जिस प्रकार ग्वाला अपने पशुओंके समूहको कटि और पत्थरोमें

१ अगुहलम्

वृत्तता । अपवृ

६ व्यतिरिक्तातन

पोष्यत्यनियत्रेन तथा भूपोऽप्यविगलत्रे । देजे स्वानुगतं^१ लोकं स्थापयि वाऽभिगन्तुं ॥१६२॥
 राज्यान्निपरिवर्तेषु^२ जनोऽय पीडयतेऽन्यथा^३ । चौरैर्दामरकैः अन्यैरपि^४ ग्रन्थन्तनायकैः ॥१६३॥
^५प्रमह्य च तथाभूतान् वृत्तिच्छेदेन योजयेत् । कण्टकोद्धरणेनैव प्रजानां क्षेमधारणम् ॥१६४॥
 यथैव गोपं मज्जानं वत्सं मात्रासहामुकम्(नुगम्) । दिनमेकमवस्थाप्य ततोऽन्ये पुर्दयाद्विहीः ॥१६५॥
 विधाय चरणे तस्य^६ शनैर्वन्धनसन्निधिम् । नामिनालं पुनर्गर्भनालं नापास्य यवतः ॥१६६॥
 जन्तुमंभवद्वाद्यां प्रतीकारं विधाय च । क्षीरोपयोगदानाद्यैर्वर्द्धयेत् प्रतिवाम्भम् ॥१६७॥
 भूपोऽप्येवमुपासन्नं वृत्तये^७ स्वमुपासितुम्^८ । यथाऽनुरूपं ममानैः स्वाकुर्यादनुर्जाविनम् ॥१६८॥
 स्वीकृतस्य च तस्योद्धर्जावनादिप्रचिन्तया । योगक्षेमं प्रयुज्जीत कृतकलेशस्य मादगम् ॥१६९॥
 यथैव खलु गोपालः पशून् क्रेतु^९ समुद्यतः । क्षीरावलोकनाद्यैस्तान् परीक्ष्य गुणवत्तमान्^{१०} ॥१७०॥
 क्रीणाति शकुनादीनामवधारणतत्परः । कुलपुत्रान्नृपोऽप्येव क्रीणीयात् सुपरीक्षितान् ॥१७१॥
 क्रीतांश्च वृत्तिमूलेन तान् यथावसरं प्रभुः । कृत्येषु^{११} विनियुज्जीत भृत्यं मान्यं फलं हि तन ॥१७२॥
^{१२}यद्वच्च प्रतिभूः कश्चिद् यो क्रये प्रतिगृह्यते । बलवान् प्रतिभूस्तद्वद्ग्राह्यो^{१३} भृत्योऽप्यग्रहं ॥१७३॥
^{१४}याममात्रावशिष्टायां रात्रावुत्थाय यवतः । चारयित्वोचिते देजे गां प्रभृतनृणोदके ॥१७४॥

गोपण करता है उसी प्रकार राजाको भी अपने सेवक लोगोको किमी उपद्रवहीन स्थानमे रखकर उनकी रक्षा करनी चाहिए ॥१६१-१६२॥ यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो राज्य आदिका परिवर्तन होनेपर चोर, डाकू तथा समीपवर्ती अन्य राजा लोग उसके इन सेवकोको पीडा देने लगेगे ॥१६३॥ राजाको चाहिए कि वह ऐसे चोर डाकू आदिकी आजीविका जबरन नष्ट कर दे क्योंकि काँटोको दूर कर देनेसे ही प्रजाका कल्याण हो सकता है ॥१६४॥ जिस प्रकार ग्वाला हालके उत्पन्न हुए वच्चेको एक दिन तक माताके साथ रखता है, दूसरे दिन दयावुद्धिसे मुक्त हो उसके पैरमे धीरेसे रस्सी बाँधकर खूँटीसे बाँधता है, उसकी जरायु तथा नाभिके नालको बड़े यत्नसे दूर करता है, कीड़े उत्पन्न होनेकी शका होनेपर उसका प्रतीकार करता है, और दूध पिलाना आदि उपायोसे उसे प्रतिदिन बढ़ाता है ॥१६५-१६७॥ उसी प्रकार राजाको भी चाहिए कि वह आजीविकाके अर्थ अपनी सेवा करनेके लिए आये हुए सेवकको उसके योग्य आदर सन्मानसे स्वीकृत करे और जिन्हे स्वीकृत कर लिया है तथा जो अपने लिए क्लेश सहन करते हैं ऐसे उन सेवकोकी प्रशस्त आजीविका आदिका विचार कर उनके साथ योग और क्षेमका प्रयोग करना चाहिए अर्थात् जो वस्तु उनके पास नहीं है वह उन्हें देनी चाहिए और जो वस्तु उनके पास है उसकी रक्षा करनी चाहिए ॥१६८-१६९॥ जिस प्रकार शकुन आदि के निश्चय करनेमे तत्पर रहनेवाला ग्वाला जब पशुओको खरीदनेके लिए तैयार होता है तब वह दूध देखना आदि उपायोसे परीक्षा कर उनमे-से अत्यन्त गुणी पशुओको खरीदता है उसी प्रकार राजाको भी परीक्षा किये हुए उच्चकुलीन पुत्रोको खरीदना चाहिए ॥१७०-१७१॥ और आजीविकाके मूल्यसे खरीदे हुए उन सेवकोको समयानुसार योग्य कार्यमे लगा देना चाहिए क्योंकि वह कार्यरूपी फल सेवकोके द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है ॥१७२॥ जिस प्रकार पशुओके खरीदनेमे किसीको जामिनदार बनाया जाता है उसी प्रकार सेवकोका संग्रह करनेमे भी किसी बलवान् पुरुषको जामिनदार बनाना चाहिए ॥१७३॥ जिस प्रकार ग्वाला रात्रिके

१ मूलबलम् । २ -रक्षयेत् ल०, म० । ३ परिवर्तेऽस्य ल०, म० । राज्यादिं मुक्त्वा राज्यान्तरप्राप्तिषु । ४ अरक्षणप्रकारेण । ५ घाटीकारैः युद्धकारिभिर्वा । ६ म्लेच्छनायकैः । ७ हठात्कारेण । ८ वत्सस्य । ९ जरायुना । १० जीवनाय । ११ मेवा कर्तुम् । १२ क्रयणाय । १३ अतिशयेन गुणवत् । १४ कार्येषु । १५ यत्र ल०, म० । १६ घरक । १७ प्रहर । १८ भवयित्वा ।

प्रातस्तारामथानीय वत्सपीतावशिष्टकम् । पयो द्रोणिं यथा गोपो नवनीतादिलिप्सया ॥१७५॥
 तथा भूपोऽप्यत द्राक्षुमन्मामेषु कारयेत् । कृषिं^१ कर्मान्तिकैर्बाजप्रदानाद्यैरपक्रमै ॥१७६॥
 दशोऽपि कारयेत् कृत्स्ने कृषिं सम्यक्कृषीवलै । धान्यानां संग्रहार्थं च न्याय्यमश ततो^२ हरेत् ॥१७७॥
 सत्येव पुष्टतन्त्र स्याद् माण्डागारदिसपदा । पुष्टो दशञ्च तस्यैव स्याद् धान्यैराशितम्भै^३ ॥१७८॥
 स्वदेशे^४ वाक्षरम्लेच्छान् प्रजावाधाविधायिन । कुलशुद्धिप्रदानाद्यै स्वसात्कुर्यादुपक्रमै ॥१७९॥
 विक्रियां न भजन्त्यत प्रशुणा कृतसत्क्रिया । प्रभोरलब्धपमाना विक्रियन्ते हि तऽम्बहम् ॥१८०॥
 ये केचिन्नाक्षरम्लेच्छा स्वदेशे प्रचरिष्यन्व । तऽपि कर्षकसामान्य^५ कृतव्या^६ करदा नृपै ॥१८१॥
 ता प्राहुरक्षरम्लेच्छा यऽमी वेदोपजाविन । अधर्माक्षरसपादैर्लाकव्यामोहकारिण ॥१८२॥
 यतोऽक्षरकृत गधर्मविद्याबलतस्तके^७ । बह^८त्यतोऽक्षरम्लेच्छा पापसूत्रोपजीविन ॥१८३॥
 म्लेच्छाचारो हि हिंसाया रतिर्मासाशनेऽपि च । बलापरस्वहरण निह^९तमिति स्मृतम् ॥१८४॥
 सोऽस्यमीपा च^{१०} यद्वेदशास्त्रार्थमधमद्विजा । तादृश^{११} बहुमन्यन्त जातिवादावलेपत^{१२} ॥१८५॥
^{१३}प्रजासामान्यतैर्बैषां मत्ता वा स्यान्निकृष्टता । ततो^{१४} न मान्यताऽस्त्येषा द्विजा मान्या स्युरादृता ॥१८६॥

प्रहरमात्र शेष रहनेपर उठकर जहाँ बहुत-सा घास और पानी होता है ऐसे किसी योग्य स्थानमें गायोंको बड़े प्रयत्नसे चराता है तथा बड़े सबेरे ही वापिस लाकर बछड़ेके पीनेसे बाकी बचे हुए दूधको मक्खन आदि प्राप्त करनेकी इच्छासे दुह लेता है उसी प्रकार राजाको भी आलस्य रहित होकर अपने आधीन ग्रामोंमें बीज देना आदि साधनों-द्वारा किसानोंसे खेती कराना चाहिए ॥१७४-१७६॥ राजाको चाहिए कि वह अपने समस्त देशमें किसानों-द्वारा भली भाँति खेती करावे और धान्यका संग्रह करनेके लिए उनसे यायपूण उचित अंश लवे ॥१७७॥ ऐसा होनेसे उसके भाडार आदिमें बहुत सी सम्पत्ति इकट्ठी हो जावगी और उससे उसका बल बढ़ जावेगा तथा सन्तुष्ट करनेवाले उन धान्योंसे उसका देश भी पुष्ट अथवा समृद्धिशाली हो जावेगा ॥१७८॥ अपने आश्रित स्थानोंमें प्रजाको दुःख देनेवाले जो अक्षरम्लेच्छ अर्थात् वेत्से आजीविका करनेवाले हों उन्हें कुलशुद्धि प्रदान करना आदि उपायोंसे अपने आधीन करना चाहिए ॥१७९॥ अपने राजासे सत्कार पाकर वे अक्षरम्लेच्छ फिर उपद्रव नहीं करेंगे । यदि राजाओंसे उन्हें सम्मान प्राप्त नहीं होगा तो वे प्रतिदिन कुछ-न-कुछ उपद्रव करते ही रहेंगे ॥१८०॥ और जो कितने ही अक्षरम्लेच्छ अपने ही देशमें संचार करते हो उनसे भी राजाओं को सामान्य किसानोंकी तरह कर अवश्य लेना चाहिए ॥१८१॥ जो वेद पढ़कर अपनी आजीविका करते ह और अधम करनेवाले अक्षरोंके पाठसे लोगोको ठगा करते ह उन्हें अक्षरम्लेच्छ कहते हैं ॥१८२॥ चूँकि वे अज्ञानके बलसे अक्षरों द्वारा उत्पन्न हुए अहंकारको धारण करते हैं इसलिए पापसूत्रासे आजीविका करनेवाले वे अक्षरम्लेच्छ कहलाते ह ॥१८३॥ हिंसा और मास खानेमें प्रेम करना बलपूर्वक दूसरेका धन हरण करना और धूतता करना (स्वेच्छा चार करना) यही म्लेच्छोंका आचार माना गया है ॥१८४॥ चूँकि यह सब आचरण इनमें हैं और जातिके अभिमानसे ये नीच द्विज हिंसा आदिको प्ररूपित करनेवाले वेद शास्त्रके अथको बहुत कुछ मानते ह इसलिए इन्हें सामान्य प्रजाके समान ही मानना चाहिए अथवा उससे भी कुछ निवृष्ट मानना चाहिए । इन सब कारणोंसे इनकी कुछ भी मान्यता नहीं रह जाती

१ आरम्भप्रामाण्ययथ । २ कृषावसमृन्धे । ३ कृषीबलेभ्य । ४ स्वीकृत्यान् । ५ तत्पितर । ६ प्रदेशे अ०
 मं ल० म० । ७ कृषीबलप्रामाण्य यथा भवति तथा । ८ अपानवन्तान् । ९ कृत्तिगास्त । १० यन् कारणान् ।
 ११ हिंसनान्प्रकारम् । १२ गधम् । १३ प्रजामामाण्यवमम् । १४ प्रजाम् ।

वयं निस्तारका देवब्राह्मणा लोकसमता । धान्यभागमतो राज्ञे न दत्ता इति चेन्मतम् ॥१८७॥
 वैशिष्ट्य किङ्कृतं श्रेयवर्णभ्यो भवतामिह । न जातिमात्राद् वैशिष्ट्य जातिभेदाप्रतीति ॥१८८॥
 गुणतोऽपि न वैशिष्ट्यमस्ति वो नामधारका । व्रतिनो ब्राह्मणा जैना ये त एव गुणाविका ॥१८९॥
 निर्वृता निर्नमस्कारा निर्धृणाः पशुघातिन । म्लेच्छाचारपरा यूय न म्याने धार्मिका द्विजाः ॥१९०॥
 तस्मादन्ते कुरु म्लेच्छा इव तेऽमी महीभुजाम् । प्रजासामान्यधान्याग्रदानाद्यैरविशेषिता ॥१९१॥
 किमत्र बहुनोक्तेन जैनान्मुक्त्वा द्विजोत्तमान् । नान्ये मान्या नरेन्द्राणा प्रजामामान्यजीविका ॥१९२॥
 अन्यच्च गोधन गोपो व्याघ्रचोराद्युपक्रमात् । यथा रक्षत्यतन्द्रालुभूपोऽप्येव निजा प्रजा ॥१९३॥
 यथा च गोकुलं^३ गोमिन्यायातं सद्दिक्षया । सांपचारमुपेन्यैन तोपयेद् धनसम्पदा^४ ॥१९४॥
 भूपोऽप्येवं वली कश्चित् स्वराष्ट्रं यद्यभिद्रवेत् । तदा वृद्धं समालोच्य मद यात् पणवन्धत^५ ॥१९५॥
 जनक्षयाय सग्रामो बह्वपायो दुरुत्तरः । तस्मादुपप्रदानाद्यैः^६ सधेयोऽर्चिर्बलाधिकः ॥१९६॥
 इति गोपालदृष्टान्तमूरीकृत्य नरेश्वर । प्रजाना पालने यत्न^७ विद्वान्नायवर्त्मना ॥१९७॥

है, जो द्विज अरहन्त भगवान् के भक्त हैं वही मान्य गिने जाते हैं ॥१८५-१८६॥ “हम ही लोगोको ससार-सागरसे तारनेवाले हैं, हम ही देव ब्राह्मण हैं और हम ही लोकसम्मत हैं अर्थात् सभी लोग हम ही को मानते हैं इसलिए हम राजाको धान्यका उचित अग नहीं देते” इस प्रकार यदि वे द्विज कहे तो उनसे पूछना चाहिए कि आप लोगोमे अन्य वर्णवालोसे विशेषता क्यों है ? कदाचित् यह कहो कि हम जातिकी अपेक्षा विशिष्ट हैं तो आपका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि जातिकी अपेक्षा विशिष्टता अनुभवमे नहीं आती है, कदाचित् यह कहो कि गुणकी अपेक्षा विशिष्टता है सो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि आपलोग केवल नामके धारण करनेवाले हो, जो व्रतोको धारण करनेवाले जैन ब्राह्मण हैं वे ही गुणोसे अधिक हैं । आप लोग व्रतरहित, नमस्कार करनेके अयोग्य, दयाहीन, पशुओका घात करनेवाले और म्लेच्छो-के आचरण करनेमे तत्पर हो इसलिए आप लोग धर्मात्मा द्विज नहीं हो सकते । इन सब कारणो-से राजाओको चाहिए कि वे इन द्विजोको म्लेच्छोके समान समझे और उनसे सामान्य प्रजाकी तरह ही धान्यका योग्य अंश ग्रहण करे । अथवा इस विषयमे अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? जैनधर्मको धारण करनेवाले उत्तम द्विजोको छोड़कर प्रजाके समान आजीविका करनेवाले अन्य द्विज राजाओके पूज्य नहीं हैं ॥१८७-१८९॥

जिस प्रकार ग्वाला आलस्यरहित होकर अपने गोधनकी व्याघ्र चोर आदि उपद्रवोसे रक्षा करता है उसी प्रकार राजाको भी अपनी प्रजाकी रक्षा करनी चाहिए ॥१९३॥ जिस प्रकार ग्वाला उन पशुओके देखनेकी इच्छासे राजाके आनेपर भेट लेकर उसके समीप जाता है और धन सम्पदाके द्वारा उसे सन्तुष्ट करता है उसी प्रकार यदि कोई बलवान् राजा अपने राज्यके सन्मुख आवे तो वृद्ध लोगोके साथ विचार कर उसे कुछ देकर उसके साथ सन्धि कर लेना चाहिए । चूँकि युद्ध बहुत-से लोगोके विनाशका कारण है, उसमे बहुत-सी हानियाँ होती हैं और उसका भविष्य भी बुरा होता है अतः कुछ देकर बलवान् शत्रुके साथ सन्धि कर लेना ही ठीक है ॥१९४-१९६॥ इस प्रकार राजाको ग्वालाका दृष्टान्त स्वीकार कर नीतिसागंसे

१ न भवय । २ -द्युपद्रवात् ल०, म०, प० । ३ गोमती । गोमान् गोमीत्यभिधानात् । गोमत्या- म०, ल०, प० । ४ क्षीरघृतादिविक्रयज्जातघनममृद्घ्या । ५ अभिगच्छेत् । ६ सन्धान कुर्यात् । ७ निष्कप्रदाना-दित्यर्थः । ८ उचितवस्तुवाहनप्रदानाद्यै । ९ सर्व्वि कर्तुं योग्य । १० कुर्यात् ।

प्रजानुपालनं प्रोक्तं पाथिवरयं जितात्मनः । समञ्जसस्त्वमधुना वक्ष्यामस्तद्गुणां तरम् ॥१६८॥
 राजा चिरं समाधाय यत्कुर्याद् दुष्टनिग्रहम् । शिष्टानुपालनं चैव तत्सामञ्जस्यमुच्यते ॥१६९॥
 द्विषन्तमथवा पुत्रं निगृह्णन्निग्रहोचितम् । अपक्षपतितो दुष्टमिष्टं चेच्छन्ननागमम् ॥२००॥
 मध्यस्थवृत्तिरिव यः समदर्शी समञ्जसः । समञ्जसत्वं तद्भावं प्रजास्वविपमक्षिता ॥२०१॥
 गुणेनैतन् शिष्टानां पालनं यावज्जीविनाम् । दुष्टानां निग्रहं चैव नृपः कुर्यात् कृतागसाम् ॥२०२॥
 दुष्टा हिंसादिदोषेषु निरता पापकारिणः । शिष्टास्तु क्षान्तिशौचादिगुणैर्धर्मपरा नरा ॥२०३॥

वसन्ततिलकावृत्तम्

इत्थं मनु सकलचक्रभृदादिराज

तान् क्षत्रियान् नियमयन् पथि सुप्रजातः ।

उच्चावचगुरुमर्तुरुचितैर्बधोभि

शास्ति स्म वृत्तमखिलं पृथिवीद्वराणाम् ॥२०४॥

शार्दूलविक्रीडितम्

इत्युच्चैर्भरतशिनालुकथितं सर्वान्यमुखैश्चरा

क्षेत्रं धर्ममनुप्रवृत्तं मुदिता स्वं वृत्तिमन्यैरः ।

योगक्षेमपथेषु तथुं सहिता सर्वे च वर्णाश्रमा

स्वे स्वे वर्त्मनि सुस्थिता धृतिमधुधर्मोत्सवैः प्रत्यहम् ॥२०५॥

प्रजाका पालन करनेमें प्रयत्न करना चाहिए ॥१६७॥ इस प्रकार इन्द्रियोंको जीतनवाला राजाका प्रजापालन नामका गुण कहा । अब समजसत्व नामका अर्थ गुण कहते हैं ॥१६८॥

राजा अपने चित्तका समाधान कर जो दुष्ट पुरुषोंका निग्रह और शिष्ट पुरुषोंका पालन करता है वही उसका समजसत्व गुण कहलाता है ॥१६९॥ जो राजा निग्रह करने योग्य शत्रु अथवा पुत्र दोनोंका निग्रह करता है, जिसे किसीका पक्षपात नहीं है जो दुष्ट और मित्र, सभी को निरपराध बनानेकी इच्छा करता है और इस प्रकार मध्यस्थ रहकर जो सबपर समान दृष्टि रखता है वह समजस कहलाता है तथा प्रजाओंको विपम दृष्टिसे नहीं देखना अर्थात् सबपर समान दृष्टि रखना ही राजाका समजसत्व गुण है ॥२००-२०१॥ इस समजसत्व गुणसे ही राजाको यावत्पूवक आजीविका करनेवाला शिष्ट पुरुषोंका पालन और अपराध करनेवाला दुष्ट पुरुषोंका निग्रह करना चाहिए ॥२०२॥ जो पुरुष हिंसा आदि दोषोंमें तत्पर रहकर पाप करते हैं वे दुष्ट कहलाते हैं और जो क्षमा, सतोष आदि गुणोंके द्वारा धर्म धारण करनेमें तत्पर रहते हैं वे शिष्ट कहलाते हैं ॥२०३॥ इस प्रकार सोलहवें मनु तथा समस्त चक्रवर्तियोंमें प्रथम राजा महाराज भरतने उन क्षत्रियोंको भगवत्प्रणीत मार्गमें नियुक्त करते हुए अपने पिता श्री वृषभदेवको इष्ट ऊँचे नीचे याग्य वचनासे राजाओंके समस्त आचारका उपदेश किया ॥२०४॥

इस प्रकार भरतवरने जिसका अच्छी तरह प्रतिपादन किया है ऐसे सत्का हित करने वाले, क्षत्रियोंके उत्तुष्ट धर्मका स्वीकार कर सब राजा लोग प्रसन्न हो अपने अपने आचरणोंका पालन करने लगें और उन राजाओंका याग (नवीन वस्तुकी प्राप्ति) तथा क्षम (प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा) में प्रवृत्त रहनेपर अपना हित चाहनेवाले सब वर्णाश्रमोंके लोग अपने-अपने

१ पञ्चाशद्वर्तित । २ अपराधवर्तितम् । समञ्जसत्वसद्भावं अ प म० ल , म० । ४ मुष्ट प्राप्ते । ५ सर्वेभ्यो हितम् । ६ अनुग्रहम् । ७ गती लङ् । ह्यन्तित्वान् क्षप लवि निभाव क्षत्रुसिद्धि उत्तरश्रुता रस्य अकारात् । पूवत्कारस्य एव पुनर्दिशानि च कृत् एवम् इति सिद्धिः । ७ सर्वोद्वरण । ८ हितम् गतिम् ।

जातिक्षत्रियवृत्तमर्जिततर रत्नत्रयाविष्कृतं
 तीर्थक्षत्रियवृत्तमप्यनुजगौ यच्चक्रिणामग्रणीः ।
 तत्सर्वं मगधाधिपाय भगवान् वाचस्पतिगौतमो
 व्याचक्ष्यावगिलार्थतत्त्वविषयां जैनी श्रुतिं व्यापयन् ॥२०६॥
 वन्दारोर्भरताधिपस्य जगतां मर्तुः कर्मो वेधस
 तस्यानुस्मरतो गुणान् प्रणमतस्तं देवमात्रं जिनम् ।
 तस्यैवोपचिति^३ सुरामुरगुरोर्मकन्या सुदुस्तन्यत
 कालोऽनल्पतरः सुखाद् व्यतिगतो^४ नित्योत्पन्नं संभृत^५ ॥२०७॥

मन्दाक्रान्ता

जैनीमिज्या वितन्वन्नियतमनुदिन प्रीणयन्नर्थिमायं
 अश्वद्विश्चम्भरेशैरवनिष्टतलसन्मौलिभिः सेव्यमानः ।
 क्ष्मां कृत्स्नामापयोधेरपि^६ च हिमवतः पालयन्निस्सपत्नां
 रम्यैः स्वेच्छाविनोर्दैनिरविश^७ दयिराड् भोगसार दशाङ्गम् ॥२०८॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे
 भरतराजवर्णाश्रमस्थितिप्रतिपादन नाम द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४२॥*

■

मार्गमे स्थिर रहकर प्रतिदिन धर्मोत्सव करते हुए सन्तोष धारण करने लगे ॥२०५॥ चक्र-
 वर्तियोमे अग्रेसर महाराज भरतने जो अत्यन्त उत्कृष्ट जातिक्षत्रियोका चरित्र तथा रत्नत्रयसे
 प्रकट हुआ तीर्थक्षत्रियोका चरित्र कहा था वह सब, समस्त पदार्थोके स्वरूपको विषय करने-
 वाले जैन शास्त्रोको प्रकट करते हुए वाचस्पति (श्रुतकेवली) भगवान् गौतम गणधरने मगध
 देशके अधिपति श्रेणिकके लिए निरूपण किया ॥२०६॥ तीनो लोकोके स्वामी भगवान्
 वृषभदेवके चरणोकी वन्दना करनेवाले, उन्ही परब्रह्मके गुणोका स्मरण करनेवाले, उन्ही
 प्रथम जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करनेवाले और सुर तथा असुरोके गुरु उन्ही भगवान् वृषभदेवकी
 भक्तिपूर्वक बार-बार पूजा करनेवाले भरतेश्वरका निरन्तर होनेवाले उत्सवोसे भरा हुआ
 भारी समय सुखसे व्यतीत हो गया ॥२०७॥ जो नियमित रूपसे प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान्-
 की पूजा करता है, जो प्रतिदिन याचकोके समूहको सन्तुष्ट करता है, पृथिवीपर झुके हुए मुकुटो-
 से सुशोभित होनेवाले राजा लोग जिसकी निरन्तर सेवा करते हैं और जो हिमवान् पर्वतसे
 लेकर समुद्रपर्यन्तकी शत्रुरहित समस्त पृथिवीका पालन करता है ऐसा वह सम्राट् भरत अपनी
 इच्छानुसार क्रीडाओके द्वारा दश प्रकारके उत्तम भोगोका उपभोग करता था ॥२०८॥

इस प्रकार आर्ष नाममे प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिषष्टिलक्षण महापुराणसंग्रहके
 हिन्दी भाषानुवादमे भरतराजकी वर्णाश्रमकी रीतिका प्रतिपादन
 करनेवाला बयालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४२॥

■

१ उवाच । २ प्रकटीकुर्वन् । ३ पूजाम् । ४ व्यतिक्रान्त । ५ सम्प्रापित । ६ समुद्रादारम्य हिमवत्पर्यन्तम् ।
 ७ अन्वभूत् । ८ दिव्यपुष्करनिधिमेनाभाजनशयनासनवाहननाट्यादीनि दशाङ्गानि यस्य स तम् ।
 * ल० म० ३० प० पुस्तकेषु निम्नांकित पाठोऽधिको दृश्यते । त० व० अ० स० पुस्तकेष्वेव पाठो न दृश्यते ।

अनुष्टुप्

वृषभाय नमोऽशेषस्थितिप्रभवहृतव । त्रिकालगोचरान्तप्रमयाक्रान्तमृतवे ॥१॥
नमः सकलकल्याणपथनिर्माणहृतव । आदिदेवाय ससारसागरीचारसतवे ॥२॥

पृथ्वीच्छन्द

जयन्ति जितमृत्युवो विपुलवायभाजो जिना जगत्प्रमदहृतवो विपदमन्दकदच्छिद ॥
सुरासुरशिरस्फुरितरागरत्नावलीविलम्बिकिरणोत्करारुणितचारुपाद्द्रव्या ॥३॥
कृतिमहाकवेभगवत श्रीजिनसेनाचार्यस्यवि ।

वसन्ततिलका

धर्मोऽत्र मुक्तिपदमत्र कवित्वमत्र तीर्थेतिनश्चरितमत्र महापुराणे ।
यद्वा कथीन्द्रजिनसेनमुखारविन्दनिचद्रचांसि न हरन्ति मनासि कैषाम् ॥४॥

इत्यार्ये भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते महापुराणे
आद्यं खण्ड समाप्तिमगमत् ।



जो समस्त मर्यादाकी उत्पत्तिके कारण ह और जिनकी केवलज्ञानरूपी मूर्ति त्रिकाल विषयक अनन्त पदार्थोंसे व्याप्त है उन वृषभदेवके लिए नमस्कार हो ॥१॥ जो सब कल्याणोंके मागकी रचनाम कारण ह और जो ससाररूपी समुद्रसे पार करनेके लिए पुलके समान ह ऐसे प्रथम तीर्थ कर भगवान् वृषभदेवको नमस्कार हो ॥२॥ जिन्होंने मृत्युको जीत लिया है, जो अनन्त बलको धारण करनेवाल ह जो जगत्के आनन्दके कारण है जो विपत्तियोंको बहुत भारी जड़को काटनेवाल ह और सुर तथा असुरोंके मस्तकपर चमकते हुए पद्मराग मणियोंकी पवित्रसे निकलती हुई किरणोंके समूहसे जिनके दोनों सुन्दर चरणकमल कुछ-कुछ लाल हो रहे ह ऐसे जिनैन्द्रदेव सदा जयवन्त हो ॥३॥

(इस प्रकार महाकवि भगवान् जिनसेनाचार्यकी कृति समाप्त हुई)

इस महापुराणम धर्मका निरूपण है मोक्ष पद अथवा मोक्षमागका कथन है उत्तम कविता है और तीर्थ कर भगवान्का चरित है अथवा इस प्रकार समझना चाहिए कि कवियोंम श्रेष्ठ श्री जिनसेनव मुखकमलसे निकले हुए वचन किसके मनका हरण नहीं करते ह ? ॥४॥

(इस प्रकार भाव नामस प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत महापुराणका प्रथम खण्ड समाप्त हुआ)



आदिपुराणम्

[उत्तरखण्डम्]

त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्व

श्रिय तनोतु स श्रीमान् वृषभो वृषभध्वजः । यस्यैकस्य गतेर्मुक्तेमार्गश्चित्रं महानभूत ॥१॥
विक्रमं कर्मचक्रस्य यद्विशक्राभ्यर्चितक्रमः । आक्रम्य धर्मचक्रेण चक्रे त्रैलोक्यचक्रिताम् ॥२॥
योऽस्मिंश्चतुर्थकालादौ दिनादौ वा दिवाकरः । जगदुद्योतयामास प्रोद्गच्छद्वाग्गमस्तिभिः ॥३॥
नष्टमष्टादशाम्भोत्रिकोटीकोटीषु कालयोः । निर्वाणमार्गं निर्दिश्य येन सिद्धाञ्च वद्धिताः ॥४॥
तीर्थकृत्सु स्वतः प्राग्यो नामादानपरामवः । यमस्मिन् स्पृशन्नासौ स्वसूनुमिव चक्रिषु ॥५॥
येन प्रकाशिते मुक्तेमार्गेऽस्मिन्नपरेषु ततः । प्रकाशितप्रकाशोक्तवैयर्थ्यं तीर्थकृत्स्वभूत ॥६॥

अथानन्तर, जिनकी ध्वजामे वृषभका चिह्न है और सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि जिन एकके जानेसे ही बहुत बड़ा मोक्षका मार्ग बन गया ऐसे अन्तरग बहिरग लक्ष्मीको धारण करनेवाले श्री वृषभदेव सबका कल्याण करे ॥१॥ जिनके चरणकमलकी इन्द्र स्वयं पूजा करता है और जिन्होंने धर्मचक्रके द्वारा कर्मसमूहके पराक्रमपर आक्रमण कर तीनों लोकोका चक्रवर्तीपना प्राप्त किया है ॥२॥ दिनके प्रारम्भमे सूर्यकी तरह इस *चतुर्थकालके प्रारम्भमे उदय होकर जिन्होंने फैलती हुई अपनी वाणीरूपी किरणोंसे समस्त जगत्को प्रकाशित किया है अर्थात् दिव्य ध्वनिके-द्वारा समस्त तत्त्वोका उपदेश दिया है ॥३॥ उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी कालके अठारह कोड़ी सागर तक जो मोक्षका मार्ग नष्ट हो रहा था उसका निर्देश कर जिन्होंने सिद्धोकी सख्या बढ़ायी है । ॥४॥ जिस प्रकार चक्रवर्तियोंमे अपने पुत्र भरत चक्रवर्तीको उसके पहले किसी अन्य चक्रवर्तीका नाम लेनेसे उत्पन्न हुआ पराभव नहीं छू सका था उसी प्रकार तीर्थ-करोमे अपने पहले किसी अन्य तीर्थ करका नाम लेनेसे उत्पन्न हुआ पराभव जिन्हे छू भी नहीं सका था । भावार्थ—जिस प्रकार भरत इस युगके समस्त चक्रवर्तियोंमे पहले चक्रवर्ती थे उसी प्रकार जो इस युगके समस्त तीर्थ करोमे पहले तीर्थ कर थे ॥५॥ जिनके द्वारा इस मोक्षमार्गके प्रकाशित किये जानेपर अन्य तीर्थ करोमे प्रकाशित हुए मोक्षमार्गको प्रकाशित करनेके कारण उपदेशकी व्यर्थता हुई थी । भावार्थ—इस समय जो मोक्षका मार्ग चल रहा है उसका उपदेश सबसे पहले भगवान् वृषभदेवने ही दिया था उनके पीछे होनेवाले अन्य तीर्थ करने भी उसी मार्गका उपदेश दिया है इसलिए उनका उपदेश पुनरुक्त होनेके कारण व्यर्थ—सा जान पड़ता

१ गमनात् । २ मुक्तिमार्ग—प०, ल०, म० । ३ कर्मराजसैन्यस्य । ४ जित्वा । ५ चतुर्थकालस्यादौ । ६ इव । ७ उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो । ८ उपदेश कृत्वा । ९ अजितादिषु । १० आत्मन पुरुजिनात् । ११ पूर्वस्मिन् काले । १२ सामदानपराभव इति पाठस्य ल० पुस्तके सकेत । नामदानपराभव इति पाठस्य 'द०' पुस्तके सकेत । अदानपराभव—आहारादिदानाभाव इति पराभव । नामदानपराभव इति पाठे कीर्तिदानयोरभाव इति पराभव । १३ चतुर्थकालस्यादौ । १४ वृषभेण । १५ चतुर्थकालादौ । १६ मोक्षमार्गप्रकाशनम् । १७ प्रकाशितस्य प्रकाशने प्रोक्तवैयर्थ्यत्वम् ।

* भगवान् वृषभदेव तृतीय कालके अन्तमे उत्पन्न हुए और तृतीय कालमे ही मोक्ष पधारे है इसलिए आचार्य गुणभट्टने चतुर्थकालके आदिमे होना किम दृष्टिने लिखा है यह विचारणीय है ।

अथवाऽग्रं^१ भवेदस्य त्रिरसं नेति निश्चयः । धर्माग्रं ननु केनापि नादृशि त्रिरसं कचिन ॥ १६ ॥
 गुरुणामेव माहात्म्यं^२ यद्यपि स्वादु मद्बचः । तरूणां हि प्रभावेण^३ यत्फलं स्वादु जायते ॥ १७ ॥
 निर्यान्ति हृदयाद् वाचो हृदि मे गुरवः स्थिताः । ते^४ तत्र म्मेस्करिष्यन्ते तत्र मेऽत्र परिश्रमः ॥ १८ ॥
 इदं शुश्रूषवो^५ भव्याः कथितोऽर्थो जिनेश्वरैः । तस्याभिधायकाः शब्दास्तत्र^६ निन्दाऽत्र वर्तते ॥ १९ ॥
 दोषान् गुणान् गुणी गृह्णन् गुणान् दोषांस्तु दोषवान् । सदसज्ज्ञानयोश्चित्रमत्र माहात्म्यमीदृशम् ॥ २० ॥
 गुणिनां गुणमादाय गुणी भवतु सज्जनः । असदोपममादानाद् दोषवान् दुर्जनोऽद्भुतम् ॥ २१ ॥
 सज्जने दुर्जनः कोपं कामं कर्तुमिहार्हति । तद्वैरिणामनाथानां गुणानामाश्रयो^७ यतः^८ ॥ २२ ॥
 यथा^९ स्वानुगमर्हन्ति सदा स्तोतुं कवीश्वराः । तथा निन्दितुमस्वानुवृत्तं कुकवयोऽपि माम् ॥ २३ ॥
 कविरेव कवेर्वेत्ति काम काव्यपरिश्रमम् । बन्ध्या स्तनंधयोत्पत्तिवेदनामिव नाकवि ॥ २४ ॥
 गृहाणेहास्ति चेदोषं स्वं धनं न निषिध्यते । खलासि प्रार्थितो भूयस्त्वं गुणान्न ममाग्रहीः ॥ २५ ॥

कहनेपर ही स्वादिष्ट भोजनकी इच्छा नहीं करते । भावार्थ — जिस प्रकार भोजन करनेवाले पुरुष प्रिय वचनोकी अपेक्षा न कर स्वादिष्ट भोजनका ही विचार करते हैं उसी प्रकार धर्मात्मा लोग मेरी योग्यताकी अपेक्षा न कर केवल धर्मका ही विचार करे — धर्म समझकर ही इसे ग्रहण करे ॥ १५ ॥ अथवा इस पुराणका अग्रभाग भी नीरस नहीं होगा यह निश्चय है क्योंकि धर्मका अग्रभाग कही किसी पुरुषने नीरस नहीं देखा है ॥ १६ ॥ यदि मेरे वचन स्वादिष्ट हो तो इसमें गुरुओका ही माहात्म्य समझना चाहिए क्योंकि जो फल मीठे होते हैं वह वृक्षोका ही प्रभाव समझना चाहिए ॥ १७ ॥ चूँकि वचन हृदयसे निकलते हैं और मेरे हृदयमें गुरु विद्यमान हैं इसलिए वे मेरे वचनोमें अवश्य ही सस्कार करेंगे अर्थात् उन्हें सुधार लेंगे अतः मुझे इस ग्रन्थके बनानेमें कुछ भी परिश्रम नहीं होगा ॥ १८ ॥ इस पुराणको सुननेकी इच्छा करनेवाले भव्य जीव हैं, इसका अर्थ जिनेन्द्रदेवने कहा है और उसके कहनेवाले शब्द हैं इसलिए इसमें निन्दा (दोष) नहीं है ॥ १९ ॥ गुणी लोग दोषोको भी गुणरूपसे ग्रहण करते हैं और दोषी लोग गुणोको भी दोषरूपसे ग्रहण करते हैं, इस ससारमें सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञानका यह ऐसा ही विचित्र माहात्म्य है ॥ २० ॥ सज्जन पुरुष गुणी लोगोके गुण ग्रहण कर गुणी हो यह ठीक है परन्तु दुष्ट पुरुष अविद्यमान दोषोको ग्रहण कर दोषी हो जाते हैं यह आश्चर्यकी बात है ॥ २१ ॥ इस ससारमें दुर्जन पुरुष सज्जनोपर इच्छानुसार क्रोध करनेके योग्य हैं क्योंकि वे उन दुष्टोके शत्रु स्वरूप, अनाथ गुणोके आश्रयभूत हैं । भावार्थ — चूँकि सज्जनोने दुर्जनोके शत्रुभूत, अनाथ गुणोको आश्रय दिया है इसलिए वे सज्जनोपर यदि क्रोध करते हैं तो उचित ही है ॥ २२ ॥ जिस प्रकार कवीश्वर लोग अपने अनुकूल चलनेवालेकी सदा स्तुति करनेके योग्य होते हैं उसी प्रकार कवि भी अपने अनुकूल नहीं चलनेवाले मेरी निन्दा करनेके योग्य हैं । भावार्थ — उत्तम कवियोके मार्गपर चलनेके कारण जहाँ वे मेरी प्रशंसा करेंगे वहाँ कुकवियोके मार्गपर न चलनेके कारण वे मेरी निन्दा भी करेंगे ॥ २३ ॥ कवि ही कविके काव्य करनेके परिश्रमको अच्छी तरह जान सकता है, जिस प्रकार बन्ध्या स्त्री पुत्र उत्पन्न करनेकी वेदनाको नहीं जानती उसी प्रकार अकवि कविके परिश्रमको नहीं जान सकता ॥ २४ ॥ रे दुष्ट, यदि मेरे इस ग्रन्थमें दोष हो तो उन्हें तू ग्रहण कर, क्योंकि वह तेरा ही धन है उसके लिए तुझे रुकावट नहीं है, परन्तु

१ उत्तरार्द्धम् । २ यद्यपि प०, ल०, म० । ३ प्रभावोऽसी अ०, प०, इ०, स०, ल०, म० । ४ गुरव । ५ श्रोतुमिच्छव । ६ तत् कारणात् । ७ दुर्जनद्वेषिणाम् । ८ सज्जनः । आधारः । ९ यत कारणात् । १० निजानुवर्तिनम् ।

गुणगुणानभिन्नं शृणु निन्दा भया मनुनि । ता यथायथं प्रहस्य तत्र दामाय वयम् ॥२३॥
 अथवा मा मभिन्नं वि निन्दु म्नां यः शृणुम् । निदम्भयिष्यामनामस्यमा वाम्बु विभ्रम ॥२३॥
 गगनं भ्रमं वि ध्रुवावप्रयमं यम । दाम गुणातिना त्वा वाम्बुमारा वि नाभमाम् ॥२४॥
 वाष्टमपि दामयति वाष्ट त मनु यत्तय । प्रदाययितमतामना मद्रवतायमामन ॥२५॥
 शृणिनिन्द शृणि धरा वरां गुणदायका । तं गगनं कर्म वीमिमतमुरवि मन्त्र ॥२६॥
 मन्त्रैरमुनं गगनं गन्दां गुणगिता । वग मन्त्रमन्त्रं प्राप्य मन्त्रं तदर्थं भूम् ॥२७॥
 प्रवृत्तं शृणि शृणा गुणं गुणयथाभ्यान । मागिनाधननामाम्बु विदम्बु मुद्रयनुमाम् ॥२८॥
 मन्त्रं वरां गुणं शृणि रानीं तमगुणाम् । विदम्बु वगमिन्त्रं भाषायां वर्यागिनाम् ॥२९॥
 इदं पुषा प्रदायन्ति मा गुणान् गुणगताः । विमताम्यानि रम्यानि मीनम्यमृगपुष्पका ॥३०॥
 इति धममन्त्रायमागमाभाधिममयम् । वाम्बुमादधिर मन्त्रा द्वापु मन्त्रायाम् ॥३१॥

मैं तुझमें यह फिर भी प्रायशः करता हूँ कि तू मेरे गुणों का प्रहण मत कर । भावार्थ — दुर्जनके द्वारा दाप ग्रहण किया जाऊपर रानी निर्दोष हो जायगा और निर्दोष जानने मरवा रक्षितर होगी परन्तु गुण ग्रहण किया जानपर यह त्रिगुण हो जायेगी विभीषा रक्षितर तदा हागा अतः यहाँ आशयन दुर्जा पुष्पम गठा है कि तू मेरी इस रचना का दाप ग्रहण कर क्योंकि यह दाप धन है परन्तु गुणापर हाथ नहीं लगाता ॥ २५ ॥ जिस प्रकार जमा अध विभी धूप पुष्पक द्वारा की हुई रीती की स्तुति या निन्दा उमरी हागा निन्दा हातो है उगी प्रकार गुण और दोषों के विषयम अज्ञानवार पुष्पके द्वारा की हुई स्तुति या निन्दा तबल उमकी हँसी के लिए होती है ॥ २६ ॥ अथवा यह अज्ञानवार मनुष्य भी मेरी रचनारी निन्दा या स्तुति करे क्योंकि ऐसा न करने का चतुर पुष्पाका हास्यका स्थान वहाँ प्राप्त होगा । भावार्थ — जो मनुष्य उस विषयका जानवार न हाकर भी विभीषी रीति या स्तुति करता है चतुर मनुष्य उसकी हनी ही करते ह ॥ २७ ॥ महापुष्प क्या तुच्छ मनुष्यो गमान छात्र-छोटे उपद्रवाको गिना करते है ? अर्थात् नहीं । तूणकी आगमे रुई जल सरती है परन्तु उसमें समुद्रके जलको सन्ताप नहीं हो सकता ॥ २८ ॥ बाठसे उत्पन्न हुई अग्नि बाठका जला दती है परन्तु बाठ उसे बढ़ाता ही है, ये दोना उदाहरण अच्छ और बुरे भावाको प्रबट करनेके विषयम दोषवने समान आचरण करते है ॥ २९ ॥ दुष्ट पुरुष मेरी रचनाको गुनकर गुणाकी स्तुति और दापाकी निन्दा करे क्योंकि यद्यपि वे उत्तम रचना करना नहीं जानते तथापि मेरी रचनाकी स्तुति अथवा निन्दा ही उनकी वीक्षिकी करनेवाली होगी ॥ ३० ॥ उत्तम कविने वचन ठीक अजुनके वाणोंके समान होते ह क्योंकि जिस प्रकार अर्जुनके वाण कामम स्त्रोपर छोटे सस्वारवाल वण (कण नामका राजा) को पाकर उसके हृदयको दुःख पहुँचाते थे उसी प्रकार उत्तम कविके वचन काममें लानेपर छोटे सस्वारवाल वण (श्रवण इन्द्रिय) को पाकर हृदयको अत्यन्त दुःख पहुँचाते है ॥ ३१ ॥ पहलेके कवीश्वरोंको गुरु मानकर ही यह रचना की गयी है इसलिए जो कवि आज विद्यमान ह अथवा आगे होंगे वे सब इसे शुद्ध करनेकी शृपा करें ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार रानी किसी उत्तम कन्याको केवल उत्पन्न करती है उसका पालन-पोषण धाय करती है उसी प्रकार मेरी बुद्धि इस रचनाको केवल उत्पन्न कर रही है इसका पालन-पोषण धायके समान कवीश्वरों की बुद्धि ही करेगी ॥ ३३ ॥ मेरे इस काव्यको पण्डितजन ही ग्रहण करगे अन्य मूल लोग भले ही ग्रहण न करें क्योंकि जिन्होंने पुण्य नहीं किया है ऐसे दक्षिण पुरुष क्या अमूल्य रत्नोंको खरीद सकते है ? अर्थात् नहीं ॥ ३४ ॥ पुरुषोत्तम (नारायण अथवा उत्तम मनुष्य) आगमरूपी

श्रोत्रपात्राञ्जलिं कृत्वा पीत्वा धर्मरसायनम् । अजरामरतां प्राप्तुमुपयुन्ध्वमिदं^१ बुधाः ॥३६॥
 नून पुण्यं पुराणाद्यधर्ममध्यासितं मया । तत्सुभाषितरत्नानि सचित्तानीति निश्चिति ॥३७॥
 सुदूरपारगम्भीरमिति नात्र मयं मम । पुरोगा गुरवः सन्ति प्रष्टाः सर्वत्र दुर्लभाः ॥३८॥
 पुराणस्यास्य संसिद्धिर्नाम्ना स्वेनैव सूचिता । निर्वक्ष्याम्यत्र नो वेत्ति ततो नास्त्यहमाकुलः ॥३९॥
 पुराणं मार्गमासाद्य जिनसेनानुगा ध्रुवम् । भवाब्धे पारमिच्छन्ति पुराणस्य किमुच्यते ॥४०॥
 अर्थो मनसि जिह्वाग्रे शब्दः । मालकृति^३स्तथो^४ । अतः पुराणमसिद्धेर्नास्ति कालविलम्बनम् ॥४१॥
 आकरेण्विव रत्नानामृहानां नाशये क्षयः । विचित्रालकृती^५ कर्तुं दौर्गत्यं किं कवेः कृती^६ ॥४२॥
 विचित्रपदविन्यासा रसिका सर्वसुन्दरा^७ । कृतिः मालंकृतिर्न स्यात् कस्येय कामसिद्धये ॥४३॥
 संचितस्थैनसो हन्त्री^८ नियन्त्री^९ चागमिष्यतः । आमन्त्रिणी^{१०} च पुण्यानां ध्यातव्येयं कृतिः शुभा ॥४४॥

समुद्रसे उत्पन्न हुए इस धर्मरूपी - महारत्नको कौस्तुभ मणिसे भी अधिक मानकर अपने हृदयमे धारण करे ॥३५॥ पण्डितजन कामरूपी पात्रकी अजलि बना इस धर्मरूपी रसायनको पीकर अजर अमरपना प्राप्त करनेके लिए उद्यम करे ॥३६॥ मुझे यह निश्चय है कि मैंने अवश्य ही इस पुराणरूपी समुद्रके पवित्र मध्यभागमे अधिष्ठान किया है और उससे सुभाषित-रूपी रत्नोका संचय किया है ॥३७॥ यह पुराणरूपी समुद्र अत्यन्त गम्भीर है, इसका किनारा बहुत दूर है इस विषयका मुझे कुछ भी भय नहीं है क्योंकि सब जगह दुर्लभ और सबमे श्रेष्ठ गुरु जिनसेनाचार्य मेरे आगे हैं ॥३८॥ इस पुराणकी सिद्धि अपने महापुराण इस नामसे ही सूचित है इसलिए मैं इसे कह सकूंगा अथवा इसमे निर्वाह पा सकूंगा या नहीं इसकी मुझे कुछ भी आकुलता नहीं है ॥३९॥ जिनसेनाचार्यके अनुगामी शिष्य प्रशस्त मार्गका आलम्बन कर अवश्य ही ससाररूपी समुद्रसे पार होनेकी इच्छा करते हैं फिर इस पुराणके पार होनेकी बात तो कहना ही क्या है ? भावार्थ—जिनसेनाचार्यके द्वारा बतलाये हुए मार्गका अनुसरण करनेसे जब ससाररूपी समुद्रका पार भी प्राप्त किया जा सकता है तब पुराणका पार (अन्त) प्राप्त करना क्या कठिन है ? ॥४०॥ अर्थ मनमे है, शब्द जिह्वाके अग्रभागपर है और उन दोनोंके अलंकार प्रसिद्ध है ही अतः इस पुराणकी सिद्धि (पूर्ति) होनेमे समयका विलम्ब नहीं है अर्थात् इसकी रचना शीघ्र ही पूर्ण होगी ॥४१॥ जिस प्रकार खानिमे रत्नोकी कमी नहीं है उसी प्रकार जिसके मनमे तर्क अथवा पदार्थोकी कमी नहीं है फिर भला जिसमे अनेक प्रकारके अलंकार हैं ऐसे काव्यके बनानेवाले कविको दरिद्रता किस बातकी है ? ॥४२॥ मेरी यह रचना अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीके समान है क्योंकि जिस प्रकार सुन्दर स्त्री विचित्र पदव्यासा अर्थात् अनेक प्रकारसे चरण रखनेवाली होती है उसी प्रकार यह रचना भी विचित्र पदव्यासा अर्थात् अनेक प्रकारके सुवन्त तिङन्त रूप पद रखनेवाली है, जिस प्रकार सुन्दर स्त्री रसिका अर्थात् रसीली होती है उसी प्रकार यह रचना भी रसिका अर्थात् अनेक रसोसे भरी हुई है, और जिस प्रकार सुन्दर स्त्री सालकारा अर्थात् कटक कुण्डल आदि आभूषणोसे सहित होती है उसी प्रकार यह रचना भी सालंकारा अर्थात् उपमा रूपक आदि अलंकारोसे सहित है । इस प्रकार मेरी यह रचना सुन्दरी स्त्रीके समान भला किसके मनोरथकी सिद्धिके लिए न होगी ? भावार्थ—इसके पढ़नेसे सबके मनोरथ पूर्ण होंगे ॥४३॥ यह शुभ रचना पहलेके सचित पापोको नष्ट

१ उपयुञ्जीध्वम् । २ प्रनिद्धा । ३ अलङ्कारश्च जिह्वाग्रे वर्तते । ४ शब्दार्थयो । ५ -लङ्कृते कर्तुर्दौर्गत्यं अ०, प०, ल०, म० । -लङ्कृते कर्तुं दौर्गत्यं ड०, स० । ६ कृते अ०, प०, ल०, म०, इ०, स० । ७ -सुन्दरी ल०, म० । ८ विनाशिनी । ९ प्रतिपेदी । १० आमन्त्रिणी स० ।

महत्तमानां तित्प्रीति प्राप्तानां प्रियं प्रियम् । एतद्दिने प्रियं यान् मया न मन्त्रायवायम् ॥४॥
इदं निजसमयात् सितामरापुराणम् । इत्यर्थभाविता साह प्रमुष्य प्रमुष्या बधाय ॥४॥
इति पादिका ।

अथा धनिः पाया पुरा मुषरितामृतम् । भागिन्वादिपुं जयं ॥४॥
समुपाय सभास्य प्रीति प्रणता मनाः । पुनर्विचारयासां सौम्य मगनायकम् ॥४॥
एव प्रसादात्पुन मय्यवपुराण पाम पुरा । निवृत्ता या यथास्याः ॥४॥
इति तस्मिन् गया नाम तार्थ भूय पाथिवाप्रणाः । ॥४॥
यस्य दिग्विजय मधुमारनिजय स्वयम् । यारदह समुद्रस्य बधय मरगदर ॥४॥
पुरस्तापदृतां पुरद्विष्टिनां भगवत्पर । दानगाधदृतां धर्मोत्तमिनां ॥४॥
भगवति पुरा पात्रे मगर दृतामगर ॥४॥
सनाता दृता कुम्भा स्थाना इत्यमर । धनुरस्त जना द्युतासां मायान्तद्वयम् ॥४॥
नन्दा माभदृता मूरदृता गुणेश्वर । वायुनामा यगाबाहुदेवाग्निश्चाग्निद्वयम् ॥४॥
अग्निगुता य मित्राग्निहस्तम् ममहापर । महम्ना मसुद्वयस्य तत पदद्वयमुत्तर ॥४॥

करनेवाली है, आनेवाला पाणाकी राखनवाली है और पुण्याका बुलावेवाली है इसलिए इसका सदा ध्यात करत रहना चाहिए ॥४॥ उत्तम मनुष्याकी दिनम प्राप्ति दाती है और साधारण मनुष्यका जा दष्ट है वही प्रिय होता है, यह पुराण हितम्प भी है और प्रिय भी है अतः सभी को अच्छी तरह मनुष्य करता है ॥४॥ यह तयार हुआ पुराण अवश्य ही इस समारम युगात्तर तक स्थिर रहगा इस प्रकार जिस उत्साह प्रयत्न हुआ है एगा म अब प्रवृत्त बयाका प्रारम्भ करता है ॥४॥ (इस प्रकार पीठिका समाप्त हुई ।)

अयानन्तर-राजा शनिः भगवान् वृषभदेवने उत्तम चरितम्पी अमृतको पीकर हायम लगे हुए की तरह उसका गप भागवा भी आस्थान्न करनेकी इच्छा करता हुआ अयन्त उत्कण्ठित हो उठा ॥४॥ उसने सभाके बीचम लडे हाकर हाय जाडे, कुछ शिर मुकावर नमस्कार किया और फिर गौतम गणधरस इस प्रकार प्रार्थना की कि हे भगवान्, मैंने आपके प्रसादसे श्री वृषभदेवका यह उत्कृष्ट पुराण अच्छी तरह श्रवण किया है । जिस प्रकार भगवन् वृषभदेव इस पुराणके अन्तम निर्वाणकी प्राप्त होकर सुखी हुए हैं उसी प्रकार मैं भी इसे सुनकर अत्यन्त सुखी हुआ हूँ । ऐसा सुना जाता है कि भगवान् वृषभदेवके तीर्थम सब राजाओंमें श्रेष्ठ जयकुमार नामका यह राजा हुआ था, जिसने अक्कीत्तिको भी जीता था और जिसका प्रताप आज भी पथिवीपर प्रसिद्ध है । दिग्विजयके समय मधुमारकी जीत लनेपर जिसके लिए स्वयं महाराज भरतने वीरपट्ट निकालकर बांधा था, जिस प्रकार तीर्थ करोम वृषभदेव, चक्रवर्तियोंम सम्राट भरत और दान तीर्थकी प्रवृत्ति करनेवालोंम राजा श्रेयास सबप्रथम हुए हैं उसी प्रकार जो स्वयंवरकी विधि चलानेम सबप्रथम हुआ है जिसने युद्धम प्रतिज्ञा कर श्री वृषभदेवके पोते अक्कीत्तिको अकेले ही लीलामात्रमें जीतकर बांध लिया था तथा वृषभसेन १, कुम्भ २, दृढरथ ३, शतधनु ४, देवशर्मा ५, देवभाव ६, नन्दन ७, सोमदत्त ८, गुणोसे श्रेष्ठ मूरदत्त ९, वायुशर्मा १०, यक्षीबाहु ११, देवाग्नि १२, अग्निदेव १३, अग्निगुप्त १४, मित्राग्नि १५, हलभूत् १६,

१ उत्तमपुराणाम् । २ परिणमनसुखावधे । ३ साधारणानाम् । ४ आपातरमणीयम् । अनुभवनकाले सुन्दर नित्यम् । ५ इष्टम् । ६ पुराणम् । ७ प्रारम्भे । ८ वृषभस्य । ९ आस्वादयितुमिच्छ । १ हस्तालन-अ०, प० ल० म० । ११ ईषत् । १२ अतिसुखी । १३ जयस्य । १४ जयकुमार । १५ नृपारम् । १६ कृत प्रतिज्ञा । १७ वधम् ।

अचलो मेरुसञ्ज्ञश्च ततो मेरुधनाह्वयः । मेरुभूतिर्यज्ञोयज्ञप्रान्तसर्वाभिधानकौ ॥५७॥
 सर्वगुप्तः प्रियप्रान्तसर्वो देवान्तसर्ववाक् । सर्वादित्रिजयो गुप्तो विजयादिस्ततः परः ॥५८॥
 विजयमित्रो विजयिलोऽपराजितमञ्जकः । वसुमित्रः सविश्वादिसेनः सेनान्तसाधुवाक् ॥५९॥
 देवान्तसत्यः सत्यान्तदेवो गुप्तान्तसत्यवाक् । सत्यमित्रः सतां ज्येष्ठः समितो निर्मलो गुणैः ॥६०॥
 विनीतः सवरो गुप्तो मुन्यादिर्मुनिदत्तवाक् । मुनियज्ञो मुनिदेवप्रान्तो यज्ञान्तगुप्तवाक् ॥६१॥
 मित्रयज्ञः स्वयम्भूश्च देवदत्तान्तर्गो भर्गो । भगादिफल्गुः फल्ग्वन्तगुप्तो मित्रादिफल्गुकः ॥६२॥
 प्रजापतिः सर्वसन्धो वरुणो धनपालकः । मघवान् राश्यन्ततेजो महावीरो महारथः ॥६३॥
 विशालाक्षो महाबालः शुचिशालस्ततः परः । वज्रश्च वज्रसारश्च चन्द्रचूलसमाह्वयः ॥६४॥
 जयो महारथः कच्छमहाकच्छावतुच्छकौ । नमिर्विनमिरन्यौ च बलातिबलमञ्जकौ ॥६५॥
 बलान्तमन्द्रो नन्दी च महाभागी परस्ततः । मित्रान्तनन्दी देवान्तकामोऽनुपमलक्षणः ॥६६॥
 चतुर्मिरधिकाशीतिरिति स्रष्टुर्गणाधिपा । एते सप्तद्विसंयुक्ताः सर्वे वेद्यनुवादिनः ॥६७॥
 स एवासीद् गृहत्यागादन्तेष्वप्युदितोदितः । एकमसति संख्यानसप्राप्तगणनो गर्गा ॥६८॥
 पुराणं तस्य मे ब्रूहि महत्तत्रास्ति कौतुकम् । मध्यचातकवृन्दस्य प्रधणो भगवानिति ॥६९॥
 ततः स्वस्य समालक्ष्य गणाधीनादनुग्रहम् । अलञ्चकार स्वस्थानमिद्विजज्ञा हि धीधनाः ॥७०॥
 यत्प्रष्टुमिष्टमस्माभिः पृष्टं शिष्टं त्वयैव तत् । चेतो जिह्वा त्वमस्माकमित्यस्तावीत् समा च तम् ॥७१॥

प्रसिद्ध महीधर १७, महेन्द्र १८, वसुदेव १९, उसके अनन्तर वसुधर २०, अचल २१, मेरु २२, तदनन्तर मेरुधन २३, मेरुभूति २४, सर्वयज्ञ २५, सर्वयज्ञ २६, सर्वगुप्त २७, सर्वप्रिय २८, सर्वदेव २९, सर्वविजय ३०, विजयगुप्त ३१, फिर विजयमित्र ३२, विजयिल ३३, अपराजित ३४, वसुमित्र ३५, प्रसिद्ध विग्वसेन ३६, साधुसेन ३७, सत्यदेव ३८, देवसत्य ३९, सत्यगुप्त ४०, सत्पुरुषोमे श्रेष्ठ सत्यमित्र ४१, गुणोसे युक्त निर्मल ४२, विनीत ४३, सवर ४४, मुनिगुप्त ४५, मुनिदत्त ४६, मुनियज्ञ ४७, मुनिदेव ४८, गुप्तयज्ञ ४९, मित्रयज्ञ ५०, स्वयम्भू ५१, भगदेव ५२, भगदत्त ५३, भगफल्गु ५४, गुप्तफल्गु ५५, मित्रफल्गु ५६, प्रजापति ५७, सर्वसध ५८, वरुण ५९, धनपालक ६०, मघवान् ६१, तेजोराशि ६२, महावीर ६३, महारथ ६४, विशालाक्ष ६५, महाबाल ६६, शुचिशाल ६७, फिर वज्र ६८, वज्रसार ६९, चन्द्रचूल ७०, जय ७१, महारस ७२, अतिगय श्रेष्ठ कच्छ ७३, महाकच्छ ७४, नमि ७५, विनमि ७६, बल ७७, अतिबल ७८, भद्रबल ७९, नन्दी ८०, फिर महाभागी ८१, नन्दिमित्र ८२, कामदेव ८३ और अनुपम ८४ । इस प्रकार भगवान् वृषभदेवके ये ८४ गणधर थे, ये सभी सातो ऋद्धियोसे सहित थे और सर्वज्ञ देवके अनुरूप थे । इन चौरासी गणधरोमे जो घरका त्याग कर अत्यन्त प्रभावशाली, गुणवान् और इकहत्तरवी सख्याको प्राप्त करनेवाला अर्थात् इकहत्तरवाँ गणधर हुआ था, उन्ही जयकुमारका पुराण मुझे कहिए क्योंकि उसमे बहुत भारी कौतुक है । आप भव्यजीवरूपी चातक पक्षियोंके समूहके लिए उत्तम मेघके समान हैं ॥ ४८-६९ ॥

तदनन्तर गणधरदेवसे अपना अनुग्रह जानकर राजा श्रेणिक अपने स्थानको अलङ्कृत करने लगा अर्थात् अपने स्थानपर जा बैठा सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष सकेतको जाननेवाले होते हैं ॥ ७० ॥ 'हे शिष्ट' जिसे हम लोग पूछना चाहते थे वही तूने पूछा है इसलिए

१ सर्वयज्ञा सर्वयज्ञा । २ देवदत्तभगदत्तौ । ३ सर्वज्ञमुद्गृह । ४ पर्यम्युदयवान् । प्रतिस्थात इत्यर्थः । ५ एतेषु चतुरङ्गीतिगणधरदेवेष्वेकमस्तुतिमख्या प्राप्तगणना । ६ गुणी ल०, म० । ७ जयस्य । ८ प्रकृष्टमेव इति विज्ञापयामास । ९ ज्ञान्वेत्यर्थः । १० स्तुतिमकरोत् ।

गणी ननति मष्टे प्रष्टुमन्तुमह । नाधिना विमुक्तान गगनः कृष्णम गच्छि तद्वत्तम् ॥७३॥

शृणु धनिक मप्रानन्दनाथागमर शृणु । नागधवन्ति वापान मन्ता नगरवदिन ॥७३॥

कथामुत्तरम्

हृत् तद्वत्तमि द्वाप दक्षिण भरन मन्तान । यगाधमममार्षीणा राजा विग कृष्णाद्वत् ॥७४॥

धमाधमममा रागामरा एत यगाधर । मानि मय इध इधम विमान ना मरतिगु ॥७५॥

हासिनाग्य पुर तत्र विविध मरमपन । मगध मयधराती मन्ता दुम्भुगविनम् ॥७६॥

पनि पनिवा तारागामय ममप्रमा मयत् । कृष्ण मयधराद्वत् मन्ता मयधराध ॥७७॥

तस्य मन्तामनातिर्य य मयधराधमिना । मन्तामयि त्रितायनि मन्ता मन्तामना मन्ता ॥७८॥

मयाधराधमय मन्ता मन्तामयि मन्ता । मन्तामयि मन्तामयि मन्तामयि ॥७९॥

मुतामयि मन्तामयि मन्तामयि मन्तामयि । मन्तामयि मन्तामयि मन्तामयि ॥८०॥

प्रष्टुमन्तुमह मन्तामयि मन्तामयि । मन्तामयि मन्तामयि मन्तामयि ॥८१॥

तू ही हमारा मा है और तू ही मरी जाभ है' इस प्रकार मन्ता मन्ता उमरी प्रताप्ता की थी ॥ ७१ ॥ रागा धनिक द्वारा मन्ता प्रताप्ता पूछ गया गौतम मन्ता उमरी अनुगत धरना लिए तत्पर हुए सा ठा ही है क्याकि मन्ता गुम्भ यागधान विमुक्त नहीं करत, निश्चयम यही उनका व्रत है ॥ ७२ ॥ गौतम स्वामी कहने लग कि हे धनिक ! गुा गुो यह प्रान अछ अवसरपर किया है अथवा यह ठीक है कि अवसरका जानावाला मन्तामय असमें विताका क्या नहीं कर लग ॥ ७३ ॥

इम जम्बू द्वीप दक्षिण भरन त्रिम वण आर आश्रमनि भरा हुआ कृष्णजागल नामका बड़ा भारी दग है ॥ ७४ ॥ मन्तारम यह दग धम, अय, वाग और माक्ष इन चारा पुरपाथोंकी एक खान है । तथा यह दग स्वर्गके गमान है अथवा स्वर्गम भी मन्ताके विमानके समान है ॥ ७५ ॥ उस दशम हस्तिनापुर नामका एक नगर है जो कि मन्ता प्रताप्ताकी मन्तामयि बड़ा ही विचित्र है तथा जो समुद्रम मन्ताकी उत्पत्तिका शूठा मिट्ट बनता हुआ उमरा कुलगृहके समान जान पड़ता है ॥ ७६ ॥ उस नगरका राजा सोमप्रभ था जो कि ठीक चन्द्रमाके समान जान पड़ता था क्याकि जिस प्रकार चन्द्रमा अपने उत्तम वर अर्थात् विरणोसे कुवलय अर्थात् कुमुदाकी आनन्दित विवसित करता हुआ बुध अर्थात् बुध ग्रहके आश्रित रहता है उसी प्रकार वह राजा भी अपने उत्तम वर अर्थात् कुवलय अर्थात् महीमण्डलका आनन्दित करता हुआ बुध अर्थात् विद्वानाके आश्रयम रहता था ॥७७॥ उस राजाकी लक्ष्मीवती नामकी अत्यन्त सुन्दरी पतिव्रता स्त्री थी जो कि ऐसी जान पड़ती थी मानो उसकी लक्ष्मीका तिरस्कार न कर वक्ष स्थलपर निवास करनेवाली दूसरी ही लक्ष्मी ही ॥ ७८ ॥ जिस प्रकार बुद्धि और पराक्रम से जय अर्थात् विजय उत्पन्न होती है उसी प्रकार उन लक्ष्मीवती और सोमप्रभके जय अर्थात् जयकुमार नामका पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि जन्मसे ही गुणोंद्वारा उपाजन की हुई लक्ष्मी और कीर्तिको विस्तृत कर रहा था ॥ ७९ ॥ राजा सोमप्रभके विजयको आदि लेकर और भी चौदह पुत्र उत्पन्न हुए थे जो कि सख्याम समान होनेपर भी गुणोंके द्वारा कुलकर्षोंको उत्पन्न कर रहे थे ॥ ८० ॥ जिस प्रकार अतिशय सुन्दर विशप कलाओसे चन्द्रमा सुशोभित होता है उसी

१ स्वाधीनान् कुवन्ति । २ कान्धते अ स । कान्धान्त ल म० । ३ इव । ४ उत्पत्तिम् । ५ अनूत कुवत् । ६ अय लक्ष्मीशब्द सम्मन्त्र कुलगृहायितमित्युमन्त्रापि योजनीय । ७ कुवलयानन्द कैरवान् च । ८ विद्वज्वालयः । सोमसुताश्रयश्च । ९ तिरस्कारमकृत्वा । १० दशनीया । ११ पतिव्रता । १२ जननकालात् प्रारम्भ । - जन्मत ल म । १३ मनुभि समाना अपि । १४ वा राजा राजा इत्यपि पाठ । चन्द्र इव ।

राजा राजप्रभो^१ लक्ष्मीमती देवी प्रियानुजः । श्रेयान् ज्यायान् जयः पुत्रस्तद्वाज्यं पूज्यते न कैः ॥८२॥
 स पुत्रविटपाटोप^२ सोमकल्पाङ्घ्रिपश्चिरम् । भोग्यः समृतपुण्यानां स्वस्थ चाभृत्तदभुतम् ॥८३॥
 अथान्यदा जगत्कामभोगवन्धन् विप्रुप्रभ^३ । अनिन्याशुचिदु खान्यान्मन्वा यायात्म्यर्वाक्षणः^४ ॥८४॥
 विरज्य राज्य मंग्योज्य^५ धुर्यं शौर्योर्जिते जये । अजयोंदार्यवा^६ र्यादिप्राज्यराज्यममुत्सुकः^७ ॥८५॥
 अम्येत्य वृषभाभ्यागं^८ दीक्षित्वा मोक्षमन्वभूत् । श्रेयसा^९ सह^{१०} नार्पण्यमनुजेन यथा पुरा^{११} ॥८६॥
 पितु पदमधिष्ठाय^{१३} जयोऽतापि^{१४} मही महान् । महतोऽनुभवन् भोगान् सविभज्यानुजैः समम्^{१५} ॥८७॥
 एकदाऽयं विहारार्थं बाह्योद्यानमुपागतः । तत्रासीनं समालोक्य शीलगुप्तं^{१६} महामुनिम् ॥८८॥
 त्रिपरीत्य नमस्कृत्य नुत्वा भक्तिमरान्वितः । श्रुत्वा धर्मं वमापृच्छ्य प्रीत्या प्रत्यविशत पुरीम् ॥८९॥
 तस्मिन् वने वमन्नागमिथुनं सह भूभुजा । श्रुत्वा धर्मं सुधा मत्वा पर्यौ प्रीत्या दयारसम् ॥९०॥
 कदाचिन् प्रावृडारम्भे प्रचण्डागनिताडितः । मृत्वाऽसौ गान्तिमादाय नागो नागामरोऽभवत् ॥९१॥

प्रकार अपने तेजको बढ़ानेवाले, अतिगय सुन्दर और विगेप कलाओको धारण करनेवाले उन पन्द्रह पुत्रोंसे राजाधिराज सोमप्रभ सुशोभित हो रहे थे ॥८१॥ जिस राज्यका राजा सोमप्रभ था, लक्ष्मीमती रानी थी, प्रिय छोटा भाई श्रेयास था और बड़ा राजपुत्र जयकुमार था भला वह राज्य किसके द्वारा पूज्य नहीं होता ? ॥८२॥ जिसपर पुत्ररूपी गाखाओका विस्तार है ऐसा वह राजा सोमप्रभरूपी कल्पवृक्ष, पुण्य सचय करनेवाले अन्य पुरुषोंको तथा स्वयं अपने-आपको भोग्य था यह आश्चर्यकी बात है । भावार्थ—पुत्रों-द्वारा वह स्वयं मुखी था तथा अन्य सब लोग भी उनसे सुख पाते थे ॥८३॥

अथानन्तर किसी समय, पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले राजा सोमप्रभ ससार, शरीर, भोग और भाइयोंको क्रमशः अनित्य, अपवित्र, दुःखस्वरूप और अपनेसे भिन्न मानकर विरक्त हुए तथा कभी नष्ट न होनेवाले अनन्त वीर्य आदि गुणोंसे श्रेष्ठ मोक्षरूपी राज्यके पानेमें उत्सुक हो, गूरवीर तथा धुरन्धर जयकुमारको राज्य साँपकर भगवान् वृषभदेवके समीप गये और वहाँ अपने छोटे भाई श्रेयासके साथ दीक्षा लेकर मोक्षमुखका अनुभव करने लगे । जिस प्रकार वे पहिले यहाँ अपने छोटे भाईके साथ राज्यमुखका उपभोग करते थे उसी प्रकार मोक्षमें भी अपने छोटे भाईके साथ वहाँका सुख उपभोग करने लगे । भावार्थ—दोनों भाई मोक्षको प्राप्त हुए ॥८४—८६॥ इधर श्रेष्ठ जयकुमार पिताके पदपर आसीन होकर पृथिवीका पालन करने लगा । और अपने बड़े भारी भोगोपभोगोंको वाँटकर छोटे भाइयोंके साथ-साथ उनका अनुभव करने लगा ॥८७॥ एक दिन वह जयकुमार क्रीडा करनेके लिए नगरके बाहर किसी उद्यानमें गया । उसने वहाँ विराजमान शीलगुप्त नामके महामुनिके दर्शन कर उनकी तीन प्रदक्षिणाएँ दी, बड़ी भारी भक्तिके साथ-साथ नमस्कार किया, स्तुति की, प्रीतिपूर्वक धर्म सुना और फिर उनसे आज्ञा लेकर नगरको वापिस लौटा ॥८८—८९॥ उसी वनमें साँपोका एक जोड़ा रहता था उसने भी राजाके साथ-साथ धर्म श्रवणकर उसे अमृत मान बड़े प्रेमसे दयारूपी रसका पान किया था ॥९०॥ किसी समय वर्षाऋतुके प्रारम्भमें प्रचण्ड वज्रके पडनेसे उस जोड़ेमें-का वह सर्प गान्तिधारण कर मरा जिससे नागकुमार जातिका देव हुआ ॥९१॥

१ सोमप्रभ । २ गान्वातिगय । ३ सोमप्रभ । ४ यथात्मस्वरूपदर्शी । ५ धुरन्धरे । ६ अक्षय्य । ७ महत्त्व । ८ प्रकृष्टराज्योत्कृष्टिन् इत्यर्थः । ९ नमीपम् । १० निजानुजेन । ११ नृपतित्वम् । १२ राज्यकाले यथा । १३ आश्रित्य । १४ पालयति न्म । १५ मह ल०, म० । १६ -गुप्तमहा-७०, म० ।

वृश्चिकस्य विष पञ्चात् पञ्चगस्य विष पुरः । योपितां दपितेच्छानां^१ विश्वनो विषम विषम् ॥१०४॥
 सत्याभासैर्नतैः स्त्रीणां वञ्चिता ये न धीधनाः । दुःश्रुतीनामिवैताभ्यो मुक्तास्तं मुक्तिबलभाः ॥१०५॥
 तामां किमुच्यते कोपः प्रसादोऽपि भयंकरः । हन्त्यधीकान्^३ प्रविश्यान्तरगाधमग्निता यथा ॥१०६॥
 जालकैरिन्द्रजालेन^४ वञ्च्या ग्राम्या^५ हि मायया । तभि^६ सेन्द्रो^७ गुरुर्वञ्च्यस्तन्मायामातरः^८ स्त्रियः ॥
 ता^९ श्रयन्ते गुणान्नैव नाशभीत्या यदि श्रिताः । तिष्ठन्ति न चिर प्रान्ते नश्यन्त्यपि च तं म्रियताः ॥१०८॥
 दोषाः किं तन्मयास्तासु दोषाणां किं समुद्भवः । तासां दोषेभ्य इत्यत्र न कस्यापि विनिश्चयः ॥१०९॥
 निर्गुणान् गुणिनो मन्तु गुणिनः खलु निर्गुणान् ।^{११} नाशकत् परमात्माऽपि मन्यन्ते ता^{१२} हि हेलया ॥
 मोक्षो गुणमयो नित्यो^{१३} दोषमयः स्त्रियश्चलाः । तासां नेच्छन्ति निर्वाणमत एवाप्तसूक्तिपु ॥१११॥
 लक्ष्मी सरस्वती कीर्तिमुक्तिस्त्वमिति विश्रुता^{१४} । दुर्लभास्तासु बल्लीषु कल्पवल्ग्व इव प्रिये ॥११२॥
 इत्येतच्चाह तच्छ्रुत्वा तं^{१५} जिघांसुरहिस्तदा । पापिना चिन्तितं पापं मया पापापलापतः^{१६} ॥११३॥

समीचीन मार्ग है परन्तु स्त्रियाँ धर्म और कामसे धन खरीदती है अतः उनकी इस बढी हुई लोलुपताको धिक्कार हो ॥१०३॥ विप बिच्छूके पीछे (पूँछपर) और साँपके आगे (मुँहमे) रहता है परन्तु जिनकी इच्छाएँ दुष्ट हैं ऐसी स्त्रियोके सभी ओर विपम विप भरा रहता है ॥१०४॥ खोटी श्रुतियोके समान इन स्त्रियोके सत्याभास (ऊपरसे सत्य दिखानेवाले परन्तु वास्तवमे झूठे) नमस्कारोसे जो बुद्धिमान् नहीं ठगे जाते हैं—इनसे बचे रहते हैं वे ही मुक्तिरूपी स्त्रीके बल्लभ होते हैं । भावार्थ—जिस प्रकार कुशास्त्रोसे न ठगाये जाकर उनसे सदा बचे रहनेवाले पुरुष मुक्त होते हैं उसी प्रकार इन स्त्रियोके हावभाव आदिसे ठगाये जाकर उनसे बचे रहनेवाले—दूर रहनेवाले पुरुष ही मुक्त होते हैं ॥१०५॥ जिन स्त्रियोकी प्रसन्नता ही भयकर है उनके क्रोधका क्या कहना है । जिस प्रकार गहरी नदियोकी निर्मलता मूर्ख लोगोको भीतर प्रविष्ट कर मार देती है उसी प्रकार स्त्रियोकी प्रसन्नता भी मूर्ख पुरुषोको अपने अधीन कर नष्ट कर देती है ॥१०६॥ इन्द्रजाल करनेवाले अपने इन्द्रजाल अथवा मायासे मूर्ख ग्रामीण पुरुषोको ही ठगा करते हैं परन्तु स्त्रियाँ इन्द्र सहित बृहस्पतिको भी ठग लेती हैं इसलिए स्त्रियाँ मायाचारकी माताएँ कही जाती हैं ॥१०७॥ प्रथम तो गुण स्त्रियोका आश्रय लेते ही नहीं है यदि कदाचित् आश्रयके अभावमे अपना नाश होनेके भयसे आश्रय लेते भी हैं तो अधिक समय तक नहीं ठहरते और कदाचित् कुछ समयके लिए ठहर भी जाते हैं तो अन्तमे अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं ॥१०८॥ दोषोका तो पूछना ही क्या है ? वे तो स्त्रीस्वरूप ही हैं अथवा दोषोकी उत्पत्ति स्त्रियोमे है अथवा दोषोसे स्त्रियोकी उत्पत्ति होती है इस बातका निश्चय इस ससारमे किसीको भी नहीं हुआ है ॥१०९॥ निर्गुणोको गुणी और गुणियोको निर्गुण माननेके लिए परमात्मा भी समर्थ नहीं है परन्तु स्त्रियाँ ऐसा अनायास ही मान लेती हैं ॥११०॥ मोक्ष गुण स्वरूप और नित्य है परन्तु स्त्रियाँ दोषस्वरूप और चंचल है मानो इसीलिए अरहन्तदेवके शास्त्रोमे उनका मोक्ष होना नहीं माना गया है ॥१११॥ हे प्रिये, जिस प्रकार लताओमे कल्पलता दुर्लभ है उसी प्रकार स्त्रियोमे लक्ष्मी, सरस्वती, कीर्ति, मुक्ति और तू ये प्रसिद्ध स्त्रियाँ अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥११२॥ यह सब जयकुमारने अपनी स्त्रीसे कहा, उसे सुनकर जयकुमारको

१ दुष्टवाञ्छानाम् । २ दुष्टशास्त्राणाम् । ३ प्रवेश कारयित्वा । ४ वञ्चकैः । ५ इन्द्रजालमजातया माययेति नदन्य । ६ परीक्षायान्त्रवर्हिभूना । ७ स्त्रीभिः । ८ इन्द्रजालादिदेवताभूतेन्द्रमहित । ९ तदिन्द्रमन्त्री वृहस्पतिः । १० तत् कारणान् । ११ नाभवन् । १२ म्रिय । १३ दोषवन्त्य—ल०, म० । १४ हन्तुमिच्छ । १५ पापिण्या निहन्तात् । 'अपलापन्तु निहन्तव' इत्यभिधानात् ।

वाराणसी पुरी तत्र जित्वा तामामरी पुरीम् । ^१अमानेस्तद्विमानानि स्वर्गैर्वैरिव ^२साऽहर्षात् ^३॥१२४॥
 प्राक् समुच्चित्तदुष्कर्म न ^४तत्रोत्पत्तुमर्हति । प्रमादादपि तज्जोऽपि स्यात् किं पापी मनस्यपि ॥१२५॥
 एव भवत्रयश्रेयःसूचनी वर्मवर्त्मनि । विनेयान् जिनविद्येव ^५साऽन्यस्थानं ^६प्यवीवृतत् ^७॥१२६॥
 नाम्नैव कम्पितारातिस्तस्याः पतिरकम्पनः । विनीत ^८इव विद्याया स्वाभिप्रेतार्थमपद ^९॥१२७॥
 पुरोपार्जितपुण्यस्य वर्द्धने रक्षणे श्रियः । न नीति ^{१०}किन्तु कामे च धर्मे चास्योपयोगिनी ॥१२८॥
 न हर्ता केवलं दाता न हन्ता पाति केवलम् । सर्वास्त ^{११}त्पालयामास म ^{१२}धर्मविजया प्रजाः ॥१२९॥
 पारमात्म्ये पदे पूज्यो मरतेन यथा पुरुः । गृहाश्रमे तथा सोऽपि सा तस्य कुलवृद्धता ॥१३०॥
 तस्यासीत्सुप्रभादेवी गीतांशोर्वा प्रभा तथा । सुमुदे कुमुदाबोधं विदधत् स कलाश्रयः ॥१३१॥
 न लक्ष्मीरपि तत्प्रीत्यै सती सा सुप्रजा ^{१३}यथा । सत्फला इव सद्बल्यः पुत्रवत्यः स्त्रियः प्रियाः ॥१३२॥

नि सन्देह स्वर्ग और मोक्षको जीतनेवाला था ॥ १२३ ॥ उस काशीदेशमें एक वाराणसी (वनारस) नामकी नगरी थी जो कि अपने अपरिमित राजभवनोसे अमरपुरीको जीतकर उसके विमानोकी हँसी करती हुई-सी जान पड़ती थी ॥ १२४ ॥ जिसने पूर्वजन्ममें पापकर्मोंका सचय किया है ऐसा जीव उस वाराणसी नगरीमें उत्पन्न होने योग्य नहीं था । तथा उसमें उत्पन्न हुआ जीव प्रमादसे भी क्या कभी मनमें भी पापी हो सकता था ? अर्थात् नहीं ॥ १२५ ॥

इस तरह भूत, भविष्यत् और वर्तमानसम्बन्धी तीनो भवोंके कल्याणको सूचित करने-वाली वह नगरी जिनवाणीके समान दूसरी जगह रहनेवाले शिष्य लोगोको भी धर्ममार्गमें प्रवृत्त कराती थी ॥१२६॥ जिस प्रकार विनयी मनुष्य विद्याका स्वामी होता है उसी प्रकार अपने नामसे ही शत्रुओको कम्पित कर देनेवाला राजा अकम्पन उस नगरीका स्वामी था । जिस प्रकार विद्या अपने अभिलषित पदार्थोंको देनेवाली होती है उसी प्रकार वह नगरी भी अभिलषित पदार्थोंको देनेवाली थी ॥१२७॥ पूर्व जन्ममें पुण्य उपार्जन करनेवाले उस राजाकी नीति केवल लक्ष्मीके बढ़ाने और उसकी रक्षा करनेमें ही काम नहीं आती थी किन्तु धर्म और कामके विषयमें भी उसके उपयोग होता था ॥१२८॥ वह राजा केवल प्रजासे कर वसूल ही नहीं करता था किन्तु उसे कुछ देता भी था और केवल दण्ड ही नहीं देता था किन्तु रक्षा भी करता था । इस प्रकार धर्म-द्वारा विजय प्राप्त करनेवाला वह राजा समस्त प्रजाका पालन करता था ॥१२९॥ राजा अकम्पनके कुलका वडप्पन यही था कि भरतमहाराज परमात्म-पदमें जिस प्रकार भगवान् वृषभदेवको पूज्य मानते थे उसी प्रकार गृहस्थाश्रममें उसे पूज्य मानते थे ॥ १३० ॥ उसके सुप्रभा नामकी देवी थी जो कि चन्द्रमाकी प्रभाके समान थी । जिस प्रकार चन्द्रमा अनेक कलाओका आश्रय हो अपनी प्रभासे कुमुदाबोध अर्थात् कुमुदिनियो-का विकास करता हुआ प्रसन्न (निर्मल) रहता है उसी प्रकार वह राजा भी अनेक कलाओ-विद्याओका आश्रय हो अपनी सुप्रभा देवीसे कुमुदाबोध अर्थात् पृथिवीके समस्त जीवोंके आनन्द-का विकास करता हुआ प्रसन्न रहता था ॥१३१॥ उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेवाली वह पतिव्रता सुप्रभादेवी जिस प्रकार राजाको आनन्दित करती थी उस प्रकार लक्ष्मी भी उसे आनन्दित नहीं कर सकती थी सो ठीक ही है क्योंकि जिस प्रकार अच्छे फल देनेवाली उत्तम लताएँ प्रिय

१ प्रमाणानोर्त । २ पुरी । ३ हन्ति स्म । ४ नगर्याम् । ५ दिव्यभाषेव । ६ नगरी । ७ देशान्तरस्थान् । ८ वर्णयति स्म । ९ विनेयपर । १० निजाभीष्टार्थमप्यद् यस्या मा तस्या । ११ नयन करणम् । १२ तत् कारणान् । १३ अकम्पन । १४ शोभना प्रजा अवत्यानि यस्या सा सुप्रजा । सत्पुत्रवतीत्यर्थः ।

‘न’ स्थूले न कृशे न र्जं न वक्रे न च सद्वक्त्रे^१ । विकटं^२ न च तज्जडघ्ने गोभाऽन्यैर्वैनयोरर्मा^३ ॥१४२॥
 काञ्चोस्थान^४ तडालोच्येवोरु स्थूले सुमङ्गते । कायगर्मगृहद्वारस्तम्भयष्टयावृत्ती कृते ॥१४३॥
 वेदिकेव मनोजस्य शिरो वा^५ स्मरदन्तिन । सानुर्वाऽनङ्गशैलस्य शुशुभेऽस्या कटीतटम् ॥१४४॥
 कृत्वा कृग भृशं मध्य बद्ध भङ्गमयादिव । रज्जुभिस्तिस्मिर्धार्त्रा^६ वलिमिर्गादमावर्मा ॥१४५॥
 नाभिकूपप्रवृत्तास्यार्^७ रसमार्गममुदगता । श्यामा शाड्वलमालेव^८ रोमराजिर्व्यराजत ॥१४६॥
 भिन्नौ युक्तौ मृदूस्तवधौ^९ उष्णौ सन्तापहारिणौ । स्तनौ विरुद्धधर्माणौ स्याद्वादस्थितिमहतु^{१०} ॥१४७॥
 सहवक्षोनिवासिन्या समाश्लिष्य जयः श्रिया । स्वीकृतो यदि चेत्ताभ्यां^{११} वर्ण्यते तद्भुजौ कथम् ॥१४८॥
 वीरलक्ष्मीपरिष्वक्तजयदक्षिणबाहुना । सवामेन^{१२} परिष्वक्त^{१३} स्तव्क्ण्ठस्तस्य कोपमा ॥१४९॥
 निःकृपौ^{१४} पेगलौ^{१५} श्लक्ष्णौ तत्कपोलौ विलेसतु^{१६} । कान्तौ क्लमदन्ताभौ जयवस्त्रावज्जर्पणौ^{१७} ॥१५०॥
 वटविम्बप्रवालादिनोपमेयसपीप्यते^{१८} । अधरस्यातिदूरत्वाद् वर्णाकाररसादिभिः ॥१५१॥

वडे स्नेहसे नमस्कार करेगा ऐसे उसके दोनो चरणकमलोमे जो गोभा थी वह क्या कमलोमे हो सकती है ? अर्थात् नहीं ॥१४१॥ उसकी दोनो जघाएँ न स्थूल थी, न कृश थी, न सीधी थी, न टेढ़ी थी, न मिली हुई थी और न दूर-दूर ही थी । उसकी दोनो जघाओकी गोभा निराली ही थी ॥१४२॥ उसके करधनी पहननेके स्थान—नितम्बस्थलको देखकर ही मानो स्थूल, परस्परमे मिले हुए और कामदेवके गर्भगृहसम्बन्धी दरवाजेसे खम्भोकी लकड़ीके समान दोनो ऊरु बनाये गये थे ॥१४३॥ उसका नितम्ब प्रदेश ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानो कामदेवकी वेदी ही हो अथवा कामदेवरूपी हाथीका शिर ही हो अथवा कामदेवरूपी पर्वतका शिखर ही हो ॥१४४॥ उसका मध्यभाग ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो विधाताने उसे पहले तो अत्यन्त कृश बनाया हो और फिर टूट जानेके भयसे त्रिवलीरूपी तीन रस्सियोसे मजबूत बाँध दिया हो ॥१४५॥ नाभिरूपी कुण्डसे निकली हुई उसकी रोमराजि ऐसी अच्छी सुशोभित हो रही थी मानो जलमार्गसे निकली हुई हरी-हरी छोटी घासकी पङ्क्ति ही हो ॥१४६॥ उसके स्तन भिन्न-भिन्न होकर भी (स्थूल होनेके कारण) एक दूसरेसे मिले हुए थे, कोमल होकर भी (उन्नत होनेके कारण) कठोर थे, और उष्ण होकर भी (आह्लादजनक होनेके कारण) सतापको दूर करनेवाले थे, इस प्रकार विरुद्ध धर्मोंको धारण करनेवाले उसके दोनो स्तन स्याद्वादकी स्थितिको धारण कर रहे थे ॥१४७॥ चूँकि उसकी दोनो भुजाओने वक्षस्थलपर निवास करनेवाली लक्ष्मीके साथ आलिङ्गन कर जयकुमारको स्वीकृत किया है इसलिए उनका वर्णन भला कैसे किया जा सकता है ? ॥१४८॥ उसका कण्ठ वीर लक्ष्मीसे सुशोभित जय-कुमारके दाये और बाये दोनो हाथोंसे आलिङ्गनको प्राप्त हुआ था अतः उसकी उपमा क्या हो सकती है । भावार्थ—उसकी उपमा किसके साथ दी जा सकती है ? अर्थात् किसीके साथ नहीं—वह अनुपम था ॥१४९॥ हाथीके वच्चेके दाँतकी आभाको धारण करनेवाले उसके निष्कृप, कोमल और चिकने दोनो कपोल ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो जयकुमारका मुखकमल देखनेके लिए सुन्दर दर्पण ही हो ॥१५०॥ वटकी कोपल, विम्बी फल और मूँगा आदि पदार्थ, वर्ण, आकार और रस आदिमे ओठोंसे बहुत दूर हैं अर्थात् उसके ओठोंके समान न तो

१ नङ्कोर्ण । २ विशात्रे । ३ विलक्षणैव । ४ कटितटम् । ५ आलोच्य । ६ इव । ७ ब्रह्मणा । ८ सुलोचनाया । ९ जलमार्ग । १० हरितपङ्क्ति । ‘शाड्वल शादहृति’ इत्यभिधानात् । आद्वल-ल०, म०, अ०, ११ कटिनी । १२ सुलोचनाभुजाभ्याम् । १३ वामभुजसहितेन । १४ आलिङ्गित । १५ जननन्तापहेनुवान् । १६ कोमलौ । १७ रज्जु । १८ जयकुमारमुख । १९ अपिशब्दात् केवल-सुपमान न ।

तस्यां तन्नाथवशाग्रगण्यस्यवाशवा रवे । प्राच्यां^१ दध्यास्तद्विचक्रा सहस्रममथन मुता ॥१३३॥
 हमाङ्गदसुकुश्रीसुका^२तावाहयै स त । वदित सव्यदापिष्ट शक सामानिकरिषि ॥१३४॥
 दिमवत्पद्मयोगज्ञासि^३धू इव ततस्तथा^४ । सुत सुलाचना लक्ष्मीमती चास्तां सुलक्षण ॥१३५॥
 सुलोचनाऽसौ बालव लक्ष्मा सवमनोरमा । कलागुणरभासिष्ट चाद्रिकव प्रवदिता ॥१३६॥
 सुमत्याख्याऽमला सुरलनिशेयावद्वयत् कला । धात्रा शानाङ्गरखायास्तस्या सातिमनाहरा ॥१३७॥
 अभूद् रागा स्वयं^५ रागते^६ द्रमाङ्ग समाधित । रागाय कस्य वा न स्यात् स्वाचित्तस्यानसध्रयाः ॥१३८॥
 नखन्दुचन्द्रिका तस्या शश्वत्कुचलय किल । विश्वमाह्लादय^७ चित्रमनुवृत्त्या^८ क्रमादजया ॥१३९॥
 रसुरगुलयस्तस्या क्रममोनखरोचिया । इयत् इति मङ्गेगा^९ स्मरणव निवेशिता ॥१४०॥
 नताशेपो जय^{१०} स्नेहादमसात्ते^{११} ततस्तयो । या धा क्रमदजयोस्तस्या सा विमस्ति सराह ॥१४१॥

होती ह उसी प्रकार उत्तम पुत्र उत्पन्न करनेवाली स्त्रियां भी प्रिय होती ह ॥ १३२ ॥ जिस प्रकार पूर्व दिशासे अपनी कात्तिके द्वारा समस्त दिशाओको प्रकाशित करनेवाली सूर्यकी किरणें उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार उस सुप्रभादेवीसे नाथवशावे अग्रगण्य राजा अकम्पनके अपनी दीप्ति अथवा तेजके द्वारा दिशाओको वश करनेवाल हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १३३ ॥ हेमाङ्गद सुकेतुश्री और सुकात्त आदि उन पुत्रोंसे घिरा हुआ वह राजा ऐसा सुशोभित होता था जैसा कि सामानिक देवोंसे घिरा हुआ इंद्र सुशोभित होता है ॥१३४॥ जिस प्रकार हिमवान् पर्वत और पद्म नामकी सरसीसे गंगा और सिन्धु ये दो नदियां निकलती ह उसी प्रकार राजा अकम्पन और रानी सुप्रभाके सुलोचना तथा लक्ष्मीमती ये उत्तम लक्ष्णोंवाली ब्याएँ उत्पन्न हुई थी ॥ १३५ ॥ वह बालिका सुलोचना लक्ष्मीके समान सबके मनको आनन्दित करनेवाली थी और अपने कलारूपी गुणोंके द्वारा चांदनीके समान वृद्धिको प्राप्त होती हुई सुशोभित हो रही थी ॥१३६॥ जिस प्रकार शुक्ल पक्षकी रात्रि चंद्रमाकी रेखाओकी अत्यन्त मनोहर कलाओंको बढ़ाती है उसी प्रकार सुमित्रा नामकी धाम उस सुलोचनाकी अतिशय मनोहर कलाओंको बढ़ाती थी—उसके शरीरका लालन-पालन करती थी ॥१३७॥ राग अर्थात् लालिमा उस सुलोचनाके चरण-कमलोंका आश्रय पाकर स्वयं रागी अर्थात् राग करनेवाला अथवा लाल गुणसे युक्त हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि अपने योग्य स्थानका आश्रय किसके रागके लिए नहीं होता ? ॥१३८॥ आश्चर्य है कि उसके नखरूपी चंद्रमाकी चांदनी दोनों चरण कमलोंके अनुकूल रहकर भी समस्त कुचलय अर्थात् कुमुदिनियोंको अथवा पृथ्वीमण्डलके आनन्दको निरन्तर विकसित करती रहती थी । भावाथ — चांदनी कभी कमलोंके अनुकूल नहीं रहती, वह उन्हें निमीलित कर देती है परन्तु सुलोचनाके नखरूपी चंद्रमाकी चांदनी उसके चरणकमलोंके अनुकूल रहकर भी कुचलय — नीलकमल (पक्षमें महीमण्डल) को विकसित करती थी यह आश्चर्यकी बात थी ॥१३९॥ उसके दोनों पैरोंकी अँगुलियां नखोंकी किरणोंसे ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानो मेरे वेग इतने ही हैं यही समझकर कामदेवने ही स्थापन की हों । भावाथ—अभिलाषा, चित्ता आदि कामके दश वेग हैं और दोनों पैरोंकी अँगुलियां भी दश हैं इसलिए वे ऐसी जान पड़ती थी मानो कामदेवने अपने वेगोंकी संख्या बतलानेके लिए ही उन्हें स्थापित किया हो ॥१४०॥ जिसे सब लोग नमस्कार करते ह ऐसा जयकुमार भी जिहे

१ तेजसा । २ अकम्पनसुप्रभायो । ३ अरुणगुण । ४ सुलोचनाचरण । ५ मोदति स्म । ६ अनुकूलवृत्त्या । ७ मम सदृशावस्था । ८ जयकुमार । ९ नमस्करोति स्म । १० क्रमाङ्गे ।

* अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनाङ्गेगसप्रलापाश्च ।

उमान्तेऽथ व्याधिजडता मूर्तिरिति दशात्र कामदशा ॥ —साहित्यदपण ।

‘न’ स्थूले न कृष्णे न र्जु न वक्रं न च सङ्कटे^१ । विकटे^२ न च तज्जङ्घे गोभाऽन्यैर्वनयोरसौ^३ ॥१४२॥
 काञ्चोस्थानं^४ तदालोच्येवोरु स्थूले सुमङ्गते । कायगर्भगृहद्वारस्तम्भयष्ट्यावृत्ती कृते ॥१४३॥
 वेदिकेव मनोजस्य शिरो वा^५ स्मरदन्तिन । सासुर्वाऽनङ्गशैलस्य शुशुभेऽस्याः कटीतटम् ॥१४४॥
 कृत्वा कृगं भृशं मध्य वद्ध मङ्गमयादिव । रज्जुभिस्तिन्मृमिर्धात्रा^६ वलिमिर्गादमावमौ ॥१४५॥
 नाभिकृपप्रवृत्तास्य^७ रसमार्गममुद्गता । ज्यामा गाड्वलमालेव^८ रोमराजिर्व्यराजत ॥१४६॥
 मित्रौ युक्तौ मृदूस्तब्धौ^९ उद्गौ मन्तापहारिणौ । स्तनौ विरुद्धधर्माणौ स्याद्वाटस्थितिर्मृहनुः ॥१४७॥
 सहवक्षोनिवाग्निन्या समाश्लिष्य जयः श्रिया । स्वीकृतौ यदि चेत्ताभ्या^{१०} वर्ण्येत तद्भुजौ कथम् ॥१४८॥
 वीरलक्ष्मीपरिष्वक्तजयदक्षिणबाहुना । मवामेन^{११} परिष्वक्त^{१२} स्तत्कण्ठस्तस्य कोपमा ॥१४९॥
 निःकृपौ^{१३} पेगलौ^{१४} श्लक्ष्णौ तत्कपोलौ विलेगनु^{१५} । कान्तौ क्लभदन्तामौ जयवस्त्राब्जदर्पणौ^{१६} ॥१५०॥
 वटविम्बप्रचालादिनोपमेयमपीप्यते^{१७} । अधगस्यानिदृग्वाद् वर्णाकाररसादिभिः ॥१५१॥

वडे स्नेहसे नमस्कार करेगा ऐसे उसके दोनो चरणकमलोमे जो गोभा थी वह क्या कमलोमे हो सकती है ? अर्थात् नहीं ॥१४१॥ उमकी दोनो जघाएँ न स्थूल थी, न कृग थी, न सीधी थी, न टेढ़ी थी, न मिली हुई थी और न दूर-दूर ही थी । उसकी दोनो जघाओकी गोभा निराली ही थी ॥१४२॥ उसके करधनी पहननेके स्थान—नितम्बस्थलको देखकर ही मानो स्थूल, परस्परमे मिले हुए और कामदेवके गर्भगृहसम्बन्धी दरवाजेसे खम्भोकी लकड़ीके समान दोनो ऊरु बनाये गये थे ॥१४३॥ उसका नितम्ब प्रदेश ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानो कामदेवकी वेदी ही हो अथवा कामदेवरूपी हाथीका शिर ही हो अथवा कामदेवरूपी पर्वतका शिखर ही हो ॥१४४॥ उसका मध्यभाग ऐसा सुगोभित हो रहा था मानो विधाताने उसे पहले तो अत्यन्त कृग बनाया हो और फिर टूट जानेके भयसे त्रिवलीरूपी तीन रस्सियोसे मजबूत बाँध दिया हो ॥१४५॥ नाभिरूपी कुँएमे निकली हुई उसकी रोमराजि ऐसी अच्छी सुगोभित हो रही थी मानो जलमार्गसे निकली हुई हरी-हरी छोटी घासकी पङ्क्ति ही हो ॥१४६॥ उसके स्तन भिन्न-भिन्न होकर भी (स्थूल होनेके कारण) एक दूसरेसे मिले हुए थे, कोमल होकर भी (उन्नत होनेके कारण) कठोर थे, और उष्ण होकर भी (आल्लादजनक होनेके कारण) सतापको दूर करनेवाले थे, इस प्रकार विरुद्ध धर्मोंको धारण करनेवाले उसके दोनो स्तन स्याद्वादकी स्थितिको धारण कर रहे थे ॥१४७॥ चूँकि उसकी दोनो भुजाओने वक्षस्थलपर निवास करनेवाली लक्ष्मीके साथ आलिङ्गन कर जयकुमारको स्वीकृत किया है इसलिए उनका वर्णन भला कैसे किया जा सकता है ? ॥१४८॥ उसका कण्ठ वीर लक्ष्मीसे सुगोभित जय-कुमारके दाये और बाये दोनो हाथोंमे आलिङ्गनको प्राप्त हुआ था अतः उसकी उपमा क्या हो सकती है । भावार्थ—उसकी उपमा किमके साथ दी जा सकती है ? अर्थात् किसीके साथ नहीं—वह अनुपम था ॥१४९॥ हाथीके वच्चेके दाँतकी आभाको धारण करनेवाले उसके निष्कृप, कोमल और चिकने दोनो कपोल ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो जयकुमारका मुखकमल देखनेके लिए मुन्दर-दर्पण ही हो ॥१५०॥ वटकी कोपल, विम्बी फल और मूँगा आदि पदार्थ, वर्ण, आकार और रस आदिमे ओठोंसे बहुत दूर है अर्थात् उसके ओठोंके समान न तो

१ नङ्कौ । २ विशाले । ३ विरुद्धधर्मे । ४ कटिपटम् । ५ आश्रय । ६ इव । ७ ब्रह्मणा । ८ मुलीचनाया । ९ जनमार्ग । १० हरितपङ्क्ति । ‘गाड्वल गाडहन्ति’ इत्यभिधानान् । आद्वल-ल०, म०, ख०, ११ कटिनी । १२ मुलीचनाभजान्याम् । १३ वामभजमहिनेन । १४ आलिङ्गितेन । १५ जन्मन्तापहेतुवान् । १६ कोमली । १७ रज्जु । १८ जयकुमारमुख । १९ अपिप्यन्तु केवल-मुपमान न ।

विता सिता समा स्निग्धा दन्ता कान्ता प्रभान्विता । अन्तःकरोति तद्वन्त्र तानव कथमयथा ॥१५२॥
 कृत^३ कृता समुत्तङ्गा स्वादमानास्यसौरभम् । मध्यवक्त्र किमभ्यास्त न सती यदि नासिका^४ ॥१५३॥
 कर्णान्तगामिनी नेत्रे^५ वृद्धे^६ नरशरोपमे । सोमवश्यस्य क क्षप^७ पद्मो^८ पलनय तथा^९ ॥१५४॥
 तत्कर्णविव कर्णेषु कृतपुण्यौ प्रिमाज्ञयो^{१०} । तत्प्रेमाळापगताना^{११} पात्र^{१२} प्रागव ता यत ॥१५५॥
 तद्भूशरासन^{१३} कामस्तत्कृशशरावलि^{१४} । स्वरूपगामित^{१५} मत्वा नय मन्य व्यजष्ट स ॥१५६॥
 तस्यालालाटिको^{१६} नैक कामो वाराग्रणाः स्वयम् । जयोऽपि नोन्नति कस्माल्लला^{१७}स्य धितश्रिय ॥१५७॥
 मृदवस्तनव स्निग्धा कृष्णास्तस्या सटुम्बिता । कामिनीकजल कालवालया^{१८} शिरोरुहा ॥१५८॥
 भाति तस्या पुरोभागो भूपितो नयनादिभि । सूरूपे^{१९} इव पाद्मचाया^{२०} याभाति स्वयमव स ॥१५९॥
 ये तस्यास्तनुनिर्माण वेधसां साधनीकृता^{२१} । अणवस्तृणवच्छेपास्त एव परमाणव^{२२} ॥१६०॥

इनका वण है न आकार है और न रस ही है इसलिए ही उसके ओठाको इनम से किसीकी भी उपमा नहीं दी सकती थी ॥१५१॥ अवश्य ही उसके दांत एक दूसरेसे मिले हुए थे—छिद्ररहित थे, सफेद थे समान थे, चिकने थे, सुन्दर थे, और चमकील थे, यदि ऐसा न होता तो सुलोचनाका मुख उहे भीतर ही क्यों करता ? ॥१५२॥ मुखकी सुगंधिका स्वाद लती हुई उसकी नाक यदि इतनी अच्छी नहीं होती तो वह इतनी ऊची क्या बनाई जाती ? तथा मुखके बीचमें कैसे ठहर सकती ? ॥१५३॥ अजुनके बाणके समान वणके (राजा कण अथवा कानके) समीप तक जानेवाले उसके दोना नेत्र अत्यन्त विशाल थे, उन्होंने लाल कमल और नीलकमल दोनोंको जीत लिया था फिर भला सोमवश अर्थात् च द्रमापर कौन-सा आक्षेप बाकी रह गया था अथवा सोमवश अर्थात् जयकुमारपर कौन-सा क्षेप अर्थात् कटाक्ष करना बाकी रह गया था ? ॥१५४॥ उसके कान ही सब कानोंमें अधिक पुण्यवान् थे क्योंकि वे पहलसे ही अपने प्रिय—जयकुमारकी आज्ञासे उनके प्रेमसम्भाषण और गीतोंके पात्र हो गये थे ॥१५५॥ म तो ऐसा मानता हू कि कामदेवने जयकुमारको अपने रूपसे अजेय मानकर सुलोचनाकी भौह रूपी धनुष और उसीके कटाक्षरूपी बाणोंके समूहसे ही उसे जीता था ॥१५६॥ उस सुलोचनाका सेवक अकेला कामदेव ही नहीं था किन्तु वीरशिरोमणि जयकुमार भी स्वयं उसका सेवक था, फिर भला शोभाको धारण करनेवाले उसके ललाटकी उन्नति—उच्चता अथवा उत्तमता क्यों न होती ? ॥१५७॥ कोमल, बारीक, चिकने, काले और कुछ-कुछ टेढ़े उसके शिरके बाल कामी पुरुषोंको केवल काले साँपोंके बच्चोंके समान जान पड़ते थे ॥१५८॥ उस सुलोचनाका आगेका भाग नेत्र आदिसे विमूपित होकर सुशोभित हो रहा था और पिछला भाग किसी सुन्दर वस्तुके समान अपने-आप ही सुशोभित हो रहा था ॥१५९॥ विधाताने उसका शरीर बनानेमें जिन अणुओंको साधन बनाया था यथाथमें वे ही अणु परमाणु अर्थात्

१ निविष्टा इत्यथ । २ उक्तगुणा न सन्ति च । ३ किञ्चिन्मिन्त निमिता इत्येव पृच्छति । ४ यदि सती प्रशस्ता नासिका न स्यात् तर्हि मध्येवक्त्र मुखमध्य कि वस्तु अभ्यास्त । नासिका भवत्वा न किमपि अधिवसितु योग्यमित्यथ । ५ ध्वनी कणराजस्य विनाशो वतमान । ६ वृद्धे कि न भवत भवत एव । ७ वंशस्य ल० म० अ० । जयकुमारस्य । ध्वनी अजुनस्य । ८ तिरस्कार । ९ नत्रयो । १ जयकुमार प्रसिद्ध्या । ११ — न० अ० म० ल० । १२ भाजनम् । १३ तस्या भवावव शरासन मस्य । १४—टाक्षानुगावलि ल । १५ आत्मीयस्वरूपेण । १६ भावदर्शी सेवक । लालाटिक प्रभोर्भावदर्शी न ति चेत् । १७ कृष्णबालमुज्ज्वा । १८ मनोज्ञपदाथ इव । १९ पृष्ठमाव । इत्यथ । २२ उक्तगुणव ।

अतिवृद्धः क्षयासन्नः स्पष्टलक्ष्माहिगोचरः^१ । पूर्णः शेषोऽप्यमंपूर्णो^२ न तद्वक्त्रोपमो विशुः ॥१६१॥
 न पञ्चान्न पुरा लक्ष्मीर्वीथी^३ पद्मे क्षणे क्षणे । वक्त्यन्यां गृह्णती गोमां सा^४ स्याद्वादं तदानने ॥१६२॥
 तन्त्रे तीव्रकरोत्पन्ना^५ पद्मे गीतकराहता । लक्ष्मीः साऽन्यैव तद्वक्त्रे^६ जयलक्ष्मीकरग्रहात् ॥१६३॥
 रात्राविन्दुर्विवाम्भोजं श्र्यान्दुर्गलानिवारिजम् । पूर्णमेव विक्रास्येव तद्वक्त्रं भात्यहर्दिवम्^७ ॥१६४॥
 लक्ष्मीस्तस्येक्षितुस्तेन^८ वीक्षितस्यापि निश्चिता । किं पद्मे तादृश येन^९ तद्वक्त्रमुपमीयते^{१०} ॥१६५॥
 कुमार्या त्रिजगज्जेता जित पुष्पशरागमः^{११} । स वीर कः परो लोके यो न जय्योऽग्रतोऽनया^{१२} ॥१६६॥
 कुमार्यैव जितः कामो वीरः पश्चाज्जयो जितः । स्त्रीमृष्टिः कियती नाम विजयेऽस्याः सहश्रिया ॥१६७॥

उत्कृष्ट अणु थे और उनसे वाकी वच्चे हुए अणु तृणके समान तुच्छ थे ॥१६०॥ चन्द्रमा उसके मुखकी उपमाके योग्य नहीं था क्योंकि यदि पूर्ण चन्द्रमाकी उपमा देते हैं तो वह बहुत वृद्ध अर्थात् बड़ा है, उसका क्षय निकट है, कलक उसका स्पष्ट दिखलाई देता है और राहु उसे दबा देता है । यदि अपूर्ण चन्द्रमाकी उपमा देते हैं तो वह स्वयं अपूर्ण है—अधूरा है । भावार्थ—उसका मुख तरुण, अविनश्वर, निष्कलक और पूर्ण था इसलिए पूर्ण अथवा अपूर्ण कोई भी चन्द्रमा उसके मुखकी उपमाके योग्य नहीं था ॥१६१॥ यदि कमलकी उपमा दी जावे सो भी ठीक नहीं है क्योंकि कमलमे विकसित होनेके पहले लक्ष्मी नहीं थी और न पीछे रहती है वह तो क्षण-क्षणमे विकसित होती रहती है परन्तु उसके मुखपर-की लक्ष्मी एक विलक्षण शोभाको ग्रहण करती हुई स्याद्वादका स्वरूप प्रकट करती थी । भावार्थ—उसके मुखकी शोभा सदा एक-सी रहकर भी क्षण-क्षणमे विलक्षण शोभा धारण करती थी इसलिए कमलकी शोभासे कही अच्छी थी और इस प्रकार स्याद्वादका स्वरूप प्रकट करती थी क्योंकि जिस प्रकार स्याद्वाद द्रव्यार्थिक नयसे एकरूप रहकर भी पर्यायार्थिक नयसे नवीन-नवीन रूपको प्रकट करता है उसी प्रकार उसके मुखकी लक्ष्मी भी सामान्यतया एकरूप रहकर भी प्रतिक्षण विलक्षण शोभा धारण करती हुई अनेकरूप प्रकट करती थी ॥१६२॥ चन्द्रमाकी शोभा सूर्यसे नष्ट हो जाती है और कमलकी शोभा चन्द्रमासे नष्ट हो जाती है परन्तु उसके मुखकी शोभा जयकुमारकी लक्ष्मीका हस्त ग्रहण करनेसे विलक्षण ही हो रही थी ॥१६३॥ चन्द्रमा रातमे सुशोभित होता है और कमल दिनमे प्रफुल्लित रहता है, चन्द्रमाका क्षय हो जाता है और कमल मुरझा जाता है परन्तु उसका मुख पूर्ण ही था, विकसित ही था और रात-दिन सुशोभित ही रहता था ॥१६४॥ सुलोचनाके मुखको जो देखता था उसकी शोभा बढ जाती थी और सुलोचनाका मुख जिसे देखता था उसकी शोभा भी निश्चित रूपसे बढ जाती थी । कमलमे क्या ऐसा गुण है जिससे कि उसे सुलोचनाके मुखकी उपमा दी जा सके ? ॥१६५॥ उसने कुमारी अवस्थामे ही तीनों जगत्को जीतनेवाला कामदेव जीत लिया था फिर भला ससारमे ऐसा दूसरा कौन वीर था जो आगे युवावस्थामे उसके द्वारा न जीता जाये ? ॥१६६॥ इसने कुमारी अवस्थामे कामदेवको जीत लिया था और तरुण अवस्थामे जयकुमारकी जोता था फिर भला इसके जीतनेके लिए

१ राहुगोचर । (विषय) । २ कलानेपोऽपि । कलाहीन इत्यर्थ । वालचन्द्रोऽपि । ३ विक्रामशीला । ४ लक्ष्मी । ५ हता । ६ जयस्य लक्ष्मी । ७ —त्यहर्निशम् अ०, प०, म०, ड०, ल०, म० । ८ धर्मस्य । ९ वक्त्रेण । १० येन धर्मेण सह । ११ तादृश धर्मं पद्मे किमस्ति ? नास्तीत्यर्थ । वीक्षितस्यापि अपिशब्दात् तद्वक्त्रं न दृष्टोऽस्ति । यद्यपि दृष्टव्यं तस्य पद्मस्थितधर्मस्य लक्ष्मी शोभा तेन सह तद्वक्त्रेण सह ईक्षितुं वीक्षमाणस्य जनस्य निश्चिन्ता स्यात् । १२ पुष्पशरागमनो जित इत्यनेन कमपि पुरुषं नेच्छति इत्यर्थ । १३ योवने ।

मृगाक्षस्य कलङ्कोऽथ मन्यऽह कन्ययाऽनया । स्पर्कात्त्या निजितस्याभूद् रोगराजैश्च चित्तया^१ ॥१६८॥
 सार्धं कुवलयनेन्दु सह लम्ब्या सरोरुहम् । तद्वन्नय जित व्यक्त त्रिमन्यघ्नेह जीयत ॥१६९॥
 तालावज्जलवासन स्थलाज सूयरदिममि । प्राप्तु तद्वन्नयजो शोभां मन्यऽद्यापि तपस्यति^२ ॥१७०॥
 शनैर्बालेन्दुरत्नव सा कलानिरयद्वत । वृद्धास्तस्या प्रष्टुदाया विधुमि स्पर्धिनी^३ गुण ॥१७१॥
 इति सपूणसर्वाङ्गशोभां शुद्धाचवायजाम्^४ । रमरो जयमयाद्वैता^५ न तदाऽप्यकरोत् कर^६ ॥१७२॥
 कारयती जिनेन्द्रार्चाभिप्रा^७ मणिसयीवह । तामा^८ हिरण्मयायय विश्वोपकरणाचपि ॥१७३॥
 तत्प्रतिष्ठाभिषेका त महापूजा प्रकुर्वती । मुहु स्तुतिभिरध्यामि^९ स्तुवता भक्तितोऽहम्^{१०} ॥१७४॥
 ददती पात्रदानानि मानयता^{११} महामुनान् । शृण्वती धममाख्य भावयता मुहुमुहु ॥१७५॥
 आसागमपदाधारं प्राप्तसम्यक्त्वशुद्धिका । अथ फाल्गुननन्दाश्वरेऽर्मा भरया जिनशिनाम् ॥१७६॥
 विधायाष्टाह्निकीं पूजामभ्यर्च्यार्चा यथाविधि । कृतोपवासा तन्वद्वा शेषा^{१२} दातुमुपागता ॥१७७॥
 नृप सिंहासनासीन सोऽप्युत्थाय वृत्ताञ्जलि । तदत्तोषामादाय^{१३} निधाय तिरसि स्वयम् ॥१७८॥

लक्ष्मीके साथ साथ कितनी-सी स्त्रियोंकी सृष्टि चाबी रही थी ? भावाथ-इसने लक्ष्मी आदि उत्तम-उत्तम स्त्रियाको जीत लिया था ॥१६७॥ चन्द्रमावे बीच जो यह कलंक दिखता है उसे मैं ऐसा मानता हूँ कि इस वन्याने अपनी वात्तिसे चन्द्रमाको जीत लिया है इसीलिए मानो उसे चित्ताके कारण क्षयरोग हो गया हो ॥१६८॥ उस सुलोचनावे मुखने चन्द्रमाके साथ कुवलय अर्थात् कुमुदको जीत लिया था और लक्ष्मीके साथ-साथ वमलको भी जीत लिया था फिर भला इस संसारमें और रह ही क्या जाता है जो उसने मुखके द्वारा जीता न जा सके ॥१६९॥ मैं तो ऐसा मानता हूँ कि उसके मुखकी शोभा प्राप्त करनेके लिए जलकमल जलमें रहकर और स्थलकमल सूयकी किरणोंके द्वारा आजतक तपस्या कर रहा है ॥१७०॥ वह सुलोचना द्वितीया के चन्द्रमाकी रेखाके समान कलाओवे द्वारा धीरे धीरे बढ़ती थी और ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती थी त्यों त्यों चन्द्रमाकी कान्तिके साथ स्पर्धा करनेवाले उसके गुण भी बढ़ते जाते थे ॥१७१॥ इस प्रकार जो समस्त अर्गोंकी शोभासे परिपूर्ण है और शुद्ध वराम जिसकी उत्पत्ति हुई है ऐसी उस सुलोचनाको कामदेव जयकुमारके भयसे युवावस्थामें भी अपने हाथमें नहीं कर सका था ॥१७२॥

उस सुलोचनाने श्री जिनेन्द्रदेवकी अनेक प्रकारकी रत्नभयी बहुत-सी प्रतिमाएँ बनवायी थी और उनके सब उपकरण भी सुवर्ण हीवे बनवाये थे । प्रतिष्ठा तथा तत्सम्बन्धी अभिषेक हो जानेके बाद वह उन प्रतिमाओंकी महापूजा करती थी अथपूर्ण स्तुतियोंके द्वारा श्री अहम्त देवकी भक्तिपूर्वक स्तुति करती थी, पात्र दान देती थी महामुनियोंका सम्मान करती थी, धर्मको सुनती थी तथा धर्मको सुनकर आप्त आगम और पदार्थोंका बार-बार चिन्तन करती हुई सम्यग्दर्शनकी शुद्धताको प्राप्त करती थी । अथानन्तर-फाल्गुन महीनेकी अष्टाह्निकाम उसने भक्तिपूर्वक श्री जिनेन्द्रदेवकी अष्टाह्निकी पूजा की, विधिपूर्वक प्रतिमाओंकी पूजा की, उपवास किया और वह कृशागी पूजाके शेषाक्षत देनेके लिए सिंहासनपर बठे हुए राजा अकम्पनके

१ दायव्याधि । २ मनोदुःखेन । ३ तपश्चरति । ४ अवयव । ५ विधुभास्पद्धिनी ल० म अ प० इ० स० । ६ शुद्धवशाज्जातात् । ७ जयकुमारभयादिव । ८ सुलोचनाम् । ९ यौवनबालेऽपि । १० करग्रहणं नाकरोत् । तस्या कामविकारो नाभूदित्यर्थ । ११ प्रतिमा । १२ प्रतिमानाम् । १३ सदययुक्ताभि । १४ अहम्तदेवान् । १५ पूजयन्ती । १६ क्षपान् ल० म० । १७ -नादाय ल० म ।

उपवासपरिश्रान्ता पुत्रिके त्वं प्रयाहि^१ ते^२ । शरण^३ पारणाकाल इति कन्यां व्यसर्जयत् ॥१७९॥
 तां विलोक्य महीपालो बालामापूर्णयौवनाम् । निर्विकारां सचिन्तः सन् तस्याः^४ परिणयोत्सवे ॥१८०॥
 शुभे श्रुतार्थसिद्धार्थसर्वार्थसुमतिश्रुतीन्^५ । कोष्ठादिमत्तिभेदान्वा^६ दिने व्याहूय मन्त्रिण^७ ॥१८१॥
 वृणते सर्वभूपालाः कन्यां नः कुलजीवितम् । ब्रूत कस्मै प्रदास्यामो विमृश्येमां सुलोचनाम् ॥१८२॥
 इत्यप्राक्षीत्तदा प्राह श्रुतार्थः श्रुतसागर । अत्र सद्बन्धुसंवन्धो जामाताऽत्र महान्वयः ॥१८३॥
 सर्वस्वस्य व्ययोऽत्रार्थ^८ जन्मराज्यफलं च नः । ततः संचित्यमेवैतत् कार्यं नयविशारदै ॥१८४॥
 बन्धवः स्युर्नृपाः सर्वे संबन्धश्चक्रवर्तिना । इक्ष्वाकुवशवत्पूज्यो भवद्वंशश्च जायते ॥१८५॥
 कुलरूपवयोविद्यावृत्तश्रीपौरुषादिकम् । यद्वरेषु समन्वेष्ट्यं^९ सर्वं तत्तत्र^{१०} पिण्डितम् ॥१८६॥
 ततो नास्त्यत्र नश्चर्च्यं^{११} दिगन्तव्यासकीर्तये । जितार्कमूर्तये देया कन्यै^{१२} पेत्यर्ककीर्तये ॥१८७॥
 सिद्धार्थोऽत्राह तत्त्वमस्ति^{१३} किं च पुराविदः^{१४} । कनीयसोऽपि^{१५} संबन्धं नेच्छन्ति ज्यायसा सह^{१६} ॥
 ततः प्रतीतभूपालपुत्रा वरगुणान्विताः । प्रभञ्जनो रथवरो तल्लिर्नृत्तागभाटगः ॥१८८॥

पास गयी । राजाने भी उठकर और हाथ जोड़कर उ
 मस्तकपर रखे तथा यह कहकर कन्याको विदा किय
 है, अब घर जा, यह तेरे पारणाका समय है ॥१८०॥
 हुई उस विकारगून्य कन्याको देखकर उसके विवाहो
 किसी शुभ दिनको कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पदानुसारी अ
 के समान श्रुतार्थ, सिद्धार्थ, सर्वार्थ और सुमति ना
 पूछा कि हमारे कुलके प्राणस्वरूप इस कन्याके लिए
 लिए तुम लोग विचार कर कहो कि यह कन्या कि
 पूछनेपर शास्त्रोका समुद्र श्रुतार्थ नामका मन्त्री बोला
 गम होना चाहिए, जमाई बड़े कुलका होना चाहिए
 और हम लोगोको अपने जन्म तथा राज्यका फल मि
 कार्यका अच्छी तरह विचार करना चाहिए ॥१८३॥
 किया जाय तो सब राजा अपने बन्धु हो सकते हैं अ
 पूज्य हो सकता है ॥ १८५ ॥ कुल, रूप, वय, विद्या
 गुण वरोमे खोजना चाहिए वे उसमे इकट्ठे हो गये
 कता नहीं है जिसकी कीर्ति सब दिशाओमे फैल रही
 बिम्बको भी जीत लिया है ऐसे चक्रवर्तीके पुत्र अर्कव
 १८७ ॥ इसी समय सिद्धार्थ मन्त्री कहने लगा कि उ
 व्यवहारको जाननेवाले छोटे लोगोका बड़ोके साथ
 ॥ १८८ ॥ इसलिए वरके गुणोसे सहित प्रभजन, रथ
 और भीमभुज आदि अनेक प्रसिद्ध राजपुत्र हैं जो ए

१ गच्छ । २ तव । ३ गृहम् । 'शरण गृहरक्षित्रो' इत्यभिध
 वीजबुद्धिपदानुमारिभिरनभिन्नश्रोतृभेदानिव । ७ वृण्वते ल०, म
 ९ पृच्छन्ति न्म । १० घनन्य । ११ वय वा जन्मन फल
 १४ विचार्यम् । १५ इति प्राहेति संबन्ध । १६ -मन्तु ल०
 १६ महता नः । ज्यायसा ल०, व० ।

मघस्वरो भीमभुजस्तथाऽयेऽप्युदितोदिता^१ । कृतिनो यद्वय सन्ति तपु^२ यत्राग्योत्तमय ॥१९०॥
 शिष्टान् पृष्ठा च^३ दधशाशिरीष्य शकुनानि च । स हित^४ समसथ^५ धस्तस्मै कन्यति दीयताम् ॥१९१॥
 भुवा सर्वार्थवित्तम^६ सर्वार्थं प्रत्युधाच^७ तत् । भूमिगोचरमथ^८ स न प्रागपि विद्यत ॥१९२॥
 अपूवलाम^९ श्लाघ्यश्च विद्याधरसमाश्रय । विषय तत्र कस्मच्चिद्वयमिति निश्चितम् ॥१९३॥
 सुमतिस्त निशम्यार्थं युक्तानामाह युक्तवित् । न युक्तं वक्तुमप्यतत्^{१०} सत्रवैरानुय^{११} धवृत् ॥१९४॥
 किं भूमिगोचरप्यस्या वरो भास्तीति चतसि । चन्निषोऽपि भवेत्किंचिद् वैरस्य प्रस्तुतश्रुत^{१२} ॥१९५॥
 ६४ः सम्यगुपायोऽय मयाऽग्नैकोऽविरोधक । श्रुत^{१३} पूवपुराणेषु स्वयवरविधिवर ॥१९६॥
 सप्रत्यकम्पनोपक्रम^{१४} तदस्वायुगायधि^{१५} । पुस्तपुत्रवरसृष्टि^{१६} न्यातिरस्यापि जायताम् ॥१९७॥
 दीयतां कृतपुण्याय कस्मैचित् कन्यका स्वयम् । वेधसा^{१७} विप्रिय^{१८} नोऽमा माभूद्भूभृत्सु^{१९} कनचिन् ॥
 इत्येवमुक्त तत्सर्वं समत सहभूभुजा । नहि मात्सरिण स^{२०} तो न्यायमार्गानुसारिण ॥१९८॥
 तान्^{२१} सपूय विसर्ज्याभूद्^{२२} भूभृत्^{२३} त्कायतत्परः । रथयमथ गृह गत्वा मय सत्तमविधानम्^{२४} २००

हैं उनमें जिसके लिए अपना चित्त प्रसन्न हो उसके लिए शिष्ट जन तथा ज्योतिषियोंसे पूछकर और उत्तम शकुन देखकर कया देनी चाहिए क्योंकि वराधरीवालोंके साथ सम्बन्ध करना ही कल्याणकारी हो सकता है ॥१८६-१९१॥ यह सब सुनकर समस्त विषयोंको जानने वाला सर्वार्थ नामका मन्त्री बोला कि भूमिगोचरियोंके साथ तो हम लोगोंका सम्बन्ध पहलेसे ही विद्यमान है, हाँ, विद्याधरोंके साथ सम्बन्ध करना हम लोगोके लिए अपूव लाभ है तथा प्रशसनीय भी है इसलिए विचारकर विद्याधरोंमें ही किसीको यह कया देनी चाहिए ऐसा मेरा निश्चित मत है ॥१९२-१९३॥ तदनन्तर वहाँपर एकत्रित हुए सब लोगोका अभिप्राय जानकर योग्य बातको जाननेवाला सुमति नामका मन्त्री बोला कि यह सब कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ये सभी बातें शत्रुता उत्पन्न करनेवाली ह ॥ १९४ ॥ विद्याधरको कया दी है यह सुननेसे चक्रवर्तीके चित्तमें भी 'कया भूमिगोचरियोंमें इसके योग्य कोई वर नहीं है' यह सोचकर कुछ बुरा लगेगा ॥ १९५ ॥ इस विषयमें किसीसे विरोध नहीं करनेवाला एक अच्छा उपाय मैंने सोचा है और वह यह है कि प्राचीन पुराणोंमें स्वयंवरकी उत्तम विधि सुनी जाती है । यदि इस समय सबप्रथम अकम्पन महाराजके द्वारा उस विधिका प्रारम्भ किया जाय तो भगवान् वृषभदेव और उनके पुत्र सम्राट भरतके समान संसारमें इनकी प्रसिद्धि भी युगके अन्त तक हो जाय ॥ १९६-१९७ ॥ इसलिए यह कन्या स्वयंवरमें जिसे स्वीकार करे ऐसे किसी पुण्य शाली राजकुमारको देनी चाहिए । ऐसा करनेसे हम लोगोंका आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेव अथवा युगव्यवस्थापक सम्राट भरतसे कुछ विरोध नहीं होगा, और न राजाओंका भी परस्परमें किसी के साथ कुछ वैर होगा ॥ १९८ ॥ इस प्रकार सुमति नामके मन्त्रीके द्वारा कही सब बातें राजाके साथ साथ सबने स्वीकृत कीं सो ठीक ही है क्योंकि नीतिमार्गपर चलनेवाले पुरुष मात्सय नहीं करते ॥ १९९ ॥ तदनन्तर राजाने सम्मान कर मन्त्रियोंको विदा किया और स्वयं

१ उपर्युक्तपुण्यदयवत् । २ पुति । ३ चित्तोत्सन्नोऽस्ति । ४ ज्योतिष्कान् । ५ अस्माभि सह सबन्ध सम्बन्धवान् वा । ६ तम् अ० प० स ६० ल० म० । ७ भूचर । ८ अभिप्रायम् । ९ मिलितानाम् । श्रुतार्थादीनाम् । १० सर्व वरा - प० ल० । ११ विवाहवार्ताश्रवणात् । १२ पूर्वस्मिन् श्रुत । १३ अकम्पनेन प्रक्रमोपक्रान्तम् । १४ स्वयंवरनिर्माणम् । १५ पुनर्जित्भरतराजवत् । १६ स्रष्टु ट । स्वयंवरस्य स्रष्टा इति प्रसिद्धि । सृष्टिरिति पाठे स्वयंवरस्य सृष्टिप्रसिद्धि । १७ ब्रह्मणा । स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृष्टिर्वा इत्यभिधानात् । १८ विरुद्धम् । अप्रियमित्यर्थ । १९ तपेषु । २० मन्त्रिण । २१ अकम्पन । २२ स्वयंवरकाय । २३ प्रस्तुतं इत्यर्थः ।

निवेद्य ^१सुप्रभायाश्च हृष्टो हेमाङ्गदस्य ^२च । वृद्धैः कुलक्रमायातैरालोच्य च सनाभिभिः ॥२०१॥
 अत्रैकेषां ^३निसृष्टार्थान् ^४मितार्थानिपरान् ^५प्रति । परेषां ^६प्राभृतान्तःस्थपन्नान् शासनहारिणः ^७ ॥२०२॥
 स दानमानं स पूज्य निवेद्यैतद्यथोजनम् ^८ । समानेतु महीपालाद् सर्वद्विक्कं ^९समादिशत् ॥२०३॥
 ज्ञात्वा तदाशु तद्वन्धुर्विचित्राङ्गदसंज्ञकः ^{१०} । सौधर्मकल्पादागत्य देवोऽवधिविलोचनः ॥२०४॥
 अकम्पनमहाराजमालोक्य वयमागताः । सुलोचनायाः पुण्यायाः ^{११}स्वयंवरमवेक्षितुम् ॥२०५॥
 इत्युक्त्वोपपुरं ^{१२}योग्ये रम्ये राजाभिममत । ^{१३}ब्रह्मस्थानोत्तरे भागे प्रधीरं ^{१४}वरवास्तुनि ^{१५} ॥२०६॥
 प्राङ्मुखं सर्वतोभद्रं मङ्गलद्रव्यसंभृतम् । विवाहमण्डपोपेतं प्रासादं बहुभूमिकम् ^{१६} ॥२०७॥
^{१७}चित्रप्रतोलीप्राकारपरिकर्मगृहावृतम् ^{१८} । मास्वरं मणिभर्माभ्यां ^{१९}विधाय विधिवत् सुधीः ॥२०८॥
^{२०}त परीत्य विशुद्धोऽसुविभक्तमहीतलम् । चतुरस्रं चतुर्द्वारगालगोपुरसंयुतम् ^{२१} ॥२०९॥
 रत्नतोरणसकीर्णकेतुमालाविलासितम् । हटक्कटाग्रनिर्भासि भर्माकुम्भाभिः शोभितम् ^{२२} ॥२१०॥
 स्थूलनीलोत्पलावदस्फुरद्दीप्तिधरातलम् । विचित्रनेत्रविस्तीर्णवितानाति ^{२३}विराजितम् ॥२११॥

कार्य करनेमे जुट गया । उसने सबसे पहले घर जाकर ऊपर लिखे हुए समाचार सुप्रभादेवी और हेमांगद नामके ज्येष्ठ पुत्रको कह सुनाये तथा कुलपरम्परासे आये हुए वृद्ध पुरुषो और सगोत्री बन्धुओके साथ पूर्वापर विचार किया ॥२००-२०१॥ कितने ही राजाओके पास निसृष्टार्थ अर्थात् स्वयं विचार कर कार्य करनेवाले दूत भेजे, कितनो ही के पास मितार्थ अर्थात् कहे हुए परिमित समाचार सुनानेवाले दूत भेजे और कितनो ही के पास उपहारके भीतर रखे हुए पत्रको ले जानेवाले दूत भेजे । इस प्रकार दान और सन्मानके द्वारा पूजित कर तथा स्वयं-वरका प्रयोजन बतलाकर राजाने भूपालोको बुलानेके लिए सभी दिशाओमे अपने दूत भेजे ॥२०२-२०३॥ यह सब समाचार जानकर अवधिज्ञानरूपी नेत्रोको धारण करनेवाला विचित्राङ्गद नामका देव जो कि पूर्वभवमे राजा अकम्पनका भाई था सौधर्म स्वर्गसे आया और अकम्पन महाराजके दर्शन कर कहने लगा कि मैं पुण्यवती सुलोचनाका स्वयंवर देखनेके लिए आया हूँ ॥२०४-२०५॥ ऐसा कहकर उसने राजाकी आज्ञानुसार नगरके समीप ब्रह्मस्थानसे उत्तरदिशाकी ओर अत्यन्त शान्त, उत्कृष्ट, योग्य और रमणीय स्थानमे एक सर्वतोभद्र नामका राजभवन बनवाया जिसका मुख पूर्व दिशाकी ओर था, जो मङ्गलद्रव्योसे भरा हुआ था, विवाहमण्डपसे सहित तथा कई खण्डका था ॥२०६-२०७॥ वह राजभवन अनेक प्रकारकी गलियो, कोटो तथा शृङ्गार करनेके घरोंसे घिरा हुआ था, देदीप्यमान था और मणियो तथा सुवर्णसे बना हुआ था । इस प्रकार उस बुद्धिमान् देवने विधिपूर्वक राजभवनकी रचना कर उसके चारो ओर स्वयंवरका महाभवन बनाया था जो कि विशुद्ध था, बड़ा था, जिसका पृथ्वीभाग अलग-अलग विभागोमे विभक्त था, जो चौकोर था, जिसमे चार दरवाजे थे, जो कोट तथा गोपुरद्वारोंसे सुशोभित था, रत्नोंके तोरणोंसे मिली हुई पताकाओकी पक्तियोंसे शोभायमान हो रहा था, देदीप्यमान शिखरोंके अग्रभागपर चमकते हुए सुवर्णके कलशोंसे अलंकृत

- १ सुप्रभायाश्च अ०, प० । २ निजज्येष्ठपुत्रस्य । ३ केषांचिन्नृपाणाम् । ४ स्वयमेव विचारितकार्यान् । ५ परिमितकार्यार्थान् । ६ उपायन । ७ वचोह्वान् । -पत्रशान्त-ल० । ८ स्वयंवरकार्यम् । ९ स्वयंवर-दिशाम् । १० अकम्पनस्य मित्रम् । ११ पवित्राया । १२ पुरस्मीपे । १३ पदविन्नामान्निचितमध्यभागम्योत्तरे । १४ अतिगम्भीरे । १५ वरवास्तुदेवे । 'वेद्यं भूर्वाप्स्वुरन्वित्रा' इत्यभिधानात् । १६ -भूमिपम् ल०, म० । १७ गोपुररथा वा । १८ शृङ्गारगृह । १९ भर्म रत्नं हटक्कटाग्रनिर्भासि भर्माकुम्भम् इत्यभिधानपाठाददन्त । २० सर्वतोभद्र परिवेष्टय । २१ द्वार गाल-ल०, म०, अ०, प०, न०, ड० । २२ वनककलय । २३ वस्त्रविशेष ।

मागपमोगयाधोरसवस्तुसमाचितम्^१ । यथास्थानगताशपरलकाग्रननिमित्तम् ॥२१२॥

मुदा निष्पादयामास स्वयंवरमहागृहम् । न साधयति कऽभीष्टं पुंसां शुभविषाकृतं^२ ॥२१३॥

त निराक्ष्य क्षितमर्त्ता लक्ष्मीलीलागृहायितम् । नासाय स्वाङ्गे^३ स संतापात् सन्मित्रान् क्रिञ्च आयत ॥

अथ प्रादुरभूत् कालः^४ सुरमिमत्तमन्मथ । मुदं मदं च सचिन्वन् कामिषु भ्रमरपु च ॥२१५॥

धर्मा मन्द गजोद्गृहचन्दनम्वसारमृत् । पलाशवङ्गमसगपकुला^५ मलयानिल ॥२१६॥

मलयानिलमाश्लेष्टुं^६ सधन्विनमुपागतम् । लताद्रुमा सुशाग्रानां प्रसारणमिषादधु^७ ॥२१७॥

यमसन्धेदिक्ष्याग रविर्मात इवाकरोत् । मदन कोटिला काले वृजन्ति स्म निरंकुशम् ॥२१८॥

^{१०}पुष्पमातवमासा न^{११} शारदा न स्पृशतति तान् । अलान् वास निषिध्यन्तश्चम्पकाश्चलपल्लव ॥२१९॥

वसन्तधान्नियोगो^{१२} धा सशाकोऽशाकभूरह । सपुष्पपल्लवा नाम साध तत्सगमाद् व्यधात् ॥२२०॥

मूलस्कंधाग्रमध्यपु चूताघैरिव मत्सरात् । सुरभागि प्रसूनानि सुरमिश्र^{१३} तदा दधे ॥२२१॥

धा जिसका धरातल बड़े-बड़े नीलमणियोसे जड़ा हुआ होनेके कारण जगमगा रहा था, जो नेत्र जातिके वस्त्रोसे बने हुए बड़े-बड़े चन्दोबोस सुशोभित था, भोग उपभोगके योग्य समस्त बड़ी बड़ी वस्तुओसे भरा हुआ था और योग्य स्थानपर लगाये हुए सब प्रकारके रत्नो तथा सुवर्णसे बना हुआ था । इस प्रकारका स्वयंवरका यह महाभवन उस देवने बड़ी प्रसन्नतासे बनाया था सो ठीक ही है क्योंकि पुष्पोदयसे पुरपानि अभीष्ट अर्थको कौन कौन सिद्ध नहीं करते ह अर्थात् सभी करते ह ॥२०८-२१३॥ लक्ष्मीके लीलागृहके समान उस स्वयंवर भवनको देखकर राजा अकम्पन सन्तोषसे अपने शरीरम नहीं समा रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम मित्रोसे क्या नहीं होता है ? अथात् सभी कुछ होता है ॥२१४॥

अथानन्तर-कामको उन्मत्त करनेवाला तथा कामी लोगों और भ्रमरोसे क्रमश आनन्द और मदको बढ़ानेवाला वसन्तऋतुका प्रारम्भ हुआ ॥२१५॥ हाथियोके द्वारा घिसे हुए चन्दन वृक्षोके निष्यन्दरूपी सारको धारण करनेवाला तथा इलायची और लवणके सगणसे कुछ-कुछ पीला हुआ मलयपवतका वायु धीरे धीरे बहने लगा ॥२१६॥ उस समय लताओं और वृक्षोंकी जो शाखाएँ फल रही थी उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो समीप आय हुए अपने सम्बन्धी मलयानिलका आलिङ्गन करनेके लिए ही भुजारूप शाखाएँ फला रहे हो ॥२१७॥ उस समय सूयने मानो डरकर ही यम सम्बन्धी-दक्षिण दिशाका त्याग कर दिया था अर्थात् उत्तरायण हो गया था और कोयल मदसे निरंकुश होकर मधुर शब्द कर रही थी ॥२१८॥ 'ये हमारी शाखाएँ आतव अर्थात् वसन्त ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले अथवा रजस्वला अवस्थामें प्रकट होने वाले पुष्पको प्राप्त हो रही ह-धारण कर रही हैं इसलिए इहे मत छुओ' यही कहते हुए मानो चम्पाके वृक्ष अपने हिलते हुए पल्लवोके द्वारा भ्रमरोंको वहाँपर निवास करनेका निषेध कर रहे थे ॥२१९॥ जो वसन्त ऋतुरूपी लक्ष्मीके वियोगमें सशोक था अर्थात् शोक धारण कर रहा था ऐसा अशोकका वृक्ष उस वसन्त ऋतुके सम्बन्धसे फूल और पल्लवोसे सहित ही अपना अशोक नाम साधक कर रहा था ॥२२०॥ उस समय चमेलीने आम आदि वृक्षोके साथ ईर्ष्या

१ समुत्तम् । २ प्रदेशमनतिक्रम्य । ३ शुभकर्मोदयात् । ४ हर्षेण निजशरीर न ममादित्यय । नामात् ल०, म० अ, स य इ० । ५ वसन्त । वसन्त पुष्पसमय सुरमिर्घोष्य उन्मत्तक । इत्यभिधानात् । ६ पञ्चैकलम्भान् । ७ आलिङ्गनाय । ८ करप्रसारणमिव । ९ चक्रि । १० ऋतु पुष्पोत्पत्तिनिमित्तभूतकाल विशेष रमोत्पत्तिनिमित्त कालविशेष च । ११ वस्माकम् । १२ वियोगे च । १३ सत्त्वकीतह । गविनी गजभक्ष्या तु सुवहा सुरभो रसा । महदना कुन्दुसकी सत्त्वकी ह्लादिनीति च इत्यभिधानात् ।

आकृष्टदिग्गजालानि^१ वकुलानि वने वने । हानौ^२ ^३गुणाधिकान्यामंस्तुलितानि^४ कुलोद्गतैः^५ ॥२२२॥
 क्रीडनासक्तक्रान्ताभिर्वाध्यमानाः सर्गीतिभिः । आन्द्रोला स्तम्भसभूतैः समाक्रोशन्निव^६ स्वनैः ॥२२३॥
 सुन्दरेष्वपि कुन्देषु मधुषा मन्दतृप्तयः । माधवीमधुषानेन मुदा मधुरमास्वन्^७ ॥२२४॥
 मवेदन्यत्र^८ कामस्य रूपवित्तादि^९ साधनम् । कालैकसाधनं^{१०} सोऽस्मिन्ना^{११} वनस्पति^{१२} जृम्भते^{१३} ॥२२५॥
 नरविद्याधराधीशान् गत्वा^{१४} तत्कालसाधनात् । दृताः स्वयंवरालाप सर्वास्तान् समवोधयन् ॥२२६॥
 तनो नानानकध्वानप्रोत्कर्णाकृतदिग्दिपाः । निजाङ्गनाननाम्भोजपरिम्लानिविधायिनः ॥२२७॥
^{१५}वियद्विभूतिमाक्रम्य विमानैर्गन्तमानकैः^{१६} । सद्यो विद्याधराधीशा द्योतमानदिगानना ॥२२८॥
 सुलोचनाभिधाकृष्टि^{१७} विद्याकृष्टाः समापतन्^{१८} । कामिना न पराकृष्टि^{१९} विद्यामुक्त्वेऽसितस्त्रिय ॥२२९॥

होनेके कारण ही मानो जड, स्कन्ध, मध्यभाग और ऊपर-सभी जगह सुगन्धित फूल धारण किये थे ॥२२१॥ जिन्होंने दिग्गजोंके भ्रमरोको भी अपनी ओर खींच लिया है और जो उच्च-कुलमे उत्पन्न हुए बड़े पुरुषोंके समान हैं ऐसे मौलथीके वृक्ष प्रत्येक वनमे अपनी हानि होनेपर भी गुणोंकी अधिकता ही धारण कर रहे थे । भावार्थ—जिस प्रकार कुलीन मनुष्य हानि होनेपर भी अपना गुण नहीं छोड़ते हैं उसी प्रकार मौलथीके वृक्ष भी भ्रमरो-द्वारा रसका पान किया जाना रूप हानिके होनेपर भी अपना मुगन्धिरूप गुण नहीं छोड़ रहे थे ॥२२२॥ जो गीत गा रही हैं तथा खेलनेमे लगी हुई हैं ऐसी मुन्दर स्त्रियाँ जो झूला झूल रही थी और उनके झूलनेसे जो उनके खम्भोसे चूँ चूँ गव्व हो रहा था उनसे वे झूले ऐसे जान पड़ते थे मानो उन स्त्रियोंके द्वारा पीडित होकर ही चिल्ला रहे हो ॥२२३॥ जिन्हे कुन्दके सुन्दर फूलोपर अच्छी तृप्ति नहीं हुई है ऐसे भ्रमर माधवी (मधुकामिनी) लताका रस पीकर आनन्दसे मधुर गव्व कर रहे थे ॥२२४॥ वसन्तको छोड़कर अन्य ऋतुओमे अच्छा रूप होना आदि भी कामदेवके साधन हो सकते हैं परन्तु इस वसन्तऋतुमे एक समय ही जिसका साधन है ऐसा यह काम वनस्पतियो तक फैल जाता है । भावार्थ—अन्य ऋतुओमे सौन्दर्य आदिसे भी कामकी उद्भूति हो सकती है परन्तु वसन्तऋतुमे कामकी उद्भूतिका कारण समय ही है । उस समय सौन्दर्य आदिका अभाव होनेपर भी केवल समयकी उत्तेजनासे कामकी उद्भूति देखी जाती है और उसका क्षेत्र केवल मनुष्यो तक ही सीमित नहीं रहता किन्तु वनस्पतियो तकमे फैल जाता है ॥२२५॥ उस वसन्तऋतुकी सहायतासे उन दूतोंने भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंके पास जाकर उन सबको स्वयवरके समाचार बतलाये ॥२२६॥

तदनन्तर अनेक नगाडोंके गव्वोंसे दिग्गजोंके कान खड़े करनेवाले, अपनी स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोको म्लान करनेवाले, सब दिगाओंके मुखको प्रकाशित करनेवाले और मुलोचना इस नामरूपी आकर्षिणी विद्यासे आकर्षित हुए अनेक विद्याधरोंके अधिपति अपने अनेक विमानोंसे आकाशके विस्तारको कम करते हुए बहुत गीघ्र आ पहुँचे सो ठीक ही है क्योंकि कामी लोगो-को अपनी अभीष्ट स्त्रियोंको छोड़कर और कोई उत्तम आकर्षिणी विद्या नहीं है ॥२२७—२२९॥

१ आकृष्टा दिग्गजगण्डवर्त्यलयो वैस्तानि । २ पुष्पामोदत्तागे मति । ३ गन्धगुणाधिकानि । उपकारादिगुणाधिकानि । ४ मृदुशीकृतानि । ५ विगुद्ववगोद्भूतैः । ६ आक्रोश चक्रिरे । ७ ध्वनन्ति स्म । ८ अन्यस्मिन् काले । ९ त्रीपंशा रूपधननूपगादि । १० काल एक एव साधनं मन्यते । ११ वमन्काठे । १२ वनस्पतिपर्यन्तम् । १३ वर्धते । १४ वसन्तकाल । १५ जाकाशविम्वृत्तिम् । १६ अपरिच्छिन्नप्रमाणकैः । अपरिच्छिन्नैरित्यर्थः । १७ ननमानं ल०, म० । १८ मुलोचनानामैव आकर्षणविद्या तथा आकृष्टा आकर्षिता । १९ आगच्छन्ति स्म । १० आकर्षणविद्या ।

अभिगम्य^१ नृप^२ क्षिप्र स्वयमाविष्करोत्सद्यः । धत्त सालाघनं^३ वतान् प्रीतान् प्रावेशयत्पुरम् ॥२३०॥
 स्वगेहादिषु सप्रीत्या समुद्रद्वोत्सवध्वज । आकम्पनिभिराविष्टादर परिवारित ॥२३१॥
 साशुक्रममिवोद्यन्तमरुकीर्तिं सहानुजम् । अकम्पननृपोऽभ्यस्य गरत^४ वाऽनयत्पुरम् ॥२३२॥
 स्वादरेणैव^५ ससिद्धिं भाविनीं तस्य सूचयन् । नाथवशाग्रणीमेषस्वर चानतुमभ्ययात् ॥२३३॥
 ततो महाभृत सर्वे त्रिसमुद्रान्तरस्थिता । पूरा इय पयाराशिं प्रापु^६ स्फीतीकृतश्रिय ॥२३४॥
 स्वयमधपथं गत्वा केषांचित् सबसपदा । केषांचिद् गमयित्वाऽभ्यान् मायान् हमाङ्गदादिकान् ॥२३५॥
 य ये यथा यथा प्राप्ता पुरीस्तां स्वांस्तथा तथा । आह्वयन्तीं पताकामिषोष्पितामिरयायिशत्^७ ॥२३६॥
 तदा त राजगेहस्थ नरयिशाधराधिपे । धृश सुलोचनाऽकापात् पितर जितचक्रिणम् ॥२३७॥
 वाराणसीं जितायोध्या^८ स्वनाशस्तां^९ निराकरोत् । प-यारात् पर^{१०} नाचदित्यग्राहुः प्रभृष्यत २३८
 तान् स्वयं वशालायामरुकीर्तिपुरस्सरान् । निवश्य प्राणयामास कृताभ्यागतसत्क्रिय ॥२३९॥

अनेक उत्सवोको प्रवट करनेवाल राजा अकम्पनने स्वय ही बहुत शीघ्र उन राजाआवी अगवानी की और प्रसन्न हुए उन राजाओको सुलोचनाके चित्तके समान वाराणसी नगरीमें प्रवेश कराया ॥२३०॥ जिसने बड़े प्रमसे अपने घर आदिमें उत्सवकी ध्वजाएँ बँधायी ह और आदरको प्रकट करनेवाल हेमागद आदि पुत्र जिसके साथ ह ऐसे राजा अकम्पनने किरणों सहित उदय होते हुए सूर्यके समान अपने छोटे भाइयों सहित आये हुए अक्कीर्तिकी अगवानी कर उसे महाराज भरतके समान नगरमें प्रवेश कराया ॥२३१ २३२॥ इसी प्रकार अपने आदरसे ही मानो उसकी आगे होनेवाली सिद्धिको सूचित करता हुआ नाथवंशका अग्रणी राजा अकम्पन जयकुमारको लनेके लिए उसके सामने गया ॥२३३॥ तदनन्तर जिस प्रकार पूर समुद्रकी ओर जाता है उसी प्रकार तीनों (पूव, पश्चिम, दक्षिण) समुद्रोके बीचके रहनेवाल सब राजा लोग अपनी अपनी शोभा बढ़ाते हुए वाराणसी आ पहुँचे ॥२३४॥ राजा अकम्पन कितने ही राजाओंके सामने तो अपनी सब विभूतिके साथ स्वय आधी दूर तक गया था और कितनो ही के सामने उसने मान्य हेमागद आदिको भेजा था ॥२३५॥ जो राजा जिस जिस प्रकारसे आ रहे थे उहे उसी उसी प्रकारसे उसने अपनी पहरातो हुई पताकाओसे जो मानो बुला ही रही हों ऐसी बनारस नगरीमें प्रवेश कराया था ॥२३६॥ उस समय सुलोचनाने राजमहलमें विराजमान तथा भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंसे घिरे हुए अपने पिताकी चक्रवर्तीकी भी जीतनेवाला बना दिया था । भावार्थ—महलमें इकट्ठे हुए अनेक राजाओसे राजा अकम्पन चक्रवर्तीके समान जान पड़ता था ॥२३७॥ उस समय अयोध्याको भी जीतनेवाली वाराणसी नगरी अपने नामसे ही उसका तिरस्कार कर रही थी । क्योंकि उस स्वयंवरके समयसे ही लेकर इस ससारमें कया रत्नके सिवाय और कोई उत्तम रत्न नहीं है, यह बात प्रसिद्ध हुई है । भावार्थ—कदाचित् कोई कहे कि चक्रवर्तीकी राजधानी होनेसे चौदह रत्न अयोध्यामें ही रहते है इसलिए वही उत्कृष्ट नगरी हो सकती है न कि वाराणसी भी, तो इसका उत्तर यह है कि ससारमें सर्वोत्कृष्ट रत्न कन्यारत्न है जो कि उस समय वाराणसीमें ही रह रहा था अत उत्कृष्ट रत्नका निवास होनेसे वाराणसीने अयोध्याका तिरस्कार कर दिया था ॥२३८॥ अतिथियोका सत्कार

१ अभिमुख गत्वा । २ अकम्पन । ३ सुलोचनाचित्तमिव । ४ अकम्पनस्थापत्य । ५ अभिमुख गत्वा । ६ भरतमिव । ७ अकम्पनस्यादरेण । ८ वृद्धीवृत्त । ९ प्रावश्यत । १० अयोध्याभिधानात् । ११ अयोध्योक्तिम् । अथवा योद्धमशक्या अयोध्या एतल्लक्षणं सदा तस्या अयोध्याया नास्तीति भाव । १२ उत्कृष्टम् ।

पुरोपार्जितसद्धर्मात् सर्वमेतत्ततः^१ पुरा^२ । धर्मं एव समभ्यर्च्य इति संचित्य विद्वरः^३ ॥२४०॥
 कृत्वा जैनेश्वरी पूजां दीनानाथवनीपकार्^४ । अनर्थिनः^५ समर्थ्याशु^६ सर्वत्यागोत्सवोद्यतः ॥२४१॥
 तां लक्ष्मीमक्षयां मत्वा सफलां चाप्तमद्वययाम् । स तदाभूत् क्षतेरेकभोग्यः^७ क्षितिगिवात्मनः ॥२४२॥
 एवं विहिततत्पूजं^८ प्रकृतार्थं^९ प्रचक्रमे । प्रारम्भा^{१०} मिद्धिमायान्ति पूज्यपूजापुरस्सरा^{११} ॥२४३॥
 आस्फालिता तदा भेरी विवाहोत्सवशंसिनी । व्याग्नोत्^{१२} प्रमोद^{१३} प्राक् चेत पश्चात् कर्णेषु तदध्वनिः ॥
 पुष्पोपहारिभूभागानृत्यत्केतुनमस्तला । निर्जिताब्धिमहातूर्यध्वानाध्मातृदिगन्तरा ॥२४४॥
 विगोभितमहावीथिदेशा प्रोद्वद्धतोरणा । पुनर्नवसुधाक्षोदधवलीकृतसौधिका^{१४} ॥२४५॥
 रञ्जिताञ्जनसन्नेत्रा मालामारिगिरोरुहा । सस्कृतभ्रलतोपेता सविशेषललाटिका^{१५} ॥२४६॥
^{१६} मणिकुण्डलमारेण प्रलम्बश्रवणोज्ज्वला । सचित्रकरविन्यस्तपत्रचित्रकपोलिका^{१७} ॥२४७॥
 ताम्बूलरसससर्गाद् द्विगुणारुणितधरा । मुक्ताभरणमाभारमासिवन्धुरकण्ठिका^{१८} ॥२४८॥
 सचन्दनरसस्फारहारवक्षःकुचाञ्चिता^{१९} । महामणिमयूखातिमास्वद्भुजलतातता ॥२४९॥

करनेवाले राजा अकम्पनने उन अर्ककीर्ति आदि राजाओको स्वयवरगालामे ठहराकर प्रसन्न किया था ॥२३९॥ यह सब पहले उपार्जन किये हुए समीचीन धर्मसे ही होता है इसलिए सबसे पहले धर्म ही पूजा करनेके योग्य है ऐसा विचार कर विद्वानोमे श्रेष्ठ राजा अकम्पन श्री जिनेन्द्र-देवकी पूजा कर तथा दीन, अनाथ और याचकोको अयाचक बनाकर सबका त्याग करनेरूप उत्सवके लिए शीघ्र ही तैयार हो गया । वह अच्छे कामोमे खर्च की हुई लक्ष्मीको क्षयरहित और सफल मानने लगा तथा जिस प्रकार उसकी पृथिवी उसके उपभोग करनेके योग्य थी उसी प्रकार उस समय वह समस्त पृथिवीके उपभोग करने योग्य हो गया था । भावार्थ—पृथिवीके सब लोग उसके राज्यका उपभोग करने लगे थे ॥२४०—२४२॥ इस प्रकार उसने जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर अपना प्रकृत कार्य प्रारम्भ किया सो ठीक ही है क्योंकि पूज्य पुरुषोकी पूजापूर्वक किये हुए कार्य अवश्य ही सफलताको प्राप्त होते हैं ॥२४३॥ उसी समय विवाहके उत्सवको सूचित करनेवाली भेरी बज उठी सो पहले सबके चित्तमे आनन्द छा गया और पीछे भेरीकी आवाज कानोमे व्याप्त हुई ॥२४४॥ उस समय वहाँ पृथिवीपर जहाँ-तहाँ फूलोके उपहार पड़े हुए थे, आकाशमे पताकाएँ नृत्य कर रही थी, समुद्रकी गर्जनाको जीतनेवाले बड़े-बड़े नगाडोसे दिगाएँ शब्दायमान हो रही थी, वहाँकी बड़ी-बड़ी गलियाँ शुद्ध की गयी थी, उनमे तोरण बाँधे गये थे और बड़े-बड़े महल नये चूनाके चूर्णसे पुन सफेद किये गये थे ॥२४५—२४६॥ वहाँकी स्त्रियोके उत्तम नेत्र कज्जलसे रंगे हुए थे, गिरके केज मालाओको धारण कर रहे थे, भौहरूपी लताएँ सस्कार की हुई थी, उनके ललाटपर सुन्दर तिलक लगा हुआ था, उज्ज्वल कर्ण मणियोके बने हुए कुण्डलोके भारसे कुछ-कुछ नीचेकी ओर झुक रहे थे, कपोलोपर हाथसे बनायी हुई पत्ररचनाके चित्र बने हुए थे, पानके रसके सम्बन्धसे उनके ओठोकी लाली दूनी हो गयी थी, उनके कण्ठ मोतियोके आभूषणोकी कान्तिके भारसे बहुत ही मुगोभित हो रहे थे, उनका वक्ष स्थल चन्दनका लेप, बड़ा हार और स्तनोसे गोभायमान हो रहा था, उनकी भुजारूपी लताएँ बड़े-बड़े मणियोकी किरणोसे देदीप्यमान हो रही थी, उनका विनाल नितम्बस्थल

१ तत् कारणात् । २ पूर्वम् । ३ विदा वर । ४ याचकान् । ५ अनिच्छन् । ६ प्रकाश्य । ७ सर्वजनम्य । ८ कृत-जिनपूज । ९ प्रकृतकार्यम् । १० पूजाना पूजा पुरस्सरा येषु ते । ११ प्रमोदति म्म । १२ नूतनमुवालेपधवली-कृतहर्म्या । १३ तिलकनहिननाम्बदया । १४ रत्नकर्णवेष्टन । १५ प्रगम्यचित्रिकाञ्जनचित्रिनमकृष्णिकापत्रादि-विचित्ररचनावद्गण्डमण्डला । १६ मनोज्ञरीवा । १७ प्रगम्यश्रीवष्टवर्द्धमकटिनवक्षमाभुगुणहारान्वितकुचाभ्या च पूजिता । १८ मयूखाना 'न०' पुनश्च विहाय मयूख ।

रशनात्तुविभ्राजिसुविशालकगीतटी । भणिनूपुरनिघोषमसिताञ्जत्रमादित्रा ॥२५१॥

जितामरपुराशोभा सौन्दर्यान् सा पुरी तदा । प्रसाधनमथ कायमधिताचिरथवैभवम् ॥२५२॥

उत्सवो राजरोहस्य नगरणैव घणित । अगाधो यदि पयन्तो मध्यमध^३ क्रिसुच्यत ॥२५३॥

न चित्र तत्र^४ मचिर्त्ता^५ सोत्सवोऽन्तबहिद्वय तत् । तद्वत्स्वभूषया यस्मान् कुन्धाद्यपि विच्यतनम् ॥२५४॥

भोक्तृद्वय न भोगाद्वा^६ न भोक्ता भोगवजित । तत्र सन्निहितोऽनङ्ग लक्ष्माभ्याचिष्टतोदया ॥२५५॥

पद्म पुण्यस्य माहात्म्यमिहापाति^७ तदुत्सवम्^८ । विलोभ्य कृतधर्माग^९ पुरस्यान् यद्गु मनिरे ॥२५६॥

^{१३} उदसु चन् फल मत्ता धमस्य भुनयोऽपि सत् । धर्माधमफलालोकात् स्वभाज स हि तात्ताम् ॥२५७॥

क-यागृहात्तदा कन्धामयां वा कमलालयाम्^{१४} । पुरोभूय^{१५} पुर-मस्तामापवत्तात्तमाध्यसाम्^{१६} ॥

विवाहविधिवेदिय कृततत्कालसत्क्रियाम् । समानाय सध्वना^{१७} महात्परवायिताम् ॥२५८॥

सयमङ्गलसपूर्णं मुक्तालम्^{१८} पभूषिते । चतु काञ्चनसुस्तम्भ भूरिस्तस्फुरत्त्रिपि ॥२५९॥

प्रमोदात् सुप्रभादसाद् विवाहोत्सवमण्डपे । कल्पातमय पट्ट^{१९} निवेद्य प्रादुर्गुरीं सुगम् ॥२६०॥

करघनीरूपी रज्जुसे सुशोभित हो रहा था और उनके चरणकमल भणिमयी नूपुराकी झनकारसे कमलोंका तिरस्कार कर रहे थे ॥२४७-२५१॥ इस प्रकार अपनी सुन्दरतासे स्वर्गपुरीकी शोभाको जीतनेवाली वह नगरी उस समय अचिरत्न वैभवशाली अलंकारमय धारीरवी धारण कर रही थी ॥२५२॥ राजमहलका उत्सव तो नगर ही कह रहा था क्याकि समुद्रके किनारेका भाग ही जब अगाध है तब उसके बीचका क्या पूछना है ? भावाथ—जब नगरम ही भारी उत्सव हो रहा था तब राजमहलके उत्सवका क्या पूछना था ? ॥२५३॥ वहाँके सचेतन प्राणी अन्तरंग और बहिरंग सब जगह उत्सव मना रहे थे इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि वहाँकी दीवाल आदि अचेतन पदार्थ भी तो अपने अलंकार-द्वारा सचेतन प्राणियोंके समान ही उत्सव मना रहे थे । भावाथ—दीवालें आदि अचेतन पदार्थ भी अलंकारोसे सुशोभित किये गये थे जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो उल्लाससे अलंकार धारण कर स्वयं ही उत्सव मना रहे हों ॥२५४॥ वहाँपर भोगोपभोगका कोई भी पदार्थ भोक्तासे रहित नहीं था और न कोई भोक्ता भी भोगोपभोगके पदार्थसे रहित था, वहाँपर कामदेव सदा समीप ही रहता था और लक्ष्मी उदयरूप रहती थीं ॥२५५॥ इस जन्ममें ही पुण्यका माहात्म्य देखो ऐसा सोचते हुए कितने ही धर्मात्मा लोग वहाँका उत्सव देखकर उस नगरके रहनेवाले लोगोंको बड़े आत्मीकी दृष्टिसे देख रहे थे ॥२५६॥ मुनि लोग भी उसे धर्मका फल मानकर प्रसन्न हुए थे सो ठीक है क्योंकि धर्मका फल देखकर प्रसन्न होना धर्मात्मा लोगोंका स्वभाव है और अधर्मका फल देखकर प्रसन्न होना अधर्मात्मा लोगोंका स्वभाव है ॥२५७॥ उसी समय विवाहकी विधिको जाननेवाली सौभाग्यवती स्त्रियाँ जिसने तात्कालिक सत्क्रियाएँ की हैं जो लज्जासे कुछ भयभीत हो रही है, जिसके आगे बड़े-बड़े नगाडोंके शब्द हो रहे हैं, ज्योतिष शास्त्रको जाननेवाले अनेक विद्वान् जिसके साथ हैं और जो दूसरी लक्ष्मीके समान जान पड़ती है ऐसी उस कन्याको उसके सामने जाकर उसके घरसे सब प्रकारके भगल द्रव्योंसे भरे हुए मोतियोंके आभूषणोसे सुशोभित सुवर्णके बने हुए चार उत्तम खम्भोंसे युक्त और अनेक रत्नोंकी कान्तिसे जगमगाते हुए

१ अलंकारस्वरूपम् । २ विमर्ति स्म । ३-अर्धौ ल । ४ पुण्याम् । ५ चेतनवान् । ६ उत्सववत् । ७ यस्मात् कारणात् । ८ सकचदनादि । ९ नगर । १ अस्मिन् जन्मयपि । किं पुनस्तत्तज्जन्मनीत्यपि शङ्क्य । ११ तत्पुरोत्सवम् । १२ कृतपुण्या । १३ उत्सव प्राप्ता । उदास्तवत् ल० । १४ लक्ष्मीम् । १५ पुरस्कृत्य । १६ कुटुम्बिय । स्यात् कुटुम्बिनी पुराणी इत्यभिधानात् । पुर पोष्यबहुजनसमूहं धत्त इति पुराणी । पुना-पोष्यवर्गशालिका स्त्रिया नाम । १७ लज्जया स्वीकृत । १८ ज्योतिष्कसहिता । १९ माला । २० सुप्रभादसाद देवीनिरूपणात् । २१ फलके ।

कलशैर्मुन्यन्विष्टमन्त्रिण्यपत्तयैः । अमिषिन्य पिशुन्यामुपर्णं स्वर्णमयैः शनैः ॥२६०॥
 कृतसङ्कल्पनेपायां नीत्या नियमनोत्सर्गम् । पुरयिष्याज्जन्तो नराया स्वर्गस्यागस्त्यगि ॥२६१॥
 सिद्धयेषां समानाय क्षिप्या शिरसि साक्षिणम् । स्थिता प्रसीध्य सत्तम तत्राग्न्याक्षिताः ॥२६२॥
 हृत्तो मण्डपमन्देशान् नग्नेचरनाराः । गार्गे प्रयागिमान् यत्र प्रयागनिर्दिष्टाः ॥२६३॥
 निजोचितायनाराः प्रगल्भायमुज्ज्वला । चन्द्रावामस्तथा सान्या चामस्त्यजिना ॥२६४॥
 कृमायां निजित काम प्राय स्वमेवै विदुष्यैः किम् । समानं न पतन्तुमिति नृपि शयिन ॥
 कचिदेकैः रणोत्साधितैः ज्ञायाः शयय ॥ तेषु सर्वेषु ना तन्तु आशा नि मन्ता नृणाम् ॥
 'केरली' इति नोचुः कचिदेकैः विदुष्यैः । श्रमापानीतसामर्थ्येन परिक्षीणपरिमम् ॥२६५॥
 साधनमयमातङ्गस्तद्वर्णप्रतिनोदनात् । अत उन्दननित्यन्दस्यान्तं संगमयवत् ॥२६६॥
 कापरीवारिजात्यान् प्रपृष्टाण्डनिभम् । र्हातं नृलज्जलस्युदरणमुक्तानिभूषणम् ॥२६७॥
 दक्षिणानिलमापत् कोऽस्तानलदीपनम् । र्हातं नृलज्जलस्युदरणमुक्तानिभूषणम् ॥२६८॥

विवाहोत्सव मण्डपमे वटे हफें नाथ महारानी नुप्रभाती आज्ञाने आती और पुरं दिनाती और मुख कर मुगपर्वक मोनेके पाटपर बिठा दिया । तदनन्तर मुगपर रंगे हुए शोभायमान पल्लवोंको धारण करनेवाले तथा विजुट्ट जलने भरे हुए मुवर्णमय शुभ कण्ड्योंके उमता अभिषेक किया । फिर मागलिक वन्त्राभूषणोंको धारण करनेवाली कन्याको नित्यमनोहर नामक चैत्यालयमें ले जाकर वहाँ उमसे सबका कल्याण करनेवाले श्री अर्हन्तदेवकी पूजा करायी । उमके बाद मिट्टी जेपावन लेकर आजीवद्विपूर्वक उमके शिरपर रंगे और उनना सब तर चुकनेके बाद वे स्त्रियाँ उमका आदर-सन्कार करती हुई शुभ लग्नकी प्रतीक्षामें उमें घेरेकर वही ठहर गयी ॥२५८-२६८॥ उधर महाराज अकम्पनके मन्देशमें, मजावटको जाननेवाले वे सब भूमिगोचरी और विद्याधरोंके अधिपति अपने-आपको मजाकर अपने-अपने योग्य आगनां-पर जा बंटे । वे प्रकृष्ट शोभामें उज्ज्वल थे, टलते हुए चमकेकी सम्पत्ति और कान्तिमें देवोंके समान जान पड़ते थे और ऐसी शका उत्पन्न कर रहे थे मानो उम कुमारीने पहले ही कामदेवको जीत लिया था इसलिए वह कामदेव ही अपने बहुत-से रूप धारण कर उमें जीतनेके लिए पुन आया हो ॥२६५-२६७॥ यह मुलोचना किसी एकको ही स्वीकार करेगी, ऐसा जानकर भी वे सब गजा लोग अहंकार करने हुए उमें जीतनेके लिए वहाँ बंटे थे सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्योंकी आशा बहुत ही बड़ी होती है ॥२६८॥ जो स्त्रियोंके मद्यके कुग्गो तथा तूपुरोकी झनकारमें मुग्धोभित बाये पैरोंके द्वारा वृक्षोंको भी कामी बना रहा है, जो बाँये हाथमें फूलोंका धनुष धारण कर दूसरे हाथमें आमकी मजरीको खूब फिंग रहा है, जिसका पराक्रम प्रसिद्ध है और जिसने वमन्त ऋतुस्त्री सेवकके द्वारा फूलस्त्री समस्त शस्त्र बुला लिये हैं, ऐसा कामदेव, केरल देशकी स्त्रियोंके कठिन और ऊँचे करोड़ों कुचोंको उल्लघन करनेसे उत्पन्न हुई शकावटके कारण जिसकी धूमनेकी शक्ति क्षीण हो गयी है अर्थात् जो धीरे-धीरे चल रहा है, मलय पर्वतके

१ शुभं अ०, प०, म०, म०, ल०, ड० । २ नित्यमनोहरनाम चैत्यालयम् । ३ - जेप ल० । ४ प्रतीक्षा कृत्वा । ५ चैत्यालये । ६ कृतादर यथा भवति तथा । ७ अकम्पनवाचिकात् । ८ अलङ्कृतान् । ९ प्रसिद्ध । १० आत्मानम् । ११ राजकुमाररूपेण वैकुण्ठिण कृत्वा । १२ सद्गतवान् । १३ मुलोचना जेतुम् । १४ प्रेक्षकाणां शङ्का कुर्वाणा । १५ अनिदिष्ट कचिदेक पुरुषम् । १६ स्वीकरोति । १७ अहंकारवन्त । 'अहंकारवानह्यु' इत्यभिधानात् । १८ निजोचितासनाम्हा मन्तमन्थुरिति सम्भव । १९ केरलरत्री । २० श्रमापनीतसामर्थ्य । २१ लङ्घनाज्जानयमेणापसारितसामर्थ्येन परिक्षीणगमनम् । २२ मलयाचलोत्पन्नकरिकपोलकण्डूयापनयनात् । २३ द्रवप्रस्रवण । २४ विरहतीव्राग्निममुत्पादनम् ।

योपितां मधूगण्ढपैर्नपुरारावरञ्जितै । कुवन् वामाङ्गिभिश्चालमङ्गिपानपि^१ कामुकान् ॥२७३॥
 कौसुम^२ धनुरादाय^३ वामनारूढविभ्रम । चृतसून्^४ करणोच्चै परण^५ परिवसथन् ॥२७४॥
 वसन्तानुचरानीतनि^६ पपकुसुमायुध । जिवा तदादितिलान् दशानप्याथार्^७ कुसुमायुध ॥२७५॥
 तदा पुरात् समागत्य कृता जितपुरन्दर । ममाभिभूतसाम्राज्यो रायचिह्नपुरस्सर ॥२७६॥
 स्वलक्ष्मीयाससर्वांश सुप्रभासहित पति^८ । स्वस्थान^९ स्वयवरागार स्थोचित^{१०} स्वरजनैश्च ॥२७७॥
 चित्र^{११} महद्द्रवत्ताप्यो द्रवदत्त^{१२} रथ यूथुम् । सञ्जीवित समारोप्य कन्यामायासु कञ्चुकी ॥२७८॥
 समस्तबलसन्दोह सस्यक् सन्नाह^{१३} सानुज । इमाङ्गदा जितानङ्ग प्रात्याश्यात् परिता रथम् ॥२७९॥
 तूयध्वानाहतिमेह^{१४} द्विषयावणपूर्विका । सद्यन्नच्छग्रनिद्रिच्छद्रच्छायाच्छादितमास्वरा ॥२८०॥
 लक्ष्मी पुरामिवायोध्यां चन्द्रिदिविजयागम । शाली^{१५} प्रविश्य राजन्यलोचनार्या सुलोचना ॥२८१॥
 सप्ततोमद्रमारुह कञ्चुकीप्रेरिता नृपान् ।^{१६} विचित्रहाचनैर्लटिर्नीलोत्पलदलरिध ॥२८२॥
 चातका^{१७} वाञ्छदृष्टज^{१८} ततद्दृष्टग तुष्टिभागमन् । आह्लाद कस्य धान स्यादाप्सितायसमागम ॥२८३॥

मदोन्मत्त हाथियोके गण्डस्थलोंकी खाज खुजलानेसे टूटे हुए चन्दन वृक्षोंके निप्यदकी घनी सुगन्धिसे जो व्याप्त हो रहा है, कावेरी नदीके कमलाके आस्वादसे हर्षित हुए पक्षियोंकी अलहड फ्रीडासे उछलती हुई जलकी बड़ी-बड़ी बूँद ही जिसके मोतियाके आभूषण ह, जो विरहरूपी तीव्र अग्निको प्रज्वलित करनेवाला है और कोयल तथा भ्रमरोंके मनोहर शब्दोंसे जो बाचा रित हो रहा है ऐसे दक्षिणके वायुको अनुकूल करता हुआ सब देशोंको जीतकर उस समय बहा आ पहुँचा था ॥२७९-२७५॥ उसी समय, जिसने अपनी शोभासे इन्द्रको भी जीत लिया है जिसका साम्राज्य प्रकट है, ध्वजा आदि राज्यके चिह्न जिसके आगे-आगे चल रहे हैं, अपनी शोभासे जिसने समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली ह, सुप्रभा रानी जिसके साथ हैं, और जो अपने कुटुम्बीजनोसे घिरा हुआ अर्थात् परिवारके लोग जिसके साथ साथ चल रहे हैं ऐसा पुण्यवान् राजा अकम्पन नगरसे आकर स्वयवर मण्डपमें अपने योग्य स्थानपर आ विराजमान हुआ ॥२७६-२७७॥ उसी समय महेन्द्रदत्त नामका कञ्चुकी चित्रागददेवके द्वारा दिये हुए आश्चय उत्पन्न करनेवाल बहुत बड़े अलङ्कृत रथपर कन्याको बैठाकर लाया ॥२७८॥ कामको जीतनेवाला हेमागद अपने छोटे भाइयोंसहित समस्त सेनाके समूहको अच्छी तरह सजाकर बड़ प्रेमसे कन्याके रथके चारों ओर चल रहा था ॥२७९॥ जिसके आगे-आगे बजने वाले नगाड़ोंके शब्दोंके आघातसे दिशारूपी कन्याओंके कणपूर हिल रहे थे, जिसपर अच्छी तरह लगे हुए छत्रकी छिद्ररहित छायासे सूर्य भी ढक गया था और जो राजाओंके नेत्रोंसे पूजी जा रही थी अर्थात् समस्त राजा लोग जिसे अपने नेत्रोंसे देख रहे थे ऐसी सुलोचनाने, चक्रवर्ती के दिग्विजयसे लौटनेपर जिस प्रकार लक्ष्मी अयोध्यामें प्रवेश करती ह उसी प्रकार स्वयवर शालामें प्रवेश किया और वहाँ वह सर्वतोभद्र नामक महलपर चढ़कर कञ्चुकीके द्वारा प्रेरित हो नीलकमलके दलके समान अपने चंचल नेत्रोंके द्वारा राजाओंकी सीचने लगी ॥२८०-२८२॥ जिस प्रकार चातक पक्षी मेघोंके बरसनेसे सन्तुष्ट होती है उसी प्रकार सब राजा लोग सुलोचनाके देखनेसे ही सन्तुष्ट हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि अपने अभीष्ट पदार्थके समागम

१ अत्यथम् । २ कुसुमनिमित्तम् । ३ वामहस्तेन । ४ माकन्दप्रसूनम् । ५ दक्षिणकरेण । ६ परिभ्रमयन् । ७ वसन्त एवानुचरो भूत्यस्तेन समानीत । ८ आजगाम । ९ अकम्पन । १० सुखेन स्थितवत् । ११ निजोचितस्थाने । १२ आश्चययुक्तम् । १३ विचित्राङ्गददेवेन वितीयम् । १४ सद्यन्न कृत्वा । १५ चलत् । १६ स्वयवरशालाम् । १७ मिञ्चति स्म । अयोजयदित्यर्थ । १८ इव । १९ नपा ।

स्वसौभाग्यप्रधानं सर्वान् साधुपालोत्थानुपत्तगम । इत्यादि नगोपिता पुण्या गौरं वा निजिनप्रियाम् ॥
ततः कञ्चुदिनिर्देशाद् बाला लीलाप्रिलोम्बिने । आरुण्य इदं नया न-स्यावान समवानरा ॥२१॥
यस्य यत्र गता स्यादहम् सा नरेवैर कीलिता । तनेऽस्यामवन्ताया गित्ता वा नदनीक्षका ॥२२॥
किङ्किणीरुनशङ्कागारास्य स्य तत । द्यूत इदं हंसे न्यणंरुणं-चामरगोभिनि ॥२३॥
उत्पन्नपितृकेनुवाहु नीम्पन्पिणाम् । साक्षादपहवाद्धाने इत्यन्तमिव सन्तनम् ॥२४॥
पुनरध्यास्य हज्जन्मप्रियेय इदमप्रिया । मुक्ताभपाप्रभाम ये नारदीय नडिल्लता ॥२५॥
वीज्यमाना त्रिमुष्पन्तिमामागत्यचामरे । तनाना दृष्टिदोषान वा पुनरिदं रं मुतु ॥२६॥
अवधूत पुगनन समप्रति स्वीकृतोऽनया । प्रयोजनदधान प्राज्ञ प्रागोऽपि शमिगुणत ॥२७॥
अस्याग्रह दवान्न मय मयाद्वयज्ञत । विचारमकरोन स्वेर भयो श्रूनेप्रयत्नजम् ॥२८॥
मादो यत्नेनयाऽप्येवमेवाभाव प्रजामि स्मि । इत्यनन्तोऽप्यनन्तस्य न्य मन्ये सा अनु यत ॥२९॥
लक्ष्मी सा सर्वभोग्याभ्युद निर्व्यन्तेन मुच्यते । जितान्नानिमानेपा न्यरुच्ये जयमाप्स्यति ॥३०॥

होनेपर किसे आनन्द नहीं होता है ? ॥२८॥ वह मुलोचना भी अपने शोभायुक्त वशने आये हुए समस्त राजाओंको देखकर अन्यन्त ननुष्ट हट गयी थी ठीक ही है क्योंकि जिन प्रकार मनुष्योंको जीतनेवाले पुष्पोका नृग्वीरपना प्रजगनीय होता है उसी प्रकार मनुष्योंका शोभाग भी प्रशसनीय होता है ॥ २८८ ॥ तदनन्तर वह मुलोचना लीलापूर्वक अवलोकनके द्वारा उन राजाओंका हृदय अपनी ओर आकर्षित कर कन्चुकीके कहनेसे उग महलमें नीचे उतरी ॥२८५॥ जिसकी दृष्टि उसके गरीबपर जहाँ पड़ गयी थी वह मानो वही वीलित गी हो गयी थी तथा उसके नीचे उतर आनेपर वे राजा लोग उसे न देखकर बहुत ही खेदग्रस्त हुए थे ॥२८६॥ तदनन्तर, जो कामदेवकी विद्याके मगान भवके हृदयको प्रिय है, जो मोनियोंके आभूषणोंकी कान्तिके बीचमें शरदन्नतुकी विजलीकी लताके समान जान पड़ती है और जिसपर मानो मनुष्योंकी दृष्टिके दोषोंको दूरसे ही दूर करते हुए, तथा चन्द्रमाके साथ स्पर्धा करनेवाले और हसोके पखोके समान निर्मल चमर बार-बार टूराये जा रहे हैं ऐसी वह मुलोचना, जो छोटी-छोटी घंटियोंके रुणझुण शब्दोंमें रमणीय है, कानोंके समीप लगे हुए सोनेके चमरोसे शोभायमान बड़े-ऊँचे घोड़े जिसमें जुते हुए हैं, नीचे-ऊपरको उड़ती हुई ध्वजाएँ ही जिसकी भुजाएँ हैं और जो उन उड़ती हुई ध्वजाओंसे ऐसा जान पड़ता है मानो कुरूप मनुष्यका साक्षात् निरन्तर निराकरण ही कर रहा हो और मुरूप (मुन्दर) मनुष्योंको साक्षात् बुला रहा ही हो' ऐसे रथपर सवार हुई ॥ २८७-२९० ॥ मुलोचनाने कामदेवका पहले तो तिरस्कार किया था परन्तु अब उसे स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष हटाये हुयेको भी अपने प्रयोजनके वश फिर स्वीकार कर लेते हैं ॥२९१॥ पिशाचके समान शीघ्र ही इसके सब अंगोंमें प्रविष्ट हुआ कामदेव अपनी इच्छानुसार बार-बार भीह नेत्र और मुखमें उत्पन्न होनेवाले विकारोंको प्रकट कर रहा था ॥ २९२ ॥ यदि मैं शरीररहित होता तो क्या इस तरह इस मुलोचनाके साथ एकीभावको प्राप्त हो सकता ? अर्थात् इसके शरीरमें प्रवेश कर पाता ? ऐसा विचार करता हुआ कामदेव मानो अपने शरीररहितपनेको ही अच्छा समझता था ॥ २९३ ॥ वह

- १ अवलोकने । २ अवतरति स्म । ३ यस्मिन्नवयवे । ४ ते तस्या-ल० । तत् कारणात् । ५ अवतरण कुर्वन्त्या सत्याम् । ६ ता कन्यकामीक्षमाणा न बभूवुरित्यर्थ । ७ धृतम् । ८ प्रसिद्धे । ९ रूपहीनाना रूपवता च । १० क्रमेण निराकरण चाह्वान च । ११ एवविध रथमध्यास्येति सम्बन्ध । १२ कामविद्या । १३ मरालपक्ष । १४ निराकृत । १५ प्रतिक्षिप्त । १६ मशरीर । १७ शिष्टमिति । १८ अनङ्गेन विकलाङ्गेनेति ध्वनिः । १९ निराकृत्य । २० विजय जयकुमार च ।

वदग्रहण लक्ष्मीवान् स्यान्न वा धारिभेभुव^१ ।^२ अस्या करग्रहा यस्य तस्य लक्ष्मी कर स्थिता ॥२९५॥
 लावण्यमम्बुधी पुंसु^३ स्त्राण्यस्यामय समृतम्^४ । मयाप्ता सरिताः सर्वास्तमतां सवपार्थिवा ॥२९६॥
 समस्तनेत्रसपीतमप्यस्या वधततराम् । लावण्यमम्बुधिर्यथा^५ श्रिया बहुतु^६ तल्लयम् ॥२९७॥
 रत्नाकरत्वदुग्धमम्बुधि धयत धृथा । कन्यारत्नमिदं यत्र तयोरतद्^७ विराजत ॥२९८॥

प्रसिद्ध लक्ष्मी सबके द्वारा उपभोग करने योग्य है और रति शरीररहित कामदेवक द्वारा भागी जाती है परन्तु यह सुलोचना कामदेवको जीतनेवाली इन सभी राजाओंका तिरस्कार कर जय अर्थात् विजय अथवा जयकुमारको प्राप्त होगी । भावाथ — ससारम दो ही प्रसिद्ध स्त्रियाँ हैं एक लक्ष्मी और दूसरी रति । इनमेंसे लक्ष्मी तो सवपुरुषाक द्वाग उपभोग योग्य होनेक कारण पुश्चलीके समान निन्द्य है और रति शरीररहित पिशाच (पक्षम कामदेव) क द्वारा उपभोग योग्य होनेसे दूषित है परन्तु यह सुलोचना अपनी शोभासे कामदेवको जीतनेवाली इन सभी राजाओंका तिरस्कार कर जय—जीत (पक्षम जयकुमार) को प्राप्त होगी अर्थात् यह सुलोचना लक्ष्मी और रतिसे भी श्रेष्ठ है ॥ २९४ ॥ समुद्रपर्यन्त इस पृथिवीका करग्रह अर्थात् टक्स वसूल करनेसे कोई पुरुष लक्ष्मीवान् हो अथवा नहीं भी हो परन्तु जिसके इस सुलोचनाका करग्रह अर्थात् पाणिग्रहण होगा लक्ष्मी उसके हाथम ही स्थित समक्षनी चाहिए ॥ २९५ ॥ पुरुषोंमें लावण्य (खारापन) समुद्रमें है और स्त्रियाम लावण्य (सौ दय) इसी सुलोचनाम भरा हुआ है यही कारण है कि सब नदियाँ समुद्रके पास पहुँची ह और सब राजा लोग इसके भरा हुआ है यही कारण है कि सब नदियाँ समुद्रके पास पहुँची ह और सब राजा लोग इसके समीप आ पहुँचे है । भावाथ—लावण्य शब्दके दो अर्थ ह — एक खारापन और दूसरा सौन्दय । यहाँ कविने दोनोंमे शाब्दिक अभेद मानकर निरूपण किया है । श्लोकका भाव यह है — लावण्य पुरुषोंमें भी होता है और स्त्रियोंमें भी परन्तु उसके स्थान दोनोंम नियत ह । पुरुषका लावण्य समुद्रम नियत है और स्त्रीका लावण्य सुलोचनाम । पुरुषके लावण्यके प्रति स्त्रियोंका आकर्षण रहता है और स्त्रियोंके लावण्यके प्रति पुरुषका आकर्षण रहता है । यही कारण है कि नदीरूपी स्त्रिया आकर्षित होकर समुद्रके पास पहुँची ह और सब राजा लोग (पुरुष) सुलोचनाके प्रति आकर्षित होकर उसके समीप आ पहुँचे ह ॥ २९६ ॥ इसका लावण्य सबके नेत्रोंके द्वारा पिया जानेपर भी बढ़ता ही जाता है परन्तु समुद्रको तो लक्ष्मीने छोड़ दिया है इसलिए वह उसे कैसे धारण कर सकता है ? भावाथ — ऊपरके श्लोकम लावण्यके दो स्थान बतलाये थे — एक समुद्र और दूसरा सुलोचना । परन्तु यहाँ लावण्य शब्दका केवल सौन्दय अर्थ हृदयम रखकर कवि समुद्रम उसका अभाव बतला रहे है । यहाँ कवि लावण्य उस पदार्थको कह रहे है जिसकी निरन्तर वृद्धि ही होती रहे और जिसे देखकर दर्शक उसे कभी छोड़ना न चाहे । कविका मनोगत लावण्य सुलोचनामें ही था क्योंकि उसे देखकर नेत्र कभी उसे छोड़ना नहीं चाहते थे और निरन्तर उसकी वृद्धि होती रहती थी । समुद्रमे लावण्यका होना कविको इष्ट नहीं है क्योंकि उसे लक्ष्मीने छोड़ दिया है यदि उसमें वास्तवम लावण्य होता तो उसे लक्ष्मी क्यों छोड़ती ? (लक्ष्मी-द्वारा समुद्रका छोड़ा जाना कविसम्प्रदायमें प्रसिद्ध है ।) ॥२९७॥ समुद्र अपने रत्नाकरपनेका छोटा अहंकार व्यथ ही धारण करता है क्योंकि जिसके यह कन्यारूपी रत्न है उही राजा अकम्पन और रानी सुप्रभाके यह रत्नाकरपना सुशोभित होता है ॥२९८॥

१ लक्ष्मी । २ सुलोचनाया । ३ पुरुषपु । ४ परिपुण्यम । ५ यत् कारणात् । ६ त समुद्रम् । एताम् सुलोचनाम् । ७ लावण्यम् । ८ ययो । ९ अकम्पनसुप्रभयो । १० रत्नाकरत्वम् ।

इति स्तुता मय्याभाष्यभाष्य रूपाभिरुचिता । जने न्ययवर्गगतमानमष्ट गोमिनीये या ॥२००॥
 परिभ्रुतिद्विधा यात्र भाषिनी केति या नया । प्रान्तिगोक्तान्तरे केचिदस्य राजकमन्वभूत ॥२००॥
 स्थित्वा महेंद्रवत्तोऽपि शतमालाधरो वुरि । स्व प्रचोत्थासाम्य प्रतिविगायराश्रितान् ॥२०१॥
 दक्षिणोत्तरयो श्रेण्योर्नमोऽपि प्रिनमः सुतो । पति सुगनिगोऽवमित सुप्रिनमि विप्र ॥२०२॥
 अन्येऽमी च नगार्थाना विगायिस्मशालिन । पति वृणात्प्र न्य चैषु स्वेन्द्रानेन्द्र पश्य ॥२०३॥
 इति कञ्जकिनिदिष्ट नामाभाष्य प्रथक् प्रथक् । कणेष्टयाययान मयान् रचिदिष्टा हि देहिनाम् ॥२०४॥
 पश्चान् मय्यानिरीक्ष्यपा कञ्जिनु विपरिपते । तथेति मयान्तस्य हि वाजानाप्रलम्भते ॥२०५॥
 पश्चाज्जगत्सुमन्त्रजानि तद्वान् न्ययमन्पुर । स्वेन्द्रोदये राजा मय्यते नि विरीरगा ॥२०६॥
 उच्चाद्राष्ट्रद्वये निग्नमभिभूमि घर रय । कञ्जुर्मी कययामाय नामनिग्नानृपाग्नदा ॥२०७॥
 निराहृत्यार्कं व्यादीन याऽनेया न्ययमानमष्ट । हि वा जेषान् द्रुमाभूत मयो मयुर्ग यया ॥२०८॥
 गृहीतप्रग्रहन्तत्र कञ्जुर्मीचित्तविचिता । प्रचो व्यापाभ्यामाम्य जयव्यावर्णनं प्रति ॥२०९॥

इस प्रकार लोग जिनकी स्तुति कर रहे हैं ऐसे अपने गौभाग्य भाग्य और रूप आदिने भगे हुई वह सुलोचना लक्ष्मीके समान स्वयंवर भवनमें आ पहुँची ॥२६९॥ उन मनारमें पद्मभक्ति दो प्रकारकी है—एक पद्मभक्ति अर्थात् उत्कृष्ट सम्पद् और दूसरी पद्मभक्ति अर्थात् पद्मभव—तिरस्कार, जो उन दोनोंमें न जाने कौन सी पद्मभक्ति अथवा पद्म-भक्ति होनेवाली है ऐसा विचार करता हुआ राजाओका समूह उन समय प्रेम और जोकके बीच किसी अव्ययन रमका अनुभव कर रहा था ॥२७०॥

रत्नोंकी मालाको धारण करनेवाला महेंद्रदत्त नामका कन्चुकी भी धृगपर बैठकर विद्याधर राजाओकी ओर रथ चलाने लगा ॥३०१॥ और मुलोचनागे कहने लगा कि ये विज-यार्थकी दक्षिण तथा उत्तर श्रेणीके राजा नमि और विनमिके पुत्र हैं। यह लक्ष्मीका स्वामी मुनमि हैं और यह इस ओर मुविनमि हैं ॥३०२॥ विद्या और पराक्रमसे शोभायमान ये और भी अनेक विद्याधरोंके अधिपति विराजमान हैं इनमें-में तू किमी एकको वर अर्थात् पतिरूपसे स्वीकार कर और एक हीमें अपनी इच्छा पूर्ण कर ॥३०३॥ इस प्रकार कचुकीने अलग-अलग नाम लेकर कुछ कहा था उसे कानमें डालकर-मुनकर वह सबको छोड़ती हुई आगे चली सो ठीक ही है क्योंकि प्राणियोंकी रुचि अनेक प्रकारकी होती है ॥३०४॥ यह कन्या सबको देखकर वादमें किसीको वरना चाहती है यह विचारकर विद्याधर लोग ज्योंके त्यों बैठे रहे सो ठीक ही है क्योंकि आशा किसका आश्रय नहीं लेती है ? ॥३०५॥ जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे कमल विकसित हो जाते हैं और अस्त होनेसे मुरझा जाते हैं उसी प्रकार राजाओंके मुखरूपी कमल मुलोचनाके रथ सामने आनेसे पहले तो प्रफुल्लित हुए किन्तु रथके चले जानेपर वादमें मुरझा गये थे सो ठीक ही है क्योंकि संसारकी स्थिति ही ऐसी है ॥३०६॥ तदनन्तर वह रथ विद्याधरोंकी ऊँची भूमिसे नीचे भूमिगोचरियोंकी ओर उतरा, उस समय वह कचुकी नाम ले लेकर राजाओंका निरूपण करता जाता था ॥३०७॥ जिस प्रकार वसन्तऋतुमें कोयल सब वृक्षोंको छोड़कर आमके पास पहुँचती है उसी प्रकार वह अजेय मुलोचना अर्क-कीर्ति आदि राजाओंको छोड़कर जयकुमारके पास जा पहुँची ॥३०८॥ उसी समय चित्तकी

१ पुण्य । २ लक्ष्मी । ३ अवज्ञा सम्पच्च । पराभूति-ल०, म०, अ०, प०, स०, इ० । ४ अवज्ञासम्पदो ।
५ भविष्यत् । ६ कञ्चुकी । ७ रथमुखे । ८ निजवाञ्छाम् । ९ अतिक्रान्तवती । १० वरितुमिच्छति ।
११ स्नानान्यभवन् । १२ उन्नतप्रदेशात् । १३ अगमत् । १४ भूचराणामभिमुखम् । १५ वृताश्वरज्जु ।

प्रदीप स्वकुलस्थाय प्रभु सोमप्रभमात्मज । आमानुष्याहमर्द्धा^१ जयाऽयमनुजंयुत ॥३१०॥
 न रूपमस्य व्याघर्ष्यं तद्वत्तद्वर्ति^२ म मथश्च^३ । स^४ दर्पणोऽपणीय किं करकञ्चणदत्तन ॥३११॥
 जित्वा मेघकुमारारयानुत्तरे भरत सुरान् । सिंहनाद कृताऽमन जिततन्मघनिस्स्वनः^५ ॥३१२॥
 वीरपट्ट^६ प्रवध्यास्य स्वभुजाभ्यां समुद्रतम् । न्यधापि निधिनायेन हृद्वा मघस्वरामिधा ॥३१३॥
 आत्मसम्यग्गुणैशुक्त समस्तभ्रामिगासिकै^७ । प्रज्ञाभ्याहविशपैश्च^८ ततोऽयमुदितोदित ॥३१४॥
 चित्र जगत्त्रयस्यास्य गुणा सरय^९ सांप्रतम् । व्यावृता^{१०} मवभावन^{११} शव भायानुरञ्जन^{१२} ॥३१५॥
 अयमकोऽस्ति दापोऽस्य चतस्र सन्ति धापित । आ कीर्तिर्वीरलक्ष्मीश्च धाग्दधा चानियल्लभा ॥३१६॥
 जितमघकुमारोऽयमक प्राक्^{१३} त्वजघऽधुना । व्युत्तथैव हृद्वालक्ष्य^{१४} यासहार्याकृत स्मर ॥३१७॥
 बलिनोयुवयोमभ्य धतमानो जिगीयता^{१५} । द्वैधीभाव^{१६} ममापन्न याद्गुण्यनिपुण स्मर ॥३१८॥
 कार्तिः कुचलयाह्लादी पद्माह्लादी प्रभाऽस्य हि । सूर्याचन्द्रममा तस्मादनन हतशक्तिकौ ॥३१९॥

व्रातको जाननेवाला कचुकी घोड़ोंकी रास पकड़कर जयकुमारका वणन करनेके लिए अपने वचनोको यापुत करने लगा अर्थात् जयकुमारके गुणाका वणन करने लगा ॥३०९॥ उसने कहा कि यह श्रीमान् स्वामी जयकुमार है, यह अपने कुलका दीपक है, महाराज सोमप्रभका पुत्र है और उत्साहके भेदोके समान अपने छोटे भाइयोसे आवृत है—घिरा हुआ है ॥३१०॥ काम देवको तिरस्कृत करनेवाला इसका यह रूप तो वणन करने योग्य ही नहीं है क्योंकि हाथका वक्त्र देखनेके लिए क्या दपण दिया जाता है ? ॥३११॥ इसने उत्तर भरतक्षेत्रम मेघकुमार नामके देवोंको जोतकर उन देवोंके कृत्रिम बादलोंकी गजनाको जोतनेवाला सिंहनाद किया था ॥३१२॥ उस समय निधियोंके स्वामी महाराज भरतने हर्षित हाकर अपनी भुजाओं-द्वारा धारण किया जानेवाला वीरपट्ट इसे बाधा था और मेघस्वर इसका नाम रखा था ॥३१३॥ यह आत्माके समीचीन गुणोंसे युक्त है तथा आदरणीय उत्तम पुरुषोंके साथ सदा सगति रखता है इसलिए बुद्धि और विशय उत्साहोके द्वारा यह श्रेष्ठामें भी श्रेष्ठ गिना जाता है ॥३१४॥ यह भी आश्चर्यकी बात है कि इसके गुण तीनों लोकोकी प्रसन्न कर अब तेरे अन्त करणको अनुरक्त करनेके लिए पूण रूपसे लौटे हैं । भावार्थ—इसने अपने गुणोंसे तीनों लोकोके जीवोंको प्रसन्न किया है और अब तुझ भी प्रसन्न करना चाहता है ॥३१५॥ यदि इसमें दोष है तो यही एक कि इसके निम्नलिखित चार स्त्रियाँ हैं श्री कीर्ति, वीरलक्ष्मी और सरस्वती । ये चारो ही स्त्रियां इसे अत्यन्त प्रिय हैं ॥३१६॥ जिसने पहले अकेले ही मेघकुमारको जोत लिया था ऐसा यह जयकुमार इस समय तुझे जोतनेके लिए धैर्यरहित-सा हो रहा है अर्थात् ऐसा जान पड़ता है मानो इसका धय छूट रहा हो यही कारण है अब इसने कामदेवको अपना सहायक बनाया है ॥३१७॥ एक दूसरेको जोतनेकी इच्छा करनेवाले तुम दोनों बलवानोंके बीचम पड़ा हुआ यह संधि विग्रह आदि छहो गुणोंमें निपुण कामदेव द्वैधीभावकी प्राप्त हो रहा है अर्थात् कभी उसका आश्रय लेता है और कभी तेरा ॥३१८॥ इसकी कीर्ति तो कुचलय अर्थात् रात्रिम खिलनेवाले कमलोंकी (पक्षम महीमण्डलकी) आनन्दित करती है और प्रभा पक्ष अर्थात् दिनम खिलनेवाले कमलोंकी (पक्षम पद्मा—लक्ष्मीकी) विकसित

- १ शक्तिविशेष । २ दुष्यमानम् । ३ अतिक्रान्तममथम् । ४ प्रसिद्ध । ५ निर्जितमघकुमारघनध्वनि । ६ प्रगुध्यास्य ल० । ७ अभिगमाह । आदरणीयरित्यर्थ । ८ तत् कारणात् । ९ आत्मयनुरक्तं विधाय । १० अधुना । ११ व्यापारमनुभवम् । १२ सकलस्वरूपेण । १३ चित्तानुरञ्जन । भाव सत्ता स्वभावमि प्रायचष्टात्मजमनु हृदयमिधानात् । १४ दशनीय । १५ यत् कारणात् । १६ परस्परं जतुमिच्छतो । १७ उभयावलम्बनत्वम् ।

कीर्तिविहङ्गना लङ्कारनिवृत्ता मरुत्तना । जीनेतराणि ज्ञानेनैव लब्ध्वने क्षणविराजते ॥३०॥
 नतस्त्वयि प्रयोन्यर्गालादिगुणमाज्यन्म । प्रानिर्लेतेन प्रपुण्या प्रयुद्धान् कल्पयति ॥३१॥
 युवाभ्या निजित काम, सप्रत्यभ्यन्तरीकृत । स प्रामपनयाया-उदभिर्निभश्चिन्तोऽपरि ॥३२॥
 निष्ठुर जृम्भतेऽमुष्मिन् भयान्निपि स्मर । मन्वेय न्या गिय भयो मतेषु नटमन्सर ॥३३॥
 विन्यातविजय श्रीमान्न यानमात्रेण निजित । प्रयाऽयमेन पृथात्र जयो न्यागमनन्तर ॥३४॥
 प्राचकृत्य गले स्वमालया दृग्गर्जितम् । जयलङ्कारान्तवेदान्तु नक्षमेन करे ह्य ॥३५॥
 इति तस्य वच श्रुत्या स्मरणाऽगृण्यवेदिनः । जनेत्रिगलितप्रोडा लोललीलापलोकन ॥३६॥
 तदा जन्मान्तरस्तेनैवाधुर्या सुन्दरादिति । तुन्दमाया गुणान्नन्य आरणा पुण्यमायक ॥३७॥

१ वीरलक्ष्मी । २ जयकुमारस्य । ३ वा युवयो वामव्रजमाया - ल० । ४ विश्वासित । ५ जये । ६ गमन-
मात्रेण । ७ बन्धहेतुकमानुकूल्य कृत्वा, बद्ध्वैत्यर्थ । ८ तत् कारणात् । ९ लज्जा । १० चक्षुषा कृष्यमाणा ।
११ कुन्दवद् भासमाना । १२ श्रवणज्ञानविषया । श्रवणहिता वा ।

इत्यमि स्थानादया^१ समुत्तिष्ठयावरापिता । रत्नमाला ममादाय कन्या कञ्चुकिन करान् ॥३३८॥
 अवन्नाद् घञ्चुरो तस्य कण्ठेऽतिप्रेमनिभरा । मा वाचकात् समध्यास्य यक्षा^२स्मीरिवापरा ॥३३९॥
 सहसा सवतूर्याणामुदतिष्ठमहाध्वनि । ध्यानयन्निव द्वि^३याः क^४यामामा^५यमुत्तयम् ॥३४०॥
 वस्त्ररारिजवासिन्या^६ नरविद्याधरशिनाम् । भिया जयमुत्ताम्माजभाभित वा तदायभात् ॥३४१॥
 गताशा^७वारयो म्लानमुत्ताम्माजान्तरपलधिय । समूचरन्तुषा कष्टमागन् शुष्यन्मरस्ममा ॥३४२॥

मालिनीन्ठ^८द

अभिमतफलसिद्धया यदमानप्रमोदा निजदुहि^९नृममत शक्र पुराधाय^{१०} पूज्यम् ।

जयममरतरु वा^{११} कटरयलीसनाथ^{१२} नगरमविशदु^{१३}घैनाथयशाधिनाथ ॥३४३॥

शार्दूलविमोहितम्

आघोऽय^{१४} महिते स्वयंवरविधौ^{१५} यद्भाग्यमामाग्यभाग्

यस्माद्गा^{१६}रसग^{१७}द्ववक्त्रनजध्रीवारयापिद्वयतः ।

मालाम्लानगुणा^{१८} यतोऽस्य^{१९} शरण मन्दारमालायते

तत्त्वरावधिवा^{२०} प्रमस्थ^{२१} विपुल विध^{२२} यशा व्यश्नुत^{२३} ॥३४४॥

वसन्ततिलका

भास्वध्रमाप्रसरणप्रतिधुदपद्य^{२४} प्राप्तादय प्रतिविधाय^{२५} परप्रभावम्^{२६} ।

य^{२७}धुप्रजाकुमुदव^{२८}पुरचिर्यकान्तिर्माति स्म मानुशशिनोयिजयो जयोऽयम् ॥३४५॥

हुई जयकुमारकी सुन्दर आकृति, कुन्दके फूलके समान सुने हुए उसके गुण और कामदेव इन सबने उठाकर जिसे रथसे नीचे उतारा है ऐसी कन्या सुलोचनाने कंचुकीके हाथसे रत्नमाला लकर तथा अतिशय प्रेम निमग्न होकर, वह मनोहरमाला उस जयकुमारके गलमे डाल दी । उस समय वह माला जयकुमारके वक्ष स्थलपर अधिरूढ हो दूसरी लक्ष्मीके समान सुशोभित हो रही थी ॥३२६-३२९॥ उस समय अकस्मात् सब बाजोंकी बड़ी भारी आवाज ऐसी उठी थी मानो दिशारूपी कयाओके लिए सुलोचनाका असाधारण उत्सव ही सुना रही हो ॥३३०॥ उस समय जयकुमारका मुखरूपी कमल बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था और ऐसा जान पड़ता था मानो भूमिगोचरी तथा विद्याधर राजाओके मुखरूपी कमलोंपर निवास करनेवाली लक्ष्मी उसी एकके मुखपर आ गयी हो ॥३३१॥ जिनका आहारूपी जल नष्ट हो गया है और जिनके मुखरूपी कमल तथा नेत्ररूपी उत्पलोंकी शोभा म्लान हो गयी है ऐसे भूमिगोचरी और विद्याधर राजा सूखे सरोवरके समान बड़े ही दुखी हो रहे थे ॥३३२॥ अभीष्ट फलकी सिद्धि होनेसे जिसका आनन्द बढ़ रहा है ऐसा उत्कृष्ट नाथवशका अधिपति राजा अकम्पन, कल्पलतासे सहित कल्पवृक्षके समान पुत्रीसे युक्त पुज्य जयकुमारको आगे कर अपने उत्कृष्ट नगरम प्रविष्ट हुआ ॥३३३॥ चूँकि भाग्य और सोमाग्यको प्राप्त होनेवाला यह जयकुमार स्वयंवरकी सम्माननीय विधिमें सबसे पहला था, भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओ के मुखकमलोंकी शोभारूपी वीरागनाओंसे घिरा हुआ था और अम्लानगुणोंवाली माला उसकी शरणम आकर कल्पवृक्षोंकी मालाके समान आचरण करने लगी थी, अतएव उसका बहुत बड़ा निमल यश कल्पान्तकाल तक समस्त संसारम व्याप्त रहेगा ॥३३४॥ जिसकी देदीप्यमान प्रभाके प्रसारसे कमल खिल उठते थे, दूसरों (शत्रुओ अथवा नक्षत्र आदिकों) के प्रभावका तिरस्कार कर जिसका उदय हुआ था और जो भाईबन्धु तथा प्रजारूपी कुमुदोंकी

१ समुद्रतय । २ मुखकमलनिवासिनी । ३ गतास्यवारण ट । विगतमुखरसा । ४ पुत्री । ५ अग्रे कृत्वा । ६ इव । ७ सहितम् । ८ आघोऽय इ प० अ० स । ९ यत् कारणात् । भाग्य पुण्य । १ यस्मात् कारणात् । ११ यस्मात् कारणात् । १२ जयस्य । १३ परित्राणे गृहे । १४ तस्मात् कारणात् । १५ कल्प पश्यन्तम् । १६ निमलम् । १७ अगत् । १८ व्याप्नोति । १९ प्रबुद्धलक्ष्मी । विकसितकमल । २० निराकृत्य । २१ धनुषमयम् । नक्षत्रान्समूहय च । २२ बन्धवन्ध प्रजावन्ध बन्धुप्रजा बन्धुप्रजा एव कुमुदानि तेषा बन्धवन्ध ।

चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ दुमपणो नाम दुष्टस्तस्या सहिष्णुक । सर्वानुदापयन् पापा साऽककारयतुजायक ॥१॥
 अकम्पन रत्न क्षुद्रो वृथैश्वर्यमदोद्धत । भृषा युष्मान् समाहूय श्लाघमान इरसपदम् ॥२॥
 पूवमथ समालोच्य मालामासअयज्य । पराभूति विधित्सुन स्थायिनामायुगा तरम् ॥३॥
 इति प्रमाण संप्राप्य सर्वाङ्ग चक्रिण सुतम् । इह पट्यन् इरयानां स्वामिनीं स्व पिता च त ॥४॥
 रत्न रत्नेषु कस्यैव तत्राप्यपच क-यका । तत्त्वा स्वगृहमानीय दीष्टा पश्यास्य दुमत ॥५॥
 जयो नामाग्न कस्तस्मै दत्तवान् मृत्युचादित । तनागतोऽस्मि दाष्टस्य तद्वत्तत् सोढुमक्षमः ॥६॥
 प्राकृतोऽपि न सोढव्य प्राकृतैरपि किं पुन । स्वात्सौ श्रीसमुद्भूतो मानभद्रा मनस्विमि ॥७॥
 तदादिश दिशाम्यस्मै पद वैवस्वतास्पदम् । दिशाम्यादक्षमाग्रेण समाला तऽपि कस्यकाम् ॥८॥
 इयसाध्वी क्षुध भन्तु स्वचाचैवास्जत् रत्न । सदसत्कायनिवृत्ता शक्ति सदसतो समा ॥९॥
 तद्वच पवन प्रौढक्रोधधूमध्वजारुण । भ्रमद्विलोचनाद्गार क्रुद्धामिसुरसन्निभ ॥१०॥

अथानन्तर—दुमपण नामका एक दुष्ट पुरुष राजकुमार अककीर्तिका सेवक था । वह जयकुमारके उस वैभवको नहीं सहन कर सका इसलिए उस पापीने सब राजाओंको इस प्रकार उत्तेजित किया । वह कहने लगा कि अकम्पन दुष्ट है नीच है, झूठमूठके ऐश्वर्यके मदसे उद्धत हो रहा है अपनी सम्पदाओंकी प्रशंसा करते हुए उसने व्यथ ही आप लोगोको बुलाया है । वह तुम लोगोका दूसरे युग तक स्थिर रहनेवाला अपमान करना चाहता है इसलिए उसने पहले से सोच विचारकर जयकुमारके गलमें माला डलवायी है, इस प्रकार कहता हुआ वह दुमपण लज्जित हुए चक्रवर्तिक पुत्र अककीर्तिके पास आया और कहने लगा कि इन छहों खण्डोंमें उत्पन्न हुए रत्नोंके दो ही स्वामी हैं एक तू और दूसरा तेरा पिता ॥१-४॥ रत्नोम कन्या ही रत्न है और कन्याओंमें भी यह सुलोचना ही उत्तम रत्न है इसलिए ही अकम्पनने तुझे अपने घर बुलाकर तेरा तिरस्कार किया है जरा इस दुष्टकी दुष्टताको तो देखो ॥ ५ ॥ भला, जय कुमार है कौन ? जिसके लिए मृत्युसे प्रेरित हुए अकम्पनने अपनी पुत्री दी है । मैं यह दुराचार सहन करनेके लिए असमर्थ हूँ इसलिए ही आपके पास आया हूँ ॥ ६ ॥ जब कि नीच लोग भी छोटे-छोटे मानभगको नहीं सहन कर पाते हैं तब भग आप जैसे तेजस्वी पुरुष स्त्रीसे उत्पन्न हुआ मानभग कैसे सहन कर सके ? ॥ ७ ॥ इसलिए मुझ आज्ञा दीजिए मैं आपकी आज्ञा मात्रसे ही इस अकम्पनको यमराजका स्थान दे सकता हूँ और माला सहित वह कन्या आपके लिए दे सकता हूँ ॥८॥ इस प्रकार उस दुष्टने अपने वचनोसे ही अपने स्वामीको दुष्ट क्रोध उत्पन्न कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि अच्छा और बुरा कार्य करनेके लिए सज्जन तथा दुजनों की एक-सी शक्ति रहती है ॥ ९ ॥ उस दुमपणके वचनरूपी वायुसे बढी हुई क्रोधरूपी अग्निसे

१ तमसहमाण । २ कोपार्तिन ।
 त्वम् । ३ तेन कारणन । ४ त्वम्
 रित्यय । १ तत् ५
 वैवस्वतोऽन्तक
 १८ प्रबुद्ध ।

१ परिभूतिम् । ४ कन्यारत्नेष्वपि । ५ तां त्वा त० ब । ६ दुष्ट
 १० अथवा तुच्छकायमपि । ९ नीचरपि । नष्टान्वयप्रभव
 दवामि । १३ यमपुरम् । कालो दण्डधर भ्रातृदेवो
 अगमाम् । १६ निष्पत्तौ । १७ सज्जनदुजनयो ।
 कपितानिकुमारभक्ष । क्रधा - क म० ।

तदा सर्वापधाशुद्धी मन्त्री जानपदादिभिः^२ । अनवद्यमतिर्नाम लक्षितो मन्त्रिलक्षणैः^३ ॥२२॥
 धर्ममर्थं यशस्तार ससौष्ठवमनिन्दुरम् । सुविचाय वचो वाय्य पथ्य प्रापनु प्रथक्रम ॥२३॥
 मही व्योम शशी सूर्य सरिद्रोशोऽनिलोऽनल । स्व स्वपिता घना काला जगत्क्षमत्रिधाधिन^४ ॥२४॥
 विपर्यास विपर्येति^५ भवतामनुवतनात् । घटत सृष्टिरपि^६ हि व्यक्त युष्मासु^७ तिष्ठते ॥२५॥
 गुणा क्षमादय^८ सर्वे व्यस्तास्तपु क्षमात्रिपु^९ । समस्तास्त जगद्बुद्धये^{१०} चम्रिणि स्वयि च स्थिताः २६
 व्यव^{११} स्थित काले कचित्तेऽपि क्षमादय । न स कालोऽस्ति य कर्ता प्रच्युतयुवया^{१२} स्थित ॥२७॥
 सृष्टि पितामहनेय^{१३} सृष्टेना^{१४} तत्समपिताम्^{१५} । पाति सम्राट्^{१६} पिता तस्य^{१७} तस्यास्वमनुपालक २८
 देवमानुपवाधाभ्य क्षति कस्यापि या क्षिती । ममवेयमिति स्मृत्या समाधेया^{१८} स्वयैव मा^{१९} ॥२९॥
 क्षतात् त्रायत इत्पासीत् क्षत्रोऽय भरतश्वर । सुतस्तस्मात्सो^{२०} ज्यष्ट क्षत्रियस्त^{२१} तदादिम ॥३०॥
 स्वता न्याया प्रवते^{२२} नूतना य पुरातना । तस्य स्वत्पालिता एव मयन्वन्न पुरातना ॥३१॥

ही राजा लोग उसके सहायक हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि पापक्रियाओंके प्रारम्भम सहायता देनेवाले सुलभ होते हैं ॥२०-२१॥ उस समय जो सब उपधाओंसे शुद्ध है तथा जनपद आदि मन्त्रियोंके लक्षणोंसे सहित है ऐसा निर्दोषबुद्धिवा धारण अनवद्यमति नामका मन्त्री अच्छी तरह विचारकर धर्मयुक्त, अथपूण, यशसे सारभूत, उत्तम, कठोरतारहित, वायव्य और हितकारी वचन कहने लगा ॥२२-२३॥ उसने कहा कि पृथिवी, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, समुद्र, वायु अग्नि, तू तेरा पिता, मेघ और काल ये सब पदार्थ ससारम कल्याण करनेवाले हैं ॥२४॥ आप लोगोम उलट-पुलट होनेसे यह ससारकी सृष्टि उलट-पुलट हो जाती है और आपके अनुकूल रहनेसे अच्छी तरह विद्यमान रहती है इससे स्पष्ट है कि यह सृष्टि आप लोगोपर ही अवलम्बित है ॥२५॥ क्षमा आदि गुण अलग-अलग तो पृथिवी आदिम भी रहते हैं परन्तु इकट्ठ होकर ससारका कल्याण करनेके लिए चक्रवर्तीम और तुझमे ही रहते हैं ॥२६॥ पृथिवी आदि पदार्थ किसी समय अपनी मर्यादासे च्युत भी हो जाते हैं परन्तु ऐसा कोई समय नहीं है जो तुम दोनोंको अपनी मर्यादासे च्युत कर सके ॥२७॥ तुम्हारे पितामह भगवान् वृषभदेवने इस कमभूमिरूपी सृष्टिकी रचना की थी, उनके द्वारा सौंपी हुई इस पृथिवीका पालन इस समय तुम्हारे पिता भरत महाराज कर रहे हैं और उनके बाद इसका पालन करनेवाले तुम ही हो ॥२८॥ इस पृथिवीमे यदि किसीकी भी देव या मनुष्यवृत्त उपद्रवोंसे कुछ हानि होती हो तो 'यह मेरी ही है' ऐसा समझकर आपको ही उसका समाधान करना चाहिए ॥२९॥ जो क्षत अर्थात् संकटसे रक्षा करे उसे क्षत्र कहते हैं भरतेश्वर सबकी रक्षा करते हैं इसलिए वे क्षत्र हैं और तुम उनके सबसे बड़े औरस पुत्र हो इसलिए तुम सबसे पहले क्षत्रिय हो ॥३०॥ इस ससारमें नवीन वायु तुमसे ही प्रवृत्त होते हैं और जो पुरातन अर्थात् प्राचीन है वे तुम्हारे द्वारा पालित होकर ही पुरातन कहलाते हैं । भावार्थ-आपसे नवीन न्याय भागकी प्रवृत्ति

१ धर्मार्थकामभयपु ग्याजन परचित्परीक्षणमपधा तथा शब्द । उपधा धर्मधर्म्यत्परीक्षणम् इत्यभिधानात् ।
 २ जनपदभवनपुपुरजना । लोकस्य शोभकारिण । ४ विपर्यासमेति । ५ जगत्सृष्टि । ६ युष्मासु
 महीप्रभृतिषु प्रकाशते । ७ । ८ विकला । एवं कस्मिन्नैकश
 एवत्यथ । ९ । १० । ११ प्रच्युता भवन्ति । १२ भरताक
 कीर्त्यो । १३ सृष्टेना । १४ सृष्टा तां अ० स० ।
 सृष्टेता । १५ चक्री । १६ सृष्ट । १७ निवतनीया ।
 क्षति

तदा सर्वोपधाशुद्धौ मन्त्री जानपदादिभिः^१ । अनयद्यमतिर्नाम लक्षितो मन्त्रिलक्षणैः^२ ॥२३॥
 धर्ममध्य यशस्सारं ससौष्ठवमनिष्टुरम् । सुविधाय यथो न्याय्य पथ्य प्राप्तु प्रचक्रम ॥२३॥
 मही ध्योम शशी स्य सरिदीशोऽनिलोऽनल । स्व ररपिता घनाः कालो जगक्षेमविधायिनः^३ ॥२४॥
 विपर्यासे विपर्येति^४ भयतामनुवतनात् । यतत सृष्टिर्या^५ हि ज्यन युष्मासु^६ तिष्ठते ॥२५॥
 गुणा क्षमादय^७ सर्वे^८ ज्यस्तास्तपु क्षमादिपु^९ । समस्तास्ते जगद्बुद्धयै^{१०} चक्रिणि त्वयि च स्थिता २६
 च्यवत^{११} स्थित्यस्त काले ऋचिसेऽपिक्षमादय । न स कालोऽस्ति य कर्ता प्रच्युतयुवयो^{१२} स्थित ॥२७॥
 सृष्टि पितामहनेय^{१३} सृष्टेना^{१४} तस्समपिताम्^{१५} । पाति सग्राट^{१६} पिता तेऽद्य^{१७} तस्यास्त्वमनुपालक २८
 देवमानुषयाधाम्य क्षति कस्यापि या क्षितौ । ममैवेधमिति स्मृत्या समाधेया^{१८} त्वयैव सा^{१९} ॥२९॥
 क्षतात् त्रायत इत्यासीत् क्षत्रोऽय भरतेश्वर । सुतस्तस्यौरसो^{२०} ज्यष्ट क्षत्रियस्त्र^{२१} तदादिम ॥३०॥
 यत्ता न्याया प्रवतन्त नूतना य पुरातना । तस्यि त्वत्पालिता एव मध-त्वग्र पुरातना ॥३१॥

ही राजा लोग उसवे सहायक हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि पापक्रियाओवे प्रारम्भम सहायता देनेवाले सुलभ होते ह ॥२०-२१॥ उस समय जो सब उपधाओसे शुद्ध ह तथा जनपद आदि मन्त्रियोके लक्षणोंसे सहित ह ऐसा निर्दोषबुद्धिवा धारक अनयद्यमति नामका मन्त्री अच्छी तरह विचारकर धर्मयुक्त अथपूण, यशवे सारभूत, उत्तम, बठोरतारहित, न्यायरूप और हितकारी वचन बहने लगा ॥२२-२३॥ उसने कहा कि पृथिवी, आकाश चन्द्रमा, सूर्य समुद्र, वायु अग्नि, तू, तेरा पिता, मेघ और काल ये सब पदार्थ संसारमे कल्याण करनेवाले है ॥२४॥ आप लोगोमें उलट-पुलट होनेसे यह संसारकी सृष्टि उलट-पुलट हो जाती है और आपके अनुकूल रहनेसे अच्छी तरह विद्यमान रहती है इससे स्पष्ट है कि यह सृष्टि आप लोगोपर ही अवलम्बित है ॥२५॥ क्षमा आदि गुण अलग-अलग तो पृथिवी आदिमे भी रहते हैं परन्तु झूटठे होकर संसारका बर्याण करनेके लिए चक्रवर्तीम और तुझमें ही रहते हैं ॥२६॥ पृथिवी आदि पदार्थ किसी समय अपनी मर्यादासे च्युत भी हो जाते हैं परन्तु ऐसा कोई समय नहीं है जो तुम दोनोंको अपनी मर्यादासे च्युत कर सके ॥२७॥ तुम्हारे पितामह भगवान् वृषभदेवने इस कमभूमिरूपी सृष्टिकी रचना की थी, उनके द्वारा सौपी हुई इस पृथिवीका पालन इस समय तुम्हारे पिता भरत महाराज कर रहे हैं और उनके बाद इसका पालन करनेवाले तुम ही हो ॥२८॥ इस पृथिवीमे यदि किसीकी भी दव या मनुष्यवृत्त उपद्रवोंसे कुछ हानि होती हो तो 'यह मेरी ही है ऐसा समझकर आपको ही उसका समाधान करना चाहिए ॥२९॥ जो क्षत अर्थात् सकटसे रक्षा करे उसे क्षत्र कहते हैं, भरतेश्वर सबकी रक्षा करते हैं इसलिए वे क्षत्र ह-और तुम उनके सबसे बड़े औरस पुत्र हो इसलिए तुम सबसे पहल क्षत्रिय हो ॥३०॥ इस संसारमे नवीन नाय तुमसे ही प्रवृत्त होते ह और जो पुरातन अर्थात् प्राचीन ह वे तुम्हारे द्वारा पालित होकर ही पुरातन कहलाते ह । भावाथ-आपसे नवीन न्याय मार्गकी प्रवृत्ति

१ धर्मविक्रमभयपु व्याजेन परचित्तपरीक्षणमुपधा तया शुद्ध । उपधा धर्मविक्रमभयपु इत्यभिधानात् ।
 २ अनयद्यमभवत्पुत्रजातिभिः । ३ लोचस्य क्षेमकारिण । ४ विपर्यासेति । ५ जगत्सृष्टि । ६ युष्मासु महीप्रभृतिषु प्रकाशते । ७ सात्त्विकगान्तसंज्ञानरातापहरणप्रकाशनादिगुणा । ८ विकला । एवं कस्मिन्मन्त्रिकक्ष एधत्यथ । ९ पृथिव्याकाशादिषु । १० जगद्बुद्धौ प० ल० म० । ११ प्रच्युता भवन्ति । १२ भरताक कीर्त्यौ । १३ पितृपिता आदिब्रह्मणा । पितामह पितृपिता इत्यभिधानात् । १४ सृष्टा तां अ० स० । सृष्टपदा इ प० ल० । १५ आन्विह्यणा विस्तीर्णम् । १६ चक्री । १७ सृष्ट । १८ निवर्तनीया । १९ क्षति । २० उरसि भव । साक्षात्सुत न दत्तपुत्र । २१ क्षत्राज्जात ।

सनातनोऽस्मि मागोऽयं श्रुतिस्मृतिषु आपितः । विवाहविधिभेदेषु वशिष्ठो^१ हि स्वयवर ॥३२॥
यदि स्यात् सर्वमप्राप्त्या^२ कन्यैका पुण्यभाजनम् । अविरोधो^३ व्यधाय्यत्र देवायनो विप्रिच्ये^४ ॥३३॥
मध्ये महाकुलीनेषु^५ ऋचिदेकमभीप्सितम् । मलस्मीकमलस्मीय गुणित गुणदुर्गन्तम्^६ ॥३४॥
विष्प रुपिण चापि वर्णानेऽसौ विधेर्विज्ञान । न तत्र मन्यर कार्यः जपेऽन्यायोऽयमोदशः ॥३५॥
लङ्घ्यते यदि केनापि न्यायो रक्ष्यस्वयैव यः । नेद तत्रोचिन क्वापि^७ पाता स्या पाणिपान्थिक ॥३६॥
मन्त्रकुलाचलन्योर्भा नायमोमान्वयो पुनः । मेरोनिपधनीलौ वा मन्यश्चो^८ पुरणा कृतौ ॥३७॥
मकलक्षत्रियज्येष्ट पज्योऽयं राजराजवत् । अकम्पनमहागजो गजेव^९ ज्योतिषा गर्णः ॥३८॥
निर्विशेष^{१०} पुरोरेन मन्यन भरतेश्वर । पूज्यानिलजुन प्राहुर्मभ्य^{११} त्राशुभावहम् ॥३९॥
पश्य तादृश पुरात्र सोमवशोऽपि स्थ्यते । धर्मतीर्थं भवद्गशाद् दानतीर्थं^{१२} ततो यतः^{१३} ॥४०॥
पुरस्परगणमात्रेण श्लाघ्य चक्र विगा विभोः^{१४} । प्रायो दुस्माधमगिन्द्रौ क्षाघने जयमेव यः^{१५} ॥४१॥
^{१६} एतस्य द्विजये स्वदेष्टुमेवेह पौरुषम् । अनेन^{१७} व कृत प्रेष^{१८} स्मन्त्यो ननु य न्वया ॥४२॥
ज्ञात्वा^{१९} सभाव्यज्ञोऽपि य मान्यो मनुभिर्मतः । शृण्वार स्वया येऽये मावितार्थं किमुच्यते ॥४३॥

चलती है और पुराने न्यायमार्गकी रक्षा होती है ॥ ३१ ॥ विवाहविधिके सब भेदोमे यह स्वय-
वर ही श्रेष्ठ है । श्रुतियो और स्मृतियोंमे कहा गया यह स्वयवर ही सनातन (प्राचीन) मार्ग
है ॥ ३२ ॥ यदि पुण्यके पात्र स्वरूप किसी एक कन्याकी याचना मव मनुष्य करने लग जाये तो
उस समय परस्परका विरोध दूर करनेके लिए विद्वानोंने केवल भाग्यके अधीन होनेवाली डम
स्वयवर विधिका विधान किया है ॥ ३३ ॥ बड़े-बड़े कुलोमे उत्पन्न हुए पुरुषोके मध्यमे वह
कन्या भाग्यवश अपनी इच्छानुसार किसी एकको रवीकार करती है चाहे वह लक्ष्मीरहित हो
या लक्ष्मीरहित, गुणवान् हो या निर्गुण, मुरूप हो या कुरूप । अन्य लोगोको इसमे ईर्ष्या नहीं
करनी चाहिए क्योंकि यह ऐसा ही न्याय है ॥ ३४-३५ ॥ यदि किसीके द्वारा इस न्यायका
उल्लघन किया जाय तो तुम्हे ही इसकी रक्षा करनी चाहिए इसलिए यह सब तुम्हारे लिए
उचित नहीं है । क्या कभी रक्षक भी चोर या शत्रु होता है ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार निपध और
नील कुलाचल मेरुपर्वतके उत्तम पक्ष हैं, उसी प्रकार भगवान् आदिनाथने पहले नाथवश और
चन्द्रवश दोनो ही आपके कुलरूपी पर्वतके उत्तम पक्ष अर्थात् सहायक बनाये थे ॥ ३७ ॥ जिस
प्रकार चन्द्रमा समस्त ज्योतिषी देवोके समूहके द्वारा पूज्य है उसी प्रकार समस्त क्षत्रियोमे
बड़े महाराज अकम्पन भी भरत चक्रवर्तीके समान सबके द्वारा पूज्य है ॥ ३८ ॥ महाराज भरत
इन अकम्पनको भगवान् वृषभदेवके समान ही मानते हैं इसलिए तुम्हे भी इनके प्रति नम्रताका
व्यवहार करना चाहिए क्योंकि पूज्य पुरुषोका उल्लघन करना दोनो लोकोमे अकल्याण करने-
वाला कहा गया है ॥ ३९ ॥ और देखो यह सोमवश भी नाथवशके समान ही कहा जाता है ।
क्योंकि जिस प्रकार तुम्हारे वशसे धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति हुई है उसी प्रकार सोमवशसे दानतीर्थकी
प्रवृत्ति हुई है ॥ ४० ॥ चक्रवर्तीका चक्ररत्न आगे-आगे चलने मात्रसे प्रगसनीय अवश्य है
परन्तु कठिनाईसे सिद्ध होने योग्य कार्योंमे वे प्रायः जयकुमारकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ ४१ ॥
दिविजयके समय इसका पुरुषार्थ ससारमे सबने देखा था । उस समय इसने जो पराक्रम
दिखाया था वह भी तुम्हे याद रखना चाहिए ॥४२॥ जिस योद्धामे गूरवीरपनेकी सम्भावना हो,

१ अतिशयेन वर । २ कृत । ३ - देक समीप्सितम् ल०, म०, अ०, प०, इ०, स० । ४ गुणदरिद्रम् ।
५ रक्षक । ६ मन्सहायी । सत्पक्षती च । ७ चक्रिवत् । ८ चन्द्र इव । ९ समानम् । १० इहामुत्र च ।
११ सोमवशात् । १२ यत कारणात् । १३ चक्रिणः । १४ चक्री । १५ जयस्य । १६ यः ल० । १७ बलानि-
योग । १८ भाविगीर्थ इत्यर्थः ।

विना चक्राद् विना रत्नैर्मोक्षय श्रीस्त्वया तदा । जयात्ते^१ मानुषा^२ निबिदैर्वी पुण्याद्याद्यथा ॥४४॥
 तृणवत्पापि^३ सवाद्यस्तथ नातिरिच कथम् । नाथ दुयशायुच्छेषा लक्ष्म्या साक्षाद्भुजायिता ॥४५॥
 बभ्रुभृत्यक्षयाद्भूयस्तुभ्य चक्रयपि दुष्यति । अधमश्चायुगस्थाय स्वया स्वात् सप्रवर्तितम्^४ ॥४६॥
 परदारामिलापस्य प्राथम्य^५ मा वृथा कृथा^६ । अवश्यमाहताप्यपा न कन्या त भविष्यति ॥४७॥
 सप्रताप यश स्थास्तु जयस्य स्वादहचथा । तथ रात्रिरिवाकृति स्थापि-यत्र मलामसा ॥४८॥
 सधमसन्ममैवेति मा मैस्था साधन युध^७ । बहवो यत्र भूपाला मन्ति तत्पक्षपातिन ॥४९॥
 पुरुषाधत्रय पुष्पिण्टप्याप त-वयाऽर्जितम् । न्यायमार्गं समुल्लङ्घ्य वृथा तर्कि विनाशय ॥५०॥
 अकम्पनस्य सनेशो जय प्रागिव चक्रिण । वीरलक्ष्यास्तुलारोह मुधा त्व किं विधास्यमि ॥५१॥
 ननु न्यायम व-धोस्त^८ बभ्रुपुत्री समर्पिता । उत्सव का पराभूतिरक्षमा^९ऽत्र परामवः ॥५२॥
 कथारत्नानि सन्त्यव बहुन्यन्यानि भूभुजायम् । इह तानि सरत्नानि सर्वाण्यथन^{१०} यामि त ॥५३॥
 इति भोविलतावृद्धिनिधायपि धन पय ।^{११} अघात तच्चेतस क्षाम तसैवस्य वा मृशम् ॥५४॥

राजाओको जानकर उसका भी समान करना चाहिए फिर भला जिसका पराक्रम देखा जा चुका है और जिसने अत्यन्त असाध्य कार्यको भी सिद्ध कर दिया है उसकी तो बात ही क्या है ? ॥४३॥ आगे चलकर जिस समय बिना चक्र और बिना रत्नोके यह लक्ष्मी तुम्हारे उपभोग करने योग्य होगी उस समय तुम्हारी द्वाी सिद्धि जिस प्रकार पुण्य व्रमके उदयसे होगी उसी प्रकार तुम्हारी मानुषी अर्थात् मनुष्योसे होनेवाली सिद्धि जयकुमारसे ही होगी ॥ ४४ ॥ जब कि तृणके समान तुच्छ पुरुषकी भी रक्षा करनी चाहिए यह आपकी नीति है तब राज्य लक्ष्मीके साक्षात् भुजाओके समान आचरण करनेवाला नाथ वश और सोम वश उच्छेद करने योग्य कैसे हो सकते हैं ? ॥४५॥ इन भाइयोके समान सेवकोंका नाश करनेसे चक्रवर्ती भी तुमपर अधिक क्रोध करेगे और युगके अन्त तक टिकनेवाला यह अधम भी तुम्हारे द्वारा खलाया हुआ समझा जायगा ॥४६॥ तुम्हे व्यथ ही परस्त्रीकी अभिलाषाका प्रारम्भ नहीं करना चाहिए क्योंकि यह निश्चय है, यह कथा जबरदस्ती हरी जाकर भी तुम्हारी नहीं होगी ॥ ४७ ॥ जयकुमारका प्रताप सहित यश दिनके समान सदा विद्यमान रहेगा और तुम्हारी मलिन अकीर्ति रात्रिके समान सदा विद्यमान रहेगी ॥ ४८ ॥ ये सब राजा लोग युद्धमें मेरी सहायता करेंगे ऐसा मत समझिए क्योंकि इनमें भी बहुत-से राजा लोग उनके पक्षपाती ह ॥ ४९ ॥ जो धम अथ और कामरूप तीन पुरुषाथ पुरुषोंको अत्यन्त दुर्लभ है वे तुझे प्राप्त हो गये ह इसलिए अब न्यायमागका उल्लंघन कर उहे व्यथ ही क्यों नष्ट कर रहे हो ॥ ५० ॥ यह जयकुमार जिस प्रकार पहले चक्रवर्तीका सेना पति बना था उसी प्रकार अब अकम्पनका सेनापति बना है तुम व्यथ ही वीरलक्ष्मीको तुलापर आरूढ क्यों कर रहे हो । आगाथ - वीरलक्ष्मीको सशयमें क्यों डाल रहे हो ॥ ५१ ॥ निश्चयसे तेरे एक भाईकी पुत्री तेरे दूसरे भाईके लिए न्यायपूर्वक समपण की गयी है ऐसे उत्सवमें तुम्हारा क्या तिरस्कार हुआ ? हाँ, तुम्हारी असहनशीलता ही तिरस्कार हो सकती है ? आवाथ - हितकारी होनेसे जिस प्रकार जयकुमार तुम्हारा भाई है उसी प्रकार अकम्पन भी तुम्हारा भाई है । एक भाईकी पुत्री दूसरे भाईके लिए न्यायपूर्वक दी गयी है इसमें तुम्हारा क्या अपमान हुआ ? हाँ यदि तुम इस बातको सहन नहीं कर सकते हो तो यह तुम्हारा अपमान हो सकता है ॥ ५२ ॥ सुलोचनाके सिवाय राजाओके और भी तो बहुत-से कन्यारत्न ह रत्ना लकार सहित उन सभी कथाओको मैं आज तुम्हारे लिए यहाँ ला देता हूँ ॥ ५३ ॥ इस प्रकार

१ तव । २ पुष्पकृता । ३ रसणीय । ४ सप्रवर्तित स० ल० अ० प० ६० । ५ प्रथमतस्त्वम् । ६ मा कार्पी । ७ युद्धस्य । ८ तव । ९ असहमानता । १० प्रापयामि । ११ अघात ल० ।

सर्वमेतत्तन् समारुप्यं बुद्धि र्मानुयागिणीम् । स्पष्टयन्निव दुर्वृत्तिरिति प्रत्याह भागतीम् ॥५५॥
 अस्ति स्वयंवर पन्था परिणीतो^१ चिरन्तन । पितामह कृतो मान्यो वयोज्येष्ठस्त्वकम्पन ॥५६॥
 किन्तु सोऽयं जयस्नेहात्तन्मोक्षार्थं चिरार्थं कुरु । स्वमुनायाश्च सोमाश्च प्रतीतिप्रविधिमुक् ॥५७॥
 सर्वभूपाल्यमदोऽयमाविर्भावितोऽयान् । स्वयं चक्रायितुं चैव व्यधत्त कपट गड ॥५८॥
 प्राकृत्यमयितमन्त्रेण^२ प्रदायाम्मै स्पृचन्तया । कृतमरुतया माला मुनयाऽऽगेषिता मृषा ॥५९॥
 युगादौ कुलवृद्धेन^३ मायेय सप्रवतिता । मयाय यद्युपेक्ष्येन^४ कृपायन्ते नैव वार्यन् ॥६०॥
 न चक्रिणोऽपि कोपाय स्यादन्यायनिषेधनम् । प्रवर्तयन्त्यसो दण्ड मर्यादयन्यायवर्तिनि ॥६१॥
 जयोऽप्येव^५ समुन्वि^६ कस्तपटटेन^७ च मालया । प्रतिम्व लब्धगन्त्रो^८ सा रोगेया^९ रम्भकम्पुग ॥६२॥
 'समस्ततूलमुच्छिद्य सर्वद्विषममु युधि । अनुरागं जनिष्यामि राजन्याना मयि स्थिरम् ॥६३॥
 द्विधा भवतु वा मा वा बल ते न किमाशुगा^{१०} । माला प्रत्यानयिष्यन्ति जयवध्ना विभिद्य मे ॥६४॥
 नाह सुलोचनाय्यस्मि मन्वरी^{११} मन्दरैरयम्^{१२} । 'परामुख्युनव न्याय किं मे विषयया न्वया ॥६५॥

अनवद्यमति मन्त्रीका वचनरूपी जल यद्यपि नीतिरूपी लताको बटानेवाला था तथापि उसने तपे हुए तेलके समान अर्ककोतिके चित्तको और भी अधिक धोभित कर दिया था ॥५४॥ यह सब सुनकर 'बुद्धि कर्मोंके अनुसार ही होनी है,' इस बातको स्पष्ट करता हुआ वह दुर्वृद्धि इस प्रकार वचन कहने लगा ॥५५॥ मैं मानता हूँ कि विवाहकी विधियोंमें स्वयंवर ही पुगतन मार्ग है और यह भी स्वीकार करता हूँ कि हमारे पितामह भगवान् वृषभदेवके द्वारा स्थापित होने तथा वयमे ज्येष्ठ होनेके कारण अकम्पन महाराज मेरे मान्य हैं परन्तु वह जयकुमारपर स्नेह होनेसे उसीका उत्कर्ष करना चाहता है और सबपर अपनी पुत्रीके सीभाग्यकी प्रतीति करना चाहता है । ममस्त राजाओके समूहके द्वारा प्रकट हुए वडप्पनसे अपने आपको चक्रवर्ती बनानेके लिए ही उम मूर्खने यह कपट किया है ॥ ५६-५८॥ 'यह कन्या जयकुमारको ही देनी है' ऐसी सलाह अकम्पन पहले ही कर चुका था और उसी सलाहके अनुसार अपने हृदयसे जयकुमारके लिए कन्या दे भी चुका था परन्तु यह सब छिपानेके लिए जिसे पहले ही सकेत किया गया है ऐसी पुत्रीके द्वारा उसने यह माला झूठमूठ ही डलवायी है ॥५९॥ युगके आदिमें उच्चकुलीन अकम्पनके द्वारा की हुई इस मायाकी यदि आज मैं उपेक्षा कर दूँ तो फिर कल्प-कालके अन्त तक भी इसका निवारण नहीं हो सकेगा ॥ ६० ॥ अन्यायका निराकरण करना चक्रवर्तीके भी क्रोधके लिए नहीं हो सकता क्योंकि जब मैं अन्यायमें प्रवृत्ति कर बैठता हूँ तब वे मुझे भी तो दण्ड देते हैं । भावार्थ—चक्रवर्ती अन्यायको पसन्द नहीं करते हैं, और मैं भी अन्यायका ही निराकरण कर रहा हूँ इसलिए वे मेरे इस कार्यपर क्रोध नहीं करेंगे ॥६१॥ यह जयकुमार भी पहले वीरपट्ट बाँधनेसे और अब मालाके पड जानेसे बहुत ही अभिमानी हो रहा है । यह छिद्र पाकर पहलेसे ही मेरे लिए कुछ-न-कुछ आरम्भ करता ही रहता है ॥६२॥ यह सबका शत्रु है इसलिए युद्धमें इसे आमूलचूल नष्ट कर सब राजाओका स्थिर प्रेम अपनेमें ही उत्पन्न करूँगा ॥६३॥ सेना फूटकर दो भागोंमें विभक्त हो जाय अथवा न भी हो, उससे मुझे क्या ? मेरे बाण ही जयकुमारका वक्ष स्थल भेदन कर वरमालाको ले आवेंगे ॥६४॥ मैं सुलोचनाको भी नहीं चाहता क्योंकि सबसे ईर्ष्या करनेवाला यह जयकुमार मेरे बाणोंसे अभी

१ विवाहे । २ अभ्युदय प्राप्यमाश्रित्य । ३ चक्रीनाचरितुम् ॥ ४ मायावी । ५ दत्त्वा । ६ अकम्पनेन । ७ -पेक्षेत ल० । ८ -प्येन ल० । ९ गर्वित । १० वीरपट्टेन । ११ प्राप्तावसर । १२ व्यापारम् । १३ कारणसहितम् । १४ शरा । १५ मत्परवान् । १६ मम बाणै । १७ गतप्राण । 'परामुप्राप्तपचत्वपरतप्रेत-संस्थिता ।' इत्यभिधानात् ।

दुराचारनिषेधेन त्रय धर्मादि वधते । कारणे सति कायस्य किं हानिरिदृश्यते क्वचित् ॥६६॥
 व्यथो म विक्रमस्यास्ता शरस्याप्यत्र न व्यथः । वधे प्रत्युत धम स्याद् दुष्टस्याह^२ कुतो भवेत् ॥६७॥
 कीर्तिर्विख्यातकीर्तौ नाककीर्तौ विनिरुद्धमिति^३ । अकीर्तिरनिवार्या स्याद् वायस्थानिषेधनात् ॥६८॥
 तस्य^४ मेऽयशसः कार्तभवद्भियदुदाहृतम् । मवेत्तस्य सवादि^५ शीतकोऽस्म्यत्र मद्यहम् ॥६९॥
 यूयमाध्व ततस्तूष्णीमु^६ ण्णकोऽहमिदं प्रति । धम्यमध्वं यशस्य च मा निषेधि^७ हितैपिभि ॥७०॥
 एव मन्त्रिणमुल्लङ्घ्य कुधीर्वा द्रुमहाहित^८ । सेनापतिं समाहूय प्रत्यासन्नपराभव ॥७१॥
 कथयि-वा महीशानां सर्वेषां रणनिश्चयम् । भरीमास्फालयामास जगत्त्रयभयप्रदाम् ॥७२॥
 अनुमेरीरवं सद्यः सयावासं^९ महीभुजाम् । नटद्भटभुजास्कोटचटुलाराव^{१०} निष्टुर ॥७३॥
 करिकण्डस्फुरोद्घोषघण्टाटङ्कारमैरव । जितकण्ठीरवाराधहयहेपाविभीषण ॥७४॥
 चलदरिखुरोद्घोषकठोरध्याननिभर^{११} । पदातिपद्धति^{१२} प्रोद्यद्भूरिभूररभीषह^{१३} ॥७५॥
^{१४} स्पन्दस्वन्दनचक्रोत्थपृथुचीत्कारभीकर । धनु सजाक्रियासक्तगुणास्काएनक्रकशः ॥७६॥
 प्रतिध्वनितदिग्भिस्सिस्सयानकमयानक । बलकोलाहल कालमिवाह्लातु समुद्यत ॥७७॥

ही मर जावेगा तब उस विधवासे मुझे क्या प्रयोजन रह जावेगा ॥६५॥ दुराचारका निषेध करनेसे धम आदि तीनो बढ़ते हैं क्योंकि कारणके रहते हुए क्या कहीं कायकी हानि देखी जाती है ? ॥६६॥ इस काममें मेरे पराक्रमका नाश होना तो दूर रहा मेरा एक बाण भी खच नहीं होगा बल्कि दुष्टके मारनेमें धम ही होगा, पाप कहाँसे होगा ? ॥६७॥ ऐसा करनेसे प्रसिद्ध कीर्तिवाले मुझ अककीर्तिकी कीर्ति भी नष्ट नहीं होगी परन्तु हाँ, यदि इस अन्यायका निषेध नहीं करता हूँ तो किसीसे निवारण न करने योग्य मेरी अपकीर्ति अवश्य होगी ॥६८॥ तुमने जो मेरी अपकीर्ति और उसकी कीर्ति होनेका उदाहरण किया है सो यदि मैं इस विषयमें मन्दो द्योगी हो जाऊँ तो यह आपका निरूपण सत्य हो सकता है ॥६९॥ इसलिए तुम लोग चुप बैठो, मैं इस कार्यमें उष्ण हूँ — क्रोधसे उत्तेजित हूँ । हित चाहनेवालोंको धम अथ तथा यश बढ़ाने वाले कार्योंका कभी निषेध नहीं करना चाहिए ॥७०॥ इस प्रकार जिसका पराभव निकट है और जो छोटे हठसे युक्त है ऐसे दुबुद्धि अककीर्तिने मन्त्रीका उल्लघन कर सेनापतिको बुलाया और सब राजाओंसे युद्धका निश्चय कहकर तीनों लोकोंको भय उत्पन्न करनेवाली मेरी बजवायी ॥७१-७२॥ जो राजाओके प्रत्येक डेरेमें मेरीके शब्दोंके साथ ही साथ बहुत शीघ्र नाचते हुए योद्धाओंकी भुजाओंकी ताड़नासे उत्पन्न होनेवाले चल शब्दोंसे कठोर है जो हाथियोंके गर्लोंमें स्पष्ट रूपसे जोर जोरका शब्द करनेवाले घण्टाओकी टकारसे भयकर है, जो सिंहोंकी गजनाको जीतनेवाले घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे भीषण है जो चलते हुए घोड़ोंके खुरोंके संघटनसे उठनेवाले कठोर शब्दोंसे भरा हुआ है जो पैदल सेनाके पैरोंकी चोटसे उत्पन्न हुए पृथिवीके बहुत भारी शब्दोंसे भयकर है जो चलते हुए रथोंके पहियोंसे उत्पन्न होनेवाले बहुत भारी चीत्कार शब्दों से भय पैदा करनेवाला है, जो धनुष तैयार करनेके लिए लगायी हुई डोरीके आस्फालनसे कठोर है, जिसने दिशारूपी दीवालोंको प्रतिध्वनिसे युक्त कर दिया है और जो सब प्रकारके नगाडोंसे भयानक हो रहा है ऐसा बहुत भारी सेनाका कोलाहल उठा सो ऐसा जान पड़ता

१ आम्तां तावदित्यध्याहार । २ पाप । ३ विनागमप्यति । ४ जयस्य । ५ पदुदाहरणम् । ६ सत्येन अविपरीतप्रतिपत्तिक्रम । सत्येन एकवाक्योपेत वा । ७ मद । ८ पटु । दसे तु चतुरपेशलपटव सूत्यान ओष्णश्च इत्यभिधानात् । ९ न निषिध्यते स्म । १ स्वीकृत । ११ शिविर प्रति शिविर प्रति । १२ नवस्थिता । १३ ध्वनि । १४ पाहति । १५ भूमिध्वनिना भयंकर । १६ चलत् ।

शिक्षिता बलिन शरा शूरागृहा महेन्द्रः । राजा समन्तान् मन्त्राणां प्राञ्चेल्लुचलोपमा ॥५८॥
 नुग्नमान्तरद्वाभा. मटग्रामाब्धे मयमका^१ । अनुदन्ति नदन्तोऽयान्^२ विग्रामन्तः समन्ततः ॥५९॥
 मचक्रं^३ धेहि मयोऽय मयुर्ग^४ प्राज वाजिन । इति मभ्रमिणोऽपान्त^५ रयाम्भदनु मभ्रजाः ॥६०॥
 दण्डा कोदण्डकुन्तामिप्रामचक्रादिभीकरा । यान्ति स्मानुग्व कृत्वा रुद्रदिक्का. पदान्तयः ॥६१॥
 गजं गजस्तदोद्वज्य बाहो^६ वाह रथ रथ । पदान्तयश्च पादान्त मभ्रमान्निर्ययुर्गु^७ ॥६२॥
 आरुहानेकपानेकभ्रपालपरिवारित । भेरीनिटुगनिर्गोपमोपिताजेपदिग्रिप ॥६३॥
 चक्रचक्र समुत्थाय सम्यगाविक्त्वा^८ नति । गज विजयघोषाग्रमाग्राद्विजगन्तमम् ॥६४॥
 अर्ककीर्तिर्वहिसाम्बदम्यु^९ द्यतमटावृत । उद्योति.कुलाचलैर्वाकञ्चवालाभ्यचलाधिपम्^{१०} ॥६५॥
 किंवदन्ती^{११} विद्विर्वतांभपो भन्वा कुलाकुल^{१२} । स्वालोचिन^{१३} च र्मन्थ्य^{१४} विमिना त्रियन्तःस्यया ॥६६॥
 इति म्दमचिवैः मार्यमालोच्य च जयादिमि । प्रत्यर्ककीर्त्यया^{१५} दिशद् दन मप्राप्य म्दवरम् ॥६७॥
 कुमार तव किं युक्तमेव सीमातिलङ्घनम् । प्रसीद प्रलयो^{१६} दर तन्मा कार्यामृपागमम् ॥६८॥

था मानो कालको बुलानेके लिए ही उठा हो ॥ ७३-७७ ॥ उम समय जो शिक्षित है, बलवान् है, गुरवीर है, जिनपर योद्धा बैठे हुए हैं, पताकाएँ फहरा रही हैं, जो सब तर्हमें तैयार हैं और पर्वतोंके समान ऊँचे हैं ऐसे हाथी सब ओरसे आगे-आगे चल रहे थे ॥ ७८ ॥ जो मग्रामरूपी समुद्रकी लहरोके समान हैं, कवच पहने हुए हैं, हीस रहे हैं और कूद रहे हैं ऐसे घोड़े उन हाथियोंके पीछे-पीछे चागे ओर जा रहे थे ॥ ७९ ॥ पहिये जल्दी लगाओ, धुराको ठीक कर जल्दी लगाओ, इस प्रकार कुछ जल्दी करनेवाले, तथा जिनमें शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए हैं और ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे रथ उन घोड़ोंके पीछे-पीछे जा रहे थे ॥ ८० ॥ उन रथोंके पीछे धनुष, भाला, तलवार, प्राम और चक्र आदि शस्त्रोंसे भयकर, फैलकर सब दिशाओंको गोकनेवाले, क्रोधी और बलवान् पैदल सेनाके लोग जा रहे थे ॥ ८१ ॥ उस समय हाथी हाथीको, घोडा घोडाको, रथ रथको और पैदल पैदलको धक्का देकर युद्धके लिए जल्दी-जल्दी जा रहे थे ॥ ८२ ॥ तदनन्तर — हाथियोंपर चढ़े हुए अनेक राजाओंसे घिरा हुआ, नगाडोंके कठोर शब्दोंसे समस्त दिग्गजोंको भयभीत करनेवाला, चक्रके चिह्नवाली ध्वजाको ऊँचा उठाकर अपनी ऊँचाईको अच्छी तरह प्रकट करनेवाला और चमकीली तलवार हाथमें लिये हुए योद्धाओंसे आवृत अर्क-कीर्ति, मेरु पर्वतके समान उत्तम विजयघोष नामक हाथीपर सवार हो अचलाधिप (अचला अधिप) अर्थात् पृथ्वीके अधिपति राजा अकम्पनकी ओर इस प्रकार चला मानो ज्योतिर्मण्डल और कुलाचलोके साथ-साथ सूर्य ही अचलाधिप (अचल अधिप) अर्थात् सुमेरुकी ओर चला हो ॥ ८३-८५ ॥ महाराज अकम्पन यह बात जानकर बहुत ही व्याकुल हुए और सोचने लगे कि अच्छी तरह विचारकर किया हुआ कार्य भी दैवके द्वारा उलटा कर दिया जाता है । इस प्रकार उन्होंने अपने मन्त्री तथा जयकुमार आदिके साथ विचारकर अर्ककीर्तिके प्रति शीघ्र ही एक शीघ्रगामी दूत भेजा ॥ ८६-८७ ॥ दूतने जाकर कहा कि हे कुमार, क्या तुम्हे इस प्रकार सीमाका उल्लंघन करना उचित है ? प्रलयकाल अभी दूर है इसलिए प्रसन्न हूँजिए

१ मनद्धा कृता । २ तनुवसहिता । ३ दन्तिना पश्चात् । ४ ध्वनन्तः । ५ अगच्छन् । ६ लङ्घन कुर्वन्त । ७ चक्रेण सह किञ्चिद् धेहि धारय । ८ धुरा सह किञ्चिद् धेहि । ९ प्रेरय । १० आशुप्रधावने प्रयुक्ता । त्वरावन्त । ११ अगच्छन् । १२ अश्व । 'बाहोऽश्वस्तुरगो वाजी हयो धुर्यगुरगम्' इति धनजय । १३ सग्रामनिमित्तम् । १४ उद्भूतासि । १५ अकम्पनं महाराज प्रति । मेरु च । १६ जनवातम् । १७ अविकाकुल । १८ सुष्ठ्वालोचितम् । १९ कार्यम् । २० अर्ककीर्ति प्रति । २१ प्राहिणोत् । २२ प्रलय पण्डकालान्ते भवतीत्यागमम् । मृपा मा कुरु ।

इति सामादिभिः स्वोक्तैः शान्तमवगाथ्य तम् । प्रत्यस्मै तच्चथा सवमाश्रयवाजी गमधूपम् ॥८९॥
 काशिराजस्तदाकण्य विषादचलिताशयः । महामोहाहिता वाऽऽसीद् दुष्कार्यं कौ न मुह्यति ॥९०॥
 'अत्र चित्तं न च किञ्चिन्म्यायस्तनैव' ललितम् । 'तिष्ठतर्ह्येव' मरक्ष्य सुनियुक्ताः सुलाचनाम् ॥९१॥
 इदानीमव दुर्बलं शृङ्खलालिङ्गनोत्सुकम् । शालामृगमिवानप्य बध्वा दाराततायिनम् ॥९२॥
 इत्युदीय जयो मधुकुमारविजयार्जिताम् । मधवोपाभिर्धां भर्तुं 'प्रच्छेनास्कोटयद्' दया ॥९३॥
 'द्रोणादप्रक्षयारम्भमधनाधनधनध्वनिम् । तद्भूध्वनिर्ध्याप' निर्जित्य निर्मिश हृदय द्विषाम् ॥९४॥
 तत्रवाक्यनाद् धूर्णिताणवप्रतिम' बले । 'अतिबल्लोत्सवोऽग्रासादुत्सवो विजय' यथा ॥९५॥
 तदोद्भिन्नक'पा'तप्रक्षरन्मदपायिनः । स्वमदनेव मातङ्गा' प्रोत्तुङ्गा प्रो'मदिष्णव ॥९६॥
 सुख्यन्त रनन्त स वाजिनो वायुरहस' । हृतोत्साहा' रणोत्साहाद् रजुस्तजस्विता हि सा ॥९७॥

और आगमको झठा मत कीजिए । भावाय-लडकर असमयम ही प्रलय काल न ला दीजिए । दूतने इस प्रकार बहुत-से साम, दान आदिके वचन कहे परंतु तो भी उसे अशांत जानकर वह लौट आया और शीघ्र ही ज्योके त्यों सब समाचार अकम्पनसे कह दिये ॥ ८८-८९ ॥ उन समाचारोंको सुनकर काशीराज अकम्पनका चित्त विषादसे विचलित हो उठा और वे स्वयं महा मोहसे मूर्च्छित हो गये सो ठीक ही है क्योंकि बुरे कामोंमें कौन मूर्च्छित नही होता ॥९०॥ जयकुमारने अकम्पनको चिंतित देखकर कहा कि इस विषयमें हम लोगोंको कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए क्योंकि 'यायका उल्लघन उसीने किया है आप सावधान होकर सुलोचना की रक्षा करते हुए यही रहिए । दुराचारी स्त्रियोपर उपद्रव करनेवाला और इसलिए ही साँकलोसे आलिंगन करनेकी इच्छा करनेवाला उस अककीर्तिको बन्दरके समान बाँधकर मैं अभी लाता हूँ ॥९१-९२॥ इस प्रकार कहकर जयकुमारने क्रोधम आकर, युद्धमें आगे जानेवाला पुरुषके द्वारा मेघकुमारोंको जीतनेसे प्राप्त हुई मेघघोषा नामकी मेरी बजवायी ॥९३॥ प्रलयकालके प्रारम्भमें प्रकट होनेवाले द्रोण आदि मेघोंकी घोर गजनाको जीतकर तथा शत्रुओं का हृदय विदारण कर वह मेरीकी आवाज सब ओर फैल गयी ॥ ९४ ॥ जिस प्रकार शत्रुके विजय करनेपर उत्सव होता है उसी प्रकार उस मेरीका शब्द सुनकर लहराते हुए समुद्रके समान चंचल जयकुमारकी सेनाम माला डालनेके उत्सवसे भी कहीं अधिक उत्सव होने लगा ॥९५॥ उस समय फटे हुए गण्डस्थलके समीपसे क्षरते हुए मदका पान करनेवाले और अपने उसी मदसे ही मानो उमत्त हुए ऊँचे-ऊँचे हाथी युद्धके उत्साहसे सुशोभित हो रहे थे । तथा इसी प्रकार अच्छी तरह हीसते हुए, पैरोंसे आकाशको खोदते हुए और वायुके समान वेगवाला उत्साही घोड़े भी युद्धके उत्साहसे सुशोभित हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि उनका तेजस्वीपना

१ शोकन ट । वचनसहित । २ शीघ्र आप्तवान् । ३ अकम्पन । ४ महामूर्च्छागृहीत इव । ५ अत्र कार्यं । ६ अककीर्तिनैव । ७ निवसत । ८ राजभवन । ९ सावधाना भूत्वा । १० दाराततायनम् ट० । दारप कृतागमनम् । स्वोनिमित्तमागतमककीर्तिमित्यर्थ । दाराततायिनमिति पाठे दाराय बधोद्यतम् । 'आत साधो बधोद्यत इत्यभिधानात् । ११ अग्रगामिना पुरुषेण । १२ आस्कालन कारयति स्म । प्रच्छेना स्कालयद् ल अ प ह , स । १३ द्रोणादि द्रोणकालपञ्करादि । प्रक्षयारम्भ प्रलयकालप्रारम्भ । द्रोणान्यस्य च त प्रक्षयारम्भमधनाधनास्तेषा ध्वनिम् । १४ व्याप्नोति स्म । १५ समान । प्रतिमान प्रतिबिम्ब प्रतिमा प्रतिमानना प्रतिष्ठाया । प्रतिकृतिरर्था पुंसि प्रतिनिधिरुपमोपमान स्यात् । १६ अधिकोत्सव । अतिबलभूतात्यर्थातिमात्र गाढनिभरम् इत्यभिधानात् । अतिमालोत्सवो ल अ० प० ह० । १७ दिग्विजये । १८ पयनवगा । १९ हृतोवागा ।

रथा. प्रागिवै पर्याप्ता. १ पूर्णसर्वायुधायुधः २ । महासाहसमायुक्ता प्रनृत्यनकेनुवाहवः ॥८८॥
 योपितोऽप्यभट्टयन्तः पाटवान् मयुग प्रति ३ । ततः ४ प्रतिबलात्तत्र भूयान्मो वा ५ पटानय ॥८९॥
 वद्धमानो ध्वनिस्तूये रणरङ्गे मविशत ६ । वीरलक्ष्मीप्रवृत्तस्य प्रोद्ययौ गुणयन्निव ७ ॥९०॥
 वनान्वय वयसिगिञ्जालक्षणवात्य विग्रहम् ८ । सुवर्माण सुवर्माण ९ कामवन्तः १० क्षणमदम् ॥९१॥
 सामज विजयाऽर्द्धाग्य विजयाऽर्द्धमिवातरम् ११ । ग्रहणो दृष्टमग्राम १२ गजध्वजधिराजितम् ॥९२॥
 अविष्टाय १३ जय सर्वमाधनेन महानुजः । निजंगाम युगप्रान्तकालर्लाला विलस्यन् १४ ॥९३॥
 कुर्वन्ती शान्तिपूजा न्व निष्ट मात्रेति १५ सादरम् । प्रवेष्टय चैन्यधामात्रय १६ सुता नित्यमनोहरम् ॥९४॥
 समग्रवलमपत्या चत्राल चलयन्निलाम् १७ । अरुम्पः कम्पितारानि. १८ साकम्पनिरुम्पन ॥९५॥
 सुकेतु सूर्यमित्राय. श्रीधरो जयवर्मणा । देवकीर्तिजय जगमुरिति भृषा ममाधनाः ॥९६॥
 इमे मुकुटबद्धेषु पत्र विख्यातकीर्तयः । परं च शरा नाथेन्दुवशगृह्याः १९ ममायुः ॥९७॥
 मेघप्रभश्च चण्डामिप्रभास्यासवियत्तलः । विद्यावल्लोदत साद्वर्मर्द्धविद्यावैररगान ॥९८॥

वही था ॥९६-९७॥ जो सब प्रकारके गस्त्रोसे पूर्ण है, जिनमे बड़े-बड़े घांड़े जुते हुए हैं, और जिनकी ध्वजारूपी भुजाएँ नृत्य कर रही हैं ऐसे युद्धके रथ पहलेके समान ही सब ओर फैल रहे थे ॥९८॥ जयकुमारकी सेनामे युद्धमे चतुर होनेके कारण स्त्रियाँ भी योद्धाओके समान आचरण करती थी इसलिए अन्य राजाओकी अपेक्षा उमकी पैदल सेनाकी मख्या अधिक थी ॥९९॥ उस समय जो वाजोका गव्व बढ़ रहा था वह ऐसा जोन पडता था मानो रणके मैदान-मे जो वीरलक्ष्मीका उत्तम नृत्य होनेवाला है उसे कई गुना करता हुआ ही बढ़ रहा हो ॥१००॥

तदनन्तर-जो वनमे उत्पन्न हुआ है, वय, शिक्षा और अच्छे-अच्छे लक्षणोमे जिसका शरीर देखने योग्य है, जिसका स्वभाव अच्छा है, शरीर अच्छा है, जो कामवान् है, जिसके मद झर रहा है, जिसने अनेक बार युद्ध देखे हैं, जो हाथीके चिह्नवाली ध्वजाओसे सुशोभित है और दूसरे विजयार्ध पर्वतके समान जान पडता है ऐसे विजयार्ध नामके हाथीपर सवार होकर वह जयकुमार सब सेना और सब छोटे भाइयोके साथ-साथ युगके अन्त कालकी लीलाको उल्लघन करता हुआ निकला ॥१०१-१०३॥ इधर शत्रुओको कम्पित करनेवाले और स्वय अकम्प (निश्चल) रहनेवाले महाराज अकम्पनने भी 'तू अपनी माताके साथ आदरपूर्वक शान्ति-पूजा करती हुई बैठ' इस प्रकार कहकर पुत्री सुलोचनाको नित्यमनोहर नामके उत्तम चैत्यालय-मे पहुँचाया और स्वय अपने पुत्रोको साथ लेकर समस्त सेनारूपी सम्पत्तिके द्वारा पृथिवीको कँपाते हुए निकले ॥१०४-१०५॥ सुकेतु, सूर्यमित्र, श्रीधर, जयवर्मा और देवकीर्ति ये सब राजा अपनी-अपनी सेनाओके साथ जयकुमारसे जा मिले ॥ १०६ ॥ मुकुटबद्ध राजाओमे जिनकी कीर्ति अत्यन्त प्रसिद्ध है ऐसे ऊपर कहे हुए सुकेतु आदि पाँच राजा तथा नाथवश और सोमवशके आश्रित रहनेवाले अन्य शूरवीर लोग, सभी जयकुमारसे आ मिले ॥१०७॥ जिसने अपनी तीक्ष्ण तलवारकी प्रभासे आकाशतलको व्याप्त कर लिया है और जो विद्याके बलसे

१ दिग्विजये यथा । २ समन्तात् प्राप्ता । पर्यस्ता ल० । ३ रणस्य । पूर्णसर्वायुधायुध इति समस्तपदपक्षे पूर्णसर्वायुधानि च भटाश्च येषु ते । ४ भटा इवाचरिता । ५ युद्ध प्रति । ६ तत कारणात् । ७ प्रतिबले विलोक्यमाने सतीत्यर्थः । ८ जयकुमारवले । ९ इव । १० अतिशयं कुवन्निव । ११ दर्शनीयमूर्तिम् । १२ सुवर्माण सुवर्माण ल०, प०, स०, इ० । सुवर्माण सुवर्माण ल० । १३ शोभनस्वभावम् । १४ आरोह-कस्य वशवर्तिगमनवन्तम् । १५ गजरूपध्वज । १६ आरुह्य । १७ जनन्या सह । १८ श्रेष्ठम् । १९ भूमिम् । २० अकम्पनस्यापत्यानि आकम्पनयस्तै सहित । २१ नाथवंशसोमवशश्रिता ।

इति मामादिभिः स्वोक्तैरशान्तमवशम्य तम् । प्रत्यस्य तत्तथा मधमाश्ववाजी गमसूपम् ॥८९॥
 काशिराजश्चन्द्राक्षय विपादध्वलितशय । महामाहाहिता^१ घाऽऽसीद् दुष्काय का न सुहति ॥९०॥
 अत्र चित्तं न च किञ्चिन्व्यायस्मनैव लहित । तिष्ठतद्वर्षं नश्य सुनियुक्तः^२ सुलाचनाम् ॥९१॥
 इदानीमव दुष्टत शृङ्गलालिह्नोऽसुकम् । शाण्वाग्रगमिवानप्य वध्या दाराततायिनम्^३ ॥९२॥
 हृद्युदाय जयो मधकुमारयिजयाजिताम् । मधघोषामिधां भर्ता^४ प्रष्टनास्काटयद् रुपा ॥९३॥
 द्रोणादप्रक्षयारम्भघनाघमघनध्वनिम् । तद्व्यभिर्घ्यापि^५ निजित्य निमिष हृदय द्वियाम् ॥९४॥
 तद्रथाकणनाद् धूणितानवप्रतिमं^६ बले । अतिवल्गोऽस्योऽग्रासाद्गुप्तस्यो विजये^७ यथा ॥९५॥
 तदोद्भिन्नकण्या तप्रक्षरन्मदपायिन । श्वमदनघ मातङ्गा प्राप्नुक्ता प्रा मदिष्णव ॥९६॥
 सुस्वनत स्वनत र घाजिनो घायुरहस^८ । वृत्तोऽयाहा^९ रणास्साहाद् रजुस्तजस्विता हि सा ॥९७॥

और आगमको झूठा मत कीजिए । भावाथ—रूढ़कर असमयम ही प्रलय काल न ला दीजिए । दूतने इस प्रकार बहुत-से साम, दान आदिने वचन कहे परन्तु तो भी उसे अशांत जानकर वह लौट आया और शीघ्र ही ज्योके त्या सब समाचार अकम्पनसे कह दिये ॥ ८८-८९ ॥ उन समाचारोको सुनकर काशीराज अकम्पनका चित्त विपादसे विचलित हो उठा और वे स्वयं महा मोहसे मूर्च्छित हो गये सो ठीक ही है क्योंकि वुरे कामामें कौन मूर्च्छित नहीं होता ॥ ९० ॥ जयकुमारने अकम्पनको चित्तित देखकर कहा कि इस विषयम हम लोगोको कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए क्योंकि व्यायका उल्लघन उसीने किया है आप सावधान होकर सुलोचना की रक्षा करते हुए यही रहिए । दुराचारी स्त्रियोपर उपद्रव करनेवाला और इसलिए ही साँकलोसे आलिंगन करनेकी इच्छा करनेवाला उस अककीतिको बन्दरके समान बाधकर म अभी लाता हूँ ॥ ९१-९२ ॥ इस प्रकार कहकर जयकुमारने क्रोधम आकर, युद्धमें आगे जानेवाले पुरुषके द्वारा मेघकुमारोको जीतनेसे प्राप्त हुई मेघघोषा नामकी मेरी बजवायी ॥ ९३ ॥ प्रलयकालके प्रारम्भम प्रकट होनेवाला द्रोण आदि मेघोकी घोर गजनाको जीतकर तथा शत्रुओं का हृदय विदारण कर वह मेरीकी आवाज सब ओर फैल गयी ॥ ९४ ॥ जिस प्रकार शत्रुके विजय करनेपर उत्सव होता है उसी प्रकार उस मेरीका शब्द सुनकर लहराते हुए समुद्रके समान चंचल जयकुमारकी सेनाम माला डालनेके उत्सवसे भी कहीं अधिक उत्सव होने लगा ॥ ९५ ॥ उस समय फटे हुए गण्डस्थलके समीपसे झरते हुए मदका पान करनेवाले और अपने उसी मदसे ही मानो उमत्त हुए ऊँचे-ऊँचे हाथी युद्धके उत्साहसे सुशोभित हो रहे थे । तथा इसी प्रकार अच्छी तरह हीसते हुए, पेरोंसे आकाशको खोदते हुए और वायुके समान वेगवाला उत्साही घोड़े भी युद्धके उत्साहसे सुशोभित हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि उनका तेजस्वीपना

१ सोक्त ट । वचनलहित । २ शीघ्र आपितवान । ३ अकम्पन । ४ महामूर्च्छागृीत इव । ५ अत्र कार्ये । ६ अककीतिनैव । ७ निवसत । ८ राजभवन । ९ सावधाना भूत्वा । १० दाराततायिनम ट० । दारप कृतागयनम । स्त्रीनिमित्तमागतमवकार्तिमित्यथ । दाराततायिनमिति पाठ दाराथ वधोद्यतम् । आत तापी वधोद्यत इत्यभिधानात् । ११ अग्रगमिना पुरुषण । १२ आम्कालन कारयति स्म । प्रष्टेना स्फालयद् ल अ० प इ स० । १३ द्रोणादि द्रोणकालपञ्करादि । प्रक्षयारम्भ प्रलयकालप्रारम्भ । द्रोणाभ्यन्व त प्रक्षयारम्भघनाघनास्तेषा इति । १४ अग्रान्तीति स्म । १५ उमान । प्रतिमान प्रतिविम्ब प्रतिमा प्रतिमानना प्रातच्छाया । प्रतिकृतिरर्था पुंसि प्रतिनिधिभ्यमापमान स्यात् । १६ अधिकोत्सव । अनिवल्भृता-यथादिमार्ग गाडनिभरम् इत्यभिधानात् । अतिमालोत्सवो ल अ० प० इ० । १७ दिग्विजये । १८ पवनवगा । १९ वृत्तोऽयागा ।

उच्चैःश्रवत्पुंनिर्वाण्युप । निमग्नपदेषु गच्छन् देव सपत्न्यदेवता ॥१०॥

11/ 6 6 11 በክፍል 3 ምዝገባ ቤት ምክር ቤት ጽሑፍ ፡ በአካባቢያዊ ጥበቃና ጥበቃ

॥ १२ ॥

॥ ११ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

[illegible]

|| 66 || Herrn Johann Baptisten | Pater Noster

[illegible]

॥ १ ॥ अथ विष्णु उवाच । तत्रैव त्रिपुरासुरं । त्रिपुरासुरं च । त्रिपुरासुरं च । त्रिपुरासुरं च ।

उद्धत हो रहा है ऐसा मेघप्रथ नामका विद्याधर भी अपने आधे विद्याधरोंके साथ निकला ॥१०८॥ जो शायदाकी सेनाको नष्ट करनेवाला है, बड़े-बड़े राजाओंके समूहसे निकलती हुई

श्रीगणेशाय नमः । श्री गुरुभ्यो नमः ।

॥ ऐसा कार्यक्रम उस समय विद्याल और सम (ऊंची गोची रहित) पश्चात् अपनी समस्त

सैनिका विभाग कर तथा मकान करों तथा रचना कर राजस्वों से तथा बटवों से अधिक मुशायरा से

रहो था ॥ १०६-११० ॥ उपर बक्याईकी रचना कर अपनी वृद्धि भारी सुनाके बीच छत्र

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १११ ॥ ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

सुनमि आदि विद्याधरेक अधिपति श्री गणेशायैकी स्तवना कर चक्रवर्तिक पुत्र-अकालीवकी

આથી તે આકાશમાં નહીં જાય પણ પૃથ્વી પર પડે અને પૃથ્વી પર પડ્યા પછી તે પૃથ્વી પર પડે છે.

विद्यापद शरीररक्षकं रूपमस्मि शरीररक्षकं भवति ॥ १३ ॥

दीनी सेनाओम असाधारणिक प्रत्युत्तलके प्रारम्भमे बढी हुई सेवाको राजनको जीविकर धाँडा

श्रीव एक साध वर्द्धन से बाजे बज रहे थे ॥ १४१ ॥ मुझे आगे-आगे जातेवाले और थकते

[illegible]

भाषा-धर्म ब्रह्मवैवर्त पुराण भाग ब्रह्मकर्म स्मृतिका विवर विवर कर अर्चना भाग भाग

रुई रु॥ १९४५॥ जो क्षामलेपू नाटकके प्रारम्भम सञ्चारके समयन जान पडते शे हेसे धनुष

कई धारण करनेवाले बीर पुरुष गाने हुए बालीको आगे कर पकड़ने प्रवेश कर रहे

५ ॥ ११६ ॥ धर्म धारण करनेवाले पुरुषोंने राजाजी देवाधीनसे सबसे पहले जपना स्थान

અમારું જો લોકલ વાણીકા સમૂહ ઊંચા આ વહે એવા જાત વહવા આ માત્ર ઉચ્ચેને પુણર્જાલ

ह्रीं ब्रह्मदेवी ॥१११॥ वे घृण्णमर चण्डाले ह्ये वाण सदा दुष्टोके समान ज्ञान पतने ये क्षयिका

जिस प्रकार कुँदर तीक्ष्ण अर्थात् और स्वभावगत होते हैं उसी प्रकार वे बाण भी तीक्ष्ण अर्थात्

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । श्री कृष्णाय नमः ।

१५६९ मर्च २ वनम कहेकर फर गार गेव जे हें तसो प्रकार वे बाग गो मनोरंजक

[illegible]

1. பெயர் : செவ்வாறு 2. பெயர் : செவ்வாறு 3. பெயர் : செவ்வாறு 4. பெயர் : செவ்வாறு 5. பெயர் : செவ்வாறு

[illegible]

उभयोः^१ पार्श्वयोर्वध्वा वाणधी^२ कृतदृग्गताः । धन्विनः खेचराकारा^३ रेजुराजौ^४ जितश्रमा ॥११६॥
ऋजुत्वाद् दूरदर्शित्वात् सद्यः कार्यप्रसाधनात् । शास्त्रमार्गानुसारिच्वात् शराः^५ सुसच्चिदैः^६ समाः ॥१२०॥
ऋग्यास्रपायिनः^७ पत्रवाहिनी^८ दूरपातिनः । लक्ष्येपृङ्गीय तीक्ष्णास्याः खगाः^९ पेतुः खगोपमाः^{१०} ॥१२१॥
धर्मेण^{११} गुणयुक्तेन^{१२} प्रेरिता हृदयं गता । शूरान्^{१३} शुद्धिरिवानैधीद्^{१४} गतिं पत्रिपरम्परा^{१५} ॥१२२॥
पुसां सस्पर्शमात्रेण हृद्गता रक्तवाहिनी^{१६} । क्षिप्रं न्यमीलयन्नेत्रं वेक्ष्येव विगिखावली^{१७} ॥१२३॥
त्यक्त्वेशं खेचरास्त्रातिवृष्टौ^{१८} गृध्रतमस्ततौ^{१९} । परोऽन्विष्य शरावल्या जारयेव वर्गीकृतः ॥१२४॥

करते हुए पीछेसे भीतर घुस जाते थे ॥११८॥ जो दोनों वगलोमे तरकस बाँधकर उछल-कूद कर रहे हैं तथा जिन्होंने परिश्रमको जीत लिया है ऐसे धनुषधारी लोग उस युद्धमे पक्षियोंके समान सुगोभित हो रहे थे ॥११९॥ और वाण अच्छे मन्त्रियोंके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार अच्छे मन्त्री ऋजु अर्थात् सरल (मायाचाररहित) होते हैं उसी प्रकार वाण भी सरल अर्थात् सीधे थे, जिस प्रकार अच्छे मन्त्री दूरदर्शी होते हैं अर्थात् दूरतककी बातको सोचते हैं उसी प्रकार वाण भी दूरदर्शी थे अर्थात् दूर तक जाकर लक्ष्यभेदन करते थे, जिस प्रकार अच्छे मन्त्री गीघ्र ही कार्य सिद्ध करनेवाले होते हैं उसी प्रकार वाण भी गीघ्र करनेवाले थे अर्थात् जल्दीसे शत्रुको मारनेवाले थे और जिस प्रकार अच्छे मन्त्री शास्त्रमार्ग अर्थात् नीतिशास्त्रके अनुसार चलते हैं उसी प्रकार वाण भी शास्त्रमार्ग अर्थात् धनुषशास्त्रके अनुसार चलते थे । ॥१२०॥ मास और खूनको पीनेवाले, पख धारण करनेवाले, दूर तक जाकर पड़नेवाले और पैंने मुखवाले वे वाण पक्षियोंके समान उड़कर अपने निशानोपर जाकर पड़ते थे । भावार्थ—वे वाण पक्षियोंके समान मालूम होते थे, क्योंकि जिस प्रकार पक्षी मांस और खून पीते हैं उसी प्रकार वाण भी शत्रुओका मास और खून पीते थे, जिस प्रकार पक्षियोंके पख लगे होते हैं उसी प्रकार वाणोंके भी पख लगे थे, जिस प्रकार पक्षी दूर जाकर पड़ते हैं उसी प्रकार वाण भी दूर जाकर पड़ते थे और जिस प्रकार पक्षियोंका मुख तीक्ष्ण होता है उसी प्रकार वाणोंका मुख (अग्रभाग) भी तीक्ष्ण था । इस प्रकार पक्षियोंकी समानता धारण करनेवाले वाण उड़-उड़कर अपने निशानोपर पड़ रहे थे ॥१२१॥ जिस प्रकार गुणयुक्त धर्मके द्वारा प्रेरणा की हुई और हृदयमे प्राप्त हुई विगुद्धि पुरुषोंको मोक्ष प्राप्त करा देती है उसी प्रकार गुणयुक्त (डोरी सहित) धर्म (धनुष) के द्वारा प्रेरणा की हुई और हृदयमे चुभी हुई वाणोंकी पक्ति शूरवीर पुरुषोंको परलोक पहुँचा रही थी ॥१२२॥ जिस प्रकार हृदयमे प्राप्त हुई और रक्तवाहिनी अर्थात् अनुराग धारण करनेवाली अथवा रागी पुरुषोंको वश करनेवाली वेय्या स्पर्शमात्रसे ही पुरुषोंके नेत्र वन्द कर देती है उसी प्रकार हृदयमे लगी हुई और रक्तवाहिनी अर्थात् रुधिरको वहानेवाली वाणोंकी पक्ति स्पर्शमात्रसे गीघ्र ही पुरुषोंके नेत्र वन्द कर देती थी — उन्हें मार डालती थी ॥१२३॥ जिस प्रकार बहुत वर्षा होने और अन्धकारका समूह छा जानेपर

१ निजशरीरपार्श्वयो । २ इपुष्पी द्वौ । ३ पक्षे मदृशा । ४ युद्धे । ५ चापशास्त्रोक्तक्रमेण । प्रयोक्त्वमार्ग-
शरणन्वान् । ६ वाणाः । ७ मन्त्रिणि । ८ ऋग्यास्रपायिन ट० । आमग्राभरक्तभोजिन । ९ पत्रवहन्ति
गच्छन्तीति पत्रवाहिन । १० वाणा । 'शगर्कविहगा खगा' । ११ पक्षिमदृशा । १२ धनुषा । १३ ज्याम-
हितेन । अतिशययुक्तेन च । १४ विगुद्धिपरिणाम इव । १५ आनयति स्म । १६ शर्मन्ति । १७ रक्त
प्रापयन्ती । आन्मन्यनुरक्त प्रापयन्ती च । १८ इतोऽग्रे पुन 'आरा' नगगन् समानानटिप्पणपुस्तकान् टिप्पण-
नमुद्रार क्रियते । १९ उपरिस्थितखेचररुधिरवर्षे । २० दाशाय्यतमममूत्रे । 'आतापिचिच्छो दाशाय्यगुद्घ्रा'
रन्यभिधानान् । *भावे वन ।

प्रगुणा^१ मुष्टि^२सयाह्वा दूर दृष्ट रनुवर्तिन^३ । गवष्ट साधयन्ति स्म सद्भृत्या इव सायका ॥१२५॥
 प्रयोज्याभिमुख ताक्षणात् बाणात् परशरान्प्रति । तत्रैव^४ पातयन्ति स्म धानुष्का सा हि धाधियाम्^५ ॥
 जाताश्चापशूता^६ कचिद् यान्मशरखण्डने । व्याशूता श्लाघिता पूव रण किञ्चित्पमा^७ ॥१२६॥
 हस्तधरपरयोवमुज्जिघासपलक्ष्यवत्^८ । शरा यनुः स्व^९ र पातमवास्ता^{१०} इवमुष्टिमि ॥१२८॥
 पूर्व विहितसंधाना^{११} स्थित्वा किञ्चिच्छरासन^{१२} । यानमध्यास्य^{१३} मध्यस्थो^{१४} द्विधामात्रमुपागता ॥
 विग्रह^{१५} इतश्चकित्वाद्गत्या शत्रुमध्या । बाणा^{१६} गुणितयान्गुण्या इव सिद्ध प्रपदिर ॥१३०॥

व्यभिचारिणी स्त्री अपना पति छोड़ किसी परपुरुषको खोजकर बश कर लती है उसी प्रकार विद्याधराके खूनको बहुत वर्षा होने और गृद्ध पक्षीरूपी अधवारका समूह फल जानेपर बाणा की पक्ति अपने स्वामीका छाड़ खाज-खोजकर शत्रुओंको बश कर रही थी ॥१२८॥ अथवा वे बाण अच्छ नाकरोके समान दूर दूरतक जाकर इष्ट कार्योंको सिद्ध करते थे क्योंकि जिस प्रकार अच्छ नौकर प्रगुण अर्थात् श्रेष्ठ गुणोंके धारक अथवा सीधे हात ह उसी प्रकार बाण भी प्रगुण अर्थात् सीधे अथवा श्रेष्ठ डोरीस सहित थे, अच्छ नौकर जिस प्रकार मुद्रियास दिय हुए अक्षपर निर्वाह करते ह उसी प्रकार वे बाण भी मुद्रिया-द्वारा चलाय जात थे और अच्छ नौकर जिस प्रकार मालिककी दृष्टिके अनुसार चलते ह उसी प्रकार वे बाण भी मालिककी दृष्टिके अनुसार चल रहे थे ॥१२५॥ धनुषको धारण करनेवाल योद्धा जहाँ-जहाँ शत्रुअवि बाण थे वही-वही देखकर अपने पने बाण फव रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि शत्रुओकी बसी ही बुद्धि होती है ॥१२६॥ जो बाण एक दूसरेके बाणाको तोड़नेके लिए चलाय गय थे, धारण किये गये थे अथवा उस व्यापारम लगाये गय थे व युद्धम नौकरोके समान सबसे पहल प्रसाको प्राप्त हुए थे ॥१२७॥ मजबूत मुद्रियोवाल योद्धाओके द्वारा छोड़े हुए बाण अस्पष्ट लक्ष्यके समान दिखाई नहीं पडते थे और हाथी, घोड़े, रथ तथा पियादाके समूहको भेदन कर अपने पडनेसे स्थानपर ही जाकर पडत थे ॥१२८॥ जिस प्रकार संधि विग्रह आदि छह गुणाको धारण करनेवाल राजा सिद्धिको प्राप्त होत ह उसी प्रकार वे बाण भी संधि आदि छह गुणा को धारण कर सिद्धिको प्राप्त हो रहे थे क्योंकि जिस प्रकार राजा पहल संधि करत ह उसी प्रकार वे बाण भी पहले डोरीके साथ संधि अर्थात् मेल करते थे, जिस प्रकार राजा लोग अपनी परिस्थिति देखकर कुछ समय तक ठहरे रहते ह उसी प्रकार वे बाण भी धनुषपर कुछ देर तक ठहरे रहने थे जिस प्रकार राजा लोग युद्धके लिए अपने स्थानसे चल पडते ह उसी प्रकार वे बाण भी शत्रुको मारनेके लिए धनुषसे चल पडते थे जिस प्रकार राजा लोग मध्यस्थ बनकर द्विधीभावको प्राप्त होते ह अर्थात् भेदनीति द्वारा शत्रुके सगठनको छिन्नभिन्न कर डालते ह उसी प्रकार वे बाण भी मध्यस्थ (शत्रुके शरीरके मध्यमें स्थित) हो द्विधीभावको प्राप्त होते थे अर्थात् शत्रुके टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे और अन्तम राजा लोग जिस प्रकार युद्ध करनेकी

१ अवका । २ मुष्टिना सबाह्य द्वे गम्यन्ते मष्टिसबाह्या । आज्ञावशवर्तिनश्च । ३ नयनैरनुवर्तमाना आलोकन मात्रण प्रभारिभिप्रायं ज्ञात्वा कायकराश्च । ४ यत्र शत्रुशरा स्थितारस्तत्रव । ५ सब परशरखण्डनरूपा । ६ बुद्धीना मध्य । धीद्रियाम ल । ७ बाणा । ८ किङ्करसमाना । ९ अस्पष्टलक्ष्यवत् । १० स्वभोग्यपत्तन स्थान गत्ववस्थ । ११ क्षिप्ता । १२ कुतसयोजना कुतसन्धयश्च । १३ चापे क्षत्र च । १४ गमनमध्यास्य । १५ मध्यस्था सन्त । १६ द्विधाखण्डनत्वम् पक्ष उभयत्राधनत्वम् । १७ विक्रमभाव । अथवा शरीर । १८ अम्यस्त ।

धारा वीररसस्येव रेजे रक्तस्य कस्यचित् । पतन्ती सतत धैर्यान्नादवन्त्पाटिताशुगम् ॥१३१॥

^१सायकोद्भिन्नमालोक्य कान्तस्य हृदय प्रिया । परासुरासीच्चित्तेऽस्य वदन्तीवात्मनः स्थितिम् ॥१३२॥

छिन्नदण्डैः फलैः कश्चित् ^२सर्वाङ्गीणैर्मटाग्रणोः । कीलितासुरिवाकम्प्रस्तथैव युयुधे चिरम् ॥१३३॥

विलोक्य विलयज्वालि ^३ज्वालालोलशिखोपमैः । शिलीमुखैर्वलं ^४छिन्नं स्व ^५विपप्रधनुर्धरैः ॥१३४॥

गृहीत्वा वज्रकाण्डाख्यं सज्जीकृत्य शरासनम् । स्वयं योद्धुं समारब्ध सक्रोधः सानुजो जयः ॥१३५॥

^६कर्णाभ्यर्णोक्तास्तस्य गुणयुक्ता सुयोजिताः । ^७पत्रैर्लघुसमुत्थाना कालक्षेपाविधायिनः ^८ ॥१३६॥

मार्गे प्रगुणसञ्चाराः प्रविश्य हृदयं ^९द्विषाम् । कृच्छ्रार्थं ^{१०}साधयन्ति स्म ^{११}निस्सृष्टार्थसमाः शराः ॥१३७॥

पत्रवन्तः प्रतापोग्राः ^{१२}समग्रा विग्रहे द्रुताः । अज्ञातपातिनश्चक्रुः कृत्युद्धं शिलीमुखाः ॥१३८॥

सामर्थ्यसे रहित शत्रुको वश कर लेते हैं उसी प्रकार वे बाण भी शत्रुको वश कर लेते थे ॥१२९-१३०॥ निकाले हुए बाणके पीछे बहुत शीघ्र धीरतासे निरन्तर पड़ती हुई किसी पुरुषके रुधिरकी धारा वीररसकी धाराके समान सुशोभित हो रही थी ॥१३१॥ कोई स्त्री अपने पतिका हृदय बाणसे विदीर्ण हुआ देखकर प्राणरहित हो गयी थी मानो वह कह रही थी कि मेरा निवास इसीके हृदयमे है ॥१३२॥ जिनके दण्ड टूट गये हैं और जो सब शरीरमे घुस गये हैं ऐसे बाणोकी नोकोसे जिसके प्राण मानो कीलित कर दिये गये हैं ऐसा कोई योद्धा पहलेकी तरह ही निश्चल हो बहुत देर तक लड़ता रहा था ॥१३३॥ शत्रुओके धनुषधारी योद्धाओने प्रलयकालकी जलती हुई अग्निकी चंचल शिखाओके समान तेजस्वी बाणोके द्वारा मेरी सेनाको छिन्नभिन्न कर दिया है यह देख जयकुमारने अपने छोटे भाइयो सहित क्रोधित हो वज्रकाण्ड नामका धनुष लिया और उसे सजाकर स्वयं युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥१३४-१३५॥ उस समय जयकुमारके बाण † नि सृष्टार्थ (उत्तम) दूतके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार उत्तम दूत स्वामीके कानके पास रहते हैं अर्थात् कानसे लगकर बातचीत करते हैं उसी प्रकार बाण भी जयकुमारके कानके पास रहते थे अर्थात् कान तक खींचकर छोड़े जाते थे, जिस प्रकार उत्तम दूत गुण अर्थात् रहस्य रक्षा आदिसे युक्त होते हैं उसी प्रकार बाण भी गुण अर्थात् डोरीसे युक्त थे, जिस प्रकार उत्तम दूतकी योजना अच्छी तरह की जाती है उसी प्रकार बाणोकी योजना भी अच्छी तरह की गयी थी, जिस प्रकार उत्तम दूत पत्र लेकर जल्दी उठ खड़े होते हैं उसी प्रकार बाण भी अपने पखोसे जल्दी-जल्दी उठ रहे थे-जा रहे थे, जिस प्रकार उत्तम दूत व्यर्थ समय नहीं खोते हैं उसी प्रकार बाण भी व्यर्थ समय नहीं खोते थे, जिस प्रकार उत्तम दूत मार्गमे सीधे जाते हैं उसी प्रकार बाण भी मार्गमे सीधे जा रहे थे और जिस प्रकार उत्तम दूत शत्रुओके हृदयमे प्रवेश कर कठिनसे कठिन कार्यको सिद्ध कर लेते हैं उसी प्रकार बाण भी शत्रुओके हृदयमे घुसकर कठिनसे कठिन कार्य सिद्ध कर लेते थे ॥१३६-१३७॥ अथवा ऐसा

१ मायिकोद्भिन्न-ल० । २ सर्वाङ्गव्यापिभि । ३ प्रलयान्नि । ४ छिन्नमित्यपि पाठ । छादित खण्डित वा । ५ आत्मोद्यम् । ६ आकर्णमाकृष्टा । कर्णममीपे कृताञ्च । ७ पक्षे मन्देगपत्रं । ८ आशुविधायिन इत्यर्थः । ९ हृदयम् अभिप्राय च । १० अनाद्यार्थम् । ११ अनङ्गन् मम्पादिनप्रयोजनदूतममा । १२ प्रकृष्टमन्तापभी-परा । भपद्धरा । १३ राजाओके यह गुण ये हैं—“मन्त्रिविग्रहानानि मन्वाप्यामनमेव च । द्वैवीभावञ्च विज्ञेय यद्वाणा नीतिवेदिनाम् ।” † जो दोनोका अभिप्राय लेकर स्वयं उत्तर-प्रत्युत्तर करता हुआ कार्य सिद्ध करता है । उमे नि सृष्टार्थ दूत कहते हैं । यह दूत उत्तम दूत कहना है ।

प्रस्फुरन्नि फलोपतै सुप्रमाणै सुकल्पितै । विगोपाद्भाविना विश्वगोचरैविषयारहै ॥१३९॥
 यादिनव जयनोद्यै कान्तिं भिन्न जिघृक्षुणा । प्रतिपन्न प्रतिक्षिप्त^१ शम्भ्यै शास्त्रनिर्मापुणा ॥१४०॥
 रगा^२ रगा^३ प्रति प्रास्ता^४ प्रोद्भिद्य गगन गता । निषतन्त न यादसे^५ त मिथयापत-मृता ॥१४१॥
 सुतीक्ष्णा द्यौक्षणाभीला^६ प्रचलन्त समन्तत । मृदस्त्रशनिवत्पनु ग्नाद् विमुग्गा गग नरा ॥१४२॥
 शरसङ्घातसन्ध्यान् गृध्रपक्षा^७ चकारितान् । अष्टमुद्गरापात^८ नमागा नमस्य ध्यधु ॥१४३॥
 चण्डैरेकाण्डमृत्सुदच^९ काण्डैरापाद्यतादिमे^{१०} । युगस्मिन् किं किमस्ता^{११} गुमादिभिना^{१२} गुम^{१३} भवन् ॥१४४॥
 दूपाताय नो^{१४} किं तु रदपाताय स्वधरे । रगा कर्णा^{१५} तमादृष्य मुक्ता^{१६} ह-युर्दिपादिकान् ॥१४५॥
 अधोमुखा रगैमुक्ता रगपानान् पलाशानान्^{१७} । पृथक् मांहमो^{१८} वेयुनरु^{१९} वाऽधनरध^{२०} ॥१४६॥

जान पड़ता था मानो वे बाण कपट युद्ध कर रहे हा क्याकि जिस प्रकार कपट युद्ध करनेवाले पत्रवत अर्थात् सवारो सहित और प्रतापसे उग्र होते है उसी प्रकार वे बाण भी पत्रवत अर्थात् पखो सहित और अधिक सत्तापसे उग्र थे, जिस प्रकार कपटयुद्ध करनेवाले युद्धम शीघ्र जात ह और सबसे आगे रहते ह उसी प्रकार वे बाण भी युद्धम शीघ्र जा रहे थे और सबसे आगे थे तथा कपट युद्ध करनेवाले जिस प्रकार बिना जाने सहसा आ पड़ते ह उसी प्रकार वे बाण भी बिना जाने सहसा आ पड़ते थे ॥१३८॥ जिस प्रकार विजयके द्वारा उत्तम कीर्तिको गीघ्र प्राप्त करनेवाला और जीतनेकी इच्छा रखनेवाला वादी प्रकाशमान, अज्ञाननागादि फलोंसे युक्त, उत्तम प्रमाणोसे सहित, अच्छी तरह रचना किये हुए, संसारम प्रसिद्ध और विजय प्राप्त करानेवाले शास्त्रोसे विरोधी-प्रतिवादीको हराता है उसी प्रकार विजयके द्वारा शीघ्र ही उत्तम कीर्ति सम्पादन करनेवाले, जीतनेकी इच्छा रखनेवाले तथा विरोध प्रकट करनेवाल जयकुमारने देदीप्यमान, नुकील, प्रमाणसे बने हुए, अच्छी तरह चलाये हुए, संसारम प्रसिद्ध और विजय प्राप्त करानेवाल शास्त्रोसे शत्रुओंकी सेना पीछे हटा दी थी ॥१३९ १४०॥ जयकुमारने विद्याधरोके प्रति जो बाण चलाये थे वे आकाशको भेदन कर आगे चले गये थे और वहाँसे वे जबतक लौटे भी नहीं थे तबतक वे विद्याधर मानो भयसे ही डरकर गिर पड़े थे ॥१४१॥ जो अत्यन्त तीक्ष्ण है, देखनेम भयकर है, और चारों ओरसे जल रहे ह ऐसे विद्याधरोके द्वारा आकाशसे छोड़े हुए बाण योद्धाओंके मस्तकोपर धजके समान पड़ रहे थे ॥१४२॥ जो बाणोंके समूहसे ढक गये हैं, गीघके पंखोसे अधकारमय हो रहे है और जिन्हे मुद्गरोंके आघात तक दिखाई नहीं पड़ते है ऐसे योद्धाओंको विद्याधर लोग आकाशसे घायल कर रहे थे ॥१४३॥ इस युगम उन तीक्ष्ण बाणोने सबसे पहले अकालमृत्यु उत्पन्न की थी सो ठीक ही है क्योंकि जिन्होंने सूयका प्रताप भी कम दिया है ऐसे लोगोंसे क्या-क्या अशुभ काम नहीं होते ह ? ॥१४४॥ दूर आनेके लिए नहीं किन्तु मजबूतीके साथ पड़नेके लिए विद्याधरोने जो बाण कान तक खीचकर छोड़े थे उन्होने बहुत-से हाथी आदिको मार डाला था ॥१४५॥ जिस प्रकार रक्त पीने और मांस खानेसे पापी जीव नीचा मुख कर नरकमें जाते है उसी प्रकार विद्याधरों

१ निराकृत । २ बाणा । ३ विद्याधरान् । ४ मुक्ता । ५ विद्याधरा । ६ दशन भयावहा । ७ मुद्गराघातान् ल० म० । ८ गगनमाश्रित्य । ९ अकाल । १० बाण । ११ उत्पादित । १२ अस्त्राशुगाशिभि इति पाठे अस्त्राण्ये वाशुगाशिन पवनाशना^१ तैः सर्वैरित्यर्थः । आशगो वायुविशिखौ इत्यभिधानात् । १३ न । १४ धनिति स्म । १५ मांसाशनात् । १६ सपापा । १७ वा हव । ईयु गच्छति स्म । १८ भूमेरध स्थितम् ।

१ भूमिर्निष्ठुर २ क्षिप्ताद्विष्टानुत्कृष्य ३ यष्टयः । अयुद्धं दिवं दूर्तीडेयीया ४ दिव्ययोपिताम् ॥ १४७ ॥
 चक्रिणश्चक्रमेक ५ तन्न तन ६ कस्यचित्क्षतिः । चत्रैरकालचक्राभैर्वहवस्तत्र जघ्निरं ॥ १४८ ॥
 समवेगैः १० समं ११ मुक्तैः गरैः १२ खचरभूचरैः । व्योमन्यन्योन्यमुखालग्नैः स्थित कतिपयक्षणे १३ ॥ १४९ ॥
 खभूचरगरैश्छन्ने खे परस्परगोविमिः । १४ अन्योन्यावीक्षणोत्तेषामभूद् रणनिषेधनम् ॥ १५० ॥
 स्वास्वैः १५ गस्त्रैर्नभोगानां गरैश्चावावित भृगम् । स्वमैन्यं वीक्ष्य खोक्षिसत्रीक्षणोप्राशुक्षणिः १६ ॥ १५१ ॥
 सद्यः संहारसक्रुद्धसमवर्तिसमो १७ जय । प्रारब्ध १८ योद्धुं वज्रेण वज्रकाण्डेन वज्रिवत् ॥ १५२ ॥
 निजितागनिनिर्घोषजयज्याघोषभीलुका १९ । चापमायकचैतांसि प्राक्षिपन् २० सह गत्रवः ॥ १५३ ॥
 चापमाकर्णमाकृष्य ज्यानिवेशितसायकः । लघुमंधानमोक्षः सोऽवेक्ष्य २१ विध्यन्निव २२ क्षणम् ॥ १५४ ॥
 न मध्ये न शरीरेषु दृष्टास्तद्योजिताः गरा । दृष्टास्ते केवलं भूमौ सत्रणाः पतिताः परे ॥ १५५ ॥
 निर्मालयन्तश्चक्षुषि ज्वलयन्तः शिलीमुग्धाः । मुग्धानि ककुभां ववुः २३ २४ खादुल्कालीविभीषणाः २५ ॥ १५६ ॥

के द्वारा छोड़े हुए वाण गत्रुओका रक्त पीने और मांस खानेसे पापी हो नीचा मुख कर पृथिवी-
 के नीचे जा रहे थे—जमीनमे गड रहे थे ॥१४६॥ इसी प्रकार भूमिगोचरियो-द्वारा निर्दयताके
 साथ छोड़े हुए वाण गत्रुओको भेद कर आकाशमे बहुत दूर तक इस प्रकार जा रहे थे मानो
 देवागनाओकी दासियाँ ही हो ॥१४७॥ चक्रवर्तीका चक्र तो एक ही होता है उससे किसीकी
 हानि नहीं होती परन्तु उस युद्धमे अकाल चक्रके समान बहुत-से चक्रोसे अनेक जीव मारे गये
 थे ॥१४८॥ विद्याधर और भूमिगोचरियोके द्वारा एक साथ छोड़े हुए समान वेगवाले वाण
 आकाशमे एक दूसरेके मुखसे मुख लगाकर कुछ देर तक ठहर गये थे ॥१४९॥ परस्पर एक
 दूसरेको रोकनेवाले विद्याधर और भूमिगोचरियोके वाणोसे आकाश ढक गया था और
 इसीलिए एक दूसरेके न दिख सकनेके कारण उनका युद्ध वन्द हो गया था ॥१५०॥ अपने
 और गत्रुओके गस्त्रो तथा विद्याधरोंके वाणोसे अपनी सेनाको बहुत कुछ धायल हुआ देखकर
 नेत्ररूपी भयकर अग्निको आकाशकी ओर फेकनेवाला और सहार करनेके लिए कुपित हुए
 यमराजकी समानता धारण करनेवाला जयकुमार इन्द्रकी तरह वज्रकाण्ड नामके धनुषसे
 युद्ध करनेके लिए तैयार हुआ ॥१५१-१५२॥ वज्रकी गर्जनाको जीतनेवाले जयकुमारके
 धनुषकी डोरीके गव्द मात्रसे डरे हुए कितने ही गत्रुओने धनुष, वाण और हृदय—सब फेंक
 दिये । भावार्थ—भयसे उनके धनुष-वाण गिर गये थे और हृदय विक्षिप्त हो गये थे ॥१५३॥
 कान तक धनुष खीचकर जिसने डोरीपर वाण रखा है और जो बड़ी गीघ्रतासे वाणोको रखता
 तथा छोडता है ऐसा जयकुमार क्षण-भरके लिए ऐसा जान पडता था मानो प्रहार ही नहीं कर
 रहा हो अर्थात् वाण चला ही नहीं रहा हो ॥१५४॥ जयकुमारके द्वारा चलाये हुए वाण न
 बीचमे दिखते थे, और न शरीरमे ही दिखाई देते थे, केवल धावसहित जमीनपर पडे हुए गत्रु
 ही दिखाई देते थे ॥१५५॥ जो देखनेवालोके नेत्र वन्द कर रहे हैं, सबको जला रहे हैं और
 उल्काओके समूहके समान भयंकर हैं ऐसे जयकुमारके वाणोने दिगाओके मुख ढक लिये थे

१ भूमौ स्थित । २ गत्रून् । ३ उद्भिद्य । ४ वाणा । ५ द्वीमदृशा । ६ -मेकान्त न ल० । ७ चक्रान् ।
 ८ नमन्तान् कृन्तान्तममूहममानं । ९ हता । १० उभयत्रापि नमानज्वै । ११ युगपन् । १२ खेचर-ल०,
 ३०, ५०, ८०, ९० । १३ -क्षणात् ल०, अ०, ५०, ८०, ९० । १४ परस्परावलोकनाभावान् । १५ आत्मी-
 यानात्मीये । १६ स्वान्त्रै अ० । १७ अग्नि । १८ महाराज कुपितयमदृश । १९ उपक्रान्तवान् । २० भीरव ।
 २१ त्यक्तवन्त । २२ दृष्ट । २३ गगनमुच्चन्निव । २४ वेष्टयन्ति नम । २५ गगनादिर्गच्छन्त इत्यर्थः ।
 २६ उल्कासमूहभोका ।

तियगोष्कणपापाणैरेष्टया न्यजिराद्^१ बहि । पतितान्^२ गचरान्नु मत्तन् स्वगतान्^३ जहा ॥१॥ ॥
 गरसदृश विद्याष्टमुकुम्भोऽगलन्^४ मुर । मणया गुणगुणया जगन्वापायनाकृता ॥१५॥
 पतन्मृतगान्धर्वीनप्रियाणि स्वाधुवारिणा । धारिद्वानमियाद्य^५ कृषामायादिता जय ॥१६॥
 अन्तक समवर्तीति^६ तद्वातय न चत्तया । वध चक्रिमुत्तम्यैर बल प्रेनाधिपा^७ भवन् ॥१७॥
 वध विधाय न्यायन तयनायायवतिनाम् । यमस्माक्ष्णाऽप्यभूदमराथ^८ दिव्यान्नायम^९ ॥१८॥
 तावद्धेपितनिर्घाथर्माययन्ता द्विषा हयाः । यलमादयामयन्त स्व स्वाचनुदयान्मूनव^{१०} ॥१९॥
 प्रासा प्रस्फुरतस्तीक्ष्णानमाणा धाऽधादिन^{११} । आवतयन्त मप्रापन् यमम्यथाप्रता मग ॥२०॥
 नयोऽपि स्वयमाग्रा जया जयनुरद्वमम् । क्रुद्ध प्रामान् समुद्रय थादूमदरायमादिकान् ॥२१॥
 अभून् प्रहतगम्भारमग्मा^{१२} दिग्निर्भीषण । यलानयदचलस्फूर्जराज^{१३} न्य वानिभि ॥२२॥

॥१५६॥ तिरछे जानेवाले गाष्कण रूप पत्थरात्रे द्वारा युद्धवे आंगनम बाहर गिगये हुए विद्या
 धरोंको न देखकर मूय लग कहने उगे थ पि दया विद्याधर गरीर सहित ही मग च गये हैं
 ॥१५७॥ वाणाकी चोटसे छिन्न भिन्न हुए विद्याधराके मुकुटास जो मणि गिर रह थ व एस जान
 पडत थ मानो गुणोंसे बडा हानेवाले देवान जयकुमारको भेंट ही किये हा ॥१५८॥ गिर गिरकर
 मरे हुए विद्याधराक साथ आयो हुई स्त्रियां अपन अश्रुदृपी जलसे जो उन्ह जगजलि-सी दे
 रही थी उसे देखकर जयकुमारको दया आ गयी थी ॥१५९॥ यमराज समवर्ती है अर्थात्
 सबको समान दृष्टिसे देखता है यह केवल कहावत ही है यदि ऐसा न होता तो वह केवल चक्र
 वर्तीके पुन अककीर्तिकी सेनाम ही क्या प्रतोका राजा होता ? अर्थात् उसीकी सेनाको क्या
 मारता ? ॥१६०॥ जयकुमारके द्वारा अयायम प्रवृत्ति करनेवाले लोगोंको वध कराकर वह
 तीक्ष्ण यमराज भी उस युद्धम न्य अग्निके समान धमस्वरूप हा गया था । भावार्थ-पूर्वकाल
 में साक्षी आदिके न मिलनेपर अपराधीकी परीक्षा करनेके लिए उस अग्निमें प्रविष्ट कराया
 जाता था अथवा जलते हुए अंगार उसके हाथपर रखाये जाते थे । अपराधी मनुष्य उस
 अग्निमें जल जाते थे परन्तु अपराधरहित मनुष्य सीता आदिके समान नही जलते थे । उसी
 आगको दिव्य अग्नि कहते हैं सो जिस प्रकार दिव्य अग्नि दुष्ट होनेपर भी अपराधीकी ही
 जलाती है अपराधरहितको नही जलाती उसी प्रकार यमराजने दुष्ट होकर भी अयायी
 मनुष्योंका ही वध करमा न कि न्यायी मनुष्योंका भो, इसलिए वह यमराज दुष्ट हानेपर भी
 मानो उस समय दिव्य अग्निके समान धमस्वरूप हो गया था ॥१६१॥ इतनेम ही हिन
 हिनाहुटके शब्दासे शत्रुओंको डराते हुए और अपनी सेनाको धीरज बैधाते हुए चक्रवर्तीके
 पुत्र-अर्ककीर्तिके घोड़े सामने आये ॥१६२॥ यमराजके अग्रगामी योद्धाओंके समान, देदीप्य
 मान और पने भालोंको बार-बार घुमाते हुए घुडसवार भी सामने आय ॥१६३॥ विजय
 करनेवाले जयकुमारने भी क्रोधित हो, जयतुरगम नामके घोड़ेपर सवार होकर अपनी घुडसवार
 सेनाको भाला लकर युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥१६४॥ घोड़ोंके द्वारा जिसम चवल और
 बड़ी-बड़ी लहर सी उठ रहो हैं ऐसा वह सेनारूपी समुद्र बजते हुए गम्भीर नगाड़े आदिके शब्दों

१ शस्त्रविशेष । २ रणाडगणात् । ३ पतितान् ल० स अ० य० । ४ स्वग गतान् । ५ भुग्न । ६ गलति
 स्म । ७ गतप्राणविद्याधरानुगत । ८ जलाञ्जलिम् । ९ विधाय । १० बालमुद्धादिषु हननक्रियाया समानन
 वतमान । ११ यम । १२ अन्तक । १३ जय । १४ क्षपणान्निसम । १५ अश्वतिनाद । १६ चक्रिमुनो
 संबन्धिन । १७ अवारोहा । १८ मग्नीत्यनुकरणम् ।

तिथ्याच्छणपापाणैरेष्ट्वाज्यजिराद्^१ यति । पातितान्^२ मन्थरान्शु मग्नान् मग्नान्^३ तडा ॥१॥
 शरसरुण विद्याध^४मुकु^५म्याऽगलन्^६ सुर । मणया गुणगृही^७ नयम्यापायनाहृता ॥१५॥
^८पत-मृतमगा-त्रातप्रियाभि स्त्राभ्रुवारिणा । धारिदानमिगधय^९ वृषामायादिना नय ॥१७॥
 अन्तक^{१०} समयतानि^{११} तन्तैव न चतथा । कथं चक्रिमुतम्यत्र वन प्रेताधिपा^{१२} मयन ॥१६०॥
 कथं विधास न्यायन नयनाम्यायवर्तिनाम् ।^{१३}यमन्ताम्याऽप्यभृद्धमहनत्र^{१४} दिव्यान्लोपम^{१५} ॥१६१॥
^{१६}तावन्नेपितनिर्घापमापयता द्विपा हया । यत्माइगमयन्त स्त्र स्त्राचमुदयानिमूनन^{१७} ॥१६२॥
 प्रामात्रम्कुरतस्त्राणानमात्रा चाश्वाहिन^{१८} । आपतयन्त सप्रापन यमम्यत्रागमा मदा ॥१६३॥
 जयोऽपि स्त्रयमाग्रा जय जयनुरहमम् । क्रुद्ध शमान् यमुदय चान्द्रमदयामादिहान ॥१६४॥
 अभून् प्रहतगम्भीरमम्मा^{१९} दिग्गजिभाषण । यलाणयश्चल्लक्ष्मणलक्ष्मण इव यानिभि ॥१६५॥

॥१५६॥ तिरछे जानेवाल गाफ्फण रूप पत्थराने द्वारा युद्धके आंगनम बाहर गिराये हुए विद्या
 धराका न दसकर मूय लोग कहने लगे व कि देखो विद्याधर गरीर सहित ही स्वर्ग चर गय है
 ॥१५७॥ बाणोकी चोटस छिन्न मिन्न हुए विद्याधराके मुकुटास जो मणि गिर रह थ व एम जान
 पडते थे मानो गुणोसे वश हानेवाल देवान जयकुमारको भेंट ही किये हा ॥१५८॥ गिर गिरकर
 मरे हुए विद्याधरोके साथ आयी हुई स्त्रियां अपने अश्रुरूपी जलस जा उह जगजलि-मी दे
 रही थी उसे देखकर जयकुमारको दया आ गयी थी ॥१५९॥ यमराज समवर्ती है अर्थात्
 सबको समान दृष्टिसे देखता है यह केवल कहावत ही है यदि ऐसा न होता तो वह कबल चक्र-
 वर्तकि पुत्र अककीर्तिकी सेनाम ही क्यों प्रतीका राजा होता ? अर्थात् उसीकी सेनाको क्या
 मारता ? ॥१६०॥ जयकुमारके द्वारा अयायम प्रवृत्ति करनेवाल लोगोको वध कराकर वह
 तीक्ष्ण यमराज भी उस युद्धम दिव्य अग्निके समान घमस्वरूप हो गया था । भावाध-पूर्वकाल
 में साक्षी आदिके न मिलनेपर अपराधीकी परीक्षा करनेके लिए उस अग्निमें प्रविष्ट कराया
 जाता था अथवा जलते हुए अगर उसके हाथपर रखाये जाते थे । अपराधी मनुष्य उस
 अग्निम जल जाते थे परन्तु अपराधरहित मनुष्य सीता आदिके समान नहीं जलते थे । उसी
 आगको दिव्य अग्नि कहते हैं सो जिस प्रकार दिव्य अग्नि दुष्ट हानेपर भी अपराधीको ही
 जलाती है अपराधरहितको नहीं जलाती उसी प्रकार यमराजने दुष्ट होकर भी अन्यायी
 मनुष्योंका ही वध कराया न कि न्यायी मनुष्याका भी, इसलिए वह यमराज दुष्ट हानेपर भी
 मानो उस समय दिव्य अग्निके समान घमस्वरूप हो गया था ॥१६१॥ इतनेम ही हिन
 हिनाहटके शत्रुओसे शत्रुओंको डराते हुए और अपनी सेनाको घोरज वधाते हुए चक्रवर्तकि
 पुत्र-अककीर्तिके घोडे सामने आये ॥१६२॥ यमराजके अग्रगामी योद्धाओके समान, देदीप्य
 मान और पने भालोंको बार बार घुमाते हुए घुडसवार भी सामने आये ॥१६३॥ विजय
 करनेवाल जयकुमारने भी क्रोधित हो, जयतुरंगम नामके घोड़ेपर सवार होकर अपनी घुडसवार
 सेनाको भाला लेकर युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥१६४॥ घोडोके द्वारा जिसम चचल और
 बड़ी-बड़ी लहर-सी उठ रही है ऐसा वह सेनारूपी समुद्र बजते हुए गम्भीर नगाडे आदिके शब्दों

१ सस्त्रविघ्नेष । २ रणाङ्गणात् । ३ पतितान् ल स अ० म० । ४ स्वर्ग गतान् । ५ मग्न । ६ गलति
 स्म । ७ गतप्राणविधाधरानुगत । ८ जलाब्जलिम् । ९ विधाय । १० बालवृद्धादिषु हननक्रियाया समानेन
 वनमान । ११ यम । १२ अन्तक । १३ जय । १४ क्षपयाग्निसम । १५ अस्वनिनाद । १६ चक्रिमुनो
 संबन्धिन । १७ अश्वारोहा । १८ मम्मरयनुकरणम् ।

अमिसवद्वनिः श्रुतिः स्फुल्लितो रगेऽनल । स्यापगे गम्यवाने व्यर्थापिष्टे धराचिन्ते ॥१६६॥
 जनिन प्राग्ज्याघानादश्रवन्तामिवायकम्^१ । त्रियन्ते न सहन्ते हि परिभृति मनेजम् ॥१६७॥
 हिताः पश्चिमपादान्वा वद्धासपा^२ परम्परम् । पति केचिद्विवावन्तो^३ ये यन्ते स्म चिर ह्या ॥१६८॥
 समुद्रनाम्^४ सपृष्ठनन्तरोन्मिश्रितम् । नमस्तन्महा भयस्तदा पत्न्यविता यथा ॥१६९॥
 पतिनामिनिधानान् मुदः स्वामिना क्वचिन् । शन्प्राप्तना^५ शिरान्युच्चैरन्वेष्टुं चा भ्रमन्त्या ॥१७०॥
 पत्न विश्वहन्मन्त्राऽज्वातृपया क्रोऽपि नावर्धन । ने स्वदन्तमृगंश्च क्रुद्धा प्रापन्त परम्परम् ॥
 वगसात्रागशिष्टा^६ मण्डलाप्रैश्चिक् क्रुद्धा । लोहदण्डैश्चिवाग्न्यैर्धोग युयुधिरे गुरि ॥१७१॥
 शिर प्रहरणेताम्यो^७ पश्यन्तान्य प्रहृष्टना । सर्वगोमिश्रिगिद्धो^८ दृष्ट्वा पञ्चादयुद्धं न ॥१७२॥
 ह्यान प्रत्तिकशाकृय^९ यनुःनन्त्रिर्गोपन्म^{१०} । अयुध्यन् पुन सुमृत्तदा द्विगुणयद्गम ॥१७३॥
 जयोऽजान् यानुन्तावदाविहृत्य यमाकृति^{११} । कर्णार्थमिवान्त ह्यमस्तुयन्^{१२} क्रया ॥१७४॥
 वाश्यन्त^{१३} त्मान्गोम्य क्त्वास्तज्वालिसापणम्^{१४} । चित्रेण^{१५} विट्ठिडवारी बलेव स्ववैलाम्युधिस^{१६} ॥

सं भयकर हो रहा था ॥१६३॥ उस युद्धमे पृथिवीपर जो भयकर वाणोंका समूह पड़ा हुआ था उसमे तलवारोंकी परम्परकी चाँटमे निकले हुए फुल्लियोंमे अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी ॥१६६॥ घोड़े घोड़ोंकी चाँटके पहल्ले हो वाणोंके सामने दौड़ रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि तेजस्वी पुन्प मर जाते हैं परन्तु पराभव सहन नहीं करते ॥१६७॥ परम्पर एक दूसरेपर क्रोधित हो पिछले पंरामे खड़े हुए कितने ही घोड़े चिरकाल तक इस प्रकार युद्ध कर रहे थे मानो अपने स्वामीकी रक्षा ही कर रहे हो ॥१६८॥ उस समय ऊपर उठायी हुई और नधिरमे रगी हुई तलवाररूपी चञ्चल पन्नामे आकाशरूपी वृक्ष ऐसा मुजोभित हो रहा था मानो उसपर फिरमे तबीत पत्ते निकल आये हो ॥१६९॥ कहींपर खाली पीठ लिये घोड़े इस प्रकार दौड़ रहे थे मानो तलवारकी चाँटमे वृष्ट दूर पड़े हुए अपने स्वामियोंके गिर ही खोज रहे हो ॥१७०॥ घोड़ोंको बिना सीगके पशु मानकर दयामे कोई नहीं माग्ता था परन्तु वे क्रोधित होकर दाँत और त्वगमे एक दूसरको मार्ने थे ॥१७१॥ उस युद्धमे कितने ही योद्धा क्रोधित होकर अखण्ड लोहके डण्डेके समान जिनमे बाँसमात्र हो डोप रह गया है ऐसी तलवारोंमे चिरकाल तक युद्ध करते रहे थे ॥१७२॥ अन्य कोई योद्धा, अन्धा करनेवाली गिरकी चाँटमे यद्यपि कुछ देख नहीं सक रहा था तथापि गलेकी पीछेकी तमामे गिरको जुड़ा हुआ देखकर वह फिर भी युद्ध कर रहा था ॥१७३॥ उस समय कितने ही योद्धा घोड़ोंकी महायत्ता ले कपिधीर्षक नामक धनुषोंमे युद्धको द्विगुणित करने हुए अच्छी तरह लड़ रहे थे ॥१७४॥ इतनेमे ही तलवार हाथमे लिये हुए जयकुमार अपने छोटे भाइयोंके साथ-साथ यमराज सरीखा आकार प्रकट कर और सिंहके समान घोड़ेपर सवार होकर क्रोधमे आगे बढ़ा ॥१७५॥ कल्पान्त कालकी अग्निके समान भयकर जयकुमारको घोड़ेपर सवार हुआ देखकर शत्रुके घोड़ोंकी पक्कि लहरके समान अपने सेनारूपी समुद्रमे जा घुसी ॥१७६॥ जिनपर पनाकाएँ नृत्य कर रही हैं और वेगवाली घोड़े

१ ज्वरति स्म । २ भ्रमावृण्चिन्ते । ३ आपुत्रम्याभिमुखम् । ४ वद्धक्रुध । ५ रथल । ६ युद्धन्ते - ल० ।
 ७ ताम्बन-ल० । ८ स्वामिगृहिणृष्टा । ९ न हन्ति स्म । १० ते च दन्त-ल० । ११ अन्ति स्म । १२ वेणु-
 मात्रावशिष्टस्वरूपैः । १३ कौशेयकै 'कौशेयकी मण्डलाश्च करवाल क्रुपाणवन्' इत्यभिधानान् । १४ मन्त्रक-
 वातेन । १५ किञ्चिदपि नालोकयन् । १६ गलस्य पश्चिममिगन्तिन । १७ गल्पपञ्चिमभाग करम्पर्शनाशेक्य ।
 १८ युयुधे । १९ सहायीकृत्य । 'प्रतिष्कञ्च सहाये स्याद् वानाहिगपगगो' इत्यभिधानान् । २० चापविशेष ।
 वन्तिन इत्यर्थः । २१ यमाकृतिम् ल० । २२ उद्यमानि सन् । २३ अवमारोह्यन्तम् । २४ प्रत्यगग्निवद्भयं-
 करम् । २५ शत्रुवाजिसमूह । २६ स्वमैवसागरम् ।

चिरान् पर्यायमासाद्य प्रनृत्यत्कतया रया । जयिमिष्याजिमिष्युदा प्राधावन् विद्विष^३ प्रति ॥१७७॥
 निशोपह^४ तिपूणेषु रथेषु रथनायका । तुला^५ जगज्जरास्म पिन्वरे^६ कुञ्जरारिमि ॥१७८॥
 चक्रसधटसपिष्टवासासमांसकदम् । रथकट्यादचरन्ति स्म सप्रा^७ र्था मन्दपानवत् ॥१७९॥
 कुत्तासिप्रासचक्रादिवकीर्णं मणितक्रमा^८ । अक्रामन् कृच्छुकृच्छुण रण रथनुरहमा ॥१८०॥
 तदा सनद्धसयुक्तसर्वायुभृत^९ रथम् । सकम्प^{१०} वृषम^{११} वाऽक समारुहपराक्रमः ॥१८१॥
 पुरोज्वलस्समुत्सपच्छरतीक्ष्णागुसंतलिः । शत्रुमन्तमम भिन्दन् बालाग्नमजय-जय ॥१८२॥
^{१२} मण्डलाग्रसमुत्सृष्टदुष्टाद्य शस्त्रदमबित् । जया मिषजम^{१३} वैय^{१४} शत्रुगल्य समुद्रान् ॥१८३॥
 ध्वजस्थोपरि भूमा या तनादृष्टा^{१५} तु^{१६} सायक । पपात तापमापाद्य मूर्यमश्रुम डिपाम् ॥१८४॥
 ध्वजदण्डान् समालण्ड्य^{१७} विद्विषाऽ^{१८} वातपौरपान् । कुवन् सवान् स^{१९} नियशान् सामय^{२०} गन्धनाथ ॥१८५॥
 विच्छिन्नकतव कचिद् क्षण तस्थुमृता इय । प्राणैर्न प्राणिन^{२१} किन्तु मानप्राणा हि मानिन ॥१८६॥
 प्रज्वलन्त^{२२} जयन्त त जय त सोढुमक्षमा । सह सर्वेऽपि^{२३} सपतुर^{२४} मग्नि गलभा यया^{२५} ॥१८७॥

जिनम जुते ह ऐसे रथ चिरकालम अपना नम्बर (चारी) पाकर शत्रुआके प्रति दीडने लगे ॥१७७॥ रथोंके स्वामी, सम्पूर्ण शस्त्रोसे भरे हुए रथापर सवार हो पिंजराम बन्द हुए सिंहाकी तुलना धारण करते हुए गरज रहे थे ॥१७८॥ उस युद्धम पहियाके संघट्टनस पिम हुए मुरदोंके खून और मासकी बीचडम रथोंके समूह ऐसे चल रह थे मानो किमी समुद्रम छोटी-छोटी नावें ही चल रही हों ॥१७९॥ बरछा तलवार, भाल और चक्र आदिस भरे हुए युद्धक्षेत्रमें धायल पैरोंवाल रथके घाडे बडे कष्टसे चल रहे थे ॥१८०॥ उसी समय तैयार हुए तथा जुडे हुए सब प्रकारके शस्त्रोसे व्याप्त रथपर आरुढ़ होनेसे जिसका पराक्रम वपभ राशिपर आरुढ़ हुए सूर्यके समान बढ रहा है, जिसके आगे चलते हुए बाणरूपी तीक्ष्ण चिरणोंका समूह प्रकाश मान हो रहा है और जो शत्रुरूपी अधकारको भेदन कर रहा है ऐसे उस जयकुमारने उदय होता हुआ बाल-सूय भी जीत लिया था ॥१८१-१८२॥ अथवा वह जयकुमार किसी अच्छे वैद्य या डाक्टरका अनुकरण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार वैद्य शस्त्रकी नोंकसे बिगडा हुआ खून निकाल देता है उसी प्रकार वह जयकुमार भी तलवारकी नोंकसे दुष्ट-शत्रुआका खून निकाल रहा था जिस प्रकार वैद्य शस्त्र चलानेकी क्रियाको जानता है उसी प्रकार वह जयकुमार भी शस्त्र चलानेकी क्रिया जानता था और वद्य जिस प्रकार शल्यको निकाल देता है उसी प्रकार जयकुमार भी शत्रुरूपी शल्यको निकाल रहा था ॥१८३॥ उसके द्वारा चलाये हुए बाण शत्रुओको सन्ताप उत्पन्न कर अशुभकी सूचना देते हुए धूमकेतुके समान उनको ध्वजाओपर पड रहे थे ॥१८४॥ उस समय शत्रुओंकी ध्वजाओंके दण्डोंको खण्ड खण्ड कर सब शत्रुओंकी पौरुषहीन तथा वंशरहित करता हुआ जयकुमार सोमवंशकी ध्वजाके समान आचरण कर रहा था ॥१८५॥ जिनकी पताकाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी हैं ऐसे कितने ही शत्रु क्षण भरके लिए मरे हुएके समान खडे थे सो ठीक ही है क्योंकि प्राणोसे ही प्राणी नहीं गिने जाते किन्तु अभिमानी मनुष्य अभिमानकी ही प्राण समझते हैं ॥१८६॥ अच्छी तरह जलते हुए

१ अवसरम् । २ पर्यायोऽवसरे क्रमे इत्यभिधानात् । ३ प्राप्य । ४ विद्विष प्रति ल० । ५ आयुध । ६ साम्यम् । ७ गजन्ति स्म । ८ पञ्जर ल० । ९ रण । १० मन्दनीरिव । ११ क्षतपादा । १२ सज्जीकृत । १३ सप्राप्य । १४ वृषभराशिभिव । १५ करवालेन समुत्सृष्टदुष्टात् । १६ अनुगतवान् । १७ गतो लङि लपम् । मन्वीय-ल० । १८ समुत्सृष्ट । १९ इव । २० अनुगत । २१ जय । २२ न जीवति । २३ जयतीति जयन् लम् । २४ अभिमुखमागता । २५ अग्निमग्नि यतज्ञा । २६ शलमा इव ल ।

मनदस्यन्दनाडचण्डान्मदा हेमाददादयः । कौण्डिण्डाष्फालनानानिन्दहस्तिः^१ मुवा ॥१८८॥
 वरपुत्रं द्विदृष्टिं वा वागवृष्टिं प्रति द्विप । वाचने^२ लक्ष्यता^३ नेयुस्मावदात्रिकुनायमा^४ ॥१८९॥
 निरन्यानन्तसेनादिशरनाल रणाणवे । स्यन्दनाडचोदयामासु. पानान्वा वातरहस्य^५ ॥१९०॥
 वनद्वयान्त्रमंघद्वयमुत्पत्ताशुशुभ्रगिम् । पेनुवांहा^६ पर^७ नेजस्नेजस्वी मरुते रुयम् ॥१९१॥
 अन्योऽन्य गण्डयन्ति स्म तेषा शस्त्राणि तद्रेणे ।^८ नरुमयपराग्रापुडिचत्रमस्येषु औशलम् ॥१९२॥
 न मृता वणिता नैव न जयो न पगजय । युद्धमानेवरो नेपु नाहवोऽप्याहवायने ॥१९३॥
 युद्धवाऽप्येव चिर शेकुने जेतु ने पन्थरम् । जय सेनाद्वये तस्मिन्^९ जयादन्येन दुर्लभः ॥१९४॥
 अन्नहांसो जय सर्वतन्नाऽऽलोक्ष्य लीलया । शरं सच्छादयामास सैन्य पुत्रस्य चक्रिण ॥१९५॥
 निष्पन्दीभृतमालोम्य चक्रिमृनु न्वगायनम् । रक्तोत्पलदन्त्रायासुच्छिन्न^{१०} नयनन्विषा ॥१९६॥
 जय^{११} पन्थ^{१२} नो मेऽय जयो जयमह रणे । विध्वंस्य^{१३} सुवने शुद्धमरुत स्यापथे यश ॥१९७॥
 विद्वयामस्य नाथेन्दुरग्यरुदशवर्द्धनम् । जयलक्ष्मीवर्णाह्वय विधेयान्मेऽयुता सुयन^{१४} ॥१९८॥

और मवको जीतने हुए उस जयकुमारको मरुत करनेके लिए अममय होकर वे सब जव्र उसपर इस प्रकार दृष्ट पड़े मानो अग्निपर पतने ही पड़ रहे हों ॥१८७॥ इननेमें ही जिनके ग्य तैयार है, जो बड़े क्रोधी है, जिन्होंने क्रोधमें धनुष खींचकर उनके शस्त्रोंमें सब दिशाएँ भर दी है और जव्र जवनक अपने लक्ष्य तक पहुँचने भी न पाये थे कि नवनक ही जिन्होंने अपना सब उद्यम प्रकट कर दिवाया है ऐसे हेमागद आदि राजकुमार जव्रोंपर अग्नि वर्षाके समान बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥१८८-१८९॥ वे अनन्तमेत आदिके बाणोंका समूह गोकक वायुके समान वेगवाले ग्योको गणन्पी समुद्रमें जहाजोंके समान दीड़ाने लगे ॥१९०॥ वे ग्योके घोड़े दोनों सेनाओं सम्बन्धी शस्त्रोंके मघद्वनमें उत्पन्न हुई अग्निपर पड़ रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि नेजस्वी मनुष्य हमरेका नेज करने सह सकता है ? ॥ १९१॥ उस युद्धमें दोनों सेनाओंके शस्त्र एक दूसरेको खण्ड-खण्ड कर देने थे, एक भी शस्त्र जव्रों तक नहीं पहुँचने पाता था सो ठीक ही है क्योंकि उनकी शस्त्रोंके चालनेकी कुशलता आश्चर्य करनेवाली थी ॥१९२॥ आश्चर्य है कि उन बाँझाओंके युद्ध करने हुए न तो कोई मरा था, न किसीको घाव लगा था न किसीकी जीत हुई थी और न किसीकी हार ही हुई थी, और तो क्या उनका वह युद्ध भी युद्ध-सा नहीं मालूम होता था ॥१९३॥ इस प्रकार बहुत समय तक युद्ध करके भी वे एक दूसरेको जीत नहीं सके थे सो ठीक ही है क्योंकि उन दोनों सेनाओंमें जयकुमारके सिवाय और किसीको विजय प्राप्त होना दुर्लभ था ॥१९४॥ उस समय यह सब देखकर मन ही मन हमने हुए जयकुमारने चक्रवर्तिक पुत्र-अर्ककीर्तिकी सब सेनाको लोलापूर्वक ही बाणोंसे ढक दी ॥१९५॥ अपनी सेनाको चेष्टारहित देखकर चक्रवर्तिका पुत्र-अर्ककीर्तिकी अपने नेत्रोंकी कान्तिसे लाल कमलके दलकी कान्तिकी जीतना हुआ अर्थात् क्रोधमें लाल-लाल आँखें करता हुआ कहने लगा कि आज जव्रकी जीत नहीं हो सकती, मेरी ही जीत होगी, मैं युद्धमें जयकुमारको मारकर ससारमें कल्पान्त काल तक टिकनेवाला युद्ध यश स्थापित करूँगा तथा आज ही बढ़ते हुए नाथ-

१ दिश । 'दिशन्तु कटुम बाष्ठा आशाश्च हस्तिश्च ता' । इन्द्रमिवानान् । २ रथिन । ३ रणाङ्गणे अभिमुखं समागन्त मुख्यताम् । ४ न गच्छन्ति स्म । ५ वायुवेगिन । ६ अग्निम् । ७ जन्तु । ८ अह्वा । ९ अण् । १० एक शस्त्रमपि । ११ जयकुमारान् । १२ अभिध्वंस्यन्त्यर्थ । १३ न । मैं नो जय इति दुर्वन्ति । १४ जयकुमारम् । १५ विनाश । अस्त्रिनाम्नेति दुर्वन्ति । १६ जस्य लक्ष्मी । इति दुर्वन्ति । १७ सुवमिति दुर्वन्ति । 'आ०' प्रती अमुवमिति दुर्वन्ति ।

जयोऽपि सुचिरात्प्राप्तप्रतिपक्षो व्यदाप्यहम् । लब्धेव^१ रथेन घट्ति^२ उत्साहाग्निसमोद्भिन्न ॥२२१॥
 सदाभयशून्यातगजाद्रिशिररस्थिताः । यादमारभिर^३ राजराजसिंहा^४ परस्परम् ॥२२२॥
 अ-यो-यरदनोद्भिन्नौ तत्र काचिद् व्यसू^५ गतौ । घिर^६ परस्पराधाराधामाता यमगात्रिवत्^७ ॥२२३॥
 समन्तत शरैश्चञ्चला रजुराजा गजाधिपा । क्षुब्धेषुगणाकाणसचरद् गिरिमिप्रिभाः ॥२२४॥
 दामिनो मानिनस्तुगा^८ कामव-तोऽ-तकोपमा । महा-त सवसवस्यान युद्धघ-तो^९ कथ गजा ॥२२५॥
 'गुगम्' गरिवापात^{१०} माग्रमर्गभयाद् द्विषे । स्वर्ग-यमव सभुष्ण^{११} धिक् स्थौल्य मानिचतसाम् ॥२२६॥
 नि शक्तान्^{१२} शक्तिमि^{१३} शक्ता^{१४} शक्तेऽश्चरान्कान् ।
 'शक्तियुक्तानशक्तश्च नि शक्तीन्' धिग्धिगूनताम्^{१५} ॥२२७॥
 'अस्त्रनिमिश्रमर्वाद्वा निर्मीलितविलोचना । सम्यक्^{१६} सहामरम्भा समावितपराक्रमा ॥२२८॥
 शुद्धैव^{१७} यद्धपत्य^{१८} काश्यपमथपरिच्छदा । 'समस्याधुरात्मन्पुत्रा'^{१९} निधाय हृदयऽहत ॥२२९॥

जयकुमारको रोकने लगे ॥२२०॥ जिस प्रकार बहुत-से इ-धनको पाकर वायुसे उद्दीपित हुई अग्नि देदीप्यमान हो उठती है उसी प्रकार उत्साहवृत्ती वायुसे बड़ा हुआ वह जयकुमार भी बहुत देरम शत्रुको पाकर अत्यन्त देदीप्यमान हो रहा था ॥२२१॥ उस समय दोनों सेनाओं में प्रसिद्ध हाथीएँ पवतोके शिरपर बड़े हुए अनेक राजारूपी सिंहाने भी परस्पर युद्ध करना आरम्भ कर दिया था ॥२२२॥ उस युद्ध में एक दूसरेके दाँतों से प्रहारसे विदीर्ण होकर मरे हुए कोई दो हाथी मिले हुए दो पवतोके समान एक दूसरेके आधारपर ही चिरकाल तक खड़े रहे थे ॥२२३॥ चारों ओरसे बाणोंसे ढके हुए बड़े-बड़े हाथी उस युद्धमें छोटे छोटे बाँसों से व्याप्त और चलते हुए पवतोके समान मुशोभित हो रहे थे ॥२२४॥ जो दानी है-जिनसे मद झर रहा है, मानी ह, ऊँचे ह, यमराजके समान ह और सब जीवोंसे बड़े ह ऐसे भद्र जातिके हाथी भला क्यों न युद्ध करते ? ॥२२५॥ जिस प्रकार हरिण भयभीत होकर भागते हैं उसी प्रकार मृगजातिके हाथी भी प्रारम्भमें ही पराजित होकर मयसे भागने लगे थे और उससे उन्होंने अपनी ही सेनाका चूण कर दिया था इससे कहना पड़ता है कि भीरु हृदयवाले मनुष्यों-के स्थूलपनका धिक्कार हो ॥२२६॥ शक्तिशाली (सामर्थ्यवान्) योद्धा अपने शक्ति नामक शस्त्रसे, जिनके पास शक्ति नामक शस्त्र नहीं है ऐसे शक्तिशाली (सामर्थ्यवान्) योद्धाओंको शक्तिरहित-सामर्थ्यहीन कर रहे थे और जिनके पास शक्ति नामक शस्त्र था किन्तु स्वयं अशक्त-सामर्थ्यरहित थे उन्हें भी शक्तिरहित-शक्ति नामक शस्त्रसे रहित कर रहे थे-उनका शस्त्र छुड़ा रहे थे इसलिए आचार्य कहते हैं कि ऊनता अर्थात् आवश्यक सामग्रीकी कमीको धिक्कार हो ॥२२७॥ जिनके समस्त अंग शस्त्रोंसे छिन्न भिन्न हो गये ह, नेत्र भन्द हो गये है, जिन्होंने युद्धकी इच्छाका अच्छी तरह संकोच कर लिया है, जो अपना पराक्रम दिखा चुके ह, जिन्होंने बुद्धिसे ही पल्यकासन बाँध लिया है और सब परिग्रह छोड़ दिये है ऐसे कितने ही

१ रथेनम् इ-धनम् । लब्धेवद्ध-धन ल म० अ०, प० स०, द०, द० । २ उत्साहवायुना समृद्धः । ३ राज राजमुख्या । सिंहा इति ध्वनि । ४ विगतप्राणी । ५ अन्यो-यावलम्बनी । ६ यमकगिरिवत् । ७ सचलद्गिरि-ल० अ० प० स० इ म० । ८ आरोहकानुकूला इत्यर्थ । ९ युद्धम्यन्ते ल० । १० मृगजातिभि । भक्ष्यान्वपणीमर्वा । ११ हरिणरिव । १२ प्रथमदिशायामेव । १३ सचूणमभवत् । १४ शक्त्यायुधरहितम् । १५ शक्त्यायुध । १६ समर्थः । १७ समर्थान् । १८ शक्त्यायुधयुक्तान् । १९ शक्त्यायुधरहितान् । २ सामग्रीविश्लेषताम् । २१ सम्यगुत्सृष्टसमारम्भा । २२ मनसव कृतपयङ्कासना । २३ सम्यक त्यक्तवत् । २४ प्राणान् ।

जयोऽपि सुचिरात्प्राप्तप्रतिपत्नी इयदीप्यलम् । लब्धेव रन्धनं धत्ति ^१उत्साहातिमयोद्भिन् ॥२२१॥
 सदोमयवल्ग्यातगजाद्रिनिम्नस्थिता । यादुमारभिर राजतामिहा ^२परस्परम् ॥२२२॥
 अयोम्यरदनाद्मित्रा तत्र कौचिद् व्यम् ^३गम् । चिर ^४परस्पराधारायामातां यमगाद्रिवन् ॥२२३॥
 समन्ततः ^५गरुडग्रा रजुराजा गजाधिपा । क्षुद्रबेणुगणाकाणसचरद्गिरिगिम्निमा ॥२२४॥
 दानिनो मानिनस्तुगा ^६कामवत्तोऽन्तकोपमा । महाम्त सचमयभ्यान् युद्धयत्ता ^७कथ गजा ॥२२५॥
 'मृगम्' ^८गैरिवापात ^९मात्रभग्नमयाद् द्विप । स्वमयमय सभुष्ण ^{१०}धिक् स्थात्य मानवतसाम् ॥२२६॥
 नि शक्तान् ^{११}शक्तिभि ^{१२}गताः ^{१३}गताश्चमुरशक्तान् ।
 'शक्तियुक्तानशक्तान् निःशक्तान्' ^{१४}धिगिरिगताम् ^{१५} ॥२२७॥
 'शक्तिनिमित्तसर्वाद्वा निर्मालितविलायना । मय्यक्' ^{१६}सहस्रमरम्भा समावितपराक्रमा ॥२२८॥
 क्षुद्रैव ^{१७}यदपश्यन् कस्यकमवपरिच्छदा । ^{१८}समस्याभुस्मृष्टरा ^{१९}निधाय हृदयऽहत ॥२२९॥

जयकुमारको रोकने लगे ॥२२०॥ जिस प्रकार बहुत-से इन्धनको पाकर वायुसे उद्दीपित हुई अग्नि देदीप्यमान हो उठती है उसी प्रकार उत्साहरूपी वायुसे बढ़ा हुआ वह जयकुमार भी बहुत देरम शत्रुको पाकर अत्यन्त देदीप्यमान हो रहा था ॥२२१॥ उस समय दोनों सनाआ में प्रसिद्ध हाथीरूपी पवतोंके शिखरपर बैठे हुए अनेक राजारूपी सिंहाने भी परस्पर युद्ध करना आरम्भ कर दिया था ॥२२२॥ उस युद्धम एक दूसरेके दाँताक प्रहारसे विदोष होकर मरे हुए कोई दो हाथी मिले हुए दो पवतोंके समान एक दूसरेके आधारपर ही चिरकाल तक खड़े रहे थे ॥२२३॥ चारों ओरसे बाणोंसे ढके हुए बड़े-बड़े हाथी उस युद्धम छोटे-छोटे बाँसों से व्याप्त और चलते हुए पवतोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२२४॥ जो दानी हैं—जिनसे मद झर रहा है, मानी हैं ऊँचे हैं, यमराजके समान हैं और सब जीवोंसे बड़े ह ऐसे भद्र जातिके हाथी भला क्यों न युद्ध करते ? ॥२२५॥ जिस प्रकार हरिण भयभीत होकर भागते हैं उसी प्रकार मगजातिके हाथी भी प्रारम्भमें ही पराजित होकर मयसे भागने लगे थे और उससे उन्होंने अपनी ही सेनाका चूण कर दिया था इससे कहना पड़ता है कि भीरु हृदयवाला मनुष्यो के स्थूलपनको धिक्कार हो ॥२२६॥ शक्तिशाली (सामर्थ्यवान्) योद्धा अपने शक्ति नामक शस्त्रसे, जिनके पास शक्ति नामक शस्त्र नहीं है ऐसे शक्तिशाली (सामर्थ्यवान्) योद्धाओंको शक्तिरहित—सामर्थ्यहीन कर रहे थे और जिनके पास शक्ति नामक शस्त्र था किन्तु स्वयं अशक्त—सामर्थ्यरहित थे उन्हें भी शक्तिरहित—शक्ति नामक शस्त्रसे रहित कर रहे थे—उनका शस्त्र छुड़ा रहे थे इसलिए आचार्य कहते हैं कि ऊनता अर्थात् आवश्यक सामग्रीकी कमीको धिक्कार हो ॥२२७॥ जिनके समस्त अंग शस्त्रोंसे छिन्न भिन्न हो गये हैं, नेत्र बन्द हो गये हैं, जिन्होंने युद्धकी इच्छाका अच्छी तरह सकोच कर लिया है, जो अपना पराक्रम दिखा चुके हैं, जिन्होंने बुद्धिसे ही पर्यकासन बाँध लिया है और सब परिग्रह छोड़ दिये हैं ऐसे कितने ही

१ रन्धनम् इन्धनम् । लब्धेर्बद्धे रन्धनम् ल० म० अ० प० स० इ० द० । २ उत्साहवायुना समृद्धः । ३ राज राजमुख्या । सिंहा इति ध्वनिः । ४ विगतप्राणी । ५ अन्योपावलम्बनी । ६ यमकगिरिभू । ७ सचलद्गिरि-ल० अ० प० स० इ० म० । ८ आरोहकानुकुला इत्यर्थः । ९ युद्धयन्ते ल० । १० मृगजातिभिः । भक्ष्यान्वयणीयैर्वा । ११ हरिणरिब । १२ प्रथमविशामाभव । १३ सभूणमभवत् । १४ शक्त्यायुधरहितम् । १५ शक्त्यायुधैः । १६ समर्थाः । १७ समर्थान् । १८ शक्त्यायुधयुक्तान् । १९ शक्त्यायुधरहितान् । २० सामग्रीविकलताम् । २१ सम्यगुत्सुष्टसमारम्भा । २२ मनसैव कृतपयङ्कासना । २३ सम्यक् त्यक्तवन्तः । २४ प्राणान् ।

कस्यचिद् क्रोधसंहारः स्मृतिश्च परमेष्ठिनि । ^१निष्ठायामायुपोऽ^२शामीदभ्यामान किं न जायते ^३॥२३०॥
हृदि नाराचनिमिषा वक्त्रात् स्रवदम्बकुलवाः । ^४शिवाकृष्टान्त्रतन्त्रान्ताः ^५पर्युन्तव्यस्तपन्कराः ^६॥२३१॥
गृद्धपद्मानिलोच्छिन्नमूर्च्छाः मंप्राप्तसङ्काः । समाधाय हि ते शुद्धा श्रद्धा श्रृगर्ति गताः ^७॥२३२॥
छिन्नैश्चक्रेण शूराणां शिरोऽस्मोजेर्विकामिभिः । ^८रणाङ्गणोऽर्चितो वामात् नृत्यैः ^९जयजयश्रियः ^{१०}॥२३३॥
स्वामिसंमाननानादिमहोप ^{११}कृतिनिर्भराः । प्राप्याधमर्णता ^{१२}प्राणैः सेवां सपाद्य सेवका ^{१३}॥२३४॥
स्वप्राणव्ययमतुष्टैस्तद्भूभृद्भिः ^{१४}स्वभूभृत ^{१५}। लब्धपूजान् विधायान्ये धन्या ^{१६}नैर्ऋण्यमागमन् ॥
जयमुक्ता ^{१७}द्रुत पेतुरविमुक्तजयाः ^{१८}शराः । अष्टचन्द्रान् प्रति प्रोच्चैः ^{१९}प्रदीप्योल्कोपमाः ^{२०}भमम् ^{२१}॥२३६॥
^{२२}जयप्रहितशस्त्राली ^{२३}तैर्निपिद्धा च विद्यया । ज्वलन्ती परितश्चन्द्रान् ^{२४}परिवेषाकृतिर्वभौ ^{२५}॥२३७॥
विश्वविद्याधराधीशमा ^{२६}दिराजान्मजस्तदा । ^{२७}द्विषो ^{२८}नि शेषयाशेषानित्याह सुनमि रूपा ^{२९}॥२३८॥
सोऽपि ^{३०}सर्वैः खगैः साढं निर्द्धूतारातिविक्रमः । बह्विष्टमिवाकाशे ववर्ष शरसंततिम् ^{३१}॥२३९॥

गूरवीरोने हृदयमे अर्हन्त भगवान्को स्थापन कर प्राण छोड़े थे ॥२२८-२२९॥ किसी योद्धाके आयुकी समाप्तिके समय क्रोध गान्त हो गया था और परमेष्ठियोका स्मरण होने लगा था सो ठीक है क्योंकि अभ्याससे क्या-क्या सिद्ध नहीं होता ? ॥२३०॥ जिनके हृदय बाणोसे छिन्न-भिन्न हो गये हैं, मुँहसे रुधिरका प्रवाह वह रहा है, सियारोने जिनकी अँतड़ियोकी ताँतोके अन्तभाग तकको खींच लिया है और जिनके हाथ-पैर फट गये हैं ऐसे कितने ही योद्धा गोधोके पखोकी हवासे मूर्च्छारहित होकर कुछ-कुछ सचेत हो गये थे और शुद्ध श्रद्धा धारण कर गूरगति-स्वर्ग गतिको प्राप्त हुए थे ॥२३१-२३२॥ चक्र नामक शस्त्रसे कटे हुए गूरवीरोके प्रफुल्लित मुखरूपी कमलोसे भरी हुई वह युद्धकी भूमि ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो जयकुमारकी विजयलक्ष्मीके नृत्योसे ही सुशोभित हो रही हो ॥२३३॥ स्वामीके द्वारा पाये हुए आदर सत्कार आदि बड़े-बड़े उपकारोसे दबे हुए कितने ही सेवक लोग अपने प्राणो-द्वारा स्वामीकी सेवा कर ऋण अवस्थाको प्राप्त हुए थे और कितने ही धन्य सेवक, अपने-अपने प्राण देकर सन्तुष्ट हुए शत्रु राजाओसे अपने स्वामियोकी पूजा-प्रतिष्ठा कराकर कर्जंरहित हुए थे । भावार्थ--कितने ही सेवक लडते-लडते मर गये थे और कितने ही शत्रुओको मारकर कृतार्थ हुए थे ॥२३४-२३५॥ जिन्होने विजय प्राप्त करना छोडा नहीं है और जो अपनी बड़ी भारी कान्तिसे उल्काके समान जान पडते हैं ऐसे जयकुमारके छोड़े हुए बाण अष्टचन्द्र विद्याधरोके पास बहुत शीघ्र एक साथ पड़ रहे थे ॥२३६॥ जयकुमारके द्वारा छोडी हुई शस्त्रोकी पक्तियोको उन विद्याधरोने अपने विद्या बलसे रोक दिया था । इसलिए वे उनके चारो ओर जलती हुई खडी थी और ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो चन्द्रमाओके चारो ओर गोल परिधि ही लग रही हो ॥२३७॥ उसी समय आदि सम्राट्-भरतके पुत्र अर्ककीर्तिने बड़े क्रोधसे सब विद्याधरोके अधिपति सुनमिसे कहा कि तुम समस्त शत्रुओको नष्ट करो ॥२३८॥ और शत्रुओके पराक्रमको नष्ट करनेवाला सुनमिकुमार भी अग्नि वपकि समान आकाशमे बाणोके समूहकी वर्षा करने लगा ॥२३९॥ जो अत्यन्त

१ परिसमाप्ती मत्याम् । २ रणे । ३ साध्यते ल० । ४ जम्बुकाकृष्टपुरीतत्तममूहाग्रा । अन्त्रगतशस्याग्रा वा । ५ तन्त्राग्रा-ट० । ६ विशिष्टपादपाणय । ७ स्पृहाम् । ८ स्वर्गम् । इन्द्रियजयवता गतिमित्यर्थ । ९ रण-रङ्गोऽन्विते-ल० । १० नर्तनाय । ११ जयकुमारस्य जलक्ष्म्या । १२ महोपकारातिशया । १३ ऋणप्राप्ति-ताम् । १४ शत्रुभूषणम् । १५ निजनुपतीन् । १६ ऋणवृद्धवनम् । ऋणाद्विष्कान्तत्वम् । १७ जयकुमारेणोत्सृष्टा । १८ मत्यक्तजया । १९ प्रदीप्योल्कोपमाः ल० । २० युगपत् । २१ जयकुमारेणाविद्ध । २२ शत्रुभिः । २३ अष्टचन्द्रान् परितः, मृगाङ्गान् परितः । २४ अर्ककीर्ति । २५ शत्रून् । २६ विनाशय । २७ सुनमिः ।

भीकरा किङ्कराकारा^१ रवतो रवेदिदमुत्ता । कांस्कान्^२ शृणाम नर्नाव सुताभ्या^३ शरवोऽपतन् ॥२४०॥
 मेघप्रभो जयादशादिभन्त्र^४ वा शृगाधिप^५ । आत्रम्य विक्रमो दशत्र^६ शरीरमात्र^७ विहायपि ॥२४१॥
 तमोऽग्निगजमघादिविद्या सुनमियोजिता । मुच्छीकृत्य^८ से^९ विच्छिद्य (?) महसा मास्करादिभि^{१०} ॥२४२॥
 जयपुण्योदयात्सद्यो विजिग्य^{११} रथराधिपम् । सन्नामऽभुगुण दवे^{१२} क्षादिमा यद्विमति^{१३} न ॥२४३॥
 प्रवृद्धप्राट्टडारम्भसम्भृताम्माधराचलिम् । विलट्टयानकपानाक^{१४} कौमार^{१५} जयमारणम् ॥२४४॥
 जयोऽप्यभिमुत्ताकृत्य विजयाद् गजाधिपम् । धारादत्त^{१६} रया प्राप्त^{१७} धारोदात्ताऽमवादिदम् ॥२४५॥
 न्यायमार्गा प्रथयन्ते सम्यक् सर्वेऽपि चक्रिणा^{१८} । तपामभिदुराचार^{१९} कृतस्थ पारिपन्थिक^{२०} ॥२४६॥
 बुद्धिमास्त्व तवाहायबुद्धित्वमपि^{२१} दूषणम् । कुमार भीषस^{२२} पापेस्तृताय^{२३} तद्विगर्हितम्^{२४} ॥२४७॥
 अन्त कापाऽप्यय^{२५} पापमहानुत्थापिता पृथा । सवत्त्रक्षया मधु सहमा यन^{२६} तादृश ॥२४८॥

भयकर हैं किकराके समान काम करनेवाले हैं, वेगवे कारण शब्द कर रहे हैं और जिन्होंने सत्र दिशाएँ राक ली है ऐसे व तीक्ष्ण बाण हम विस किसको नष्ट नहीं करें ? अर्थात् सभीको नष्ट करें यही साचकर मानो सब सेनापर पड़ रहे थे ॥२४०॥ जिस प्रकार सिंह हाथीपर आक्रमण करता है उसी प्रकार खूब पराक्रमी मेघप्रभ नामके विद्याधरने जयकुमारकी आज्ञासे उस सुनमिपर आक्रमण कर उसे शस्त्रोके द्वारा आकाशम हो राक लिया ॥२४१॥ मेघप्रभने सुनमिके द्वारा चलाये हुए तमोवाण, अग्निबाण, गजबाण और मेघबाण आदि विद्यामयी बाणोंको सूयबाण, जलबाण, सिंहबाण और पवनबाण आदि अनेक विद्यामयी बाणोंसे तुच्छ समझकर बहुत शीघ्र नष्ट कर दिया ॥२४२॥ इस प्रकार मेघप्रभने उस युद्धम जयकुमारके पुण्योदयसे विद्याधरके अधिपति सुनमिको शीघ्र ही जीत लिया सो ठीक ही है क्योंकि देवके अनुकूल रहनेपर छोटापन और बड़प्पनका व्यवहार नहीं होता है । भावाथ-भाग्यके अनुकूल होनेपर छोटा भी जीत जाता है और बड़ा भी हार जाता है ॥२४३॥ बड़ी हुई वर्षाश्रुतुके प्रारम्भमें इकट्ठी हुई मेघमालाके समान हाथियोंकी सेनाको उत्लघन कर अककीतिके पक्षके लोगोंने जयकुमारको रोक लिया ॥२४४॥ इधर धीर और उदात्त जयकुमारने भी अपना विजयाध नामका श्रेष्ठ हाथी क्रोधसे प्राप्त हुए धीर तथा उद्धत अककीतिके सामने चलाकर उससे इस प्रकार कहना शुरू किया ॥२४५॥ वह कहने लगा कि चक्रवर्तिके द्वारा सभी न्याय मार्ग अच्छी तरह चलाये जाते हैं परन्तु इन दुराचारी लोगोंने तुझे उन न्यायमार्गोंका शत्रु बना दिया है ॥२४६॥ हे कुमार, यद्यपि तू बुद्धिमान् है परन्तु आहाय बुद्धिवाला होना अर्थात् दूसरेके कहे अनुसार काम करना यह तेरा दोष भी है । इसके सिवाय तू पाप या पापी पुरुषोंके अनुकूल हो रहा है सो यह भी तेरा तीसरा दूषण है ॥२४७॥ इन पापी लोगोंने तेरे अत करणमे यह बड़ा भारी क्रोध व्यर्थ ही उत्पन्न कर दिया है जिससे भरत महाराजकी सब सेनाका ऐसा एक साथ क्षय हो रहा है ॥२४८॥

१ किङ्करस्वभावा । २ ध्वनन्त । ३ कान् शत्रून् शृणाम काम् शत्रून् न शृणाम न हम इति इव । शृ कृ मू हिंसायाम् । छोद् । ४ बाणा । ५ विद्याधर । ६ गजाधिपम् । अनेन समबलत्वं सूचितम् । ७ शरीर । ८ सुन मिम् । ९ असारा कृत्वा । १० विच्छेद त० व० पुस्तके विहाय सवत्र । ११ सूयजलसिंहायावादिभि । १२ अजयत् । १३ दवे सहाये सति । १४ क्षाद्वत्त्वम् । १५ महत्त्वम् । १६ अतिशय्य । १७ गजबलम् । १८ अककीतिसम्बन्धि । १९ जयकुमार शरीर । २० अककीतिम् । २१ जयकुमार । २२ मार्गाणाम् । २३ प्रतीयमान । २४ विरोधी भूत्वा । २५ प्रेरकोपनीतबुद्धित्वम् । २६ पापोपेत । २७ मोहनोद्यं काम वा । २८ सद्भि निन्दितम् । २९ पापिष्ठै । ३० कोपेन ।

आहवोऽपरिहार्योऽयं^१ ममाद्य भवता सह । अर्कीर्तिश्चावयो^२ रस्मिन्नाकटपन्थायिनी ध्रुवम् ॥२४६॥
 चर्का सुतेषु राज्यस्य योग्य त्वामेव मन्यन्ते । स्यात्तस्यापि मनःपीडा न वेन्यन्यायवर्तनात् ॥२५०॥
^३द्रोघधून्यायस्य भूमर्तुस्तव चैतांस्ततः क्षणात् । दुष्टान् मखेचरान् सर्वान् बध्वाद्य भवतोऽप्ये ॥२५१॥
 नागमारुह्य^४ तिष्ठ त्वं काष्ठान्तं^५ प्रार्थितो मया । अन्यायो हि पगभूतिर्न तस्यागो^६ महीयस^७ ॥२५२॥
 कुमार, समरे हानिस्तवैव महती मया । हन्त्यान्मानमनुन्मत्तः^८ क. म तीक्ष्णामिना स्वयम् ॥२५३॥
 अभव्य इव सद्धर्ममपकर्ण्येत्युदीरितम्^९ । आघातयितुमारंभे गजेन स^{१०} गजाधिपम् ॥२५४॥
 तदा जयोऽयतिक्रुद्धो गजयुद्धविशारदः । नवमिर्विजयार्धेन दन्तघातैरपातयत्^{११} ॥२५५॥
 नवापि कुपितेभेऽनवदन्ताहतिक्षताः । अष्टचन्द्रार्ककीर्तीनां प्रपेतुर्हतदन्तिनः ॥२५६॥
 चक्रिसूनो. पुनः सेनापरितोऽयाद्^{१२} युयुत्सया^{१३} । तदा तदायुर्वा^{१४} रक्षदह^{१५} क्षयमपद्यत ॥२५७॥
 सोढुमर्कः खलस्तेजो^{१६} जयस्यागक्नुवन्निव । जयन् जयोद्ग^{१७} मच्छायां सहताशेषर्द्धाधिति. ॥२५८॥
^{१८}शरैर्विषैरारक्तैर्विमुक्तैः खचरान् प्रति । जयीयं^{१९} स्वाङ्गसलग्नैः^{२०} क्षरक्षतजरज्जितैः ॥२५९॥
 गतप्रतापः^{२१} कृच्छात्मा सर्वनेत्राप्रियस्तदा । पपान कातरीभूय करालस्त्रितभूधर. ॥२६०॥

मेरा आपके साथ जो युद्ध चल रहा है वह आज ही वन्द कर देने योग्य है क्योंकि इससे हम दोनोंकी कल्पान्तकाल तक टिकनेवाली अपकीर्ति अवश्य होगी ॥२४९॥ चक्रवर्ती सब पुत्रोमे राज्यके योग्य आपको ही मानता है, क्या आपके इस अन्यायमे प्रवृत्ति करनेसे उसके मनको पीडा नही होगी ? ॥२५०॥ भरत महाराजके न्यायमार्गका द्रोह करनेवाले तुम्हारे इन सभी दुष्ट पुरुषोको विद्याधरोके साथ-साथ बांधकर आज क्षणभरमे ही तुम्हे सौंप देता हूँ ॥२५१॥ मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप हाथीपर चढे हुए यहाँ क्षण भर ठहरिए क्योंकि महा-पुरुषोका अन्याय करना ही तिरस्कार करना है, अन्यायका त्याग करना तिरस्कार नही है ॥२५२॥ हे कुमार, मेरे साथ युद्ध करनेमे तुम्हारी ही सबसे बड़ी हानि है क्योंकि ऐसा कौन सावधान है जो पैनी तलवारसे अपनी आत्माका स्वयं घात करे ॥२५३॥ जिस प्रकार अभव्य जीव समीचीन धर्मको नही सुनता उसी प्रकार जयकुमारके कहे हुए वचन अर्ककीर्तिने नही सुने और अपने हाथीसे जयकुमारके उत्तम हाथीपर प्रहार करवाना गुरु कर दिया ॥२५४॥ उस समय हाथियोंके साथ युद्ध करनेमे अत्यन्त निपुण जयकुमार भी अधिक क्रोधित हो उठा, उसने अपने विजयार्ध हाथीके द्वारा दाँतोके नौ प्रहारोसे अर्ककीर्ति तथा अष्टचन्द्र विद्याधरोके नौ हाथियोंको घायल करवा दिया ॥२५५॥ अर्ककीर्ति तथा अष्टचन्द्र विद्याधरोके नौके नौ ही हाथी क्रोधित हुए विजयार्ध हाथीके दाँतोके नौ प्रहारोसे घायल होकर जमीनपर गिर पडे ॥२५६॥ जिस समय जयकुमारने युद्धकी इच्छासे अर्ककीर्तिकी सेनाको चारो ओरसे घेरा उसी समय मानो उसकी आयुकी रक्षा करता हुआ ही दिन अस्त हो गया ॥२५७॥ जो अपनी कान्तिसे जासौनके फूलकी कान्तिको जीत रहा है, जिसने अपनी सब किरणे सकोच ली हैं, जो लाल-लाल किरणोसे ऐसा जान पडता है मानो जयकुमारने विद्याधरोके प्रति जो वाण छोडे थे वे सब ही विद्याधरोके निकलते हुए रुधिरसे अनुरजित होकर उसके शरीरमे जा लगे हो, जिसका सब प्रताप नष्ट हो गया है, जो क्रूर है और सबके नेत्रोको अप्रिय है ऐसा वह दुष्ट

१ आहव परि-ल० । २ युद्धे सति । ३ हन्तुमिच्छन् । ४ तिष्ठान् ल०, इ०, प०, अ०, स० । ५ क्षणपर्यन्तम् । ६ अन्यायत्याग । ७ महात्मन । ८ बुद्धिमान् । ९ एवमुक्तवचन श्रुत्वा । १० मारयितुम् । ११ अर्ककीर्ति । १२-रघातयत् ल०, अ०, प०, स०, इ० । १३ अगमत् । १४ योद्धुमिच्छया । १५ यदा इ०, अ०, प० । १६ इव । १७ रक्षतीति रक्षत् । १८ दिवम् । १९ जयकुमारस्य । २० कुनुम् । २१ किरणैः । २२ जयकुमारसम्बन्धिभिः । २३ नवत् । २४ दुःखकारिस्त्रिभावा ।

अककीर्तिं स्वकीर्तिं^१ वा मत्वा रोषणं^२ भास्कर । अस्त^३ जयजयस्यायान् कुयन् कालविलम्बनम् ॥२६१॥
 स्फुगलाकोऽपि^४ सद्बुद्धोऽप्यगादस्तमहपति^५ । आग्निभ्य वारुणीं^६ रश्मिं^७ का न गच्छत्यधोगतिम् ॥२६२॥
 उदय^८ वर्धितच्छायो^९ व्याप्य विश्वं प्रतापयान् ।^{१०} दिनननाऽप्यनश्यत्^{११} कस्तिष्ठतीव्रकर पर ॥२६३॥
 इन्^{१२} स्वच्छानि विच्छाये^{१३} तापहाराणि या भृशम् । द्रष्टुं सरोक्षनिपटन्ति^{१४} कआर्क्षीणि पुचा^{१५} व्यधु २६४
 जयनिस्त्रिंशानिस्त्रिंशानिपातपतितान् रसगान् । प्रायिनाग्निजनीद्वानि^{१६} याभितु विक्षमा रसा^{१७} २६५
 स प्रताप प्रमासाऽस्य साहि सयंकपूज्यता । पात^{१८} प्रत्यहमकरयाप्यतक्य^{१९} वकशा विधि^{२०} ॥२६६॥
 कीर्त्यापमानतो यातो याताऽकश्चदद्वयताम् । उपमयस्य का यातैयधादाद्भिदुषो गग ॥२६७॥

सूय मानो जयकुमारके तेजको न सह सक्नेवे कारण हो वातर हो अपने वरा-किरणसे (हाथा से) अस्ताचलको पधवर नीचे गिर पड़ा ॥२५८-२६०॥ वह सूय अक्कीतिवो अपनी कीर्ति मानकर क्रोधसे जयकुमारके जोतम बिलम्ब करता हुआ अस्त हो गया ॥२६१॥ जिसका आलोक प्रकाश (ज्ञान) स्पष्ट है और जो सद्बुद्ध-गोल (सदाचारी) है ऐसे सूयको भी अस्त होना पड़ा सो ठीक ही है क्योंकि वारुणी अर्थात् पश्चिम दिशा अथवा मद्यका सेवन करनेवाला ऐसा कौन है जो नीचेको न जाता हो-अस्त न होता हो-नरक न जाता हो । भावाथ-जिस प्रकार मद्य पीनेवाला शानी और सदाचारी होकर भी नीच गतिको जाता है उसी प्रकार सूय भी प्रकाशमान और गोल होकर भी पश्चिम दिशाम जाकर अस्त हो जाता है ॥२६२॥ उदय कालसे लेकर निरन्तर जिसकी कात्ति बढ़ती रहती है और जो संसारम व्याप्त होकर तपता रहता है ऐसा तीव्रकर अर्थात् तीव्र किरणोंवाला सूय भी जब एक ही दिनम नष्ट हो गया तब फिर भला तीव्रकर अर्थात् अधिक टेक्स लगानेवाला और सत्ताप देनेवाला अथ कौन है जो संसारम ठहर सके ॥२६३॥ सत्तापको दूर करनेवाल स्वच्छ सरोवर अतिशय-कान्तिरहित सूयको देखना नहीं चाहते थे इसलिए ही मानो उन्होंने शोकसे अपने वमलरूपी नेत्र बन्द कर लिये थे ॥२६४॥ सब पक्षी अपने-अपने घोंसलोंमें इस प्रकार चल गये थे मानो वे जयकुमारकी तीक्ष्ण तलवारकी चोटसे गिरे हुए विद्याधरोंको देखनेके लिए समय नहीं हो सके हों ॥२६५॥ सूयका असाधारण प्रताप है, असाधारण कात्ति है और असाधारण रूपसे ही सब उसकी पूजा करते हैं फिर भी प्रतिदिन उसका पतन हो जाता है इससे जान पड़ता है कि निष्ठुर दव तकका विषय नहीं है । भावाथ-ऐसा क्यों करता है इस प्रकारका प्रश्न दवके विषयम नहीं हो सकता है ॥२६६॥ उस समय विद्वानोंका समूह यह कह रहा था कि जब अककीर्तिवे साथ उपमानता की प्राप्त हुआ सूय भी अदृश्य हो गया तब उपमेयकी क्या बात है ? भावाथ-अककीर्तिके लिए सूयकी उपमा दी जाती है परन्तु जब सूय ही अस्त हो गया तब अककीर्तिकी तो बात ही

१ निजनामधेयमिव । २ पीडया । ३ जयकुमारस्य । ४ व्यक्तोद्योतोऽपि । व्यक्तदधानोऽपीति ध्वनि । आलोको दधानोद्योतो इत्यभिधानात् । ५ सद्बुद्धुलमण्डलेऽपीति । सन्धारिभोऽपीति ध्वनि । ६ रश्मि । ७ पश्चिमदिशाम् । मद्यमिति ध्वनि । ८ अरण अनुरक्तश्च । ९ उदगमे अभ्युदये च । १० कात्ति पक्षे उत्कीच । छाया स्पादातपाभावे प्रतिबिम्बाकरोविती । पासनोत्कीचयो कान्तिसंशोभापवितपु स्मृता इत्यभिधानात् । ११ विषयेन च । इन् सूय प्रमुख । इन् सूर्ये प्रभी इत्यभिधानात् । १२ अदृश्योऽभूत् । १३ सूयम् । १४ विगतकात्तिम् । १५ अनिच्छन्ति । १६ दधति स्म । १७ जयकुमारस्य निशितास्वधासेन पतितान् । १८ प्रविष्टा । १९ आत्मीयकुलायान् । कुलायो नीढमस्त्रियाम् । इत्यभिधानात् । २० पक्षिण । २१ पतनम् । २२ क्रूर । २३ नियति कम च ।

दुर्निरीक्ष्यः^१ करैस्तीक्ष्णैः संतप्तनिजमण्डलः । अलं कुवलयध्वंसी दुस्सुतो^२ दुर्मतिस्तुतः ॥२६८॥

निस्सहायो निरालम्बोऽत्यमोघा^३ परतेजयाम् ।^४ सिंहराशिश्चलः क्रूरः सहस्रोच्छित्य^५ मूर्धगः^६ ॥२६९॥

पापरोगी^७ परप्रेयो^८ रविर्विपममार्गः । रक्तर्क्^९ सकलद्वेषी^{१०} विधितागोऽक्रमाग्र^{११} ॥२७०॥

^{१३} सता बुधेन मित्रेण^{१४} गुरुणा^{१५} ऽप्यस्तमाश्रयत् । बहुदोषो^{१६} मिपगव्यैर्दुर्द्विचिन्तित्य^{१७} इवातुरः^{१८} ॥२७१॥

तदा वलद्वयामात्याः श्रित्वा वद्धरूपो नृपा । इत्यध्वर्यं निशायुद्धमनुवद्य^{१९} न्यपेधयन् ॥२७२॥

ताभ्यां^{२०} तत्रैव सा रात्रिर्नैतुमिष्टा रणाङ्गणे । भटतीव्रव्रणासहचवेदनारावभीपणे ॥२७३॥

क्या है ? ॥ २६७ ॥ जो बड़ी कठिनतासे देखा जाता है, अपनी किरणोंसे तीक्ष्ण-ऊष्ण है, जिसने अपना मण्डल भी सन्तप्त कर लिया है, जो कुवलय अर्थात् कुमुदोका ध्वंस करनेवाला है, बड़े कष्टसे जिसका उदय होता है अथवा जिसका पुत्र - शनि दुष्ट है, दुर्बुद्धि लोग ही जिसकी स्तुति करते हैं, जो सहायरहित है, आधाररहित है, जो चन्द्र आदि ज्योतिषियोंका तेज सह नहीं सकता, सिंह राशिपर है, चंचल है, क्रूर है, सहसा उछलकर मस्तकपर चलता है, पाप रोगी है, दूसरेके सहारेसे चलता है, विपममार्ग - आकाशमे चलता है, रक्तर्क्-लाल किरणोंवाला है, सकल - कलासहित-चन्द्रमाके साथ द्वेष करनेवाला है, दिगाओको बढ़ानेवाला है और पैररहित-अरुण नामका सारथि जिसके आगे चलता है, ऐसा सूर्य, बुधग्रह और गुरु (बृहस्पति ग्रह) नामके सज्जन मित्रोंके साथ होनेपर भी अच्छे-अच्छे वैद्य भी जिसका इलाज नहीं कर सकते ऐसे बहुदोषी-अनेक दोषवाले (पक्षमे रात्रिवाले) रोगीके समान अस्त हो गया सो ठीक ही है क्योंकि दुष्ट होनेके कारण जिसकी ओर कोई देख भी नहीं सकता है, जो अधिक टैक्स वसूल करनेके कारण तीक्ष्ण है, जो अपने परिवारके लोगोंको भी सन्ताप देनेवाला है । कुवलय अर्थात् पृथिवीमण्डलका खूब नाश करनेवाला है, जिसका पुत्र खराब है, मूर्ख ही जिसकी स्तुति करते हैं, जो सहायक मित्रोंसे रहित है, दुर्ग आदि आधारोंसे रहित है, अन्य प्रतापी राजाओंके प्रतापको सहन नहीं करता है, सिंह राशिमे जिसका जन्म हुआ है, चञ्चल है, निर्दय है, जरा-जरा सी वातोमे उछलकर शिरपर सवार होता है - असहनशील है, घुरे रोगोंसे घिरा हुआ है, दूसरेके कहे अनुसार चलता है, विपम मार्ग-अन्याय मार्गमे चलता है, रक्तर्क्-जिसे खूनकी बीमारी है, जो सबके साथ द्वेष करता है, जिसकी तृष्णा बड़ी हुई है और बिना क्रमके प्रत्येक कार्यमे आगे आगे आता है, ऐसे अनेक दोषवाले राजाका लाइलाज रोगीकी तरह बुद्धिमान् मित्र और सज्जन गुरुके साथ होनेपर भी नाश होना ही है ॥२६८-२७१॥ उस समय दोनों सेनाओंके मन्त्रियोंने क्रोधित हुए उन दोनों राजाओंके पास जाकर रात्रिमे युद्ध करना अधर्म है ऐसा नियम कर उन्हें युद्ध करनेसे रोका ॥ २७२ ॥ उन दोनोंने योद्धाओंके तीव्र धावोंकी असह्य वेदनाजनित चिल्लाहटसे भयकर उसी रणके मैदानमे रात्रि व्यतीत करना अच्छा समझा

१-स्तीक्ष्णा. अ०, प०, स०, इ०, ल० । २ कण्टोत्पत्ति अशोभनपुत्रश्च । ३ व्यसोढा ट० । ४ प्रदीपाना शश्रूणा च तेजसाम् । ५ सिंहराशिस्थित । ६ ऊर्ध्वगो भूत्वा । ७ गिरसा गच्छन् । ८ कुण्डरोगी । ९ रक्त-किरण । रक्तरोगी च रक्ताना घातको वा । १० चन्द्रद्वेषी सकलजनद्वेषी च । ११ वद्वितदिक् वद्विता-भिलापश्च । १२ अनूर्वग्रामी । 'सुरसूतोऽरुणोऽनूर' इत्यभिधानात् । अक्रमाग्रगामी च । १३ उक्तृष्टेन विद्यमानेनेति च । १४ सोमसुतेन । विदुषा च । १५ बृहस्पतिना, उपदेष्टकेन सहितोऽतीत्यर्थः । १६ प्रचुर-राशि । वातदोषवाश्च । १७ व्याधिपीडित । १८ निर्वन्ध कृत्वा । १९ अर्ककोतिजयकुमाराभ्याम् ।

प्रतापी 'यन' जायऽहमगिल हस्करम् । इति सम्भ्याच्छलना हस्तत्रै कापमिधागतम् ॥२७४॥
 लज्ज' सपकमर्केण वनु लोचनगावर' । इयं धलति वा म'भ्याऽऽयग्वगादात्तनिर्गहा ॥२७५॥
 'भगादह' पुरस्ठस्य मामर्का रात्रिगामिना । तन' पश्चात्पुनऽभीध शाकाम् स'भ्या व्यर्लीयते' ॥२७६॥
 तम सव' तदा व्यापत् भवविश्रान गुहादिषु । तमुपार्थ न कुवन्ति तत प्व विचक्षणा ॥२७७॥
 अवका' प्रकाशस्य थयारमानमधात् पुरा । तथैव तमस पश्चाद् धिदमहस्य विहायस' ॥२७८॥
 'तमावलान् प्रदीपादिप्रकाशा प्रदिदापिर' । जिननव विननन' कला कल कुलिङ्गिनि ॥२७९॥
 तमोविमोहित' विदर' प्रवाधयितुमुद्धत । विधिनव सुधाकुम्भा' दारणो विधुरुत्तया ॥२८०॥
 चन्द्रमा' कर्नालीभिरपिबद् बहल तमे । वृद्धकास' क्षय' हातु धूमपानमिवाचरन् ॥२८१॥
 नि'शय नाशकद्रु सु ध्वातं हरिणलाम्बुधन । अशुद्धमण्डला ह'याशिष्यताप कथ रिपून् ॥२८२॥
 विधु तत्करसस्पर्शाद् भृशमामन् विकामिभि । सरस्या ह्लादयन्त्या' वा मुदा कुमुदलाचन ॥२८३॥

॥२७३॥ स'भ्याके बहानेसे दिन लाल लाल हो गया, मानो जिसस म पदा हुआ हूँ उस सूर्यका यह पश्चिम दिशा निगल रहो है यही समझकर उसे क्रोध आ गया हो ॥ २७४ ॥ मैं सबके देखते हुए सूर्यके साथ सम्बन्ध करनेके लिए लज्जित होती हूँ यही समझकर मानो स'भ्या की वेला भी शरीर धारण कर सूर्यके पीछे पीछ चली गयी ॥२७५॥ सूर्य जब दिनव पास गया था तब मुझे आगे कर गया था परन्तु अब रात्रिके पास जाते समय उसने मुझ पीछे छोड़ दिया है इस शोकसे ही मानो स'भ्या वही विलीन हो गयी थी ॥ २७६ ॥ दिनके समय जो अधिकार किन्ही गुफा आदि स्थानोंमें छिप गया था उस समय वह सबका सत्र आकर फल गया था सो ठीक ही है क्योंकि चतुर लोग इसलिए ही शत्रुको बाकी नहीं छोड़ते हैं - उसे समूल नष्ट कर देते ह ॥ २७७ ॥ आकाशने जिस प्रकार पहले प्रकाशके लिए अपनेम स्थान दिया था उसी प्रकार पीछसे अधिकारके लिए भी स्थान दे दिया इसलिए आचार्य कहते ह कि आकाशके इस बढप्पनको धिक्कार हो । भावाथ - बड़ा होनेपर भी यदि योग्य-अयोग्यका ज्ञान न हुआ तो उसका बढप्पन किस कामका है ? ॥ २७८ ॥ जिस प्रकार कल्कालम जिनेन्द्रदेवके न होनेसे अज्ञानके कारण अनेक कुलिङ्गियोंका प्रभाव फैलने लगता है उसी प्रकार उस समय सूर्यके न होनेसे अधिकारके कारण अनेक दीपक आदिका प्रकाश फैलने लगा था ॥ २७९॥

इतनेम चन्द्रमाका उदय हुआ जो ऐसा जान पड़ता था मानो अधिकारसे मोहित हुए समस्त सत्तारको जगानेके लिए विघाताने अमृतसे भरा हुआ चाँदीका कलश ही उठाया हो ॥२८०॥ उस समय चन्द्रमा अपनी किरणरूपी नालियोंके द्वारा गाढ अधिकारको पी रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो जिसमे खाँसी बढी हुई है ऐसे क्षय रोगका नाश करनेके लिए धूम्रपान ही कर रहा हो ॥ २८१ ॥ चन्द्रमा सम्पूर्ण अधिकारको नष्ट करनेके लिए समर्थ नहीं हो सका था सो ठीक ही है क्योंकि जिसका मण्डल अशुद्ध है और जो प्रतापरहित है वह शत्रुओंको कैसे नष्ट कर सकता है ? ॥ २८२ ॥ तालाबोंमें चन्द्रमाके किरणोंके स्पर्शसे कुमुद खूब फूल रहे थे और उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो खिले हुए कुमुदरूपी नेत्रोंके द्वारा चन्द्रमा

१ अस्करेण । २ प्रादुर्भवामि । ३ गिलति स्म । ४ दिवस । ५ प्रतीचयाम् । ६ ह्रीवती भवानि । ७ दृष्टि विषये प्रदेशो । बहुजनप्रदेशो इत्यर्थः । ८ स्वीकृतशरीराः । ९ आगच्छति स्म । १० दिवसम् । ११ पृष्ठे कृताह मिति । १२ विलय गता । १३ सवत्र विश्व जगत् । १४ आकाशस्य । १५ तिमिरप्राबल्यात् । पक्ष आकाश सामर्थ्यात् । १६ प्रकाशन्ते स्म । १७ रविणा । १८ मूक्षीकृतम् । १९ जगद् । २० राजत । २१ किरण नालीभि । २२ कुत्सितगतिम् वृद्धप्रकाशं वा । २३ क्षयव्याधिम् । २४ कर्लकयुतमण्डल । शत्रुसहितमण्डलश्च । २५ मुद नयन्ति वा ।

उत्थितः^१ पिलकोऽस्माकं विधुर्गण्डस्य^२ वोपरि । का^३ जीविकेति^४ निर्विण्णाः प्रायः^५ प्रोपितयोपित २८४॥
लघ्वचन्द्रबलस्योच्चैः स्मरस्य परितोपिणः । अट्टहास इवाशेष माक्रञ्चन्द्रानपोऽस्त^६ ॥ २८५ ॥
रुद्धो रागाङ्कुरश्चित्ते प्रम्लानो भानुभानुमिः । तदा चन्द्रिकया^७ प्राच्यवृष्ट्येवावर्द्धताङ्गिनाम् ॥ २८६ ॥
खण्डितानां तथा तापो नाभूद् भास्कररश्मिभिः । यथांशुभिर्भु^८ पारांशोर्विचित्रा द्रव्यशक्तयः ॥ २८७ ॥
खण्डनादेव^९ कान्तानां^{१०} उत्रलितो मदनानलः । जाञ्जलीत्ययमे^{११} तेने^{१२} त्यत्यजन्मधु^{१३} काञ्चन ॥ २८८ ॥
वृथाभिमानविध्वंसी नापरं मधुना विना । कलहान्तरिता काञ्चित्सखाभिरतिपायिताः^{१४} ॥ २८९ ॥
प्रेम नः^{१५} कृत्रिमं नैतन् किमनेनेति^{१६} काञ्चन । दूरादेवान्यजन् स्निग्धा श्राविका वाऽऽसवादिकम्^{१७} ॥ २९० ॥
मधु द्विगुणितस्वादु^{१८} पीत कान्तकरापितम्^{१९} । कान्ताभिः^{२०} कामदुर्वारमातङ्गमदवर्द्धनम् ॥ २९१ ॥
इत्याविर्भावितानङ्गरमास्ताः प्रियसङ्गमात् । प्रीति वागोचरातीतां स्वीचक्रुर्वक्रवीक्षणाः^{२१} ॥ २९२ ॥

को हर्षसे प्रसन्न ही कर रहे हो । विशेष—इस श्लोकमे सरसी गव्दके स्त्रीलिंग होने तथा कर गव्दके ग्लिष्ट हो जानेसे यह अर्थ ध्वनित होता है कि जिस प्रकार स्त्रियाँ अपने पतियोंके हाथका स्पर्श पाकर प्रसन्न हुए नेत्रोंसे उन्हे हर्षपूर्वक आनन्दित करती हैं उसी प्रकार सरसियाँ भी चन्द्रमाके कर अर्थात् किरणोंका स्पर्श पाकर प्रफुल्लित हुए कुमुदरूपी नेत्रोंसे उसे हर्षपूर्वक आनन्दित कर रही थी ॥ २८३ ॥ प्रायः विरहिणी स्त्रियाँ यह सोच-सोचकर विरक्त हो रही थी कि यह चन्द्रमा हमारे गालपर फोड़ेके समान उठा है अथान् फोड़ेके समान दुःख देनेवाला है इसीलिए अब जीवित रहनेसे क्या लाभ है ? ॥ २८४ ॥ जिसे चन्द्रमाका बल प्राप्त हुआ है और इसीलिए जो जोरसे संतोष मना रहा है ऐसे कामदेवके अट्टहासके समान चन्द्रमाका गाढ प्रकाश सब ओर फैल गया था ॥ २८५ ॥ मनुष्योंके हृदयमे उत्पन्न हुआ जो रागका अकूरा सूर्यकी किरणोंसे मुरझा गया था वह भारी अथवा पूर्व दिशासे आनेवाली वर्षाके समान फैली हुई चाँदनीसे उस समय खूब बढ़ने लगा था ॥ २८६ ॥ खण्डिता स्त्रियोंको सूर्यकी किरणोंसे वैसा सताप नहीं हुआ था जैसा कि चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे हो रहा था सो ठीक ही है क्योंकि पदार्थोंकी शक्तियाँ विचित्र प्रकारकी होती हैं ॥ २८७ ॥ प्रिय पतिके विरहसे ही जो कामरूपी अग्नि जल रही थी वह इस मद्यसे ही जल रही है ऐसा समझकर कितनी ही विरहिणी स्त्रियोंने मद्य पीना छोड़ दिया था ॥ २८८ ॥ मद्यके सिवाय व्यर्थके अभिमानको नष्ट करने-वाला और कोई पदार्थ नहीं है यही सोचकर कितनी ही कलहान्तरिता स्त्रियोंको उनकी सखियोंने खूब मद्य पिलाया था ॥ २८९ ॥ हमारा यह प्रेम वनावटी नहीं है इसलिए इस मद्यके पीनेसे क्या होगा ? यही समझकर कितनी ही प्रेमिकाओंने श्राविकाओंके समान मद्य आदिको दूर से ही छोड़ दिया था ॥ २९० ॥ कितनी ही स्त्रियाँ कामदेवरूपी दुर्निवार हाथीके मदको बढ़ाने-वाले स्वादिष्ट मद्यको पतिके हाथसे दिया जानेके कारण दूना पी गयी थी ॥ २९१ ॥ इस प्रकार जिनके कामका रस प्रकट हुआ है और जिनकी दृष्टि कुछ-कुछ तिरछी हो रही है ऐसी स्त्रियाँ

- १ पिटको ल०, अ०, इ०, स०, प० । पिटक स्फोटक । 'विस्फोट पिटकस्त्रिपु' इत्यभिधानात् ।
२ गलगण्डस्य । 'गलगण्डो गण्डमाला' इत्यभिधानात् । ३ जीवितम् । ४ उद्वेगपरा । दुःखे तत्परा इत्यर्थः ।
५ विमुक्तभर्तृका स्त्रियः । ६ व्याप्नोति स्म । ७ प्रथमवृष्ट्या । ८ विरहिणीना योपिताम् । ९ चन्द्रस्य ।
१० विद्योगान् । ११ प्रियतमाना पुसाम् । १२ भृगं ज्वलति । १३ दावाग्निः । १४ मध्येन । १५ मद्यम् ।
१६ मद्यपान कारिता । १७ अस्माकम् । १८ मध्येन । १९ मद्यादिकम् । २० त्रिगुणित म्वादु इत्यपि पाठः ।
२१ प्रियतमकरेण दत्तम् । २२ कामदुःपूर — ट० । पूरितुमशक्यः । २३ त्रामलोकना ।

शस्त्रसंभिन्नसर्वाङ्गमन्तको नेतुमागतः । कान्ता चिन्तापर कन्तुस्तद्वस्तादहतापरम् ॥३०३॥

कण्ठे^१ चालिङ्गितः । प्रेमशोकाभ्यां प्रियया पर^२ । ध्यात्वा तां त्यक्तदेहोऽगात् निर्वाणं^३ सव्रणस्तया ॥३०४॥

श्वः^४ स्वर्गे किं किमत्रैव^५ संगमो नौ^६ न मंशयः । तत्र^७ त्वं बहुकान्तोऽद्य^८ रमेत्येत्याह सव्रतम् ॥३०५॥

अत्र वाऽमुत्र^९ वासोऽस्तु किं तथा चिन्तयावयो । वियोगः क्वापि नास्तीति कान्ता कान्तमतर्पयत् ॥३०६॥

सव्रतो वीरलक्ष्मी च कीर्तिं^{१०} चैहि^{११} चिरायुषा । हन्तु मामेव कामोऽयमिति कान्ताऽवदद्गुणा ॥३०७॥

जयस्य विजयः प्राणैस्तवेवैतद् विनिश्चितम् ।^{१२} सव्रतावद्य यास्यावो दिवमित्यब्रवीत् परा ॥३०८॥

शराः पौष्पास्तव त्वं च^{१३} संयुक्तेष्वतिशीतग^{१४} । तत्र^{१५} विज्ञातसारोऽसि पुरुषेभ्यो मयं तव ॥३०९॥

आयसाः^{१६} सायकाः काम त्वमप्यस्माकमन्तकः । इति कामं समुद्दिश्य खण्डिताः^{१७} स्वगतं^{१८} जगुः^{१९} ॥३१०॥

सा रात्रिरिति संल्लापै^{२०} प्रेमप्राणैरनीयत । तावत् संध्याऽगता रागाद् राक्षसीवेक्षितुं रणम् ॥३११॥

अपनी स्त्रीको अपने हृदयमे स्थित मानकर तथा हाय, यह बेचारी इस बाणसे व्यर्थ ही मरी जा रही है ऐसा समझकर शीघ्र ही अपने प्राण छोड़ दिये थे ॥३०२॥ जिसका सब शरीर शस्त्रोसे छिन्न-भिन्न हो गया है ऐसे किसी अन्य योद्धाको यमराज लेनेके लिए आ गया था परन्तु स्त्रीकी चिन्तामे लगे हुए उसे कामदेवने यमराजके हाथसे छुड़ा लिया था ॥३०३॥ प्रेम और शोकके कारण अपनी स्त्रीके द्वारा गलेसे आलिंगन किया हुआ कोई घावसहित योद्धा उसी प्रियाका ध्यान कर तथा शरीर छोड़कर उसीके साथ मर गया ॥३०४॥ किसी योद्धाने व्रत धारण कर लिये थे इसलिए उसकी स्त्री उससे कह रही थी कि कल स्वर्गमे न जाने क्या-क्या होगा ? इसमे कुछ भी सशय नहीं है कि हम दोनोका समागम यहाँ हो सकता है, चूँकि तुम्हे स्वर्गमे बहुत-सी स्त्रियाँ मिल जायेगी इसलिए मैं आज यहाँ ही क्रीडा करूँगी ॥३०५॥ हम दोनोका निवास चाहे यहाँ हो, चाहे परलोकमे हो, उसकी चिन्ता ही नहीं करनी चाहिए । क्योंकि हम लोगोका वियोग तो कही भी नहीं हो सकता है इस प्रकार कहती हुई कोई स्त्री अपने पतिको सन्तुष्ट कर रही थी ॥३०६॥ कोई स्त्री क्रोधपूर्वक अपने पतिसे कह रही थी कि तुम तो व्रत धारण कर वीर लक्ष्मी और कीर्तिको प्राप्त होओ — उनके पास जाओ, दीर्घ आयु होनेके कारण यह कामदेव मुझे ही मारे ॥३०७॥ कोई स्त्री अपने पतिसे कह रही थी कि यह निश्चित है कि जयकुमारकी जीत तेरे ही प्राणोसे होगी और व्रतोके धारण करनेवाले हम दोनो ही आज स्वर्ग जावेगे ॥३०८॥ खण्डिता स्त्रियाँ कामदेवको उद्देश्य कर अपने मनमे कह रही थी कि अरे काम, सयोगी पुरुषोपर पड़ते समय तेरे बाण फूलोके हो जाते है और तू भी बहुत ठण्डा हो जाता है, उन पुरुषोके पास तेरे बलकी सब परख हो जाती है, वास्तवमे तू पुरुषोसे डरना है परन्तु हम स्त्रियोपर पड़ते समय तेरे बाण लोहेके ही रहते है, और तू भी यमराज बन जाता है । भावार्थ — तू पुरुषोको उतना दुःखी नहीं करता जितना कि हम स्त्रियोको करता है ॥३०९—३१०॥ प्रेमरूपी प्राणोको धारण करनेवाले स्त्री-पुरुषोने इस प्रकारकी बातचीतके द्वारा ज्यो ही वह रात्रि पूर्ण की त्यो ही रागसे सग्राम देखनेके लिए आयी हुई राक्षसीके समान सन्ध्या (सवेरेकी लाली) आ गयी ॥३११॥

१ कण्ठेनालिङ्गित इ०, अ०, स०, प० । २ मरणम् । ३ अनन्तरागामिदिने । ४ स्यादिति न जाने इति सवन्ध । ५ आवयो । ६ स्वर्गे । ७ क्रीडामि । ८ स्वर्गे । ९ सनियम । १० गच्छ । ११ मनियमावावाम् । १२ सगतेषु स्त्रीपुरुषेषु । १३ अतिशयेन सुखहेतु । १४ सयुक्तम्ब्रीपुरुषेषु । १५ अयम्भवन्वित । १६ पुरुष-वियुक्ता । १७ स्वाभिप्रायम् । १८ भणन्ति स्म । १९ मियो भाषणैः । २० प्रेम इव प्राणा येषां तै ।

प्राप्तातानवरोदानो नि स्यन सनया समम् । आश्रमनि स्म द्विचक्रमममणोच्चैस्तदा ॥३१२॥
 प्रतीच्याऽपि युतश्चन्द्रो मयैवोदनि भास्कर । इति स्नदादिव प्राथा प्रागमादुदयाद्रव ॥३१३॥
 मरमा^१ कमलाश्रिभ्य प्रयुद्धानो तदा मुदा । नियया स्वाथमादाय निद्रय भ्रमरायली ॥३१४॥
 गतायां स्वेन मङ्गाय पद्मिन्यां स्वादय रयि । लक्ष्मीं निजकरणाचैविदधे मा हि मित्रता^२ ॥३१५॥
 रक्त^३ करै ममाश्रित्य सप्या मद्या प्यरउयने । यदक्षिण रविमौगान् पय^४ विरमान् स्फुटम् ॥३१६॥
^५पयस्यभान् पुरवतां स्वां मभ्यामिति वक्ष्यया । रवि^६ रक्तमपि स्थायै^७ प्राप्यक्षमन^८ न क्षणम् ॥३१७॥
^९क्षयित्वा धीरशय्यायां निशा नीत्या नियामिन^{१०} । स्नात्वा मत्प्रियापदानानायचनापका ॥३१८॥
 भक्षित्वा विधिना स्तुत्वा जिनं त्रांछिगमस्तान् । भनिष्ठसायक^{११} मयै परिच्छिद्य रणा मुग्धा ॥३१९॥
 अरिभ्रयाख्यमारुह्य रथ इवताभयाजितम् । गृह्णाया वज्रकाण्डं च दत्त यक्षिणा द्वयम्^{१२} ॥३२०॥
 यन्दिमागधट्ट^{१३} रन^{१४} यन्धमानाङ्गमालिक । गजध्वज^{१५} समुधाप्य पयस्यमाममु^{१६} सुर ॥३२१॥
 जयो ज्यास्फालनं कुर्वन् कृतान्तविद्वतादृति । द्विपानो^{१७} भीषणस्तस्था दिनामध्याहरन् मदम् ॥३२२॥
^{१८}उपोदयायशस्काति अरकातिदृष्टुतच्छवि ।^{१९}वारागारमिवाध्यास्य स्य^{२०} दन म^{२१} दवाजिनम् ॥३२३॥

उसी समय दोनों सेनाओंमें साथ साथ उठनेवाले प्रातः कालीन परोडा यात्राके दायने
 एक साथ सब निशाए भर दी ॥३१२॥ यद्यपि चन्द्रमा पश्चिम निशाके साथ है तथापि सूर्य तो
 मेरे ही साथ उदय होगा इसी प्रेमसे मानो पूव निशा सूर्योदयमें पहल ही मुशोभित होने लगी
 थी ॥३१३॥ उस समय भ्रमरोंकी पक्ति तालाबोंके पूल हुए (पक्षम जागे हुए) कमलरूपी
 नेत्रोंसे अपना इष्ट पदार्थ लेकर निद्राके समान बड़ी प्रसन्नताके साथ निवल रही थी ॥३१४॥
 कमलिनी मेरे अस्त हाते ही संकुचित हो गयी थी, इसलिए सूर्यने अपना उदय होते ही अपने ही
 किरणरूपी हाथाने उसपर बहुत अच्छी शोभा की थी सो ठीक ही है क्योंकि मित्रता यही
 कहलाती है ॥ ३१५ ॥ रक्त अर्थात् लाल (पक्षम प्रम करनेवाला) सूर्य, वर अर्थात् किरणो
 (पक्षम हाथा) से सध्याका आलिंगन कर शीघ्र ही विरक्त अर्थात् लालिमारहित (पक्षम राग
 हीन) हो गया था सो मानो वह यही कह रहा था कि ये भोग अन्त समयम नीरस होते हैं ॥३१६॥
 इस सूर्यने पहलके समान ही अपनी सध्यारूपी स्त्रीका आलिंगन किया है इस ईप्सि ही मानो
 पूर्वे दिशाने सूर्यको प्रेमपूण अथवा लाल वण होनेपर भी अपने पास क्षण भर भी नहीं ठहरने
 दिया था ॥३१७॥ व्रत नियम पालन करनेवाले सेनापतियोंने वीरशय्यापर शयन कर रात्रि
 व्यतीत की । सवेरे स्नान कर सब दीन, अनाथ तथा याचकाको सन्तुष्ट किया, त्रिजगद्वन्द्व जिनेन्द्र
 देवकी विधिपूर्वक पूजा कर स्तुति की और फिर वे अपनी-अपनी सेनाका विभाग कर युद्धके
 लिए उत्सुक हो खड़े हो गये ॥३१८-३१९॥ बन्दीजन और मागध लोगोंका समूह जिसके
 नामके अक्षरोंकी स्तुति करते हैं जो बिजयलक्ष्मीके लिए उत्सुक हो रहा है, जिसका आकार
 यमराजके समान विकृत है जो दिग्गजोंके भी मदको हरण करनेवाला है और भयंकर है ऐसा
 जयकुमार सफेद घोड़ोंसे जुते हुए अरिजय नामके रथपर सवार होकर और वज्रकाण्ड नामका
 वह धनुष जो कि पहले चक्रवर्तीने दिया था, लेकर हाथीकी ध्वजाको उड़ाता तथा धनुषकी
 डोरीका आस्फालन करता हुआ खड़ा हो गया ॥३२०-३२२॥ जिसकी अपकीर्तिका उदय

१ युगपत् । २ सरोवराणाम् । ३ बृद्धी वृद्धि क्षये क्षयश्च । ४ अरुण अनुरक्तश्च । ५ विरक्तोऽभूत् । ६ अथ
 साने निस्साराणि इति वदन्ति वति सबन्ध । ७ आकिलिङ्ग । ८ अनुरक्तम् । ९ निवसनाय । १० पूर्वोदिक ।
 ११ न सहते स्म । १२ शयन कृत्वा । १३ नियमवन्त । १४ तिष्ठन्ति स्म । १५ रथवज्रकाण्डवापद्वयम् ।
 पुरा ल । १६ स्तूयमान । १७ गजाङ्कितवज्रम् । १८ भयंकर । १९ उदयप्राप्तापकीर्ति । २० अधनालयम् ।

अष्टचन्द्रान् सग्री कुर्वन् न चन्द्रोपमा युजः^१ । स्वोन्पातकेन^२ संकाशचक्रकेतुपलक्षितः ॥३२४॥
^३प्रयायातमहावातविहतस्त्रजवं शरं । विध्यन्म^४ व्यन्दिनाकं वा सुमनश्चतहेनुभिः ॥३२५॥
जय शत्रुदुरालोकं ज्वलत्तेजोमय स्मयान् । कलभो वाऽगमद् चारि^५ प्रेरितः ग्लकर्मणा ॥३२६॥
जयोऽपि शरमन्तानघर्ना^६ कृत्यघनाघन । महाकंकीर्तिमकेण कुर्वन् विनिहतप्रमम ॥३२७॥
'प्रतीयायान्तरे छिन्दन्' रिपुग्रहितमायकान् । शराश्चाम्य पुरो धावन^७ 'व्रजस्येवोदयेऽश्व' ॥३२८॥
अच्छैर्सी^८ 'च्छत्रमस्त्राणि वैजयन्ती'^९ च दुर्जय । जयोऽर्ककीर्तिगैदृत्यं विहन्य विनिर्नीपया^{१०} ॥३२९॥
अष्टचन्द्रास्तदाभ्येन्य^{११} 'विद्यावलविजृम्भणान् । न्यपेधयन् जयस्येपृनम्भोदा वा रवे कगन् ॥३३०॥
भुजवल्गादयोऽ^{१२} भ्येयुर्योद्यु हेमाङ्गद कुधा । मानुजं मिहमद्वान् मिहमद्व इवापर ॥३३१॥
^{१३}मानुजोऽनन्तमेनोऽपि प्राप मेघम्वगनुजान् । 'आङ्गरेयो यथा यूय कलिङ्गज'^{१४} मतङ्गजान् ॥३३२॥
अन्येऽप्यन्याश्च भृपाला भृपालान् कोपिनस्तदा । आनिपेनुः^{१५} 'कुलाद्रीन्वा संचरन्त'^{१६} कुलाचला ॥३३३॥
नास्येपामीदृशी शक्तिविश्रेयमिनि विद्यया । जयो युद्धाय सन्नद्धस्तदा^{१७} 'मित्रभुजङ्गम ॥३३४॥

हो रहा है, कान्ति नष्ट हो गयी है, युद्धके नष्ट चन्द्रोके समान अष्टचन्द्र विद्याधरोको जिसने अपना मित्र बनाया है, जो अपना अनिष्ट मूचित करनेवाले धूमकेतुके समान चक्रके चिह्नवाली ध्वजासे सहित है, और उलटी चलनेवाली तेज वायुसे जिनका वेग नष्ट हो गया है ऐसे देवताओका घात करनेवाले वाणोमे जो दोपहरके सूर्यपर प्रहार करता हुआ-सा जान पड़ता है, ऐसा अर्ककीर्ति धीरे चलनेवाले घोडोमे जुते हुए जेलखानेके ममान अपने रथपर बैठकर, शत्रु जिसे देख भी नहीं सकते और जो जलते हुए तेजके समान है ऐसे जयकुमारपर बड़े अभिमानसे इस प्रकार आया जिस प्रकार कि हाथी पकड़नेवालोके क्रूर व्यापारसे प्रेरित होता हुआ हाथीका वच्चा अपने बँधनेके स्थानपर आता है ॥३२३-३२६॥ वाणोके समूहमे मेघोको सघन करनेवाला जयकुमार भी सूर्यके साथ-साथ अर्ककीर्तिको प्रभारहित करता तथा शत्रुके द्वारा छोड़े हुए वाणोको छेदन करना हुआ मामने आया और जिस प्रकार उदयकालमे सूर्यकी किरणो उसके सामने जाती हैं उसी प्रकार उसके द्वारा छोड़े हुए वाण ठीक उसके सामने जाने लगे ॥३२७-३२८॥ बड़ी कठिनाईसे जीते जाने योग्य जयकुमारने अर्ककीर्तिको हटानेकी इच्छासे उसका उद्धतपना नष्ट कर, उसका छत्र गस्त्र तथा ध्वजा सब छेद डाली ॥३२९॥ जिस प्रकार मेघ सूर्यकी किरणोको रोक लेते हैं उसी प्रकार उस समय अष्टचन्द्रोने आकर अपनी विद्या और बलके विस्तारसे जयकुमारके वाण रोक लिये थे ॥३३०॥ जिस प्रकार एक सिंहोका समूह दूसरे सिंहोके समूहपर आ पड़ता है उसी प्रकार भुजवली आदि भी बड़े क्रोधमे छोटे भाइयोके साथ खड़े हुए हेमागदसे लड़नेके लिए उसके सन्मुख आये ॥३३१॥ जिस प्रकार अंगरदेगमे उत्पन्न हुए हाथियोका समूह कलिग देगमे उत्पन्न हुए हाथियोपर पड़ता है उसी प्रकार अनन्तसेन भी अपने छोटे भाइयोसहित जयकुमारके छोटे भाइयोके सामने जा पहुँचा ॥३३२॥ उस समय और भी राजा लोग क्रोधित होते हुए अन्य राजाओपर इस प्रकार जा टूटे मानो कुलाचल कुलाचलोपर टूट पड़ रहे हो ॥३३३॥ इन मेरे पक्षवालोकी न तो ऐसी शक्ति है

१ युद्धम्य । २ निजविनाशहेतुकजयमान । ३ प्रतिकूलमागत । ४ मध्याह्नमिव । मध्याह्नरविमण्डलाभिमुख मुक्ता शरा यथा स्वशरीरे पतन्ति तद्वदित्यर्थ । ५ गर्वात् । ६ गजपतनहेतुगर्तम् । ७ निविडीकृत । ८ अभिमुख जगाम । ९ शत्रुविमर्जित । १० रवे । ११ चिच्छेद । १२ ध्वजाम् । १३ निगकरणेच्छया नेतुमिच्छया वा । १४ नम्मुवमागत्य । १५ अभिमुखमाजगम् । १६ निजानुजसहित । १७ अङ्गरदेगे भव । आङ्गरेयो ल० । १८ कलिङ्गदेगे भव । १९ प्राप्नुवन्ति स्म । अभिपेनु ल०, ड०, न०, प० । २० मञ्चवलन्तः कुलादय । ल० । २१ पूर्व मुनेर्ब्रह्मश्रवणजाननागरात्र ।

विदित्वा विष्टराक्षपाञ्जय मग्राप्य सादर । नागपाश शर चाद्वचन्द्र दत्ता मयागमा ॥३३२॥
 त^१ सहस्रसहस्रांशुस्फुरद्गुणभास्वरम् । कारव^२ शरमादाये वज्रकाण्ड^३ प्रयागयन्^४ ॥३३३॥
 हत पय मृता^५ मत्तु भुषोऽन^६ नेति सम्भ्रमम् । नरविद्याधराध शा महाशतमुद्रपादयन्^७ ॥३३४॥
 रथाग्नय तथा दुष्टानष्टचन्द्रान् समारयन् । म^८ शरा भरमयामाम शस्त्राणि च यथाऽशनि ॥३३५॥
 छिन्नदन्तकरो दन्तावा^९तरो पा हतायुध । अग्नमान कुमार शत्राद् विष्ट^{१०} चरित विष्ट ॥३३६॥
 इति दत्तग्रह^{११} यार गज या पादपाश^{१२} । अवायुधैर्यायनैविधिपन्नमे^{१३} जाग्रहन्^{१४} ॥३३७॥
 तच्छाय यत्पराभूत प्राक् प्राप्तपरिभूतिभि । यत्पश्चात्माहम चाष्टगन्^{१५} म द्विताय परामय ॥३३८॥
 सोऽवयः स पिता तात्क् पद सा सैन्यसहति । तस्याध्वार्माद्वरधयमु^{१६}माग क न पादयन् ॥३३९॥
 धारपट्टेन वद्धोऽथ चक्रिणानेन तामुत । प्रणयदपद नात पश्य कायविषययम् ॥३४०॥
^{१७}पतत्त्वत्तद्वसङ्गा^{१८}मरकानिभ्रमायुधम् । स्वरथ रथापविस्थात्पराङ्मानक्य स्वयम् ॥३४१॥
 विषक्षखगभूपालान् नागपाशन पाशिवन्^{१९} । निष्प^{२०}द निजिताशनिन्वममान्^{२१} मिहविममान् ॥३४२॥

और न यह विद्या ही है ऐसा समझकर जयकुमार स्वयं युद्धव लिए तयार हुआ, उमौ समय उसका मित्र सपका जीय जा वि दव हुआ था आसन बम्पिन हानस भर समाचार जानकर बड़े आदरके साथ जयकुमारके पास आया और नागपाश तथा अद्वचन्द्र नामका बाण दवर चला गया ॥३३४-३३५॥ जो हजार सूर्यकी चमकती हुई विरणानि समान ददीप्यमान हा रहा था ऐसा वह बाण लकर जयकुमारने अपने वज्रकाण्ड नामक धनुषपर चढ़ाया ॥३३६॥ इस बाणसे चक्रवर्तीका पुत्र अवश्य ही मारा जायेगा यह जानकर भूमिगावरी और विद्याधरके अधिपति राजाओने बड़ा भारी क्षाम उत्पन्न किया ॥३३७॥ उम बाणने नो रथ, सारथिसहित आठा अधचन्द्र और सत्र बाण वज्रकी तरह भस्म कर दिये ॥३३८॥ जिसका मान भग हा गया है ऐसा अककीर्ति निसके दांत और सूड कट गयो है ऐसे हाथीक समान अथवा जिसका शस्त्र नष्ट हो गया है ऐस यमराजकी तरह चेष्टारहित खड़ा था इसलिए कहना पड़ता है कि दवकी इस दु ख देनेवाली चेष्टाको धिक्कार हो ॥३३९॥ जिस प्रकार शस्त्ररहित किन्तु उपायको जाननेवाल पुरुष परोकी पाशसे दांतोकी दबोचकर नीर हाथको पकड ल्ते हैं उसी प्रकार जयकुमारने अककीर्तिको पकड लिया ॥३४०॥ तिरस्कार होनेक पहल-पहल जो लडना है वह शूरवीरता है और तिरस्कार प्राप्त कर घटतावश जो पीछसे लडता है वह दूसरा तिरस्कार है ॥३४१॥ यद्यपि उस अर्ककीर्तिका लोकोत्तर वश था, चक्रवर्ती पिता थे, युवराज पद था और भारी सेनाका समूह उसके पास था तो भी उसकी यह दशा हुई इससे कहना पडता है कि दुराचार किसे पीडित नही करता है ? ॥३४२॥ चक्रवर्तीने जयकुमारकी वीरपट्ट बांधा था परन्तु इसने उनके पुत्रकी धावोंकी पट्टियोंका स्थान बना दिया, जरा कायकी इस उलट पुलटको तो देखो ॥३४३॥ सब शत्रुओंकी जीतनेवाल जयकुमारने अग्निपर पडते हुए पतगके समान तथा हथियाररहित अककीर्तिको अपने रथमे डालकर और स्वयं एक ऊँचे हाथीपर आरुढ़ होकर सिहके समान पराक्रमी शत्रुभूत विद्याधर राजाओको वरुणके

१ अद्वचन्द्रशरम् । २ सहस्ररथि । ३ जयकुमार । ४ वज्रकाण्डकोदण्डे । ५ प्रवतयन् । ६ चक्रिण । ७ अयेन । ८ सम्भ्रान्तिम् । ९ उत्पादितवान् । १० अद्वचन्द्रबाण । ११ कृतग्रहणम् । दत्तग्रह ल० । १२ गजवधन कुशल । १३ अपगतशस्त्र । १४ अककीर्तिम् । १५ ग्राहयति स्म । १६ धुष्टत्वात् । १७ पतत्सूयसदृशम् । १८ पाशपाणिधत् अवतीत्यथ । प्रवेता वरुण पाशी यादसा पतिरप्सति इत्यभिधानात् । १९ नियमितवान् ।

इति ^१सौलोचने युद्धे समिद्धे शमिते^२ तदा । पपात ^३पञ्चभूजेभ्यो वृष्टिः सुमनसां दिवः^४ ॥३४६॥
जयश्रोतुर्जयस्वामितनूजविजयार्जिता । नोत्सेकायेति^५ नास्यैर्न^६ त्रपैव^७ प्रत्युताश्रयत् ॥३४७॥
^८जयेनास्थानं सङ्ग्रामजयायातेति लज्जया । दूरीकृतेव तत्कीर्तिर्दिगन्तमगमत्तदा ॥३४८॥
अकम्पनमहीशस्य यूथे^९ वा वनद्विपैः । भूपैः सयमितैः^{१०} सार्धमर्ककीर्तिं समर्प्य सः ॥३४९॥
विजयार्धमहागन्धसिन्धुरस्कन्दसधृतः । निर्भस्मितोदय^{११} क्षमाभृन्मूर्धस्थबन्ध^{१२} मण्डलः ॥३५०॥
रणभूमिं समालोक्य समन्ताद्बहुविस्मयः । मृतानां^{१३} प्रेतमंस्कार^{१४} जीवतां जीविकाक्रियाम्^{१५} ॥३५१॥
कारयित्वा पुरी सर्वसम्मदाविष्कृतोदयाम् । प्राविशत् प्रकटैश्चर्यः सह मेघप्रभाद्विमिः ॥३५२॥
अकम्पनोऽप्यनुप्राप्य^{१६} वृत्तैरन्तःसमाकुलः । राजकण्ठीरवै^{१७} र्वामा^{१८} राजपुत्रशतैः^{१९} पुरम् ॥३५३॥
सरक्षान् धृतभूगालान् कुमारं च नियोगिमिः । आश्वास्याश्वासकुशलैर्यथा स्थानमवापयत् ॥३५४॥
त्रिचिन्त्य विश्वविघ्नानां विनाशोऽहं प्रसादतः । इति वन्दितुमाजग्मुः सर्वे नित्यमनोहरम्^{२०} ॥३५५॥
दूरादेवावस्थात्मावाहेभ्यः^{२१} शान्तचेतसः । परीत्यार्थमिरागत्य^{२२} तुष्टुवुः स्तुतिभिर्जिनान् ॥३५६॥

समान नागपाशसे इस प्रकार बाँधा जिससे वे हिल-डुल न सके ॥३४४-३४५॥ इस प्रकार जब सुलोचना-सम्बन्धी प्रचण्ड युद्ध शान्त हो गया तब स्वर्गके पाँच प्रकारके कल्पवृक्षो-से फूलोकी वर्षा हुई ॥३४६॥ अपने दुर्जय स्वामी (भरत) के पुत्र अर्ककीर्तिके जीतनेसे उत्पन्न हुई विजयलक्ष्मी जयकुमारके अहंकारके लिए नहीं हुई थी बल्कि इसके विपरीत लज्जाने ही उसे आ घेरा था ॥३४७॥ 'यह अयोग्य समयमें किये हुए संग्रामके जीतनेसे आयी है' इस लज्जा-के कारण जयकुमारके द्वारा दूर की हुई के समान उसकी वह कीर्ति उसी समय दिशाओके अन्त तक चली गयी थी ॥३४८॥ जिस प्रकार समर्थ पुरुष जगली हाथियोंके समान झुण्डके मालिक बड़े हाथीको पकड़कर राजाके लिए सौपते हैं उसी प्रकार जयकुमारने बँधे हुए अनेक राजाओ-के साथ अर्ककीर्तिको महाराज अकम्पनके लिए सौप दिया, तदनन्तर उदयाचलके शिखरपर स्थित सूर्यमण्डलको तिरस्कृत करता हुआ विजयार्ध नामके बड़े भारी मदोन्मत्त हाथीके स्कन्धपर सवार होकर युद्धका मैदान देखनेके लिए निकला, चारो ओरसे युद्धका मैदान देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ, उसने मरे हुए लोगोका दाहसंस्कार कराया और जीवित पुरुषोंके अच्छे होनेका उपाय कराया, इस प्रकार जिसका ऐश्वर्य प्रकट हो रहा है ऐसे जयकुमारने मेघप्रभ आदिके साथ-साथ सबको आनन्द मिलनेसे जिसकी गोभा खूब प्रकट की गयी है ऐसी काशीनगरी-में प्रवेश किया ॥३४९-३५२॥ महाराज अकम्पनने भी सैकड़ो राजपुत्रो तथा सिंहके समान तेजस्वी राजाओके साथ-साथ नगरमें पहुँचकर रक्षा करनेवाले जिनके साथ हैं ऐसे बँधे हुए अनेक राजाओ तथा अर्ककीर्तिको समझानेमें कुशल नियुक्त किये हुए पुरुषों-द्वारा समझा-बुझाकर उन्हें उनके योग्य स्थानपर पहुँचाया ॥३५३-३५४॥ अरहन्तदेवके प्रसादसे ही सब विघ्नोका नाश होता है ऐसा विचारकर सब लोग वन्दना करनेके लिए नित्यमनोहर नामके चैत्यालयमें आये ॥३५५॥ उन सभीने दूरसे ही अपनी-अपनी सवारियोंसे उतरकर शान्तचित्त हो मन्दिरमें प्रवेश किया और प्रदक्षिणाएँ देकर अर्थसे भरी हुई स्तुतियोंसे जिनेन्द्रदेवकी स्तुति की ॥३५६॥

१ सुलोचनामम्बन्धिनि । २ उपशान्ते । ३ 'मन्दार पारिजातक । सन्तान कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्' इति पञ्चमुरभूजेभ्यः । ४ स्वर्गात् । ५ गर्वाय । ६ तस्यैर्न ल० । एनम् जयकुमारम् । ७ पुन किमिति चेत् । ८ जयकुमारेण । ९ अनुचितस्थानकृतयुद्धविजयात् समुपागता । १० गजयूथाधिपम् । ११ वद्धे । १२ उदयाचलः । १३ रविः । १४ शवः । १५ जीवन्तीति जीवन्तस्तेषाम् । १६ जीवनोपायमित्यर्थः । १७ अभिलक्षितं । १८ इव । १९ सह । २० महम्मै । २१ नित्यमनोहराख्य चैत्यालयम् । २२ निजवाहनेभ्यः । २३ स्तुति चक्रः ।

जयाऽपि तगदीशानमित्यासंविजयादय । ^१अस्मादादस्तस्मात् अनिनिमरन्ममा ॥३१७॥

यियागिनी

शमितानिलविष्णुमस्तवस्त्वयि सुराण्यप्युपवाग्यमुच्छताम् ।

शुचिपुनिपुटऽम्बु मधुत ननु मुक्ताफलं प्रपद्यते ॥३१८॥

यस्यति न विष्णुकाटया

निरुत्तमप्रमयोनिवामिनाम् ।

पटयाऽपि पल द्वाग्निभि

भयमस्यैश्वर्यमुधिमप्यवतिनाम् ॥३१९॥

हृदय त्वयि मत्तिभाषिन्

दिव कऽपि भय^१विधिग्य^२ ।

अमृताशिषु^३ सारु सन्तत

विषमादापितविष्णुय हुत ॥३२०॥

उपवागिति समस्तसपदा

विपदा विष्णुतिमाप्नुयन्त्यलम् ।

दृपम^४ दृपमाणदशिन

क्षयकगुद्विपमाप्नुयो^५ सगाम् ॥३२१॥

वसन्ततिलकम्

द्वार्थं भवन्तमनिमलिपय निनीयो^६

प्रागव यग्धटलम^७ प्रलय प्रजति ।

पश्चाद्नभरमयाचितमप्यवश्य

^८सम्पत्स्यतःस्य त्रिलसद्गुणमद्रमद्रम^९ ॥३२२॥

जिसे विजयका ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है ऐसा जयकुमार भी भक्तिस भरे हुए हृदयस समस्त कर्मों को नष्ट करनेवाला जगत्पति—जिनेन्द्रदेवकी इस प्रकार स्तुति करने लगा ॥३१७॥ हे समस्त विष्णुओंको नष्ट करनेवाला जिनेन्द्रदेव आपके विषयम किया हुआ स्तवन थोड़ा होकर भी बड़े महत्त्वको प्राप्त हो जाता है सो ठीक ही है क्योंकि पवित्र सीपवे सम्पुटम पड़ी हुई पानी की एक बुँद भी मोतीपनेको प्राप्त हो जाती है—मोतीका रूप धारण कर लती है ॥३१८॥ हे देव, फल देनेम चतुर करोड़ों विष्णु भी आपके चरणवि समीप निवास करनेवाला पुरुषा को कुछ फल नहीं दे सकते सो ठीक ही है क्योंकि क्या समुद्रके बीचम रहनेवाला लोगोको दावा नलसे कभी भय होता है ? ॥३१९॥ हे प्रभो, आपको हृदयम धारण करनेपर फिर ऐसे कौन शत्रु रह जाते हैं जो भय देनेकी इच्छा कर सकें निरन्तर अमृतभक्षण करनेवाला पुरुषाम किसी विपसे उत्पन्न हुआ उपद्रव कैसे हो सकता है ? ॥३२०॥ धर्मके मागका उपदेश देने वाल और कामदेवके शत्रु श्रीवृषभदेवकी शरण लेनेवाले सज्जन पुरुषोंको सब सम्पदाएँ अपने आप मिल जाती हैं और उनकी सब आपत्तियाँ अच्छी तरह नष्ट हो जाती हैं ॥३२१॥ हे शोभायमान गुणोसे कल्याण करनेवाले जिनेन्द्र, इस प्रकार जो आपको अतिशय भक्तिके मार्गमें ले जाना चाहता है उसके कमबख्शके सब दोष पहल ही से प्रलयको प्राप्त हो जाते हैं और फिर पीछेसे कभी नष्ट नहीं होनेवाला मोक्षरूपी कल्याण बिना माँगे ही अवश्य प्राप्त हो

१ प्राप्त । २ स्तुति स्म । ३ अस्ति किम् । ४ शसिधानीकृते । ५ परिभवम् । ६ विघातुमिच्छव । ७ अमृत भक्षन्तीति अमृताशिनस्तेषु । ८ धर्ममार्गपदेशकम् । ९ आप्नुयताम् । १० मनुमिच्छो । ११ चघदोषा । १२ सम्पन्नं भविष्यति । १३ कल्याणम् ।

मालिनी

परिणतपरितापान्स्वेदधारो विलक्षो^१
त्रिगलितविभुभावो विह्वलीभूतचेता ।

^३अधित विधिविधानं^५ चिन्तयञ्चक्रिसूनु-
विरहविधुरवृत्ति^५ वीरलक्ष्मीवियोगे ॥३६३॥

चमन्ततिलकम्

येषामय^१ जितसुरः समरे महाय-
स्तानप्यहं कृतरतिः समुपासयामि ।

^{१०}धुर्योऽयमेव यदि काऽत्र विलम्बनेति
मन्वेव मद्^१क्षु^१ समियाय जय^{१०} जयश्री ॥३६४॥

मालिनी

स^{११ १२} बहुतरमरा^{१३} जन्मोच्छ्रितान्^{१४} शत्रुपांसून्^{१५}
^{१६}द्रुतमिति समयित्वा वृष्टिभिः सायकानाम् ।

उपगतहरिभूमिः^{१७} प्राप्य भूरिप्रतापं^{१८}
दिनकर इव^{१९} कन्यासंप्रयोगाभिलाषी ॥३६५॥

गार्दूलविक्रीडितम्

मौमाग्येन यदा स्ववक्षसि धृता माला तदैवापरं
वीरो^{२०} वीध्रमवार्यवीर्यविभवो विभ्रज्य^{२१} विज्वद्विषः ।

वीरश्रीविहितं^{२२} दधौ स शिरसाऽग्लानं यशः शेखरं
लक्ष्मीमान् विदधाति साहसमखः^{२३} किंवा न पुण्योदये^{२४} ॥३६६॥

जाता है ॥ ३६२ ॥ प्राप्त हुए सन्तापसे जिसे पसीना आ रहा है, जो लज्जित हो रहा है, 'मैं सबका स्वामी हूँ' ऐसा अभिप्राय जिसका नष्ट हो गया है, जिसका चित्त विह्वल हो रहा है, और जो भाग्यकी गतिका विचार कर रहा है ऐसे अर्ककीर्तिने वीरलक्ष्मीका वियोग होनेपर उसके विरहसे विधुर वृत्ति धारण की थी ॥ ३६३ ॥ देवोको जीतनेवाला यह जयकुमार युद्धमे जिनकी सहायता करता है मैं उनकी भी बड़े प्रेमसे उपासना करती हूँ, फिर यदि यह ही सबमे मुख्य हो तो इसमे विलम्ब क्यों करना चाहिए ऐसा मानकर ही मानों विजयलक्ष्मी जयकुमारके पास बहुत शीघ्र आ गयी थी ॥ ३६४ ॥ इस प्रकार वाणोकी वपसि ऊपर उठी हुई शत्रुरूपी धूलिको शीघ्र ही नष्ट कर पराक्रमके द्वारा सिंहका स्थान प्राप्त करनेवाला और अब कन्याके सयोगका अभिलाषी जयकुमार उस सूर्यकी तरह बहुत ही अधिक सुगोभित हो रहा था जो कि सिंह राशिपर रहकर कन्या राशिपर आना चाहता है ॥३६५॥ जिसकी पराक्रमरूपी सम्पत्तिका कभी कोई निवारण नहीं कर सकता ऐसे गूरवीर जयकुमारने जिस समय सौभाग्यके वशसे अपने वक्ष स्थलपर माला धारण की थी उसी समय सब शत्रुओको नष्ट कर वीरलक्ष्मीका बना हुआ तथा कभी नहीं मुरझानेवाला यगरूपी दूसरा सेहरा भी उसने अपने मस्तकपर धारण किया था, सो ठीक ही है क्योंकि जो लक्ष्मीमान् है, साहसका मित्र है और जिसके पुण्यका

- १ विस्मयान्वित । २ विभुत्वरहित । ३ वरति स्म । ४ कर्मभेदम् । ५ विरहविवलवस्य वतेनम् ।
६ जयकुमार । ७ दुरवर । ८ कालक्षेप । ९ शीघ्रम् । १० जयकुमारम् । ११ जयः । १२ अत्यधिकम् ।
१३ विराजति स्म । १४ उन्नतान् । १५ रेणुन् । १६ शीघ्रम् । १७ प्राप्तगक्रपद । प्राप्तसिंहराशिस्थानश्च ।
१८ सतापम्, प्रभावम् । १९ सुलोचनासङ्गाभिलाषी । कन्याराशिगतसंप्रयोगाभिलाषी च । २० शुभ्रम् ।
२१ पातयित्वा । २२ कृतम् । २३ माहम एव सखा । २४ पुण्योदये ल०, अ०, प०, स०, इ० ।

शिक्षरिणी

‘अयोऽयात्सोऽयश्च’ प्रभवति गुणस्यो गुणगण
 सदाचारात्माऽपि तव विहितवृत्ति भुक्तमपि ।
 प्रणात सवर्गैर्विदितमकलास्य मनु निना
 स्तसस्तान् विद्वान् मध्यतु जयमिच्छन् जय इव ॥३५०॥

इत्यापे त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते
 जयविजयवर्णने नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमं पद्य ॥४४॥



उदय है वह क्या नहीं कर सकता है ? ॥ ३६६ ॥ इस संसारमें विजय पुण्यसे होती है, वह पुण्य गुणोंसे होता है, गुणोंका समूह सदाचारसे होता है, उस सदाचारका निरूपण शास्त्रोंमें है शास्त्र सर्वज्ञ देवके कहे हुए है और सबज्ञ सब पदार्थोंको जाननेवाले जिनेन्द्रदेव हैं इसलिए विजयको इच्छा करनेवाले विद्वान् पुरुष जयकुमारके समान उन्हीं जिनेन्द्रदेवोंका आश्रय करें — उन्हींकी सेवा करें ॥ ३६७ ॥

इस प्रकार आप नामसे प्रसिद्ध गुणभद्राचार्य विरचित त्रिपष्टिलक्षण महापुराणसंग्रहके हिन्दो भाषानुवादमें जयकुमारकी विजयका वर्णन करनेवाला चौवालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।



पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ मेघस्त्रो गत्वा ^१प्रथमानपराक्रमः । मयितारातिदुर्गत्रं पृथु स्वावागमास्थितः ॥ १ ॥
 स्वयं च सच्चिताद्यानि हन्तुं स्तुत्वा जिनेगिनः । अकम्पनमहाराज समालोक्य सुलोचनाम् ॥ २ ॥
 कृताहारपरिन्यागनियोगामायुधस्तदा ^३ । 'सुप्रभाकृतपर्युष्टि कायोन्यर्गेण सुस्थिताम् ॥ ३ ॥
 सर्वशान्तिकरी ध्याति ^४ ध्यायन्ती स्थिरचेतसा । धर्म्यामिकाग्र्यनिष्पन्दा ^५ जिनेन्द्रामिमुग्धो मुदा ॥ ४ ॥
 समभ्यर्च्य समाञ्जस्य प्रशरय बहुशो गुणान् । भवन्माहान्यतः पुत्रि शान्त सर्वममङ्गलम् ॥ ५ ॥
 प्रतिध्वस्तानि पापानि ^६नियाममुमंहर ^७ । इत्युक्षिपनकरामुक्त्वा पुरस्कृत्य सुतां सुतैः ॥ ६ ॥
 हृष्टः सुप्रमया चामा राजगेहं प्रविश्य सः । ^८याहि पुत्रि निजागार विमर्त्येति सुलोचनाम् ॥ ७ ॥
 अन्यथा चिन्तित कार्यं दैवेन कृतमन्यथा । इति कर्तव्यतामृदः ^९सुश्रुतादिभिर्गृध्रीः ॥ ८ ॥
 औत्पत्तिकादि ^{१०}धीभेदैर्वाऽल्लोच्य सच्चित्तमैः । विद्याधरधराधर्मागान् विपाशीकृत्य ^{११}कृत्यवित् ॥ ९ ॥
 विज्वानाञ्जस्य तद्योग्यै ^{१२}सामसांस्तरितैः ^{१३} । गम्यग्विहितसत्कारः स्नानवस्त्रासनानिभिः ॥ १० ॥
^{१४}कुमारवशौ ^{१५}युष्मामिर्विहितौ ^{१६}वर्धितौ च न ^{१७} । तर्हि विषमयोऽप्येति ^{१८}यतोऽभूत् ^{१९}तत क्षयम् ॥ ११ ॥

अथानन्तर-प्रसिद्ध पराक्रमका धारक और शत्रुओके मिथ्या अभिमानको नष्ट करनेवाला जयकुमार अपने विंगाल निवासस्थानमे जाकर ठहर गया ॥ १ ॥ इधर महाराज अकम्पन-ने स्वयं सचित्त किये हुए पाप नष्ट करनेके लिए श्री जिनेन्द्रदेवकी स्तुति की और फिर जिसने युद्ध समाप्त होनेतक आहारके त्याग करनेका नियम ले रखा है, माता सुप्रभा जिसके समीप बैठी हुई है, जो कायोत्सर्गसे खड़ी हुई है, स्थिरचित्तसे सब प्रकारकी शान्ति करनेवाला धर्म-ध्यान कर रही है, एकाग्र मनसे निश्चल है और आनन्दसे जिनेन्द्रदेवके सन्मुख खड़ी है ऐसी सुलोचनाको देखकर उसका सत्कार किया, आश्वासन देकर उसके गुणोकी अनेक बार प्रशंसा की तथा इस प्रकार शब्द कहे-‘हे पुत्रि, तुम्हारे माहात्म्यसे सब अमंगल शान्त हो गये हैं, सब प्रकारके पाप नष्ट हो गये हैं, अब तू अपने नियमोका सकोच कर ।’ ऐसा कहकर उन्होंने हाथ जोड़कर खड़ी हुई सुलोचनाको आगे किया और राजपुत्रो तथा रानी सुप्रभाके साथ-साथ राज-भवनमे प्रवेश किया । फिर ‘हे पुत्रि ! तू अपने महलमे जा’ ऐसा कहकर सुलोचनाको विदा किया ॥२-७॥ पुन यह कार्य अन्य प्रकार सोचा गया था और दैवने अन्य प्रकार कर दिया अब क्या करना चाहिए इस विषयमे मूढताको प्राप्त हुए अतिशय बुद्धिमान् महाराज अकम्पनने औत्पत्तिकी आदि ज्ञानके भेदोके समान मुश्रुत आदि उत्तम मन्त्रियोके साथ विचार कर विद्याधर राजाओको छोड़ दिया । फिर कार्यको जाननेवाले उन्ही अकम्पनने बड़ी शान्तिसे उनके योग्य कहे हुए वचनोसे उन सबको आश्वासन देकर स्नान, वस्त्र, आसन आदिसे सबका अच्छी तरह सत्कार किया ॥८-१०॥ तथा अर्ककीर्तिसे कहा कि ‘हे कुमार ! हमारे नाथवश और सोम-

१ प्रकाशमान । २ स्वावागमगृहे स्थित । ३ युद्धावमानपर्यन्तम् । ४ निजजननीविहितगृहाजिनपूजादिपरिचर्याम् ।
 ५ ध्यानम् । ६ एकाग्रत्वेन निश्चलाम् । ७ नियमम् । ८ त्यज । ९ गच्छ । १० मुश्रुतप्रभृतिमन्त्रिभिः ।
 ११ जन्मव्रतनियमौषधतपोभिरुपपन्नज्ञानभेदैः । १२ नागपाशवन्धन गोत्रयित्वा । १३ माम्ना मारैः । १४ वचनैः ।
 १५ हे अर्ककीर्ते । १६ नाथवंशनोमवशौ । १७ कृती । १८ जयस्य अम्माक च । १९ यस्मान् पुनपात् ।
 २० नजातम् ।

पुत्रश्च पुपदातानामपराधशता यपि । क्षमन् हि महात्मानस्तदि तथा विभूषणम् ॥ १२ ॥
 भवेद्देवादपि स्वामिन्यपराधविधायिनाम् । आश्रयमयश पापं शानुष्यन्नियन्धनम् ॥ १३ ॥
 अपराधं कृतोऽस्माभिरकाशयमविषकिभिः । यथ या व'पुनृत्यान्' कुमार क्षन्तुमहमि ॥ १४ ॥
 यथा कातिरय चैतन् प्रसादोत्ते प्रशाम्यति । शापानुग्रहया न'शनस्य त्रिमुक्ति विधदि न ॥ १५ ॥
 अरुणालारुनाराधि ह'यत जगनश्मम । अस्माकं म मयानरहाग्माद्'ग्मा हरत ॥ १६ ॥
 प्रातिकूल्यं तयास्मासु न'यस्य' स्तनधय' । अम्मग्मा'नरा' एष्टशिपाकवि'य' ॥ १७ ॥
 विश्वविश्यम्भराद्गार्दी यदि क्षिपति पारिदः । व'दा'प्यशनिमक'ग्मि'गतास्ययाशुमादय ॥ १८ ॥
 हयनय दुरारोहा जयनहामि पातित । 'य त प्र'य' किमग्रान्ति यमनम्यम्य कारणम् ॥ १९ ॥
 सुलोचनति का यार्ता मरय नस्तर्धव तत् । निषिद्धिदय'यया पूर प्रियत किं स्वयवर ॥ २० ॥
 लक्ष्मीमतीं गृह्णामामैक्षमालापराभिधाम् । निमलं वा यशामालं किं त' पापाणमालया ॥ २१ ॥

वंश दोना ही आपके द्वारा बनाये गये हैं और आपका द्वारा ही बढ़ रहे हैं । विपका वृद्ध भी जिसमें उत्पन्न होता है उससे फिर नाशका प्राप्त नहीं होता ॥११॥ महात्मा लोग पुत्र, बन्धु तथा पियादे लोगोके सैकड़ा अपराध क्षमा कर देते हैं क्याकि डावो शोभा इसीमें है ॥ १२ ॥ औरा की बात जाने दीजिए जो देवके भी अधीन होकर स्वामीका अपराध करते हैं उनका अपयग कल्पात्त काल तक बना रहता है और उनका यह पाप भी अनेक दापाका बढ़ानेवाला होना है ॥१३॥ हम मूर्खोंने आपका यह एक अपराध किया है । चूकि हम लोग आपके भाइया और भृत्योंमें से हैं इसलिए हे कुमार, यह अपराध क्षमा कर देने योग्य है ॥१४॥ यह हमारी अपकीर्ति और पाप आपके प्रसादसे शांत हो सकता है क्याकि आप शाप देने तथा उपकार करने—दोनाम समर्थ हैं इसीलिए हम लोगोकी शुद्धता अवश्य कर दीजिए ॥१५॥ प्रकाशको रोकनेवाला संसारका अधिकार सूर्यके द्वारा नष्ट किया जाता है परन्तु हमारे लिए तो आप ही सूर्य हैं इसलिए हमारे अन्तःकरणके अधिकारको आप ही नष्ट कर सकते हैं ॥१६॥ पूजकमके पाप बर्मेकि विशेष उदयसे हम लोगोके लिए जो आपका यह विरोध उपस्थित हुआ है वह माना पुत्रके लिए माताके दूधका विरोध उपस्थित हुआ है । भावाथ—जिस प्रकार माताक दूधके बिना पुत्र नहीं जीवित रह सकता है उसी प्रकार आपकी अनुकूलताके बिना हम लोग जीवित नहीं रह सकते हैं ॥१७॥ समस्त पृथिवीको आनन्दित करनेवाला बादल यदि कदाचित् किसी एक पर वज्र पटक देता है तो इसमें बादलका दोष नहीं है किन्तु जिसपर पड़ा है उसोके अंगुष्ठ कमका उदय होता है ॥१८॥ चढना कठिन होनेसे जिस प्रकार थोडा किसीको गिरा देता है उसी प्रकार जयकुमारने आपको गिरा दिया है परन्तु वह तो आपका सेवक है इसमें बुरा माननेका कारण ही क्या है ? ॥१९॥ सुलोचना, यह कितनी-सी बात है ? हमारा जो सबस्व है वह आपका ही है । यदि आप पहले ही रोक देते तो स्वयवर ही क्यों किया जाता ? ॥२०॥ जिसका दूसरा नाम अक्षमाला है ऐसी मेरी दूसरी पुत्री लक्ष्मीमतीको आप ग्रहण कीजिए । यह लक्ष्मीमती यशकी मालाके समान निमल है, पापाण (रत्नों) की मालासे आपको क्या प्रयो

१ अलम्बलाभ ल'धपरिरक्षणं रक्षितविवर्द्धनं चेत्यनुब'धं ते एव निब'धनं कारणं यस्य । २ युष्माकम् ।
 ३ तत् कारणम् । ४ स्तनक्षीरस्य । ५ शिशो । यथा स्तनक्षीरस्य प्रातिकूल्यं शिशोर्जीवनाय न स्यात्
 तथा तथ प्रातिकूल्यमपि अस्माकम् । ६ अशमकम् । ७ एकस्मिन् पुंसि । ८ जय । ९ तव किकरः ।
 १ स्वयंवरे क्षिप्तपापाणमालया । सुलोचनयाक्षिप्तरत्नमालया ।

आहारस्य^१ यथा तेऽद्य विकारोऽयं विना त्वया । जीविकास्ति किमस्माकं प्रसीदतु विमो भवान् ॥२२॥
यद्वयं भिन्नमर्यादे त्वय्यवार्थेऽम्बुधावित्र । तत्तेऽवशिष्टाः पुण्येन भवत्प्रेषणकारिणः ॥२३॥
त्वं वह्निनेव केनापि पापिना विश्वर्जावितः^२ । उष्णीकृतोऽसि प्रत्यस्मान् शीतीभव हि वारि^३ वा^४ ॥२४॥
न^५ चेदिमान् सुतान् दारान्^६ प्रतिग्राह्य पालय । मम तावाश्रयौ यामि पुरुषां पादपादपौ ॥२५॥
इति प्रसाद्य संतोष्य समारोप्य गजाधिपम् । अर्ककीर्तिं पुरोधाय^७ वृतं भूचरखेचरं ॥२६॥
शान्तिपूजां विधायाष्टौ दिनानि विविधद्विकाम् । महामिषेकपर्यन्तां सर्वपापोपशान्तये ॥२७॥
जयमानीय सधार्थं संधानविधिवित्तदा । नितरा प्रीतिमुत्पाद्य कृत्वैकीभात्रमक्षरम्^८ ॥२८॥
^{१०}अक्षिमालां महाभूत्या दत्त्वा सर्वार्थगंपदा । संपूज्य गमयित्वैनम^{११} नुगम्य^{१२} यथोचितम् ॥२९॥
तथेतरांश्च समान्य नरविद्याधराधिपान् । सद्यो विसर्जयामास सद्ब्रह्मगजवाजिभिः ॥३०॥
ते स्वदुर्णयलज्जास्तवैरा^{१३} स्व^{१४} स्वमगुः^{१५} पुरम् । साधीदैवा^{१६} पराधस्य^{१७} प्रतिकर्त्री हियाऽचिरात् ॥३१॥

जन है ? ॥२१॥ आज यह आपका विकार आहारके विकारके समान है, क्या आपके बिना हम लोगोकी जीविका रह सकती है ? इसलिए हे प्रभो, हम लोगोपर प्रसन्न हूजिए । भावार्थ — जिस प्रकार भोजनके बिना कोई जीवित नहीं रह सकता उसी प्रकार आपकी प्रसन्नताके बिना हम लोग जीवित नहीं रह सकते इसलिए हम लोगोपर अवश्य ही प्रसन्न हूजिए ॥२२॥ हम लोग तो इधर-उधर भेजने योग्य सेवक हैं और आप जिसका निवारण न हो सके ऐसे समुद्रके समान हैं । हे नाथ, आपके मर्यादा छोड़नेपर भी जो हम लोग जीवित बच सके हैं सो आपके पुण्यसे ही बच सके हैं ॥२३॥ आप पानीके समान सबको जीवित करनेवाले हैं जिस प्रकार अग्नि पानीको गरम कर देती है उसी प्रकार किसीने हम लोगोके प्रति आपको भी गरम अर्थात् क्रोधित कर दिया है इसलिए अब आप पानीके समान ही शीतल हो जाइए ॥२४॥ यदि आप शान्त नहीं होना चाहते हैं तो इन पुत्रो और स्त्रियोको स्वीकार कीजिए, इनकी रक्षा कीजिए, मैं हम आप दोनोंके आश्रय श्रीवृषभदेवके चरणरूपी वृक्षोके समीप जाता हूँ ॥२५॥ इस प्रकार भूमिगोचरी और विद्याधरोसे घिरे हुए अर्ककीर्तिको प्रसन्न कर, सन्तुष्ट कर और उत्तम हाथी-पर सवार कराकर सबसे आगे किया तथा सब पापोकी शान्तिके लिए आठ दिन तक बड़ी विभूतिके साथ महामिषेक होने पर्यन्त शान्तिपूजा की । मेलमिलापकी विधिको जाननेवाले अकम्पनने जयकुमारको भी वहाँ बुलाया और उसी समय सन्धि कराकर दोनोंमे अत्यन्त प्रेम उत्पन्न करा दिया तथा कभी न नष्ट होनेवाली एकता करा दी । तदनन्तर अर्ककीर्तिको बड़े वैभव और सब प्रकारकी धनरूप सम्पदाओके साथ-साथ अक्षमाला नामकी कन्या दी, अच्छा आदर-सत्कार किया और उनकी योग्यताके अनुसार थोड़ी दूर तक साथ जाकर उन्हें बिदा किया । इसी प्रकार अच्छे-अच्छे रत्न, हाथी और घोड़े देकर अन्य भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओका सन्मान कर उन्हें भी शीघ्र ही बिदा किया ॥२६-३०॥ अपने अन्यायके कारण उत्पन्न हुई लज्जासे जिनका वैर दूर हो गया है ऐसे वे सब लोग अपने-अपने नगरको चले गये, सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धि वही है जो भाग्यवश हुए अपराधका शीघ्र ही प्रतिकार कर लेती ।

१ आहारो यथा विनाशयति । २ विश्वेपा जीवन यस्मात् स विश्वजीवित । विश्वजीवन अ०, प०, स०, इ०, ल० । ३ जलम् । ४ इव । ५ एव न चेत् । ६ प्रतिग्रह कुरु । ७ अग्रे कृत्वा । ८ अन्योन्यमवन्व कृत्वा । ९ अविनश्वरम् । १० अक्षमालाम् अ०, स०, इ०, ल० । ११ अर्ककीर्तिम् । १२ किञ्चिदन्तर गत्वा । १३ निरस्त । १४ न्वा स्वामगु पुरीम् द०, अ०, न० । १५ जगु । १६ वाज्जानापराधम्य । १७ प्रति-विधान करिष्यति ।

तदा 'पूर्वा' ता इव ममागत्य सुमपदा । सुलोचनायिवाहाहृदयान् ममपादयन् ॥३१॥
 मधप्रभमुखं वा देवस्यहाथान् महानुता^२ । तयाऽप्यगतयन् मयान् सन्तर्पयद्यदुद्रि^३ ॥३२॥
 'माधवशाग्रणाश्रमा' । 'माशाऽप्यगत्य मयान्' । मुधा इवगृहमाशानि^४ यत्ता रतायुपायनम् ॥३३॥
 विदितप्रस्तुतार्थाऽसि यथाऽमा^५ न इव इति । तथा कुयिनि चक्रेण^६ 'सुमुखा'यमनागम^७ ॥३४॥
 आशु गत्या निवद्यासो^८ 'दृष्ट'धरा धरणा^९ तनुम् । क्षिप्याप्रगम्य द्या^{१०} च प्राकृत निभृताऽजलि^{११}
 दवस्यानुचरा इव प्रणम्याकम्पना मयान् । दय विनापययव प्रमाद पुन^{१२} तदृष्टु ॥३५॥
 सुलोचनसि न^{१३} 'क'यामारस्वयन्निहितत्रिष । स्वयंवरविधानेन सप्रादायि^{१४} 'तया'य मा ॥३६॥
 'तयागत्य कुमा'राऽपि प्राक् मयमनु^{१५} 'मय' तन^{१६} । विद्याधरधराधीन मुप्रमत्ते सह दिवत ॥३७॥
 पश्चात् कोऽपि इह मूर स्थिरा म^{१७} 'गुम'महम् । त्वया त्वया मया मम्य कृथा कोपयति मम तम् ॥३८॥
 विज्ञातमय इवन स^{१८} 'त'मविधानकम् । 'चार'चभुध वायतकि पुन^{१९} 'साव'धिमयान् ॥३९॥
 'कुमारा हि कुमाराऽमा नापराधाऽस्ति कथन । 'तत्र' तस्य मदापा^{२०} 'स्मा'२१ वयमय प्रमादिन ॥४०॥

है ॥३१॥ उसी समय पहलू कह हुण दवने आकर यह वमन साथ मुलाचनाव विवाहवा उत्तम
 सम्पन्न किया ॥३२॥ सब प्यारे जयकुमारने भी अपन छोट भादया साथ साथ मधप्रभ मुख
 आदि अच्छे अच्छे सत्र सहायकोंवा घन-द्वारा सन्तुष्ट कर विदा किया ॥३३॥

तदनन्तर नाथवशके गिरामणि अतिशय बुद्धिमान् अवगमन अपन जमाई जयकुमारके
 साथ सलाह की और अपने घरके अच्छ-अच्छ रत्न भेंटम दनक लिए वांधनर मुमुग नामक दूत
 को यह कहकर चक्रवर्तीक पास भेजा कि तू बतमानका सत्र समाचार जानता ही है चक्रवर्ती
 जिस प्रकार हम लोगोपर प्रसन्न हा वही काम कर ॥३४-३५॥ उस दूतने गेय ही जाकर
 पहले अपने आनेकी खबर भेजी फिर चक्रवर्तीके दगन कर पृथिवीपर अपना शरीर डाल प्रणाम
 किया और फिर हाथ जोड़कर साथम लायी हुई भट दवर कहा कि ह दव, अकम्पन नामका राजा
 आपका अनुचर है वह प्रणाम कर भयसे आपस इस प्रकार प्रायना करता है सो प्रसन्नता कीजिए
 और उसे सुन लीजिए ॥३६-३७॥ उसने कहा है कि सुलोचना नामकी मेरी एक उत्तम
 कन्या थी वह मने स्वयंवर विधिसे आपने ही जिसकी लक्ष्मी अथवा दोभा बढ़ायी है ऐसे
 जयकुमारके लिए दी थी ॥३८॥ कुमार अक्कातिने भी उस स्वयंवरम पचारकर पहल सब बात
 स्वीकार कर ली थी और वे प्रसन्न हुए विद्याधर राजाओक साथ साथ वहाँ विराजमान थे
 ॥३९॥ तदनन्तर जिस प्रकार कोई दुष्ट गुम ग्रहके साथ ठहरकर उसे भी दुष्ट कर देता है उसी
 प्रकार किसी दुष्टने जबरदस्ती हम लोगोपर व्यथ ही उह क्रोधित कर दिया ॥४०॥ इसक बाद
 { वहाँ जो कुछ भी हुआ था वह सब समाचार आपको विदित ही है क्योंकि गुप्तचर रूप नेत्राको
 धारण करनेवाला साधारण राजा भी जब यह सब जान लता है तब फिर भला आप तो
 अवधिज्ञानी ह, आपका क्या कहना है ? ॥ ४१ ॥ कुमार तो अभी कुमार (लडका) ही है
 इसम उनका कुछ भी दोष नहीं है प्रमाद करनेवाले केवल हम लोग ही उसमें सदीप हैं

१ स्वयंवरनिर्माण प्रोक्तविश्वित्राङ्गकमुर । २ सहानुजात् प ६० म० ल० । ३ बहव प्रियाणि मित्राणि
 यस्य स । ४ अकम्पन । ५ पुत्रा प्रियेण सह । ६ निजगृहे स्थितेष्वृष्टानि । ७ प्राभृतम् । ८ चक्री । ९ सुमुखा
 ह्ययदूतम् । १० गमयति स्म । ११ दूत । १२ मूक्याम् । १३ स्थिराजलि । १४ कन्यासूक्तकृत्वात् ।
 १५ त्वया कृतवर्मणि जयाय सप्रादाभीति सबन्ध । १६ दत्ता । १७ स्वयंवरे । १८ अनुमति कृत्वा ।
 १९ स्वयंवरविधानम् । २० चन्द्रादिशभ्रहावित यथा भवति तथा स्थित्वा कोपयति तं वधति सबन्ध ।
 २१ तद्वृत्तान्तम् । २२ चारा गूढपुरुषा एव वक्ष्यस्य । २३ अवधिज्ञानसहित । २४ बालक । २५ सविधाने ।
 २६ सापराधा । २७ भवाम ।

तस्मै कन्यां गृहाणेति नास्माभि सा समर्पिता । आराधकस्य दोषोऽसौ यत् प्रकुप्यन्ति देवताः ॥४३॥
 मयैव^२ विहिता सम्यक्^३ वर्णिता वन्वचोऽपि न । स्निग्धाश्च^४ कथमेतेषां विदधामि विनिग्रहम् ॥४४॥
 इत्येतदेव सा मँस्था । स्यात्त मदोषो यदि त्वया । कुमारोऽपि निगृह्येत न्यायोऽयं त्वदुपक्रम^५ ॥४५॥
 तद्वान्नि^६ विधेयोऽत्र^७ को दण्डस्त्रिविधोऽपि न । किंविधः किं परिवर्त्तेशः किं वार्थहरण प्रभो ॥४६॥
 तवादेशविधानेन नितरा कृतिनो वयम् । इहामुत्र च तदेव यथार्थमनुशावि^८ नः ॥४७॥
 इति प्रश्रयणी वार्णा निगद्य हृदयप्रियाम् । सुमुखो राजराजस्य^९ व्यरमीन करसंज्ञया ॥४८॥
 सता वचासि चेतांसि हरन्त्यपि हि रक्षयाम्^{१०} । किं पुन सामसाराणि^{११} तादृगा^{१२} समतादृगाम्^{१३} ॥४९॥
 इहेहीति^{१४} प्रसन्नोऽस्या प्रफुल्लवदनान्बुज । उपमिहासन^{१५} चक्री^{१६} निरुष्टार्थं निवेद्य तम् ॥५०॥
 अकम्पनैः किमित्येवमुदीर्य प्रहितो^{१७} भवान् । पुरुष्यो^{१८} निर्विघ्नेषास्ते सर्वज्येष्ठाश्च सम्प्रति ॥५१॥
 गृहाश्रमे त^{१९} एवाचर्यास्तेरेवाह च वन्द्यमान् । निपेक्षारः प्रवृत्तस्य समागमन्यायवर्त्मनि ॥५२॥
 पुरवो मोक्षमार्गस्य गुरवो दानसन्तते । श्रेयांसि चक्रिणा वृत्तेर्येहास्म्यहमग्रणी ॥५३॥
 तथा स्वयवरस्थेमे नाभूवन् यद्यकम्पना । क प्रवर्तयिताऽन्योऽस्य मार्गस्यैष^{२०} मनातनः ॥५४॥

॥ ४२ ॥ 'तुम इस कन्याको ग्रहण करो' ऐसा कहकर तो मैंने जयकुमारके लिए दी नहीं थी, तथापि देवता जो कुपित हो जाते हैं उसमें देवताका नहीं किन्तु आराधना करनेवाले ही का दोष समझा जाता है ॥ ४३ ॥ ये सब वग मेरे ही बनाये हुए हैं, मेरे ही बढाये हुए हैं, मेरे ही भाई हैं और मुझसे ही सदा स्नेह रखते हैं इसलिए इनका निग्रह कैसे करूँ ऐसा आप मत मानिए क्योंकि यदि आपका पुत्र भी दोषी हो तो उसे भी आप दण्ड देते हैं, इस न्यायका प्रारम्भ आपसे ही हुआ है । इसलिए हे प्रभो, आज्ञा दीजिए कि इस अपराधके लिए हम लोगोको तीनो प्रकारके दण्डोमे-से कौन-सा दण्ड मिलने योग्य है ? क्या फाँसी ? क्या गरीरका क्लेश अथवा क्या धन हरण कर लेना ? ॥ ४४-४६ ॥ हे देव, आपकी आज्ञा पालन करनेसे ही हम लोग इस लोक तथा परलोकमे अत्यन्त धन्य हो सकेंगे इसलिए आप अपराधके अनुसार हमें अवश्य दण्ड दीजिए ॥ ४७ ॥ इस प्रकार नम्रतासे भरे हुए और हृदयको प्रिय लगनेवाले वचन कहकर वह सुमुख दूत राजराजेश्वर - चक्रवर्तीके हाथके इशारेसे चुप हो गया ॥ ४८ ॥ जब कि सज्जन पुरुषोके वचन राक्षसोके भी चित्तको मोहित कर लेते हैं तब सबको समान दृष्टि-से देखनेवाले भरत-जैसे महापुरुषोके शान्तिपूर्ण चित्तकी तो बात ही क्या है ? ॥ ४९ ॥ जिनका मुखरूपी कमल प्रफुल्लित हो रहा है ऐसे चक्रवर्तीने 'यहाँ आओ' इस प्रकार प्रसन्नता-भरे वचनोसे उस दूतको अपने सिंहासनके निकट बैठाकर उससे इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया कि 'महाराज अकम्पनने इस प्रकार कहकर आपको क्यों भेजा है ? वे तो हमारे पिताके तुल्य हैं और इस समय हम सभीमे ज्येष्ठ हैं ॥ ५०-५१ ॥ गृहस्थाश्रममे तो मेरे वे ही पूज्य हैं, उन्हीसे मैं भाई-वन्धुवाला हूँ, औरकी क्या बात ? अन्यायमार्गमे प्रवृत्ति करनेपर वे मुझे भी रोकनेवाले हैं ॥ ५२ ॥ इस युगमे मोक्षमार्ग चलानेके लिए जिस प्रकार भगवान् वृषभदेव गुरु हैं, दानकी परम्परा चलानेके लिए राजा श्रेयास गुरु हैं और चक्रवर्तियोकी वृत्ति चलानेमे मैं मुख्य हूँ, उसी प्रकार स्वयवरकी विधि चलानेके लिए वे ही गुरु हैं । यदि ये अकम्पन महाराज नहीं होते तो इस स्वयवर मार्गका चलानेवाला दूसरा कौन था ? यह मार्ग अनादि कालका है

१ जयाय । २ भर्त्तेनव । ३ स्नेहिता । ४ त्वया प्रथमोपक्रान्त । ५ तत् कारणात् । ६ दोषे । ७ नियामय । ८ तूष्णीं स्थित । ९ राक्षसानाम् । १० वचासि साम्ना सागराणि चेत् । ११ सताम् । १२ समत्वनेत्राणाम् । १३ अत्रागच्छेति । १४ मिहामननमीपे । १५ दूतमूढ्यम् । १६ प्रेषित । १७ पुरुजिनेभ्य । गुन्म्यो अ०, प०, म०, ल०, इ०, न० । १८ अकम्पना एव । १९ न्वयंवरमार्ग ।

मागाश्चिन्तनान् यऽत्र मागभूमितिराहितान् । कुर्वन्ति नृगनान् मन्त्रं पृथग्यन्त्रं हि ॥५॥
 न चक्रणं न रत्नद्वयं दर्पणं निधिभिरतथा । यत्नं न पदद्वयं नापि पुत्रैर्मया च न ॥ ६॥
 तद्वत्तत् साधनमप्य जयनद्वयं कथम् । तवग्र नाथकार्येषु तनयं विजया मम ॥५७॥
 श्लच्छराजान् विनिर्निष्य नाभिगच्छ यतामयम् । मक्षाम स्थापितं तनं किमग्रान्नं कनचिन् ॥ ८॥
 अककीर्तिरुक्तिं म कातनायामकागिषु । आशाद्विहरकागामयामागमस्याम् ॥५९॥
 अमुनाऽन्यायवर्मैव प्रायर्त्ताति न कथम् । इह स्वयं च दण्डधानो प्रथमं परिभूयिष्य ॥६०॥
 अभुदयशया रूप मग्रदापादिवाञ्छनम् । नाककातिरया स्पष्टमयनाकातिरय हि ॥६१॥
 नयं पय मदादशादादशाऽन्याययतिन । ममाकृपानस्तनं म मापु द्मिता युधि ॥६२॥
 सदाया यदि निग्राह्या ज्येष्ठपुत्राऽपि भूभुजा । इमि मागमह तस्मिन्मय यमयिषु स्थित ॥६३॥
 अक्षिमाला किं प्रता तस्म कथाऽवलपिने । मयद्मिनिविचार्यतद् विरूपकमनुष्ठितम् ॥६४॥
 पुरस्त्वेत्यहं तामता नात नाऽपि प्रताम्यताम् । मरुद्भूति किं मूर्ति परिहनु भवद्विधा ॥६५॥
 उपक्षित सदायाऽपि स्वपुत्रद्वयवर्तिना । इमादमया स्थायि स्वयायि तद्वत्पुत्र ॥६६॥
 इति सन्ताप्य विद्वत्त मासुप्य मुमुक्षु नयन् । हिरया यत्नं तु तारक मरुद्व्यायमात्मम् ॥६७॥

॥५३-५४॥ इस युगम भोगभूमिम छिप हुए प्राचीन मार्गोको जा नवीन कर दत्त ह व सत्पुत्र्य
 ही सज्जना-द्वारा पूज्य माने जाते ह ॥ ५५ ॥ मेरा यह प्रसिद्ध चक्रवर्तीपना न तो चक्ररत्नस
 मिला है न नेप अय रत्नासे मिला है, न निधियास मिला है, न छह अगावाली सनाम मिला
 है न पुत्रोसे मिला है और न मुझसे ही मिला है, किन्तु बवल एक जयकुमारस मिला है क्याबि
 शूरवीरताके सभी कार्योंम मेरी जीत उसीस हुई है ॥ ५६-५७ ॥ श्लच्छ राजाआको जीतकर
 नाभि पवतपर मेरा कीर्तिमय नाम उसीने स्थापित किया था, इस विषयम और किसीने क्या
 किया है ? ॥ ५८ ॥ इस अककीर्तिने तो अकीर्तियाम गिनने योग्य तथा स्थाही आर उडन्के
 समान काली मेरी अकीर्ति जबतक चद्रमा है तबतकके लिए ससार भरम फला दी ॥ ५९ ॥
 इसने अन्यायका माग चलाया है केवल इतना ही नहीं है । किन्तु ससारसे दण्ड देने योग्य लागा
 में अपने आपको मुख्य बना लिया है ॥६०॥ जिस प्रकार दीपकसे काजल उत्पन्न होता है उसी
 प्रकार यह अकीर्तिरूप मुझसे उत्पन्न हुआ है, यह अककीर्ति नहीं है किन्तु साक्षात् अयशस्कीर्ति
 है ॥ ६१ ॥ मेरी आज्ञासे जयकुमार ही अन्यायम प्रवृत्ति करनेवाल इस प्रकारक लोगोको
 दण्ड देता ह इसलिए इसने युद्धम जो उम दण्ड दिया है वह अच्छा ही किया है ॥६२॥ औरकी
 क्या बात ? यदि बड़ा पुत्र भी अपराधी हो तो राजाको उसे भी दण्ड देना चाहिए यह नीतिका
 माग अककीर्तिपर चलानेके लिए आज म तैयार बैठा हूँ ॥ ६३ ॥ आप लोगाने विचार किये
 बिना ही उस अभिमानीके लिए अक्षमाला नामकी कन्या दे दी यह बुरा किया है ॥ ६४ ॥
 अथवा उस प्रसिद्ध अक्षमाला कन्याकी भेंट देकर आपने उस अककीर्तिको भी पूज्यता प्राप्त
 करा दी है सो ठीक ही है क्योंकि यह कलकसहित है यह समझकर क्या चद्रमाकी मूर्ति छोड़ी
 जाती है ? ॥ ६५ ॥ परंतु चक्रवर्तीने अपराध करनेपर भी अपने पुत्रकी उपेक्षा कर दी -
 उसे दण्ड नहीं दिया इस मेरे अपयशको महाराज अकम्पनने स्थायी बना दिया है ॥ ६६ ॥ इस

१ पुरातनात् पुष । २ युगादी । ३ जयन । ४ अककीर्तिना । ५ प्रवृत्तितम् । ६ दण्डितु योग्यानाम् । ७ सम
 दण्ड कुर्वात् । ८ अककीर्ती । ९ अक्षमाला अ० म इ स ल० । १० दत्ता । ११ गविताय ।
 १२ कष्टम् । १३ लक्ष्मीमालाम् । १४ पूज्यताम् । १५ अकारि । १६ पुत्रम् । १७ यायमेव पुत्रमकरोत् ।

सुमुखस्तदया^१ बौद्ध तदाक्षमः । स जयोऽकम्पनो देव देवस्य नमति क्रमौ ॥६८॥
 लब्धप्रसाद इत्युक्त्वा क्षिप्त्वाऽङ्गानि प्रणम्य तम् । त्रिकसद्वदनाम्भोज समुत्थाय कृताञ्जलिः ॥६९॥
 इत एवोन्मुखौ तौ त्व^३त्पतीच्छन्तौ मदागमिन् । आस्थाता चातकौ वृष्टिं प्रावृषो वाऽदिवा^५मुच ॥७०॥
 इति विज्ञाप्य चक्रेशान^९ कृतानुजः कृतत्वरः । सप्रायाकम्पनं नत्वा सजय त्रिहितादरम् ॥७१॥
 गोमि^६ प्रकाश्य रक्तस्य प्रसाद चक्रवर्तिन । रवेर्वा चाम^७रारम्भस्तद्वक्त्राञ्जं व्यकाशयत ॥७२॥
 माधुवादं सदानैश्च संमानैस्तौ च त तदा । ^{१०}आनिन्यनुरनिर्गानि कृतज्ञा हि महीभृतः ॥७३॥
 इत्यतर्कौदयावासि विभासितशुभोदयः । ^{११}अनृपिवान जय श्रीमान् सुखेन श्वासुर^{१२} कुलम् ॥७४॥
 सुलोचनामुखाम्भोजपट्टपायितलोचन । अनङ्गानणुव्राणैकतूणीरायितविग्रहः ॥७५॥
 तथा प्रवृत्ते सङ्ग्रामे मायकैरक्षत क्षतः^{१३} । ^१पेलचैः कुसुमैरभिर्विचित्रा विधिवृत्तयः ॥७६॥
 अस्मिनां सस्मिता कुर्वन्नहसन्ती महायिकाम्^{१५} । ममथां निर्मयां वालामाकुलां तामनाकुलाम् ॥७७॥

प्रकार सवके स्वामी महाराज भरतने सुमुख नामके दूतको सन्तुष्ट कर उसका मुख प्रमन्न किया और ज्येष्ठ पुत्रको छोड़कर न्यायको ही अपना औरस पुत्र बनाया । भावार्थ—न्यायके सामने बड़े पुत्रका भी पक्ष नहीं किया ॥६७॥ उन्ही समय चक्रवर्तीकी दयाका भार वहन करनेके लिए मानो असमर्थ हुआ सुमुख कहने लगा कि 'हे देव, जिन्हे आपका प्रसाद प्राप्त हो चुका है ऐसे जयकुमार और अकम्पन दोनों ही आपके चरणोको नमस्कार करते हैं, ऐसा कहकर उस दूतने अपने समस्त अंग पृथ्वीपर डालकर चक्रवर्तीको प्रणाम किया और जिसका मुखरूपी कमल विकसित हो रहा है तथा जिसने हाथ जोड़ रखे हैं ऐसा वह दूत खड़ा होकर फिर कहने लगा कि "जिस प्रकार दो चातक वर्षा ऋतुके पहले बादलसे वर्षा होनेकी इच्छा करते हैं उसी प्रकार जयकुमार और अकम्पन आपके समीपसे मेरे आनेकी इच्छा करते हुए इसी ओर उन्मुख होकर बैठे होंगे" ऐसा निवेदन कर जिमने चक्रवर्तीसे आज्ञा प्राप्त की है ऐसे उस दूतने बड़ी शीघ्रतासे जाकर आदरके साथ महाराज अकम्पन और जयकुमारको नमस्कार किया तथा वचनोके द्वारा अनुराग करनेवाले चक्रवर्तीकी प्रसन्नता प्रकट कर उन दोनोंके मुखकमल इस प्रकार प्रफुल्लित कर दिये जिस प्रकार कि दिनका प्रारम्भ समय (प्रातः काल) किरणोके द्वारा लाल सूर्यकी प्रसन्नता प्रकट कर कमलोको प्रफुल्लित कर देता है ॥६८—७२॥ उस समय उन दोनों राजाओने धन्यवाद, दान और सम्मानके द्वारा उस दूतको अत्यन्त प्रसन्न किया था सो ठीक ही है क्योंकि राजा लोग किये हुए उपकार माननेवाले होते हैं ॥७३॥ इस प्रकार विचारातीत वैभवकी प्राप्तिसे जिसके शुभ कर्मका उदय प्रकट हो रहा है ऐसा वह श्रीमान् जयकुमार सुखसे स्वामुरके घर रहने लगा ॥७४॥ जिसके नेत्र सुलोचनाके मुखरूपी कमलपर भ्रमरके समान आचरण करते थे और जिसका शरीर कामदेवके बड़े-बड़े वाण रखनेके लिए तरकसके समान हो रहा था ऐसा वह जयकुमार युद्ध होनेपर वाणोसे उस प्रकार घायल नहीं हुआ था जिस प्रकार कि अत्यन्त कोमल कामदेवके इन फूलोके वाणोसे घायल हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि दैवलीला बड़ी विचित्र होती है ॥७५—७६॥ वह जयकुमार मुसकराहटसे रहित सुलोचनाको मुसकराहटमें युक्त करता था, न हँसनेपर जोरसे हँसाता था, भययुक्त होनेपर निर्भय करता था, आकुल होनेपर निराकुल करता था, वार्तालाप न करनेपर

१ चक्रिकृपा । २ अकम्पनजयकुमारी । ३ त्वत्त । ४ वाञ्छन्ती । ५ मदागमनम् । ६ प्रथममेवान् । ७ चक्रवर्तिन । ८ वाग्भि किरणैश्च । ९ द्विवारम्भ । १० नीतवन्ती । ११ स्थितवान् । १२ मानुजमन्विनि गृहे । १३ पीडित । १४ मृदुभिः । १५ हानमहिताम् ।

॥५३-१८॥ "न युगम भवभूमिनि तिष्ठन् प्रसीदन् मायौषा । तत्र तात वरः सः । य मनुजस्य
हा मञ्जना द्वाया पूज्य मा । जातः ॥ ५४ ॥ मग मः प्रसिद्ध पापशोभाता त ना पञ्चमनन
मित्रा हे । त एव अत्र स्थान मित्रा हे । निद्रिमाम मित्रा हे, त एव भगावली ननाम मित्रा
हे न पुत्राय मित्रा हे ओम् न मुग्ध हा मित्रा हे । तितु गरा एव जयमुमाग्न मित्रा हे वरा वि
गत्याग्याह मभो कायोम मग तात उमाग दू है ॥ ५६-५७ ॥ एव गजाआरा जातर
ताभि पवनपर मरा वातिमय नाम उमान स्थापिता रिपा था । इम शिवम और दिमान वरा
रिया है ? ॥ ५८ ॥ "न अत्तानिन सा अर्धात्ताम गितान माय सथा स्त्री आर उट्ट
मगात काली मरी अर्धात्ता जवाथ उट्टमा है । रतका रि मंगार नरम परा दा ॥ ५९ ॥
इगत अयायका माग चगया है वरा नाता ही गुहा है । तित्तु मंगारन दू स्ने याव स्था
म भजन आपरा मुग्ध बना लिया है ॥ ६० ॥ जिग प्राण रापरम काकन उपग्र होता है उसी
प्रकार यह अभीउत्पन्न मुग्ध उपग्र दुष्टा है, वह अवरोति रही है किंतु गाता प्रदास्तीनि
है ॥ ६१ ॥ मरी आपाग जयमुमा ही अयायम प्रवृत्ति करावा "न प्रारात लागात।
दण दना है "मल्लि इगा मुदम जा उम स्पड रिया है यह अच्छा हो रिया है ॥ ६२ ॥ ओगी
करा यात ? यदि क्या पुत्र भा अपराधा हा तो राजारा उम भी दण दना चाहिये यह जानिये
माग अक्कीनिपर चगना रिग आज म सवार बठा हैं ॥ ६३ ॥ आप लागत विचार किय
जिता हो उम अभिमानार रिग अधमाला नामकी क्या द दी यह युग रिया है ॥ ६४ ॥
अथवा उस प्रसिद्ध अशमाला क्यायी भेंट दवर आपने उस अर्धीनिका भी पूज्यता प्राप्त
करा दी है सो ठीक ही है क्योंकि यह कश्चित्हीन है यह ममझर गया चन्द्रमारी मूर्ति छापी
जाती है ? ॥ ६५ ॥ परंतु चक्रवर्तीन अपराध करनेपर भी अपने पुत्रकी उपक्षा कर नी -
उस दण्ड नहीं दिया इस मेरे अपयगवा महाराज अवस्थानने स्थायी बना दिया है ॥ ६६ ॥ इम

१ पुरातनात् पुं० । २ युगादी । ३ जयन । ४ अत्र कीर्तिना । ५ प्ररतिनम् । ६ ऋषिषु योग्यानाम् । ७ सम
दण्डं धुमन्ति । ८ अत्र कीर्ति । ९ अणमाला अ० म० इ० त० ल । १० दत्ता । ११ गविताय ।
१२ वष्टम् । १३ लक्ष्मीमालाम् । १४ पूज्यताम् । १५ अकारि । १६ पुत्रम् । १७ म्याममेर पुत्रमकरोत् ।

सुमुखस्तदया^१ बौद्ध तदाक्षमः । स जयोऽकम्पनो देव देवस्य नमति क्रमौ ॥६८॥
लब्धप्रसाद इत्युक्त्वा क्षिप्त्वाऽङ्गानि प्रणम्य तम् । विकसद्बदनाम्भोज समुत्थाय कृताञ्जलिः ॥६९॥
इत एवोन्मुखौ तौ त्वत्प्रतीच्छन्तौ^२ मदागतिम् । आस्थाता चातकौ वृष्टिं प्रावृषो वाऽदिवामुच ॥७०॥
इति विज्ञाप्य चक्रेशात्^३ कृतानुजः कृतत्वर । सप्राण्याकम्पनं नत्वा सजयं विहितादरम् ॥७१॥
गोभिः प्रकाश्य रक्तस्य प्रसाद चक्रवर्तिन । रवेर्वा वासं^४ रारम्भस्तद्वक्त्रावजं व्यकाशयत् ॥७२॥
साधुवादैः सदानैश्च संमानैस्तौ च तं तदा ।^{१०} आनिन्यतुरतिप्रीति कृतज्ञा हि महीभृतः ॥७३॥
इन्यतर्कोदयावासिनिभासितशुभोदय ।^{११} अन्पिवान् जयः श्रीमान् सुखेन श्वासुर^{१२} कुलम् ॥७४॥
सुलोचनामुखाम्भोजषट्पदायितलोचनः । अन्जानणुव्याणैकतूणीरायितविग्रहः ॥७५॥
तथा प्रवृत्ते मङ्ग्रामे मायकैरक्षत क्षतः^{१३} ।^{१४} पलत्रैः कुसुमैरभिर्विचित्रा विधिवृत्तयः ॥७६॥
अस्मितां सस्मितां कुर्वन्नहसन्ती महामिकाम्^{१५} । सभयां निर्भयां बालामाकुलां तामनाकुलाम् ॥७७॥

प्रकार सबके स्वामी महाराज भरतने सुमुख नामके दूतको सन्तुष्ट कर उसका मुख प्रमन्न किया और ज्येष्ठ पुत्रको छोड़कर न्यायको ही अपना औरस पुत्र बनाया । भावार्थ—न्यायके सामने बड़े पुत्रका भी पक्ष नहीं किया ॥६७॥ उसी समय चक्रवर्तीकी दयाका भार वहन करनेके लिए मानो असमर्थ हुआ सुमुख कहने लगा कि 'हे देव, जिन्हे आपका प्रसाद प्राप्त हो चुका है ऐसे जयकुमार और अकम्पन दोनों ही आपके चरणोको नमस्कार करते हैं, ऐसा कहकर उस दूतने अपने समस्त अंग पृथ्वीपर डालकर चक्रवर्तीको प्रणाम किया और जिसका मुखरूपी कमल विकसित हो रहा है तथा जिसने हाथ जोड़ रखे हैं ऐसा वह दूत खड़ा होकर फिर कहने लगा कि "जिस प्रकार दो चातक वर्षा ऋतुके पहले बादलसे वर्षा होनेकी इच्छा करते हैं उसी प्रकार जयकुमार और अकम्पन आपके समीपसे मेरे आनेकी इच्छा करते हुए इसी ओर उन्मुख होकर बैठे होंगे" ऐसा निवेदन कर जिसने चक्रवर्तीसे आज्ञा प्राप्त की है ऐसे उस दूतने बड़ी शीघ्रतासे जाकर आदरके साथ महाराज अकम्पन और जयकुमारको नमस्कार किया तथा वचनोके द्वारा अनुराग करनेवाले चक्रवर्तीकी प्रसन्नता प्रकट कर उन दोनोंके मुखकमल इस प्रकार प्रफुल्लित कर दिये जिस प्रकार कि दिनका प्रारम्भ समय (प्रातःकाल) किरणोके द्वारा लाल सूर्यकी प्रसन्नता प्रकट कर कमलोको प्रफुल्लित कर देता है ॥६८-७२॥ उस समय उन दोनों राजाओने धन्यवाद, दान और सम्मानके द्वारा उस दूतको अत्यन्त प्रसन्न किया था सो ठीक ही है क्योंकि राजा लोग किये हुए उपकार माननेवाले होते हैं ॥७३॥ इस प्रकार विचारातीत वैभवकी प्राप्तिसे जिसके शुभ कर्मका उदय प्रकट हो रहा है ऐसा वह श्रीमान् जयकुमार सुखसे श्वासुरके घर रहने लगा ॥७४॥ जिसके नेत्र सुलोचनाके मुखरूपी कमलपर भ्रमरके समान आचरण करते थे और जिसका शरीर कामदेवके बड़े-बड़े वाण रखनेके लिए तरकसके समान हो रहा था ऐसा वह जयकुमार युद्ध होनेपर वाणोसे उस प्रकार घायल नहीं हुआ था जिस प्रकार कि अत्यन्त कोमल कामदेवके इन फूलोके वाणोसे घायल हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि दैवलीला बड़ी विचित्र होती है ॥७५-७६॥ वह जयकुमार मुसकराहटसे रहित सुलोचनाको मुसकराहटमे युक्त करता था, न हँसनेपर जोरसे हँसाता था, भययुक्त होनेपर निर्भय करता था, आकुल होनेपर निराकुल करता था, वार्तालाप न करनेपर

१ चक्रिकृपा । २ अकम्पनजयकुमारो । ३ त्वत्त । ४ वाञ्छन्ती । ५ मदागमनम् । ६ प्रथममेधान् । ७ चक्रवर्तिन । ८ वाग्भिः किरणैश्च । ९ दिवमारम्भ । १० नीतवन्ती । ११ म्यितवान् । १२ मानुल्लमवन्विनि गृहे । १३ पीडित । १४ मृदुभिः । १५ हानमहिताम् ।

[illegible]

उमग जाता था क्या या अना आर गताय न गता था, और ना त कन्वत उमगा
नया गया था । इस प्रकार वह सब क्या तब जदुमांग मुलात्ता। लज्जा दूर थी था
॥७३-७८॥ दूध पियायम था हृण राहण्या यन्न कामना नाम रीति छात्रुमार जदुमांग।
मुलात्ताका मयक था लिया था ॥७६॥ गगर्णी पद्माग मयपन श्रीर काम र नामक
महामागरकी यक्षा समान मुक्तोत्तर मागी युनि प्रम प्रमम नवल हा रही था ॥८०॥
मय गरीरम धुन हृण कामश्रवा पिपाच द्वारा बिना कुछ बात हा जिगरी मृतना हा री है
तम विषमन मुलोत्ता भुगर्पी मुकुन्दर धीर और अपता म्यात जमा लिया था ॥८१॥
कामस्या पिपाचरो ग्रहन वग्गवाली मुलाचना सर्गिता मुग श्रवण शिआभगे बागती
वर अधान निम्भव बान जोलार इछानुमार हैगा स्या ॥८२॥ उम ममय नय और लज्जा
महित मुलाचना कामश्रव। जीतनेवाल जदुमांगा न दगन दाग्य ममयम माना ठगनेरी
दस्ता ही कामश्राओ अपता महायरा बनायर मये का एन नाना गगमे मिड हृण चनल
कटाक्षो भरी हुई दृष्टिपो अनेक तामर नाम हथियोगे धार धीरे मार रही थी ॥८३॥
तब जदुमार उमकी ओर नहीं गता था उम ममय भी वह सफ वा और नवल
कटाक्षो भरी दृष्टिम उम दगती रहनी थी और उमम तमा मान्म हाता था माना
यह उम ठगना ही चाहता है ॥८४॥ उस समय उम न ता सारे पाग था, न उमन मय
ही पिया था और त परिश्रमन ही यह आज्ञात थी तथापि वह पमीनेम तर हो रही थी
॥८५॥ उमसे मधुर भाषण स्थिति हा रहे थ, हृदय अत्यन्त खैर रहा था दृष्टि नवल हो रही
थी और वह एसो जान पड़ती थी मानो अपने काम ही न हो ॥८६॥ मुख दीनावाली मुलो
चनाकी लज्जा इस प्रकार नष्ट हो गयी थी मानो उससे पमीनाम्पी जलग धुन हो गयी हो और
कामदेवरूप विचित्र अग्नि वचनरूपी ई धनसे ही मानो गूँघ प्रज्वलिन हो रही थी ॥८७॥
जबतक कामदेवरूपी ज्वर नहीं बढता है तबतक ही लज्जा रहती है तबतक ही भय रहता है,
तबतक ही करने योग्य कायका विचार रहता है और तबतक ही धैर रहता है ॥८८॥

१ सामर्थ्य । २ अत्ययम् । ३ इच्छा । ४ अनुरागचञ्चोदकटा । ५ स्थानम् । ६ प्राप्तिवामपदमन्त्रेण विना
सूत्रक । ७ सङ्घरी । ८ निरयकादिदोषदुष्टमन्त्रा । ९ उपक्रान्तवती । १० मन्त्रवृत्तमन्त्र । ११ सहायम् ।
१२ वञ्चनेच्छया । १३ स्वैवती बभूव । १४ मनोशवचनानि । १५ स्वस्य पराधीनत्र अथवा आत्मन कदो
अधीन न वा नासीदिति । १६ चित्तजानल अ० प० इ० स० ल० ।

विपर्याकृत्य सर्वेषामिन्द्रियाणां परस्परम् । परमवापनु प्रीतिरुत्पत्ती तौ पृथक् पृथक् ॥८९॥
 अन्यामंगात्^१ क्रमग्राहिकगणैस्तावत्परितो । अनिन्दतामर्गैकस्मिन्नाश्रिणि^२ विधिम् ॥९०॥
 अन्योन्यविषयस्यैव न्वक्त्वाऽऽपान्यगोचरम् । स्तोकेन^३ सुखमप्राप्तं प्रापनु^४ परमात्मन^५ ॥९१॥
 मंप्राप्तभावपर्यन्तो विदतुर्न^६ स्वयं^७ च तौ । सुखैकं श^८ महेश्वरस्यक्रियाद्वैक्यस्वम्^९ ॥९२॥
 रतावसाने^{१०} नि शक्त्योर्गार्हान्मुक्त्यान् प्रपश्यतो^{११} । तयोरन्योन्यमाभाता^{१२} नेत्रयोश्च पुत्रिके ॥९३॥
 अवापि या तथा प्रीतिस्तस्मात्तेन^{१३} च या तत^{१४} । तयोरन्योन्यमेवाग्नीदुपमानोपमेयता ॥९४॥
 मुक्तमात्मरभस्त्वेन^{१५} यन्मुख परमात्मना । ततोऽप्यधिकमार्गद्वौ^{१६} नविभागोऽपि^{१७} तत्तयो ॥९५॥
 इत्यन्योन्यसमुद्भूतप्रीतिस्फीतामृतात्मनि । कामात्मोर्धो निमग्नौ तौ स्वैरं चिक्रीडनुश्चिरम् ॥९६॥
 तदा स्वमन्त्रिप्र^{१८} हिनगृहपत्रार्थचोदित । जयो जिगमिपुस्तूर्ण^{१९} स्वस्थानीयं^{२०} धियो वश ॥९७॥

वे दोनो दम्पती परस्पर पृथक्-पृथक् सब इन्द्रियोके विषयोका सेवन कर परम आनन्दको प्राप्त हो रहे थे ॥८९॥ अत्यन्त आसक्तिके कारण, क्रम-क्रमसे एक-एक विषयको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोसे वे सन्तुष्ट नहीं होते थे इसलिए सब इन्द्रियोको एक इन्द्रियरूप न करनेवाले विधाता-की वे निन्दा करते रहते थे । भावार्थ — उन दोनोकी विषयासक्ति इतनी बढी हुई थी कि वे एक साथ ही सब इन्द्रियोके विषय ग्रहण करना चाहते थे परन्तु इन्द्रियाँ अपने प्राकृतिक नियमके अनुसार एक समयमे एक ही विषयको ग्रहण कर पाती थी अतः वे असन्तुष्ट होकर सब इन्द्रियोको एक इन्द्रियरूप न बनानेवाले नामकर्मरूपी ब्रह्माकी सदा निन्दा करते रहते थे ॥९०॥
 उन दोनोने सब साधारण लोगोको मिलनेवाला परस्परका मुख छोडकर आत्माका वह उत्कृष्ट मुख प्राप्त किया था जो कि अन्य छोटे-छोटे लोगोको दुष्प्राप्य था ॥९१॥ जिनके भावोका अन्त आ चुका है ऐसे वे दोनो ही एक साथ उत्पन्न हुई अपनी क्रियाओके उद्रेकसे उत्पन्न होनेवाले एक सुखको छोडकर और कुछ नहीं जानते थे ॥९२॥ सम्भोग क्रीडाके अन्तमे अगस्त हुए तथा गाढ उत्कण्ठाके कारण परस्पर एक दूसरेको देखते हुए उनके नेत्रोकी पुतलियाँ एक दूसरेके नेत्रोकी पुतलियोके समान ही मुगोभित हो रही थी । (यहाँ अनन्वयालकार होनेसे उपमेय ही उपमान हो गया है) ॥९३॥ सुलोचनाने जयकुमारसे जो मुख प्राप्त किया था और जय-कुमारने सुलोचनासे जो मुख पाया था उन दोनोका उपमानोपमेय भाव परस्पर — उन्ही दोनोमे था ॥९४॥ परमात्माने स्वावलम्बी होकर जिस सुखका अनुभव किया था उन दोनोका वह सुख परस्परमे विभक्त होनेपर भी उससे कही अधिक था । भावार्थ — यद्यपि उन दोनोका सुख एक दूसरेके सयोगसे उत्पन्न होनेके कारण परस्परमे विभक्त था, तथापि परिमाणकी अपेक्षा परमात्माके पूर्ण मुखसे भी कही अधिक था । (यहाँ ऐसा अतिगयोक्ति अलंकारसे कहा गया है वास्तवमे तो वह परमात्माके मुखका अनन्तवाँ भाग भी नहीं था) ॥९५॥ इस प्रकार परस्परमे उत्पन्न होनेवाले प्रेमामृतरूपी जलसे भरे हुए कामरूप समुद्रमे डूबकर वे दोनो चिरकाल तक इच्छानुसार क्रीडा करते रहे ॥९६॥ उमी समय एक दिन जो अपने मन्त्रीके द्वारा

१ अत्यासक्तित । २ क्रमवृत्त्या पदार्थग्राहीन्द्रियै । ३ निन्दा चक्रन् । ४ सकलेन्द्रियविषयाणामेकमेवेन्द्रिय-
 मकुर्वन्तम् । ५ सामान्यपुरषेण । ६ उत्तमम् । ७ स्वयम् । परमात्मन परमपुष्पस्येति द्ववि
 ९ स्वयमेव । १० आत्मनी । ११ मुक्तम् । १२ महैव प्रादुर्भवन्नजचमुत्पन्नान्निमित्तमुत्कटमभूत
 क्रीडावनाने । १४ परस्परमालोक्यमानयो मतो । १५ व्यगजताम् । १६ जयकुमारम् । १
 १८ प्रीत्यो । १९ स्त्रोदत्पूकत्वेन । 'उभात्रात्ममन्त्रि स्त्रोदत्पूके' इत्यभिधानम् । २० ।
 २१ वा अवधानेन । २२ विभजने । २३ मुक्तम् । २४ त्रेति । २५ जीवम् । २६ स्वा परम् ।

तत् (तं) प्राप्य सिन्धुरं रुन्वा स राजद्वारि राजकम्^१ । विमर्ज्योच्चैः प्रविश्यान्तरवतीर्य^२ निपाद्य तम्^३ ॥
 राजा सुलोचना चावरोप्य स्वभुजलम्बिनीम् । निविश्य स्वोचिते स्थाने मृदुगय्यान्तले सुखम् ॥११०॥
 तत्कालोचितवृत्तज्ञ प्रिया सतर्पयन् प्रियैः । स्नानभोजनवाग्वाद्यगीतनृत्यविनोदनैः ॥१११॥
 नीत्वा रात्रि सुखं तत्र^४ प्रत्यागम्य प्रत्यय^५ स्थितेः । तां निवेद्य समाज्वास्य हेमाङ्गदपुरस्सरान् ॥११२॥
 निर्योज्य स्वानुजान् सर्वान् सम्यक्कटकराग्रेण । आप्तं कतिपर्यैरेव^६ प्रत्ययोल्लसिताय मः ॥११३॥
 अर्ककीर्त्यादिभिः प्रगै^७ प्रत्यागम्य प्रतीक्षित^८ । मस्नेह सादर भूयः कुमारंणालपन् पुरीम् ॥११४॥
 मानुरागान् स्वयं रागान् प्राविशद्वा विशा पतिः^९ । न पूजयन्ति के वाऽन्ये पुरुष राजपूजितम् ॥११५॥
 इन्द्रो वेमाद् वहिर्द्वाराजिनस्योत्तोर्य भूपते^{१०} । समाग्रेह समामाद्य मणिकुट्टिमभूतलम् ॥११६॥
 मध्ये^{११} तस्य स्फुरदन्तखचिनस्तम्भमममृते ।^{१२} विचित्रनेत्रविन्यस्तमद्वितानविराजिते ॥११७॥
 मणिमुक्ताफलप्रो^{१३} तलम्बलम्बूपभूषणे^{१४} । परार्ध्यग्नभाजालजटिले मणिमण्डपे^{१५} ॥११८॥
 विबुं ज्योतिर्गणेनेत्र राजक्रेन विराजितम् । स्वकीर्तिनिर्मलैर्वीज्यमान^{१६} चमरजन्मभिः ॥११९॥

वनाया गया है ऐसा वह सेनाका आवास (पडाव) इस प्रकार सुगोभित हो रहा था मानो स्वर्गका दूसरा आवास ही हो ॥१०८॥ जयकुमारने अपने डेरेके पास जाकर उसके बड़े दरवाजेके समीप ही अपना हाथी रोका, वही सब राजाओको विदा किया फिर ऊँचे तम्बूके भीतर प्रवेश कर हाथीको बैठाया—स्वयं उतरे, अपनी भुजाओका सहारा लेनेवाली सुलोचनाको भी उतारा और अपने योग्य स्थानमें कोमल गय्यातलपर मुखसे विराजमान हुए । फिर उस समयके योग्य समाचारोको जाननेवाले जयकुमारने स्नान, भोजन, वार्तालाप, वाजे, गीत, नृत्य आदि मनोहर विनोदोसे सुलोचनाको सन्तुष्ट किया, रात्रि वही सुखसे बितायी, वहाँ ठहरनेका कारण बतलाया, उसे समझा-बुझाकर वहीपर रखा, हेमागद आदि सुलोचनाके भाइयोको भी वह रखा, अपने सब छोटे भाइयोको अच्छी तरह सेनाकी रक्षा करनेमें नियुक्त किया और फिर कुछ आप्त पुरुषोंके साथ अयोध्याकी ओर गमन किया ॥१०९—११३॥ अयोध्या पहुँचनेपर अर्ककीर्ति आदि अच्छे-अच्छे पुरुषोंने सामने आकर जिसका स्वागत किया है, तथा जो बड़े स्नेह और आदरके साथ अर्ककीर्तिसे वार्तालाप कर रहा है ऐसे राजा जयकुमारने अनुराग करनेवालोके साथ-साथ बड़े प्रेमसे अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया सो ठीक ही है क्योंकि अन्य ऐसे पुरुष कौन हैं जो राजमान्य पुरुषकी पूजा न करे ॥११४—११५॥ जिस प्रकार इन्द्र समवसरणके बाह्य दरवाजेपर पहुँचकर हाथीसे उतरता है उसी प्रकार जयकुमार भी राजभवनके बाह्य दरवाजेपर पहुँचकर हाथीसे उतरा और सभागृहमें पहुँचा । उस सभागृहकी जमीन मणियोंसे जड़ी हुई थी, उसके मध्यमें एक रत्नमण्डप था जो कि देदीप्यमान रत्नोसे जड़े हुए खम्भोसे भरा हुआ था, अनेक प्रकारके रंगी वस्त्रोंके तने हुए चन्देरोसे सुगोभित था, मणियों और मोतियोंसे गुथे हुए लम्बे-लम्बे फनूस रूप आभूषणसे युक्त था, और बहुमूल्य रत्नोंकी कान्तिके जालसे व्याप्त था । जिस प्रकार उदयाचलपर सूर्य सुगोभित होता है उसी प्रकार उस रत्नमण्डपमें ऊँचे सिंहासनपर बैठे हुए महाराज भरत सुगोभित हो रहे थे । जिस प्रकार ज्योतिषी देवोंके समूहसे चन्द्रमा सुगोभित होता है उसी प्रकार महाराज भरत भी अनेक राजाओसे सुगोभित हो रहे थे, उनपर अपनी कीर्तिके समान निर्मल चमर ढुलाये जा रहे थे, इन्द्रके

१ राजसमूहम् । २ उपविश्य । ३ त गजम् । ४ प्रविशेद्य । ५ कारणम् । ६ अयोध्या प्रति । ७ मुख्य । ८ पूजित । ९ चक्रवर्ति । १० समवसरणमिव भूपते सभागृहमिति मन्त्रम् । ११ सभागृहम् । १२ पट-
 वन्मृत् । १३ जचित । १४ दाम । १५ रत्नमण्डपे ल० । १६ चामरै ।

वष्टिं चन्द्रधनुषा नानामरणराचिना । राचिष्व कृताकार पूज्य पुण्यैश्चतुर्विधैः ॥१२०॥
 हुत्तसिंहासनासन भास्वन्त चाद्याडिगम् । राजराज समालोच्य बहुशो भक्तिनिभर ॥१२१॥
 स वा प्रणम्य तार्थशः सृष्ट्वाऽऽष्टाक्षरातलम् । कर प्रसाद्य संभाव्य राचैवासन्नमासनम् ॥१२२॥
 निनहस्तन निर्दष्ट^१ दृष्टयालकृत्य नुष्टवान् । व्यभासिष्ट^२ समामध्य स तद्गान्यन^३ तजसा ॥१३॥
 प्रमद्वचनन्दुषडाह्लादिप्रचनोद्युमि । बधू किमिति नानाता ताद्रुद्वयमुत्सुका ॥१२४॥
 वय किमिति^४ नाहूतास्तद्विवाहोत्सवे नवे । अकम्पनरि^५ युक्त^६ सनाभिभ्यो बहिष्कृता ॥१२५॥
 नन्वह स्वत्पितृज्ञाने मा पुरस्कृत्य कन्यका । स्वयाऽर्मा परिगतम्या एव तद्विस्मृतवानसि ॥१२६॥
 इत्यकृत्रिमसामोरा वा तपितश्चक्रवर्तिना । तदा विभावयन् मर्नि स्वधवन्न मणिकुट्टिम ॥१२७॥
 नत्वाऽपश्यन् सादात्र प्रतिगृह्य प्रमादयाम् । जय प्राचलिरुथाय राजराज व्यजिज्ञपत् ॥१२८॥
 कशादराशिना द्वय द्वयस्याजाविधायिनाम् । विवाहविधिभद्रेषु प्रागप्यस्ति स्वयंवर ॥१२९॥
 इति सर्वैः समालोच्य सविधैः शास्त्रवेदिभिः । कल्याण तत्समारब्धं दवेन कृतमन्यथा ॥१३०॥
 शास्त्र तत्त्वप्रसादन ममूलोच्छेदकारणम् । रण शरणमाधात इत्यथ भवत वमौ ॥१३१॥
 सुरक्षचरभूपालास्त्वेतदाम्बोह्लादिन । चक्रेणाक्रान्तदिस्चक्र किंरास्तत्र कीऽऽप्यहम् ॥१३२॥

धनुषके समान अनेक प्रकारके आभरणाकी कान्तिसे वेष्टित थे अतएव ऐसे जान पड़ते थे मानो
 कान्तिसे ही उनका शरीर बनाया गया हो और चारों प्रकारके (शुभायु शुभनाम शुभगोत्र
 और सात्तावदनीय) पुण्यासे पूज्य थे । इस प्रकार राजराजेश्वर महाराज भरतको देखकर
 भक्तिसे भरे हुए जयकुमारने तीर्थंकरकी तरह आठा अंगोंसे जमीनवा छूकर अनेक बार प्रणाम
 किया । महाराज भरतने भी हाथ फलाकर उसका समान किया तथा अपने हाथस बतलाये
 हुए अपने निवटवर्ती आसनपर बठाकर प्रसन्न दृष्टिसे अलंकृत किया । इस प्रकार सन्तुष्ट
 हुआ जयकुमार सभाके बीच एक विलक्षण तेजसे बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था ।
 ॥११६-१२३॥ तदनंतर महाराज भरत अपने प्रसन्न मुखरूपी चन्द्रमासे निवर्तत हुए और
 सबका आनन्दित करनेवाला वचनरूपी विरणासे सबको प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहने
 लग कि क्यों जयकुमार तुम वहाँको क्या नहीं लाये ? हम तो उसे देखनेके लिए बड़े उत्सुक
 थे इस नवीन विवाहके उत्सवम तुमने हम लोगोंको क्या नहीं बुलाया ? महाराज अकम्पनने
 अपने भाई-बन्धुआस हमको अलग कर दिया क्या यह ठीक किया ? अरे, मैं तो तुम्हारे पिताके
 तुल्य था तुम्हें मुझे आगे कर सुलोचनाके साथ विवाह करना चाहिए था परन्तु तुम यह सब
 भूल गये इस प्रकार चक्रवर्तिके द्वारा स्वाभाविक शास्त्र वचनसे सन्तुष्ट किया हुआ जयकुमार
 उस समय अपनी भक्तिका प्रवट करता हुआ नमस्कार कर अपराधीके समान अपना मुँह
 मणियास जटा हुई जमीनम देखने लगा । फिर महाराज भरतसे दया प्राप्त कर हाथ जोड़कर
 खड़ा हुआ और राजाधिराज चक्रवर्तिसि इस प्रकार निवेदन करने लगा ॥१२४-१२८॥
 हे देव आपके आज्ञाकारी काशीनरशने विवाहविधिके सब भेदोंम एक स्वयंवरकी निधि
 भी पहलम चली आ रही है इस प्रकार शास्त्राका जाननेवाला सब मन्त्रियोंक साथ सलाह कर
 यह उभय प्रारम्भ किया था परन्तु मैंने उसे उलटा कर दिया ॥१२९-१३०॥ मेरा मूल
 महित नाम करनेवाला यह युद्ध शान्त हो गया इसलिए ही यह सेवक आपके चरणाम आया
 है ॥१३१॥ हे चक्रवर्ती द्वारा समस्त त्रिआपार आक्रमण करनेवाला महाराज, अनेक देव,
 विद्याधर नागराजा आपन चरणमलके भ्रमर हाकर सबक बन रह हैं फिर भला मैं उन
 १ आभरणाभरण २ वस्त्र ३ विष्टया ४ प्रीत्या ५ राजन स्म ६ नूतन ७ अना
 ८ प्रान्ति ९ अना १० अना ११ अना १२ अना १३ अना १४ अना १५ अना १६ अना

‘देवेनान्यसामान्यमाननां मम कुर्वता । ऋणीकृतः क्व वाऽऽनृण्यं भवान्तरगतोऽपि ॥ १३३ ॥
 नाथेन्दुवंशमरोहौ’ पुरुषा विहितौ त्वया । वर्धितौ पालितौ स्थापितौ च यावद्द्वारातलम् ॥ १३४ ॥
 इति प्रश्रयणी वाणी श्रुत्वा तस्य निर्धीश्वरः । तुष्ट्या भूष्य पृजाविद्वस्त्राभरणवाहनैः ॥ १३५ ॥
 दत्त्वा सुलोचनायै च तद्योग्यं विसर्ज्य तम् । महौ प्रियामिवालिङ्ग्य तं प्रणम्य ययौ जयः ॥ १३६ ॥
 सपत्न्यं पञ्चपुण्यानामनुवध्नाति^१ संपदम् । पौर्ण्वनी^२ पकानीकै^३ स्तूयमानस्वमाहस ॥ १३७ ॥
 पुराद् गजं समासृज्य^४ निःक्रस्येप्सुर्मनःप्रियाम् । मद्यो गङ्गां समासन्नः स्वमनोवेगचोदितः ॥ १३८ ॥
 शुष्कभूरुहशाखाग्रे समुत्थीभूय मासतः^५ । ‘स्वन्तं’^६ ध्वाङ्क्षमालोक्य कान्तायाश्चिन्तयन्मयम् ॥
 मूर्च्छितः प्रेमसद्भावान् तादृशो विक्रमुग्र रतेः । समाश्वस्य तदोपायं सुग्रमास्ते सुलोचना ॥ १३९ ॥
 जलाद् भयं भवेत् किञ्चिदस्माकं शकुनादितः । इत्युदीर्यैज्जितजेन शकुनजेन सान्त्वित^७ ॥ १४० ॥
 सुरदेवस्य^८ तद्वान्य कृत्वा प्राणावलम्बनम् । व्रजन स सत्वर^९ मोहादतीर्थेऽचोदयद् गजम् ॥ १४१ ॥
 ह्योपेयविवेक^{१०} कः कामिनां मुग्धचेतसाम् । उत्पुष्कर स्फुरदन्त^{११} प्रोद्यत्तत्प्रतिमानवम् ॥ १४२ ॥

सबसे कौन हूँ ? — मेरी गिनती ही क्या है ? ॥ १३२ ॥ हे देव, जो दूसरे साधारण पुरुषोंको न प्राप्त हो सके ऐसा मेरा सन्मान करते हुए आपने मुझे ऋणी बना लिया है सो क्या सैंकड़ो भवोंमें भी कभी इस ऋणसे छूट सकता हूँ ? ॥ १३३ ॥ हे स्वामिन्, ये नाथवश और चन्द्र वशरूपी अकुर भगवान् आदिनाथके द्वारा उत्पन्न किये गये थे और आपके द्वारा वर्धित तथा पालित होकर जबतक पृथिवी है तबतकके लिए स्थिर कर दिये गये हैं ॥ १३४ ॥ आदर-सत्कारको जाननेवाले महाराज भरत इस प्रकार विनयसे भरी हुई जयकुमारकी वाणी सुनकर बहुत ही सन्तुष्ट हुए, उन्होंने वस्त्र, आभूषण तथा सवारी आदिके द्वारा जयकुमारका सत्कार किया तथा सुलोचनाके लिए भी उसके योग्य वस्त्र, आभूषण आदि देकर उसे विदा किया । जयकुमारने भी प्रियाके समान पृथिवीका आलिङ्गन कर महाराज भरतको प्रणाम किया और फिर वहाँसे चल दिया । इसलिए कहना पड़ता है कि पुण्य सम्पादन करनेवाले पुरुषोंकी सम्पदाएँ सम्पदाओंको बढ़ाती हैं । इस प्रकार नगरनिवासी लोग और याचकोंके समूह जिसके साहसकी प्रशंसा कर रहे हैं ऐसा वह जयकुमार हाथीपर सवार होकर नगरसे बाहर निकला और अपनी हृदयवल्लभाको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हुआ अपने मनके वेगसे प्रेरित हो शीघ्र ही गंगाके किनारे आ गया ॥ १३५—१३८ ॥ वहाँपर सूखे वृक्षकी डालीके अग्रभागपर सूर्यकी ओर मुँह कर रोते हुए कौएको देखकर वह कुमार प्रियाके भयकी आगका करता हुआ वैसा गूरवीर होनेपर भी प्रेमके वश मूर्च्छित हो गया । आचार्य कहते हैं कि ऐसे रागसे उत्पन्न हुए सुखको भी धिक्कार है । चेष्टासे हृदयकी बातको समझनेवाले और शकुनको जाननेवाले पुरोहितने उसी समय अनेक उपायोंसे सचेत कर आश्वसन दिया और कहा कि सुलोचना तो अच्छी तरह है । इस शकुनसे यही सूचित होता है कि हम लोगोंको जलसे कुछ भय होगा इस प्रकार कहकर पुरोहितने जयकुमारको शान्त किया ॥ १३९—१४१ ॥ उस पुरोहितके वचनोंको प्राणोंका सहारा मानकर वह जयकुमार शीघ्र ही आगे चला और भूलसे उसने अघाटमें ही हाथी चला दिया सो ठीक ही है, क्योंकि विचारहीन कामी पुरुषोंको हेय उपादेयका ज्ञान कहाँ होता है ?

१ अकम्पनेन । २ ऋणेन तद्वान् कृत । ३ कस्मिन् भवान्तरे । ४ वा अवधारणे । अनृण्यम् आनृणत्वम् । ५ जन्मनी । ६ चक्रिणम् । ७ जनयति । ८ याचक । ९ प्राप्तुमिच्छु । १० रवे । ११ द्यनन्तम् । १२ वायसम् । ‘काके तु कटारिष्टवलिपुष्टमकृन्त्रजा । ध्वाङ्क्षात्मनोपपरभूद्वलिभृग्वायमा अपि ।’ इत्यभिधानात् । १३ नामवचनं नीत । १४ शकुनिकम् । १५ अजलोल्लसप्रदेगे । ‘तीर्थं प्रवचने पात्रे लब्ध्याम्नाये विदा परे । पुण्याण्ये जलोत्तारे महानद्या महामुनी ।’ १६ उपादेय । १७ प्रोद्यत्तकुम्भम्यलम्बाग्रोभागप्रदेशकम् । ‘अथ कुम्भम्य वाहीत्य प्रतिमानमद्योऽयं यत् ।’ इत्यभिधानम् ।

तन्त^१ मकराकार म^२ध्यहृदमिमाधिपम् । देवी कालीति पूर्वाक्ता^३ सरस्वाः^४ सहस्र^५अग्रहीत् ॥१४४॥
 'नम्राकृत्या स्वदशस्थ क्षुद्रोऽपि महतां बली । दृष्ट्वा गग्न निमज्जन्त प्रत्यागत्य^६ तटे स्थिता ॥१४५॥
 ससभ्रमं सहापतु^७ हृद हेमाङ्गदादय । सुलोचनाऽपि ता^८दीक्ष्य कृतपञ्चनमस्कृतिः ॥१४६॥
 मन्त्रमूर्त्तिम् समाधाय हृदय भक्तितोऽदत्त । उप^९सर्गापसर्गान्न त्यक्त्वाहारशरीरिका ॥१४७॥
 प्रादिशद् बहुमि सार्धं गङ्गां गङ्गेव देवता । गङ्गापातप्रतिष्ठानगङ्गाकूटाधिदेवता ॥१४८॥
 विबुध्यासनकम्पन कृतज्ञाऽऽगत्य सत्वरम् । 'तदानयस' सर्वान् सतज्य खलकालिकाम् ॥१४९॥
 स्वयमागत्य केनात्र रक्षन्ति कृतपुण्यकान् । गङ्गातटे विकृत्याशु^{१०} भवन सर्वसपदा ॥१५०॥
 मणिपाठे समास्थाप्य पूजयित्वा सुलोचनाम् । तव^{११} दत्तनमस्माराजज्ञ^{१२} गङ्गाधिदेवता ॥१५१॥
 'वयसादादिद' सप्तमबरुद्धामरशिन । तवत्युन्ते^{१३} जयोऽप्यतत्^{१४} किमिथाह सुलोचनाम् ॥१५२॥
 उपविन्याद्वि^{१५} विद्वधातो विध्यपुर्यामभूद् विभु । विन्यक्तु प्रिया तस्यप्रियहुश्रीस्तथो सुता ॥१५३॥

वह हाथी पानीमें चलने लगा उस समय उसकी सूडका अग्रभाग ऊंचा उठा हुआ था, दाँत चमक रहे थे, गण्डस्थल पानीके ऊपर था और आकार मगरके समान जान पड़ता था, इस प्रकार तैरता हुआ हाथी एक गढ़के बीच जा पहुँचा । उसी समय दूसर सर्पके साथ समागम करते समय जिस सपिणीको पहले जयकुमारके सेवकोने मारा था और जो मरकर काली दबी हुई थी उसने मगरका रूप धरकर जहा सरयू गंगा नदासे मिलती है उस हाथीको पकड़ लिया सो ठीक ही है क्योंकि अपन देशम रहनेवाला क्षुद्र भी वहाँ-वहाँसे बलवान् हो जाता है । हाथीको डूबता हुआ देखकर कितने ही लोग लौटकर किनारेपर खड़े हो गये परन्तु हेमागद आदि घबड़ाकर उसी गढ़में एक साथ घुसने लगे । सुलोचनाने भी उन सबको गढ़म घुसते देख पंच नमस्कार मन्त्रका स्मरण किया उसने मन्त्रकी मूर्तिस्वरूप अहन्त भगवान्को बड़ी भक्तिसे अपने हृदयम धारण किया और उपसर्गकी समाप्ति तक आहार तथा शरीरका त्याग कर दिया ॥१४४-१४७॥ सुलोचना भी अनेक सखियोंके साथ गंगामें घुस रही थी और उस समय ऐसी जान पड़ती थी माना गंगादेवी ही अनेक सखियाक साथ गंगा नदीम प्रवेश कर रही हो । इतनेम ही गंगाप्रपात कुण्डके गंगाकूटपर रहनेवाली गंगादेवीने आसन कम्पायमान होनम सब समाचार जान लिया और किये हुए उपकारको माननेवाली वह देवी बहुत शीघ्र आकर दुष्ट कालिका देवीको डाँटकर उन सबको किनारेपर ले आयी ॥१४८-१४९॥ सो ठीक ही है क्याकि इस ससारम ऐसे कौन ह जो पुण्य करनेवालोंकी स्वय आकर रक्षा न करें । तदनन्तर उस दबीने गंगा नदीके किनारपर बहुत शीघ्र अपनी विक्रिया-द्वारा सब सम्पदाओंसे सुशोभित एक भवन बनाया उसम मणिमय सिंहासनपर सुलाचनाको बैठाकर उसकी पूजा की और कहा कि तुम्हारे दिय हुए नमस्कार मन्त्रसे ही म गंगाकी अधिष्ठात्री देवी हुई हूँ और शीघ्रमें द्रवी नियोगिनी भी हूँ, यह सप्त तरे ही प्रसासे हुआ है । गंगादेवीके इतना कह चुकनेपर जयकुमारने भी सुलाचनासे पूछा कि यह क्या बात है ? ॥१५०-१५२॥ सुलोचना कहने लगी कि विध्याचल पर्वतके समीप विध्यपुरी नामकी नगरीम विध्यवैतु नामका एक सिद्ध

१ सरानि तरन् तम । २ लहस्य मध्य । ३ पूर्वतिम् भव जयन सह वन घम धृतवत्या नाग्या सह स्थित
 दित्राशोयम बरी । ४ सरयूनदा । ५ गङ्गाप्रवेशस्थान । ६ कुम्भाराधारण । नम्रस्तु कुम्भीर इत्यभिधानात् ।
 ७ अभिमुनमानाय । ८ तट प्रविष्टव त । ९ उपसर्गविमानपञ्चनम । १० गङ्गापातनकुण्डस्थान । ११ ताना
 म ६० म म० प० । १२ निर्माय । १३ तव विनोपचनमस्मारपणन । १४ अनुषम् । १५ विला
 गिनी (नियोगिनीति यावत्) । १६ गङ्गादेवता । १७ जयकुमारोप्यतत् किमिति पृष्टवान् ।
 १८ विन्याचलगमाय ।

विन्ध्यश्रीस्तां पिता तस्याः शिक्षितुं मकलान् गुणान् । मया मह मयि स्नेहान्महीशस्य^१ समर्पयत् ॥१५४॥
वमन्ततिलकोद्याने क्रीडन्ती^२ मैकदा दिवा । दृष्टा तत्र मया दत्तनमस्कारपटान्यलम् ॥१५५॥
भावयन्ती मृताऽत्रेयं भूयाया^३ त स्नेहिनी मयि । इत्यवनीदमौ^४ मोऽपि ज्ञात्वा सन्तुष्टचेतसा ॥१५६॥
तत्कालोचितसामोक्त्या गङ्गादेवी विमर्ज्य ताम् । मन्त्रलाकं^५ प्रकुर्वन्त स्वं चलत्केनुसालया ॥१५७॥
स्वावाम मंप्रविश्योच्चैः मप्रिय सहवन्नुमि । मस्नेह राजराजोक्तमु^६ क्त्वा^७ तत्प्रहितं स्वयम् ॥१५८॥
पृथक् पृथक् प्रदायातिमुदमासाद्य^८ वल्लभाम् । नीत्वा^९ तत्रैव ता रात्रिं प्रातरुत्थाय भानुवत् ॥१५९॥
विधानुमनुक्तानां^{१०} भुक्तिं^{११} सुद्योतिनाखिल^{१२} । अनुगङ्गं प्रयान् प्रेम्णा कामिन्या कुरुवल्लभ^{१३} ॥१६०॥
कमनीयैरतिप्रीतिमालापरतनोत्तराम् । जाह्नवी^{१४} दर्शितावर्तनाभिः कूलनितम्बिका ॥१६१॥
चटुलोज्ज्वलपाठीनलोचना रमणोन्मुखी^{१५} । तरङ्गबाहुभिर्गाडमालिङ्गनममुत्सुका ॥१६२॥
स्वभावसुमगा दृष्टदृष्ट्या स्वच्छतागुणान् । तद्व्यवनोत्फुल्लमुमनोमालभारिणी ॥१६३॥
^{१६} अतिवृद्धरसां^{१७} वेगं सधर्तुममहा द्रुतम् । पश्य कान्ते प्रिय याति स्वानुरूप पयोनिधिम् ॥१६४॥
रतेः कामाद् विना नेच्छा न नीचेपृत्तमस्पृहा । मगमं^{१८} न्मयी जाता प्रेम नामेदृश मतम् ॥
साफल्यमेतया^{१९} निन्यमेति लावण्यमम्बुध्रे * ॥१६५॥

राजा रहता था । उसकी स्त्रीका नाम प्रियंगुश्री था । उन दोनोंके विन्ध्यश्री नामकी पुत्री थी । उसके पिताने मुझपर प्रेम होनेसे मेरे साथ सब गुण सीखनेके लिए उसे महाराज अकम्पनको सौंप दिया ॥१५३-१५४॥ वह विन्ध्यश्री किसी एक दिन उपवनमें क्रीड़ा कर रही थी, वहीपर उसे किसी सौंपने काट लिया जिससे मेरे द्वारा दिये हुए पञ्च नमस्कार मन्त्रका चिन्तवन करती हुई मरकर यह देवी हुई है और मुझपर स्नेहके कारण यहाँ आयी है यह जानकर जयकुमारने सन्तुष्टचित्त हो गान्तिमय वचन कहकर गंगादेवीको विदा किया । तदनन्तर अपनी प्रिया सुलोचना और इष्ट-बन्धुओके साथ-साथ, फहराती हुई पताकाओके द्वारा अपने-आपको वगुलाओसे सहित करते हुएके समान जान पड़नेवाले अपने ऊँचे डेरमें प्रवेश किया । वडे स्नेहसे महाराज भरतके कहे वचन सबको सुनाये, उनकी दी हुई भेट सबको अलग-अलग दी । सुलोचनाको अत्यन्त प्रसन्न किया, वह रात्रि वही बितायी और सबेरा होते ही उठकर अपनेमें अनुराग रखनेवाले लोगोंके भोजनके लिए सूर्यके समान समस्त दिशाओको प्रकाशित करता हुआ वह कुरुवशियोका प्यारा जयकुमार सुलोचनाके प्रेमसे गंगा नदीके किनारे-किनारे चलने लगा ॥१५५-१६०॥ वह जाते समय मनोहर वचनसे सुलोचनाको बहुत ही सन्तुष्ट करता जाता था । वह कहता था कि हे प्रिये, देखो यह गंगा नदी अपने अनुरूप समुद्ररूपी पति-के पास बड़ी शीघ्रतासे जा रही है, यह अपनी नाभिरूपी भौर दिखला रही है, दोनों किनारे ही इसके नितम्ब हैं, चंचल और उज्ज्वल मछलियाँ ही नेत्र हैं, यह पति अर्थात् समुद्रकी प्राणिकी लिए उन्मुख है, तरंगरूपी भुजाओके द्वारा गाढ आलिंगनके लिए उत्कण्ठित-सी जान पड़ती है, स्वभावसे मुन्दर है, अपने स्वच्छतारूपी गुणोंसे सबका हृदय हरनेवाली है, दोनों किनारोंपर वनके फूले हुए पुष्पोंकी माला धारण कर रही है, इसका रस अथवा पानी सब ओरमें बह रहा है और अपना वेग नहीं संभाल सक रही है ॥१६१-१६४॥ सो ठीक ही है क्योंकि कामदेवकी दिना

१ अकम्पनस्य । २ विन्ध्यश्री । ३ आगच्छति स्म । ४ सुलोचना । ५ विमकण्डिकायां दृश्य
विमकण्डिका इत्यभिधानात् । ६ चक्रिणा प्रोक्तम् । ७ भणित्वा । ८ चक्रिप्रेषितम् । ९ दृष्ट्वा । १०
११ स्कन्धावारे । १२ कर्तुम् । १३ असिमप्यादिव्यापाजिभजम् । १४ प्रकाशिनमदृष्टम् । १५
१६ गंगा । १७ गंगाविष्णुपदी जह्नुतनया नुरनिम्नगा इत्यभिधानात् । १८ चचत् । १९ लावण्यम्
कौटोन्मुञ्जी । निजपतिनमुद्राभिमुखी वा । १९ अभिवृद्ध-ल० । २० जलमगमनात् दृष्टम् ।
२१ नमुद्रस्वरूपा । २२ गगया । *पट्पादोज्ज्वलकचिन्तय ।

उत्पत्तिभूयता^१ पत्युधरण्या वर्धिता सता^२ । वाधिरेव पतिस्तस्मादेपाऽभूत् पापनाशिना ॥१६॥
 घबला धार्मिकैर्मान्या सतीनामुपमानताम् । गता कवीश्वरैः सर्वैः स्तुयते देवतति च ॥१६७॥
^३गुणितश्चेन क^४नाथा सस्तुवन्ति गुणप्रिया । इति गङ्गागतैः श्रवणैश्चैवातिमनोहरैः ॥१६८॥
 ततः कतिपयैरेव प्रयाणैः कुरुजाङ्गलम् । प्राप्य तद्वननाम्नाजामोदयन् काशिपात्मजाम् ॥१६९॥
^५आपनजानपन्नीतफलपुष्पादिभिश्च स^६ । विरक्तसञ्चोलीनीरनसरोजातिविराजितैः ॥१७०॥
 प्रत्यत्यव^७ प्रपश्यन्तीं सरोमैत्रैवधूवरम् । सहप्रजघननामोगा वापीरूपोरुनाभिकाम् ॥१७१॥
 परीतजातरूपोच्चप्राकारकटिसूत्रिकाम् । अलङ्कृतमहावीथिविलसद्वाहुवल्लरीम् ॥१७२॥
 साधोत्तुङ्गकुचां भास्वद्गोपुराननशोभिनीम् । कुङ्कुमागुरुकपूरकदमाद्रितगात्रिकाम् ॥१७३॥
 नानाप्रसवसन्दग्धमालाधमिद्वलधारिणाम् । तोरणावदरत्नादिमालालङ्कृतविप्रहाम् ॥१७४॥
 आह्वयन्तामिवोर्ध्वार्ध पतन्कत्वग्रदस्तकः । द्वारासदृतिविश्रम्भनेत्रा^८ वासान्तरलसुकाम् ॥१७५॥
 पुरोहितैः^९ पुरात्रीभिर्मन्त्रिभिर्वैश्यविश्रुतैः । दत्तशेष पुर स्थित्वा साशीर्वादं समुत्सुकैः ॥१७६॥

रतिकी इच्छा नहीं होती है उत्तम पुरुषोंकी इच्छाएँ नीच पदार्थोंपर नहीं होती है यह नदी समुद्रमे जाकर समुद्ररूप ही हो गयो है सो ठीक ही है क्योंकि प्रेम ऐसा ही होता है इसके समागमसे ही समुद्रका लावण्य (सौन्दर्य अथवा खारापन) सदा सफल होता है ॥१६५॥ इस गंगा नदीकी उत्पत्ति पवतोंके पति — हिमवान् पवतसे है पृथिवीपर यह बड़ी है और समुद्र ही इसका पति है इसलिए हो यह ससारम पापाका नाश करनेवाली हुई है ॥१६६॥ यह सफेद है धर्मात्मा लोगोंके द्वारा भाँय है, सतियोंको इनकी उपमा दी जाती है और सब कवीश्वर यदि गुणोजनाकी स्तुति न करें तो फिर कान किसकी स्तुति करेगा ? इस प्रकार सुननेके योग्य गंगा सम्बन्धी तथा अन्य अत्यन्त मनोहर कथाओं द्वारा मार्ग तय किया ॥ १६७—१६८ ॥ तदनन्तर कुछ ही पड़ावों-द्वारा कुरुजागल दश पहुँचकर उसके वननके वहानेसे सुलोचनाको आनन्दित करते हुए जयकुमारने अपनी उस हस्तिनागपुरी नामकी राजधानीमें प्रवेश किया जो कि दशके प्रधान प्रधान पुरुषों-द्वारा लाये हुए फल-मुष्प आदिकी भट तथा खिले हुए नील कमल और सफेद कमलोंसे अत्यन्त सुशोभित सरोवररूपी नेत्रोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो आगे आकर वधू वरको देख ही रही हो । उत्तम धूलोसाल ही जिसका विस्तृत जघन प्रदेश था, बागडो और कुएँ ही जिसकी विशाल नाभि थी चारा आर खड़ा हुआ सुवर्णका ऊँचा परकोटा ही जिमको करघनों की सजी हुई बड़ी-बड़ी गलियाँ ही जिसकी सुशोभित बाहुलताएँ थी, राज भवन ही जिमके ऊँचे कुच थे देनीप्यमान गोपुररूपी मुखसे जो सुशोभित हो रही थी, केशर, अगुरु और वपूरव विलपनसे जिसका शरीर गोला हो रहा था, जो अनेक प्रकारके फूलोंसे गुथी हुई मालाओं की वगैरहोंके धारण कर रही थी, तोरणामे बाँधी गयी रत्न आदिकी मालाओंसे जिमरा शरीर सुशोभित हो रहा था जो ऊपर नीचे उड़ती हुई पताकाओंके अग्रभागरूपी हाथों में बुलाती हुई-सी जान पड़ती थी खुले हुए दरवाजे ही जिसके विश्वासपूर्ण नेत्र थे, जो घर घर हानना उल्लसवाम उत्कण्ठित-सी जान पड़ती थी और इस प्रकार जो दूसरी सुलोचनाके समान सुशोभित हो रही थी । महाराजने दगन करनेके लिए उत्कण्ठित हो आशीर्वाद देने

१ श्रिमद्भिर । २ प्रपन्ना । ३ गुणवर्जना । ४ अनन्या । ५ नाथा अ० प० इ० स० ल० । ६ इति गङ्गागताः श्रवणैश्चैवातिमनोहरैः । ७ सुलोचनाम् । ८ मद्राप्तजनपन्जानीत । ९ श्रिमन्नगमान । १० प्रपन्नास्तुद्रिमयनगिनाराम् । ११ कवाटियानगद्वित्वादनयनाभिम्यय । १२ गृह मध्य गत्यवदन् । १३ बु च्चिनीभि ।

तूर्यमङ्गलनिर्घोषैः पुरन्दर इवापर । सुलोचनामित्रान्यां स्वां प्रविश्य नगरीं जयः ॥१७७॥
 राजगेहं महानन्दविधायि विविधर्द्धिमिः । ^१आवमत् कान्तया माद्वं नगर्यां ^२हृदयं मुदा ॥१७८॥
 तिथ्यादिपञ्चभिः ^३शुद्धैः शुद्धे लगने महोत्सवम् । सर्वसंतोषणं कृत्वा जिनपूजापुरःसरम् ॥१७९॥
 विश्रमङ्गलमपत्या स्तोचितामनसुस्थिताम् । हेमाङ्गदादिम्यानिध्ये राजा जातमहोदय ^४ ॥१८०॥
 सुलोचनां महादेवीं पट्टबन्ध ^५ व्यधान्मुदा । स्त्रीषु मचितपुण्यासु पत्युरेतावती रतिः ॥१८१॥
 हेमाङ्गद ^६ससौन्दर्यमुपचर्य ससभ्रमम् । पुरोभूय ^७स्वयं सर्वमोग्यैः प्राचूर्णकोचितैः ॥१८२॥
 नृत्यगीतसुखालापैर्वारणारोहणादिभिः । वनवापीसरःक्रीडाकन्दुकादिविनोदनैः ॥१८३॥
^८अहानि स्थापयित्वैव सुखेन कतिचित्कृती । तदीप्सितगजाश्चास्त्रगणिकाभूषणादिकम् ॥१८४॥
 प्रदाय परिवारं च नोपयित्वा यथोचितम् । चतुर्विधेन ^९कोशेन ^{१०}तत्पुरीं ^{११}तमजीगमत् ^{१२} ॥१८५॥
 सुखप्रमाणैः सप्राप्य दृष्ट्वा भूषणं ^{१३}मसुप्रभम् ^{१४} । प्रणम्याह्लादयन्नस्थात् न वध्वरवार्तया ॥१८६॥
 सुख काले गलत्येवमकम्पनमहीपतिः । तदा संचिन्तयामास विरक्त काममोगयोः ॥१८७॥
 अहो मया प्रमत्तेन विषयान्धेन नेक्षिता । कष्टं गरीरमसारमोगनिस्सारता चिरम् ॥१८८॥

वाले पुरोहित, सौभाग्यवनो स्त्रियाँ, मन्त्री और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सेठ लोग सामने खड़े होकर जिसे गेपाक्षत दे रहे हैं ऐसे उस जयकुमारने तुरही आदि मागलिक वाजोके शब्दोके साथ-साथ दूसरे इन्द्रके समान अपनी उस हस्तिनागपुरीमें प्रवेश कर अनेक प्रकारकी विभूतियोसे बहुत भारी आनन्द देनेवाले तथा उस नगरीके हृदयके समान अपने राजभवनमें प्रिया सुलोचनाके साथ-साथ बड़े आनन्दसे निवाम किया ॥१६९-१७८॥

तदनन्तर बड़े भारी अभ्युदयको धारण करनेवाले महाराज जयकुमारने शुद्ध तिथि, शुद्ध नक्षत्र आदि पाँचो बातोसे निर्दोष लग्नमें बड़ा भारी उत्सव कराकर सबको सन्तुष्ट किया और फिर जिनपूजापूर्वक सब मंगल-सम्पदाओके साथ-साथ हेमागद आदि भाइयोके सामने ही अपने योग्य आसनपर बैठी हुई सुलोचनाको बड़े हर्षसे पट्टबन्ध बाँधा अर्थात् पट्टरानी बनाया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यसचय करनेवाली स्त्रियोमें पतिका ऐसा ही प्रेम होता है ॥१७९-१८१॥ उसके बाद कुशल जयकुमारने स्वयं आगे होकर पाहुनोके योग्य सब प्रकारके भोगोप-भोगोसे, नृत्य, गीत और सुख देनेवाले वचनोसे, हाथी आदिकी सवारीसे, वन, वापिका, तालाब आदिकी क्रीडाओसे और गेंद आदिके खेलोसे प्रसन्नतापूर्वक हेमागद और उनके भाइयोकी सेवा की, कुछ दिन तक उन्हें बड़े सुखसे रखा और फिर उनको अच्छे लगनेवाले हाथी, घोड़े, अस्त्र, गणिका तथा आभूषण आदि देकर उनके परिवारके लोगोको यथायोग्य सन्तुष्ट किया और फिर रत्न, सोना, चाँदी तथा रुपये-पैसे आदि चारो प्रकारका खजाना साथ देकर उन्हें उनके नगर बनारसको विदा किया । ॥१८२-१८५॥ सुखपूर्वक कितने ही पडाव चलकर वे हेमागद आदि बनारस पहुँचे और माता मुप्रभाके साथ राजा अकम्पनके दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया और जयकुमार तथा सुलोचनाकी बातचीतसे माता-पिताको आनन्दित करते हुए रहने लगे ॥१८६॥

इस प्रकार मुपूर्वक बहुत-सा समय व्यतीत होनेपर एक दिन महाराज अकम्पन काम-भोगोसे विरक्त होकर इस प्रकार सोचने लगे ॥१८७॥ कि मुझ प्रमादीने विषयोसे अन्धा

१ निवमति स्म । २ नगरीजनचित्ते इत्यर्थः । ३ तिथिग्रहनक्षत्रयोगकरणे । तिथिनक्षत्रहोरावाग्महूर्तैर्वा । ४ महोत्सवे ल० । ५ चकार । ६ ममानुजम् । ७ अत्रे भूत्वा । प्रस्कृत्य वा । ८ अतिथिः । ९ दिनानि । १० रत्नमुवर्णरजतव्यवहारयोग्यनाणकम् इति चतुर्विधेन । ११ वाराणसीम् । १२ हेमागदम् । १३ गमयति स्म । १४ अकम्पनम् । १५ मुप्रभादेवीमहिम्नम् ।

१ आदावशुच्युपादानमशुच्यवयवात्मकम् । विश्वाशुचिकर पाप दुःखदुश्चेष्टितालयम् ॥१८९॥

निरन्तरश्रवोक्तोद्यनवद्वारशरीरकम् । २ कृमिपुञ्जवितामस्मविष्टानिष्ट विनश्वरम् ॥१९०॥

तदध्युष्य^१ जडो जन्तुस्तस्य पञ्चेन्द्रियाग्निनि । विश्वे^२ धनै^३ कुलिङ्गाव भूयोऽथार्^४ कुत्सिता गतिम् ॥
साऽऽशास्त्रि^५ किलाग्रैव^६ यत्र^७ विश्वमणूषमम् । ता^८ पुष्टपु^९ किलाथाह धनं सख्यातिव^{१०} धनं^{११} ॥

१४ यदादाय भवज्जन्मी यन्मुक्त्वा मुक्तिमागतम् । तदाथात्म्यमिति^{१५} ज्ञात्वा कथं पुष्पाति^{१६} धीधनं च
हा हतोऽसि चिरं जेतो मोहेनाद्यापि^{१७} ते यत । नास्ति कायाशुचिज्ञानं तत्त्याग^{१८} क्त्वातिदुलभं ॥
दुःखा सुखा सुखी दुःखी दुःखी दुःख्य केवलम् । २१ धन्यधन्योऽधनो^{२२} धन्यो निधनो निधनः सदा च
एवविधैस्त्रिभिर्नानुराप्सितानीप्सितैश्चिरम् । २३ चतुर्थं भद्रमप्राप्य भद्रमीति भवानवे ॥१९६॥

२४ या^{२५} वष्टययमसौ वष्टि^{२६} परं वष्टि स चापराम् । साऽपि वष्टयपरं कर्मनिष्टेष्टपरम्परा^{२७} ॥१९७॥

होकर इतने दिन तक शरीर, ससार और भोगोकी असारता नहीं देखी यह बड़े खेदकी बात है ॥१८८॥ प्रथम तो यह शरीर अपवित्र उपादानों (माता पिताके रज वीर्य) से बना है फिर इसके सब अवयव अपवित्र हैं, यह सबको अपवित्र करनेवाला है, पापरूप है और दुःख देनेवाली खोटी-खोटी चेष्टाओंका घर है ॥१८९॥ इसके नौ द्वारोंसे सदा मल-मूत्र बहा करता है और अन्तम यह विनश्वर शरीर कीडोका समूह, चिताकी राख तथा विष्टा बनकर नष्ट हो जानेवाला है ॥१९०॥ ऐसे शरीरमे रहकर यह मूल प्राणो जिनमें संसारके सब पदार्थ ई धन रूप ह ऐसी पाँचो इन्द्रियोंकी अग्निश्रोसे तपाया जाकर बुलिंगी जीवके समान फिरसे नीच गतिधोम पहुँचना है ॥१९१॥ जिसमें यह सारा संसार एक परमाणुके समान है ऐसा वह प्रसिद्ध आगारूपी गढा इसी शरीरमें है, इसी आगारूपी गढेकी मैं आज थोड़े-से धनसे पूरा करना चाहता हूँ ॥१९२॥ जिस शरीरको लेकर यह जीव जन्म धारण करता है -- ससारी बन जाता है और जिसे छोड़कर यह जीव मुक्त हो जाता है इस प्रकार शरीरकी वास्तविकता जानकर भी बुद्धिमान् लोग न जाने क्यों उसका भरण-पोषण करते हैं ॥१९३॥ हे जीव, खेद है कि तू मोहकर्मके द्वारा चिरकालसे ठगा गया है, क्योंकि तूझ आजतक भी अपने शरीरकी अपवित्रताका ज्ञान नहीं हो रहा है जब यह बात है तब अत्यन्त दुलभ उसका त्याग भला कहाँ मिल सकता है ॥१९४॥ इस ससारमें जो दुःखी हैं वे सुखी हो जाते ह जो सुखी हैं वे दुःखी हो जाते हैं और कितने ही दुःखी दुःखी हो बने रहते ह इसी प्रकार धनी निधन हो जाते हैं, निधन धनी हो जाते हैं और कितने ही निधन सदा निधन ही बने रहते हैं । इस तरह यह जीव जो सुखी है वह सुखी ही रहे और जो धनी है वह धनी ही बना रहे यह चौथा भग नहीं पाकर केवल ऊपर वहे हुए तीन तरहके भगोंसे ही ससाररूपी समद्रव्य चिरकाल तक भ्रमण करता रहता है । ॥१९५-१९६॥ यह पुरुष जिस स्त्रीको चाहता है वह स्त्री किसी दूसरे पुरुषको चाहती है, जिसको वह चाहती है वह भी किसी अन्य स्त्रीको चाहता है इस प्रकार यह इष्ट अनिष्टकी

१ अग्निगणितमस्मिन्कारणम् । २ पुनिगणितम् । ३ कृमिना पुञ्जं चितायां भस्म विष्टा पुरीषा निष्टा यामन् यस्मिन् तन । ४ तस्मिन् शरीर । ५ मित्वा । ६ सख्यविययधनं । ७ मच्छन् । ८ अग्निनिवे गाकर । ९ जन्तावद्व । १० आशास्त्री । ११ मकलवस्तु । १२ आग मनिम् । १३ पुष्टिपुष्टि । १४ मणूषमम् । १५ शरीरम् । १६ तच्छरीरस्य आत्मरूपम् । १७ पुष्टि नयति । १८ वराग्योत्पन्न काष्ठेऽग्नौ । १९ शरीरत्यागः । २० कुत्रापि । २१ धनवान् । २२ धनरहितः । २३ सुखी सुखीति धनी धनानि अनुभवन्म । २४ मित्वा । २५ वष्टि इच्छति । अयम् पुमान् । २६ अन्यपुरुषम् । २७ अनिष्टवाञ्छा मन्ति । वष्टि दागच्छता इत्यनिधानात् ।

यदिष्ट तदनिष्ट स्याद् यदनिष्ट तदिष्ट्यते^१ । इहेष्टानिष्टयोरिष्टा नियमेन न हि स्थिति ॥१६८॥

स सा सा तत्तदेवैषा सा स स्यात् सोऽपि तत्पुन । तन्म स्यात्तत्तदेवात्र चक्रके चक्रमक्रम ॥१६९॥

अन्तमस्य विधास्यामि चिन्तयित्वा जिनोदितम् । मतत जन्मकान्तारभ्रान्तौ भीतोऽहमन्तकान ॥२००॥

भोगोऽय भोगिनो भोगो^{१०} भोगिनो^{११} भोगिनामकृत् । तावन्मात्रोऽपि नास्माक भोगो भोगेविति ध्रुवम् ॥

भुज्यते^{१३} य. स भोग स्याद् भुक्तिर्वा भोग^{१४} इष्ट्यते । तद्द्वय नरकेऽयस्ति तस्माद् भोगेषु का रति ॥२०२॥

भोगास्तृष्णाग्निसवद्ध्यै^{१५} दीपनीयौपधोपमाः ।^{१६} एभि. प्रवृद्धतृष्णाग्नेः^{१७} शान्त्यै चिन्त्यमिहापरम् ॥२०३॥

इत्यतो न सुखी. सर्वो वान्ततृष्णाविधो भृशम् । हेमागद समाहूय^{१८} पूज्यपूजापुरस्सरम् ॥२०४॥

अभिषिच्य चला मत्वा च्छ्वा पट्टेन वाऽचलम्^{१९} । लक्ष्मी समर्थ गजोच्चैरभ्यामं वृषभंगितु ॥२०५॥

प्रवज्य बहुभि. साह्यं^{२०} मूर्धन्यै. स ससुप्रभ.^{२१} । क्रसाच्छ्रेणो समारूढ कैवल्यमुदपादयत ॥२०६॥

अथ जन्मान्तरापातमहास्नेहातिनिर्मर । सुलोचनानानन्द^{२२} नेन्दुविम्बात् खुता^{२३} सुधाम्^{२४} ॥२०७॥

^{२५} उन्मीलन्नीलनीरेजराजिमिलोक्तैः^{२६} पिवन् । पूरयन् श्रोत्रपात्राभ्या^{२७} तद्गीर्गातरसायनम् ॥२०८॥

परम्परा बहुत ही दुःख देनेवाली है ॥१६७॥ जो इष्ट है वह अनिष्ट हो जाता है और जो अनिष्ट है वह इष्ट हो जाता है, इस प्रकार ससारमे इष्ट-अनिष्टकी स्थिति किसी एक स्थानपर नियमित नहीं रहती ? ॥१६८॥ आजका पुरुष अगले जन्ममे स्त्री हो जाता है, स्त्री नपुंसक हो जाती है, नपुंसक स्त्री हो जाता है, वही स्त्री फिर पुरुष हो जाता है, वह पुरुष भी नपुंसक हो जाता है, वह नपुंसक फिर पुरुष हो जाता है अथवा नपुंसक नपुंसक ही बना रहता है, इस प्रकार इस चक्रमे बड़ा टेढ़ा सक्रमण करना पड़ता है ॥१६९॥ इसलिए श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए वचनोका चिन्तवन कर मैं अवश्य ही इस ससारका अन्त करूँगा क्योंकि निरन्तर ससाररूपी वनके भीतर परिभ्रमण करनेमे मैं अब यमराजसे डर गया हूँ ॥२००॥ भोग करनेवाले मनुष्योंके ये भोग ठीक सर्पके फणाके समान हैं और भोगनेवाले जीवको भोगी नाम देनेवाले हैं । तथा इतना सब होनेपर भी उन भोगोमे-से एक भोग भी हमारा नहीं है यह निश्चय है ॥२०१॥ जिसका भोग किया जाता है उसे भोग कहते हैं अथवा उपभोग किया जाना भोग कहलाता है वे दोनों प्रकारके भोग नरकमे भी हैं इसलिए उन भोगोमे क्या प्रेम करना है ? ॥२०२॥ जिस प्रकार औपधसे पेटकी अग्नि प्रदीप्त हो जाती है उसी प्रकार इन भोगोसे भी तृष्णारूपी अग्नि प्रदीप्त हो उठती है अतः इन भोगोसे बढो हुई तृष्णारूपी अग्निकी शान्तिके लिए कोई दूसरा ही उपाय सोचना चाहिए ॥२०३॥ इस प्रकार तृष्णारूपी विपको उगल देनेवाले बुद्धिमान् राजा अकम्पनने बहुत शीघ्र हेमागदको बुलाकर पूज्य-परमेष्ठियोकी पूजापूर्वक उसका राज्याभिषेक किया, लक्ष्मीको चचल समझ पट्टवन्धसे बाँधकर उसे अचल बनाया और हेमागदको सौपकर श्रीभगवान् वृषभदेवके समीप जाकर अनेक राजाओं और रानी सुप्रभाके साथ दीक्षा धारण की तथा अनुक्रमसे श्रेणियाँ चढ़कर केवलज्ञान उत्पन्न किया ॥२०४-२०६॥

अथानन्तर अन्य जन्मसे आये हुए बहुत भारी स्नेहसे भरा हुआ जयकुमार खुले हुए नीलकमलोके समान सुशोभित होनेवाले अपने नेत्रोसे मुलोचनाके मुखरूपी आनन्ददायी

१ इष्ट भवति । २ स पुमान् । ३ सा स्त्री स्यात् । ४ तत् नपुंसकम् । ५ एषा स्त्री स्यात् । ६ तत् नपुंसकम् । ७ तदेव पुनपुंसकमेव स्यात् । ८ चक्रवदावर्तमानमारे । ९ समारम्भ्य । १० मर्षस्य । ११ भोगीति नामकृत् । भोगीति नामकर । सर्पनामकृदित्यर्थ । १२ भोगीनि नामकृन्मात्रोऽपि । १३ पदार्थ । १४ पदार्थानुभवनक्रिया । १५ दीपनहेतु । १६ भोगै । १७ उपशान्तिकारणम् । १८ परमेष्ठिपूजापूर्वकम् । १९ निचल यथा भवति तथा । पट्टेन बद्ध्वा वा निबन्धन कृत्वेव समर्थेति मवन्ध । २० अघ्नये । २१ सुप्रभादी-मन्त्रित । २२ आनन्दहेतुचन्द्र । २३ निमृताम् । २४ कान्तिम् । २५ त्रिकमन्त्रोक्तोत्पन्नवद्विगजमानं । २६ नैव । - लोचनं न० विहाय मवन्ध । २७ मुलोचनावचनन्यगोचरम् ।

^१हरन् करिकराकरालिङ्गनसगतः^२ । ^३तद्गात्रकूपिकान्तस्थ रस ^४स्पर्शनवेद्मिन् ॥२०३॥

तद्भिम्बाभसम्भावितामृतास्वादनीसुक । तद्वक्त्रावारिजामोदामोदमानोऽनिश मृशम् ॥२१०॥

^५अत्रैव न पुनर्नेति मम वामासमागमः^६ । स सुलोचनाया स्वानि चक्षुरादीभ्यस्तपयत् ॥२११॥

^७प्रमाणकालमावेभ्यो यद्वत् समता तथे । तत् समोगर्भगारावारापारान्तगौ हि तौ ॥२१२॥

मालिनी

^१अतिपरिष्काराया लोपितालेपनादि^{११}

स सकलकरणानां^{१२} गोचरीभूय^{१३} तस्या ।

हितपरविषयाणां^{१४} साऽपि^{१५} तस्यैवमेतौ

समरतिक्लृप्तसाराण्यन्वभूतां सुखानि ॥२१३॥

मनसि मनसिजस्थावापि^{१६} सौख्यं न ताभ्यां

पृथगनुगतभावे^{१८} सगताभ्या नितान्तम् ।

^{११}करणमुखसुखैस्तैस्तस्मिन् प्रीतिमापत्

भवति^{१२} परमुखं च यवापि सौख्यं सुतृप्त्यै ॥२१४॥

शिशिरसुरभिर्मन्दोष्णवासजै हवै सर्मारै

^{१३}मृदुमधुरबधोमि स्वादनीयप्रदेशै ।

ललिततनुलताभ्यां मादवैकाकराभ्यां

मलिलमनयता तौ सौख्यमात्मनिद्रयाणि ॥२१५॥

चन्द्रमासे झरते हुए अमृतको पीता था सुलोचनाके वचन और गीतरूपी रसायनको अपने कानरूपी पात्रोंसे भरता था हाथोंकी सूडके समान आकारवाल हाथोंके आलिंगनसे युक्त हो स्पर्शा इन्द्रियसे जानने योग्य उसके शरीररूपी कुड़ियाके भीतर रहनेवाले रसको ग्रहण करता था, बिम्बी फलके समान सुशोभित उसके ओठोंमें रहनेवाल अमृतका आस्वाद लनेमें सदा उत्सुक रहता था, उसके मुखरूपी कमलकी मुगधिसे रात दिन अत्यन्त हर्षित होता रहता था और 'स्त्री समागम मुझ इसी भवमें है अन्यभवमें नहीं है, ऐसा मानकर ही मानो सुलोचनाके द्वारा अपनी चक्षु आदि इन्द्रियोको सन्तुष्ट करता रहता था ॥२०७-२११॥ चूँकि प्रमाण, काल और भावसे इन दोनोंके प्रेममें समानता थी इसलिए ही वे दोनों सम्भोग शृंगाररूपी समुद्रके अन्त तक पहुँच गये ॥२१२॥ खूब बढ़े हुए प्रमसे जिसने विलपन आदि छोड़ दिया है ऐसा वह जयकुमार सुलोचनाकी सब इन्द्रियोका विषय रहता था और सुलोचना भी जयकुमारके हित करनेवाल विषयामें तत्पर रहती थी इस प्रकार ये दोनों ही समान प्रीति करना ही जिनका सारभाग है ऐसे सुखोका उपभोग करते थे ॥२१३॥ पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए परिणामोंसे खूब मिल हुए उन दोनोंने अपने मनम कामदेवका सुख नहीं पाया था किन्तु इन्द्रियोसे उत्पन्न हुए उन उन सुखोंसे उनके मन प्रीतिको अवश्य प्राप्त हुए थे सो ठीक ही है क्योंकि दूसरेके द्वारा उत्पन्न हुआ सुख क्या कही उत्तम तृप्तिके लिए हो सकता है ? ॥२१४॥ अपने इवासी च्छ्वासके उत्पन्न हुए शीतल मुगधित और मन्द पवनसे, कोमल और मधुर वचनोंसे, स्वाद

१ स्त्रीकुवन् । २ आलिङ्गन हृत्पङ्कजं सगत हृत्पङ्कजम् इत्यभिधानात् । ३ सुलोचनाशरीररसकूपमध्यस्थित । ४ स्पर्शनवद् । ५ इह प्रमत्तव्य । ६ उत्तरभवे नास्तीति वा । ७ स्त्रीसग । प्रतीपदर्शितौ वामा वनिता महिना तथा इत्यभिधानात् ८ विजय । ९ योगिपुण्यान्निप्रमाणात् समरतिप्रभृतिवालात् अग्याभ्यामनुरागादिमावा च । १० अभाव प्रवृत्त । ११ लुप्तश्रीकृष्णकुम्भचर्चामात्स्याभरणाणि । १२ समस्तन्द्रियाणाम् । १३ विषयीभूत्वा । १४ इन्द्रियचर्चान्निविषयाणाम् । १५ सुलोचनापि । १६ जयस्य । १७ न प्राप्यते स्म । १८ पदार्थे । १९ इन्द्रियाणामनितभूय । २० परम् अवधारु मुञ्च द्वारमपाया यस्य तत् । परमुखं यवापि भवति न कुत्रापि । २१ आम्वात्तु योग्यापरात्प्रिये ।

हृतसरसिजसरैरिष्टचेटीयमानै^१

सततरतनिमित्तैर्जालं^२ मार्गप्रवृत्तैः ।

मृदुशिशिरतरैः सप्रापनुस्तौ^३ समीरैः

सुरतं^४ विरतिजातस्वेदविच्छेदसौख्यम् ॥२१६॥

वसन्ततिलका

तां तस्य वृत्तिरनुवर्तयति स्म तस्या-

श्चैनं^५ तदेव रतितृप्तिनिमित्तमासीत् ।

प्रेमापदत्र^६ निजं भावमचिन्मन्त्यं-

सातोदयश्च भवभूतिफलं^७ तदेव ॥२१७॥

कामोऽगमत् सुरतवृत्तिषु तस्य शिष्य-

भावं सुधीरिति रतिश्च सुलोचनायाः ।

को गर्वमुद्वहति चेन्न वृथाभिमानं

स्वेष्टार्थसिद्धिविषयेषु गुणाधिकेषु ॥२१८॥

एव सुखानि तनुजन्यनुभूय तौ च

नैवेयतुश्चिररनेऽप्यमिलापकोटिभू^८ ।

धिवक्त्रमिष्टविषयोत्थसुख सुखाय

तद्वीतविश्वविषयाय बुधा यतध्वम्^९ ॥२१९॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणश्रीमहापुराणसंग्रहे जयसुलोचना-

सुखानुभवव्यावर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४५॥

लेने योग्य अधर आदि प्रदेशोंसे और कोमलताकी एक खान स्वरूप सुन्दर शरीररूपी लतासे वे दोनों अपनी इन्द्रियोको समस्त सुख पहुँचाते थे ॥२१५॥ जिसने कमलका सार भाग हरण कर लिया है, जो प्रिय दासके समान आवरण करता है, निरन्तर सम्भोगका साधन रहता है, झरोखेके मार्गसे आता है और अत्यन्त कोमल (मन्द) तथा शीतल है ऐसे पवनसे वे दोनों ही सम्भोगके बाद उत्पन्न हुए पसीना सूखनेका सुख प्राप्त करते थे ॥२१६॥ जयकुमारकी प्रवृत्ति सुलोचनाके अनुकूल रहती थी और सुलोचनाकी प्रवृत्ति जयकुमारके अनुकूल रहती थी । उन दोनोंका परस्पर एक दूसरेके अनुकूल रहना ही उनके रतिजन्य सन्तोषका कारण था जो चिन्तवनमे न आ सके ऐसा प्रेम इन्ही दम्पतियोंमे पूर्णताको प्राप्त हुआ था, इन्हीके सातावेदनीय-का अन्तिम उदय था और यही सब इनके जन्म लेनेका फल था ॥२१७॥ बुद्धिमान् कामदेव, सम्भोग चेष्टाओके समय जयकुमारका शिष्य बन गया था और रति सुलोचनाकी शिष्या बन गयी थी सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्य यदि व्यर्थका अभिमानी न हो तो ऐसा कौन हो जो अपने इष्ट पदार्थकी सिद्धिके विषयभूत अधिक गुणवाले पुरुषोंके साथ अभिमान करे ? ॥२१८॥

इस प्रकार शरीरसे उत्पन्न हुए सुखोंका अनुभव कर चिरकाल तक रमण करनेपर भी वे दोनों इच्छाओकी अन्तिम अवधिको प्राप्त नहीं थे - उनकी इच्छाएँ पूर्ण नहीं हुई थी । इसलिए कहना पड़ता है कि इष्ट विषयोसे उत्पन्न हुए सुखको भी धिक्कार है । हे पण्डितो, तुम उसी सुखके लिए प्रयत्न करो जो कि ससारके सब विषयोसे अतीत है ॥२१९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत त्रिषष्टिलक्षण महापुराण-संग्रहके हिन्दी भाषानुवादमे जयकुमार और सुलोचनाके सुखभोगका वर्णन करनेवाला पैतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

१ इष्टव्यस्त्यायमानै । २ गवाक्षपथ । ३ सुरतावमानजात । ४ अन्योन्यानुवर्तनमेव । ५ प्रापन् । ६ जयसुलो-
चनाया । ७ निजयोर्देष्टव्योर्भाक्त्रो यत्र तत् । ८ अपविचिमनुखोदयश्च । ९ जन्मप्राप्तिफलम् । १० नैव प्राप्तु ।
११ वन्तम् । १२ कारणात् । १३ प्रयत्नं कुरुष्वम् ।

षट्चत्वारिंशत्तम पर्व

जय प्रासादमध्यास्य^१ दन्तावलगतो मुदा । यच्छयाऽ-यदालोक्य गच्छ^२ तौ खगदगता^३ ॥१॥
 हा म प्रभावतीत्येतद् आलपन्नविबिह्वल । रतिमवाहित^४ सद्य सहायीकृत्य मूर्च्छया ॥२॥
 तथा 'पारावतद्वद्' सग्रेवालोक्य कामिनी । हा म रतिपरेत्युक्त्वा साऽपि मूर्च्छासुपागता ॥३॥
 'दक्षचे' जनक्षिप्रकृतशीतक्रिया क्रमात् । सद्य कुमुदिनीवाप प्रबोध शीतदीधिते ॥४॥
 'हिमच' दनसमिश्रवारिभिर्मदमारुतै । सोऽप्यमूर्च्छो दिश पश्यन् म'दमन्दतनुष्य^५ ॥५॥
 यूय सर्वेऽपि^६ साथ-तनाम्भोजानुकृतानना । किमेतदिति त-सद्य जानानोऽपि स नागर^७ ॥६॥
 अनेकानुनयोपायैर्गोत्रस्खलन^८ दु खिताम् । सुलोचना समाश्वास्य स्मरन् ज-मा-तरप्रियाम् ॥७॥
 'आकारसदृशि' कृत्वा तामवालपयन्^९ स्थित । धञ्जानाचुञ्चव^{१०} सर्वे प्राय कान्तासु कामिन ॥८॥
 तयोजन्मान्तरात्मीयवृक्षा-तस्मृत्पनन्तरम् । स्वर्गादनुगतो बोधस्तृतीयो^{११} व्यक्तिसमीपिवान्^{१२} ॥९॥
 तद्विलोक्य सपत्न्योऽस्या श्रीमती सशिवकला । पतरश्च मरुतोद्देकादित्य-योन्य तदामुवन्^{१३} ॥१०॥

अथानन्तर किसी अन्य समय जयकुमार अपने महुलकी छतपर आरुढ़ हो शोभाके लिए बनवाये हुए कृत्रिम हाथीपर आनन्दसे बैठा था कि इतनेमें ही अपनी इच्छानुसार जाते हुए विद्याधर दम्पती दिखे, उन्हें देखकर हा मेरी 'प्रभावती' इस प्रकार कहता हुआ वह बहुत ही बेचैन हुआ और मूर्च्छाकी सहायता पाकर शीघ्र ही प्रेमको प्राप्त हुआ । भावाथ-पूर्वभवका स्मरण होनेसे मूर्च्छित हो गया ॥१-२॥ इसी प्रकार सुलोचना भी उसी स्थानपर कबूतरोंका युगल देखकर हा मेरे रतिवर ऐसा कहकर मूर्च्छाको प्राप्त हो गयी ॥३॥ जिस प्रकार चन्द्रमासे कुमुदिनी शीघ्र ही प्रबोधको प्राप्त हो जाती है-खिल उठती है उसी प्रकार चतुर दासी जनोके द्वारा किये हुए शीतलोपचारके क्रमसे वह सुलोचना शीघ्र ही प्रबोधको प्राप्त हुई थी-मूर्च्छा रहित हो गयी थी ॥४॥ कपूर और चन्दन मिल हुए जलसे तथा मन्द मन्द वायुसे कुछ लज्जित हुआ और दिशाओकी ओर देखता हुआ वह जयकुमार भी मूर्च्छारहित हुआ ॥५॥ यद्यपि वह चतुर जयकुमार सब कुछ समझता था तथापि पूछने लगा कि तुम लोगोंके मुह स-ध्याकालके कमलोंका अनुकरण क्यों कर रहे है ? अर्थात् कान्तिरहित क्यों हो रहे है ? ॥६॥ पतिके मुहसे दूसरी स्त्रीका नाम निकल जानेके कारण दु खी हुई सुलोचनाका जयकुमारने अनेक प्रकारके अनुनय विनय आदि उपायोसे समझाया तथा दूसरे ज-मकी प्रिया प्रभावती समझकर अपने मुह का आवार छिपा वह उसीके साथ बातचीत करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि सभी कामी पुरुष स्त्रियाके ठगनेमें अत्यन्त चतुर होते हैं ॥७॥ उन दोनोंके ज-मान्तर सम्बन्धी अपना समाचार स्मरण हानेने बाद ही स्वर्ग पर्यायसे सम्बन्ध रखनेवाला अवधिज्ञान भी प्रकट हो गया ॥८॥ यह सब देखकर श्रीमती शिवकरा तथा और भी जो सुलोचनाकी सौत थी वे उस समय ईर्ष्याके

१ शोभाय विन्यस्तकृत्रिमगज । दन्तावलगतो ल० । २ विद्याधरदम्पती । ३ प्रातिम । ४ प्राप्त । स्वीकृतो । ५ योनि । ६ स । ७ चतुर । ८ कपूर । ९ मल्लज्जवान् । १० अस्तमयकाल । ११ निपुण । १२ प्रभावतीनां नाम । सुलोचनाया अप्र प्रभावताति अ वस्त्रोनामग्रहण । १३ ज-मा-तरप्रियास्मरण । सम्भाषणम् । तमाणाप्रभाषणमालाप । कुदृष्टिचका इति । अवधिज्ञानम् । १७ गनवान् । १८ सुलोचनाया । १९ ऊचु ।

स्त्रीषु मायेति या वार्ता मन्यां नामद्य कुर्वन्ती । पतिमूर्च्छां स्वमूर्च्छायाः^१ प्रत्ययीकृत्य मायया ॥११॥
 पश्य कृत्रिममूर्च्छात्तभावनाव्यक्तसंवृतिः^२ । मन्तनान्तं स्थितप्रौढप्रेमप्रेरितचेतना ॥१२॥
 कन्याव्रतविलोपात्तगोत्रम्बलनदूषिता । पति रतिवरेन्युक्त्वाऽ^३यान्मूर्च्छां कुलदूषिणी ॥१३॥
 इय ग्रीलवतीन्येनां^४ निस्स्वननं^५ वर्णयत्ययम् । प्रायो रक्तस्य^६ दोषोऽपि गुणवन् प्रतिभास्यते ॥१४॥
 प्रभावर्ताति समुह्य^७ कितव^८ कोपिर्नामिमाम् । प्रमिमादधिपुः शोकं तन्प्रीत्या विदधाति न ॥१५॥
^९पुतान सर्वास्तदालापान् जयोऽवत्रिविलोचन । विदिन्वा सस्मितं पश्यन् प्रियायाः स्मेरमाननम् ॥१६॥
 कान्ते जन्मान्तरावाप्तं विद्व वृत्तान्तमावयो । व्यावर्ण्येमा ममा नृष्टिकौतुकापहृतां कुरु ॥१७॥
 इति^{१०} प्राचोदयत माऽपि प्रिया तद्भाववेदिनी । कथा कथयितुं कृन्ता प्राक्रंस्त^{११} कलभाषिणी ॥१८॥
 इह जम्बूमति द्वीपे विदेहं प्राचि^{१२} पुष्कला-वती विषयमध्यस्था नगरी पुण्डरीकिणी ॥१९॥
 तन्नाभवन प्रजापाल प्रजा राजा प्रपालयन् । फलं धर्मार्थकामाना स्वीकृत्य कृतिनां वर ॥२०॥
 कुवेरमित्रन्तम्यामीद् गजश्रेष्ठी^{१३} प्रतिष्ठितः । द्वात्रिंशद्वनवत्याद्या भार्यान्तस्य मन प्रियाः ॥२१॥
 गृहे तस्य ममुत्तुङ्गे नानाभवनवेष्टिते । व्रमन् रतिवरो नाम्ना धीमान् पारावनोत्तम ॥२२॥

उद्रेकमे परस्परमे इस प्रकार कहने लगी ॥१०॥ देखो, यह मुलोचना मायाचारसे पतिकी मूर्च्छाको अपनी मूर्च्छाका कारण बनाकर 'स्त्रियोमे माया रहती है' इस कहावतको कैसा सत्य सिद्ध कर रही है । और इस प्रकार जिसने कृत्रिम मूर्च्छाके द्वारा प्रकट हुई भावनाओका साफ-साफ सवरण कर लिया है, जिसकी चेतना मदामे हृदयमे बैठे हुए प्रौढ प्रेममे प्रेरित हो रही है जो कन्याव्रतके भग करनेसे प्राप्त हुए गोत्रम्बलन (भूलमे दूसरे पतिका नाम लेने) से दूषित है तथा कुलको दूषण लगानेवाली है ऐसी यह मुलोचना अपने पहलेके पतिको 'हे रतिवर' इस प्रकार कहकर वनावटी मूर्च्छाको प्राप्त हुई है ॥११-१३॥ यह जयकुमार इमे 'यह बड़ी गोलबती है, इस प्रकार कहता हुआ वर्णन करता है सो ठीक ही है क्योंकि रागी पुरुषको प्राय दोष भी गुणके समान जान पड़ते हैं ॥१४॥ 'हे प्रभावति' ऐसा कहकर मूर्च्छित हो, क्रोध करनेवाली इस मुलोचनाको प्रसन्न करनेकी इच्छा करता हुआ यह धूर्त कुमार उसके प्रेमसे ही हम लोगोको शोक उत्पन्न कर रहा है ॥१५॥ अवधिज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाला जयकुमार उन लोगोकी इन सब बातोको जानकर मन्द हँसीके साथ-साथ मुलोचनाके मुसकुराते हुए मुखको देखता हुआ कहने लगा कि 'हे प्रिये ! तू हम दोनोंके पूर्वभवका सब वृत्तान्त कहकर इस सभाको सन्तुष्ट तथा कौतुकके वशीभूत कर !' यह मुनकर पतिके अभिप्रायको जाननेवाली और मधुर भाषण करनेवाली मुलोचनाने भी पूर्वभवकी सब कथा कहनी प्रारम्भ की ॥१६-१८॥

इस जम्बू द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमे एक पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है जो कि पुष्कलावती देगके मध्यमे स्थित है । उस नगरीका राजा प्रजापाल था जो कि समस्त प्रजाका पालन करता हुआ धर्म, अर्थ तथा कामका फल स्वीकार कर सब पुण्यवानोमे श्रेष्ठ था ॥१९-२०॥ उस राजाका कुवेरमित्र नामक एक प्रसिद्ध राजसेठ था और उसकी हृदयको प्रिय लगनेवाली वनवती आदि वन्तीम स्त्रियां थी ॥२१॥ अनेक भवनोमे घिरे हुए उस मेठके अत्यन्त ऊँचे महलमे एक रतिवर नामका कवूतर रहता था जो कि अतिशय वृद्धिमान् और सब कवूतरोमे

१ कारणीकृत्य 'प्रत्ययोऽधीनशयज्ञानविज्ञानहेतुः' इत्यभिधानान् । २ रतिवरेन्युक्त्वा पुन्ये प्रवृद्धम्नेहेन प्रेरित-
 मन्सा । ३ अगच्छन् । ४ -त्येव ल० । -येना अ०, म०, इ०, प० । ५ निम्नतनन् ट० । वृवन् । ६ अनुक्तम्प्य ।
 ७ मूर्च्छां गत्वा । ८ धूर्त । ९ प्रभावतीनामप्रणान् कुपिताम् । १० प्रमादयितुमिच्छ । ११ एनान् ।
 १२ अवासीन् । १३ उपक्रान्तवती । १४ पूर्वविदेहे । १५ श्रोमानिन्यर्थ ।

कदाचिद् राजगोहागतेन वैश्यशिना स्वयम् । स्नेहन सस्मितालापै स्वहस्तेन समुद्धत ॥२३॥
 कदाचित् कामिनीकान्तकटा-जार्पितशकरा-संमिश्रिताद् सुशालीयतण्डुलानमिमक्षयन् ॥२४॥
 कदाचिच्छ्वेद्विनोद्विष्ट^१ हेतुदृष्टान्तपूजकम् । अहिंसालक्षण धर्मं भावयन् प्राणिनेहितम् ॥२५॥
 कदाचिद् भवनायातयतिपादसरोजजम् । रेणुजाल^२ मिराकुवन्^३ पक्षाभ्या प्रत्युपागत^४ ॥२६॥
 स^५ कदाचिद् गति का स्मात्^६ पापापापात्मनामिति । कुतूहलेन पृष्ट सन् जनैस्तुण्डन निर्दिशन् ॥२७॥
 अधोभागमधोर्ध्वं च मौनीवागमपारग । क्षयोपशममाहात्म्यात्तिर्यचोऽपि विवेकिन ॥२८॥
 क्रीडन्नानाप्रकारेण कान्तया रतिपेण्या^७ । सार्धमव चिर तत्र सुख कालमजीगमत् ॥२९॥
 अस्मै रतिवर कान्तस्त्वमह सा तव प्रिया । रतिपेणा भवावर्ते जन्तु किं किं न जायते ॥३०॥
 सुत कुबेरमित्रस्य धनवत्याश्च पुण्यवान् । जात कुबेरकान्ताख्य कुबेरो^८ वा पर सुधी ॥३१॥
 द्वितीय इव तस्यासीत् प्राण सोऽनुवराग्रणी^९ । प्रियसेनाह्वयो बाल्यादारम्य कृतसगति ॥३२॥
 आजन्मन^{१०} कुमारस्य कामधेनु रनुत्तमा^{११} । मनोऽमिषित दुग्धे समस्तसुखसाधनम् ॥३३॥
 क्षेत्र निष्पादप्रत्येक गन्धशालिमनारतम् । इक्षूनमृतदेशाया^{१२} नयत्^{१३} स्थूलास्तनुवच ॥३४॥
 स्वय मनोहर वीणा दम्ब्वनीति^{१४} निरन्तरम् । तत्स्नानसमये सवरोगस्वेदमलापहम् ॥३५॥

श्रेष्ठ था ॥२२॥ कभी तो राजभवनसे आये हुए सेठ कुबेरमित्र बड़े स्नेहसे हँस-हसकर वार्ता
 लाप करते हुए उसे अपने हाथपर उठा लते थे, कभी वह स्त्रियोंके सुन्दर करकमलों-द्वारा दिये
 हुए और शक्कर मिले हुए उत्तम धानके चावलको खाता था, कभी सेठके द्वारा हेतु तथा
 दृष्टान्तपूर्वक कहे हुए प्राणिहितकारी अहिंसा धर्मका चिन्तन करता था कभी भवनमें आये हुए
 मुनिराजके चरणकमलोंकी धूलिको उनके समीप जाकर अपने पंखोसे दूर करता था, जब कभी
 कोई कुतूहलवश उससे पूछता था कि पापी तथा पुण्यात्मा लोगोकी क्या गति होती है ? तब
 वह शास्त्रोंके जाननेवाले किसी मौनी महाशयके समान इशारेसे चोंचके द्वारा नीचेका भाग
 दिखाता हुआ पापी लोगोकी गति कहता था और उसी चोंचके द्वारा ऊपरका भाग दिखाता
 हुआ पुण्यात्मा लोगोकी गति कहता था सो ठीक ही है क्योंकि क्षयोपशमके माहात्म्यसे तिर्यच
 भी विवेकी हो जाते ह ॥२३-२८॥ इस प्रकार वह कबूतर अपनी रतिपेणा नामकी कबूतरिके
 साथ नाना प्रकारकी क्रीडा करता हुआ वहाँ सुखसे समय बिताता था ॥२९॥ सुलोचना
 कह रही है कि वह रतिवर ही आप मेरे पति है और वह रतिपेणा ही मैं आपकी प्रिया हूँ ।
 देखो इस सप्सारूपो आवतम भ्रमण करता हुआ यह जीव क्या-क्या नहीं होता है ? ॥३०॥
 उस कुबेरदत्त सेठके धनवती स्त्रीसे एक कुबेरकान्त नामका पुत्र हुआ था जो कि अतिशय
 पुण्यवान् बुद्धिमान् तथा दूसरे कुबेरके समान जान पड़ता था ॥३१॥ उस कुबेरका तका एक
 प्रियसेन नामका श्रेष्ठ मित्र था जो कि बाल्य अवस्थासे ही उसके साथ रहता था और उसके
 दूसरे प्राणोके समान था ॥३२॥ एक अत्यन्त उत्तम कामधेनु कुमार कुबेरकान्तके जन्मसे
 ही लक्षर उसकी इच्छाके अनुकूल सुखके सब साधनोंको पूरा करती थी । वह कामधेनु प्रति
 दिन एक खेत तो मुगधित धान्यका उत्पन्न करती थी और एक खेत अमृतके समान मीठे
 पतल छिल्लेवाले बड़े-बड़े ईसावा उत्पन्न करती थी ॥३३ ३४॥ इसके सिवाय वही कामधेनु
 कुमारके सामने निरन्तर मनोहर वीणा बजाती थी और उमौ कामधेनुके प्रतापसे उसके स्नानके

१ द्विष्ट-न० । २ धूलिसमूहम् । ३ अपमारयन् । ४ अमिषुजागत सन् । ५ पारावत । ६ अधामिकाणां
 धामिकाणाम् । ७ रतिपणमनया निजमायया पारावत्या । ८ गमयति स्म । ९ धनद इव । १० मित्र ।
 ११ अननकान्तिनारदः । १२ न विद्यते उत्तमा यस्या मन्त्राणां इत्यनुत्तमा अनुपमत्यथ । १३ सुधासदृशान् ।
 १४ परं नीर्य क्षत्रम् । १५ मर्ष एव नति ।

सुगन्धिसलिल गाढ्गं^१ गम्भीरमधुरं^२ ध्वनन् । अमोघरो नभोभागादाम्बुजादवमुञ्चति ॥३६॥
 कल्पद्रुमद्वय वस्त्रभूषणानि प्रयच्छति । अन्नमान ददात्यन्यद् द्वयं कल्पमहीरुहं^३ ॥३७॥
 एवमन्यच्च भोगाङ्गमशेषं देवनिर्मितम् । शश्वन्निर्विगतस्तस्य पूर्णं प्राथमिकं वय ॥३८॥
 तद्वीक्ष्य पितरावेपं किमेकामभिलाषुकं^४ । किं बर्हिरिति चित्तेन^५ मद्विहानां ममाकुलौ ॥३९॥
 प्रियसेन^६ समाहूय तत्प्रज्ज्वात्तन्मनोगतम्^७ । अवादीधरता मैत्री सैव या न्वेकचित्ता ॥४०॥
 ततः समुद्रदत्ताख्यो धनवत्या^८ सहाभवत् । स्वसा^९ कुबेरमित्रस्य^{१०} तन्नामैवैनयोः^{११} सुता ॥४१॥
 प्रियदत्ताह्वया तस्याश्चेष्टिका^{१२} रतिकारिणी । कन्यकास्तां विधायादि द्वात्रिंशत्सुन्दराकृती ॥४२॥
 श्रेष्ठी कदाचिदुद्याने यक्षपूजाविधौ सुधीः । सुपरीक्ष्य निमित्तेन^{१३} प्रियदत्ता गुणान्विताम् ॥४३॥
 अवधार्यास्य पुत्रस्य^{१४} पञ्चतारावलान्विते । दिने महाविभूत्यैना^{१५} कल्याणविधिनाऽग्रहीत ॥४४॥
 तन्निमित्तपरीक्षायामवलोकितुमागच्छेत् । सुने गुणवती राज्ञो^{१६} यशस्वत्यभिधा परा ॥४५॥
 भाजनं^{१७} भक्ष्यमर्पणमदत्तवति^{१८} माकुले^{१९} (?) । स्वाभ्यां^{२०} लज्जामरानन्नवदने जातनिर्विन्दे^{२१} ॥४६॥

समय समीपवर्ती आकाशसे आकर मधुर तथा गम्भीर गर्जना करते हुए मेघ सब प्रकारके रोग, पसीना और मलको हरण करनेवाला गंगा नदीका सुगन्धित जल बरसाते थे ॥ ३५-३६ ॥ उस कुमारके लिए एक कल्पवृक्ष वस्त्र देता था, एक आभूषण देता था, एक अन्न देता था और एक पेय पदार्थ देता था ॥ ३७ ॥ इस प्रकार इनके सिवाय देवोंके दिये हुए और भी सब प्रकारके भोगोंका निरन्तर उपभोग करते हुए उस कुमारकी पहली अवस्था पूर्ण हुई थी ॥ ३८ ॥ पहली अवस्थाको पूर्ण हुआ देखकर माता-पिताको चिन्ता हुई कि यह एक कन्या चाहता है अथवा बहुत । उसी चिन्तामें वे कुछ सन्देह कर रहे थे और कुछ व्याकुल भी हो रहे थे । उन्होंने कुबेरकान्तके मित्र प्रियसेनको बुलाकर उसके मनकी बात पूछी और उसके कहनेपर उन्होंने निश्चय कर लिया कि इसके 'एक पत्नीव्रत है' — यह एक ही कन्या चाहता है, सो ठीक ही है क्योंकि दोनोंका एक चित्त हो जाना ही मित्रता कहलाती है ॥ ३९-४० ॥

तदनन्तर — उसी नगरमें समुद्रदत्त नामका एक सेठ था, जो कि कुबेरमित्रकी स्त्री धनवतीका भाई था और उसे कुबेरमित्रकी वहन कुबेरमित्रा व्याही गयी थी । इन दोनोंके प्रियदत्ता नामकी एक पुत्री हुई थी और रतिकारिणी उसकी दासी थी । समुद्रदत्त सेठके प्रियदत्ता आदि वत्तीस कन्याएँ थी । किसी एक दिन उस बुद्धिमान् सेठने एक वागमें यक्षकी पूजा करते समय सुन्दर आकारवाली उन वत्तीसो कन्याओंकी निमित्तवश परीक्षा की और उन सबमें प्रियदत्ताको ही गुणयुक्त समझा । फिर सूर्य, चन्द्र, गुरु, शुक्र और मंगल इन पाँचों ताराओंके बलसे सहित किसी शुभ दिनमें बड़े वैभवके साथ कल्याण करनेवाली विधिसे उस प्रियदत्ताको अपने पुत्रके लिए स्वीकार किया ॥ ४१-४४ ॥ राजा प्रजापालकी गुणवती यशस्वती नामकी

१ गङ्गामवन्वि । २ गम्भीर मधुर व०, अ०, प०, स०, इ०, ल० । ३ कल्पवृक्षस्य । ४ अनुभवत । ५ जननीजनकी । ६ एतामित्यपि पाठ । म्रियम् । ७ सन्देह कुर्वन्ती । ८ कुबेरकान्तस्य मित्रम् । ९ कुबेरकान्तम्याभिप्रायम् । १० एकपत्नीव्रतधारणमित्यवधारितवन्ती । ११ कुबेरमित्रस्य भार्यया धनवत्या सहोत्पन्न इत्यर्थः । १२ भगिनी । १३ कुबेरमित्राह्वया । १४ समुद्रदत्तकुबेरमित्रयोः । १५ सखी । १६ द्वाविंशभाजनेषु विविधभक्ष्यपायमधृत पूरित्वा एकस्मिन् भाजने अनर्घ्यं रत्नं निक्षिप्य यक्षाग्रे सम्स्थाप्य द्वात्रिंशत्कन्यकानामेकैकम् एकैकं भाजनं दत्तं वस्त्रा हस्ते अनर्घ्यं रत्नं ममागतं सा मम पुत्रस्य प्रियेति मुपगीक्ष्य । १७ तित्थ्यादि-पञ्चनखनवलान्विते । १८ प्रियदत्ताम् । १९ प्रजापालनृपस्य । २० भज — ल०, व०, इ०, प०, अ०, म० । २१ अददति नति । २२ मानुके अ०, प०, म०, इ०, ल०, ट० । निजं मामे श्रेष्ठिनि । २३ आत्मन्याम् । २४ उत्पन्नवैभवे ।

अमितानन्तमर्थार्थिकाम्बासौ सयम परम् । आददाते स्म यात्येव काले तस्मिन् सहीपतौ ॥४७॥
 लोकपालाय दत्त्वाऽऽत्मलक्ष्मीं सयममागते । शीलगुप्तगुरो पाद्वे शिवरुक्मवचनान्तरे ॥४८॥
 देव्य कनकमालाया परे चोपाययुस्तप । दुग्म च प्रजन्यतया प्रभुयदि पुरस्तर ॥४९॥
 लोकपालोऽपि सप्रासराभ्यभोर्विभ्रुतोदय । कुबेरमित्रमुद्ध्यैव धरित्रीं प्रत्यपालयत् ॥५०॥
 मन्त्री च फल्गुमत्याख्यो बालोऽसत्यवचः प्रिय । सवयस्को नृपस्याह प्रकृत्या चपल सल ॥५१॥
 तत्समापे नृपेणामा यद्वा तद्वा मुरागत । शङ्कमानो वचो वक्तु श्रेष्ठयपाय विचिन्त्य स ॥५२॥
 स्वीकृत्य शयनाध्यक्ष सामदानैरवया निशि । देवतावत्तिरोभूय राजन् पितृसम गुरुम् ॥५३॥
 विनयाद् विद्युत राजभेदिन तव समिधौ । विधाय सवथा मा स्या कायकाले स ह्यवताम् ॥५४॥
 इति वक्तव्यमित्याख्यत् सोऽपि सर्वं तथाकरोत् । अर्थार्थिभिरकतव्य न लोके नाम किञ्चन ॥ ५॥
 श्रुत्वा तद्वचन राजा समीराहूय मातुलम् । नागन्तव्यमनाहूतैरिथनालोच्य सोऽब्रवीत् ॥५६॥
 पश्चाद् विधविपाकिन्य प्रागनालोचितोक्तय । अष्टौ तद्वचनात् सद्य सोद्वेग स्वगृह ययौ ॥५७॥

दो कन्याएँ भी वह नैमित्तिक परीक्षा देखनेके लिए आयी थी, जब मामा कुबेरमित्रने भोजनसे भरे हुए पात्र उन्हें नहीं दिये तब अपने आप ही लज्जाके भारसे उनके मुख नीचे हो गये और उसी समय उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया ॥ ४५-४६ ॥ उन्होंने उसी समय अमितमति और अनन्तमति आर्थिकाके समीप उत्तम सयम धारण कर लिया । इस प्रकार कितना ही समय व्यतीत होनेपर राजा प्रजापालने भी अपनी सब लक्ष्मी लोकपाल नामक पुत्रके लिए देकर शिवकर नामके वनमें शीलगुप्त नामक मुनिराजके समीप संयम धारण कर लिया । इसी प्रकार कनकमाला आदि रानियोने भी कठिन तपश्चरण धारण किया था सो ठीक ही है क्योंकि यदि राजा आगे चलता है तो अल्प शक्तिके धारक लोग भी उसी कठिन रास्तेसे चलने लगते ह ॥ ४७-४९ ॥ इधर जिसे राज्यलक्ष्मी प्राप्त हुई है और जिसका वैभव सब जगह प्रसिद्ध हो रहा है ऐसा राजा लोकपाल भी कुबेरमित्रकी सम्मतिके अनुसार ही पृथिवीका पालन करने लगा ॥ ५० ॥ उस राजाका फल्गुमति नामका एक मन्त्री था, जो अज्ञानी था, असत्य बोलनेवाला था, राजाकी समान उमरका था, मूख था और स्वभावसे चंचल तथा दुर्जन था ॥ ५१ ॥ वह मन्त्री कुबेरदत्त सेठके सामने राजाके साथ मुँहपर आये हुए यद्वा-तद्वा वचन कहनेम कुछ डरता था इसलिए वह सेठको राजाके पाससे हटाना चाहता था । उसने राजाके शयनगृहके मुख्य पहरेदारको समझा-बुझाकर और कुछ धन देकर अपने वश कर लिया, उसे समझाया कि तू रातके समय देवताके समान तिरोहित होकर राजासे कहना कि हे राजन्, राजसेठ कुबेरमित्र पिताके समान बड़े हैं, सदा अपने पास रखनेम उनकी विनय नहीं हो पाती इसलिए उन्हें हमेशा अपने पास नहीं रखिए, कायके समय ही उन्हें बुलाया जाय इस प्रकार फल्गुमतिने शयनगृहके अध्यक्षसे कहा और उसने भी सब काम उसीके कहे अनुसार कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि धन चाहनेवाले लोगोंके द्वारा नहीं करने योग्य काय इस संसारमें कुछ भी नहीं है ॥ ५२-५५ ॥ शयनगृहके अधिकारीकी बात सुनकर राजाको भी कुछ भय हुआ और उसने बिना विचारे ही मामा (कुबेरमित्र) को बुलाकर कह दिया कि आप बिना बुलाये न आवें ॥ ५६ ॥ जा बात पहल बिना विचार किये ही कही जाती है उसका फल पीछे विपके

१ मनीष । २ पुरो ल० । ३ प्राप्तवन्त । ४ समानवयस्क । ५ नृपचाय इत्यपि पाठ । द्वितीयो नृप । मन्त्रीवच । ६ असत्य । ७ कुबेरमित्रमनिधौ । ८ यत्किञ्चित् । ९ स्वयं कृत्वा । १० प्रियवचनसुवचन रणाणि । ११ चरम् । १२ मा स्म तिष्ठ । १३ आहूयताम् । १४ शयनाध्यक्ष । १५ समय । १६ अनाहूयमाने भर्ता । १७ अविधाय । १८ विपद् विपाकवत्य । १९ उद्वेगमहितम् ।

राजा कदाचिदराजीर् पद्मा ललितवदनः । विनारां वन नव गङ्गासालोत्तर निष्कयान् ॥ १८॥
 तदनुष्कागिगमनस्य रात्रिमुत्तमम् । पद्मादेवात्मानोत्पन्नरागमनिपमान् ॥ १९॥
 मणिमन्त्रा प्रविशन्तन्नेन केन परितोषयेत् । आभ्या प्रवर्तमानानां कुतः क्लेशात् विना कनम् ॥ २०॥
 चिरं निरोक्ष्य निविश्या मयि ते दुर्भागवन् । तुल्यनिवेसने रम्यं न निवेस्य फलमसौ ॥ २१॥
 कदाचिद् भूपति भेदिसुवर्ग रत्नविभक्तः । वस्तुमन्त्रा विभावयामासन्मन्त्रागमनिपमान् ॥ २२॥
 क्लेशे कुङ्कुमादेन ललाटे स्फुटमन्त्रितः । कान्ता किं किं न कुर्वन्ति स्वभागपत्नि नरे ॥ २३॥
 पद्मवन्ध्या पर मन्त्रा तन्मातुः मयि । प्राशस्त्यगमनस्य रात्रि मन्त्रादीनिपदुग्धन् ॥ २४॥
 ललाटे यदि केनापि राजा पादेन ताडितः । क्लेशे लभ्य किं वाच्यं ततो मन्त्रादीनिपदि ॥ २५॥
 पद्मा ललाटे नान्येन स्तुतं न यदि ताडितः । पादेन केनचिद् रम्यं न पागान्मन्त्रिति स्फुटम् ॥ २६॥
 तदाक्षयविधौ स्मिन्नेनाह मातुलम् । लुप्तोऽप्राप्तीन् मयि चैतत् पस्तुत पस्तुतां विद् ॥ २७॥
 तस्य पूजा विधातव्या नयोलकारस्य । इति लब्धवान्पुष्पा मणिवातां न्यवेदयन् ॥ २८॥

समान होता है । राजाके वनन सुनकर मेठ भी डुल सहित गीत ही अपने घर चला गया ॥५७॥ किसी एक दिन राजा ललितवद नानक हाथीपर बैठकर विहार करनेके लिए वनमें गया उस वनमें एक बावड़ी थी उसके तटपर एक मुखा वृक्ष था उसकी एक शाखा बावड़ीके निकटमें निकली थी उस शाखाके अन्तभागपर एक काँवेने कहोसे देशीयमान बहुमूल्य पद्मराग मणि लाकर रख दी । बावड़ीमें उन मणिको कान्ति पड़ रही थी, राजा तथा उसके सब साथियों-ने उस कान्तिको मणि समझा और यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ — उस मणिको लेनेके लिए सब बावड़ीके भीतर घुसे परन्तु उनमेंसे वह मणि किसीको भी नहीं मिली सो ठीक ही है क्योंकि भ्रान्तिसे प्रवृत्ति करनेवाले पुरुषोको क्लेशके सिवाय और क्या फल मिल सकता है ॥५८-६०॥ उन सब लोगोंने बावड़ीमें वह मणि बहुत देर तक देखी परन्तु जब नहीं मिली तब उदास हो अपने नगरको लौट आये सो ठीक ही है क्योंकि जिस प्रयत्नमें बुद्धि अग्रेसर नहीं होती वह प्रयत्न कभी सफल नहीं होता ॥६१॥ किसी समय प्रेमसे भरी हुई वसुमती नानकी सेठकी पुत्रीने राजाके समय अपने सौभाग्यको सूचित करनेवाले तथा कुङ्कुमसे गीले अपने पैरसे राजाके ललाट-में स्पष्ट चिह्न बना दिया सो ठीक ही है क्योंकि पुरुषके अपने अधीन होनेपर स्त्रियाँ क्या-क्या नहीं करती हैं ? ॥६२-६३॥ राजाने उस पैरके चिह्नको पट्टबन्धसे भी अधिक माना और सज्ज होते ही सभामें बैठकर मन्त्री आदिसे इस प्रकार पूछा कि यदि कोई पैरसे राजाके ललाट-पर ताड़न करे तो उसका क्या करना चाहिए ? यह सुनकर फल्गुमति मन्त्रीने कहा कि राजा-का जो ललाट पट्टके सिवाय किसी अन्य वस्तुके द्वारा छुआ भी नहीं जा सकता उसे यदि किसीने पैरसे ताड़न किया है तो उसे पाण निकलने तक मारना चाहिए ॥६४-६६॥ यह सुनकर राजाने उस मन्त्रीका तिरस्कार किया तथा मन्द-मन्द हँसीके साथ मामा कुबेरमित्रको बुलाकर उनसे सब हाल पूछा । प्रकृत बातको जाननेवाला कुबेरमित्र कहने लगा कि जिसने आपके शिरपर पैरसे प्रहार किया है उसकी सब प्रकारके आशुषणरूपी सम्पदासे पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार उसके वचनोसे सन्तुष्ट होकर राजाने वनविहारके समय बावड़ीमें दिखनेवाले मणिकी

१. अगमत् । प्रायाजीत् ८० । २ परार्णमिति पद्मरागस्य विशेषणम् । ३ ललितवदालङ्कनेषु । ४ लब्ध । ५ मणि । ६ पुरुषस्य । तस्य ८० । ७ अविच्छिन्नवृत्ति । ८ न फलपदो भवति । ९ निजमार्गता । १० पादेन । ११ ताडित इत्यर्थः । १२ भवद्विवेकतन्त्रम् । १३ परित्यज्य । १४ कुबेरमित्र ।

मणिन जलमध्यस्थेन सन्त्यस्तकमन्त्रित । प्रभाष्याप्यामिति प्राह तद्विचित्य^१ वणिश्वर ॥६९॥
 तदा कुबेरमित्रस्य प्रज्ञामशान्मानन । दौष्ट्यं च मन्त्रिणो ज्ञात्वा पदवात्तापामहीयति ॥७०॥
 प य धृतैरह मूढो वन्धितोऽस्माति सवदा । श्रेष्ठिन प्राहसमान^२ प्रत्यामन न्यधात् सुधी ॥७१॥
 सन्त्रावायमहामार^३ तत प्रवृत्ति भूयति । तस्मिन्नारोप्य निज्यम सधर्मं काममन्वभूत् ॥७२॥
 कदाचित् क्रान्तया दृष्टपलितो निजमूदनि । श्रेष्ठो तां सत्यमद्य स्व धमपत्नीत्यभिन्दुवन् ॥७३॥
 इष्टा विमोक्ष्य राजान वरधमगुरोस्तपः^४ । सार्धं समुद्रदत्ताद्यैरादाय सुरभूषर^५ ॥७४॥
 साधुमौ ब्रह्मलोकात्तःपूतां लोकान्तिकीं सुरैः । किं न साध्य यथाकालपरिस्थित्या^६ मनायिभि ॥७५॥
 अन्धेषु प्रियदत्ताऽसा^७ न्त्वा दान मुनीशिन । भक्त्या विपुलमत्थास्यचारणाय यथोचितम् ॥७६॥
 सप्राप्य नवधा पुण्य तपसः सनिधिमम । किमस्तात्थव्रीद् व्यक्तविनया मुनिपुङ्गवम् ॥७७॥
 पुत्रलामार्थं तच्चित्तं विदित्वाऽवधिलोचन । वामतरकर धीमान् स्पष्टमङ्गुलिपद्मकम् ॥७८॥
 कनिष्ठमङ्गुलिं वामहस्तऽसौ समदशयत् । पुत्रान्कालान्तर पन्च साऽऽचैकामात्मजामपि^८ ॥७९॥
 त^९ कदाचिजगत्पालचक्रेशस्य सुत समम् । अमितानन्तमत्थास्य^{१०} गुणज्ञे गुणभूषणे ॥८०॥

बात निवेदन की ॥६७-६८॥ वैश्योम श्रद्ध कुबेरमित्रने विचारकर कहा कि वह मणि पानीके भीतर नहीं थो किनारेपर खड़े हुए वृक्षपर थो, बावड़ीम केवल उसकी कात्ति पड़ रही थी ॥६६॥ यह सुनकर उस समय राजा लोकपाल कुबेरमित्रकी बुद्धिमत्ता अपनी मूर्खता और मन्त्रीकी दुष्टता जानकर पदवात्ताप करता हुआ इस प्रकार कहने लगा - 'देखो इन धूर्तोंने मुझ मूखको खूब ही ठगा इस प्रकार कहकर वह बुद्धिमान् राजा सेठका आदर-सत्कार कर उसे सदा अपने पास रखने लगा ॥७०-७१॥ उस दिनसे राजाने तत्र अर्थात् अपने राष्ट्रकी रक्षा करना और अवाय अर्थात् परराष्ट्रोस अपने सम्बन्धका विचार करना इन दोनोंका बड़ा भारी भार सेठको सौंप दिया और आप निर्द्वन्द्व होकर धर्म तथा काम पुरुषार्थका अनुभव करने लगा ॥७२॥ किसी समय सेठकी स्त्रीने सेठके शिरमे पका बाल देखकर सेठसे कहा । सेठने यह कहते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा की कि तू आज सचमुच धर्मपत्नी हुई है । उस सेठने बड़ी प्रसन्नताके साथ राजाको छोड़कर समुद्रदत्त आदि अन्य सेठोंके साथ साथ देवगिरि नामक पर्वतपर वरधमगुरुके समीप तप धारण किया और दोनों ही तपकर ब्रह्मलोकके अन्तमे लौकातिक देव हुए सा ठीव ही है क्योंकि समयके अनुकूल होनेवाली परिस्थितिसे बुद्धिमानोंको क्या क्या सिद्ध नहीं होता ? ॥७३-७५॥

विसी दूसरे दिन प्रियदत्ता (समुद्रदत्तकी पुत्री और कुबेरकान्तकी स्त्री) ने विपुलमति नामके चारण ऋद्धिधारी महामुनिको नवधा भक्तिपूवक दान देकर पुण्य सम्पादन किया और फिर वित्तम प्रकट कर उन्हीं मुनिराजसे पूछा कि मेरे तपका समय समीप है या नहीं । ॥७६-७७॥ अवशिष्टज्ञान ही है नेत्र जिनके ऐसे बुद्धिमान् मुनिराजने यह जानकर कि इसका चित्त सत्तानका चाह रहा है अपने दाहिने हाथकी पाँच अँगुली और बाये हाथकी छाटी अँगुली दिखायी आर उससे सूचित किया कि पाँच पुत्र और एक पुत्री होगी । तथा कालान्तरमे उस प्रियदत्ताने भी पाँच पुत्र और एक पुत्री दिखलायी अर्थात् उत्पन्न की ॥७८-७९॥ विसी समय गुणरूप आभूषणाय धारण करनेवालो, जगत्पाल चक्रवर्तीकी पुत्री, अमितमति और अनन्तमति नाम

१ विचाम । २ -समान अ ५० स ६० ल० । ३ स्वराष्ट्रपरराष्ट्रमहाधुरम् । ४ आत्मानं राजा माच विद्वन्मथ । ५ वरधमगुरा यमपे । ६ मुरतामि तस्मिन्विद् गिरी । ७ कुबेरदत्त-समुद्रन्ती । ८ -परि स्थित्या ट० । कालानुष्मण ज्ञानन । ९ कुबेरकान्तप्रिया । १० एका पुत्राम् । ११ प्रसिद्धे । १२ वणिष्ठी म ५० स० ६ । शुद्धि ल० ।

प्रजापालतनूजाभ्यां यगस्वत्या तपोभृता । गुणवत्या च संप्राप्ते पुर तत्परमद्विकम् ॥८१॥

राजा शान्तः पुर श्रेष्ठी चानयोनिपटे चिम् । श्रुत्वा सद्धर्मसद्भाव दानाद्युद्योगमाययौ ॥८२॥

कदाचिच्छेष्टिनां गेह जलाचारणयोर्युग्म् । प्राप्रिगद् भस्तिनो रथापयता तौ दम्पती मुदा ॥८३॥

तद्दृष्टिमात्रविजातप्राग्भ्रत तत्पटागुजम् । स्फोतमिथुन पक्ष परिमृडयामिनस्य तन ॥८४॥

गलितान्योन्यसंप्राप्ति व्रमवालांश्च तन्मुनी । जातस्यारनिवेगो निर्गत्यापगतौ गृहान ॥८५॥

प्रियदत्तेज्जितजैतदयगान्यग नु नाम । रतिपेणासपृच्छत्तं नाम प्राग्जन्मनीनि किम् ॥८६॥

सा तुण्डेनालित्यन्नाम रतिवेगेति वी.य नन^{१०} । ममैषा पर्वमार्येति कपोतः प्रातिर्मायिवान् ॥८७॥

तथा रतिवर पृष्टः स्वनाम^{११} प्रियन्तया । सुकान्तोऽस्यहमित्येषोऽप्यक्षराण्यलित्यद् भुवि ॥८८॥

तन्निरीक्ष्य ममैवात्र पतिरित्यमिलापुका । रतिपेणाऽयगात्तेन सगम^{१२} विभ्यनुग्रहात् ॥८९॥

तत्त्वभावतिनामेतन् श्रुत्वा प्रातिरभ्यदलम् । पुन शुश्रूषवच्चासन कथाशेष^{१३} सकौतुका ॥९०॥

अन्यच्चार्णितं दृष्टमावाभ्या यद्वि चेरगा । जायते तच्च वक्तव्यमित्युक्तवति कौशे^{१४} ॥९१॥

निजवाग्मृताम्भाभिः मिदन्ती ता यन्मा शुनाम् । सुलोचनाऽश्वीन सम्यग्जायते श्रूयतामिति ॥९२॥

को गणिनी (आर्यिकाओकी स्वामिनी), तप धारण करनेवाली, प्रजापालकी पुत्री यगस्वती और गुणवतीके साथ-साथ उत्कृष्ट विभूतिमे सुशोभित उम पुण्डरीकिणी नगरीमे पधारी ॥८०-८१॥ सब अन्त पुरके गाथ-माथ राजा लोकपाल और सेठ कुबेरकान्त भी उन आर्यिकाओके समीप गये और चिरकाल तक समीचीनधर्मका अस्तित्व सुनकर दान देना आदि उद्योग-को प्राप्त हुए ॥८२॥ किमी एक दिन सेठ कुबेरकान्तके घर दो जघाचारण मुनि पधारे । दोनो ही दम्पतियोने बड़ी भक्ति और आनन्दके साथ उनका पडगाहन किया ॥८३॥ उन मुनियोके दर्शन मात्रसे ही जिसने अपने पूर्वभवके सब समाचार जान लिये है ऐसे कबूतर कबूतरी (रति-वर-रतिपेणा) के जोडेने अपने पखोसे मुनिराजके चरणकमलोका स्पर्श कर उन्हें नमस्कार किया और परस्परकी प्रीति छोड दो । यह देखकर उन मुनियोको भी ससारसे वैराग्य हो गया और दोनो ही निराहार सेठके घरसे निकलकर बाहर चले गये ॥८४-८५॥ इशारोको समझनेवाली प्रियदत्ताने यह सब जानकर किसी समय रतिपेणा कबूतरीसे पूछा कि पूर्वजन्म-मे तुम्हारा क्या नाम था ? ॥८६॥ उसने भी चोचसे 'रतिवेगा' यह नाम लिख दिया । उसे देखकर यह पूर्वजन्मकी मेरी स्त्री है यह जानकर कबूतर बहुत प्रसन्न हुआ ॥८७॥ इसी प्रकार प्रियदत्ताने रतिवर कबूतरसे भी उसके पूर्वजन्मका नाम पूछा तब उसने भी मैं पूर्व जन्ममे सुकान्त नामका था ऐसे अक्षर जमीनपर लिख दिये ॥८८॥ उन्हें देखकर और यह मेरा ही पति है यह जानकर उसीके साथ रहनेकी अभिलाषा करती हुई रतिपेणा भी दैवके अनुग्रहसे उसीके साथ समागमको प्राप्त हुई-दोनों साथ-साथ रहने लगे ॥८९॥ यह सब सुनकर सभामे बैठे हुए सभी लोगोको बहुत भारी प्रसन्नता हुई और कथाका शेष भाग सुननेकी इच्छा करते हुए सभी लोग बड़ी उत्कण्ठासे बैठे रहे ॥९०॥ 'इसके सिवाय हम दोनोने और भी जो कुछ देखा या सुना है उसे यदि जानती हो तो कहो' इस प्रकार जयकुमारके कहनेपर अपने वचनामृतरूपी जलसे उस शुभ सभाको सींचती हुई सुलोचना कहने लगी-'हाँ, अच्छी तरह

१ पुण्डरीकिणीपुरम् । २ लोकपाल । ३ कुबेरकान्त । ४ अमितानन्तमत्यो । ५ जडघाचारणद्वयावलोकन-मात्र । ६ नत्वा । ७ विगलितपरस्परात्यन्तस्नेहवदित्यर्थ । ८ कपोतमिथुनम् । ९ गलितमोहमिति ज्ञात्वा । गम्यान्य-ल०, अ०, प०, इ० । १० लिखितनामाक्षरम् । ११ निजपूर्वजन्मनाम । १२ सुकान्ताख्योऽह-ल० । १३ विधेयानुकूल्यात् । १४ जयकुमारसभावतिनाम् । सपत्यादीनाम् । १५ जातनिर्वेदात् भिक्षामगृहीत्वा निर्गत्य गतचारणादिशेषकथाम् । १६ जयकुमारे ।

तदा मुनेष्टुहाद् भिक्षा त्यक्त्वा गमनकारणम् । अज्ञात्वा भूपत^१ प्रश्नाद्वा^२ हामितमति^३ श्रुतम् ॥९३॥
 विषयऽस्मिन्^४ रागादमाभूत्प्रत्यासन्न^५ वन महत् । अस्ति धान्यकमालाख्यं तदभ्यर्णं^६ पुर परम् ॥९४॥
 शोभानगरमस्येश^७ प्रजापालमहीपति । देवश्रीस्तस्य देवासीत् सुखदा श्रीरिवापरा ॥९५॥
 शक्तिपेणोऽस्य^८ स्वाम-तस्तस्याभूत् प्रीतिदायिनी । अम्बोश्रीस्तयो^९ सत्यदेव सूनुरिम^{१०} समम् ॥९६॥
 सर्वेऽप्यासन्नमभ्यत्वाद् अस्मत्पा^{११} दत्तमाश्रयात् । श्रुत्वा धर्मं नृपेणामा समापन्नममासयो ॥९७॥
 त्याग पर्वोपवास च शक्तिपेणोऽपि भक्तिमान् । मुनिवेलारयवे^{१२} भुक्तिम^{१३} ग्रहीत् स गृहिप्रतम् ॥९८॥
^{१४} तत्प नो^{१५} शुक्लपक्षादिदिनेऽष्टम्यामथापरे । पक्षे^{१६} पञ्चसमास्यागमाहारस्य समग्रहीत् ॥९९॥
 अनुप्रबद्धकल्याणनामधेयमुपोषितम्^{१७} । सत्यदमश्च साधूनां^{१८} स्तवनं प्रत्यपद्यत^{१९} ॥१००॥
 इत्यभूवधमी भद्राचिहीनयतभूषणा । स मृणालवतीं नेतु कदाचिददधीभियम् ॥१०१॥
 पित्रो^{२०} पुत्रीं^{२१} प्रवृत्त सन् शक्तिपेण ससैन्यक । वने धान्यकमालाख्ये प्राप्य सर्पसरोवरम् ॥१०२॥
 निविष्टवानिदं चायत् प्रकृत तत्र कथ्यते । पतिमृणालवत्याख्यनगर्या धरणीपतिः^{२३} ॥१०३॥

जानती हू सुनिए ॥९१ ९२॥ उस समय वे मुनि आहार छोडकर सेठके घरसे चले गये थे । जब राजाको उनके इस तरह चले जानेका कारण मालूम नहीं हुआ तब इसने अमितमति गणिनी (आर्यिका) से पूछा । अमितगतिने भी जैसा सुना था वैसा वह कहने लगी ॥९३॥

इसी पुष्कलावती देशमे विजयाध पवतके निकट एक 'धान्यकमाल' नामका बड़ा भारी वन है और उस वनके पास ही शोभानगर नामका एक बड़ा नगर है । उस नगरका स्वामी राजा प्रजापाल था और उसकी स्त्रीका नाम था देवश्री । वह देवश्री दूसरी लक्ष्मीके समान सुख देनेवाली थी ॥९४-९५॥ राजा प्रजापालके एक शक्तिपेण नामका सामन्त था, उसकी प्रीति उत्पन्न करनेवाली अटवीश्री नामकी स्त्री थी । उन दोनोंके सत्यदेव नामका पुत्र था । किसी समय निकटभव्य होनेके कारण इन सभीने मेरे चरणोंके आश्रयसे धर्मका उपदेश सुना । राजा भी इनके साथ था । उपदेश सुनकर सभीने मद्य-मासका त्याग किया और पवके दिन उपवास करनेका नियम लिया । भक्ति करनेवाले शक्तिपेणने भी गृहस्थके व्रत धारण किये और साथमें यह नियम लिया कि मैं मुनियोंके भोजन करनेका समय टालकर भोजन करूँगा ॥९६-९८॥ शक्तिपेणकी स्त्री अटवीश्रीने पाँच वषतक शुक्ल पक्षका प्रथम दिन और वृष्णपक्षकी अष्टमीको आहार त्याग करनेका नियम किया अनुप्रबद्ध कल्याण नामका उपवास व्रत ग्रहण किया तथा सत्यदेवने भी साधुओंके स्तवन करनेका नियम लिया ॥९९-१००॥ इस प्रकार ये सब सभ्यदर्शनके बिना ही व्रतरूप आभूषणको धारण करनेवाले हो गये । किसी एक दिन सेनापति शक्तिपेण अपनी सेनाके साथ अटवीश्रीको लेनेके लिए उसके माता पिताकी नगरी मृणालवतीको गया था । वहाँस लौटते समय वह धान्यकमाल नामके वनम सर्पसरोवरके समीप ठहरा । उसी समय एक दूसरी घटना हुई जो इस प्रकार कही जाती है ।

१ लोचपालस्य । २ भक्ति । ३ अमितमत्यायिका । ४ स्वयं चारणमुनिनिबटे आकणितम् । ५ पुष्कलावरयाम् । ६ विजयाद्विगिरिसमीपम् । ७ सम पे । ८ नगरस्य । ९ नायक । १० सत्यदेवनामा स्वीकृतपुत्र संजात । ११ इम सर्वे देवश्रीदद्यान्त्य सम धर्मे धृत्वति सयन्व । १२ अमितगतिनामास्मत्पादसमाश्रयात् । १३ मुनि चर्यावाज अतिशान्ते सति । १४ आहार स्वीकरोमीति व्रतम् । १५ शक्तिपेणभार्या । १६ शुक्लपक्षप्रति पहिम् । अतरे पञ्च अष्टम्या निन ष । १७ पञ्चवर्षाणि । १८ उपवासव्रतं धमग्रहीत् । १९ परमछिनां स्तोषम् । २० मुनीनवान् । २१ जननाजनययो । २२ मृणालवतीनामनगरीम् । २३ भूपति ।

सुकेतुस्तत्र^१ वैश्येन जिनदत्ता^२ रतिवर्मणा । भवदेवोऽभवत्तस्य त्रिपुण्यं कृतक्रियाम् । ।
तत्रव^३ दुहिता^४ जाता श्रीरत्नग्यानिबल्लभा । विमलादिश्रियाग्याता रतिवेगाग्याता^५ ।
सुकान्तोऽशोक^६ देवदत्तजिनदत्तामुनोऽजनि । भवदेवस्य दुर्मुखा^७ दुर्मुगाग्या^८ ।
स एष द्रव्यमाद्यस्य रतिवेगा जिपक्षु^९ । चाणिज्यायं गतं स्तस्मात्तायातं^{१०} ।
मातापितृभ्यां प्रादाय^{११} सुसन्नाय सुनेजमे । देवान्तरान् समागत्य तदा^{१२} ।
दुर्मुखे कुपिते भान्वा तदानीं तदा^{१३} । अजिन्वा^{१४} शक्तिपेणस्य दत्ता^{१५} ।
तददुर्मुखोऽपि^{१६} निर्यन्थादनुगत्य^{१७} च प्रवर्गम् । शक्तिपेणभयाद^{१८} वरदे^{१९} ।
तत्रैकस्मै^{२०} वियन्त्राणदन्त्राय समापु^{२१} । शक्तिपेणो ददावन्न पाथे^{२२} ।
तत्रवाग्यं माथेशो^{२३} निविष्टो बहुमि मह । विभुमेकदत्ताय^{२४} ।
मन्त्रिणस्तस्य^{२५} भूतायः शकुनि गृहस्पति । धन्वन्तरिश्च चत्वार^{२६} ।
एभिः परिवृत श्रेष्ठो हीना^{२७} कचिदागतम् । समीक्ष्येनं कुनो^{२८} ।

॥

३३

३४॥

मृणालवती नगरीका राजा धरणीपति था । उसी नगरीमें^१ ।
जो कि रतिवर्मिका पुत्र था । सुकेतुकी स्त्रीका नाम कनका^२ ।
नामका पुण्यहीन पुत्र था ॥१०१-१०४॥ उसी नगरमें^३ ।
नाम था विमलश्री और उनके दोनोंके अत्यन्त प्यारी रतिवे-^४ ।
उसी नगरके अशोकदेव सेठ और जिनदत्ता नामकी पुत्री^५ ।
एक पुत्र था । जिसका वर्णन ऊपर कर आये हैं ।^६ ।
दुराचारीपनके कारण ही उसका दूसरा नाम दुर्मुख^७ ।
उपार्जन कर रतिवेगाके साथ विवाह करना चाहता^८ ।
गया था, परन्तु जब वह विवाहके अवसर तक नहीं^९ ।
तेजस्वी सुकान्तके लिए दे दी । जब दुर्मुख (भवदेव)^{१०} ।
विवाहकी बात सुनी तब वह बहुत ही कुपित^{११} ।
कर शक्तिपेणकी शरणमें पहुँचे ॥१०७-१०८॥^{१२} ।
परन्तु शक्तिपेणके डरसे अपना वर अपने^{१३} ।
शक्तिपेणने वहाँ पधारे हुए दो चारण^{१४} ।
आहार दान दिया था ॥१११॥ उसी^{१५} ।
नामका सेठ बहुत लोगोंके साथ आकर^{१६} ।
उस सेठके चार मन्त्री थे-१ भूता^{१७} ।
मन्त्री अपने-अपने शास्त्रोमें पण्डित^{१८} ।

स्तमे

नकी

मुनकर

मूर्च्छित

भानगरके

मेरे उस

वमुमती-

प्रजापाल

आयिकाको

वेतपेण आज

नान्त ही उस

रा पुत्र हुआ

नेहके कारण

वनकर सेवा

कर उसकी

वे भी स्नेह

) को जला

र उनकी

१ मृणालवत्याम् । २ वणिगमुन्यस्य । ३

प्रियतमाया जिनदत्ताया मुत । ४

वान् । मातुलो भणितवान् त्व

च्छामि तावद् रतिवेगा कस्यापि

मिच्छु । १० कृनद्वादशवर्षादि

वेगाद्वयम् । १५ गत्वा । १६

२० सर्पसरोवरस्थितशक्तिपेण

६०, ७०, ८०, ९०, १०० । २१

२८ इति पृष्ठवान् न

५ प्रजा-

नगर-

नगर-

॥

शकुनिः शकुनाद् दुष्टाद् ग्रहात्पापाद् बृहस्पतिः । धन्वन्तरिस्त्रिदोषेभ्यो जन्मनीति समादिशत् ॥११५॥
 भूताथस्त्वस्तु तत्सर्वं कम हिंसाद्युपार्जितम् । प्रधानकारण तेन^१ हीनाङ्ग^२ इति सूक्तवान्^३ ॥११६॥
 शक्तिपेण^४ महीपालप्रतिपन्नतुजः पिता^५ । सत्यदेवस्य दृष्ट्वाऽस्मिन्^६ मन्त्रिण्यन्य^७ दृच्छया ॥११७॥
 तदा कृत्वा महद्दुःखं स^८ सभ्यैराकण्यतामिदम् । द्युत पयोऽतिपाकेन भाजनात्तण्डुलानपि ॥११८॥
 मक्ष्यमाणान् कपोताद्यैः पश्यैस्तूष्णीमथ स्थितः । क्रोधान्मातुः कनीयस्या^९ भस्मनादागतोऽसह^{१०} ॥
 अधस्ताद् वक्त्रधिवरं घ्राणस्येति तदप्ययम् । क्षमते नेति सर्वेषां^{११} तदकमण्यतां^{१२} ब्रुवन् ॥१२०॥
 गन्तुं सहात्मना^{१३} तस्यानभिलापाद्^{१४} विषण्णवान् । परस्मिन्नपि भूयाम^{१५} भवे ते स्नेहगोचर^{१६} ॥
 इति कृत्वा निदानं स^{१७} द्रव्यसयममाश्रितः । प्रपद लोकपालत्वं^{१८} तद्गतस्नेहमोहितः ॥१२२॥
 कणाचिच्छुक्लपक्षस्य दिनादौ भागया सह । कृतोपवासया शक्तिपेणो मन्त्रिपुरस्सरम्^{१९} ॥१२३॥
 सुनिम्नो दत्तदानेन पञ्चाश्वयमवाप्तवान् । दृष्ट्वा^{२०} तच्छ्रेष्ठिधारिण्या^{२१} वाक्त्रयोरभ्यनन्मनि ॥१२४॥
^{२२}पतावप्य^{२३}भूयास्तां^{२४}निदानं कुरुतामिति । मन्त्रिणस्तस्य^{२५} चत्वारोऽप्यस्तसवपरिग्रहाः ॥१२५॥

वठा था कि इतनेमें वहाँ एक हीन अगवाला पुरुष आया । उसे देखकर सेठने सब मन्त्रियोंसे कहा कि यह ऐसा किस कारणसे हुआ है ? ॥११४॥ इसके उत्तरमें शकुनि मन्त्रीने कहा कि जन्मके समय वुरे शकुन होनेसे यह ऐसा हुआ है ? बृहस्पतिने कहा कि जन्मके समय दुष्ट ग्रहोंके पडनेसे यह हीनाग हुआ है और धन्वन्तरिने कहा कि जन्मके समय वात पित्त कफ इन तीन दोषोंके कारण यह विकलांग हो गया है । यह सुनकर भूताथ नामक मन्त्रीने कहा कि आप यह सब रहने दीजिए इस जीवने पूर्वभवमें हिंसा आदिके द्वारा जो कम उपाजन किये थे वे ही इसके हीनाग होनेमें प्रधान कारण हैं ॥११५-११६॥ इतनेमें ही शक्तिपेण सेनापतिने जिसे अपना पुत्र स्वीकार किया है ऐसे उस सत्यदेवका पिता अपनी इच्छानुसार उसे खोजता हुआ आ पहुँचा । उस हीनाग पुत्रको देखकर उसे बहुत ही दुःख हुआ और वह कहने लगा कि हे सभासदो, मुनो, एक दिन धरम चावल पक रहे थे सो पानीके उफानके कारण कुछ चावल बरतनसे नीचे गिर गये और उन नीचे गिरे हुए चावलोको कबूतर आदि पक्षी चुगने लगे परन्तु यह सब देखता हुआ चुपचाप खड़ा रहा—इसने उन्हें भगाया नहीं । तब इसकी माँकी छोटी बहनने क्रोधसे इसे डाँटा, उस डाँटको न सह सकनेके कारण ही यह यहाँ चला आया है । यह इतना असहनीय है कि तेरी नाकके नीचे मुहका छेद है इस बातको भी नहीं सह सकता है । इस तरह सब सभासदोंसे उसके पिताने उसको अकमण्यताका वणन किया । चूँकि सत्यदेव अपनेपिताके साथ वापस नहीं जाना चाहता था इसलिए उसने दुःखी होकर निदान किया कि 'अगले भवमें भी मैं तेरे स्नेहका पात्र होऊँ' इस प्रकार निदान कर वह द्रव्यलिङ्गी मुनि हो गया और सत्यदेव के प्रेमसे मोहित होकर मरा जिससे लोकपाल हुआ ॥११७-१२०॥ किसी एक समय शुक्लपक्षकी प्रतिपदाने त्रिन शक्तिपेणने उपवास करनेवाली अपनी स्त्री अटवीथ्रीके साथ-साथ भक्ति-पूर्वक मुनियोंको आहारदान देकर पचादवर्य प्राप्त किये, उसे देखकर सेठ मेरुकदत्त और उनकी स्त्री धारिणीने निन्तान किया कि 'ये दोनों अगल जन्म हमारी ही सन्तान हों । सेठ मेरुक

१ कमकरणनः । २ विवलाङ्गो जान इति । ३ सुपुत्रं प्रोक्तवान् । ४ शक्तिपणनाममामन्तेनायं मम पुत्र इति स्वीकृतमुन्यम् । ५ सत्यवनामजनकः । ६ सपत्नीवरः । ७ गवदप्यग्नित्ययम् । ८ ममाजनः । ९ सत्यदेवजनया । १० मगिया । ११ अमहमानः । १२ समाजनानाम् । १३ तान् सत्यदेवस्य नमण्यभिमनाम् । १४ सत्यकेन सनः । १५ सत्यदेवस्य । १६ अनभिमतान् । १७ अवयम् । १८ स्नेहगोचरम् । १९ मन्त्रिपुरात्तद्वार्ताधारिणी । २० लोकपालनायकदेवनाम् । २१ पुरस्सरम् । २२ शान्तममानाचयम् । २३ मन्त्रिणरातद्वार्ताधारिणी । २४ शक्तिपणनामिनि । २५ पुत्री । २६ अहुरनाम् । २७ मदकृतस्य ।

तपो विधाय मालान्ने समापन लोऽपालनाम् । वधूवरं च दानानुमोदपुण्यमवाप्तवन् ॥१२६॥

तदाकर्ण्य महीशस्य देवी वसुमती तदा । स्रजन्मान्तर्गम्योद्यमन्तान्तरशोचिता ॥१२७॥

अहं पूर्वोक्तं देवश्रीस्त्वग्रस्यादात्निमा श्रियम् । प्राप्ता नदानो राजा वद वयाद्य प्रवर्तते ॥१२८॥

इति तस्या परिग्रहेन स प्रजापालनाति । लोऽपालोऽयमिन्धुस्ते प्रियदत्ता स्वपूर्वजम् ॥१२९॥

जन्मावबुध्य चन्द्रिन्वा नाऽऽशीश्रीग्य चहम् । शक्तिपेणो मम प्रेयानम्य वयाद्य प्रवर्तते ॥१३०॥

इति पृष्टाऽवदन् शक्तिपेणस्तेऽयं मनागम । कुवेरदयित सत्यदेवोऽभूत्तनुजस्तव ॥१३१॥

देवभूय गता श्रुतिमविद्यास्त्वन्तेऽमृगम् । आरभ्य जन्मत स्नेहान् परिचर्या प्रकुर्वते ॥१३२॥

कुवेरदयितस्यापि पिता प्राप्य स सत्यम् । पाता गन्धन्तर्ग्याऽप्य पुण्यान् स्निह्यन्ति देहिनि ॥१३३॥

भवदेवेन निर्दग्ध द्विजावेनो वधूवरम् । मायेनो धारिणी चेह पन्थुस्ते पितराविमो ॥१३४॥

दत्तके चारो मन्त्रियोने मत्र परिग्रहका परित्याग कर तप धारण किया और आयुके अन्तमे लोकपालकी पर्याय प्राप्त की । इसी प्रकार मुकान्त और रतिवेगा नामके वधू-वरने भी दानकी अनुमोदना करनेमे प्राप्त हुआ बहुत भारी पुण्य प्राप्त किया ॥ १२३-१२६ ॥ यह सब सुनकर राजा लोकपालकी रानी वसुमतीको अपने पूर्वजन्मकी सब बात याद आ गयी जिसमे वह मूर्च्छित हो गयी और सचेत होनेपर अमितमति आर्यिकासे कहने लगी कि मैं पूर्वजन्ममे शोभानगरके राजा प्रजापालकी रानी देवश्री थी, आपके प्रसादमे ही मैं इस लक्ष्मीको प्राप्त हुई हूँ, मेरे उस जन्मके पति राजा प्रजापाल आज कहाँ है ? यह कहिए ॥ १२७-१२८ ॥ इस प्रकार वसुमतीका प्रश्न समाप्त होनेपर अमितमति आर्यिकाने कहा कि यह लोकपाल ही पूर्वजन्मका प्रजापाल राजा है । इतना कहते ही प्रियदत्ताको भी अपने पूर्वभवकी याद आ गयी । उसने आर्यिकाको बन्दना कर कहा कि शक्तिपेणकी स्त्री अटवीश्री तो मैं ही हूँ, कहिए मेरा पति शक्तिपेण आज कहाँ है ? इस प्रकार पूछा जानेपर अमितमतिने कहा कि यह तेरा पति कुवेरकान्त ही उस जन्मका शक्तिपेण है और यह कुवेरदयित ही उस जन्मका सत्यदेव है जो कि तुम्हारा पुत्र हुआ है । सेठ मेरुकदत्तके जो भूतार्थ आदि चार मन्त्री थे वे देवपर्यायको प्राप्त हो स्नेहके कारण जन्मसे ही लेकर तुम्हारे पतिकी भारी सेवा कर रहे हैं — कामधेनु और कल्पवृक्ष बनकर सेवा कर रहे हैं ॥ १२९-१३२ ॥ कुवेरदयितका पूर्व जन्मका पिता सत्यक भी देव होकर उसकी रक्षा करता है सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यके प्रभावसे दूसरी गतिमे रहनेवाले जीव भी स्नेह करने लग जाते हैं ॥ १३३ ॥ भवदेवेन पूर्वोक्त वधू-वर (रतिवेगा और मुकान्त) को जला दिया था इसलिए वे दोनों ही मरकर ये कबूतर-कबूतरी हुए हैं । सेठ मेरुकदत्त और उनकी

- १ लोकपालसुरत्वम् । २ मुकान्तरतिवेगेति मिथुनम् । ३ प्राप्तम् । ४ पुण्यम् । प्राप्तमित्यादिवचनम् । ५ प्रजापालपुत्रलोकपालस्य । ६ भार्या कुवेरमित्रस्य, पौत्री वसुमती । ७ निजभवान्तरपरिजानजात । ८ शोभानगरपतिप्रजापालमहीपतेभार्या देवश्री । ९ हे अमितमत्यायिके, भवत्प्रसादात् । १० प्राप्तवत्यहम् । ११ शोभानगरप्रतिपालप्रजापाल इत्यर्थ । १२ तव भर्ता लोकपाल । १३ आर्यिका । १४ तव प्रियदत्ताया । १५ पुरोवर्ति । १६ कुवेरकान्त । १७ शक्तिपेणस्य स्वीकृतपुत्र । कुवेरदयित इति तव पुत्रोऽभूदिति सम्बन्ध । १८ देवत्वम् । १९ तव भर्तु कुवेरकान्तस्य । २० जननकालादारभ्य कामधेनुरुत्तमेति श्लोकोक्तसेवा कुर्वते । २१ पूर्वभवमवन्विपिता सत्यक । २२ रक्षकोऽभूत् । २३ रतिवर्मकनकश्रियो सूनूना भवदेवेन । क्रोधात् शक्तिपेणकालान्तरेण निर्दग्ध वधूवर मुकान्तरतिवेगेति द्वयम् । २४ कपोतपक्षिणावभूतामिति सम्बन्ध । २५ मेरुकदत्त । २६ अस्या पुर्याम् । पुण्डरीकिण्याम् । २७ तव भर्तु कुवेरकान्तस्य । २८ कुवेरमित्रचनवत्यौ ।

इत्युक्त्वा ^१सदमप्याह ^२खगाचलसमीपगे । ^३वसन्तौ चारणावधौ मुनी मलयकाञ्चने ॥१३५॥
^४पूर्वं वननिवेशे ^५तौ भिक्षार्थं समुपागतौ । तत्र पुत्रसमुत्पत्तिमुपदिश्य गतौ तत ॥१३६॥
 अन्येद्युर्वसुधारादिहेतुभूतौ कपोतकौ । दृष्ट्वा सकलौ भिक्षामनादाय वन गतौ ॥१३७॥
 गुर्वोगुरुव ^६युवयोरुपयातौ तयोरिदम् । उपदेशात् समाकण्य सर्वमुक्तं यथाश्रुतम् ॥१३८॥
 इति त ^७ऽमितमत्युक्तकथाव्रगमतत्पर ^८। स्वरूपं ससृजे सम्यक् सुदुमुदुरमावयन् ॥१३९॥
 एव प्रयाति कालेऽसौ प्रियदत्ता प्रसगतः । यशस्वतीगुणवत्यौ युवाभ्यां केन हेतुना ॥१४०॥
 इय दाक्षा गृहावति पप्रच्छोपपन्नकौतुका । ते ^९च तत्कारणं स्पष्टं यथावृत्तमवोचताम् ^{१०} ॥१४१॥
 ततो धनवती ^{११}दीक्षां गणिता ^{१२}सन्निधौ ययौ । माता ^{१३}कुबेरसेना च तयोराधिक्योद्भवो ॥१४२॥
 तावन्मधु कपोतौ च ग्रामांतरमुपाश्रितौ ^{१४}। तण्डुलाधुपयोगाय ^{१५}समवर्तिप्रबोदितौ ^{१६} ॥१४३॥
^{१७}भवदेवचरणानुवन्मवैरेण पापिना । दृष्टमात्रोत्पकोपेन ^{१८}मारितौ पुरुदशसा ^{१९} ॥१४४॥
 तद्राष्ट्रविजयादस्य दक्षिणश्रेणिमाश्रिते । गान्धारविषयोशीरवत्याख्यनगरेऽधिप ॥१४५॥

स्त्री धारिणी यहू तेरे पति कुबेरकान्तके माता-पिता हुए हैं ॥ १३४ ॥ इतना कहकर अमित
 मति यहू भी कहने लगी कि विजयाध पवतके समीप मलयकाचन नामके पवतपर दो मुनिराज
 रहते थे, जब पूवज-ममें शक्तियेण सपसरोवरके समीप डेरा डालकर वनमें ठहरा हुआ था तब
 वे भिक्षाके लिए तेरे यहाँ आये थे और तेरे अगुलियोंके इशारेसे पाँच पुत्र तथा एक पुत्री होगी
 ऐसा कहकर चल गये थे । तदनन्तर रत्नवृष्टि आदि पचाश्चर्योंके कारणस्वरूप वे मुनिराज इस
 जन्ममें भी किसी समय तेरे घर आये थे परन्तु कबूतर-कबूतरोंको देखकर दयायुक्त हो बिना
 भिक्षा लिये ही वनको लौट गये थे । वे ही तेरे पिता और तेरे पतिके गुरु हुए हैं । उन्हींके
 उपदेशसे मने यहू सब सुनकर अनुक्रमसे कहा है ॥ १३५-१३८ ॥ इस प्रकार जो पुरुष
 अमितमति आर्यिकाके द्वारा कही हुई कथाके सुननेमें तल्लीन हो रहे थे वे संसारके सच्चे
 स्वरूपका बार-बार चिन्तन करने लगे ॥ १३९ ॥ इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होनेपर किसी
 दिन प्रियदत्ताने प्रसंग पाकर यशस्वती और गुणवतीसे पूछा कि आप लोगोंने यह दीक्षा किस
 कारण ग्रहण की है ? मुझे यह जाननेका कौतुक हो रहा है । तब उन दोनोंने स्पष्ट रूपसे अपनी
 दीक्षाका कारण बतला दिया ॥ १४०-१४१ ॥ तदनन्तर कुबेरमित्रकी स्त्री धनवतीने संघकी
 स्वामिनो अमितमतिके पास दीक्षा धारण कर ली और उन दोनों आर्यिकाओंकी माता कुबेर
 सेनाने भी अपनी पुत्रीके समीप दीक्षा धारण की ॥ १४२ ॥

किसी एक दिन यमराजके द्वारा प्रेरित हुए ही क्या मानो वे दोनों कबूतर-कबूतरी
 चावल चुगनेके लिए किसी दूसरे गाव गये । वहाँ एक विलास था जो कि भवदेवका जीव था ।
 उस पापीको पूव जन्मसे बंधे हुए बैरके कारण कबूतर-कबूतरोंको देखते ही पापकी भावना
 जागृत हो उठी और उसने उन दोनोंको मार डाला ॥ १४३-१४४ ॥ उसी पुष्कलावती
 देवके विजयाध पवतकी दक्षिण श्रेणीमें एक गान्धार नामका देश है और उसमें उशीरवती

- १ अमितमत्यादिका । २ विजयाधपवन । ३ निवन्तौ । ४ शक्तिपणाटवीश्रीभव । ५ सपसरोवरनिबधे ।
 ६ युवमित्रसमप्रदत्तौ । ७ कुबेरकातप्रियदत्तया गुरुवमुपयातौ यौ द्वौ तयोरेव चारणयो । ८ यथाक्रमम्
 ९ । १० लाकपालाया । ११ परिगाने रता । १२ यशस्वतीगुणवत्यौ । १३ मम मातुलकुबेरदत्ताद् विविध
 भान्युवज्जनालाभाग्नानुलज्जया तयो गृहातम् । १४ कुबेरमित्रस्य भार्या । १५ अमितमत्यादिकादा ।
 १६ जगन्नाथचक्रनिपुम्भारमिनमत्यनन्तमराजनी । १७ जम्बूग्रामम् । १८ भक्षणाय । १९ अतकप्ररिती ।
 १९ पूवमिन् भवदेवन । २० पापेन ल० । २१ जम्बूग्रामस्य कालीवनस्थमार्जारण ।

आदित्यगतिरग्न्यान्महादेवी शशिप्रभा । तत्रातिगण्यतमांश्च । सुतो रतिवरोऽभवत् ॥१४६॥
 तस्मिन्नेवं तत्तत्राग्न्या गार्ग्यप्यविश्रुते । पुनं भोगपुरं वायुरथो विद्याधरगति ॥१४७॥
 तस्य स्वयप्रभं देव्या रतिपेणा प्रभावती । बभूव जैनधर्मागोऽप्यभ्युदगति देहिनी ॥१४८॥
 माता पिताऽपि यः यश्च मुक्तान्तर्गतवेगयोः । जन्मन्त्यस्मिन् क्लिप्ताभता चित्र तावेवं ममृति ॥१४९॥
 हा मे प्रभावतीयात् जयधनं ममुलं चन । रुद्रादिवर्गं तस्या किं पुनः कियते पृथक् ॥१५०॥
 यौवनेन समाक्रान्ता कन्या दृष्टा प्रभावतीम् । कस्मै देयेयमित्याह गंगेगो मन्त्रिणमन्त्रव (ततः) ॥१५१॥
 शशिप्रभां स्वया देव्या आदित्यगतिस्तथा । परं च स्वयगर्वाशा प्रीत्याऽयाचन्त कन्यकाम् ॥१५२॥
 ततः स्वयवरो युक्तो विरोऽस्तन्न केनचित् । इत्यभाषन्त निश्चिद्य 'तदभयोऽप्यभ्युपागमत्' ॥१५३॥
 ततः सर्वेऽपि तद्वानां गंगानादागमन् वग । कस्येतेषु सा कन्या नाग्रहीद् रत्नमालया ॥१५४॥
 मातापितृभ्या तद् दृष्टा मृष्टा प्रियकारिणा । यो जयेद् गतियुद्धे सा माला स्याज्जयाम्यहम् ॥१५५॥
 कण्ठे तस्येति वक्ष्येता प्रागित्यात् स्यात् तयोः । श्रुत्वा तत्र दिने सर्वानुचितोक्त्या व्यगजंयत् ॥१५६॥

नामकी एक नगरी है । उसके राजा थे आदित्यगति और उनकी रानीका नाम था शशिप्रभा ।
 रतिवर कवृत्तर मरकर उन दोनोंके हिण्यवर्मा नामका पुत्र हुआ ॥१४५-१४६॥ उसी
 विजयार्थ पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक गौरी नामका देग है उसके भोगपुर नामके प्रसिद्ध नगरमें
 विद्याधरोका स्वामी राजा वायुरथ राज्य करता था । उसकी स्वयप्रभा नामकी रानी थी ।
 रतिपेणा कवृत्तरी मरकर उन्हीं दोनोंको प्रभावती नामकी पुत्री हुई सो ठीक ही है क्योंकि
 जैनधर्मका एक अंग भी प्राणियोंका उद्धार कर देना है ॥१४७-१४८॥ मुकान्त और रतिवेगा-
 के जो पहले माता-पिता थे वे ही इस जन्ममें भी माता-पिता हुए हैं सो ठीक ही है क्योंकि
 यह ससार बड़ा ही विचित्र है । भावार्थ — मुकान्तके पूर्वभवके माता-पिता अगोक और जिनदत्ता
 इस भवमें आदित्यगति और शशिप्रभा हुए हैं तथा रतिवेगाके पूर्वभवके माता-पिता विमलश्री
 और श्रीदत्ता इस भवमें वायुरथ तथा स्वयप्रभा हुए हैं ॥१४९॥ जब जयकुमारने सुलोचनाके
 साथ बैठकर 'हा' मेरी प्रभावती' ऐसा कहा तब फिर उसके रूप आदिका वर्णन अलगसे क्या
 किया जाय ? ॥१५०॥ प्रभावती कन्याको यौवनसे सम्पन्न देखकर विद्याधरोके अधिपति
 वायुरथने अपने मन्त्रियोंसे कहा कि यह कन्या किसे देनी चाहिए ? ॥१५१॥

मन्त्रियोंने परस्परमें निश्चय कर कहा कि 'शशिप्रभा आपकी बहन है, और आदित्यगति
 आपकी पट्टराज्ञीका भाई है । ये दोनों तथा इनके सिवाय और भी अनेक विद्याधर राजा बड़े
 प्रेमसे कन्याकी याचना कर रहे हैं इसलिए स्वयवर करना ठीक होगा क्योंकि ऐसा करनेसे
 किसीके साथ विरोध नहीं होगा ।' मन्त्रियोंकी यह बात राजाने भी स्वीकार की ॥१५२-१५३॥
 तदनन्तर स्वयवरकी बात सुनकर सभी राजकुमार आये परन्तु कन्या प्रभावतीने इन सबमें-से
 किसीको भी रत्नमालाके द्वारा स्वीकार नहीं किया — किसीके भी गलेमें रत्नमाला नहीं डाली
 ॥१५४॥ यह देखकर माता-पिताने उसकी सखी प्रियकारिणीसे इनका कारण पूछा, सखीने उन
 दोनोंसे कहा कि यह पहले कहती थी कि 'जो मुझे गतियुद्धमें जीतेगा मैं उसीके गलेमें माला
 डालूंगी' यह सुनकर राजाने उस दिन यथायोग्य कहकर सबको बिदा किया ॥१५५-१५६॥

१ रतिवरनामकपोत । २ रतिपेणा नाम कपोती । ३ श्रीदत्तविमलश्रीयौ । अशोकदेवजिनदत्ते द्वे च अभूता
 वायुरथस्वयप्रभादेव्यौ आदित्यगतिशशिप्रभे च पितरावभूतामिति । ४ सुलोचनया सहित । ५ तत्र शशिप्रभेति
 भगिनी । ६ वायुरथस्य तव भार्याया । ७ स्वयप्रभादेव्या आता आदित्यगतिश्च सोऽपि स्वपुत्राय याचितवान्
 इत्यर्थ । ८ एव सति । ९ तथास्त्विदमनुमतिमकरोत् । १० कन्याया सखी । ११ वायुरथस्वयप्रभयो ।

अन्यसु सखराधीशो धोपयिष्या^१ स्वयंवरम् । सिद्धकूटाख्यचैत्यालयस्य मालां पुर स्थिताम् ॥१५०॥
 अपातयन्महामरु^२ त्रि^३ परीत्य महात^४म् । अस्पृष्टां खेचरा केचित्ता प्रहोतुमनीश्वरा ॥१५१॥
 त्रया गता समादाय प्रभावत्या विनिजिता । समो ननु न मृत्युइव मानमङ्गेन मानिनाम् ॥१५२॥
 सतो हिरण्यवर्माऽयाद् गतियुद्धनिशारद । मालामासञ्जयामास^५ तत्कण्ठे तेन निर्जिता ॥१६०॥
 तथोजन्माभ्यस्नेहसमृद्धसुखसपदा । काले गच्छति कस्मिंश्च (चित्) कपोतद्वयदर्शनात् ॥१६१॥
 ज्ञातप्राग्भवसव^६धा सुविरक्ता प्रभावती । स्थिताशोकाकुलैकैव^७ चिन्तयन्ती किमप्यसौ ॥१६२॥
 हिरण्यवमणा ज्ञातजन्मना लिखित स्फुटम् । पट्टक प्रियकारिण्या^८ हस्त^९ समबलोक्य तम् ॥१६३॥
 यव लब्धमिदमिष्याख्यत् प्राह सापि प्रियण त । लिखित चेदकस्तस्य^{१०} सुकान्तो म समपयत् ॥१६४॥
 इति तद्वचन श्रुत्वा स्वयमप्यात्मवृत्तकम् । प्राक्तन^{११} पट्टके तस्या लिखित्वाऽसौ^{१२} करे ददौ ॥१६५॥
 तद्विलोक्य कुमारोऽभूत् प्रभावत्यो प्रसन्नधी । साऽपि तस्मिन् तयो प्रीति^{१३} प्राक्तन्या^{१४} द्विगुणाऽभवत्^{१५}
 समूय बा^{१६}धवा सर्वे वक्ष्याणामिषव तयो । अकुवन्निव कल्याण द्वितीय ते चिकौषव ॥१६७॥
 दशम्या^{१७} सिद्धकूटग्रे स्नानपूजाविधी^{१८} सुवित्^{१९} । हिरण्यवमणा वीक्ष्य परमावधिवाण ॥१६८॥

दूसरे दिन राजाने स्वयंवरकी घोषणा कराकर कहा कि 'एक माला सिद्धकूट नामक चैत्यालयके द्वारसे नीचे छोड़ी जायगी जो कोई विद्याधर माला छोड़नेके बाद महामरु पवतकी तीन प्रदक्षिणाएँ देकर प्रभावतीके पहल उस जमीनपर पड़नेके पहल ही ले लेगा वही इसका पति होगा' यह सुनकर बहुत से विद्याधरोंने प्रयत्न किया परन्तु पूर्वोक्त प्रकारसे माला न ले सके इसलिए प्रभावतीसे हारकर लज्जित होते हुए चल गये सो ठीक ही है क्योंकि मृत्यु भी अभिमानी लोगो के भानमंगको बराबरी नहीं कर सकती है ॥१५७-१५९॥ तदनन्तर गतियुद्ध करनेमें चतुर हिरण्यवर्मा आया और उससे हारकर प्रभावतीने वह माला उसके गलम डाल दी ॥१६०॥ पूर्व जन्मके स्नेहसे बड़ी हुई सुखरूप सम्पत्तिसे जब उन दोनोंका कितना ही समय व्यतीत हो गया तब किसी एक दिन कबूतर-कबूतरीका जोड़ा देखनेसे प्रभावतीको पूर्वभवका सम्बन्ध याद आ गया, वह विरक्त होकर शोकसे व्याकुल होती हुई अकेली बैठकर कुछ सोचने लगी ॥१६१-१६२॥ इधर हिरण्यवर्माको भी जाति स्मरण हुआ था, उसने एक पट्टियेपर अपने पूर्वजन्मका सब हाल साफ-साफ लिखकर प्रभावतीकी सखी प्रियकारिणीको दिया था, प्रभावती ने प्रियकारिणीके हाथमें वह पट्टिया देखकर कहा कि यह चित्रपट तुझे कहाँ मिला है ? सखीने कहा कि 'यह चित्रपट तेरे पतिने लिखा है और उनके नौकर सुवातने मुझे दिया है, इस प्रकार सखीके वचन सुनकर प्रभावतीने भी एक पट्टियेपर अपने पूर्वजन्मका सब वृत्तान्त लिखकर सखी के हाथमें दिया ॥१६३-१६५॥ वह चित्रपट देखकर हिरण्यवर्मा प्रभावतीपर बहुत अनुराग करने लगा और प्रभावती भी हिरण्यवर्मापर बहुत अनुराग करने लगी उन दोनोंका प्रेम पूर्व पयायक प्रभसे कहीं दूना हो गया था ॥१६६॥ कुटुम्बके सब लोगोंने मिलकर उन दोनोंका मंगलाभिषेक किया मानो व उनका दूसरा कल्याण ही करना चाहते हों ॥१६७॥ किसी समय दशमी^{१७} दिन ये दाना सिद्धकूटके चैत्यालयमें अभिषेक पूजन आदि कर रहे थे उसी समय हिरण्य

१ स्वयंवरमिति धोपयिष्या तादृश व्रतजयन्ति संबन्ध । २ भूमौ पातयति स्म । ३ मरोहिन् ल० । ४ सयाजमनि तग । ५ अमर्त्यव । ६ प्रभावत्या सत्या । ७ हस्ते स्थितम् । ८ हिरण्यवमणा । ९ प्राग्भवम् पुरातनमिष्य । १० प्रभावती । ११ पुरातनी । १२ आ समन्ताद् द्विगुणा । १३ विवाहदिनाद् दशम्यादि । १४ अभिषेकपूजाविधी । १५ प्रत्यक्षज्ञानी ता० टि० । वचिन् अ प० स०, ६० ल० ।

प्रभासत्या च पृष्टोऽमो रजः पूर्णभगवत्तमम्^१ । अभापन मुनेऽवैश्वमनुग्रहधिया नयोः ॥१६९॥
 तृतीयजन्मनोतोऽत्र संभर्ता वणिजां कुले । रतिवेगा मुकान्तद्वय प्राक् मृणालवतीपुत्रं ॥१७०॥
 भर्तृ मार्याभिसन्ध^२ संप्राप्तगामिण्याद्^३ गता^४ । कृत्वाऽनुमोदन शक्तिपेण्डाने सपुण्यकौ ॥१७१॥
 पारावतभवे चाप्य^५ धर्मं जानो युवामिति । विधाय पितरौ वैश्यजन्मनोर्याविहापि तौ ॥१७२॥
 तृतीयजन्मनो युष्मदगुरवोऽहं^६ च मंगता । रतिपेणगुरो पात्रे गृहीतप्रोपधाडिचरम् ॥१७३॥
 जिनेन्द्रभवने भक्त्या नानोपकरणं यदा । विधाय पूजा समजायामहीह^७ रगाधिपा ॥१७४॥
 पिताऽहं भवदेवस्य रतिवर्माभिधन्तदा । भूत्वा श्रीधर्मनामास्तः सयम प्राप्य शुद्धधीः ॥१७५॥
 चारणन्व तृतीयं च ज्ञानं प्रापमिहेत्यद^८ । श्रुत्वा मुनिवच प्रीतिमापद्येतान्तरा च तौ^९ ॥१७६॥
 एवं सुखेन यात्येपा^{१०} काले वायुरथ पृथुम् । विगाराम^{११} ममालोक्य स्तनयित्नु^{१२} प्रतिक्षणम् ॥१७७॥
^{१३} विद्वं विनस्वर पश्यन् शब्दवन्मन्त्रावतिर्कामितिम् । जन करोति सर्वत्र दुस्तरं किमिदं तम^{१४} ॥१७८॥
 इति यायात्म्यमामात्र दत्त्वा राज्यं विरज्य^{१५} सः । मनोगथाश्च नैस्त्वंगं^{१६} प्रपित्सुरभवत्तदा ॥१७९॥
 आदित्यगतिमन्येत्य प्रीत्या सर्वेऽपि बान्धवा^{१७} । प्रभावतीमुता देया भवन्तेय रतिप्रभा ॥१८०॥

वर्माने परमावधि ज्ञानको धारण करनेवाले चारणमुनि देखे, प्रभावतीने उनसे अपने पूर्वभवका वृत्तान्त पूछा, मुनिराज भी अनुग्रह बुद्धिसे उन दोनोंके पूर्वभवका वृत्तान्त इस प्रकार कहने लगे ॥१६८-१६९॥ कि तुम दोनों इस जन्मसे तीसरे जन्ममे मृणालवती नगरीके वैश्य कुलमे रतिवेगा तथा मुकान्त हुए थे ॥१७०॥ स्त्री पुरुषका सम्बन्ध पाकर तुम दोनों गन्तुके भयसे भागकर शक्तिपेणकी शरण गये थे । वहाँ शक्तिपेणने मुनिराजके लिए जो आहार दान दिया था उसकी अनुमोदना कर तुम दोनोंने पुण्यबन्ध किया था, उसके बाद कवूतर-कवूतरीके भवमे धर्म लाभ कर यहाँ विद्याधर-विद्याधरी हुए हो । तुम दोनोंके वैश्य जन्मके जो माता-पिता थे वे ही इस जन्मके भी तुम्हारे माता-पिता हुए हैं । तीसरे जन्मके तुम्हारे माता-पिता तथा मैंने मिलकर एक साथ रतिपेण गुरुके समीप प्रोपध व्रत लिया था, और उसका चिरकाल तक पालन करते हुए श्रीजिनेन्द्रदेवके मन्दिरमे भक्तिपूर्वक अनेक उपकरणोंसे सदा पूजा की थी उसीके फलस्वरूप हमलोग यहाँ विद्याधर हुए हैं । मैं पूर्वभवमे रतिवर्म नामका भवदेवका पिता था, अब श्रीधर्म नामका विद्याधर हुआ हूँ, मैंने शुद्ध हृदयसे सयम धारण कर चारणऋद्धि और तीसरा अवधि ज्ञान प्राप्त किया है । इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर हिरण्यवर्मा और प्रभावती दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए ॥१७१-१७६॥

इस तरह इन सबका समय सुखसे व्यतीत हो रहा था कि किसी एक समय प्रभावतीके पिता वायुरथ विद्याधरने प्रत्येक क्षण नष्ट होनेवाला मेघ देखकर ऐसा विचार किया कि यह समस्त ससार इसी प्रकार नष्ट हो जानेवाला है, फिर भी लोग इसे स्थिर रहनेवाला समझते हैं, यह अज्ञानरूपी घोर अन्धकार सब जगह क्यों छाया हुआ है ? इस प्रकार यथार्थ स्वरूपका विचार कर विरक्त हो मनोरथ नामक पुत्रके लिए राज्य दे दिया और स्वयं निर्ग्रन्थ अवस्था धारण करनेकी इच्छा करने लगे ॥१७७-१७९॥ उसी समय वायुरथके सभी भाई-बन्धुओंने बड़े

१ स्वपूर्व-अ०, प०, इ०, स०, ल० । २ दम्पतिसम्बन्धम् । ३ भवदेवभयात् । ४ पलायितौ । ५ प्राप्य । ६ श्रीदत्तविमलश्रियो । अशोकदेवजिनदत्ते च । ७ युवयो पितर । श्रीदत्तविमलश्री-अशोकदेवजिनदत्ता । ८ भवदेवस्य पिता रतिवर्मा । ९ जाता स्म । १० श्रीधर्मखगाधिपति । ११ हिरण्यवर्माप्रभावत्यौ । १२ वायुरथादीनाम् । १३ विनस्वरशीलम् । १४ मेघम् । 'अत्र मेघो वारिवाह स्तनयित्नुर्वलाहक' इत्यभिधानात् । १५ पुत्रमित्रकलत्रस्तृचन्दनाविकम् । १६ अज्ञानम् । १७ विरक्तौ भूत्वा । १८ प्राप्तुमिच्छु । १९ वायुरथस्य बन्धुजना ।

अन्यथु खषराधोषो घोषयित्वा^१ स्वयवरम् । सिद्धकूटालयचैत्यालयस्य माला पुर स्थिताम् ॥१५०॥
 अपातयन्महामरु^२ त्रि^३ परीत्य महातरुम् । अस्पृष्टा खेचरा केचित्ता ग्रहानुमनीश्वरा ॥१५१॥
 अथा गता समादाय प्रभावत्या विनिजिता । समो ननु न मृत्युद्वयमानमङ्गन भाविनाम् ॥१५२॥
 ततो हिरण्यवर्मा^४ आयाद् गतियुद्धविशारद । मालामासञ्जयामास^५ तत्कण्ठे तेन निर्जिता ॥१६०॥
 तयोर्जन्मान्तरस्नेहसमृद्धसुखसपदा । काले गच्छति कस्मिंश्च (चित्) वपोतद्वयदर्शनात् ॥१६१॥
 ज्ञातप्राग्भवसवधा सुविरक्ता प्रभावती । स्थिताशोकाकुलैवैष^६ चिन्तयन्ता किमप्यसौ ॥१६२॥
 हिरण्यवमणा ज्ञातजन्मना लिखित स्फुटम् । पट्टक प्रियकारिण्या^७ हस्त^८ समवलोक्य तम् ॥१६३॥
 क्व लब्धमिदमित्याख्यत् प्राह सापि प्रियण त । लिखित चेदकस्तस्य^९ सुकान्तो न समपद्यत् ॥१६४॥
 इति तद्वचन श्रुत्वा स्वयमप्यामवृत्तकम् । प्राक्तम^{१०} पट्टके तस्या लिखित्वाऽसौ^{११} करे ददौ ॥१६५॥
 तद्विलोक्य कुमारोऽभूत् प्रभावत्या प्रसक्तधी । साऽपि तस्मिन् तयो भीति प्राणयो^{१२} द्विगुणाऽभवत्^{१३}
 समूय बाधवा सर्वे वक्ष्याणामिषव तयो । अकुण्ठितव कल्याण द्वितीय ते चिकीपव ॥१६६॥
 दशम्या^{१४} सिद्धकूटग्रे स्नानपूजाविधौ^{१५} सुवित्^{१६} । हिरण्यवमणा धीक्ष्य परमावधिचारण ॥१६७॥

दूसरे दिन राजाने स्वयवरकी घोषणा कराकर कहा कि 'एक माला सिद्धकूट नामक चैत्यालयके द्वारसे नीचे छोड़ी जायगी जो कोई विद्याधर माला छोड़नेके बाद महामेरु पर्वतकी तीन प्रदक्षिणाएँ देकर प्रभावतीके पहल उसे जमीनपर पड़नेके पहले ही ले लेगा वही इसका पति होगा' यह सुनकर बहुत से विद्याधरोंने प्रयत्न किया परन्तु पूर्वोक्त प्रकारसे माला न ले सके इसलिए प्रभावतीसे हारकर लज्जित होते हुए चले गये सो ठीक ही है क्योंकि मृत्यु भी अभिमानी लोगो के मानभंगकी बराबरी नहीं कर सकती है ॥१५७-१५९॥ तदनन्तर गतियुद्ध करनेम चतुर हिरण्यवर्मा आया और उससे हारकर प्रभावतीने वह माला उसके गलेम डाल दी ॥१६०॥ पूव जन्मके स्नेहसे वढी हुई सुखरूप सम्पत्तिसे जब उन दोनोंका कितना ही समय व्यतीत हो गया तब किसी एक दिन कबूतर-कबूतरीका जोड़ा देखनेसे प्रभावतीको पूर्वभवका सम्बन्ध याद आ गया, वह विरक्त होकर शोकसे व्याकुल होती हुई अकेली बैठकर कुछ सोचने लगी ॥१६१-१६२॥ इधर हिरण्यवर्माको भी जाति स्मरण हुआ था, उसने एक पट्टियेपर अपने पूवजन्मका सब हाल साफ-साफ लिखकर प्रभावतीकी सखी प्रियकारिणीको दिया था प्रभावती ने प्रियकारिणीके हाथम वह पट्टिया देखकर कहा कि यह चित्रपट तुझे कहां मिला है ? सखीने कहा कि 'यह चित्रपट तरे पतिने लिखा है और उनके नौकर सुकान्तने मुझे दिया है, इस प्रकार सखीव वचन सुनकर प्रभावतीने भी एक पट्टियेपर अपने पूवजन्मका सब वृत्तान्त लिखकर सखी के हाथमें दिया ॥१६३-१६५॥ वह चित्रपट देखकर हिरण्यवर्मा प्रभावतीपर बहुत अनुराग करने लगा और प्रभावती भी हिरण्यवर्मापर बहुत अनुराग करने लगी, उन दोनोंका प्रेम पूव पयायने प्रमसे वहीं दूना हो गया था ॥१६६॥ कुटुम्बके सब लोगोने मिलकर उन दोनोंका मंगलाभिषेक किया मानो व उनका दूसरा कल्याण ही करना चाहते हों ॥१६७॥ किसी समय दशमान दिन ये दाना सिद्धकूटके चैत्यालयम अभिषेक पूजन आदि कर रहे थे उसी समय हिरण्य

१ स्वयंभूमिति धारयित्वा सहिते वनराजयन्ति सवन्ध । २ भूमौ पातयति स्म । ३ मेराहित ल० । ४ वपोतपनि स्म । ५ अमहायव । ६ प्रभावत्या सत्या । ७ हस्ते स्थितम् । ८ हिरण्यवमण । ९ प्राग्भवम्, पुरातनमित्यर्थ । १० प्रभावती । ११ पुरातनी । १२ आ वमन्ताद् त्रिगुणा । १३ विशाहविनाद् दशमदिन । १४ अभिषेकपूजाविधौ । १५ प्रत्यगज्ञानी ता० टि० । १६ चित् व०, प० स०, ६० ल० ।

प्रभात्रत्या च पृष्टोऽसौ स्वं पूर्वभववृत्तकम्^१ । अभाषत मुनेश्चैवमनुग्रहधिया तयोः ॥१६९॥
 तृतीयजन्मनीतोऽत्र समृतौ वणिजां कुले । रतिवेगा सुकान्तश्च प्राक् मृणालवतीपुरे ॥१७०॥
 भर्तृ भार्यामिसंग्रह^२ संप्राप्तापरिमयाद् गतौ^३ । कृत्वाऽनुमोदनं शक्तिषेणदाने सपुण्यकौ ॥१७१॥
 पारावतभवे चाप्य^४ धर्मं जातौ युवामिति । विधाय पितरौ^५ वैश्यजन्मनोर्याविहापि तौ ॥१७२॥
 तृतीयजन्मनो^६ युष्मद्गुरवोऽहं^७ च संगताः । रतिपेणगुरोः पाश्र्वं गृहीतप्रोषधाश्चिरम् ॥१७३॥
 जिनेन्द्रभवने भक्त्या नानोपकरणैः सदा । विधाय पूजां समजायामहीह^८ खगाधिपाः ॥१७४॥
 पिताऽहं भवदेवस्य रतिवर्माभिधस्तदा । भूत्वा^९ श्रीधर्मनामाऽतः सयम प्राप्य शुद्धधीः ॥१७५॥
 चारणत्वं तृतीयं च ज्ञानं प्रापमिहेत्यद । श्रुत्वा मुनिवचः प्रीतिमापद्येतान्तरां च तौ^{१०} ॥१७६॥
 एवं सुखेन यात्येषां^{११} काले वायुरथः पृथुम् । विशरारु^{१२} समालोक्य स्तनयितुं^{१३} प्रतिक्षणम् ॥१७७॥
^{१४} विश्वं विनश्चरं पश्यन् शश्वच्छाश्वतिकी मतिम् । जनः करोति सर्वत्र दुस्तरं किमिदं तमः^{१५} ॥१७८॥
 इति याथात्म्यमासाद्य दत्त्वा राज्यं विरज्य^{१६} सः । मनोरथाय नैस्सग्यं^{१७} प्रपित्सुरभवत्तदा ॥१७९॥
 आदित्यगतिमभ्येत्य प्रीत्या सर्वेऽपि बान्धवाः^{१८} । प्रभावतीसुता देया भवतेयं रतिप्रभा ॥१८०॥

वर्माने परमावधि ज्ञानको धारण करनेवाले चारणमुनि देखे, प्रभावतीने उनसे अपने पूर्वभवका वृत्तान्त पूछा, मुनिराज भी अनुग्रह बुद्धिसे उन दोनोंके पूर्वभवका वृत्तान्त इस प्रकार कहने लगे ॥१६८-१६९॥ कि तुम दोनों इस जन्मसे तीसरे जन्ममे मृणालवती नगरीके वैश्य कुलमे रतिवेगा तथा सुकान्त हुए थे ॥१७०॥ स्त्री पुरुषका सम्बन्ध पाकर तुम दोनों शत्रुके भयसे भागकर शक्तिषेणकी शरण गये थे । वहाँ शक्तिषेणने मुनिराजके लिए जो आहार दान दिया था उसकी अनुमोदना कर तुम दोनोंने पुण्यबन्ध किया था, उसके बाद कबूतर-कबूतरीके भवमे धर्म लाभ कर यहाँ विद्याधर-विद्याधरी हुए हो । तुम दोनोंके वैश्य जन्मके जो माता-पिता थे वे ही इस जन्मके भी तुम्हारे माता-पिता हुए हैं । तीसरे जन्मके तुम्हारे माता-पिता तथा मैंने मिलकर एक साथ रतिषेण गुरुके समीप प्रोषध व्रत लिया था, और उसका चिरकाल तक पालन करते हुए श्रीजिनेन्द्रदेवके मन्दिरमे भक्तिपूर्वक अनेक उपकरणोसे सदा पूजा की थी उसीके फलस्वरूप हमलोग यहाँ विद्याधर हुए हैं । मैं पूर्वभवमे रतिवर्म नामका भवदेवका पिता था, अब श्रीधर्म नामका विद्याधर हुआ हूँ, मैंने शुद्ध हृदयसे सयम धारण कर चारणवृद्धि और तीसरा अवधि ज्ञान प्राप्त किया है । इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर हिरण्यवर्मा और प्रभावती दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए ॥१७१-१७६॥

इस तरह इन सबका समय सुखसे व्यतीत हो रहा था कि किसी एक समय प्रभावतीके पिता वायुरथ विद्याधरने प्रत्येक क्षण नष्ट होनेवाला मेघ देखकर ऐसा विचार किया कि यह समस्त ससार इसी प्रकार नष्ट हो जानेवाला है, फिर भी लोग इसे स्थिर रहनेवाला समझते हैं, यह अज्ञानरूपी घोर अन्धकार सब जगह क्यों छाया हुआ है ? इस प्रकार यथार्थ स्वरूपका विचार कर विरक्त हो मनोरथ नामक पुत्रके लिए राज्य दे दिया और स्वयं निर्ग्रन्थ अवस्था धारण करनेकी इच्छा करने लगे ॥१७७-१७९॥ उसी समय वायुरथके सभी भाई-बन्धुओने बड़े

१ स्वपूर्व-अ०, प०, इ०, म०, ल० । २ दम्पतिसम्बन्धम् । ३ भवदेवभयात् । ४ पलायितौ । ५ प्राप्य । ६ श्रीदत्तविमलधियो । अशोकदेवजिनदत्ते च । ७ युवयो पितर । श्रीदत्तविमलश्री-अशोकदेवजिनदत्ता । ८ भवदेवस्य पिता रतिवर्मा । ९ जाता स्म । १० श्रीधर्मखगाधिपति । ११ हिरण्यवर्माप्रभावत्यौ । १२ वायुरवादीनाम् । १३ विनश्चरशीलम् । १४ मेघम् । 'अत्र मेघो वारिवाह स्तनयितुर्बलाहक' इत्य-निदानात् । १५ पृथुमित्रकलशत्रुचन्दनादिकम् । १६ अज्ञानम् । १७ विरक्तो भूत्वा । १८ प्राप्तुमिच्छु । १९ वायुरथस्य बन्धुजना ।

मनोरथस्य पुत्राय कन्या चित्ररथाय सा । इत्याहु^१ सोऽप्यनुशाय^२ कृत्वा बन्धुविसर्जनम् ॥१८१॥
^३हिरण्यवर्मण सधसगराजमिषेचनम् । विधाय बहुमि सार्धं सप्राप्य मुनिपुङ्गवम् ॥१८२॥
 सयम प्रतिपन्न सन् सहवायुरथ^४ स्वयम्^५ । तपो द्वादशधा प्रोक्त यथाविधि समाचरत् ॥१८३॥
 इत्युत्त्वा रतिवेगाऽह रतिपेणा^६ प्रमादती । चाहमवेति^७ सम्भानां^८ निजगाद^९ सुलोचना ॥१८४॥
 पदाकण्ठ्य जयोऽप्याह पतिस्तासामह^{१०} क्रमात् । जाये स्म^{११} तत्र तत्रेति विश्वविस्मयकृद्वच ॥१८५॥
 पुन प्रिया जय प्राह प्रकृत किंचिदप्यस । अवशिष्ट तदप्युच्चैस्त्वया कान्त निगद्यताम् ॥१८६॥
 इति पत्युः परिग्रहनादशनज्योत्स्नया समाम् । मूर्तिं कुमुदतीं वे दोर्विकासमुपनीयताम् ॥१८७॥
 साऽग्रवीदिति तद्वृत्त स्वपुण्यपरिपाकजम् । सुख राग्यसमुद्भूत यथेष्टमपि निर्विशन्^{१२} ॥१८८॥
 परेषु कान्तया सार्धं^{१३} स्वेच्छया विहरन् वनम् । सरो धान्यकमालाख्य धीम्यादिव्यागते^{१४} सुत ॥१८९॥
^{१५}स्वप्राच्यभवसम्पद्य प्रत्यक्षमिव लक्षयन् । काललब्धिबलादलब्धनिवदो विदुषा घर ॥१९०॥
 भङ्गुर^{१६} सगम सर्वोऽप्यङ्गिनामभिवाञ्छित । किं नाम सुखमग्रदमरूपसवरूपसमयम् ॥१९१॥
 आयुर्वायुचल कायो ह्य एवामयालय । साम्राज्य भुङ्गते^{१७} लोलैर्वालि^{१८} शैबहुदोषलम्^{१९} ॥१९२॥
 अदूरपार^{२०} कायोऽयमसारो दुरिताश्रय । तादात्म्यप्राप्तमनोऽनेन^{२१} धिगेनमशुचिप्रियम्^{२२} ॥१९३॥

प्रमसे आदित्यगतिके समीप जाकर प्रायना की बि यह प्रभावतीकी पुत्री रतिप्रभा कन्या आप मेरे मनोरथके पुत्र चित्ररथके लिए दे दीजिए ।' आदित्यगतिने भी स्वीकार कर समागत बन्धुओंको बिदा किया ॥१८०-१८१॥ महाराज आदित्यगति सब विद्याधरोके राज्यपर हिरण्यवर्माका अभिषेक कर अनेक लोगोंके साथ किन्ही मुनिराजके समीप पहुँचे, और वायुरथके साथ साथ स्वयं भी सयम धारण कर विधिपूर्वक शास्त्रोंमें कहे हुए बारह प्रकारके तपश्चरण करने लगे ॥१८२-१८३॥ यह सब कहकर सुलोचनाने सब सभासदोंसे कहा कि वह रतिवेगा भी म ही हूँ रतिपेणा (कवूतरी) भी मैं ही हूँ और प्रभावती भी मैं ही हूँ ॥१८४॥ यह सुनकर जयबुमारने भी सबको आश्चर्य करनेवाले वचन कहे बि उन तीनों भवोंमें अनुक्रमसे मैं ही उन रतिवेगा आदिका पति हुआ हूँ ॥१८५॥ जयकुमार फिर अपनी प्रिया सुलोचनासे कहने लगा कि हे प्रिये, कुछ बात बाकी और रह गयी है उसे भी तू अच्छी तरह कह दे ॥१८६॥ जिस प्रकार चन्द्रमाकी मूर्ति कुमुदिनीको विकसित कर देती है उसी प्रकार वह सुलोचना भी अपने पतिके पूर्वोक्त प्रश्नसे दाँतोकी कान्तिके द्वारा सभाको विकसित-हर्षित करती हुई अपने पुण्यके फलसे होनेवाले समाचारोंको इस प्रकार कहने लगी कि वह हिरण्यवर्मा राज्यसे उत्पन्न हुए सुखका इच्छानुसार उपभोग करने लगा । किसी एक दिन अपनी वल्लभाके साथ बिहार करता हुआ वह आदित्यगतिका पुत्र हिरण्यवर्मा धान्यकमाल नामके वनमें जा पहुँचा । वहाँ सपमरोवर देखकर उसे अपने पूर्वमवके सब सम्बन्ध प्रत्यक्षकी तरह दिखने लगे काललब्धिके निमित्तसे जिसे वराग्य उत्पन्न हुआ है और जो विद्वानोम श्रेष्ठ है ऐसा वह हिरण्यवर्मा सोचने लगा कि प्राणियोंकी इच्छावा विषयभूत यह सभी समागम क्षणभंगुर है इस समागममें थाड़े-से संकल्पग उत्पन्न हुआ यह मुख क्या वस्तु है ? यह आयुके समान चंचल है । अनेक रोगों का घर स्वरूप यह शरीर छोड़ने योग्य ही है । अनेक दोषोंको देनेवाले राज्यको चंचल

१ वायुरथस्य विधोगान्हा । २ तपोऽप्यनुशायमुति कृत्वा । ३ अयं सुलोचनं ल० म० पुस्तकमोनं कृतं । ४ वायुरथस्य सति । ५ आदित्यगति । ६ रतिपेणा कपाती । ७ सुनायना । ८ सभाजनानाम् । ९ अभापन । १० रतिरगातीनाम् । ११ जाया स्मि । १२ अनुभवन् । १३ प्रभावत्या सह । १४ हिरण्यवर्मा । १५ पूषमय । १६ दायणील । १७ आभवा । १८ मूर्ति । १९ बहुनापयम् । २० आसभावसाना । २१ तपश्चरणम् । २२ वायन । २३ आत्मनम् ।

अधुवत्त्व गुण मन्थे भोगायु^१ कायसपदाम् । ध्रुवेष्वेपु कृतो मुक्तिर्विना मुक्ते कृत सुखम् ॥२०४॥
^२विश्वभ्रमजननै पूर्व पश्चात् प्राणाधहारिणि । पारिपन्थिकसङ्काशविषये कस्य नापदः ॥२०५॥
 तददु सत्यैव माहात्म्य स्यात् सुख विषयैश्च यत् । यत्कारवत्तिलका स्वादु प्राभव ननु तत्सुख ॥२०६॥
 सकल्पसुखसतोषाद् विमुखस्वात्मजात् सुखार् । गुप्ताग्नितापसतुष्टशाखाभृगसमो जनः ॥२०७॥
 सदास्ति निजरा नासौ युक्त्यै बन्धच्युतेर्विना । तच्छ्रुतिश्च हतेबन्धहेतोस्तत्तद्वतौ यते ॥२०८॥
 केन मोक्ष कथं जीव्यं^३ कुत सौख्यं क्व वा मतिः । परिग्रहाग्रहग्राहगृहीतस्य भवाणव ॥२०९॥
 किं^४ मय किमभ्योऽयमितिसशेरत्^५ बुधा । शास्त्राऽप्यनित्यतां^६ लक्ष्मीकणाक्षशरणाविते ॥२१०॥
 अथ कायहुम^७ कान्ताव्रतताततिवेष्टित । जरित्वा^८ जमकान्तारे^९ कालाग्निप्रासमाप्स्यति ॥२११॥
 यदि धमकणादित्थं^{१०} निदानविषद्विषयात्^{११} । सुख धर्माभ्युत्थान्मोधिमञ्जनेन किमुच्यते ॥२१२॥

भोग, आयु काल और सम्पदाओंमें जो अस्थिरपना है उसे मैं एक प्रकारका गुण ही मानता हूँ क्योंकि यदि ये सब स्थिर हो गये तो मुक्ति कैसे प्राप्त होगी ? और मुक्तिके बिना सुख कैसे प्राप्त हो सकेगा ? ॥ २०४ ॥ पहले तो विश्वास उत्पन्न करनेवाले और पीछे प्राण तथा धनको अपहरण करनेवाले शत्रु तुल्य इन विषयोंसे किसे भला आपदाएँ प्राप्त नहीं होती है ? ॥ २०५ ॥ इन विषयोंसे जो सुख होता है वह दुःखका ही माहात्म्य है क्योंकि जो करेला मीठा लगता है वह भूखका ही प्रभाव है ॥ २०६ ॥ यह जीव कल्पित सुखोंसे सन्तुष्ट होकर आत्मासे उत्पन्न होनेवाले वास्तविक सुखसे विमुख हो रहा है इसलिए यह जीव गुमचियोंके तापनेसे सन्तुष्ट होनेवाले बानरके समान है । भावाथ — जिस प्रकार गुमचियोंके तापनेसे बन्दर को ठण्ड नहीं दूर होती है उसी प्रकार इन कल्पित विषयजन्य सुखोंसे प्राणियोंकी दुःख रूप परिणति दूर नहीं होती है ? ॥ २०७ ॥ इस जीवके निजरा तो सदा होती रहती है परन्तु बन्ध का अभाव हुए बिना वह मोक्षका कारण नहीं हो पाती है, बन्धका अभाव बन्धके कारणोंका नाश होनेसे हो सकता है इसलिए मैं बन्धके कारणोंका नाश करनेमें ही प्रयत्नशील हूँ ॥ २०८ ॥ इस ससाररूपी समुद्रमें जिन्हें परिग्रहके ग्रहण करने रूप पिशाच लग रहा है उन्हें भला मोक्ष किस प्रकार मिल सकता है ? उनका जीवन किस प्रकार रह सकता है ? उन्हें सुख कहाँसे मिल सकता है और उन्हें बुद्धि ही कहाँ उत्पन्न हो सकती है ? ॥ २०९ ॥ लक्ष्मीके कटाक्ष रूपी बाणोंसे मुलाये हुए (नष्ट हुए) पुरुषम अनित्यताको जानकर भी विद्वान् लोग 'यह भ्रम्य है ? अथवा अभय है ? इस प्रकार व्यय सशय करने लगते हैं ॥ २१० ॥ स्त्रीरूपी लताओंके समूहमें घिरा हुआ यह शरीररूपी वृक्ष संसाररूपी अटवीमें जीर्ण होकर कालरूपी अग्निका प्रास हो जायगा ॥ २११ ॥ जब कि निदानरूपी विषसे दूषित कर्मके एक अंशसे मुझे ऐसा सुग्न मिला है तब धमरूपी अमृतके समुद्रम अवगाहन करनेसे जो सुख प्राप्त होगा उसका तो

१ काल — ल० । २ विश्वासजनक । ३ शत्रुसदृश । ४ न विपत्तयः । ५ कटुकास्वाद शाकविशेष । कारवत्तिलकं स्वादु प०, द० स० अ० ल० । ६ बुभुक्षाया । ७ विमुखस्वात्मजान् ल० प० इ०, अ० । ८ तन कारणान् । ९ दर्शन करामि । १० जीवनम् । ११ परिग्रहस्वीकारनक्रस्वीकृतस्य । १२ विशिष्टेष्ट परिणामन किं भविष्यति । १३ नगयं कुवन्ति । १४ अपाङ्गदग्नवाणस्तनूकृतगरीरे पृष्टि । १५ भायलित्वा । १६ जीर्णभूत्वा । १७ यमत्वाग्नि । १८ धमलेशान् । १९ कपोतजग्मनि कुवरमित्रण स्वन कृतदानपुण्यस्य वाग कपोतस्य दत्त विद्याधरविमान विलोक्य कपोत धेच्छिदत्तपुण्यागात् भव विद्याधरस्य भवत्विति श्रुतिनिगमविशद्विषयान् ।

६ विद्याधरान् अविरति प्रमाणं कपाय और योग य बन्धनके कारण है ।

अबोधद्वेषरागात्मा संसारस्तद्विपर्ययः । मोक्षश्चेद् वीक्षितो विद्भिः^१ कः क्षेपो^२ मोक्षसाधने ॥२१३॥
यदि^३ देशादिसाकल्ये न तपस्तत्पुनः कुतः । मध्येऽर्णवं यतो^४ वेगात् कराग्रच्युतरत्नवत् ॥२१४॥
आत्मस्त्वं परमात्मानमात्मन्यात्मानमात्मना । हिता दुरात्मतामात्मनीने^५ऽध्वनिं चरन्^६ कुरु ॥२१५॥
इति संचिन्तयन् गत्वा पुरं^{१०} परमतत्त्वचित् । सुवर्णवर्मणे राज्यं सामिषेकं त्रितिर्यं सः ॥२१६॥
अत्रत्कीर्य^{११} महीं प्राप्य श्रीपुरं श्रीनिकेतनम्^{१२} । दीक्षां जैनेश्वरी प्राप श्रीपालगुरुर्ननिधौ ॥२१७॥
परिग्रहग्रहान्मुक्तो दीक्षित्वा स तपोऽशुभिः । हिरण्यवर्मा^{१३} घर्माशुनिर्मलो व्यद्युतत्तराम् ॥२१८॥
प्रभावती च तन्मात्रा^{१४} गुणवत्यास्ततोऽगमत् । कुतश्चन्द्रमसं मुक्त्वा चन्द्रिकायाः स्थितिः पृथक् ॥
सद्वृत्तस्तपसा दीप्तो दिगम्बरविभूषणः^{१६} । निस्संगो^{१७} व्योमगाम्येकविहारी विश्ववन्दितः ॥२२०॥
नित्योदयो^{१८} बुधाधीशो विश्वदृष्टा^{१९} विरोचनः^{२०} । स कदाचित् समागच्छन्मोदयन् पुण्डरीकिणीम् ॥२२१॥

कहना ही क्या है ? ॥२१२॥ यह ससार अज्ञान, द्वेष और राग स्वरूप है तथा मोक्ष इससे विपरीत है अर्थात् सम्यग्ज्ञान और समता स्वरूप है । यदि विद्वान् लोग ऐसा देखते रहे तो फिर मोक्ष होनेमें देर ही क्या लगे ? ॥२१३॥ जिस प्रकार वेगसे जाते हुए पुरुषके हाथसे बीच समुद्रमें छूटा हुआ रत्न फिर नहीं मिल सकता है उसी प्रकार देश-काल आदिकी सामग्री मिलनेपर भी यदि तप नहीं किया तो वह तप फिर कैसे मिल सकता है ? ॥२१४॥ इसलिए हे आत्मन्, तू आत्माका हित करनेवाले मोक्षमार्गमें दुरात्मता छोड़कर अपने आत्माके द्वारा अपने ही आत्मामें परमात्मा रूप अपने आत्माको ही स्वीकार कर ॥२१५॥ इस प्रकार चिन्तन करते हुए परम तत्त्वके जाननेवाले राजा हिरण्यवर्माने अपने नगरमें जाकर अपने पुत्र सुवर्णवर्मके लिए अभिषेकपूर्वक राज्य सौंपा और फिर विजयार्द्ध पर्वतसे पृथ्वीपर उतरकर लक्ष्मीके गृहस्थरूप श्रीपुर नामके नगरमें श्रीपाल गुरुके समीप जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली ॥२१६-२१७॥ परिग्रहरूपी पिशाचसे युक्त हो दीक्षा धारण कर सूर्यके समान निर्मल हुआ वह राजा हिरण्यवर्मा तपश्चरणरूपी किरणोंसे बहुत ही देदीप्यमान हो रहा था ॥२१८॥ प्रभावतीने भी हिरण्यवर्माकी माता-शशिप्रभाके साथ गुणवती आर्यिकाके समीप तप धारण किया था सो ठीक ही है क्योंकि चन्द्रमाको छोड़कर चाँदनीकी पृथक् स्थिति भला कहाँ हो सकती है ? ॥२१९॥ वे हिरण्यवर्मा मुनिराज ठीक सूर्यके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार सूर्य सद्वृत्त अर्थात् गोल है उसी प्रकार वे मुनिराज भी सद्वृत्त अर्थात् निर्दोष चारित्र्यको धारण करनेवाले थे । जिस प्रकार सूर्य तप अर्थात् गरमीसे देदीप्यमान रहता है उसी प्रकार मुनिराज भी तप अर्थात् अनशनादि तपश्चरणसे देदीप्यमान रहते थे, जिस प्रकार सूर्य दिगम्बर अर्थात् दिशा और आकाशका आभूषण है उसी प्रकार मुनिराज भी दिगम्बर अर्थात् दिशारूप वस्त्र-को धारण करनेवाले निर्ग्रन्थ मुनियोंके आभूषण थे, जिस प्रकार सूर्य नि सग अर्थात् सहायता-रहित अकेला होता है उसी प्रकार मुनिराज भी नि सग अर्थात् परिग्रहरहित थे, जिस प्रकार सूर्य आकाशमें गमन करता है उसी प्रकार चारणवृद्धि होनेमें मुनिराज भी आकाशमें गमन करते थे, जिस प्रकार सूर्य अकेला ही घूमता है उसी प्रकार मुनिराज भी अकेले ही घूमते थे — एकविहारी थे, जिस प्रकार सूर्यको सब वन्दना करते हैं उसी प्रकार मुनिराजको भी सब वन्दना

१ अज्ञान । २ बुध् । ३ कालयापना । ४ मुदेशकुलजात्यादिमामग्ये । ५ गच्छन् । ६ आत्मन् स्व ल० । ७ आत्महिते । ८ मार्गे । ९ वर ल०, प० । रति कुल अ०, म० । १० धान्यकमालवनात् निजनगर प्राप्य । ११ विन्दाटीचलान् भुव प्राप्य । १२ श्रीगृहम् । १३ आदित्य । १४ हिरण्यवर्मणो जनन्या शशिप्रभया सह । १५ गुणवत्यादिकाया समीपे । १६ त्रिपलं दिग्दृष्ट अम्बर च विभूषयतीति । १७ गगनचारिण । १८ सर्वत्रालोक्यपृथगे । १९ जगच्चक्षु । २० रविरिव ।

सप्रभा चन्द्रलेखेव सह तत्र प्रभावती । गुणवत्त्वा समागँस्त^२ संगतिः स्याद्यरञ्जया ॥२२२॥
^३गुणवत्तार्यिको दृष्ट्वा नत्वोक्ता प्रियदत्तया । ^४कुतोऽसौ^५ गणिनीत्याख्यत्^६ स्वगतति प्रभावती ॥२२३॥
 तच्छ्रुत्वा नेत्रमूला^७ नौ सैवेति^८ शुचमागता । कुत प्रीतिस्तयस्युक्ता साऽभवीत् प्रियदत्तया ॥२२४॥
 न स्मरिष्यसि किं पारावतद्वद्व मवद्गृहे । ^९तत्राह रतिपेणेति तच्छ्रुत्वा विस्मिताऽवदत् ॥२२५॥
 क्वासौ रतिवरोऽद्येति सोऽपि विद्याधराधिप । हिरण्यवर्मा^{१०} कर्मोरियैतिरत्रेति^{११} साभवीत् ॥२२६॥
 प्रियदत्ताऽपि त^{१२} गत्वा वन्दित्वैत्य^{१३} महामुनिम् । प्रभावती परिप्रश्नात् पथ्युरत्थाह वृत्तकम् ॥२२७॥
 विजयादगिरेरस्य गा-धारनगरादिह^{१४} । विहर्तुं रतिपेणोऽस्मा गा-धारा प्रियथाऽगमत् ॥२२८॥
 गा-धारी सपदष्टाऽहमिति तत्र भृषा स्थिता । मन्त्रौषधी प्रयोज्यास्या श्रष्टी^{१५} विद्याधरश्च स ॥२२९॥

करते थे जिस प्रकार सूर्यका नित्य उदय होता है उसी प्रकार मुनिराजके भी ज्ञान आदिका नित्य उदय होता रहता था, जिस प्रकार सूर्य बुध अर्थात् बुधग्रहका स्वामी होता है उसी प्रकार मुनिराज भी बुध-अर्थात् विद्वानोके स्वामी थे, जिस प्रकार सूर्य विश्वदृष्टा अर्थात् सब पदार्थों को प्रकाशित करनेवाला है उसी प्रकार मुनिराज भी विश्वदृष्टा अर्थात् सब पदार्थोंको जानने वाल थे, जिस प्रकार सूर्य विरोचन अर्थात् अत्यन्त देदीप्यमान रहता है अथवा विरोचन नामको धारण करनेवाला है उसी प्रकार मुनिराज भी विरोचन अर्थात् अत्यन्त देदीप्यमान थे अथवा रुचिरहित उदासीन थे और जिस प्रकार सूर्य पुण्डरीकिणी अर्थात् कमलिनीको प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार मुनिराज भी पुण्डरीकिणी अर्थात् विदेह क्षेत्रकी एक विशेष नगरीको आनन्दित करते थे इस प्रकार सूर्यकी समानता रखनेवाले मुनिराज हिरण्यवर्मा किसी समय पुण्डरीकिणी नगरीमें पधारे ॥२२०-२२१॥ प्रभासहित चद्रमाकी कलाके समान आर्यिका प्रभावती भी वहाँ आयी और गुणवती गणिनीके साथ मिलकर रहने लगी सो ठीक ही है क्योंकि समागम अपनी इच्छानुसार ही होता है ॥२२२॥ गुणवती गणिनीको देखकर प्रियदत्ताने नमस्कार कर पूछा कि सधाधिकारिणी अमितमति कहाँ है ? तब उसने कहा कि 'वह तो स्वर्ग चली गयी है यह सुनकर प्रभावती कुछ शोक करने लगी और कहने लगी कि 'हम दोनोंकी आँखें वही थी, तब प्रियदत्ताने पूछा कि उनके साथ तुम्हारा प्रेम कैसे हुआ ? उत्तरमे प्रभावती कहने लगी कि आपको क्या स्मरण नहीं है आपके घरमें जो कबूतर-कबूतरीका जोड़ा रहता था उनम-से मैं रतिपेणा नामकी कबूतरी हूँ, यह सुनकर प्रियदत्ता आश्चर्यसे चकित होकर कहने लगी कि 'वह रतिवर कबूतर आज कहाँ है तब प्रभावतीने कहा कि वह भी विद्याधरोंका राजा हिरण्यवर्मा हुआ है और कमरूपी शत्रुओंको नाश करनेवाला वह आज इसी पुण्डरीकिणी नगरी मे विराजमान है । प्रियदत्ताने भी जाकर महामुनि हिरण्यवर्माकी वन्दना की और फिर प्रभावतीके पूछनेपर अपने गतिका वृत्तान्त इस प्रकार कहने लगी ॥२२३-२२७॥

एव रतिपेण नामका विद्याधर अपनी स्त्री गा-धारीके साथ-साथ इसी विजयार्ध पवतवे गा-धार नगरसे विहार करनेके लिए यहाँ आया था ॥२२८॥ मुझ सपने काट खाया है इस प्रकार झूठ-झूठ बहाना कर गा-धारी यहाँ पड रही, सेठ कुबेरकान्त और विद्याधरने बहुत-सी औपधियाका प्रयोग किया परन्तु गा-धारीने मायाचारीसे कह दिया कि 'अभी मुझे

१ पुण्डरीकिण्याम् । २ समागतवती संगतवती वा । ३ गुणवत्त्वादिका ट० । गुणवती धनिप्रभावत्यायिका । ४ क्वासौ । ५ यदावती । ६ अनन्तमत्तिसहितामितमायाधिका । ७ गुणवती जगाम् । ८ नाक प्राप्नोति । ९ मन्त्रमदुसी । १० प्रियन्तः । ११ पारावतम् । १२ कर्मोरियाति ल० प० । १३ अस्मिन् पुरे तिष्ठतीति । १४ प्रभावती । १५ हिरण्यवममुनिम् । १६ पुनरागत्य । १७ पुण्डरीकिण्याम् । १८ कुबेरकात् ।

मायया नास्मि शान्तेति तद्वाक्यान खेदमागता^१ । आह तु स्वपत्नौ याते वन^२ शक्तिमर्दोपधम्^३ ॥२३०॥
 गान्धारी^४ वन्धकीभाव^५मुपेत्य स्मरविक्रियाम् । दर्शयन्ती निरीक्ष्याह वणिग्वर्यो दृढव्रतः ॥२३१॥
 अह^६ वर्षचरो वेत्सि न किं मामित्युपायवित् । व्यधाद् विरक्तचित्तां ता तदेव हि धियः फलम् ॥२३२॥
 तदानीमागते पत्यौ स्वे स्वास्थ्यमहमागता । पूर्वापधप्रयोगेत्युक्त्वाऽगात् सपतिः पुरम् ॥२३३॥
 दयितान्तकुवेराख्यो मित्रान्तश्च कुवेरवाक् । पर कुवेरदत्तश्च कुवेरश्चान्तदेववाक्^७ ॥२३४॥
 कुवेरादिप्रियश्चान्यः पञ्चैते मंचितश्रुता^८ । कलाकौशलमापन्नाः सपन्नवर्यावनाः ॥२३५॥
 पुनैः स्वसृनुभिः सार्धमारुह्य शिविका वनम् । श्रुत्वा कुवे^९रश्रीगमं मां विहर्तुं समागताम् ॥२३६॥
 दृष्ट्वा कदाचिद् गान्धारी पृथक्^{१०} पृष्टवती पुमान् । न्वच्छ्रेष्ठी^{११} नेति तत्सत्यमुत्^{१२}नेन्यन्ववादिशम् ॥२३७॥
 तत्सत्यमेव^{१३} मत्तोऽन्या प्रत्यसौ न पुमानिति । तदाकर्ण्य विरज्यासौ^{१४} सपतिः संयमं श्रिता ॥२३८॥
 पुनस्तत्रागता^{१५} दृष्ट्वा त्रीक्षेयं केन हेतुना । तवेति सा मया पृष्टा प्रप्रणम्य प्रियोक्तिभिः ॥२३९॥
 श्रेष्ठेव ते तपोहेतुरिति प्रत्यवर्षादसौ । निगूढ तद्वचः श्रेष्ठी श्रुत्वाऽऽगत्य पुर स्थितः ॥२४०॥
 मामर्जपति^{१६} सखाऽसौ मे^{१७} क्वाद्येति परिपृष्टवान् । सोऽपि मत्कारणेनैव गृहीत्वेहागमत्तपः^{१८} ॥२४१॥
 इति तद्वचनाच्छ्रेष्ठी नृपश्चाभ्येत्य त मुनिम् । वन्दित्वाधर्ममापृच्छत्य काललब्ध्या महीपतिः^{१९} ॥२४२॥

शान्ति नहीं हुई है, यह मुनकर उसके पति रतिपेणको बहुत दुःख हुआ । वह अधिक शक्ति-
 वाली औपधि लानेके लिए वनमे चला गया, इधर उसके चले जानेपर गान्धारीने कुलटापन
 धारण कर कामकी चेष्टाएँ दिखायी, यह देखकर उपायको जाननेवाले और अपने व्रतमे दृढ रहने-
 वाले सेठ कुवेरकान्तने कहा कि अरे, मैं तो नपुसक हूँ — क्या तुझे मालूम नहीं ? ऐसा कहकर
 सेठने उसे अपनेसे विरक्तचित्त कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिका फल यही है ॥२२९-
 २३२॥ इतनेमे ही उसका पति वापस आ गया, तब गान्धारीने कह दिया कि मैं पहले दी हुई
 औपधिके प्रयोगसे ही स्वस्थ हो गयी हूँ ऐसा कहकर वह पतिके साथ नगरमे चली गयी ॥२३३॥
 कुवेरदयित, कुवेरमित्र, कुवेरदत्त, कुवेरदेव और कुवेरप्रिय ये पाँच मेरे पुत्र थे । ये पाँचो ही
 समस्त शास्त्रोको जाननेवाले, कला-कौशलमे निपुण तथा नव यौवनसे सुशोभित थे । किसी एक
 दिन जब कि कुवेरश्री कन्या मेरे गर्भमे थी तब मैं अपने पूर्वोक्त पुत्रोके साथ पालकीमे बैठकर
 वनमे विहार करनेके लिए गयी थी उसी समय गान्धारीने मुझे देखकर और अलग ले जाकर
 मुझसे पूछा कि 'आपके सेठ पुरुष नहीं है' क्या यह बात सच है अथवा झूठ ? तब मैंने उत्तर
 दिया कि विलकुल सच है क्योंकि वे मेरे सिवाय अन्य स्त्रियोके प्रति पुरुष नहीं है यह सुनकर
 उसने विरक्त हो अपने पतिके साथ-साथ सयम धारण कर लिया ॥२३४-२३८॥ किसी
 एक दिन वह गान्धारी आर्यिका यहाँ फिर आयी तब मैंने दर्शन और प्रणाम कर प्रिय वचनो-द्वारा
 पूछा कि 'आपने यह दीक्षा किस कारणसे ली है ?' उसने उत्तर दिया था कि 'मेरे तपश्चरण-
 का कारण तेरा सेठ ही है, सेठ भी गुप्तरूपसे यह बात सुनकर सामने आकर खड़े हो गये
 और पूछने लगे कि जिसने मुझे जीत लिया है ऐसा मेरा मित्र आज कहाँ है ?
 तब गान्धारी आर्यिकाने कहा कि 'वे भी मेरे ही कारण तप धारण कर यहाँ पधारे है,
 ॥२३९-२४१॥ यह मुनकर सेठ और राजा दोनो ही उन मुनिराजके समीप गये और दोनोने

१ -मागते ल० । ती द्वौ खेदमानर्ता अ०, स० । २ विजयार्द्धवनम् । ३ विपापहरणसामर्थ्यवन्महोपधम् ।
 ४ गान्धारी ल० । ५ कुलटात्वम् । ६ दर्शयन्ती ल० । ७ वर्षचर ल० । पण्ड । ८ पतिसहिता । ९ कुवेर-
 देव । १० कुवेरश्चित्र नवन्धि गर्भम् । ११ एकान्ते । १२ पुमान् न भवतीति । १३ असत्य वा । १४ मत् ।
 १५ गान्धारी । १६ पुण्डरीकिण्याम् । १७ जितवती । १८ मम मित्र रतिपेण । १९ कुत्र तिष्ठतीति ।
 २० गनन्तः ल०, अ०, प०, स० । २१ लोकपाल ।

गुणपालाय तद्वाच्यं दत्ता सयममादधे^१ । निकटे रतिपेणस्य विद्याधरमुनाशितु^२ ॥२४३॥
 पञ्चम^३ स्वपदं सूनुं नियो-या-यै^४ सहाम^५ । ययौ भ्रेष्टी^६ च तत्रैव दीक्षा मोक्षामिलापुक^७ ॥२४४॥
 तथोक्त्वा कान्तवृत्तान्तं सा^८ समुत्पन्नसन्निधा^९ । विरज्य गृहसवासात् कुबेरप्रियसतीम्^{१०} ॥२४५॥
 गुणपालाय वचा स्वी सुता गुणवती^{११} श्रिता । प्रभावत्युपदेशेन प्रियदत्ताऽप्यदीक्षत^{१२} ॥२४६॥
 मुनिं हिरण्यवर्माणं कदाचित् प्रेतभूतले^{१३} । दिनानि सप्त सगोच^{१४} प्रतिमायोगधारिणम् ॥२४७॥
 वदित्वा नागरा^{१५} सर्वे तत्पूजमत्रसकथा । कुर्वाणा पुरमागच्छन् विद्युच्चोरोऽप्युदीरितात्^{१६} ॥२४८॥
 चक्षुष्या प्रियदत्तायास्तःसुने प्राक्तनं भवम् । विदित्वा तद्गतक्रोधात्तदी-पन्नविभङ्गक^{१७} ॥२४९॥
 मुनिपृथकप्रदेशस्था^{१८} प्रतिमायोगमास्थिताम्^{१९} । प्रभावतीं च सशो-य चितिकायां^{२०} दुराशय ॥२५०॥
 एकस्यामेव निक्षिप्वाधाक्षा^{२१} दधजिपृक्षया^{२२} । सोढवा तदुपसर्गं तौ विशुद्धपरिणामतः ॥२५१॥
 स्वर्गं समुदपद्येतां^{२३} क्षमया किं न जायते । सुवर्णवर्मा तज्ज्ञात्वा विद्युच्चोरस्य निग्रहम् ॥२५२॥
 करिष्यामीति क्रोपन् पापिनं सगरं व्यधात्^{२४} । विदित्वाऽवधिवोधेन तत्ती^{२५} स्वर्गनिवासिनौ ॥२५३॥
 प्राप्य सयमरूपेण सुतां धमकथादिभिः । तत्रैव भद्राप्य^{२६} त कोपादपात्यं कृपयाऽऽहिता^{२७} ॥२५४॥

ही वन्दना कर धमका स्वरूप पूछा । काललब्धिका निमित्त पाकर राजा लोकपालने अपने पुत्र गुणपालके लिए राज्य दिया और उन्ही विद्याधर मुनि रतिपेणके निकट सयम धारण कर लिया ॥२४२-२४३॥ मोक्षके अमिलापो सेठने भी अपने पाँचवे पुत्र - कुबेरप्रियको अपने पदपर नियुक्त कर अय सब पुत्रोके साथ साथ वहीं दीक्षा धारण की ॥२४४॥ इस प्रकार प्रियदत्ता अपने पतिका वत्तात कहकर उत्पन्न हुए आत्मज्ञानके द्वारा गृहवाससे विरक्त हो गयी थी उस सतीने अपनी कुबेरश्री पुत्री राजा गुणपालको दी और स्वयं गुणवती आर्थिकाके समीप जाकर प्रभावतीके उपदेशसे दीक्षा धारण कर ली ॥२४५-२४६॥ किसी समय मुनिराज हिरण्यवर्मने सात दिनका नियम लेकर धमशानभूमिम प्रतिमा योग धारण किया, नगरके सब लोग उनकी वन्दना करनेके लिए गये थे । वन्दना कर उनके पूर्वभवकी कथाएँ कहत हुए जब सब लोग नगरको वापस लौट आये तब एक विद्युच्चोरने भी प्रियदत्ताकी चेटीसे उन मुनिराजका वृत्तांत सुना, सुनकर उसे उनके प्रति कुछ क्रोध उत्पन्न हुआ और उसी क्रोध के कारण उसे विभगावधि भी प्रकट हो गया, उस विभगानधिसे उसने मुनिराजके पूर्वभवके सब समाचार जान लिये । यद्यपि मुनिराज प्रतिमायोग धारण कर अलग ही विराजमान थे और प्रभावती भी अलग विद्यमान थी तो भी उस दुष्टने पापसंचय करनेकी इच्छासे उन दोनोंको मिलाकर और एक ही वित्तापर रखकर जला दिया वे दोनों विशुद्ध परिणामोसे उपसर्ग सहन कर स्वर्गम उत्पन्न हुए सो ठीक ही है क्योंकि क्षमासे क्या-क्या नहीं होता ? जब सुवर्णवर्मा का हम बातका पता चला तब उसने प्रतिज्ञा की कि मैं विद्युच्चोरका निग्रह अवश्य ही करूँगा - उसे अवश्य ही मारूँगा । यह प्रतिज्ञा स्वर्गम रहनेवाले हिरण्यवर्मा और प्रभावतीके जीव देव देविमाने अवधानानस जान ली शीघ्र ही सयमीका रूप बनाकर पुत्रके पास पहुँचे, दया

१-मान्नी अ० ल० प० स० ६० । २ मुनीगिन ल० । ३ चरमपुत्र कुबेरप्रियम् । ४ कुबेरदयिता मि । ५ कुबेरवात । ६ प्रियस्य वृत्तम् । ७ प्रियन्ता । ८ समुत्पन्नज्ञान । ९ सती ल० । १० लोकपालस्य भुताय । ११ गुणवत्यापिकाम । १२ दीक्षामग्रहीत् । १३ चरमभूतले ल० । १४ वित्तायोगमग्रहीतल । परेतभूमा विषय । १५ प्रतिमा दुराश । १६ वचनात् । उदीरिताम् ल०, अ०, प० स० ६० । १७ निभङ्गत ल० अ० ग० ६० । १८ नित्यमण्डितचत्पालस्य पुर प्रतिमायोगस्थितामित्यम् । प्रवेशस्वे ल० । १९-मास्थितम् ल० । २० शरसत्पायाम् । २१ दक्षिण स्म । २२ पाप गृहीतुनिच्छया । २३ वनकप्रभ दधनकप्रभः गी गमलानो । २४ हिरण्यवर्मण मुन । २५ प्रतिज्ञाभकरोन । २६ हिरण्यवर्मप्रभावताचरदेव देशो । २७ वि राग नाग्य । २८ यथा स्वाहृणी ।

दिव्यरूपं समादाय निगद्य निजवृत्तकम् । प्रदायाभरणं तस्मै परादर्थ्यं स्वपदं गतौ ॥२५५॥
 कदाचिद् वत्सविषये सुसीमा नगरे मुने । शिवघोषस्य कैवल्यं मुदपाद्यस्तघातिनः ॥२५६॥
 शक्रप्रिये^३ शची मेनका च नत्वा जिनेश्वरम् । समाश्रित्य सुराधीशं स्थिते प्रश्नात् सुरेशितुः ॥२५७॥
 अत्रैव सप्तमेऽहि^४ प्राक्^५ समात्तश्रावकव्रते । नाम्ना पुष्पवती सान्त्या^६ प्रथमा पुष्पपालिता ॥२५८॥
 कुसुमावचयासक्ते वने सर्पाग्निहेतुना^{१०} । मृते देव्यावजायेतामित्याहासौ स्म तीर्थकृत् ॥२५९॥
 प्रभावतीचरी देवी श्रुत्वा देवश्च तत्पतिः । स्वपूर्वभवसंबन्ध तत्रागातां सभावनेः^{११} ॥२६०॥
 निजान्यजन्मसौख्यानुभूतदेशान्निजेच्छया । आलोकयन्तौ तत्सर्पसरोवणसमीपगौ ॥२६१॥
 सह सार्थेन^{१२} भीमाख्यं साधुं दृष्ट्वा समागतम् । विनयेनाभिवन्द्यैनं धर्मं तौ समपृच्छताम् ॥२६२॥
 मुनिस्तद्वचनं श्रुत्वा नाहं धर्मोपदेशने । सर्वागमार्थवित्कार्येऽसमर्थो नवसंयतः ॥२६३॥
 प्ररूपयिष्यते किञ्चित्^{१३} स युष्मदनुरोधतः । मया तथापि श्रोतव्यं यथाशक्त्यवधानवत्^{१४} ॥२६४॥
 इति सम्यक्त्वसत्पात्रदानादि श्रावकाश्रयम् । यमादियतिसवन्धं धर्मं गतिचतुष्टयम् ॥२६५॥
 तद्धेतुफलपर्यन्तं भुक्तिमुक्तिनिबन्धनम्^{१५} । जीवादिद्रव्यतत्त्व च यथावत् प्रत्यपादयत् ॥२६६॥

धारण करनेवाले उन देव-देवियोने धर्मकथाओ आदिके द्वारा तत्त्वश्रद्धान कराकर उसका क्रोध दूर किया और अन्तमे अपना दिव्यरूप प्रकट कर अपना सब हाल कहा तथा उसे बहुमूल्य आभूषण देकर दोनो ही अपने स्थानपर चले गये ॥२४७-२५५॥ किसी एक दिन वत्स देशमे सुसीमानगरीके समीप घातिया कर्म नष्ट करनेवाले शिवघोष मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥२५६॥ उस उत्सवमे शची और मेनका नामकी देवागनाएँ भी इन्द्रके साथ आयी और श्रीजिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर इन्द्रके पास ही बैठ गयी । इन्द्रने भगवान्से पूछा कि ये दोनो किस कारणसे देवियाँ हुई हैं ? तब तीर्थ कर देव कहने लगे कि दोनो ही पूर्वभवमे मालिनकी लडकियाँ थी, पहलीका नाम पुष्पपालिता था और दूसरीका पुष्पवती । इन दोनोने आजसे सातवे दिन पहले श्रावकव्रत लिये थे । एक दिन ये वनमे फूल तोडनेमे लगी हुई थी कि सर्परूपी अग्निके कारण मर गयी और मरकर देवियाँ हुई हैं ॥२५७-२५९॥ हिरण्यवर्मा और प्रभावतीके जीव जो देव-देवी हुए थे उन्होने भी उस समय समवसरणमे अपने पूर्वभवके सम्बन्ध सुने और फिर दोनो ही सभाभूमिसे निकलकर इच्छानुसार पूर्वभव सम्बन्धी सुखानुभवनके स्थानोको देखते हुए सर्पसरोवरके समीपवाले वनमे पहुँचे ॥२६०-२६१॥ उस वनमे अपने सघके साथ-साथ एक भीम नामके मुनि भी आये हुए थे, दोनोने उन्हें देखकर विनयपूर्वक नमस्कार किया और धर्मका स्वरूप पूछा ॥२६२॥ उनके वचन सुनकर मुनि कहने लगे कि अभी नवदीक्षित हूँ, धर्मका उपदेश देना तो समस्त शास्त्रोका अर्थ जाननेवाले मुनियोका कार्य है इसलिए यद्यपि मैं धर्मोपदेश देनेमे समर्थ नहीं हूँ तथापि तुम्हारे अनुरोधसे शक्तिके अनुसार कुछ कहता हूँ तुम लोगोको सावधान होकर सुनना चाहिए ॥२६३-२६४॥ यह कहकर उन्होने सम्यग्दर्शन तथा सत्पात्रदान आदि श्रावक सम्बन्धी और यम आदि मुनि सम्बन्धी धर्मका निरूपण किया । चारो गतियाँ, उनके कारण और फल, स्वर्ग मोक्षके निदान एव जीवादि द्रव्य और तत्त्व इन

१ दिव्य रूप त०, प०, इ० । २ समुत्पन्नम् । ३ इन्द्रस्य वत्सभे । ४ इमे पूर्वजन्मनिके इति इन्द्रस्य प्रश्न-
 वशान् तीर्थकृदाह । ५ आ सप्तदिनात् पूर्वमित्यर्थ । ६ पूर्वजन्मनि । ७ नम्यन्स्वीकृत । ८ मान्या य० ।
 ९ पुष्पवर्णवनामि वने पुष्पादीकुसुमावचयार्थमानवने इत्यर्थ । १० अत्रिनिपातिन्का गेन । ११ मन्-
 नवरणात् । १२ वणिक्छिवरेण । १३ धर्म । १४ त्रिगविशेषणम् । १५ न्ययम् । १६ मुक्तिगान्गम् ।

आरक्षिणो^१ निगृह्णीयुदत्त विमतय^२ धनम् । इत्यब्रवीत् स^३ सोऽप्याह गृहीत न मयेति तत्^४ ॥२९१॥
 विमतेरव तद्गोहे इच्छोपायन केनचित् । दण्डकारणिकै^५ प्रोक्त मृत्स्ना पात्रात्रयोन्मिषम् ॥२९२॥
 शकुतो^६ मक्षण मरुडैस्त्रिंश मुष्ट्यभिषादनम् । सवस्वहरण चैतस्त्रय जीवितवान्छया ॥२९३॥
 स सवमनुभूयायात् प्राणान्ते नारकी गतिम् । विद्युच्चोरस्त्वया हन्यतामित्यारक्षको वृषात् ॥२९४॥
 लब्धादशोऽप्यह हन्मि^७ नैन हिंसादिवजनम् । प्रतिज्ञात मया साधोरित्याशा नाकरोदसौ ॥२९५॥
 गृहातोत्कोच^८ इत्यप^९ चोरारक्षक्योनृप । शृङ्खलाबन्धन रुन्धवा कारयामास निघृणम्^{१०} ॥२९६॥
 त्ययाऽह हेतुना केन हतो नेत्यनुयुक्तवान् । प्रमुष्ट्यारक्षक चोर सोऽप्येव प्रत्यपादयत् ॥२९७॥
 पतत्पुरममुष्यैव राज्ञः पितरि रक्षति । गुणपाले महाधेष्टी कुबेरप्रियसङ्गया ॥२९८॥
 अत्रैव नाटकाचार्यतनूजा नाट्यमालिका । आस्थायिकाया भावेन स्थायिनानृत्यदुद्रसम् ॥२९९॥
 तदालोक्य महापालो बहुविस्मयमागमत् । गणिकोत्पलमालास्यत् किमत्राश्चर्यमीश्वर ॥३००॥
 श्रेष्ठिनोऽस्य^{११} मिथोऽभ्येष्टु प्रतिमायोगधारिण । सोपवासस्य पूज्यस्य गत्वा चालयितु मनः ॥३०१॥
 नाशक^{१२} तदिहाश्चयमित्याख्यद् भूमुजापि सा । गुणप्रिये वृणीष्वेति^{१३} प्रोक्ता क्रीलाभिरक्षणम् ॥३०२॥
 अभीष्ट मम देहीति तद्वत् व्रतमब्रवीत् । अयदा तद्गृहं^{१४} सर्वरक्षितास्य समागमत् ॥३०३॥

कहा कि मैंने बाकीका धन विमतिके लिए दे दिया है । जब विमतसे पूछा गया तब उसने कह दिया कि मैंने नहीं लिया है, इसके बाद कोतवालने वह धन किसी उपायसे विमतिके घर ही देख लिया उसे दण्ड देना निश्चित हुआ, दण्ड देनेवालोंने कहा कि या तो मिट्टीकी तीन थाली भरकर बिष्टा खाओ, या मल्लोके तीस मुक्कीकी चोट सहो या अपना सब धन दो । जीवित रहनेकी इच्छासे उसने पूर्वोक्त तीनों दण्ड सहें और अन्तमे भरकर नरक गतिको प्राप्त हुआ । राजाने एक चाण्डालको आज्ञा दी कि तू विद्युच्चोरको मार डाल परन्तु आज्ञा पाकर भी उसने कहा कि मैं इसे नहीं मार सकता क्योंकि मैंने एक मुनिसे हिंसादि छोड़नेकी प्रतिज्ञा ले रखी है ऐसा कहकर उसने जब राजाकी आज्ञा नहीं मानी तब राजाने कहा कि इसने कुछ घूस खा ली है इसलिए उसने क्रोधित होकर चोर और चाण्डाल दोनोंको निदयतापूर्वक साँकलसे बँधवा दिया ॥ २९०-२९६ ॥ चोरने सन्तुष्ट होकर चाण्डालसे पूछा कि तूने किस कारणसे मुझे नहीं मारा तब चाण्डाल इस प्रकार कहने लगा कि ॥ २९७ ॥ पहल इस नगरकी रक्षा इसी राजाके पिता गुणपाल करते थे और उनके पास कुबेरप्रिय नामका एक बड़ा सेठ रहता था ॥ २९८ ॥ इसी नगरीम नाट्यमालिका नामकी नाटकाचार्यकी एक पुत्री थी । एक दिन उसने राजसभाम रति आदि स्थायी भावी-द्वारा शृंगारादि रस प्रकट करते हुए नृत्य किया ॥२९९॥ वह नृत्य देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ तब उत्पलमाला नामकी वेश्या बोली कि हे देव, इसम क्या आश्चर्य है ? एक दिन अत्यन्त दान्त और पूज्य कुबेरप्रिय सेठने उपवासके दिन प्रतिमा योग धारण किया था, उस दिन मे उनका मन विचलित करनेके लिए गयी थी परन्तु उमम समय नहीं हो सकी । इस सप्ताहमें यही बड़े आश्चर्यकी बात है । यह सुनकर राजाने कहा कि 'हे गुणप्रिये ! तुझे गुण बहुत प्यारे लगते हैं इसलिए जो इच्छा हो सो माँग ।' तब उसने कहा कि मुझे नीलव्रतकी रक्षा करना इष्ट है यही वर दोजिए । राजाने वह वर उसे

१ तनूजा । २ निगृह्णं युयु । ३ विमनिनामधयाय । ४ चोर । विमतिसवि । ५ धनम् । ६ कारणज्ञे पुरोहितान्मिमवारिभिरित्यय । ७ गृहस्य । उच्चारणस्वरौ समलं गृहत् । पुरीष उरकोच गृहवचस्कमस्त्री बिष्टादिनी स्थियाम् । इत्यभिधानात् । ८ विमति । ९ न वरं करोमि । १० 'लब्धव उत्कोच जामिण' इत्यभिधानात् । ११ तलवर । १२ निघृणं यदा भवति तथा । १३ प्रमुष्ट्या अ० स० इ० प० । १४ आस्थान । १५ भठिन गमिनोऽन्यत् अ०, प० इ० स० । १६ न समर्थोऽभूवमहम् । १७ वाञ्छितं प्राप्य । १८ नृत्यमनागुणम् ।

रात्रौ तलवरो दृष्ट्वा तं बाह्याऽद्येति तेन^१ तत् ।^२ प्रतिपादनवेलायामेवायान्मन्त्रिणः सुतः ॥३०४॥
 नृपतेमैथुनो नाम्ना पृथुधीस्तं निरीक्ष्य सा । मञ्जूषायां विनिक्षिप्य गणिका सर्वरक्षितम् ॥३०५॥
 त्वया मदीयामरणं सत्यवत्यै समर्पितम् । त्वद्भगिन्यै तदानेयमित्याह नृपमैथुनम् ॥३०६॥
 सोऽपि प्राक्^३ प्रतिपाद्यैतद् व्रतग्रहणसंश्रुते । प्रातिकूल्यमगादीर्घ्यावान् द्वितीयदिने पुनः ॥३०७॥
 साक्षिण परिकल्प्यैनं मञ्जूषास्थं महीपतेः । सन्निधौ याचितो वित्तमसावुत्पलमालया ॥३०८॥
 न गृहीतं मयेत्यस्मिन्मिथ्यावादिनि भूभुजा । पृष्टा सत्यवती तस्य पुरस्तान्न्यक्षिपद्धनम् ॥३०९॥
 मैथुनाय नृपः क्रुध्वा खलोऽयं हन्यतामिति । आज्ञापयत्पदातीन् स्वान् युक्तं तन्न्यायवर्तिनः ॥३१०॥
^४पठन्मुनीन्द्रसद्धर्मशास्त्रसश्रवणाद् द्रुतम् । अन्येद्युः प्राक्तनं जन्म विदित्वा शममागते ॥३११॥
 यागहस्तिनि मांसस्य पिण्डदानमनिच्छति । तद्वीक्ष्योपायविच्छेष्टी विबुद्धयानेकपेङ्गितम् ॥३१२॥
 सर्पिर्गुडपयोमिश्रशाव्योदनसमर्पितम्^५ । पिण्डं प्रायोजयत्सोऽपि द्विरदस्तमुपाहरत्^६ ॥३१३॥
 तदा तुष्टा महीनाथो वृणीष्वेष्टं तवेति तम् । प्राह पश्चाद् ग्रहीष्यामीत्यभ्युपेत्य स्थितः स तु^७ ॥३१४॥
 सचिवस्य^८ सुतं दृष्ट्वा नीयमानं शुचा नृपात् । वरमादाय तद्घातात् दुर्वृत्तं तं व्यमोचयत् ॥३१५॥

दिया और उस दिनसे उसने शील व्रत ग्रहण कर लिया । किसी दूसरे दिन सर्वरक्षित नामका कोतवाल रातके समय उसके घर गया, उसे देखकर उत्पलमालाने उससे कहा कि आज मैं बाहिर की हूँ — रजस्वला हूँ । इधर इन दोनोंकी यह बात चल रही थी कि इतनेमें ही मन्त्रीका पुत्र और पृथुधी नामका राजाका साला आया, उसे देखकर उत्पलमालाने सर्वरक्षितको एक सन्दूकमें छिपा दिया और राजाके सालेसे कहा कि आपने जो मेरे आभूषण अपनी बहन सत्यवती-के लिए दिये थे वे लाइए । उसने पहले तो कह दिया कि हाँ अभी लाता हूँ परन्तु बादमें जब उसने सुना कि उसने शील व्रत ले लिया है तब वह ईर्ष्या करता हुआ प्रतिकूल हो गया । दूसरे दिन वह वेश्या सन्दूकमें बैठे हुए कोतवालको गवाह बनाकर राजाके पास गयी और वहाँ जाकर पृथुधीसे अपना धन माँगने लगी ॥३००—३०८॥ पृथुधीने राजाके सामने भी झूठ कह दिया कि मैंने इसका धन नहीं लिया है । जब राजाने सत्यवतीसे पूछा तो उसने सब धन लेकर राजाके सामने रख दिया ॥३०९॥ यह देखकर राजा अपने सालेपर बहुत क्रोधित हुआ, उसने अपने नौकरोको आज्ञा दी कि यह दुष्ट शीघ्र ही मार डाला जाय । सो ठीक ही है क्योंकि न्याय-मार्गमें चलनेवालेको यह उचित ही है ॥३१०॥ किसी एक दिन पाठ करते हुए मुनिराजसे धर्मशास्त्र सुनकर राजाके मुख्य हाथीको अपने पूर्व भवका स्मरण हो आया, वह अत्यन्त शान्त हो गया और उसने मासका पिण्ड लेना भी छोड़ दिया, यह देख उपायोके जानने-वाले सेठने हाथीकी सब चेष्टाएँ समझकर घी, गुड और दूध मिला हुआ शालि चावलोका भात उसे खानेके लिए दिया और हाथीने भी वह शुद्ध भोजन खा लिया ॥३११—३१३॥ उस समय सन्तुष्ट होकर राजाने कहा कि जो तुम्हें इष्ट हो सो माँगो । सेठने कहा — अच्छा यह वर अभी अपने पास रखिए, पीछे कभी ले लूँगा, ऐसा कहकर वह सेठ मुखमें रहने लगा ॥३१४॥ इसी समय मन्त्रीका पुत्र मारनेके लिए ले जाया जा रहा था उसे देखकर सेठको बहुत शोक हुआ और उसने राजाने अपना पहलेका रखा हुआ वर माँगकर उस दुराचारी मन्त्रीके पुत्रको

१ नन्वरेण मह । २ अथ याहीत्येतन्प्रतिपादन । ३ ज्ञानयामोन्मन्त्रिणम् । ४ प्रमत्तापातकान्मन्त्रिणं ज्ञानव्यम् ।

५ नीलम् । ६ नृपतेः स्त । ७ तम् ल०, अ०, प०, न०, ड० । ८ मन्त्रिणः पृथम् । ९ नृपनिम् ।

आरक्षिणो^१ निगृहीयुदस विमतम्^३ धनम् । इत्यब्रवीत् स^५ सोऽप्याह गृहीत न मयेति तत्^५ ॥२९१॥
 विमतरेव तद्गोहे दत्तवोपायन केनचित् । दण्डकारणिके^६ प्रोक्त मृत्स्ना पात्रीत्रयोन्मितम् ॥२९२॥
 शकृतो^७ मक्षण मङ्गलैस्त्रिभान्मुष्टयमिताङ्गनम् । सवस्वहरण चैतस्त्रय जीवितवाञ्छया ॥२९३॥
 'स सवमनुभूयायात् प्राणान्ते नारकी गतिम् । विद्युच्चोरस्त्वया हन्यतामित्यारक्षको नृपात् ॥२९४॥
 लब्धादशोऽप्यह हन्मि^८ नैनं हिंसादिबजनम् । प्रतिज्ञात मया साधोरित्याशां नाकरोदसौ ॥२९५॥
 गृहीतोत्कोच^९ इत्यथ^{१०} चोरारक्षकयोनृप । शृङ्खलाबन्धनं कृत्वा कारयामास निष्पणम्^{१२} ॥२९६॥
 त्वयाऽह हेतुना केन हतो नेत्यनुयुक्तवान् ।^{१३} प्रतुष्टधारक्षक चोर सोऽप्येव प्रत्यपादयत् ॥२९७॥
 एतत्पुरममुज्यैव राज्ञः पितरि रक्षति । गुणपाले महाधेष्टी कुबेरप्रियसत्तया ॥२९८॥
 अग्रेव नाटकाचार्यतनूजा नाट्यमालिका ।^{१४} आस्थायिकाया भावेन स्थायिनानृत्यदुःसम् ॥२९९॥
 तन्मालोक्य महापालो बहुविस्मयमागमत् । गणिकोत्पलमालाभ्यत् किमत्राश्चयमीश्वर ॥३००॥
 श्रेष्ठिनोऽस्य^{१५} मिथोऽन्यद्यु प्रतिमायोगधारिण । सोपवासस्थ पूज्यस्य गत्वा चालभितु मनः ॥३०१॥
 नाशक^{१६} तदिहाश्चयमित्याख्यद् भूभुजापि सा । गुणप्रिय वृणोष्वेति^{१७} प्रोक्ता शीलामिरक्षणम् ॥३०२॥
 अमीष्ट मम देहीति तद्वत् प्रतमप्रहीत् । अन्यदा तद्गृह^{१८} सवरक्षिताख्य समागमत् ॥३०३॥

कहा कि मैंने बाकीका धन विमतिके लिए दे दिया है । जब विमतिसे पूछा गया तब उसने कहा दिया कि मैंने नहीं लिया है, इसके बाद कोतवालने वह धन किसी उपायसे विमतिके घर ही देख लिया उसे दण्ड देना निश्चित हुआ, दण्ड देनेवालोंने कहा कि या तो मिट्टीकी तीन थाली भरकर बिठा खाओ या मल्लोके तीस मुक्कोंकी चोट सहो या अपना सब धन दो । जीवित रहनेकी इच्छासे उसने पूर्वोक्त तीनों दण्ड सहे और अन्तमें भरकर नरक गतिको प्राप्त हुआ । राजाने एक चाण्डालको आज्ञा दी कि तू विद्युच्चोरको मार डाल, परन्तु आज्ञा पाकर भी उसने कहा कि मैं इसे नहीं मार सकता क्योंकि मैंने एक मुनिसे हिंसादि छोड़नेकी प्रतिज्ञा ले रखी है ऐसा कहकर उसने जब राजाकी आज्ञा नहीं मानी तब राजाने कहा कि इसने कुछ घूस खा ली है इसलिए उसने क्रोधित होकर चोर और चाण्डाल दोनोंको निदयतापूर्वक साँकलसे बंधवा दिया ॥ २९०-२९६ ॥ चोरने सतुष्ट होकर चाण्डालसे पूछा कि तूने किस कारणसे मुझे नहीं मारा तब चाण्डाल इस प्रकार कहने लगा कि ॥ २९७ ॥ पहले इस नगरकी रक्षा इसी राजाके पिता गुणपाल करते थे और उनके पास कुबेरप्रिय नामका एक बड़ा सेठ रहता था ॥ २९८ ॥ इसी नगरीम नाट्यमालिका नामकी नाटकाचार्यकी एक पुत्री थी । एक दिन उसने राजसमाम रति आदि स्थायी भावों-द्वारा शृंगारादि रस प्रकट करते हुए नृत्य किया ॥२९९॥ वह नृत्य देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ तब उत्पलमाला नामकी बेश्या बोली कि हे देव, इसम क्या आश्चर्य है ? एक दिन अत्यन्त शान्त और पूज्य कुबेरप्रिय सेठने उपवासके दिन प्रतिमा योग धारण किया था, उस दिन मैं उनका मन विचलित करनेके लिए गयी थी परन्तु उमम समय नहीं हो सकी । इस ससारम यही बड़े आश्चर्यकी बात है । यह सुनकर राजाने कहा कि हे गुणप्रिये ! तुझे गुण बहुत प्यारे लगते ह इसलिए जो इच्छा हो सो माँग ।" तब उसने कहा कि मुझे शीलव्रतकी रक्षा करना इष्ट है यही वर दीजिए । राजाने वह वर उसे

१ तलवरा । २ निग्रहं कृत्य । ३ विमनिनामधेयाय । ४ चोर । विमतिरपि । ५ धनम् । ६ कारणिके पुरोहिताधिपकारिभिरित्यय । ७ गूयस्य । उच्चारणस्करो रामल शकृत् । पुरीष उत्कोच गूयवचस्कमस्त्रौ विष्टानिगी स्त्रियाम् । इत्यभिधानान् । ८ विमति । ९ न वध करोमि । १० लज्ज उत्कोच आर्तिप-
 द्यभिधानान् । ११ तल्वर । १२ निष्टय यथा भवति तथा । १३ प्रतुष्टा अ० स० इ० प० ।
 १४ आस्थान । १५ श्रेष्ठिनं गमितोज्यद्यु ल० अ० प० इ०, स० । १६ न समर्थोऽभूवमहम् । १७ वाञ्छितं प्रापय । १८ उत्पलमालागुणम् ।

रात्रौ तलवरो दृष्ट्वा तं बाह्याऽद्येति तेन^१ तन ।^२ प्रतिपादनवेलायामेवायान्मन्त्रिणः सुतः ॥३०४॥
 नृपतेमैथुनो नाम्ना पृथुधीस्तं निरीक्ष्य सा । मञ्जूपायां विनिक्षिप्य गणिका सर्वरक्षितम् ॥३०५॥
 त्वया मदीयामरणं मत्प्रवर्त्य समर्पितम् । त्वद्भगिन्यै तदनेयमित्याह नृपमैथुनम् ॥३०६॥
 सोऽपि प्राक्^३ प्रतिपाद्यैतद् व्रतग्रहणमंश्रुते । प्रातिकूल्यमगादीर्ष्यावान् द्वितीयदिने पुन ॥३०७॥
 साक्षिणं परिकल्प्यैतं मञ्जूपास्थ महीपतेः । मन्त्रिधौ याचितो वित्तममावुत्पलमालया ॥३०८॥
 न गृहीतं मयेत्यस्मिन्मिथ्यावादिनि भूभुजा । पृष्टा मत्यवती तस्य पुरस्तान्न्यक्षिपद्धनम् ॥३०९॥
 मैथुनाय नृपः क्रुध्वा खलोऽयं हन्यतामिति । आज्ञापयत्पदातीन् स्वान् युक्तं तन्न्यायवर्तिनः ॥३१०॥
 पठन्मुनीन्द्रमद्धर्मगास्त्रसंश्रवणाद् द्रुतम् । अन्येद्युः प्राप्तन जन्म विदित्वा शममागते ॥३११॥
 यागहस्तिनि मांसस्य पिण्डदानमनिच्छति । तद्दीक्ष्योपायविच्छेष्टी विबुद्धयानेकपेद्गितम् ॥३१२॥
 सर्पिर्गुण्डपयोमिश्रगाल्योदनममर्पितम्^४ । पिण्ड प्रायोजयन्सोऽपि द्विरदस्तमुपाहरन्^५ ॥३१३॥
 तदा नृपः महीनाथो वृणीष्वेष्ट तवेति तम् । प्राह पश्चाद् ग्रहीष्यामीत्यभ्युपेत्य स्थितः स तु^६ ॥३१४॥
 सचिवस्य^७ सुत इष्ट्वा नीयमानं शुचा नृपात् । वरमादाय तद्घातान दुर्वृत्तं त व्यमोचयत् ॥३१५॥

दिया और उस दिनसे उसने शील व्रत ग्रहण कर लिया । किसी दूसरे दिन सर्वरक्षित नामका कोतवाल रातके समय उसके घर गया, उसे देखकर उत्पलमालाने उससे कहा कि आज मैं बाहिर की हूँ — रजस्वला हूँ । इधर इन दोनोंकी यह बात चल रही थी कि इतनेमें ही मन्त्रीका पुत्र और पृथुधी नामका राजाका साला आया, उसे देखकर उत्पलमालाने सर्वरक्षितको एक सन्दूकमें छिपा दिया और राजाके सालेसे कहा कि आपने जो मेरे आभूषण अपनी बहन सत्यवती-के लिए दिये थे वे लाइए । उसने पहले तो कह दिया कि हाँ अभी लाता हूँ परन्तु बादमें जब उसने सुना कि उसने शील व्रत ले लिया है तब वह ईर्ष्या करता हुआ प्रतिकूल हो गया । दूसरे दिन वह बेग्या सन्दूकमें बैठे हुए कोतवालको गवाह बनाकर राजाके पास गयी और वहाँ जाकर पृथुधीसे अपना धन माँगने लगी ॥३००-३०८॥ पृथुधीने राजाके सामने भी झूठ कह दिया कि मैंने इसका धन नहीं लिया है । जब राजाने सत्यवतीसे पूछा तो उसने सब धन लाकर राजाके सामने रख दिया ॥३०९॥ यह देखकर राजा अपने सालेपर बहुत क्रोधित हुआ, उसने अपने नौकरोको आज्ञा दी कि यह दुष्ट गीघ्र ही मार डाला जाय । सो ठीक ही है क्योंकि न्याय-मार्गमें चलनेवालेको यह उचित ही है ॥३१०॥ किसी एक दिन पाठ करते हुए मुनिराजसे धर्मगास्त्र मुनकर राजाके मुख्य हाथीको अपने पूर्व भवका स्मरण हो आया, वह अत्यन्त गान्त हो गया और उसने मासका पिण्ड लेना भी छोड़ दिया, यह देख उपायोके जानने-वाले सेठने हाथीकी सब चेष्टाएँ समझकर घी, गुड और दूध मिला हुआ गालि चावलोका भात उसे खानेके लिए दिया और हाथीने भी वह शुद्ध भोजन खा लिया ॥३११-३१३॥ उस समय सन्तुष्ट होकर राजाने कहा कि जो तुम्हें इष्ट हो सो माँगो । सेठने कहा — अच्छा यह वर अभी अपने पास रखिए, पीछे कभी ले लूँगा, ऐसा कहकर वह सेठ मुखसे रहने लगा ॥३१४॥ इसी समय मन्त्रीका पुत्र मारनेके लिए ले जाया जा रहा था उसे देखकर सेठको बहुत शोक हुआ और उसने राजाने अपना पहलेका रत्ना हुआ वर माँगकर उस दुराचारी मन्त्रीके पुत्रको

^१ तनवेत्ता नह । ^२ अद्य याहीन्येतन्निपादन । ^३ आनयामेन्ननुमन्य । ^४ प्रसङ्गापानकयान्तरमिह ज्ञातव्यम् ।

^५ नैतम् । ^६ भुङ्क्ते न्न । ^७ तम् ल०, अ०, प०, न०, इ० । ^८ मन्त्रिण पुत्रम् । पृथुमतिम् ।

श्रेष्ठिनैव निकारोऽयं^१ भसाकारीत्यमस्त स । पापिनामुपकारोऽपि^२ सुभुजङ्गापयापते ॥३१६॥
 अन्येद्युर्मैथुनो राज्ञ स्वेच्छया विहरन् वने । खेचरा-मुत्रिकामापत्^३ कामरूपविधायिनीम् ॥३१७॥
 कराङ्गुली विनिक्षिप्य तां वसो^४ स्वकनीयस^५ । सकल्प्य श्रेष्ठिनो^६ रूप सत्यवत्या निकेतनम् ॥३१८॥
 प्रवेक्ष्य (प्रविश्य) पापधी राजसमीप स्वयमास्थित^७ । वसु गृहीतश्रेष्ठीस्वरूप वीक्ष्य महीपति ॥३१९॥
 श्रेष्ठी किमथमायातोऽकाल^८ इत्यवदत्तदा । अनात्मज्ञोऽयमायात पापी सत्यवतीं प्रति ॥३२०॥
 मदनानलसतस इति मैथुनिकोऽब्रवीत् । तद्वाक्यादपरीक्ष्यैव तमवाह ग्रहयताम् ॥३२१॥
 श्रेष्ठी तवेति श्रेष्ठी च तस्मिन्नेव दिने निशि । स्वगृहे प्रतिमायोगधारको भावयन् स्थित ॥३२२॥
 पृथुधीस्तमवष्टभ्य गृहीत्वा धोषयन् जने । अपराधमसन्त^९ च नीत्वा प्रेतमहीतलम् ॥३२३॥
 आरक्षककर हन्तुमर्पयामास पापभाक । सोऽपि राजनिदेशोऽयमित्यहङ्गहिना^{१०} दृढम् ॥३२४॥
 तस्य वक्ष स्थले तत्र प्रहारो मणिहारताम् । प्राप शीलवतो मत्स्याहृत्परमदैवते ॥३२५॥
 ऋण्डनादपरीक्ष्यास्य^{११} महोत्पात पुरेऽजनि । क्षय स येन सर्वेषां किं नादुष्टवधाद् भवेत् ॥३२६॥
 नरशो नागराश्चैतदालोक्य मयविद्वलाः । तमेव कारण गन्तु इमशानाभिमुख ययु ॥३२७॥
 तदोपसगनिर्णाय विस्मयज्ञाकवासिन । शीलप्रभाव व्यावध्य षणिग्वयमपूजयन् ॥३२८॥

छुडवा दिया ॥३१५॥ परन्तु मन्त्रीके पुत्रने समझा कि मेरा यह तिरस्कार सेठने ही कराया है, सो ठीक ही है क्योंकि पापी पुरुषोंका उपकार करना भी साँपको दूध पिलानेके समान है ॥३१६॥ किसी अन्य दिन वह राजाका साला अपनी इच्छासे वनमें घूम रहा था, उसे वहाँ एक विद्याधरसे इच्छानुसार रूप बना देनेवाली अँगूठी मिली ॥३१७॥ उसने वह अँगूठी अपने छोटे भाई वसुके हाथकी अँगूलीमें पहना दी एवं उसका सेठका रूप बनाकर उसे सत्यवतीके घर भेज दिया । और पाप बुद्धिको धारण करनेवाला पृथुधी स्वयं राजाके पास जाकर बैठ गया । सेठका रूप धारण करनेवाला वसुको देखकर राजाने कहा कि 'यह सेठ असमयमें यहाँ क्यों आया है ?' उसी समय पृथुधीने कहा कि 'अपने आपको नहीं जाननेवाला यह पापी कामरूपी अग्निसे सतप्त होकर सत्यवतीके पास आया है' इस प्रकार उसके कहनेसे राजाने परीक्षा किये बिना ही उसी पृथुधीको आज्ञा दी कि तुम सेठको मार दो । सेठ उस दिन अपने घरपर ही प्रतिमायोग धारण कर वस्तुस्वरूपका चिंतन कर रहा था ॥३१८-३२२॥ पृथुधीने उसे वही कसकर बाँध लिया और जो अपराध उसने किया नहीं था लोगोंमें उसकी धोषणा करता हुआ उसे इमशानकी ओर ले गया ॥३२३॥ वहाँ जाकर उस पापीने मारनेके लिए चाण्डालके हाथमें सौंप दिया । चाण्डालने भी यह राजाकी आज्ञा है ऐसा समझकर उसपर तलवारका मजबूत प्रहार किया ॥३२४॥ परन्तु क्या ही आश्चर्य था कि श्री अरहत परमेश्वरके भक्त और शीलव्रत पालन करनेवाले उस सेठके वक्ष स्थलपर वह तलवारका प्रहार मणियाँवा हार बन गया ॥३२५॥ बिना परीक्षा किये उस सेठको दण्ड देनेसे नगरमें ऐसा बड़ा भारी उपद्रव हुआ कि जिससे सनका क्षय हो सकता था सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुषोंके वधसे क्या नहीं होता है ? ॥३२६॥ राजा और नगरके सब लोग यह उपद्रव देखकर भयमें घबड़ाये और उमी सेठकी शरणमें जानेके लिए इमशानकी ओर दौड़े ॥३२७॥ जब मय उमकी शरणमें पहुँचे तब वहाँ वह उपद्रव दूर हुआ, स्वर्गम रहनेवाले देवाने बड़े आश्चर्य

१ निरस्कार वञ्चना च । २ क्रियते स्म । ३ -मुपकारोऽयं अ० स० । ४ -माप काम इ० अ० स० ।
 ५ वसुनाभयपत्य । ६ निजानुजस्य । ७ कुचरप्रियम् । ८ मभीषमानत्य स्थित । ९ अवलामाम् । १० बला
 स्फारेण वदन्ता । ११ प्रविष्टमानम अमर्त्यं वा । १२ हिनस्ति स्म । १३ श्रेष्ठिन ।

अपरीक्षितकार्याणामस्माकं श्रन्नुमर्हसि । इति तेषु मयग्रं स्तनानतेषु नृपादिषु ॥३२६॥
 अस्मदजितदुष्कर्मपरिपाकाद्भूदिदम् । विषादस्तत्र कर्तव्यं न भवद्भिरिति ध्रुवम् ॥३२७॥
 वैमनस्यं निगस्यैषा श्रेष्ठा प्रष्टुं क्षमावताम् । सर्वैः पुरस्कृतं पूज्यो विभूत्या प्राविशत् पुरम् ॥३२८॥
 एवं प्रयाति कालेऽस्य वारिषेणां सुतां नृप । वसुपालाय पुत्राय स्वस्यादत्त विभूतिमत् ॥३२९॥
 अथान्येद्युः सभामध्ये पृष्ठवान् श्रेष्ठिनं नृप । वित्त्वं किं न वाऽन्योन्यं धर्मादीनि^१ त्रुष्टयम् ॥३३०॥
 परस्परानुकूलास्ते^२ सम्यग्दृष्टिषु साधुषु^३ । न मिथ्यादृष्टिवर्ति^४ प्राह श्रेष्ठा^५ धर्मादितत्त्ववित् ॥३३१॥
 इति तद्वचनाद् राजा तुष्टोऽर्माष्टं त्वयोच्यताम् । दास्यामीत्याह सोऽप्यात्यञ्जातिमृत्युक्षयाच्चिति^६ ॥३३२॥
 न मया तद्दृष्ट्यं माध्यमिति प्रत्याह भूपतिः । मां मुञ्च साधयामीति तमवोचद्वणिग्वरः ॥३३३॥
 तदाकर्ण्य गृहत्यागमह च मह^७ नेऽनुना । करोमि किन्तु मे पुत्रा बालका इति चिन्तयन् ॥३३४॥
^८सद्योभिन्नाण्डक्रोद्भूतान् सक्षिकादानतत्परान् । क्षुधार्पीडाहतान् वीक्ष्य सहसा गृहकोकिलान् ॥३३५॥
 सर्वेऽपि जीवन्नापाय जन्तवो जानतेतराम् । स्वेषां विनोपदेशेन^९ तत्किं मे बलचिन्तया ॥३३६॥
 इत्यस्मां वसुपालाय दत्त्वा राज्यं यथाविधि । विधाय यौवराज्यं च श्रीपालस्य सपट्टकम् ॥३३७॥

से गीलव्रतके प्रभावका वर्णन कर उस सेठकी पूजा की ॥३२८॥ जिनके मन भयसे उद्विग्न हो रहे हैं ऐसे राजा आदिने सेठसे कहा कि हम लोगोंने परीक्षा किये बिना ही कार्य किया है अतः आप हम सबको क्षमा कर दीजिए, ऐसा कहनेपर क्षमा धारण करनेवालोमे श्रेष्ठ सेठने कहा कि यह सब हमारे पूर्वोपार्जित अगुभ कर्मके उदयसे ही हुआ है । निश्चयसे इस विषयमे आपको कुछ भी विषाद नहीं करना चाहिए ऐसा कहकर उसने सबका वैमनस्य दूर कर दिया । तदनन्तर सब लोगोके द्वारा आगे किये हुए पूज्य सेठ-कुबेरप्रियने बड़ी विभूतिके साथ नगरमे प्रवेश किया ॥३२९-३३१॥ इस प्रकार समय व्यतीत होनेपर वैभवशाली राजाने वारिषेणा नामकी इसी सेठकी पुत्री अपने पुत्र वसुपालके लिए ग्रहण की ॥३३२॥ किसी अन्य दिन राजाने सभाके बीच सेठसे पूछा कि ये धर्म आदि चारो पुरुषार्थ परस्पर एक दूसरेके विरुद्ध हैं अथवा नहीं ? ॥३३३॥ तब धर्म आदिके तत्त्वको जाननेवाले सेठने कहा कि सम्यग्दृष्टि सज्जनोके लिए तो ये चारो ही पुरुषार्थ परस्पर अनुकूल हैं परन्तु मिथ्यादृष्टियोके लिए अनुकूल नहीं है ॥३३४॥ सेठके इन वचनोसे राजा बहुत ही सन्तुष्ट हुआ, उसने सेठसे कहा कि 'जो तुम्हे इष्ट हो माँग लो मैं दूँगा' तब सेठने कहा कि मैं जन्म-मरणका क्षय चाहता हूँ ॥३३५॥ इसके उत्तरमे राजाने कहा कि ये दोनो तो मेरे साध्य नहीं हैं तब वैज्यवर सेठने कहा कि अच्छा मुझे छोड़ दीजिए मैं स्वयं उन दोनोको सिद्ध कर लूँगा ॥३३६॥ यह सुनकर राजाने कहा कि तेरे साथ मैं भी घर छोड़ता परन्तु मेरे पुत्र अभी बालक हैं - छोटे-छोटे हैं इस प्रकार राजा विचार कर ही रहा था कि ॥३३७॥ अचानक उसकी दृष्टि छिपकलीके उन वच्चोपर पड़ी जो उसी समय विदोर्ण हुए अण्डेसे निकले थे, भूखकी पीडासे छटपटा रहे थे और इमलिए ही मक्खियाँ पकड़नेमे तत्पर थे, उन्हें देखकर राजा सोचने लगा कि अपनी-अपनी आजीविकाके उपाय तो सभी जीव बिना किसीके उपदेशके अपने-आप अच्छी तरह जानते हैं इमलिए मुझे अपने छोटे-छोटे पुत्रोकी चिन्ता करनेसे क्या लाभ है ? यही विचार कर गुणपाल महाराजने वसुपालके लिए विधिपूर्वक राज्य दिया और श्रीपालको पट्ट महित युवराज बनाया । तदनन्तर

१ मन्त-५०, ल० । २ मृद्व । ३ पुनीन् ल० । ४ विभूतिमान् ५०, ४०, ३० । ५ उर्मादिराममांथा । ६ ने धर्मादय । ७ मत्तजनेपु । ८ मिथ्यादृष्टिपु । ९ धर्मादिराममांथावन्वपदेन । १० जननमग्निनाग्नी ननेष्टानिति । ११ त्वया नह । १२ तत्त्वमे स्पष्टिकोणजानान् । १३ तन् वान्पान् ।

गुणपाटमहारज सकुबेरप्रियोऽग्रहीत् । बहुभिर्भुञ्जैः सार्धं तपो यत्तिवर श्रित ॥३४१॥
 श्रेष्ठघर्हिंसाकुलालोकान्मयाऽप्यग्राहि तद्वतम् । तस्मात् न हतोऽसीति^२ ततस्तुष्टाव^५ सोऽपि तम् ॥
 इत्युक्तवा^१ सोऽग्रवीद^६ प्राक् मृणालवतीपुरे । मृत्वा स्व^{१०} भवद्वाक्यो रतिवेगासुकान्तयो ॥३४३॥
 भद्रवैरो^{११} निहन्ताऽभू पारावतमवे प्यनु^{१२} । मार्जारं सम्मृतिं^{१३} गत्वा पुनः स्वचरजमनि ॥३४४॥
 विद्युच्चोरस्त्रमासाध सोपसर्गा मृतिं प्यधा । तत्पापाक्षरके दुःखमनुमयागतस्तत ॥३४५॥
 अत्रेत्यासिलवेद्युक्त^{१४} व्यक्तवाग् विसर स्फुटम् । न्यधाव सुधी स्ववृत्तान्त भीमसाधु सुधाशिनो ।
 त्रिं पाक् स्वन्मारितावावामिति^{१५} बुद्धिप्रयान्वितौ^{१६} । जातसद्मसद्भावमिवम्यमुनिं^{१७} गतौ ॥३४७॥
 इति व्याकृत्य^{१८} हमाहगदानुजैद^{१९} चसाऽग्रवीत्^{२०} । भीमसाधु पुरे पुण्डरीकिण्यां घातिघातनात् ॥३४८॥
 रम्य शिवकरोयाने पञ्चमज्ञानपूजित^{२१} । तस्यिवास्त^{२२} समागत्य चतस्रो देवयोधित ॥३४९॥
 वन्दिस्वा धममाकण्य पापादस्मपतिमृत । त्रिलोक्यं वदास्माकं पति कोऽयं भविष्यति ॥३५०॥
 इत्यपृच्छन्नसौ^{२३} चाह पुरेऽस्मिन्नव^{२४} भोजक^{२५} । सुरदवाहयस्तस्य वसुषेणा वसुधरा ॥३५१॥

सेठ कुबेरप्रिय तथा अय अनेक राजाओके साथ साथ मुनिराजके समीप जाकर तप धारण किया ॥३३८-३४१॥ वह चाण्डाल कहने लगा कि सेठके अहिंसा व्रतका फल देखकर मने भी अहिंसा व्रत ल लिया था यही कारण है कि मैंने तुम्हें नहीं मारा है यह सुनकर उस विद्युच्चर चोरने भी उसकी बहुत प्रशंसा की ॥३४२॥

इतना कहकर वे भीम मुनि सामने बैठे हुए देव-देवियोंसे फिर कहने लगे कि सबज देवने मुझसे स्पष्ट अक्षरोंमें कहा है कि 'तू पहले मृणालवती नगरीमें भवदेव नामका वैश्य हुआ था वहाँ तूने रतिवेगा और सुकान्तसे वैर बाँधकर उन्हें मारा था, मरकर वे दोनों कबूतर-कबूतरी हुए सो वहाँ भी तूने बिलाव होकर उन दोनोंको मारा था, वे मरकर विद्याधर विद्याधरी हुए थे सो उन्हें भी तूने विद्युच्चोर होकर उपसग-द्वारा मारा था, उस पापसे तू नरक गया था और वहाँके दुःख भोगकर वहासे निकलकर यह भीम हुआ हूँ । इस प्रकार उन बुद्धिमान् भीम मुनिने सामने बैठे हुए देव-देवियोंके लिए अपना सब वृत्तांत कहा ॥३४३-३४६॥ जिन्हें आपने पहल तीन बार मारा है वे दोनों हम ही हैं ऐसा कहकर जिनके मन, वचन, काय — तीनों शुद्ध हो गये हैं और जिन्हें सद्धर्मकी सद्भावना उत्पन्न हुई है ऐसे वे दोनों देव देवी उन भीममुनिकी वन्दना कर अपने स्थानपर चले गये ॥३४७॥

यह कहकर हेमागदकी छोटी बहन सुलोचना फिर कहने लगी कि एक समय पुण्डरी किणी नगरीके शिवकर नामके सुन्दर उद्यानमें घातिया कम नष्ट करनेसे जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे भीममुनिराज विराजमान थे सभी लोग उनकी पूजा कर रहे थे उसी समय वहाँपर चार दवियोंने आकर उनकी वन्दना की, धर्मका स्वरूप सुना और पूछा कि हे तीन लोकके स्वामी, हम लोगोके पापसे हमारा पति मर गया है । कहिए — अब दूसरा पति कौन

- १ तस्मात् कारणात् । २ एक तलवराऽवाप्तत् । ३ तलवरवधनानन्तरम् । ४ स्तोति स्म । ५ विद्युच्चोर । ६ अहिंसाग्रन्तम् । तस्मात् स्व न हतोऽसीति दलोकस्य सोऽप्यव प्रत्यपान्यन्त्यन सह संव ध । ७ उपत प्रकारण प्रतिपाद्य । स मुनि पुनरप्यात्मन सबजन प्रतिपान्तिनिजवृत्तक सुरदम्पत्योराह । ८ वक्ष्यमाण प्रकारण । ९ पूजजमनि । १० ह भीममुन भवान् । ११ शत्रुक । १२ कपोतभवऽपि मार्जारं सन् तयानिहन्ताऽमृतिं भवत्य । १३ इत्वा १० अ० प० स० इ । १४ तद्दम्पत्याविद्याधरभव । १५ स्वचरजमनि प० इ० । १६ सबजप्रोक्तम् । १७ द्विरप्यवयवप्रभावतीचरो । १८ मनोवाककायत्रिद्विभक्तौ । १९ भीममनिम् । २० उक्त्वा । २१ गुलाचना । २२ भाम साधु प०, इ० ल० । २३ आस्त स्म । २४ भीमवक्त्रो । २५ पुण्डरीकिण्याम् । २६ पालक ।

धारिणी पृथिवी चेति चतस्रो योषितः प्रियाः । श्रीमती वीतशोकाख्या विमला सबसन्तिका ॥३५२॥
 चतस्रश्चेदिकास्तासामन्येद्युस्ता वनान्तरे । सर्वा यतिवराभ्याशे धर्म दानादिनाऽऽदुः ॥३५३॥
 तत्फलेनाच्युते कल्पे प्रतीन्द्रस्य प्रियाः क्रमात् । रतिपेणा सुसीमाख्या मुख्यान्या च सुखावती ॥३५४॥
 सुभगेति च देव्यस्ता यूयं ताश्चेदिका पुनः । चित्रपेणा क्रमाच्चित्रवेगा धनवती सती ॥३५५॥
 धनश्रीरित्यजायन्त धनदेवेषु कन्यकाः । सुरदेवेऽप्यभून्मृत्वा पिङ्गलः पुररक्षकः ॥३५६॥
 स तत्र निजदोषेण प्रापन्निगलवन्धनम् । मातुस्तत्सुरदेवस्य प्राप्ता या राजसूनुताम् ॥३५७॥
 श्रीपालाख्यकुमारस्य ग्रहणे^१ वन्धमोक्षणे । सर्वेषां पिङ्गलाख्योऽपि सुवतः संन्यस्य सप्रति ॥३५८॥
 भूत्वा बुधविमानेऽसौ^२ इहागत्य भविष्यति । स्वामी युष्माकमित्येतत्तच्चेतो हरणं तदा ॥३५९॥
 परमार्थं कृतं तेन^३ तर्थागत्य^४ मुनेर्वचः । पृष्ट्वा^५ कन्य^६ काश्चैनमात्मनो^७ भाविन पतिम् ॥३६०॥
 पूर्वोक्तपिङ्गलाख्यस्य सूनुर्नाम्नाऽतिपिङ्गलः । सोऽपि संन्यस्य युष्माकं^८ रतिदायी भविष्यति ॥३६१॥
 इति तत्प्रोक्तमाकर्ण्य गत्वा^९ तत्पूजनाविधौ^{१०} । स्वसां निरोक्षणात्^{११} कामसमोहप्रकृतं महत् ॥३६२॥
 रतिकूलभिधानस्य^{१२} संविधानं^{१३} मुनेः^{१४} श्रुतम्^{१५} । तत्पितुर्मणिनागादिदत्तस्य प्रकृतं^{१६} तथा ॥३६३॥

होगा ? तब सर्वज्ञ -- भीम मुनिराज कहने लगे कि इसी न
 उसकी वसुषेणा, वसुन्धरा, धारिणी और पृथिवी ये चार र
 विमला और वसन्तिका ये चार उन रानियोंकी दासियाँ थीं
 जाकर किन्ही मुनिराजके समीप दान आदिके द्वारा धर्म कर
 फलसे वे अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्रकी देवियाँ हुई हैं । क्रमसे उन
 सुसीमा, सुखावती और सुभगा । वह देवियाँ तुम्ही सब हैं
 चित्रवेगा, धनवती और धनश्री नामकी व्यन्तर देवोंकी कन
 पिङ्गल नामका कोतवाल हुआ है और वह अपने ही दोषसे
 की माता राजाकी पुत्री हुई है और श्रीपालकुमारके साथ उ
 के समय सब कैदी छोड़े गये थे उनमें पिङ्गल भी छूट गया
 स्वर्गमें उत्पन्न होगा और वही तुम सबका पति होगा । इध
 रहे थे कि उधर पिङ्गल सन्यास धारण कर अच्युत स्वर्गमें
 उसने मुनिराजके वचन सत्य कर दिखाये । इतनेमें ही चारों
 अपने होनहार पतिको पूछने लगी ॥ ३४८--३६० ॥ मुनि
 नामक कोतवालके एक अतिपिङ्गल नामका पुत्र है वही सन
 ॥३६१॥ भीम केवलीके ये वचन मुनकर चारों ही देविय
 लगी, उसे देखनेसे उन देवियोंको कामका अधिक विकार
 रतिकूल नामके मुनिका चरित्र सुना, उनके पिता मणि

१ स्वीकृवन्ति स्म । २ व्यन्तरदेवेषु । ३ तलव । ४ विवाहमये ।
 विमानेय, इत्यपि पाठ । बुधविमानाधिपति । ५ स्वामी युष्माकमित्य
 चरदेवत । ६ वेत्त्युवतप्रकारेण (क्रमेण) । ७ सर्वज्ञस्य । ८ अनन्त
 लिप्ताम् । ९ पुष्ट । १० लतिपिङ्गलस्य मन्त्री प्राप्य । ११ अनिपि
 व्यन्तरवन्दनान् । नामान् २० ५०, २० । १२ नामसंज्ञेन प्रख्यातं
 १३ वनाशान् । १४ भीमदेवस्य नामान् । १५ अर्जुनम् । १६

‘सुकेषोऽत्राखिले तस्मिन्सत्यभूते’ मुनीश्वरम् । ता सर्वा परितोषेण गता समभिवन्ध तम् ॥३६४॥
आवामपि^१ तदा चन्द्रजाय तत्र गताविदम् । श्रुत्वा दृष्ट्वा गतौ प्रीतिपरीतहृदयौ दिवम् ॥३६५॥

शार्दूलविक्रीडितम्

इत्यात्मायमवावलीमनुगतैर्मायैमनोरजनै
स्पष्टैरस्त्रलितैः^२ कलैरविरलैरन्याकुलैश्चलितैः^३ ।
आत्मोपात्तशुभाशुभोदयवशोद्भूतोऽवनीचस्थितिं^४
सप्तपद्मनांशुभूपितसमासम्यानं^५ सावम्भधार्त्वं ॥३६६॥
श्रुत्वा ता हृदयप्रियोक्तिमतुपल्का^६तो^७ रतान्त यथा
सप्त^८च^९ व्यक्तसत्तशं शरदि वा दृष्ट्वा सरसभया ।
कान्तानां^{१०} वदनेन्युकान्तिरगलचन्द्रादिनेशोद्गते^{११}
रस्थाने कृतमत्सरोऽसुसकारस्था^{१२} ज्यस्तताऽस्तौ^{१३} बुधे ॥३६७॥
कान्तोऽभूद् रतिपेणया वणिगसौ पूव सुकान्तस्वत
सजातो रतिपेणया रतिवरो मेहे कपोतो विशाम्^{१४} ।

चरित्र सुना और सबके सत्य सिद्ध होनेपर बड़े सन्तोषके साथ मुनिराजकी वन्दना कर अपने अपने स्थानोंकी ओर प्रस्थान किया ॥३६३-३६४॥ उस समय हम दोनों भी मुनिराजकी वन्दना करनेके लिए वहाँ गये और यह सब देख-सुनकर प्रसन्नचित्त होते हुए स्वर्ग चले गये थे ॥३६५॥

इस प्रकार अपने द्वारा उपाजन किये हुए शुभ-अशुभ कर्मोंके उदयवश जिसे ऊँची-नीची अवस्था प्राप्त हुई और जिसने अपने दाँतोंकी फेलती हुई किरणोंसे समस्त समाको सुशोभित कर दिया है ऐसी सुलोचनाने सब सभासदोंको क्रमबद्ध मान्य, मनोहर, स्पष्ट, अस्त्रलित, मधुर, अविरल और आकुलतारहित वचना-द्वारा अपने पूर्वभवकी परम्परा कह सुनायी ॥३६६॥

हृदयकी प्रिय लगनेवाले सुलोचनाके वचन सुनकर जयकुमार उस प्रकार सन्तुष्ट हुए जिस प्रकार कि सम्भोगके बादम सन्तुष्ट होते । वह समा उस तरह विकसित हो उठी जिस तरह कि शरदऋतुम सरोवरकी शोभा विकसित हो उठती है । और सुलोचनाके वचनरूपी सूर्यके उदय होनेसे अन्य स्त्रियोंके मुखरूपी चन्द्रमाओकी कान्ति नष्ट हो गयी थी सो ठीक ही है क्याकि अयोध्या स्थानपर की हुई ईर्ष्या दुःखी करनेवाली होती है इसलिए विद्वानोंको ऐसी ईर्ष्या अवश्य ही छोड़ देनी चाहिए ॥३६७॥ सुलोचनाने जयकुमारसे कहा कि मैं पहल रतिवेगा थी और आप मेरे ही साथ मेरे पति सुकान्त वश्य हुए फिर मैं सेठके घर रतिपेणा कबूतरों हुई आर आप मेरे ही साथ रतिवर नामक कबूतर हुए, फिर मैं प्रभावती विद्याधरी हुई और आप मेरे ही साथ हिरण्यवमा विद्याधर हुए उसके बाद मैं स्वर्गम महादेवी हुई और आप मेरे ही साथ अतिशय

१ मुनाश्वरीपुरपते सुकेतोऽपि चष्टिन् मुन सभाशास्त्रमिति संवत् । एतत् कथात्रय ग्रन्थान्तरे द्रष्टव्यम् ।

२ सप्तोभूते स० प० ६० स० । ३ प्रभावतीचरोहिरण्यवमचरमुरदप्यतो । ४ सुन्दर । ५ सम्पूर्ण ।

६ मिति स । ७ सुलोचना । ८ उवाच । ९ जय । १० समा च । ११ जयस्व श्रीमतीशिवशङ्करादिनापिताम् ।

१२ मुनाचनावचनान्तिर्योन्म सति । १३ दुःखकर । १४ मत्सर । १५ वदयानाम् ।

वत्यन्तप्रमयाऽभवत्खगपतिर्वर्मा हिरण्यादिवाक्^३
देव कल्पगतो मयौ सह महादेव्याऽजनीडयो मवान्^५ ॥३६८॥

मालिनी

सकलमचिकलं तत्सप्रपञ्चं रमण्या
मुखकमलरसाक्तं^४ श्रोत्रपात्रे निधाय ।
तदुदितमपरंच श्रोतुकामो जयोऽभू-
न्न रसिकदयितोक्तैः कामुकास्नृण्वन्ति ॥३६९॥

इत्यापे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे जयसुलोचना-
भवान्तरवर्णनं नाम पट्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४६॥

■

पूज्य देव हुए ॥३६८॥ इस प्रकार जयकुमार प्रियाके मुखरूपी कमलके रससे भोगे हुए मनोहर, पूर्ण और विस्तारयुक्त वचनोको अपने कर्णरूपी पात्रमे रखकर उसके द्वारा कहे हुए अन्य वृत्तान्तको मुननेकी इच्छा करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि कामी पुरुष स्त्रियोके रसीले वचनोसे कभी तृप्त नहीं होते हैं ॥३६९॥

इस प्रकार आर्पणामसे प्रसिद्ध भगवद्गुणभद्राचार्य विरचित त्रिपष्टिलक्षण
महापुराण संग्रहके हिन्दी भाषानुवादमे जयकुमार और सुलोचनाके
भवान्तर वर्णन करनेवाला छियालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

■

१ प्रनामन्दा नन्देन्द्रयः । २ विद्याधरपति । ३ हिरण्यवर्मा । ४ सुलोचनाया मत् । ५ जयः । ६ रमनंबद्धम् ।
७ रसिकदयितोक्तैः ।

सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व

कान्ते तत्रान्यदप्यस्ति प्रस्तुत स्मर्यते त्वया । श्रीपालचक्रिसवन्धमित्यप्राक्षीत् स तां पुन ॥१॥
 वाढ स्मरामि सौभाग्यभागिनस्तस्य वृत्तकम् । 'तवैवाधोक्षित' वेति सा प्रवक्तु प्रचक्रमे ॥२॥
 जम्बूद्वीपे विदेहेऽस्मिन् पूर्वस्मिन् पुण्डरीकिणी । नगरी नगरीवासौ वासवस्यातिविश्रुता ॥३॥
 श्रीपालवसुपालाख्यौ सूर्याचन्द्रमसौ ^३ च तां । जित्वा महीं सहैवावत ^४ स्मेन्न नयविक्रमौ ॥४॥
 जननी वसुपालस्य कुबेरश्रीर्दिनेऽन्वदा । वनपाले समागत्य केवलवागमोऽभवत् ॥५॥
 गुणपालमुनीशोऽस्मत्पते ^५ सुरगिरिविति । निवेदितवति कान्त्वा पुर सप्तपदान्तरम् ॥६॥
 प्रणम्य वनपालाय दत्त्वाऽसौ ^६ पारितोषिकम् । पौरा सपत्न्या सर्वेऽप्याययुरिति ^७ घोषणाम् ॥७॥
 विधाय प्राक् स्वयं प्राप्य भगवन्तमवदत् । श्रीपालवसुपालौ च ततोऽनु समुदां गतौ ॥८॥
 प्रमदाप्य वन प्राप्य ^८ सद्गुमैरगम्यन्तरे । प्राग्जगत्पालचक्रेशो यस्मिन्मन्त्रो ^९ पादपे ॥९॥
 देवताप्रतिमां लक्ष्य स्थित्वा जग्राह सयमम् । ^{१०} 'तस्याधस्तात्' ^{११} 'समीक्ष्येक्ष्य' ^{१२} प्रवृत्ता नृत्तमादरात् १०
 तयो ^{१३} कुमार श्रीपाल पुरुषो नर्तयत्ययम् । अस्तु ^{१४} स्त्रीवेषधारयन् स्त्री चेत्युरूपधारिणी ॥११॥
 स्यादेव स्त्री प्रवृत्ता नृत्तं युक्तमिदं भवेत् । इत्याह तद्वच्च भुक्त्वा नदी मूर्च्छामुपागता ॥१२॥

यह सुनकर जयकुमारने सुलोचनासे फिर पूछा कि हे प्रिये, इस कही हुई कथामें श्रीपाल चक्रवर्त्तिसि सम्बन्ध रखनेवाली एक कथा और भी है वह तुझे याद है या नहीं ? सुलोचनाने कहा हाँ, सौभाग्यशाली श्रीपाल चक्रवर्त्तिसि की कथा तो मुझे ऐसी याद है मानो मैंने आज ही देखी हो, यह कहकर वह उसकी कथा कहने लगी ॥१-२॥ इस जम्बू द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है जो कि इन्द्रकी नगरी-अमरावतीके समान अत्यन्त प्रसिद्ध है ॥३॥ सूर्य और चन्द्रमा अथवा नय और पराक्रमके समान श्रीपाल और वसुपाल नामके दो भाई समस्त पृथिवीको जीतकर साथ ही साथ उसका पालन करते थे ॥४॥ किसी एक दिन मालीने आकर वसुपालकी माता कुबेरश्रीसे कहा कि सुरगिरि नामक पर्वतपर आपके स्वामी गुणपाल मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, यह सुनकर उसने सामने सात पैँड चलकर नमस्कार किया, मालीको पारितोषिक दिया और नगरमें घोषणा करायी कि सब लोग पूजाकी सामग्री साथ लेकर भगवान्के दशन करनेके लिए चले, उसने स्वयं सबसे पहले जाकर भगवान्की वन्दना की । माताके पीछे ही श्रीपाल और वसुपाल भी बड़ी प्रसन्नतासे चले ॥५-८॥ मार्गमें वे एक उत्तम वनमें पहुँचे जो कि अच्छ-अच्छे वृक्षोंसे सुन्दर था और जिसमें देवताकी प्रतिमासे युक्त किसी बट वृक्षके नीचे लड़े होकर महाराज जगत्पाल चक्रवर्त्तिसि संयम धारण किया था । उन्नी वृक्षके नीचे एक दगनीय नृत्य हो रहा था, उसे दोनों भाई बड़े आदरसे देखने लगे ॥९-१०॥ देखते-देखते कुमार श्रीपालने कहा कि यह स्त्रीका वेष धारण कर पुरुष नाच रहा है और पुरुषका रूप धारण कर स्त्री नाच रही है । यदि यह स्त्री स्त्रीके ही वेषमें नृत्य करती तो बहुत ही अच्छा नृत्य होता । श्रीपालकी यह बात सुनकर नदी मूर्च्छित

१ तत्रवा-अ०, स० । मर्यादा-क० प० ६० । २ प्रत्ययं दृष्टमिव । ३ चितौ ट० । सयोजितौ । ४ अवारादा
 ताम् । ५ मुनीगम्य । ६ सुरगिरिनाम्नि पर्वते । ७ कुबेरश्री । ८ पूजया । ९ आगच्छेयुः । १० दायवर्ग ।
 ११ वत् । 'यद्य'घो यदुपाद् वट इत्यभिधानान् । १२ वटस्य । १३ आलोच्य । १४ दक्षनीयम् । १५ वसु
 पालायनाम् । १६ चत् ।

उपायैः प्रतिबोध्यैनां तदा प्रश्रयपूर्वकम् । इति विज्ञापयामास काचित्तं भाविचक्रिणम् ॥१३॥
 सुरम्यविषये श्रीपुराधिपः श्रीधराह्वयः । तद्देवी श्रीमती तस्याः सुता जयवतीत्यभूत् ॥१४॥
 तज्जातौ^१ चक्रिणो देवी भाविनीत्यादिशन्विदः^२ । अमिज्ञानं च तस्यैतत् नटनटयोर्विवेक्तिं यः ॥१५॥
 भेदं स चक्रवर्तीति तत्परीक्षितुमागताः । पुण्याद् दृष्टस्त्वमस्माभिर्निधिवल्पो यदृच्छया ॥१६॥
 अहं प्रियरतिर्नामा^३ सुतेयं नर्तकी मम । ज्ञेया मदनवेगाख्या पुरुषाकारधारिणी ॥१७॥
 नटोऽयं वासवो नाम ख्यातः स्त्रीवेषधारकः । तच्छ्रुत्वा नृपतिस्तुष्टा तां सतर्प्य यथोचितम् ॥१८॥
 गुरु वन्दितुमात्मीयं गच्छन् सुरगिरिं ततः^४ । अश्वं केनचिदानीतमारुह्यासक्तचेतसा ॥१९॥
^५अध्रावयदमौ^६ किञ्चिदन्तरं धरणीतले । गत्वा गगनमारुह्य व्यक्तीकृतखगाकृतिः^७ ॥२०॥
 न्यग्रोधपादपाधस्थप्रतिमावासिना भृशम् । देवेन तर्जितो मीत्वाऽशनिवेगोऽमुचत् खगः ॥२१॥
 कुमारं पर्णलघ्वाख्यविद्यया स्वनियुक्तया । रत्नावर्तगिरेर्मूर्ध्नि स्थितं तं सन्ति भाविनः ॥२२॥
 बहवोऽप्यस्य लम्भा इत्यग्रहीत्वा निवृत्तवान् । देवः सरसि कस्मिंश्चित् स्नानादिविधिना श्रमम् ॥२३॥
 मार्गजं स्थितमुद्धूय तमेकस्मात् सुधागृहात् । आगत्य राजपुत्रोऽयमिति ज्ञात्वा यथोचितम् ॥२४॥
 दृष्ट्वा षड्राजकन्यास्ताः स्ववृत्तान्तं न्यवेदयन् । स्वगोत्रकुलनामादि निर्दिश्य खचरेशिना ॥२५॥
 बलादशनिवेगेन वयमस्मिन्निवेशिताः । इति तत्प्रोक्तमाकर्ण्य कुमारस्यानुकम्पिनः ॥२६॥

हो गयी ॥११-१२॥ उसी समय अनेक उपायोसे नटीको सचेत कर कोई स्त्री उस होनहार चक्रवर्ती श्रीपालसे विनयपूर्वक इस प्रकार कहने लगी ॥१३॥ कि सुरम्य देशके श्रीपुर नगरके राजाका नाम श्रीधर है उसकी रानीका नाम श्रीमती है और उसके जयवती नामकी पुत्री है ॥१४॥ उसके, जन्मके समय ही निमित्तज्ञानियोने कहा था कि यह चक्रवर्तीकी पट्टरानी होगी और उस चक्रवर्तीकी पहचान यही है कि जो नट और नटीके भेदको जानता हो वही चक्रवर्ती है, हम लोग उसीकी परीक्षा करनेके लिए आये है, पुण्योदयसे हम लोगोने निधिके समान इच्छा-नुसार आपके दर्शन किये है ॥१५-१६॥ मेरा नाम प्रियरति है, यह पुरुषका आकार धारण कर नृत्य करनेवाली मदनवेगा नामकी मेरी पुत्री है और स्त्रीका वेष धारण करनेवाला यह वासव नामका नट है । यह सुनकर राजाने सन्तुष्ट होकर उस स्त्रीको योग्यतानुसार सन्तोषित किया और स्वयं अपने पिताकी वन्दना करनेके लिए सुरगिरि नामक पर्वतकी ओर चला, मार्ग-मे कोई पुरुष घोड़ा लाया उसपर आसक्तचित्त हो श्रीपालने सवारी की और दौड़ाया । कुछ दूर तक तो वह घोड़ा पृथिवीपर दौड़ाया परन्तु फिर अपना विद्याधरका आकार प्रकट कर उसे आकाशमे ले उड़ा । उस वट वृक्षके नीचे स्थित प्रतिमाके समीप रहनेवाले देवने उस विद्याधरको ललकारा, देवकी ललकारसे डरे हुए अशनिवेग नामके विद्याधरने अपनी भेजी हुई पर्णलघु विद्यासे उस कुमार श्रीपालको रत्नावर्त नामके पर्वतके शिखरपर छोड़ दिया । देवने देखा कि उस पर्वतपर रहकर ही उसे बहुत लाभ होनेवाला है इसलिए वह कुमारको साथ लिये बिना ही लौट गया । कुमार भी किसी तालाबमे स्नान आदि कर मार्गमे उत्पन्न हुए परिश्रमको दूर कर बैठे ही थे कि इतनेमे एक सफेद महलसे छह राजकन्याएँ निकलकर आयी और कुमारको 'यह राजाका पुत्र है' ऐसा समझकर यथायोग्य रीतिसे दर्शन कर अपना समा-चार निवेदन करने लगी । उन्होने अपने गोत्र-कुल और नाम आदि बतलाकर कहा कि 'अशनि-वेग नामके विद्याधरने हम लोगोको यहाँ जबरदस्ती लाकर पटक दिया है' कन्याओकी यह बात

^१ स्ववत्सा जननममये । ^२ विद्वांस ^३ परिचायक चिह्नम् । ^४ विशेषेण जानाति ।
^५ नान्ना ल०, अ०, प०, स०, इ० । ^६ वनात् (प्रमथवनात्) । ^७ गमयति स्म । ^८ मायाश्वः ।

निजानमनवृत्तान्तकथनविसर परा । विद्युद्देगामिषा विद्याधरी तत्र समागता ॥२७॥
 पापिनाऽशनिवेगेन हन्तुमेन^१ प्रयोजिता । समीपस्थ मदनाक्रान्ताऽभूच्चित्राश्चित्तधृतय^२ ॥२८॥
 मूत्रु स्तनितवेगास्य राज्ञो राजपुरेशितु^३ । खगेशोऽशनिवेगाख्यो^४ ज्योतिर्वेगाख्यमातृक ॥२९॥
 त्वमत्र तन सौहार्दादानीत् स ममाग्रज^५ । विद्युद्देगाह्वयाऽह च प्रेषिता ते स मैथुन^६ ॥३०॥
 रत्नावतगिरिं याहि स्थितस्तत्रेति सादरम् । भवत्समीप प्राप्तैवमिति रत्नविशेषितम् ॥३१॥
 दशयता समीपस्थ यावत् सौधगृहात्तरम् । हस्त्युक्त्वाऽनमिलाष च ज्ञात्वा तस्य महात्मन ॥३२॥
 तत्रैव विद्यया सौधगेह निर्माप्य निस्त्रया । स्थिता तदाजकन्यामि सह का कामिना त्रया ॥३३॥
 पृत्यानङ्गपताकाऽस्या स्त सखीत्थमबोचत^७ । त्वपिभृगुणपालस्य सन्निधाने जिनेशितु^८ ॥३४॥
 ज्योतिर्वेगाख्य प्रीत्या कुबेरश्री समादिशत् । निजजामातर^९ कापि श्रीपालस्वामिन मम ॥३५॥
 स्वय स्तनितवेगोऽसौ सुतम-वेपथेदिति । प्रतिपन्न स^{१०} तत्प्रेक्ष्य भवन्त मैथुनस्तव ॥३६॥
 आनीतगानिहेत्यतद्वचमुध्यात्मनो द्विपम् । पतिं मत्बोत्तरभेगेराशङ्क्यानलवेगवम् ॥३७॥
 स्वय तदा समालोच्य निवाय खचराधिपम्^{११} । उदीरान्वेषणोपाय त्वस्नेहाहितचेतस^{१२} ॥३८॥
 आनीयता प्रयत्नेन कुमार इति वा-धया । आवां प्रियसकाश ते प्राहैपुस्त^{१३} दिहागते ॥३९॥

सुनकर कुमारको उनपर दया आयी और वह भी अपने आनेका वृत्तान्त कहनेके लिए उद्यत हुआ । वह जिस समय अपने आनेका समाचार कह रहा था उसी समय विद्युद्वेगा नामकी एक दूसरी विद्याधरी वहाँ आयी । पापी अशनिवेगने कुमारको मारनेके लिए इसे भेजा था परन्तु वह कुमारको देखकर कामसे पीड़ित हो गयी सो ठीक ही है क्योंकि चित्तकी वृत्ति विचित्र होती है ॥१७-२८॥ वह कहने लगी कि अशनिवेग नामका विद्याधर राजपुरके स्वामी राजा स्तनितवेगका पुत्र है, उसकी माताका नाम ज्योतिर्वेगा है ॥२९॥ वह अशनिवेग मित्रताके कारण आपको यहाँ लाया है, वह मेरा बड़ा भाई है, मेरा नाम विद्युदेगा है और उसीने मुझे आपके पास भेजा है, अब वह आपका साला होता है ॥३०॥ उसने मुझसे कहा था कि तू रत्नावन पवतपर जा, वे वहाँ विराजमान है इसलिए ही मैं आदर सहित आपके पास आयी हूँ ऐसा कहकर उसने रागपूण चेष्टाएँ दिखलायीं और कहा कि यह समीप ही चूनेका बना हुआ पक्का मकान है परन्तु इतना कहनेपर भी जब उसने उन महात्माकी इच्छा नहीं देखी तब वहीपर विद्याके द्वारा मकान बना लिया और निलज्ज होकर उन्हीं राजकन्याओंके साथ बठ गयी सो ठीक ही है क्योंकि कामी पुरषोंको लज्जा कहाँसे हो सकती है ? ॥३१-३३॥ इतनेमें विद्युदेगा की सखी अनगपताका आकर कुमारसे इस प्रकार कहने लगी कि 'आपकी माता कुबेरश्री आपका पिता श्रीगुणपाल जिनेन्द्रके समीप गयी हुई थी वहाँ उसने बड़े प्रेमसे ज्योतिर्वेगाके पितासे कहा कि मेरा पुत्र श्रीपाल कही गया है उसे ले आओ । ज्योतिर्वेगाके पिताने अपने जामाता स्तनितवेगसे कहा कि मेरा स्वामी श्रीपाल कही गये हैं उन्हें ले आओ । स्तनितवेगने स्वयं अपने पुत्र अशनिवेगको भेजा, पिताके कहनेसे ही अशनिवेग आपको यहाँ लाया है, वह आपका साला है । उत्तरभ्रणीका राजा अनलवेग इनका दाश्रु है उसकी आशंका कर तुम्हारे स्नेहसे जिनका चित्त भर रहा है ऐस सब भाई-बन्धुओंने स्वयं विचारकर आपके रोजनेका उपाय बतलाया और कहा कि कुमारको बड़ प्रयत्नसे यहाँ लाया जाय । व सब विद्याधरोंके अधिपति अनलवेग का रानेनेके लिए गये हैं और हम दोनोंको आपके पास भेजा है । यहाँ आनेपर यह विद्युदेगा

१ श्रीपालम् । २ पुरेगिन अ० प० छ० म० । ३ ज्योतिर्वेगाख्या माता यस्यासी । ४ विद्युद्देगाख्या । ५ श्रीपालम् । ६ जिनेगिन स० प० । ७ अशनिवेगस्य मातु-ज्योतिर्वेगाया पितरम् कुबेरश्री ममाग्रज इति मन्त्रः । ८ स्तनितवेगजामातरम् । ९ ज्योतिर्वेगाया । १० अशनिवेगम् । ११ हस्त्युक्त्वा ।

विद्युद्देगाऽवलोक्य त्वामनुरक्तोऽभवत्त्वया । न त्याज्येति तदाकर्ण्य^१ स विचिन्वोच्चितं वचः ॥४०॥
 मयोपनयनेऽग्राहिं^२ व्रतं गुरुभिरर्पितम् । सुकृत्वा गुरुजनानां स्वीकरोमि न चापराम् ॥४१॥
 इत्यवोचत्ततस्ताश्च शृङ्गाररसचं^३ धृतैः । नानाविधै रञ्जयितुं प्रवृत्ता नागकस्तदा ॥४२॥
 विद्युद्देगा ततोऽगच्छत् स्वमातृपितृसन्निधौ । पिधाय द्वारमारोप्य मौधाय प्राणवल्लभम् ॥४३॥
 तावानेतुं^४ कुमारोऽपि सुसवान् रक्तकम्बलम् । प्रावृत्त्य त ममालोक्य भेरुण्ड^५ पिणितोच्चयम्^६ ॥४४॥
 मत्वा नीत्वा द्विज^७ सिद्धकूटाग्रे खान्तिमुत्थितः । चलन्त वीक्ष्य^८ सोऽस्यार्क्षीतम्^९ तेषां जातिजो गुणः ४५
^{१०} ततोऽवतीर्थ श्रीपालः स्नात्वा सरसि मक्तिमान् । सुपुष्पाणि सुगन्धानि ममादाय जिनालयम् ॥४६॥
 परीत्य स्तोतुमारभे विवृत्त^{११} हासदा^{१२} स्वयम् । तन्निरीक्ष्य प्रसन्नस्मन्मन्मन् जिनपुगवान् ॥४७॥
 अमिबन्ध यथाकामं विधिवत्तत्र सुस्थितः । तमभ्येत्य खगः कश्चिन् समुद्रव्य नम पथे ॥४८॥
 गच्छन्मनोरमे राष्ट्रे शिवकरपुरेऽग्निनः । नृपस्यानिलवेगस्य कान्ता कान्तवतीत्यभूत् ॥४९॥
 तयोः सुतां भोगवतीमाकाशस्फटिकालये । मृदुगन्ध्यातले सुप्ता का कुमारीयमित्यमौ^{१३} ॥५०॥
 अपृच्छन्^{१४} सोऽग्रवीडेषा भुजगी त्रिपमेति च । तदुक्ते^{१५} स क्रुधा कृत्वा कन्यापितृसमीपगम्^{१६} ॥५१॥

आपको देखकर आपमे अत्यन्त अनुरक्त हो गयी है अतः आपको यह छोड़नी नहीं चाहिए । कुमारने ये सब बातें सुनकर और अच्छी तरह विचारकर उचित उत्तर दिया कि मैंने यज्ञोपवीत सस्कारके समय गुरुजनोके द्वारा दिया हुआ एक व्रत ग्रहण किया था और वह यह है कि मैं माता-पिता आदि गुरुजनोके द्वारा दी हुई कन्याको छोड़कर और किसी कन्याको स्वीकार नहीं करूँगा । जब कुमारने यह उत्तर दिया तब वे सब कन्याएँ अनेक प्रकारकी शृंगाररसकी चेष्टाओसे कुमारको अनुरक्त करनेके लिए तैयार हुई परन्तु जब उसे अनुरक्त नहीं कर सकी तब विद्युद्देगा प्राणपति श्रीपालको मकानकी छतपर छोड़कर और बाहरमे दरवाजा बन्द कर माता-पिताको बुलानेके लिए उनके पास गयी । इधर कुमार श्रीपाल भी लाल कम्बल ओढ़कर सो गये, इतनेमे एक भेरुण्ड पक्षीकी दृष्टि उनपर पड़ी, वह उन्हें मासका पिण्ड समझकर उठा ले गया और सिद्धकूट-चैत्यालयके अग्रभागपर रखकर खानेके लिए तैयार हुआ परन्तु कुमारको हिलता-डुलता देखकर उसने उन्हें छोड़ दिया सो ठीक ही है क्योंकि यह उन पक्षियोंका जन्मजात गुण है ॥३४-४५॥ तदनन्तर श्रीपालने सिद्धकूटके गिखरसे नीचे उतरकर सरोवरमे स्नान किया और अच्छे-अच्छे सुगन्धित फूल लेकर भक्तिपूर्वक श्री जिनालयकी प्रदक्षिणा दी और स्तुति करना प्रारम्भ किया, उसी समय चैत्यालयका द्वार अपने-आप खुल गया, यह देखकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और विधिपूर्वक इच्छानुसार श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा-वन्दना कर सुखसे वहीपर बैठ गया । इतनेमे ही एक विद्याधर सामने आया और कुमारको उठाकर आकाशमार्गमे ले चला, चलते-चलते वे मनोरम देवके गिवकरपुर नगरमे पहुँचे, वहाँकि राजाका नाम अनिलवेग था, और उसकी स्त्रीका नाम था कान्तवती, उन दोनोंके भोगवती नामकी पुत्री थी, वह भोगवती आकाशमे बने हुए स्फटिकके महलमे कोमल गन्ध्यापर सो रही थी उसे देखकर उस विद्याधरने श्रीपालकुमारसे पूछा कि यह कुमारी कौन है ? कुमारने उत्तर दिया कि

१ नविचि-२७, ५०, ४० । २ स्वीकृत । ३ कन्यकाजननीजनकानुपतेन दत्ताम् । ४ तैरदत्ताम् । ५ शकना न वभूत् । ६ रत्नावर्तनिरे । ७ निजमानापितरौ । ८ प्रच्छाद्य । ९ पक्षिविजोप । १० मासपिण्डम् । ११ भेरुण्ड । १२ मुमोक्ष । १३ नजीवन्म न्याग । १४ पक्षिणाम् । १५ सिद्धकूटाग्रान् । १६ उद्वाटितम् । १७ शम् । १८ विद्याधर । १९ श्रीपाल । २० श्रीपालवचनान् । २१ भोगवतीजनकस्य समीपस्थ कृत्वा तेन अमिबन्धेन नष्ट विद्याधरो वदति । विमिति ? अन्तःकन्यका भोगवतीमेव नल श्रीपाल त्रिपमभुजगीति इत्येति ।

तमस्मत्कथ्यकामप भुजगाति रत्नोऽग्रवीत् । इत्यवोचत्त^२ क्रुद्धा दुष्टो निक्षिप्यतामयम्^३ ॥२२॥
 दुद्धरोस्तपोभारधारिणोऽयं घने वने । इत्यभ्यधातृपस्तस्य वचनानुगमादसौ^४ ॥२३॥
 विजयादोत्तरश्रेणिमनोहरपुरान्तिके । स्मशाने शीतचैतालविद्यया तं शुमाकृतिम्^५ ॥२४॥
 कृत्वा न्यत्यक्षिपत् पापी जस्तीरूपधारिणम् । तत्रास्पृश्यकुले जाता काऽपि जामातर स्वयम्^६ ॥२५॥
 स्य ग्राममृगरूपेण^७ इरसुताचरणद्वय । समन्ताल्लुठित कृत्वा तां प्रसाधं^८ भृगु ततः ॥२६॥
 तं पुरातनरूपेण समवस्थापयत् खला । तद्विलोक्य कुमारोऽसौ खगा स्वामिमताकृतिम्^९ ॥२७॥
 विनिवलयितुं शक्ता इत्याह्वय विचिन्तयन् । वमाप्रथायिसकाशकाशप्रसवहासिभि^{१०} ॥२८॥
 शिरोरुहजराभोधितरङ्गामतनुत्विषा^{११} । समेतमात्मनो रूपं दृष्ट्वा दुष्टविभावितम्^{१२} ॥२९॥
 लज्जाशोकाभिभूत सन् मरुक्षु गच्छंस्ततः परम्^{१३} । तत्र भोगवती^{१४} भ्रातृहरिकतो सुसिद्धया^{१५} ॥३०॥
 विद्यया शवरूपेण सद्यः प्रार्थितया करे । कुमारस्य^{१६} समुद्रस्य^{१७} निर्वान्तमधिचारयन्^{१८} ॥३१॥
 उद्धत्यद् विशङ्कस्त्व पिबेत्युक्तं प्रपीतवान्^{१९} । तं दृष्ट्वा हरिकेतुस्त्वा सवध्याधिविनाशिनी^{२०} ॥३२॥
 विद्याश्रितति सप्रीत प्रयुज्य वचनं गतः । ततः स्वरूपमापन्नं^{२१} कुमारो वटभूरुह^{२२} ॥३३॥
 गच्छन् स्थितमधोभागे दृष्ट्वा कचिन्नमभ्रम् । प्रवेश कोऽयमित्यतदपृच्छत्^{२३} सोऽग्रवादिदम्^{२४} ॥३४॥

यह विषम सर्पिणी है । श्रीपालके ऐसा कहनेपर वह विद्याधर क्रुद्ध होकर उन्हें उस कन्याके पिताके पास ले गया और कहने लगा कि यह दुष्ट हम लोगोंकी कन्याको सर्पिणी कह रहा है । यह सुनकर कन्याके पिताने भी क्रुद्ध होकर कहा कि 'इस दुष्टको कठिन तपका भार धारण करनेके योग्य किसी सधन वनमें छोड़वा दो । राजाके अनुसार उस पापी विद्याधरने शीत-वताली विद्याके द्वारा सुंदर आकारवाला श्रीपालकुमारको वृद्धका रूप धारण करनेवाला बनाकर विजयाधं पवतकी उत्तर श्रणिके मनोहर नगरके समीपवाल श्मशानमें पटक दिया । वहाँ अस्पृश्य कुलमें उत्पन्न हुई किसी स्त्रीने अपने जमाईको कुत्ता बनाकर अपनी पुत्रीके दोनों चरणोंपर खूब लोटाया और इस तरह अपनी पुत्रीको अत्यंत प्रसन्न कर फिर उस दुष्टा चाण्डालिनीने उसका पुराना रूप कर दिया । यह देखकर कुमार कुछ भयभीत हो चिन्ता करने लगा कि ये विद्याधर लोग इच्छानुसार रूप बनानेमें समर्थ हैं । उस समय वह मानो यमराजके सामने जानेवालेके समान हो था - अत्यन्त वृद्ध था, उसके बाल काशके फूले हुए फूलोंकी हसी कर रहे थे, और शरीरमें बुढ़ापासूरी समुद्रकी तरंगोंके समान सिकुड़नें उठ रही थी । इस प्रकार दुष्ट विद्याधरके द्वारा किया हुआ अपना रूप देखकर वह लज्जा और शोकसे दब रहा था । इसी अवस्थामें वह शीघ्र ही आगे चला । वहाँ भोगवतीके भाई हरिकेतुको विद्या सिद्ध हुई थी उससे उसने प्रायना की तब विद्याने मुरदेका रूप धारण कर श्रीपाल कुमारके हाथपर कुछ उगल दिया और कहा कि तू बिना किसी विचारके निगाह हो इसे उठाकर पी जा, कुमार भी उसे शीघ्र ही पी गया । यह देखकर हरिकेतुने कुमारसे कहा कि तुझ सर्वव्याधिबिनाशिनी विद्या प्राप्त हुई है, यह कहकर और विद्या देकर हरिकेतु प्रसन्न होता हुआ वहाँ चला गया । इधर कुमार भी अपने असली रूपको प्राप्त हो गया । कुमार आगे बढ़ा तो उसने एक वट वृक्षके

- १ इत्यवोचत्त २ क्रुद्धा दुष्टो अ० ५० ३०, ल० । २ तन्वचनाभयनान्तरम् । ३ अनिलवेग प्रवृत्त्य ।
 ४ श्रीपाद । ५ रण । ६ श्रीपालम् । ७ स्मशाने । ८ सारमयरूपेण । ९ प्रसन्नता नीत्वा । १० जामातरम् ।
 ११ मायावरूपम् । १२ विनिर्माणम् । १३ इतान्तस्य पुरोगामिदृशः । १४ हरिभिः ल० । १५ जराभो
 धन्तरङ्गाम इत्यपि पाठः । १६ दुष्टविद्याधरण समुत्पान्तिम् । १७ तस्मा न्यप्रदक्षम् । १८ स्मशानम् ।
 १९ पूर्वोक्तभागवतीकन्यावजम् । २० श्रीपालकुमारस्य । २१ वमनं कृत्वा । २२ पिबति स्म । २३ श्रीपालम् ।
 २४ निर्वान्तं प्राप्य । २५ प्रथावर्णस्य । वटभूरुहम् ल० । २६ वन्यमाणासित्येवम्-ल०, ५०, अ० सं० ६० ।

रुगाद्रेः पूर्वदिग्भागे नीलाद्रेरपि पश्चिमे । सुसीमाख्योऽस्ति देशोऽत्र महानगरमप्यत्र ॥६५॥
तद्भूतवनमेतत्त्व सम्यक् चित्तेऽवधारय । अस्मिन्नेता शिला सप्त परस्परधृता कृता ॥६६॥
येनाऽसौ चक्रवर्तित्वं प्राप्तेन्यादेश ईदृश । इति तद्वचनादेष तास्तथा कृतवास्तदा ॥६७॥
दृष्ट्वा तत्साहस्यं वक्तुं सोऽगमन्नगरं शिनः^६ । कुमारोऽपि विनिर्गम्य ततो^७ निर्विण्णचेतसा ॥६८॥
काञ्चिजरावती^८ कुत्स्यगरीरां कस्यचित्तरौ । अवस्थितामधोभागे विषय पुष्कलावतीम् ॥६९॥
वद प्रयाति क पन्था इत्यप्रार्क्षीत प्रियं वहन्^{१०} । विना गगनमार्गेण प्रयातु नैव शक्यते ॥७०॥
म^{११} गव्यूतिगतोत्सेधविजयान्दगिरेरपि । परस्मिन्नित्यसावाह^{१२} तदाकर्ण्य नृपात्मज ॥७१॥
गृहि तत्पापणोपायमिति तां प्रत्यभाषत । इह जम्बूमति द्वीपे विषया वत्सकावती ॥७२॥
तस्मैचरगिरां राजपुरं खेचरचक्रिणः । देवी धरणीकम्पस्य सुप्रभा^{१५} वा प्रभाकरी ॥७३॥
तयोर्ह तनूजास्मि विख्याताख्या सुखावती । त्रिप्रकारोरुद्धिद्यानां पारगाऽन्येद्युरागता ॥७४॥
विषये वत्सकावत्यां विजयार्धमर्हाधरे^{१६} । अकम्पनसुता पिप्पलाख्या प्राणसमा सखीम् ॥७५॥
ममाभिर्वीक्षितु तत्र^{१७} चित्रमालोक्य कम्बलम् । कथयाय कुतस्त्यस्ते तन्वाति प्रश्नतो मम ॥७६॥

नीचे बैठे हुए किसी विद्याधरको देखकर उससे पूछा कि यह कौन-सा देश है ? तब वह विद्या-
धर कहने लगा कि ॥४६-६४॥ विजयार्ध पर्वतकी पूर्वदिशा और नीलगिरिकी पश्चिमकी
ओर यह सुसीमा नामका देश है, इसमें यह महानगर नामका नगर है और यह भूतारण्य वन
है, यह नू अपने मनमें अच्छी तरह निश्चय कर ले, इधर इस वनमें ये सात गिलाएँ पड़ी हैं जो
कौई इन्हें परस्पर मिलाकर एकपर एक रख देगा वह चक्रवर्ती पदको प्राप्त होगा ऐसी सर्वज्ञ
देवकी आज्ञा है' विद्याधरके यह वचन सुनकर श्रीपालकुमारने उन गिलाओको उसी समय
एकके ऊपर एक करके रख दिया ॥६५-६७॥ कुमारका यह साहस देखकर वह विद्याधर
नगरके राजाको खबर देनेके लिए चला गया और इधर कुमार भी कुछ उदासचित्त हो वहाँसे
निकलकर आगे चला । आगे किसी वृक्षके नीचे निन्द्य गरीरको धारण करनेवाली एक बुढ़िया-
को देखकर मधुर वचन बोलनेवाले कुमारने उससे पूछा कि पुष्कलावती देशको कौन-सा मार्ग
जाता है, बताओ, तब बुढ़ियाने कहा कि वहाँ आकाश मार्गके बिना नहीं जाया जा सकता क्योंकि
वह देश पच्चीस योजन ऊँचे विजयार्ध पर्वतसे भी उस ओर है, यह सुनकर राजपुत्र श्रीपालने
उममें फिर कहा कि वहाँ जानेका कुछ भी तो मार्ग बतलाओ । तब वह कहने लगी - इस जम्बू
द्वीपमें एक वत्सकावती नामका देश है, उसके विजयार्ध पर्वतपर एक राजपुर नामका नगर है ।
उसमें विद्याधरोका चक्रवर्ती राजा धरणीकम्प रहता है, उसकी कान्तिको फैलानेवाली सुप्रभा
नामकी रानी है, मैं उन्हीं दोनोंकी प्रसिद्ध पुत्री हूँ, सुखावती मेरा नाम है और मैं जाति विद्या,
कुल विद्या तथा सिद्ध की हुई विद्या इन तीनों प्रकारकी बड़ी-बड़ी विद्याओकी पारगामिनी हूँ ।
किसी एक दिन मैं वत्सकावती देशके विजयार्ध पर्वतपर अपने प्राणोके समान प्यारी सखी, राजा
अकम्पनकी पुत्री पिप्पलाको देखनेके लिए गयी थी । वहाँ मैंने एक विचित्र कम्बल देखकर उससे
पूछा कि हे सखि, कह, यह कम्बल तुझे कहाँसे प्राप्त हुआ है ? उसने कहा कि 'यह कम्बल
मेरी ही आज्ञासे प्राप्त हुआ है' । कम्बल प्राप्तिके समयसे ही कम्बलवालेका ध्यान करती
हुई वह अत्यन्त विह्वल हो रही है ऐसा सुनकर उसकी सखी मदनवती उसे देखनेके लिए उसी

१ वने । २ एवंकस्या उपर्यपरिस्थिता । ३ विहिता । ४ प्राप्स्यति । ५ शीतलाः । ६ नगरेशितु ल०, प०,
७०, ८०, ९० । ७ वनात् । ८ निन्द्य । ९ अध - ल० । १० प्रिय वद ल० । ११ पुष्कलावतीविषय ।
१२ चक्रवर्तिनियोजन । १३ अपरभागे । १४ जरती । १५ चन्द्रिकेव । १६ नातिकुलसाधितविद्यानाम् ।
१७ नीलने ३०, ५० । १८ पिप्पलायाम् ।

जगाद साऽपि मामप^१ प्रायादशवशादिति । ^२कम्बलावाप्तितस्तद्वन्त^३ समाध्याय विह्वलाम् ॥३७॥
 एता^४ तस्या^५ सखा श्रुत्वा समन्वेष्टु समागता । काक्षनाख्यपुरात्राम्ना मदनदिवती तदा ॥३८॥
 दृष्ट्वा तत्कम्बलस्थान्त निबद्धा रत्नमुद्रिकाम् । तत्र^६ श्रीपालनामाक्षराणि चादेशसंस्तुतेः^७ ॥३९॥
 अकायसायकोद्भिन्नहृदयाऽभूदह^८ तत । कथं वैद्याधर लोकमिमं श्रीपालनामभूत् ॥४०॥
 समागत स हृत्येतन्निश्चेतु पुण्डरीकिणीम् । उपगत्य जिनागारं वन्दित्वा समुपस्थिता ॥४१॥
 स्वल्पवासकथा^९ सर्वा तव मातु प्रजरूपनात् । विदित्रा विस्तरण स्वामानेप्यामीति निश्चयात् ॥४२॥
 आगच्छ^{१०}ती भवद्वातां विद्युद्गगामुखोद्गताम् । अवगम्य त्वया सार्द्धं योजयिष्यामि तं प्रियम् ॥४३॥
 न^{११} विपादो विधातव्य इत्याश्वास्य भवधिषाम् । विनिगत्य ततोऽभ्यस्य सिद्धकूजिनालयम् ॥४४॥
 अभिवन्द्वागता^{१२} ऽस्यहि^{१३} मयाऽमा पुण्डरीकिणीम् । भातर भातर चा^{१४}यास्त्वद्वधूश्च समाक्षितम् ॥४५॥
 यदीच्छास्ति तवेत्याह सा तच्छ्रुत्वा^{१५} पुन कुत । स्वमव जरती जातेभ्यः प्रवीत् स^{१६} सुखावतीम् ॥४६॥
 कुमारवचनाकणन^{१७} वाद्वक्ष्यमागतम् । भवतश्च न किं वेत्सात्यपहस्य तथोदितम् ॥४७॥
 जगामिभूतमालोचन स्वशरीरमिदं त्वया । कृतमवविध कन हेतुने यनुयुक्तवान् ॥४८॥
 तच्छ्रुत्वा साऽब्रवादेव पिप्पलेत्याख्ययोदिता । मदनदिवती या च मैथुनौ विभ्रुतौ तयो ॥४९॥
 बलवान् धूमवेगारयस्तादृग्धरिरोऽपि च । तद्मयात्वा^{१८} तिरोधाय पुरं^{१९} प्रापयितुं मया ॥५०॥
 मायारूपद्वय^{२०} विद्याप्रभावात् प्रकटीकृतम् । कुमार मत्करस्यामृतास्वादफलमक्षणात् ॥५१॥

समय काचनपुर नगरस आयी । उसने वह कम्बल देखा, कम्बलके छोरमें बधी हुई रत्नोकी अगूठी और उसपर खुदे हुए श्रीपालके नामाक्षर देखकर मुझे अपने गुरुकी आज्ञाका स्मरण हो आया, उसी समय मेरा हृदय कामदेवके बाणोसे भिन्न हो गया मैं सोचने लगी कि श्रीपाल नामकी धारण करनेवाला यह भूमिगोचरी विद्याधरोके इस लोकमें कैसे आया ? इसी बातका निश्चय करनेके लिए मैं पुण्डरीकिणी पुरी पहुँची, वहाँ जिनालयमें भगवान्की वन्दना कर बठी हो थी कि इतनेमें वहाँ आपकी माता आ पहुँची, उनके कहनेसे मैंने विस्तारपूर्वक आपके प्रवासकी कथा मालूम की और निश्चय किया कि मैं आपको अवश्य ही ढूँढ़कर लाऊँगी । उसी निश्चयके अनुसार मैं आ रही थी, रास्तेमें विद्युद्देगाके मुखसे आपका सब समाचार जानकर मैंने उससे कहा कि 'तू अभी विवाह मत कर मैं तेरे इष्टपतिको तुझसे अवश्य मिला दूँगी इस प्रकार आपकी भावी प्रियाको विश्वास दिलाकर वहाँसे निकली और सिद्धकूट चैत्यालयमें पहुँची । वहाँकी वन्दना कर आयी हूँ, यदि माता भाई तथा अन्य बन्धुओंको देखनेकी तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ पुण्डरीकिणी पुरीको चलो, यह सब सुनकर मैंने सुखावतीसे फिर कहा कि अच्छा यह बातला तू इतनी बूढ़ी क्यों हो गयी है ? कुमारके वचन सुनकर उस बुढ़ियाने हमते हैंमते कहा कि क्या आप अपने शरीरमें आये हुए बुढ़ापेको नहीं जानते—आप भी तो बूढ़े हो रहे हैं । कुमारने अपने शरीरको बूढ़ा देखकर उससे पूछा कि तूने मेरा शरीर इस प्रकार बूढ़ा क्या कर दिया है । कुमारकी यह बात सुनकर वह इस तरह कहने लगी कि जिनका वचन पहल कर आयी हूँ एमी पिप्पला और मदनवती नामकी दो बन्ध्याएँ हैं उन्हें दो प्रसिद्ध

- १ कम्बल । २ कम्बलप्राप्तिमात्रेण कृत्वत्यय । कम्बलप्राप्तिस्त-अ० स० ल० । ३ कम्बलवन्त पुरम् । ४ पिप्पलाम् । ५ पिप्पलाया । ६ मति वापाम । ७ रम्भुती इ० अ० म० प० । ८ कामवाण । ९ सुखावती । १० भवदे-तान्तरगमनवचाम् । ११ विपादो ल० । विपादो अ० स० । १२ अत्रागताहम् । १३ आगच्छ । १४ गुणाश्वावधनमात्रम् । १५ आगत । १६ कुमारवाचमात्रम् इ० अ० स० । कुमारवचनावच्य ल० । १७ धूमवेगारिपरम्भाम् । १८ पुण्डरीकिणीम् । १९ मम जरतालयम् भवतश्च वाद्वक्ष्यमिति द्वयम् ।

विगतक्षुच्छ्रमः शीघ्रं मामारुह्य पुरं प्रति । व्रजेति सोऽपि तच्छ्रुत्वा स्त्रियो रूपममामकम् ॥९२॥
 न स्पृशामि कथं चाहमारोहामि पुरा^१ गुरोः ।^२ सनिधावाददामीदृग्ब्रतमित्यब्रवीद्विद्वम् ॥९३॥
 मा तदाकर्ण्य संचिन्त्य किं जातमिति विद्यया । गृहीत्वा पुरुषाकारमुद्ब्रहन्ती^३ तमित्वरी^४ ॥९४॥
 वन्दित्वा सिद्धकूटस्थं तत्र विश्रान्तये स्थिता । तस्मिन्नेव दिने भोगवती^५ शशिनमात्मनः ॥९५॥
 प्रविश्य भवनं कान्त्या कलामिदं अभिवर्द्धितम् । निर्वर्तमानमालोक्य स्वप्नेऽस्मांगत्यशान्तये ॥९६॥
 तन्सिद्धकूटपूजार्थं कान्ता कान्तवती सती । रत्नवेगा सुवेगाऽमितमती रतिकान्तया ॥९७॥
 महिता चित्तवेगाख्या पिप्पला मदनावती । विद्युद्वेगा तथैवान्यास्ताभिः सा परिवारिता ॥९८॥
 समागत्य महाभक्त्या परीत्य जिनमन्दिरम् । यथाविधि प्रणम्येवं संपूज्य स्तोतुमुद्यता ॥९९॥
 ताञ्च तासां तदा व्याकुलीभावमपि चेतम् । तस्मिन् शिवकुमारस्य वक्रताक्रान्तमाननम् ॥१००॥
 आदिष्टमनिधानेन विलोक्य प्रकृति^{१०} गतम् । सुखावती^{११} तदुद्देशादपनीय कुमारकम् ॥१०१॥
 स्थानेऽन्यस्मिन्नन्यधादेन^{१२} तत्राप्यम्बुनि^{१३} मुद्रया^{१४} । स्वरूप कामरूपिण्या^{१५} प्रेक्षमाण यदृच्छया ॥
 दृष्ट्वा^{१६} हरिवरस्तस्मान्नीत्वा कोपात् स पापभाक् । निक्षेपे^{१७} महाकालगुहायां^{१८} विहितायकम् ॥१०३॥

विद्याधर चाहते हैं, एकका नाम धूमवेग है और दूसरेका नाम हरिवर । ये दोनों ही अत्यन्त वलवान् हैं, उन दोनोंके भयसे ही मैंने आपको छिपाकर नगरमें पहुँचानेके लिए विद्याके प्रभावसे मायामय दो रूप बनाये हैं । हे कुमार, मेरे हाथमें रखे हुए इस अमृतके समान स्वादिष्ट फलको खाकर आप अपनी भूख तथा थकावटको दूर कीजिए और मुझपर सवार होकर शीघ्र ही नगरकी ओर चलिए' यह सुनकर कुमारने कहा कि मेरे सवार होनेके लिए स्त्रीका रूप अयोग्य है, मैं तो उसका स्पर्श भी नहीं करता हूँ, सवार कैसे होऊँ ? क्योंकि मैंने पहले गुरुके समीप ऐसा ही व्रत लिया है यह सुनकर उसने सोचा और कहा कि अब भी क्या हुआ ? वह विद्याके द्वारा उसी समय पुरुषका आकार धारण कर कुमारको बड़ी शीघ्रतासे ले चली । चलते-चलते वह सिद्धकूट चैत्यालयमें पहुँची और वन्दना कर विश्राम करनेके लिए वही बैठ गयी । उसी दिन भोगवतीने स्वप्नमें देखा कि कान्ति और कलाओसे बड़ा हुआ चन्द्रमा हमारे भवनमें प्रवेश कर लौट गया है । इस स्वप्नको देखकर वह अमगलकी शान्तिके लिए सिद्धकूट चैत्यालयमें पूजा करनेके लिए आयी थी । वह सुन्दरी कान्तवती, सती रत्नवेगा, सुवेगा, अमितमती, रतिकान्ता, चित्तवेगा, पिप्पला, मदनावती, विद्युद्वेगा तथा और भी अनेक राजकन्याओसे घिरी हुई थी । उन सभी कन्याओने आकर बड़ी भक्तिसे जिन-मन्दिरकी प्रदक्षिणा दी, विधिपूर्वक नमस्कार किया, पूजा की और फिर सबकी सब स्तुति करनेके लिए उद्यत हुई । स्तुति करते समय भी उनका चित्त व्याकुल हो रहा था । उसी चैत्यालयमें एक शिवकुमार नामका राजपुत्र भी खड़ा था, उसका मुँह टेढ़ा था परन्तु श्रीपालकुमारके समीप आते ही वह ठीक हो गया, यह देखकर मुखावतीने उसे उसके स्थानसे हटाकर दूसरी जगह रख दिया । उस चैत्यालयमें श्रीपालकुमार अपनी कामरूपिणी मुद्रासे इच्छानुमार जलमें अपना खास रूप देख रहा था । उसे ऐसा करते पापी हरिवर विद्याधरने देख लिया और पूर्व जन्ममें पुण्य करनेवाले कुमारको

१ मम नववन्धितरूपं मुक्त्वा अन्यन्ध्रीरूपम् । २ पूर्वम्भिन् । ३ गुरो समीपे ४ स्वीकरोमि ।
 ५ श्रीपालम् । ६ गमनशीला । ७ पुरा कुमारं भुजङ्गीत्युक्ता भोगवती । ८ महागता कन्यकाः ।
 ९ आदेशपुष्पगामीष्येन । १० पूर्वन्धरूपम् । ११ तन्प्रदेशात् । १२ स्थापयामास । १३ जले ।
 १४ मुद्रिता । १५ प्रेक्षमाण इ० । १६ मदनावतीमैयुन । १७ निक्षिप्तवान् । १८ कृतपुण्य
 भोगम् ।

धसस्तत्र महाकालस्त गृहीतुमुपागत । तस्य पुण्यप्रभावेन सोऽप्यकिंचित्करो गत ॥१०४॥
 तत्र शय्यातले सुप्त्वा शुचौ मृदुनि विस्तृते । परेद्युर्निगत^१ तस्या^२ सप्रयुक्तैः परीक्षितुम् ॥१०५॥
 आदिष्टपुरुषं मृत्यैर्ज्ञा^३ वाऽभ्येत्य निवेदितम् । गृहीत्वा स्थविराकारं कोपपावकद्वीपित ॥१०६॥
 तं श्रीक्षय धूमवेगात्^४ खगश्च द्रुपुराद् बहिः । स्मशानमध्ये पापाणिनिशातविविधायुधैः^५ ॥१०७॥
 'न्यगृह्णात्तानि' चास्यासन् पगन्ति कुसुमानि वा । परोऽपि खबरस्तत्र नरेशोऽतिबलाह्वय ॥१०८॥
 स्वदग्धां चित्रसनाया मृत्युं दुष्टतरे सति । त निह^६त्वादहत्तस्मिन् धूमवेगो निधाय तम् ॥१०९॥
 कुमारं चागमत्तत्र महापथजशक्तिः^७ । निराकृतज्वलद्द्विदशक्तिस्तस्मात् स निर्गत ॥११०॥
 हतानुचरमार्याग्र काचिच्चिरपराधक । हतो नृपेण मद्रुमतैस्तस्य^८ शुद्धिप्रकाशिनी ॥१११॥
 तत्कुमारस्य सस्पर्शाग्निशक्तिं सा हृत्तामानम् । विदित्वा प्राविशद् दृष्ट्वा कुमारस्तां सकौतुक ॥११२॥
 अमेघमपि ध्वजेन स्त्रीणां मायाविनिर्मितम्^९ । क्वच^{१०} दिविजेशा^{११} च नीरम्भमिति निमग्नः ॥११३॥
 स्थितस्तत्र स्मरन् नव सुता तन्मगरेशिन । राज्ञो विमलसेनस्य वत्स्यन्तकमलाह्वया ॥११४॥
 कामप्रहाहिता तस्यास्तद्रूपहापजिहीषया^{१२} । जने समुद्रित^{१३} सद्यः कुमारस्तमपाहरत्^{१४} ॥११५॥

क्रोधसे उस स्थानसे ले जाकर महाकाल नामकी गुफाम गिरा दिया । उस गुफामें एक महा काल नामका यन्तर रहता था वह उसे पकड़नेके लिए आया परन्तु कुमारके पुण्यके प्रभावसे अकिंचित्कर हो चला गया—उसका कुछ नहीं बिगाड़ सका । वह कुमार उस दिन उसी गुफामें पवित्र, कोमल और बड़ी शय्यापर सोकर दूसरे दिन वहाँसे बाहर निकला, यद्यपि उसने अपना यूनेका रूप बना लिया था तथापि धूमवेगके द्वारा परीक्षाके लिए नियुक्त किये हुए पुरुषोंने उसे पहचान लिया स्वामीके पास जाकर उन्होंने सब खबर दी और पकड़कर श्रीपालकुमार को सामने उपस्थित किया । क्रोधरूपी अग्निसे प्रज्वलित हुए धूमवेग विद्याधरने कुमारको देखकर आज्ञा दी कि इसे नगरके बाहर स्मशानके बीच पत्थरपर धिसकर तेज किये हुए अनेक शस्त्रासे मार डालो । सेवक लोग मारने लगे परन्तु वे सब शस्त्र उसपर फूल होकर पड़ते थे । इसीसे सम्बन्ध रखनेवाली एक कथा और लिखी जाती है जो इस प्रकार है —

उसी नगरमें एक अतिबल नामका दूसरा विद्याधर राजा रहता था ॥६८-१०८॥ उसकी चित्रसेना नामकी रानीसे कोई दुष्ट नौकर फँस गया था, इसलिए राजा उसे मारकर जला रहा था । धूमवेग विद्याधर श्रीपालकुमारको उसी अग्निकुण्डमें रखकर चला गया परन्तु कुमारकी महोपधिवी शक्तिसे वह अग्नि निस्तेज हो गयी इसलिए वह उससे बाहर निकल आया । उस मारकर जलाये हुए सेवककी स्त्रीको जब इस बातका पता चला कि कुमारके स्पर्शसे अग्नि शक्तिरहित हो गयी है तब वह स्वयं उस अग्निमें धुस पड़ी और उससे निकलकर यह कहती हुई अपनी शुद्धि प्रकट करने लगी कि 'मेरा पति निरपराध था राजाने उसे व्यर्थ ही मार डाला है । कुमारको यह सब खरिज देखकर बड़ा कौतुक हुआ, वह सोचने लगा कि 'स्त्रियोंकी मायासे बने हुए इस क्वचको इन्द्र भी अपने वज्रसे नहीं भेद सकता है, यह छिद्ररहित है इस प्रकार सोचता हुआ वह निर्भय होकर वहीं बैठा था । इधर उस नगरके स्वामी राजा विमलसेनकी पुत्री कमलावती वामरूप पिशाचमे आग्रात हो रही थी, उसने उस पिशाचको दूर करनेकी इच्छा मन्त्र आदमों इकट्ठे हुए थे श्रीपालकुमार भी वहाँ गया था और उसने उस पिशाचको दूर

१ मुद्राशुभिव्यय । २ गुणाया सरासान । ३ मप्रयुक्त ब० । सुप्रयुक्त ल०, अ० प० । ४ विष्यताया भयन । ५ निग्न । ६ निग्न चकार । ७ पापाणामुपानि । ८ हरता । ९ चित्तान्नी । १० पुरा स्मशान इतिगतिदया निर्वात पोवा जानमोपधिविनि । ११ स्वमनु । १२ वपटमित्यय । १३ इन्द्र । १४ कामप्रमपगारितयानित्यय ।

सत्याऽभूत् प्राक्तनादेश इति तस्मै महीपतिः । तृष्ठा तां कन्यकां^१ दिव्यमुत्तमस्या^२ निच्छां^३ विबुध्य सः^४ ॥११६॥
 अभ्यर्णं बन्धुवर्गस्य नेयोऽयं भवता द्रुतम् । यत्नेनेन्यात्मजं स्वस्य वरसेन ममाद्रिशत ॥११७॥
 नीत्वा सोऽपि कुमार त विमलाद्रिपुरो वहिः । वने तृष्णोपसृतं स्थापयित्वा गतोऽम्बुने^५ ॥११८॥
 तदा सुखावती कुब्जा भूत्वा कुसुममालया । परिस्पृश्य तृषां नीत्वा^६ कन्यकां त^७ चकार सा ॥११९॥
 धूमवेगो हरिवरञ्चैतां^८ वीक्ष्यामिलाषिणौ । अभूतां बद्धमात्मयौ तस्याः स्वीकरणं प्रति ॥१२०॥
 द्वेषवन्तौ तदाऽऽलोक्य युवयोर्विग्रहो बृथा । पतिर्भवन्वन्मावस्या यमेषाऽभिलषिष्यति ॥१२१॥
 इति बन्धुजनैर्वीर्यमाणौ वैराद् विरेमन् । स्त्रीहेतो कस्य वा न स्थानं प्रतिघातं^९ परम्परम् ॥१२२॥
 कन्याकृत्यैव^{१०} गत्वाऽतः कान्तया न सुकान्तया । रतिकान्ताख्यया कान्तवत्या च सहितं पुनः ॥१२३॥
 स्थितं प्राक्तनरूपेण^{११} काचित्तं वीक्ष्य लज्जिता । रतिं समागमन् काचिन्नैकमात्रां^{१२} हि योषितः ॥१२४॥
 प्रसूतवन्तं तं तत्र प्रसूये च सुखावती । यत्नेनोद्धृत्य गच्छन्ती तेनोन्मीलितचक्षुरा ॥१२५॥
 विहाय मामिहैकाकिनं त्वं क्व प्रस्थितेति सा । पृष्ठा न क्वापि याताऽहं त्वन्मर्मापगता मदा ॥१२६॥
^{१३}आदिष्टवन्ति तारुणलाभां नैवात्र ते भयम् । इत्यन्तर्हितमापाद्य^{१४} स्वरूपेण ममागम^{१५} ॥१२७॥

कर दिया था । 'निमित्तज्ञानियोने जो पहले आदेश दिया था वह आज सत्य सिद्ध हुआ ।' यह देख राजाने सन्तुष्ट होकर वह पुत्री कुमारको देनी चाही परन्तु जब कुमारकी इच्छा न देखी तब उसने अपने पुत्र वरसेनको आज्ञा दी कि इन्हे गीघ्र ही बड़े यत्नके साथ इनके बन्धु वर्गके समीप भेज आओ ॥१०९-११७॥ वह वरसेन भी कुमारको लेकर चला और विमलपुर नामक नगरके बाहर प्याससे पीडित कुनारको बैठकर पानी लेनेके लिए गया ॥११८॥ उसी समय कूबडीका रूप बनाकर मुखावती वहाँ आ गयी, उसने अपने फूलोकी मालाके स्पर्शसे कुमारको प्यास दूर कर दी और उसे कन्या बना दिया ॥११९॥ उस कन्याको देखकर धूमवेग और हरिवर दोनों ही उसकी इच्छा करने लगे । उसे स्वीकार करनेके लिए दोनों ईर्ष्यालु हो उठे और दोनों ही परस्पर द्वेष करने लगे । यह देखकर उनके भाई-बन्धुओंने रोका और कहा कि 'तुम दोनोंका लडना व्यर्थ है इसका पति वही हो जिसे यह चाहे' इस प्रकार बन्धुजनोंके द्वारा रोके जानेपर वे दोनों वैरसे विरत हुए । देखो ! स्त्रीके कारण परस्पर किस किसका प्रेम भग नहीं हो जाता है ? ॥१२०-१२२॥ उस कन्याने उन दोनोंमे-मे किसीको नहीं चाहा इसलिए मुखावती उसे कन्याके आकारमे ही वहाँ ले गयी जहाँ कान्ता, सुकान्ता, रतिकान्ता और कान्तवती थी ॥ १२३ ॥ पहलेके समान असली रूपमे बैठे हुए कुमारको देखकर कोई कन्या लज्जित हो गयी और कोई प्रीति करने लगी सो ठीक ही है क्योंकि मित्रियोंके भाव अनेक प्रकारके होते हैं ॥१२४॥ श्रीपाल रातको वही सोया, सोते-सोते ही मवेरेके समय मुखावती बड़े प्रयत्नमे उठा ले चली, कुमारने आँख खुलनेपर उसमे पूछा कि तू मुझे यहाँ अकेला छोड़कर कहाँ चली गयी थी ? तब मुखावतीने कहा कि मैं कही नहीं गयी थी, मैं मदा आपके पास ही रही हूँ, यहाँ आपको स्त्रीरत्न प्राप्त होगा ऐसा निमित्तज्ञानीने बतलाया है, यहाँ आपको कोई भय नहीं है । आज तक मैं अपने रूपको छिपाये रहती थी परन्तु आज अनन्ती रूपमे आपमे मिल

इत्याह तद्वच भुत्वा प्रमुद्यैत्य^१ सगाचले । पुर दक्षिणभागस्थ गजार्द्रि^२ तत्समीपगम् ॥१२८॥
 कचिद् गजपतिं स्तम्भमु^३ मूल्याख्यदपकम् । द्वात्रिंशदुक्तक्रीडामि^४ प्रहित्वा वशमानयत् ॥१२९॥
 ततः समुदित^५ चण्डदाहिता^६ निर्जिताद् गजात् । कुमारगमन पौरा बुद्ध्वा सतुष्टचेतसः ॥१३०॥
 'प्रतिकेतनमुद्बद्धचलकेतुपताकका । प्रयुद्गममकुर्वन्ते' तत्पुण्योदयचोदिता ॥१३१॥
 ततो नभस्यऽसौ गच्छन् कचिद्वयपुरे हयम् । स्थितं प्रदक्षिणीकृत्य त्व^७ पश्यन्नात्तविस्मय ॥१३२॥
 तत्रापि विदितादेशैर्नागरैः प्राप्तपूजन । पुनस्ततोऽपि निष्क्रम्य समागच्छन्निजेच्छया ॥१३३॥
 'चतुर्जनपदाभ्यन्तरस्थसीममहाचले'^८ । जने महति सभूमे^९ स्थिते केनापि हेतुना ॥१३४॥
 कस्यचित् कोशतः^{१०} तद्गं कस्मिँश्चिदपि यत्नत । सत्यशप्ते समुत्थातु त^{११} समुद्गीर्य^{१२} हेलया ॥
 कुमार^{१३} प्राहरद् वशस्तम्भ^{१४} सभृत^{१५} वशकम् । तदालोक्य जनः सवः प्रभोदादारव^{१६} व्यधात् ॥१३५॥
 तत्र कश्चित् समागम्य भूकः समुपविष्टवान् । प्रप्रणम्य कुमारं तं जयशब्दपुरस्सरम् ॥१३६॥
 'कुण्डश्च कश्चिद्वह्न्यया प्रसारितकराद्भुलि^{१७} । अञ्जलिं मुकुलीकृत्य समीपे समुपस्थित ॥१३७॥
 यो वज्रमणिपाकाय समुद्युक्तस्तदा मुदा । तेषां पाके व्यलोकिष्ट कुमारः विनयेन स ॥१३८॥

रही हूँ ॥१२५-१२७॥ उसके यह वचन सुनकर श्रीपाल बहुत ही हर्षित हुआ और वहाँसे आगे चलकर विजयाघ पर्वतके दक्षिण भागमें स्थित गजपुर नगरके समीप जा पहुँचा ॥१२८॥ वहाँ कोई एक गजराज स्वप्ना उखाड़कर मदोन्मत्त हो रहा था । उसे कुमारने शास्त्रोक्त बातोंसे क्रीडाओंसे क्रीडा कराकर वश किया ॥१२९॥ तदनन्तर सूर्योदय होते होते नगरके सब लोगोंने गजराजको जीत लेनेसे कुमारका आना जान लिया, सबने सतुष्टचित्त होकर घर घर चंचल पताकाएँ फहरायी और कुमारके पुण्योदयसे प्रेरित होकर सब लोगोंने उसकी अगवानी की ॥१३०-१३१॥ कुमार वहाँसे भी आकाशमें चला, चलता-चलता हयपुर नगरमें पहुँचा वहाँ एक घोड़ा कुमारकी प्रदक्षिणा देकर समीप ही में खड़ा हो गया, कुमारने यह सब स्वयं देखा परन्तु उसे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ ॥१३२॥ जब नगरनिवासियोंको इस बातका पता चला तब सबने कुमारका सत्कार किया, कुमार वहाँसे भी निकलकर अपनी इच्छानुसार आगे चला ॥१३३॥ चलता-चलता चार देशोंके बीचमें स्थित सुसीमा नामक पर्वतपर पहुँचा । वहाँ किसी कारण बहुत-से लोग इकट्ठे हो रहे थे, वे प्रयत्न कर म्यानसे तलवार निकाल रहे थे परन्तु उनमेंसे कोई भी उक्त कायके लिए समर्थ नहीं हो सका परन्तु कुमारने उसे लीला मात्रम निवाल दिया जिसमें बहुत-से बाँस उलझे हुए खड़े थे ऐसे बाँसके विडेपर उसे चलाया यह देखकर सब लोगोंने बड़े हर्षसे कुमारका आदर सत्कार किया ॥१३४-१३५॥ इतनेमें ही वहाँ एक गूंगा मनुष्य आया और जय-जय शब्दका उच्चारण करता हुआ कुमारको प्रणाम कर बैठ गया ॥१३६॥ वहीपर एक टेढ़ी अंगुलीका मनुष्य आया, कुमारको विसते ही उसकी अंगुली ठोक हो गयी, उसने हाथकी अंगुली फलाकर हाथ जोड़े और नमस्कार कर पास ही खड़ा हो गया ॥१३८॥ वहीपर एक मनुष्य हीराओंकी भस्म बना रहा था, वह धनती नहीं थी परन्तु कुमारने मन्निधानम् वह बन गयो इसलिए उसने भी बड़ी विनयसे कुमारके दक्षन किये

१ मनुष्य । २ गजपुरम् । ३ उच्यते गजपति । ४ भूमे । ५ प्रतिगुणम् । ६ सम्मुखगमनम् । ७ चक्रिरे । ८ श्रीपालपुरम् । ९ स्वयं गन्धर्वविस्मय ल० इ० अ० ल० । १० चतुर्जनपदाभ्यन्तरस्थसीमाख्यमहागिरी । ११ महागिरी ट० । १२ मित्रिवा । १३ गङ्गविधानतः । १४ गङ्गम् । १५ उत्थानं कृत्वा । १६ प्रहरति स्म । १७ वज्रगुणम् । १८ परिवर्द्धितवेणकम् । १९ - - - ल० प । २० वृद्धश्च अ० ल० । वृद्धिश्च ल० । निनाम् ।

प्रागुक्तकरवालेशः पुरेऽभूद् विजयाह्वये । सोऽस्य^१ सेनापतिर्भावी भविष्यच्चक्रवर्तिनः ॥१४०॥

तत्पुरे वर^२ कीर्तीष्टकीर्तिमत्यात्मजापने^३ । खड्गोत्पाटनमादेशस्तस्य श्रीपालचक्रिणः ॥१४१॥

मूकः श्रेयः पुरे जातस्तस्य भार्वा पुरोहितः । शिवसेनमहीपालः श्रीमांस्तन्नगरेश्वरः ॥१४२॥

वीतशोकाह्वया तस्य तनूजा वनजेक्षणा । मूकभाषणमादेशः कुमारस्य तदापने^४ ॥१४३॥

^५कुण्डः शिल्पपुरोत्पन्नः स्थपतिस्तस्य भाव्यसौ । नाम्ना नरपतिस्तत्पुरेशो नरपते सुता ॥१४४॥

रत्यादिविमलासार्द्धं तथैतस्य समागमः । अङ्गुलिप्रसरादेशात् स्मरव्यपदया^६ चिरम् ॥१४५॥

स वज्रमणिपाकस्य^७ प्रधानपुरुषो^८ भवेत् । तस्य^९ धान्यपुरे^{१०} जातिर्विशालरतत्पुराधिपः ॥१४६॥

सुता विमलसेनास्य श्रीपालस्य तदापत्ये^{११} । आदेशस्तस्य तद्वज्रमणिपाको महौजसः ॥१४७॥

^{१२}इत्यादेशवर ज्ञात्वा सर्वे स्वं स्वं पुर ययुः । तदा कुमारमूढवाऽयान्नमोभागे सुखावती ॥१४८॥

धूमवेगो विलोक्यैनं त्रिद्विषो^{१३} भीषणारवः । अभितर्ज्य स्थितो रुध्रा खे खेटकयुतासिभृत् ॥१४९॥

तदा^{१४} पूर्वोदिताचार्या देवता याऽस्य^{१५} पारिका^{१६} । सा विद्याधररूपेण समुपेत्य सुखावतीम् ॥१५०॥

॥१३९॥ श्रीपालने जो तलवार म्यानसे निकाली थी उसका स्वामी विजयपुर नगरका रहने-
वाला था और होनहार इसी श्रीपाल चक्रवर्तीका भावी सेनापति था ॥१४०॥ उसी विजयपुर
नगरके राजा वरकीर्तीष्टकी रानी कीर्तिमतीकी एक पुत्री थी, उसके विवाहके विषयमे निमित्त-
ज्ञानियोने बतलाया था कि इसका वर श्रीपाल चक्रवर्ती होगा और उसकी पहचान म्यानमे-से
तलवार निकाल लेनी होगी ॥१४१॥ वह गूंगा श्रेयस्पुरमे उत्पन्न हुआ था और इसका भावी
पुरोहित था, उसी श्रेयस्पुर नगरका स्वामी राजा शिवसेन था, उसके कमलके समान नेत्रवाली
वीतशोका नामकी पुत्री थी उसके वरके विषयमे निमित्तज्ञानियोने आदेश दिया था कि जिसके
समागमसे यह गूंगा बोलने लगेगा, वही इसका वर होगा ॥१४२-१४३॥ जिसकी अँगुली
टेढी थी वह शिल्पपुरमे उत्पन्न हुआ था और इसका होनहार स्थपति रत्न था । उसी शिल्पपुर
के राजाका नाम नरपति था उसके रतिविमला नामकी पुत्री थी, निमित्तज्ञानियोने बताया
था कि जिसके देखनेसे इसकी टेढी अँगुली फैलने लगेगी उसीके साथ कामक्रीडा करनेवाली
इस कन्याका चिरकाल तक समागम रहेगा ॥१४४-१४५॥ जो हीराओका भस्म बना रहा
था वह इसका मन्त्री होनेवाला था और धान्यपुर नगरमे पैदा हुआ था, उसी धान्यपुर नगरके
राजाका नाम विशाल था उसकी एक विमलसेना नामकी कन्या थी, निमित्तज्ञानियोने बतलाया
था कि जिसके आनेपर हीराओका भस्म बन जायेगा वही महा तेजस्वी श्रीपाल इसका पति
होगा ॥१४६-१४७॥ इस प्रकार निमित्तज्ञानियोके आदेशानुसार उस पुरुषको पहचान
कर वे सब अपने-अपने नगरको चले गये और उसी समय सुखावती थी कुमारको लेकर
आकाशमार्गसे चलने लगी ॥१४८॥ चलते-चलते इसे धूमवेग गन्तु मिला, वह कुमारको
देखकर भयकर शब्द करने लगा, और डाँट दिखाकर रास्ता रोक आकाशमे खड़ा हो गया,
उस समय खेटक और तलवार दोनो गस्त्र उसके पास थे ॥१४९॥ उसी समय पहले कही

१ श्रीगान्धर्व । २ वरकीर्तिनृपते प्रियाया कीर्तिमत्या मुताया आपने परिणयने । ३ 'पन व्यवहारे स्तुतो
च' पृथग्व्यवहारे त० टि० । -त्यात्मजापते ड० । जायते अ०, स०, ल० । ४ वीतशोकाया परिणयने ।
५ कुलि ल० । ६ कामविशिष्टधर्मप्रदया अथवा कामविविधगमनप्रदया । ७ वज्रमणिपाकस्य ल०, ट० ।
८ वज्रमणिपाको वज्ररत्नपाकवान् । अन्य श्रीपालस्य । ९ मन्त्रिमुह्य । १० वज्रमणिपाकिन । १० उत्पत्ति ।
११ विमलसेनाया प्राप्त्यै । १२ आदेशजामातरम् । -देवानर ल०, प० । -देवान्नर अ०, म० ।
१३ त्रिदिवो भीषणारवम् ड०, ज०, म० । १४ पूर्वोक्तिप्रमदवनम्यवदतगोत्रम्यितप्रति-
म्यम् । १५ श्रीगान्धर्व । १६ रक्षिका ।

सुखा कुमारमम्यस्य विभीर्विद्याधराधमम् । नियुज्य विजयस्वेति निजगाद् निराकुलम् ॥१५१॥
 साऽपि सुखा कुमारे त धूमवेग रणाङ्गणे । चिर युष्वा स्वविद्यामिम्यरौसी^१ यधौयशाशिनी ॥१५२॥
 कुमारोऽपि समीपस्थशिलायां धरणाधर । शनै^२ समापतत्तस्य^३ देवभी जननी पुरा ॥१५३॥
 यक्षीभूता तदागत्य सस्पृशन्ती करण तम् । अपास्यास्य श्रम मद्भु^४ कुमार^५ प्रविश हृदम् ॥१५४॥
 नगावनमिति श्रुत्वा सोऽपि विश्वस्य तद्वच । प्रविश्य त^६ शिलास्तम्भस्थोपरि स्थितवान्निशि ॥१५५॥
 कुर्वन् पञ्चनमस्कारपदानां परिवसनम्^७ । प्रभात^८ तदुदग्भागे जिनन्दप्रतिविम्बकम् ॥१५६॥
 विलोक्य कृतपुष्पादिसपूजनममस्त्रिच । सहस्रपत्रमम्भोज चक्ररत्न सङ्कुम्भम् ॥१५७॥
 आतपत्र सहस्रोक्तं षण च फणिना पतिम् । दण्डरत्न सभण्डक नक्र^९ चूटामहामणिम् ॥१५८॥
 चमरत्न स्फुरद्गङ्गुश्रिक काकिणामणिम् । ईक्षाचक्रे स पुण्यामा तत्र^{१०} यक्ष्युपदेश ॥१५९॥
 तदा मुदितचि^{११} सन् छत्रमुद्यम्य दण्डभृत् । प्रद्योतमानरत्नोपानरक्तो^{१२} यक्षीसमर्पिते ॥१६०॥
 सचरत्नमयैर्दिव्यभूषामर्देर्विभूषित । निगम्य^{१३} गुहातोऽसौ तद्वेत्य सुखावती ॥१६१॥
 धूमवेग विनिर्जित्य प्रतिपद्वा^{१४} हिमद्युतिम्^{१५} । वृद्ध्य^{१६} कुमारभाषणा सकलाऽसिलताविता^{१७} ॥१६२॥
 एतया^{१८} सह गत्वा त सप्राप्तसुरभूषणम्^{१९} । गुणपालजिनाधीश समामण्डलमासवान् ॥१६३॥
 तत्र त सुचिर स्तुत्वा मनोवाक्यशुद्धिभाक् । मातर भ्रातर चोचितोपचारो विलोक्य तौ ॥१६४॥

हुई प्रतिमापर जा इसकी रक्षा करनेवाली देवी रहती थी वह विद्याधरका रूप धारण कर आयी और सुखावतीको छोड़कर कुमारको ले गयी तथा सुखावतीसे कह गयी कि तू निभय हो निराकुलतापूर्वक इस नीच विद्याधरसे लड़ना और इसे जीतना ॥१५०-१५१॥ शूरवीरतासे शोभायमान रहनेवाली सुखावती भी कुमारको छोड़कर धूमवेगसे लड़ने लगी और रणके मदानम बहुत समय तक युद्ध कर उसने उसे अपनी विद्याओं-द्वारा रोक लिया ॥१५२॥ कुमार भी समीपवती पवतकी एक शिलापर धीरे धीरे जा पड़ा । वहाँ उसकी पूर्वभवकी माता देवथी जो कि यक्षी हुई थी आयी । उसने हाथसे स्पश कर श्रीपालका सब परिश्रम दूर कर दिया और कहा कि तू शीघ्र ही इस तालाबमें घुस जा । कुमार भी उसके वचनोंका विश्वास कर तालाबमें घुस गया और वही रात भर पत्थरके खम्भेपर बठा रहा ॥१५३-१५५॥ सवेरे पंच नमस्कार मन्त्रका पाठ करता हुआ उठा, तालाबके उत्तरकी ओर श्रीजिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा देखकर पुण्य आदि सामग्रीसे पूजन और नमस्कार किया । तदनंतर उसी यक्षीके उपदेशसे उस पुण्यात्माने सहस्र पत्रवाले कमलको चक्ररत्नरूप होते देखा, कलुवेको छत्र होते देखा, बड़ी-बड़ी हजार फणाओंको धारण करनेवाले नागराजको दण्डरत्न होते देखा, मछकको चूड़ा मणि, मगरका चमरत्न और ददीप्यमान लाल रंगके विच्छूको काकिणी मणि रूप होते देखा ॥१५६-१५९॥ उस समय उसने प्रसन्नचित्त होकर छत्र धारण किया, दण्ड उठाया, चमकीले रत्नोक्त जूत पहने और फिर वह यक्षीव द्वारा दिये हुए मणिमय दिव्य आभूषणोंसे सुशीमित होकर गुहासे बाहर निकला । उसी समय जिस प्रकार चन्द्रमाकी वृद्धि के लिए शुक्लपक्षकी प्रतिपन्ना आती है उसी प्रकार धूमवगकी जीतकर तलवार लिये हुए चतुर सुखावती कुमारकी वृद्धि के लिए उमरा पास आ पहुँची । श्रीपाल यहाँसे उसके साथ-साथ चला और चलता-चलता मुरगिरि परतपर गुणपाल जिनेन्द्र समवसरणमें जा पहुँचा ॥१६०-१६३॥ वहाँ मन,

१ कथाय । २ गप्रप्त । ३ आगत्य । ४ कुमारं ल० । ५ हृदम् । ६ मुहुमद्वरनुबिन्दनम् । ७ हृदस्यान्तर
 निवास । ८ पञ्चमणि तथा म० प० म० स० इ० । ९ हृदे । १० यक्ष्याप्यव रूपाणि । सहस्रपत्राम्भोजाग्नि
 ईक्षाचक्र इति गद्यः । ११ मणिमयपान्त्राण । १२ गुण्या मन्त्राणां । १३ प्रतिपद्दिनधीरिव ।
 १४ यन्त्रम् । १५ यन्त्रमणिना । १६ मुखावती । १७ मुरगिरिनामगिरिम् ।

‘तदागीर्वादिसन्तुष्टः सविष्टो मातृसंनिधौ । सुखावतीप्रभावेण युष्मदन्तिकमासवान् ॥ १६५ ॥
क्षेमणेति तयोरग्रे प्रागंसत्तां^३ नृपानुजः^४ । मतां स सहजो भावो यस्तुवन्त्युपकारिणः ॥ १६६ ॥
वसुपालमहीपालप्रज्ञाद् भगवतोदितैः । स्थित्वा विद्याधरश्रेण्यां बहुलम्भान्^५ ममापिबान् ॥ १६७ ॥
ततः^६ सप्तदिनैरेव सुखेन प्राविशत् पुरम्^७ । सचित्तोर्जितपुण्यानां भवेदापच्च सपदे ॥ १६८ ॥
वसुपालकुमारस्य वारिपेणादिभिः समम् । कन्याभिरभवत् कल्पाणविधिर्विविधद्विकः ॥ १६९ ॥
स श्रीपालकुमारश्च^८ जयावत्यादिभिः कृती । तदा चतुरशीर्तीष्ट^९ कन्यकाभिरलकृतः ॥ १७० ॥
सूर्याचन्द्रमसौ वा तौ स्वप्रभाव्यासदिकत्तौ । पालयन्तौ धराचक्रं चिरं निर्विगतः स्म शम्^{१०} ॥ १७१ ॥
जयावत्यां समुत्पन्नां गुणपालां गुणोज्ज्वलः । श्रीपालस्यायुवागारे चक्र च समजायत ॥ १७२ ॥
स सर्वाश्चक्रवर्त्युक्तभोगाननुभवन् भृशम् । शकलीला^{११} व्यडम्बिष्ट लक्ष्म्या^{१२} लक्षितविग्रहः ॥ १७३ ॥
अभूज्जयावतीभ्रातुस्तनूजा जयदर्शन । जयसेनाह्वया कान्तेस्सा^{१३} सेनेव^{१४} विजित्वरी^{१५} ॥ १७४ ॥
मनोवेगोऽगनिवरः शिवाख्योऽगनिवेगवाक् । हरिकेनु परे चोच्चैः क्षमाभुजः खगनायकाः ॥ १७५ ॥
^{१६} जयसेनाख्यमुख्याभिस्तेषां^{१७} तुग्भिः^{१८} सहाभवत् । विवाहो गुणपालस्य स तामिः प्राप्तसमदः ॥ १७६ ॥

वचन, कायकी गुद्धि धारण कग्नेवाले श्रीपालने बहुतदेर तक गुणपाल जिनेन्द्रकी स्तुति की, माता और भाईको देखकर उनका योग्य विनय किया और फिर उन दोनोंके आशीर्वादसे सन्तुष्ट होकर वह माताके पाम बैठ गया । उसने माता और भाईके सामने यह कहकर सुखावतीकी प्रगसा की कि मैं इसके प्रभावसे ही कुशलतापूर्वक आपलोगोके समीप आ सका हूँ सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुषोका जन्मसे ही ऐसा स्वभाव होता है कि जिससे वे उपकार करनेवालोंकी स्तुति किया करते हैं ॥ १६४-१६६ ॥ महाराज वसुपालके प्रग्नके उत्तरमे भगवान्ने जैसा कुछ कहा था उसीके अनुसार उस श्रीपालने विद्याधरकी श्रेणीमे रहकर अनेक लाभ प्राप्त किये थे ॥ १६७ ॥ तदनन्तर वह सात दिनमे ही मुखसे अपने नगरमे प्रविष्ट हो गया सो ठीक ही है क्योंकि प्रबल पुण्यका सचय करनेवाले पुरुषोको आपत्तियाँ भी सम्पत्तिके लिए हो जाती हैं ॥ १६८ ॥

नगरमे जाकर वसुपाल कुमारका वारिपेणा आदि कन्याओके साथ विवाहोत्सव हुआ, वह विवाहोत्सव अनेक प्रकारकी विभूतियोंसे युक्त था ॥ १६९ ॥ उसी समय चतुर श्रीपाल कुमार भी जयावती आदि चौरासी इष्ट कन्याओसे अलकृत—सुगोभित हुए ॥ १७० ॥ अपनी कान्तिसे दिग्दिगन्तको व्याप्त करनेवाले सूर्य और चन्द्रमाके समान पृथिवीका पालन करते हुए, दोनों भाई चिरकाल तक मुखका उपभोग करते रहे ॥ १७१ ॥ कुछ दिन बाद श्रीपालकी जयावती रानीके गुणोसे उज्ज्वल गुणपाल नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और इधर आयुधगालामे चक्रग्न प्रकट हुआ ॥ १७२ ॥ जिसका शरीर लक्ष्मीसे सुगोभित हो रहा है ऐसा वह श्रीपाल चक्रवर्तिके कहे हुए सब भोगोका अत्यन्त अनुभव करता हुआ इन्द्रकी लीलाको भी उल्लेखन कर रहा था ॥ १७३ ॥ जयावतीके भाई जयवर्माके जयमेना नामकी पुत्री थी जो अपनी कान्तिमे मेनाके समान सबको जीतनेवाली थी ॥ १७४ ॥ इसके सिवाय मनोवेग, अगनिवर, शिव, अगनिवेग, हरिकेनु तथा और भी अनेक अच्छे-अच्छे विद्याधर राजा थे, जयमेनाको आदि लेकर

^१ सुखेऽथैवमुत्सालयोगशीर्वचन । ^२ नृपावत्या नामव्येन । ^३ स्मृति स्म । ^४ श्रीपाद । ^५ कन्यादिशान्ति ।
^६ प्राप्त गन् । ^७ सप्तदिनानन्तरमेव । ^८ आन्धीवस्तुर्दिशिगन् । ^९ उद्व तसौ नृपवर्तिनी ।
^{१०} निवृत्तगतिभिः, पट्टाश्रमिस्तिव्य । ^{११} नृवन्मभूतम् । ^{१२} निम्नगति स्म । वसन्तिष्ठ ७० ।
^{१३} जयसेनाख्य लक्ष्मी, सु० । लक्ष्मी अस्ति ५० ७० । ^{१४} जयसेना ७०, ५०, ३०, २०, १० । ^{१५} जयसेना ।
^{१६} जयसेना । ^{१७} जयसेनादिशान्ति । ^{१८} मनोवेगार्दमान । ^{१९} जयसेना ।

मुखा कुमारमस्यस्य विभार्विद्याधराधमम् । नियुज्य विजयस्वेति निजगाद निराकुलम् ॥१५१॥
 साऽपि सुवरा कुमार त धूमवेग रणाङ्गणे । चिर युध्वा स्वविद्यामि-यसौस्ती चोयशालिनी ॥१५२॥
 कुमारोऽपि समापस्थशिलाया घरणोधर । शनै 'समापतत्तस्य' दवन्ना जननी पुरा ॥१५३॥
 यक्षाभूता तदाग-य सरपृक्षन्ती करण तम् । अपास्यास्य ध्रम मङ्क्षु कुमार' प्रविश हृदम् ॥१५४॥
 नगादनमिति श्रुत्या सोऽपि विश्वस्य तद्वच । प्रविश्य त' शिलास्तम्भस्योपरि स्थितवाञ्छिनि ॥१५५॥
 कुवन् पञ्चनमस्कारपदानां परिवतनम् । प्रभाते 'तदुदग्भागे जिने द्रप्रतिविम्बकम् ॥१५६॥
 विलोक्य कृतपुष्पादिसपूजननमस्त्रिय । सहस्रपत्रमम्भोज चक्ररत्न सकृन्मकम् ॥१५७॥
 आतपत्रं सहस्रो फण च फणिना पतिम् । दण्डरत्न समण्डक नक्र 'चूटामहामणिम् ॥१५८॥
 चमरत्न स्फुरद्वक्त्रश्रिक काकिणामणिम् । ईक्षाचक्रे स पुण्यात्मा तत्र' यक्ष्युपदशतः ॥१५९॥
 तदा मुदितचित्त सन् छत्रमुद्यम्य दण्डभृत् । प्रद्योतमानरत्नोपानरको' यक्षीसमर्पिते ॥१६०॥
 सवरत्नमयैर्दिव्यभूषाभद्विभूषित । निजगाम 'गुहातोऽसौ तदवेत्य सुखावता ॥१६१॥
 धूमवेग विनिर्जित्य प्रतिपद्वा' हिमद्युतिम्' । वृक्षै कुमारमापन्ना सकलाऽस्तिलताम्बिता' ॥१६२॥
 एतया' सह गत्वात सप्राप्तसुरभूधरम्' । गुणपालजिनाधीश समामण्डलमासवान् ॥१६३॥
 तत्र त सुचिर स्तु-वा मनोवाक्पायशुद्धभाक् । मातर भ्रातर चोचितोपचारो विलोक्य तौ ॥१६४॥

हुई प्रतिमापर जा इसकी रक्षा करनेवाली देवी रहती थी वह विद्याधरका रूप धारण कर
 आयी और सुखावतीको छोड़कर कुमारको ले गयी तथा सुखावतीसे कह गयी कि तू निभय हो
 निराकुलतापूर्वक इस नीच विद्याधरसे लड़ना और इसे जीतना ॥१५०-१५१॥ शूरवीरतासे
 शोभायमान रहनेवाली सुखावती भी कुमारको छोड़कर धूमवेगसे लड़ने लगी और रणके
 मदानमें बहुत समय तक युद्ध कर उसने उसे अपनी विद्याओं-द्वारा रोक लिया ॥१५२॥
 कुमार भी समीपवती पवतकी एक शिलापर धीरे धीरे जा पड़ा । वहा उसकी पूर्वभवकी माता
 देवथी जो कि यक्षी हुई थी आयी । उसने हाथसे स्पश कर श्रीपालका सब परिश्रम दूर कर
 दिया आर कहा कि तू शीघ्र ही इस तालाबमें घुस जा । कुमार भी उसके वचनोंका विश्वास
 कर तालाबम घुस गया और वही रात भर पत्थरके खम्भेपर बैठा रहा ॥१५३-१५५॥ सवेरे
 पंच नमस्कार मात्रका पाठ करता हुआ उठा, तालाबके उत्तरकी ओर श्रीजिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा
 देखकर पुष्प आदि सामग्रीसे पूजन और नमस्कार किया । तदनन्तर उसी यक्षीके उपदेशसे
 उस पुण्यात्माने सहस्र पत्रवाल कमलको चक्ररत्नरूप होते देखा, कछुवेको छत्र होते देखा,
 बड़ी-बड़ी हजार फणाओंको धारण करनेवाल नागराजको दण्डरत्न होते देखा, मङ्कको चूडा
 मणि मगरका चर्मरत्न आर ददीप्यमान लाल रंगके बिच्छूको काकिणी मणि रूप होते देखा
 ॥१५६-१५९॥ उस समय उसने प्रसन्नचित्त होकर छत्र धारण किया, दण्ड उठाया, चमकील
 रत्नोक जूत पहने और फिर वह यक्षीके द्वारा न्ये हुए मणिमय दिव्य आभूषणोंसे सुशोभित
 होकर गुहाम बाहर निवला । उसी समय जिस प्रकार चन्द्रमाकी वृद्धिके लिए शुक्लपक्षकी
 प्रतिपदा आती है उमी प्रकार धूमवगको जीतकर तलवार लिये हुए चतुर सुखावती कुमारकी
 वृद्धिके लिए उमने पास आ पहुँची । श्रीपाल यहाँसे उसके साथ-साथ चला और चलता-चलता
 मुरगिरि पवनपर गुणपाल जिनेन्द्रके समवसरणम जा पहुँचा ॥१६०-१६३॥ वहाँ मन,

१ कराप । २ मद्राप्ति । ३ धावाण्य । ४ कुमार ल० । ५ हृदम् । ६ महुयुद्धरनुचितनम् । ७ हृदस्यात्तर
 निगम । ८ पञ्चमणि तथा १० १० अ० स० ६० । ९ हृद । वक्त्राण्यव रुपाणि । सहस्रपत्राम्भोजाग्नीनि
 ईगावश्च इति मन्त्रम् । १० मणिमयपत्राण । ११ गुहाया मद्राशात् । १२ प्रतिपद्दिनधीरिव ।
 १३ यन्त्रम् । १४ चन्द्रमा वता । १५ सुखावत्या । १६ मुरगिरिनामगिरिम् ।

तदाशीर्वादसंतुष्टः सविष्टो मातृसंनिधौ । सुखावतीप्रभावेण युष्मदन्तिकमासवान् ॥१६५॥
 क्षेमणेति तयोरग्रे प्रागंस्तत्तां^३ नृपालुजः^४ । सतां स सहजो भावां यस्तुवन्^५युपकारिणः ॥१६६॥
 वसुपालमहीपालप्रश्नाद् भगवतोदितैः । स्थित्वा विद्याधरश्रेण्यां बहुलम्भान्^६ समापिवान्^७ ॥१६७॥
 ततः सप्तदिनैरेव सुखेन प्राविशत् पुरम्^८ । सचिनोर्जितपुण्यानां भवेदापच च संपदे ॥१६८॥
 वसुपालकुमारस्य वारिषेणादिभिः समम् । कन्याभिरभवत् वक्ष्याणविधिर्विविधद्विकः ॥१६९॥
 स श्रीपालकुमारश्च जयावत्यादिभिः कृता । तदा चतुर्णांतीष्ट^{१०} कन्यकाभिरलकृतः ॥१७०॥
 सूर्याचन्द्रमसां वा तौ स्वप्रभाव्यासदिव्यौ । पालयन्तौ धराचक्रं चिरं निर्विघ्नतः स्म शम्^{११} ॥१७१॥
 जयावत्यां ममुत्पन्नो गुणपालो गुणोज्ज्वलः । श्रीपालस्यायुवागारे चक्र च ममजायत ॥१७२॥
 स सर्वाश्चक्रवर्त्युक्तभोगाननुभवन् भृशम् । शक्रलीला^{१२} व्यडम्बिष्ट लक्ष्म्या^{१३} लक्षितविग्रहः ॥१७३॥
 अभूजजयावतीभ्रातुस्तनूजा जयदमण । जयसेनाह्वया कान्तस्सा^{१४} सेनेव^{१५} विजिन्वरी^{१६} ॥१७४॥
 मनोवेगोऽगनिवरः शिवाख्योऽगनिवेगवाक् । हरिकेतुः परे चोच्चैः क्षमाभुजः खगनायकाः ॥१७५॥
^{१७} जयसेनाख्यमुख्याभिस्तेषां^{१८} तुग्भिः^{१९} सहाभवत् । विवाहो गुणपालस्य स तामिः प्राप्तसमद ॥१७६॥

वचन, कायकी गुडि धारण करनेवाले श्रीपालने बहुत देर तक गुणपाल जिनेन्द्रकी स्तुति की, माता और भाईको देखकर उनका योग्य विनय किया और फिर उन दोनोंके आशीर्वादसे सन्तुष्ट होकर वह माताके पास बैठ गया । उसने माता और भाईके सामने यह कहकर सुखावतीकी प्रशंसा की कि मैं इसके प्रभावसे ही कुशलतापूर्वक आपलोगोके समीप आ सका हूँ सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुषोका जन्मसे ही ऐसा स्वभाव होता है कि जिससे वे उपकार करनेवालोंकी स्तुति किया करते हैं ॥१६४-१६६॥ महाराज वसुपालके प्रश्नके उत्तरमें भगवान्ने जैसा कुछ कहा था उसीके अनुसार उस श्रीपालने विद्याधरकी श्रेणीमें रहकर अनेक लाभ प्राप्त किये थे ॥१६७॥ तदनन्तर वह सात दिनमें ही मुखमें अपने नगरमें प्रविष्ट हो गया सो ठीक ही है क्योंकि प्रबल पुण्यका सचय करनेवाले पुरुषोको आपत्तियाँ भी सम्पत्तिके लिए हो जाती हैं ॥१६८॥

नगरमें जाकर वसुपाल कुमारका वारिषेणा आदि कन्याओंके साथ विवाहोत्सव हुआ, वह विवाहोत्सव अनेक प्रकारकी विभूतियोंसे युक्त था ॥१६९॥ उसी समय चतुर श्रीपाल कुमार भी जयावती आदि चौरासी इष्ट कन्याओंसे अलकृत—सुगोभित हुए ॥१७०॥ अपनी कान्तिसे दिग्दिगन्तको व्याप्त करनेवाले सूर्य और चन्द्रमाके समान पृथिवीका पालन करते हुए दोनों भाई चिरकाल तक मुखका उपभोग करते रहे ॥१७१॥ कुछ दिन बाद श्रीपालकी जयावती रानीके गुणोंसे उज्ज्वल गुणपाल नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और इधर आयुधयालामे चक्रवर्त्त प्रकट हुआ ॥१७२॥ जिसका शरीर लक्ष्मीमें सुगोभित हो रहा है ऐसा वह श्रीपाल चक्रवर्त्तकि कहे हुए सब भोगोंका अत्यन्त अनुभव करता हुआ इन्द्रकी लीलाको भी उल्लेखन कर रहा था ॥१७३॥ जयावतीके भाई जयवर्मकि जयसेना नामकी पुत्री श्री जो अपनी कान्तिमें मेनाके समान सबको जीतनेवाली थी ॥१७४॥ इनके मित्राय मनोवेग, अगनिवर, शिव, अगनिवेग, हरिकेतु तथा और भी अनेक अच्छे-अच्छे विद्याधर राजा थे, जयसेनाको आदि लेकर

१ दृष्टे श्रीवसुपालप्रयोगशीर्षचन । २ सुखावत्या नाम्ब्येन । ३ स्तौति स्म । ४ श्रीपाल । ५ युष्मादिशक्ति । ६ प्राप्त भव । ७ सप्तदिनानन्तरमेव । ८ आन्तोऽस्तुतर्गोऽस्तिपुत्रम् । ९ वटवृक्षादी नृपय-गिरिनी । १० प्रियवर्त्तमानि, पट्टाश्विनिन्दिते । ११ सुकन्यवृन्दान् । १२ निन्द्यतेति स्म । १३ लक्ष्म्या । १४ लक्ष्मी । १५ लक्ष्मी । १६ लक्ष्मी । १७ लक्ष्मी । १८ लक्ष्मी । १९ लक्ष्मी । २० लक्ष्मी । २१ लक्ष्मी । २२ लक्ष्मी । २३ लक्ष्मी । २४ लक्ष्मी । २५ लक्ष्मी । २६ लक्ष्मी । २७ लक्ष्मी । २८ लक्ष्मी । २९ लक्ष्मी । ३० लक्ष्मी । ३१ लक्ष्मी । ३२ लक्ष्मी । ३३ लक्ष्मी । ३४ लक्ष्मी । ३५ लक्ष्मी । ३६ लक्ष्मी । ३७ लक्ष्मी । ३८ लक्ष्मी । ३९ लक्ष्मी । ४० लक्ष्मी । ४१ लक्ष्मी । ४२ लक्ष्मी । ४३ लक्ष्मी । ४४ लक्ष्मी । ४५ लक्ष्मी । ४६ लक्ष्मी । ४७ लक्ष्मी । ४८ लक्ष्मी । ४९ लक्ष्मी । ५० लक्ष्मी । ५१ लक्ष्मी । ५२ लक्ष्मी । ५३ लक्ष्मी । ५४ लक्ष्मी । ५५ लक्ष्मी । ५६ लक्ष्मी । ५७ लक्ष्मी । ५८ लक्ष्मी । ५९ लक्ष्मी । ६० लक्ष्मी । ६१ लक्ष्मी । ६२ लक्ष्मी । ६३ लक्ष्मी । ६४ लक्ष्मी । ६५ लक्ष्मी । ६६ लक्ष्मी । ६७ लक्ष्मी । ६८ लक्ष्मी । ६९ लक्ष्मी । ७० लक्ष्मी । ७१ लक्ष्मी । ७२ लक्ष्मी । ७३ लक्ष्मी । ७४ लक्ष्मी । ७५ लक्ष्मी । ७६ लक्ष्मी । ७७ लक्ष्मी । ७८ लक्ष्मी । ७९ लक्ष्मी । ८० लक्ष्मी । ८१ लक्ष्मी । ८२ लक्ष्मी । ८३ लक्ष्मी । ८४ लक्ष्मी । ८५ लक्ष्मी । ८६ लक्ष्मी । ८७ लक्ष्मी । ८८ लक्ष्मी । ८९ लक्ष्मी । ९० लक्ष्मी । ९१ लक्ष्मी । ९२ लक्ष्मी । ९३ लक्ष्मी । ९४ लक्ष्मी । ९५ लक्ष्मी । ९६ लक्ष्मी । ९७ लक्ष्मी । ९८ लक्ष्मी । ९९ लक्ष्मी । १०० लक्ष्मी ।

कदाचित् काललब्ध्यादिचोदितोऽभ्यणनिवृत्ति । बिलोकयन्नमोभागमकस्मादन्धकारितम् ॥१७७॥
 चन्द्रग्रहणमालोभ्य धिगैतस्यापि चक्षिणम् । अवस्था ससृजौ पापग्रस्तस्यायस्य का गति ॥१७८॥
 इति निर्विध सजातजातिभ्यतिरुदात्तधी^१ । स्वपूर्वभवसंबन्धं प्रत्यक्षमिव तस्मिन् ॥१७९॥
 पुष्करार्द्धेऽपरे भागे विद्वह पद्मकाङ्क्षय । विषये विधुत कान्त पुराधीशोऽवनीश्वर ॥१८०॥
 रथान्तकनकस्तस्य वस्त्रमा कनकप्रभा । तयोभूत्वा^२ प्रभापास्तमास्कर कनकप्रभ ॥१८१॥
 तस्मिन्नन्धगुरुधाने दष्टा सप्रेण सत्प्रिया । विद्यत्प्रमाद्वया तस्या विभोगन विषण्णवान् ॥१८२॥
 सार्धं समाधिगुप्तस्य समीपे सयम परम् । सप्राप्तवानतिस्निग्धै पितृमातृसनाभिभि ॥१८३॥
 तत्र सम्बन्धशुद्धादिपोद्गा प्रत्ययान्^३ भूवाम् । भावयित्वा मन्त्रस्या^४ जयताप्यविमानम्^५ ॥१८४॥
 प्रान्तं^६ ततोऽहमागत्य जातोऽत्रैवमिति स्फुम्^७ । समुद्रदत्तेनादित्यगति^८ वायुरथाह्वय^९ ॥१८५॥
 श्रेष्ठी कुबेरकान्तश्च लौकातिकरुपद् गता । बोधितस्तै^{१०} समागत्य गुणपाल प्रबुद्धवान् ॥१८६॥
 माहपाश समुच्छिद्य तप्तवांसश्च तपस्तप । घातिकर्माणि निर्मूल्य सयोगिपदमागमत् ॥१८७॥
 यशःपाल सुरावर्यास्तनूजस्तन सयमम् । गृहीत्वा सह तस्यैव गणभृत्यग्रमोऽभवत् ॥१८८॥

उन सब राजाओंकी पुत्रियोंके साथ गुणपालका विवाह हुआ । इस प्रकार वह गुणपाल उन कन्याओंके मिलनेसे बहुत ही हर्षित हुआ ॥१७५-१७६॥

अथानन्तर-किसी समय जिसका मोक्ष जाना अत्यन्त निकट रह गया है ऐसा गुणपाल काललब्धि आदिसे प्रेरित होकर आकाशकी ओर देख रहा था कि इतनेमें उसको दृष्टि अकस्मात् अन्धकारसे भरे हुए चन्द्रग्रहणकी ओर पड़ी, उसे देखकर वह सोचने लगा कि इस संसारकी धिक्कार हो जब इस चन्द्रमाकी भी यह दशा है तब संसारके अन्य पापग्रस्त जीवोंकी क्या दशा होती होगी ? इस प्रकार वैराग्य आते ही उस उत्कृष्ट बुद्धिवाले गुणपालकी जाति स्मरण उत्पन्न हो गया जिससे उसे अपने पूर्वभवके सम्बन्धका प्रत्यक्षको तरह स्मरण होने लगा ॥१७७-१७९॥ उसे स्मरण हुआ कि पुष्करार्ध द्वीपके पश्चिम विदेहम पद्मक नामका एक प्रसिद्ध देश है उसके कात्तपुर नगरका स्वामी राजा कनकप्रभ था । उसकी रानीका नाम कनकप्रभा था उन दोनोंके म अपनी प्रभासे सूर्यको तिरस्कृत करनेवाला कनकप्रभ नामका पुत्र हुआ था । किसी दिन एक बगीचेमें विद्युत्प्रभा नामकी मेरी स्त्रीको साँपने काट खाया, उसके वियागसे म विरक्त हुआ और अपने ऊपर अत्यन्त स्नेह रखनेवाले पिता माता तथा भाइयोंके साथ-साथ मैंने समाधिगुप्त मुनिराजके समीप उत्कृष्ट संयम धारण किया था ॥१८०-१८३॥ वहाँ मैं दग्धविबुद्धि आदि सोलह भावनाओंका अच्छी तरह चिन्तन कर आयुके अन्तम जयन्त नामके विमानम अहमिन्द्र उत्पन्न हुआ ॥१८४॥ और अन्तम वहाँसे चयकर यहाँ श्रीपालका पुत्र गुणपाल हुआ हूँ । वह इस प्रकार विचार ही रहा था कि इतनेमें ही क्षेममुद्रदत्त, आदित्यगति, वायुरथ और हस्त कुबेरकात्त जो कि तपश्चरण कर लौकान्तिक देव हुए थे उन्होंने आकर समझाया । इस प्रकार प्रधाषका प्राप्त हुए गुणपाल मोहजालको नष्ट कर तपश्चरण करने लग आर घातिया बर्माको नष्ट कर सयोगिपद-तेरहवें गुण स्थानको प्राप्त हुए ॥१८५-१८७॥ गुणावतीका पुत्र यशपाल भी उही गुणपाल जिनेन्द्रके पास दीक्षा धारण कर

१ चन्द्रमा । २ दग्धविबुद्धि । ३ वा-या निरावृत्त । ४ कारणानि । ५ आयुपस्यान्त । ६ अहमिन्द्र । ७ स्वर्गापुरम् । ८ स्वर्गा । ९ पूर्वभवसंबन्धं प्रत्यक्षमिव तस्मिन्प्रति सवय । १० प्रियतान्ताया जयन्त गत । ११ तिरस्कृतमणा जनक । १२ प्रभावर्या पिता । १३ उक्तलौकान्तिकापर । १४ यशःपाल पिता । १५ तिरस्कृतमणा पिता । १६ प्रभावर्या पिता । १७ कुबेरविषका पिता ।

राजराजस्तदा भूरिविभ्र-याऽभ्येत्य न^१ मुदा । श्रीपालः पूजयित्वा तु श्रुत्वा धर्मद्वयात्मकम् ॥१८६॥
 ततः स्वभावसम्बन्धमप्राक्षीत प्रश्रयाश्रयः । भगवांश्चेत्युवाचेति कुरुराजं^२ सुलोचना ॥१८७॥
 निवेदितवती पृष्टा मृष्टवाक् मौष्टवान्प्रिता । विदेहे पुण्डरीकिण्या यशःपालो महीपति ॥१८८॥
 तत्र सर्वसमृद्धाग्नौ चणिकु तस्य मनःप्रिया । धनञ्जयानुजाताऽमौ^३ धनश्रीर्धनवर्द्धिनी ॥१८९॥
 तयोस्तुक् सर्वदयितः श्रेष्ठो^४ तद्भगिनी मती । मज्जया सर्वदयिता श्रेष्ठिनिश्चित्तबलमे ॥१९०॥
 सुता सागरसेनस्य जयमेना समाह्वया । धनञ्जयवणीशस्य^५ जयदत्ताभिधाऽपरा^६ ॥१९१॥
 देवश्रीरनुजा श्रेष्ठिपितुस्तस्यां तनय्यौ^७ । जानौ सागरसेनस्य सागरो दत्तवाक्परः ॥१९२॥
 ततः समुद्रदत्तश्च महःसागरदत्तया । सुता^८ सागरसेनानुजायां जातमहोदयौ ॥१९३॥
 जातौ^९ सागरसेनाया दत्तो^{१०} वैश्रवणाद्विवाक् । दत्ता^{११} वैश्रवणादिश्च दयादः^{१२} श्रेष्ठिनः^{१३} स^{१४} तु ॥
 भार्या^{१५} सागरदत्तस्य दत्ता^{१६} वैश्रवणादिका । मती समुद्रदत्तस्य^{१७} सा सर्वदयिता^{१८} प्रिया ॥१९४॥
 सा वैश्रवणदत्तेष्टा दत्तान्ता^{१९} सागराह्वया । तेषां^{२०} सुरसुखेनैव काले गच्छति सततम् ॥१९५॥
 यशःपालमहीपालमावर्जितमहाधनः^{२१} । वणिग्धनञ्जयोऽन्येषु सद्रत्नैर्दर्शनीकृतैः^{२२} ॥२००॥

उन्हीका पहला गणधर हुआ ॥१८८॥ उसी समय राजाधिराज श्रीपालने बड़ी विभूतिके साथ आकर गुणपाल तीर्थ करकी पूजा की और गृहस्थ तथा मुनिसम्बन्धी-दोनों प्रकारका धर्म सुना । तदनन्तर बड़ी विनयके साथ अपने पूर्वभवका सम्बन्ध पूछा, तब भगवान् इस प्रकार कहने लगे — यह सब बातें मधुर वचन बोलनेवाली सुन्दरी सुलोचना महाराज जयकुमारके पूछनेपर उनसे कह रही थी । उसने कहा कि —

विदेह क्षेत्रकी पुण्डरीकिणी नगरीमे यशपाल नामका राजा रहता था ॥१८९-१९१॥ उसी नगरमे सर्वसमृद्ध नामका एक वैश्य रहता था । उसकी स्त्रीका नाम धनश्री था जो कि धनको बढ़ानेवाली थी और धनजयकी छोटी बहिन थी । उन दोनोंका पुत्र सर्वदयित सेठ था, उसकी बहिनका नाम सर्वदयिता था जो कि बड़ी ही सती थी । सर्वदयितकी दो स्त्रियाँ थी, एक तो सागरसेनकी पुत्री जयसेना और दूसरी धनजय सेठकी पुत्री जयदत्ता ॥१९२-१९४॥ सेठ सर्वदयितके पिताकी एक छोटी बहिन थी जिसका नाम देवश्री था और वह सेठ सागरसेनको ब्याही थी । उसके सागरदत्त और समुद्रदत्त नामके दो पुत्र थे तथा सागरदत्ता नामकी एक पुत्री थी । सागरसेनकी छोटी बहिन सागरसेनाके दो सन्ताने हुई थी — एक वैश्रवणदत्ता नामकी पुत्री और दूसरा वैश्रवणदत्त नामका पुत्र । वैश्रवणदत्त सेठ सर्वदयितका हिस्सेदार था ॥१९५-१९७॥ वैश्रवणदत्ता सेठ सागरदत्तकी स्त्री हुई थी, सेठ समुद्रदत्तकी स्त्रीका नाम सर्वदयिता था और सागरदत्ता सेठ वैश्रवणदत्तको ब्याही गयी थी । इस प्रकार उन सबका समय निरन्तर बड़े प्रेमसे व्यतीत हो रहा था ॥१९८-१९९॥ जिसने बहुत धन उपार्जन किया है ऐसे सेठ धनजयने किसी दिन अच्छे-अच्छे रत्न भेट देकर राजा यशपालके दर्शन किये

१ गुणपालकेवलिनम् । २ जयकुमारम् । ३ भगिनी । ४ पुत्र । ५ राजश्रेष्ठो । ६ धनजयनामवैश्यस्य । ७ द्वितीया । ८ सर्वदयितश्रेष्ठिजनकसर्वसमृद्धस्य । ९ पुत्री । १० देवश्रियोर्भर्तुर्भगिन्याम् । ११ सर्वसमृद्धस्य भार्यायाम् । १२ दत्ता अ०, प०, इ०, स०, ल० । १३ दत्तो ल०, प०, इ०, अ०, स० । १४ ज्ञाति । १५ सर्वदयितश्रेष्ठिनः । १६ वैश्रवणदत्तः । १७ सागरसेनस्य ज्येष्ठपुत्रस्य । १८ वैश्रवणदत्ता । भार्याऽभूदिति सम्बन्धः । १९ सागरसेनस्य कनिष्ठपुत्रस्य । २० सर्वदयितश्रेष्ठिनो भगिनीप्रिया । भार्या जातेति सम्बन्धः । २१ समुद्रदत्तस्यानुजा सागरदत्ताह्वया । वैश्रवणदत्तस्येष्टा बभूवेति सम्बन्धः । २२ समुद्रादीनाम् । २३ अकृच्छ्रेण, अत्यन्तसुखेनेत्यर्थः । २४ आनीतः । २५ उपायनीकृतैः ।

व्यलोकिष्ट^१ स भूयोऽपि तस्मै^२ समानपूर्वकम् । प्रीत्या धन हिरण्यादि प्रभूतमदितोचितम्^३ ॥२०१॥
 विलोक्य^४ त वणिक्पुत्रा सर्वेऽपि धनमाञ्जितुम्^५ । ग्रामे पुरोपकण्ठस्थे समूय विनिवेशरे ॥२०२॥
 तन्निवेशादथाऽ^६ यद्यु स^७ समुद्रादिदत्तक । रात्रौ स्वगृहमागत्य भार्यासपकपूर्वकम् ॥२०३॥
 कनाप्यविदितो राजावय^८ साधमुपागत^९ । काले गर्भं विदित्वाऽस्या^{१०} पापो^{११} दुश्चरितोऽभवत्^{१२} ॥२०४॥
 इति सागरदत्ताख्यस्तथा^{१३} मत्स्यमागमम्^{१४} । बोधितोऽप्यपरीक्षयासौ स्वगेहो^{१५} सासपाकरोत्^{१६} ॥२०५॥
 तत श्रेष्ठिगृह^{१७} याता तेनापि त्व दुराचरो^{१८} । नास्मद्गोह समागच्छेत्यज्ञानात् सा निवारिता ॥२०६॥
 समापवर्ति^{१९} येकस्मिन् केतने^{२०} विहितस्थिति^{२१} । नवमासावधौ पुत्रमलब्धानरूपपुण्यकम् ॥२०७॥
 तद्विदित्वा कुलस्यैव^{२२} समुपपन्न परामथ^{२३} । यत्र^{२४} कचन नीलैव^{२५} निक्षिपेत्यनुजीविक^{२६} ॥२०८॥
 प्रत्ययः^{२७} श्रेष्ठिना प्रोक्त श्रेष्ठिमित्रस्य बुद्धिमान् । स्मशाने साधितु विद्यामागतस्य खयायिनः^{२८} ॥२०९॥
 बाल समपयामास विधिभ्रो दुरितोदय । रगोऽसौ जयधामाख्यो जयभामास्य बहुभा ॥२१॥
 तौ^{२९} भोगपुरयास्त^{३०} यौ^{३१} जितशत्रुसमाह्वयम्^{३२} । कृत्वावर्धयतां^{३३} पुत्रमिव मत्स्यैरस मुदा ॥२११॥

राजाने भी उसका सम्मान किया और बड़े प्रेमसे उसके लिए यथामोग्य बहुत-सा सुवर्ण आदि धन वापिस दिया ॥२००-२०१॥ यह देखकर सब वैश्यपुत्र धन कमानेके लिए बाहर निकले और सब मिलकर नगरके समीप ही एक गाँवमें जाकर ठहर गये ॥२०२॥ दूसरे दिन समुद्रदत्त रात्रिम उन डरोसे अपने घर आया और अपनी स्त्रीसे सभोग कर किसीके जाने बिना ही रात्रिमें ही अपने झुण्डम जा मिला । इधर समयानुसार उसका गर्भ बढ़ने लगा । जब इस बात का पता समुद्रदत्तके बड़े भाई सागरदत्तको चला तब उसने समझा कि यह अवश्य ही इसका पापरूप दुराचरण है । समुद्रदत्तकी स्त्री सर्वदयिताने पतिवे साथ समागम होनेका सब समाचार यद्यपि बतलाया तथापि उसने परीक्षा किये बिना ही उसे घरसे निकाल दिया ॥२०३-२०४॥ तब सर्वदयिता अपने भाई सेठ सर्वदयितके घर गयी परन्तु उसने भी अज्ञानतासे यही कहकर उसे भीतर जानेसे रोक दिया कि 'तू दुराचारिणी है, मेरे घरमें मत आ' ॥२०५॥ तदनन्तर वह पासवे ही एक दूसरे घरमें रहने लगी, नौ महीनेकी अवधि पूरा होनेपर उसने एक अतिगय पुण्यवान् पुत्र प्राप्त किया ॥२०७॥ जब सेठ सर्वदयितको यह खबर लगी तो उसने समझा यह पुत्र क्या, हमारे कुलका कलक उत्पन्न हुआ है, इसलिए उसने एक नौकरको यह कहकर भेजा कि इसे ल जाकर किसी दूसरी जगह रख आ' । वह सेवक बुद्धिमान् था और सेठका विद्वासपात्र भी था, वह बालकको ले गया और सेठवे एक विद्याधर मित्रको जो कि विद्या सिद्ध करनेके लिए सम्मानम आया था सोप आया सो ठीक ही है क्योंकि पापका उदय बड़ा विचित्र होता है । सेठवे उस मित्रका नाम जयधाम था और उसकी स्त्रीका नाम जयभामा था । वे दोनों भोगपुरके रहनेवाले थे उन्होंने उस पुत्रका नाम जितशत्रु रखा और उसे औरस पुत्रने समान मानकर वे बड़ी प्रसन्नतासे उसका पालन-पोषण करने लगे ॥२०८-

१ लोकि । २ धनप्रदाय । ३ स्त्री । ४ धनार्थं राजा पूजितोऽय दत्त्वा । ५ -माञ्जितुम् ल० । ६ तच्छिष्टविरात् । ७ देशयोत्तागरगेनयो पुत्र समुद्रदत्त । ८ विदितम् । ९ सत्र साया । १० अतीवमन्यवहार । ११ दुष्टतर्कवत्परो-भर्त्ता नि । १२ मत्स्यमिता । १३ मित्ररथागमनम् । १४ मम भर्त्ता विविरागयत्न मया सह गम्यत इति निमित्तो-पि । १५ मत्स्यमिताम् । १६ मित्राभिनयान् । १७ निमग्नसर्व-वित्तप्रतिगृहम् । १८ दुष्टमाचरणम् । १९ नास्मद्गृहे ल । अ० प० स० इ० । २० गृह । २१ निग । २२ यत्र कुत्रापि । २३ मत्स्य । २४ मत्स्य । २५ । २६ विद्याधरस्य । २७ जयधामजयभामिनी । २८ भोगपुरनिवासी । २९ निगमित्रवर्त्ति । ३० ल ।

तदा पुत्रवियोगेन सा सर्वदयिताऽचिरान् । स्त्रीवेदनिन्दनान्मृत्वा मप्रापजन्म पौनपम् ॥२१०॥

तत समुद्रदत्तोऽपि साधेनामा^१ समागत । श्रुत्वा स्वमार्यावृत्तान्तं निन्दित्वा श्रान्तं निजम् ॥२११॥

श्रेष्ठिनेऽनपराधाय गृहवेशनिवारणान् । अकुप्यन्नितरं कृत्य क महेताविचारितम् ॥२१२॥

ज्येष्ठे न्यायगत योग्ये मयि स्थितवनि स्वयम् । श्रेष्ठित्वमयमयाम्न इति श्रेष्ठिर्नि कोपवान् ॥२१३॥

वै वैश्रवणदत्तोऽपि स समागदत्तक^२ । मातृ^३ समुद्रदत्तेन सा-मर्याच्छ्रेष्ठिर्नि स्थिता ॥२१४॥

दुस्महे तपसि श्रेयो मय्यरोऽपि हस्तिन नृणाम् । अन्येभ्युजितशत्रु त दृष्ट्वा श्रेष्ठी कुतो भवान् ॥२१५॥

समुद्रदत्तमास्त्रं दधम्य^४ समागत । इति पप्रच्छ स्योऽयान्मागमनक्रममवर्तान् ॥२१६॥

नान्यो मद्भागिनेयोऽयमिति तद्वन्तमन्विताम् । मुद्रिका वीक्ष्य निश्चिन्य नि पर्गक्षकता^५ निजाम् ॥

सैद्युतस्य^६ च सम्मृन्त्य तस्मै^७ सर्वश्रिय मुनाम् । यत श्रेष्ठिपद चायं^८ दत्त्वा निर्विण्णमानस ॥२२०॥

जयधामा^९ जयभामा जयसेना^{१०} तथाऽपग । जयदत्ताभिधाना च पग सागरदत्तिका^{११} ॥२२१॥

सा वैश्रवणदत्ता^{१२} च परं चोपपन्नोपधका । संजातास्ते मह श्रेष्ठी मयस प्रत्यपद्यत ॥२२२॥

मुनि रतिवर प्राप्य चिरं विहितमयमा । एते सर्वेऽपि कालान्ते स्वर्गलोक समागमन् ॥२२३॥

२११॥ सर्वदयिताने पुत्रके वियोगमे बहुत दिन तक स्त्रीवेदकी निन्दा की और मरकर पुत्रप-
का जन्म पाया ॥२१२॥ तदनन्तर समुद्रदत्त भी अपने झुण्डके साथ वापस आ गया और
अपनी स्त्रीका वृत्तान्त मुनकर अपने भाईकी निन्दा करने लगा । सेठने अपराधके बिना ही
उसकी स्त्रीको घरमे प्रवेश करनेसे रोका था इसलिए वह सेठपर अत्यन्त क्रोध करता रहता
था सो ठीक ही है क्योंकि जो कार्य बिना विचारे किया जाता है उसे भला कौन सहन कर
सकता है ? ॥२१३-२१४॥ कुछ दिन बाद वैश्रवण सेठ सागरदत्तमे यह कहकर क्रोध करने
लगा कि 'जब मैं बड़ा हूँ, और योग्य हूँ तो न्यायसे मुझे सेठ पद मिलना चाहिए, मेरे रहते
हुए यह सेठ क्यों बन बैठा है' । इसी प्रकार सागरदत्त और समुद्रदत्त भी सेठके साथ ईर्ष्या
करने लगे ॥२१५-२१६॥ आचार्य कहते हैं कि कठिन तपश्चरणके विषयमे की हुई मनुष्योकी
ईर्ष्या भी कही-कही अच्छी होती है परन्तु अन्य सब जगह अच्छी नहीं होती । किसी एक
दिन सेठ सर्वदयितने जितगत्रुसे पूछा कि तू समुद्रदत्तकी समानता क्यों धारण कर रहा है -
तेरा रूप उसके समान क्यों है ? और तू सभामे किसलिए आया है ? तब जितगत्रुने भी
वनुक्रमसे अपने आनेका सब समाचार कह दिया ॥२१७-२१८॥ उसी समय सेठकी दृष्टि
उसके हाथमे पहिनी हुई अँगूठीपर पड़ी, उसे देखकर उसने निश्चय कर लिया कि 'यह मेरा
भानजा ही है, दूसरा कोई नहीं है । उसे अपनी और अपने बहनोईकी अपरीक्षकता (बिना
विचारे कार्य करने) की याद आ गयी और उसे सर्वश्री नामकी पुत्री, बहुत-सा धन और सेठका
पद देकर स्वयं विरक्तचित्त हो गया ॥२१९-२२०॥ उसी समय जितगत्रुको पालनेवाला
जयधाम विद्याधर, उसकी स्त्री जयभामा, जयसेना और जयदत्ता नामकी अपनी स्त्रियाँ, वैश्रवण-
दत्तकी स्त्री सागरदत्ता और वैश्रवणदत्तकी बहन वैश्रवणदत्ता तथा और भी अनेक लोगोको
आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ । उन सबके साथ-साथ सेठने रतिवर मुनिके समीप जाकर मयस धारण

१ वणिक्मूहेन सह । २ सर्वदयिताय । ३ चुकोप । ४ सर्वदयिते । ५ स वै-ल०, अ०, म०, इ० । ६ सागर-
दत्तमहित । ७ श्रेष्ठिन ल०, प०, इ०, स०, अ० । ८ समुद्रदत्तस्य समानरूपताम् । ९ मभाम् । १० विचार-
शून्यताम् । ११ सागरदत्तस्य विचारशून्यताम् । १२ निजभागिनेयजितगत्रवे । १३ सर्वदयितश्रेष्ठी ।
१४ जितगत्रुवर्धनविद्याधरदम्पती । १५ सर्वदयितस्य भार्ये । १६ वैश्रवणदत्तस्य भार्या । १७ सागरदत्तस्य भार्या ।

'यल्लोकिष्ट' स भूयोऽपि तस्मै^१ समानपूर्वकम् । प्री या धन हिरण्यवादि प्रभूतमदितोद्यितम्^२ ॥२०१॥
 विलोक्य^३ त वणिक्पुत्रा सर्वेऽपि धनमाजितुम्^४ । ग्रामे पुरोपकण्ठस्थे समूय विनिवेशिरे ॥२०२॥
 'तच्चिवेशादथाऽन्यथु स' समुद्रादिदत्तक । राज्ञी स्वगृहमागत्य भार्यासपकपूर्वकम् ॥२०३॥
 केनाप्यविदितो राजावेव 'साधमुपागतः । काले गर्भं विदित्वाऽस्या' पापो^५ दुश्चरितोऽभवत्^६ ॥२०४॥
 इति सागरदत्ताख्यस्तथा^७ मत्स्यमागमम्^८ । 'बोधितोऽप्यपरीक्षयासौ स्वगहा' 'सामपाकरोत्'^९ ॥२०५॥
 तत श्रेष्ठिगृह^{१०} याता तेनापि त्व दुराचरो^{११} । 'नास्मद्गोहं समागच्छेत्स्थानानात् सा निवारिता ॥२०६॥
 समापवर्तिम्यकस्मिन् केतने^{१२} विहितस्थिति । नवभासावधौ पुत्रमलब्धानरूपपुण्यकम् ॥२०७॥
 तद्विदित्वा कुलस्थै^{१३} समुत्पन्न परामव । यत्र^{१४} क्वचन नीत्सैन^{१५} निक्षिपेत्पुनजीविक^{१६} ॥२०८॥
 प्रस्थथ^{१७} श्रेष्ठिना प्रोक्त श्रेष्ठिमित्रस्य बुद्धिमान् । स्मशाने साधितु विद्याभागतस्य लयायिन^{१८} ॥२०९॥
 बाल समयमामास विचित्रो दुरितोदय । लगोऽसौ जयधामाख्यो जयधामास्थ पक्ष्मभा ॥२१०॥
 तां^{१९} भोगपुरवास्तव्यौ^{२०} जितशत्रुसमाह्वयम्^{२१} । कृत्वावर्धयतां^{२२} पुत्रमिव भव्यौरस मुदा ॥२११॥

राजाने भी उसका सम्मान किया और बड़े प्रेमसे उसके लिए यथायोग्य बहुत-सा सुवर्ण आदि धन वापिस दिया ॥२००-२०१॥ यह देखकर सब वैश्यपुत्र धन कमानेके लिए बाह्य निकल और सब मिलकर नगरके समीप ही एक गावम जाकर ठहर गये ॥२०२॥ दूसरे दिन समुद्रदत्त रात्रिम उन डरोसे अपने घर आया और अपनी स्त्रीसे सभोग कर किसीके जाने बिना ही रात्रिमें ही अपने झुण्डमें जा मिला । इधर समयानुसार उसका गर्भ बढ़ने लगा । जब इस बात का पता समुद्रदत्तके बड़े भाई सागरदत्तको चला तब उसने समझा कि यह अवश्य ही इसका पापरूप दुराचरण है । समुद्रदत्तकी स्त्री सवदयिताने पतिके साथ समागम होनेका सब समाचार यद्यपि बतलाया तथापि उसने परीक्षा किये बिना ही उसे घरसे निकाल दिया ॥२०३-२०४॥ तब सवदयिता अपने भाई सेठ सवदयितके घर गयी परन्तु उसने भी अज्ञानतासे यही कहकर उसे भीतर जानेसे रोक दिया कि 'तू दुराचारिणी है, मेरे घरमें मत आ' ॥२०५॥ तदनन्तर वह पासके ही एक दूसरे घरम रहने लगी नौ महीनेकी अवधि पूण होनेपर उसने एक अतिशय पुण्यवान् पुत्र प्राप्त किया ॥२०७॥ जब सेठ सवदयितको यह खबर लगी तो उसने समझा यह पुत्र क्या, हमारे कुलका कलक उत्पन्न हुआ है इसलिए उसने एक नौकरको यह कहकर भेजा कि 'इसे ल जाकर किसी दूसरी जगह रख आ । वह सेवक बुद्धिमान् था और सेठना विश्वासपात्र भी था, वह बालकको ले गया और सेठके एक विद्याधर मित्रको जो कि विद्या सिद्ध करनेके लिए स्मशानम आया था, सौप आया सो ठीक ही है क्योंकि पापका उन्म यहा विचित्र होता है । सेठने उस मित्रका नाम जयधाम था और उसकी स्त्रीका नाम जयभामा था । वे दानो भोगपुरके रहनेवाले थे उहाने उस पुत्रका नाम जितशत्रु रखा और उस औरम पुत्रने समान मानकर वे बड़ी प्रसन्नतासे उसका पालन-पोषण करने लगे ॥२०८-

१ दत्त । २ धनत्रयाय । ३ स्त्री । ४ धनत्रय राजापुत्रितोऽयं दुष्टः । ५ -मजितुम ल० । ६ तच्चिविशिरात् ।
 ७ देवधामागरमनया पुत्र समुत्पन्न । ८ विचित्रम् । ९ सवदत्ताया । १० अगोभनव्यवहार । ११ दुष्ट
 वनिष्कृता-मर्षा नि । १२ मत्स्यमिनाया । १३ निजपुरुषागमनम् । १४ मम भर्ता शिविराणापत्य मया सह
 सन्ना इववाजिन निवर्तिनोर्नि । १५ मत्स्यमिताम् । १६ निष्ठासिगवान् । १७ निष्ठासमवदयित मठिगृहम् ।
 १८ दुष्टनापरिण रस । १९ नाम्मद्गृहं ल अ० प०, स० इ० । २० गृहे । २१ निगु । २२ यत्र कुत्रापि ।
 २३ स्थानम् । २४ भयम् । २५ विद्यायम् । २६ विद्याधरस्य । २७ जयधामत्रयभामति द्वौ । २८ भोगपुरनिवा
 मितौ । २९ शिवाजिनपुत्रितोऽयं कृत्वा । ३० वधयत् स्म ।

तदा पुत्रवियोगेन सा सर्वदयिताऽचिरान् । शीवेदनिन्दनान्मृत्वा मयापजन्म पौरुषम् ॥२१०॥

ततः समुद्रदत्तोऽपि सार्धेनामा^१ समागत । श्रुत्वा च्चमार्यावृत्तान् निन्दित्वा भ्रान्त निजम् ॥२११॥

श्रेष्ठिनेऽनपराधाया गृहवेशनिवारणान् । अकुप्यन्नितरा कृत्य क महेताविचाग्निम् ॥२१२॥

ज्येष्ठे न्यायगत योग्ये मयि स्थितवति स्वयम् । श्रेष्ठितमयम'यास्त इति श्रेष्ठिर्नि' कौपवान् ॥२१३॥

वै' वैश्रवणदत्तोऽपि स समागच्छत्तक^१ । सार्द्धं समुद्रदत्तेन सा सार्धच्छ्रेष्ठिर्नि' स्थिता ॥२१४॥

दुस्महे तपमि श्रे'यो मन्मरोऽपि वचिन नृणाम् । अन्येषुजितशत्रु न दृष्ट्वा श्रेष्ठा कुतो मवान् ॥२१५॥

'समुद्रदत्तमारुप्य दध्मस्य' दमागत । इति पप्रच्छ सोऽप्यात्मागमनक्रममवर्तान् ॥२१६॥

नान्यो मद्भागिनयोऽयमिति तद्वन्तमस्थिताम् । मुद्रिका वांश्च निश्चिन्य नि पर्गश्रकता^{१०} निजाम् ॥

मैथुनस्य^{११} च मन्मृत्य तम्मै^{१२} सर्वश्रिय मुनाम् । अन श्रेष्ठिपद चायां^{१३} दृष्ट्वा निर्विण्णमानस ॥२२०॥

जयधामा^{१४} जयभामा जयसेना^{१५} तथाऽपरा । जयदत्तामिधाना च परा सागरदत्तिका^{१६} ॥२२१॥

सा वैश्रवणदत्ता^{१७} च परं चोत्पन्नबोधका । सज्जानान् स सह श्रेष्ठा तयम प्रत्यपद्यत ॥२२२॥

मुनि रतिवर प्राप्य चिर विहितमयमा । एते सर्वेऽपि कालान्ते स्वर्गलोक समागमन् ॥२२३॥

२११॥ सर्वदयिताने पुत्रके वियोगसे बहुत दिन तक स्त्रीवेदकी निन्दा की और मरकर पुरुष-का जन्म पाया ॥२१२॥ तदनन्तर समुद्रदत्त भी अपने झुण्डके साथ वापस आ गया और अपनी स्त्रीका वृत्तान्त मुनकर अपने भाईकी निन्दा करने लगा । सेठने अपराधके बिना ही उसकी स्त्रीको घरमे प्रवेश करनेसे रोका था इसलिए वह सेठपर अत्यन्त क्रोध करता रहता था सो ठीक ही है क्योंकि जो कार्य बिना विचारे किया जाता है उसे भला कौन सहन कर सकता है ? ॥२१३-२१४॥ कुछ दिन बाद वैश्रवण सेठ सागरदत्तसे यह कहकर क्रोध करने लगा कि 'जब मैं बड़ा हूँ, और योग्य हूँ तो न्यायसे मुझे सेठ पद मिलना चाहिए, मेरे रहते हुए यह सेठ क्यों बन बैठा है' । इसी प्रकार सागरदत्त और समुद्रदत्त भी सेठके साथ ईर्ष्या करने लगे ॥२१५-२१६॥ आचार्य कहते हैं कि कठिन तपश्चरणके विषयमे की हुई मनुष्योकी ईर्ष्या भी कही-कही अच्छी होती है परन्तु अन्य सब जगह अच्छी नहीं होती । किसी एक दिन सेठ सर्वदयितने जितशत्रुसे पूछा कि तू समुद्रदत्तकी समानता क्यों धारण कर रहा है - तेरा रूप उसके समान क्यों है ? और तू सभामे किसलिए आया है ? तब जितशत्रुने भी अनुक्रमसे अपने आनेका सब समाचार कह दिया ॥२१७-२१८॥ उसी समय सेठकी दृष्टि उसके हाथमे पहिनी हुई अँगूठीपर पड़ी, उसे देखकर उसने निश्चय कर लिया कि 'यह मेरा भानजा ही है, दूसरा कोई नहीं है । उसे अपनी और अपने वहनोईकी अपरीक्षकता (बिना विचारे कार्य करने) की याद आ गयी और उसे सर्वश्री नामकी पुत्री, बहुत-सा धन और सेठका पद देकर स्वयं विरक्तचित्त हो गया ॥२१९-२२०॥ उसी समय जितशत्रुको पालनेवाला जयधाम विद्याधर, उसकी स्त्री जयभामा, जयसेना और जयदत्ता नामकी अपनी स्त्रियाँ, वैश्रवण-दत्तकी स्त्री सागरदत्ता और वैश्रवणदत्तकी वहन वैश्रवणदत्ता तथा और भी अनेक लोगोको आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ । उन सबके साथ-साथ सेठने रतिवर मुनिके समीप जाकर संयम धारण

१ वणिक्समूहेन सह । २ सर्वदयिताय । ३ चुकोप । ४ सर्वदयिते । ५ स वै-ल०, अ०, स०, इ० । ६ सागर-दत्तसहितः । ७ श्रेष्ठिन ल०, प०, इ०, स०, अ० । ८ समुद्रदत्तस्य समानरूपताम् । ९ सभाम् । १० विचार-गूढताम् । ११ सागरदत्तस्य विचारगूढताम् । १२ निजभागिनैर्यजितशत्रवे । १३ सर्वदयितश्रेष्ठे । १४ जितशत्रुवर्धनविद्याधरदम्पती । १५ सर्वदयितस्य भार्या । १६ वैश्रवणदत्तस्य भार्या । १७ सागरदत्तस्य भार्या ।

प्राप्ते स्वर्गादिहागत्य जयधामा तदातन । वसुपालोऽग्न सजातो जयभामाऽप्यजायत ॥२२४॥
 जयवत्यात्तसौन्दर्या जयसेनाऽजनिष्ट सा । पिप्पली जयदत्ता तु वस्यन्तमवमाऽभवत् ॥२२५॥
 विद्युद्वेगाऽभवद् वैश्रवणदत्ता कलाखिला । जाता सागरदत्तापि स्वर्गादित्य सुखावती ॥२२६॥
 तदा सागरदत्ताख्य स्वर्गलोकात् समागत । पुत्रो हरिवरो जात स पुरुरवस प्रिय ॥२२७॥
 समुद्रदत्तो ज्वलनवेगस्याजनि विश्रुत । तनूजो धूमवगाख्यो विद्याविहितपौरुष ॥२२८॥
 स वैश्रवणदत्तोऽपि भूतोऽशानिवेगक । श्रेष्ठो स सबदयित श्रीपालस्त्वमिहाभव ॥२२९॥
 ख जामातुर्निराकृत्या सनाभिभ्यो वियोजित । तदा त्वद्वेपिणोऽस्मिन् तव द्वेपिण एव ते ॥२३०॥
 तदा प्रियास्तवाभ्राऽपि सजाता नितरा भिया । अहि स्याऽभक्त स्यात्सीद् बधुभिस्तव सगम ॥२३१॥
 मत्तप फलतो जात चक्रित्व सकलक्षित । सबसगपरित्यागामबद्धु मोक्ष गमिष्यसि ॥२३२॥
 अधोदीरिततीर्थेशवचनाकण्ठेन ते । सर्वे परस्परद्वेषाद् विरमन्ति स्म त्रिस्मयात् ॥२३३॥
 जन्मरोगजरामृत्युच्छिद्मन्तु सन्ततानुगान् । सनिधाय धिय धन्योऽघासीद्धर्माद्भुत ततः ॥२३४॥
 धिनिद् चमिसाम्राज्य कुलालस्येव जीवितम् । मुनिश्चक्र परिभ्राज्य मृदुत्ववफलासित ॥२३५॥

कर लिया । वे सभी लोग चिरकाल तक संयमका साधन कर आयुके अन्तमें स्वर्ग गये ॥२२१-२२३॥ वहाँकी आयु पूरी होनेपर स्वर्गसे आकर पहलेका जयधाम विद्याधर यहाँ राजा वसुपाल हुआ है जयभामा वसुपालकी सुन्दरी रानी जयावती हुई है, जयसेना पिप्पली हुई है, जयदत्ता मदनावती हुई है वैश्रवणदत्ता सब कलाओंमें निपुण विद्युद्वेगा हुई है, सागरदत्ता स्वर्गसे आकर सुखावती हुई है उस समयका सागरदत्त स्वर्गसे आकर पुरुरवाका प्यारा पुत्र हरिवर हुआ है, समुद्रदत्त ज्वलनवेगका प्रसिद्ध पुत्र हुआ है जो कि अपनी विद्याओंसे ही अपना पौरुष प्रकट कर रहा है वैश्रवणदत्त अशनिवेग हुआ है और सबदयित सेठ यहाँ श्रीपाल हुआ है जो कि तू ही है ॥२२४-२२६॥ तूने पूर्वभवमें अपने जैमाई (भानेज जितशत्रु) को उसकी मातासे अलग कर दिया था इसलिए तुझे भी इस भवमें अपने माई-बधुओंसे अलग होना पड़ा है, पूर्व भवम जो वैश्रवणदत्त सागरदत्त तथा समुद्रदत्त तेरे द्वेपी थे वे इस भवमें भी तुझसे द्वेष करने बाल धूमवेग, अशनिवेग और हरिवर हुए हैं । उस भवमें जो तुम्हारी स्त्रियाँ थीं वे इस भवमें भी तुम्हारी अत्यन्त प्यारी स्त्रियाँ हुई हैं । तुमने अपनी बहनके बालककी हिंसा नहीं की थी इसलिए ही तेरा इस भवम अपने माई-बधुओंके साथ फिरसे समागम हुआ है । तूने उस भवम जो तपश्चरण किया था उसीके फलसे सम्पूर्ण पृथिवीका चक्रवर्ती हुआ है और अन्तमें सब परिग्रहाका त्याग कर देनेसे तू शीघ्र ही मोक्ष पा जायेगा ॥२३०-२३२॥ इस प्रकार तीर्थ कर भगवान् गुणपालक कहे हुए वचनोंको सुनकर सब लोगोंने आश्चर्यपूर्वक अपना परस्पर का सब बैर छोड़ दिया ॥२३३॥

तन्मन्तर पुण्यात्मा श्रीपालने सदासे पीछे लगे हुए जन्म रोग, जरा और मृत्युको नष्ट करनेके लिए बुद्धि स्थिर कर धर्मरूपी अमृतका पान किया ॥२३४॥ वह सोचने लगा कि यह चक्रवर्तीका साम्राज्य कुम्हारकी जीवनीके समान है क्याकि जिस प्रकार कुम्हार अपना घण्टा (चाक) घुमाकर मिट्टीमें बने हुए घड़े आदि वस्तुओंसे अपनी आजीविका चलाता है

- १ तन्मन्तर । २ श्रीपालम्हायमहिषी जाता । ३ पिप्पली ल० प० इ० अ०, स० । ४ सपुणकला । ५ पुरुरवस इति विद्याधरस्य । ६ भगिनापुत्रस्य निराकरणन । ७ तन्वाले । ८ अहिजनन । ९ तव भगिनी णिनी । १० पुनर्बाधव मङ्ग मयोग । ११ निरन्तरानुपमनगीलान् । १२ पपी । धेद पाने इति धातु । १३ भावनस्त्रिया । १४ चरन्त्यम् पञ्चिषायनी च । १५ क्षत्रात्पन्नप्राप्तिव । मृत्पिण्डीत्यप्राप्तिव ।

आयुर्व्यायुरय^१ मोहो^२ भोगो भर्ता^३ हि संगम^४ । त्रयु पापस्य दुष्पात्र त्रिभुल्लोला त्रिभुनय^५ ॥२३६॥
 'मार्गविभ्रंशहेतुत्वाद् यौवन गहनं वनम् । या रनिविपर्ययेषा गत्रेपयनि साऽग्निम् ॥२३७॥
 सर्वमं तन्सुगाय स्याद् यावन्मनिविपर्ययः^६ । प्रगुणाया मतो मन्या किं तस्याज्यमतः परम् ॥२३८॥
 चित्तद्रुमस्य चेद् वृद्धिर्मिलापविपादुरः । कथं दुःखफलानि स्युः समोगविटपेषु न ॥२३९॥
 भुक्तो भोगो दशाद्भोऽपि यथेष्ट सुचिर मया । मात्रामात्रेऽपि नात्रार्मानुत्तिस्त्रुणाविघातिनी ॥२४०॥
 अस्तु वास्तु ममस्तु च सकल्यविपर्ययकृतम् । इष्टमेव तस्यायस्मात्तान्मि^७ न्यन्ताऽपि निवृत्तिः^८ ॥२४१॥
 किल स्त्रीभ्यः सुगवांसि पौंसि^९ किमत पाम् । ईयमानमनि ममाय्य^{१०} मांय स्या परमः^{११} पुमान् ॥
 इति स्त्रीपालचक्रेण^{१२} सत्यजन व्रजता विद्य । अक्रमेणागिल न्यक्तु मचक्र मनिमाननां ॥२४३॥
 ततः सुखावतीपुत्र नरपालाभिधानकम् । कृताभिपेक्षमार्गस्य समुत्तुन निजायनम् ॥२४४॥
 जयवत्यादिभिः स्वाभिदेवाभिर्भरणीभ्यः । वसुपालादिमिश्रामा मयम प्रत्यपयत् ॥२४५॥
 स बाह्यमन्तरङ्ग च तपस्तप्त्वा यथाविधि । क्षपकश्रेणिमान्त्रा^{१३} मायेन^(१) हतमोहक ॥२४६॥
 यथायातमवाप्योत्चारित्रनिष्कपायकम् । यायन द्वितीयशुक्लेन वीचाररहितात्मना^{१४} ॥२४७॥

उसी प्रकार चक्रवर्ती भी अपना चक्र (चक्ररत्न) घुमाकर मिट्टीमें उत्पन्न हुए रत्न या कर
 आदिसे अपनी आजीविका चलाता है - भोगोपभोगकी सामग्री जुटाना है इसलिए इस चक्रवर्ती-
 के साम्राज्यको धिक्कार है ॥२३५॥ यह आयु वायुके समान है, भोग मेघके समान है, इष्ट-
 जनोका सयोग नष्ट हो जानेवाला है, शरीर पापोंका खोटा पात्र है और विभूतियाँ विजलीके
 समान चंचल हैं ॥२३६॥ यह यौवन समीचीन मार्गमें भ्रष्ट करनेका कारण होनेमें सधन वनके
 समान है और जो यह विषयोमें प्रीति है वह द्वेषको टूटनेवाली है ॥२३७॥ इन सब वस्तुओंसे
 सुख तभी तक मालूम होता है जबतक कि बुद्धिमें विपर्ययपना रहता है । और जब बुद्धि सीधी
 हो जाती है - तब ऐसा जान पड़ने लगता है कि इन वस्तुओंके सिवाय छोड़ने योग्य और
 क्या होगा ? ॥२३८॥ जब कि अभिलाषारूपी विपके अकुरोसे इस चित्तरूपी वृक्षकी सदा
 वृद्धि होती रहती है तब उसकी सभोगरूपी डालियोंपर भला दुःखरूपी फल क्यों नहीं लगेगे ?
 ॥२३९॥ मैंने इच्छानुसार चिरकाल तक दसों प्रकारके भोग भोगे परन्तु इस भवमें तृष्णाको
 नष्ट करनेवाली तृप्ति मुझे रचमात्र भी नहीं हुई ॥२४०॥ यदि हमारी इच्छाके विषयभूत सभी
 इष्ट पदार्थ एक साथ मिल जाये तो उनसे थोड़ा-सा भी सुख नहीं मिलता है ॥२४१॥
 स्त्रियोंसे सुखकी प्राप्ति होना ही पुरुषत्व है ऐसा प्रसिद्ध है परन्तु इससे बढ़कर और दीनता
 क्या होगी ? इसलिए अपने आत्मामें ही सच्चे सुखका निश्चय कर पुरुष हो सकता हूँ -
 पुरुषत्वका धनी बन सकता हूँ ॥२४२॥ इस प्रकार बुद्धिकी वक्रताको छोड़ते हुए श्रीपाल
 चक्रवर्तीने चक्ररत्नसहित समस्त परिग्रहको एक साथ छोड़नेका विचार किया ॥२४३॥
 तदनन्तर उसने नरपाल नामके सुखावतीके पुत्रका राज्याभिषेक कर उसे अपने बहुत ऊँचे
 सिंहासनपर बैठाया और स्वयं जयवती आदि रानियों तथा वसुपाल आदि राजाओंके साथ
 दीक्षा धारण कर ली ॥२४४-२४५॥ उन्होंने विधिपूर्वक बाह्य और अन्तरंग तप तपा,
 क्षपक श्रेणीमें चढ़कर मोहरूपी शत्रुको नाश करनेसे प्राप्त होनेवाला कपायरहित यथाख्यात
 नामका उत्कृष्ट चारित्र प्राप्त किया, वीचाररहित द्वितीय शुक्ल ध्यानके द्वारा आत्मस्वरूपका

१ वायुवेगी । २ मेघो ल० । ३ विनाशी । ४ इष्टमयोग । ५ मन्मार्गच्युतिकारणत्वात् । ६ मन्त्रवन्दनादि ।
 ७ मतेर्व्यायाम, मोह । ८ इष्टमृक्कामिन्यादिकादन्यत् । ९ अत्यल्पकालेऽपि । १० अल्पापि । ११ सुखम् ।
 १२ कुयलाकुशलसमाचरणलक्षण पौरुषम् । १३ मकल्पमुखम् । १४ अह परमपुरुषो भवेयम् । १५ मोहाराति-
 जयाजितम् ल०, प०, अ०, स०, इ० । १६ एकत्ववितर्कवीचाररूपद्वितीयशुक्लध्यानन ।

घातिकमन्त्रं हत्वा सप्राप्तनवकबल^१ । स्वयंगत्यानमाश्रम्य विद्योपा वातकश्मप ॥२४८॥
 शरीरत्रिविधापायादाधिष्णुगुणात्कर । अनन्तशान्तमप्राप्तमत्राप सुगमुत्तमम् ॥२४९॥
 तस्य राज्यश्च ता मया विधाय विविधं तप । स्वगलाक स्वधायारविमानध्वमवन् सुरा ॥२५०॥
 आशां चाकण्य त मया गत्या नाक निजाचितम्^२ । मनुभूय सुग प्राप्तो शपपुण्यविपत् ॥२५१॥
 इहागताग्निनि व्यक्त व्याजहार^३ मुलाचना । जयाऽपि स्वप्रियाप्रशापमागदमुपतदा ॥२५२॥
 तदा सद्मन्द^४ सञ्ज प्रगार्थुन्नुदाहनम्^५ । क प्रत्यति^६ न द्रुष्टश्चेत् मन्निनिगदित वच ॥२५३॥
 एवमुन्वत् साम्राज्यमागमार निरन्तरम् । मुञ्जानो रक्षितान्याभ्या काल गमयत् स्म ता ॥२५४॥
 तदा^७ रगमवावसप्तप्रसिप्रमुगा भिता । विद्यास्ता^८ च महाश^९ च सभान्या ता ननन्दतु^{१०} ॥२५५॥
^{११} तद्वत्तान् कान्तया माह विहनु सुरगाचरान् । बाम्भन् दशान् निज राज्य नित्या च विजयऽनुज ॥२५६॥
 यद्यप मप्रिया विद्यावाहन मरितां पतान्^{१२} । कुलालाक्षदारम्यवमानि विविधान्यपि ॥२५७॥
 विहरन् यदा मघस्वर कंठानालज । वन मुलाचनाम्यर्णादनी किञ्चिदपावरन्^{१३} ॥२५८॥

चिन्तन करत हुए ज्ञानावरण, दानावरण और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोंका नष्ट कर भी बलवत्त्विया प्राप्त की, सयागवेवली गुणस्थानम पहुँचकर क्रमस योगरहित होकर सत्र कम नष्ट किय और अन्तम औगारिक, तैजस, कार्माण-तीना शरीरोके नाशस गुणाका समूह प्रकट कर अनन्त, शांत, नवीन और उत्तम सुख प्राप्त किया ॥२४६-२४९॥ श्रीपाल चक्रवर्तीकी सत्र रानियाँ भी अनेक प्रकारका तप तपकर स्वगलोकम अपने-अपने योग्य बडे बडे विमानांम दव दृष्ट ॥२५०॥ मुलोचना जयकुमारम कह रही है कि हम जाना भी ये सब कथाएँ मुनकर एव गुणपाल तीय करको नमस्कार कर स्वग चल गय थे और वहाँ यथायोग्य सुख भागकर आयुके अन्तम वाकी वचे हुए पुण्यविनेपसे यहाँ उत्पन्न हुए हैं । ये सब कथाएँ मुलाचनान स्पष्ट गानाम वही थी आर जयकुमार भी अपनी प्रियाकी वृद्धिके प्रभावसे उस समय अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ था ॥२५१-२५२॥ उस समय सभाम बैठ हुए सभी लागाने मुलोचना क कहनेपर विश्वास किया सा ठीक ही है क्योंकि जा द्रुष्ट नहीं है वह ऐसा कौन है जो सज्जनों क द्वारा कह हुए वचनापर विश्वास न करे ॥२५३॥ इस प्रकार साम्राज्य तथा धष्ट भोगोंका निरन्तर उपभोग करत और परस्पर एक दूसरेका प्रसन्न करत हुए वे दोनों सुखसे समय बिताने लगे ॥२५४॥ उसी समय पहले विद्याधरके भवमें लक्ष्मीकी बढानेवाली जो प्रज्ञप्ति आदि विद्याएँ थीं व भी वडे प्रेमस जयकुमार और मुलोचना दोनोंका प्राप्त हो गयी ॥२५५॥ उन विद्याआव बलस महाराज जयकुमारने अपनी प्रिया-मुलाचनाके साथ दबोक योग्य देशोंमें विहार करनकी इच्छा की और इसलिए ही अपने छाट भाई विजयकुमारका राज्यकायमें नियुक्त कर लिया ॥२५६॥

तदनन्तर जिसकी सवारियाँ विद्याक द्वारा बनी हुईं हूँ एसा वह जयकुमार अपनी प्रिया-मुलाचनाक साथ-साथ समुद्र, कुलाचल आर धनक प्रकारके मनोहर वनोंम विहार करता

१ सप्राप्तनवकबल इति शान्तमप्राप्तमत्राप सुगमुत्तमम् । २ औगारिककारार वापनमिति शरीरत्रिविधापायादाधिष्णुगुणात्कर । ३ अनन्त शान्तमप्राप्तमत्रापत् इ अ० स० ४० प० । अप्राप्तमनुपमम् । प्रापन्वानाने मृग्यो मुल्यवाहुरययोरपि इत्यभिधानात् । ४ मयाचितम् ४० प० अ० स० ६० । ५ आयुस्त । ६ उवाच । ७ मघ मोतीति सद्मन्द । सभा प्राप्या इत्यय । ८ विन्वस्तवन्त । ९ मुलोचनावचनम् । १० न यदपति । ११ हिरण्यवमप्रभावनीमव प्राप्त । १२ मुलोचनाम् । १३ जयम् । १४ वचितप्रिय ४० प० ६० म० । १५ प्रप्यादविद्यावलाप । १६ पतिम् ४० प० ६० स० । १७ अपसरति स्म ।

अमरन्त्रे ममामध्ये शीलमाहात शयनम् । जयस्य तन्प्रियायाश्च प्रकुर्वति कदाचन ॥२५६॥
 श्रुत्वा तदादिमे कर्त्ते रविप्रभविमानजः । श्रीशो^१ रविप्रभाख्येन तच्छीलान्वेषण प्रति ॥२६०॥
 प्रेषिता^२ कांचना नाम देवी प्राप्य जय सुधीः । क्षेत्रेऽस्मिन् भारते खेचराद्रेस्तत्तद्विस्तृते ॥२६१॥
 मनोहराख्यविषये राजारत्नपुराधिप । अभूत पिङ्गलगान्धार सुखदा तस्य सुप्रभा ॥२६२॥
 तयोर्विद्युत्प्रभा पुत्री नमेभार्या यदृच्छया । न्वा नन्दने महामरौ क्रीडन्त वीक्ष्य संत्सुका ॥२६३॥
 तदा प्रभृति मच्चित्तेऽभवत्त्र लिङ्गिताकृतिः । न्वन्यमागममवाह ध्यायन्ती देवयोगतः ॥२६४॥
 दृष्टवत्यस्मि कान्ता^३ ऽस्मिन्निवेग^४ मोदुमक्षमा । इत्यपास्तोपकण्ठस्थान् स्वकीयान् स्मरन्निहला ॥२६५॥
 स्वानुरागं जये व्यक्तमकरोद् विकृतेक्षणा । तद्दुष्टचेष्टित दृष्ट्वा मा मस्या पापमीदृशम् ॥२६६॥
 सोदर्या^५ च समादायि^६ मया मुनिव्रगद् व्रतम् । पराङ्मनाङ्गममङ्गसुखं मे विषमक्षणम् ॥२६७॥
 महीगेनेति मप्राक्ता^७ मिव्या मा^८ कोपवेपिनी । उपात्तराक्षसीवेधा त^९ ममुदधृत्य गत्वरी^{१०} ॥२६८॥
 पुष्यावचयमसक्तनृपकान्ताभितर्जिता^{११} । भीत्वा तच्छीलमाहात्म्यान्^{१२} काञ्चनाऽदृश्यतां गता ॥२६९॥
 अत्रिभ्यद्देवता चैव शीलवत्या परं न के । ज्ञात्वा तच्छीलमाहात्म्य गत्वा स्वस्वामिनं प्रति ॥२७०॥

हुआ किसी समय कैलाश पर्वतके वनमें पहुँचा और किसी कारणवश सुलोचनासे कुछ दूर चला गया ॥२५७-२५८॥ उसी समय इन्द्र अपनी सभाके बीचमें जयकुमार और उसकी प्रिया सुलोचनाके शीलकी महिमाका वर्णन कर रहा था उसे सुनकर पहले स्वर्गके रविप्रभ विमानमें उत्पन्न हुए लक्ष्मीके अधिपति रविप्रभ नामके देवने उनके शीलकी परीक्षा करनेके लिए एक काचना नामकी देवी भेजी, वह बुद्धिमती देवी जयकुमारके पास आकर कहने लगी कि 'इसी भरतक्षेत्रके विजयार्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमें एक मनोहर नामका देश है, उसके रत्नपुर नगरके अधिपति राजा पिङ्गलगान्धार है, उनके मुख देनेवाली रानी सुप्रभा है, उन दोनोंकी मैं विद्युत्प्रभा नामकी पुत्री हूँ और राजा नमिकी भार्या हूँ । महामेरु पर्वतपर नन्दन वनमें क्रीडा करते हुए आपको देखकर मैं अत्यन्त उत्सुक हो उठी हूँ । उसी समयसे मेरे चित्तमें आपकी आकृति लिख-सी गयी है, मैं सदा आपके समागमका ही ध्यान करती रहती हूँ । दैवयोगसे आज आपको देखकर आनन्दके वेगको रोकनेके लिए असमर्थ हो गयी हूँ ।' यह कहकर उसने समीपमें बैठे हुए अपने सब लोगोको दूर कर दिया और कामसे विह्वल होकर तिरछी आँखें चलाती हुई वह देवी जयकुमारमें अपना अनुराग स्पष्ट रूपसे प्रकट करने लगी । उसकी दुष्ट चेष्टा देखकर जयकुमारने कहा कि तू इस तरह पापका विचार मत कर, तू मेरी बहन है, मैंने मुनिराजसे व्रत लिया है कि मुझे परस्त्रियोके शरीरके ससर्गसे उत्पन्न होनेवाला सुख विष खानेके समान है । महाराज जयकुमारके इस प्रकार कहनेपर वह देवी झूठमूठके क्रोधसे काँपने लगी और राक्षसीका वेप धारण कर जयकुमारको उठाकर जाने लगी । फूल तोड़नेमें लगी हुई सुलोचनाने यह देखकर उसे ललकार लगायी जिससे वह उसके शीलके माहात्म्यसे डरकर अदृश्य हो गयी । देखो, शीलवती स्त्रीसे जब देवता भी डर जाते हैं तब औरोंकी तो बात ही क्या है ? वह काचना देवी उन दोनोंके शीलका माहात्म्य जानकर अपने स्वामीके पास गयी, वहाँ उसने उन दोनोंके उस माहात्म्यकी प्रशंसा की जिसे सुनकर वह रविप्रभ देव भी आश्चर्यसे उनके गुणोंमें प्रेम करता हुआ उन दोनोंके पास आया । उसने अपना सब

१ रविप्रभविमानोत्पन्नलक्ष्मीपति । २ श्रीशो ल० । ३ निरूपिता । ४ भो प्रिय । ५ एतस्मिन् प्रदेशे । ६ कामवेगम् । ७ स्वजनान् । ८ स्वीकृतम् । ९ ससर्ग - ल०, प०, इ०, स० । १० सम्प्रोक्त ल० । ११ पाप-वेपनी ट० । अगोभन कम्पयन्ती । १२ जयम् । १३ गमनशीला । १४ सुलोचनातर्जिता । १५ काञ्चनाख्या-मराङ्गना ।

प्राप्तसत् सा तथोस्तादृमाहात्म्य सोऽपि विस्मयात् । रविप्रम समागत्य तादुमौ तद्गुणप्रिय ॥२०१॥
 स्वधुत्तान्त समाख्याय युवाभ्यां क्षम्यतामिति । पूजयित्वा महारत्नैर्नाल्लोक समीपिवान् ॥२०२॥
 तथा चिर विहृत्वात्तसमीति कान्तमा समम् । निवृत्त्यं पुरमागन्थ सुरससार समन्वयम् ॥२०३॥
 अथात्रदा समुत्पन्नबोधिमधस्वराधिप । तीर्थाधिनाथ मासाय वन्दित्वाऽऽनन्दमाजनम् ॥२०४॥
 कृत्वा धमपरिप्रश्न श्रुत्वा तस्माद्यथोचितम् । आक्षेपिण्यादिका सम्यक् कथाधर्मादयादिकम् ॥२०५॥
 कमनिमुक्तसमाप्य शमसार प्रबुद्धधी । शिवकरमहादेव्यास्तनूजो जगतां प्रिय ॥२०६॥
 अवार्योऽनन्तवीर्याख्य शत्रुभि शस्त्रशास्त्रविद् । आकुमार यशस्तस्य शौर्यं शत्रुजयावधि ॥२०७॥
 त्यागः सर्वार्थिसतर्पी सत्य स्वप्नेऽप्यविच्छ्रुतम् । विधायामिषव तस्मै प्रदायात्मायसपदम् ॥२०८॥
 पद पर परिप्राप्तुमव्यग्रममिलापुक । विसर्जितसगोत्रा दिर्बिनिजितनिजेन्द्रिय ॥२०९॥
 वितर्जितमहामोह समर्जितशुभाशय । विजयन जयन्तेन सजयन्तन सामुजं ॥२१०॥
 अन्यैश्च निश्चितस्थानै रागद्वेषाविदूषितै । रविकीर्त्ति रिपुजयोऽरिन्दमोऽरिजयाह्वय ॥२११॥
 सुजयश्च सुकान्तश्च ससमश्चाजितजय । महाजयोऽतिवीर्यश्च वरजयसमाह्वय ॥२१२॥
 रविवीर्यस्तथाऽन्ये च तनूजाश्चक्रवर्तिनः । तैश्च सार्द्धं सुनिर्विण्णैश्चरमाङ्गो विशुद्धिभाक् ॥२१३॥

वृत्तान्त कहकर उन दोनोंसे क्षमा मांगी और फिर बड़े-बड़े रत्नासे पूजा कर वह स्वर्गको चला गया । इधर जयकुमार भी प्रिया-सुलोचनाके साथ चिरकाल तक बड़े प्रेमसे विहारकर वापस लौटे और नगरमें आकर अष्ट सुखोंका अनुभव करने लगे ॥२५९-२७३॥

अथानन्तर-जिसे आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे जयकुमारने किसी एक दिन आनन्दके पात्र श्री आदिनाथ तीर्थकरके पास जाकर उनकी वन्दना की, धमविषयक प्रश्न कर उनका यथा योग्य उत्तर सुना आक्षेपिणी आदि कथाएँ कही और कर्मोंके वध उदय आदिकी चर्चा की ॥२७४-२७५॥ इस प्रकार प्रबुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले जयकुमारने कर्मोंके नाशसे प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ सुखको प्राप्त किया । तदनन्तर उसने जो लोगोको बहुत ही प्रिय है, जिसे शत्रु नहीं रोक सकते हैं, जो शस्त्र और शास्त्र दोनोंका जाननेवाला है, जिसका यश कुमार अवस्थासे ही फल रहा है, जिसकी शूरीवीरता शत्रुओंके जीतने तक है जिसका दान सब याचकोंको सन्तुष्ट करनेवाला है, और जिसका सत्य कभी स्वप्नमें भी खण्डित नहीं हुआ है ऐसे शिवकर महादेवीके पुत्र अनन्तवीर्यका राज्याभिषेक कर उसे अपनी सब राज्य सम्पदा दे दी ॥२७६-२७८॥ तदनन्तर जो आकुलतारहित परम पद प्राप्त करनेकी इच्छा कर रहा है जिसने अपने सब कुटुम्बका परित्याग कर दिया है, अपनी इन्द्रियोंको वश कर लिया है, महामोहको डंढ दिखा दी है और शुभासुखका सचय किया है ऐसे चरमशरीरी तथा विशुद्धि को धारण करनेवाल जयकुमारने विजय जयन्त सजयन्त तथा परिग्रहके त्यागका निश्चय करनेवाल और राग द्वेषसे अदूषित अन्य छोटे भाइयो एवं रविकीर्त्ति, रविजय अरिन्दम, अरिजय सुजय, सुकान्त, सातर्वा अजितजय महाजय अतिवीर्य वरजय रविवीर्य तथा इनके सिवाय और भी वराम्यको प्राप्त हुए चक्रवर्तिक पुत्रोंके साथ-साथ दीक्षा धारण की ॥२७९-२८३॥

१ प्रशंसा चकार । २ जयसुलोचनयो । ३ तथा ल० । ४ मण्डमाजन कल्याणभाजनं वा । तीर्थादि-ल० । ५ आक्षेपणी विक्षेपणी सवजनी निर्वेजनीति वेति वतस । आक्षेपणी स्वमतसग्रहणी समेक्षी विक्षेपणी क्रमतनिग्रहणी यथाहम् । सवजनो प्रययितुं सुकृतानुभाव निर्वेजनी वदतु धमकथाविरक्त्य ॥ ६ कृत्वा कथा धर्मादिका ल प ६० स । ७ कमव्यविमुक्तं प्राप्नु योग्यम् । ८ जनताप्रिय ल० प० अ० स० ६० । ९ कुमारकालान्तरम् । १० अनन्तवीर्यस्य । ११ अविच्छ्रुतम् । निर्वाच वा । १२ बाधवादि । सगोत्रशायवमानिवस्वस्वधना समा दत्तमिधानात् । १३ शुभासुख ल० । १४ रविकीर्त्तिनामा । १५ रविजयो ल० प० स ६० । १६ वरजय ल० अ० प० स० ।

एष पात्रविशेषस्ते संबोद्धा शायनं महन् । इति विष्णुमहर्षिणेन^१ देवदेवस्य^२ मोक्षार्पितः^३ ॥२८४॥

कृतग्रन्थपरित्याग प्राप्तग्रन्थार्थसंग्रह । प्रकृष्ट संयमं प्राप्य मिद्वयसंविद्धिं^४ ॥२८५॥

चतुर्ज्ञानामलज्योतिर्हृत्तानतमनस्तमा । अभृद् गणधरो भर्तुरेक्यस्ततिपूरक ॥२८६॥

सुलोचनाप्यमहार्यगोका पतिवियोगत । गलिताकल्पवल्लीव^५ स्लानामरभूत्हात ॥२८७॥

शमिता^६ चक्रवर्तीष्टकान्तयाऽशु मुमद्वया । द्राक्षीममीपे प्रवज्य भाविमिद्धिश्चिर तप ॥२८८॥

कृत्वा विमाने माऽनुत्तरेऽभूत् वल्पेऽच्युतेऽमर । आदितीर्थविनायोऽपि मोक्षमार्गं प्रवर्तयन् ॥२८९॥

चतुरस्तरयाऽर्शान्या विविधद्विंशिभृपितं । चिर वृषभसेनादिगणेशः परिवेष्टित ॥२९०॥

स्वपञ्चमसवारान्निमितपूर्वधरान्वित । स्वपञ्चकचतुमेय^७ शिक्षकैर्मुनिभि^८ युत ॥२९१॥

नृतीयज्ञानसत्त्वैः सहस्रैर्विमिश्रित^९ । केवलव्रगमैर्विश्रुतियहस्रं समन्वित ॥२९२॥

स्वद्वयर्तुस्वपक्षोरुविक्रियद्विंशिविद्वित^{१०} । स्वपञ्चमसपञ्चकमितनुर्यविदन्वित^{११} ॥२९३॥

तावद्विवादिमिर्वन्धो निरस्तपश्चादिभि । चतुरष्टयवाद्द्वयष्टमितैः सर्वैश्च पिण्डितैः ॥२९४॥

संयमस्थानसप्राप्तमपद्धिस्मद्विरचितं । स्वचतुरकेन्द्रियाग्न्युक्तपूज्यब्राह्मणार्थिकादिभिः ॥२९५॥

आर्थिकाभिरभिष्टूयमाननानागुणोदय । दृढव्रतादिभिलक्षत्रयान्तैः श्रावकैः श्रित ॥२९६॥

श्राविकाभिः स्तुत पञ्चलक्षामि सुव्रतादिभि । भावनादिचतुर्भेददेवदेवीलितक्रम ॥२९७॥

उस समय भगवान् ऋषभदेवके समीप जयकुमार ऐमा सुशोभित हो रहा था मानो आपके बड़े भारी शासनको धारण करनेके लिए यह एक विशेष पात्र है यही समझकर महाराज भरतने उसे भगवान्के लिए सौपा हो ॥२८४॥ इस प्रकार जिसने सब परिग्रहका त्याग कर दिया है, सम्पूर्ण श्रुतका अर्थसंग्रह प्राप्त किया है, जो उत्कृष्ट समय धारण कर सात ऋद्धियोंसे निरन्तर बढ़ रहा है, और चार ज्ञानरूपी निर्मल ज्योतिसे जिसने मनका विस्तीर्ण अन्धकार नष्ट कर दिया है ऐसा वह जयकुमार भगवान्का इकहत्तरवाँ गणधर हुआ ॥२८५-२८६॥ इधर पतिके वियोगसे जिसे बड़ा भारी शोक रहा है और जो पड़े हुए कल्पवृक्षसे नीचे गिरी हुई कल्पलताके समान निष्प्रभ हो गयी है ऐसी सुलोचनाने भी चक्रवर्तीकी पट्टरानी सुभद्राके समझानेपर ब्राह्मी आर्थिकाके पास शीघ्र ही दीक्षा धारण कर ली और जिसे आगामी पर्यायमे मोक्ष होनेवाला है ऐसी वह सुलोचना चिरकाल तक तप कर अच्युतस्वर्गके अनुत्तरविमानमे देव पैदा हुई ।

इधर जो मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति चला रहे है, अनेक ऋद्धियोंसे सुशोभित वृषभसेन आदि चौरासी गणधरोसे घिरे हुए है, चार हजार सात सौ पचास पूर्वज्ञानियोंसे सहित है, चार हजार एक सौ पचास शिक्षक मुनियोंसे युक्त है, नौ हजार अवधिज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले मुनियोंसे सहित है, बीस हजार केवलज्ञानियोंसे युक्त है, बीस हजार छह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक मुनियोंसे वृद्धिको प्राप्त हो रहे है, बारह हजार सात सौ पचास मन पर्ययज्ञानियोंसे अन्वित है, परवादियोंको हटानेवाले बारह हजार सात सौ पचास वादियोंसे वन्दनीय है, और इस प्रकार सब मिलाकर तपश्चरणरूपी सम्पदाओको प्राप्त करनेवाले चौरासी हजार चौरासी मुनिराज जिनकी निरन्तर पूजा करते है, ब्राह्मी आदि तीन लाख पचास हजार आर्थिकाएँ जिनके गुणोका स्तवन कर रही है, दृढव्रत आदि तीन लाख श्रावक जिनकी सेवा कर रहे है, सुव्रता आदि पाँच लाख श्राविकाएँ जिनकी स्तुति कर रही है, भवनवासी आदि चार प्रकारके देव देवियाँ जिनके चरणकमलोका स्तवन कर रही है, चौपाये आदि तिर्यग्गतिके जीव जिनकी

१ भरतेश्वरेण । २ वृषभेश्वरस्य । ३ जय । ४ अष्टादश-ल०, ५०, ५०, ५०, ५० । ५ उपशान्ति नीता ।

६ मातु योग्य । ७ -मिश्रित ल० । ८ अवधिज्ञान । ९ -मिश्रित ल० । १० -राजित । ११ मन-

पर्ययज्ञानिसहित ।

चतुर्व्यदादिमिस्तिगजातिमिश्रामिपेवित । चतुर्विंशदतीशेष^१ विशेषैरुक्षितोदय ॥२९८॥
^२आत्मोपाधिविशिष्टावबोधक सुखवीथसद्^३ । देहसौन्दर्यवासोक^४ सप्तसंस्थानसगत ॥२९९॥
 प्रातिहार्याष्टकौहिणनष्टघातिचतुष्टय । वृषमाद्यन्वितार्याष्टसहस्राह्वयमापित ॥३००॥
 विकासितविनैयाम्बुजावलिचचनांशुमि । सशृताञ्जलिपङ्केजमुकुलेनखिलशिना ॥३०१॥
 भरतेन समन्वय्य वृष्टो धमममापत । प्रियते धारयत्युच्चैर्विनैयान्^५ कुगतेस्तत^६ ॥३०२॥
 धम इत्युच्यते सन्निश्चलुर्मेद समाश्रित । सम्यग्दक्षज्ञानचारित्र्यतपोरूप वृषापर^७ ॥३०३॥
 जीवादिसप्तके तस्ये भ्रद्धान यत् स्वतोऽज्ञसा ।^८ परप्रणयनाद् वा तन् सम्यग्दर्शनमुच्यते ॥३०४॥
 शङ्कादिवोपनिमुक्त भावत्रयविवेचितम्^९ । तपो जीवादिसप्तानां सशयादिविषजनात्^{१०} ॥३०५॥
 याथात्म्येन परिज्ञान सम्यग्ज्ञान समादिशेत् । यथाकर्मान्वयो न स्यात्चारित्र्य संयमस्तथा ॥३०६॥
 निजरा कमणा येन तेन वृत्तिस्तपो मतम् । चत्वार्येतानि मिथ्याणि कपायै स्वगहतव^{११} ॥३०७॥
 निष्कपायाणि नाकस्थ मोक्षस्थ च हितैषिणाम् । चतुष्टयमिदं वस्म मुक्तैर्दुष्प्रापमगमि ॥३०८॥
 मिथ्यात्वमवताचार प्रमादा सकपायता^{१२} । योगा शुभाशुभा जन्तो कमणा बन्धहतव ॥३०९॥

सेवा कर रहे हैं चौतीस अतिशय विशयोसे जिनका अभ्युदय प्रकट हो रहा है, जो केवल आत्मा से उत्पन्न होनेवाले विशिष्ट ज्ञान विशिष्ट दर्शन, विशिष्ट सुख और विशिष्ट जीर्णको प्राप्त हो रहे हैं जो शरीरको सुन्दरतासे युक्त हैं जो सज्जाति आदि सात परम स्थानोसे सगत हैं जो आठ प्रातिहार्योसे युक्त है जिन्होंने चार घातिया कम नष्ट कर दिये हैं, जो वृषभ आदि एक हजार आठ नामोसे कहे जाते हैं और जिन्होंने भव्य जीवरूपी कमलोके वनको प्रफुल्लित कर दिया है ऐसे भगवान् वृषभदेवके पास जाकर मुकुलित कमलके समान हाथ जोड़े हुए चक्रवर्ती भरतने उनको पूजा की और धमका स्वरूप पूछा तब भगवान् इस प्रकार कहने लगे —

जो शिष्योंको कुगतिसे हटाकर उत्तम स्थानमें पहुँचा दे सत् पुरुष उसे ही धम कहते हैं । उस धर्मके चार भेद हैं — सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य और सम्यक्तप । यह धम कतव्य प्रधान है ॥२८७—३०३॥ अपने आप अथवा दूसरेके उपदेशसे जीव आदि सात तत्त्वोंमें जो यथाथ भ्रद्धान होता है वह सम्यग्दर्शन कहलाता है ॥३०४॥ यह सम्यग्दर्शन शंका आदि दोषोसे रहित होता है तथा औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीन भावों द्वारा इसकी विवेचना होती है अर्थात् भावोंकी अपेक्षा सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं । सशय, विपर्यय और अनध्यवसायका अभाव होनेसे उन्ही जीवादि सात तत्त्वोंका यथाथ ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान कहलाता है । जिससे कर्मोंका आसव न हो उसे चारित्र्य अथवा संयम कहते हैं । ॥३०५—३०६॥ जिससे कर्मोंकी निजरा हो ऐसी वृत्ति धारण करना तप कहलाता है । ये चारों ही गुण यदि कपायसहित हों तो स्वर्गके कारण हैं और कपायरहित हों तो आत्माका हित चाहनेवाले लोगोंको स्वर्ग और मोक्ष दोनोंके कारण हैं । ये चारों ही मोक्षके मार्ग हैं और प्राणियोंकी बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं ॥३०७—३०८॥ मिथ्यात्व, अवताचरण, (अविरति) प्रमाद, कपाय और शुभ-अशुभ योग ये जीवोंके कमबलके कारण हैं ॥३०९॥

१ अतिशय । २ आत्मा उपाधि कारण यस्य । ३ नीयम ल० प० ६०, अ० स० । प्रवस्त सौन्दर्यवास । समवसरण । ४ सौन्दर्यवान् स्वीकृतसम्पत्-क०, प०, ६० अ० स० । ५ अभ्युदयनि श्रेयसरूपोन्नतस्थाने । ६ मग्नान् । ७ दुग्ते सकाशात् अपसाय । ८ तत्त कारणात् । ९ दयाप्रधान । क्रियापर ल० । १० परोप देगान् । ११ औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकभावैर्निर्णीतम् । १२ विसर्जनात् ल० । १३ सकपायत्वम् ।

मिथ्यात्वं पञ्चधा^१ साष्टगत चाऽविरतिमंता । प्रमादा पन्द्रह च कषायास्ते चतुर्विधाः ॥३१०॥
 योगाः पञ्चदश ज्ञेयाः सम्यग्ज्ञानविलोचने^२ । सप्रलोकभेदेन कर्माण्युक्तानि कोविदैः ॥३११॥
 बन्धश्चतुर्विधो ज्ञेयः प्रकृत्यादिविकल्पितः । कर्माण्युदयसंप्राप्त्या हेतवः फलबन्धयो ॥३१२॥
^३तद्युगं ससृतेहेतु परिन्यज्य गृहाश्रमम् । दोषदुःखजगद्व्युपापप्राय भयावहम् ॥३१३॥
^४शक्तिमन्तस्समायन्नविनेया^५ विदितागमाः । गुण्यादिपङ्क्ति^६ सम्यगनुगत्य यथोचितम् ॥३१४॥
 प्रोक्तोपेक्षादिभेदेषु वीतरागादिकेषु च । पुलाकादिप्रकारेषु व्यपंगागारकादिषु ॥३१५॥
 प्रमत्तादिगुणस्थानविशेषेषु च सुस्थिताः । निश्चयव्यवहारोक्तमुपाय मोक्षमुत्तमम् ॥३१६॥
 तथा गृहाश्रमस्थाश्च सम्यग्दर्शनपूर्वकम् । दानशीलोपवासार्हदादिपूजोपलक्षिताः ॥३१७॥
 आश्रितैकादशोपायकृता सुशुभाश्रयाः । संप्राप्तपरमस्थानमसका मन्तु धीधनाः ॥३१८॥
 इति^७ सत्त्वमदमंगमंवाग्विभवान्प्रमो^८ । सममो^९ भरताधीशः सर्वमेवममन्यत ॥३१९॥
 त्रिज्ञाननेत्रमयक्त्वशुद्धिमागु देशमयतः । त्र्यष्टारमभिवन्द्यायात कैलासान्नगरोत्तमम् ॥३२०॥
 जगत्त्रितयनाथोऽपि धर्मक्षेत्रे^{१०} वनारतम् । उ०-रा मद्धर्मवीजानि न्यषिञ्चद्धर्मवृष्टिभि ॥३२१॥

मिथ्यात्व पाँच तरहका है, अविरति एक सौ आठ प्रकारकी है, प्रमाद पन्द्रह है, कषायके चार भेद है, और सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले लोगोको योगके पन्द्रह भेद जानना चाहिए । विद्वानोंने कर्मोका निरूपण मूल और उत्तरभेदके द्वारा किया है — कर्मोके मूल भेद आठ है और उत्तरभेद एक सौ अड़तालीस है ॥३१०-३११॥ प्रकृति आदिके भेदसे बन्ध चार प्रकारका जानना चाहिए तथा कर्म उदयमे आकर ही फल और बन्धके करण होते है । भावार्थ — पहलेके बँधे हुए कर्मोका उदय आनेपर ही उनका सुख-दुःख आदि फल मिलता है तथा नवीन कर्मोका बन्ध होता है ॥३१२॥ तुम लोग भक्तिमान् हो, निकटभव्य हो और आगमको जाननेवाले हो, इसलिए संसारके कारण स्वरूप — दोष, दुःख, बुढ़ापा और मृत्यु आदि पापोसे भरे हुए इस भयकर गृहस्थाश्रमको छोड़कर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्र्य इन छहोका अच्छी तरह अभ्यास करो तथा जिनके उपेक्षा आदि भेद कहे गये है ऐसे वीतरागादि मुनियोमे, जिनके पुलाक आदि भेद है ऐसे अनगारादि मुनियोमे अथवा प्रमत्तसयतको आदि लेकर उत्कृष्ट गुण-स्थानोमे रहनेवाले प्रमत्तविरत आदि मुनियोमे-से किसी एककी अवस्था धारण कर निश्चय और व्यवहार दोनो प्रकारके उत्तम मोक्षकी उपासना करो ॥३१३-३१६॥ इसी प्रकार गृहस्थाश्रममे रहनेवाले बुद्धिमान् पुरुष सम्यग्दर्शन पूर्वक दान, शील, उपवास तथा अरहन्त आदि परमेष्ठियोकी पूजा करे, शुभ परिणामोंसे श्रावकोकी ग्यारह प्रतिमाओका पालन करे और यथायोग्य सज्जाति आदि सात परमस्थानोको प्राप्त हो ॥३१७-३१८॥ इस प्रकार भरतेश्वरने समीचीन तत्त्वोकी रचनासे भरी हुई भगवान्की वचनरूप विभूति सुनकर सब सभाके साथ-साथ कही हुई सब बातोको ज्योकी त्यो माना अर्थात् उनका ठीक-ठीक श्रद्धान किया ॥३१९॥ मति, श्रुत, अवधि — इन तीनों ज्ञानरूपी नेत्रो और सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिको धारण करनेवाला देशसयमी भरत भगवान् वृषभदेवकी वन्दना कर कैलास पर्वतसे अपने उत्तम नगर अयोध्याको आया ॥३२०॥ इधर तीनों लोकोके स्वामी भगवान् आदिनाथने भी धर्मके योग्य क्षेत्रोमे समीचीन धर्मका बीज बोकर उसे धर्मवृष्टिके

१ चाष्टगतधाविरति — ल०, प०, अ०, स०, इ० । २ तत् कारणात् । ३ भक्ति—ल०, प०, इ०, अ०, स० ।

४ अत्यासन्नभव्या । ५ गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्र्यभेदे । ६ सुपु गोभनपरिणामा । ७ पूर्वोत्तर-तत्त्व । ८ पुरोस्मकाशात् । विभी ल० । ९ सभामहित ।

सतां सफलसप्राप्त्यै विहरन् स्वर्गौ समम् । चतुदशदिनोपेतसहस्राब्दीनपूवकम् ॥३२२॥
 लभ्य कैलासमासाद्य श्रीसिद्धशिखरान्तरे । पौष्णमासीदिने पौषे^१ निरिच्छ समुपाविशत् ॥३२३॥
 तदा भरतराजो^२ द्रो महामन्दरभूषणम् । आप्राग्मार व्यलोकित स्वप्ने दैर्घ्येण सस्थितम् ॥३२४॥
 तदैव युवराजोऽपि^३ स्वर्गादेत्य महौषधि । हुमदिष्टत्वा नृणां जन्मरोग स्वर्गान्तमैक्षत्^४ ॥३२५॥
 कल्पद्रुममभीष्टार्थं दत्त्वा नृभ्यो निरन्तरम् । गृहेट्^५ निशामयामास^६ स्वर्गप्राप्तिसमुद्यतम् ॥३२६॥
 रत्नद्वीप जिघृक्षुभ्यो^७ नानारत्नकदम्बकम् । प्रादायाभ्रगमोद्युक्तमद्राक्षीत् सचिवाग्रिम ॥३२७॥
 वज्रपञ्जरमुद्दिध कैलास गजवैरिणम् । उल्लङ्घयितुमुद्यत् सेनापतिमपश्यत् ॥३२८॥
 आलुलोके बुधो^८ अनन्तवाय श्रीमान् जयारमज । यान्त त्रैलोक्यमामास्य सतार^९ तारकेश्वरम् ॥३२९॥
 यशस्वतीसुन^{१०} दाम्भ्यां सादृ शक्रमन प्रिया । शोच^{११} तीक्ष्णमद्राक्षीत् सुभद्रा^{१२} स्वप्नगोचरा ॥३३०॥
 वाराणसीपतिश्चित्राङ्गदोऽध्यालोकताकुल । खमुपतन्त मास्वन्त प्रकाश्य धरणीतलम् ॥ ३३१॥
 एवमालोकितस्वप्ना राजराजपुरस्सरा । पुरोधस फल तेषामपृच्छन्नयमोदय^{१३} ॥३३२॥
 कर्माणि हत्वा निमूल मुनिभिर्बहुभि समम् । पुरो सर्वेऽपि शयन्ति स्वप्ना स्वर्गप्राप्तामिताम्^{१४} ॥३३३॥
 इति स्वप्नफल तथा^{१५} माषमाणे पुरोहिते । तदैवानन्दनामैत्य मर्त्तु^{१६} स्थितिमवेदयत् ॥३३४॥
 प्वनौ भगवता दिव्ये सहते मुकुलीभवत् । कराम्बुजा सभा जाता पूष्णीव^{१७} सरसीत्यसौ ॥३३५॥

द्वारा खूब ही सीचा ॥३२१॥ इस प्रकार सज्जनोको मोक्षरूपी उत्तम फलकी प्राप्ति करानेके लिए भगवान्ने अपने गणधरोके साथ-साथ एक हजार वर्ष और चौदह दिन कम एक लाख पूव विहार किया । और जब आयुके चौदह दिन बाकी रह गये तब योगोंका विरोध कर पौष मासकी पौष्णमासीके दिन श्रीशिखर और सिद्धशिखरके बीचम कैलास पर्वतपर जा विराजमान हुए ॥३२२ ३२३॥ उसी दिन महाराज भरतने स्वप्नमें देखा कि महामेह पर्वत अपनी लम्बाई से सिद्ध क्षेत्र तक पहुँच गया है ॥३२४॥ उसी दिन युवराज अककोतिने भी स्वप्नमें देखा कि एक महौषधिका वक्ष मनुष्योंके जन्मरूपी रोगको नष्ट कर फिर स्वर्गको जा रहा है ॥३२५॥ उसी दिन गृहपतिने देखा कि एक कल्पवृक्ष निरन्तर लोगोंके लिए उनकी इच्छानुसार अभीष्ट फल देकर अब स्वर्ग जानेके लिए तैयार हुआ है ॥३२६॥ प्रधानमन्त्रीने देखा कि एक रत्न द्वीप, ग्रहण करनेकी इच्छा करनेवाले लोगोंको अनेक रत्नोंका समूह देकर अब आकाशमें जानेके लिए उद्यत हुआ है ॥३२७॥ सेनापतिने देखा कि एक सिंह वज्रके पिंजड़ेको तोड़कर कैलास पर्वतको उल्लंघन करनेके लिए तैयार हुआ है ॥३२८॥ जयकुमारके विद्वान् पुत्र श्रीमान् अनन्त वीर्यने देखा कि चन्द्रमा तीनों लोकोको प्रकाशित कर ताराओं सहित जा रहा है ॥३२९॥ सोती हुई सुभद्राने देखा कि यशस्वती और सुनन्दाके साथ बैठी हुई इन्द्राणी बहुत देर तक शोक कर रही है ॥३३०॥ बनारसके राजा चित्रागदने धबडाहटके साथ यह स्वप्न देखा कि सूर्य पृथिवीतलको प्रकाशित कर आकाशकी ओर उड़ा जा रहा है ॥३३१॥ इस प्रकार भरतको आदि लेकर सब लोगोंने स्वप्न देखे और सूर्योदय होते ही सबने पुरोहितसे उनका फल पूछा ॥३३२॥ पुरोहितने कहा कि ये सभी स्वप्न कर्मोंको बिलकुल नष्ट कर भगवान् वृषभदेवका अनेक मुनियोंके साथ-साथ मोक्ष जाना सूचित कर रहे हैं ॥३३३॥ इस प्रकार पुरोहित उन सबके लिए स्वप्नोंका फल कह ही रहा था कि इतनेमें ही आनन्द नामका एक मनुष्य आकर भगवान्का सब हाल कहने लगा ॥३३४॥ उसने कहा कि भगवान्ने अपनी दिव्यध्वनिका

१ पुष्यमास । २ पूर्वसिद्धक्षत्रपयन्तम् । ३ अककोति । ४ स्वर्ग गतम् । ५ गृहपतिरत्नम् । ६ ददन । ७ गृहीषु निच्छम् । ८ बुद्धिमान् । ९ तारकासहितम् । १० स्त्रीरत्नम् । ११ एव विलोकित-ल० । १२ सूर्योदये । १३ मोषणामिवम् । १४ भरतानीनाम् । १५ परे । १६ सूर्ये । इत्यसावकथयन्ति सबध ।

तदाकगनमात्रेण मन्वर. मन्त्रमगनः । चक्रवर्त्ता नमःयेन्य त्रि परित्य कृतस्तुति ॥३३६॥
 महामहमहापूजा भक्त्या निग्नन्त्यन्त्ययम् । चतुर्दश दिनान्येव भगवन्तममेव ॥३३७॥
 माघकृष्णचतुर्दश्या भगवान् भास्वरोऽन्ये । मुहूर्तेऽभिजिति प्रासपत्यज्ञो मुनिभि ममम् ॥३३८॥
 प्राग्दिङ्मुखस्तुत्येन शुक्ल यानेन रुद्रवान् । योगत्रितयमन्येन ध्यानेनावातिर्मणाम् ॥३३९॥
 पञ्चहस्वस्वरोच्चारणप्रमाणेन मक्षयम् । कालेन त्रिदशप्रान्तगुणस्थानमविष्टित ॥३४०॥
 शरीरत्रितयापाये प्राप्य गिदन्वपर्ययम् । निजाष्टगुणमपूर्ण क्षणास्तनुवातक ॥३४१॥
 नित्यो निरञ्जनः किञ्चिद्नो देहादमृतिभाक् । स्थित. स्वमुग्रमाद्भुत. पश्यन्विश्वमनारतम् ॥३४२॥
 तदागत्य सुरा. मन्त्रं प्रान्तपूजाचिकीर्षया । पवित्र परम मोक्षसाधनं शुचिनिर्मलम् ॥३४३॥
 शरीरं भर्तुरस्येति पराद्व्यभिचिकापितम् । अर्धान्द्रवभामामिन्द्रोत्तुङ्गमुकुटोद्भवा ॥३४४॥
 चन्दनागुरुकूर्पूरपारी काश्मीरजातिभिः । पृतक्षीरादिभिश्चासृष्टिना हुतभोजिना ॥३४५॥
 जगद्गृहस्य सौगन्ध्यं सपाद्याभूतपूर्वम् । तदाकारोपमर्देन पर्यायान्तरमानयन् ॥३४६॥
 अभ्यर्चिताग्निकुण्डस्य गन्धपुष्पादिभिस्तथा । तस्य दक्षिणभागेऽमृद् गणभृत्यस्त्रिक्यानल ॥३४७॥
 तस्यापरस्मिन् दिग्भागे शेषकेवलिकायगः । एव बह्विधाय भूमा अवस्थाप्यामरेश्वरा ॥३४८॥

संकोच कर लिया है इसलिए सम्पूर्ण मभा हाथ जोड़कर बंठी हुई है और ऐसा जान पड़ता है मानो सूर्यास्तके समय निमीलित कमलोसे युक्त सरसी ही हो ॥३३५॥ यह सुनते ही भरत चक्रवर्ती बहुत ही शीघ्र सब लोगोके साथ-साथ कैलास पर्वतपर गया, वहाँ जाकर उसने भगवान् वृषभदेवकी तीन प्रदक्षिणाएँ दी, स्तुति की और भक्तिपूर्वक अपने हाथसे महामह नामकी पूजा करता हुआ वह चौदह दिन तक इसी प्रकार भगवान्की सेवा करता रहा ॥३३६-३३७॥ माघ कृष्ण चतुर्दशीके दिन सूर्योदयके शुभ मुहूर्त और अभिजित् नक्षत्रमे भगवान् वृषभदेव पूर्वदिशाको ओर मुँहकर अनेक मुनियोके साथ-साथ पर्यकासनसे विराजमान हुए, उन्होंने तीसरे-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामके शुक्ल ध्यानसे तीनो योगोका निरोध किया और फिर अन्तिम गुणस्थानमे ठहरकर पाँच लघु अक्षरोके उच्चारण प्रमाण कालमे चौथे व्युपरत क्रिया-निर्वर्ति नामके शुक्लध्यानसे अघातिया कर्मोका नाश किया । फिर औदारिक, तैजस और कार्मण इन तीनो शरीरोके नाश होनेसे सिद्धत्वपर्याय प्राप्त कर वे सम्यक्त्व आदि निजके आठ गुणोसे युक्त हो क्षण भरमे ही तनुवातवलयमे जा पहुँचे तथा वहाँपर नित्य, निरञ्जन, अप्रम शरीरसे कुछ कम, अमूर्त, आत्ममुख तल्लीनमे और निरन्तर ससारको देखते हुए, विराजमान हुए ॥३३८-३४२॥ उसी समय मोक्ष-कल्याणककी पूजा करनेकी इच्छासे मन्त्र मन्त्र आये उन्होने “यह भगवान्का शरीर पवित्र, उत्कृष्ट, मोक्षका साधन, रवच्छाया निरञ्ज है” यह विचारकर उसे बहुमूल्य पालकीमे विराजमान किया । तदनन्तर जो श्रीमन्महादेव देवोके इन्द्रके रत्नोकी कान्तिसे देदीप्यमान उन्नत मुकुटसे उत्पन्न हुई है तथा चन्दन, अमृत्, कपूर, केशर आदि सुगन्धित पदार्थों और घी दूध आदिसे बढ़ायी गयी है तमी श्रीमन्महादेव अमूर्तपूर्व सुगन्धि प्रकट कर उसका वर्तमान आकार नष्ट कर दिया और इन प्रदत्त रत्नोके पर्याय प्राप्त करा दी ॥३४३-३४६॥ गन्ध, पुष्प आदिसे जिसकी पूजा की गयी है तमी मन्त्र अग्निकुण्डके दाहिनी ओर गणधरोके शरीरका सस्कार करनेवाली श्रीमन्महादेवकी आँखोंवाँयी ओर तीर्थ कर तथा गणधरोसे अतिरिक्त अन्य सामान्य केवलिकायग के स्कार

१ जिनम् । २ लोकालोकम् । ३ निर्वाणपूजा कर्तुमिच्छया । ४ याने रुद्रवान् । ५ मुहूर्तमुहूर्तम् । ६ कूर्पूरमणि । ७ कुकुमादिभिः । ८ पूर्वस्मिन्नजातम् । ९ शरीराकारोपमर्देन । १० मन्त्र मन्त्र मन्त्र

ततो भस्म समादाय पञ्चवक्ष्याणमाग्नि । वयं चैव भवामति स्वललाटे भुजद्वय ॥३४॥
 वण्डे हृदयदश च तेन^१ सस्पृश्य भक्षित । तत्पवित्रतम मत्वा धमरागरसाहिता ॥३५॥
 तोषाद् सपादयामासु सभूयानन्दनाम्^२ । सप्तमोपासकाद्यास्ते सर्वेऽपि ब्रह्मचारिण ॥३५॥
 गाहपत्याभिधं पूव परमाहवनीयकम् । दक्षिणाग्निं ततो न्वस्य^३ सध्यासु तिसृषु स्वयम् ॥३५२॥
 तच्छिरिप्रयसानिध्व चक्रमातपवारणम् । जिनद्रप्रतिमाश्चैव^४ स्थाप्य मन्त्रपुरस्सरम् ॥३५३॥
 तास्त्रिकाल समभ्यर्च्य गृहस्थैर्विहितादराः । भवतातिथयो^५ यूयमित्थावप्युपासकान् ॥३५४॥
 स्नेहनेष्टवियोगो^६ य प्रदीप्त शोकपावक । तदा प्रबुद्धमध्यस्य^७ चताऽधाक्षादधाशितु ॥३५५॥
 गणी वृषभसेनाप्यस्तच्छोकापनिनीयर्था । प्राकस्त^८ वक्तु सर्वेषां स्वेषां व्यक्ता भवावलीम् ॥३५६॥
 जयवर्मा भवे पूर्वे द्वितीयऽभूममहाबल । तृतीयं ललिताङ्गाण्यो वज्रजह्मस्तुयक ॥३५७॥
 पञ्चम भोगभूमिऽभूत् पण्डेय आचरीऽमर । सप्तम सुविधि क्षमाभूदष्टमऽच्युतनायक ॥३५८॥
 नवम वज्रन भीमो दशमऽनुचरान्वज^९ । तताऽवतीम सर्वे^{१०} द्रवदिनो वृषभाऽभवत् ॥३५९॥
 धनश्रीरादिम जन्मन्यतो निर्णायिका तत । स्वयंप्रभा ततस्त्वस्माच्छ्रीमत्पार्था ततोऽभवत् ॥३६०॥
 स्वयंप्रभ सुरस्तस्मादस्मादपि च केशव । तत प्रताद्रस्तस्माच्च धनदत्तोऽहमिन्द्रताम् ॥३६१॥
 गतेस्ततस्तत भवान् दानतीथस्य न यक । आश्चर्यपञ्चकस्यापि प्रथमोऽभूत् प्रवक्तक ॥३६२॥

करनेवाली अग्नि स्थापित की इस प्रकार इन्द्रोने पृथिवीपर तीन प्रकारकी अग्नि स्थापित की । तदनन्तर उही इन्द्राने पञ्चकल्याणकको प्राप्त होतेवाल श्री वृषभदेवके शरीरकी भस्म उठायी और 'हम लोग भी ऐसे ही हो यही सोचकर बड़ी भक्तिस अपने कलाटपर दोनों भुजाओंमें, गलमें और वक्ष स्थलम लगायी । वे सब उस भस्मको अत्यन्त पवित्र मानकर धर्मनुरागके रससे तमय हो रहे थे ॥३४७-३५०॥ सबने मिलकर बड़े सन्तोषसे आनन्द नामका नाटक किया और फिर धावकोकी उपदेश दिया कि हे सप्तमादि प्रतिमाओंको धारण करनेवाले सभी ब्रह्मचारियो तुम लोग तीनों सध्याओंमें स्वयं गाहपत्य आहवनीय और दक्षिणाग्नि इन तीन अग्नियोंकी स्थापना करो और उनके समीप ही धमचक्र छव तथा जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाओंकी स्थापना कर तीनों काल मन्त्रपूवक उनको पूजा करो । इस प्रकार गृहस्थोंके द्वारा आदर-सत्कार पाते हुए अतिथि बनो ॥३५१-३५४॥

इधर उस समय इष्टके वियोगस उत्पन्न हुई और स्नेहसे प्रज्वलित हुई शोकरूपी अग्नि भरतके प्रबुद्ध चित्तको भी जला रही थी ॥३५५॥ जब भरतका यह हाल देखा तब वृषभसेन गणधर भरतका शोक दूर करनेकी इच्छासे अपने सब लोगोके पूर्वभव स्पष्ट रूपसे कहने लगे ॥३५६॥ उन्होंने कहा कि वृषभदेवका जीव पहल भवम जयवर्मा था, दूसरे भवमें महाबल हुआ तीसरे भवम ललिताङ्गादेव और चौथे भवमें राजा वज्रजघ हुआ । पाचवें भवमें भोग भूमिका आम हुआ । छठवे भवमें श्रीधरदेव हुआ सातवें भवमें सुविधि राजा हुआ । आठवें भवम अच्युतेन्द्र हुआ नौवें भवम राजा वज्रनाभि हुआ दशव भवमें सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ और वहाँसे आकर सब इन्द्राके द्वारा वन्दनीय वृषभदेव हुआ है ॥३५७-३५९॥ श्रेयान् का जीव पहल भवम धनश्री था, दूसरे भवम निर्णायिका तीसरे भवम स्वयंप्रभा देवी, चौथे भवम श्रीमती, पांचवें भवम भोगभूमिकी आर्या छठवें भवम स्वयंप्रभदेव सातव भवमें केशव, आठवें भवम अच्युतस्वर्गका प्रतीन्द्र, नौवें भवम धनदत्त दशवे भवमें अहमिन्द्र हुआ और वहाँसे

१ भस्मना । २ भस्म । ३ संस्थाप्य । ४ चावस्थाप्य क । ५ स० । ६ पात्रतयाभीक्ष्णिका । ७ चक्रिण । ८ दहति स्म । ९ भरतस्य शोकमपनतुमिच्छया । १० प्रारभते स्म । १० सर्वार्थसिद्धिज ।

अतिगृद्ध पुग पञ्चाक्षरकोऽनु चमस्कः^१ । दिवाकरप्रभो देवस्तथा मतिवगह्य ॥३६३॥
 ततोऽहमिन्द्रस्तस्माच्च सुबाहुरहमिन्द्रताम् । प्राप्य न्व भरतो जान पट्यन्ण्डावण्डपालकः ॥३६४॥
 आद्य सेनापति पञ्चादायस्तस्मात्प्रभकर । ततोऽकपनभूपालः कल्यातीतस्ततस्ततः ॥३६५॥
 महाबाहुस्तनञ्चाभृदहमिन्द्रस्ततश्च्युतः । एष बाहुवली जातो जानापूर्वमहोदयः ॥३६६॥
 मन्त्री प्राग् भोगभूमिजोऽनु मुगोऽनु कनकप्रभ । आनन्दोऽन्वहमिन्द्रोऽनु तत पीठाह्वयस्ततः ॥३६७॥
 अहमिन्द्रोऽग्निमोऽभ्रममहमय गणाधिप । पुगेहितगतञ्चायो वभृयास्मत्प्रभञ्जन ॥३६८॥
 धनमित्रस्ततस्तस्मादहमिन्द्रस्ततश्च्युत । महार्पादोऽहमिन्द्रोऽस्मादनन्तविजयोऽभवत् ॥३६९॥
 उग्रसेनञ्चमुगोऽतो भोगभूमिममुदभव । ततश्चित्राङ्गदस्तस्माद् वरदत्त सुरो जय ॥३७०॥
 ततो गन्वाऽहमिन्द्रोऽभूत्तस्माच्चान्य भूतलम् । महासेनोऽभवत् कर्ममहायेनाजयोजितः ॥३७१॥
 हरिवाहननामाद्यो वगहायस्ततोऽभवत् । मणिकुण्डल्यतस्तस्माद् वरमेन सुरोत्तम ॥३७२॥
 ततोऽस्माद् विजयस्तस्मादहमिन्द्रो दिवश्च्युतः । अत्रनिष्ट विशिष्टेः श्रीपेणः सेवित श्रिया ॥३७३॥
 नागदत्तस्ततो वानरार्योऽस्माच्च मनोहरः । देवश्चित्राङ्गदस्तस्माद्भूत सामानिक सुरः ॥३७४॥
 ततश्च्युतो जयन्तोऽभृदहमिन्द्रस्ततस्ततः । महीतन्व समामाद्य गुणसेनोऽभवद् गर्णी ॥३७५॥

आकर दानतीर्थका नायक तथा पञ्चाव्ययकी सवमे पहले प्रवृत्ति करानेवाला राजा श्रेयान् हुआ है ॥३६०-३६२॥ तेरा जीव पहले भवमे अतिगृद्ध नामका राजा था, दूसरे भवमे नारकी हुआ, तीसरे भवमे शार्दूल हुआ, चौथे भवमे दिवाकरप्रभदेव हुआ, पाँचवें भवमे मतिवर हुआ, छठवे भवमे अहमिन्द्र हुआ, सातवे भवमे सुबाहु हुआ, आठवे भवमे अहमिन्द्र हुआ और नौवें भवमे छह खण्ड पृथिवीका अखण्ड पालन करनेवाला भरत हुआ है ॥३६३-३६४॥ बाहुवलीका जीव पहले सेनापति था, फिर भोगभूमिमे आर्य हुआ । उसके बाद प्रभकर देव हुआ, तदनन्तर अकपन हुआ, उसके पश्चात् अहमिन्द्र हुआ, फिर महाबाहु हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ और अब उसके बाद अपूर्व-महा उदयको धारण करनेवाला बाहुवली हुआ है ॥३६५-३६६॥ मैं पहले भवमे राजा प्रीतिवर्धनका मन्त्री था, उसके बाद भोग-भूमिका आर्य हुआ, फिर कनकप्रभ देव हुआ, उसके पश्चात् आनन्द हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ, वहाँसे आकर पीठ हुआ, फिर सर्वार्थ-सिद्धिका अहमिन्द्र हुआ और अब भगवान् वृषभदेवका गणधर हुआ हूँ । अनन्तविजयका जीव सबसे पहले पुरोहित था, फिर भोगभूमिका आर्य हुआ, उसके बाद प्रभजन नामका देव हुआ, फिर धनमित्र हुआ, उसके पश्चात् अहमिन्द्र हुआ, उसके अनन्तर महापीठ हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ और अब अनन्तविजय गणधर हुआ है ॥३६७-३६९॥ महासेन पहले भवमे उग्रसेन था, दूसरे भवमे शार्दूल हुआ, तीसरे भवमे भोगभूमिका आर्य हुआ, चौथे भवमे चित्राङ्गद देव हुआ, पाँचवें भवमे वरदत्त राजा हुआ, छठे भवमे देव हुआ, सातवें भवमे जय हुआ, वहाँसे चलकर आठवें भवमे अहमिन्द्र हुआ और नौवें भवमे वहाँसे पृथिवीपर आकर कर्मरूपी महासेनाको जीतनेमे अत्यन्त बलवान् महासेन हुआ है ॥३७०-३७१॥ श्रीपेणका जीव पहले भवमे हरिवाहन था, दूसरे भवमे वराह हुआ, तीसरे भवमे भोगभूमिका आर्य हुआ, चौथे भवमे मणिकुण्डली देव हुआ, पाँचवें भवमे वरसेन नामका राजा हुआ, छठवें भवमे उत्तम देव हुआ, सातवें भवमे विजय हुआ, आठवें भवमे अहमिन्द्र हुआ और नौवें भवमे अतिशय पूज्य तथा लक्ष्मीसे सेवित श्रीपेण हुआ है ॥३७२-३७३॥ गुणसेनका जीव पहले नागदत्त था, फिर वानर हुआ, उसके बाद भोगभूमिका आर्य हुआ, फिर मनोहर नामका देव हुआ, उसके पश्चात् चित्राङ्गद नामका राजा हुआ, फिर सामानिक देव हुआ, वहाँसे च्युत होकर

लोलुपो नकुलार्योऽस्मादेतस्मात्समनोरथ । ततोऽपि वा तमदनस्तत सामानिकामर ॥३०१॥
राजाऽपराजितस्तस्मादहमिन्द्रस्ततोऽननि । ततो ममानुजो जातो जयसनोऽयमूर्जित ॥३०२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

इत्यस्मिन्भवसक्रे भवभृत स्वेष्टैरनिष्टैस्तथा

सयोग सहसा विभोगचरम सबस्य मन्वीर्यम् ।

एव जानन्नपि किं विषण्णहृदयो विदिलष्टकर्माष्टको

निर्वाण भगवान्वापदतुल्य तापे विषाद कुत ॥३०८॥

मालिनी

वयमपि चरमाङ्गा सगमाच्छुद्धबुद्धे

सरलमलचिलोपापादितात्मस्वरूपा ।

निर्यमसुरसार चक्रवर्तिस्तदीय^२

पद्मचित्ररेण प्राप्नुमोऽनाप्यमन्यै ॥३०६॥

हरिणी

भवतु सुहृदा मृत्यो शोक शुभाशुभकमभि

भवति हि स^१ चेतेषामस्मिन्पुनर्जननावह ।

विनिहतमवे प्राप्ये तस्मिन् स्वयं समुपागत

कथमयमहो धीमान् कुर्याच्छुच यदि नो रिपु ॥३०७॥

वसन्ततिलका

अष्टापि दुष्टरिपवोऽस्य समूलतूल^३

नष्टा गुणैरुभिरष्टमिरप्यष्ट^४ ।

किं नष्टमत्र निधिनाथ जहोहि मोहं

सन्धेहि शोकविजयाय धिय विशुद्धाम् ॥३०९॥

जयन्त हुआ फिर अहमिन्द्र हुआ और अब वहाँसे पृथिवीपर आकर गुणसेन नामका गणधर हुआ है ॥३०४ ३०५॥ जयसेनका जीव पहल लोलुप नामका हलवाई था फिर नेवला हुआ, उसके बाद भोगभूमिका आय हुआ फिर मनोरथ नामका देव हुआ, उसके पश्चात् राजा शातमदन हुआ फिर सामानिक देव हुआ, तदनन्तर राजा अपराजित हुआ, फिर अहमिन्द्र हुआ और अब मेरा छोटा भाई अतिशय बलवान् जयसेन हुआ है ॥३०६-३०७॥ श्री वृषभ सेन गणधर चक्रवर्ती भरतसे कह रहे हैं कि इस संसाररूपी सकटम इसी प्रकार सब प्राणियोंको इष्ट-अनिष्ट वस्तुओंका सगम होता है और अन्तमें अकस्मात् ही उसका नाश हो जाता है, तू यह सब जानता हुआ भी इतना खिन्नहृदय क्यों हो रहा है ? भगवान् वृषभदेव तो आठों कर्मोंको नष्ट कर अनुपम मोक्षस्थानको प्राप्त हुए हैं फिर भला ऐसे सत्तोषके स्थानमें विषाद क्यों करता है ? ॥३०८॥ हे चक्रवर्तिन् हम सब लोग भी चरमशरीरी हैं शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले भगवान्के समागमसे सम्पूर्ण कमलको नष्ट कर आत्मस्वरूपको प्राप्त हुए हैं और अनुपम सुखमें श्रष्ट तथा अय मिथ्यादृष्टियोंके दुलभ उन्ही भगवान्के पदकी हम लोग भी बहुत शीघ्र प्राप्त करेंगे ॥३०९॥ इष्ट मित्रोंकी मृत्यु होनेपर शोक हो सकता है क्योंकि उनकी वह मृत्यु गुण अशुभ कर्मोंसे होती है और फिर भी इस संसारम उनका जन्म बरानेवाली होती है परन्तु जिसने संसारका नाश कर दिया है और निरन्तर जिसकी प्रार्थना की जाती है ऐसा सिद्ध पद यदि स्वयं प्राप्त हो जावे तो इस बुद्धिमान् मनुष्यको यदि वह शत्रु नहीं है तो शोक कैसे करना चाहिए ? भावाथ-हृपके स्थानम शत्रुकी ही शोक होता है मित्रको नहीं हाता इसलिए तुम सबको आनन्द मानना चाहिए न कि शोक करना चाहिए ॥३१०॥ हे निधिपत भगवान् वृषभदेवके आठों ही दुष्ट शत्रु जड और शाखासहित बिलकुल

१ वृषभसेनभरतान्य । २ पुरो सम्बन्धि । ३ अप्रापणायम् । ४ मृत्यु । ५ ससारे । ६ मृत्यो । ७ कारण सहितम् । ८ सवित । ९ सम्यग् धारय ।

देहच्युतो यदि गुणगुणं गोचरमिदं

न भस्मना नृत्तिमवाप्य विदुर्गगाः ।

प्राग्जन्मनोऽपि परिक्रमन्तोऽस्य भस्मा-

दानन्दनृत्तमधिकं विदुर्गगाः ॥३८०॥

आदूर्लविक्रीडितम्

नेक्षे विश्वदश शृणोमि न वचो दिव्यं नदद्भिद्वयं

नम्रमन्नग्भाविभागिमुकुटं कर्तुं लभे नायुना ।

तस्मान् स्नेहवशोऽस्य हं बहुतरं शोकीति चेदस्मिन्

किन्तु भ्रान्तिरियं व्यतीतविषयप्रार्थयै भवप्रार्थना ॥३८१॥

चमन्नतिलका

त्रिजानधनं त्रिभुवनैकगुरुगुम्फे

स्नेहेन मोहविहितेन विनाशये किम् ।

स्वोदात्तता गतमस्य न लज्जमे किं

तस्मात्तत्र प्रथममुक्तिगतिं न वेत्सि ॥३८२॥

आदूर्लविक्रीडितम्

इष्टं किं किमनिष्टमत्र वितथ सख्यस्य जन्तुर्जडः

किंचिद्द्वेष्यपि वष्टि किंचिदनयोः कुर्यादपि व्यन्ययम् ।

नैनोऽनुगतिस्ततो मच्चवने भव्याऽप्यभव्योपमो

भ्राम्यन्त्येव कुमारवृत्तिरधनो वाऽऽनन्दभीदु खितः ॥३८३॥

हो नष्ट हो गये है और अब वे आठ बड़े-बड़े गुणोंसे सेवित हो रहे हैं, भला, इसमें क्या हानि हो गयी ? इसलिए अब तू मोह छोड़ और शोकको जीतनेके लिए विशुद्ध बुद्धिको धारण कर ॥३८१॥ पूज्य पिताजीका शरीर छूट जानेसे यदि तू इतना अधिक शोक करता है तो बतला, जन्मसे पहले ही उनकी सेवा करनेवाले और बड़े हुए अनुरागको धारण करनेवाले ये देव लोग भगवान्‌के शरीरको भस्म कर इतना अधिक आनन्द नृत्य क्यों कर रहे हैं ? भावार्थ — ये देव लोग भी भगवान्‌से अधिक प्रेम रखते थे जन्मसे पहले ही उनकी सेवामें तत्पर रहते थे फिर ये उनके शरीरको जलाकर क्यों आनन्द मना रहे हैं इससे मालूम होता है कि भगवान्‌का शरीर छूट जाना दुःखका कारण नहीं है तू व्यर्थ ही क्यों शोक कर रहा है ? ॥३८२॥ कदाचित् तू यह कहेगा कि 'अब मैं उनके दर्शन नहीं कर रहा हूँ, उनके दिव्य वचन नहीं सुन रहा हूँ, और उनके दोनों चरणोंमें नम्र होकर उनके नखोंकी कान्तिसे अपने मुकुटको देदीप्यमान नहीं कर पाता हूँ, इसलिए ही स्नेहके वशसे आज मुझे बहुत शोक हो रहा है तो तेरा यह कहना ठीक है परन्तु बीती हुई वस्तुके लिए प्रार्थना करना तेरी भूल ही है ॥३८३॥ हे भरत, तेरे पिता तो तीनों लोकोंके अद्वितीय गुरु थे और तू भी तीन ज्ञानोंका धारक है फिर इस मोहजात स्नेहसे अपनी उत्तमता क्यों नष्ट कर रहा है ? क्या तुझे ऐसा करते हुए इन्द्रसे लज्जा नहीं आती ? अथवा क्या तू यह नहीं समझता है कि मैं इन्द्रसे पहले ही मोक्षको प्राप्त हो जाऊँगा ? ॥३८४॥ इस ससारमें क्या इष्ट है ? क्या अनिष्ट है ? फिर भी यह मूर्ख प्राणी व्यर्थ ही सकल्प कर किसीसे द्वेष करता है, किसीको चाहता है और कभी दोनोंको उलटा समझ लेता है, इसलिए ही इसके पापकी परम्परा चलती रहती है और इसलिए ही यह भव्य होकर भी

१ वहल यथा भवति तथा । २ देहम् । ३ भस्मावीनम् । ४ नीत्वा । ५ उत्पत्तेर्गदावपि । ६ परिचर्याकरा । ७ वृषभस्य । ८ तस्य नखकाल्या भासत इति । ९ भो त्रिजानध्वान् भरत । १० अज्ञानकृतेन । ११ भवदु-
दात्तत्वम् । १२ गतमखात् । १३ न जानासि किम् । १४ वाञ्छति । १५ कारणेन । १६ पापानुगतिः ।
१७ निर्धने इव ।

अन्यस्यापि सर्वोऽभवद् भवगत^१ कालादिक-धेर्विना
 कालोऽनादिरचिन्त्यदु खनिचिता धिक् धिक् स्थितिं ससृतः ।
 इत्यतद्विदुषाऽत्र^२ शोभ्यमथवा नैतच्च यदेहिना
 मय्यत्र बहुधा महीना सहजा वस्तुस्थितिस्तादृशा ॥३८६॥

उपजाति

गतानि सर्वभूतानि जन्तोर्नन्तकाल परिवर्तन
^३नावेहि किं त्व हि विबुधनिधो वृथैव मुह्ये^४ किमिह तरो वा ॥३८७॥

अनुष्टुप्

कममि कृतमस्यापि न स्थास्तु त्रिजगत्पत । क्षरीरादि ततस्त्याज्य मन्वत त-मर्नापिण ॥३८८॥
 प्रागभिगोचर सप्रत्यय चेतसि वर्तते । भगवांस्तत्र क शोक पश्यैन तत्र सवदा ॥३८९॥

मालिनी

इति मनसि यथार्थं चिन्तयन् शोकवर्हि
 शमय विमलबोधाम्भोभिरित्यावभाषे ।
 गणभृदथ स चक्री दावदग्धो महीध्रो
 नवजलदजलैर्वा तद्वचोमि प्रशान्त ॥३९०॥

वसन्ततिलका

चिन्ता यपास्य गुरुशोरुकृता गणेश
 मानस्य नम्रमुकुटो निःशङ्कात्मबोधिः ।
 निन्दश्चित्तान्तनितरो निजमोगतृष्णा
 मोक्षोष्णक^५ स्वनगर व्यविशद् विभूत्या ॥३९१॥

अमर्यकी तरह दु खी, निधन, कुमागमें प्रवृत्ति करनेवाला और रोगोंसे भयभीत होता हुआ इस ससाररूपी वनमें भ्रमण करता रहता है ॥३८५॥ काल आदि लब्धियोंके बिना पूज्य भव्य जीवको भी ससारमें रहना पड़ता है, यह काल अनादि है तथा अचिन्त्य दु खोंसे भरा हुआ है इसलिए ससारकी इस स्थितिको बार-बार धिक्कार हो यही सब समझ विद्वान् पुरुष को इस ससारमें शोक नहीं करना चाहिए अथवा जीवोंका यह भव्यत्वपना भी अनेक प्रकारका होता है । हे राजन्, वस्तुका सहज स्वभाव ही ऐसा है ॥३८६॥ हे भरत तू तो संसार का स्वरूप जाननेवाला है क्या तू यह नहीं जानता कि अनन्त कालसे परिवर्तन करते रहनेके कारण इस जीवके सैकड़ों सम्बन्ध हो चुके हैं ? फिर क्यों अज्ञानीकी तरह व्यर्थ ही मोहित होता है ॥३८७॥ तीनों लोकोंके अधिपति भगवान् वृषभदेवका शरीर भी तो कर्मोंके द्वारा किया हुआ है इसलिए वह भी स्थायी नहीं है और इसलिए ही विद्वान् लोग उसे हेय समझते हैं ॥३८८॥ जो भगवान् पहले आँखोंसे दिखायी देते थे वे अब हृदयमें विद्यमान हैं इसलिए इसमें शोक करनेकी क्या बात है ? तू उन्हें अपने चित्तमें सदा देखता रह ॥३८९॥ इस प्रकार मनम वस्तुके यथाथ स्वरूपका चिन्तन करता हुआ तू निमल ज्ञानरूपी जलसे शोक-रूपी अग्नि शान्त कर, ऐसा गणधर वृषभसेनने कहा तब चक्रवर्ती भी जिस प्रकार दावानलसे जला हुआ पत नवीन बादलोंके जलसे शांत हो जाता है उसी प्रकार उनके वचनोंसे शान्त हो गया ॥३९०॥ जिसे आत्मज्ञान शीघ्र होनेवाला है और जिसका मुकुट नम्रभूत हो रहा है ऐसे भरतने पिताके शोकसे उत्पन्न हुई चिन्ता छोड़कर गणधरदेवको नमस्कार किया और अत्यन्त बड़ी हुई अपनी भोगविषयक तृष्णाकी निन्दा करते हुए तथा मोक्षके लिए शीघ्रता करते हुए उसने बड़े वैभवके साथ अपने नगरमें प्रवेश किया ॥३९१॥

१ संसारानुगत । २ संसार । ३ शोकविषयम् । ४ अन्य अत्र इत्यर्थः । ५ चेतसि । ६ मुक्तमुद्योगे दत्त ।
 ७ एते तु चतुरस्रालपटव । मूर्त्तयान् उष्णश्च इत्यभिधानात् शीघ्रकारी वग । मोक्षोष्णक ल ।

द्रुतविलम्बितम्

अथ कदाचिदयं वदनाम्बुज

यमभिर्वाक्ष्य ममुज्ज्वलदर्पणे ।

पलितमेक्षत दन्तमिवागत

परमसौग्यपदान पुष्पमनिघ्रेः ॥३९२॥

वमन्ततिलका

आलोक्य तं गलितमोहरस्य स्तराज्य

मन्वा जरत्तृणमिवोद्गतत्रोविम्बन् ।

आदातुमात्महितमात्मजमर्ककी तै

लक्ष्म्या म्वया स्वयमयोजयदजितेच्छ ॥३९३॥

मालिनी

विदितसकलतत्त्व मोऽपसर्गस्य मार्गं

जिगमिपुरपमच्चैर्दुर्गम निप्रयागम् ।

यमसमितिममय सयम शम्भलं वा-

ऽदितं विदितममया किं पर प्रार्थयन्ते ॥३९४॥

भुजङ्गप्रयातम्

मनःपर्ययज्ञानमप्यस्य मय

समुत्पन्नवर्तं केवलं चानु तस्मात् ।

तदैवामवद् भव्यता तादृशी मा

विचित्राङ्गिनां निर्वृतं प्राप्तिरत्र ॥३९५॥

स्वदेशोद्वेगैर्व सप्रजितोऽमो

सुरेन्द्रादिभिः सांप्रत वन्द्यमानः ।

त्रिलोकाधिनाथोऽभवत् किं न साध्य

तपो दुष्कर चेत् समादातुमीश ॥३९६॥

अथानन्तर भरत महाराजने किसी समय उज्ज्वल दर्पणमे अपना मुखकमल देखकर परम सुखके स्थान स्वरूप भगवान् वृषभदेवके पाससे आये हुए द्रुतके समान सफेद बाल देखा ॥३९२॥ उसे देखकर जिनका सब मोहरस गल गया है, जिन्हे आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ है, जो आत्महितको ग्रहण करनेके लिए उद्युक्त है और जिनकी वैराग्यविषयक इच्छा अत्यन्त सुदृढ तथा वृद्धिशील है ऐसे भरतने अपने राज्यको जीर्णतृणके समान मानकर अपने पुत्र अर्ककीर्ति-को अपनी लक्ष्मीसे युक्त किया अर्थात् अपनी समस्त सम्पत्ति अर्ककीर्तिको प्रदान कर दी ॥३९३॥ जिसने समस्त तत्त्वोको जान लिया है और जो हीन जीवोके द्वारा अगम्य मोक्षमार्गमे गमन करना चाहते हैं ऐसे चक्रवर्ती भरतने मार्ग हितकारी भोजनके समान प्रयासहीन यम तथा समितियोसे पूर्ण सयमको धारण किया था सो ठीक ही है क्योंकि पदार्थके यथार्थ स्वरूपको समझनेवाले पुरुष सयमके सिवाय अन्य किसी पदार्थकी प्रार्थना करते हैं ? ॥३९४॥ उन्हे उसी समय मन पर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया और उसके बाद ही केवलज्ञान प्रकट हो गया । उनकी वैसी भव्यता उसी समय प्रकट हो गयी सो ठीक ही है क्योंकि प्राणियोको मोक्षकी प्राप्ति बड़ी विचित्र होती है ॥३९५॥ जो भरत पहले अपने देशमे उत्पन्न हुए राजाओसे ही पूजित थे वे अब इन्द्रोके द्वारा भी वन्दनीय हो गये । इतना ही नहीं, तीन लोकके स्वामी भी हो गये सो ठीक ही है जो कठिन तपश्चरण ग्रहण करनेके लिए समर्थ रहता है उसे क्या-क्या वस्तु साध्य

१ उद्यमान । २ गन्तुमिच्छु । ३ अपगतबल । ४ मूलगुणसमूह । ५ पार्थेयमिव । ६ स्वीकृतवान् । ७ ज्ञात-समीचीनार्थ । ८ ज्ञातार्थक्रियासमर्था वा । ८ समुद्भूतम् । ९ पश्चात् । १० सयमात् । ११ षट्खण्डनै । १२ समर्थ ।

मालिनी
 परिचितयतिहसो धमवृत्तिं निविशन्
 नमसि कृत्तनिवेशो निमलस्तुङ्गवृत्ति ।
 फलमविकलमाय मन्वसस्येषु कुबन्
 व्यहरदतिलदेशान् शारदो वा स मेघ ॥३९५॥
 पृथ्वी
 विहरय सुचिर विनेयजनतोपकृत्स्वायुषो,
 मुहूर्तपरिमास्थितौ विहितसत्त्वियो विध्युतौ ।
 तनुश्रितययधनस्य गुणसारमूर्त्ति स्फुरन्
 जगत्प्रयशिलाभणि सुखनिधि स्वधाम्नि स्थित ॥३९६॥
 वसन्ततिलका
 सर्वेऽपि ते वृषभसेनमुनीशमुष्या
 सौख्यं गता सकलजन्तुषु शान्तचित्ता ।
 कालक्रमेण यमशीलगुणाभिपूर्णा
 निर्वाणमापुरमित गुणिनो गणीद्रा ॥३९७॥
 शार्दूलविक्रीडितम्
 यो नेतेव पृथु जघान दुरितारति चतुस्साधनो
 येनास कनकाश्मनेव विमल रूप स्वमाभास्वरम् ।
 आमेजुश्चरणौ सरोजजयिनी यस्यालिनो वाऽमरा
 स्त प्रैलोक्यगुरु पुरु श्रितवतां श्रेयांसि व स क्रियात् ॥३९८॥
 शार्दूलविक्रीडितम्
 योऽभूत्पद्मदशो विभुः कुलभूतां तीर्थेशिनां चाग्रिमो
 हृष्टो येन मनुष्यजीवनविधिसुक्तेश्च मार्गो महान् ।
 बोधो रोधविमुक्तवृत्तिरखिली यस्योदपाद्यन्तिम
 स श्रीमान् जनकोऽखिलावनिपतेराद्य^१ स दद्याच्छिष्यम् ॥३९९॥

नहीं है अर्थात् सभी वस्तुएँ उसे साध्य है ॥३९६॥ मुनिरूपी हंस जिनसे परिचित है, जो धर्म की वर्षा करते रहते है, जो आकाशमे निवास करते है निमल हैं, उत्तमवृत्तिवाले हैं (पक्षमें ऊँचे स्थानपर विद्यमान रहते हैं) और जो भव्य जीवरूपी धानोंमें भोक्षरूपी पूण फल लगानेवाले है ऐसे भरत महाराजने शरद् ऋतुके मेघके समान समस्त देशोंमें विहार किया ॥३९७॥ चिरवाला तब विहार कर जिहोंने शिक्षा देने योग्य जनसमूहका बहुत भारी ऐसे भरत महाराजने अपनी आयुकी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति वाकी रहनेपर और औदारिक, तेजस तथा वामणि इन तीन शरीररूप बन्धनोंके नष्ट होनेपर सारभूत गुण ही जिनकी मूर्ति रह गयी है, जो प्रकाशमान १५६ के पृष्ठ। मोक्षको ॥३९८॥ जो समस्त जीवोंके विषयमे शान्तचित्त है, उत्तम गुणोंसे पूण है गुणवान् है और गण अर्थात् मुनिसमूहके भी कालक्रमसे अपरिमित निर्वाणधामको प्राप्त हुए ॥ आराधनारूप चार प्रकारकी सेनाको साथ लेकर ५॥ जिहोंने शुचण पापाणके समान अपना देदीप्यमान २५ सब देवलोग जिनके कमलविजयो धरणोंकी सेवा करते ह भगवान् वृषभदेवकी सेवा करनेवाला तूम सबकी वे ही जो कुलवराम पद्महर्वें कुलकर थे, तीर्थ वरोंमें प्रथम ॥

१ परिवर्तितयतिमुख्य । २ भग्यजनसमूहस्योपकारि । ३
 ४ सेनापतिरिव । ५ चतुर्विधाराधनसाधन । ६ आ समन्ताद्
 विमुक्त । १० उत्पन्नवान् । ११ भरतस्य ।

वसन्नतिलका

माक्षान्तप्रथिनसपदायंमार्ग

मन्त्रमर्तार्यपथपालनमलहेतुः ।

मन्यान्मनां मन्त्रभृता मन्त्रैपरायमिन्द्रि-

मिस्त्वाकुचशृणुभो वृषभो विदध्यान् ॥४०२॥

शार्दूलचिक्रीडितम्

यो नाभेस्तनयोऽपि विड्वविदुषा पूज्यः स्वयम्भूरिति

न्यक्ताजेपपरिग्रहोऽपि मुत्रियां स्वामीति यः शब्दयते ।

मध्यस्थोऽपि विनेयमत्त्वममितरेवोपकारी मनो

निर्दानोऽपि बुधैरपास्य चरणो यः सोऽस्तु व शान्तये ॥४०३॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिपष्टिलक्षणमहापुराणसग्रहे प्रथमतीर्थ-

करचक्रधरपुराण नाम सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व परिसमाप्तम् ॥४७॥

की विधि और मोक्षका महान् मार्ग प्रत्यक्ष देखा था, जिन्हे आवरणसे रहित पूर्ण अन्तिम — केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और जो समस्त पृथिवीके अधिपति भरत चक्रवर्तीके पिता थे वे श्रीमान् प्रथम तीर्थकर तुम सबको लक्ष्मी प्रदान करे ॥४०१॥ जिन्होंने प्रसिद्ध सप्त पदार्थोंके समूह को प्रत्यक्ष देखा है और जो समीचीन धर्मरूपी तीर्थके मार्गकी रक्षा करनेमें मुख्य हेतु है ऐसे इक्ष्वाकु वंशके प्रमुख श्री वृषभनाथ भगवान् ससारी भव्य प्राणियोंको मोक्षरूपी आत्माकी उत्कृष्ट सिद्धिको प्रदान करे ॥४०२॥ नाभिराजके पुत्र होकर भी स्वयम्भू है अर्थात् अपने आप उत्पन्न है, समस्त विद्वानोंके पूज्य है, समस्त परिग्रहका त्याग कर चुके हैं फिर भी विद्वानोंके स्वामी कहे जाते हैं, मध्यस्थ होकर भी भव्यजीवोंके समूहका उपकार करनेवाले हैं और दानरहित होनेपर भी विद्वानोंके द्वारा जिनके चरणोंकी सेवा की जाती है ऐसे भगवान् वृषभदेव तुम सबकी शान्तिके लिए हो अर्थात् तुम्हें शान्ति प्रदान करनेवाले हो ॥४०३॥

इस प्रकार आर्पणामसे प्रसिद्ध भगवान् गुणभद्राचार्यप्रणीत त्रिपष्टिलक्षण श्रीआदिपुराण

सग्रहके हिन्दी भाषानुवादमें प्रथम तीर्थकर और प्रथम चक्रवर्तीका वर्णन

करनेवाला यह सैतालीसवाँ पर्व पूर्ण हुआ ।

पुराणविधिरगम्योऽयमर्थवीचिविभूषितः ।

सर्वथा शरण मन्ये जिनसेनं महाकविम् ॥

पारग्रामो जन्मभूमिर्यदीया

गल्लीलालो जन्मदाता यदीयः ।

पन्नालाल क्षुद्रबुद्धिः स चाह

टीकामेतां स्वल्पबुद्ध्या चकार ॥

आषाढकृष्णपक्षस्य त्रयोदश्या त्रिषाव्रियम् ।

पञ्चसप्तचतुर्युग्मवर्षे पूर्णा वभूव मा ॥

ते ते जयन्तु विद्वानो वन्दनीयगुणाधराः ।

यत्कृपाकोणमालम्ब्य तीर्णोऽयं ग्राम्प्रमाणः ॥

श्लोकानुक्रमणिका

अ		अणिमादिभिरष्टाभि	२५७	अथ ते मद्र मम्भूय	१५९
		अताप्सोन् प्रणतानेय	६६	अथ दुर्मर्षणो नाम	३८६
अकम्पन खल धुद्रो	३८६	अनिक्रान्ते ग्य तस्मिन्	३८७	अथ दूतवत्स्वच्छ-	२००
अकम्पनमहाराजम्	३८१	अनिगृह्य पुन पञ्चान्	५०९	अथ देवोऽस्ति विस्तीर्ण.	३६२
अकम्पनमहीशस्य	४०१	अतिपङ्क्तिरन्या	४४४	अथ निर्वर्तिताशेष-	२२१
अकम्पनस्य मेनेशो	३९०	अतिवृद्ध क्षयामन	३६७	अथ नृपतिममाजेनाचित	११०
अकम्पनै किमित्येवम्	४२९	अनिवृद्धरमावेग	४३९	अथ प्रादुर्भून् बाल	३७२
अकम्पनोऽप्यनुप्राप्य	४२१	अतीत्य परत किञ्चित्	१३७	अथ मेघस्वरो गत्वा	४२५
अकरा भोक्तुमिच्छन्ति	१५६	अतीन्द्रियगुणोऽप्यात्मा	३३७	अथ रथपरिवृत्ये	५८
अकस्मात् कुपितो दन्ती	७४	अतीन्द्रियात्मदेहश्च	३३७	अथवा कर्म नोकर्म गर्भेऽस्य	३३९
अकस्मादुच्चरद्ध्वानम्	४०	अतोऽतिबालविद्यादीन्	३१५	अथवा खलु मद्यस्य	४८
अकायमात्रकोद्भिन्न-	४८६	अत्यन्तरसिकानादी	२०७	अथवाऽग्र भवेदस्य	३५३
अकारणरणेनालम्	२०३	अत्यम्बुपानादुद्रिक्त-	४०	अथवा तन्त्रभूयस्त्वम्	२०२
अकालप्रलयारम्भ-	३९६	अत्यामगान् क्रमग्राहि-	८३३	अथवा दुर्मदाविष्ट-	१५२
अक्षत्रियाश्च वृत्तस्या	३३३	अत्र चिन्त्य न व किञ्चित्	३९४	अथवाद्यापि जेतव्य	१५२
अक्षप्रक्षणमात्र ते	१६८	अत्र वामुत्र वामोऽस्तु	४१७	अथवा मोऽनभिज्ञेऽपि	३५४
अक्षरत्व च मुक्तस्य	३३९	अत्रान्तरे गिगीन्द्रेऽस्मिन्	१२२	अथ व्यापारयामाम	१८
अक्षिमाला महाभूत्या	४२७	अत्रान्तरे ज्वलन्मोलि-	१०४	अथ सम्मुखमागत्य	११०
अक्षिमाला किल प्रप्ता	४३०	अत्रापि पूर्ववद्दानम्	२४८	अथ सरसि जिनानाम्	७९
अक्षीणावसथ सोऽभूत्	२१४	अत्राय भुजगशिगु	५३	अथात श्रेणिक पीत्वा	३५६
अखण्डमनुरागेण	१८९	अत्रेत्याखिलवेद्यवतम्	४७६	अथात सम्प्रवक्ष्यामि	२७७
अगादह पुरस्कृत्य	४१४	अत्रैकैषा निसृष्टार्थान्	३७१	अथात सम्प्रवक्ष्यामि	२९०
अगोष्पदमिद देव	२०	अत्रैव न पुनर्वेति	४४४	अथातोऽस्य प्रवक्ष्यामि	३११
अगोष्पदेष्वरण्येपु	३५	अत्रैव नाटकाचार्यतनूजा	४७२	अथान्यदा जगत्काम-	३५९
अग्निमित्रोऽथ मित्राग्नि	३५६	अत्रैव सप्तमेऽह्नि	४६९	अथान्यदा समुत्पन्न-	५०२
अग्रण्या दण्डरत्नेन	१०	अथ कदाचिदसौ वदनाम्बुज	५१३	अथान्येद्यु सभामध्ये	४७५
अङ्गसाद मतिश्रेयम्	२०८	अथ चक्रवर काले	३१७	अथान्येद्यु रूपाख्य-	११२
अङ्गादङ्गात्सम्भवसि	३०५	अथ चक्रधर पूजाम्	१	अथान्येद्यु दिनारम्भे	३३
अङ्गाना सप्तमादङ्गात्	२४४	अथ चक्रवरस्यासीत	१७२	अथापरान्तनिर्जितुम्	८१
अङ्गान् मणिभिरत्यङ्गै	६६	अथ चक्रधरो जैनीम्	६२	अथाब्रवीद् द्विजन्मभ्यो	२६९
अचलो मेरुसङ्गश्च	३५७	अथ जन्मान्तरापात-	४४३	अथावरुह्य कैलासात्	१५१
अचिन्त्यश्च किं नाम	१५२	अथ जातिमदावेशात्	२७९	अथस्मै व्यतरत् प्राशु-	१२७
अचिन्त्यश्च किं नाम	२०६	अथ तत्र कृतावासम्	९९	अथोदीरिततीर्थेश-	४९८
अचिराच्च तमासाद्य	१३२	अथ तत्र शिलापट्टे	१२५	अथोपाचक्रमे वक्तुम्	१७७
अच्छैर्त्सच्छत्रमस्त्राणि	४१९	अथ तत्रस्थ एवावधिम्	५०	अथोभयवले धीरा-	२०३
अजितञ्जयमारुक्षत्	३८	अथ तस्मिन् वनाभोगे	७१	अथोरुण्यभटानीक-	१८६
अञ्चित्वा विधिना स्तुत्वा	४१८	अथ ते कृतसम्माना	२४१	अदधुर्धनवृन्दानि	६

अदीक्षाहं कुले जाता	३११	अनुगगातटं सद्यै	१२७	अन्यश्च निश्चितत्यागै	५०२
अदीनमनस शान्ता	१६८	अनुवीरवनम्	५४	अयोऽन्य खण्डयति स्म	४०५
अदूरपार कायोऽयम्	४६२	अनुसरविमानौप	१६३	अन्योऽन्य सह सम्भूय	३२३
अदृष्टपारपक्षोऽयम्	४४	अनुदता गभीरत्वम्	४	अयोऽयरदनोद्भिषो	४०८
अदृष्टमधुन कृत्य	१५६	अनुदुता मृगा गार्ध	९८	अयोऽन्यविषयं सौख्यम्	४३३
अद्यापि च प्रयातमयम्	३४	अनुप्रवृद्धकल्याण	४५४	अयोऽन्यस्यति सजस्य	३४
अद्य च प्रहृत्या	१५८	अनुमेरीरव सद्य	३९२	अपमृत्युविनाशनम्	२९३
अद्यस्ताद् वक्त्रविवरम्	४५६	अनुयायिनि तत्प्रागादिब	२६५	अपराध कृतोऽस्माभि	४२६
अद्यावयसौ किञ्चित	४८१	अनुरक्ततया दूरम्	१९१	अपरोक्षितकार्याणाम्	४७५
अधिकार ह्यसत्यस्मिन्	३१४	अनुरक्तापि सम्भय	१८८	अपरशन्निारम्भे	२६२
अधित्यकासु सोऽस्याद्र	१३३	अनुवाधितट कपन्	६२	अपापोपहता वृत्ति	२४३
अधिमखलमस्यासीत्	१२५	अनुवाधितट गत्वा	९३	अपातयन्महामरम्	४६०
अधिवक्षस्तरं जिष्णो	२०४	अनुश्रणुमतोतीरम्	६८	अपायो हि सपत्न्यम्	२६४
अधिवासितजनास्त्र	३८	अनुसिन्धुतट मैत्र्य	९७	अपि चाद्य मन खद	३४१
अधिशय्य गङ्गागमम्	११५	अनुत्थितपु सम्प्रीत्या	२६५	अपि चाद्य मया स्वप्ना	३१९
अधिष्ठाय जय	३९५	अनकमन्तरद्वोप	४३	अपि चास्मदुपज यद्	३१७
अधीतविद्य तद्बिद्य	२५५	अनेकानुनयापाय	४४६	अपि चैषा विशद्विभङ्गम्	२८२
अयोभागमबोध्व च	४४८	अन्त कोपोऽप्ययम्	४१०	अपि राग समुत्सृज्य	२५५
अयोमुखा खगमुक्ता	४००	अत प्रकृतिज कोपो	१७३	अपूषरत्नसन्दर्भे	३७
अध्यानमानमत्याराद्	२०५	अन्तक समवर्तीति	४०२	अपूषलाभ इलाभ्यश्च	३७०
अध्रुवत्व गुण मये	४६४	अतमस्य विधास्यामि	४४३	अपूषत् सोऽमवीदधा	४८३
अनन्मपिता एव	१६४	अन्तर्हीतो जय सवम्	४०५	अपूषत्यस्तिमिरयमाजिधाम	५५
अनन्तदानतन्त्र च	३३९	अन्तर्बुधन चास्य	३३८	अवधाद् बधुरा तस्य	३८४
अनन्तसुखशब्दश्च	२९१	अन्यच्च गोधन गोपो	३४७	अवध्यशासनस्यास्य	१७९
अनन्यशरणस्य	६४	अन्यच्च देवता सन्ति	११७	अवाहुबलिनानेन	१५७
अनन्यसदृशैरभि	२५२	अन्यच्च नमिताक्षेप	१७९	अभिभ्यद्देवता चैवम्	५०१
अनविषय मयि प्रीडिम्	३५२	अन्यच्च बहुवाग्भाते	२८७	अबोधद्वेपरागात्मा	४६५
अनलस्मानिलो वात्य	३८७	अयच्चाकर्णितं दृष्टम्	४५३	अभय इव सद्धमम्	४११
अनादिपद्मपूर्वाच्च	३९२	अयत्र भ्रातृमण्डानि	२०८	अभिगम्य नृप क्षिप्रम्	३७४
अनाग्निस्तपयतम्	४२	अयथा चितित कायम्	४२५	अभिचारक्रियवासीत्	१
अनाग्निश्रोत्रियामति	२९४	अयथाऽन्यकृता सृष्टिम्	३१३	अभिमतफलसिद्ध्या	३८४
अनालपन्तीमालाप्य	४३२	अयथा विमतिभूयो	२६४	अभिवन्द्य यथाकामम्	४८३
अनाशितमव पीत्वा	४२	अयथा सृष्टिवादेन	३१३	अभिवन्द्यागताऽस्म्यहि	४८६
अनापुषाऽपि तस्यासीत्	२१४	अन्येषु खजराधीशो	४६०	अभिविच्य च राजेन्द्रम्	१२०
अनाश्वान्रियताहार	२८७	अन्येषु प्रियदत्तासो	४५२	अभिविच्य जलां मत्वा	४४३
अनिश्चा ज्ञानसत्तारै	२१५	अयद्युक्तिमोहह	३६०	अभीष्ट मम देहीति	४७२
अनिराष्ट्रमन्तापा	१८०	अन्यद्युर्मथुनो राज्ञ	४७४	अभूतपूर्वमुद्भूत	९८
अनिष्टवनिवयम्	२०७	अन्यद्युयतिमासाद्य	४७०	अभूतपूर्वमतमो	११६
अनुकूलानिलोत्पिप्त	४०७	अयद्युवसुधारादि	४५८	अमूजजयावती भ्रातु	४९३
अनुगगातटं देशान्	१ १	अयऽप्ययैश्च भूपाला	४१९	अभूतकान्तिश्चकोराक्ष्या	२३०
अनुगगातट भाति	२०	अन्यऽमी च खगाधीशा	३८१	अभूत प्रहृत्यग्भीर	८०२
अनुगगातटं यान्ती	५	अन्यत्पि नलाद्यास्त्र	३२९	अभूदयशसो रूपम्	४३०

अभूद् रागी स्वय राग	३६८	अल म्नुतिप्रपञ्चेन	१८६	अमस्यगङ्गामाक्रान्त-	३९
अभेद्यमपि वज्रेण	४८८	अलका इव नग्नेजु	१	असत्फला इमे म्वपना.	३१७
अभेद्याख्यमभूत्स्य	२३४	अलका कामकृष्णाहे	२२८	असत्यस्मिन् गुणोऽन्यस्मात्	३१५
अभेद्या दृढमन्वाना	८१	अल्य चक्रमाक्रान्त-	३३	असत्यस्मिन्नमान्यत्वम्	३१४
अभेद्ये मम देहाद्री	२०८	अल्यन्वान्महीयन्वाद्	३७	असह्यै बलमघट्टै.	८५
अभ्यर्चिताग्निकुण्डस्य	५०७	अल्यमहिमोदगो	१२३	अमिमण्यादिपट्कर्म-	२२७
अभ्यर्णं वन्धुवर्गस्य	४८९	अल्यभात्रो ल्पार्थ-	४८	अमिसघट्टनिष्ठयूत-	४०३
अभ्येति वरटागकी	२०	अवतान प्रकाशस्य	४१८	अमी रतिवर कान्त	४४८
अभ्येत्य वृषभाम्याशम्	३५९	अवतभिननीलाञ्जा	१२	अस्ति माधुर्यमम्योज	१५३
अमरेन्द्रे समामध्ये	५०१	अवताग्निराऽन्या	२५९	अस्ति स्वयवर पन्था	३९१
अमानुषेष्वरण्येषु	११४	अवताग्निराऽन्या	२७२	अस्तु कि यातमद्यापि	४१६
अमितानन्तमत्यायिकाभ्यागे	८५०	अवताग्निपर्याण-	७३	अस्तु वास्तु समस्त च	४९९
अमुनाऽन्यायवर्त्मव	८३०	अवतारो वृत्तलाभ	२४४	अस्त्रैर्व्यस्त्रैश्च शस्त्रैश्च	१०२
अमुष्माज्जनमघट्टात्	२८	अवतीर्य मही प्राप्य	४६५	अम्मदजितदुष्कर्म-	४७५
अमुष्य जलमुत्पतद्	५१	अवधार्यानिभिप्रेत-	४७१	अस्मिना सस्मिता कुर्वन्	४३१
अमृतवसने मन्दम्	२५९	अवधार्यास्य पुत्रस्य	४८९	अस्मिन्नग्निव्रजे पूजाम्	३०१
अमेयवीर्यमाहार्य-	१४१	अवधूत पुरानङ्ग	३७९	अस्या पय प्रवाहेण	१८
अमोघपातास्तस्यामन्	२३४	अवध्य जनमित्याम्या	१७२	अस्या प्रवाहमम्भोवि	१८
अय कायद्रुम. कान्ता	४६४	अवनिपतिसमाजे	७९	अस्याग्रह इवानङ्ग.	३७९
अय खलु खलाचारो	१८०	अवरुद्धाश्च तावन्त्य	२२३	अस्यानुसानु रम्येय	१२२
अय च चक्रभृद्देवो	२०२	अवान्तरविशेषोऽत्र	२४६	अस्योपान्तभुवश्चकासति-	५६
अयं जलधिरुच्चलत्तरल-	५०	अत्रापि या तया प्रीति	४३३	अस्वेदमलमच्छायम्	१४१
अयमनिभृतवेलो	५३	अवार्योऽनन्तवीर्यस्य	५०२	अह कृतो कृतो धर्मः	३६२
अयमनुसरन् कोक	१९५	अवास्किरन्त शृगाग्रै	५	अह पूर्वोक्तदेवश्री	४५७
अयमयमुद्धारो	५८	अविगणितमहत्त्वा	५३	अह प्रियरतिर्नामा	४८१
अयमेकचर पोत्र-	२३	अविदितपरिमाणै	७९	अह वर्षवरो वेत्ति न	४६७
अयमेकोऽस्ति दोषोऽस्य	३८२	अव्यावाधत्त्वमस्येष्टम्	३३९	अह हि भरतो नाम	४६
अयोनिस्सम्भव जन्म	२७५	अव्यावाधपद चान्यद्	२९१	अहमद्य कृताथोऽस्मि	१४८
अयोनिस्सम्भव दिव्य-	२७८	अशक्यधारण चेत्यम्	२५४	अहमिन्द्रोऽग्निमोऽभूवन्	५०९
अयोनिस्सम्भवास्तेन	२८०	अशक्योद्घाटनान्येषान्	११२	अहमेको न मे कश्चित्	२५६
अरिजयाख्यमारुह्य	४१८	अशिशिरकरो लोका-	१९४	अहानि स्थापयित्वैवम्	४४१
अरेमित्रमरेमित्रम्	१५४	अशोकतरत्रायम्	२१	अहिंसालक्षण धर्म	३२१
अर्ककीर्ति स्वकीर्ति वा	४१२	अशोकशाखिचिह्नेन	१४०	अहिंसाशुद्धिरेपा स्यात्	२७१
अर्ककीर्ति पुरो पीत्रम्	३५६	अश्वेभ्योऽपि रथेभ्योऽपि	२७	अहिंसा सत्यमस्त्येषाम्	१६५
अर्ककीर्तिरकीर्ति मे	४३०	अष्टचन्द्रा खगा ख्याता	३९६	अहो तटवनस्यास्य	२१
अर्ककीर्तिर्वहिर्भास्वद्	३९३	अष्टचन्द्रा पुरो भूय -	४०७	अहो परममाश्चर्य-	१३५
अर्ककीर्त्यादिभि प्रष्टै	४३५	अष्टचन्द्रान् सखी कुर्वन्	४१९	अहो महानय शैलो	१२२
अर्कणालोकनारोधि-	४२६	अष्टचन्द्रास्तदाम्येत्य	४१९	अहो महानुभावोऽय	१२६
अर्थो मनसि जिह्वाग्रे-	३५५	अष्टापि दुष्टरिपवोऽस्य	५१०	अहो महानुभावोऽयं	२०२
अर्थं गुरुभिरेवास्य	३५२	अष्टोत्तरसहस्राद् वा	२४७	अहो मया प्रमत्तेन	४४१
अर्हन्मातृपद तद्वत्	२९४	अमख्यकल्पकोटीषु	१२५	अहो मातृगणोऽस्माकम्	१७२
अल वत चिरं	१९३	असकृत् किन्नरस्त्रीणाम्	१२१	अहो विपयसीख्यानाम्	२०६

आ

आकारसर्वति कृत्वा	४४६
आकारग्विव रत्नानाम्	३५५
आकालिकीमनादृत्य	७२
आकृष्टदिग्गजालोनि	३७३
आकृष्टनिचलामोन्म्	२३२
आक्रान्तभूमृतो नित्यम्	८२
आक्रान्तसनिवस्थ	८२
आखण्डकषणुल्लेखाम	१३७
आग परागमातन्वन्	१८४
आगच्छन्ती भवद्वाताम	४८६
आधातुको द्विदिन	७६
आचारस्य बलान्यके	१०३
आचारागन नि शपम्	१६२
आजमन कुमारस्य	४४८
आजानुलम्बिना ब्रह्म	७
आज्ञापायो विपाक च	२१५
आज्ञाभिमानमत्सृग्	२८६
आतपत्र सृजोष	४९२
आतिथ्यमिव नस्तवन्	२०
आत्मस्त्व परमात्मानम्	४६५
आत्मनव द्वितीयेन	१७४
आत्मसम्यग्गुण्युक्त	३८२
आत्मान्वयप्रतिष्ठापम्	२४३
आत्मोपाधिविशिष्टाश्च	५०४
आत्रिकापायसरक्षा	३४
आत्रिकामुत्रिकापायात्	३४०
आत्रवच्युपादानम्	४४२
आदिशत्रियवत्स्थाः	३३४
आदित्यगतिमभ्यस्य	४६१
आदित्यगतिरस्यासीत्	४५९
आग्निराजकृता रुद्धीम्	३२४
आग्निष्टमन्त्रिधान	४८९
आग्निष्टमन्त्रिधान	४८७
आग्नी जमजरारोगा	४६३
आग्नी परमकाष्ठति	२९३
आग्नी मुनीन्द्रभाषीति	३२
आद्य सेनापति पञ्चादाय	५९
आद्यूनमसदृत्पीत	४०
आधीन्य मन्ति स्त्रयवरविधौ	३८४
आधान नाम गर्भान्	२४५

आधान प्रीतिमुप्रीति	२४४
आधानमत्र एवात्र	३०३
आधानात् पञ्चमे मासि	२४६
आधानादिक्रियारम्भे	२९०
आधानाद्यास्त्रिपञ्चाशत्	२४४
आधान मन्त्र एव स्मात्	३०२
आधोरणा मदमपोमलिनान्	७६
आधोरण कृतोत्साह	४०६
आनन्तराजपुत्रस्य	४७१
आनन्त्योऽग्निनिर्घोषा	२३६
आनदिभ्यो महाभय	२२१
आनीतवानिहृत्येतत्	४८२
आनीयतां प्रयत्न	४८२
आघ्नान् रुद्रप्रहारपु	७०
आपदिचमाणवतटात्	८६
आ पाण्डरगिरिप्रस्थात्	६७
आपातमात्ररम्याणाम्	२०६
आपोतपयसा प्राज्य	१२
आपो भन धृतरसा	५२
आप्तजानपत्नीत	४४०
आप्ताममपदार्थावच	३६८
आप्तोपन्न भवैतत्त्वम्	३३३
आप्तोपज्ञेषु तत्त्वेषु	३२८
आप्तोऽहन् शीतदोषत्वात्	३३४
आवध्यस्थानक पूर्वम्	३९६
आमिजात्य वयो रूपम्	३६०
आमुच्छ्रय स्वगुरुम्	१४९
आयसा सायका काम	४१७
आयुर्वायुचल कायो	४६२
आयुर्वयुरय मोहो	४९९
आयुर्वेदे स दीर्घायु	३२८
आयुष्मन् कुशल प्रष्टुम्	१०५
आयुष्मन् भवता सृष्टा	३२०
आयुष्मन् युष्मदोयाज्ञाम्	१००
आयुष्माप्ति	५७
आरक्तकल्पा दष्टि	१९२
आरक्षककरे हन्तुम्	४७४
आरक्षिणो निगुह्यु	४७२
आरुह्यमानमस्वीरी	३०
आरुह्य स त शैलम्	१३३
आरुह्यकलिका दृष्टिम्	१५६
आरुह्य शिबिकां दिव्याम्	२६५

आरुह्यकलिका पश्यन्	२३२
आरुह्ययोनोष्माणी	२३०
आरुह्यकपानक	३९३
आरुह्य जगनीमन्त्रे	१०९
आरुह्य उ दुरारोहम्	२०७
आरुह्यमपि वाग्भूया	३६१
आरुह्यमिदमिदं दृष्टुमा	५०३
आरुह्यमपि भवति	३०२
आरुह्यमहतो भावो	२८८
आरुह्यमहतो भावो	७७
आरुह्य त्व नालिक धूहि	१९१
आरुह्यलोके बुधोऽनन्त	५०६
आरुह्यलोकं जितस्वभाव	१५०
आरुह्य त गलितमोहरसः	५१३
आरुह्यने श्वसम्बाधम्	२१२
आरुह्य चाप्य त नत्वा	५००
आरुह्यमपि तत् तन्दनाय	४७८
आरुह्य गत्वा निषद्यासी	४२८
आरुह्यकान्तोपासकव्रत	५०५
आरुह्यमह साध	२४२
आरुह्यमभ्यशङ्क	२९३
आरुह्य विजयभोपाख्या	२३६
आरुह्यमाध्यात्मिकीय ते	१४४
आरुह्य भुजबली तावद्	१५८
आरुह्य अयदुन्दुभी ननु नदन्	८०
आरुह्यलिता तदा मेरी	३७५
आरुह्य परिहार्योऽय	४११
आरुह्यभयसजे च	२१२
आरुह्यस्य तत्ता सेऽद्य	४२७
आरुह्य केचिदाजगम्	१२
आरुह्यमन्त्रिमिधोर्वाच	४४०
इ	
इक्षोर्विवाह्य पूर्वाद्धि	३५२
इक्षोर्वा च दत्ति च	२४१
इक्षोर्वा च दत्ति च	२१
इक्षोर्वा च दत्ति च	१८
इक्षोर्वा च दत्ति च	१९
इक्षोर्वा च दत्ति च	२८
इक्षोर्वा च दत्ति च	४३१
इक्षोर्वा च दत्ति च	२७०
इक्षोर्वा च दत्ति च	२२

कदाचिच्छकलपक्षस्थ	४५६	कणस्तिगामिनी नश्रे	३६६	कान्तोऽभूद् रतिपणया	४७८
कदाचिच्छ द्विगो गह	४५३	कर्णाम्यर्णोक्ततास्तस्य	३९९	काबरीवारिजास्वाद	३७७
कदाचिच्छ द्विनोद्दिष्टम्	४४८	कर्णोत्तलनिलीनालि	१९२	काम स राजराजोऽस्तु	१८२
कदाचित्कान्तमा	४५२	कत्रवर्गक्रियाश्चैव	२४४	कामगर्वाभ्युहोभि	८
कदाचित् कामिनोकान्त	४४८	कमनिमुक्तसप्राप्यम्	१०२	कामप्रहाहिता तस्या	४८८
कदाचित् काललब्ध्यादि	४९४	कमभि कृतमस्यापि	५१२	कामपाशायती बाहू	२५४
कदाचित् प्रावृष्टारम्भे	३९५	कर्माणि हत्वा निमूलम्	५०६	कामरूपित्वमाप्तस्य	३३७
कदाचिद्विचिता वक्राम	३२७	वशय-मूर्तिमात्मीयाम्	२८५	कामगुह्यमिता तपाम	२७१
कदाचिद् धमशास्त्रेप	३२८	कलकण्ठीकलक्वाण	२३१	कामोऽगमत् सुरतवृत्तिषु	४४५
कदाचिद् भवनायात	४४८	कलमान् कलभाङ्कार	२१५	काम्यमत्रमतो ब्रूयात्	२९५
कदाचिद् भूपति श्रष्टि	४५१	कलशमुखविषयस्त	३७७	काम्यमत्रमतो ब्रूयात्	३००
कदाचिद् राजगहमगतन	४४८	कलहसा हसन्तीव	३	कारयन्ती जिमन्द्रार्वा	३६८
कदाचिद् वत्सविषय	४६९	कलोपी बहभारण	२४	कारयित्वा पुरी सव	४२१
कदाचिन्निधिरत्नानाम	३२८	कलामिजात्यसम्पन्ना	२२३	कालज्ञानिभिरादिष्ट	३४१
कनिष्ठामगुलि वामहस्तोऽमो	४५२	कलाविदश्च नृत्वादिशत	३२७	कालव्यालगजनेद	२०८
कन्याकृत्यव गत्वात	४८९	कलेवरमिद त्याज्यम्	१८६	कालध्रमणशब्द च	२९६
कयागुहास्तदा कन्याम्	३७६	कलरलिकुलक्वाण	२३१	कालाख्यश्च महाकालो	२२७
कयारत्नानि सन्त्येव	३९०	कलरलिस्तोदगान	२१६	कालिङ्गकान् गजप्राय	७०
कन्याघृतविलोप त	४४७	कल्पद्रुमद्वयं वस्त्रभूषणानि	४४९	कालिङ्गकगर्जरस्य	८५
कपय कपिकच्छानाम्	७२	कल्पद्रुममभोऽष्टयम्	५०६	कालिङ्गकालकूटो च	६७
कपोलकापसरुण	१३४	कल्पाधिपतये स्वाहा	२९७	काशिराजस्तदाकर्ण्य	३९४
कपोलावुज्ज्वलो तस्या	२२९	कल्पानोकहसवेव	१५८	काशीदेशशिना देव	४३६
कमनीयैरतिप्रोत्तिम	४३९	कल्याणाङ्गस्त्वमकान्ताद्	३२२	काष्ठजोऽपि दहत्यग्नि	३५४
कमलनलीनीनाल	१९६	कवाटपुटविश्लेषाद्	१०८	किं किकर करालास्त्र	१५७
करग्रहण लक्ष्मीवान्	३८०	कविरेव कवर्वेत्ति	३५३	किं किमात्थ दुरात्मानो	१५६
करग्रहण सम्पीड्य	७१	कस्तूरिकामृगाध्यास	३७	किं च भो विषयास्वाद	१५१
करवाल करालाग्रम	२०१	कस्मिचित्सुकृतावासे	२५९	किं तरां स विज्ञानाति	१५७
करवालान् करे कृत्वा	१०२	कस्यचित् कोशत खड्गम	४९०	किं बलबलिना गम्य	१६१
कराग्रविधृत खड्ग	२०१	कस्यचित् क्रोधसंहार	४०९	किं भव्य किमभय्योऽय	४६४
करागुली विनिक्षिप्य	४७४	कस्याप्यकालचक्रेण	१५२	किं भूमिगीचरेष्वस्या	३७०
करिकण्ठस्फुटोद्घोष	३९२	काश्चित् सम्मानधानाम्भाम्	९२	किं वदती विदित्वताम	३९३
करिणी नोभिरस्वीय	१३१	काश्चिदाक्रोकोर्न काचित्	३२६	किं वा सुरभट्टरेभि	१५७
करिणो हरिणाराती	२१५	काश्चिदुगुर्गयितान् म्लेच्छान्	१०९	किं विणीकृतसकार	३७९
करिण्यो विसिनीपत्र	२१५	काकिणीमणिरत्नाभ्याम्	११३	किञ्चिच्चान्तरमुल्लभ्य	१०७
करिष्यामीति कोपेन	४६८	काकिणीरत्नमादाय	१२५	किञ्चिच्चान्तरमुल्लभ्य	१३६
करीरकण्ठराहड	३२२	कार्करलूकसम्बाध	३२२	किञ्चित् पदचामुख गत्वा	११२
करी इमारनिभुज	३२२	काचिदुत्तापिभिर्वाणि	१९१	किञ्चिदतरमारुह्य	१३४
करीरवणसंरुद्ध	८७	काचिज्जरावती कुत्स्य	४८५	किञ्चिदेकं वृणीते	३७७
करैरक्षिप्य पद्यानि	७५	काञ्चीस्थान तदालोच्य	३६५	किञ्चिमात्राविशिष्टायाम्	२५८
करैरिपधसलर्ग	१८७	कान्तारत्नमभूत्तस्य	२२८	किन्तु प्रजान्तर स्थन	३१५
कणतामानिलाधूति	१८६	काते जमान्तरावासम्	४४७	किन्तु सोऽयं जयस्तहात्	३९१
कर्णाटवान् स्फुटाटाप	७०	कान्त तस्यान्यदप्यस्ति	४८०	किन्नराणां कलक्वाण	१५

कृत्वैवमात्मसंस्कार	२५५	क्रात्वा स्वस्थोऽधिता भूमिम्	२५१	क्षण रथांगसषट्पात्	४५
कृत्स्नकममलापायात्	२८८	क्रियाकलापेनोक्तेन	२७४	क्षण समरसषट्	१८५
कृत्स्नामिति प्रसाध्यनाम्	१२८	क्रियाकल्पोऽप्रमाम्नातो	२४५	क्षणमस्नाचलप्रस्त	१८९
केचिच्चमूचरस्थाने	२५८	क्रियागर्भादिका यास्ता	२७१	क्षतात् त्रायत इत्यासीत्	१८९
केचित् काम्बोजवाह्लीक	९२	क्रियाद्यनिवृत्तिर्नाम	२६७	क्षतीव-यभदन्तानाम्	१४
केचित् कोत्यगनासग	१९२	क्रियामत्रविहीनास्तु	३१५	क्षतरनुपलब्ध्यांग	४१९
केचित् कृतधियो धीरा	१०८	क्रियामत्रानुपगण	३१५	क्षत्रियाणां कुलाम्नाय	३३१
केचित् परिजनस्थान	२५८	क्रियामत्रास्त एते	३००	क्षत्रियास्तोऽथमुत्पाद्य	३३४
केचित् सौराष्ट्रिकर्नाग	९१	क्रियामत्रास्त्वह जया	३१५	क्षत्रियो यस्त्वनात्मज्ञ	३४२
केचित् बलरथष्टया	१ ९	क्रियाशेषास्तु नि शेषा	२७६	क्षमामथोत्तमां भजे	२१४
केचिद् रणरसासक्त	१९३	क्रियोपनीतिर्नामास्य	२४८	क्षायिकानन्तवीर्यश्च	३३९
केचिन्नतमिवातेन	९६	क्रोधाति शकुनादीनाम्	३४५	क्षितिसार इति ह्यात	२३३
केतवो हरिवस्त्राब्ज	१३९	क्रोताश्च वृत्तिमूल्यन	३४३	क्षीबकुजरयोगेऽपि	८८
केन मोक्ष कथं जीयम	४६४	क्रोडनासक्तकान्तामि	३७३	क्षीरप्लवमयी कत्स्ना	५
केनाप्यविदितो राजावव	४९६	क्रोडभानाप्रकारण	४४८	क्षीरवक्षोपगास्त्रामि	३०६
केरलीकठिनोत्तुग	३७७	क्षीबाहेतोरहिंस्रऽपि	१३४	क्षीरस्थतो निजान वत्सान	९
केवलारूप पर उयाति	१४२	क्रद्धा ख खचराधीशा	३९६	क्षीराज्यममुत पूर्त	३०५
केवलार्कोद्वृते नाय	३१७	क्रोधं तितिक्षया मानम	२१३	क्षुध पिपासा शीतोष्ण	२१०
केवलार्कोदयात् प्राक् च	२१७	क्रोधान्वतमसे मग्नम	१५७	क्षुधामिधातोऽञ्चलित	३६
केशवापस्तु केशाना	२४८	क्रोधान्वेन तदा दध्य	२०५	क्षुभितत्वं च संक्षोभ	३३९
केपाचित पत्रनिर्मोक्षम्	६४	क्लिष्टाचारा पर नैव	२८१	क्षेत्र निष्पादयत्यकम्	४४८
कलासाचक्रमग्नयम	१३२	क्वचिच्छुकमुखाकृष्ट	१७५	क्षत्रज्ञाऽऽप्ता सभाकीर्ति	२८४
क्वचिद् क्षीरभन्मवि	१९२	क्वचिच्छ्रुतिपटोद्भेद	४४	क्षत्रवास्तुसमुत्सर्गात्	२८६
कोककान्तानुरागण	१९३	क्वचित् किन्नरसम्भोग्य	१३२	क्षेत्रेणति तयोरेषे	४९३
कोकिलानकनि स्वर्न	२१	क्वचित् सिसोपलोत्सग	१३३	क्षेमकतानता भेजु	२२२
कोकिलालापमधुर	८४	क्वचित् स्फुटितशुभितमौक्तिक	५१	क्षोभांशुकदुकूलश्च	९२
कोटयोऽष्टादशाश्वानाम	२२३	क्वचिदुत्फुल्लमन्दार	१३३		
कोटयोऽष्टादशास्य	९६	क्वचिद् गजमदामोद	१३३	क्ष्ण	
कोटीशतसहस्र स्याद्	२२६	क्वचिद् गुहान्तराद् गुरूज	१३३	क्षणा क्षणान् प्रति प्रास्ता	४००
को नाम मतिमानीप्सेद्	२०६	क्वचिद् वनान्तसमुप	१३३	क्षणाद्रे पूर्वदिग्भागे	४८५
कोपदष्टविमुक्तीष्टम	४१६	क्वचिद्विरलनीलाशु	१३२	क्षचरादिरलध्योऽपि	१२६
कोऽयं प्रभुरवष्टम्भी	११६	क्वचिन्निर्गुजसमुपान्	१३३	क्षण्डनादेव क्रान्ताना	४१५
कोशयकनिशाताग्र	२०१	क्वचिमहोपलच्छाया	४४	क्षण्डिताना तथा तापी	४१५
कोपोनाच्छादन जनम	३१०	क्वचिमृगेऽभिष्टेभ	८९	क्षद्वयस्तुल्यपक्षोऽ	५०३
कोवरीमथ निर्जेतुम्	९६	क्वचिक्लतागुहान्त स्थ	११	क्षपक्षसप्तवारीशि	५०३
कोवरो दिशमास्थाय	११५	क्वचिक्लताप्रसूनेपु	११	क्षमूचरशरेच्छन	४०१
कोसुमं यनुरादाय	३७८	क्वचिद् विस्लिष्टशलेय	१३३	क्षमुन्मणितिरीटाशु	५०
क्रमाभुनीनिष्क्रान्ति	३०७	क्व ते गुणा गणद्राणाम	१४२	क्षर प्रणयगर्भेषु	२३५
क्रमण कृद्धमाण	४५	क्व रटवमिदमित्याकृत	४६०	क्षलूपेक्ष्य लघीमा	१५३
क्रमण दगान् सिधूच	१७४	क्व वयं क्षुद्रका देवा	१०५	क्षुरोद्धूतान् महीरेणून्	९६
क्रमेलकोऽयमुत्प्रस्त	२८	क्व वयं जितजतव्या	१५६	क्ष	
क्रय्यामपायिन पत्राहिनी	३९७	क्वासी रतिवरोऽञ्चति	४६६	गगातटवनोपात	१२७

घनावली कृशा पाण्डु	३	चतुर थावकज्यष्ठ	२७५	चलदशवीयकल्लोल	३०
घातिकमक्षयोद्भूताम्	२१८	चतुस्त रयाऽशीत्या	५०३	चलद्विरिखुरोद्घट्ट	३९२
घातिकमत्रय हत्वा	५००	चतुजनपदाम्यन्तरस्थ	४९०	चलद्विरचलोदग्र	४१
घातिकममलापायात्	१८२	चतुर्ज्ञानिमलज्योति	५०३	चलिते चकित पूर्वं	६२
घ		चतुर्णामाश्रमाणा च	२८३	चातका वाऽन्वष्टया	३७८
चक्र तदधना कस्मात्	१५२	चतुर्धामिरन्विताम्	१६	चापमाकणमाकुल्य	४०१
चक्रं नाम पर दक्षम्	१५३	चतुर्भिरधिकाशोति	२२३	चामराणि तवामूनि	१४४
चक्रध्वज समुत्थाय	३९३	चतुर्भिरधिकाशोतिरिति	३५७	चामराण्युपमानाम्	२३४
चक्रभृद् भरत सष्टु	२०८	चतुर्भेदेऽपि बोधोऽस्य	२१३	चामरवीज्यमानोऽपि	२२२
चक्रमस्य उवलद्वयोन्मि	१०	चतुष्केषु च रथ्यासु	१	चामरोत्क्षेपताम्बुलान्	३२७
चक्रमाक्रा तदिवचक्रम्	१५२	चतुष्टयी वनद्येणोम	३१८	चारणत्व ततोय च	४६१
चक्ररत्न पुरोधाय	२६१	चतुष्पदादिमिस्तिथय	५०४	चारणाभ्युपितानि	१३५
चक्ररत्नप्रतिस्पर्द्धि	८	चन्द्राद्रवससिक्त	१५१	चारुचक्रधरस्यायम्	१८३
चक्ररत्नममूर्जिज्जणो	२३५	चन्दनद्रवससिक्तसु दराङ्ग	२३१	चिता सिता समा स्निग्धा	३६६
चक्रसामो भवदस्य	२६०	चन्दनद्रवसिवताग्य	१९०	चित्तद्रुमस्य चद् वृद्धि	४९९
चक्रवाकयुवा भेजे	२६	चन्दनागुरुकपूर	५०७	चित्र जगत्त्रयस्यास्य	३८२
चक्रवाकी धतोत्कण्डम्	१८८	चन्दनोद्यानमाभूय	८४	चित्र महेन्द्रदत्ताख्यो	३७८
चक्रवाकी सरस्तीरे	२०	चन्द्रग्रहणमानोक्य	४९४	चित्र प्रतोलीप्राकार	३७१
चक्रवाकीमनस्ताप	१८८	चन्द्रपादास्तपन्तोव	१९१	चित्रवर्णा घनाबद्ध	३
चक्रभ्यूहविभक्तात्म	३९६	चन्द्रमा करनालीमि	४१४	चित्ररत्नकुटी रत्न	१२२
चक्रसष्टसंपिष्ट	४०४	चन्द्रे तीव्रकरोत्सन्ना	३६७	चितामपास्य गुरुशोककृताम्	५१२
चक्रसन्दर्शनादेव	९१	चमरीनालकान् केचित्	३७	चिर निरीक्ष्य निर्विण्णा	४५१
चक्रातपत्रदण्डासि	२२८	चमरीनालकानिद्ध	३७	चिर वदस्व वद्विण्णो	१२७
चक्रात्मना उवलत्येष	१०६	चमरोऽय चमुरोधात्	२४	चिरमाकलयन्नेवम्	२०८
चक्रानुयायि तद् भेजे	१०	चमूपतिरयोऽप्यार्यो	२३५	चिराच्चक्रधरस्याद्य	१७७
चक्राभिषेक इत्येक	२६२	चमूमतङ्गजा रेजु	२००	चिरात् पर्यायमासाद्य	४०४
चक्राभिषेकसाम्राय	२४४	चमुरवधवादेव	६३	चिरात् समरसमद	१८५
चक्रायुधोऽयमरिचक्रभय	६०	चमुरवधवोद्भूत	९८	चिरानुभूतमप्यवम्	३१
चक्रासिदण्डरत्नानि	२२८	चम्पका विकसन्तोऽय	२१	चिरासनर्गपि तत्रास्म	१०१
चक्रिणश्चक्रमेवम्	४१	चरणालम्बमाकपन्	७५	चटव्या प्रियदत्ताया	४६८
चक्रिणा ज्ञापितो भूय	११३	चरणोचितमन्यच्च	२४९	चेतासि तरणाङ्गोप	७
चक्रिणोऽनतर कोऽय	१०३	चरन्ति वनमानुष्या	२०७	चेदिपक्षतमुल्लङ्घ्य	६७
चक्रित्व चरमाङ्गत्वम्	४९	चरमाङ्गधरो धीर	१२५	चत्यचत्यालयादीनां	२४२
चक्रिभूतो पुन सेना	४११	चरमाङ्गधरावती	२०३	चत्यचत्यालयादीनां	३२५
चक्रौ सुतेषु राज्यस्य	४११	चमरत्न स्फुरद्भक्तवृत्तिक	४९२	चोदनालक्षण धर्म	२८१
चक्रोत्पत्तिक्षणे भद्र	५०	चर्मा तु देवतार्थं वा	२८८	चोलिकाशालिकप्रायान्	७०
चक्रुच्चा भृशालमुद्धृत्य	१	चर्मेपा गृहिणा प्रोक्ता	२८३	चौलकमण्यथो भव	३०९
चट्टलोऽज्जलपाठीन	४२९	चलच्छासीचलत्सत्त्व	८६	चौलाख्यया प्रतीत्यम्	२४८
चण्डा कोदण्डकृन्तासि	३९३	चलता रथचक्राणा	१३१	व्यवन्ते स्वस्थिते कलि	३८८
चण्डाकाण्डाचनिप्रख्य	२३४	चलत्प्रकीर्णकाकीण	१४०	छ	
चण्डरक्षणमृत्युञ्ज	४००	चलत्सर्वो मुद्गराभ	८६	छत्र चक्रपहासि हचिरे	११२
चतस्रचटिकास्त्रासाम्	४७७	चलत्सितपताकाणि	४०७	छत्रत्रयकृतच्छाय	१४०

जित्वा मेघकुमारक्यान् ३८२	ज्वलत्प्रताप सौम्योऽपि ३६२	तत कतिपर्यरेव १५१
जित्वा म्लेच्छनृपा विजित्य १३०	ज्वलत्यव स तैजस्वी १७३	तत कतिपर्यरेव प्रयाण ४४०
जिनमतविहित पुराणधर्मम् २८८	ज्वलत्पौषधिजालेऽपि १३६	तत कलिमुगऽम्बर्षे ३२०
जिनविहितमनन सस्मरन् ३२९	ज्वलदधि कराल धो १५४	तत किञ्चित् स्थलद्वयो १२५
जिनाज्ञानुगता शश्वत १६८	ज्वलद्वाधपरोतानि ८८	तत किञ्चित् पुरो गच्छन् १३८
जिनानुस्मरण तस्य ३२६	ज्वलन्तपौषधयो यस्य ८९	तत कुमारकालेऽस्य २६०
जिनार्चाभिमुख सूरि २७२	ज्वलन्मुकुटभाचक्रा २०५	तत कुतूहलाद् बाधिम ५०
जिनालये शची रङ्गे २७२	त ८६	तत कृतमय भूयो १८६
जिन-द्रव्यमन मक्ता ४६१	त कृष्णगिरिमुल्लङ्घय ८६	तत कृतमुगस्यास्य ३१७
जिन-द्रास्त्रसज्जन्मा २७८	त नत्वा परम ज्योति २४०	तत कृताथमात्मानम् २५१
जिनप भक्तिमातन्त्रम् ३२५	त निरीक्ष्य मितमर्ता ३७२	तत कृतोद्विजयो २६४
जीयादरानिह भवानिति ५९	त परीत्य विशुद्धोऽह ३७१	तत कृतोपवासस्य २७२
जीवाजीवविभागज्ञा १६७	त पुरातनरूपेण ४८४	तत क्षणमिव स्थित्वा ३१८
जीवादिसप्तके तत्त्व ५०४	त रूप्याद्रिगह्वार १०७	तत क्षात्रमिम धर्मम ३६५
जीवति न दत्तु भवानिति ५९	त लौहित्यसमुद्र च ६७	तत क्षेपीय एवासी ३१८
जनास्तु पाणिवास्तपाम् ३३३	त वीक्ष्य धूमवेगात् ४८८	तत पञ्चवतमस्कार २७२
जैनीमित्रा वितन्वन् ३४९	त शासनहर जिष्णो १७७	तत पर नियन्त्रास्य २४७
जनक्षरो परामाज्ञाम २८७	त शल भुवनस्यैकम् १२४	तत पर प्रधानत्वम् ३३८
जनोपासकदीक्षा स्थात् २७४	त सहस्रसहस्राशु ४२०	तत परमजाताय २९१
पातप्राग्भवसवन्धा ४६०	त इमे कालपयन्ते ३२१	तत परमजाताय २९१
पातव्या स्यु प्रपञ्चन २८३	तच्चक्रमरिचक्रस्य ६२	तत परमरूपाय २९९
पातिव्याजनिगूढान्त १७३	तच्चेद कुलमध्यात्म ३३१	तत परमवीर्याय पदम २९९
पातधर्मकथा सम्यक् १६३	तच्छासनहरा गत्वा १५५	तत परमाहिताय स्वाहा २९७
पात्वा तदाशु तद्बन्धु ३७१	तच्छिञ्चित्रयसानिधौ ५०८	तत परम्परैर्नाम स्वाहा २९७
पात्वा समागत जिष्णु ११९	तच्छुद्धपशुद्धी बोद्धव्य २८२	तत पराथसम्पत्त्यै २६७
पात्वा संभाव्यगौर्योऽपि ३८९	तच्छेपादिप्रहे क्षीय ३३२	तत पयन्तविन्यस्त ३०
पात्वा सूत्रकृत सूक्तम् १६३	तच्छेपाशीवच ३३२	तत पुण्योदयोद्भूताय २३७
ज्ञानञ स तु संस्कार २७७	तच्छीय यत्परामूर्ते ४२०	तत पूजाङ्गतामस्य ३०१
ज्ञानध्यानसमामोहो २६६	तच्छ्रुत्वा नवभूता नो ४६६	तत पूज्यदेवाय २७६
ज्ञानमूर्तिपत् तद्वत् २९४	तच्छ्रुत्वा पुनरप्याम्या ४७०	तत प्रचलिता सेना ३४
ज्ञानविज्ञानसपद २५४	तच्छ्रुत्वा साऽप्रवीदेवम् ४८६	तत प्रतीतभूपालपुत्रा ३६९
ज्ञानशुद्ध्या तप क्षुद्धि २१३	तज्जल जलदोद्गीण ११७	तत प्रतीतमागत्य १०१
पानोद्योताय पूर्व च २९१	तज्जातो चक्रिणो देवी ४८१	तत प्रभृत्यग्नीष्ट हि २४७
नेय पुरुषदृष्टान्तो ३३५	तज्जात्वा भलिता पुत्र ४७०	तत प्रयाणक कैश्चिद् ११३
प्येष्ट प्रणम्य इत्येतत् १८२	तदतिशयरसपाते १३२	तत प्रविश्य साकेत ३२३
उपट्टे म्यायगत याम्ये ४९७	तदगुप्ताधिपासय ४५१	तत प्रसन्नगम्भीर १५३
उत्प्रेतिजनिमय २५०	तदस्थपुटपापाण ८८	तत प्रसेदुषी तस्य ४९
उद्योतिर्वेगायुव प्रीत्या ४८२	तदाभोगा विभात्यस्य १२२	तत प्राची दिश जेतुम् १०
उद्योत्पन्नाकीर्तिमिवातचन् ४	तत वञ्चुकिनिर्देशाद् ३७९	तत प्राविशदुत्तुङ्ग ३१८
योनादुत्पलवमना ४	तत कतिपर्ये देवा १५१	तत प्रास्थानिकं पुण्य ८
उद्योत्पन्नाय दुर्बले च ७	तत कतिपर्यरेव ३९	तत श्रेष्ठिगृह याता ४९६
उद्योत्पन्नासलिनमभूता ४	तत कतिपर्यरेव ११५	तत श्रेयोऽर्थनाय श्रेयम् २७०

तत्प्रतिष्ठासिपेकान्ते	३६८	तत्रापि पूर्ववन्मन्त्र	२४६	तथाऽयमात्मरक्षायाम्	३६४
तत्प्रश्नावसितावित्थम	३२०	तत्रापि विदितदेश	४९०	तथा योग समाधाय	२५७
तत्प्राप्य सिंधुर रुक्मा	४३५	तत्राप्युक्तो विधिः पूव	२४६	तथा रतिवर पुष्ट	४५३
तत्कले सम्मर्नि मुक्त्वा	३२२	तत्रामयन् प्रजापाल	४४७	तथा लब्धात्मलाभस्य	२८०
तत्कथेनायते कल्पे	४७७	तत्रामोघ शर दिव्यम्	११९	तथा विसर्जितप्राण	३४२
तत्सम्यमेव मत्तोऽग्राम्	४६७	तत्रारोप्य भर कृत्स्नम्	२५५	तथाऽमावयशास्त्रार्थे	३२८
तत्समावर्तिनामत्	४५३	तत्राचनाविधौ चक्रवर्गम्	२४५	तथाऽय दृढवर्ग स्यात्	२७३
तत्पभीप नृपेणामा	४५०	तत्राहती मिषा भिक्षाम्	२८०	तथा स्वधवरस्यमे	४२९
तत्सभूती समद्भूतम्	३२९	तत्रावतारसज्ञा स्यात्	२६९	तथताराश्च संमाय	४२७
तत्सिद्धकूटपजाय कान्ता	४८७	तत्रावासितसाधनो निविपति ७९		तथदमपि भन्तव्यम्	३२१
तत्सोपानन हृष्याद्र	१०७	तत्रावासितसर्ग च	१२८	तथव चक्रचोत्कार	४५
तत्स्वप्नदशनात् किञ्चित्	३१७	तत्राविष्कृतमङ्गले	३१	तथव नृपतिमालम्	३४३
तत्र करोपर्यन्तव	१४०	तत्रासीनमपायन	३२	तथद्विचक्रवर्गसक्ति	३३५
तत्र कश्चित् समागत्य	४९०	तत्रासीनश्च तशोध्य	१०९	तथद्विचक्रवर्गसक्ति	३३५
तत्र काचित् प्रिय वीक्ष्य	४१६	तत्रास्य नृपशाङ्गल	२२१	तथद्विचक्रवर्गसक्ति	२३६
तत्र किन्नरमारोगाम्	१३८	तत्राष्टा गात्रिकावधौ	२४६	तथव पृथिवीपालो	३४४
तत्र क्षणमिवासीन	२६१	तत्राकस्य विचक्रवर्गसक्ति	४४५	तथव सत्कृता विश्वे	२२१
तत्र चत्पद्ममास्तुङ्गान्	१३८	तत्राक्षयकविज्ञान	३३५	तथोक्त्वा कान्तवृत्तात्तम	४६८
तत्र तं सुचिर स्तुत्वा	४९२	तत्राक्षयसुखी	३३५	तथाऽयु स्वस्य सन्नुष्टा	३२१
तत्र नित्यमहो नाम	२४२	तत्रव दुहिता जाता	४५५	तन्तोत्य सम सन्य	३०
तत्र पक्षो हि जमानाम्	२८२	तत्रव विद्याया सौधगेहम्	४८२	तदन कारण चिन्त्यम्	१५३
तत्र पश्यन् सुरस्त्रीणाम्	१३९	तत्रवागत्य सार्थेशो	४५५	तदत्र गुरुपात्रज्ञा	१५९
तत्र बभूवनादय	२४७	तत्रवाभौष्टमावजय	३६२	तदत्र प्रतिकतभ्यम्	१५५
तत्र भद्रासन दिव्यम्	११९	तत्रोर्ध्वरश्चरदृष्टाना	१२६	तदत्र भगवद्वचन	३१७
तत्र बारविलासिन्यो	३२७	तत्रोदधौपितमङ्गल	५९	तन्म्युष्य जडो जन्तुस्तप्य	४४२
तत्र वास्तुवशादस्य	३८	तत्रोपनयनिकांतिभागी	३७	तदन्तर्गतमि शेष	१६३
तत्र शय्यासन सुप्त्वा	४८८	तत्रोपायनसपत्या	३२७	तन्माय च वध्यत्वम्	३१३
तत्र संस्कारजभद	२८०	तथा गृहाभ्रमस्थाश्च	५०५	तदभावे स्वमन्यावच	३१३
तत्र सञ्जातिरित्याद्या	२७७	तथा चिर विहृत्यात्संप्रोति	५०२	तदल देव सरस्य	४९
तत्र सम्यक्त्वशुद्ध्यान्	४९४	तथात्माऽतिशमोऽप्यस्य	३३४	तदल स्पृष्ट्या दध्मम	१६१
तत्र सवसमृद्धाख्यो	४९५	तथाऽतीन्द्रियदृग्मार्थी	३३६	तदलमधिपकाल	१९८
तत्र सूत्रपदायाहु	२८४	तथाष्वाजन् महाधोपा	२२१	तदस्य दधिमातेन	८
तत्राकामवृत्त शब्दि	२८२	तथा नृपोऽपि सद्योग	३४४	तदाकण्य गृहत्यागम्	४७५
तत्रागस्य कुमारोऽपि	४२८	तथा नृपोऽपि सन्ये स्व	३४४	तदाकण्य जवोऽध्याह्न	४७२
तत्रातिवाञ्छाविद्याया	३१२	तथाऽन्तर्दृष्टशाङ्गात्	१६३	तदाकण्य भहीक्षस्य	४५७
तत्रापी तावदुन्नय	२९	तथा पादावतद्वन्द्यम्	४४६	तदाकण्य विधुयैनम्	४५१
तत्रापी सत्यजाताय	२९	तत्रापि त्वकृतीऽग्रामु	१५४	तदा कलकलश्चक्रे	२०५
तत्राधिवासितानोऽङ्ग		तत्रापि बहुचित्तस्य	३२६	तदा कालानुभावन	३२४
तत्रानच मुना चक्री		तथाप्यस्त्यव जस्य	१५४	तथा कुवरमित्रस्य	४५२
तत्रापरान्तक		तथाप्यस्त्यव जस्य	४१	तदा कृत्वा महदुदु क्षम्	४५६
तत्रापश्यन्		तथाप्यस्त्यव जस्य	३४६	तदा क्षमभवावास	५००

तमालवनवीथीपु	८४	तस्मादय गुणमस्माद्	३१४	ता यनन्योपलम्भानि	१०७
तमासिपविर मन्म	७१	तस्माद् रसदतीक्ष्णानीन्	२६४	तान् सम्पूज्य विसर्ज्यामूद्	३७०
तमित्यद्भुतया लक्ष्म्या	१३३	तस्माद्धर्मैकतान सन्	३४१	तान् स्वयंवरशालाधाम	३७४
तमित्यद्भुतया लक्ष्म्या	१३३	तस्माद्भास्माभिराक्रान्तम्	२४१	ताभ्यां तत्रैव सा रात्रि	४१३
तमित्यालोकयन् दूरात्	१७७	तस्मिन् दिने प्रविष्टस्य	३१०	तामाक्रान्तहरिमुखात्	१७
तमिस्रति गुह्यासी	११२	तस्मिन्मध्यस्थानम्	४९४	तामालीक्य बल जिष्णो	११३
तमच्चवत्तिमाक्रान्त	१२१	तस्मिन् नष्टे पद्मे	२७२	तामुत्तीय जनक्षीमाद्	९०
तमूष्यमूकमाश्रम्य	६७	तस्मिन् नव भय शयत्	३४२	ताम्बूलरसससर्गात्	३७५
तमङ्गमक्षर ध्यात्वा	३५२	तस्मिन्नेवोत्तरधेण्याम्	४५९	तारकाकुमुदाकीर्णे	४
तमेकपाण्डर शलम्	१२४	तस्मिन् पीडपसाध्यऽपि	३८	तारालितरलस्थूल	२६१
तमेन धमसाद्भूतम्	२७८	तस्मिन् धने वसन्	३५९	तारुण्यशाली वृषम	३२०
तमोऽग्निगजमेधादिविद्या	४१०	तस्म कया गृहाणति	४२९	तावच्च परचक्रेण	११६
तमो दूर बिधूयाऽपि	१८९	तस्य पूजा विधातव्या	४५१	तावच्च मन्त्रिणो मुख्या	२०३
तमो निवशेपमुदय	१८९	तस्य मेऽयक्षस कीर्ते	३९२	तावच्च सुधियो धीरा	११६
तमोबलान प्रदीपादिप्रकाशा	४१४	तस्य राज्ञश्च ता सर्वा	५००	तावत्प्रभा भय तावत्	४३२
तमोऽगुण्डिता रेज	१८८	तस्य लक्ष्मीमनाक्षिप्य	३५८	तावदासीद् दिनारम्भो	१९३
तमो विधूय दूरण	१८९	तस्य वक्ष स्थले तत्र	४७४	तावद्वपितनिर्घोषे	४०२
तमोविमोहित विस्वम्	४१४	तस्य स्वयंप्रभादेव्याम्	४५९	तावद्भिर्वादिभिर्वन्द्यो	५०३
तयो कुमार धीपाल	४८०	तस्या तन्मायवशाय	३६४	तावत्येव सहस्राणि	२२३
तयो सुता भोगवती	४८३	तस्याखिला क्रियारम्भा	३२६	तावन्मेषु कपोतो न	४५८
तयोरह तनुजास्मि	४८५	तस्या दक्षिणतोऽप्यस्यद्	९०	तावानेतुं कुमारोऽपि	४८३
तयोरारात् तटे पश्यन्	११४	तस्यापरस्मिन् दिग्भागे	५०७	तावाग्निजनिश्शेष	१२९
तयोरारात् तटे सन्यम्	११४	तस्यामसत्या मुखात्मा	३१२	तावुभौ ब्रह्मलोकान्ते	४५२
तयोजमान्तरस्नह	४६	तस्या लालाटिको नैक	३६६	तावच्च क्रियास्त्रिधाऽम्नाता	२४४
तयोजमान्तरास्मीय	४४६	तस्या विनीलविस्रस्त	२३०	ताश्च तच्चित्तहारिण्य	२२५
तयोजधीऽभवत्	३५८	तस्यासिपुत्रिका वीघ्रा	२३५	ताश्च तासा तदा वाकुली	४८७
तयोर्विद्युत्प्रभा पुत्री	५०१	तस्यासीत् सुप्रभा देवी	३६३	तासां किमुच्यते कोप	३६१
तयोस्तुक स्रवदमित	४९५	तस्यास्तु मेदसस्थानम्	२६९	तासां भुवकरस्यर्षो	२२५
तरङ्गात्यस्तोऽमम्	५८	तस्येष्टमूढ लिङ्ग च	२४९	तासामकृतकस्नेह	१९३
तरङ्गिततनुं बुद्धम्	४१	तस्योक्तदोषसंस्पर्शो	३३६	तासामालापसलाप	३२७
तरङ्गितपयोवगाम्	९०	ता काण्डकप्रपाताख्याम्	१२९	तास्तु कत्रन्वया ज्ञेया	२४५
तरङ्गधवलीभूत	१०	ता तस्य वतिरनुवत्तयति स्म	४४५	तास्त्रिकाल समम्यन्त्य	५०८
तरत्तिमिवलेवर	५६	ता पश्यन्नवयस्ताश्च	१३९	तिथ्यादिपञ्चमि शुद्ध	४४१
तरत्त मकराकारम्	४३८	तां मनोजरसस्येव	१२९	तिमिरकरिणा यूथम्	१९५
तरस्विमिवपुर्मधा	९२	ता लक्ष्मीमक्षया मत्वा	३७५	तिरीट स्फुटरलाशु	२६१
तरुणस्य वृषस्योच्च	३२३	ता विलोक्य महीपालो	३६९	तिरीटमुद्बहन् वीघ्रम्	२५७
तरुणाद्यामसवन	३०	ता ययन्ते गुणान्नव	३६१	तिरीटशिसरोदधौ	९९
तस्मादुत्थितमानोऽग्नौ	३२६	ता सम्पदस्तदस्वयम्	१७९	तिरीटोऽप्रमुषसी	७
तत्र वक्ष स्थलाऽप्याद्	५०	तावत्स्थगुणद्वै	३४०	तियगोष्कणपापाण	४०२
तमादेवाविधानन	४२९	तानेकश्च शत चाष्टी	१३९	तियङ्मण्डलगत्यैव	१८७
तस्मान्ते कुरम्येष्ट्या	२४७	तान् प्रजानुग्रहे नित्यम्	२६३	तिलोऽस्य वज्रकोटय स्यु	२२६
तस्मान्बध्यतामप	३१३	तान् प्राहुरक्षरम्लेच्छा	३४६	तीक्ष्णदण्डो हि नृपति	३४३

दधञ्चाक्रवरो वृत्तिम	१८४	दीक्षा जैर्नो प्रपन्नस्य	२७९	दुष्टिवादेन निर्जात-	१६३
दधतीरातपकलान्त	१७५	दीक्षा रक्षा गुणामृत्या	१६१	दुष्टोनामप्यगम्येऽस्मिन्	२३
दधद्दण्डाभिधातोत्यम्	१०७	दीक्षाबल्ल्या परिष्वक्त	२०९	दृष्ट्वा कदाचिद् गांधारी	४६७
दधद्दीरतमा दधिम्	२०४	दीपिकायामिश्रामुष्णाम	२१५	दृष्ट्वा तत्कमलस्थान्ते	४८६
दधानं सुलिताशेष	१७६	दीपिका रचिता रज्जु	१८९	दृष्ट्वा तत्साहस वक्तुम्	४८५
दधानं स्कन्धपयन्त	२१०	दीप्र प्रकीणकृन्नात	२६२	दृष्ट्वाऽथ त महाभाग	४९
दधानास्ते तपस्तापम	१६५	दीयना कृतपुण्याय	३७०	दृष्ट्वा विमोच्य राजानम	४५२
दन्तकाष्ठग्रहो नास्य	२४९	दीघदोर्धतनिधात	२०७	दृष्ट्वा पडराजकयास्ता	४८१
दन्तितागऋप्रातोद्	१८६	दुःखो सुखो सुखी दुःखी	४४२	दृष्ट्वा हरिवरस्तस्मात्तोत्वा	४८७
दधितान्तकुबराख्यो	४६७	दुनोति नो भृश दूत	१८४	दृष्ट्वेवाकृष्टहरिणाम्	१८९
दधोद्विरा खुरोत्खात	५	दुन्दुभिध्वनिते मद्रम	२५९	देयमयत् स्वतन्त्रण	१८५
दर्भास्तिरणसबध	२९०	दुराचारनिपेधेन जयम्	३९२	देयान्यणुग्रतायस्म	३१०
दशयन्ती समीपस्थाम	४८२	दुर्गाटवीसहस्राणि	२२७	देवताप्रतिपिपिन्ननि	२७९
दशम्या सिद्धकूटाग्रे	४६०	दुद्धरोक्तपोमार	४८४	देवताप्रमितालक्ष्ये	४८०
दशाङ्गमिति भोगाङ्गम्	२३३	दुर्निरोक्ष्य करैस्तोक्ष्य	४१३	देव त्वाभनुवतन्ताम्	१५५
दशाधिकारास्तस्योक्ता	३११	दुमस्त्रे कृपिते भोत्वा	४५५	देवदामवगधव	३१९
दशाधिकारि वास्तूनि	३१२	दुम्वरच दुरन्तेऽस्मिन्	३४२	देवदिविजयस्याढम्	१००
दशाणकन्नोद्भूतानपि	६६	दुर्विगाहा महाप्राहा	३५	देव दीप्र शर कोऽपि	४६
दशाणानि कामरूपाश्च	६६	दुष्टा हिंसादिनैपयु	३४८	देवभूम गता येष्टि-	४५७
दातु समुद्रदत्तस्य	४७१	दुस्तरा सुतरा जाता	६८	देवश्रीरनुजायेष्टि-	४९५
दान पूजा च शीलं च	३२५	दुस्सह तपसि धेयो	४९७	देवस्यानुधरो देव	४२८
दानिनो मानिनस्तुङ्गा	४०८	दूत तातविहीर्णा नो	१८५	देवानां प्रिय देवत्वम	१०५
दिवस्वस्तिका सभाभूमि	२३३	दूत नो दूयते चित्तम	१८२	देवान्तसत्य सत्मान्तदेवो	३५७
दिग्गङ्गनाधनापाय	४	दूत सात्कृत्समाना	१५८	देवीपुपवरन्तीपु	२५९
दिगन्तरभ्यो यावत्स्य	३४०	दूरपाताय नो किञ्चु	४००	देवोऽयमक्षततनुविजितान्धि	५९
दिग्गये यस्य सन्त्यानि	१२६	दूरमद्य प्रयातभ्यम्	३४	देवनान यसामान्यमाननाम	४३७
दिव्य प्रभावर्य कोऽपि	१०५	दूरमुत्सारिता सम्यै	८२	देवोऽयमम्बुषिमगाधमलहस्य	५९
दिव्यभाषा तवाशेष	१४५	दूरादेव जिनास्मान	३१८	देव्य कनकमालाद्या	४५०
दिव्यमूर्तेरुदुत्पद्य	३३२	दूरादेवावरुह्यात्म	४२१	देसाध्यक्षा बलाध्यक्ष	१०१
दिव्यमूर्तेजिनद्रस्य	२८१	दूराद् दूष्यकृटीभेदाद्	२९	देशेऽपि कारयत् कृत्स्न	३४६
दिव्यरत्नविनिर्माण	२२३	दूरानतचलम्भीलि	१०१	देहभ्युत्तो यदि गुरोमुद	५११
दिव्यरूपं समादाय	४६९	दूरानतचलमौलि	११०	देहवासो भय नास्य	४६३
दिव्यसंगीतवादित्र	२५७	दूरानतचलमौलि	१४१	देहान्तरपरिप्राप्ति	२८०
दिव्यसिंहासनपदाद्	३०७	दूयिता कटकरेणाम्	२०९	देवमानुषबाधाभ्य	३८८
दिव्याभुभावसंभूत	२५७	दुग्धबीजित सान्त	१९३	दोदर्य विगमय्यास्य	२०३
दिग्वाभरणभेदानाम	२२७	दुग्धविलासा शरास्तासाम्	२२४	दीर्घलिभ्रातृसमवात्	२२२
दिग्वास्त्रदेवताश्चाम्	२६३	दुग्धतस्य यस्यास्या	२७३	दोष कोऽत्र गुण कोऽत्र	३१९
दिसां		दुग्धकृतस्य चास्योद	३४३	दोषघातुमलस्थानम्	३३६
दिसां प्राप्ते			३७०	दोषा किं तमयास्तासु	३६१
दिसां			५०१	दोषान् गुणान् गुणी भुङ्क्ते	३५३
			३२२	दोषान् परधवच जात्यादीन्	३३६
				दृष्टव्या गुरवो नित्यम्	३१८

दवच्चाक्रचरी वृत्तिम्	१८४	दोक्षा जैनी प्रपन्नस्य	२७९	दक्षिणादेन निर्जात	१९१
दधतीरानपकलान्त	१७५	दोक्षा रक्षा गुणामृत्वा	१६१	दृष्टोनामप्यगम्यऽस्मिन्	२३
दधत्पद्माभिधातात्यम्	१०७	दोक्षावस्त्या परिव्यक्त	२०९	दष्ट्वा कदाचिद् गान्धारी	४६७
दधद्भीरतमा दष्टिम्	२०४	दोषिकायामिषामुष्याम्	२१५	दष्ट्वा तत्कम्बलस्यान्ते	४८६
दधानं तुलिताशय	१७६	दोषिका रचिता रजु	१८९	दृष्ट्वा तत्साहस वक्तुम्	४८५
दधानं रक्षयपयन्त	२१०	दोष प्रकीणकृत्वात	२६२	दष्ट्वाऽयं त महाभाग	४५
दधानास्ते तपस्तापम	१६५	दोषज्ञा कृतपण्याय	३७०	दष्ट्वा विमोक्ष्य राजानम्	४५२
दन्तकाष्ठग्रहो नास्य	२४९	दोषदोषातिनिघात	२०७	दष्ट्वा पहराजकन्यास्ता	४८१
दन्तिन्तागऽप्रोतोद्	१८६	दुःखी सुखी सुखी दुःखी	४४२	दष्ट्वा हरिवरस्तस्मात्तोत्वा	४८७
दधितान्तकुबेराख्यो	४६७	दुनोति नो भूय द्रुत	१८४	दष्ट्वेवाकृष्टहरिणाम्	१८९
दपोदुरा खुरोत्स्वात	५	दुःखमिध्वनित मन्द्रम्	२५९	देयमन्यत स्वतन्त्रेण	१८५
दर्भास्तरणसंबन्ध	२९०	दुराचारनिपथन त्रयम्	३९२	देयान्यनुवृत्तायस्म	३१०
दशयन्ती समीपस्थाम	४८२	दुर्गाद्वीसहस्राणि	२२७	देवताऽतिथिपित्रिणि	२७९
दशम्या सिद्धकूटाग्रे	४६०	दुद्धरोक्तपोभार	४८४	देवताप्रमितालक्ष्य	४८०
दद्याद्भूमिति भोगाङ्गम्	२३३	दुर्निरोक्ष्य करैस्तोक्ष्य	४१३	देव त्वामनुवतताम्	१५५
दद्याधिकारास्तस्योक्ता	३११	दुमुखे कृपित भोत्वा	४५५	देवदानवगणयव	३१९
दद्याधिकारि वस्तूनि	३१२	दुमृत्तश्च दुरन्तेऽस्मिन्	३४२	देवदिग्विजयस्याहम्	१००
दद्यानकवनोद्भूतानपि	६६	दुर्विगाहा महाप्राहा	३५	देव दीपः शर कोऽपि	४६
दद्यान्नाम कामरूपाश्च	६६	दुष्टा हिंसादिवोपपु	३४८	देवभूय गता श्रेष्ठि-	४५७
दातुं समद्रवत्तस्य	४७१	दुस्तरा सुतरा जाता	६८	देवभीरनुजाश्रेष्ठि-	४९५
दानं पूजां च शीलं च	३२५	दुस्तद्दे तपसि श्रेयो	४९७	देवस्यानुचरो देव	४२८
दानिनो मानिनस्तुङ्गा	४०८	द्रुत तातवितोर्णा नो	१८५	देवाना प्रिय देवत्वम्	१०५
निक्स्वस्तिका सभामूर्ति	२३३	द्रुत नो द्रुपते चित्तम्	१८२	देवान्तसत्य सत्यान्तदेवो	३५७
दिग्गङ्गाधनापाय	४	द्रुत सात्कृत्समाना	१५८	देवीपूषचरतीपु	२५९
दिगन्तरैभ्यो व्यावृत्य	३४०	द्रुपाताय नो किञ्चु	४००	देवोऽयमक्षततनुर्बिजिताम्बि	५९
दिग्ब्रजे यस्य सयानि	१२६	द्रुमस्य प्रमातृगम्	३४	देवनानयसामान्यमाननाम्	४३७
दिव्य प्रभान्वय कोऽपि	१५	द्रुमस्यारिता सन्य	८२	देवोऽयमम्बुभिर्मनायमलङ्घ्य	५९
दिव्यभाषा तवाशेष	१४५	द्रुमादेव जिनास्थान	३१८	देव्य कनकमालाद्या	४५०
दिव्यमूर्तेरुत्पद्य	३३२	द्रुमादेवावकृत्वात्म	४२१	देशाध्यक्षा बलाध्यक्ष	१०१
दिव्यमूर्तेजिनेन्द्रस्य	२८१	द्रुमाद् द्रुष्यकुटीमेवाद्	२९	देशोऽपि कारयेत् कृत्स्ने	३४६
दिव्यरत्नविनिर्माण	२९३	द्रुरानतचलभीलि	१०१	देहह्युतो यदि गुरोर्मुख-	५११
दिव्यरूप समानाय	४६९	द्रुरानतचलभीलि	११०	देहवासो भयं नास्य	४६३
दिव्यसंगीतवादित्र	२५७	द्रुरानतचलभीलि	१४१	देहान्तरपरिप्राप्ति	२८०
दिव्यसिंहासनपद्माद्	३०७	द्रुपिता वटकैरनाम्	२०९	दवमानुषवाधाम्य	३८८
दिव्यमानुषावसभूत	२५७	द्रुमद्वीक्षित सान्त	१९३	दोदर्प विगणम्यास्य	२०३
दिग्वाभरणभेदानाम	२२७	द्रुगविलासा शरास्तासाम्	२२४	दोर्बलिभ्रातृसमर्थात्	२२३
दिग्वाभरणदेवताश्चाम्	२६३	द्वजव्रतस्य यस्यान्या	२७३	दोष कोऽत्र गुण कीऽत्र	३१९
दिगां प्रसाधनायाघाद्	३	द्वीकृतस्य चास्मोद्ध-	३४३	दोषघातुमलस्थानम्	३३६
दिशा प्रान्तपु विधाना-	८५	दृष्ट सम्मगुणयोऽयम्	३७०	दोषा किं सन्मयास्तासु	३६१
दिगां रावणमाजान्त्या	४१	द्रुष्टवत्यस्मि काताऽस्मिन्	५०१	दोषान् गुणान् गुणी गृह्णन्	३५३
दिगावय स विनाय	२६१	दृष्टा स्वप्ने भुगाधीना	३२२	दोषान् पश्यश्च जात्मादीन्	३३६
दिगानिच दिगान्	९१	दृष्टापशानानन्याश्च	७१	द्रष्टव्या गुरवो नित्यम्	३१८

नेधमभयोद्धोषणायाम्	४७१	नील श्यामा कृतरव-	५४	पञ्चेन्द्रियाप्यनायासात्	२१२
गुणान् गुणिनो मन्तुम्	३६१	नीलोत्पल्लेक्षणा रेजे	२	पट्टवन्वात् पर मत्वा	४५१
ग्रन्थाय नमो वीतरागाय	२९५	नून चक्रिण एवायम्	४८	पट्टागुकदुकूलादि-	२२७
जरा कर्मणा येन	५०४	नून पुण्य पुराणाञ्चे	३५५	पट्टाल्ललाटो नाभ्येन	४५१
जितारिभटैर्भोग्या	१९२	नूतमप्सरसा पश्यन्	२१	पठन् मुनोन्द्रसद्वर्ध-	४७३
जिताशनिनिर्घाप-	४०१	नृत्यगीतमुखालापे	४४१	पतत्पतङ्गसङ्काशम्	४२०
नेर्दय परिरम्भेषु	२२५	नृत्यतन्त्रवन्धपर्यन्त-	१६६	पतद्गङ्गाजलावर्त-	१२७
नेर्दिष्टस्थानलामस्य	२७३	नृप मिहामनामीनम्	३६८	पतन्त वारुणीमगात्	१८७
नेर्दिष्टा गुरुणा साक्षाद्	१६२	नृपतेमथुनो नाम्ना	४७३	पतन्मृगखगान्वीतप्रियाभि	४०२
नेर्द्वन्द्ववृत्तिरघ्नात्मम्	२१४	नृपवर जिनभर्तु	१९३	पतन्यत्र पतङ्गोऽपि	९३
निर्मलत्व तु तस्येष्टम्	३३९	नृपवल्लभिकाववत्र-	२७	पताकाकोटयोऽस्याष्ट-	२३६
निर्मितोऽस्य पुराणस्य	३५२	नृपस्ताम्बूलवत्लीनाम्	८३	पतिः पतिर्वा ताराणा	३५८
निर्मोकमिव कामाहे	२२९	नृपाङ्गनामुखाब्जानि-	२७	पतितान्यसिनिर्घातात्	४०३
निर्यागि हृदयाद् वाचो	३५३	नृपानवारपारीणान्	६९	पत्तनाना सहस्राणि	२२६
निर्यापितास्ततो घण्टा	३२३	नृपानाकर्पतो दूरान्	१८४	पत्रवन्त प्रतापोऽग्रा	३९९
निर्वाणदीक्षयात्मानम्	२६६	नृपानेतान् विजित्यागु	६९	पत्रव्यामरथ प्रोचन्	३८
निर्वाणसाधन यत् स्यात्	२७१	नृपानेतान् विजित्यागु	९१	पथि द्वैवे स्थिता तस्मिन्	११३
निर्विशेष पुरोरेणम्	३८९	नृपान् सौराष्ट्रकानुष्ट-	२०४	पथि प्रणेमुरागत्य	३५
निर्व्यपेक्षनिराकाङ्क्षा	१६७	नृपा भरतगृह्या ये	३२६	पद पर परिप्राप्तुम्	५०२
निर्व्रता निनमस्कारा	३४७	नृपामनमथाध्यास्य	५८	पदैरेभिरय मन्त्रस्तद्विदभि	३०७
निर्विष्टवानिद चान्यत्	४५४	नृपैर्गङ्गाद्वारे	१७६	पद्म्यामारोहतोऽस्याद्रिम्	१३३
निवेदितवती पृष्ठा	४९५	नृपोपायनवाजीभ-	१९८	पद्मरागागुभिर्भिन्नम्	८५
निवेद्य कार्यविज्ञानम्	१५३	नृवरभरतराज्योऽपि	५११	पद्मरागागुभिर्भिन्नै	१३३
निवेद्य सुप्रभायाश्च	३७१	नेक्षे विश्वदृश शृणोमि	२४	पद्महृदाद्रिमवत	१८८
निश्शेषहेतिपूर्णेपु	४०४	नेत्रावलीमिवातन्वन्	१९१	पद्मिन्यो म्लानपद्मास्या	१८८
निषेव्यमाणा विपया	४६३	नेन्दुपादेर्धृति लेभे	२९८	पनसानि मूढयन्त	८३
निष्कण्टकमिति प्राप्य	२२२	नेम्यादिविजय चैव	१८१	परदारभिलापस्य	३९०
निष्कषायाणि नाकस्य	५०४	नेकान्तशमन साम	२८१	परप्रणामविमुखी	१६०
निष्क्रान्त इति सभ्रान्तै	६३	नेणाजिनधरो ब्रह्मा	२९	परप्रणामसजात-	१६०
निष्क्रान्तिपदमव्ये स्ताम्	३०७	नोद्घात क्रोऽप्यभूदङ्गे	४८८	परमजिनपदानुरक्तधी	२८९
निष्पत्तकनकच्छायम्	२२३	न्यगृह्णात्तानि चास्यासन्	४८१	परमर्द्धिपट चान्यत्	२९९
निष्ठुर जुम्भतेऽमुष्मिन्	३८३	न्यग्रोधपादपाद्य स्थ-	१६७	परमपिम्ब इत्यस्मात्तरम्	२९६
निष्पन्दीभूतमालोक्य	४०५	न्यषेवन्त वनोद्देशान्	४१०	परमादिगुणायेति	२९९
निष्पर्याय वनेऽमुष्मिन्	५१	न्यायमार्गा प्रवर्त्यन्ते	२६३	परमादिपदास्त्रे इत्यस्माच्च	२९९
निस्मपत्ना महीमेनाम्	११९	न्यायश्च द्वितयो दुष्ट-		परमार्थकृत् तेन	४७७
निस्महायो निरालम्बो	४१३	प	२	परमार्हताय स्वाहा	२०८
निस्सृष्टार्थतयाऽस्मासु	१८०	पक्वशालिभुवो नम्र-	१९	परमार्हन्त्यराज्याभ्याम्	३०८
नीचैर्गतेन सुव्यक्त-	७३	पङ्कजेषु विलीयन्ते	२३०	परमावधिमल्लदृध्य	२१३
नीत्वा रात्रि सुख तत्र	४३५	पञ्चबाणाननङ्गस्य	४६८	परञ्जतमिहाङ्गीन्त्रे	१२३
नीत्वा सोऽपि कुमार तम्	४८९	पञ्चम स्वपदे सूनु	२७८	परम्परानुकूलास्ते	८७५
नीरा तीरस्थवानोर-	८७	पञ्चमुष्टिविधानेन	५०८	राजोपहृता लक्ष्मी	१८३
नीरूपोऽय स्वरूपेण	४६३	पञ्चमे भोगभूजोऽभूत्	५०७	पराराधनद्वन्द्वोनम्	१६१

न भेतव्यं न भतव्यम्	१०८	न स्वतोऽग्ने पवित्रत्वम्	३०१	निःकृषौ पेशलौ लक्ष्णौ	३६५
न भोक्तुमयथाकारम्	१५७	न हर्ता केवल दाता	३६३	नि शक्तीन शक्तिभि	४०८
न भोगृहाङ्गणे तेनु	४	नाकौकसा घतरसम्	५२	नि शप नाद्यकद्वन्तुम्	४१४
नम धा-परो जेतौ	२९६	नागदत्तस्ततौ वानरायौ	५०९	नि श्रेणीकृष्य तज्जड धे	२२८
नम सकलकल्याणपथ	३५०	नागप्रियाद्रिभाक्रम्य	६७	नि स्वासधूममलिना	५२
न मध्ये न शरीरपु दृष्टा	४०१	नागमारुह्य तिष्ठ त्वम्	४११	नि सगवृत्तिरकाकी	२५५
न मया तद्वय साध्यमिति	४७५	नागामरोपि ता पश्यन्	३६०	नि सपत्नमिति श्रेमु	६८
नमस्ते नतनाकी-द्र-	१४८	नाङ्गरागस्तुरगाणाम	४५	नि सृत्य नाभिबलमीकान	२२९
नमस्ते परमानन्त-	१४७	नाटकाना सहस्राणि	२२६	निगमान् परितोऽपश्यत्	१३
नमस्त पारनिर्वाण	१४७	नाट्यमालामरस्तत्र	१२९	निगलस्थो यथानष्टम्	३३७
नमस्त प्रचल-मौलि	१४७	नाट्यशालादय दीप्तम्	१४६	निगलस्थो विपाशश्च	३३७
नमस्ते प्राप्तकल्याण	१४८	नाणिमा महिमवास्थ	२७९	निचुल सहकारेण	२२
नमस्ते भुवनोद्भासि	१४७	नातिदूरे निविष्टस्य	१५१	निजगम्भीरपाताल	४०
नमस्त मस्तक-यस्त	१४७	नात्र च किन्त्वमुत्रापि	४७१	निजग्राह नृपान् दुष्टान	६५
नमस्त मकुटोपाय	१४७	नाथवशाग्रणीश्चामा	४२८	निजवाममुताम्भोभि	४५३
नमस्त स्वकिरीटाग्र	१४७	नाथेन्दुवशसरोही	४३७	निजहृस्तेन निर्दिष्टम्	४३६
नमिधिनमिपुरोग	१२९	नादरिद्रीञ्जन कश्चिद्	१	निजागमनवृत्तान्त	४८१
नमिश्च विनमिश्चैव	१२८	नाध्वा द्रुत गुस्तरैरपि	७६	निजा-यज्मसौख्यान्	४६९
न मृता धणिता नव	४०५	नानगारा वसू-यस्मत्	२४०	निजोचितासनाहदा	३७७
नमोऽस्तो नीरजश्शङ्ख	२९०	नानाप्रसवसदृश	४४०	नित्यप्रवृत्तिसिद्धत्वात्	४२
नमोऽस्तु तुभ्यमिदं	१४८	नानाभाषास्मिका दिव्य	१४१	नित्यानुबद्धतुष्णत्वात्	४२
नपत्ति निजरा यस्य	८८	नानारत्नविधानदेशविलसत	२३८	नित्योदयो बुधाधीशो	४६५
नरविद्याधराधीशान्	३७३	ना-यो मद्भागिनेयोऽयमिति	४९७	नित्यो निरञ्जन विचिद्	५०७
न रूपमस्य व्यावर्ण्य	३८२	नामिकूपप्रवृत्तास्या	३६७	निदेशरुचितश्चास्मान	१२१
नरेशो नागराश्चैतत्	४७४	नामूत् परिपहभङ्ग	१६९	निधयो नव तस्यासन्	२२७
नमदा सत्यमवासीत्	९०	नामकमविधाने च	३०६	निधयो यस्य पयन्ते	३१
न लक्ष्मीरपि तथोत्थै	३६३	नाम्नातिसधितो भूको	३८७	निधि पुण्यनिधेरस्य	२२७
नवमे मास्यतोऽज्यर्णे	२४६	नाम्ना बज्रमय दिव्यम्	२३५	निधीना सह रत्नानाम्	२२८
नवमे वज्रनाभीशो	५०८	नाम्ना विद्युत्प्रमे चास्य	२३४	निध्यानादज्ययस्य	३२२
नवलोहितपूराम्ब	४०७	नाम्न च कम्पिताराति	३६३	निपतत्पुष्पवर्धण	१३६
नवापि कुपितेमे-द्र	४११	नाम्न च लवणाभोभिः	९३	निपतश्चिन्नरारार्व	१३२
नबाम्बुकलुषा पूरा	२३२	नायकं सममन्येद्यु	११५	निपये नालिकेराणाम्	८२
नवास्य निधय सिद्धा	१३१	नालिकेरद्रुमेष्वासीत्	७४	निपेतुरमरस्त्रीणाम्	१०८
न विघ्न किञ्च क्षत्वश्च	२ २	नालिकेररस पानम्	८३	निमीलय-तश्चक्षूषि	४०१
न विपागे विधातव्य	४८६	नालिकेरासवैमत्ता	८३	निमूच्छस्ते स्वदेहेऽपि	१३६
न-पात् कमल दृरस्मम्	३०५	नाशक तन्निहाश्चयम्	४७२	नियुद्धमय सारीय	२०५
नष्टमष्टा-शाभोभि	२५१	नास्त्येपाभीदुशी शक्ति	४१९	नियोज्य स्वानुजान सत्रिन्	४३५
नष्टाधिमासदिनया	२८४	नास्त्रे व्यापारितो हस्तो	३६	निरन्तरश्रवोत्कोष	४४२
न स धामा-यमदे-न	१७२	नास्मासीत् स्त्रीकृता वाधा	२११	निरगलीकृन् द्वारम्	११५
न स्पृष्टानि च य चाहम्	४८७	नास्त्रादि मदिरा स्वेरम्	१९०	निराकृत्याककीर्त्यानीन्	३८१
न स्मरिष्यमि विम्	४६६	नाहं देहो मनो नास्मि	२५६	निरुद्धमूष्व गृध्रीधैः	४०७
न स्पृष्ट न दृ-ग नञ्	३६५	नाहं सुलोचनाप्यस्मि	३ १	निरुध्यान्-तसेनाणि	४०५

पराध्यमणिनिर्माण	११२	पश्य तान्श एवात्र	३८९	पसा सस्पशनात्रण	३९७
पराध्य मानस सहम्	१४४	पश्य देवगिररस्य	१३४	पुसा स्त्रीणां च चारित्र	३२३
पराध्यरत्ननिर्माणम्	१४५	पश्य धूर्तरह भूदो	४५२	पुमा हतवती दण्डम्	४७०
परावमानमलिना भूतिम्	१८३	पश्यन्नपसमुद्र तम	३७	पस्काकिलकलालाप	२१
परियहग्रहा मवता	४६५	पश्यन स्तम्भकरिस्तम्बान्	१७४	पस्काकिलकलालाप	२१६
परिचितयतिहमो	५१४	पश्य पुण्यस्य माहात्म्यम्	३७६	पुण्डरीकातपत्रेण	२६
परिणतपरितापात स्वदधारी	४२३	पश्याम्भोधरनुतटमपा	५४	पुण्य जले स्थलमिवाम्यव	६०
परित कायमानानि	२९	पहरा विपमग्राह	८७	पुण्यं जिनद्रपरिपूजन	६०
परित सरसी सरस	५४	पासुधूसररत्नोष	३२२	पुण्य पर क्षरणभापदि दुर्वि	६०
परितस्त्वत्मभा देव	१८४	पाकसत्त्वशताकीर्णामि	१६७	पुण्यं साधनमस्यैकम्	६५
परिनिष्क्रान्तिरेषा स्यात्	२६६	पाणिग्रहणदीक्षायाम्	२५१	पुण्यकल्पतरारासन	२३७
परिभूतिद्विधा सात्र	३८१	पाण्डवान् प्रचण्डदोदण्ड	७०	पुण्याच्चक्रधरधिय विजयिनी ९५	
परिवपापरक्तस्य	३२३	पादातकृतसवाधात्	१३१	पुण्यादय भरतचक्रधरो	६०
परिवष्ट्य निरयन्त	२०१	पादरयं जलनिधि	५२	पुण्यादित्ययमादिभा	१३०
परिसिन्धुन ीक्षोत	११३	पाप स सद्व्रणभृत्वा	३६०	पुण्याद् मिना कुतस्तादृग्	१३७
परिह्वयं यथा देव	३१४	पापरोगी परप्रेयो	४१३	पुण्याध्यय क्वचित् सिद्ध	२५१
परीतजातरूपोच्च	४४०	पापसूत्रधरा धूर्ता	३२१	पुण्याहधोपणापूष कुर्याद्	३०६
परीत्य स्तोतुमारभे	४८३	पापसूत्रानुगा यूयम्	२८०	पुण्य सिन्धुजलरेनम्	११९
परीपहजयान्स्य	२१२	पापान्येतानि कर्माणि	४७१	पुण्योऽन्यासिधिवर्ति	१५०
परीपहजयदीप्तो	२१३	पापिनाऽश्निन्नगेन	४८२	पुण्योऽन्यन मकराकर	६०
परीपहमलाभ च	२११	पारमात्म्य पदे पूज्यो	३६३	पुण्यबन्धुपदातीनाम	४२६
परेद्यु कान्तया साध	४६२	पारा पारजल कूजत्	८७	पुत्रलाभाधि तच्चित्तम्	४५२
पयटन्ति सटण्डस्य	१२२	पारावतभव चाप्यधमम्	४६१	पुत्र्यश्च सविनागाह	२५३
पयतेऽस्य सटोद्देशा	१२३	पारिग्रज्य परिश्राजो	२८३	पुत्र्या मेह गतस्याङ्ग	४७०
पयध्वञ्जीत पुरवताम्	४१८	पार्थिवस्यैकराष्ट्रस्य	६५	पुन प्रिया जय प्राह	४६२
पर्याप्तमात्र एषाम्	२५७	पार्थिवान् प्रणतान् यूयम्	२६३	पुनरध्यास्य हृज्जम	३७९
पर्याप्तमेतदेवात्म्य	१३४	पार्थिवदण्डनीधाश्च	२८१	पुनरेकाकिन सिंह	३२२
पवतोदग्रमारुहो	१३१	पालयदन्तुरूपेण दण्डनय	३४३	पुनर्विवाहसंस्कार	२७४
पर्वोपवासमास्थाय	३२५	पालयद्य इम धमम्	२६३	पुनस्तत्रागता दृष्टा	४६७
पलायमात्रो पापाण	३६०	पिताहं भवदेवस्य	४६१	पुनासीध हिमाद्रि च	१८
पल्यङ्गेन निपण्णास्ते	१६७	पितु पदमधिष्ठाय	३५९	पुर पादातमस्वीयम्	९
पवनस्य जयन् धमम्	२३६	पितुरन्वयशुद्धिर्था	२७७	पर प्रतस्थ दण्डन	६२
पवनाधूतगालाग्र	७१	पित्रो पुरी प्रवृत्त सन	४५४	पुर प्रधाबित प्रह्व	२८
पवनाधोरणाहडा	६	पिनद्धतोरणामुच्चै	९७	पुर प्रयातमस्वीयै	८१
पगुत्त्यासमारम्भात्	२८१	पीठिकामात्र एष स्यात्	२९३	पुरगोपुरमल्लङ्घ्य	१७५
पगान् विभृङ्गान् मत्वाद्मान्	४०३	पीत पुरा गजतया सलिल	७७	पुरवो मोक्षमामस्य	४२९
पन्थाऽङ्गलमुत्वाग्जानि	३८१	पीत वनद्विप पूर्वम्	७४	पुरस्त्वस्यह तामेताम्	४३०
पदधान् को पि ग्रह	४२८	पीताम्बुराम्बुस्पदि	७४	परस्तीथकृता पूव	३५६
पन्थान भर्त्ताग्रीरोक्षया	८१	पीताम्भसो मन्त्रासरे	७४	पुरस्सरणमात्रेण	३८९
पन्थाद् विपश्चिपाक्षि-य	४५०	पीत्वाऽन्या धमपीयूषम्	३१९	पुरस्सरपु निश्शेष	२६५
पश्चिमाधेन विष्ण्याम्	९१	पीत्वाऽमो व्यपगमितान्त	७७	पुराङ्गनाभिः मुक्त	९
पन्त वृजिममूर्च्छास्त	४८७	पीनस्तनतटात्मङ्ग	१७५	पुराणं तस्य म ब्रूहि	३५७

पुराण धर्मशास्त्र च	२७१	प्रकृतिस्थेन रूपेण	३३७	प्रतीपवृत्तयः कामम्	१७
पुराण मार्गमासाद्य	३५५	प्रकृष्टो यो गुणैरेभि	२७०	प्रतीपवृत्तिमादर्शे	६
पुराणस्यास्य ससिद्धि-	३९५	प्रक्षालितेव लज्जाऽगात्	४३२	प्रतीयायान्तरे छिन्दन्	४१
पुराणे प्रौढगन्धार्थे	३५२	प्रच्वेलितरथ विश्वम्	१०४	प्रत्यक्षो गुरुरस्माकम्	१५
पुराद् गज समारुह्य	४३७	प्रगुणस्थानसोपानाम्	११२	प्रत्यग्रसमरारम्भ-	२०
पुरुषार्थत्रय पुम्भि-	३९०	प्रगुणामुष्टिमवाह्या	३९८	प्रत्यग्रा किसलयिनीगृहाण	७
पुरोऽवलत्समुत्सर्पच्छर-	४०४	प्रचचाल बल विप्वग्	८	प्रत्यनीककृतानेक-	१८
पुरोवाय शर रत्न-	५०	प्रचण्डदण्डनिर्घाति-	१७९	प्रत्यापणमसौ तत्र	३८
पुरोधोमन्थमान्यानाम्	२५८	प्रचण्डञ्चण्डवेगास्त्यो	२३५	प्रत्यायातमहावात-	४१
पुरोपार्जितपुण्यस्य	३६३	प्रचण्डा वज्रतुण्डाख्या	२३४	प्रत्येत्येव प्रपश्यन्तीम्	४४
पुरोपार्जितसद्धर्मात्	३७५	प्रचलद्वलसक्षोभाद्	८१	प्रत्येय श्रेष्ठिना प्रोक्त	४९
पुरो बहि पुर पञ्चात्	९	प्रचेलु सर्वसामग्र्या	१०४	प्रथम सत्यजाताय नम	२९
पुरो भागानिवात्येतुम्	९६	प्रजा करभराक्रान्ता	६४	प्रथम सत्यजाताय स्वाहा	२९
पुरोहितसखस्तत्र	११९	प्रजाना पालनार्थं च	२६४	प्रथमोऽस्य परिक्षेपो	१४५
पुरोहितैः पुरन्ध्रीभि	४४०	प्रजाना मदसद्वृत्तचिन्तनै	३२६	प्रदानार्हत्वमस्येष्टम्	३१
पुलिन्दकन्यकासैन्य-	३७	प्रजानुपालन प्रोक्तम्	३४८	प्रदाय परिवार च	४४१
पुष्करार्द्धेऽपरे भागे	४९४	प्रजापति सर्वसन्धो	३५७	प्रदीपः स्वकुलस्यायम्	३८२
पुष्करावर्त्यभिख्य च	२३३	प्रजापालतनूजाभ्याम्	४५३	प्रदुष्टान् भोगिन काञ्चिद्	६३
पुष्करैः पुष्करोदस्तं	२१५	प्रजामामान्यतैवेपाम्	३४६	प्रद्विपन् परपापण्डी	३३२
पुष्टो मौलेन तन्त्रेण	३४३	प्रजा परिपह प्राज्ञो	२११	प्रनृत्यता प्रभूतानाम्	३२२
पुण्यचूतवनोद्गन्धि	२३१	प्रज्वलन्त जयन्त वा	४०४	प्रपतन्नालिकेरीधस्थ-	७३
पुण्यमार्तवमाप्तान	३७२	प्रणताननुजग्राह	६५	प्रफुल्लव्रनमाशोकम्	१३८
पुण्यसमर्द्धसुरभि	१९२	प्रणमश्चरणावेत्य	१७७	प्रबुद्धपद्मसौम्यास्या	२२८
पुष्पावचयससक्त-	५०१	प्रणम्य वनपालाय	४८०	प्रबोधजृम्भणादास्यम्	९८
पुष्पोपहारिभूभागा-	३७५	प्रणय प्रश्रयश्चेति	१८२	प्रभग्नचरण किञ्चिद्	३४३
पुष्कुर स्फुरदस्त्रीघा.	२०१	प्रणिधाय मनोवृत्तिम्	२५६	प्रभातमस्तोद्धूतप्रबुद्ध-	३२६
पूजाराधाख्यया ख्याता	२७३	प्रणिपत्य विधानेन	१५९	प्रभावती च तन्मात्रा	४६५
पूर्वं वननिवेगे ती	४५८	प्रतापी भुवनस्यैकम्	७	प्रभावतीचरी देवी	४६९
पूर्वं विहितसधाना	३९८	प्रतिकक्ष सुरस्त्रीणा	३१८	प्रभावतीति समुह्य	४४७
पूर्वमेव समालोच्य	३८६	प्रतिकेतनमुद्वद्ध-	४९०	प्रभावत्या च पृष्टोऽसौ	४६१
पूर्ववत् पश्चिमे खण्डे	११५	प्रतिग्रहापसारादि-	३८	प्रभा समजयत्तत्र	९४
पूर्वोक्तपिङ्गलाख्यस्य	४७७	प्रतिध्वनितदिग्भित्ति-	३९२	प्रभुणाऽनुमतश्चाशम्	१०५
पृथक् पृथक् प्रदायाति	४३९	प्रतिध्वस्तानि पापानि	४२५	प्रभोरवसर सार्य	१०३
पृथक् पृथगिमे शब्दा	२९२	प्रतिप्रयाणमभ्येत्य	६५	प्रभोरिवागमात्तुष्टा-	९७
पृथुधीस्तमवष्टम्य	४७४	प्रतिप्रयाणमानम्रा-	१२८	प्रमत्तादिगुणस्थान-	५०५
पृथुवक्षस्तट तुङ्ग-	१७६	प्रतिप्रयाणमित्यस्य	९२	प्रमदास्य वन प्राप्य	४८०
पोषयत्यतियत्नेन	३४५	प्रतियोद्धुमशक्तास्तम्	३५	प्रमाणकालभावेभ्यो	४४८
पोषयन्ति महीपाला-	१८६	प्रतिराष्ट्रमुपानीत-	३६	प्रमाद्यन् द्विरद कञ्चिद्	७५
पीरा प्रकृतिमुख्याश्च	२६२	प्रतिवादसमुद्धूत-	४०६	प्रमेयत्व परिच्छिन्न-	३३८
पीरैर्जनैरत स्वेपु	३२४	प्रतिशय्यानिपातेन	१५६	प्रमोदान् नुप्रभादेजान्	३७६
प्रकाममधुरानित्यम्	२२५	प्रतीची येन जायेऽहम्	४१४	प्रयत्नेनाभिरक्ष्य म्याद्	३०१
प्रकीर्णकलद्वीचि	१३१	प्रतीच्यापि युतञ्चन्द्रो	४१८	प्रययौ निष्पाम्भोधिम्	६०

वभुर्मकुटवद्धास्ते	२०१	विभक्ति य पुमान् प्राणान्	४७	भवेत्कर्ममलावेणाद्	३३८
वभ्रे हारलता कण्ठलग्नान्	२२९	विभक्ति हिमवानेनाम्	१९	भवेदन्यत्र कामस्य	३७३
वलक्षोभादिभो नियन्	९८	विम्रता जननिर्वादाद्	१५८	भवेद् देवादपि स्वामिन्य-	४२६
वलद्रयास्त्रमघट्ट-	४०५	बुद्धिमास्त्व तवाहार्य-	४१०	भवेयुरन्तरद्वीपा	२२६
वलध्वान गृहारन्ध्रै	१०४	बुद्धिमागरनामान्य	२३५	भवेऽस्मिन्नेव भव्योऽयम्	३६२
वलरेणुभिरारुद्धे	११	बुद्धयैव बद्धपन्यङ्गा	४०८	भव्यस्यापि भव्योऽभवद्	५१२
लवाननुवर्त्यञ्चेद्	४९	ब्रह्मचर्यं च धर्म्यम्	२१४	भव्यात्मा समवाप्य जातिम-	२८९
वलवान् कुरराजोऽपि	११८	ब्रह्मचारी गृहस्थञ्च	२८३	भागी भवपद ज्ञेयम्	३०८
वलवान् धूमवेगाख्य	४८६	ब्रह्मणोऽपन्यमित्येवम्	२८१	भागी भवपद वाच्यम्	३०४
वलवान्नाभियोकनव्यो	११६	ब्राह्मणा व्रतमस्कागात्	२४३	भागीभवपदान्तञ्च	३०४
वल विभज्य भूमागे	३९६	ब्रुवन् न कल्पना दुष्टमिति	४०६	भागीभवपदेनान्ते	३०७
वलव्यमनमागङ्गव्य-	११८	ब्रुवाणानिति साधेयम्	१६१	भागीभवपदोपेन	३०२
वलादशनिवेगेन	४८१	ब्रुवाणैरिति सङ्ग्राम-	१८६	भाजन भक्ष्यसम्पूर्णमदत्त-	४४९
वलादुद्धरणीयो हि	१५३	ब्रूत यूय महाप्रज्ञा	२६९	भाति तस्या पुरो भागा	३६६
वलानि प्रविभवतानि	२००	ब्रूयाच्च नेमिनाथाय स्वाहा	२९७	भाति य शिखरैस्तुङ्गै	८८
वलान्तभद्रो नन्दी च	३५७	ब्रूहि तत्प्रापणोपायमिति	४८५	भार्या सागरदत्तस्य	४९५
वलिनमपि सन्त्येव	४८			भावनव्यन्तरज्योति	१४०
वलिनोर्युवयोर्मध्य	३८२	भ		भावयन्ती मृताऽत्रेयम्	४३९
वलै प्रमह्य निर्भुक्ता	८१	भक्त्या प्रणमतस्तस्य	३१९	भास्वत्प्रभाप्रमरणप्रतिबुद्ध-	३८४
वलोत्कर्षपरीक्षेयम्	२०३	भवत्यापिता स्रजम्	१४९	भाम्बत्सूर्यप्रभ तस्य	२३४
वलोपभुक्तनिःशेष-	९०	भक्षाश्चामृगभारिषा	२३६	भिक्षा नियतवेलायाम्	१६८
वलिता स्फोटितैश्चित्रै	२०५	भक्ष्यमाणान् कपोताद्यै	४५६	भिपजेव करै स्पृष्ट्वा	१९०
वहवोऽप्यस्य लम्भा-	४८१	भगवस्त्वद्गुणस्तोत्रात्	१४९	भिन्नौ युवतौ मृदुस्तब्धौ	३६५
वहि कलकल श्रुत्वा	११८	भगवद्दिव्यवार्थ-	३२०	भीकरा किङ्कराकारा	४१०
वहि पुरमथासाद्य	१७४	भगवानभिनिष्क्रान्त	२६६	भीतभीता युधोऽन्यैश्च	४०६
वहि समुद्रमुद्रिक्तम्	३७	भङ्गिना किमु राज्येन	१६१	भुक्तमात्मभरित्वेन	४३३
वहिरन्तर्मलापायाद्	३४०	भङ्गुर सङ्गम सर्वोऽपि	४६२	भुक्तो भोगो दशाङ्गोऽपि	४९९
वह्निर्वेशमित्यादीन्	३०	भटा हस्त्युरस भेजु	२०१	भुक्त्वापि सुचिर कालम्	१६१
वह्निर्मण्डलमेवासीत्	१५४	भटैर्लङ्कितकै केचिद्	१०४	भुजङ्गप्रयातैरिद वारिराजो	५४
वह्निर्न ततो द्वित्रै	२४७	भरतविजयलक्ष्मी-	२१९	भुजवत्यादयोऽभ्येयु	४१९
वह्निर्विभूतिरित्युच्चै	१४६	भरतस्यादिराजस्य	१०८	भुजोपरोधमुद्धृत्य	२०५
वहिस्तटवनादेतत्	२३	भरतेन समभ्यर्च्य	५०४	भुज्यते य स भोग स्याद्	४४३
वह्नुनापि न दत्तेन	३४४	भरतेश किलात्रापि	२०५	भुनक्तु नृपगार्हलो	१६१
वह्नुवाणासनाकीर्णम्	२५	भरतोऽभिरतो धर्मे	३२५	भूतार्थस्त्ववन्तु तत्तमर्वम्	४५६
वह्नुपायमिद राज्यम्	३४१	भर्तृभार्याभिसम्बन्धम्	४६१	भूत्वा बुधविमानेऽमी	४७७
वाघ्यत्वं ताडनानिष्टवचन-	३३८	भवतु सुहृदा मृत्यो शोक	५१०	भूपोऽप्यनुनयैरस्य	१७३
वाल समर्पयामास	४९६	भवत्कुलाचलस्योभौ	३८९	भूपोऽप्येव बली कञ्चित्	३४७
वालानिव छलादस्मान्	१८२	भवदेवचरणानुबद्धवैरेण	४५८	भूपोऽप्येवमूर्धामन्नम्	३४५
वागस्ते वालभावेन	१५७	भवदेवेन निर्दग्धम्	४५७	भूभृता पतिमनुङ्गम्	८७
वाग्य एव ततोऽभ्यस्येत्	३१२	भवद्भिर्भावितैश्चर्यम्	४३४	भूमिष्ठैर्निष्ठुर् अष्टिना	८०१
वाग्यात् प्रभृति या विद्या	३१२	भववन्धनमुक्त्वा	२८८	भूय परमगङ्गादि-	३०४
वाह तस्या जितानङ्गपाशौ	२२९	भवेच्च न तप कामो	३३७	भूय प्रोन्माहि नो देवै	१२७

महापगाभिरित्याभि	१२३	मानस्तम्भस्य पर्यन्ते	१३७	मूक श्रेय पुरे जात	४९१
महापगारयन्त्रेव	६३	मा नाम प्रणति यम्प	१७८	मूर्च्छित प्रेममद्भावान्	४३७
महावल्लि निधिप्त-	२०९	मामर्जपोत् मयामो मे	४६७	मूर्त्तिद्विषि नेतव्या	२८५
महावाहस्ततश्चाभूद्	५०९	मामत्रिधिष्य कन्त्रेयम्	३८७	मूर्धाभिपिक्ते प्राप्त-	२२१
महाविजरीद्रमद्राम-	२०७	मायया नाम्नि शान्तेति	४६६	मूर्ध्नि पद्महृदोऽग्रास्ति	१२३
महाभिषेकमामय्या-	२६१	मायाम् पद्म विद्याप्रभावान्	४८६	मूलस्कन्धाग्रमध्येषु	३७२
महाभोगैर्नृपै कैश्चिद्	६३	मार्गज म्यितमृद्ध्य	४८१	मूलोत्तरगुणेष्वान्त-	३२२
महामाना वपुःमन्तो	१६१	मार्गविभ्रगहेतुन्याद्	४९९	मृगाङ्कस्य कलङ्कोऽयम्	३६८
महामहमहं कृत्वा	२४०	मार्गाश्चिरन्तनान् येऽत्र	४३०	मृगै प्रविष्टवेजन्ते	१३५
महामहमहापूजाम्	५०७	मार्गे प्रगुणमवाग	३९९	मृगैर्मृगैरिवापानमात्रभग्नै	४०८
महामुकुटवद्वानाम्	३३	मार्गे बहुविधान् देवान्	३५	मृणालैर्ङ्गमात्रेष्ट्य	२६
महामुकुटवद्वानाम्	२०१	माहात्म्यप्रच्युतिस्नावत्	३३२	मृणालैरधिदन्ताग्रम्	७५
महामुकुटवद्वानाम्	८	मित्रयज म्वयभूञ्च	३५७	मृदवस्तनव स्निग्धा	३६६
महामुकुटवद्वानाम्	२४२	मित्र्यान्व पञ्चत्रा माष्ट-	५०५	मृप्यता च तदस्माभि.	२०९
महाव्रत भवेत् कृत्स्न-	२६९	मित्र्यात्वमन्ननाचार	५०४	मेखलाया तृतीयस्याम्	१४०
महाहास्तिकविस्तार-	४०७	मित्र्यामदोद्धत कोऽपि	१५५	मेखलाया द्वितीयस्याम्	३१९
महाहिरण्यमायामम्	२३	मुकुले वा मुखे चक्रे	४३२	मेघप्रभञ्च चण्डासिप्रभा-	३९५
महिम्ना शमिन शान्तम्	२१६	मुक्तमिहप्रणादेन	११९	मेघप्रभमुकेन्वादि	४२८
महिम्नाऽस्य तपोवीर्य-	२१६	मुक्तस्तु न तथा किन्तु	३३५	मेघप्रभो जयादेगाद्	४१०
मही व्योमगगो सूर्य	३८८	मुक्तान्मना भवेद् भाव	३३९	मेघस्वरो भीमभुज-	३७०
महीगेनेति सप्रोक्ता	५०१	मुक्ताफलाच्छमापाय-	१६०	मेघान्धकारिताशेष-	१६४
महेन्द्राद्री समक्रामन्	७०	मुक्तेतरात्मनोर्व्यक्त्यै	३३७	मेघा सत्त्वजबोपेना	२७
महोत्सङ्गानुदग्राङ्गान्	८६	मुक्त्वा कुमारमभ्येत्य	४९२	मैथुनस्य च मस्मृत्य	४९७
महोपवासम्लानाङ्गा	१६९	मुख रतिमुखागार-	२२४	मैथुनाय नृप क्रुद्धा	४७३
मा निवार्य सहायान्तीम्	४१६	मुखमुद्भुतनदर्या	२२९	मोक्षो गुणमयो नित्यो	३६१
मा स्वकार्ये स्मरेत्युक्त्वा	३६२	मुखैर्जयकारेण	११०	मोहपाश समुच्छिद्य	४९४
मागवायितमेवास्य	६६	मुखेन चन्द्रकान्तेन	१७६	मोनाव्ययनवृत्तत्वम्	२४४
मा मा मागववैचिताम्	४९	मुखेन पङ्कजच्छायाम्	१७६	म्लापयन् स्वाङ्गसौन्दर्यम्	२८५
माधकृष्णचतुर्दश्याम्	५०७	मुखैरनिष्टवाग्बल्लि-	१७२	म्लेच्छखण्डमखण्डाज्ञ	१०८
माता पिताऽपि या यञ्च	४५९	मुच्यमाना गुहा सैन्यै	१२९	म्लेच्छराजसहस्राणि	२२७
मातापितृभ्या तद्दृष्ट्वा	४५९	मुदा निष्पादयामास	३७२	म्लेच्छराजादिभिर्दत्ता	२२३
मातापितृभ्या प्रादायि	४५५	मुद्गराद्यभिघातेन	३३८	म्लेच्छराजान् विनिर्जित्य	४३०
माद्यन्ति कोकिला गश्वत्	२२	मुनयोऽपि समानाश्चेत्	१८३	म्लेच्छाचारो हि हिंसायाम्	३४६
माद्यन्मलयमातङ्ग-	३७७	मुनि रतिवर प्राप्य	४९७	म्लेच्छाननिच्छतोऽप्यज्ञान्	१७८
माद्यवीलतया गाढम्	२१०	मुनि हिरण्यवर्माणम्	४६८	य	
माद्यवीस्तवकेष्वन्त	२२	मुनि. पृथक्प्रदेगस्थाम्	४६८	य नत्वा पुनरामनन्ति न पर२३९	
मानखण्डनमभूत-	१६०	मुनिभ्या दत्तदानेन	४५६	य कोऽप्यकारणद्वेषो	१५२
मानत्वमस्य सद्यस्ते	३१४	मुनिमन्त्रोऽयमाग्नातो	२९६	य पूर्वापरकोटिभ्याम्	८८
मानभङ्गाजितैर्भोगै-	१८३	मुनिस्तद्वचन श्रुत्वा	४६९	य नमःप्रेर्गुणैरेभि	३४०
मानमेवानिर्लक्षणु	१८३	मुनीन्द्रपाठनिर्घोषै	१३५	य मृत्यो जगता त्रयस्य	२३८
नानयन्ति तद्वाक्यम्	१२१	मुसलस्यूलवाराभि	१६४	यस्मीभूता तदागत्य	४९२
नानस्तम्भमहाचैतन-	३१८	मुहु प्रचलदुद्वेल-	३९	यच्च दण्डकपाटादि-	२६७

भूयस्तलमालप्य	१८५	मन्सुतिमिवाहद	८७	मन्त्रोऽवतारकल्याणभागी	३०२
भूयो द्रष्टव्यमत्रास्ति	१०१	मन्वीराज्यमाक्रान्त	१७९	मन्थरज्जुसमाकृष्टि	३६
भूयाऽपि सप्रवक्ष्यामि	२८०	मद्गुहाङ्गणवनीयम्	९	मन्थाकपश्चमोद्भूत	३६
भूयो भूय प्रणम्यशम	३२३	मद्ददृष्टपूर्वजमानि	४७१	मन्थारवानुसारण	३६
भूरेणयस्तन्नाश्वोय	२०२	मद्ययश्च कुसुमाम्लान	३८७	मन्दे पयोमुचा मार्गे	२१८
भङ्गीसङ्गीतसम्बुच्छन्	१३८	मधु द्विगुणितस्वादु	४१५	मन्दमन्द प्रकृत्यव	४०६
भजे षड्भृतुजानिष्ठान्	२२८	मधुमासपरित्याग	२५०	मन्दरामिपककल्याण	३०३
भद स चक्रवर्तीति	४८१	मधी मधुमदारवतलोचनाम्	२३१	मन्दरामिपकनिष्क्रान्ति	३०७
भय प्रस्थानशसिभ्यो	१३१	मध्यस्थवृत्तिरेव म	३४८	मन्दरद्रामिपेकश्च	२४४
भो भो सुधाशना यूयम्	२५८	मध्यस्थोऽपि तदा तीव्रम	२७	मन्दरद्रामिपकोऽष्टौ	२६०
भोक्ताभूय नभागाङ्गम्	३७६	मध्ये चक्षुरधीराक्षया	२२९	मन्दसाना मद भेजु	२
भोगव्रह्मव्रतादेवम्	२५०	मध्ये तस्य स्फुरद्गल	४३५	मन्दाकिनोत्तरङ्गोत्थ	२०
भोगास्तृष्णाभिसंबद्धध	४४३	मध्य महाकुलीनपु	३८९	मन्दासपशरच्छाय	१८६
भोगिनो भोगवद् भोगा	४६३	मध्य महीभृता तेषाम्	२०४	मन्दारकुसुमामोद	२६२
भोगेऽवत्युत्सुक प्रायो	२०७	मध्ये रत्नमस्यास्य	११७	मन्दारकुसुमोद्गाधि	१३७
भोगोपभोगयोग्योह	३७२	मध्ये विध्यमयक्षिष्ट	९०	मन्दारवनवीथीनाम	२१
भोगोऽय भागिनो भोगो	४४३	मध्यवेदि जिनन्दार्चा	२९०	मन्दारस्रजमल्लानिम	२५९
भोग्यपञ्चैश्वर्यनीतुक्व	३३९	मध्यैसभमयान्येष्टु	३३१	मन्ये पत्राणि गात्राणि	२२४
भ्रमत्यकाकिनी लोकम	१०६	मन पययज्ञानमप्यस्य	५१२	ममामिबीक्षितु तत्र	४८५
भ्रमद्यत्रकुटीयत्र	१७५	मनसि मनसिजस्यावापि	४४४	मया तु चरितो धम	२७५
भ्रातरोऽमी तवाजम्या	१५४	मनुश्चक्रभूतामाद्य	२२२	मया निवारितोऽप्याया	४१६
भ्रातृभाण्डवतामप	१५६	मनुष्यजातिरव	२४३	मया सृष्टा द्विजमान	३१९
भ्रक्षयत्रपापाणै	२२५	मनोऽगारे महत्स्य	२१३	मयि स्वसात्कुले देव	१०६
भ्रूमङ्गन विना भङ्ग	२०३	मनोजशरपुङ्खाब्ज	१९	मयैव विहिता सम्यक्	४२९
भ		मनोभवनिवेशस्य	२१	मयापनयनस्याहि	४८३
मणि मत्वा प्रविश्यान्तर्नप	४५१	मनोभुवोऽतिवृद्धस्य	२२४	मरुदान्दोलितोदध	१३२
मणिकुण्डलभारण	२७५	मनोरथस्य पुत्राय	४६२	मरुदुद्धूतशास्त्राय	७१
मणिपीठे समास्थाप्य	४३८	मनोवेगोऽशनिवर	४९३	मलयानिलमाश्लेष्टुम्	३७२
मणिमुक्ताफलप्रोत	४३५	मनोव्याक्षपरस्त्रायम्	३४२	मलयोपान्तकान्तारे	८४
मणिन जलमध्यऽस्ति	४५२	मनोहराख्यविषये	५०१	मलिनाचरिता ह्येते	२८२
मणिचूडामणिर्नाम	२३५	मन्त्र परमराजान्मिमतोऽय	२९८	मलीमसाङ्गो व्युत्सृष्ट	२८५
मन्त्राग्रसमुत्सृष्ट	४०४	मन्त्रभेदभयाद् गूढम	१७४	मल्लिकावितसामोद	२२
मत ससारिदुष्टात्	३३८	मन्त्रमूर्तीन् समाधाय	४३८	महदमिरपि कल्लोल	४५
मतिज्ञानसमुत्कर्षात्	२१३	मन्त्रानिमान् मयायोगम्	३१५	महसास्य तपोयोग	२१६
मतिर्मे केवल मूते	३५४	मन्त्रास्त एव धर्मा स्युः	२७१	महाकल्याणकं नाम	२३६
मतिभ्रुतिम्या निन्नापम	२१३	मन्त्रिणस्तस्य भूताय	४५५	महाजवजुषो वनवाद्	२७
मत्त्वङ्गवारिवाराशि	३८७	मन्त्री च फल्गुमत्याख्यो	४५०	महानपोधनायार्चा	२४२
मत्वा नात्वा निज	४८३	मन्त्री प्राग्भोगमुजो	५०९	महादानमधो दत्त्वा	२६५
मत्वाऽभो गत्वा रक्षमीम्	१२६	मन्त्रेणानन शिष्यस्य	३१०	महादिरयमुत्सृष्ट	१३४
मन्वति तनुमान्तरन्	४१	मन्त्रेणानन सम्मन्त्र्य	३०५	महाध्वरपतिर्देवो	१७०
मन्त्रवरतापाना	२३१	मन्त्ररभिस्तु सस्कृत्य	२९१	महागजघटावधो	२००
मन्त्राननमत्तप्त इति	४७४	मन्त्रोभोऽक्रियायां च	३०३	महान्ति गिरिदुर्गाणि	६९

महापगाभिरित्याभि	१२३	मानम्नम्भस्य पर्यन्ते	१३७	मूक श्रेय पुरे जात	४९१
महापगारयस्येव	६३	मा नाम प्रणनि यम्	१७८	मूर्च्छित प्रेममद्भावात्	४३७
महावलनि निधिप्त-	२०९	मामजैपीत् मन्नामी मे	४६७	मूर्त्यादिष्वपि नेतव्या	२८५
महाबाहुस्ततश्चाभूद्	५०९	मामधिक्षिप्य कन्येयम्	३८७	मूर्धाभिपिक्ते प्राप्त-	२२१
महाविधरोद्रमङ्ग्राम-	२०७	मायया नाम्नि दान्तेति	४६६	मूर्ध्नि पद्महृदोऽग्रास्ति	१२३
महाभिपेकसामग्रया-	२६१	मायात् पद्मय विद्याप्रभावात्	४८६	मूलम्कन्ध्याग्रमध्येषु	३७२
भोगैर्नृपैर्कैश्चिद्	६३	मार्गज न्यितमुद्गय	४८१	मूलोत्तरगुणेष्वन्त-	३२२
माना वपुष्मन्तो	१६१	मार्गविभ्रगहेतुत्वाद्	४९९	मृगाङ्गस्य कल्ङ्कोऽयम्	३६८
महमह कृत्वा	२४०	मार्गाश्चिरन्तान् येऽत्र	४३०	मृगै प्रविष्टवेगन्ते	१३५
महमहापूजाम्	५०७	मार्गे प्रगुणमन्त्राग	३९९	मृगमृगैरिवापातमात्रभग्नै	४०८
ममुकुटवद्भानाम्	३३	मार्गे बहुविधान् देशान्	३५	मृणालैर्ङ्गमावेष्टय	२६
ममुकुटवद्भानाम्	२०१	माहान्मप्रच्युतिम्नावत्	३३२	मृणालैरधिदन्ताग्रम्	७५
ममुकुटवद्भानाम्	८	मित्रयज्ञ म्रयभूञ्च	३५७	मृदवस्तनव स्निग्धा	३६६
मामुकुटवद्भानाम्	२४२	मित्रान्त्व पञ्चधा माष्ट-	५०५	मृण्यता च तदस्माभिः	२०९
माम्नत भवेत् कृत्स्न-	२६९	मित्रात्वमन्ननाचाग	५०४	मेखलाया तृतीयस्याम्	१४०
महाहास्तिरुविस्तार-	४०७	मित्रग्रामदोद्धत कोऽपि	१५५	मेखलाया द्वितीयस्याम्	३१९
महाहिरण्यमायामम्	२३	मुकुले वा मुखे चक्रे	४३२	मेघप्रभञ्च चण्डासिप्रभा-	३९५
महिम्ना गमिन गान्तम्	२१६	मुक्तमिहप्रणादेन	११९	मेघप्रभमुक्तेत्वादि	४२८
महिम्नाऽस्य तपोवीर्य-	२१६	मुक्तस्तु न तथा किन्तु	३३५	मेघप्रभो जयादेगाद्	४१०
महो व्योमवाजो मूर्य	३८८	मुक्तात्मना भवेद् भाव	३३९	मेघस्वरो भीमभुज-	३७०
महीशेनेति सप्रोक्ता	५०१	मुक्ताफलाच्छमापाय-	१६०	मेघान्धकारितामेष-	१६४
महेन्द्राद्री समाक्रामन्	७०	मुक्तेतरात्मनोर्व्यक्त्यै	३३७	मेघा सत्त्वजवोपेना	२७
महोत्सङ्गानुदग्राङ्गान्	८६	मुक्त्वा कुमारमभ्येत्य	४९२	मैथुनस्य च सस्मृत्य	४९७
महोपवामम्लानाङ्गा	१६९	मुख रतिसुखागार-	२२४	मैथुनाय नृप क्रुध्वा	४७३
मा निवार्य सहायान्तीम्	४१६	मुखमुद्भ्रु तनूदर्या	२२९	मोक्षो गुणमयो नित्यो	३६१
मा स्वकार्ये स्मरेत्युक्त्वा	३६२	मुखरैर्जयकारेण	११०	मोहपाश समुच्छिद्य	४९४
मागवायितमेवास्य	६६	मुखेन चन्द्रकान्तेन	१७६	मोनाव्ययनवृत्तत्वम्	२४४
मा मा मागववैचिताम्	४९	मुखेन पङ्कजच्छायाम्	१७६	म्लापयन् स्वाङ्गसौन्दर्यम्	२८५
माघकृष्णचतुर्दश्याम्	५०७	मुखैरनिष्टवाग्वह्नि-	१७२	म्लेच्छखण्डमखण्डाज्	१०८
माता पिताऽपि या यञ्च	४५९	मुख्यमाना गुहा सैन्यै	१२९	म्लेच्छराजसहस्राणि	२०७
मातापितृभ्या तद्दृष्ट्वा	४५९	मुदा निष्पादयामास	३७२	म्लेच्छराजादिभिर्दत्ता-	२२३
मातापितृभ्या प्रादायि	४५५	मुद्गराद्यभिघातेन	३३८	म्लेच्छराजान् विनिर्जित्य	४३०
माद्यन्ति कोकिला शश्वत्	२२	मुनयोऽपि समानाश्चेत्	१८३	म्लेच्छाचारो हि हिंसायाम्	३४६
माद्यन्मलयमातङ्ग-	३७७	मुनि रतिवर प्राप्य	४९७	म्लेच्छाननिच्छतोऽप्यज्ञान्	१७८
माघवीलतया गाढम्	२१०	मुनि हिरण्यवर्णम्	४६८	य	
माघवीस्तवकेष्वन्त	२२	मुनि पृथक्प्रदेशस्थाम्	४६८	य नत्वा पुनरामनन्ति न पर२३९	
मानखण्डनमभूत-	१६०	मुनिभ्या दत्तदानेन	४५६	य कोऽप्यकारणद्वेषी	१५२
मानत्वमस्य सघत्ते	३१४	मुनिमन्त्रोऽयमात्मातो	२९६	य पूर्वापरकोटिम्याम्	८८
मानम ज्ञाजितैर्भोगै	१८३	मुनिस्तद्वचन श्रुत्वा	४६९	य ममग्रैर्गुणैरेभि	३४०
मानमेवाभिरक्षन्तु	१८३	मुनीन्द्रपाठनिर्घोषै	१३५	य न्युत्थो जगता त्रयस्य	२३८
मानयन्निति तद्वाक्यम्	१२१	मुमलस्थूलधाराभि	१६४	यक्षीभूता तदागत्य	४९६
मानन्तम्भमहाचैत्य-	३१८	मुहु प्रचलदुद्वेल-	३९	यच्च द्रष्टृकपाटादि-	२६५

यज्ञोपवीतमस्य स्थातु	२७८	यथा किल विनिर्याति	३२४	यावज्जीव व्रतेष्वपु	१६५
यतिमाधाय लोकाग्रे	२५६	यथादाय भवज्जमी	४४२	यावन्मर्याति सेनानी	१२८
यतोऽक्षरकृतं गवम्	३४६	यदाय त्यक्तवाह्यात्	२६६	यावद् विद्यासमाप्ति स्यात्	२५०
यतो नि शेषमाहार	२५६	यदि देशादिसाम्य	४६५	या सुरेन्द्रपदप्राप्ति	२८८
यतोऽय लघसंस्कारो	२८०	यन् धमकणादित्यम	४६४	याऽमो दिवोऽवतीर्णस्य	२८८
यतो यतो बल जिष्णो	६९	यदिष्ट तदनिष्ट स्याद्	४४२	युक्तं परमपिलिङ्गेन	३१०
यतोऽस्य दहदहकानाम्	६२	यन् स्यात् सवसप्राध्या	३८९	युक्तमानया गुणाधिक्यम्	३१४
यत्त न सविभागयम्	१५९	यदीच्छाऽस्ति तवत्याह	४८६	युगभार वहेनेक	३५२
यत्परश्चरण दीक्षा	२५३	यदुक्तमानिराजन	१५९	युगादौ कुलबुद्धन	३९१
यत्प्रवृत्तिमिष्टमस्माभि	३१७	यदुक्त गृहधर्मायाम	२७८	युगान्तविप्लवोत्कर्षा	३१७
यत्र नास्त्राणि भिनाणि	१६१	यद्व लघसंस्कार	२७८	युद्धाप्यव चिर शेकुन	४०५
यत्रो मग्नजला सिन्ध	११४	यद्विभ्रान्तिविमूढन	१४९	युवा तु दोबली प्राज्ञ	१७२
यत्ससारिणमात्मानम्	३३८	यद्वचचन्द्राकविम्रोत्थ	३१७	युवाभ्या निजित् काम	३८३
यथा कालायमाविद्धम्	३१४	यद्वचच प्रतिभू कश्चित्	३४५	युष्मत्पादरज स्पर्शाद्	५०
यथा क्रममतो ब्रूम	२७०	यदवय भिन्नमयदि	४२७	युष्मत्प्रणमनाभ्यास	१६०
यथा खल्वपि गोपाल	३४४	यन्नाम्ना भरतावन्तित्वमगमत	२३८	युष्मत्साक्षि तत् कृत्स्नम्	२५८
यथाख्यातमवाप्योऽ	४९९	यमसबन्धिनिकत्यागम्	३७२	युष्मादृशामलाभे तु	२७५
यथा गोपालको मौलम्	३४३	ययु करिभिरारुद्धम्	७५	यूय वनवराहाणाम्	२६
यथा च गोकुल गोमिन्यायात्	३४७	यवीयानघ पण्डस्त्री	२८	यूय त एव मद्राहा	४७
यथा च गापो गोयूथम्	३४४	यवीयान् नृपनादूलम्	२५	यूय निस्तारका देव	२७५
यथा जिनाम्बिका पुत्र	३६	यश पाल सुजावत्या	४९४	यूय सर्वेऽपि सायन्तनाम्भोजा	४४६
यथा तथा नरद्रोऽपि	३४३	यश पालमहीपाल	४९५	यूयमाध्व ततस्तूष्णीम्	३९२
यथा तव हृत चेत	१९१	यशस्यमिदमेवाय	१५८	ये विशुद्धतरा वृत्तिम्	२८२
यथा दृष्टमुपयस्य	३१९	यशस्वतीसुनन्दाम्याम्	५६	ये केचिच्चाक्षरम्लेच्छा	३४६
यथाघतमसो दूरात्तकथम्	१४४	यशोधनमसहाय	१८४	ये तस्यास्तनुनिर्माणे	३६६
यथाक्षमुपयुक्त सत्	३२१	यस्त्वतीन्द्रियविज्ञान	३३६	येन प्रकाशितं मुक्ते	३५१
यथायदशनपान	१४२	यस्त्वता द्विजसत्तमरभिमता	२६८	येनाय प्रहितं पत्रो	४७
यथायवमध्य च	४८	यस्त्वतास्तत्त्यतो ज्ञात्वा	२७६	येनाऽसौ धक्त्वतित्वम्	४८५
यथावदभिपिकनस्य	२६१	यस्य दिग्विजय भेषकुमार	३४६	यनास्य सहजा प्रज्ञा	३२९
यथाविभवमत्रापि	२४८	यस्य दिग्विजय विष्वग्	१२५	य य यथा यथा प्राप्ता	३७४
यथाविभवमत्रष्टम्	२४७	यस्य यत्र गता स्याददृक्	३७९	येपामय जितसुर समरे	४२३
यथा विषयमवैषाम्	१८१	यस्थाष्टादशकोटधोऽस्वा	१२५	योग समाधिनिर्वाणम्	२५६
यथाऽम्मर्षितुत्तन	२५२	यस्योत्संगभुवो रम्या	१२४	योगक्षमो जगत्स्थित्य	६५
यथास्वं सविभयामी	२२२	या कचप्रहृष्वेण	१६२	योगजा सिद्धयस्तपाम्	१६९
यथ स्थानुगमहन्ति	५३	या कृता भरतशन	२१७	योगजाश्चन्द्रयस्तस्य	२१३
यथा हि कुलपुत्राणाम्	३३३	यागहस्तिनि मासस्य	४७३	योगा पञ्चदश ज्ञया	५०५
यथष्ट मयियो विद्यावाङ्म	५०	या च पूजा मनीद्राणाम्	२४२	योगो ध्यान तन्मर्थो यो	२५६
यथैह बन्धनाभवत्	३	याविनियण नास्यष्टा	२११	याऽनुन्नधरा धीरा	२४०
यथय नल योगात्	३४५	यायात्म्यन परिज्ञानम्	५०४	योऽमुत पञ्चवशो विभु	५१४
यथैव नल मापात्	४४	याऽन्तोषनिनिर्वाण	४२	योऽत्र शेषो विधिमुक्ता	२६६
यथैव नार गजानम्	३४५	याममात्राविष्टायाम्	३४५	यो नामेस्तनयोऽपि	७१५
यथोन्नविधिनवा म्यः	२६७	या वष्टयममो वष्टि	४४२	योऽनुतिष्ठन्त्यतः	२८८

गे नेतेव पृथु जवान	५१४	गन्तानि द्विनयान्दम्	२०८	राजन् राजन्वती भूयान्	१५५
गे योजनजनाच्छ्रायो	१२४	गन्तान्पि विचित्राणि	३१	राजराजन्वता भृगि-	४०५
गे वज्रमणिपाकाय	४००	गन्तान्पि प्रयात्रामन्	२२०	राजविद्यापत्रिज्ञानाद्	३३४
योपिता मधुगण्डे	३५८	गन्तान्यमन्यनर्गणि	५०	राजविद्यान्वतन्त्रोऽम्	३०८
योपितो निष्कमानाभि	१३	गन्तान्येतानि विचित्रानि	२३६	राजवृत्तमिदं विद्धि-	२६४
योपितोऽयमदायन्त	३१५	गन्ताय परंपरानाम्	१३०	राजवृत्तिमिमा मय्यक्	२६३
योर्जस्मिन्नुयं कालादौ	३५१	गन्तावनर्गि याहि	४८०	राजमिद्वान्तनस्वजो	३२९
योऽयं जीववनाकार-	३३१	गन्त किमग्नि वा कृ-यम्	१८४	राजहम कृताद्यात्मा	३४
योवनेन समाक्रान्ताम्	४००	गन्तश्चान्यन्तगन्तजम्	५०	राजहमे कृतोपास्य-	१५
योवतोऽन्तर्जन्मेपाद्	१५३	गन्तप्रत्ययमात्राऽयम्	१४१	राज मेग्य मेवरा	१९
र		गन्ताविद्विमलानादम्	४०१	राजा कदाचिद्वार्जोद्	४५१
रक्त करै नमाञ्जितम्	४१८	रयकटपा पश्चिमे	२००	राजाऽऽराजितस्तस्मान्	५१०
रक्षाम्युद्यता येज	३३१	रयचक्रममन्पीडान्	४५	राजा राजप्रभो लक्ष्मीवती-	३५९
रक्षावृत्तिपश्चिमे	१३६	रयवाहो रयानद्	२३	राजा वित्त ममाशाय	३४८
रक्ष्य देवमन्त्रेण	३३	रयवेगानिलोदन्तम्	२९	राजा नास्त पुं श्रेष्ठो	४५३
रक्ष्य मृष्टयविकारोऽपि	३१३	रथा प्रागिव पर्याप्ता	३०५	राजा लुप्तोचना चावरोप	४३५
रक्षितश्चलिर्न क्षोभे	४३	रथाङ्गाणि गन्त्युच्च	४४	राजोक्तिर्मयि तस्मिन्	१८२
रज मत्तममे नृद्व	२०२	रथान्नजनस्मन्मय	४०४	राजोक्तिन्मयि राजेन्द्र-	१०६
रन्तामपि प्रकृत्यम्	३२३	रथान्नव तथा दुष्टानष्ट-	४००	राजामावमथेषु शास्तजनता	३२
रन्म्वला मही स्पृष्ट्वा	७३	रथिता रथकटपामु	१०२	राज्य कुलकलत्र च	१५५
रवो वितानन् पीप-	०७	रथितो रथकटपानु	२०१	राज्यादिपरिवर्तपु	३४५
रञ्जिताञ्जनमन्त्रेणा	३३५	रथोऽजितजयो नाम्ना	२३४	राज्यामिषेचने भर्तु	२२१
रणभूमि प्रमाद्वारात्	२०२	रथोद्धतगतिर्लोभाद्	२९	राज्ये न मुक्तेलोऽपि	३४१
रणभूमि ममालोक्य	४०१	रथो मनोरथान् पूर्व	४५	राज्ये मनोभवस्यास्मिन्	१०२
रानुवर्तनार्गाद-	१०३	रथोऽस्याभिमतता भूमिम्	४५	रात्राविन्दुदिवाम्भोजम्	३६७
रावमाने नि गवयो	४३३	रथ्या रथ्यावमवद्वान्	०	रात्रौ नन्वरो दृष्ट्वा	४७३
रति चारितमर्थेप	२१०	रमणा रमणीयाश्च	१९०	राष्ट्राण्यवधयस्तेषाम्	६९
रति कृष्णभिधानस्य	४३७	रम्या नीरतनच्छाया	८३	रिपु कुपितभोगीन्द्र-	४०६
रतिपिङ्गलमजस्य	४३०	रम्ये शिवकरोद्याने	४३६	रुद्रोरोधनाक्षुण्ण-	९६
रते कामाद् विना नेच्छा	४३९	रराज राजराजस्य	१०९	रुद्रवा मात्प्रवतीतीरवतम्	६८
रत मपतिरयम्	२३६	रराज राजराजोऽपि	२०४	रुपिता कञ्जकिजर्क	२०
रत्न रत्नेषु कथ्यैव	३८६	रवि पयोधरोन्मङ्ग-	१४३	रुद्रो गगाङ्कुरैश्चिन्ने	४१५
रत्नतोरणविन्यासे	३२४	रविरविरलानश्रून्	१०४	रुपतेजोगुणम्यान-	२८०
रत्नतोरणसंकीर्ण-	३३१	रविरागावधू त्त-	३२०	रेजु मृयेण सप्रोक्षता	३२४
रत्नवस्त्रं वरण प्रपद्यामि	२०४	रविबोधस्तथान्ये च	५०२	रेजुर्दुःखमन्मया	३६४
रत्नद्वीप जिघृक्षुभ्यो	५०६	रवे किमपाधोऽयम्	१८८	रेज्वनदना नष्ट	२१६
रत्नमालातिरोचिष्णु	२३४	रथान् रज्जुविभ्राजि	३८६	रेजे वन्त नम्या	२०९
रत्नायुचित्रितलं	४३	रत्नोन्मत्तन हास्	४००	रेने न नन्दव्योऽपि	२१०
रत्नायुचिन्ति विभ्रन्	२६१	रागदेषा मन्मज्ज	२५६	रोगान्नातन देहम्	२११
रत्नायुचिन्ति विभ्रन्	२३४	रागादीन् दानमज्ज	३५२	रोगेऽवोऽयं ननुगीत-	१५
रत्नायुचिन्ति विभ्रन्	३८०	रागादीन् दानमज्ज	३५२	रोगेऽवोऽयं ननुगीत-	१५
रत्नायुचिन्ति विभ्रन्	२१८	रागादीन् दानमज्ज	३५२	रोगेऽवोऽयं ननुगीत-	१५

रोमराजीमिवानीलाम्	१४	लोकाप्रवासस्त्रलोकम्	३४०	वनस्थलीस्तरुच्छाया	७२
रोम रजोमिराकीणम्	८	लोकाप्रवासिन शब्दात्	२९३	वनस्पतीन् फलान्नाम्	८३
रौप्यदण्डपु विन्यस्तान्	२९	लोकानदिभिरप्रमापरिमित	५६	वनान्वय वयस्शिक्षा	३९५
ल		लोलतरङ्गविलोलितदृष्टि	५३	वनामोगमपयन्तम्	८८
लक्ष कलासमासाद्य	५०६	लोलस्या वयसज्ञस्य	४७०	वनितातनुसभूतकामाग्नि	४६३
लक्ष्मी पुरोमिवामोघ्याम्	३७८	लोलुपो नकुलार्योऽम्भाद्	५१०	वन वनगजजुष्टो	३६
लक्ष्मी सरस्वती कीर्ति	३६१	लोलोऽमिहस्तनिधूत	१४	वन वनचरस्त्रीणाम्	१२८
लक्ष्मी सा सवमोऽग्राभूद्	३७९	लोहस्यवोपतप्तस्य	१८१	वनेषु वनमातङ्गा	१६७
लक्ष्मोप्रहासविशन्	३३	व		वनोपान्तभुव सैन्यै	९७
लक्ष्मोवाग्वनितासमागम	३३०	वशमात्रावशिष्टाद्ग्री	४०३	वन्दनाथ कृता माला	३२४
लक्ष्मोवती गहाणेमाम	४२६	वक्षतप्रामाण्यतो देव	१४२	वन्नारुणा मुनोद्गाणाम	१४५
लक्ष्मीस्तस्यक्षितुस्तन	३६७	वक्षत्रमस्या वशाङ्कस्य	२२९	वदारोभरताधिपस्य	३४९
लक्ष्म्या ललतामवोरसि	९४	वक्षत्रवारिजवासिया	३८४	वदिहवा घममाकण्य	४७६
लक्ष्म्यसेत्रादीप्त्या	४०६	वक्षत्रेष्वाभरणीणाम्	१४५	वन्दित्वा नागरा सर्वे	४६८
लक्ष्म्यत यदि केनापि	३८९	वक्षत्रपि गुणवत्पस्मिन्	४६	वन्दित्वा वन्द्यमहन्तम्	२८७
लक्ष्म्यागोकाभिभूत सन्	४८४	वक्ष स्पलेऽस्य रुक्मे	७	वन्दित्वा सिद्धकूटारूपम्	४८७
लज्ज सम्पकमकेण	४१४	वङ्गाङ्गपुण्ड्रमगधान्	६७	वन्दिभागधवन्देन	४१८
लतायुवतिससक्ता	८३	वचोभि पोषयन्त्यव	१८३	वन्या स्तम्बरमा	२६
लतालयप रम्यप	११	वक्षदेतोमहावोध्याम्	४७०	वन्यानकपसभोग	७४
लवच द्रवल्समोच्च	४१५	वक्षद्रोष्याममुष्य वक्षदिव	५७	वप्रान्तभुवमाघ्रातुम	१२
लवप्रसाद इत्युक् वा	४३१	वक्षपञ्जरमुद्भिद्य	५०६	वय किमिति नाहूता	४३६
लव्यवणस्य तस्यति	२५२	वक्षस्थिवचन वाञ्छ	२२३	वय जात्यव मातङ्गा	७५
लवादेशोऽप्यहं हृमि	४७२	वटविम्बप्रवालादि	३६५	वय निस्तारका देव	३४७
लज्जितावच पुरगारि	३२४	वटस्यानवटस्याश्च	१०७	वय वचोहरा नाम	१७७
लज्जयन्त्युचिता क्षयाम्	२७८	वत्सरानशनस्यान्ते	२१७	वयमपि वरमाङ्गा	५१०
ललद्वालययो लोल	२४	वदनोऽस्य मुक्ताभोजाद्	१४२	वयमेव महादेवा	३३४
ललाटपट्टमारुह	१७६	वद प्रयाति क पन्था	४८५	वयसाधिक इत्यव	१८२
ललाटभोगमतासाम्	२२४	वर्ध विधाय न्यायन	४०२	वर वनाधिवासोऽपि	१८३
ललाट यदि केनापि	४५१	वज्जीय न किमिति हन्त	७६	वर विष यदेकस्मिन्	२०६
लवङ्गलवलीप्रायम्	७१	वन वनगजैरिद जलनिधे	५६	वरणावरणास्तस्यु	९८
लाटाललाटसधृष्ट	९१	वन विलोकयन् स्वरम्	७४	वराहाररति मुक्त्वा	९८
लावण्यमन्त्रधो पुषु	३८०	वनपिमदामोद	७४	वणलामस्ततोऽस्य	२७५
लावण्यायमभिसारयन्	५५	वनप्रवशम् भुग्वा	९९	वणलामोऽयमुद्दिष्ट	२७५
लावण्यापि न सभोग्यम्	४१	वनप्रवशिभित्त्यम्	१३५	वर्णित पातिनो नते	२८१
लायै स्वकृतपन्थाम	८४	वनराजोद्वयेनेयम्	१९	वर्णोत्तमस्व यद्यस्य न	३१२
लिखित सागिण मुक्ति	१२६	वनराजोस्तवामोदा	५	वर्णोत्तमस्व वर्णेषु	३१२
लेखसाध्यपि वार्योऽमन्	१५८	वनरणमिरारुन्	२५	वर्णोत्तमानिमान् विष	२८१
लभभक्षमुरक्ष्म वरतनो	७९	वनरोमावलीस्तुङ्ग	८६	वर्णोत्तमो महीदेव	२५२
लावचुडामणस्तस्य	३२८	वनवेनी ततोऽतीत्य	१३९	वदमानो ध्वनिस्तूर्ये	३९५
लोकापालाय दम्बात्मक माम्	४५	वनवेनीद्वय प्रोच्च	१४६	वर्परम्भो युगारम्भे	३७
लोकापालोऽपि मन्त्रात्	४५०	वनवदीपया पन्थद्	१३८	वर्पोमोभिरयासन्न	२९
लोहरय कुलापान	१०५	वनवनीमिथ वत्ते	१९	वलिस्नयनमियन्य	२४२

बलीना सकुसुमपल्लवाग्र-	८८	बाहयन् तमानोक्य	४०३	विदितप्रस्तुतार्थोऽसि	४२८
बलोवन ततोऽद्राक्षीत्	१३८	विक्रमन्ति नरोजानि	१९	विदितसकलतत्त्व	५१३
ववर्षत्क्षिर्वाष्टि वा	४०५	विकाग वन्जुजोवेय	३	विदित्वा विष्टराकम्पाज्जयम्	४२०
ववर्मन्द स्वस्थान-	२१८	विकागितविनेयाम्बु	५०४	विद्वग्स्थैर्न युष्माभि	१५८
ववौ मन्द गजोद्वष्ट-	३८२	विक्रम कर्मचक्रम्य	३५१	विदेश किल यातव्यो	१०२
ववौकरणपुष्पाणि	३३२	विक्रिया न भजन्त्येते	३४६	विदेहे पुष्कलावत्याम्	४७०
वसस्तत्र महाकालस्तम्	४८८	विक्रियाऽष्टतयी चित्रम्	२१४	विद्धि मा विजयाद्वस्य	१०६
वसन्ततिलकोद्याने	४३९	विरजानविजय श्रीमान्	३८३	विद्धि मा विजयाद्विह्वम्	१००
वसन्तयोवियोगो वा	३८२	विगतच्छन्च्छ्रम शीघ्रम्	४८७	विद्धि सत्योद्यमाप्तोयम्	२७०
वसन्तानुचरानोत्त-	३७८	विग्रहे हतगमित्वात्	३९८	विद्यया शवरूपेण सद्य	४८४
वसन्ति स्मानिकेतास्ते	१६६	विघट्टा तमो नैगम्	१८७	विद्यावरधरावीश	१२८
वसुधारकमित्यासोद्	२३४	विघट्टय रथाङ्गानाम्	१९३	विद्यावरधरामार-	१२८
वसुपालकुमारस्य	४९३	विचाय कार्यपर्यायम्	४३४	विद्याधरीकरालून-	२१०
वसुपालमहीपालप्रभ्नाद्	४९३	विचित्रपदविन्यामा	३५५	विद्याधर्य कदाचिच्च	२१७
वसुपत्यापगामद्वि-	६८	विचिन्त्य विष्टविघ्नानाम्	४२१	विद्याश्रितेति सप्रीतः	४८४
वस्तुवाहनराज्याङ्गै	४७	विचूर्यन् गर तावत्	४७	विद्युच्चोरस्त्वमासाद्य	४७६
वस्तुवाहनसर्वस्त्रम्	६४	विचेर स्वगुग्द्वूत-	६७	विद्युद्वेगा ततोऽगच्छत्	४८३
वागाद्यतिशयैरेभि	३३५	विच्छिन्नकेतव केवित्	४०४	विद्युद्वेगाऽभवद्	४९८
वागाद्यतिगयोपेत	३३४	विजयमित्रो विजयिलो	३५७	विद्युद्वेगाऽवलोक्य	४८३
वागुप्तो हितवाग्वृत्या	२८७	विजयायेत्यथार्ह्य-	३०४	विद्युद्वेगाह्वय चोरम्	४७१
वाग्देव्या सममालापो	१६४	विजगार्द्ध समारुह्य	४३४	विधवेति विवेदाधीर्नृक्षम्	३६०
वाचयमत्वमास्थाय	१६९	विजयाद्विगिरेरस्य	४६६	विधातुमनुरक्तानाम्	४३९
वाचयमस्य तस्यासीन्न	२१३	विजयाद्विजयेऽप्यासीत्	१०१	विधाय चरणे तस्य	३४५
वाचयमो विनोतात्मा	२५४	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	१५	विधाय प्राक् स्वय प्राप्य-	४८०
वाजिन प्राक्कशाघाताद्	४०३	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	३३	विधायोष्टाङ्गिकी पूजाम्	३६८
वाज कपाटोर्युग्मम्	११२	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	४२१	विधिरेष न चाशक्ति	११९
वाड स्मरामि सौभाग्यभागिन	४८०	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	१०४	विधु ज्योतिर्गणनेव	४३५
वाणामविरतावाणाम्	८७	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	१७८	विधुं तत्करसस्पृहाद्	४१४
वाणं कुसुमवाणस्य	१९	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	११६	विधुविम्ब-प्रतिस्पृष्टि	८
वातपृष्ठदरीभागानृक्षवत्	६८	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	१००	विध्वस्ते पन्नगानोके	११८
वाताघातात्	५४	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	४८४	विनयाद् विच्युत राज-	४५०
वात्सक क्षीरम्पोपाद्	१२	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	४७	विना चक्राद् विना रत्नै	३९०
वादिनेव जयेनोच्चै	४००	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	४०६	विनियोगास्तु सर्वासु	२४५
वापीकूपतडागैश्च	१७५	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	१२०	विनिवर्तयितु शक्ता	४८४
वाराणसी जितायोध्या	३७४	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	१५८	विनिवार्य कृतकोभम्	२०४
वाराणसीपतिविचित्राङ्गदो	५०६	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	४२८	विनीत सबरो गुप्तो	३५७
वाराणसी पुरी तत्र	३६३	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	५०२	विध्यश्चीस्ता पिता तस्या	४३९
वात्तिवारिजकिजल्क-	७३	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	७८	विपक्षखगभूपालाम्	४२७
वाता विगुडवृत्या स्यात्	२४२	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	२८	विपरीतामतद्वृत्ति	३४
वातगहे जयो रात्री	३६०	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	७८	विपयसि विपयैति	३८८
वासन्त्यो विकसन्त्येता-	२२	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	४०५	विपाककटुनाम्नाज्जयम्	२०६
वासवन्त महाशैलम्	६८	विजयाद्विजयैऽप्यासीत्	८३	विपाकनूत्रनिर्जात-	१६३

विप्रकृष्टान्तरा वशास्माद्	१२०	विशाला नालिका सिन्धुम्	६८	वाचिबाहुभिराधस्तम	४१
विप्रकृष्टान्तरावात	१०६	विशालाक्षी महावाल	३५७	वीचिबाहुभिरुभयत	३९
विबलोऽपि स्वजातीयो	१५४	विशुद्धकुलगोत्रस्य	२८३	वी यमाना विधुस्पर्दि	३७९
विबभाजम्बर धञ्ज	७३	विशुद्धकुलजात्यादि	२७७	वीतशोकाह्वया तस्य	४९१
विबभु पवनोद्धूता	६२	विशुद्धवृत्तयस्तस्मात्	२८२	वीरपट्ट प्रधध्यास्य	३८२
विबध्वासनवम्पेन	४३८	विशुद्धस्ता वृत्तन	२७६	वीरपट्टस्तदा सोढो भुवो	३८७
विभक्ततोरणामुच्च	११०	विशुद्धावरसभूतो	२७७	वीरपट्टेन बद्धाऽयम्	४२०
विभि न्न वैतकी सूची	२३२	विशुद्धा वृत्तिरस्याथ	२५२	वीरपट्टेन परिप्लवत	३६५
विभूत्वमरिषक्रप	३५	विशुद्धावृत्तिरपाम	२४३	वृणते सबभूपाला	३६९
विभोबलभरक्षोभम्	६६	विशुद्धिरुभयस्मास्य	२७७	वत परिमितरथ	३१८
विभ्रान्तमतिविस्तीर्णम्	१७६	विशपतस्तु तत्सग	३२२	वृत्त शशीव नक्षत्र	४३४
विमतरैव तद्गह	४७२	विशेषविषया मात्रा	३१५	वृत्तस्थानय तान् विधाय	३१६
विमत्सराणि चतासि	१५२	विशोधितमहावीथी	२७५	वृत्तादिनात्मनीनाडी	३३५
विमवत ध्यवतसुत्कारम्	७५	विश्व विन्त्रं पन्थन्	४६१	वृथाभिमानविध्वसी	४१५
विमवतकडकण पश्चात्	२५१	विश्वक्षत्रायोगोगम्	१७७	वृश्चिकस्य विष पन्थात्	३६१
विमवतप्रग्रहर्षाहं	४५	विश्वदिग्भिमय पूव	१५२	वृषभाम नमोऽशेष	७५०
वियददुग्धुभिर्मिन्द्र	१४१	विश्वमडगसप्तपत्या	४४१	वृषा ककुदसलग्न	५
वियदविभूतिमाक्रम्य	७३	विश्वविद्याधराधीशम्	४०९	वद पुराणं स्मृतम्	२७०
विरक्तो हृषानुजीवी स्यात्	३४४	विश्वविन्धमराह्लादी	४२६	वदनाभिभवाभावाद्	३३९
विरज्य राज्य सयोधम्	३५९	विश्वस्य धमसङ्घस्य	३१९	वदनाभ्याकुलोभाव	३३८
विराग सबवित सार्ध	२७०	विश्वगात्रास्य तद्योग्य	४२५	वदिका सामतिक्रम्य	१०८
विशुद्धावद्धवागजाल	१४३	विश्वेश्वरा जगन्माता	२६०	वदिकातोरणद्वारम्	२८
विरूप रूपिण क्षापि	२८९	विश्वेश्वरादयो त्रया	२७१	वदिकैव मनोजस्य	३६५
विरूपकमिद मुद्धम्	२२	विषवण्टवजालीव	२०९	वद्या प्रणीतमग्नीताम्	२५१
विरजुरसनापुष्प	२	विषयोक्त्य सर्वेषाम्	४३३	वेलापयत्तसमूच्छत्	४४
विरोधिनीऽप्यभी मक्षत	२१५	विषय वत्सकावत्पाम्	४८५	वेलासरित्करा बाहि	९३
विलङ्घ्य विविधान् देशान्	९२	विषयेष्वनभिष्वङ्गो	२५३	वष्टितं वद्वधनुषा	४३६
विलसत्पद्मभूताम्	१५	विषमऽस्मिन् सगाक्षमाभत	४५४	वणयस्तण्डुलमन्त्रा	९०
विलसद्ग्रहामुत्रण	२६२	विषाणोल्लिखितस्कन्धो	९८	वैमनस्य निरस्येषाम्	४७५
विलास्य कृतपण्यादि	४९२	विष्वगापूयमाणस्य	१०१	वरक्राम्यति य स्मास्मिन्	६४
विलोक्य त वणिक्पुत्रा	४९६	विष्वग्विस्तारि दाक्षिण्यम्	८४	वेराग्यस्य परा कोटीम्	१६२
विलोक्य विलयवालि	३९९	विसभङ्ग कृताहारा	२६	य वैश्ववणदत्तोऽपि	४९७
विलोकीचिघट्टाद्	१४	विसर्जितं च सानुजम्	१००	वशिष्टम् वि कृतम्	३४७
विलोलितालिशाय	१२८	विस्तीर्णजनसभोग्य	१४	यक्तये पुरुषाथस्य	३३५
विवा विधिवदिय	७६	विसम्भजनन पूवम्	४६४	व्यजनैरिव शास्त्रात्	११५
विवास्तु भवस्य	२७४	विहरतो मही वृत्तनाम्	१६७	ययो म विक्रमस्यास्ताम्	९२
विशाक्षो वणलान्ध	२४४	विहरत्यन्ता मधस्वर	५००	व्यलाकिष्ट स भूषोऽपि	४९६
विविक्तरमणीय	१२२	विनाय भाभिहानिन्म	४८९	व्यवहारनयापेक्षा	३०१
विशिष्टानामभिव्याद्	१६६	विनास्तु प्रतीतार्थो	२६७	व्यवहारशिक्षां ग्राह	३१३
विशिष्टिन् चारमा	२९५	विनास्तोपतहार	२६७	व्यवहारशिक्षाया स्याद्	३१०
विशिष्टान् जनपदाद्	२८६	विहृत्य गुचिरं विनयजन	५१४	व्यसनेऽस्मिन् दिनशस्य	१८५
विश्रान्ति सन्नायपाम	१८०	वीक्ष्य कातोदरणात्मा	२६०	व्यापारितन्त्रा सत्र	१८

व्याप्योदर चलकुलाचल-	५१	जयुगोता निकुञ्जेषु	२३	शिखरैरेप कुत्कील-	१२३
व्यायता जीवितायेव	११३	जयगामनालादीनाम्	२७७	शिखरोल्लिखिताम्भोद-	१३२
व्यालोलोमिकरास्पृष्टं	१५	जगन्लपगनानता-	१९३	शिखामेतेन मन्त्रेण	३०९
व्यावहासीमिवातेनु	६	जगदुपहितकान्तिम्	१६	शिगी सिताशुक सान्त	२४९
व्युष्टिक्रियाश्रित मन्त्रम्	३०८	जगन्निभित्तगर्वाद्	८१६	शितिभिरलिकुलाभै	२२०
व्युष्टिश्च केशवापश्च	२४४	जरभ न गमुत्पत्य	२४	शिर-प्रहरणेनान्यो	४०३
व्योमापगामिमा प्राहु	१८	जरभो रममाद्भवंम्	९८	शिरोपमुकुमाराङ्गी	२२८
व्रजन् मन्द्राश्च कच्छाञ्च	६६	जगत्लक्ष्मोमुगालोक-	५	शिरोहृर्जरामभोवि-	४८४
व्रत च समिति सर्वाः	२१२	जगन्मकरोद्यम्य	१७८	शिरोलिङ्ग च तस्येष्टम्	२४९
व्रत दत्तवत् स्थानम्	४७७	जरण्याज प्रतापानि	१७८	शिरोलिङ्गमुरोलिङ्गम्	३११
व्रतचर्यामतो वक्ष्ये	२४९	जरजाली प्रभु कोऽपि	४७	शिलातलेषु तप्तेषु	१६४
व्रतचिह्न भवेदस्य	२७८	जग्मरुणविद्यावृत्	४०२	शिवानामशिवैध्वनै	१६६
व्रतसिद्धयर्थमेवाहु	२७५	जरमङ्घातमछन्नान्	४००	शिशिरसुरभिमन्दो-	४४४
व्रतानुपालन शील-	३२५	जरा पीष्पाम्स्तव त्वं च	४१७	शिष्टान् पृष्ट्वा च दैवज्ञान्	३७०
व्रतायेनानि दास्याम	४७०	जरीर भर्तुरस्येति	५०७	शीतमुष्ण विरुक्ष च	१६८
व्रतावतरण चेदम्	२५०	जरीर यच्च यावच्च	२२३	शीलानुपालने यत्नो	३२५
व्रतावतरणस्यान्ते	२७५	जरीरजन्मना सैपा	२७७	शुकान् शुक्लच्छदच्छायै	१७५
व्रतावतारण तस्य	२७४	जरीरजन्मसंस्कार-	२८०	शुकावलोप्रवालाभ-	६
व्रताविष्करण दीक्षा	२६९	जरीरत्रितयापायाद्	५००	शुक्लवस्त्रोपवासादि-	२७४
श		जरीरत्रितयापाये	५०७	शुचिप्रावदिनिर्माणै	१३२
शफलीवचनैर्दृता-	१९०	जरीरवलमेतच्च	२०८	शुद्धस्फटिकसङ्काश-	१३६
शकुनि शकुनाद् दुष्टाद्	४५६	जरीरमरण स्वायु	२८०	शुनोऽक्षितस्य सत्कारै	३२२
शकुतो भक्षण मल्लै	४७२	शरैरिखोसैरासक्तैर्विमुक्तै	४११	शुभ श्रुतार्थसिद्धार्थ-	३६९
शक्तिमन्त समासन्नविनेया	५०५	शश शशस्य देव	२४	शुभै पोडशभि स्वप्नै	२५९
शक्तिषेणमहीपालप्रतिपन्नतुज	४५६	शशाङ्ककरजैत्रास्त्रं	१९०	शुश्रुव ध्वनिरामन्दो	१३७
शक्तिपेणोऽस्य सामन्त-	४५४	शशिप्रभा स्वसा देव्या	४५९	शुष्कभूस्वहशास्त्राग्ने	४३७
शक्रप्रिये शची मेनका	४६९	शश्वद्विकासिकुसुमै	२१६	शुष्कमध्य तडाग च	३२०
शङ्कादिदोषनिर्मुक्तम्	५०४	शस्त्रनिभिसर्वाङ्गा-	४०८	शुष्कमध्यतडागस्य	३२२
शङ्कितमिहूतोदिष्ट	१६८	शस्त्रप्रहारदीप्ताग्नि-	२०७	शून्यगानस्वनै स्त्रीणाम्	१९०
शङ्के निशातपाषाणम्	२२४	शस्त्रसभिन्नसर्वाङ्गम्	४१७	शून्यागारस्मशानादि-	१६६
शङ्खात् प्रदक्षिणावर्तात्	२२७	शस्त्रोपजीविव्यश्चेद्	२५०	शूर्पान्नेयानि रत्नानि	९३
शतभोगा च नन्दा च	६८	शक्तिका सह याष्टीकै	२८	शृणु भो नृपणाईल-	२०८
शनै प्रयाति सजिघ्रन्	२३	शाखाभङ्गै कृतच्छाया	२६	शृणु श्रेणिक सप्रण	३५८
शनै शनैर्जनैर्मुक्ता	९	शाखामृगा मृगेन्द्राणाम्	१३५	शेषक्षत्रिययूना च	१७३
शनैराकाशवाराशि-	१८८	शाखामृगा द्विपस्कन्धम्	३१९	शेषो विद्युन्तु नि शेष-	३०७
शनैर्वलिन्दुरखेव सा-	३६८	शान्त तत्त्वप्रसादेन	४३६	शेषोविद्युन्तु प्राक्प्रोक्त	३११
शफरी प्रक्षेपणामुद्यत्	१३	शान्तस्वनैर्नन्दन्ति स्म	२१६	शैलोदग्रे महानम्य	२३६
शब्दपारभागी भव	३०९	शान्तिक्रियामतश्चक्रे	३२३	शोभानगरमन्त्रेण	४५४
शब्दविद्यार्थशास्त्रादि-	२५०	शान्तिपूजा विद्यायाटो	४२७	श्चोतन्मदजलानार-	२००
शमितान्विलविधनमस्तव	४२२	शामन तस्य चक्राङ्गम्	२०३	श्यामाङ्गी नभिरवन्-	३७
शमिता चक्रवर्तीष्ट	५०३	शास्त्रज्ञा वरमेकान्त द्	१५३	श्रावणानात्रिकामन्त्रम्	२५५
शमिता वीरशय्यायाम्	४१८	शिक्षिता बलिन श्वा	३९३	श्रावितानि स्तुतः पञ्च-	५०३

धिय तनोतु स श्रीमान्	३५१	षोडशास्य सहस्राणि	२३३	सच्छायान्प्यसमाव्य	७२
श्रीदेव्यश्च सरिदेव्या	२६२	षोडशतेज्य यामिन्याम्	३२०	सच्छायान् सफलान् तुङ्गान्	११
श्रीदेव्यो जात ते जात	३०५	षोडशव सहस्राणि	२२६	सच्छायान् सफलान् तुङ्गान्	७२
धीपदतं च किष्किण्यम्	७०	स		स जयति जयलक्ष्मी	२१९
धीपालवसुपालाख्यौ	४८०	सयम प्रतिपन्न सन्	४६२	स जयति जिनराजो	१९७
धीपालाख्यकुमारस्य	४७७	सयमस्थानसंप्राप्त	५०३	स जयति हिमकाले	२२०
श्रीमण्डपनिवशस्ते	१४५	सवाहानां सहस्राणि	२२६	स जीयात् वपभो मोह	२४०
श्रीमानानमिताशेष	१३१	सवेगजनितश्रद्धा	१६५	सज्जन दुज्जन कोपम्	३५३
श्रीमानानम्रनि शेष	१२५	सशुष्यद्गन्तनिष्पद	४०६	सज्जमप्रतिलम्भोऽप्यम्	२७७
यत च बहुशोऽस्माभि	४८	ससारावास एपोऽस्य	३३९	सज्जाति सद्गुह्यत्व च	२४५
धृत सुविहित शनौ	२७१	ससारावासनिविण्णा	१६५	सज्जातिभागो भव	३०२
यत हि विधिनानेन	२५४	संसारीद्रियविज्ञान	३३५	सचरद्भोषणग्राह	८६
श्रुतज्ञानदशो दृष्ट	१६८	सस्कारजमना चाम्या	२७७	संचितस्यैनसो हन्त्री	३५५
यतवृत्तक्रियामत्र	२५३	सस्कुतानां हिते प्रीति	३५६	संजातानुशया साऽपि	३६०
श्रुताधिभ्य श्रुतं दद्यात्	२५५	सहाय किममुष्याग्नि	४६	स त स्थदनमारुह्य	८
यता मिश्रविश सिद्धा	१७७	स एवमखिलोप	३३७	स ततोऽवतरन्नद्रे	१०४
श्रुतिस्मृतिपुरावृत्त	२८२	स एवासीद् गृहस्थागाद्	३५७	स तत्र जिनदीपण	४७७
श्रुत्वा तदादिम कल्पे	५०१	स एव घमभावज्य	४५५	स तद्वनगतान् दूराद्	८९
यत्वा सन्वत राजा	४५०	स कदाचिद् गति का	४४८	स तमालोक्यन् दूरात्	८९
श्रुत्वा ता हृदयप्रियोक्ति	४७८	सकलसन्निज्यष्ट	३८९	स तस्मै रत्नमृङ्गारम्	१००
श्रुत्वा पुराणपुरवाच्य	१४९	सकलनुपसमाजे	२१९	स ता प्रदक्षिणीकृत्य	३१८
श्रुत्वा सर्वायवित्सवम्	३७०	सकलमविकल तत्स	४७९	सता वचांसि चतोंसि	४२९
श्रुत्वति देशनो तस्मात्	२७२	सकान्तां रमयामास	२३३	सतां सत्फलसंप्राप्त्य	५०६
श्रुमता भो द्विजम्मय	२७९	स किं न दमशय्यापाम्	१८४	सतां बुधेन मित्रण	४१३
श्रुमता भो द्विजमानो	३६९	स कुटुम्बमिश्रहात्र	१७४	सतामसम्मतां विष्वग्	१८०
श्रुमता भो महात्मान	३३१	सस्त्रीमुखानि सवीक्ष्य	४३२	सति धैव कृतशोऽप्यम्	३४४
श्रष्टिनज्जपराधाया	४९७	सस्त्रीवचनमुल्लङ्घ्य	१९०	स तु न्यायोऽतिक्रान्त्या	३३२
श्रेष्ठिनैव निकारोऽप्यम्	४७४	स गव्युचितशतोत्सेष	४८५	स तु ससृत्य धोमीद्रम्	२६९
श्रेष्ठिनोऽप्य मिथोऽप्यष्ट	४७२	स गिरिमणिनिर्माण	९७	सतीरणमतिक्रम्य	१०९
श्रेष्ठी कदाचिदुद्याम	४४९	सकल्पसुखसतोपात्	४६४	सत्कवेरजुनस्यैव	३५४
श्रेष्ठी किमयमापातो	४७४	सकल्पेऽप्यहितोत्कर्णौ	२२५	सत्कारलाभसंबुद्ध	३२०
श्रेष्ठी कुर्वेरकान्तदध	४९४	सक्रीडतां रथाङ्गानाम्	२४	सत्कृत स जयाशंसम्	२०६
श्रेष्ठी तवेति श्रेष्ठी च	४७४	सक्रीडतो भरताधोऽ	२१७	सत्य दिग्विजये चक्री	१८४
श्रेष्ठर्षाहिंसाफलालोकात्	४७६	सङ्ग्राम ताटकारम्भ	३९६	सत्य परिभव सोढुम्	४८
श्रेष्ठयेव ते तपोहेतुरिति	४६७	सचक्रं धेहि रावेद्र	३५	सत्य भरतराजोऽप्यम्	१५१
श्रीनपाशज्जलिं कृत्वा	२५५	सचक्रं धेहि सयोग्य	३९३	सत्य महैपुधो जङ्घे	२२४
श्रीतान्पथि हि वाक्यानि	३६९	स चक्रिणा सहाक्रम्य	३६२	सत्यजन्मपद तान्तम्	२९३
स्वर्गण विष्टवृणन	२७२	स चन्दनरसस्फार	३७५	सत्यजातपद मूषम	२९
दध स्वर्गे किं निमग्न	४१७	सचामरो चलदंसाम्	३४	सत्यमव यथो रक्ष्यम्	४८
दधमन्विभवद्भोग	२०९	सचित्रपुरपो वास्तु	४७	सत्यभासन ते स्त्रीणाम्	३६१
य		सचिषस्य सुतं दुष्ट्वा	४७३	सत्येवं वृष्टतन्त्र स्याद्	३४६
गङ्गाकल्पमामया	२०	स चप भारतं वपम्	३३१	सत्योऽभूत् प्राक्तनादेश	४८९

सत्त्वोपधातनिरता	३२१	म पुमान् य पुनीते	४७	समुद्रुतास्रमपृक्त-	४०३
सदाचारैर्निर्जरि-	२४०	मत्तगोदावर तीर्त्वा	७०	समुद्रुटरमप्रायै	२०२
सदानमान सपूज्य	३७१	मत्तभङ्ग्यात्मिकेय ते	१४२	ममुद्रदत्तमारुप्यम्	४९७
सदास्ति निर्जरा नामो	४६४	मप्रणाम च मप्राप्तम्	१०५	समुद्रदत्तो ज्वलनवेगस्य	४९८
सदेव बलमित्यस्य	८१	मप्रताप यश स्यान्नु	३९०	समुद्रमद्य पश्याम	३४
सदोऽनिरिय देव	१४६	मप्रताप प्रभा माम्य	४१२	समूलतूलमुच्छिद्य	३९१
सदोपो यदि निर्ग्राह्यो	४३०	म प्रतिज्ञामिवाह्वो	३९	ममेत्यावमरावेक्षा	१३१
सद्गृहित्वमिद ज्ञेयम्	२८३	सप्रभा चन्द्रलेखेव	४६६	समौक्तिक स्फुरद्रत्नम्	३०
सद्य सहरसक्रुद्ध-	४०१	मप्रसाद च ममान्य	११०	सपत्नपन्नपुण्यानाम्	४३७
सद्यो गुरुप्रसादेन	४७१	म प्रेयसीभिर्गात्रद्व-	७२	सपूज्य निधिरत्नानि	२६१
सद्यो भिन्नाण्डकोद्भूतान्	४७५	स बहुतरमराजन् प्रोच्छ्रितान्	४२३	मप्रत्यकम्पनोपक्रमम्	३७०
सद्रत्नकटक_प्रोच्चै	२६२	स बाह्यमन्तरङ्ग च	४९९	सप्रदायमनादृत्य	२८४
सद्रुतस्तपमा दीप्तो	४६५	मभापरिच्छद सोऽयम्	१४६	सप्रधार्यमिद तावद्	१५२
सद्रुतान् धारयन् सूरि	२५५	मभावनानि तान्येप	३२५	सप्राप्तभावपर्यन्ती	४३३
स धर्मविजयो सम्राट्	३२५	मम ताम्बूलवल्लीभि	८३	सप्राप्तश्च तमुद्देशम्	१२०
स धान्यैर्हरितै कीर्णम्	२४१	सम समञ्जसत्वेन	२६५	सप्राप्य नवधा पुण्यम्	४५२
सधूपषटयोर्युग्म तत्र	१३८	सम सुप्रविभक्ताङ्गम्	२२३	सप्रेक्षितै स्मितैर्हसि	६५
सध्रीची बीजिसरुद्धाम्	१०	समक्षमीक्षमाणेषु	२०५	सभापितश्च सभ्राजा	१०५
स नगो नागपुत्राग-	९७	समग्रबलमपत्त्या	३९५	सभूय बान्धवा सर्वे	४६०
सनर्मसचिव कचित्	३२७	समञ्जसत्वमस्येष्टन्	२६५	सभोगैर्वनमिति निर्विशन्	७८
सनागममनागैश्च	१२४	समन्तत शरैश्छन्ना	४०८	सम्यग्दृष्टिपद चान्ते	२९६
स नाग्यं परम विभ्रत्	२१०	समन्तादिति सामन्तै	१०४	सम्यग्दृष्टिपद चास्माद्	२९७
सनातनोऽस्ति मार्गोऽयम्	३८९	समन्ताद् योजनायाम-	१४०	सम्यग्दृष्टिपद चास्माद्	२९८
स निमित्त निमित्तानाम्	३२९	समभ्यर्च्य समाश्वास्य	४२५	सम्यग्दृष्टिपद चैव	२९५
स निवेदितवृत्तान्तो	१७६	ममवायाख्यमङ्ग ते	१६३	सम्यग्दृष्टिपद बोध्यविषय	३०६
स नृजन्मपरिप्राप्तो	२७७	समवेगै सम मुक्तै	४०१	सम्यग्दृष्टिपद बोध्ये	३०५
सन्तानार्थमृतावेव	२५१	समस्तनेत्रसप्रीत-	३८०	सम्यग्दृष्टिस्तवाम्ब्रेयमत	३०४
सन्तुष्टान् स्वे वने शूगन्	८६	समस्तबलसदोहम्	३७८	सम्राट् पश्यन्नयोऽध्याया	९
सन्त्यविधिनिलया देवा	३९	स महाम्युदय प्राप्य	२८६	स यजन् याजयन् धीमान्	२७६
सन्त्येवामन्तशो जीवा	२४१	समासमीना पर्याप्त-	१४	स यस्य जयसैन्यानि	१७९
सर्वि च पणवन्ध च	१७४	समागत, स इत्येतन्निश्चेतु	४८६	सरःपरिसरेज्वामन्	७२
सर्विविग्रहचिन्तास्य	८२	समागत्य महाभक्त्या	४८७	सर सरोजरजसा	२
सर्विविग्रहयानादि-	१०९	स मागधवदाध्याय	१२०	सरक्षान् धृतभूपालान्	४२१
सव्यातपतपाभ्यासन्	१८८	स मातङ्ग वनं यस्य	८८	सरजोऽजरज कीर्ण-	१७५
सव्यादिविषये नास्य	३६	समानदत्तिरेपा स्यात्	२४३	सरति सरमीतीर हम्	१९५
सव्यारुणा कलामिन्दो	२३१	समानायात्मनाऽन्यस्मे	२४३	सग्लन्मुल्वगविपम्	८०
सन्ध्यास्वग्नित्रये	३००	समापतच्छरवात-	२०७	सग्लना निघ्न मर्वे	२१८
सस्रद्वयन्दनाश्चण्डास्तदा	४०५	समीपवर्तिन्येकस्मिन्	४९६	सरत्ना निघ्नो विघ्न्या	२३३
सन्नाग बहुपुत्रागम्	७१	समुच्चरन् जयध्वान-	१२०	सग्नकिमरुपान्तस्पन्द-	१०९
स पक्वकणिशानम्र-	१२	समुच्छिन्नपुरोभागा-	२७	सग्नना कमलाश्रिभ्य	८१८
सपदि विजयनैर्नैर्निजित-	१३०	समुत्थाय नभामध्ये	३५६	सग्नानि मग्नानि	८३
सपुनर्विष्टपाटोप	३५९	समन्तुद्देनान्मीयन्	३१२	सग्नितनकन्दो-	१६

सरसोजलमागाढो	२०४	सलीलमुदुभिर्यात	८४	सारोर्षं स्फुटिता केचिद्	१०२
सरस्तरङ्गघोताङ्गा	७५	सवञ्चमणिपाकस्थ	४९१	सा तन्मकण्य सचिस्थ	४८७
सरस्तीरतच्छायाम	२६	सवन सावनि सोऽर्द्रि	१०४	सा तुण्डेनालिखन्नाम	४५३
सरस्तीरतरूपात	९९	सवमिता भृश रजु	१०२	सा तु पौडशभाऽऽम्नाता	२५४
सरस्तीरभवोऽपश्यत	११	सवागतिशयो ज्ञेयो	३३४	सादिना वारवाणानि	२५
सरस्य स्वच्छमलिला	२५	स वा प्रणम्य तीर्थेशम्	४३६	साधनरमुनाक्रान्ता	९४
सरासि कमलामोदन्	१०	स वश्रवणन्तोऽपि	४९८	साधारणास्त्विम मन्त्रा	३०१
सरामि ससरोजानि	२	सव्रतो वीरलक्ष्मी च	४१७	सा धुनीबलसक्षोभाद्	९०
सरित रोहितास्या च	१२३	स शसितव्रतोऽनाश्वान	२०९	साधु वत्स कृत साधु	३२०
सरितोऽम्बु सम सन्धै	८७	स शरो दूरमुत्पत्य	१२०	साधुवाद सन्तानदध	४३१
सरितोऽमूरगाघापा	६८	स शिक्षामणयोऽभीषाम्	१४५	साधूक्त साधुवृत्तत्वम्	१८०
सरितो विपमावत	२०७	स शल पवनाधूत	९७	सानुकम्पमनुभाहो	२४२
सरिद्वधूस्तदुत्तमङ्गो	८९	स श्रीपालकुमारदध	४९३	सानुजोऽनन्तसेनोऽपि	४१९
स रमे शरदारम्भ	२ २	स श्रीमानिति विश्वत	३१	सानुरागान् स्वय रागात्	४३५
सरोजरागरदनाक्ष	१३६	स श्रीमान् भरतेश्वर	१७१	साद्रपश्वरज कीर्णा	७३
सरोजल समासे	२	स सत्कारपुरस्कार	२११	साम्भ्यो राग स्फुरन् दिक्ष	१८८
सरोजनमभूत् कान्तम	२	ससत्त्वमतिगम्भीरम्	४३	सापि मन्त्रा कुमार तम्	४९२
सरोवगाहनिगिक्न	७५	ससम्भ्रम च सोऽभ्येत्य	९९	सा पुरी गोपुरोपात	१५१
सरोवगाहनिधत्	७३	ससम्भ्रम सहापेतु	४३८	साऽश्रवीदिति तद्वृत्तम्	४६२
सर्पिगुहपयोमिथ	४७३	ससम्भ्रममिवास्याभूद्	४९	सामज विजयादर्क्ष्यम्	३९५
सर्व प्राणी न हन्तव्यो	३१३	स सवमनुभूयायात्	४७२	साम दद्याता नाम	१८०
सर्वगुप्त प्रियप्राप्त	३५७	स सर्वेश्वक्रवत्युक्त	४९३	सामन्ताना निवशयु	२९
सर्वज्ञान नमोवाक्यमहते	२९९	स साधन सम भजे	६९	सामवायिकसामन्त	१०४
सर्वतोभद्रमारुह्य	३७८	स साध्वसा सलज्जा सा	४३२	सामात्य स महीपाल	२१७
सर्वान्सहान् सावान्	१३४	स सा सा तत्तदेवैषा	४४३	साम्नाऽपि दुष्कर साध्या	१८२
सर्वभूपालसन्निह	३९१	स सेहे वधमाक्रोशम्	२११	साम्प्रत स्वर्गभोगयु	२५१
सर्वमङ्गलसम्पूर्ण	३७६	सहसान् सरसा तीरेषु	१०	साम्राज्य नास्य लोषाय	१५८
सर्वमेतस्ममाकण्य बुद्धिम्	३९१	सहकारेश्वमी मत्ता	२१	साम्राज्यमाधिराज्य स्मात्	२८८
सर्वमतस्सुखाय स्याद्	४९९	सह वक्षोनिवासिन्या	३६५	सामप्रातिकनि शेष	३८
सर्वमेत भवैवति मा मस्था	३९०	सह सार्धेन भीमारयम्	४६९	सायकोद्भिन्नमालोक्य	३९९
सर्वमेधमय धमम्	२८१	सहसा सवतूयाणाम्	३८४	सायमुद्गाहनिगिक्त	२३१
सर्वरत्नमयैर्निव्यभूषा	४९२	सहिता चित्तवगाध्या	४८७	सारङ्गोऽम्ब तनुच्छाया	२४
सर्वरत्नान् महानील	२२७	स हृषादिपरमब्रह्मा	२८१	सारदाशक्तिरुत्तम्य	११४
सर्वान्तिकरी ध्यातिम्	४२५	सहस्रोत्सङ्गे लठन्नधि	८५	सा रात्रिरिति सल्लाप	४१७
सर्वसह क्षमाभारम्	२१०	साङ्गममिवोद्यन्तम्	३७४	साध कुवस्ये मन्दु सह	३६८
गवम्बस्य व्यधोऽनाय	३६९	साक्षात्कृतप्रस्थितसप्तपन्था	५१५	साध समाधिगुप्तस्य	२९४
सर्वारम्भविनिमुक्ता	१६५	साक्षिण परिकल्प्यनम्	४७३	सावज्ञयं तव वनतीश	१४२
सर्वान्गगर्तं तजा	१७७	साक्षपमिति सरम्भात्	४८	सालत्रितयमस्तुङ्ग	१४६
मर्वेऽपि जीवनोपाय	४७५	सा धनस्तनितव्याजात्	२३२	सावद्यविरतिवृत्तम्	२७१
मर्वेऽपि नृपममेन	५१४	साङ्गामिक्यो महामय	२००	साधनि सावनीबोधन	१३९
मर्वेऽप्यामममम्यराद्	४५४	साङ्गो यद्यतयाऽद्यम्	३७९	सा वश्रवणदत्ता च	४०७
मर्वेऽपि विधिनिमुक्ता	१२६	सा चित्ता जननीत्यस्य	२३५	सा वश्रवणदत्ता	४९५

साऽऽशाखनि किलात्रैव	४८२	मुता मागरमेनम्य	८९५	मूर्याचन्द्रमसौ वा	४९३
साऽशोककलिका चूतमञ्जरीम्	३१	मुनीदशा वीरणाभि-	४००	मृष्टि, पितामहेनेयम्	३८८
सिहर्षवृकशार्दूल-	१६६	मुद्गरपारगम्भीरम्	३५५	मृष्टघन्तरमतो द्वारम्	३१३
सिहवाहिन्यभूच्छाया	२३४	मुधोगृहपतिर्नाम्ना	२३५	सेनानीप्रमुखास्तावत्	१५२
सिहा इव नृसिहास्ते	१६७	मुन्दरेष्वपि कुन्देषु	३७३	सेनानीरपि वभ्राम	६९
सिहासने निवेश्यैनम्	१२७	मुप्रयोगा नदी तोन्वा	७०	सेनान्तो वृषम कुम्भो	३५६
सिहासनोपधाने च	२८४	मुभगेति च देव्यस्ता	४७७	सेनान्य बलरक्षायै	३८
सिहो मृगेन्द्रपोतश्च	३१९	मुमतिस्न निगम्यार्थम्	३७०	सेवागतै पृथिव्यादि-	२६२
सितच्छदावली रेजे	१	मुमत्याख्यामला	३६४	सैनिकैर्यमारुद्ध	२३
सितागुकधर स्रग्वी	९९	सुमनोवर्षमातेनु	११	सैन्ये च कृतसन्नाहे	२६६
सितातपत्रमस्योच्चै	३३	सुमनोवृष्टिगपत्तद्	१३७	सैन्यैरनुगतो रेजे	१५१
सितासिता सितालोल-	४३२	सुमुगस्तद्दया भारमिव-	४३१	सैवानुवर्तनीया ते	१९१
सिद्धदिविजयस्यास्य	२६१	सुरखेचरभूपाला	४३६	सैपा चतुष्टयी वृत्ति-	३३२
सिद्धविद्यस्ततो मन्त्रै	३००	सुरदुन्दुभयो मन्त्रम्	१४४	सैपा निष्क्रान्तिरस्येष्टा	२६४
सिद्धशेषा समादाय	३७७	सुरदेवस्य तद्वाक्य	४३७	सैपा सकलदत्ति स्यात्	२४३
सिद्धशेषाक्षतै पुण्यै	९३	सुरदीवारिकारक्ष्य-	१३८	सोऽचल प्रभुमायान्तम्	१२४
सिद्धार्चनविधि सम्यक्	२५१	सुरम्ये विषये श्रीपुराविप	४८१	सोऽचल शिखरोपान्त-	९७
सिद्धार्चना पुस्कृत्य	२५३	सुरमा कृन्निर्वाणा	८१	सोऽदुर्मर्क खलस्तेजो	४११
सिद्धार्चनादिक सर्वो	२४७	सुरमा जातरूप केचित्	१५१	सोऽतप्यत तपस्तप्त	२१४
सिद्धार्चासन्निधौ मन्त्रान्	३००	सुगणामभिगम्यत्वात्	१३६	सोऽतपला कुब्जकैर्दृष्ट्याम्	२३३
सिद्धार्थपादपास्तत्र	१३९	सुराञ्चामनकम्पेन	२१८	सोऽदर्या त्व ममादायि	५०१
सिद्धार्थाऽग्राह तत्त्वमिति	३६९	सुराष्ट्रेऽपूर्यन्ताद्रिम्	९२	सोऽदाद् विगुह्यमाहारम्	३२५
सिन्धुरोषो मुव क्षुब्धन्	११९	सुरेन्द्रजन्मना मन्दराभि-	३०८	सोऽधीती पदविद्यायाम्	३२८
सिन्धोस्तटवने रम्ये	९३	सुरेन्द्रमन्त्र एष स्यात्	२९८	सोऽनुरूपं ततो लब्ध्वा	२५२
सुकण्ठा पेतुरत्युच्चै	१९४	सुरेभ शरदभ्राभम्	३३	सोऽन्त पुरे चरेत् पात्रग्राम्	२४९
सुकान्तोऽशोकदेवेष्ट-	४५५	सुरैरासेवितोपान्ते	१४४	सोऽन्वय स पिता तादृक्	४२०
सुकालश्च सुराजा च	३२४	सुरैरित्यर्चित प्राप्त	२१८	सोऽन्वीय वक्ति चेदेवम्	१७४
सुकेतु सूर्यमित्राख्य-	३९५	सुरैरुच्छितमेतत्ते	१४४	सोऽपप्रदान मामादौ	१८०
सुकेतुस्तत्र वैश्येश	४५५	सुलोचना महादेवीम्	४४१	सोऽपव्यभिगमोपान्ते	१३
सुकेतोश्चाखिले तस्मिन्	४७८	सुलोचनाप्यसहाऽशोका-	५०४	सोऽपि प्राक् प्रतिपाद्यैतत्	४७३
सुख काले गलत्येवम्	४४१	सुलोचनाभिवाकृष्टि-	३७३	सोऽपि मव खगै मार्थम्	४०५
सुखप्रमाणै सप्राप्य	४४१	सुलोचनामनोवृत्ति-	४३२	सोऽभिपिक्तोऽपि नोन्मिवतो	२२२
सुखासुख बलाहारौ	३३९	सुलोचनामुखाम्भोज-	४३१	सोऽभेद्यो नीतिचुञ्चुत्वाद्	१७३
सुगन्धिकलमामोद-	१७५	सुलोचनाऽमौ बालेव	३६४	सोऽय चक्रभृतामाद्यो	४९
सुगन्धिपवनमोद-	१३८	सुलोचनेति का वार्ता	४२६	सोऽय नृजन्म सप्राप्त्या	२५०
सुगन्धिमुखनिश्वासा	१२	सुलोचनेति न	४२८	सोऽय भुजबली वाह-	१७२
सुगन्धि सलिल गाङ्गम्	४४९	सुवर्णवातुरथवा	२७७	सोऽय माघिनकामार्थ	३०५
सुचिर सर्वमदोह-	४०७	सुस्वनन्त खनन्त खम्	३९८	सोऽयमष्टापदैर्जुष्टो	१३५
सुजयश्च मुकान्तरच	५०२	सूत्र गणधरैर्दृष्टम्	३१०	सोऽयमपीपा च	३८६
सुत कुबेरमित्रस्य	४४८	सूत्रमोपाधिक चान्य	२५०	सोऽयमेन प्रदा न्ववदानि	१०३
सुता विमलमेनात्य	४९१	सूनु न्ननिनवेगन्त्र	८८०	सोऽयोनुद्गृहा भान्वद्	८८०
सुतान्चतुर्दशास्यान्ये	३५८	सूयगुनि पगान्ता	१३६	सोऽनन्तान्मन्त्रान्	२३५

सौरभमान् स शृङ्गाग्र	११	स्फुरत्पश्यसपात	८३	स्वप्नाना द्वैतमस्त्यग्यद्	३२१
स्वधावार मयास्थानम्	४३४	स्फुरत्पुष्पशादूल	१५६	स्वप्नानेष फलान्यतान्	३२३
स्वधावारनिवशोऽस्य	९०	स्मितमालानितं हासो	२३०	स्वप्राच्यमनसम्बन्धम्	४६२
स्वललि स्म कलालापा	४३२	स्मितध्वामा दुरोद्भिन्ना	२२५	स्वप्राणनिविणपश्च	२५८
स्तनाङ्गुलमलरास्य	१९२	स्मित प्रसादै सजल्प	६५	स्वप्राणव्ययसतुष्ट	४०९
स्तनाङ्गुलमलरास्य	२२४	स्मृत्वा ततोऽहर्चानाम्	३२४	स्वभाविदुग्ध सक्ष	११७
स्तुति निन्दा सुख दुःखम्	१६९	स्मात् परमकाङ्क्षिणम्	२९९	स्वभावपक्ष आत्मिन	१७३
स्तुतिनि > कृति श्रुत्वा	३५२	स्मात् परमनिस्तारक	३०९	स्वभावसुभगा दष्टद्वया	४३९
स्तुत्वा स्तुतिभिरोक्षानम्	३१९	स्यात् परमविज्ञानाय	२९९	स्वभुक्तिक्षेत्रसीमानम्	१२४
स्तुपाश्च रत्ननिर्माणा	१३९	स्यात् प्रजातिरसवधे	३१४	स्वभ्यस्तात् पञ्चमाङ्गाद्	१६३
स्त्रोरत्नगजवाजीनाम्	२२८	स्यात् प्रीतिमन्त्रस्त्रलोचय	३०२	स्वय कश्यपिदेवस्य	१२५
स्त्राप मायति या वार्ता	४४७	स्यात् समञ्जसवृत्तित्वम्	२६४	स्वय च सञ्चिताधाति	४२५
स्थला जशङ्किनी हसो	२०	स्यादस्त्यव हि नास्त्येव	१४२	स्वय तदा समालोच्य	४८२
स्थलाङ्गिनीधनाद् विव्वक	१२१	स्यादवध्याधिकारऽपि	३१३	स्वय धौतममाद् व्याम	५
स्थलाङ्गिनीधनाद् विव्वक	१२१	स्यादेव स्त्रो प्रनृत्यन्ती	४८०	स्वयप्रभ सुरस्तस्माद्	५०८
स्थलेषु पक्षपक्षिणो	२०	स्यादस्य सुखमप्येवम्	३३८	स्वय प्रनोऽर बीणा	४४८
स्थानाध्ययनमध्याय	१६३	स्याद्वारिकचिच्च सान्द्रम्	१६७	स्वय महा वयस्वन	३३२
स्थानान्यतानि सप्त स्यु	२४५	स्यान्तरका च पदकम्	२८२	स्वय व्यधूयतास्यो चै	२१८
स्थानान्यस्मिन्मयादेनम्	४८७	स्याद्वदण्डत्वमप्यवम	३१४	स्वय स्वनितवगोऽसौ	४८९
स्थालीना कोटिरकोवना	२२६	स्याद्वद्व्याहृणापति	२९५	स्वयमधपथ गश्वा	३७४
स्थित प्रावतनरूपेण	४८९	स्यान्निरामिपभोजित्वम्	३११	स्वयमपितसवरक्षा	६४
स्थितश्चर्या निपद्याम्	२११	स्यान्निरामिपभोजित्वम्	२७१	स्वयमागत्य केनात्र	४३८
स्थितस्तत्र स्मरन्नवम्	४८८	सग्री सवशुको दीप्र	२५७	स्वराज्यमधिराज्ये	२६०
स्थिता पश्चिमपादाम्भ्याम्	४०३	स्व ग्रामभृगरूपेण	४८४	स्वग समुदपपद्येताम्	४६८
स्थिता सत्रव सा कीर्ति	४१६	स्व मणिस्तद्वेषोपदि	२८५	स्वर्गोद्यानभिमिव हसति	५५
स्थिता सामयिके वृत्ते	१६२	स्व स्वापतेयमुचितम्	२८६	स्वधुनीशीकरस्पष्टि	८
स्थिरत्वा महद्भदत्तोऽपि	३८१	स्व स्वाम्यमहिक त्यक्त्वा	२८५	स्वधुनीशीकरासार	१२६
स्थिरप्रकृतिसत्त्वानाम्	९६	स्वकामि भीमशरध	१९२	स्वलक्षणमनिर्देश्यम्	२८५
स्थूलनीलोत्पलावदस्फुरद्	३७१	स्वकुलायुल्लुकाव	१५५	स्वलक्ष्मीव्याप्तसर्वांग	३७८
स्वपनो कधीताङ्गम्	२८८	स्वगुणोत्कीर्तनं त्यक्त्वा	२८७	स्वविमानद्विदानेन	२५७
स्वहृन्प्रवियोगोत्थ	५०८	स्वगुणस्थानसन्नान्ति	२४४	स्ववृत्तान्त समाख्याय	५०२
स्वहृत्स्थदनचक्रीत्य	३९२	स्वगहादिषु सप्रोत्था	३७४	स्वसार च नमेधन्याम्	१२८
स्वृताश्वि मही नैव	२७९	स्वच्छ स्व हृन्म स्फुटं	८०	स्वस्तीभाग्यवशात् सर्वान्	३७९
स्फुरद्बलदरोऽभ्रम्	८९	स्वतटस्फटिकोत्सपत्	१२४	स्वस्तीस्वाकुकुलव्योम	१२५
स्फुटप्रिभोप्रताडना	८९	स्वतटाधमिणी वसे	१९	स्वांग प्रमाजनार्थेऽप्या	२१७
स्फुटालोकीऽपि मद्भुतो	४१२	स्वतत्रस्य प्रभो सत्यम्	१८०	स्वाङ्गन्यानुगमोऽस्त्यको	२१७
स्फुटानरणमस्वय	३३६	स्वदेव्या विजसेनायाम्	८८८	स्वादरेणव ससिद्धिम्	३७४
स्फुरज्यं मयःशङ्कम्	४६	स्वदेवी वाक्षरमन्त्रान्	३४६	स्वाद्य चामृतकरपात्यम्	२३६
स्फुरदाभरणाद्यात्	१७६	स्वदेवीदुग्धरेव सपूजितो	५१४	स्वाध्यायमिव कुर्षाणाम्	८३
स्फुरद्गम्भीरनिर्घोष	१४१	स्वनेद्रुमफल इलाय्य	१८२	स्वाध्याययोगसंसक्ता	१६७
स्फुरद्गम्भीरनिर्घोष	१३५	स्वपराय सत्रस्वी	१५४	स्वाध्यायन मनोरोध	१६२
स्फुरद्गम्भीरनिर्घोष	४५	स्वपूर्वापरकोटिभ्याम्	१२२	स्वानुरागं जये व्रक्तम	५०१

स्वामिसमानदानादि-	४०९	हन् कङ्किकागम्-	८८८	हिमवद्विभृता पूज्याम्	१३
स्वामीष्टभृत्यवन्धादि-	२८६	हृग्णिप्रेक्षितेत्वेना	२५	हिमवानयमुत्तुङ्ग	१२२
स्वायम्भुवान्मुखाज्जाता	२८०	हृग्निगङ्कुम् पुष्प	२८०	हिमाचलमनुप्राप्त	११९
स्वावास सप्रविश्योच्चै-	४३९	हृग्निद्राज्जितम्भु	२८	हिमाचलस्यलेख्यस्य	१२१
स्वास्वै शस्त्रैर्नभोगानाम्	४०१	हृग्निमणिप्रभाजालं	१३२	हिमानिलं कुचोत्कम्पम्	२३०
स्वाहान्त सत्यजाताय	२९४	हृग्निमणिप्रभोत्तमप	४४	हिरण्यवर्मण सर्व-	४६२
स्त्रीकुर्वन्निन्द्रियावासम्	३३६	हृग्निमणिप्रभोत्तमप	८५	हिरण्यवर्मणा ज्ञातजन्मना	४६०
स्वीकृतस्य च तस्य	३०५	हृग्निमणिमयस्तम्भ -	१७७	हिरण्यवृष्टि धनदे	२५९
स्वीकृत्य शयनाध्यक्षम्	८५०	हृग्निवाहननामाद्यो	५०९	हिरण्यमूचितोत्कृष्ट-	२५९
स्वेदविन्दुभिरावद्ध.	२७	हृरीक्षरगनिभिन्न-	१३८	हुम्भारवभृतो वत्मान्	६
स्वेन मूर्ध्नि विभर्त्येप	१२३	हवि पोयूपपिण्डेन	२१८	हुतसरसिजमारै-	४४५
स्वैर जगृहुरावासम्	९९	हविष्पाके च वृम्भे च	३०१	हुतालिकुलजकार	२३१
स्वैर न पपुरम्भासि	७४	हसन्तमिव फेनौघे	४०	हुत्वा सरोज्ज्वलरिणो	७६
स्वैर नवाम्बुपरिपीतमयत्न-	७६	हृग्निस्तन्त्रे ऽज्जतन्त्रे च	३२८	हुदये त्वयि सनिधापिते	४२२
स्वोचितासनभेदानाम्	२८५	हृग्निना पदरक्षायै	१०३	हुदि धर्ममहारत्नम्	३५४
स्वोपधानाद्यनादृत्य	२८५	हृस्त्यश्वरथपत्न्योद्यम्	३९८	हुदि नाराचनिभिन्ना-	४०९
स्वोक्ते प्रयुक्ता सर्वे	३५२	हृम्प्रश्वरययादातम्	६२	हुदि निभिन्ननाराचो	४१६
ह		हा दुष्ट कृतमित्युच्चै	२०९	हुद्ये समारसारावै	१६
हंसपोत इवान्विच्छन्	१८९	हा मे प्रभावनीत्याह	४५९	हुष्ट मुप्रभया चामा	४२५
हसयूनाञ्जकिञ्जल्क-	१०	हा मे प्रभावतीत्येतद्	४४६	हुत्वाज्ञायुक्तमद्वैतम्	२७०
हसस्वनानकाकाश-	३	हा-क्रान्तस्वनाभोग-	२२९	हेमपत्राकितौ तन्व्या	२२९
हसा कलमपण्डेपु	२६	हारिगीतस्वनाकृष्टै	१२	हेमस्तम्भाप्रविन्यस्त-	१३७
हसोऽय निजशावाय	२०	हारिभि किन्नरोद्गीतै	१६	हेमाङ्गद समोदर्यम्	४४१
हटस्पटकुटीकोटि-	४३४	हारोऽयमतिरोचिष्णु	५०	हेमाङ्गदकुमारेण	४३४
हत एव सुतो भर्तु-	४२०	हास्तिनाख्य पुर तत्र	३५८	हेमाङ्गदसुकुत्तुथी	३६४
हतानुचरभार्यात्रि	४८८	हा हतोऽसि चिर जन्तो-	४४२	हेयोपेयविवेक क	४३७
हत्वा भूमौ विनिक्षिप्त-	४७१	हिमचन्दनसमिश्र-	४४६	हैमनीपु त्रियामासु	१६५
हयान् प्रतिष्कृशीकृत्य	८०३	हिमवज्जयशसीनि	१२१	हैयङ्गवीनकलणै	१३
हयेनैव दुरारोहाज्जये-	४२६	हिमवत्पद्मयोगङ्गा	३६८	हृदस्यास्य पुर प्रत्यक्	१२३
		हिमवद्विजयोद्देशी	२२२	ह्रस्ववृत्तखुगस्तुङ्गा	२७

पारिभाषिक शब्द-सूची

अ
अक्षीरमहानस-जन मुनिकी एक
ऋद्धि जिसके प्रभावसे जहाँ
इस ऋद्धिप्राप्त मुनिका
भोजन होता है वहाँकी
भोजन सामग्री अक्षीर हो
जाती है। अर्थात् वहाँ
कितन ही लोग भोजन
करते जायें पर भोजन
सामग्री कम नहीं होती।
३६।१५५

अक्षाणावसथ-जन मुनिकी एक
ऋद्धि जहाँ इस ऋद्धिका
धारक मणि निवास करता
है, वहाँ छोट स्थानम भी
बहुत बड़ा समूह भी
स्थान प्राप्त कर सकता है।
३६।१५५

अग्रनिर्वृति-गर्भावय क्रियाका
एक भेद। ३८।६२

अग्निमादित्य-अग्निमा महिमा
गरिमा लक्षिमा प्राप्ति।
प्राकाशम ईशित्व और
यशित्व ये आठ सिद्धियाँ
अथवा गुण कहलाते हैं।
३८।१९३

अजाव-जानम देखनकी शक्तसे
रहित। इसमें पाँच भेद
हैं - १ पदगल २ घम
३ अघम ४ आकाश और
५ बाल। १४।१९२

अनुमत्त-हस्ता निच पापोंकी
एक स्थापना करना ये
अस्तिमानुमत्त आदि पाँच
हैं। १५

अनुमत्ता-गन्धर्व स्वयंका
बार-बार चिन्तन करना।
इसका दूसरा नाम भावना

है। ये बारह होते हैं -

१ अनित्य २ अक्षरण ३
ससार, ४ एकत्व ५ अय
त्व ६ अशुचित्व ७ आसन्न
८ सवर ९ निजरा १०
लोक ११ बोधिबुल्लभ और
१२ धमस्वाख्यातत्व। ३६।
१५९-१६०

अनुत्तरौपपादिकदशाङ्ग-द्वादशां
गका मोवा भद। जिसमें
प्रत्येक तीसकरके तीसम
उपसग सहन कर अनुत्तर
विमानोम उत्पन्न हानवाले
दश दश पुत्रपाका वधन
होता है। ३४।१४२

अनूचान-अङ्गसहित वदका
अध्ययन करनेवाला ३९।५३
अनुमष्टदकस्यान-एक उपोषित
वतका नाम ४६।१०

अन्तकृद्दशाङ्ग-द्वादशाङ्गका
आठवाँ भेद ३४।१४२
अवयवदत्ति-पुत्रके लिए परिग्रह
का भार सौपना। इसीका
दूसरा नाम सकलदत्ति है।
३८।४

अपायविचय-धर्मध्यानका एक
भेद ३६।१६१

अज-चक्रवर्तीका एक निधि।
इसीका दूसरा नाम शङ्ख
भी है ३७।७३

अभिपन्न-गर्भावय क्रियाका एक
भेद ३८।६०

अवतार-गर्भावय क्रियाका एक
भेद ३८।६६

अवतार-दीक्षावय क्रियाका एक
भेद ३८।६४

अरिपङ्कज-काम क्रोध लोभ
मोह ये मात्सव ये छह

अतरङ्ग-समओका समूह
है। ३८।२८०

अलोक-लोकके बाहरका अनन्त
आकाश ३३।१३२

अक्ष-चक्रवर्तीका एक सधैतन
रत्न ६७।८४

असि-चक्रवर्तीका एक निर्ज्वर
रत्न ३७।८४

आ

आकिंचय-परिग्रहका स्थाप
करना ३६।१५७

आचारङ्ग-द्वादशाङ्गका पहला
अङ्ग जिसमें मुनिका
आचारका वधन है। ३४।
१३५

आज्ञाविचय-धर्मध्यानका एक
भेद ३६।१६१

आसपन्न-चक्रवर्तीका एक निर्ज्वर
रत्न ३७।८४

आतपयोग-ग्रीष्म ऋतुमें पवत
चट्टानापर ध्यान करना
३४।१५४

आधान-गर्भावय क्रियाका एक
भेद ३८।५५

आवश्यक-अवश्य करत योग्य
छह काम - १ समता
२ चन्दना ३ स्तुति ४
प्रतिक्रमण ५ स्वाध्याय
और ६ व्युत्सग ३९।१३४

आजव-मायाचारकी जातना
३६।१५७

आर्य पट्टकर्म-इष्ट्या वार्ता
दत्ति स्वाध्याय समय
और तप ये आर्योंके छह
कर्म हैं। ३९।२४

आहता-अरहन्त सम्बन्धी
३६।११५

आर्हन्त्य-गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।६२

आहवनीय-वह अग्नि जिसमें गणधरोका अन्तिम सम्कार होता है ४०।८४

आष्टाहिक- पूजाका एक भेद। कार्तिक, फाल्गुन और आपाद मासके अन्तिम आठ दिनोंमें नन्दीश्वर द्वीप सम्बन्धी ५२ चैत्यालयोंकी पूजा ३८।२६

इ

इज्या- पूजा, पूजाके चार भेद हैं १ सप्तार्चन (नित्यमह), २ चतुर्मुख मह, ३ कल्पद्रुम-मह और ४ आष्टाहिक-मह ३८।२६

इन्द्रत्याग- गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।६०

इन्द्रोपपाद- गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।६०

इम- चक्रवर्तीका एक सचेतन रत्न-हाथी ३७।८४

उ

उत्तमक्षमा- क्रोधपर विजय प्राप्त करना ३६।१५७

उत्तर गुण- मुनियोंके चौरासी लाख उत्तर गुण होते हैं ३६।१३५

उपधा- धर्म, अर्थ, काम और भयके समय किसी बहानेसे दूसरेके चित्तकी परीक्षा करना उपधा है। ४४।२२

उपनीति- गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।५६

उपयोगिता- दीक्षान्वय क्रियाका एक भेद ३८।६४

उपायकाध्याय- द्वादशाङ्गका सातवाँ भेद जिसमें श्रावका-चारका वर्णन है ३४।१४१

ऋ

ऋतु- स्त्रीकी रज शुद्धिके दिन-

में लेकर पन्द्रह दिन तकका वात ऋतुमाल कहलाता है। २८।१३४

ऋद्धि- तपमें प्रकट हुई विग्रिष्ट शक्तियाँ। ये बुद्धि, विक्रिया आदिके भेदमें अनेक प्रकारकी होती हैं ३६।१४४

ऐ

ऐन्द्रध्वज- इन्द्रांके द्वाग की हुई पूजा। पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाकी पूजा इन्द्रध्वज पूजा है। इसमें मनुष्यमें इन्द्रका आरोप कर उसके द्वाग पूजा की जाती है।

औ

औपधर्म्दि- इसके अनेक भेद हैं आमर्ष, च्वेल, जल्ल, मल्ल आदि ३६।१५३

क

कर्मचक्र- ज्ञानावरणादि कर्मोंका समूह ४३।२

कर्मत्रय- ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय ४७।२४७

कर्त्रन्वय क्रिया- एक विशिष्ट क्रिया, इसके ७ भेद हैं ३८।५१

कल्पद्रुम- जिनपूजाका एक भेद। इसे चक्रवर्ती ही कर पाता है। ३८।२६

कषाय- क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय हैं ३६।१३९

कोकिणी- चक्रवर्तीका एक रत्न जिससे दीवालपर लिखनेमें प्रकाश उत्पन्न होता है, ३२।१५

कारण्य- दुःखी जीवोंका दुःख दूर करनेका भाव होना ३९।१४५

काल- चक्रवर्तीकी एक निधि ३३।३३

कुल- पिताकी वंशशुद्धि ३९।८५
कुलचर्या- गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।५७

कृतयुग- चतुर्थकाल ४१।५
केशवाप- गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।५६

केवलान्वय ज्योति- केवलज्ञान-रूपी ज्योति ३३।१३२
कोष्ठबुद्धि- बुद्धिऋद्धिका एक भेद ३६।१६

क्षपकश्रेणी- चारित्र्य मोहका क्षय करनेके लिए परिणामोंकी विशुद्धता। यह विशुद्धता आठवेंसे दसवें गुणस्थान तक रहती है ४७।२४६

क्षयोपशम- घातिया कर्मोंकी एक अवस्था विशेष, जिसमें वर्तमान कालमें उदय आने-वाले सर्वघाति स्पर्द्धकोका उदयाभावी क्षय आगामी कालमें उदय आनेवाले सर्वघाति स्पर्द्धकोका सदवस्था रूप उपशम और देशघाति स्पर्द्धकोका उदय रहता है ३६।१४५

कव्याद-मास खानेवाले व्यक्ति ३९।१३७

ग

गण- समवसरणकी १२ सभाएँ ३३।१५७

गणग्रह- दीक्षान्वय क्रियाका एक भेद ३८।६४

गणग्रह- मिथ्या देवी देवताओंको अपने घरमें अन्धव्रत विमर्जित करना ३९।४५

गणोपग्रहण- गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।५८

गन्धकुटी- समवसरणका वह मूलस्थान जहाँ भगवान् विराजमान रहते हैं ३३।१५०

गर्भान्वय क्रिया— एक विशेष प्रकारकी क्रिया इसके ५३ भेद होत है । ३८।५१

ग्राहपत्य— जिस अग्निसे तीथकर के मृत शरीरका दाह संस्कार होता है वह अग्नि ४०।८४

गुप्तिग्रथी— १ मनोगुप्ति २ वचन गुप्ति ३ कायगुप्ति ३६। १३८

गुरुभूजोपलम्भन— गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।६१

गुरुस्थानाम्युपगम— गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।५८

गृहत्याग— गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।५७

गृहपति— चक्रवर्तीका एक सचेतन रत्न ३७।८४

गृहिसूलगुणाष्टक— गृहस्थके आठ मूलगुण— १ मद्यत्याग २ मासत्याग ३ मधुत्याग ४ अहिंसाणुव्रत ५ सत्याणुव्रत ६ अचौर्याणुव्रत, ७ ब्रह्मचर्याणुव्रत और ८ परिग्रहपरिमाणुणुव्रत ४६। २६९

गृहाशिक्षा— गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।५७

घ

घातिक्रम— जानावरण दशना वरण मोहनीय और अन्त राय ये चार घातियाक्रम कहलाते हैं । ३३।१३०

च

चक्रधर— चक्रवर्ती भरत । भरत एरावत और विदेह क्षत्रिय चक्रवर्ती होते हैं । य पद खण्ड भूमण्डल स्वामी होते हैं । इन्हें देवापनीत चक्ररत्न प्राप्त होता है । य ऋषीकोश नागरके अक्षयपिपा तथा उन्

सर्पिणी युगम बारह बारह होते हैं । भरतक्षेत्रका पहला चक्रवर्ती भरत था जो कि प्रथम तीथकर वृषभदेवका पुत्र था २६।१

चक्रलभ— गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।६१

चक्रामिषक— गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।६२

चतुर्गति— नरक, तियच मनुष्य और देव ये चार गतियाँ हैं । ४२।९३

चतुर्दश महाविधा— उत्पादपूर्व आदि चौदह पूर्व ३४।१४७

चतुर्मुखमह— पूजाका एक भेद महामुकुटबद्ध राजाओके द्वारा यह की जाती है । इसका दूसरा नाम सवतो भद्र है ३८।२६

चतुर्भेद ज्ञान— मतिज्ञान धृत ज्ञान अवधिज्ञान, मन पयय ज्ञान ३६।१४५

चतुर्भूषण— सेनापति चक्रवर्तीका एक सजीव रत्न ३७।८४

चम— चक्रवर्तीका एक निर्जीव रत्न ३७।८४

चर्या— मन्त्र देवता औषध तथा आहार आदिके लिए हिंसा नहीं करेगा ऐसी प्रतिज्ञा धारण करना ३९। १४५-१४७

चातुराश्रम्य— ब्रह्मचर्य गृहस्थाश्रम वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हैं । ३९।२४

चार आराधना— १ सम्यग्दर्शन २ सम्यग्मान ३ सम्यक् चारित्र्य और सम्यक् तप ये चार आराधना हैं ४७।४००

ज

जाति— माताकी अवयव शुद्धि ३९।८५

जातिब्राह्मण— तप और धृतसे रहित नाम मात्रके ब्राह्मण जातिब्राह्मण है ३८।४५

जिनरूपता— गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।५७

जीव— जानन देखनकी शक्तिसे युक्त जीव द्रव्य ३४।१९२

ज्ञानूधमकथा— द्वादशाङ्गका छठवाँ भाग ३४।१४०

त

तक्षन्— चक्रवर्तीका एक सचेतन रत्न ३७।८४

तद्विहार— गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।६२

तप— इच्छाका निरोध करना तप है । इसके बारह भेद हैं— १ अनशन २ ऊनोदर, ३ वृत्ति परित्यक्त ४ रस परित्याग ५ विविक्त शय्यासन ६ कायबलेश ७ प्रायश्चित्त ८ विनय, ९ वैराग्य १० स्वाध्याय ११ युत्सग और १२ ध्यान ३८।४१

तप ऋद्धि— इसके चतुर्विधतप दीप्ततप घोरतप आदि अनेक भेद हैं ३६।१४९-१५१

तीथ— तीथकरका प्रवृत्तिकाल ३४।१४२

तीर्थकुन्तावन— गर्भान्वय क्रियाका एक भेद ३८।५७

तिथ्यादिपञ्च— तिथि ग्रह नक्षत्र योग और करण ४५।१७९

त्याग— विकार भावोंको छोड़ना ३६।१५७

त्रस— चलने फिरनवाले जीव द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय ३४।१९४

त्रिगौरव— १ रसगौरव, २ शब्दगौरव ३ ऋद्धिगौरव गौरव = अहंकार ३६।१३७

त्रैगुण्यसंश्रिता- सम्यग्दर्शन,
सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-
चारित्र सम्बन्धी ३९।११५

द
दक्षिणाग्नि- वह अग्नि जिसके
द्वारा सामान्य केवलियोंके
शरीरका दाह सम्कार
होता है ४०।८४

दण्डकपाटादि- केवलिसमुदघात-
के भेद- १ दण्ड, २ कपाट,
३ प्रतर और ४ लोकपूरण
३८।३०७

दण्ड- चक्रवर्तीका एक निर्जीव
रत्न ३७।८४

दत्ति- दान, इसके चार भेद हैं-
१ पात्रदत्ति, २ समदत्ति,
३ अन्वयदत्ति और ४
करणादत्ति ३८।३५-३६

दयादत्ति- करुणा दान ३८।३६

दशधर्म- १ क्षमा, २ मार्दव,
३ आर्जव, ४ शौच, ५
सत्य, ६ सयम, ७ तप,
८ त्याग, ९ आर्किचन्य और
१० ब्रह्मचर्य ३६।१३७

दिव्या जाति- इन्द्रकी जाति
दिव्या जाति कहलाती है।
३९।१६८

दिशाञ्जय- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६१

दीक्षाद्य- गर्भान्वय क्रियाका एक
भेद ३८।५७

दीक्षान्वय क्रिया- एक विशिष्ट
क्रिया, इसके ४८ भेद होते
हैं। ३८।५१

दीपोद्बोधनसंविधि- पूजाके
समय दीपक जलाना। इस
कार्यमें दक्षिणाग्निका प्रयोग
होता है। ४०।८६

दृष्टिवाद- द्वादशाङ्गका बारहवाँ
भेद ३४।१४६

द्वादशगण- समवसरणमें गन्ध-
कुटीके चारों ओर परिक्रमा

रूपमें स्थित वाग्द मभाएँ
४२।४५

द्वादशाङ्ग- आचारगङ्गा आदि
वाग्द अङ्ग ३४।१३३

द्विज- ब्राह्मण, क्षत्रिय और
वैश्य ३८।४८

द्वितीय शुक्ल-यान- एकत्व-
वितर्क, यह वाग्द्वे गुण-
स्थानमें होता है ४७।२४७

द्विधाम्नान- अन्तरङ्ग और वहि-
रङ्गके भेदमें दो प्रकारका
माना हुआ ३४।१७२

द्विरष्टा भावना- सोलह कारण
भावनाएँ १ दर्शनविशुद्धि,
२ विनयसम्पन्नता, ३ शील-
व्रतेष्वनती चार, ४ आभीक्ष्ण
ज्ञानोपयोग, ५ सवेग, ६
शक्तितत्त्वाग, ७ शक्ति-
तत्त्व, ८ साधुसमाधि, ९
वैद्यावृत्यकरण, १० अर्हद्-
भक्ति, ११ आचार्यभक्ति,
१२ बहुश्रुतभक्ति, १३ प्रव-
चन भक्ति, १४ आवश्यक-
परिहाणि, १५ मार्गप्रभावना
और १६ प्रवचनवात्सल्य

ध
धर्म्यध्यान- ध्यानका एक भेद,
इसके चार भेद हैं- १
आज्ञाविचय, २ अपायवि-
चय, ३ विपाकविचय और
४ सत्स्थानविचय ३६।१६१

धूलीसाल- समवसरणका एक
कोट जो कि रत्नमयी धूलीसे
निर्मित होता है ३३।१६०

धृति- गर्भान्वय क्रियाका एक
भेद ३८।५५

न
नामकर्म- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।५५

निगोत- सम्मूर्च्छन जीव विशेष
३८।१८

नि मन्त्रवात्मभावना- गर्भान्वय

क्रियाका एक भेद ३८।५९

निर्जरा- कर्मोंका एकदेश क्षय
होना ३६।१३८

निषद्या- गर्भान्वय क्रियाका एक
भेद ३८।५५

निष्क्रान्ति- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६२

नैःसर्प- चक्रवर्तीकी एक निधि
३७।७३

नोकर्म- औदारिक, वैक्रियिक,
आहारक शरीर ४२।९१

प
पक्ष- एक वृत्तिका भेद- जिन-
धर्मका पक्ष स्वीकृत करना
३९।१४५

पञ्चनमस्कारपद- णमोकार-
मन्त्र णमो अरहन्ताण आदि
३९।४३

पञ्चेन्द्रिय- १ स्पर्शन, २ रसना,
३ घ्राण, ४ चक्षु और ५
कर्ण ये पाँच इन्द्रियाँ हैं
३६।१३०

पञ्चोद्गम्य- वड, पीपल, पाकर,
ऊमर और अञ्जीर
३८।१२२

पञ्च- चक्रवर्तीकी एक निधि
३७।७३

परमनिर्वाण- कर्त्रन्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६७

परमा जाति- अरहन्त भगवान्की
परमा जाति कहलाती है
३९।१६८

परमार्हन्त्य- कर्त्रन्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६७

परमावधि- श्रवणज्ञानका एक
भेद, जो मुनियोंके होता है
३६।१४७

परमेश्वर- अष्टान्त, मित्र,
आचार्य, उपाध्याय और
माधु ये पाँच परमेश्वरी हैं
३८।१८८

परिपह- समता भावने

विपत्तिको सहन करना ।
 इसके २२ भेद हैं—१ अथा
 २ तृषा ३ शीत, ४ उष्ण
 ५ दशमशक ६ नाग्य ७
 अरति ८ स्त्री ९ वर्षा
 १० निषद्या ११ शय्या
 १२ आक्रोश १३ वध १४
 याचता १५ अलाभ १६
 रोग १७ तण्डूला १८
 मल १९ सत्कार परस्कार
 २० प्रज्ञा २१ अज्ञान और
 २२ अन्धान ३६।१२८
 पर्णलब्धा— एक विद्या, जिसके
 प्रभावसे भारी शरीर पत्त
 के समान हलका होकर
 आकाशसे नीचे आ जाता
 है ४७।२२
 पद्मयज्ञ— एक आसन—पालकी
 ३४।१८८
 पाण्डुर— चक्रवर्तीकी एक निधि
 ३७।७३
 पात्रदान— मुनि आदिका श्रावक
 श्राविक आदि वतुभंगको
 विधिपूर्वक दान देना
 ३८।३७
 पारिमज्य— कर्मव्य क्रियाका
 एक भेद ३८।६७
 पिङ्ग— चक्रवर्तीकी एक निधि
 ३७।७३
 पुण्ययज्ञ— दीक्षान्वय क्रियाका
 एक भेद ३८।६४
 पुराकल्प— पञ्चमकाल ४१।३
 पुष्ययज्ञ— चक्रवर्तीका परोहित
 रत्न ३७।८४
 पूजाशय्य— दीक्षान्वय क्रियाका
 एक भेद ३८।६४
 प्रतिमा योग धारण— पद्मे उप
 वासक वा रातमें एकात्म
 प्रतिमा समान नग्न रह
 कर ध्यान धारण करना ।
 १०।५२
 प्रसाद— गुणी मनुष्योंकी स्मरण

हृषधारण करना ३९।१४५
 प्रह्मव्याकरण— द्वादशाङ्गका
 दशवां भेद ३४।१४४
 प्रशान्ति— गर्भान्वय क्रियाका भेद
 ३८।५७
 प्राप्तिहाय— अरहन्त अवस्थाम
 तोयकरके प्रकट होनेवाले
 आठ विशिष्ट काय — १
 अशोक वृक्ष २ सिंहासन
 ३ छत्रत्रय ४ भामण्डल
 ५ शिष्यवृत्ति ६ पुष्पवृष्टि
 ७ चौसठ चमर ८ दुर्दुभि
 वाजा ४२।४५
 प्राशन— गर्भान्वय क्रियाका एक
 भेद ३८।५५
 प्रासुक— निर्जीव ३४।१९२
 प्रियोद्भव— गर्भान्वय क्रियाका
 एक भेद ३८।५५
 प्राप्ति— गर्भान्वय क्रियाका एक
 भेद ३८।५५
 बलर्द्धि— ऋद्धि का एक भेद
 ३६।१५।
 बहिर्मान— गर्भान्वय क्रियाका एक
 भेद ३८।५५
 बोधि— सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान,
 सम्यक चारित्र ३९।८५ ८६
 ब्रह्मचर्य— आत्मस्वरूपमें लीन
 रहना अथवा स्त्री मात्रका
 परित्याग करना ३६।१५८
 भ
 भोग्य— चक्रवर्तीके भोगके दश
 अङ्ग होते हैं— १ रत्न और
 निधियाँ २ देवियाँ ३ नगर,
 ४ शय्या ५ आसन ६ सेना,
 ७ नाट्यमाला ८ वाहन
 ९ भोजन और १० बाहुन—
 सवारी ३७।१४३
 भ
 भणि— चक्रवर्तीका एक निर्जीव
 रत्न ३७।८४
 भविष्य— पाँच इन्धिया और

मनकी सहायतासे होनेवाला
 एक ज्ञान ३६।१४२
 मन पश्यज्ञान— दूसरेके मनमें
 स्थित पदार्थको जाननेवाला
 ज्ञान । यह ज्ञान भुक्तिके ही
 होता है ३६।१४७
 मन्दरेन्द्राभिषेक— गर्भान्वय
 क्रियाका एक भेद ३८।६१
 महासह— भगवान्की एक विशिष्ट
 पूजा ३८।६
 महाकाल— चक्रवर्तीकी एक निधि
 ३७।७३
 महावित— हिसाब पापोंका सम-
 देश त्याग करना । ये पाँच
 हैं ३९।४
 महाचैत्यद्रुम— समवसरणमें
 विद्यमान चैत्यवृक्ष इनके
 नीचे जित प्रतिमाएँ विद्य
 मान रहती हैं । ४१।२
 माणव— चक्रवर्तीकी एक निधि
 ३७।७३
 माध्यस्थ्य— विपरीत मनुष्योंपर
 समभाव रखना ३९।१४५
 मानस्तम्भ— समवसरणकी चारों
 दिशाओंमें विद्यमान रत्नमय
 चार स्तम्भ इनके देखनेसे
 मानो जीवोंका मान नष्ट हो
 जाता है । ४०।२०
 मार्दव— मानको जौतता
 ३६।१५७
 मूलगुण— मुनियोंके मूलगुण २८
 होते हैं— ५ महाप्रत ५
 समिति ५ इन्द्रिय दमन
 ६ आवश्यक ७ शेष सात
 गुण— ३६।१३५
 मैत्री— किसी जीवको दुःख न हो
 ऐसी भावना रखना
 ९।१४६
 मोद— गर्भान्वय क्रियाका एक भेद
 ३८।५५
 मौनध्ययन वृत्त्यन्त— गर्भान्वय
 क्रियाका एक भेद ३८।५८

य

यथाख्यात- चारित्र मोहके
अभावमे प्रकट होनेवाला
चारित्र। इसके औपचारिक
और धार्मिकके भेदसे दो
भेद है। ४७।२४७

योगयाग- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६२

योगनिर्वाणमप्राप्ति- गर्भान्वय
क्रियाका एक भेद ३८।५९

योगराज्य- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६१

योगसम्मह- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६२

योजन- चारकोणका एक योजन
होता है परन्तु अष्टविम
बीजोके नापमे दो हजार
कोणका योजन लिया जाता
है। ३३।१५९

यापित- चक्रवर्तीका एक सचेतन
रत्न, स्त्री ३७।८४

र

रत्नत्रय- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान
और सम्यक्चारित्र ये तीन
रत्नत्रय है। ३६।१३९

रसदि- ऋद्धिका एक भेद
३६।१५४

रहसू- अन्तराय कर्म ३५।१८६

राजविद्या- आन्वीक्षिकी, त्रयी,
वार्ता और दण्डनीति ये
चार राजविद्याएँ हैं।
४१।१३९

ल

लिपि- गर्भान्वय क्रियाका एक
भेद ३८।५६

लेख्या- कपायके उदयसे अनु-
रञ्जित योगीकी प्रवृत्ति।
इसके ६ भेद है-१ वृष्ण,
२ नील, ३ कापीत, ४ पीत,
५ पद्म और ६ शुक्ल।
३६।१८४

लोक- जहाँ तक जीव आदि छह

द्रव्य पाये जाये उसे लोक
कहते हैं। यह १४ राजकुंठा
है और ३८३ राजकुंठाफल
वाला है। ३३।१३२

व

वर्णलाभ- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।५७

वार्ता- खेतों आदिके द्वारा
निर्दोष आजीविका करना
३८।३५

विकथा- राग द्वेषकी बढ़ानेवाली
कथाएँ, ये चार हैं-१ स्त्री
कथा, २ राष्ट्र कथा, ३
भोजन कथा ४ और राज
कथा ३६।१४०

विक्रिया- एक प्रकारकी ऋद्धि,
इसके ८ अवान्तर भेद हैं।
३६।१५२

विजयाश्रिता- चक्रवर्तियोंकी
जाति विजयाश्रिता जाति
कहलाती है। ३९।१६९

विधिदान- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६०

विपाक विचय-वर्म्यध्यानका एक
भेद ३६।१६१

विपाकसूत्र- द्वादशाङ्गका ग्यार-
हवाँ भेद ३४।१४५

विपुलमति- मन पर्यय ज्ञानका
उत्कृष्ट भेद ३६।१४७

विमुक्तता- निष्परिग्रहता
३४।१६९

विवाह-गर्भान्वय क्रियाका एक
भेद ३८।५७

वीरासन-आसनका एक भेद,
जिसमे दोनों पगथली जघा-
पर ग्वकर ध्यानस्थ हुआ
जाता है ३४।१८७

वृत्तलाभ- दीक्षान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६१

व्रत- त्रिमासि पाँच पापोंके त्याग-
ने प्रकट होनेवाले पाँच
महाव्रत- १ जटिमा, २

मल्य, ३ अचौर्य, ४ ब्रह्मचर्य
और अपरिग्रह ३६।१३३
व्रतचर्या- गर्भान्वय क्रियाका एक
भेद ३८।५६

व्रतावनरण- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।५६

वृत्त-चारित्र- पापपूर्ण क्रियाओं-
से विरत होना ३९।२४

व्याख्याप्रज्ञप्ति- द्वादशांगका
पाँचवाँ भेद ३४।१३८

व्युष्टि- गर्भान्वय क्रियाका एक
भेद ३८।५६

श

शल्य- १ माया, २ मिथ्या और
३ निदान ये तीन शल्य हैं।

श्रुती मनुष्यके इनका अभाव
होना चाहिए। ३६।१३७

शुक्लध्यान- ध्यानका सर्वोत्कृष्ट
भेद ३६।१८४

शौच- लोभका त्याग करना
३६।१५७

श्रीमण्डप- ममवमरणका मूल
मण्डप जिसमे भगवान्की
गन्धकुटी होती है।
३३।१५९

श्रुत- पाँच इन्द्रियों और मनकी
महायतासे उत्पन्न होनेवाला
एक तर्कणाशील ज्ञान
३६।१४२

प

पट्टकम्- अटनान्योग (पण्डित)
मष्टक पट्टकम्) ५५।५

सद्गुह्यत्व- कत्रन्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६७

सप्तमय- १ इस लोकका भय,
२ परलोकका भय ३
बदनाभय ४ आकस्मिक
भय ५ मरण भय ६
अगुप्तिभय और ७ अरशा
भय ३४।१७६

सप्तमङ्गी- किसी पदार्थका निरूपण
करनके लिए ब्रह्मनाकी
इच्छामे होनेवाले सात भगा
का समूह । जो इस प्रकार
ह- १ स्यादस्ति २ स्या
नास्ति, ३ स्यादस्तिनास्ति
४ स्याद् अवक्तव्य ५ स्याद्
अस्ति अवक्तव्य ६ स्याद्
नास्ति अवक्तव्य और ७
स्याद् अस्ति नास्ति अव
क्तव्य ३३।१३५

सप्तमधाय- द्वांशभागका चौथा
भेद ३४।१३८

सप्तमदक्षि- सहधर्मोंके लिए
दान देना । ३८।३८ ३९

सप्तमिति- प्रमादरहित प्रवृत्ति
करना । सप्तमितियाँ पाँच
ह- १ ईर्ष्या २ माया, ३
एषणा ४ आदान निक्ष
पण और ५ प्रतिष्ठापन,
३६।१३५

सप्तमल- चक्रवर्तीकी एक निधि
३७।७३

सप्तमधि- अत्रिज्ञानका एक
भू जो मुनियोंके होता ह
३६।१४७

सप्तमनसपद- गर्भान्वय क्रिया
का एक भेद ३८।५६

सप्तम- एक प्रकारको इच्छाए ।
य ४ है १ आहार २ भय
३ मयुन और परिग्रह
३६।१३१

सप्तम- पाँच इन्द्रिय और मन
को बश करना तथा छह
कामके जीवोंकी रक्षा करना
३६।१५७

सप्तमविचय- अभ्यव्यापनका
एक भेद ३६।१६१

सप्तम- आधुके अन्तमे सत्यास
धारण करना, ३९।१४५

सप्तमधिक- चारित्रिका एक भेद
जिसका सामान्य रूपसे
समस्त पापोंका त्याग कर
समताभाव धारण करना
अथ है ३४।१३०

सप्तमज्य- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६२

सप्तमय- कत्रन्वयक्रियाका एक
भेद ३८।६७

सिद्धाधपादप- समवसरणमें
विद्यमान एक वृक्ष ४०।२०

सिद्धि- १ अणिमा २ महिमा
३ गरिमा ४ लघिमा ५
प्राप्ति ६ प्राकाम्य ७
ईशित्व और ८ वशित्व ये
आठ सिद्धियाँ ह ३४।२१४

सुखीदय- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६०

सुप्रति- गर्भान्वय क्रियाका एक
भू ३८।५५

सुरेन्द्रता- कत्रन्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६७

सूत्र- यज्ञोपवीत ३९।९४

सूत्रकृत- द्वादशाङ्गका दूसरा भेद
३४।१३६

सूत्र- समवसरणमें विद्यमान
ऊँची भूमि ४१।२०

स्थपति- चक्रवर्तीका एक चेतन
रत्न जिसे इजीनियर कह
सकते हैं ३२।२४

स्थानलभ- दौष्टान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६४

स्थानाभ्ययन- द्वादशाङ्गका
तीसरा भेद ३४।१ ६

स्वाभ्यास- शास्त्रका अभ्ययन
और भावना करना ३८।४१

स्वगुरुस्थानसकृन्ति- गर्भान्वय
क्रियाका एक भेद ३८।५९

स्वराज्य- गर्भान्वय क्रियाका
एक भेद ३८।६१

स्वात्मोत्था- मुक्त जीवोंकी
स्वात्मोत्पत्ति जाति कहलाती
है । ३९।१६८

ह

हरितकाय- वृक्ष लता फल
फूल आदि हरी वनस्पतियाँ
३४।१९४

हविष्याक- नवग्र बनाना इसमें
गाहपत्यभिनिका उपयोग
होता है ३४।८६

हिरण्योष्कृष्टजम्भता- गर्भान्वय
क्रियाका एक भेद ३८।६०

भौगोलिक शब्द-सूची

अ

अङ्ग = एक देश - भागलपुरका

समीपवर्ती प्रदेश २९।३८

अतिगम्भीरा = एक नदी २९।५०

अत्रीन्द्र = सुमेरु पर्वत ३६।५०

अनङ्ग = एक पर्वत २९।३०

अनन्तर पाण्ड्य = एक देश

२९।८०

अपरान्त = पश्चिम दिग्भाग

३०।१

अम्बेणा = एक नदी २९।८७

अयोध्या = मन्नाट् भरतकी राज-

धानी उत्तरप्रदेशकी प्रसिद्ध

नगरी २६।८३

अरुणा = एक नदी २९।५०

अवन्तिकासा = एक नदी २९।६४

अवन्ती = मालवाका एक भाग -

उज्जैनका समीपवर्ती भाग

२९।४०

असुरधूपन = एक पर्वत २९।७०

आन्ध्र = एक देश २९।७९

आन्ध्र = आन्ध्र देशके लोग

२९।९२

आपाण्डर गिरि = एक पर्वत

२९।४६

इ

इक्षुमती = एक नदी २९।८३

उ

उण्डु = एक देश २९।४१

उन्मग्नजला = विजयार्धकी गुफा-

में बहनेवाली एक नदी

३२।२१

उमयश्रेणी = विजयार्धकी उत्तर

और दक्षिण श्रेणी ३५।७३

उर्गाम्बती = गान्धार देशकी

एक नदी ४६।१४५

उर्गामर = एक देश २९।४२

ऊ

ऊजयन्ताद्रि = गिरगार पर्वत

३०।१००

ऊहा = एक नदी २९।६२

ऋ

ऋक्षवन = एक पर्वत २९।६९

ऋग्यमुक् = एक पर्वत २९।५६

ओ

ओडु = ओडु देशके लोग २९।९३

औड = दक्षिण भारतका एक

देश २९।७९

औदुम्बरी = एक नदी २९।५४

क

कच्छ = एक देश काठियावाड

२९।४१

कङ्गा = एक नदी २९।६२

कर्पावती = एक नदी २९।४९

कमेकुर = एक देश २९।८०

कम्बलाद्रि = एक पर्वत २९।६९

कम्बुक = एक सरोवर २९।५१

करभवेगिनी = एक नदी २९।६५

करारी = एक नदी ३०।५७

कर्णटक = कर्णाटक देशके लोग

२९।९१

कलिङ्ग = उड़ीसा - भुवनेश्वरका

समीपवर्ती प्रदेश २९।३८

कागन्धु = एक नदी २९।६४

काञ्चनपुर = विदेहका एक नगर

४७।७८

काण्टकप्रपात = एक गुफा

३२।१८८

कान्तपुर = पुष्करार्ध द्वीपके

पश्चिम विदेह क्षेत्रके पञ्च

देशका एक नगर ८८।८०

कामरूप = एक देश - ज्ञानान

२९।४०

कालमती = एक नदी ३०।५०

कालकूट = एक देश २९।४८

कालतीया = एक नदी २९।५०

कालिङ्गक = कलिङ्ग देशके लोग

२९।९३

कालिन्द्र = एक देश २९।४८

काश्मीर = भारतका उत्तर

दिशावर्ती एक प्रसिद्ध प्रदेश

२९।४२

काशी = वाराणसीका समीपवर्ती

प्रदेश २९।४०

किरातविषय = म्लेच्छलोक एक

देश २९।८८

किष्किन्ध = एक पर्वत २९।९०

कुडुम्ब = एक देश २९।८०

कुन्जा = एक नदी २९।८७

कुरु = उत्तर प्रदेशके अन्तर्गत

मेरठका समीपवर्ती प्रदेश

२९।४०

कुरुजाङ्गल = मेरठका समीपवर्ती

प्रदेश ४५।१६९

कूटाद्रि = एक पर्वत २९।६७

कृतमाला = एक नदी २९।६३

कृष्णगिरि = एक पर्वत ३०।५०

कृष्णवेणा = एक नदी २९।८६

केतम्बा-केतवा = एक नदी

३०।५७

केरल = एक देश २९।७९

कैलास = वर्तमान हिमालय

३३।११

कोलाहलगिरि = एक पर्वत

३३।११

कोमल = अयोध्याका समीपवर्ती

प्रदेश २९।८०

कौन्तिरी = एक नदी २९।५०

ग

गच्छराज्य = विजयार्ध पर्वत

३३।१८

ग

गङ्गा = एक प्रसिद्ध नदी २९।४

गङ्गापात = एक कुण्ड जिसमें
हिमवत् पर्वतसे गङ्गा नदी
गिरती है ३२।१६३

गङ्गाद्वार = जिस द्वारसे गङ्गा
नदी लवणसमुद्रमें प्रवेश
करती है ३५।६८

गङ्गापुर = विजयाध पर्वतके
दक्षिणभागमें स्थित एक
नगर ४७।१२८

गङ्गागिरि = एक पर्वत २९।६८

गम्भीरा = एक नदी २९।५०

गांधारदेश = पुष्कलावती देशके
विजयाध पर्वतकी दक्षिण
श्रेणीका एक देश ४६।१४५

गोदावरी = एक नदी २९।८५

गोमती = एक नदी २९।४९

गोरथ = एक पर्वत २९।४६

गोशोप = एक पर्वत २९।८९

गौड़ = एक देश २९।९१

गौरी धिपथ = विजयाधकी दक्षिण
श्रेणीका एक देश ४६।१४७

घ

घमण्वती = एक नदी - चम्बल
२९।६४

चित्रवती = एक नदी २९।५८

चुहिलापी = एक नदी २९।६५

चणों = एक नदी २९।८७

चदिकपूश = एक देश २९।५७

चदिपर्वत = एक पर्वत २९।५५

चेदिराष्ट्र = नदी देश २९।५५

चेदा = एक देश मालवाका एक
भाग २९।४१

ज

जगता = लवणसमुद्रकी नदी
२८।६७

जम्बूद्वीप = प्रथम तीप ४३।७४

जम्बूमता = एक नदी ५१।२

जाह्नवा = गंगा नदी २६।१४७

त

ताम्राक्ष = भरतनु नामका द्वीप

२।१६६

तमसा = एक नदी २९।५४

तमिसा = विजयाध पर्वतकी एक
गंगा ३२।६

तापी = एक नदी ३०।६१

ताम्रा = एक नदी २९।५०

तुङ्गवरक = एक पर्वत ३०।४९

तैरश्चिक = एक पर्वत २९।६४

तैला = एक नदी २९।८३

त्रिकलिङ्ग = दक्षिण भारतका एक
देश २९।७९

त्रिकू = दक्षिणका एक पर्वत
३।२६

त्रिमागगा = गंगा २८।१९

त्रैराज्य = चोल केरल पाण्ड्य
३०।३५

द

दशार्ण = विदिशाका समीपवर्ती
प्रदेश २९।४२

दशार्णा = घसान नदी २९।६०

दमना = एक नदी ३०।५९

ददुराद्रि = एक पर्वत २९।८९

दास्येणा = एक नदी ३०।५५

देवनिम्नगा = गंगा नदी २७।३

ध

धान्यकमाल = विदेह क्षत्रके
पुष्कलावती देश सम्बन्धी
विजयाध पर्वतके निकट
स्थित एक तन ४६।९४

धावपुर = विजयाधका एक
नगर ४७।१४६

धैर्या = एक नदी २९।८७

झ

जकरवा = एक नदी २९।८३

जन्दा = एक नदी २९।६५

जर्मदा = भारतकी एक प्रसिद्ध
नदी २९।५२

जाग = एक पर्वत २९।८७

जागप्रिय = एक पर्वत २९।५८

जामिशैल = वृषभाचल जिसपर
चक्रवर्ती अपनी प्रशस्ति

लिखता है ४५।५८

जालिका = एक नदी २९।६१

जिबुरा = एक नदी २९।५०

जिमप्रजला = विजयाधकी गुफा
में बहनेवाली एक नदी
३२।२१

जिविन्ध्या = एक नदी २९।६२

जिषध = एक कुलाचल ३६।४८

जिष्कुन्दरी = एक नदी २९।६१

जीरा = एक नदी ३०।५६

जीलाद्रि = एक कुलाचल ३६।
४८

प

पद्मक = पुष्कराध द्वीपके पश्चिम
विदेहका एक प्रसिद्ध देश
४७।१८०

पनसा = एक नदी २९।५४

पम्पासरस = एक प्रसिद्ध सरोवर
२९।५५

परक्षा = एक नदी २९।६३

पाम्नाल = पजाब २९।४०

पाण्ड्य = एक देश २९।८०

पाण्ड्य कवाटक = एक पर्वत
२९।८९

पारा = एक नदी ३०।५९

पारियात्र = एक पर्वत २९।६७

पुण्ड्र = एक देश २९।४१

पुण्डरीकिणी = विदेहकी एक
नगरी ४६।१९

पुन्नाग = एक देश २९।६९

पुष्कलावती = विदेहका एक देश
४६।१९

पुष्पगिरि = एक पर्वत २९।६८

पोदम = पोदनपुर - ब्राह्मवलीकी
राजधानी ३४।६८

प्रमृशा = एक नदी २९।५४

प्रवेणी = एक नदी २९।८६

प्रहरा = एक नदी ३०।५८

प्राच विदेह = पूव विदेह ४६।
१९

प्राङ्माल्यगिरि = एक पर्वत
२९।५६

प्रातर = एक देश २९।७९

ध

धन = बगाल २९।३८



विवार

प्रज्ञान

थानकवासी जैन महासंघ दिल्ली प्रदेश (पंजी.) का मासिक मुखपत्र

मूल्य : 5 रुपये

गङ्गापात = एक कुण्ड जिसमें
हिमवत् पर्वतसे गङ्गा नदी
गिरती है ३२।१६३
गङ्गाद्वार = जिस द्वारसे गङ्गा
नदी लवणसमुद्रमें प्रवेश
करती है ३५।६८
गङ्गपुर = विजयाध पर्वतके
दक्षिणभागमें स्थित एक
नगर ४७।१२८
गदागिरि = एक पर्वत २९।६८
गम्भीरा = एक नदी २९।५०
गान्धारदेश = पुष्कलावती देशके
विजयाध पर्वतकी दक्षिण
श्रेणीका एक देश ४६।१४५
गोदावरी = एक नदी २९।८५
गोमती = एक नदी २९।४९
गोरथ = एक पर्वत २९।४६
गोशीघ = एक पर्वत २९।८९
गाङ्ग = एक देश २९।९१
गौरी विषय = विजयाधकी दक्षिण
श्रेणीका एक देश ४६।१४७
घ
घमण्यती = एक नदी - चम्बल
२९।६४
चिग्रवती = एक नदी २९।५८
शुलितापी = एक नदी २९।६५
चूणी = एक नदी २९।८७
चद्रिकूश = एक देश २९।५७
चेदिपर्वत = एक पर्वत २९।५५
चदिराष्ट्र = चो देश २९।५५
चेदा = एक देश मालवाका एक
भाग २९।४१
ज
जगन्ना = लवणसमुद्रकी चो
२८।६७
जम्भीर = प्रथम द्वीप ४।७४
। = एक नदी २९।२
= गंगा नदी २६।१४७
त
तद = धरतनु नामका द्वीप
२९।१६६
= एक नदी २९।१४

तमिस्रा = विजयाध पर्वतकी एक
गुफा ३२।६
तापा = एक नदी ३०।६१
ताम्रा = एक नदी २९।५०
तुङ्गवरक = एक पर्वत ३०।४९
तैरक्षिक = एक पर्वत २९।६४
तैला = एक नदी २९।८३
त्रिकलिङ्ग = दक्षिण भारतका एक
देश २९।७९
त्रिकूट = दक्षिणका एक पर्वत
३०।२६
त्रिमागगा = गंगा २८।१९
त्रैराज्य = चोल केरल पाण्ड्य
३०।३५
द
दशार्ण = विदिशाका समीपवर्ती
प्रदेश २९।४२
दशार्ण = धसान नदी २९।६०
दमना = एक नदी ३०।५९
ददुराद्रि = एक पर्वत २९।८९
दाक्षवेणा = एक नदी ३०।५५
देवनिम्नगा = गंगा नदी २७।३
घ
धात्यकमाल = विदेह क्षत्रके
पुष्कलावती देश सम्बन्धी
विजयाध पर्वतके निकट
स्थित एक वन ४६।९४
धान्यपुर = विजयाधका एक
नगर ४७।१४६
धैर्या = एक नदी २९।८७
न
नक्रया = एक नदी २९।८३
नन्दा = एक नदी २९।६५
नमदा = भारतकी एक प्रसिद्ध
नदी २९।५२
नाग = एक पर्वत २९।८७
नागप्रिय = एक पर्वत २९।५८
नामिनील = वृषभाचल जिसपर
चरुवर्ती अपनी प्रशस्ति
लिखता है ४५।५८
नालिना = एक नदी २९।६१
निशुरा = एक नदी २९।५०

निमग्नजला = विजयाधकी गुफा
में बहनेवाली एक नदी
३२।२१
निर्विन्ध्या = एक नदी २९।६२
निषध = एक कुलाचल ३६।४८
निष्कुदरी = एक नदी २९।६१
नीरा = एक नदी ३०।५६
नीलाद्रि = एक कुलाचल ३६।
४८
प
पन्नक = पुष्कराध द्वीपके पश्चिम
विदेहका एक प्रसिद्ध देश
४७।१८०
पनसा = एक नदी २९।५४
पम्पातरस् = एक प्रसिद्ध सरोवर
२९।५५
परजा = एक नदी २९।६३
पाम्नाल = पंजाब २९।४०
पाण्ड्य = एक देश २९।८०
पाण्ड्य क्वाटक = एक पर्वत
२९।८९
पारा = एक नदी ३०।५९
पारियात्र = एक पर्वत २९।६७
पुण्ड्र = एक देश २९।४१
पुण्डरीकिणी = विदेहकी एक
नगरी ४६।१९
पुन्नाग = एक देश २९।६९
पुष्कलावती = विदेहका एक देश
४६।१९
पुष्पगिरि = एक पर्वत २९।६८
पोदन = पोदनपुर - बाहुबलीकी
राजधानी ३४।६८
प्रमृशा = एक नदी २९।५४
प्रवेणी = एक नदी २९।८६
प्रहरा = एक नदी ३०।५८
प्राग् विदेह = पूर्व विदेह ४६।
१९
प्राङ्मात्यगिरि = एक पर्वत
२९।५६
प्रातर = एक देश २९।७९
ध
धनु = बंगाल २९।३८

बहुवज्रा = एक नदी २९।६१

वाणा = एक नदी ३०।५७

बीजानदी = एक नदी २९।५२

भ

भरत = जम्बू द्वीपका दक्षिण दिशावर्ती क्षेत्र ४३।७४

भूतवन = भूतारण्य नामका वन ४७।६६

भैमरथी (भीमरथी) = एक नदी ३०।५५

भोगपुर = गौरी देशकी नगरी ४६।१४७

म

मदेम = एक पर्वत २९।७०

मद्र = एक देश २९।४१

मनोरम = एक देश ४७।४९

मलय = दक्षिणका एक पर्वत ३०।२६

मलयकाञ्चन = विजयार्ध पर्वत-के समीपस्थ एक पर्वत ४६।१३५

मलद = एक देश २९।४७

मल्लदेश = एक देश २९।४८

महाकाल = एक गुफा ४७।१०३

महेन्द्र = एक पर्वत २९।८८

महेन्द्रका = एक नदी २९।८४

मागधिक = मगध देशके राजा राजगृही (विहार) का समीपवर्ती प्रदेश मगध कहलाता था २९।३८

मानस = एक प्रसिद्ध सरोवर २९।८५

मात्यवती = एक नदी २९।५९

मापवती = एक नदी २९।८४

महिष = एक देश २९।८०

मुकुन्द = एक पर्वत ३०।५०

मुरा = एक नदी ३०।५८

मृला = एक नदी ३०।५६

मृणालवती = विदेहकी एक नगरी ४६।१०१

मेन्ला नदी = एक नदी २९।५२

य

यमकाट्टि = विदेहका एक पर्वत, जिमे धेरकर मीता नदी वहती है ३७।९८

यसुना = एक प्रसिद्ध नदी २९।५४

र

रत्नावर्त = एक पर्वत ४७।२२

रथास्फा = एक नदी २९।४९

रम्या = एक नदी २९।६१

राजत = विजयार्ध पर्वत ३१।१४

राजपुर = जम्बू द्वीपके विदेह क्षेत्रमे स्थित विजयार्ध पर्वत-का एक नगर ४७।७३

रुप्याट्टि = विजयार्ध पर्वत ३७।१७३

रेयिक = एक पर्वत २९।७०

रेवतक = गिरनार पर्वत ३०।१०१

रेवा = एक नदी २९।६५

रोहितास्या = एक महानदी ३२।१२३

रौन्य गैल = विजयार्ध पर्वत ३७।८६

ल

लाङ्गल खातिका = एक नदी ३०।६२

लौहित्य समुद्र = एक सरोवर २९।५१

व

वज्रा = एक नदी २९।८३

वल्म = प्रयागके पामका एक देश २९।४१

वत्सकावती = जम्बू द्वीपका एक देश ४७।७२

वसुमती = एक नदी २९।६३

वातपृष्ठ = एक पर्वत २९।६९

वामवन = एक पर्वत २९।८०

विजयपुर = विजयार्धका एक नगर ४८।१४०

विजयार्धाचल = विजयार्ध पर्वत ३५।३२

विनीता = अयोध्यापुरी ३४।१

विन्ध्य = एक पर्वत २९।८८

विन्ध्याट्टि = भारतका एक प्रसिद्ध पर्वत ४५।१५३

विन्ध्यपुरी = विन्ध्याचलके निकटमे स्थित एक नगरी ४५।१५३

विमलपुर = एक नगर ४७।११८

विबुधापगा = गंगा नदी २६।१५०

विशाला = एक नदी २९।६१

वृत्रवती = एक नदी २९।५८

वृषभाट्टि = वृषभाचल, जिसपर चक्रवर्ती अपनी प्रशस्ति लिखता है ३५।७७

वेणा = एक नदी २९।८७

वेणी = एक नदी ३०।८३

वेणुमती = एक नदी २९।५९

वैतरणी = एक नदी २९।८४

वैजयन्त = समुद्रका द्वार २५।१६७

विदर्भ = वरार २९।४०

वैभार पर्वत = एक पर्वत २९।४६

वैडूर्य = एक पर्वत २९।६७

व्याघ्री = एक नदी २९।६४

श

शतमोगा = एक नदी २९।६५

शर्करावती = एक नदी २९।६३

शिवकर = मनोरमदेशका एक नगर ४७।४९

शिवकर = एक वन ४६।४८

शित्पपुर = विजयार्धका एक नगर ४८।१४४

शुष्कनदी = एक नदी २९।८८

शुक्तिमती = एक नदी २९।५१

श्रीनगुरु = एक पर्वत २९।८९

शोण = एक नदी-मोन २९।७०

शोभानगर = विदेह क्षेत्र पर नगरी ८६।१५

श्रीप = मुरम देशका नगर ८६।१५

धाक = एक पवन २९।८९
 धापत = एक पवन २९।९०
 श्रेयपुर = विजयाधका एक
 नगर ४७।१४२
 शसना = एक नदी २९।८३
 स
 सप्तपारा = एक नदी २९।६५
 सन्नीरा = एक नदी २९।८६
 सप्तगोदावर = एक नदी २९।८५
 समतोया = एक नदी २९।६२
 सरयू = अयोध्याके निकट बहने
 वाला एक नदी ४५।१४४
 सप्तसरोवर = धायकमाल वनका
 एक सरोवर ४६।१०२
 सहायल = एक पवन ३०।२७
 साकेत = अयोध्यापुरी ३७।१
 सिकतिनी = एक नदी २९।६१

सितगिरि = एक पवन २९।६८
 सिद्धकूट = विजयाधका एक
 चैत्यालय ४६।१५८
 सिन्धु = एक नदी २९।६१
 सिन्धु = एक नदी २९।६३
 सिंहल = एक देश (श्रीलंका)
 ३०।२६
 सीता = विदेहकी एक नदी
 ३७।९८
 सीममहाचल = सीमा नामका
 पवन ४५।१३४
 सुप्रयोगा = एक नदी २९।८६
 सुमन्दर = एक पवन ३०।५०
 सुमागधी = एक नदी २९।४९
 सुरम्ब = विदेहका एक देश
 ४७।१४
 सुरगिरि = एक पवन ४७।६

सुसीमा = विदेहका एक देश
 ४७।६५
 सुसीमानगर = वत्सदेशका नगर
 ४६।२५६
 सुसक = एक देश २९।४१
 सूकरिका = एक नदी २९।८७
 स्वस्वन्ती = गंगा नदी २६।
 १४८
 स्वधुनी = गंगा नदी ३५।७७
 ह
 हयपुर = विजयाधका एक नगर
 ४७।१३२
 हस्तिपानी = एक नदी २९।६४
 हास्तिनायपुर = हस्तिनापुर
 ४३।७६
 हिमाद्रि = हिमवत् नामका कुला
 चल ३६।६१

व्यक्तिवाचक शब्द-सूची

अ

अकम्पन- वाराणसीके राजा
४३।१२७
अकम्पन- वत्सकावती देशके
विजयार्धपर रहनेवाला एक
विद्याधर राजा - पिप्पला-
का पिता ४७।७५
अक्षमाला- मुलोचनाकी वहिन
लक्ष्मीमतीका दूसरा नाम
५२।२१
अक्षिमाला- मुलोचनाकी वहिन
लक्ष्मीमती, इसके दूसरे
नाम अक्षिमाला, अक्षमाला
४५।६४
अग्निदेव- भगवान् वृषभदेवका
एक गणवर ४३।४५
अचल- भगवान् वृषभदेवका एक
गणवर ४३।५७
अजितञ्जय- चक्रवर्ती भरतका
रथ २८।५८
अजितञ्जय- भरत चक्रवर्तीका
पुत्र ४७।२८२
अटवीश्री- शोभा नगरके गवित-
पेण सामन्तकी स्त्री ४६।९६
अतिवल- एक विद्याधर ४७।१०८
अतिवल- भगवान् वृषभदेवका
एक गणवर ४३।६५
अतिवीर्य- भरत चक्रवर्तीका पुत्र
४७।२८२
अतिपिङ्गल- पिङ्गल नामक
कोतवालका पुत्र ४६।३६१
अधिराट्- भरत चक्रवर्ती
३६।१९२
अनवद्यमति- भरत चक्रवर्तीका
एक मन्त्री, जो कि मुलो-
चनाके स्वयंवरके समय
अर्ककीतिके माथ गया था
४४।२२

७२

अनन्तमति- एक आर्थिका
४६।४७
अनङ्गपताका- विद्युद्देगाकी सखी
४७।३४
अनन्तवीर्य- जयकुमारका पुत्र
४७।२७७
अनिलवेग- मित्रकरपुरका राजा
४७।८९
अनुत्तर- चक्रवर्ती भन्तका सिंहा-
मन ३७।१५४
अनुपमान- चक्रवर्ती भरतके
चमर ३७।१५५
अनुपम- भगवान् वृषभदेवका
एक गणवर ४३।६६
अन्त्यमनु- भरत चक्रवर्ती
३६।१०३
अपराजित- भगवान् वृषभदेवका
एक पुत्र ४३।५९
अभेद्य- भरत चक्रवर्तीका कवच
३७।१५९
अमितमति- एक आर्थिकाका
नाम ४६।४७
अमृत- भरत चक्रवर्तीका पेय
रस ३७।१८९
अमृतकल्प- भरत चक्रवर्तीके
खाद्य पदार्थ ३७।१८९
अमृतगर्म- भरत चक्रवर्तीके
खाने योग्य लड्डू आदि
पदार्थ ३७।१८८
अमोघ- चक्रवर्ती भरतके बाण
३७।१६२
अयोध्य- चक्रवर्ती भरतका
सेनापति ३७।१७४
अरिन्दम- भरत चक्रवर्तीका पुत्र
४७।२८१
अरिञ्जय- भरत चक्रवर्तीका
पुत्र ४७।२८१
अर्ककीर्ति- भरत चक्रवर्तीका
पुत्र ४३।५३

अवतमिका- चक्रवर्ती भरतकी
रत्नमाला ३७।१५३
अशनिवेग- एक विद्याधर
४७।२१
अशनिवर- एक विद्याधर राजा
४७।१७५
अशोकदेव- मृणालवती नगरीका
एक सेठ ४६।१०६
अष्टचन्द्र- विद्याधरविशेष ४४।
११३

आ

आदिगुरु- भगवान् वृषभदेव
३४।४५
आदिभर्ता- भगवान् आदिनाथ
४१।४
आदिवेधम्- भगवान् आदिनाथ
३५।१०९
आदित्यगनि- उशीरवती नगरी-
का राजा ४६।१४६
आदित्यगति- हिरण्यवर्मका
पिता ४७।१८५
आद्यदेवा- भगवान् वृषभदेव
४२।२
आद्यन्मृष्टा- भगवान् वृषभदेव
३६।९५
आनन्द- एक राजा ४६।२८०
आनन्दिनी- भरत चक्रवर्तीकी
भेरी ३७।१८२
आप्त- जिनेन्द्रका नाम ३९।१३
आवर्त- विजयार्धके उत्तरमे
रहनेवाला एक म्हेच्छ
वण्डका राजा ३२।८६
उ
उत्पलमाला- एक वेत्रा
८६।३००
ऐ
ऐश्वर्य- दम्बादुर्गा
भन्त ३५।६३

क

कच्छ- भगवान् वृषभदेवका एक
गणधर ४३।६५
कनकरथ- कातपुरका राजा
४७।१८१
कनकप्रभ- राजा कनकरथ और
रानी कनकप्रभाका पुत्र
४७।१८१
कनकप्रभा- राजा कनकरथकी
स्त्री ४७।१८१
कनकमाला- राजा प्रजापालकी
रानी ४६।४९
कनकश्री- मृणालवतीके सेठ
सुनेतुकी स्त्री ४६।१०४
कमलावती- विमलसेनकी पुत्री
४७।११४
काकोदर- एक साँपका नाम
४३।९३
काञ्चना- स्वाकी एक देवी
४७।२६१
कान्तवता- अनिलवगकी स्त्री
४७।४९
कामदध- भगवान् वृषभदेवका
एक पुत्र ४३।६६
कामवृष्टि- भरत चक्रवर्तीके
गृहपति रत्नका नाम ३७।
१७६
काली- नागोका जीव भरकर
काली नामकी जलदेवी हुई
४३।९५
काशिपाम्भजा- सुलोचना
४५।१६९
काशिराज- वाराणसीका राजा
अव्ययन ४४।१०
कानिमता- वरवीति राजाकी
प्रिय स्त्री ४७।१४१
कानि- एव स्त्री ८।२२६
कुबरकान्त- कुबरमित्र सेठ और
धनवतीका पुत्र कुबरकात
४६। १
कुबरधा- धमुगामकी माता
४७।१

कुबेरकान्त- चक्रवर्ती भरतका
अस्य भाण्डार ३७।१५१
कुबेरमित्र- एक सेठका नाम
४६।२१
कुबेरमित्रा- समुद्रवत्त सेठकी
स्त्री ४६।४१
कुमार- अककीर्ति ४५।४२
कुम्भ- भगवान् वृषभदेवका एक
गणधर ४३।५४
कुरुराज- हस्तिनापुरके राजा
सोमप्रभका पुत्र जयकुमार
३२।६८
कौरव्य- जयकुमार ४५।७८
कृतमाल- एक देव ३५।७३
कृतमाल- एक देव ३१।९४
क्षितिसार- चक्रवर्ती भरतके
प्राकार कोटका नाम ३७।
१४६
ग
गङ्गा- गंगा नामकी देवी ३७।१०
गङ्गा देवी- एक देवी ४५।१४९
१५१
गणबन्धामर- चक्रवर्तीकी आज्ञा
का पालन करनेवाले एक
प्रकारके देव जो कि सोलह
हजारकी संख्यामें चक्रवर्ती
की निधिया और रत्नाकी
रक्षा करत ह ३७ १४५
गम्भाराधर्त- भरत चक्रवर्तीके
मलका नाम ३७।१८४
गांधारा- एक आर्यिका ४६।
२३७
गिरिकूटक- चक्रवर्ती भरतका
राजमहल जिसपर चढ़कर
सब दिशाआकी शोभा देखते
थ ३७।१४९
गुणपाल- एक मुनिराज ४७।६
गुणपाल- धीपालकी जयावती
रानासे उत्पन्न पुत्र
४७।१७२
गुणपाल- विष्णु क्षत्रके एक
सीधकर ४७।१६३

गुणपाल- राजा लोकपालका पुत्र
४६।२४३
गुणवती- एक आर्यिका ४६।२१९
गुणवती- राजा प्रजापालकी
पुत्री ४६।४५
गुप्तकल्यु- भगवान् वृषभदेवका
एक गणधर ४३।६२
गुप्तयज्ञ- भगवान् वृषभदेवका
एक गणधर ४३।६१
गुरु- भगवान् आदिनाथ
३६।२०३
गृहकूटक- चक्रवर्ती भरतका
वर्षाकालीन महल ३७।१५०
गौतम- भगवान् महावीरके
प्रतिगणधर
घ
चक्रधर- भरत चक्रवर्ती ३४।४६
चक्रपाणि - , ३४।७१
चक्रिन् - ,, २६।५९
चण्डवेश- चक्रवर्ती भरतके दण्ड
रत्नका नाम ३७।१७०
चन्द्रधूल- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।६४
चित्ररथ- मनोरथका पुत्र
४६।१८१
चित्रवेगा- व्यन्तर देवी ४६।३५५
चित्रसेना- अतिबल विद्याधरकी
स्त्री ४७।१०९
चित्रप्रेणा- व्यन्तर देवी ४६।३५५
चिन्ताजननी- भरत चक्रवर्तीके
काकिणी रत्नका नाम
३७।१७३
चिलात- विजयाधके उत्तरवर्ती
खण्डमें रहनेवाला एक
म्लेच्छ राजा ३२।४६
चूडामणि- चक्रवर्ती भरतके
मणिका नाम ३२।४६
ज
जगद्गुरु- भगवान् आदिनाथ
४१।१७
जगन्पाल- एक चक्रवर्ती ४७।९

जगन्माता— भगवान्की माताका
नाम ३८।२२५
जय— जयकुमार ४३।५०
जय— भगवान् वृषभदेवका गण-
घर ४३।६५
जयन्त— जयकुमारका छोटा भाई
४७।२८०
जयधाम— सर्वदयित सेठका एक-
मित्र ४७।२१०
जयदत्ता— सर्वदयित सेठकी
स्त्री ४७।१९४
जयसामा— जयधामकी स्त्री
४७।२१०
जयवती— राजा श्रीधर और
रानी श्रीमतीकी पुत्री
४७।१४
जयावती— श्रीपाल चक्रवर्तीकी
स्त्री ४७।१७०
जयसेना— सर्वदयित सेठकी स्त्री
४७।१९४
जयसंना— श्रीपालके पुत्र गुण-
पालकी स्त्री ४७।१७६
जयवर्मा— जयावतीका भाई
४७।१७४
जयवर्मा— एक राजा ४४।१०६
जितरात्रु— समुद्रदत्तका शक्ति
पुत्र ४७।२११
जिनदत्ता— मृणालवतीके सेठ
अशोकदेवकी स्त्री ४६।१०६
जिनदेव— धरोहर रखनेवाला
एक पुरुष ४६।२७४
जिनाम्बिका— भगवान्की माता-
का नाम ३८।२२५
जीमूत— चक्रवर्ती भरतका स्नान-
गृह ३७।१५२
ज्योतिर्वेगा— अशनिवेगकी माता-
का नाम ४७।२९
त
तेजोराशि— भगवान् ऋषभदेव-
का एक गणघर ४३।६३

द
द्विस्वस्मिन्का— चक्रवर्ती भरतकी
सभाभूमिका नाम ३७।१४८
दुर्मर्षण— एक राजकुमार ४८।१
दुर्मुख— भवदेवका दूसरा नाम
४६।१०६
देवकीर्ति— एक राजा ४४।१०६
देवभाव— भगवान् ऋषभदेव-
का एक गणघर ४३।५४
देवरस्या— चक्रवर्ती भरतकी
कपडेकी चाँदनी ३७।१५३
देवश्री— गोभानगरके राजा
प्रजापालकी स्त्री ४६।९५
देवश्री— एक यक्षी, श्रीपाल
चक्रवर्तीकी पूर्वभवकी माता
४७।१५३
देवश्री— सर्वदयित सेठके पिताकी
छोटी बहन ४७।१९५
देवशर्मा— भगवान् वृषभदेवका
एक गणघर ४३।५४
देवसत्य— भगवान् वृषभदेवका
एक गणघर ४३।६०
द्वरथ— भगवान् वृषभदेवका
गणघर ४३।५४
द्वज्जत— भगवान् वृषभदेवके
समवसरणका प्रमुख श्रावक
४७।२९६
देवाग्नि— भगवान् वृषभदेवका
गणघर ४३।५५
दोर्वली— बाहुबली, भगवान्
आदिनाथका सुनन्दा स्त्रीसे
उत्पन्न पुत्र ३५।१
ध
धनजय— एक सेठ ४७।२००
धनजय— धनश्रीका बड़ा भाई
४७।१९२
धन्वन्तरि— मेरुकदत्त सेठका
मन्त्री ४६।११३
धनदेव— दण्डचामाण एक पुण्य
४६।२७५
धनपालक— भगवान् वृषभदेवका
गणघर ४३।६३

धनवती— व्यन्तरदेवी ४६।३५५
धनवती— कुबेरमित्र सेठकी
बत्तीस स्त्रियोमे एकका
नाम ४६।२१
धनश्री— सर्वसमृद्ध वणिक्की
स्त्री ४७।१६२
धनश्री— व्यन्तरदेवी ४६।३५६
धरणिक्म्प— राजपुरका राजा
विद्याधर ४७।७३
धरणीपति— मृणालवती नगरीका
राजा ४६।१०३
धारागृह— चक्रवर्तीका फव्वारा,
जहाँ बैठकर वे गरमीकी
शान्त करते थे ३७।१५०
धारिणी— मेरुकदत्त सेठकी स्त्री
४६।११२
धारिणी— राजा सुरदेवकी स्त्री
४६।३५२
धूमवेग— एक विद्याधर ४७।९०
धृति— एक देवी ३८।२२६
न
नन्दन— भगवान् वृषभदेवका एक
गणघर ४३।५५
नन्दिमित्र— भगवान् वृषभदेवका
गणघर ४३।६६
नन्त्री— भगवान् वृषभदेवका एक
गणघर ४३।६६
नन्दावर्त— चक्रवर्तीकी सेनाका
पड़ाव ३७।१४७
नमि— भगवान् वृषभदेवका एक
गणघर ४३।६५
नमि— विद्याधर राजा ३२।१८०
नरपति— गिल्पपुरका राजा
४७।१४४
नागसुन्य— एक देव ३२।५६
नागामर ,, ४३।११
नाट्यमाल— ,, ३२।१०१
नाट्यमादिला— नाट्याचार्यनी
पुत्री ४३।२००
निबिरनि— चक्रवर्ती भरत
३६।१५०

निधिराट्-चक्रवर्ती भरत ४१।४२
 निर्धरि- , ३६।३
 निधाश्वर- ४१।१८
 निधाशिन्- ३६।६५
 निर्मल- भगवान् वृषभदेवका
 गणधर ४३।६०
 नृपशादूल- चक्रवर्ती भरत
 ३६।६०

प

पञ्चजय- भरतचक्रवर्तीक अश्व
 रत्नका नाम ७।१७९
 पित्रल- राजा सुरदेवका जीव
 नगररक्षक ४६।३५६
 पितामह- भगवान् आदिनाथ
 ४४।२८
 पिप्पला- सुखावतीकी सखी
 ४७।७५
 पुराणपुरुष- भगवान् आदिनाथ
 ३६।२२०
 पुट- भगवान् आदिनाथ ४३।४९
 पुष्करावर्ति- चक्रवर्ती भरतका
 दास मूल ३७।१५१
 पुष्पपालिका- एक मालिनकी
 पुत्री ४६।२५२
 पुष्पवता- एक मालिनकी पुत्री
 ४६।२५८
 पृथिवी- राजा सुरदेवकी स्त्री
 ४६।३५२
 पृथिवाश्वर- भरत चक्रवर्ती
 ३६।२०
 पृथुधा- मन्त्रीका पुत्र ४२।३०५
 प्रजापाल- विन्ध्यक्षेत्र सम्बन्धी
 पुष्कलावती दशवे शोभा
 नगरका राजा ४६।९५
 प्रजापाल- पुण्डराकिणी नगरी
 का राजा ४६।२०
 प्रजापति- भगवान् आदिनाथ
 का गणधर ४२।६३
 प्रमथन- एक राजकुमार
 ४।१८९
 प्रमाथनी- रतिवती वज्रुनरीका
 १ ओष ६६।१८८

प्रभावती- सुलोचनाके पूर्वमवके
 वणनम आनवाला एक नाम
 प्रमास- यन्तर देवीका अधि
 पति ३०।१२३
 प्रियकारिणी- प्रभावतीकी सखी
 ४६।१५५
 प्रियङ्गुश्री- त्रिन्ध्यपुरीके राजा
 ४५।१५३
 प्रियदत्ता- समुद्रदत्त और कुबेर
 मिश्राकी पुत्री
 प्रियरति- एक नट
 प्रियसा- कुबरकान्तका एक
 मित्र ४६।३२
 पौरथा- भगवान् वृषभदेव
 सम्बन्धी

फ

फल्गुमति- राजा लोकपालका
 मन्त्री ४६।५१

व

वल- भगवान् वृषभदेवका गण
 धर ४३।६५
 बाहुबली- भगवान् वृषभदेवका
 पुत्र ३४।६७
 बुद्धिसागर- चक्रवर्ती भरतका
 पुरोहित ३७।१७५
 वृहस्पति- मरुकदत्त सेठका मन्त्री
 ४६।११३
 व्राह्मी- भगवान् वृषभदेवकी
 पुत्री ४५।२८८

भ

भगदत्त- भगवान् वृषभदेवका
 गणधर ४३।६२
 भगदव , ४३।६२
 भगफल्गु ४३।६२
 भगदव- मृणालवतीके सेठ
 सुवेतुका पुत्र ४६।१०४
 भद्रमुख- चक्रवर्ती भरतका
 गिलावट ३६।१७७
 भद्रबल- भगवान् वृषभदेवका
 गणधर ४३।६६
 भरत- भरत चक्रवर्ती ३८।४

भरताधीश- भरत चक्रवर्ती
 ३६।१८६
 भरतेश- भरत चक्रवर्ती ३४।३१
 भरतेश्वर- , ३४।२२३
 भरतेशिन्- ३६।१८८
 भीम- एक मुनि ४६।२६२
 भीमसुख- एक राजकुमार
 ४३।१९०

भुजबली- बाहुबली ३४।८८
 भुजविक्रमी- , ३६।५१
 भूतमुख- भरत चक्रवर्तीकी ढाल
 ३७।१६८
 भूताथ- मरुकदत्त सेठका मन्त्री
 ४६।११३
 भोगवती- अनिलवग औरकान्त
 वतीकी पुत्री ४७।५०

म

मधवान्-भगवान् वृषभदेवका
 गणधर ४३।६३
 मणिनागदत्त- रतिकुल मुनिके
 पिता ४६।३६३
 मदनवती- पिप्पलाकी सखी
 ४६।७८
 मदनवेगा- एक नटी प्रियरति
 नटकी पुत्री ४७।१७
 मनु- भरत चक्रवर्ती ३०।१४
 मनोरथ-प्रभावतीके पिता बापु
 - रथका पुत्र ४६।१७९
 मनोवेग- भरत चक्रवर्तीके एक
 कणप (शस्त्रविशेष) का
 नाम ३७।१६६
 मनोवेग- एक विद्याधर राजा
 ४७।१७७
 महारुच्छ- भगवान् वृषभदेवका
 एक गणधर ४३।६५
 महाकल्याणक- भरत चक्रवर्तीके
 भोजनका नाम ३७।१८७
 महाकाल- महाकाल गुफाम
 रहनवाला एक अन्तरदेव
 ४७।१०४
 महाजय- चक्रवर्तीका पुत्र
 ४७।२८२

महादेवी- भगवान्की माताका
नाम २८।२२५
मित्रफल्गु- भगवान् वृषभदेव-
का एक गणधर ४३।६२
महाबलिन्- बाहुबलीका पुत्र
३६।१०४
महाबाल- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।६४
महामार्गी- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।६६
महावीर- ,, ४३।६३
महारत्न- ,, ४३।६५
महारथ- ,, ४३।६३
महासती- भगवान्की माताका
नाम ३८।२२५
महाधर- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।५६
महेन्द्रवत्त- राजा अकम्पनका
कचुकी ४३।२७८
महेन्द्र- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।५६
मागध- लवण समुद्रका अधि-
ष्ठाता एक व्यन्तरदेव
२८।१२२
मिश्रानि- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।५६
मिश्रयज्ञ- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।६२
मुनिदत्त- ,, ४३।६१
मुनियज्ञ- ,, ४३।६१
मुनिगुप्त- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।६१
मुनिदेव- ,, ४३।६१
मेघमुख- एक देव ३२।५६
मेघघोषा- एक भेरीका नाम
४४।९३
मेघस्वर- जयकुमारका दूसरा
नाम ४३।१९०
मेघप्रभ- एक विद्याधर ४४।१०८
मेनका- इन्द्रकी इन्द्राणी
४६।२५७

मेरुवत्त- एक मेठका नाम ४६।
११२
मेरु- भगवान् वृषभदेवका गणधर
४३।५७
मेरुधन- ,, ४३।५७
मेरुभूति- ,, ४३।५७
य
यश पाल- विदेह क्षेत्रकी पुण्ड-
रीकिणी नगरीका राजा
४७।१९१
यश.पाल- मुखावतीका पुत्र
४७।१८८
यशस्वती- राजा प्रजापालकी
पुत्री ४६।४५
यशोबाहु- भगवान्का एक गण-
धर ४३।५५
योगिराज- मुनि बाहुबली
३६।२०१

र

रत्निकारिणी- प्रियदत्ताकी चेटी
४६।४२
रत्निकूल- एक मुनि ४३।३६३
रत्तिपिङ्गल- एक वेश्याभवत चोर
४६।२७६
रत्तिवर- एक कवूतर ४६।२२
रत्तिवर्मा- मृणालवतीका एक
सेठ ४६।१०४
रत्तिविमला- शिल्पपुरके राजा
नरपतिकी पुत्री ४७।१४५
रत्तिपेणा- मृणालवतीके सेठ श्री-
दत्तकी पुत्री ४६।१०५
रत्तिपेणा- अच्युत स्वर्गके प्रतीन्द्र-
की देवी ४६।३५२
रत्तिपेणा- रत्तिवर कवूतरकी स्त्री
४६।३०
रत्तिप्रभा- प्रभावतीकी पुत्री
४६।१८०
रत्तिप्रभा- प्रभावतीकी पुत्री
४६।१८०
रत्तिवर- एक मुनि ४७।२२३
रत्नेश- भरत चक्रवर्ती ३६।१९५

रथचरण हंति- चक्रायुध-चक्रवर्ती
२८।२०७
रथवर- एक राजकुमार
४३।१८९
रविकीर्ति- भरत चक्रवर्तीका एक
पुत्र ४७।२८१
रविप्रभ- स्वर्गका देव ४७।२६०
रविचर्य- भरत चक्रवर्तीका पुत्र
४७।२८२
राजप्रभ- हस्तिनापुरके राजा
मोमप्रभका दूसरा नाम
४३।८२
राजराज- भरत चक्रवर्ती ४५।४८
रिपुञ्जय- भरत चक्रवर्तीका पुत्र
४७।२८१

ल

लक्ष्मीवान्- भरत चक्रवर्ती
३८।२०
लक्ष्मी- एक देवी ३८।२२६
लक्ष्मीमती- वाराणसीके राजा
अकम्पनकी पुत्री ४३।१३५
लक्ष्मीवती- जयकुमारकी माता
४३।७८
लोकपाल- राजा प्रजापालका
पुत्र ४६।४८
लोल- एक किसान ४६।२७८
लोहवाहिनी- भरत चक्रीकी
छुरीका नाम ३७।११५

व

वज्र- भगवान् वृषभदेवका एक
गणधर ४३।६४
वज्रकाण्ड- भरत चक्रवर्तीका
घनुष ३७।१६१
वज्रकेतु- एक पुष्प जिमे लोग
दण्ड दे रहे थे ८६।२८३
वज्रनुष्टा- भरत चक्रवर्तीकी
शक्तिका नाम ३७।१६३
वज्रमय- भग्न चक्रवर्तीके चर्म-
रत्नका नाम ३७।१६१
वज्रगार- भगवान् उग्रभदेवका
एक गणधर ८३।६८

वज्रायुध- एक राजकुमार
 ४।१८९
 वरतनु- व्यन्तर देवाका स्वामी
 २९।१६६
 वरकीर्ति- विजयपरका राजा
 ४७।१४१
 वरधमगुरु- एक मुनि ४६।७४
 वरुण- भगवान् वृषभदेवका गण
 धर ४३।६३
 वधमानरु- चक्रवर्तीका नाट्य
 गृह ३७।१४९
 वरसन- विमलसेनका पुन
 ४७।११७
 वलि- एक राजकुमार ४३।१८९
 वसन्तिका- राजा सुरदेवकी
 एक दासी ४६।३५२
 वसु- राजाका साक्षा ४६।३१८
 वसुपाल- पुष्कलावती देश
 पुण्डरीकिणी नगरीका
 राजा ४६।२८९
 वसुपाल- श्रीपाल चक्रवर्तीका
 भाई ४७।४
 वसुपाल- राजा गुणपालका
 पुन ४६।३३२
 वसुवध-भगवान् वृषभदेवका
 एक गणधर ४।५६
 वसुधारक-चक्रवर्ती भरतका
 बाठार-सचयगृह ३७।१५२
 वसुधर- भगवान् वृषभदेवका
 गणधर ४३।५६
 वसुधरा- राजा सुरदेवकी स्त्री
 ४६।३५१
 वसुमता- लोत्पालकी स्त्री
 १६।६२
 वसुमित्र- भगवान् वृषभदेवका
 पत्न ४।५९
 वसुपत्नी- राजा मुरदेवकी स्त्री
 ४६।७१
 वायुरथ- प्रभावताका पिता
 १७।१८५
 वायुरथ- भागपुरका एक विद्या
 धर राजा १६।१८७

वायुशर्मा- भगवान् वृषभदेवका
 गणधर ४३।५५
 वारिषेणा- वसुपालकी स्त्री
 ४६।३३२
 वास्तव- एक मनुष्य ४७।१८
 विधिप्राज्ञद- अकम्पनका मित्र-
 देव ४३।२०४
 विजयगुप्त- भगवान् वृषभदेवका
 गणधर ४३।५८
 विजय- जयकुमारका छोटा
 भाई ४७।२८०
 विजयधोष- चक्रवर्ती भरतके
 पटह - नगाडेका नाम
 ३७।१८३
 विजयपवत- भरतका हाथी
 रत्न ३७।१७९
 विजयमित्र- भगवान् वृषभदेव
 का एक गणधर ४३।५९
 विजयाध- जयकुमारका हाथी
 ४४।१०२
 विजयार्ध- विजयाध पवतका
 अधिष्ठाता देव ३१।४२
 विजयार्धेश- विजयाध पवतका
 स्वामी देव ३७।१२
 विजयार्धकुमार- विजयाधपवत
 का अधिष्ठाता देव
 ३७।१५५
 विजयिल- भगवान् वृषभदेवका
 गणधर ४३।५९
 विद्युप्रभ- हस्तिनापुरके राजा
 सोमप्रभका दूसरा नाम
 ४३।८४
 विद्युत्प्रभ- चक्रवर्ती भरतके
 कुण्डल ३७।१५७
 विद्युत्प्रभा- गुणपालकी स्त्री
 ४७।१८२
 विद्भुदेग- एक और ४६।२९०
 विद्यदेगा- एक विद्याधरी
 ४७।२७
 विद्युच्चार- हिरण्यवर्मा और
 प्रभावतापर उपसग करने
 वाला एक चार ४६।२४८

विनमि- भगवान् वृषभदेवका
 गणधर ४३।६५
 विनमि- विद्याधर राजा
 ३२।१८०
 विनीत- भगवान् वृषभदेवका
 गणधर ४३।६१
 विध्यकेतु- विध्यपुरीका
 निवासी राजा ४५।१५३
 विध्यश्री- विध्यपुरीके राजा
 विध्यकेतु और रानी
 प्रियङ्गुय्रीकी पुत्री
 ४५।१५४
 विपुलमति- एक चारण ऋद्धि
 धारी मुनि ४६।७६
 विमलसेना- घामपुरके राजा
 विशालकी पुत्री ४७।१४७
 विमलसेन- एक विद्याधर
 ४७।११४
 विमलश्री- मृणालवती नगरी
 के सेठ श्रीवत्तकी स्त्री
 ४६।१०५
 विमला- राजा सुरदेवकी एक
 दासी ४६।३५२
 विमति- एक पुत्र ४६।२९१
 विशाम्पति- चक्रवर्ती भरत
 २६।८८
 विराग- जिनेन्द्रदेवका नाम
 ३९।१३
 विशामीश- भरत चक्रवर्ती
 ४१।१९
 विशालाक्ष- भगवान् वृषभदेव
 का गणधर ४३।६४
 विशाल- घामपुरका राजा
 ४७।१४६
 विश्वसन- भगवान् वृषभदेवका
 गणधर ४३।५९
 विश्वेश्वर- जगत्के ईश्वर तीर्थ
 कर ९।२७
 विश्वेश्वरा- भगवान्की माता
 का नाम ३८।२२५
 विश्वसृज- भगवान् वृषभदेव
 ३४।२२२

विषमोचिका- भरत चक्रवर्तीकी
पादुका ३७।१५८
वीतशोका- श्रेयस्पुरके राजा
शिवसेनकी पुत्री ४७।१४३
वीतशोका- राजा सुरदेवकी
एक दासी ४६।३५२
वीरञ्जय- भरत चक्रवर्तीका
पुत्र ४७।२८२
वीराङ्गद- भरत चक्रवर्तीके
हाथके कडेका नाम
३७।१८५
वृषभ- भगवान् आदिनाथ
३४।२१६
वृषभध्वज- प्रथम तीर्थकर
४३।१
वृषभसेन- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।५४
वृषभेशिन्- प्रथम तीर्थकर
३७।४
वैजयन्त- चक्रवर्ती भरतके
महलका नाम ३७।१४७
वैश्रवणदत्त- सागरसेन और
सागरसेनाका पुत्र ४७।१९७
वैश्रवणदत्ता- सागरसेन और
सागरसेनीकी पुत्री
४७।१९७

श

शकुनि- मेरुकदत्त सेठका
मन्त्री ४६।११३
शक्तिपेण- शोभानगरके राजा
प्रजापालका एक सामन्त
४६।९६
शची- इन्द्रकी इन्द्राणी ४६।२५७
शतधनु- भगवान् वृषभदेवका
एक गणधर ४३।५४
शातमातुर- भरत चक्रवर्ती
(शतस्य माता शतमाता,
तस्या अपत्य पुमान् शात-
मातुर) ३७।२१
शशिप्रभा- उशीरवती नगरीके
राजा आदित्यगतिकी स्त्री

शिव- एक विद्याधर राजा
४७।१७५
शिवकर महादेवी- जयकुमारकी
रानी ४७।२७६
शिवंकर- पुण्डरीकिणी पुरीका
एक उद्यान ४६।३४९
शिवंकरा- मुलोचनाकी सपत्नी
४६।१०
शिवकुमार- एक राजकुमार
४७।१००
शिवसेन- श्रेयस्पुरका राजा
४७।१४२
शिवघोष- एक मुनि, जिन्हें
सुमीमा नगरमें केवल ज्ञान
उत्पन्न हुआ ४६।२५६ -
शुचिमाल- भगवान् वृषभदेव-
का एक गणधर ४३।६४
शीलगुप्त- एक मुनि ४३।८८
शीलगुप्त- ,, ४६।४८
श्री- एक देवी ३८।२२६
श्रीदत्त- मृणालवती नगरीका
एक सेठ ४६।१०५
श्रीधर- एक राजा ४४।१०६
श्रीधर- श्रीपुरका राजा ४७।१४
श्रीपाल- एक मुनि ४६।२१७
श्रीपाल- राजा गुणपालका छोटा
पुत्र ४६।३४०
श्रीपाल- जम्बू द्वीपके पूर्व विदेह
क्षेत्र सम्बन्धी पुण्डरीकिणी
पुरीका राजा ४७।४
श्रीमती- मुलोचनाकी सपत्नी
४६।१०
श्रीमती- राजा सुरदेवकी एक
दासी ४६।३५२
श्रीमती- श्रीपुरके राजा श्रीधर-
की स्त्री ४७।१४
श्रेणिक-राजगृहका राजा, भग-
वान् महावीर स्वामीका
प्रधान श्रोता ३८।३ - -
श्रेयान्स-हस्तिनापुरके राजा
सोमप्रभके छोटे भाई, वन-
तीर्थके प्रवर्तक ४३।८२

स

संजयन्त- जयकुमारका छोटा
भाई ४७।२८०
सत्यगुप्त- भगवान् वृषभदेवका
एक गणधर ४३।६०
सत्यदेव- भगवान् वृषभदेवका
एक गणधर ४३।६०
सत्यदेव- शोभानगरके शक्तिपेण
सामन्तका पुत्र ४६।९६
सत्यमित्र- भगवान् वृषभदेवका
एक गणधर ४३।६०
सत्यवती- एक स्त्री ४६।३०६
सन्मार्गदेशिन्- जिनेन्द्रका नाम
३९।१३
समाधिगुप्त- एक मुनिराज
४७।१८३
समुद्रदत्त- एक सेठ, कुबेरमित्र
की स्त्री धनवतीका भाई
४६।४१
समुद्रदत्त- एक जुआडी ४६।२७९
समुद्रदत्त- सागरसेन और
देवश्रीका पुत्र ४७।१९६
समुद्रदत्त- प्रियदत्ताका पिता
४७।१८५
सम्राट्- भरत चक्रवर्ती ३८।११
संवर- भगवान् वृषभदेवका एक
गणधर ४३।६१
सर्वविजय- भगवान् वृषभदेवका
एक गणधर ४३।५८
सर्वतोभद्र- चक्रवर्ती भरतके
गोपुरका नाम ३७।१४६
सर्वतोभद्र- एक महत्त्वका नाम
४३।२७८
सर्वदेव- भगवान् वृषभदेवका
एक गणधर ४३।५८
सर्ववित्त- सर्वज, जिनेन्द्रका नाम
३९।१३
सर्वयज्ञ- भगवान् वृषभदेवका
एक गणधर ४३।५७
सर्वयज्ञ- भगवान् वृषभदेवको
एक गणधर ४३।५७

सवसमृद्ध- पुण्डरीकिणी नगरी
का राजा ४७।१९२
सवन्धित- सवसमृद्ध वर्णिक और
धनश्रीका पुत्र ४७।१९३
सवप्रिय- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।५८
सवसन्ध- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।६३
सवगुप्त- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।५८
सवरक्षित- कोतवालका नाम
४६।३०३
सवदयिता- सवसमृद्ध वर्णिक
और धनश्रीकी पुत्री सवद
यितकी बहिन ४७।१९३
सवदयिता- समद्रदत्तकी स्त्री
४७।१९८
सागरदत्त- सागरसेन और देव
श्रीका पुत्र ४७।१९६
सागरदत्त- एक जमाका खिलाड़ी
४६।२७८
सागरदत्त- वधवर्णदत्ताका पति
४७।१९८
सागरदत्ता- वधवर्णदत्तकी स्त्री
४७।१९९
सागरसेन- देवश्रीका पति
४७।१९५
सागरसेना- सागरसेनकी छोटी
बहन ४७।१९७
साधुसन- भगवान् वृषभदेवका
एक गणधर ४३।५९
साध- जिनश्रका नाम ३९।१३
मिह्माथ- वाराणसीके राजा
अकम्पनका मंत्री ४३।१८८
मिधु- सिधु नामकी देवी
७३।१०
मिधुदया- सिधु नौकी अधि
ष्ठात्री देवी ३२।७९
मिहवाहिना- भरत चक्रवर्तीकी
राज्या २७।१५४
मिहार्क- भरत चक्रवर्तीके
भाज्या नाम ७।१६४
सुकान्त- वाराणसीके राजा
अकम्पनका पुत्र ४३।१३४
सुकान्त- हिरण्यवर्माका मेघक
४६।१६४

सुकान्त- भरत चक्रवर्तीका पुत्र
४७।२८२
सुकान्त- मृणालवती नगरीके
सेठ अशोकदेव और जिन
दत्ताका पुत्र ४६।१०६
सुकेतुश्री- वाराणसीके राजा
अकम्पनका पुत्र ४३।१३४
सुकेतु- एक राजा ४४।१०६
सुकेतु- मृणालवतीका एक सेठ
४६।१०४
सुखावती- अभ्युत्तस्वर्गके प्रतीन्द्र
की देवी ४६।३५४
सुखावती- धरणिक्म्य और
सुप्रभाकी पुत्री ४७।७४
सुजय- भरत चक्रवर्तीका पुत्र
४७।२८२
सुदर्शन- भरत चक्रवर्तीका
चक्ररत्न ३७।१६९
सुनमि- एक विद्याधर ४४।११२
सुप्रभा- धरणिक्म्य विद्याधर
की स्त्री ४७।७३
सुप्रभा- अकम्पनकी स्त्री
सुलोचनाकी माता ४५।७
सुमगा- अभ्युत्तस्वर्गके प्रतीन्द्र
की देवी ४६।३५५
सुमदा- भरत चक्रवर्तीकी पट्ट
राज्ञी ३२।१८३
सुमति- वाराणसीके राजा
अकम्पनका एक मंत्री
४३।१९४
सुमती- सुमित्रा-सुलोचनाकी
धाय ४३।१३७
सुमङ्गला- भगवान्की माताका
नाम ३८।२२५
सुमुखा- अकम्पनका दूत ४५।३४
सुरदव- एक राजा ४६।३५१
सुलोचना- वाराणसीके राजा
अकम्पनकी पुत्री ४३।१३५
सुखनर्म- हिरण्यवर्माका पुत्र
४६।२५२
सुविधि- चक्रवर्ती भरतकी छोटी
का नाम ३७।१४८

सुवता- भगवान् वृषभदेवकी
समवसरणकी प्रमुख अधिका
सुसीमा- अभ्युत्तस्वर्गके प्रतीन्द्र
की देवी ४६।३५२
सुरदत्त- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।५५
सूर्यप्रभ- चक्रवर्ती भरतके छत्रका
नाम ३७।१५६
सूर्यमित्र- एक राजा ४४।१०६
सोमदत्त- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।५५
सोमप्रभ- हस्तिनापुरके राजा
जयकुमारके पिता ४३।७७
सौनन्दक- भरत चक्रवर्तीकी
तलवारका नाम ३७।१६७
सौम्य- जयकुमार ४३।१२०
स्नानितवेग- अशनिवेगका पिता
४७।२९
स्वधर्म- भोगपुरके राजा
वायुरथकी स्त्री ४६।१४८
स्वयम्भू- भगवान् वृषभदेवका
गणधर ४३।६२
ह
हरिकेतु- भोगवतीका नाम
४७।६२
हरिवर- एक विद्याधर ४७।९०
हृलभृत्- भगवान् वृषभदेवका
एक गणधर ४३।५६
हिमवदीश- हिमवान पर्वतका
स्वामी देव ३७।१२
हिरण्यवर्मा- प्रभावतीका पति
४६।१६०
हिरण्यवर्मा- आदित्यगति और
शशिप्रभाका पुत्र रतिवर
कबूतरका जीव ४६।१४६
हेमवत्- हिमवत् पर्वतके हिमवत्
कूटपर रहनेवाला एक देव
३२।८९
हमाङ्गद- वाराणसीके राजा
अकम्पनका एक पौत्र
४३।१३४
हमाङ्गदानुजा- सुलोचना
४६।३४८
ही- एक देवी ३८।२२६

विशिष्ट शब्द-सूची

अ
अकथन = स्वयं अपनी प्रशंसा
करनेवाला ३५।२३
अकामसायक = कामवाण ४७।८०
अकालचन्द्र = अपमृत्यु ३४।११
अकृतकस्नेह = वास्तविक प्रेम
३५।२१७
अक्षरपद = अविनाशी पद मोक्ष
३४।१९७
अक्षरस्लेच्छ = हिंसादिमें प्रवृत्ति
करनेवाला ४२।१८४
अङ्गसद = शरीरपीडा ३६।८७
अग्रेसर = प्रधान ३४।२२३
अगोप्यपद = जहाँ गायोका भी
प्रवेश अमम्भव है - अत्यन्त
निर्जन २७।३३
अग्रज = बड़े भाई भरत चक्रवर्ती
३६।९१
अग्रजन्मा = ब्राह्मण ४०।९०
अग्निकार्य = होम ३९।१११
अचेलता = नग्नता ३६।१३३
अजगूथ = बकरोका * समूह
४१।६८
अजसा = यथार्थ ३४।१३७
अतन्द्रालु = प्रमादरहित ३९।१००
अतन्द्रित = आलस्यरहित
३८।१५५
अतिक्रम = दोष - अतिचार
३१।१३५
अतिगृध्नुता = अत्यासक्ति
३५।११०
अतिशिक्षा = अक्षमा, क्रोध
३४।१२०
अतिरेकिणी = अधिक ३४।२११
अतिवालिङ्ग्य = अतिमूर्खता
४१।३२
अदीन्द्र = मेरुपर्वत ३७।३२
अष्टीश = नुमेरु पर्वत २६।७२
७३

अवित्यका = पर्वतका ऊपरी
मैदान ३३।३१
अवीयान = पढता हुआ
३९।१०३
अर्ध ती = अध्ययनकुशल
३६।१०५
अध्यध्वस् = मार्गमें ३१।५
अनगार = मुनि ३८।७
अनन्यज = काम ३५।१९२
अनन्तुकामा = तमस्कार करने-
के अनिच्छुक ३४।२२०
अनंशुक = किरणरहित, नग्न
३५।१५७
अनाविल = निर्दोष ३९।९
अनाञ्चान् = उपवास करनेवाला
३६।१०७
अनिकेत = निवासरहित मुनि
३४।१७४
अनुदात्तता = निकृष्टता, नीचता
३६।९१
अनुदन्ति = हाथियोंके पीछे
४४।७९
अनुद्विग्न = उद्वेगरहित
३४।१८३
अनुपानक्त = जूतासे रहित
३९।१९३
अनुशय = पश्चात्ताप ३५।१९८
अनूचान = शास्त्रका सागोपाग
अध्ययन करनेवाले
३४।२१७
अनेकपेक्षित = हाथीकी चेष्टा
४६।३१२
अन्तर = स्थान ३४।१८५
अन्तर = भेद ३५।११
अन्तःप्रकृतिज = मूलवर्गमें उत्पन्न
हुआ ३५।१८
अन्वीय = अनुकूल ३५।२३

अन्तुनननुक = डोंयनेकी माँकल
२९।१३७
अन्वतमम = गाढ़ अन्वकार
३५।१७१
अन्यपुष्ट = कोयल ३७।१२०
अपक्षपतित = पक्षपातमें रहित
४२।२००
अपराग = द्वेपरहित ३५।२३८
अपदान = पराक्रम ३२।७४
अपव्वान्त = अन्धकारमें रहित
३५।७८
अपचिति = पूजा ४२।२०७
अपवर्ग = मोक्ष ३४।२१६
अपत्रपा = लज्जा ३६।२०५
अपाय = विघ्न ३८।१९४
अप्रतिक्रम = अमहाय-अकेला
३५।६८
अप्रतिशासन = प्रतिद्वन्द्वीसे रहित
शासनवाला ३४।१४
अप्सव्य = जलमें होनेवाला
२८।१९३
अप्सुज = जलमें उत्पन्न होने-
वाला मत्स्य २८।१९४
अब्दकाल = वर्षाकृत ३६।२११
अमिगम्य = आराध्य ३६।२०२
अभिचारक्रिया = मारणक्रिया
२६।४
अमिगारिका = व्यभिचारके लिए
पतिके घर जानेवाली वेश्या
३५।१७०
अभ्यग्नि = अग्निके मन्मुख
४४।१८६
अभ्यवकाश = खुला आकाश
३४।१५८
अमघनि = अजन्म २८।१३१
अमिज्ज = जानकार ३४।३३
अभ्यर्ण = निकट ४१।४७
अमत्र = पात्र ३४।१९८

अमा = साथ ४५।७
 अमुग्र = परलाकम् ३४।११०
 अमोघपाना = अम्यथपाना
 ३५।७२
 अम्बर = आकाश वस्त्र ६।२२
 अम्बरमणि = मूय ३४।१०
 अग्नि = मट्टो वधा हुआ हाथ
 ३२।१ १
 अररापुट = विवाहीको जोड़ी
 १।१०४
 अरण्याना = भयकर अटवी
 ३६।८१
 अर्क = मूय ३५।१६९
 अर्ककान = मूयकानमणि
 ३४।४७
 अलक = कश आगेके वाल
 २६।६
 अलिना = अमरी ३५।२ ५
 अलादक = यो फलवाला
 १।१४४
 अवष्टम्भयष्टिका = सहारकी
 लकड़ी ३७।४३
 अवध्य = अव्यथ ३५।८६
 अवश्याय = बफ आसकी वून
 २७।१०३
 अवस्कराशन = विष्टका भोजन
 ४६।२८१
 अवाध = परराष्ट्रचिन्ता
 ८१।१३८
 अवापरीण = नानो पार तटा
 म हानवाल २।७८
 अव्यध्या = पीडागे रन्ति
 ३४।१५६
 अवन = जागर ४।१९२
 अवावाचित = वयके समान
 आचरण करनेवाला
 ७।१६
 अवाय = घाटावा ममू ३६।३
 अवायन = मूय ८।१
 अवायन = मग नागीन
 ४।१२१
 अवाय = प्रमाणा ४।१८२

असन = महजनाके वन २६।५२
 असाध्वस = निभय ३४।१७९
 असस्कृत = सम्भाररठिन ३५।६३
 असिपुत्रिका = छगी ७।१६५
 असुमति = मूय दुबुद्धि २८।१८२
 अस्मदुपनम् = मर द्वारा प्रार
 मित ४१।१२
 अस्त्र = मौसू ३५।२ १
 अह = दिन ३२।१५१
 अहस् = पाप ४४।६७
 अहिमस्विष् = मूय ३५।१५
 आ
 आकम्पनि = अकम्पने पुन
 हमाग आदि ४३।२३१
 आकाशवाशिशि = आकाशरूपी
 समुद्र ५।१६३
 आकालिका = अम्भिर २९।१०७
 आकुलाकुल = अत्यन्त आकुल
 २८।१२८
 आग पराग - अपराधरूपी धूलि
 ३५।१२७
 आगाद = प्रविष्ट ३६।५३
 आजि = युद्ध ४४।११९
 आजामुल = ग्नाप्रभाग ३७।१६८
 आजानय = उच्चजातिके घोड़े
 ३।१८
 आशिक = इमलक सम्बन्धी
 ३८।२७१
 आधून = बहुत व्यावान्ता २८।७६
 आध्यानमात्रम् = स्मरण करते
 ही ३६।६
 आधृति = अकम्पन ३५।१४७
 आधारण = हाथीके महावत
 ४४।२ ५
 आनन्दधु = हय ३८।५५
 आनाय = जाल ५।११
 आनुपद्मिणी = गीण ४१।११९
 आपाटल = कुछ कुछ गुलाबी
 २७।९०
 आषाय = आप-जिन सम्प्रदा
 वचा १।२
 आमिष = मांस ०।२७

आमुत्रिक = परलोकसम्बन्धी
 ३८।२७१
 आयुध्यायण = प्रसिद्ध पितासे
 उत्पन्न पुत्र ३९।१०९
 आयुरालानक = आयरूपी सम्भा
 ३६।८८
 आयुचालय = शस्त्रागार ३७।८५
 आयुध = युद्धपयन्त ४५।३
 आयति = उत्तरकाल ४१।५४
 आयुष्मन् = ह चिरंजीव ३५।८८
 आरसित = शस्त्र ३४।१७८
 आरट्ट = आरट्ट देशके घोड़े
 ३०।१ ७
 आरका = शका ३९।१४३
 आजुनम् = चौकीका ३३।९६
 आपसी = भगवान् श्रृपमदेव
 सम्बन्धी ३४।२१६
 आलष्ट = कुपित ३४।१८६
 आलान = हाथी बाँधनेका स्तम्भ
 २९।१३६
 आवर्जित = वशीकृत ३७।८७
 आवलध = स्थान ३४।१९२
 आवान् = आता हुआ २९।१६४
 आविष्ट = प्रविष्ट घुसा हुआ
 ३५।१०
 आवा = दिशा और अभिलाषा
 २६।२२
 आशितम्भव = सतीष सृष्टि
 ३४।११८
 आशुत निष्ठिति = शस्त्रकी
 समाप्ति पय ३८।१६१
 आशु = शीघ्र ३९।२१
 नासन्नमय्य = निकटभव्य
 ३९।८२
 आमिदात्रियु = स्वात् लनका
 इच्छत ४३।४७ १
 आमनुहिमात्रि = सेतुबन्धसे
 लहर हिमगिरि तक
 ३७।२०३
 आस्माना = मरी ८।५
 आस्वाधिका = सभा ४६।२९९
 आदव = युद्ध ३५।१२०

आहार्य = आभूषण ३३१२१

इ

इज्या = पूजा ३८१०८

इन = स्वामी ८८१२६५

इम = हाथी ३५१४३

इपुधि = तन्कज ३६११२

इष्टि = यज्ञ ३८१२१३

इह = इस लोकमें

ई

ईडा = स्तुति ३६१०५

ईडित = स्तुत ४११०६

उ

उडुमरप्रिय = युद्धके प्रेमी २११०३

उच्चावच = नानाप्रकारके

३५१२८८

उत्कता = उत्कण्ठा ३५११८३

उत्कोच = घूम ४६१०९६

उत्संक = गर्व ३६११२९

उत्तरस्त्र = खेदविषय ४११२

उदगाह = जलप्रवेश ३३११२६

उद्यू = उत्तर दिशा ३०१९५

उदन्यन् = ग्रामसे युक्त होता

हुआ ३४११०३

उदन्वान् = समुद्र ३५११८८

उदक = फल ३९११

उद्वृज = काटनेके लिए हैंमिया

, ऊँचा उठाये हुए ३५१३०

उदितोदित = एकसे एक बढ़कर

अभ्युदयमें युक्त ४३११९०

उद्देश = स्थान ४०११७

उद्ध = प्रगस्त ३५१२४४

उद्विष्ट = अपने उद्देश्यसे निर्मित

३४११९९

उन्नम = नाक ऊपर करनेवाला

अहकारी ३९११०९

उपक्षेत्रम् = खेतोंके समीप ३५१३८

उपधि = बाह्य और अभ्यन्तर

परिग्रह ३४११८९

उपन = आश्रयभूत ३०११७

उपगट = आन्तिङ्गित ३६१११०

उपवृद्धित = वृद्धिको प्राप्त हुआ

३४१३०

उपनाह = दाघना ३०१०३

उपशान्यभ = गायात्री निकट-

वनिनी ३०११०

उपादिष्ट = उपाहार मन्त्र

३६११६५

उपान्न = स्त्रीजन-गृहीत ३८१२१

उपालम्ब = उपायना दिना हुआ

३९१११३

उपोषित = उपायन करनेवाला

३०११२१

उल्लुक् = जड़नी हुई लकड़ी

३८१५५

उल्लवग = वृद्धन नाग ३८११५८

ऊ

ऊजस्वि = वृद्धिष्ट ३०११८०

ऊजिता = वृद्धिष्टना २८११३६

ए

एकतान = मुद्रास्थान लगे हुए

तन्मय ३८१०२१

एकावली = एक लड़का द्वार

३७११६

एणाजिन = मृगचर्म ३९११२८

एनम् = पाप ३५११५५

एन प्रकर्षत = पापकी अधिकता-

से ८११५

औ

औक्षरु = बेलोंका समूह २९११६२

औन्पातिक = उत्पानको सूचित

करनेवाला ३६११५

औपासिक = उपासकाचार-

सम्बन्धी ३९११५

क

कक्षा = तुलना ३५११०५

कज्ज = कमल २६१११

कडङ्गर = बुन (सूमा) २९११५६

कणिज = बाले २६११३

कणिशमङ्गरी = धानकी बाले

३५१३१

कड्यक = दृश्य २०१११०

कवरी = चाँदी ३०११०७

कमलावती = लक्ष्मी ३५१४९

कर = विष्णु, देवन ३०११५३

करक = ओले ३६ २१

कराल = तीक्ष्ण मन्त्रकर ३६११६

कणजाह = कानोंके पास

३०१००८

कहे = जब ३५११८०

कलकण्ठी = वायन ३०११२१

कलत्र = स्त्री ३८१११०

कलम = हाथीके दन्ते ३६११६८

कलम = धान ३५१३०

कलव्रीतमय = स्वर्णनिर्मित

८३१०३१

कल्पाधिप = इन्द्र ३९११५

कादम्बजाया = कलहमी २६११०

कार्त्तम्यान = निनम्ब ८३११४३

कामरूपदिव्यायिनी = मनचाहा

स्वयना देवता ८३१३१३

कामिनममिद्वि = इष्टमिद्वि

३८१०१६

कामिन कलकाञ्ची = स्त्रियोकी

मुद्रा मेखटार्ण ३५१००३

काम्बोज = कावली घोड़े ३०११०३

कायमान = कुटियाके प्रकार

२७१३२

काहल = अम्फुट वचन बोलने-

वाले २७१२१

किर्माय = किमका २८११८३

किञ्जलक = केसर २६१११

किलामिन = कुष्ठो ३३१२२

कुटिमभूतल = फर्म २६१९

कुक्षिवास = जहाँ रत्नोंका

व्यापार होता है ३७१७०

कुटिय = हलमें लगी हुई बीज

बोनेकी नली ३७१६८

कुण्ड = टेढ़ी अंगुलीवाला

४७१३८

कुण्डोक्षी = कुण्डके समान बड़े-

बड़े धनवाली गाय २६१४६

कुतप = मकानकी देहरी २९१५७

कुन्त = माला ३७११६८

कुञ्जक = अन्त पुरमें रहनेवाले

बोने मनुष्य ३०११४१

कुपति व = भूपतिपना खोटा
 राजपना ३०।१०
 कुमार = बालक ४५।४२
 कुलाल = कुम्हार ३५।१२६
 कुल्या = नहर ३५।४०
 कुवलय = पथरीमण्डल नील
 कमल ४३।७७
 कुसुम = वसन २७।४३
 कुसुमवाण = कामदेव २७।१९
 कृत्रित = पक्षियाका कलरव
 २६।१५
 कृतक्षण = कृतात्स ह ४१।१३९
 कृतकृत = यथ व्यथ ३६।६७
 कृत'दी = कृतन ४३।११७
 कृतसङ्गर = कृतप्रतिग ४३।५३
 कृतानुवचन = जिनसे आग्रह
 किया गया ३८।१५
 कृतान्तवाट = यमवचन ३९।२२
 कृत्स्ना = सम्पण ४२।२०८
 कतन = गू ४७।२ ७
 कनुमालाकुल = पताकाआके
 समू से व्याप्त ४१।८४
 करल = केरल देशके लोग २९।९४
 कवलाक = कवलानन रूपा सूर्य
 ४१।९
 काक = चकवा ३५।२५
 कोक'रान्ता = चकवी ३५।२२३
 काटा = अग्रभाग चरम सीमा
 ३०।१३०
 काश = म्यान ४७।१३५
 काक्षयक = सप्तवार ३६।११
 कावरा = उत्तर गिया १।१
 काणिक = उलू ४१।३७
 क्रमण = क्रमही जाननवाला
 ५।७
 क्रयमान = मूय दहर सराण
 ४।१९९
 क्रमागत = चरानमन १।२४५
 कर्म = रा ४।११७
 क्षत्रिय = एक वन ३८।४५
 क्षारमय = दूधही दूध राग
 १ बाण ३६।८८

क्षेपायस् = अत्यन्त शीघ्र ४१।१७
 क्षेम = प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा
 करना २९।२८
 क्षोदीयान् = अत्यन्त क्षुद्र ३४।३४
 क्षमा = भूमि ३४।७६
 क्षमाज = वृक्ष ३५।१५३
 क्षमाध = पवत ३७।१६६
 क्षमात्राण = पुण्यवी रक्षा ३७।८३
 क्ष
 खग = बाण ४४।१२१
 खग = विद्याधर ४७।२१
 खण्डिता = वियोगिनी स्त्री,
 जिसका पति सनेत देकर
 भी न आव ३५।१९३
 खरघृणि = सूर्य ३६।२११
 खराशु = सूर्य २७।९३
 खलकरूपा = दुजनके समान
 ४४।११८
 खचर = विद्याधर ४६।३१७
 ख
 खजता = हाथियोंका समूह
 ३०।४८
 खजप्रवक = अष्ट हाथी ३०।१०५
 ख'धव = व्यन्तर देवोका एक
 भेद ४१।२६
 गरुडमाषसच्छवि = नीलमणि
 के समान धणवाला
 ३६।४९
 निवृत्ति = शारीरिक सुख
 ३७।१२७
 गान्धार = काण्धारके घोड
 ३०।१०७
 गुणग्राम = गुणोका समूह ३५।५०
 गुप्ति = रक्षा ३६।११७
 गुरु = पिता मगवान् भूपभदेव
 ३६।१०४
 गुरु = पिता ३८।१३७
 गुरुस्व = पितृतुल्य ३४।८१
 गुर्वनुगह = गुरुकी कृपा ३९।६५
 गुरुद्वज = घुटन प्रमाण
 १७१
 गुप्ति = लोभो ३५।१३३

गृहकोकिल = छिपकुला
 ४६।३३८
 गोघृष्टि = पहली बार बियानी
 हुई गाय २६।४६
 गोत्रस्खलन = स्त्रीके सामने
 हृदयमें बसी हुई दूसरी
 स्त्रीका नाम उच्चरित
 होना ४६।७
 गोमतल्लिका = अष्ठगामें २६।४५
 गूममृग = कुत्ता ३५।१२१
 घ
 घनस्तनित = मधमजना ३७।१३१
 घस्मर = विनाशक ४४।१०६
 घ
 घक्र = चक्रवर्तीका एक अंगोव
 रत्न ३७।८४
 चक्राङ्क = चकवा २७।२८
 चक्रोद्योत = चक्ररत्नका प्रकाश
 ३६।२३
 चक्षु अवस् = साँप ३६।१७६
 चञ्चापुख्य = तणका बना पुख्य
 २८।१३०
 चण्डमरु — तेजवायु आँधी
 ३६।१
 चतुष्क = चौराहा २६।३
 चतुरस्र = समचतुरस्रसंस्थानसे
 युक्त मनोज्ञ ३७।२८
 चमरिरह = चमर ३५।२४४
 चरमाङ्गधर — तद्भवमोक्षगामी
 ३६।३९
 चर्याशुद्धि — चारित्रकी शद्धता
 ३४।१५
 चातुरन्त — चतुर्दिगत ३५।११२
 चातुरन्त = सब दिशाओका
 स्वामी चक्रवर्ती २८।८५
 चामाकर = स्वर्ण ३६।५०
 चारभट = दूरवीर ३१।६५
 चारघधु = गुप्तचरद्वयी नवदे
 युक्त ४५।४१
 चित्तज = काम ४५।८७
 चित्तज-मन् = नाम ७।४२
 चुम्बुक = प्रतीत-प्रसिद्ध २९।९४

चोलिक = चोलदेशके लोग
२९।९४

ज

जगदजगद्गार = लोक और
अलोकरूपी भवन ३५।२८०

जडप्रिय = मूर्खोंके प्यारे, (पक्ष-
मे जलप्रिय, जिन्हे जल प्रिय
है) २६।१९

जयसाधन = विजयी सेना
३५।७५

जयाङ्ग = विजयका साधन
३६।३०

जलवाहिन् = मेघ ३४।१५६

जलार्द्रा = पख ३५।१९३

जातकर्म = जन्मसंस्कार २६।४

जातरूप = नग्नमुद्रा ३९।७८

जातरूप = सुवर्ण ४५।१७२

जाति = जन्म ४६।३३५

जात्यश्व = उच्च जातिके घोडे
३०।१०५

जलाशय = जलका आवार,
जडबुद्धिवाला २८।१७२

जलोत्पीड = जलका समूह
२८।११०

जित्वरी = जीर्तनेवाली ३७।६१

जिनवृष = जिनेन्द्र ३४।२२३

जिनार्चा = जिनप्रतिमा ३८।७१

जिनास्थानभूमि = समवसरण-
भूमि ४१।१८

जिष्णु = विजयी ३६।५४

जीमूतदन्तिन् = मेघरूपी हाथी
२६।५५

जीवकाय = जीवोका समूह
३४।१९४

जुहूपति = बुलाना चाहता है
३४।१०३

जैत्र = विजयी ३४।३७

ज्यायम् = अत्यन्त श्रेष्ठ
३०४।१२४

ड

दण्डुम = पनगा माँप ३५।११३

त

तके = कुत्सिता ते तके ३४।६३

तदाननी = तत्कालसम्बन्धी
२९।१०७

तनुत्राग = कवच ३७।१५९

तनुभूषा = शरीररूपी साँचा
३४।२१२

तनुभूत = कृश ३४।२०८

तनुत्रक = कवच ३६।१४

तन्त्र = स्वराष्ट्र चिन्ता ४१।१३७

तन्त्रभूयस्त्व = सेनाकी अधिकता
३६।३०

तपस्तनूनपात = तपरूपी अग्नि
३६।११३

तपात्यय = वर्षा ऋतु ३७।१३१

तमिस्रा = अँधेरी रात ३४।१८४

तमोमुख = रात्रिका प्रारम्भ
३०।७७

तमोऽवगुण्ठिता = अन्धकारसमूह-
से आच्छादित ३५।१७०

तरणि = सूर्य २७।१००

तरणाङ्गोपजीविन् = नाव चला-
कर ६।५७

तके = कुत्सित आजीविका करने-
वाला ३५।१७०

तलवर = कोतवाल ४६।३०४

तारकित = ताराओसे व्याप्त
२६।२६

तितिक्षा = क्षमा ३६।१२९

तिग्मांशु = सूर्य ३५।१५२

तिरीट = मुकुट २८।१५८

तिमिरवरिन् = अन्धकाररूपी
हाथी ३५।२३२

तुङ्ग = पत्र ४५।६७

तुष्क = तुर्की घोडे ३०।१०६

तेज = भामण्डल ३५।२४४

तैतिल = तैतिल देशके घोडे
३०।१०७

तोक = पत्र ४५।६७

त्वदुपक्रम = तुम्हारे-द्वारा प्रव-
र्तित ३४।३४

त्वच्यम् = त्वचापर काम देने-
वाली ३५।१४

त्सरु = तलवार आदिकी मूठ
३७।१६५

त्विप् = कान्ति ३८।१

त्रिक = नितम्ब ३८।२२

त्रिपथगा = गङ्गा ३७।२५

त्रिदिवाँकस् = देव ३५।६९

त्रिधात्मक युद्ध = १ दृष्टियुद्ध,
२ जलयुद्ध, ३ मल्लयुद्ध
३६।४२

त्रियामा = रात्रि ३४।१६०

द

दक्षिणापरदिग्भाग = नैऋत्य-
दिशा ३०।१

दण्ड = दण्डरत्न अथवा सेना
३५।१२६

दरी = पर्वतकी गुफा ३४।१८६

दरोद्भिन्न = कुछ-कुछ प्रकट
३७।५१

दर्भशय्या = कुशाकी शय्या
३५।१२५

दशनच्छद = ओठ ३५।२१४

दाक्षिणात्य = दक्षिणदिशा-
सम्बन्धी २९।७७

दानव = भवनवासी देव ४१।२६

दिगिभवदन = दिग्गजका मुख
३५।२३४

दिधक्षु = जलानेका इच्छुक
४४।११

दिविजनाथ = इन्द्र ३५।२३८

दुष्कलत्रवत् = खोटी स्त्रीके
समान ३६।७१

दुःश्रुति = खोटे शास्त्र ४१।४९

दीक्षा = व्रत धारण करना ३९।३

दुरारोह = जिनपर चढ़ना कठिन
है ऐसे पर्वत २९।७२

दुरापा = दुष्प्राप्य ३४।१६८

दुर्ललित = गवित मस्त ३४।१०४

दूना = दुःखी होती हुई
३५।१९०

दूप्यकुटा = कपडकी तम्बु
 ७।१५३
 दूप्यशाला = कपडकी चादनी
 २७।२४
 दृढमग्न = दृढप्रतिग ३४।२०८
 दृग्धा = गुया हुई ३७।१४१
 द्रव = स्वर्गके निवासी देव
 ४१।२६
 द्रवद्रुत = विचिनाङ्ग नामक
 द्रवक द्वारा किया हुआ
 ४३।२७८
 द्रवभूय = द्रवत्व ३९।१०८
 देशसन्धि = दो देशके मिलनकी
 सीमाएँ ५।२७
 दाघात = मजाआका आघात
 ३६।७९
 दादण = भुजदण २९।९५
 दैवज्ञान = ज्योतिष शास्त्र
 ४१।१४८
 द्वय = गणना हानवाले २९।७४
 ईरानदुःसिक्ता = दो राजाआके
 राजमते पवस्याहीन
 ४।४७
 द्राणामुत्र = बदरगाह ३७।६२
 द्रुह = परीपह ३६।११६
 द्विन्मन् = त्रि ३८।४९
 द्विचिह्ना = दुष्टता कुटिलता
 ४।८८
 द्विपञ्च = गणना समूह
 ६।६५
 द्विप = बारह २८।११५
 द्विर = साथी ५।११५
 धुमन् = देव ५।७०
 धुमणि = धूम २९।१८
 ध
 धनाया = तुणा ३६।७८
 धनान्धनपुम्भुता = धन इकट्ठा
 करनेवाले परना ५।१२२
 धन्यन् = धन्य पारण करनेवाले
 ७७।१११
 धप = धनि ८।१०
 धमन्त = धमन्ति ८१।७

धर्म्या = धर्मयुक्त ३४।१४०
 धात्रीकल्प = धायके समान
 ४३।३३
 धीरित = धय भर वचन ३६।२१
 धुर्य = घुरघर ४३।८५
 धूगत = महावत ३६।१०
 धूमध्वज = अग्नि ४४।१०
 धृतिप्राचार = धयरूपी ओढ़नी
 ३४।१५७
 धृतिसवर्मित = धयरूपी कवचसे
 युक्त ३४।१५९
 धेनुका = हथिनी २९।१५६
 धेनुप्या = बधानम दो हुई गाय
 २६।४८
 धारित = धोड़ोकी एक चाल।
 धोड़ोकी चालको धारा
 कहते हैं। इसका पाँच भेद
 है—आस्कारित २ धौरि
 तक ३ रचित, ४ वलित
 और प्लुत। ३१।१
 धौरय = धष्ट ३८।८
 ध्याति = ध्यान ४५।४
 ध्वाहक्ष = कोए ४१।३७
 न
 नदा = बँधी हुई २६।८
 नन्दथु = आनन्द ३५।२
 नमोग = विद्याधर ३५।७३
 नमदा = क्रीडा देनेवाली ३०।८५
 नवग्रह = नया एकडा हुआ
 २९।१२२
 नवीडा = नयी विवाहित ४४।२०७
 नागमिथुन = नाग नागोका जोडा
 ४३।९
 नागवश = वाराणसीके राजा
 अकम्पनका वश ४४।३७
 नापम्य = नाय (नृपते नाय
 नापत्यम) ४३।८६
 नातिक = सत्य ३५।१९६
 निहार = विरस्तार ४६।३१६
 निगम = गाँव ७६।३४
 निगम = बड़ी ४२।७६

निगलस्य = बड़ीम पडा हुआ
 ४२।७६
 निम्नता = अधीनता ३७।१४२
 निचुल = बतका धूम २७।४६
 नितम्बिनी = स्त्री ३५।१९४
 निधम = मृत्यु २८।१३४
 निधुवन = मधुन ३५।२१८
 निध्यान = अवलोकन ४१।६८
 निमृत्सु = नृत्यके इच्छुक
 ३६।१७४
 नियति = देव, भाग्य ३५।१६७
 नियाम = नियम ४५।६
 नियुद्ध = बाहुयुद्ध कुशलो ३६।४५
 निरारका = सन्नेहरहित ३०।२३
 निरुद्ध = प्रसिद्ध ३७।२६
 निर्घात = वज्र २६।७७
 निर्घात = निर्घोष = वज्रपातका
 शब्द २८।१२२
 निर्मल = निरतिचार (निग्रम =
 भ्रमतरहित) ३४।१७१
 निमृच्छ = मोहरहित ३४।१७३
 निर्वाणक्षेत्र = मुक्तिस्थान ४०।८९
 निविष्ट = उपभुक्त ३७।१९
 निवृत्ति = सुख ३७।१४
 निवृत्तित = पूरा समाप्त ३७।१
 निर्णिक्त = प्रक्षालित ३७।१२६
 निविष्ट = बठे हुए ४२।१
 नि श्रेयस = माक्ष ३९।१
 निशात = तीक्ष्ण ३६।११
 निषधात्रि (भौ) = निषध
 कुलाचल ३३।८
 निष्प्रधानी = नवीन शास्त्र
 अभी हाल मन्त्रस उतारे
 हुए २६।५४
 निष्ठा = पूणता ४२।१०७
 निसर्गसुभग = स्वभावस सुन्दर
 ३७।२९
 नितृष्टाय = राजदूत ४३।२०२
 नारक = नि मदेह ३५।१३८
 नातुचुम्भुन् = नीतिनिपुणता
 ५।११२
 नृपशु = नीच मनुष्य ३५।११४

नृपशार्दूल = श्रेष्ठ राजा ३७।२
 नैदाधी = ग्रीष्म ऋतुसम्बन्धी
 ३७।१३०
 नैफिञ्चन्य = निम्परिग्रहता
 ३४।१८९
 नेश = रात्रिसम्बन्धी ३५।१५७
 नैःश्रेयस्मी = माधसम्बन्धिवी
 ३९।२
 नैस्त्रिधिक = तलवार धारण
 करनेवाले २७।१११
 प
 पङ्क = पाप और कीचड़ २६।२२
 पञ्चसमा. = पाँच वर्ष तक
 ४६।९९
 पञ्चाह = पाँच दिन ३४।१७५
 पदविद्या = गारुडो विद्या, जिससे
 विपका वेग दूर होता है
 ३८।२
 पटु = चतुर ३५।७
 पतन = पक्षी ३५।२३३
 पताकिनी = मेना २६।१४०
 पत्रिन् = वाण २८।१२१
 पद्माकर = तालाव ३५।२२३
 पथस्विनी = गाये २६।४८
 परासु = मृत ४४।१३२
 परिगत = व्याप्त ३५।२३५
 परिच्छिन्ति = समाप्ति-विनाश,
 ३५।१५१
 परिणीति = विवाह ४४।५५
 परिफल्गु = अत्यन्त नि सार
 ३५।१२१
 परिभूति = तिरस्कार ३४।११२
 परिमा = प्रमाण २८।१७३
 परिष्कृत = धिरा हुआ २६।८९
 परित्रक्त = आलिङ्गित
 ३६।१०५
 पलित = वृद्धावस्थाके कारण
 प्रकट हुई वालोकी-मफेदी
 ३६।८४
 पल्लव = स्वल्प जन्म ३३।४९
 पाक्मत्त्व = मिह आदि दुष्ट
 जन्तु ३३।५४

पाञ्चनद = पजाबके ३०।९८
 पाटल = गुलाब ३७।१०
 पाणिगृहीती = कन्या ३८।१२७
 पण्ड्य = पाटन देशके लोग
 २९।९५
 पादान = पैदल ननिकोका
 समूह ३२।२
 पाद्य = पेर घोंनेका पानी २७।१
 पारिपन्थिक = शत्रु ८६।२०५
 पार्थिव = वृक्ष, राजा ३८।८३
 पार्थिव = प्रडा, राजा ३५।१२६
 पार्थिव = राजा, वृक्ष २९।१०५
 पिण्डीगण्ड = खलोका टुकड़ा
 ३५।१११
 पिनिनोच्चय = मामका पिण्ड
 ४७।४८
 पीथ = दूधमहित मक्खन २७।२६
 पीनापीना = स्थूल थनोवाली
 गाये २६।४७
 पुत्रकल्प = पुत्रतुल्य ३४।१९१
 पुत्रविटपाटोप = पुत्ररूपी
 शाखाओके विस्तारमे युक्त
 ४३।८३
 पुराचिद् = पूर्व व्यवहारके ज्ञाता
 ४३।१८८
 पुरुषव्रत = पौरुष ३७।२६
 पुरुषोत्तम = नारायण, श्रेष्ठ
 पुरुष ४३।३५
 पुरुदग्धम् = मार्जार ४६।१४४
 पुरुधी = अत्यन्त बुद्धिमान्
 ३७।१७५
 पुष्कर = कमल ३६।१७०
 पुष्करोदस्त = सँडके अग्रभागसे
 उठायें हुए ३६।१७०
 पुष्पवाण = काम ३७।१०६
 पुष्पधन्वन् = काम ३७।४६
 पूगीकृत = राशीकृत ३५।४२
 पौरस्थ = पुरुषसम्बन्धी २९।७७
 पौस्ति = पुरुषसम्बन्धी २८।१३०
 प्रकीर्णकवात = चमरोका समूह
 ३८।२५५

प्रगेतनमारुत = प्रातः कालकी
 वायु ३५।२३६
 प्रग्रह = रम्मी २८।१०५
 प्रणय = स्नेह ३५।१०६
 प्रणिधानपरायण = एकाग्रतामे
 तत्पर ४२।१३१
 प्रणिधि = दूत ३४।२२३
 प्रणीत अग्नि = मस्कार की हुई
 अग्नि ३४।२१७
 प्रणय = मस्कार करने योग्य
 ४०।८२
 प्रतिभृ = जामिनदार ४२।१७३
 प्रतिच्छन्द = प्रतिविम्ब, प्रति-
 निधि ४१।१८६
 प्रतिष्कम् = महायक ३८।८३
 प्रतिवृप = प्रतिद्वन्द्वी बैल २६।४२
 प्रतिमर्थ = हमरा सूर्य ३४।१०
 प्रतीची = पश्चिम दिशा ३०।९५
 प्रतीच्य = पश्चिमके राजा
 ३०।११०
 प्रतीक्ष्य = पूज्य २८।१५५
 प्रतीक्ष्यता = पूज्यता ४५।६५
 प्रतीयता = प्रतिकूलता ३५।३
 प्रतोलो = गोपुर, नगरका प्रधान
 द्वार २६।८३
 प्रत्यगू = नवीन २६।८६
 प्रत्यगूयगम = नवीन समागम
 ३७।५५
 प्रत्यगूखण्डिता = नयी विरहिणी
 ३५।२०२
 प्रत्यनीक = शत्रु ३५।१४६
 प्रत्याख्य = जतलाकर ४५।११२
 प्रत्यासन्ननिष्ठ = निकट कालमे
 मोक्ष जानेवाला ३९।८१
 प्रत्यय = कारण ४५।११२
 प्रत्यर्कम् = सूर्यके सम्मुख ३४।७
 प्रत्युद्यात = अगवाणी किया हुआ
 ३५।२२९
 प्रत्याख्याः = विश्वास दिलाने
 योग्य ३४।८४
 प्रत्याख्येयत्व = प्रत्याख्यान-तिर-
 स्कार ३५।१३३

प्रचय = विश्वास नितानेके

शाय ३५।१२४

प्रथम = मुष्ट २८।१३४

प्रमाम् = प्रवृष्ट कान्तिसे युक्त

३०।१२३

प्रभूत = बहुत भारी ८१।७१

प्रमथ = भूत ४१।३७

प्रयुयुस्ता = मुष्ट करनेकी

इच्छा ३६।३७

प्रवयस् = वृद्ध २७।१२०

प्रवालवन = मृगेका वन

३५।२३४

प्रशेमुपा = शान्त होतो हुई

२८।१५४

प्रश्रय = विनय ३५।१०५

प्रश्रया = विनयी ३५।७

प्रष्ट = मष्ट ४३।३८

प्रस्थ = निश्चर ३५।१५३

प्रसङ्ग = हठपूर्वक जबरदस्ती

३५।१७२

प्रहृता = नम्रता ३४।२२३

प्राकृत = साधारण पुरुष ४३।४५

प्रायतना = पवत्रव-सम्बन्धिनी

३६।१८८

प्रास्थ = भूषणोंके राजा

३०।११२

प्राप्तिन् = सारथि २८।१०४

प्राप्ति = अष्ट ३६।२०८

प्राप्ति = बुद्धिमान् ३५।७

प्राप्तिवृत्त्य = प्रतिकूलता ३५।५

प्राप्ताप्य = शत्रुता २८।१४९

प्राप्तिवृत्त्य = वन्धनमें डालकर

३५।७०

प्राधाधिक = जगामक कायमें

निपुण चारण ३५।२२६

प्राशक्ति = अकुरित २९।१३५

प्राष्टवृत्त्य = वर्षाशुभ-अम्बुषी

२।९०

प्राशु = लंबे ३५।५५

प्राशुक = नावर्तित ८।१५

प्राशिक = भाग्य चारण करने

वाल्मी २७।११२

प्रेयस्कर = पतिका हाथ

फ

फालिनीफल = गुमचाके फल

२८।३९

ख

खड्गकम्प = तत्पर ३४।१४५

ख-घ = बन्धन ३६।९७

ख-धूक = लाल रंगके पुष्पविशेष

जिन्हें दुपहरियाके फूल

कहते हैं। २६।२१

खलपरिवृद्ध = सेनापति ३५।२४९

खलाम्मोधि = सेनारूपी समझ

३५।१

खाणासन = पुष्पविशेष जिन्हें

सिम्पि कहते हैं २६।२४

खाणासन = घनुष ३६।२४

खालाक = प्रातःकालका सूर्य

३५।२३५

खालिषा = मूल ४६।१९२

खाल्हीक = खाल्हीक देशके घोड

३०।१०७

खाल्हालिकास्थल = खेलका मैदान

३७।४७

खलित = हाथियोंकी शिखाड

३४।१८५

खलवचस = आत्मतज ३९।१०१

खलसूत्र = जनेऊ २६।६३

खल्लण = एक वण ३८।४६

भ

भग्नरद = जिसका दाँत टूट गया

है ३५।११५

भटभुव = अपनेकी मूठ मूठ थोड़ा

कहनवाला २८।१३१

भवदेवधर = भवदेवके जीव

(भूतपूर्वों भवदेवों भव

देवधर) ४६।१४४

भमकुम्भ = स्वणकुम्भ ४३।२१०

भास्यन् = मूष ३५।२३३

भिदा = भे ३५।११५

भूध = पवत ३६।२१०

भूमन् = पवत राजा ५।१५७

भूति = सम्पत्ति ३५।११४

भृगुपात = पवतीके ऊपरी भागसे

नीच गिरकर मरना

३०।७०

भेरुण्ड = एक पक्षी ४७।४४

भोग = साँपका फल ३६।१०८

भोगिन् = साँप ३६।१७१

भानुजाया = भार्गवी स्त्री

३५।१३४

भ्रातृमाण्ड = भार्गव मूलधन

३४।५९

म

मकरकतन = कामदेव ३५।१८४

मकरालय = समझ ३५।६८

मगधावास = मगध नामक देव

का निवासस्थान ३५।७१

मधु = वसन्त ऋतु ३७।१२०

मधुकरध्वज = अमरसमूह २६।६

मन्त्रविद्यावण = मन्त्रविद्याके

प्रसिद्ध विद्वान् ३५।१०

मन्दसान = हंस २६।१८

मनोभू = काम ३५।१८६

मन्दाक्रान्ता = मन्द गमन करने

वाली २८।१९२

मन्धुरा = धुसाल २९।१११

मन्यु = क्रोध ३५।१९२

महानक = बड़े-बड़े नगाड ३७।७

महापितृधन = महात्ममान

३४।१८२

महामिजन = महाकुल ४२।३७

महाहव = महायुद्ध ३७।१५९

महास्थान = समामण्डप ४१।१५

महीक्षित् = राजा ३७।३२

महीयस = अत्यन्त महान्

३४।२१८

मागधावितम् = स्तुति पाठकी

समान आचरण किया

२९।३९

मातृकल्प = माताके समान

३४।१९१

माधवा = वसन्तऋतु सम्बन्धी

२७।४६

साधवी = एक लता-मधुकामिनी
२७।४७
सुग्गेन्मुखी = मुखके मम्मुख
३७।१०५
सुग्गेन्द्रासन = सिंहासन
३१।१५८
मैथुन = साला ४६।३१७
मौज्जी = मौजकी रस्सीमे वनी
हुई मेखला ३८।१०४
य
यवीथान् = अतिगय युवा
३४।४४
यवीथान् = छोटे भाई बाहुवली
३६।५२
यष्ट्या. = पूजा करने योग्य
४१।१३
याचित्रिम = याचनासे प्राप्त
३६।१२२
यादस् = जलजन्तु ३६।७९
यादसा पतिः = ममुद्र ३६।७९
याममात्र = प्रहरमात्र ४२।१७४
याष्टीक = यष्टि-लकड़ी धारण
करनेवाले २७।१११
युग्य = वाहन ३५।२१
योग = ध्यान ३८।१७९
योग = अप्राप्त वस्तुको प्राप्त
करना ३७।१७
योगसिद्धि = ध्यानसिद्धि
३६।१५८
योगज = तपके प्रभावसे होने-
वाली ३६।१४४
र
रजःसन्तमस = धूलिरूपी गाढ
अन्धकार ३६।२३
रथकट्या = रथोका समूह ३६।४
रथाङ्ग = चकवा ३५।१६८
रथा = रथ चलने योग्य चौड़ी
सड़क २६।३
रद = दाँत ३७।२३
रहस् = वेग ३७।२४
राजवती = कुत्सित राजाओसे
युक्त भूमि ३४।४७
७४

राजन्वती = उत्तम राजासे युक्त
भूमि ३४।४७
राजीवास्य = कमलके समान
मुखवाले २८।१८७
राजैव = चन्द्रमाके समान
४४।३८
रोगाखु = रोगरूपी चूहे ३६।८९
रोदग्नी = आकाश और पृथिवी-
का अन्तराल ३६।१
रैराशि = धनकी राशि ३१।६२
ल
लघु = शीघ्र ३४।३४
लघीथान् = अत्यन्त छोटा
३४।२४
लाट = लाट देशके राजा
३०।९७
लाला = लार ३५।४३
लालाटिक = सेवक ४३।१५७
लुब्धक = शिकारी ३७।१३४
व
वचोहर = दूत ३५।१३८
वञ्चनाञ्चु = प्रतारणापटु,
ठगनेमे होशयार ४६।८
वज्रसार = वज्रके समान स्थिर
३५।५२
वज्रिजय = इन्द्रविजय ३७।१६३
वणिज् = वैश्य ३८।४६
वत्सरानशन = एक वर्षका
उपवास ३६।१८५
वत्स्यद्युग = आगामी - पञ्चम -
काल ४१।५३
वदान्यकुल = दानियोका समूह
२६।१२
वनधि = सरोवर २८।२२
वनमातङ्ग = जगली हाथी
३४।१८६
वनक्षमाज = वनके वृक्ष ३६।१२
वनसामज = जगली हाथी
३०।६३
वनजेक्षणा = कमललोचना
४७।१४३

वनीपकानीक = याचकसमूह
४५।१३७
वन्दारु = वन्दना करनेवाले
४२।२०७
वप्रभूमि = खेतकी भूमि २६।१४
वरत्रा = चमडेकी मजबूत रस्सी
३५।१४९
वरिष्ठ = अत्यन्त श्रेष्ठ ४४।३२
वरारोहा = उत्तम नितम्बवाली
स्त्री ३७।९२
वरूथ = रथ ३३।९
वर्क = तरुण हाथी २९।१५३
वर्ष = क्षेत्र ३८।४
वर्ष्मन् = शरीर ३५।५२
वसुवाहन = धन, सवारी ३८।८
वागुरा = जाल ३७।४८
वाग्देवी = सरस्वती ३५।४९
वाचयम = मौनी ३८।१६२
वाचयमत्व = मौनव्रत ३४।२०५
वाचिक = सन्देश ३४।८४
वाजि = घोडा ३५।४३
वात्सक = बछडोका समूह
२६।१११
वापेय = वापी देशके घोडे
३०।१०७
वामी = घोडी ३०।१०१
वायुवीथ्यनुगामिन् = वायुके
मार्गका अनुसरण करनेवाले,
निष्परिग्रह ३४।१९०
वारुणी = मदिरा, पश्चिम दिशा
३५।१५५
वारी = हाथी बाँधनेका स्थान
२९।१२२
वार्षिकी = वर्षाकालमम्बन्धी
३४।१५६
वास्तु = घर २८।५१
विकर्षितम् = कम नहीं हुआ
३७।१५
विक्रया = विकार ३५।७
विगाढ = प्रविष्ट ३१।१४५
विग्रह = शरीर २६।६
विग्रह = युद्ध ३५।२३

विचम्पण = बुद्धिमान् ३४।१९७
विज्ञाति = पक्षियोंकी जाति
नोष जाति ३०।७२

वितृप् (वितृप्) = व्याससे
रहित २७।८

विश्रुत = भयभीत २९।१६१

विदाम्बर = विमानोप श्रेष्ठ
३४।१४३

विद्याधर = विजयाध पवतके
निवासी विद्याभोसे सुशो
भित मनुष्य ४१।२६

विद्रुम = मृगा ३५।१६३

विधु = चन्द्रमा ३५।१७५

विधूय = कम्पित करके ३५।२३०

विधेयता = आज्ञाकारिता
अधीनता ३५।७३

विनियोग = काय ४०।८६

विनिपात = वाधा ३६।१७९

विनियन्त्रण = निरकुश ३६।२५

विनालयसना = नीले वस्त्र
धारण करनेवाली ३५।१७०

विपाश = बन्धनसे मुक्त ४२।७८

विप्रवृष्ट = दूरवर्ती पण्य
४२।५६

विप्रतिपत्ति = सन्देह ४१।४१

विभावता = रात्रि ३५।२१२

विमलाम्बरा = निमल वस्त्रवाली
निमल आवागवाली २६।५

विमानता = तिरस्कार ३४।२०४

विरूपक = विरुद्ध—गृहकारी
३६।२७

विरूपा = अमूर्ता कुर्या
३५।२८१

विरुक्षता = आश्चर्य ६।६३

विरुध्यता = राजा आश्चर्य
३३।५९

विस्मय = मूय ३५।१६०

विष्णु = जमीनपर ओदनका
इच्छा २९।११२

विप्राण = मन्वर ४६।१७७

विप्राण = विप्राण १।१४

विशाप = जिसका शाप नष्ट हो
चुका ह ३५।२३३

विशिखावली = बाण पडक्ति
४४।१२३

विश्वविन्मत = सवज्ञमत
४१।१४१

विष = देश ४६।९४

विष्वग् = सब ओरसे ३५।९७

विष्टपातिग = लोकोत्तर
३३।१४९

विष्याण = भोजन ३६।११२

विसिनी = कमलिनी ३५।२३०

विस्मय = निश्चित विश्वासको
प्राप्त ३६।१६४

विहितायक = कृतपुण्य ४७।१०३

वीरागणी = बीरोम अग्रसर
श्रेष्ठ ३६।३४

वीरुष् = लता ३६।२०८

वृत्तिभेद = आजीविका भेद
३८।४५

वृष = बैल ४१।७७

वेपथु = कम्पन ३६।८६

वेशन्त = स्वल्प जलाशय ३३।५०

वेसर = सञ्चर २९।१६१

वैलक्ष्य = आश्चर्य लज्जा क्षेप
३६।९२

वैवस्वतास्पद = यमपुर ४४।८

वैशाखस्थान = बाण चत्तानेका
एक आसन ३२।८७

व्यञ्जन = तिल मक्के आदि चिह्न
३७।२९

व्यामूर्द्धि = मूढता — मूखता
३५।२३५

व्युत्थित = विरुद्ध आचरणवाले
३४।४०

व्यूहोरस्क = खोड़ी छातीवाला
३१।१४६

व्यपरोपण = घात करना ३८।१७

व्युत्पद्य = त्यक्त ३६।१२३

वय = गोष्ठ — गाँवोंके रहनेका
स्थान ७।६९

वयमान = वयाना समूह ३९।३६

व्याघ्रधेनुका = नवप्रसूता व्याघ्री
३६।१६६

व्यात्तास्य = जिसन मुख खोल
रखा ह २८।१८०

व्यानुक्षी = एक दूसरेपर पानी
छछालना फाम ३६।५३

व्यावहासी = परस्पर हास्य
मजाक २६।३३

शु

शकृत् = विद्या ४६।२९१

शतमलेष्वास = इन्द्रधनुष २६।२०

शताध्वर = इन्द्र ३६।१९६

शब्दविद्या = धाकरण शास्त्र
३८।११९

शम्बल (सम्बल) = मागहित
कारी भोजन ३५।२२

शम्फली = दूती ३४।१६

शरव्यता = लक्ष्यता २८।९

शयुपोत = अजगरके बन्ध
२७।३४

शक्कसात्कृतात् = खण्ड खण्ड
किय ३४।६०

शरतक्षय = बाणोंकी शय्या
३५।२११

शरघात = बाणोंका समूह ३६।८०

शरव्य = निशाना ३५।७१

शवरी = रात्रि ३४।१५५

शक्तम् = शक्ति समूह (वस्त्राह
शक्ति भक्तशक्ति प्रभुत्व
शक्ति) ३०।७

शक्तिक = शक्तिनामक शस्त्रको
धारण करनेवाले २७।१११

शाखासृग = बानर ४१।३७

शाखिन् = वृक्ष ३६।६

शारीर = शरीर सम्बन्धी ३७।३०

शारदी = शरद् ऋतु सम्बन्धी
३७।१४०

शावर = रात्रि सम्बन्धी ३५।२२२

शालिमोषिका = धानके खेत
रखानवाली गोपिया ३५।३६

शालिवम = धानके खेत ३५।३१

शासन = शिक्षक ३५।८६

शासनहर = दूत ३८५०

शिवण्डिन् = मयूर २६११

शिक्षित = नूपुरोकी झनकार
२६१५

शिवा = शृगाली ३४१८२

शिरस्त्र = शिरका टोप ३६१४

शोक्यमान = मोचे गये २८१०९

शुचि = शौचम ऋतु २७१४९

शृङ्ग = एक वर्ण ३८१४६

शेषुषी = बुद्धि २८१५८

श्रमधर्मांशुविमुप् = पसीनाकी
बूँदे ३५१३५

श्रावकाचारसुष्ठु = श्रावकाचारसे
प्रसिद्ध ४०१३०

श्रीगृह = खजाना ३७१८५

श्रुतोपासक सूत्र = उपासकाध्य-

यनाङ्गश्रावकाचारका वर्णन

करनेवाला शास्त्र ३८१२४

श्रौत = श्रुति अथवा वेद सम्बन्धी
३९११०

श्लाघ्य परिच्छद = प्रशंसनीय

परिकरसे सहित ३४१२४

श्वेतमानु = चन्द्र ४१७६

प

पट्कर्मजीविन् = असि, मपी,
कृपि, गिल्प, वाणिज्य, और
विद्या इन छह कार्योंसे
आजीविका करनेवाले
३९१४३

पट्तीयी = छह भेदसे युक्त ३८१४२

पङ्क = हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल-
सैनिक, देव, और विद्यावर
ये चक्रवर्तीकी सेनाके ६
अंग कहलाते हैं। ३६१५

पाङ्गुण्य = सन्निव, विग्रह, यान,
आसन, द्वैधीभाव, आश्रय,
ये राजाओंके छह गुण हैं।
२८१२८

स

सङ्गर = युद्ध ४३१५२

सङ्गर = प्रतिज्ञा ३४१७०

संग्रामनिकप = युद्धरूपी कसीटी
३५१३७

सजयकेतन = विजय पताकामे
सहित ३६१६

सजानि = स्त्रियोगे सहित
२९१०८

सत्त्वोद्य = सत्यपदार्थका कथन
करनेवाला ३९११२

सत्त्वोपघात = प्राणिघात ४१५१
सदोऽवनि = समवसरण भूमि
४१११९

सध्रीची = सखी २६१४६

सनाभि = वन्धु ४५१२५

सनाभि = सगोत्र, कुटुम्बीजन
३४१२०

सनाभित्व = सगा भाईपना
३५१२

सन्नाह = कवच ३२१६९

सन्निधि = सामीप्य, सन्निधान,
३६१२०३

सन्निधि = एकत्र उपस्थिति
३५१४६

सप्तच्छद = सप्तपर्ण नामका
एक वृक्ष, जो शरद् ऋतुमें
फूलता है। इसकी डण्ठल-
में सात-सात पत्ते होते हैं।
२६१६

सभावनि = सभाभूमि ३६१२००

सभामण्डल = समवसरण
४७१६३

समरसंघटपिशुन = युद्धके
सम्मर्दको सूचित करने-
वाला ३५१४१

समवाय = समह ३४१३८

समवती = यम ४६१४३

सम्पतन्ती = उड़ती हुई २६१८

सप्रीत = प्रसन्न ३९१४४

सभूत = समुत्पन्न ३४११२

समा = वर्ष ३३१२०२

समानता = मानने नहिंनपना
३५११७

समांसमीना = प्रतिवर्ष गर्भिणी
होनेवाली गाय २६१३६
समितसहस्र = हजारों लकड़ियाँ
३५१११

समिद्ध = प्रचण्ड ४४१३४६

समुत्सिक्त = गर्वित ४४१६२

समुद्वाह = विवाह २६१६५

सरोजरागरत्न = पद्मरागमणि
३३१६०

सर्जन = मृष्टि ४१११२

सर्वङ्गप = सर्वघाती ३९१२९

सर्वभोगीणा = सबके भोगने
योग्य ३४१११९

सलिलालोडित = पानीमें घुला
हुआ ३९१४३

सन्धेष्ट = सारथि २८१५९

सहमान = मयूर २६११८

सहमारम्भाः = मारम पक्षियोंसे
सहित २६११५

सख्यातरात्र = कुछ राते ३५१२७

सख्याज्ञान = गणित शास्त्र
३८११२०

सचात = समूह ३६१६

संदग्धित = कवच पहने हुए
३६११५

सप्रेक्षा = आलोकन ३६१२२

सप्लुष्ट = दग्ध ३८१५४

सयुग = युद्ध ४४१९९

संवर्धित = कवच बाण किये
हुए ३६१३८

सवाह = पहाटोंपर बसने वाले
गाँव ३७१६६

सविद = ज्ञान ८६१०८५

सवंग = समान्ते मय ३८११६

सम्भूत = उत्पन्न मनुष्य ८३१८५

सहित = इकट्ठे हुए, मिटे हुए
८०११

साकम्पनि = आत्मपनि - अन्-
मनके पुरातन मन्त्रिन
८८१०५

सागा = मृच्छ ३८१३

साङ्गामिकी = युद्ध सम्बन्धी
३६।२
साक्षात् = वादिनासे सहित
७।५९
सादिन् = धुडसवार ६।११
साधन = सेना ३६।१८
साध्वस = मय २६।२
साध्याचार = मुनिके योग्य
आचारसे सहित २४।१३५
सान्त्वानिकी = कहरवक्षसम्बन्धी
०।१२४
साम = साम दान दण्ड भद्र
इन चार उपायों से एक
उपाय ३५।१००
सामज = हाथी ३५।१०२
सामवायिक = सहायक ४४।२१
साम्प्रतम् = युक्ता-शोक ४१।४३
सामि = कुछ ३६।१११
सायप्रातिक = सुबह शामके
२८।५५
साराम = बगीचामे सहित
३४।४१
सार = सवहितकारी ५।२४४
सायभौमत्व = चक्रवर्तित्व
४५।५७
सावित्री = सबन-यज्ञसम्बन्धिनी
३५।९३
सावधि = अवधिज्ञानसे सहित
४५।४१
सावद्य = पापसहित काय
४।१९२
सायकमारु = पापमहित कायों
से दूरनवाला ८।१४
सितच्छदायली = हमाका पवित्र
२६।८
सितपथिन् = दूत २६।१२
सिद्ध = अमर देशका एक भू-
४१।२६
सिद्धायविष्ट = मित्राय नामक
वर्ण मित्रक नाम जिन
प्रतिमाण हलो ४ १।९९
मिथु = मनी ३५।२७

सिद्धि = मुक्ति ३६।१५८
सिति = काले ३६।१७२
सीमा = मार्ग ३५।३४
सामान्त = मार्गको सीमा
३५।३९
सुधाशिव = देव ३०।२०२
सुधामुज्ज = देव ३६।३१
सुधासित = चूनासे पुता हुआ
सफेद ३७।१५१
सुयज्वन् = होम करनेवाले
२४।२१५
सुमधस् = बुद्धिमान् ३४।५७
सुरगज = एरावत हाथी ३७।२३
सुरद्व = शकुनज ४५।१४२
सुरमिमास = चतु मास वसन्त
मास ३७।१२२
सुरमीकृत = सुगंधोक्त
३७।१२२
सुरा = मदिरा ३६।८७
सुरभ = सुन्दर शब्दसे युक्त
२८।६
सैकतारोह = रतीले तटस्थी
नितम्ब २६।१४८
सैधव = सिंधु नदी सम्बन्धी
२८।१७९
सैधव = सिंधु देशके घोड़े
३०।१०७
सोमरूपद्विष्ट = राजा सोम
प्रभरूपी कल्पवृक्ष ४३।८३
सोद्व = सगे भाई ३४।४५
सौराष्ट्रिक = सौराष्ट्र देशके
३०।९९
सौविद्व = कचुकी अन्त पुरका
पहरेदार २७।११८
स्कन्धावार = शिविर सेनाका
पड़ाव ४५।१०७
स्थ = दूत २६।१६६
स्तनित = मधुगन्ता ३३।७
स्तम्भरक्षितम्ब = धानके पीय
३५।२९
स्तम्बरम = हाथी ६।१७०
स्तनयिषु = मध ४६।१७७

स्थपुट = ऊँचे नीच स्थान
३६।९१
स्थलप्रायित = गुलाबके फूलके
समान आचरण करनेवाला
३५।७६
स्थविराकार = वृद्धका रूप
४७।१०६
स्फीत = अत्यन्त विस्तृत ३७।२०१
स्मराकाण्डावस्कन्द = कामका
असमय हुआ आक्रमण
३७।१२१
स्त्रिणी = माला पहननेवाली
३५।१८३
स्वधुनी = गङ्गा नदी ३५।१९७
स्वसद् = देव २७।५७
स्ववगूह = उत्तम ललाटेसे युक्त,
पक्षमें सुष्ठु प्रतिबन्धसे युक्त
३३।४३
स्वायम्भुव = भगवान् सम्बन्धी
३४।२१५
स्वारोह = जिनपर अच्छी तरह
चढ़ा जाय ऐसे पर्वत
२९।७२
स्वात = वित्त ३४।१८३
हृ
हरि = घोड़े ४४।७५
हरि = सिंह ३४।११२
हरिणाराति = सिंह ३६।१६७
हरिमुख = विडमुख २७।१८
हरिविष्टर = सिंहासन ४२।१
हारि = मनोहर ३५।६२
हाय = हरण करने योग्य - नश्वर
३४।११६
हास्तिक = हाथियोंका समूह
३६।३
हिमानी = बहुत भारी बर्फ
३०।२११
हति = शस्त्र ३६।१३
हृद्भू = काम ३७।१३४
हयित = घोड़ाकी हिनहिनाहट
३३।६
हैमना = हस्त अथवा सम्बन्धी
३०।१६०

आदिपुराण भाग दो के सुभाषित

'अहो कष्टा दरिद्रता ।'	२६।४९
'रम्य हारि न कस्य वा ।'	२७।१९
'नून तीव्रप्रतापाना माध्यस्थ्यमपि तापकम् ।'	२७।१००
'महता चित्रमीहितम् ।'	२८।२७
'अहो स्थैर्य महात्मनाम् ।'	२८।५७
'विभति य. पुमान् प्राणान् परिभूतिमलीमसान् । न गुणैर्लिङ्गमात्रेण पुमानेप प्रतीयते ॥'	२८।१२९
'सचित्रपुरुषो वास्तु चञ्चापुरुष एव च । यो विनापि गुणै पांसून् नाम्नैव पुरुषायते ॥'	२८।१३०
'स पुमान् य पुनीते स्व कुलं जन्म च पौरुषं । भटव्रुवो जनो यस्तु तस्यास्त्वभवनिर्भुवि ॥'	२८।१३१
'सत्य परिभव सोढुमगक्यो मानगालिनाम् । बलवद्भिर्विरोधस्तु स्वपराभवकारणम् ॥'	२८।१३९
'बलिनामपि सन्त्येव बलीयासो मनस्विन । बलवानहमस्मीति नोत्सेक्तव्यमत परम् ॥'	२८।१४२
'इहामुत्र च जन्तूनामुन्नत्यै पूज्यपूजनम् । ताप तत्रानुवव्नाति पूज्यपूजाव्यतिक्रम ॥'	२८।१५१
'सम्भोगैरतिरसिको न तृप्यतीह'	२८।१९०
'पुण्ये बलीयसि किमस्ति जगत्यजय्यम्'	२८।२१४
'पुण्यात्पर न खलु साधनमिष्टसिद्धयै'	२८।२१५
'पुण्यात्पर न हि वञ्चीकरण जगत्याम्'	२८।२१६
'पुण्य जले स्थलमिवाभ्यवपद्यते नृन् पुण्य स्थले जलमिवागु नियन्ति तापम् । पुण्य जलस्थलभये शरण तृतीयं पुण्य कुरुव्रमत एव जना जिनोक्तम् ॥'	२८।२१७
'पुण्य पर शरणमापदि दुर्विलङ्घ्य पुण्य दरिद्रति जने वनदायि पुण्यम् । पुण्य सुखायिनि जने सुखदायि रत्न पुण्य जिनोदितमत सुजनाञ्चिनुध्वम् ॥'	२८।२१८
पुण्य जिनेन्द्रपरिपूजनसाध्यमाद्य पुण्यं मुपात्रगतदानसमुत्थमन्यत् । पुण्य व्रतानुचरणादुपवासयोगात् पुण्यायिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम् ॥'	२८।२१९
'किमु कल्पतरो सेवास्त्यफलाल्पफलापि वा'	२९।३३
'मन्य बहुनटो नृप '	२९।३७
'नर्वो हि वाञ्छति जनो विषय मनोज्ञम्'	२९।१५३
'प्रभवो मितभाषिण '	३४।३०

क्रोधाद्यतमसे मम यो नात्मानं समुद्धरत् ।	३४१७४
स कृत्य सगम दृष्टाभ्योत्तरीतुमलन्तराम् ॥	
किं तरा स विजानाति कार्याकामनात्मवित् ।	३४१७५
य स्वान्तं प्रभवान् जेतुमरोक्षं प्रभवेत् प्रभु ॥	३४१८६
'स्यायुक्तं हि यशो लोके गत्वयौ ननु सम्पद ।	
किमस्तरं शिरोजान्तं सुमनोगन्धलालितं	३४११०६
तुम्बीधनान्तमम्यति प्राणान्तेऽपि मधुव्रतं	
मुक्ताफलाञ्छमापायं गगनाम्बुनयाम्बुदात् ।	३४११०७
गुप्यस्वरोऽपि किं वाञ्छेद्दुःखं नपि च ॥	३४११६७
अगितछन्ते स्म मृत्यय बद्धकक्षा मुमुक्षवः	३४१२१३
सर्वं हि परिकर्मदं बाह्यमप्यात्मशुद्धये	३४१२१४
'प्रादुरासन् विशदं हि सप' सूतं महत्फलम्	
अये खलु खलाचारो यद् बलात्कारदशनम् ।	३५१९४
स्वगुणोत्कीर्तनं दोषोद्भावनं च परेषु यत् ॥	
त्रिवृणोति खलोऽप्यपा दोषान् स्वादिव गुणान् स्वयम् ।	३५१९५
सर्वगुणोति च दोषान् स्वान् परकीयान् गुणानपि ॥	
अनिराकृतसतापा सुमनोमि समुज्जिताम् ।	३५१९६
फलहीना श्रयत्यज्ञं खलतां खलतामिव ॥	
सतामसम्मता विष्वगाचिता विरसै फल ।	३५१९७
मय दुःखलतामना खलता लोकतापिनोम् ॥	
नकातक्षमनं सामं समाप्नातं सहोष्मणि ।	३५१२००
स्निग्धोऽपि हि जनं तप्ते सपिषोवाम्बुसेचनम् ॥	
उपप्रदानमप्येव प्राय मन्वे महौजसि ।	३५१२०१
समित्सहस्रान्दपि दीप्नस्त्यागं कुत शम ॥	
लोहस्येवौपतप्यस्य मद्रुता न मनस्विनः ।	३५१२०२
दण्डोऽप्यनुनयग्राह्ये सामज न भगिनि ॥	३५१२०५
जरस्यपि गजं कक्षा ग्राह्ये किं हरे शिशो ।	३५१२०८
तजस्वी भानुरवकं किमन्योऽप्यस्त्यत परम् ॥	
स्वशत्रुमफलं दद्याद्यं यत्किञ्चन मनस्विनाम् ।	३५१२१२
न चानुरन्तमप्यश्यं परञ्जलतिकाफलम् ॥	
परानोपहृता लक्ष्मी या वाञ्छतायिषोऽपि सन् ।	३५१२१३
सोऽप्यपयति तामुक्तिं सपौबितमिव दुण्डुभम् ॥	
परान्नमानमलिना भूतिं यत् नृपोऽपि यः ।	३५१२१४
नृपयोस्तस्य नन्वप्यभारो रात्र्यपरिच्छिन्ना ॥	
मानमङ्गाजितभोग्यं प्राणाधनुर्मोहसे ।	३५१२१५
तस्य भग्नरदस्य च निरदस्य कुतो भिन्ना ॥	
छन्नमङ्गान्निव्यस्य छायाभङ्गाभिलक्षितः ।	३५१२१६
यो मानमङ्गभारणं विभग्यवननं निर ॥	
मुनयोऽपि ममानाचनं त्यक्तभोगपरिच्छिन्ना ।	३५१२१७
यो नाम रात्र्यभोगार्थं पुमान् ज्ञात्समानताम् ॥	
वरं वनापि वामा यि वरं प्राणविसर्जनम् ।	३५१२१८
कुम्भाभिधानि नृणो न पराजाविषयता ॥	

'मानमेवाभिरक्षन्तु धीरा' प्राणैः प्रणश्वरैः ।	
नन्वलकुस्ते विश्व शश्वन्मानाजित यशः ॥'	३५।११९
'वचोभि पोपयन्त्येव पण्डिता परिफल्वपि ।	
प्रक्रान्ताया स्तुताविष्ट सिंहो ग्राममृगो ननु ॥'	३५।१२१
'ननु सिंहो जयत्येक सहितानापि दन्तिन ।'	३६।३०
'को नाम मतिमानीप्सेद् विपयान्विपदारुणान् ।	
येषा वशगतो जन्तु यात्यनर्थपरम्पराम् ॥'	३६।७३
'वर विप यदेकस्मिन्भवे हन्ति न हन्ति वा ।	
विपयास्तु पुनर्घ्नन्ति हन्त जन्तूननन्तश ॥'	३६।७४
'आपातमात्ररम्भाणा विपाककटुकात्मनाम् ।	
विपयाणा कृते नाज्ञो यात्यनर्थानिपार्थकम् ॥'	३६।७५
'अत्यन्तरसिकानादौ पर्यन्ते प्राणहारिण ।	
किपाकपाकविपमान् विपयान् क कृती भजेत् ॥'	३६।७६
'प्रसह्य पायतन् भूमौ गात्रेषु कृतवेपथु ।	
जरापातो नृणा कष्टो ज्वर शीत इवोद्भवन् ॥'	३६।८६
'अङ्गसाद मतिभ्रेष वाचामस्फुटतामपि ।	
जरा सुरा च निर्विष्टा घटयत्याशु देहिनाम् ॥'	३६।८७
'नाग्न्य नाम पर तप '	३६।११७
'ज्ञानशुद्ध्या तप शुद्धिरस्यासीदतिरेकिणी ।	
ज्ञान हि तपसो मूल यद्वन्मूल महातरो ॥'	३६।१४८
'सूते हि फलमक्षीण तपोऽक्षूणमुपासितम् ॥'	३६।१५५
'महता हि मनोवृत्तिर्नोत्सेकपरिरम्भिणी'	३७।१३
'रत्नानि ननु तान्येव यानि यान्त्युपयोगिताम् ॥'	३७।१९
'तप श्रुत च जातिश्च त्रय ब्राह्मण्यकारणम् ।	
तपःश्रुताभ्या यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः ॥	३८।४३
'क्षत्रियो न्यायजीविक '	३८।२६२
'प्रजा कामदुष्टा धेनुर्मता न्यायेन योजिता ।'	३८।२६९
'राजवृत्तमिद विद्धि यन्न्यायेन धनार्जनम् ।	
वर्धन रक्षणं चास्य तीर्थं च प्रतिपादनम् ॥'	३८।२७०
'अज्ञानकुलधर्मो हि दुर्वृत्तैर्दूषयेत्कुलम्'	३८।२७४
'रक्षित हि भवेत्सर्वं नृपेणात्मनि रक्षिते'	३८।२७५
'हिंसोपदेशि यद्वाक्य न वेदोऽसौ कृतान्तवाक्'	३९।२२
'पुराण धर्मशास्त्र च तत्स्याद् वधनिषेधि यत् ।	
वधोपदेशि यत्तत्तु ज्ञेय धूर्तप्रणेतृकम् ॥'	३९।२३
'मन्त्रास्त एव धर्म्यासु ये क्रियासु नियोजिता ।	
दुर्मन्त्रास्तेऽत्र विज्ञेया ये युक्ता प्राणिमारणे ॥'	३९।२६
'स्यान्निरामिपभोजित्व शुद्धिराहारगोचरा ।	
सर्वकपास्तु ते जेया ये स्युरामिपभोजिनः ॥'	३९।२९
'अहिंसाशुद्धिरेषा स्याद् ये नि सङ्गा दयालव ।	
रता पशुवधे ये तु न ते शुद्धा दुराशया ॥'	३९।३०
'न्यायो दयार्द्रवृत्तित्वमन्याय प्राणिमारणम् ।'	३९।१४१
'को हि नाम तमो नैव हन्यादन्यत्र भास्करात् ।'	४०।९

धमघीले महीपाले याति तच्छीलता प्रजा ।	
मताच्छील्यमसच्छीले यथा राजा तथा प्रजा ॥	४११७
दानं पूजा च शीलं च दिने पवण्युपोषितम् ।	
धमश्चतुर्विधं सोऽयमात्मासौ गृहमभिनाम् ॥	४११८
धर्मे हि चिन्तिते सब चिरय स्यादनु चिन्तितम्	४११९
धर्मो रक्षत्युपायस्यो धर्मोऽभीष्टफलप्रदः ।	
धमं ध्येयस्करोऽभुव धर्मेणहामिनन्दथु ॥	४१२०
धर्माय ननु केनापि नादशि विरस धवचित्	४३१६
दोषान्गुणान् गुणो गृह्णन् गुणान् दोषास्तु दोषवान् ।	
सदसज्ज्ञानयोश्चित्रमत्र माहात्म्यमीदृशम् ॥	४३२०
गुणिना गुणमादाय गुणो भवतु सज्जनः ।	
असदोपसमादानाद् दोषवान् दुजनोऽद्भुतम् ॥	४३२१
कविरेव कववैति काम काव्यपरिश्रमम्,	
वध्या स्तनधयोत्पत्तिवेदनामिव नाकमि	४३२४
गुणानुगुणानभिज्ञेन कृता निन्दायवा स्तुतिः ।	
जात्यपत्यव धृष्टस्य रूपे हासाय केवलम् ॥	४३२६
गणयति महान्तं किं क्षुद्रोपद्रवमल्पवत्	
दाह्यं तणाग्निना तूलं पत्युस्तापोऽपि नाम्मसाम् ॥	४३२८
काष्ठजोऽपि दहत्यग्निः काष्ठं तत्तत्तु बधमत् ।	
प्रदीपायितमताम्या सदसद्भूतमासन ॥	४३२९
हृदि धममहारत्नमागमाम्भोषितम्भवम् ।	
कीस्तुभादधिकं मत्वा दधातु पुरुषोत्तम ॥	४३३५
आकरेण्विव रत्नानामूहाना नाशये क्षयः ।	
विचित्रालंकृती कतु दीगत्य किं कवे कृती ॥	४३४२
नाथिनो विमुक्तान्सर्वं कुर्वते तद्धि तद्ग्रतम्	४३७२
सन्तोष्यसरवाग्निं	४३७३
न सहस्ये ननु स्त्रीणां त्रियसोऽपि परामवम्	४३९९
आमिजात्य वयोहृष विद्या वत्त यन् धियम् ।	
विभुत्वं विक्रमं कान्तिमहिकं पारलौकिकम् ॥	
प्रोतिमप्रोतिमादेयमनादेयं कृपा प्रपाम् ।	
हानिं वृद्धिं गुणान्दोषागणयन्ति न योयित ॥	४३१०२१०३
वृत्तिवत्स्य हि विष पञ्चात्मशक्त्यस्य विषं पुरः ।	
योयिता दूषितच्छाना दिदवतो विषमं विषम् ॥	४३१०४
जालवैरिद्रजालेन वञ्च्या प्राप्स्या हि मायया ।	
तामि सेनै गुदवञ्च्यस्तमायामातरं त्विष ॥	४३१०७
दोषा वि तमयास्तासु दोषाणां किं समुद्भवः ।	
तामां दोषेभ्य इत्यत्र न वक्ष्यामि विनिश्चयः ॥	४३१०९
निगुणान्गुणिनो मनुं गुणिनं सलुं निगुणान् ।	
नाश्वनं परमात्मापि मय्यन्ते सा हि हेमया ॥	४३११०
आर्याणामपि वाम्पूयो विचार्या कायवदिमि ।	
वर्माया वि पुनर्वापि कामिनां का विचारणा ॥	४३११५
वनीममोर्नि सम्बन्धं नच्छन्ति वायमा सह	४११८८

'नहि मत्सरिणः सन्तो न्यायमागनुसारिण '	४३।१९९
'धिक् स्थौल्य भीतचेतसाम्'	४४।२२६
'अन्यायो हि परा भूतिर्न तृत्यागो महीयम '	४४।२५२
'उन्मार्ग क न पीडयेत्'	४४।३४२
'सा धीर्देवापराधस्य प्रतिकर्त्री हि याऽचिरात्'	४५।३१
'अर्थार्थिभिरकर्तव्य न लोके नाम किंचन'	४६।५५ -
'बुद्धिर्नाग्रेसरी यस्य न निर्वन्ध फलत्यसौ'	४६।६१
'कान्ता किं किं न कुर्वन्ति स्वभागपतिते नरे'	४६।६३
'पुण्यात् स्निह्यन्ति देहिन '	४३।१३३
'भङ्गारः सगम सर्वोऽप्यङ्गिनामभिवाञ्छित ।	
किं नाम सुखमत्रेदमल्पसकल्पसभवम् ॥'	४६।१९१
'आयुर्वायुचल कायो हेय एवामयालय ।	
साम्राज्यं भुज्यते लोलैर्वाल्लिशैर्वहुदोषलम् ॥'	४६।१९२
'केन मोक्ष. कथं जीव्यं कुत सीख्यं क्व वा मति ।	
परिग्रहाग्रहग्राहगृहीतस्य भवार्णवे ॥'	४५।२०९
'अयं कायद्रुम कान्ताव्रततीततिवेष्टित ।	
जरित्वा जन्मकान्तारे कालाग्निग्रासमाप्स्यति ॥'	४६।२११
'सता स सहजो भावो यत्स्तुवन्त्युपकारिण. ।'	४७।१६६
'सच्चित्तोजितपुण्यानां भवेदापञ्च सपदे'	४७।१६८

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA

MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ

General Editors

Dr. H. L. JAIN, Jabalpur : Dr A N. UPADHYE, Kolhapur.

The Bhāratīya Jñānapīṭha, is an Academy of Letters for the advancement of Indological Learning. In pursuance of one of its objects to bring out the forgotten, rare unpublished works of knowledge, the following works are critically or authentically edited by learned scholars who have, in most of the cases, equipped them with learned Introductions etc and published by the Jñānapīṭha

Mahābandha or the Mahādhavalā :

This is the 6th Khanda of the great Siddhānta work *Saṅkhandāgama* of Bhūtabali. The subject matter of this work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina Philosophy who desire to probe into the minutest details of the Karma Siddhānta. The entire work is published in 7 volumes. The Prākṛit Text which is based on a single Ms is edited along with the Hindī Translation. Vol I is edited by Pt S. C. DIWAKAR and Vols 2 to 7 by Pt. PHOOLACHANDRA. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha Nos 1, 4 to 9 Super Royal Vol. I pp 20+80+350 ; Vol II pp 4+40+440, Vol III pp. 10+496, Vol. IV: pp 16+428, Vol. V. pp 4+460, Vol VI: pp 22+370, Vol. VII: pp 8+320 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1947 to 1958. Price Rs. 11/- for each vol

Karalakkhana :

This is a small Prākṛit Grantha dealing with palmistry just in 61 gāthās. The Text is edited along with a Sanskrit Chāyā and Hindī Translation by Prof. P. K. MODI. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha No 2 Third edition, Crown pp. 48 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964 Price 75 nP

Madanaparājaya

An allegorical Sanskrit Campū by Nāgadeva (of the Samvat 14th century or so) depicting the subjugation of Cupid Edited critically by Pt RAJKUMAR JAIN with a Hindi Introduction, Translation etc. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Sanskrit Grantha No. 1 Second edition Super Royal pp 14+58+144 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi 1964 Price Rs 8/

Kannada Prāntīya Tādapatrīya Grantha-sūci

A descriptive catalogue of Palmleaf Mss in the Jaina Bhaṇḍāras of Moodbidri, Karkal, Aliyoor etc Edited with a Hindi Introduction etc by Pt K BHUJABALI SHASTRI Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Sanskrit Grantha No 2 Super Royal pp 32+324 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi 1948 Price Rs 13/

Tattvārtha-vṛtti

This is a critical edition of the exhaustive Sanskrit commentary of Śrutasaṅgāra (c 16th century Vikrama Samvat) on the Tattvārthasūtra of Umāsvatī which is a systematic exposition in Sūtras of the fundamentals of Jainism. The Sanskrit commentary is based on earlier commentaries and is quite elaborate and thorough Edited by Pis MAHENDRAKUMAR and UDAYACHANDRA JAIN Prof MAHENDRA KUMAR has added a learned Hindi Introduction on the exposition of the important topics of Jainism The edition contains a Hindi Translation and important Appendices of referential value Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Sanskrit Grantha No 4 Super Royal pp 108+548 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi 1949 Price Rs 16/

Ratna Mañjūsā with Bhāṣya

An anonymous treatise on Sanskrit prosody Edited with a critical Introduction and Notes by Prof H D VELANKAR Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Sanskrit Grantha No 5 Super Royal pp 8+4+72 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi 1949 Price Rs 2/

Nyāyaviniścaya-vivarana

The Nyāyaviniścaya of Akalanika (about 8th century A D) with an elaborate Sanskrit commentary of Vādirāja (c 11th century A. D) is a repository of traditional knowledge of Indian Nyāya in general and of Jaina Nyāya in particular Edited with Appendices etc. by Pt MAHENDRAKUMAR JAIN Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 3 and 12 Super Royal Vol I pp 68+546; Vol II: pp 66+468 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1949 and 1954 Price Rs 15/ each

Kevalajñāna-praśna-cūdāmani :

A treatise on astrology etc. Edited with Hindī Translation, Introduction, Appendices, Comparative Notes etc. by Pt. NEMICHANDRA JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 7. Super Royal pp 16+128 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950. Price Rs. 4/-.

Nāmamālā :

This is an authentic edition of the Nāmamālā, a concise Sanskrit Lexicon of Dhanamjaya (c 8th century A. D.) with an unpublished Sanskrit commentary of Amarakīrti (c 15th century A.D). The Editor has added almost a critical Sanskrit commentary in the form of his learned and intelligent foot-notes. Edited by Pt. SHAMBHUNATH TRIPATHI, with a Foreword by Dr. P. L. VAIDYA and a Hindī Prastāvanā by Pt MAHENDRAKUMAR. The Appendix gives Anekārtha nighaṇṭu and Ekākṣarī-kośa. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 6. Super Royal pp. 16+140. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950. Price Rs. 3.50 nP.

Samayasāra :

An authoritative work of Kundakunda on Jaina spiritualism. Prākṛit Text, Sanskrit Chāyā Edited with an Introduction, Translation and Commentary in English by Prof A CHAKRAVARTI The Introduction is a masterly dissertation and brings out the essential features of the Indian and Western thought on the all-important topic of the Self. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, English Grantha No. 1. Super Royal pp. 10+162+244 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950 Price Rs. 8/-

Jātakatthakathā :

This is the first Devanāgarī edition of the Pāli Jātaka Tales which are a store-house of information on the cultural and social aspects of ancient India Edited by Bhikshu DHARMARAKSHITA. Jñānapīṭha Mūrtidevī Pāli Granthamālā No 1, Vol. 1 Super Royal pp. 16+384. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1951. Price Rs 9/-

Kural or Thirukkural :

An ancient Tamil Poem of Thevar It preaches the principles of Truth and Non-violence The Tamil Text and the commentary of Kavirājapandita Edited by Prof A CHAKRAVARTI with a learned Introduction in English Bhāratīya Jñānapīṭha Tamil Series No 1. Demy pp 8+36+440. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1951. Price Rs. 5/-.

Jivamdharma-Campū

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jivamdharma and his romantic adventures. It has both the features of a folk tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism. The Sanskrit Text is edited by Pt. PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindi Translation and Prastāvanā. There is a Foreword by Prof K K HANDIQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jivamdharma tale by Drs. A N UPADHYE and H L JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevi Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 18. Super Royal pp 4+24 +20+344. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1958. Price Rs. 8/

Padma purāṇa

This is an elaborate Purāṇa composed by Raviṣeṇa (V S 734) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale. It is edited by Pt PANNALAL JAIN with Hindi Translation, Table of contents, Index of verses and Introduction in Hindi dealing with the author and some aspects of this Purāṇa. Jñānapīṭha Mūrtidevi Jaina Granthamālā Sanskrit Grantha Nos 21 24 26. Super Royal Vol I pp 44+548, Vol II pp 16+460, Vol III pp 16+472. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi 1958 59. Price Rs 10/ each

Siddhi viniscaya

This work of Akalaṅkadeva with Svopajñāvr̥tti along with the commentary of Anantavīrya is edited by Dr MAHENDRAKUMAR JAIN. This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature. It is a feat of editorial ingenuity and scholarship. The edition is equipped with exhaustive, learned Introductions both in English and in Hindi and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author. There are some 12 useful Indices. Jñānapīṭha Mūrtidevi Jaina Granthamālā Sanskrit Grantha Nos 22 23. Super Royal Vol I pp 174+3, Vol II pp 8+808. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi. Price Rs 12/

Bhadrabāhu Samhitā

A Sanskrit text

by

with

various commentaries

Purānasāra-Saṁgraha :

This is a Purāna in Sanskrit by Dāmanandi giving in a nutshell the lives of Tīrthamkīras and other great persons. The Sanskrit text is edited with a Hindī Translation and a short Introduction by G C JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 15 and 16. Crown Part I pp 20+198 ; Part II pp 16+206 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1954, 1955 Price Rs 2/- each

Sarvārtha-Siddhi :

The Sarvārtha-Siddhi of Pūjyapāda is a lucid commentary on the Tattvāiśhasūtra of Umāsvāti called here by the name Gṛdhrapiccha. It is edited here by Pt PHOOLACHANDRA with a Hindī Translation, Introduction, a table of contents and three Appendices giving the Sūtras, quotations in the commentary and a list of technical terms. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 13. Double Crown pp 116+506 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1955 Price Rs. 12/-.

Jainendra Mahāvṛtti :

This is an exhaustive commentary of Abhayānandi on the *Jainendra Vyākaraṇa*, a Sanskrit Grammar of Devānandi alias Pūjyapāda of circa 5th-6th century A. D. Edited by Pts S N TRIPATHI and M CHATURVEDI. There are a Bhūmikā by Dr V. S AGRAWALA, *Devānandikā Jainendra Vyākaraṇa* by PREMI and *Khilapāṭha* by MIMĀNSAKA and some useful Indices at the end. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 17 Super Royal pp. 56+506. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1956 Price Rs 15/-.

Vratatithi Nirṇaya :

The Sanskrit Text of Sinhanandi edited with a Hindī Translation and detailed exposition and also an exhaustive Introduction dealing with various Vratas and rituals by Pt NEMICHANDRA SHASTRI. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 19. Crown pp 80+200. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1956. Price Rs. 3/-.

Pauma-cariu :

An Apabhramśa work of the great poet Svayambhū (677 A D). It deals with the story of Rāma. The Apabhramśa text up to 56th Sandhi with Hindī Translation and Introduction of Dr DEVENDRAKUMAR JAIN, is published in 3 Volumes. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhramśa Grantha Nos 1, 2 & 3. Crown size, Vol I pp 28+333 ; Vol II pp 12+377, Vol III pp 6+253. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1957, 1958 Price Rs 3/- for each Vol

Jivamdharma Campū

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jivamdharma and his romantic adventures. It has both the features of a folk tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism. The Sanskrit Text is edited by Pt PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary Hindi Translation and Prastāvanā. There is a Foreword by Prof K K HANDIQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jivamdharma tale by Drs. A N UPADHYE and H L JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Sanskrit Grantha No 18 Super Royal pp 4+24 +20+344 Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi 1958 Price Rs. 8/

Padma purāṇa

This is an elaborate Purāṇa composed by Raviṣeṇa (V S 734) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale. It is edited by Pt PANNALAL JAIN with Hindi Translation Table of contents Index of verses and Introduction in Hindi dealing with the author and some aspects of this Purāṇa. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 21 24 26 Super Royal Vol I pp 44+548 Vol II pp 16+460 Vol III pp 16+472 Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi 1958 59 Price Rs 10/ each

Siddhi vināśaya

This work of Akalankadeva with Svopajñavrtti along with the commentary of Anantavīrya is edited by Dr MAHENDRAKUMAR JAIN. This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature. It is a feat of editorial ingenuity and scholarship. The edition is equipped with exhaustive, learned Introductions both in English and in Hindi and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author. There are some 12 useful Indices. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 22 23 Super Royal Vol I pp 16+174+370 Vol II pp 8+808 Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi 1959 Price Rs 18/ and Rs 12/

Bhadrabāhu Samhitā

A Sanskrit text by Bhadrabāhu dealing with astrology omens, portents etc. Edited with a Hindi Translation and occasional Vivecana by Pt NEMICHANDRA SHASTRI. There is an exhaustive Introduction in Hindi dealing with Jain Jyotiṣa and the contents authorship and age of the present work. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 25 Super Royal pp. 72+416 Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi 1959 Price Rs. 8/

Pañcasamgraha :

This is a collective name of 5 Treatises in Prākṛit dealing with the Karma doctrine the topics of discussion being quite alike with those in the Gōmmatīśāra etc. The Text is edited with a Sanskrit commentary, Prākṛit Vṛtti by Pt HIRALAL who has added a Hindī Translation as well. A Sanskrit Text of the same name by one Śrīpāla is included in this volume. There are a Hindī Introduction discussing some aspects of this work, a Table of contents and some useful Indices. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha No 10 Super Royal pp 64+804. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1960. Price Rs 15/-

Mayaṇa-parājaya-cariu :

This Apabhramśa Text of Harideva is critically edited along with a Hindī Translation by Prof. Dr HIRALAL JAIN. It is an allegorical poem dealing with the defeat of the god of love by Jina. This edition is equipped with a learned Introduction both in English and Hindī. The Appendices give important passages from Vedic, Pāli and Sanskrit Texts. There are a few explanatory Notes, and there is an Index of difficult words. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhramśa Grantha No 5 Super Royal pp 88+90. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1962. Price Rs 8/-

Harivaṁśa Purāna :

This is an elaborate Purāṇa by Jināsena (Śaka 705) in stylistic Sanskrit dealing with the Harivaṁśa in which are included the cycle of legends about Kṛṣṇa and Pāṇḍavas. The text is edited along with the Hindī Translation and Introduction giving information about the author and this work, a detailed Table of contents and Appendices giving the verse Index and an Index of significant words by Pt. PANNALAL JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 27 Super Royal pp 12+16+812+160. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1962. Price Rs 16/-.

Karmaprakṛti :

A Prākṛit text by Nemicandra dealing with Karma doctrine, its contents being allied with those of Gommatīśāra. Edited by Pt. HIRALAL JAIN with the Sanskrit commentary of Sumatīkīrti and Hindī Tikā of Paṇḍita Hemarāja, as well as translation into Hindī with Viśeṣārtha. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha No 11 Super Royal pp 32+160. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964. Price Rs. 6/-.

Upāsakādhyayana

It is a portion of the Yaśastilaka campū of Somadeva Sūri. It deals with the duties of a householder. Edited with Hindi Translation, Introduction and Appendices etc by Pt KAILASHCHANDRA SHASTRI Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 28 Super Royal pp 116+539, Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1964 Price Rs 12/-

Bhojacaritra

A Sanskrit work presenting the traditional biography of the Paramāra Bhoja by Rājavallabha (15th century A. D.) Critically edited by Dr B. Ch. CHHABRA Jt Director General of Archaeology in India and S. SANKARANARAYANA with a Historical Introduction and Explanatory Notes in English and Indices of Proper names. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Sanskrit Grantha No 29 Super Royal pp 24+192 Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi 1964 Price Rs 8/-

Satyasāsana parikṣā

A Sanskrit text on Jain logic by Ācārya Vidyānandi critically edited for the first time by GOKULCHANDRA JAIN. It is a critique of selected issues upheld by a number of philosophical schools of Indian Philosophy. There is an English compendium of the text by Dr NATHMAL TATIA. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jain Granthamālā Sanskrit Grantha No 30 Super Royal pp 56+34+62 Bhāratiya Jñānapīṭha, Kashi 1964 Price Rs 5/-

Karakanda carita

An Apabhramsa text dealing with the life story of king Karakaṇḍa famous as Pratyeka Buddha in Jaina & Buddhist literature. Critically edited with Hindi & English Translations, Introductions, Explanatory Notes and Appendices etc by Dr HIRAI AL JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Apabhramsa Grantha No 4 Super Royal pp. 64+278 Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi 1964 Price Rs 10/-

For Copies Please write to—

BHARATIYA JNANPITH

3620/21 Netaji Subhas Marg Darjaganj

Delhi (India)

or

BHARATIYA JNANPITH

Durgakund road, Varanasi (India)